धन्य है उन विद्वानों को, जिन्हों ने महान् ग्रन्थों की रचना करके, संसार-दुःख से सन्तप्त
का मार्ग दर्शाया। जैन-साहित्य में ऐसे उच्च कोटि के ग्रन्थ, संस्कृत व प्राकृत भाषाओं में बहुत है
भाषाओं के द्वारा, ज्ञान सम्पादन करनेवाले व्यक्ति, विरले ही हैं। इससे आवश्यकता हुई कि इन ग्रन्थों
में किया जाय। जिससे सर्व-साधारण का उपकार हो। यह स्तुत्य कार्य स्वर्गीय पं० टोडरमल जी, पं० ज-
पं० दौलतराम जी, पं० सदासुख जी, व वर्तमान में पं० लालाराम जी, पं० मक्खनलाल जी, पं० गजाधरलाल जी
विद्वानों ने बडे परिश्रम से किया तथा करते जा रहे हैं। आशा है कि वर्तमान विद्वानों की कृपा से और भी अनेक अनमोल
ग्रन्थ, भाषा-वचनिका में अनुवादित होकर, सर्व साधारण में ज्ञान का प्रसार करेंगे।

संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थों के भाषा-वचनिका में अनुवाद करने की अपेक्षा, देश-भाषा में स्वतन्त्र ग्रन्थ निर्माण करना और भी
अधिक कष्टसाध्य कार्य है। क्योंकि इनमें तात्कालिक प्रश्नों पर विस्तृत विवेचनायें रहती हैं। यद्यपि इस समय ऐसे ग्रन्थों का
निर्माण प्रायः बन्द है। परन्तु अधिक समय नहीं हुआ, तबतक यह प्रथा प्रचलित थी। और इसके प्रतिफल "मोक्ष-मार्ग-
प्रकाशक" समान महान् उपयोगी ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

यह सुदृष्टि तरंगणी ग्रन्थ भी इसी-प्रकार का स्वतन्त्र ग्रन्थ है। जिसे विद्वद्वर पं० टेकचन्द जी ने विक्रम संवत् १८३८
की श्रावण सुदी ११ को मद्रशालपुर में लिखकर समाप्त किया था। जैसा कि ग्रन्थ के अन्त के पद्य से प्रगट है। इस ग्रन्थ में
बडे-बडे गहन विषय बालबोधनी भाषा वचनिका में बडी सरलता से समझाये गये हैं।

तीन वर्ष हुआ हमारे द्वारा "मोक्ष-मार्ग-प्रकाशक" ग्रन्थ शास्त्राकार मोटे टाइप में प्रकाशित हुआ था। परन्तु वह
पूर्ण नहीं था। अतएव उसीसमय हमारी इच्छा हुई थी कि इसी शैली का पूर्ण ग्रन्थ, सुदृष्टि तरंगणी भी प्रकाशित कि
जाय। श्री जिनेन्द्र देव की कृपा से, आज वह कार्य पूर्ण हुआ और यह ग्रन्थ आप लोगों के समक्ष उपस्थित है।

अज्ञानता से इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जो भूलें रह गई हों, विद्वान् उनको क्षमा करें। व हमें सूचित करें। ताकि
संस्करण में शुद्ध कर दी जावे।

इस महान् कार्य में हमें पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री, पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, पं० आनन्दकुमार जी
गुलजारीलाल जी से बहुत सहायता मिली है। अतएव हम इनके आभारी हैं।

निवेदक
पन्नालाल

भदैनीघाट-बनारस सिटी।
भाद्रपद शुक्ला ५, वी० सं० २४५४
वि० सं० १९८५

विषय-सूची ।

विषय-	पृष्ठ-
पञ्च परमेष्ठी की स्तुति	१
टिप्पणिका	३
प्रथम पर्व सम्पूर्ण ।	
इष्ट देव कौं नमस्कार	२०
संसार-सुख सिद्धन के नाहीं, तो मोक्ष विषै कैसा सुख है	२१
सुदृष्टि तरङ्गणी ग्रन्थ-नाम का अर्थ	२३
पर ज्ञेय में ममत्व भाव करि भ्रमण करते, अनन्त परावर्तन काल भये	२४
अनन्तकाल भ्रमण करते, जीव की काललब्धि निकट आवे, तब पञ्च लब्धि होंय	२६
सम्यक्त्व के दश भेद	३१
सम्यक्त्व के २५ दोष	३३
सम्यक्त्व के ८ गुण	३६
श्रोता लक्षण	३८
वक्ता लक्षण	४६
द्वितीय पर्व सम्पूर्ण ।	
पण्डितो के दो भेद, गज दृष्टांत	५२
ग्रन्थ के आदि पट् वस्तु कथन	६६
भले की दाता सप्त प्रकार कथा	६९
तीसरा पर्व सम्पूर्ण ।	

विषय-	पृष्ठ-
मोक्ष-महल चढ़वे कौं सोपान, सम्यक्त्व की उत्पत्ति है	७४
एकान्तमती को समझाय दृढ़ किया	८०
क्षणिकमत को सम्बोधन	८९
कर्त्तावादी से निर्णय	९३
नास्तिकमत का संवाद	९६
अवतारवादी-एकान्तमती का संवाद	९८
आज्ञानवादीका निर्णय	१०१
स्थिरवादी संवाद	१०५
केई विपरीतमती, अजीव तैं, जीव की उत्पत्ति मानै हैं। मेघमाला को इन्द्र कहै हैं	१०७
केई भोरे जीव, काल द्रव्य जो अचेतन, ताकौं चेतन मानै हैं	११०
केई मत, अजीव द्रव्य तैं, जीव की उत्पत्ति मानैं हैं ..	११३
एकान्तमत कौं, स्याद्वाद नय करि सत्य बताया ..	११५
अवतारवादी का वचन, कोई नय करि प्रमाण है ...	११६
क्षणिकवादी को स्याद्वाद नय करि समझाया ...	११७
कर्त्तावादी का मत, कोई नय करि प्रमाण ठहराय, जीवादि तत्व बताये	११८
नास्तिकमती को समझाया	११९
सिद्ध जीव, ज्ञान रहित नहीं है	१२०

विषय-सूची।

विषय—	पृष्ठ—
जीव मरै, वैसी ही योनि में उपजै, निराकरण	१२१
चतुर्थ पर्व सम्पूर्ण।	
मोक्ष सुख	१२३
मोक्ष का स्वरूप	१२४
अजीव द्रव्य	१२५
अष्ट कर्म	१२७
कर्म बंध, उदय, सत्ता, गुणस्थान	१४२
पञ्चम पर्व सम्पूर्ण।	
चौदह मार्गणा	१५२
सात समुद्घात्	१५६
जीव समास	१६२
पर्याप्ति	१६२
प्राण	१६३
वनस्पति के सात प्रकार बीज	१७१
षष्ठम पर्व सम्पूर्ण।	
गुणस्थानों सम्बन्धी जीव सख्या	१७३
धर्म, अधर्म, काल द्रव्य	१८३
सप्तम पर्व सम्पूर्ण।	
भगवान के गुण	१९०
कुदेव कुगुरु	१९६
सुगुरु का स्वरूप	२०३
४६ दोष (३२ अतराय व १४ मल)	२०८
अष्टम पर्व सम्पूर्ण।	
तीन गुप्ति	२२०

विषय—	पृष्ठ—
परीषह	२२१
मुनि वर्णन	२३०
आचार्य के ३६ गुण	२३०
नवम पर्व सम्पूर्ण।	
उपाध्याय के २५ गुण	२३६
पाताल लोक वर्णन	२४३
मध्य व ऊर्ध्व लोक वर्णन	२४४
जिनेन्द्र गुण सपत्ति आदि तप	२५५
दश प्रकार मुनि भेद	२६०
मुनियों के चितवन योग्य, दश समाचार	२६१
मुनि, मन्दिर में कैसे प्रवेश करैं	२६६
मुनि स्तुति करैं, ताके श्लोक	२६७
मुनि प्रमादवश होंय, तब कायोत्सर्ग करैं	२६८
दशम पर्व सपूर्ण।	
कुधर्म	२७१
सुधर्म	२७४
नव नय	२७४
सत्यधर्म, पच प्रमाण करि अखण्ड	२७८
ग्यारहवा पर्व सपूर्ण।	
किस प्रकार की संगति करना	२८८
विचार में हेय-ज्ञेय-उपादेय	२९१
ध्यान का स्वरूप	२९१
क्रिया में ज्ञेय-हेय-उपादेय	२९८
गर्भ में शुभाशुभ बालक के चिन्ह	३००

विषय-सूची ।

विषय-	पृष्ठ-
क्रिया-अक्रिया कथन	३०१
उत्तम श्रावक के धर्म-कर्म-आभूषण	३०२
बारहवा पर्व सपूर्ण ।	
खान-पान में ज्ञेय-हेय-उपादेय	३११
वचन मे ज्ञेय-हेय-उपादेय	३१३
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव मे ज्ञेय-हेय-उपादेय	३१९
षट् काय के जीवन का शरीर	३२०
निगोद के पंच स्थान	३२४
तप मे ज्ञेय-हेय-उपादेय	३३०
तेरहवा पर्व सपूर्ण ।	
व्रत विषैं ज्ञेय-हेय—उपादेय	३४५
दान विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय	३५१
पात्र में ज्ञेय-हेय-उपादेय	३५३
पूजा में ज्ञेय-हेय-उपादेय	३५९
चौदहवा पर्व सपूर्ण ।	
तीर्थ मे ज्ञेय-हेय-उपादेय	३६३
पन्द्रहवा पर्व सपूर्ण ।	
परस्पर चर्चा मे हेय ज्ञेय-उपादेय	३६९
सोलहवा पर्व सम्पूर्ण ।	
अनुमोदना में हेय-ज्ञेय-उपादेय	३७१
सत्रहवा पर्व सम्पूर्ण ।	
मोक्ष में हेय-ज्ञेय-उपादेय	३७४
अठारहवां पर्व सपूर्ण ।	
ज्ञान मे हेय-ज्ञेय-उपादेय	३७९

विषय-	पृष्ठ-
कृतघ्नी के तीन भेद तथा विश्वासघाती का दृष्टान्त	३८६
चार गति के जीवन की आगति-जागति	३९०
निमित्त-उपादान कारण	३९३
शुभ वाणिज्य	३९८
जघन्य मध्यम उत्कृष्ट श्रुतज्ञान	४०२
उन्नीसवा पर्व सपूर्ण ।	
अवधिज्ञान	४०९
मनःपर्ययज्ञान	४१५
केवलज्ञान	४१६
बीसवा पर्व संपूर्ण ।	
मनुष्य अपनी आयु वृथा खोवै है	४२१
अपनी भूलकर खुद बंध्या है	४२३
शुद्धात्मा कौं एते दोष नाहीं	४२५
धर्म के प्रसाद तैं, अचेतन आकाश भी भक्ति करै, तौ इन्द्र-चक्री आदि चेतन द्रव्य भक्ति करैं, तो क्या आश्चर्य	४३०
पुण्याधिकारी पुरुषों के भी इन्द्रिय-सुख नाशवान हैं	४३१
माता-पितादि सर्व स्वारथ के बधन तै बधे हैं	४३३
जिसका जैसा स्वभाव, वह नहीं मिटता	४३६
जिन आज्ञा रहित पण्डित के मुख तैं शास्त्र न सुनना	४४०
क्रूर जीव, सर्प से भी विशेष दुष्ट हैं	४४४
सज्जन-दुर्जन स्वभाव	४४६
इक्कीसवां पर्व सम्पूर्ण ।	
मूर्ख कौं धर्मोपदेश कार्यकारी नाहीं	४४९
एते किसब (व्यापार) दया रहित है	४५८

विषय-	पृष्ठ-
कृपण का धन वह नहीं भोगै है	४६२
येते जीव दया रहित है।	४६५
सतोषी आत्मा निर्धन होने पर, ऐसी भावना भावै	४६७
धर्मार्थी जीवों की इच्छा, चार प्रकार	४६८
कवीश्वरों का अभिप्राय	४७३
बाबीसवा पर्व सपूर्ण।	
पंचमकाल वर्णन	४८०
शुभ भाव बिना, शुभ करनी का फल नाहीं	४८१
शुभ भावो बिना, धर्म अंग व्यर्थ हैं	४८६
सुसंग-कुसग के वाच्छक जीव	४६०
हितू व कुटुम्बियों की परीक्षा के स्थान	४९४
इन नव स्थान में कौन-कौन कौ परखिये	४९६
एक दुख के अनेक उपचार	४९७
प्रथम तो घर छोड़े, फिर उसे चाहै	४९९
किसको छोड कर, किसको ग्रहण करना	५०१
किस देश व नगर को छोडना	५०५
छह स्थानों मे लज्जा नहीं करनी	५०६
तेबीसवा पर्व सपूर्ण।	
पक्ष बल से, निर्बल का भी कार्य सिद्ध होय हित है, सो बडा बल है	५०८
न्याय की प्रशशा व अन्याय का फल	५०९
अनेक सकट मे, पूर्व-पुण्य सहायक है	५१०
ये वस्तु किसी के कार्यकारी नाहीं	५१३
ये पदार्थ परोपकार को ही हैं	५१५
	५१७

विषय-	पृष्ठ-
षट् स्थानों मे लज्जा नहीं करिये	५१८
साहस से सर्व संकट मिटै हैं	५२०
विवेकी जीवो के हास्य के कारण तीन स्थान	५२३
किसके आदर में दुख व किसके अनादर में सुख	५२५
षट्भेद म्लेच्छ	५२६
मूढता के सात भेद	५२८
चौबसिवा पर्व सम्पूर्ण।	
हितोपदेश	५३८
इन्द्रिय सुख तै तृप्ति नहीं	५३५
दीर्घ दुख नर्कादिक के सहे, तो तप में क्या दुख है	५३७
माया-कषाय का फल सबसे बुरा है	५३८
धर्म-फल इन्द्रिय-जनित सुख तैं, खोटी गति नाहीं	५४२
मुनियों के मोक्ष का कारण, श्रावक का घर है	५४७
बुद्धि, धन, तन, पाये का फल	५४९
ये निमित्त, काल समान हैं	५५२
मुनि कहां नहीं रहैं	५५३
किनका विश्वास नहीं करिये	५५५
पच्चीसवा पर्व सम्पूर्ण।	
कैसा मित्र तजने योग्य है	५५८
इतनी सभा मे, विरोध वचन नही कहना	५५९
शास्त्राभ्यास तै ऐते गुण नहीं भये, तो वह काक-शब्द समान है	५६४
मरण हू तै अधिक, निद्रा है	५६६
दुष्ट जीव का स्वभाव, दृष्टान्त	५६७

विषय-	पृष्ठ-
अपने भावों से ही, रोग की दीर्घता होय है ...	५६८
दुख व रोग मिटता है, पर काल नहीं मिटता .	५६९
इष्ट वियोग कहां है, कहां नाहीं ...	५७०
काल के आगे कोई रक्षक नहीं, एक धर्म रक्षक है ...	५७०
अग्नि भेद तीन	५७३
विद्यादिक भले गुण कूं, इन्द्रिय-सुख की वांछा ठगै है	५७६
इष्ट वियोग के दोय भेद . .	५७८
जैसे परणाम विषय-कषाय में लगै हैं वैसे धर्म मे लगैं, तो क्या फल होय	५८०
कृपण अपने तन कौं ठगै है	५८१
भिक्षुक मांगने के बहाने, घर-घर उपदेश करै है ..	५८४
केवली व मिथ्यादृष्टियो के उपदेश का अन्तर ..	५८६
छब्बीसवा पर्व सम्पूर्ण।	
छह लेश्याओं का स्वरूप	५८९
नव-भेद योनि	५९३
योनि तैं उत्पन्न कौन-कौन जीवों के शरीर में निगोदिया नाहीं	५९५
आठ जाति के जीवों तैं शौच नहीं पलै	५९६
निमित्त ज्ञान के आठ भेद	५९८
ज्ञान के आठ अंग	५९९
मुनियो के ध्यान के १० स्थान	६०३
आलोचना के दश अतिचार	६०४
दीक्षा के अयोग्य, दश काल	६०६
सत्ताईसवा पर्व सम्पूर्ण।	
दश करण का निमित्त पाय, कर्म अवस्था कथन ..	६०८
मिथ्यात्व	६१६
तीन भेद आंगुल	६१८
तीन प्रकार अक्षर	६१९
पर्याप्ति तीन भेद	६२०
चक्षु दर्शन दो भेद	६२०
उपशम सम्यक्त्व दो भेद	६२०
योग स्थान तीन भेद	६२१
धर्म अरुचि के तीन कारण	६२१
शल्य के तीन भेद	६२३
चार निक्षेप	६२३
अलौकिक मान के चार भेद	६२५
आर्यिका के गुण	६२६
दत्ति के चार भेद	६२७
दण्ड भेद	६२८
अट्ठाईसवां पर्व सम्पूर्ण।	
श्रावक की २५ क्रिया	६२९
प्रश्नोत्तर माला	६४०
उनतीसवां पर्व सम्पूर्ण।	
हिंसा में पुण्य का अभाव	६९९
दया का कथन	७०६
तीसवा पर्व सम्पूर्ण।	
राज लक्षण	७२६
राजाओ के पद् गुणादि	७२६

विषय-	पृष्ठ-
पुण्याधिकारियों के सीखने योग्य विद्या	७३५
लौकिक १४ विद्या	७३८
चौदह रत्न, नवनिधि	७४०
चक्रवर्ती के स्वप्नो का फल	७४७
शुद्ध भगवान के गुण	७५०
तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्न	७५०
इक्तीसवा पर्व सम्पूर्ण ।	
आदिनाथ भगवान के भोग	७५२
पुण्यवान के गुण	७५३
सभा नायक तीन भेद	७५८
व्रती श्रावक के तीन भेद	७५९
सप्त व्यसन और पहिली दर्शन प्रतिमा	७६१
बत्तीसवा पर्व सम्पूर्ण ।	
दूसरी व्रत प्रतिमा	७८७
तीन गुणव्रत	७९५
तेतीसवा पर्व सम्पूर्ण ।	
चार शिक्षाव्रत	८०३
सल्लेखना	८१५
चौंतीसवा पर्व सम्पूर्ण ।	
तीसरी सामायिक प्रतिमा वर्णन	८२४
पैंतीसवा पर्व सम्पूर्ण ।	
चौथी प्रोषध प्रतिमा कथन	८३३
पाचवीं सचित्त त्याग प्रतिमा	८३४
छठवीं रात्रि भोजन, दिन कुशील त्याग प्रतिमा	८३६
छत्तीसवा पव सम्पूर्ण ।	

विषय-	पृष्ठ-
सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा	८३९
शीलमहिमा	८५०
कुशील का स्वरूप	८५८
श्रावक के अन्तराय सात प्रकार	८६४
श्रावक के सतरह नियम	८६४
श्रावक के २१ गुण	८६७
किया-ब्रह्म के भेद अन्यमत सबंधी कथन	८६९
सैतीसवा पर्व सपूर्ण ।	
आठवीं प्रतिमा आरंभ त्याग	८७५
नववीं प्रतिमा परिग्रह त्याग	८७८
दशवीं प्रतिमा पापारंभ उपदेश त्याग	८७८
ग्यारहवीं प्रतिमा दो प्रकार	८७८
अडतीसवा पर्व सम्पूर्ण ।	
चौवीस तीर्थंकर के माता-पितादिक के नाम	८८३
सिद्धक्षेत्र सख्या	९३६
अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन	९३८
उनतालीसवा पर्व सम्पूर्ण ।	
समोशरण का विशेष वर्णन	९४७
चालीसवां पर्व सम्पूर्ण ।	
वादिराज मुनि का चरित्र	९६५
मानतुङ्गाचार्य का चरित्र	९६९
इकतालीसवा पर्व सम्पूर्ण ।	
ग्रन्थकर्त्ता का अन्तिम निवेदन	९८०
ब्यालीसवां पर्व सम्पूर्ण ।	

इति विषय-सूची ।

* ॐ *

नमः सिद्धेभ्यः ।

श्री सुदृष्टि तरंगिणी ।

मंगलाचरण ।

अब मांहि भक्ति अनाथ नमिहौं, देव अरिहँत कौं सही ।
फिरि सिद्ध पूजौं अष्ट गुणमय, सूर गुण छत्तीस ही ॥
अंग पूर्वधारी जजौं उपाध्याय साधु गुण अठबीस जी ।
यह पंच गुरु ग्रन्थ आदि सत ए मंगदा जगईश जी ॥ १ ॥
वृषभसेन आदिक गणराय, गौतम स्वामी लौं श्रुतिलाय ।
और नमौं ग्रन्थ कवि सूर, जिन कीने मिथ्या मगचूर ॥ २ ॥
सुमति करन कुमती हरन, भरन ज्ञान भण्डार ।
दया मूर्ति सर्वज्ञ कौं, नमौं सूर भवतार ॥ ३ ॥
देव धर्म गुरु या विधि थकी मानिए, काय मन वचन तैं भक्ति उर आनिए ।
और तीरथ नमौं सिद्ध तहां तें भए, नमौं जिन बिम्बन किये कृत्तिम थए ॥ ४ ॥

ऐसे इष्ट देवनि जो पूजै, तातैं अगले मारग सूजै ।
इन प्रसाद अब बुद्ध सवाई, ग्रन्थ रचूं शुभ शुभ फलदाई ॥ ५ ॥
मैं तो इष्ट देव का दासा, होऊ भक्ति तितने तन श्वासा ।
सब जीवन तैं क्षमा करांई, निज सम जानि दया उर आई ॥ ६ ॥

॥ ग्रन्थ महिमा ॥

ए ग्रन्थ सागर अर्थ जल करि पूरित सही ।
बहु दृष्टान्त युक्ति नय तरंग उठैं सही ॥
ता मध्य जे अधिकार दीप सम जानिए ।
तत्त्व रतन करि भरे सकल सुख खानिए ॥
सुख खानि तहां समदृष्टि जावै बैठ जिन वचनावजी ।
ते चहैं भुज बुद्धि बल पहुँचै नहीं तिनको दाव जी ॥
तातैं जु सरधा पोत गहि दृष्टि सुरति सागर कौं तिरो ।
नहिं कोय और उपाय भवि श्रुति सीख यह हिरदै धरो ॥७॥
शंभुरमण समुद्र सो, यह श्रुति उदधि गँभीर ।
पार कौन जिन बिन लहै, बरणौ बुध सम वीर ॥८॥

आगे वचनिका लिखिए है। सो ऐसे स्तुति करि अरु प्रथम इस ग्रन्थ में प्रवेश करन हारे जे सुबुद्धि हैं ते धर्मशास्त्र के वेत्ता तिनकौ वतावें हैं। जो उत्तम तीन कुल में उपजे धर्मात्मा मोक्षाभिलाषी होय सो ऐसे धर्मशास्त्रनि में प्रवेश करैं हैं। तातैं इस ग्रन्थ का टिप्पण सामान्य करि लिखिये है। सो उत्तम श्रावकनि को परभव सुधारवे अर्थ धर्म-शास्त्रनि का अभ्यास करना योग्य है। यह धर्मशास्त्र है सो याका सामान्य टिप्पणी कहिये है। सो चित्त देय सुनौ। आगे जो जो कथन इस ग्रन्थ में कहिये तिनकी सूचनिका मात्र सामान्य टिप्पणी जो पीठिका सो लिखिये है। सो इस पीठिका के जाने सब ग्रन्थ का सुमिरण होय है। अर्थात् जिस अधिकार का चिंतवन किये उस अधिकार के अर्थ की याद होय है। तातैं इस ग्रन्थ के आदि कथन का टिप्पण लिखिये है॥ सो प्रथम ही तो ग्रन्थ-कर्त्ता अपने इष्टदेव को मंगल निमित्त नमस्कार करैगा॥ १॥ पीछे देव का कथन करते प्रश्नपाय सिद्धनि के सुख का कथन है॥ २॥ आगे इस ग्रंथ के नाम का कथन है॥ ३॥ ता पीछे इस ग्रंथ में ज्ञेय हेय उपादेय का स्वरूप है॥ ४॥ पीछे स्वज्ञेय परज्ञेय का वर्णन है॥ ५॥ वहुरि अवसर पाय पंच प्रकार परावर्तन का कथन है॥ ५॥ ता आगे सम्यक्त होतैं मिथ्यात्व छूटतें, क्षयोपशमादि पंच लब्धि का स्वरूप है॥ ७॥ वहुरि सम्यक् दर्शन के दश भेदनि के स्वरूप का व्याख्यान है॥८॥ पीछे सम्यक्त के पचीस दोषनि में नास्तिक

आदि अष्टमद, अरु शंका आदि सम्यक्त के आठ दोषनि का, अरु षट् अनायतन अरु तीन मूढ़ता इन पचीसन का स्वरूप है ॥ ९ ॥ इहां आगे सम्यक्त के अष्ट गुणनि का व्याख्यान है ॥ १० ॥ आगे सम्यक् दृष्टि वीतराग कह्या तापै शिष्य के प्रश्न उत्तर का कथन है ॥ ११ ॥ आगे शुभ अशुभ श्रोतानि का कथन है ॥ १२ ॥ आगे वक्ता के गुणों का कथन है ॥ १३ ॥ फिर ग्रंथकर्ता अपनी लघुता सहित ग्रंथ करिवे की अभिमानता छांड़ि ग्रंथकर्त्ता केवली हैं मैं नाहीं, ऐसा कथन है ॥ १४ ॥ और व्यवहार मात्र ग्रंथ के अर्थ कवीश्वरों ने मिलाये हैं। तिनमैं बुद्धि की समानता करि कोई चूक होय, तो तिसको शुद्ध करिवे को विशेष ज्ञानीन तैं विनती करी तापै शिष्य के प्रश्न पाय उत्तर सहित कथन है ॥ १५ ॥ ता ग्रंथ करने मैं तरकी (तर्क करने वाले) ने मान बताया, ऐसा प्रश्न होतैं अनेक युक्ति दृष्टान्त सहित, उत्तर कथन है ॥ १६ ॥ पीछे ग्रंथनि मैं ग्रंथकर्त्ता अपने नाम का भोग धरैं, ताकी परिपाटी का कथन है ॥१७॥ पीछे भले बुरे पंडितन का कथन है तामैं धर्मार्थी अरु धर्मरहित (नाममात्र पंडित) तिनका दृष्टान्तपूर्वक कथन है ॥ १८ ॥ आगे तरकी नै कही ग्रंथ में कोई चूक होइगी तो दोष लागैगा ताके प्रश्न पाय निर्दोष ग्रंथकर्त्ता का कथन है ॥ १९ ॥ बहुरि ग्रंथन के आदि, आचार्य षट्कार्यनि का कथन करते आये, तिनका कथन है ॥ २० ॥ पीछे ग्रंथ के आदि मंगल करिए, सो मंगल के षट् भेदनि का कथन है ॥ २१ ॥ आगे जिन

ग्रंथनि में ए सात कथा होय सो ग्रंथ मंगलकारी होय। तिन कथानि का कथन है ॥ २२ ॥ फिर जिन सर्वज्ञ भाषित तत्त्व, जीव अजीवनि का कथन सत्य है। ऐसा कहते तरकी ने अनेकमतन संबंधी तत्त्व सत्य बताय प्रश्न किया। सो तिन अन्य मतीन के भाषे जीवादि तत्त्वनि में अरु सर्वज्ञ भाषित तत्त्वनि विषैं अंतर है। तिनके कथन का अनेक नय दृष्टान्त युक्ति रूप कथन है। तहां कोई ब्रह्मवादी संसार में एक आत्मा मानें है। कोई अवतारवादी मोक्ष-आत्मा कूं अवतार मानै है। और कोई क्षणिक मती जीव छिन-छिन में शरीर विषै उपजता मानें हैं। कोई कर्त्तावादी आत्मा कौं उपजावनहारा मानें है। कोई नास्तिकमती जीव का अभाव मानें हैं। कोई अज्ञानवादी मोक्ष विषैं ज्ञान का अभाव मानैं हैं। और केई अजीव कौं जीव मानें हैं। स्थिरवादी ऐसा मानैं हैं, जो जैसा मरै सो ही उपजै। केई जीव को अजीव मानें हैं। इत्यादिक मतवादीन का भरम मेटवे कौं सर्वज्ञ भाषित तत्त्वनि का स्वरूप कथन है ॥ २३ ॥ बहुरि सत्य असत्य आप्त आगम पदार्थ तिनका कथन है ॥ २४ ॥ पीछे शुद्धदेव के जानिवे कौं अतिशय चौंतीस आदि छियालीस गुणनि का कथन है ॥ २५ ॥ आगे जामें एते दोष होंय सो देव नाहीं। तैं दोष कौन, तिन अष्टादश दोषनि का कथन है ॥ २६ ॥ बहुरि कुदेवनि का कथन है ॥ २७ ॥ आगे कुगुरु के पहचानवे कूं गुणलक्षण का कथन है ॥ २८ ॥ फेरि सुगुरु के मूल गुण अट्ठाईस हैं तिनमें

एषणा समिति विषैं मुनि के भोजन में छियालीस दोष हैं। तिनका कथन है। तहां भोजन समय बत्तीस अन्तराय वंधै, उनका तथा मल दोषनि का कथन है ॥ २९ ॥ आगे बाईस परीषहनि का कथन है ॥ ३० ॥ आगे पंच महाव्रत, पंचसमिति, षडावश्यक, पंचेन्द्रीवशीकरण आदि अठाईस मूलगुणनि के कथन में षड् आवश्यकन का विशेष निर्णय है ॥ ३१ ॥ आगे मुनीश्वरनि के दश भेदनि का कथन हैं ॥३२॥ बहुरि आचार्यनि के गुणनि विषें दशलक्षणधर्म, बारहतप, पंचाचार, षडावश्यक, तीनि गुप्ति, इन छत्तीस गुणनि का कथन है ॥३३॥ आगे सत्यधर्म के दशभेदन का कथन है ॥३४॥ बहुरि दश अतीचार ब्रह्मचर्य के हैं। तिनका कथन है ॥ ३५ ॥ आगे उपाध्याय जी के पचीस गुण विषें ग्यारह अंग, चौदह पूर्व का कथन है। तिनमैं त्रिलोक बिंदु पूर्व के कथन में संक्षेप में तीन लोक का कथन है। तिनमैं मध्यलोक के कथन में असंख्यात द्वीप समुद्रनि में आदि के षोडस अन्त के षोडस द्वीपनि के नाम हैं। और तहां ही अढ़ाई द्वीप संबंधी ध्रुवतारनि का प्रमाण कथन है ॥३६॥ आगे मध्यलोक विषें चारि सौ अठावण अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं, तिनके स्थाननि का वर्णन है ॥३७॥ बहुरि स्वर्गलोक के कथन में आठ युगलानि के सोलह स्वर्गन के नाम, तिन संबंधी देवनि की आयु अरु काय के प्रमाण का कथन है। अरु युगलनि प्रति इन्द्रनि का प्रमाण, अरु युगल प्रति विमान की संख्या का कथन है। और धरती तैं केते केते ऊँचे हैं। तिनके प्रमाण का कथन है। विमाननि

के वर्ण का कथन है। स्वर्गनि के आधारनि का कथन है। अरु स्वर्ग प्रति कामसेवन का कथन है। और देवनि के मरन पीछे उस ही स्थान में देव उपजनें का अन्तर कथन है। और युगलनप्रति देवन की अवधि विक्रिया का कथन है। देवनि के श्वासोछ्वास के अन्तर का प्रमाण कथन है। मुकुटनि के चिन्हनि का कथन है। विमानन की मौटाई का कथन है। और स्वर्गप्रति लेश्या अरु देवांगना की उत्पत्ति, देवीन की आयु, ऐसे सामान्य ऊर्ध्व-लोक का कथन है। इत्यादिक त्रिलोकबिंदु पूर्व विषैं कथन है। इन आदि, ग्यारह अंग चौदह पूर्व का ज्ञान सहित उपाध्यायजी के गुणन का कथन है ॥ ३८ । आगे आचारसार जी अनुसार मुनीश्वरों के विचारवे के समाचार दश हैं। आश्रय पांच हैं। तिनका कथन है ॥ ३९ ॥ आगे धर्म के कथन विषैं पहले कुधर्म का कथन है ॥ ४० ॥ बहुरि सुधर्म का कथन है ॥ ४१ ॥ आगे नव नयका कथन है ॥ ४२ ॥ आगे धर्म की परीक्षा कौ पंचप्रमाण हैं तिनका कथन है ॥ ४३ ॥ आगे कुसंग त्याग का कथन है ॥४४॥ आगे सुसंग का कथन है ॥ ४५ ॥ आगे कहिए है कि कौन कौन ध्यान चिन्तवन करने योग्य हैं। कौन कौन नहीं करिए, ऐसा कथन है। तहां ही ऐसा कथन है जो आर्त्त रौद्र ध्यान नहीं करिये। अरु धर्म शुक्ल ध्यान करने योग्य है ॥ ४६ ॥ आगे आर्त्त के चिन्हन का कथन है ॥ ४७ ॥ आगे सुआचार कुआचार का कथन है ॥ ४८ ॥ आगे योग्य अयोग्य खान पान का कथन है

॥ ४९ ॥ आगे शुभ अशुभ वचन भेद का कथन है ॥ ५० ॥ आगे असत्य के ग्यारह भेदन का कथन है ॥५१॥ आगे परस्पर बिना प्रयोजन बतलावना सो विकथा है। ताके पचीस भेदन का कथन है ॥५२॥ आगे द्रव्य क्षेत्र काल भाव के कथन विषें स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव तथा परद्रव्य क्षेत्र काल भाव का कथन है। तहां स्वद्रव्य की परीक्षा का कथन है। और द्रव्यन के प्रमाण कथन मैं मनुष्य द्रव्य थोरा है। और क्षेत्र अपेक्षा मनुष्य का क्षेत्र थोरा है और काल अपेक्षा मनुष्य का काल थोरा है। और भाव अपेक्षा मनुष्य के उपजने का भाव थोरा है। इत्यादिक ऐसा कथन है ॥५३॥ आगे षट् काय के जीवन की आयु, काय कथ कथन है ॥५४॥ आगे एकेन्द्रिय तिर्यञ्चन मैं सूक्ष्मबादर है तिनका कथन है ॥५५॥ आगे षट् काय के शरीरन के आकार का कथन है ॥५६॥ आगे षट् काय जीव केती केती कर्म स्थिति बांधैं, ऐसा कथन है ॥५७॥ आगे पंच इन्द्रिय का विषय कितना है ताके प्रमाण का कथन है ॥५८॥ आगे पंचगोलक निगोद के हैं ते कहां कहां हैं। ताका कथन है ॥५९॥ आगे निगोदि जीवन के प्रमाण की अनन्तता महा दीर्घ है। ताका कथन है ॥६०॥ आगे निगोदि के दोय भेद हैं ताका कथन है ॥६१॥ आगे षट् काय जीव जघन्य आयु पावै तौ एक अन्तर्मुहूर्त्त मैं केतेक भव करै। ताका कथन है ॥६२॥ आगे सुतप कुतप का कथन है ॥६३॥ आगे सुतप के बारह भेद हैं तहां आलोचना तप के अतीचार दश हैं। ताका कथन

है ॥६४॥ आगे कोऊ मुनि में दीर्घ दोष पड़े तो आचार्य, दीर्घ दंड ताको कौन कौन दीजिये ताका कथन है ॥६५॥ आगे विनयतप के पांच भेद हैं ताका कथन है ॥६६॥ आगे सुव्रत के भेद बारह हैं अरु कुव्रत हैं तिनका कथन है ॥६७॥ आगे बारह अनुप्रेक्षा हैं ताका कथन है ॥६८॥ आगे सुदान कुदान का कथन है तहां सुदान के चारि भेद हैं ताका कथन है ॥६९॥ आगे जिनकूं दान दीजिये सो पात्र हैं तिनके सुपात्र कुपात्र करि दोय भेद हैं तिनके विशेष भेद पन्द्रह, तिनका अरु तिनके दान के फल का कथन है ॥ ७० ॥ आगे पूजा भेद दोय हैं एक सुपूजा एक कुपूजा, तिनका कथन है ॥ ७१ ॥ आगे तीरथ दोय हैं एक सुतीरथ एक कुतीरथ, तिनका कथन है ॥ ७२ ॥ आगे चरचा भेद दोय हैं एक सुचर्चा और एक कुचर्चा, तिनका कथन है ॥ ७३ ॥ बहुरि अनुमोदना के भेद दोय हैं। कहीं तो अनुमोदना किये पापबन्ध होय, सो तो पाप अनुमोदना अशुभ है। एक अनुमोदना किये पुण्य होय सो शुभ अनुमोदना है तिनका कथन हैं ॥ ७४ ॥ आगे मोक्ष के भेद दोय हैं एक तो भोरे जीवनि की कल्पी कर्ममलसहित मोक्ष है और एक शुद्ध निरंजन सर्व कर्म मलरहित निर्दोष मोक्ष है तिनका कथन है ॥ ७५ ॥ आगे कुज्ञान सुज्ञान करि ज्ञान के दोय भेद हैं तहाँ मति-ज्ञान के तीनि सै छत्तीस भेद रूप वर्णन है ॥७६॥ आगे श्रुतज्ञान का कथन है तहाँ व्यय ध्रुव उत्पाद, ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान, ध्याता ध्येय ध्यान, कर्त्ता कर्म क्रिया का कथन है। ताही में

संक्षेप तें पल्य सागर का कथन है ॥ ७७ ॥ पीछें कृतघ्नी विश्वासघाती का दृष्टान्तपूर्वक कथन है ॥ ७८ ॥ आगे च्यारि गति, पाप पुण्य के फल प्रगट जनावनहारे आगति जागति (आने जाने) रूप दंडक का कथन है ॥ ७९ ॥ आगे निमित्त उपादान का कथन है । आगे सुवनिज कुवनिज का कथन है । बहुरि श्रुतज्ञान समासरूप कथन है ॥८०॥ आगे अवधिज्ञान का कथन है तहां देशावधि परमावधि सर्वावधि करि तीनि भेदरूप कथन है तहाँ देशावधि के हीयमानादि षट् भेद रूप कथन है ॥ ८१ ॥ अर सोई अवधि, भवप्रत्यय गुणप्रत्यय दोय भेद लिये है ताका कथन है ॥ ८२ ॥ आगे मनःपर्यय, ऋजुमति विपुलमति करि दोय भेद रूप है ताका कथन है ॥ ८३ ॥ आगे संक्षेप तें केवलज्ञान का कथन है ॥ ८४ ॥ आगे कहैं हैं जो यह आत्मा अपनी आयु के दिन सोई भए मोतिन की माला तिनको वृथा खोवै है ऐसा कथन है ॥ ८५ ॥ आगे आत्मा अपनी भूल तें आप ही बंध कूं प्राप्त होय ऐसा कथन दृष्टान्त देय बतावें हैं ॥ ८६ ॥ आगे त्रयादश भय शुद्धात्मा में नाहीं ऐसा कथन है ॥ ८७ ॥ आगे चक्री त्रिखंडी महामण्डलेश्वरादि राजानि की विभूति विनाशीक बतावता कथन है ॥ ८८ ॥ आगे मातापितादि सज्जन कुटुम्बी अपने २ स्वारथरूप बंधन तें बँधे हैं ऐसा कथन है ॥ ८९ ॥ आगे जिन जिन वस्तूनि का स्वभाव सहज ही चंचल है तिनके मेटवे को कोई उपाय नांही, ऐसा कथन है ॥ ९० ॥ आगे ऐसा कहै हैं जो कोऊ महापंडित

भी होय अरु श्रद्धानरहित मिथ्याश्रद्धानी होय तो ताकै मुख का उपदेश सम्यक्दृष्टीनि कों सुनना योग्य नाहीं ऐसा कथन है ॥ ९१ ॥ आगे सर्प की क्रूरता तैं दुष्टजीवनि की क्रूरता बहुत बतावै हैं ऐसा कथन है ॥ ९२ ॥ आगे सज्जन दुर्जन जीवनि का स्वरूप दृष्टान्तपूर्वक कथन किया है ॥ ९३ ॥ आगे भला उपदेश भी मूर्ख जीवनि कूं कारजकारी नाहीं, ऐसा कथन है ॥ ९४ ॥ आगे केतेक जीव दयारहित हैं ऐसा बतावता कथन है ॥९५॥ आगे कृपण का धन कहा होय, ऐसा कथन है ॥ ९६ ॥ आगे केतेक जीव दयारहित ही हैं तिनकों बतावता कथन है ॥९७॥ आगे संतोषी आत्मा आप कूं दरिद्रावस्थामें भी सुखी भया मानि दारिद्र कूं असीस देय है ऐसा कथन है ॥ ९८ ॥ आगे धर्म सेवनहारे जीव संसार में च्यारि प्रकार भावन की वाञ्छा सहित धर्म का साधन करै हैं ऐसा कथन है ॥ ९९ ॥ आगे छन्द काव्य के वक्ता कवीश्वर काव्य छन्द की जोड़ कला करणहारे पंडित पाँच प्रकार हैं सो अपने अपने स्वभाव कूं लिये छन्दनि को बनावै हैं ऐसा कथन है ॥ १०० ॥ आगे पंचम-काल की महिमा जो यामैं वांछित निमित्त नाहीं ऐसा कथन है ॥ १०१ ॥ आगे अपने शुद्ध भावनि विना तप संजम ध्यान कार्यकारी नाहीं ऐसा कथन दृष्टान्तपूर्वक कहै हैं ॥ १०२ ॥ आगे अपने हित रूप सुवर्ण के परखिवे कों कसौटी समान नव स्थान हैं तिनका कथन है ॥ १०३ ॥ आगे इन कसौटी समान स्थानकन पै कौन को परखिये ऐसा कथन है ॥१०४॥

आगे एक रोग के दुःख कूं उपचार अनेक जीव अनेक रूप अपनी-अपनी दृष्टि प्रमाण बतावैं, ऐसा कथन है ॥ १०५ ॥ आगे घर कुटुम्ब को तज, फेरि घर चाहै, कुटुम्बादि हितू चाहै, घर घर दीन होई याचैं, जाको आचार्य कहा कहै ? ऐसा कथन है ॥१०६॥ आगे कौन के वास्ते काहे कूं तजिये ऐसा कथन है ॥ १०७ ॥ आगे जो जा देश में एती वस्तु नहीं होय तो विवेकी तहां नहीं रहै, ऐसा कथन है ॥ १०८ ॥ आगे इन दस स्थानकनि में लाज नाहीं करिये ऐसे स्थानक बताये, ऐसा कथन है ॥१०९॥ आगे जाके पीछे बल होय सो बलवान है ऐसा कथन है ॥ ११० ॥ आगे स्नेह समान और बल नाहीं, हित है सोही भुजबल और सैन्य बल है ऐसा कथन है ॥ १११ ॥ आगे नीति मार्गरूप परिणति सोही बड़ी सेना व भुजबल है ऐसा कथन है ॥ ११२ ॥ आगे अनेक संकटनि में एक पूर्वोपार्जित पुण्य सहाय है ऐसा कथन है ॥ ११३ ॥ आगे एती वस्तु भई, कार्यकारी नाहीं ऐसा कथन है ॥ ११४ ॥ आगे एती वस्तु पर उपकार निमित्त होय है ऐसा कथन है ॥ ११५ ॥ आगे धर्मात्मा जीवनि कूं इन षट् स्थानकनि में लज्जा करना योग्य नाहीं ॥ ११६ ॥ आगे एती बात कहै हैं जो संकट में सत्पुरुषनि को साहस ही सहाय है ॥ ११७ ॥ आगे कहै हैं जो ए तीन स्थान पंडितन के हँसने के कारण हैं ॥ ११८ ॥ आगे सतसंग का किया अनादर भी गुणकारी है ऐसा कथन है ॥ ११९ ॥ आगे मलेच्छपणे के षट् भेद हैं तिनका कथन है

॥ १२० ॥ आगे मूढ़ता के सात भेद बताये हैं ऐसा कथन है ॥ १२१ ॥ आगे सम्यक्ज्ञान विषैं अरु मिथ्याज्ञान विषैं दृष्टान्तपूर्वक अन्तर अरु फलभेद बताये हैं ॥ १२२ ॥ आगे इन्द्रिय सुखनि तैं आत्मा की तृप्ति नाहीं भई ऐसा कथन है ॥ १२३ ॥ आगे नरक पशूनि के दीर्घ दुःखनि तैं नहीं डरया तो तप संजम के अल्प दुःखनि तैं क्यों डरो हो, ऐसा कथन है ॥ १२४ ॥ आगे सर्व कषायनि तैं माया कषाय का पाप बड़ा बतावता कथन है ॥ १२५ ॥ आगे पुण्य वृक्ष का फल इन्द्रिय सुख है सो धर्मघातक नाहीं, जीव कूं दुःखदाई नाहीं, ऐसा कथन है ॥१२६॥ आगे मुनीश्वरों के मोक्ष मार्ग का साधन एक, धर्मी श्रावकनि का मन्दिर है ऐसा कथन है ॥ १२७ ॥ आगे बुद्धिपाये व धनपाये का फल कहा है ऐसा कथन है ॥१२८॥ आगे एते निमित्त काल समान जान तजना योग्य है ऐसा कथन है ॥१२९॥ आगे एती जगह यतीश्वर नाहीं रहें, रहैं तो संजम भृष्ट होय, ऐसा कथन है ॥ १३० ॥ आगे ऐते जीवनि का विश्वास नाहीं करिये ऐसा कथन है ॥ १३१ ॥ आगें मुखमीठा, पीछे तैं द्वेष भाव करैं ऐसे मित्रन कूं दूर ते तजना ऐसा कथन है ॥ १३२ ॥ आगे ऐती सभा विषैं सभा विरुद्ध नाहीं बोलना, ऐसा कथन है॥ १३३ ॥ आगे धर्मशास्त्र पढ़ कैं ऐते गुण नहीं भये तो पढ़ना वायस (कौवा) के शब्द समान है, ऐसा कथन है ॥ १३४ ॥ आगे मरण से भी निद्रा को अनिष्ट बतावैं हैं ऐसा कथन है ॥ १३५ ॥ आगे दुष्ट जीवन का स्वभाव दृष्टान्त देय बतावैं हैं ऐसा

आगे कुलकरनि कें बारह चूक भये दंड होय, ताके भेद चारि, तिनका कथन है ॥ १७३ ॥ आगे हिंसा में कोई प्रकार पुण्य नाहीं ताके दृष्टान्त करि बतावता कथन है ॥ १७४ ॥ आगे अनेक दृष्टान्तनि से दया में पुण्य बतावता कथन है ॥१७५॥ आगे राजानि में ऐसे गुण होंय तो तिनकी प्रजा सुखी होय, राज तेज बढ़े, यश प्रगटै, परभव सुधरे, तातें राजानि में ऐसे गुण अवश्य चाहिये तिनका कथन है ॥ १७६ ॥ आगे चौदह विद्या राजपुत्रनि के सीखने योग्य हैं तिनका कथन है ॥ १७७ ॥ आगे चौदह विद्या लौकिकी हैं तिनका कथन है ॥ १७८ ॥ आगे चक्रवर्ति के पुण्य जोग तें नव निधि चौदह रत्न हैं तिनका कथन है ॥ १७९ ॥ आगे चौथे काल के आदि प्रजा के सुखनिमित्त भरतचक्री ने षट्कर्म बनाये तिनका कथन है ॥ १८० ॥ आगे भरतचक्री कूं तिनका फल आदिनाथ स्वामी ने कहा कि अभी नाहीं, पंचम काल आये आगे प्रगट होयगा, ऐसा कथन है ॥ १८१ ॥ आगे चक्रवर्ति की सैना षट् प्रकार है तिनका कथन है ॥ १८२ ॥ आगे शुद्ध भगवान् की परीक्षा कों मुख्य तीन गुण हैं तिनका कथन है ॥ १८३ ॥ आगे जबै तीर्थंकरजी गर्भ विषैं अवतरैं तबै पहिले माता कों सोलह स्वप्ने होंय तिनके नाम फल का कथन है ॥१८४॥ आगे तीर्थंकरादि महानपुरुषन के चिन्ह षट् गुण हैं जे इन षट् गुण सहित होंय सो पुण्याधिकारी जानिये, ऐसा कथन है ॥१८५॥ आगे आभूषणानि में हार मुख्य है सो हार के ग्यारह भेद हैं ताका कथन

है ॥ १८६ ॥ आगे आदिनाथ स्वामी कैलाशपर्वत तैं निर्वाण जानें विषैं चौदह दिन बाकी रहे तब आठ पुरुषनि को आठ स्वप्ने भये तिनका कथन है ॥ १८७ ॥ आगे नायक नाम बड़े का है तस नायक के तीन भेद हैं तिनका कथन है ॥ १८८ ॥ आगे श्रावक का धर्म ग्यारह प्रतिमा तिनका कथन है तिनमें पंच उदम्बर व तीन मकार का त्याग करने वाला अष्टमूलगुणधारी है। तिन मूलगुणनि के अतिचारनि में सात व्यसन के अतीचार का कथन है। तामैं मांस के अतीचार स्वरूप बाईस अभक्षण का कथन है ॥ १८९ ॥ आगे दूसरी प्रतिमा में पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत इन बारह व्रतनि का कथन है व इनके अतीचार का कथन है। तथा दस-प्रकार परिग्रहनि का कथन है। तथा नवधा भक्ति अरु दातार के सात गुणनि का कथन है। अरु अधाकर्म भोजन के चारि भेदनि का कथन है। अरु चारि प्रकारि दान का कथन है अरु सल्लेखनाव्रत अरु सम्यक दर्शन इनका अतीचार सहित कथन है। आगे तीसरी प्रतिमाविषैं सामायिक का कथन है। अरु सामायिक के अतीचार बत्तीस, तिनका कथन है। अरु फेरि सामायिक के बाईस अतीचारनि का कथन है। अरु सामायिक कहां करिये, तिन स्थानकनि का कथन है ॥ १९० ॥ आगे सातवीं प्रतिमा ब्रह्मचर्य है सो ब्रह्मचर्य के चारि भेदनि का कथन है। तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मण के दस अधिकार का कथन है। अरु शीलकी महिमा अरु कुशील का निषेध, दस गाथानि कर कथन है। ऐसे ब्राह्मण की परीक्षाकूं सिरलिंगादि चारि चिह्न का

कथन है। तहां ही श्रावक के भोजन में सात अंतराय का कथन है ॥ १९१ ॥ आगे श्रावकनि के विचारवे योग्य सतरह नियम का कथन है ॥ १९२ ॥ आगे श्रावक के इकीस गुण हैं तिनका कथन है ॥ १९३ ॥ आगे अन्यमतन के अनुसार ब्राह्मण के लक्षण का कथन है और तहां तिनके शास्त्र अरु शास्त्रनि के कर्ता आचार्य तिनकी साक्षी सहित ब्रह्मका कथन है। सो जिन में एते गुण होंय सो ब्रह्म है ऐसा कथन है ॥ १९४ ॥ आगे अन्यमत सम्बन्धी मारकंडे जी आचार्यकृत सुमतिशास्त्र में जलछानवे का कथन किया, अरु विना गाले का दोष कथन है ॥ १९५ ॥ आगे व्यासजी कृत भारत नामा शास्त्र का सातवां स्कन्धविर्षे ऐसे वचन हैं कि ब्राह्मण को शील सहित रहना वैराग्यादिगुण सहित रहना ऐसा कथन है ॥ १९६ ॥ आगे सुमति-शास्त्र मारकंडेय ऋषीश्वर कृत तामें कही भोजन, दिनके च्यारि पहर रहे तिनमें करे तो कैसा २ फल होय है ऐसा कथन है ॥ १९७ ॥ आगे शिवपुराण में ऐसी कही है जो ब्राह्मण को एती वस्तु खावना योग्य नांही ऐसा कथन है ॥ १९८ ॥ आगे अन्यमत के कश्यप नामा आचार्य तिनने कही है जो विष्णुभक्त होय ताकूं कन्दमूल खावने योग्य नांही, ऐसा कहा है ॥ १९९ ॥ आगे शिवपुराण अन्यमत सम्बन्धी तामें कही है जो दया समान तीरथ नाहीं, ऐसा कथन है ॥ ॥ २०० ॥ आगे अन्यमतनि में ब्राह्मण के दस भेद कहे हैं ताका कथन है ॥ २०१ ॥ ऐसे अन्यमतन का भी रहस्य दयासहित बताय, ब्रह्मचारी का स्वरूप बताय, पीछे आठवीं प्रतिमा

आदि ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यन्त कथन है ॥ २०२ ॥ आगे ग्यारहवीं प्रतिमा में ऐलक छुल्लक करि दोय भेद श्रावक के कहे हैं ताका कथन हैं ॥ २०३ ॥ आगे मुनि श्रावक का कथन पूरण कर शास्त्र पूरण होते अन्तमंगलरूप तीनि काल सम्बन्धी चौबीसी भरतक्षेत्र की तिनके नाम, व वर्तमान चौबीसी के समय के पुरुषनि का कथन है । अरु सिद्धक्षेत्रनि कौं नमस्कार रूप कथन है ॥२०४॥ आगे तीनि लोक विषैं तिष्ठते आठ कोड़ि छप्पन लाख सत्याणवें हजार च्यारि सौ इक्यासी अकृत्रिम जिन मंदिर हैं तिनकी रचना अरु विस्तार का कथन अरु तिनकौं मंगल निमित्त नमस्कार रूप कथन है ॥ २०५ ॥ आगे मंगल निमित्त शास्त्र के अन्त में पंच परमेष्ठी का कथन है ॥२०६॥ आगे अन्त मंगल निमित्त श्री अरिहंत देवके विराजिवे का समोशरण का विस्तार सहित वर्णन हैं । तहां विराजते भगवानकूं नमस्कार का कथन है ॥२०७॥ आगे भगवान के विहारकर्म का वर्णन है ॥ २०८ ॥ और वादिराज गुरु अरु मानंतुगनामा आचार्यगुरु स्तोत्र के कर्ता तिनकों नमस्कार है ॥ आगे ग्रन्थ पूरण होते कवीश्वर अपना जन्म सफल जानि हर्ष पाया, ताका कथन है ॥ २०९ ॥ आगे ग्रन्थपूरण होतें कवीश्वर अपना नामधरि जिस नगर में पूरण किया ताकों बताय तिस वर्ष मासदिन को सुफल जानि तिनके सुधरने करि ग्रन्थ पूरण करने का कथन हैं ॥ २१० ॥ ऐसे इस ग्रन्थ का सामान्य टिप्पण कहा । सो विवेकी श्रोता तथा वक्ता इस पीठिका के कथन कूं याद करि मनमें राखैं तो इस सब ग्रन्थ का सुमि-

रण होय ॥ २११ ॥ इति श्री सुदृष्टितरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये सर्वावलोकन पीठिका संक्षेप अर्थ वर्णन नाम प्रथमो परिच्छेदः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

ऐसे सामान्य पीठिका कही अब ग्रंथारम्भ रूप कथन कीजिये है। सो प्रथम ही इष्ट देव कों नमस्कार कीजिये है।

गाथा—अरिहंत देव बंदे, गुरुबन्दे णगण णाण वीयरायो। धम्म दयामय बन्दे, कम्मखय कारणं सुद्धं ॥

अर्थ जो कर्म—अरिनका नाश किया तातैं अरिहंत देव हैं। सो ऐसे अरिहंत देव को हमारा नमस्कार होऊ। अरु सर्वपरिग्रह रहित ममत्वत्यागी नग्न, रागदोष रहित वीतरागी गुरुकूं हमारा नमस्कार होऊ। और षट्काय जीवन की माता समान रक्षा की करणहारी दया सो ऐसी दया-मई धर्म कथन सहित सप्तभंगरूप सम्यक्प्रकार सर्वज्ञ वीतरागी का प्ररूपा जो धर्म ऐसे धर्म को नमस्कार होऊ॥ ऐसे प्रथम मंगल के हेतु अपने इष्टदेव धर्मगुरु को भक्ति भाव सहित नमस्कार करते पुण्य का संचय किया। कैसे हैं देवगुरु धर्म, भक्त जीवन के कर्मनाश के कारण हैं। सर्वदोष रहित शुद्ध हैं, तातैं भक्त भी परंपराय शुद्ध होय है। सो या बात सत्य है जाकी सेवा करे तैसाही फल होय है। सो लौकिक बिषैं भी प्रगट देखिये है। जो जीव जाकी सेवा करे तैसाही परंपराय होय। जो कोई जौंहरी की सेवा करे तो परंपराय जौंहरी होय। और कोई सर्राफ़ की चाकरी करै तो सर्राफ़ होते देखिये। और आटा दाल के बेचने हारे की सेवा करै

तो परंपराय दुकानदार होते देखिये है। और हीनसंग विषै शिल्पी की सेवा करे तो शिल्पी पद पावै। वढ़ई की सेवा करै तो परंपराय वढ़ई का पद पावै, इत्यादिक जैसी-जैसी संगति करै तो तैसा ही पद पावै। तैसे शुद्ध देव गुरु धर्म की सेवा करै तो शुद्ध होय, ऐसा आचार्य ने कहा। तातैं मैं ऐसा जानि अपने देव गुरु धर्म की वंदनाकरी, ताके फल मेरा कर्ममल नाश होय, शुद्ध अवस्था होऊ। इहां कोई इन्द्री सुख का लोभी प्रश्नकरै जो तुमने कर्मरहित सिद्धपद चाहा सो वहां खावना-पीवना, स्त्री को भोगना, नाना प्रकार सुगन्ध, आभूषण, वस्त्र, रागरंग, नृत्यादिक भोग सुख तो हैं ही नांही। तो मोक्षविषैं और कहा सुख है। ताको कहिये। हे विषयभिलाषी! तोहि सुख की अभिलाषा है सो हे भाई! तूं संसार विषैं कहा (क्या) तो दुःख जानै है और कहा सुख जानै है। सो प्रथम तू कहिले, तब हम तोकौं सिद्धनि का सुख कहेंगे॥ तब तरकी ने कही— संसार में वड़ा दुःख तो जन्म मरण का है। तब धर्मी ने कही ए दुःख सिद्धनि में नांही। तब तरकी ने कही एक दुःख निरन्तर भूख तृषा है तब धर्मी ने कही कि यह सिद्धनि में नाहीं। फेरि तरकी ने कही, शीत उष्ण रागद्वेष क्रोध मान माया लोभ ए दुख हैं और नाना प्रकार वायु पित्त कफ़ खांसी स्वांस कुष्टादि रोगनि का दुःख है। तथा कमावना देशान्तर फिरना इत्यादिक अनेक तो संसार में दुःख हैं। तब धर्मी ने कही भो भ्रात! सो संसार के दुःख सिद्धनि में एक भी नांही और तू सुख इन्द्रिय जनित मानै सो देखि, जब षट्रस जिह्वा तैं एकमेक होई,

तब जिह्वा के द्वारा रस का जानपना होई तब षट्रस का सुख होई। अरु रसना ते अंतर रहे तब सुख नांही। और सिद्ध हैं सो अनंत पुद्गल परमाणु जा-जा रसरूप भई जैसे-जैसे रसन के अंश धरें, तिन तीनकाल सम्बन्धी परमाणुवों के रस के स्वादु को एक समय जानि भोगवैं हैं॥ और तू नृत्यादिक का सुख मानै है सो तेरी दृष्टि विषैं आवै तब सुख होय अरु दृष्टि में नांही आवै तो सुख नांही होय। और सिद्धनि के ज्ञान में जहां-जहां देव मनुष्यनि में अनंत काल के होय गये, होंयगे, होंय हैं जे-जे तीनिकाल सम्बन्धी नृत्य, सो सर्व केवलज्ञान तैं दीखैं हैं। और तिनके सुख को भोगवैं हैं। और संसार में तू रागरंग का सुख मानै है सो राग का सुख तब होय है जब अपने श्रोतनि के सुनिवे विषैं आवै है तब आप सुखी होय है। और अपने सुनने में नहीं आवै तो सुख नहीं होय। और सिद्ध हैं सो अनंत काल पहिले जे-जे रागरंग भये ते सब जाने हैं अरु अवार तीनिलोक विषैं राग होंय तिनको जाने हैं। और आगामी तीनि लोक विषैं राग होंयगे तिन सर्व कौं पहिलेही जानैं हैं। ऐसे तीनिलोक विषैं तीनिकाल सम्बन्धी पुद्गल स्कन्ध मिष्ट स्वर रूप होय परनमैं तिन सर्व कूं एक समय जानि सुख भोगवैं हैं। अरु सुगन्ध का सुख संसारी जीवनि के तब होय है जब नासिका के जानपने विषैं आवै है और सिद्ध हैं सो तीनिकाल तीनिलोक की पुद्गल परमाणु जे-जे सुगंधरूप भई तिन सबके सुख कूं एककाल जानि सुख भोगिवैं हैं। और स्पर्शन इन्द्रिय का विषय सुख स्पर्श विषै

है सो जगतजीव तो तन सूं स्पर्शैं तब जानैं सुखी होय। और सिद्ध हैं सो तीनि काल सम्बन्धी तीनि लोक के स्पर्शन के अष्ट विषय सर्व कूं एकै काल जानि सुख कों भगिवै हैं। ऐसे भो भाई, सिद्धनि में जगत दुःख तो एक भी नांही अरु वे इन्द्रिय सुख तें अनन्तगुणें अतिन्द्रिय सुख भोगिवैं हैं। ऐसे अविनाशी निराकुल सुख सिद्धनि में हैं सो जानना॥ ऐसें शुद्ध देव गुरु धर्म के श्रद्धानी सम्यकदृष्टि जीवन के ज्ञानसागरमें शुद्धोपयोग की सी निराकुल धारा कूं लिये शुभ फल की उपजावनहारी तरंगनविषैं अनेक हेय उपादेय रूप तत्त्वज्ञान मई तरंग उपजैं तिनका कथन इस ग्रन्थ विषैं किया है ताही तैं इस ग्रन्थ का नाम सुदृष्टितरंगिणी कह्या है सोई लिखिये है।

गाथा—णाम सुदिष्ट तरंगो, गंथो गेयाय हेय पादेयो। दो भेय गेय गेयं, तित्का पय गेय सुगेय आदेई॥ २॥

अर्थ—इस ग्रन्थ का नाम सुदृष्टितरङ्गिणी है ताविषैं ज्ञेय हेय उपादेय का कथन है। सो ज्ञेय तो एक है ताविषैं दो भेद करिये है सो एक ज्ञेय तो तजनेयोग्य है अरु एक ज्ञेय उपादेय है। स्वज्ञेय तो उपादेय है अरु परज्ञेय तजनेयोग्य है। भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवनि के स्वपर पदार्थ का जानपना होय है। सो ज्ञेय हेय उपादेय करि सहज ही तीनि प्रकार होय है॥ सो तहां प्रथम तो ज्ञान के जानने में आवे सो सर्व स्वपरपदार्थ ज्ञेय है। पीछे ताही ज्ञेय के दोय भेद होय हैं। कोई पदार्थ अपने हित योग्य नांही सो हेय है, केतेक पदार्थ अपने हित योग्य होई सो उपादेय हैं। ऐसे ज्ञेयविषैं हेय उपादेय करना है सो सम्यक्भाव है। और मिथ्यादृष्टि वाल-

बुद्धिनि के त्याग उपादेय नांही होंय है। और कदाचित होंय ही तो विपरीत होय भली वस्तुका त्याग करैं अयोग्य वस्तु को अंगीकार करैं। ऐसे त्याग उपादेय तैं पर भव विगड़ि जाय, तातैं सांचे हेय उपादेय विषैं सम्यग्दृष्टिनिका उपयोग प्रवेश करि सके सो ही कहिये हैं। तहां समुच्चय जीव अजीव ज्ञेयका जानना सो तो ज्ञेय है। ताविषैं अजीव अचेतन जड़ ज्ञेय सो तो परज्ञेय हेय है और जीववस्तु देखने जानने मई चेतन्य ज्ञेय सो उपादेय है। सो चेतन ज्ञेय भी दोय भेदरूप है। परसत्ता परप्रदेश परगुण परपर्याय रूप आत्मा सो परज्ञेय है। सो यह परआत्मा परज्ञेय है सो हेय है तजने योग्य है। और आपमई स्वप्रदेश स्वगुण स्वसत्ता स्वपर्याय एकतारूप सो स्वज्ञेय हे उपादेय है अंगीकार करने योग्य है। भावार्थ—चेतन अचेतन करि ज्ञेय दोय भेद स्वरूप है। सो धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य काल आकाश पुद्गल ये पंचभेद तो अजीव ज्ञेय के हैं सो आपते भिन्न ही हैं। तातैं हेय हैं तजने योग्य हैं। और जीव है सो अनंत हैं अपने अपने द्रव्य गुण पर्याय सत्ता प्रदेश जुदे-जुदे लीये हैं। तातैं अपनी आत्मसत्ता विना अनंत परजीवसत्ता परज्ञेय सो तजने योग्य है। और ज्ञान के जानपने में आये स्वात्मा के अनन्तगुण सो स्वज्ञेय हैं। उपादेय हैं। अंगीकार करने योग्य हैं। और भी परज्ञेय के अनेक भेद हैं सो व्यवहारनय करि केतीक तो आत्मा को इष्ट सुखकारी उपादेय हैं। और केतीक आत्मा कूं अनिष्ट दुखकारी सो हेय हैं। सो आत्मा को संसारविषैं परज्ञेय में ममत्व करि भ्रमण करतैं अनंतानंत

परावर्तन काल भये। परावर्तन कहा, सो ही कहिये है—

गाथा—दव्व खे का भव भावो, पावत्तं पण अणंत कय आदा।
भवअंते पण लद्धधी, भव्वो पय मोख होय लव काले ॥३॥

अर्थ—परावर्तन के पाँच भेद हैं—द्रव्यपरावर्तन ॥ १ ॥ क्षेत्रपरावर्तन ॥ २ ॥ कालपरावर्तन ॥३॥ भवपरावर्तन ॥४॥ भावपरावर्तन ॥५॥ अब इनका सामान्य अर्थ लिखिये है। प्रथम ही द्रव्यपरावर्तन के सामान्य भाव को सुनौं। द्रव्य परावर्तन ताकूं कहिये है जो पुद्गलपरमाणु जीव ने रागद्वेष भाव करि एक-एक परमाणु अनंत-अनंत वार ग्रहीते अरु छोड़े। भावार्थ—जो परमाणु अंगीकार करि छोड़े सो अब येही परमाणु जब ग्रहेगा, तब दूसरी बार गिनती में आवेगा। सो ऐसे एक-एक परमाणु अनंत-अनंत वार छोड़े और ग्रहे। एक परमाणु ग्रहि के तजे पीछे, अनंतकाल गये उसही परमाणु ग्रहिवे का निमित्त मिला, फेरि तजि फेरि अनंते काल गये उसही परमाणु ग्रहिवे का निमित्त पाया। ऐसे करते जीवराशितैं अनन्ते पुद्गलपरमाणु अनन्तानन्त वार ग्रहे अरु छोड़े, सो एक-एक बार छोड़े पीछे मिलते अनन्तकाल लागै तौ ऐसे ही अनन्तपरमाणु ग्रहतैं तजतैं जो काल लागै सो द्रव्यपरावर्तन है। तथा याही का दूसरा नाम पुद्गलपरावर्तन है। सो याका काल केवलज्ञान गम्य अनन्तकाल है। इति प्रथम द्रव्य परावर्तन ॥

आगे क्षेत्रपरावर्तन का स्वरूप कहिये है। जो सर्वलोक के मध्यप्रदेश तैं गिनिये। सो जीव लोक के मध्यप्रदेश आकाश विषैं उपजि मूवा और फेरि और-और क्षेत्र में उपज्या मूवा सो नहीं गिना। ऐसे जन्म मरण करते अनन्तकाल भया तब कोई कर्म जोगतैं उसही आकाशप्रदेश विषैं मूवा जन्म्या, तौ भी नहीं गिन्या। पीछे फेरि अनन्तकाल और-और प्रदेश-क्षेत्रनि में उपज्या मूवा गिनती में नाहीं आया। ऐसे करते-करते अनन्तकाल पीछे उसही प्रदेश तैं लगता दूसरा प्रदेश क्षेत्र में आय जन्म्या तब दूसरा भव गिनती में आया। फेरि मर और-और प्रदेश क्षेत्रन में उपज्या—मूवा सो नहीं गिना। ऐसे भ्रमतैं-भ्रमतैं अनन्तकाल में दूसरे प्रदेश तैं निकसि तीसरा प्रदेश क्षेत्र में उपज्या तब तीसरा भव गिनती भया। ऐसे ही क्रम तैं सर्व लोकाकाश के प्रदेश विषैं जनमैं मरैं इम करतैं जो काल होय सो दूसरा क्षेत्र परावर्तन जानना। इति दूसरा क्षेत्र परावर्तन॥ आगे काल परावर्तन का स्वरूप कहिये है जो उतसर्पिणी काल के आदि समय विषैं उपजा मूवा फेरि इसही काल में अनेक जन्म मरण किये सो काल नहीं गिन्या। ऐसे जन्ममरण करते एक कालचक्र पूरण भया, फेरि दूसरा कालचक्र लग्या, तामैं आदि के दूसरा समय को तज और काल में उपज्या मूवा ऐसे करते कई कालचक्र हो गये और पीछे भ्रमते-भ्रमते उत्सर्पिणी काल के दूसरे समय उपज्या तव दूसरा भव गिनती में आया, फिर मूवा जन्म्या और काल में उपज्या मूवा, ऐसे करते अनन्त-

काल में अनन्त बार जन्म्या मूवा सो नहीं गिन्या। फेरि भ्रमते-भ्रमते अनन्तकाल गये उत्सर्पिणी काल के लगते ही तीसरे समय में उपज्या तब तीसरा भव भया। ऐसें करते उत्सर्पिणी काल के चौथे समय में मूवा-उपज्या। पीछे क्रमते पंचमे समय, छट्ठे समय विषै उपज्या मूवा ऐसे एक एक समय बधता लगाय के बीस कोड़ाकोड़ी काल के जेते समय भये तेते सर्व पूरण किये जेता काल लागै सो तीसरा कालपरावर्तन कहिये है। इति तीसरा काल-परावर्तन ॥ आगे चौथा भवपरावर्तन को कहिये है—जो पृथ्वीकाय का प्रथम भवपाय मूवा फेरि मर अप तेज वायु वनस्पति वेइन्द्री तेइन्द्री चौइन्द्री पंचेन्द्री असैनी सैनी देव मनुष तिर्यंच नारकी विषैं उपज्या मूवा सो भव गिनती में नाहीं आये। ऐसे भ्रमते भ्रमते अनंत-काल में पृथ्वीकाय का ही भव पावै तब दोय भव होय। पीछे फिर मरा सो चारि गति में भ्रमा सो ऐसा करते अनन्तकाल पीछे जब पृथ्वीकाय का ही भव पावै तब तीनि भव भये ऐसे भ्रमते एक भव का निमित्त अनन्तकाल में मिले सो ऐसा करि असंख्याते भव पृथ्वीकाय के करै। ऐसे अनुक्रम लिये असंख्याते भव अपकाय के करै। ऐसे ही अनुक्रम तें असंख्याते भव तेजकाय के करे। ऐसे ही अनुक्रम लिये असंख्याते भव वायुकाय के करै। ऐसे ही वनस्पती वेइन्द्री तेइन्द्री चौइन्द्री पंचेन्द्री तिर्यंच के भव अनुक्रमते करै। असंख्याते असंख्याते भव अनुक्रमते करि पीछे कोई पुण्ययोगतैं देव होय सुख भोगि मरै। पीछे मनुष्य

तिर्यंच नारकी होय सो नहीं गिनना जब कोई पुण्य योगतैं देव ही भया। तब दूसरा भव होय। ऐसे करते देव के असंख्याते भव करै। ऐसे ही क्रम तैं मनुष्य के असंख्याते भव करै। ऐसे ही असंख्याते भव नारकी के करै। ऐसे ही तिर्यंच पंचेन्द्री के भव करै। इत्यादिक ऐसे अनुक्रम लिये चारि गति सम्बन्धी सर्व भव करै सो जाकूं जेता काल लागै सो भव परावर्तन है। इति चौथा भवपरावर्तन ॥ आगे पंचमा भावपरावर्तन को कहिये है—जो सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव के अक्षर के अनन्तवें भाग जघन्य ज्ञान है सो ऐसे ज्ञानसहित मूवा सो अनेक पर्यायन में उपज्या सो नहीं गिना। अरु निगोद में भी उपज्या परन्तु बहुत ज्ञानधारी उपज्या सो नाहीं गिन्या। ऐसे करते अनंत भव भये. जब कोई कर्मजोग तैं ऐसा भव पाया जो जघन्य ज्ञान तैं एक अंश अधिक ज्ञान का धारी भया। तब दूसरा भव भया, फेरि मूवा उपजा अनेक पर्याय चारगति की अधिक ज्ञान सहित धरी सो नहीं गिनै। जब अनंतकाल गये ऐसे भव पावै जो जघन्य ज्ञान तैं दोय अंश बधता ज्ञान होय। ऐसे एक अंश तैं बधता-बधता अनुक्रमते असंख्याते अंश बधते जेता काल लागै सो पांचमां भाव परावर्तन है। इति पंचमा भावपरावर्तन ॥ आगे इन परावर्तन के काल की अधिकता व हीनता कहिये है—सो प्रथम ही पुद्गलपरावर्तन का काल अनंत है तातैं अनंत गुनाकाल क्षेत्र परावर्तन का है। तातैं अनंतगुनाकाल कालपरावर्तन का है। तातैं अनंतगुनाकाल भव-

परावर्तन का है। तातैं अनंतगुनाकाल भावपरावर्तन का है। ऐसे-ऐसे परावर्तन, संसार भ्रमण करते दुःख भोगते अनंत हो गये सो जब जीव के काललब्धि निकट आवे तब संसारी जीव के पंचलब्धि होय हैं॥ सो आगे लब्धि कहिये हैं—

गाथा—खयुवसम देस सोई, पायोगम करणलब्धि पण भेवो।
चव सम्म भव्वाभव्वो, करणो च भवेय होय सम्मत्तं ॥४॥

अर्थ—क्षयोपशम ॥१॥ देशना ॥२॥ विसोई ॥३॥ पायोगम ॥४॥ करण ॥५॥ यह पाँच लब्धि हैं। अब इनका सामान्य अर्थ—कर्म के क्षयोपशम तैं प्रगट होय ऐसा संज्ञीपना पंचेन्द्रीपना इनकी शक्तिरूप भाव सो क्षयोपशम लब्धि है। जो संज्ञी पचेन्द्री नहीं होय तौ सम्यक्त नांही होय। तातैं संज्ञी पंचेन्द्रीपने का क्षयोपशम चाहिये॥ १॥ और गुरु के उपदेश धारने की शक्ति सो देशनालब्धि है। जो गुरु के उपदेश धारवे की शक्ति नांही होय तौ सम्यक्त नाहीं होय तातैं गुरु उपदेश धारने की शक्ति चाहिये॥२॥ आगे समय-समय परिणामन की अनंतगुणी विशुद्धता होई सो विसोही लब्धि कहिये। जो परिणामन की विशुद्धता नाहीं होय तो सम्यक्त नाहीं होय, तातैं परिणामन की विशुद्धता चाहिये॥३॥ वहुरि मोहनीय कर्म की स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर की है ताको अपने परिणाम की विशुद्धता के बलकरि कर्मस्थिति घटाय के अन्तःकोड़ाकोड़ी की राखै सो प्रायोग्य लब्धि है। जो मोह-

कर्म की उत्कृष्ट स्थिति होय तो सम्यक्त नाहीं होय। तातैं मोहनीय कर्म की स्थिति घटनी चाहिये ॥४॥ वहुरि कर्णलब्धि के तीनि भेद हैं—अधःकरण ॥१॥ अपूर्वकरण ॥२॥ अनिवृत्तिकरण ॥३॥ जहाँ अधःकरण होय तब समय-समय परिणामन की विशुद्धता वढ़ती जाय। और जे-जे कर्मनि की स्थिति आगे वँधे होय थी तातैं कर्मस्थिति घटती बंध होय। और साता वेदनीय, आदेय, सौभाग्य, यशःकीर्ति इन आदि शुभ प्रकृतिन का अनुभाग वधती (अधिक) बंध होय। और असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, दुर्भग, अनादेय इन आदिक अशुभ कर्मनि का अनुभाग घटती बंध होय। और पहिले पीछे समय में जीवनि के अधःकरण होय तिनको विशुद्धता के स्थान मिलें भी, नहीं भी मिलें, तातैं याका नाम अधःकर्ण है ॥१॥ और जामें समय-समय असंख्यात गुणी कर्मनि की निर्जरा होय सो अपूर्व करण है। और अशुभ कर्मनि का अनुभाग पलट शुभ रूप होय। और समय-समय कर्मनि की स्थिति घटती होय। और समय-समय शुभकर्मनि का अनुभाग वढ़ता होय। और जिन जीवन ने समय अंतर तें कर्ण मांडा होय तो परस्पर तिन जीवनि की विशुद्धता नहीं मिलै। जाने प्रथम समय में अपूर्वकरण मांडा और काहूने दोय च्यारि पांचादि समय पीछै करण मांडा होय तो पहिले कर्णमांडा ताकी विशुद्धता महानिर्मल होय, याकी विशुद्धता कूं पिछले करण करनहारे जीव कवहूँ नहीं पावैं। इनके परस्पर विशुद्धता नहीं मिलै तातैं याका नाम अपूर्वकरण है ॥२॥ और अनेक जीवनि

की समयवर्ती विशुद्धता समान होय। तीनि काल सम्बन्धि जीवनि के अनिवृत्ति काल समय सर्वजीवनि की विशुद्धता एकसी होय सो अनिवृत्ति करण है ॥३॥ ऐसे ये करण लब्धि है। सो यह पाँच लब्धि हैं। तहाँ एता विशेष जो च्यारि लब्धि तो भव्य अभव्य दोऊनि के होय है तातैं समान हैं। और करण लब्धि सम्यक्त होतें निकट संसारी भव्यात्मा के ही होय है इस कर्णलब्धि के पूरण होते अन्त समय में सम्यक्त की पूरणता होय जीव अल्पसंसार का धारणहारा सम्यग्दृष्टी होय है। सो आत्मीक स्वभाव का वेत्ता परद्रव्य तैं उदासीन, जान्या है आप चैतन्य स्वभाव, अर पर जड़त्व भाव ऐसा सो भव्यात्मा सम्यग्दर्शनी कहिये। ऐसे इन पंचलब्धनि का सामान्य स्वरूप कह्या। विशेष श्रीगोमट्टसारजी तैं जानना। ऐसे पंचलब्धि पूर्ण भए सम्यग्दर्शन होय है। सो ता सम्यक्त के दश भेद हैं सो ही कहिये हैं—

गाथा—आण्ण मग उवदेसो, सूतर बीजा संखेय वित्थारो।
अत्थावगाढ़ महागाढ़ो, संमत जिनभास्य य दहधा ॥५॥

अर्थ—आज्ञा, मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार, अर्थ, अवगाढ़, परमावगाढ़, ऐसे ए दश भेद सम्यक्त के हैं। सो अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। जहाँ बिना उपदेश जिन आज्ञा का दृढ़ सरधान होना सो आज्ञा सम्यक्त है। भोरे सरल परिणामी जीव अल्पज्ञान तैं ही ऐसा सरधान करैं हैं कि जो हम अल्पज्ञानी हैं, विशेष तत्त्वज्ञान की शक्ति नाहीं, परन्तु

जिन देव ने भाख्या है सो प्रमाण है। ऐसा दृढ़ श्रद्धान करि कुदेव कुगुरुन की सेवा नहीं करनी सो आज्ञा सम्यक्त है ॥१॥ और जानैं गुरु उपदेश तैं जान्या है देव, धर्म, गुरु का स्वरूप जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्तचरित्र, ये रत्नत्रय ही हैं। मोक्षमार्ग और विशेषज्ञान तौ नाहीं परन्तु रत्नत्रय विना मोक्ष मार्ग नहीं मानैं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान होय सो मार्ग सम्यक्त है ॥२॥ वहुरि जहाँ तीर्थंकर चक्री कामदेवादिक के पुराण सुन, जान्या होय पुण्य पाप का भेद जानै और तीर्थंकरादिक के कल्याण आदिक अतिशय सुन उपजी है पुण्य की चाह जाकैं, ऐसा गुरु उपदेश सुनि कै दृढ़ श्रद्धान भाव भया होय, सो उपदेश सम्यक्त है ॥३॥ वहुरि आचारांगादि सूत्रन का उपदेश जानि सम्यक्त श्रद्धान दृढ़ भया होय, सो सूत्र सम्यक्त कहिये ॥४॥ वहुरि जहां नाना प्रकार गणित शास्त्रनि का स्वरूप जानि, रहस्य पाय, सम्यक श्रद्धान दृढ़ होय सो वीज सम्यक्त कहिये ॥ ५ ॥ वहुरि जहां शास्त्रनि का संक्षेप श्लोक, काव्य, गाथा, छंद, पद इत्यादिक का सामान्य अर्थ जानि कैं आपा परका भेद पाय सम्यक श्रद्धान दृढ़ किया होय सो संक्षेप सम्यक्त कहिये ॥६॥ वहुरि अनेक द्वादशांग का स्वरूप सुनि सम्यक श्रद्धान दृढ़ करया होय सो विस्तार सम्यक्त कहिये ॥७॥ और कोई बिना ही गुरु व शास्त्र का उपदेश सुनैं अकस्मात कोऊ उल्कापात आदिक दृष्टान्त देखि संसार की दशा विनाशीक जानि उदास होई दृढ़ सम्यक्त श्रद्धान होय, सो अर्थसम्यक्त कहिये ॥८॥ और

जहां अंगपूर्व के सुनने करि इत्यादिक निमित्त पाय दृढ़ सम्यक्त होय सो अवगाढ़ सम्यक्त कहिये ॥९॥ और जहाँ केवलज्ञान भये प्रत्यक्ष सर्वलोक-अलोक भासते ऐसा श्रद्धान है सो परमावगाढ़ सम्यक्त कहिये ॥१०॥ ऐसे कहे जो यह दसभेदरूप सम्यक्त परणति सो मोक्षरूपी कल्पवृक्ष की दृढ़ जड़ है। तथा मोक्षमहल का प्रथम सोपान कहिये सीढ़ी है। सो ऐसे सम्यक्त के ये पच्चीस दोष हैं जहां ये दोष नहीं सो शुद्ध सम्यक्त जानना। सो पच्चीस दोष बताईये हैं—गाथा—मद वसु सम्मक दोसउ, आयतन सट् य तीन मूढाए ॥

इनदोसय विण सम्मं, णिम्मत सिव दीव सम गेय ॥६॥

अर्थ—मद आठ, सम्यक्त के दोष आठ, अनायतन षट्, मूढ़ता तीनि ये पच्चीस सम्यक्त के दोष हैं। अब इनका सामान्य अर्थ कहिये है। जहाँ मामा नाना हमारे से काहू के नांही ऐसा माता का पक्ष लै मदकरना सो जातिमद है ॥१॥ और हम वड़े कुमाऊ, हम अनेक बुद्धि करि धन पैदा करैं इत्यादिक अपनी कुमाई का मद करना सो लाभमद है ॥२॥ और जहाँ हमारे पिता, दादा धनादि करि वड़े थे इत्यादिक पिता की पक्ष का मद करना सो कुल-मद है ॥३॥ और हमारे सा रूप और काहू का नांही इत्यादिक अपने रूप की महिमा देखि मद करना सो रूप मद है ॥४॥ और हम वड़े तपस्वी ऐसैं कहि अपने तप का मद करना सो तप मद है ॥५॥ और अपने बल की अधिकता जानि कहना, जो हम सा बलवान और नाहीं

ऐसा कहि मद करना सो बल मद है॥६॥ और हमसे और पंडित नांही, हम नाना प्रकार तर्क,
व्याकरण, प्राकृत, छन्द, काव्य पढ़े हैं। इत्यादिक अपनी परिडताई का मद करना सो विद्या
मद है ॥७॥ और हमारा बड़ा हुकुम है राज पञ्च सर्व हमारो आज्ञा माने हैं। ऐसा आपको
बड़ा जानि मद करना सो अधिकार मद है ॥८॥ ऐसे यह आठ मद होते सम्यक्त मलिन
होय हैं॥ जैसे उज्वल वस्त्र मैल के सम्बन्ध पाय मलिन होय। तैसे इन मदनि के निमित्त
पाये सम्यक्तधर्म मलिन होय है। तातैं ऐसा जानि सम्यकदृष्टि ये मदभाव नाहिं करे है।
जे मिथ्यात्वलिप्त, अज्ञानी और धर्म भावना रहित मोक्षमार्ग जानिवेकौं अंध समानि, पापभ
बंध करनहारे वे इन अष्टमदन को करें हैं। और जे जगत तैं उदासीन सुखराशी सम्यक्
पासी, जानैं मदफांसी वे ए मद पापफलकरता जानि मदभाव नांही करें हैं॥ इति अष्टम
आगे अष्ट मल लिखिये है॥ जहां धर्मकार्यनि के सेवनैं विषैं मातापिता, कुटुम्बादि, राज
इत्यादिक मुझे पापीजन जानेंगे ऐसा जानि आप कोई धर्म का सेवन शंका सहित करै सो
धर्म कौं मल लागै सो यह शंका नामा दोष है॥ १॥ और धर्मसेवनि करि पंचेन्द्री
सुखनि की अभिलाष करना सो सम्यक्धर्म का कांक्षा नाम दोष है॥ २॥ और धर्मात
के शरीर में कर्म उदय तैं रोग करि तन मलिन भया। तन में फोड़ा, घूमड़ा,
कफ, खांसी, कुष्टादि रोग देखि कैं अपने चित्त में ग्लानि करनी सो दुरगंछा (वि...)

... यक्त-नामा सम्यक्त का दोष है ॥ ३ ॥ और विना परीक्षा देव, गुरु, धर्म की सेवा करनें ... यक्त-नामा सम्यक्त का दोष है ॥ ३ ॥ और विना परीक्षा देव, गुरु, धर्म की सेवा करनें ... धर्म का मूढ़ता नामा दोष है ॥ ४ ॥ और पराये दोष प्रकाशि, परकूं दुःख उपजावें, ... धर्म कौं घाति परदोष कहना (अनुपगूहन) दोष है ॥ ५ ॥ और धर्म सेवनकरता ... परिणाम अथिर राखना तथा औरनि कोधर्मसेवन करते देख तिनकौं अथिरता उपजावें सो अस्थितिकरननामा सम्यक्त का दोष है ॥ ६ ॥ और जाकौं धर्मात्मा जीव तथा धर्मी ... धर्मकथा धर्मस्थान धर्म उपकरण धर्मउत्सवनि विषैं द्रव्यलगता देखि इत्यादिक धर्मवा... नांही सुहावै सो वात्सल्य भावरहित अवात्सल्य दोष है ॥ ७ ॥ और जाकूं धर्म के उत्सव ... सुहावैं सो अप्रभावना नामा आठवां दोष है ॥८॥ इति सम्यक्त के आठ दोष ॥ और ... अनायतन दिखाईये है ॥ तहां खोटे देवकी प्रशंसा करनी, रागी दोषी परिग्रही जीवनि कूं ... जान प्रशंसा करनी और दयारहित हिंसा पाखंड विषयका प्ररूपण हारा असत्यवादी अज्ञानी ... जीवनि के कल्पनामात्र करि कीया जो कुधर्म ताकी प्रशंसा करनी । और खोटे, कामी, क्रोधी, भयानीक, कुदेवनि के सेवकनि की प्रशंसा करनी । और कुगुरुनि के सेवकनि की प्रशंसा करनी । और कुधर्म के सेवकनि की प्रशंसा करनी ए षट् अनायतन सम्यक धर्म के दोष हैं ॥ तातैं जे सम्यक दृष्टि हैं सो इनकी प्रशंसा नहीं करै हैं ॥ इति षट् अनायतन ॥ आगे तीनि मूढ़ता लिखिये हैं ॥ सो जहां विना परीक्षा देवपूजा करनी, सीस नवावना सो देवमूढ़ता है ॥१॥ और

जो बिना परीक्षा गुरु की सेवापूजा करनी सीस नवावना सो गुरुमूढ़ता है ।।२।। और बिना परीक्षा धर्म का सेवन करना सो धर्म मूढ़ता है ।।३।। ऐसे कहे जो अष्टमद, अष्ट सम्यक्त के दोष, षट् अनायतन, तीनि मूढ़ता ए सर्व पचीस दोष सम्यक्त के पचीस दोष ।। आगे सम्यक्त के अष्टगुण बताइये हैं । इनरहित होय सो सम्यक्त शुद्ध है।। इति होई सो शुद्ध है । निःशङ्कित ।।१।। निःकांक्षित ।।२।। निर्विचिकित्सिता ।।३।। अमूढ़दृष्टि ।।४।। उपगूहन ।।५।। स्थितिकरण ।।६।। वात्सल्यता ।।७।। प्रभावना ।।८।। इन अष्ट गुण सहित सम्यक्त हैं ।। इन सहित सम्यग्दर्शन उज्ज्वल होय है सोई कहिये है ।। यह सम्यक्त के आठ गुण व्यंतर तथा पापी कुटुम्बीजन तथा पंचादिक की शंका नहीं करना । धर्म सेवन करते कोई सेवन करना सो निशङ्क गुण है सो यह गुण अंजनचोर को पल्या है ।।१।। निःशङ्क होय ध पचेन्द्री सुखनि की वांछा नहीं करनी सो निःकांक्षित गुण है । सो यह गुण सेठ और धर्म सेव गुणवती कौं पल्या है ।।२।। और जहां पुद्गलस्कंध असुहावने देखि ग्लानि नहीं निर्विचिकित्सा गुण है । सो यह राजा उद्यायन ने पाल्या ।।३।। और शुद्धदेव, शुद्ध की परीक्षा करि सेवना सो अमूढ़दृष्टि गुण है । सो रानी रेवती ने पाल्या ।।४।। और दोष जानिये तौ हू धर्मात्मा जीव प्रकाशै नहीं, सो उपगूहन गुण है । यह गुण भक्त ने पाल्या ।।५।। और कोई धर्मात्मा जीव धर्म सेवन करता कोई कारणपार

होय रोगकरि, विभ्रम करि इत्यादिक कारणनिकरि डिगता होय तथा धर्म से ... कौं
अथिरता होती होय तौ ताकों तनकरि धनकरि वचनकरि धर्म में थिर करै सो ...
गुण है ॥ सो वारिषेण, राजा श्रेणिक के पुत्र मुनि भये तिनकौं पल्या है ॥६॥
जीवनि को देखि धर्मस्थान कूं देखि हर्ष करना सो वात्सल्य भाव है सो ५
गुण विष्णुकुमार जी कूं पल्या है ॥७॥ और जैसे बनैं तैंसे धर्म की प्रभावना ...
धर्म उत्सव देखि राजी होई सो प्रभावना अंग है। यह गुण वज्रकुमार जी को
॥८॥ ऐसे कहे जो यह अष्ट अंग हैं सो इन अष्ट अंग सहित सम्यग्दर्शन के धारी जीव ...
सहज ही दृष्टि शुद्ध होय गई है ताके प्रसाद करि पदार्थनि का स्वरूप जैसे का तैसा ...
है। सो यथावत भासिवे कर रागदोष नाहीं होय है ॥ इहाँ प्रश्न ॥ जो आपने कहा सम्यक्त
भये पदार्थनि पै रागदोष नांही होय सो अविरत सम्यग्दृष्टिनि कै तो प्रत्यक्ष रागदोष हिंसा
आरंभ भासै है ॥ ताका समाधान—रागदोष का अभाव दोय प्रकार है। एक तो प्रत्यक्ष राग-
दोष का अभाव और एक श्रद्धानपूर्वक। सो प्रत्यक्ष रागदोष का अभाव तो जिनदेव केवली
के है तथा ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनीश्वर के है। तथा षष्टम गुणस्थान आदि दसवें
गुणस्थानपर्यन्त महाव्रतिन के हैं। और नीचले अव्रत चौथे गुणस्थानीन के सुदृष्टि होते निकट
संसारी भव्यात्मा के श्रद्धानपूर्वक रागदोष नांही। वाह्यनिमित्त दोष तैं रागीसा है। परन्तु

शुद्धदृष्टि के प्रसाद तैं अंतरंग रागदोष होता नांही । यह बिना ही जतन सहज स्वभाव है । सो ऐसी दृष्टि होतैं अनेक लहरि परिणति विषै उठै हैं । जैसे सागर विषैं तरंग चलै तैसे सम-भावन विषैं विचार होय है । ताही के प्रसाद करि यह सुदृष्टितरंगिणी नाम शास्त्र मैं कहूं हूं ॥ सो ताके सुनने कूं अरु कहने कूं ऐसे शुभ श्रोता तथा शुभवक्ता चाहिये । सो श्रोतनि के, शुभाशुभ करि अनेक भेद हैं ॥ और वक्तान् के भी शुभाशुभ करि अनेक भेद हैं सो प्रथम ही श्रोतानि का स्वरूप सुनौ ।

गाथा—सोता सुह य असुहो, चउदह मिस्सोय चउदह सुहोई ।
सोतधरा मणा आदा, णियणिय पराणतिलेय सुह असुही ॥७॥

अर्थ—अब श्रोतानि का शुभाशुभ है सोही कहिये है ॥ श्रोता शुभ अशुभ करि दोय भेद रूप हैं ॥ सो चौदह श्रोता तो मिश्र हैं और चारि श्रोता शुभ हैं ॥ भावार्थ ॥ और श्रोता मिश्र हैं तिनमें आठ तो अशुभ हैं अरु षट शुभ हैं ॥ सो प्रथम अशुभ आठ हैं नाम— पाषाणसम ॥१॥ फूटा घड़ासम ॥२॥ मीडासम ॥३॥ घोटकसम ॥४॥ चालनीसम ॥५॥ मशकसम ॥६॥ सर्पसम ॥७॥ भैंसासम ॥८॥ इनका स्वभाव कहिये है ॥ जो भव्यात्मा जीवन को चित्तदेय सुनना योग्य है । जो जीव उपदेश सुनै, पूछै, आप पढ़ै, बहुत काल के कथन यादि राखै इत्यादि वहुत कालतांई धर्म क्रिया करै परन्तु अन्तरंग मैं [illegible] मिटै

नाहीं, अभक्ष्य भोजन व हिंसा मार्ग नांही तजै । कुधर्म, कुगुरु, कुदेव के [illegible] श्रद्धा नांही मिटै । आप क्रोध मानादिक कषाय नहीं तजै ।। जाके हृदय में जिनव[illegible] चै सो पाषाण समान श्रोता है ।।१।। और जो रोज दिन प्रति शास्त्र सुनै परन्तु सु[illegible] सामान्यसा यादि रहै पीछे भूलि जाय, दिलविषै यादि नांही रहै । सो फूटे घड़[illegible] श्रोता है ।।२।। और जैसे मेंढ़ा पालनहारे कों मारै तैसे ही श्रोता जा वक्ता सों अनेक [illegible] युक्ति सीख अनेक शास्त्र कला आदिक करि पीछैं काल पाये जातैं कथन सुन्या सीख्या [illegible] का दोषी होय ताका घात करै, सो मेंढ़ा समानि श्रोता कहिये ।।३।। और जैसे घोड़े क[illegible] दाना रातिब देते घोड़ा रातिब देने वाले कूं मारै काटै तैसे जो श्रोता जाके पास उपदेश [illegible] ताही तैं दोष करै सो घोड़ा समानि श्रोता जानना ।।४।। और जैसे चालनी बारीक भला [illegible] तो डारि दे अरु भूसी अङ्गीकार करै । तैसे ही भला उपदेश सुने त का गुन तो ना ग्रहै । [illegible] औगुन ग्रहै । जो शास्त्र में दान का तथा चैत्यालय करावने आदि द्रव्य लगावने का उपदेश सुनि यह ज्ञानदरिद्री ऐसा समझै, जो हम धनवान हैं सो हमकों कहै है कि धन खरचौ सो हमारे धन कहाँ है ? इमि समझि पापबन्ध करै । तथा तप का कथन शास्त्र में सुनै सो इमि समझै जो हम तन के सुपुष्ट हैं सो हमको कहै है तप करो हमतें तप होता नांही, ऐसा समझ पाप-बन्ध करै है । तथा दानपूजा शीलसंजम इत्यादि का उपदेश होय तब तो ऊंघै । तथा चित्त-

विभ्रम में रहे सो नहीं सुनै । और कोई निन्दा करै तथा कोई मूर्ख सभा में कलह की कथा ले उठै ताकूं सुनै । तथा कोई पाप कारज की निन्दा शास्त्र में निकसै कि अभक्ष्य खाना योग्य नांही । चोरी करना योग्य नांही । द्यूत रमना, वेश्यागमन, इत्यादिक कार्य किये पाप होई । ऐसे सुनि कै अभक्ष्य खानेवारा कहै हमारा दोष कहे है । सो अभक्ष्य भोजन तजै तो नाहीं, दोष करि पापबांधि घर जावे । चोरी करनेवारा समझै जो मेरा दोष कहे है सो चोरी तजै नांही, वक्ता तैं दोष करि पापबन्ध करि घर जावे । जुवारी ऐसा समझै जो हमारा दोष सुन्या है सो प्रगट करै है ऐसा जानि सभा छोड़े । इत्यादिक गुण तो नहीं लेय अरु अवगुण लेवे सो चलनी समान श्रोता है ॥५॥ और सभा विषै तो नाना प्रकार चर्चा करै धर्मकथा अनेक यादि राखै । अनेक गाथा, काव्य, छन्द, कवित्त इनको पढ़े तिनको अर्थ औरनि को समुझावे इत्यादिक बाह्य तैं तो धर्मात्मा सा दीखै । अरु अन्तरंग धर्म इच्छारहित, महा क्रोध, मान, माया, लोभ करि सहित, शुद्ध धर्म का निन्दक, धर्मात्मा जीवनि का निन्दक [illegible] कुगुरु का प्रशंसक, पापरस करि भीजता, अन्तरंग धर्मभावना रहित होय सो म[illegible] श्रोता है । जैसे मसक रीती (खाली) में पवन भरि मोटी करी सो ऊपरि तैं तो ज[illegible] अन्तरंग धूम करि भरी तथा पवन तैं भरी सो ऐसे श्रोता खाली मसकसमान [illegible]॥ और जैसे सर्प्प को दूध पियाइये तो महादुखदायी विष होय तैसे काहू को अमृ[illegible] मन

वचन सुनाइये, तौ तिनको सुनि भी पापात्मा पाप का बन्ध करैं। जैसे कहीं कुकार्यनि की निन्दा निकसै तथा शास्त्रनि विषै खोटे खान-पान की निन्दा का कथन होई तथा क्रोधादि कषायनि की निन्दा तथा सप्तव्यसनि की निन्दा इत्यादिक जाति विरोधी, कर्मविरोधी, पंच-विरोधी क्रिया पापकारी है सो विवेकीन को तजना योग्य है। ऐसा कथन शास्त्रनि विषै चलता होई ताके सुने जीव पाप कार्य तज, धर्म के मार्ग चलै। इस भव जस पावै, परभव सुखी होई। ऐसे कथन गुणकारी अमृतसमानि सुनि जो पापाचारी अशुभ आत्मा, दोष करै, ऐसा समझै जो यह अवगुण अब हममें हैं सो ए सर्वदृष्टान्त कथन किया सो हमारे ऊपर किया ऐसा विचारि, धर्मदोषी होय सो सर्प समानि श्रोता है ॥ ७ ॥ और जैसे भैंसा, सरोवर के जल में जावै सो पानी पीवै तो थोरा, परन्तु गंधोय के सर्व जल मलीन करै। और पीवने के योग्य ना राखै, सर्व के तन तथा अपना तन मलीन करै, तैसे ही सभा विषै जिनवाणी का कथन महानिर्मल ताको सुनि, भव्य पाप तैं उदास होई धर्म चाहै। धर्म की प्रशंसा और धर्मात्मा जीवनि की प्रशंसा करि अनुमोदना तैं पुण्य का बन्ध करैं, महाहर्ष मानैं। तहां अनेक जाति के प्रश्न उत्तर होतैं अनेक जीवनि के संशय जांय, ज्ञान की बढ़वारी होय। ताकरि शुद्धतत्त्वश्रद्धान करतैं सम्यक्त श्रद्धान दृढ़ होई। ऐसे कथन होतैं केतेक भोरे, मन्दज्ञानी, कषायनि के सताये, कोई ऐसा प्रश्न या कोई न्यः‌वक की वार्ता सभा

में चलाय देंय सो ताकरि शास्त्र का कथन विरोधा जावे। सर्व सभा के जीवन के चित्त उद्वेग मई होई सर्व पापवन्ध करैं, आप पापवाँधि करि परभव विगाड़ै, सो भैंसा समान श्रोता कहिये॥८॥ ऐसे आठ खोटे श्रोता परभव विगाड़ैं, पर को दुख उपजावैं, सो पापवन्ध करनहारे हैं।

अब चौदह श्रोता और हैं सो मिश्र हैं तिन में केतेक तो खोटे हैं, केतेक भले हैं। तिन में चलनी समान, पाषाणसमान, सर्पसमान, भैंसासमान, फूटेघड़ासमान इन पाँचनि का स्वभाव तो ऊपरि आठ श्रोतान में कहि आये हैं। तातें यहाँ फेरि नहीं कहा। और भी केतेक खोटे श्रोता हैं तिनका स्वभाव कहिये हैं सो जहाँ धर्म उद्योत देखि आपतें तो नाहिं वनै परन्तु धर्मघात विचारै, जहाँ भला शास्त्र का उपदेश होता देखि तहाँ धर्मघात विचारै सो विलाव समान श्रोता है।। जैसे विलाव भले दूध को पीवे तो नहीं, परन्तु ढोलै व वासन फोरि डारे। तैसे पुण्यकारी उपदेश को धारै तो नांही परन्तु उपदेश देता देखि दोष करै धर्मघात करै, सो विलाव समान श्रोता जानना। और जे ऊपर तें उज्ज्वल, अन्तरंग मलीन, जैसे वगुला ऊपरतें उज्ज्वल अन्तरंग जीव घातकरूप भाव धरै। सो तैसे ही कोई जीव वाह्य तो निर्मलवचन, विनयसहित भाषै; तनमलीन करै, धर्मीजन सा दीखै, अरु अन्तरंग मानी, क्रोधी, कपटी, लोभी, वहुतनि का बुरा चाहै, कोऊ का धर्मसेवन देखि दोष भाव करै। महा कुआचारी, दुर्बुद्धि, रौद्रपरिणामी, सो धर्मघात चाहै, धर्मसेवन नहीं चाहै। ऐसा अन्तरंग मलीन ऊपरि तें भला, सो बगुलासमान

श्रोता कहिये ॥ तथा और बुलाया बोले, जैसे कोऊ बुलावे तैसैं ही बोले । आपमें भावसहित समझिवे की शक्ति नांही । जैसैं सूवा को बुलावै वह वैसे ही बोले, सो सूवा समानि श्रोता कहिये ॥ और मिट्टी को नीर का निमित्त पाई मिट्टी नरम होई तथा अग्नि का निमित्त पाई जैसे लाख कोमल होई इन दोऊनि का निमित्त छूटै सख्त होई, तैसे ही जिस जीव को जितना काल सतसंग का निमित्त होय शास्त्रनि का श्रवण होय साधर्मिन का निमित्त होई तब तौ धर्मभाव सहित होय, कोमल होय, दयावान होय और व्रत संयम की भावना करै, धर्मात्मा जीवनि सों स्नेह करि उनकी सेवा चाकरी करथा चाहै और जब सतसंग का तथा शास्त्रनि का निमित्त नहीं मिलै तो कठोर धर्मरहित क्रूर परिणामी होय जावे, सो मिट्टी समान तथा लाख समान श्रोता कहिये । और जो सभा मैं समताभाव सहित तिष्ठ्या शास्त्र का व्याख्यान सुन्यांकरै और कोई दंत कथा करता होय तौ ताकी नहीं सुनै। और पुण्यकारी कथन का ग्रहण करै । अपने काम से काम । सो शुभ श्रोता बकरी समान है जैसे बकरी नीची भई अपना चारा चरै, कोई तैं दोष भाव नहिं करै । ऐसे बकरी समानि श्रोता कह्या ॥ आगे जैसे डांस जगह-जगह काटि जीवनि को दुःख उपजावे तैसे ही जो जीव सभा में शास्त्र कथन होते उपदेशदाता तैं तथा और धर्मात्मा जीवनि तैं दोष भावकरि वारबार कुवचन अविनयवचन बोले, सभा तथा वक्ता को खेद उपजावे, सो डांस समानि श्रोता कहिये । और जैसे जौंक है

सो दुग्ध के भरे आंचल पै लगा लोहू ही अंगीकार करै, वाका कोई ऐसाही स्वभाव है। तैसेही वाकौ चाहौ जैसा उपदेश दो परन्तु पापाचारी अवगुण ही ग्रहै। इस दुर्बुद्धि का ऐसा श्रद्धान होय जो हमने ऐसे उपदेश घने ही सुने हैं। कोई हमारा क्या भला करेगा। जो हमारे भाग्य में है सो होयगा। ऐसा श्रोता होय सो जौंक समान श्रोता है। इसको चाहे दयाकरि उपदेश कहो परन्तु दोष ही ग्रहै है सो जानना। आगे जैसे गऊ घास खाय दूध देय, तैसे ही जिनको अल्प उपदेश दिये ही ताको रुचि सहित अंगीकार करि अपना बहुत भला करै और तिस उपदेश तैं आप कूं तत्वज्ञान का लाभ भया जानि, ताकी बारंबार प्रशंस करै। उपदेशदाता का बहुत उपकार मानै, सो गऊ समानि श्रोता है। आगे जैसे हंस, पया जो दूध तामें जल मिलाय धरो, तो नीर तौ नहीं ग्रहै और दूध के अंश अंगीकार करै, सो हंस की चोंच का ऐसा ही स्वभाव है कि ताका स्पर्श भये नीर अर दूध का अंश जुदा-जुदा होय जाय है सो नीर तो तजे अरु दूध के अंश अंगीकार करै, तैसेही शुद्धदृष्टि का धारी सम्यक-दृष्टि है सो अनेक प्रकार उपदेश कों सुनि अपनी बुद्धि तैं निरधार करै है, पीछे भले प्रकार तत्वज्ञान सहित जो अर्थ होय है ताको अंगीकार करै है। अशुभकारी अनाचार हिंसासहित उपदेश सुनि ताकी किरिया का तजना करै है, ऐसे जो हितदायक उपदेश ग्रहै। तामें जे जिनआज्ञा में निषेधी सो तजै, जो ग्रहिवेयोग्य कही सो ग्रहै, सो हंस समान श्रोता कहिये।

ऐसे चौदहश्रोतानि की जाति है सो तिनमें चलनीसम, मार्जारसम, बगुलासम, पाषाणसम, सर्पसम, भैंसासम, फूटाघड़ासम, डांससम, जोंकसम, ए नव जाति के श्रोता तौ हीन पापाचारी हैं। अरु मिट्टीसम, सूवासम ए दो मध्यम श्रोता हैं। और बकरीसम, गऊसम, हंससम ए तीन उत्तम श्रोता हैं। ऐसे चौदह श्रोतानि का कथन किया। आगे उत्तम श्रोता च्यारि और हैं तिनका स्वरूप कहिये हैं। तहां प्रथम नाम कहे हैं नेत्रसमान ॥१॥ दर्पणसमान ॥२॥ तराजू की डंडीसमान ॥३॥ कसौटीसमान ॥४॥ अब इनके लक्षण कहिये हैं—तहां जैसे नेत्र हैं तातें भला-बुरा नजर आवे तैसे ही भला श्रोता अपने ज्ञाननेत्रनतैं भला-बुरा मार्ग उपदेश तैं जानि जे बुरा आचार पापकारी सो तो तजै और भला पुण्यकारी उपदेश सुनि ताही मार्ग पर अपना श्रद्धान करै सो नेत्र समान श्रोता है॥१॥ और जैसे दर्पण तें अपना मुख देखिये है ताकी अवस्था देखि अपने मुख पै रज मैल लगा होय तो धोय के शुद्ध करै। तैसेही भला उपदेश सुनि अपने चैतन्यस्वभाव पै कर्मरज जानि अपने आत्मप्रदेश निर्मल करने का उपायकरै सो दर्पण समान श्रोता है॥२॥ और जैसे तराजू की डंडीतें अधिक व हीन जान्यांपरै तैसे ही भले उपदेश कूं सुनि अपनी बुद्धिरूपी डंडीतैं भली-बुरी वस्तु को तोले। हीन कों तजै अधिक फलदायक अंगीकार करै। सो तराजू की डंडी समान श्रोता है। और जैसे कसौटी पै घसि, भले-बुरे सुवर्ण की परीक्षा करै तैसे ही भले श्रोता अपनी बुद्धि कसौटी तैं

गुण है ॥२॥ और जो कोई वस्तु आपको हितकारी जानै तो ताको अंगीकार करने का उपाय भी करै । तैसेही जो जिस धर्म को हितकारी जानैं तौ ताकी कथा सुनि ताको अंगीकार करै ही करै, सो ग्रहण गुण है ॥३॥ और जे विवेकी अनेक बात सुनै और जो बात आपको सुखकारी लाभकारी सुनें तौ तिस बातको यादि राखै हैं । तैसे ही जा उपदेश तैं अपना भला होता जानैं तो धर्मात्मा श्रोता ताकों भलेप्रकार यादि राखैं सो धारणा है ॥४॥ और जो वस्तु आपको सुखकारी जानैं ताको विवेकी बारंबार यादि किया करै तैसे ही धर्मात्मा श्रोता आपको जो उपदेश हितकारी जानै ताको बारंबार यादि कर ताकी चर्चा करै सो सुमरण गुण कहिये ॥५॥ और जैसे काहू को कोई वस्तु की बहुत चाह होई तौ ताको वारंबार पूछे । तैसे आपको वल्लभ धर्मचर्चा बहुत होय तो प्रश्न करै सो प्रश्नगुण है ॥६॥ और काहू ने कोई बात पूछी सो आप तिस बात को जानता होय तौ तिस को उत्तर देय है सो तैसे ही आप धर्मकथा तत्वज्ञान बातन को समझता होय तौ उत्तर देय, सो उत्तरगुण है ॥७॥ और जो कोई वस्तु अपने हाथ आई है ताको भलो जानैं तो ताको जतन तैं दृढ़ राखै । तैसे ही संसार में भ्रमता-भ्रमता उत्कृष्ट धर्म मिला जानि, महाजतन तैं दृढ़ होई धर्म को राखै सो निश्चयगुण है ॥८॥ ऐसे यह आठ गुणसहित जाका हृदय होय सो श्रोता मोहफांस तैं निकसनेवारा मोक्षाभिलाषी जानना ॥ ऐसे श्रोता के लक्षण गुण वर्णन कीने । तथा श्रोताके भला होने के भाव कहे ॥

आगे वक्ता के लक्षण कहैं हैं। ऐसे गुण सहित वक्ता सुखदायक श्रोतानि का भला करै, सो ही कहिये है—

गाथा—सम दम धर वहुणाणी, सहुहित लोकोयभाववेत्ताये।
प्रिच्छिखिमय वियरायो, सिसहितइच्छोय एव गुरु पूज्जो ॥ ६ ॥

अर्थ—सम कहिये समता सहित होय। दम कहिये मन इन्द्रिय का जीतनेवारा होई। धर कहिये इनका धारक होई। वहुणाणी कहिये विशेष ज्ञानी होय। सहुहित कहिये सर्व को सुखदायक होय। लोकोय भाववेत्ताए कहिये लौकिक कला का वेत्ता होई। प्रिच्छिखिमय कहिये प्रश्न पूछतैं क्षमावान होय। उतर देने वारा होय। वियरायो कहिये वीतरागी होय। सिसिहितइच्छोय कहिये शिष्यनि कौं भली गति का वांछक होय। एव गुरु पूज्जो कहिये ऐसे गुरु पूज्य हैं॥ भावार्थ॥ शिष्यजननि का भला तब ही होय जब ऐसा गुरु उपदेश दाता होई। सो ही कहिये है॥ प्रथम तौ समता भाव सहित तिनकी मूर्ति होइ। जो उपदेशदाता गुरु की मुद्रा भयानक होय तौ सभाजन को भय उपजावे। तौ ताके निमित्ततैं शिष्यनि के ज्ञानलाभ न होय। मन में धर्मस्नेह करि हर्ष नहीं उपजे। जैसे भयानक सिंह का आकार रहता होय तो बनके सर्व पशु भी भय खावें। तथा जैसे राजा तख़्त पर बैठनेहारा कोपसहित भयानीक होय तौ ताको देखि सब सेवक

७

ताको भयानीक जानि सुख तजि, अथवान होंय। तातैं सभानायक उपदेशदाता, शान्तस्वभावी चाहिये। ताके निमित्त पाये शिष्यनि कौ संतोष उपजै ॥ १ ॥ और जो गुरु उपदेशदाता संजमी इन्द्रीमनका जीतन हारा होय तौ सभाजनको भी संजम की प्राप्ति होय। और कदाचित उपदेशदाता विषयनि का लोलुपी होय तौ सभाजन भी असंजमी होयजावैं। तातैं गुरु संजमी चाहिये ॥ २ ॥ और उपदेशदाता विशेष ज्ञानी होय तौ सभाजन को भी ज्ञान की प्राप्ति होय। और उपदेशदाता अज्ञानी होय तौ सभा जन भी अज्ञानी रहें। जैसे राजा द्रव्यवान होय तो राजा के सेवक भी धनवान होंय। अरु राजा द्रव्यरहित होय तौ ताके सेवक भी द्रव्यरहित दरिद्री होय दुःख पावैं ॥ तातैं उदेशदाता गुरु ज्ञानी चाहिये ॥ ३ ॥ और उपदेशदाता सबजन का हितकारी चाहिये। जो शिष्यजन के परभव सुख का इच्छुक होय तौ भला उपदेश देई, सभा का भला करै। और उपदेशदाता शिष्यजन का हितकारी नहीं होय तौ अपना विषय साधै, अपनी मानबड़ाई रहै, पूजा होई, और जीव अपने पांव पूजै, औरका धन अपने घर में आवे ऐसा उपदेश देय शिष्यनि तैं दगाकरि विश्वास उपजावे। कषाय सहित उपदेश देवे, पीछे श्रोता चाहे जैसी गति जावो। ऐसे गुरु के उपदेश तैं जीवन का भला नहीं होय। तातैं गुरु, शिष्यनि का हितकारी चाहिये ॥ ४ ॥ और उपदेश दाता-गुरु लौकिक व्यवहार का वेत्ता होय तौ लोकपूज्यपद बतावै। और लौकिक

ऐसे गुण सहित गुरु सबको मिलै। और रागी-द्वेषी गुरु कोई बैरी को भी मति मिलौ। ऐसा आशीर्वाद वचन जानना॥

इति श्री सुदृष्टितरंगिणीग्रन्थमध्ये श्रोता वक्ता स्वरूप वर्णनो नाम द्वितीय परिच्छेद सम्पूर्णः।

ऐसे श्रोता वक्ता का शुभाशुभ स्वभाव कहा। सो इनमें तैं शुभ श्रोता वक्ता के गुण जिनमें होय सो इस ग्रन्थ को पढ़ो, धारौ। इस ग्रन्थविषैं अनेक रचनारूप कथन है। अरु या ग्रन्थ में अर्थ है सो तो अनादिनिधन है। काहू का किया नांही। अरु तत्त्वनि का स्वरूप जैसे केवलज्ञानी ने कहा तैसे ही है। जैसे अनन्ते जिनेन्द्र केवलज्ञानी आगे तैं तत्त्वनि का स्वरूप प्ररूपते आये, तैसे ही अर्थ यामें है। अर्थ तो इस ग्रन्थ में कवीश्वर की इच्छा प्रमाण नाहीं है। और अक्षरन का मिलाप कवीश्वर की बुद्धि अनुसार है। सो अर्थ तौ काहू वादी का खण्ड्या जाता नाहीं। काहे तैं, जो अर्थ है सो सर्वज्ञ केवली के वचन अनुसार है। सो ताको वादी हीनज्ञानी कैसे खंडि सकै। जैसे कोई एक स्तंभ कोटीभटनि कर रोप्या हुवा ताहि कोई दोऊ हस्त अंग रहित, रोगी, दीन, तुच्छबल का धारी, रंक पुरुष कैसे उपारि सकै है। और अक्षरनि का मिलाप तुच्छबुद्धि के जोग कर किया है। सो यामें कोऊ चूक होगी। बुद्धि की सामान्यतातैं जो अक्षर मिलाये हैं सो चूक होयगी भी तौ एक उपाय विचारया है। सो प्रथमतौ मैं भी याको सोधि अक्षरनि को ठीक करूंगा। तौभी ग्रन्थ

व्यवहार का वेत्ता न होय तौ लोकविरुद्ध उपदेश देवे तौ लोकनिन्दा वा शिष्य का बुरा होय। तातें उपदेशदाता लोकव्यवहार का वेत्ता चाहिये ॥ ५ ॥ और उपदेशदाता पराये प्रश्न सुनिवे में धीर-वीर होय, उत्तर का देने वारा होय। और जो कदाचित प्रश्न सुनि कोप करै, पराये प्रश्न का उत्तर देने का ज्ञान नहीं होय तौ श्रोता भयखाय प्रश्न नहीं करि सकैं, संदेह सहित अज्ञानी रहैं। शुद्ध श्रद्धान नहीं होय। तातें उपदेशदाता पराये प्रश्न को सुनि समताभाव सहित उत्तर देने वारा विशेष नय जुगति सहित ज्ञानी चाहिये ॥ ६ ॥ और उपदेशदाता गुरु वीतरागी चाहिये। जो रागी दोषी होय तौ क्रोध मान माया लोभ के वशीभूत होय अशुद्ध उपदेश देवे। कोई ने अपनी सेवा चाकरी करी होय तो ताको विश्वास करि उपदेश देय। अर जो अपनी आज्ञा वाहिर होय तो तापै कोप करि कहै। आपको धन देय ताको भला भक्त कहै। ऐसे कोई तें राग कोई तें द्वेष भावकरि यथावत-उपदेश नहीं देय तो शिष्यनि को धर्मका लाभ नहीं होय। तातैं उपदेशदाता धर्मका धारी वीतरागी चाहिये ॥ ७ ॥ और उपदेशदाता गुरु, शिष्यनि का स्वर्ग मोक्ष होना वांछै। ऐसा होय तौ निर्दोष उपदेश देय शिष्यनि का भला करै। और उपदेश—दाता शिष्यनि को भली गति नहीं वांछै, तो खोटा उपदेशदेय श्रोता का बुरा करै। तातैं उपदेशदाता गुरु शिष्यनि को भली गति का इच्छुक चाहिये ॥ ८ ॥ इत्यादि अनेक भले गुण सहित उपदेशदाता गुरु चाहिये। सोही भले श्रोतानि का गुरु है। सम्यकदृष्टिनि का गुरु है।

की प्रवुरतातैं चूक रहेगी तो ताके निमित्त दूसरा यह उपाय है। जो विशेष बुद्धि, सम्यकदृष्टि,
निर्मल बुद्धि के धारक, जिनआज्ञा रहस्यनि के जाननेहारे, वात्सल्य अंग के धरनहारे, धर्मात्मा
पुरुष तिनतैं मैं ऐसी वीनती करौं हौं—जो हे प्रभावनाअङ्ग के धारी धर्मी जन हो, तुम
सज्जन अङ्गी हो और पराये तुच्छगुण पै अनुरागी हो, तातैं कवीश्वर तुमतैं ऐसी वीनती करै
है जो इस ग्रन्थ के प्रारंभ विषैं कहीं मैं अर्थ तथा अक्षरमात्रा विषै बुद्धि की न्यूनताकरि
भूला होउं तो तुम मेरे ऊपर वात्सल्य भाव जनाय, शुद्ध करि लेना। यह वीनती जिनेन्द्रदेव
की आज्ञा के अनुसारि धर्मश्रद्धान के करनहारे तत्त्वनि का स्वरूप यथावत जाननेहारे सम्यक-
रुचि के धारीनि तैं करी है। और कोऊ छन्दनिकी जोड़ विषैं तथा टीका के करने विषैं कोई
अक्षरनि की ललिताई तथा सरलताई नहीं होय तो छंदकला के ज्ञानसंपदा के धरनहारे
भव्यातमा सरलछंद कर लेना। आपएता उपकार इस ग्रन्थविषैं सिलाय अपनी धर्मानुरागता
प्रगट करैंगे। ऐसी वीनती सज्जननितैं करी। सो रही चूक ऐसे शुद्ध होयगी। इहां कोई तर्की
कहै—जो आगे भी तौ जिनआज्ञा प्रमाण ग्रन्थ बहुत थे सो तिनकाही अभ्यास किया होता
तौ भला था। तुमको ऐसे भारी ग्रन्थ गाथा छन्दनि सहित करने का अधिकारी काहे को होना
था। तातैं मानबुद्धि के जोगतैं तुमने इस ग्रन्थ को किया, सो तुम्हारा मनोरथ पूरा होता
नांही भासै है। यह ग्रन्थ भारी है, ताविषैं चूक भये उलटे निन्दाको पावोगे। तातैं नहीं करना

ही भला था। ताको कहिये है। जो हे भाई, तैंने कही जो तुमने मान के अर्थ ग्रन्थारम्भ किया, सो जिनआज्ञाप्रमाण सरधानीनकैं शास्त्रप्रारम्भ में मानादिक प्रयोजन रूप कषाय का कछू ही प्रकार नाहीं। यो कार्य तो सातिशयपुण्यबन्ध के निमित्त कीजिये है। मान का इसविषैं प्रयोजन नाहीं। तब तरकीने कही, मान प्रयोजन नांही अरु पुण्य की चाहथी तो आगे अनेक शास्त्र थे तिनका स्वाध्याय करि अर्थ का धारन करते तो महापुण्य का संचय नहीं होता क्या? ताकों कहिये है, जो हे भाई तैंने कहा सो सत्य है, परन्तु कोई उपयोग का स्वभाव ऐसा है सो नवीन वस्तुविषै उपयोग विशेष थिरता पावै है। और नवीन ग्रंथ जोड़ने में चित्तकी एकाग्रता विशेष होय है। तातैं चित्त की विशेष लाग देखि धर्मानुराग विशेष बढ़ने कों धर्म-ध्यान में कालविशेष लगावनेकूं ग्रन्थ आरंभ विचारया है। और मान का प्रयोजन यहां कछू नांहीं। मान तो संसारविषैं दीर्घ कर्मस्थिति के धारक जीव कषायनि के प्रेरे मिथ्यादृष्टि मोह-रस भीजे प्राणिनि को चाहै, धर्मीनि के नांही, ऐसा जानना। तब तरकीने कही ऐसे है तो भले है। परन्तु ग्रन्थविषैं चूकभये पंडित हैं सो तुम्हारी बुद्धि की निन्दा करेंगे। तातैं हाँसि पावोगे। ताका समाधान॥ हे भ्रात, धर्म सेवने विषैं निन्दा होने का तो कार्य नांही। ऐसे धर्म भावना रहित प्राणी कौन हैं जो धर्म के कार्य विषैं निन्दा करैं? तब तर्की ने कही धर्म-सेवते तो निंदा नहीं करेंगे। परन्तु ग्रंथ में चूक देखि पंडित हाँसि निंदा करेंगे। ताको कहिये

है—हे भाई, पंडित दोयप्रकार के होय हैं एक धर्मार्थी पंडित हैं एक मानार्थी पंडित हैं यह दोय प्रकार पंडितनि का अन्तरंग स्वरूप भिन्न-भिन्न है। ए पंडित दोऊही घन तन जानने। जैसे घन कहिये मेघ अन्तरंग विषैं तो निर्मल जल कर भरे हो हैं। अरु ऊपरितैं स्यामघटारूप होय हैं। तैसे ही जाका अन्तरंग तो शुद्ध महानिर्मल धर्मस्नेह जल करि भरया है अरु ऊपरितैं संसार दशा तैं उदासी, संजमी, तनतैं क्षीण मलीन श्याम सा दीखै, सो तो धर्मार्थी पंडित है। और मानार्थी पंडित है सो तनसमान है। जैसे मनुष्यनि का तन ऊपरितैं तो महासुंदर सबजनकौं भला दीख और अंतरंगविषैं हाड़, मांस, रुधिर, चामरूप, महामलीन, घिनकारी, सप्तधातुमई खोटा होय है। तैसे ही मानार्थी पंडित ऊपरितैं महासुंदर काव्य छंद मनोज्ञ वाणीसहित सो सबकौं भला भासै। और अंतरंगमें धर्मवासनारहित, महामानी, पराये मानखंडने का अभिलाषी, सज्जनता रहित, पराये भले गुणनि विषैं अप्रीतिभाव करनेवारा वक्रपरिणामी सो पंडित मानार्थी है। सो हे भाई, संसार में दोयजातिके पंडित हैं। सो जे धर्मार्थी पंडित हैं सो तो महासज्जन हैं सरलस्वभावी हैं सो तो इस ग्रंथ की चूकि देखि ऐसा विचारैंगे जो चूकभई तो कहा भया। जो बड़े-बड़े पंडित होय हैं ते भी चूक जांय हैं। जैसे महाअटवी विषैं बड़े-बड़े चलइया, सदैव के आवने-जावनेहारे भी दीर्घ उद्यान मार्ग विषैं चूकै हैं। तो ऐसे मार्ग विषै कबहूं-कबहूं का आवने जानेहारा अंधासमान पुरुष, अल्प

भासने तैं भूले तो आश्चर्य क्या है ? परंतु ऐसे अंध समान जीव का पुरुषार्थ अरु लगन सराहिये, जो ऐसे विकटपंथनि मैं गमन करै है। सो याका धर्मानुराग सराहिये। जो दीखता तौ थोरा अरु ऐसे विषममार्गनि में गमन करि तीर्थयात्रा का उद्यम करै है। सौ याके धर्मानुराग विशेष है। ऐसा जानि वाका हस्तगहि वाकूं मार्ग लगाये वाकी बांछा पूर्ण करै हैं। तैसे ही धर्मार्थी पंडित तौ ऐसा बिचारै जो नवीन ग्रंथनि के करते बड़े-बड़े पंडित भी भूलैहैं सो ही ज्ञानी भूलै तो दोष क्या ? परंतु याकी बुद्धि सराहिये है। सो ऐसा जानि धर्मार्थी पंडित नहीं हँसेंगे। अर तू मानादिक की कहै सो धर्म अभिलाषी वक्ताके मानादिक प्रयोजन नांही। परंतु तेरी ही बुद्धि विषै कोई बिपरीत विकार उपज्या है तातैं ऐसा भासै है। जैसे कोई कनक का खानेहारा पुरुष आकाश विषै नानाप्रकार रतनमयी रचनासहित एक नगर देखि हर्षायमान होता भया, हँसता भया। अरु कबहूं नानाप्रकार भयानीक जीवनि के सिंह, हस्ती, सर्प आदि के विकराल आकार देखि महाभयानीक होय रुदन करैहै। सो आकाश तौ महानिर्मल निर्दोष है आकाशविषै तौ रतनमयी नगर भी नाहीं और सिंहादिक भयानक जीव भी नांहीं। परंतु धतूरे के अमलमें याकी दृष्टि मैं विपरीत भासै है तैसेही ग्रंथ के कर्त्ता आचार्यादिक भले कवीश्व[illegible] मान का भाव नांही। कैसे हैं भले [illegible], जे धर्म के धारी। परंपरातैं जिनभाषित [illegible] प्रवृत्ति वांछनेहारे समतारसस्वादी [illegible] सत्कार पूजा मान बड़ाई की इच्छा नांहीं

याही ने मिथ्यात्वमई धतूरे का ग्रहण किया है। तातैं याकों ग्रंथारंभ में भले कवीश्वरनि के मान भासै है। तथा जैसे काहू के नेत्रनि विषैं नीलिया रोग है। सो ता पुरुषकों सब सुफेद, नीला भासै है। सो सुफेद वस्तु तौ अपने स्वभावरूप स्वेत हैही परंतु या पुरुष के नेत्रनि विषैं नीलिया रोग है। सो श्वेतवस्तु नीली भासै है। तैसेही ग्रंथकर्त्ता कवीश्वरनि कैं तो मान बड़ाई की इच्छा नांहीं, परन्तु याही अल्पबुद्धि भोरे जीव का ज्ञान विपरीत रूप भया है। तव तरकीने कही, यामें तुम्हारे मान-बड़ाई नाहीं है तौ ग्रंथनमें अपने नाम का भोग काहे कों धरोहो? ताका समाधान—हे भाई, अपने नाम का भोग भले कवीश्वर हैं सो मानकी इच्छा तैं नाहीं धरै हैं। नाम का भोग तो अपनी धर्मबुद्धि तैं, पाप तैं भय खाय करि धरै हैं। ऐसे ही अनादि तैं भले कवीश्वरनि की परिपाटी चली आई है। सो ग्रन्थकर्ता अपना नाम भोगा अपने किये ग्रंथ मैं नाहीं, धरै तौ दोष लागै। और कवीश्वरों का चोर होय। और आचार्यनि की परंपरा का लोप होय। तातैं पाप का बंध होय है। और नाम दिये सर्व कौं ऐसा ज्ञान होय जाय है जो यह ग्रंथ फलाने कवीश्वर का किया है। सो वाके नाम कौं जानि धर्मात्मा ऐसी विचारै जो वह कवीश्वर तौ भला तत्त्वज्ञानी है। भले सम्यकज्ञान का धारी है। और पक्का दृढ़ सर-धानी है। सो वाके वचन प्रमाण हैं। ऐसा धर्मार्थी प्रसिद्ध तत्वज्ञानी कदाचित एक दोय जगह चूक भी जाय तो विवेकी धर्मात्मा ऐसी कहैं जो एक दोय चूक हैं सो ज्ञान की

न्यूनत ... नहीं भास्या, तातैं ए शब्द लिखे गये। परन्तु वाके श्रद्धान बहुत दृढ़ है। ऐसा जानि उस कवीश्वर कूं नाम धरने तैं भला सरधानी जानि, दोष नहीं लगावैं और वाके वचन प्रमाण माने हैं। और कोई ग्रंथ का कर्त्ता अतत्व सरधानी होय तौ वाके नाम भोग तैं नाम जानि, विवेकी हैं सो ऐसा विचारें हैं। जो इस ग्रंथ का कर्त्ता अतत्व सरधानी है। ताका कहा भया कोई शब्द जिन आज्ञा प्रमाण नांहीं, तातैं इस वक्ता के वचन प्रमाण नांहीं। ऐसे नाम के भोग तैं भले कवीश्वर अरु बुरे कवीश्वर की परीक्षा करिये है, सो ता कवीश्वर के नाम करि ग्रंथ के वचन प्रमाण करिये है। तातैं कवीश्वर अपना नाम धरैं। अरु कदाचित ग्रंथ कर्त्ता अपना नाम ग्रंथ में नहीं धरे तो वह वक्ता अन्य कवीश्वरनि का चोर होय। तातैं ग्रंथ में कवीश्वर अपना नाम का भोग धरैं हैं। इहाँ मान का कछु काम नाहीं। यह तौ धर्मात्मा जीवनि कौं अनुमोदना होने के निमित्त नवीन ग्रंथनि की रचना करिये है। सो याको वांचिकै सामान्यबुद्धि तौ ज्ञान को बढ़ावेंगे। और मोतैं विशेष ज्ञानी धर्मात्मा जो ज्ञानसंपदा के धारी हैं सो ऐसी विचारेंगे। जो ऐसा दीर्घ ग्रंथ तत्व अर्थ सहित की रचना करी सो स्याबासि है। ऐसा जानि धर्मानुराग बढ़ावेंगे। और कदाचित विशेष ज्ञानी इस ग्रंथ को सुगम जानि या का अभ्यास नहीं करेंगे। तौ वक्ता तैं जो सामान्यबुद्धि होंगे सो भव्यात्मा धर्मानुरागी शुभ फल के अरु तत्वज्ञान के बढ़ने कौं इस ग्रंथ का अभ्यास

रहित है सो लाखदीनार का है। और एक रत्न में कछु कसरि है, तातें यह रत्न दस हजार दीनार घाटि मोल का है ऐसा जानना । तब ग्राहक आश्चर्यवंत भया कहता भया, हे सुबुद्धि मित्र, इन दोऊ रत्न का एकसा तौ रंग है, एकसा आकार है, एक सा तौल है, इनके विषैं मोल का अन्तर ऐसा कैसे भया, सो बतावौ । अरु रतन का धनी जौंहरी भी एक का घाटि मोल सुनि, अचिरज पाय उस बड़े जौंहरी सों कहता भया । जो हे मित्र, उस रतन कौ घास लकड़ी वेचनेहारों ने कांच खंड कहा तब भी उनको मंदज्ञानी जानि भय न भया । अरु तुमने याके दस हजार दीनार घाटि कहे सो हमको बड़ी चिन्ता भई, तुम विवेकी हो अनेक रत्न परीक्षा में प्रवीण हो अरु हमको ऐसे सूक्ष्मदोष भासते नाहीं, तुम्हारा वचन हमको प्रमाण है। तब उस बड़े जौंहरी ने कहा—भो भ्रात तुम देखो, तुमको याके घाटि मोल का दोष बतावैं। जा दोषतैं याका मोल घटाया है । तब इस बड़े जौंहरी ने एक जल का बड़ा वासन भराय तामैं एक पोस्त की डौंडी उलटी तिराई, ताके ऊपर प्रथम तौ शुद्ध रतन धरि ता कड़ाही के जल में तिराई सो कड़ाही का जल सर्व रतन के रंग समान भया। सर्वको दिखाय पीछे उस रत्न को उठाय लिया। अरु फिर उस घटमोल रत्न को डौंड़ी पर धर तिराया, सो यातें भी सर्व जल रतनमयी भया। परन्तु एक राईमात्र जल में छोटा रहा सो जल रूप ही रहा, रत्न के रंग नाहीं भया, जहाँ-जहाँ जल मैं डौंडी रतन सहित फिरै, तहाँ-तहाँ राई मात्र

न्यूनता तैं भाव नहीं भास्या, तातैं ए शब्द लिखे गये। परन्तु वाके श्रद्धान बहुत दृढ़ है। ऐसा जानि उस कवीश्वर कूं नाम धरने तैं भला सरधानी जानि, दोष नहीं लगावैं और वाके वचन प्रमाण माने हैं। और कोई ग्रंथ का कर्त्ता अतत्व सरधानी होय तौ वाके नाम भोग तैं नाम जानि, विवेकी हैं सो ऐसा बिचारैं हैं। जो इस ग्रंथ का कर्त्ता अतत्व सरधानी है। ताका कहा भया कोई शब्द जिन आज्ञा प्रमाण नांहीं, तातैं इस वक्ता के वचन प्रमाण नांहीं। ऐसे नाम के भोग तैं भले कवीश्वर अरु बुरे कवीश्वर की परीक्षा करिये है, सो ता कवीश्वर के नाम करि ग्रंथ के वचन प्रमाण करिये है। तातैं कवीश्वर अपना नाम धरैं। अरु कदाचित ग्रंथ कर्त्ता अपना नाम ग्रंथ में नहीं धरे तो वह वक्ता अन्य कवीश्वरनि का चोर होय। तातैं ग्रंथ में कवीश्वर अपना नाम का भोग धरैं हैं। इहाँ मान का कछु काम नाहीं। यह तौ धर्मात्मा जीवनि कों अनुमोदना होने के निमित्त नवीन ग्रंथनि की रचना करिये है। सो याको वांचिकैं सामान्यबुद्धि तौ ज्ञान को बढ़ावेंगे। और मोतैं विशेष ज्ञानी धर्मात्मा जो ज्ञानसंपदा के धारी हैं सो ऐसी बिचारेंगे। जो ऐसा दीर्घ ग्रंथ तत्व अर्थ सहित की रचना करी सो स्याबासि है। ऐसा जानि धर्मानुराग बढ़ावेंगे। और कदाचित विशेष ज्ञानी इस ग्रंथ को सुगम जानि या का अभ्यास नहीं करेंगे। तौ वक्ता तैं जो सामान्यबुद्धि होंगे सो भव्यात्मा धर्मानुरागी शुभ फल के अरु तत्वज्ञान के बढ़ने कौं इस ग्रंथ का अभ्यास

करेंगे । सो इस ग्रन्थ तें जिन आज्ञा का सामान्य रहस्य जानि पीछे विशेष शास्त्रनि में प्रवेश पावेंगे । ताकरि पुराय का संचय करेंगे, अरु तत्त्व का भेद पावेंगे । तातें यह ग्रन्थ भव्यनि कौं गुणकारी है । तातें यामें कोऊ सामान्य दोष होगया तो हम शुद्ध कर देंयगे ऐसा विचार तो धर्मात्मा पंडित इस ग्रंथ की रही चूक शुद्ध करेंगे । और दूसरे मानार्थी पंडित हैं सो पराये मान खंड करिने का सदैव उपाय करे हैं सो पराये मान खंड भये सुख पावेंगे । सो यों तो ग्रंथ में चूक न होयगी तौहू दोष लगावेंगे, सो दोप भये तो दोष लगावैं ही लगावैं । यह अपना अङ्ग कैसे तजेगा, हाँसि करैगा ही । तातैं ऐसे धर्म भावनारहित मानी पंडितनि का भय हमको नांही । जो भय है तौ जिन आज्ञा सहित धर्मात्मा पंडित पुरुषन का है । सो इनका भय करना भी योग्यहै । क्योंकि जो इस ग्रंथ में मेरी बुद्धि की न्यूनता करि जिन आज्ञारहित अतत्वसरधानरूप शब्द कोई लिख्या गया होय, तथा कोई अर्थ अशुद्ध पापप्रवृति करावनेहारा लिख्या गया होय तौ तत्वज्ञानी उत्तमबुद्धि के धारी जिन भाषित तत्वनि कर रहस्यनि के जाननेहारे उस चूक को देखि ऐसा समझैं जो यह जिन आज्ञारहित शब्द तथा अर्थ लिख्या गया है सो ऐसा सरधान कविके होय। ऐसे संदेहसहितविचार कदाचित धर्मार्थी पंडित के होय तौ इस बात में मैं भी उनको सरधान चूकसा दीखूं तो उन धर्माथिन की पांति मोहिं बाह्य सा जानैं, तौ इनसे मेरे सरधान कूं अरु शुद्धधर्म के सेवने कूं बट्टा लागै । तातैं इनका भय

श्रीसु
तरं०

तौ मौकूं है। सो यह धर्मात्मा सर्व ग्रन्थ के रहस्य देखि ऐसा भी विचारेंगे जो सर्व ग्रन्थ का रहस्य तौ भले प्रकार जिन आज्ञा प्रमाण है। और एक दोय चूक हैं सो श्रद्धान पूर्वक नाहीं। यह कोई बुद्धि की मंदता करि भूलिसें मँडिगया है सो ऐसा जानि सज्जन शुद्ध कर लेंगे, परन्तु मोकों दोष नाहीं लगावेंगे। ऐसे सज्जनादि गुनके धारी विशेष ज्ञानी धर्मात्मा पुरुष हैं सो बड़े हैं, इनका भय करना ही हमको तत्वज्ञान सरधान में सहायक है तातें इन पुरुषनि का भय हमको गुणकारी है। यातें इनकी हाँसिनिन्दा का भय है ताही तें अतत्वसरधान में हमारा ज्ञान नहीं प्रवेश करै है सो ऐसे पुरुषनि के भय का उपकार है। तातैं हमको ऐसे सज्जन जीवनि का भय है। और जे जिन आज्ञा रहित, जिन वचन जानिवे को निरंध समानि, मिथ्यासरधानी, धर्म के विछुरे, धर्म अभिलाषा रहित अक्षरज्ञानी सो इनं पंडितन का हमको भय नाहीं। ये मानार्थी जीव हैं सो परंपराय कवीश्वरों की परिपाटी मेटन हारे हैं। तातें इनका भय विवेकीनि कों जोग्य नाहीं। जैसे कोई जौंहरी के दोय रतन थे सो वह रतन उत्कृष्ट मोल के थे सो तिन रतन कों कोई ग्राहक आया सो बड़ा मोल देय लीये। अरु कही हम दिखाय लावें, परखाय लावें हैं। ऐसी बदानी कर गया। सो तुच्छग्यानी, मूर्ख, रत्न परीक्षा के ज्ञानरहित ऐसे बड़ी उम्र के धारी घास लकड़ी के बेचनेहारे ऐसे जड़बुद्धि तिनकूं वह रतन दिखाया और उनतें कही—याके लाख लाख दीनार दिये हैं। तुम बड़े पुरुष हो, घनेर त्न देखे हैं। सो ये कैसे हैं? तब

सर्वघास के वेचनेहारे बोले—हे भ्रात, यह प्रत्यक्ष कांच का रंगीला खंड है। तुच्छ मोल का है, तू काहे कौं द्रव्य खोवे है। ऐसे सर्व घसिहारों के वचन सुनि याने देखी जो अस्सी वर्ष के मनुष्य, घने जाननेहारे कांच खंड बतावें हैं सो प्रवीण हैं। ऐसे जानि वह ग्राहक रतन लेय जौंहरी पैं आया। अरु कही याकों तौ बड़ी-बड़ी उम्र के मनुष्य, कांच खंड बतावैं हैं। तब जौंहरी ने कही तुमने कौन को दिखाये ? उन जौंहरीनि की दुकान कौन बाजार में है ? तब ग्राहक ने कही दूकान तौ नांही और जौंहरी भी नांही, घास लकड़ी बेचे हैं। अरु बाजार में खड़े रहे हैं। तब जौंहरी राजी भया। अरु विचारी जो वह तौ घास लकड़ी के वेचनेहारे मूर्ख जीवन ने रत्न को कांच खंड कहा तौ क्या भया। उनका वचन प्रमाण नांही। ऐसा समझि के जौंहरी ने बुरा नहीं मान्या। अरु ग्राहक को कही इन रत्न की परीक्षा घास लकड़ी वेचनेहारेन तैं नहीं होय है। कोऊ जौंहरी को दिखावो। तब ग्राहक ने कही वे भी तौ सौ-सौ बरस के बड़े हैं। तब जौंहरी ने कही बड़े भये तौ क्या भया, वह ज्ञानदरिद्री, हीन बनज करनहारे रतनपरीक्षा के ज्ञानरहित हैं। तातें भले रत्नकों कांच खंड कहना यह उनका वचन प्रमाण नांही। तातैं तुम कोई जौंहरी कों बतावौ। तब उस ग्राहक ने एक बड़े जौंहरी को दिखाये। तब जौंहरी ने उस रतन को देखि सर्व जोग-अजोग जान्यां। कैसा है जौंहरी रतनपरीक्षा का जाननहारा, विवेकी, सांची दृष्टि का धारी कहता भया। भो मित्र, एक रतन तो सर्वदोष

रहित है सो लाखदीनार का है। और एक रत्न में कछु कसरि है, तातें यह रत्न दस हजार दीनार घाटि मोल का है ऐसा जानना। तब ग्राहक आश्चर्यवंत भया कहता भया, हे सुबुद्धि मित्र, इन दोऊ रत्न का एकसा तौ रंग है, एकसा आकार है, एक सा तौल है, इनके विषैं मोल का अन्तर ऐसा कैसे भया, सो बतावौ। अरु रतन का धनी जौंहरी भी एक का घाटि मोल सुनि, अचिरज पाय उस बड़े जौंहरी सौं कहता भया। जो हे मित्र, उस रतन कौं घास लकड़ी वेचनेहारौं ने कांच खंड कहा तब भी उनको मंदज्ञानी जानि भय न भया। अरु तुमने याके दस हजार दीनार घाटि कहे सो हमको बड़ी चिन्ता भई, तुम विवेकी हो अनेक रत्न परीक्षा में प्रवीण हो अरु हमको ऐसे सूक्ष्मदोष भासते नाहीं, तुम्हारा वचन हमको प्रमाण है। तब उस बड़े जौंहरी ने कहा—भो भ्रात तुम देखो, तुमको याके घाटि मोल का दोष बतावैं। जा दोषतैं याका मोल घटाया है। तब इस बड़े जौंहरी ने एक जल का बड़ा वासन भराय तामैं एक पोस्त की डोंडी उलटी तिराई, ताके ऊपर प्रथम तौ शुद्ध रतन धरि ता कड़ाही के जल में तिराई सो कड़ाही का जल सर्व रतन के रंग समान भया। सर्वको दिखाय पीछे उस रत्न को उठाय लिया। अरु फिर उस घटमोलै रत्न को डौंड़ी पर धर तिराया, सो यातैं भी सर्व जल रतनमयी भया। परन्तु एक राईमात्र जल में छाटा रहा सो जल रूप ही रहा, रत्न के रंग नाहीं भया, जहाँ-जहाँ जल में डौंडी रतन सहित फिरै, तहाँ-तहाँ राई मात्र

जल ही दीखै। तब या बड़े जौंहरी ने रत्न के धनीकों कही। भो मित्र, देखि इस छांटा के दसहजार दीनार घाटि भये हैं। ऐसा दोष है सो तेरे रत्न का दोष देखि। कोऊ तैं तौ हमारा दोष नाहीं। परन्तु सांची दृष्टि के धारी जौंहरी होय तिनका यह धर्म है सो जैसा होय तैसा कहै। तब याके बचन सुन, याके सांचे ज्ञान की प्रतीत कर ग्राहक ने रतन लिया। अर इनके ज्ञान की प्रतीति कर जौंहरी ने दस हजार दीनार घाटि लिये। अरु याका विशेष ज्ञान जानि, विशेषज्ञान की स्तुति करी। अर अज्ञानी घास के बेचने हारे ने रतननिकों काचखंड कहा सो तौ प्रतीति नहीं करी। अरु विशेष ज्ञान की प्रतीति करी। तैसेही जे लौकिक पंडित क्रोध मान माया लोभ के धारी, धर्मवासना रहित, जिन भाषिततत्व-रत्न तिनकी परीक्षा करवे कों घास लकड़ी बेचने हारे समान तुच्छग्यानी, विशेष धर्मअर्थ जानने को असमर्थ, कषायनि के दास, तिनकी हास्य निन्दा का भय नांही। ऐसा जानि इस ग्रन्थ का प्रारम्भ करूंगा। अज्ञानी जीवन का भय, विवेकी करते नांही। जैसे कोऊ बैल तथा ऊंट है। सो ताको देखि कैं नग्न पुरुष लज्या भय नांहि करै, नग्न बैठा रहे। और वही मनुष्य दस बरस का बालक भी देखे तौ लज्या करे। सो बैल ऊंट तौ बीस बरस के बड़े तन के धारी तिनको लज्या नहीं करै, अर मनुष्य की बालक दृष्टि देखि लज्जा करिये है सो क्यों? पशुन में नग्न पने का ज्ञान नाहीं। अरु बालक को नग्न का ज्ञान है, सो बालक की लज्जा जोग्य है।

तेसेही अज्ञानी, धर्मवासना रहित, पशु समान अग्यानिन की शंका-भय तें धर्मकार्य तजना योग्य नांही, ऐसा जानि ग्रन्थारम्भ करौं हों। तब तरकी ने कही—प्रारम्भ तौ करौ हो परन्तु सावधान होई करियो। ज्यौं छन्दन की जोड़ि न विनशै। अर्थ की शुद्धता, वचन की मिष्टाई सहित ललिताई इत्यादिक कवीश्वरों की परिपाटी अनुसार निर्दोष करना। ताको कहिये है—हे भाई, सर्व दोष रहित ग्रंथारंभ तौ बड़े कवीश्वरों के नाथ छत्तीस गुण धारक आचार्य चारि ज्ञान के धारी ते करैं हैं। तथा ग्यारह अङ्ग चौदहपूर्व के ज्ञानधारक उपाध्याय जी हैं ते शुद्ध सर्वदोष रहित ग्रंथारम्भ करैं हैं। तथा और यतीश्वर दीर्घज्ञान के धारी अनेक छंद अर्थ ललताई शब्द की मिष्टताई सहित ग्रंथ का प्रारम्भ करनहारे हैं। तथा सर्वयतिन के नाथ गणधर देव चारि ज्ञान के धारी सो सर्व दोषरहित ग्रंथनि का प्रारम्भ करैं हैं। और जो कोई सामान्य ज्ञान के धारी धर्मानुरागी कवीश्वर हैं तिनकी जोड़ विषैं तथा ग्रंथारम्भ विषैं सामान्य-विशेष चूक होयगी। हम पै सर्व प्रकार निर्दोष ग्रंथारम्भ कैसे बने है। और सामान्य दोष के भय तें ग्रंथारम्भ नहिं करिये तो परंपराय कवीश्वरनि का मार्ग बन्द होय। तातैं अल्प चूक में पाप नाहीं। पाप तौ एक कषायनि में है। जो कषायसहित अपनी मान-बड़ाई के अर्थ स्वेच्छा शब्द अर्थ धरै, जानता भी चूकै, तौ ताके पाप लागे और शुद्ध सरधान सहित अपनी बुद्धि की न्यूनता तैं कोऊ भूल भी रहै तौ विशेष ज्ञानी समारि लेहु। ऐसी वीनती कर देनी पाप नाहीं। ऐसा जानि

किया है। जैसे कोई एक विशेष ज्ञानी पै, अनेक सामान्य बुद्धि के धारी ज्ञानाभ्यास करैं हैं सो अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसारि सर्व बालक पाटी पढ़ि लिखै हैं। सो आय-आय विशेष ज्ञानी को दिखावै हैं सो सबकी पाटी देखे हैं जो शुद्ध लिखा होय ताकी बुद्धि की प्रशंसा करे हैं। और कोऊ कीं पाटी में एक दोय भूल भी होंय और सर्व पाटी शुद्ध होय तौ विशेष-ज्ञानी ताकी भी प्रशंसा करै हैं। जो एक दोय चूक होय तौ बताय देय, अरु कहैं याकी भली बुद्धि है, याने भली-भली रहसि सहित पाठ लिखा है। तातें राजी होंय। अरु कदाचित् चूक होय सो बतावे हैं। तैसे ही सामान्य बुद्धि के धारी कवीश्वरनि का अभिप्राय है। जो हम अपने ज्ञान की सामर्थ्य प्रमाण, तत्त्वार्थ अक्षरन का शुभ मिलाप करैंगे। अर कोई सूक्ष्म तत्त्वार्थ भाव हमको न भासै, अरु विशेष ज्ञानी को चूक भासै, तौ हम पै धर्म स्नेह करि शुद्ध करि लेहु। ऐसे दीर्घज्ञानी, जिन आज्ञा प्रमाण, जीव अजीव तत्त्व के भेदी, ज्ञान द्वारा पाया है यथावत् तत्त्वभेद का रस जाने, ऐसे धर्मी जीवन तैं बिनती करी है। तब इहाँ कोई तरकी ने कही, सज्जन तैं कहा बिनती करौगे ? सज्जन तौ चूक होयगी सो शुद्ध करैंहीगे। सज्जन जीव दया-प्रतिपालक पुरुषन का सहज ही ऐसा स्वभाव है। परन्तु जे दुष्ट पापी हैं तिनतैं बिनती करनी योग्य थी, जे दुर्जन स्वभावी पर निन्दा के करन हारे हैं तिनकौं उपशान्त करने को उनकी बीनती करनी भली है। ताको कहिये हैं। हे भाई, जे दुष्ट हैं तिनका कोई ऐसा ही अकृत्रिम अनादि निधन स्वभाव है जो ये पराये भले कार्य को देख सकते नाहीं। यापै कोऊ अनेक बीनती करो परन्तु यह पापी आत्मा पराई भली वस्तु को दोष लगाये बिना

रहता नाहीं। ऐसे कुबुद्धिन कौं खुशी करने कूं जो उपाय कीजिये, सो सर्व वृथा है। जैसे नीम के मिष्ट करने कूं नाना मिष्ट रस, दुग्ध, घी ले नीम की जड़ में दीर्घ काल तांई सींचिये तौ भी नीम का रस मिष्ट होता नाहीं। जेती भलीवस्तु मिष्ट-रस-धारी नीम की जड़ में डारिये सो सर्व वृथा होय जाय। तैसे ही दुष्ट कूं खुशी करने कों जेते उपाय करिये, सो-सो सर्व वृथा जांय हैं। तातें हे भ्रात, जो वस्तु होती जानिये तौ इलाज भी करिये। और जो वस्तु होती नहीं जानिये तौ तापै इलाज काहे का? तातें सज्जन हैं ते सरलस्वभावी हैं। तातें विनती करी। अर जे दुष्ट हैं तिनतैं विनती करी तौ क्या, वह भला वस्तु कौं दोष लगावैं ही। जे दुष्ट हैं तिनकें तौ यही मुख्य है जो पराई निन्दा हाँसि को करि, परि कों पीड़ा उपजाय, आप सुख मानना। तातें ऐसे जानि सज्जन जनन तें विनती करी, जो यह सज्जन भूल-चूक होयगी सो शुद्ध करेंगे। अरु पराये अवगुण कों हेरनेहारों तैं समभाव करि इस ग्रंथ के करने का उपाय करौं हों। ताके आदि ही षट् कार्य आचार्यनि की परिपाटी तैं चले आये हैं। जे आचार्य तथा और ग्रंथन के कर्ता कवीश्वर भये ते षट्कार्य ग्रंथारम्भ के आदि ही वर्णन करते आये हैं। सो ही परंपराय लेय इस ग्रंथ की आदि इहाँ भी लिखिये हैं।

गाथा—मंगल णिमित्त हेऊ, जोए पमाण णाम, कत्ताए।
सूरो गंथारंभय, ए षड काजोय धम्म सुत्तादो ॥१०॥

मंगल ॥१॥ निमित्त ॥२॥ हेतु ॥३॥ प्रमाण ॥४॥ नाम ॥५॥ कर्ता ॥६॥ यह षट् हैं। सो जे आचार्य ग्रंथारम्भ करैं तब आदि में इनका स्वरूप वर्णन करैं। सो अब इनका स्वरूप

लिखिये है। प्रथम ही मंगल कहैं सो पुराय, पवित्र, शुभ, त्तेम, कल्याण, सुख, साता, इत्यादिक ए सर्व मंगल के नाम हैं। मंगल के षट् भेद हैं सो ही कहिये हैं।

गाथा—णाम सथापण दव्वो, खेत्तो कालोय भाव षड् भेदो।
मंगल पुणादय भावो, गंथारंभेय सव्व करई ॥११॥

नाममंगल ॥१॥ स्थापनामंगल ॥२॥ द्रव्यमंगल ॥३॥ क्षेत्रमंगल ॥४॥ कालमंगल ॥५॥ भावमंगल ॥६॥ ये षट् प्रकार मंगल हैं। सो इनका विशेष कहे हैं। तहाँ नवीन ग्रंथ के आरम्भ में प्रथम ही मंगल करिये। सो पाप का नाश सो ही मंगल है। सो पंच परमेष्ठी के नाम तथा वृषभादि अनेक तीर्थंकरन का नाम तथा गणधर देवादि महान् पुरुष तथा चरमशरीरी आदि धर्मात्मा पुरुषन का नाम लेते पाप का नाश होय, सो नाम मंगल है। और तीर्थंकर देव के शरीर की नकल बनाय स्थापना करि पूजना, सो स्थापना मंगल है। और अरहंतादि परमेष्ठी के शरीर हैं सो इनका देखना, पूजना, सुमिरण करना, ताकरि पाप का नाश करना, पुराय का सञ्चय करना होय, सो द्रव्य मंगल है। और जहाँ यतीश्वर ध्यान—अग्नि कर अष्ट कर्म नाशि सिद्ध लोक कों प्राप्त भये। जैसे सोनागिरि जी, सम्मेदशिखर जी, पावापुर जी आदि उत्तम क्षेत्रन का नाम लिये पूजा बंदना किये, पुराय का बन्ध होय, पाप का नाश होय, सो क्षेत्रमंगल है। और जिन कालन में जिनेन्द्रदेव के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण आदि पंच कल्याणक भये होंय सो, तथा नन्दीश्वर विषैं अष्टाह्निका आदिक जिन पूजन के दिन हैं सो कालमंगल हैं। इन काल का नाम लेते, वंदना करते, ध्यान करते, पाप का नाश होय, पुराय का लाभ

होय, सो कालमंगल है। और अष्टकर्म रहित सिद्ध भगवान तथा च्यारि घातिया कर्मरहित तीर्थंकर, अनन्त चतुष्टय सहित समोशरणादि उत्कृष्ट संपदा लेय दिव्य ध्वनि करि उपदेश देते जो साक्षात भगवान् तिनका नाम ले, स्मरण करते ध्यान करते पाप का नाश होय पुण्य का लाभ होय, सो भावमंगल है। ऐसे ये षट् प्रकार मंगल है सो भव्य जीवन कों शास्त्र सुनने में बाँचने में पूजन करने में मंगलकारी होहु। याका नाम मंगल भेद है। सो भले कवीश्वरनि कों प्रथम ग्रंथारम्भ करते मङ्गलकारी होय हैं ॥१॥ बहुरि ग्रंथारम्भ करिये है ता समय ऐसा विचारिये है जो यह ग्रंथ करें हैं सो भव्य जीवनि के पाप नाश होने कूं, तिनका मिथ्यात्व मिट सम्यक्त होने कूं तथा परभव स्वर्ग मोक्ष होने कूं इत्यादि धर्मार्थी जीवन कूं शुभ फल की प्राप्ति के निमित्त ग्रंथ करिये है, सो याका नाम निमित्त भेद है ॥२॥ और भव्य जीवनि के पढ़ने, सुनने, उपदेश देने हेतु शास्त्र करिये है सो हेतु नाम गुण है ॥३॥ और प्रमाण भेद दोय हैं एक तो अर्थ प्रमाण, एक अक्षर पद प्रमाण। सो अर्थप्रमाण तो अनंत हैं। ताका तारतम्य भेद सर्वज्ञ केवलज्ञानी जानैं हैं, सो छद्मस्थ के ज्ञानगम्य नाहीं। तातैं नहीं लिखा। और अक्षर प्रमाण है सो अक्षर की गिनती जो या ग्रंथ के ऐते श्लोक हैं सो अक्षरप्रमाण है। ऐसे दोय प्रकार प्रमाण नाम गुण है ॥४॥ और ग्रंथ पूरण होतें कोई मोक्ष मार्ग सूचक शुभ नाम विचार, ग्रंथ का पुण्याधिकारी भला नाम देना, सो नाम गुण है ॥५॥ और ग्रंथ के पूरण होते मङ्गलाचरण करि ग्रंथ का कर्ता अपने नाम का भोग धरै, सो कर्ता नाम गुण है ॥६॥ ऐसे ए षट् गुणन का कथन ग्रंथ आदि किया। ता प्रसाद मेरे सुदृष्टि होते हृदय में, उपजी

जो नाना प्रकार ज्ञानतरंग, जैसे समुद्र में अनेक तरंग उपजैं तैसे मेरी सुदृष्टि समुद्र में अनेक तत्त्व भेद, वस्तुनि के स्वभाव, जीवनि के बाह्य अभ्यन्तर रूप कर्म की चेष्टा की प्रवृत्ति, आदि तरंग सो ही तरंग या ग्रंथ विषै लिखिये है। तातैं या ग्रंथ का नाम "सुदृष्टि तरंगिणी" ऐसा कहा है सो यह शुभ करनहारा ग्रंथ है। सो सम्यक्त दृष्टिन के धारने को जानना। तथा और भी जे भव्यात्मा इस ग्रंथ का अभ्यास करैं, ताकूं तत्त्वनि का ज्ञान होय। तातैं सम्यक्त पाय अतिशय सहित शुभफलदाता जो पुण्य, ताका लाभ होय। तथा जा गून्थ में यह सात जाति की कथा होई सो भले फलदाता मंगलकारी गून्थ जानना। सो ही सात भेदरूप कथा या ग्रन्थ में समझ लेना। ते कथा कौन, सो बताईये है।

गाथा—दव्वय खेत्तय कालय, भावो तित्थंय होय फल आदा।
पसथावो यह सत्तो, धम्म कथाई धम्म फल देई ॥१२॥

अर्थ—द्रव्यकथा ॥१॥ क्षेत्रकथा ॥२॥ कालकथा ॥३॥ भावकथा ॥४॥ तीर्थकथा ॥५॥ फलकथा ॥६॥ प्रस्ताव कथा ॥७॥ ये सात कथा हैं सो इनकूं धर्मकथा कहिये है। इनका कथन जहाँ चलै सो शास्त्र धर्मफल का दातार जानना। तथा जो कोई भव्य इन सप्त कथान की परस्पर चर्चा करैं तो धर्म कथा कहिये। सो इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। तहाँ जीव द्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, आकाशद्रव्य यह षट्द्रव्य हैं सो इनकी चर्चा, इनके गुण पर्यायन की परस्पर चरचा करनी, सो धर्मफलदायक धर्मकथा कहिये। अब इन कथन का जो शास्त्र विषैं व्याख्यान किया होय, सो धर्मशास्त्र कहिये। ऐसे

शास्त्रन कूं पढ़ै-सुनै-उपदेशे, पुण्यफल का लाभ होय है, सो द्रव्यकथा जानना ॥१॥ और ऊर्ध्व, मध्य, पाताल लोकविषैं तहाँ ऊर्ध्वलोक विषैं कल्पवासी देवन के सोलह स्वर्ग तिनमें देवन की आयु काय सुखन की चर्चा करना तथा नवग्रैवेयक, नवअनुत्तर, पंचपंचोत्तर इन आदिन का आयु काय सुख का कथनादिक, उर्द्धलोक का व्याख्यान सो उर्द्धलोक कथा है। और मध्यलोक विषैं असंख्यात द्वीप समुद्र पचीस कोड़ाकोड़ी मध्य पल्प प्रमाण तिनकी रचना तथा अढ़ाई द्वीप, पंचमेरु, एक-एक मेरुसम्बन्धी बत्तीस-बत्तीस विदेह, अरु भरत ऐरावत क्षेत्र इनका वर्णन और चौंतीस-चौंतीस विजयार्द्ध पर्वत ताकी दोय श्रेणि, तहाँ विद्याधरन की एक सौ दस नगरीन का कथन, षट्कुलाचल, षट्हृदन तें निकसी चौदह महानदी, जम्बू शाल-मली वृक्ष आदि एक-एक मेरुसम्बन्धी रचना का कथन तथा पुष्कर द्वीप के मध्य भाग में कनकमई मानुषोत्तर पर्वत का कथन, नाकरि मनुष्य लोक की हद है। तहाँ तिष्ठते चारयों तरफ चारि जिनमंदिर तिनका कथन तथा अष्टम द्वीप नंदीश्वर ताविषैं चारि अंजन-गिरी, एक-एक अंजननगिरी सम्बन्धी चारि-चारि बावड़ी, तिन बावड़ीनि के मध्यभाग सोलह दधिगिरि पर्वत तथा बत्तीस रतिकर पर्वत सो यह पर्वत नीचैं तो अनेक प्रकार रतनमई विचित्र शोभा को धरैं हैं, और ऊपरि के शिखर लाल हैं तातें रतिकर नाम कहा है। ऐसे ही नीचैं तौ अनेकरत्नमयी अरु तिनके शिखर ऊपरतें श्याम, सो अंजनगिरी हैं। तथा एक-एक बावड़ी सम्बन्धी च्यारि-च्यारि बनन का कथन। तथा इन पर्वतन में तिष्ठते बावन चैत्यालय तिनका कथन है। तथा ग्यारवें कुण्डलद्वीप के मध्यभाग विषैं कुण्डलगिरिपर्वत है तहां तिष्ठते च्यारि

जिनमंदिर हैं तिनका कथन, तथा असंख्यातेद्वीपन में तिष्ठते असंख्याते व्यंतरदेवन के नगरन की रचना, रुचकगिरि तेरहमां द्वीप विषें मध्यभाग तिष्ठता रुचकगिरि पर्वत तापै च्यारि जिन-मंदिरन का कथन, इन आदिक और असंख्यातद्वीप के अंत में स्मयंभूरमण समुद्र, चारि कोन्या क्षेत्र तिन विषें तिष्ठते उत्कृष्ट अवगाहमाधारी तिर्यंच तिनका कथन और असंख्याते द्वीपन में तिष्ठते एक पल्य आयु कर्म के धरनहारे तिर्यंच तिनका कथन इन आदिक अनेक-रचनासम्बन्धी कथनसहित सो मध्यलोक का कथन । सो याकी परस्पर चर्चा करनी सो महा-पुण्यफल की दाता है। याकों धर्मकथा कहिये और अधोलोकविषें दस जाति के भवनवासी देवन के भवन तिनके प्रमाण का कथन, देवन की आयु काय का कथन । तिनतें नीचे पंकभागतैं अवलयभाग में प्रथम नरक, तिनकी आयु काय का कथन तथा नीचे षट् नारकी और तिनकी आयु-काय-दुःख का कथन इत्यादिक तीन लोक का कथन तथा तीन लोक के शिखर पर बिराजते अष्ट कर्मरजरहित शुद्धात्मा ज्योतिस्वरूप केवलज्ञान के धारी अनन्त सुख के धनी अनन्त सिद्ध भगवान, तिन सर्व सिद्धपरमात्मा भगवान को हमारा वारंवार नमस्कार करि तिनकी अवगाहना का कथन, तथा ऐसे सामान्य रीति से तीनिलोक का पुरुषाकार डेढ़मृदंगाकार तीनसौ तेतालीस राजू का घनाकार क्षेत्र का कथन। सो ऐसे क्षेत्र का कथन है। इस प्रकार तीन लोक की परस्पर चर्चा करै सो धर्मचरचा जानना। और ऐसे तीन लोक का कथन जा शास्त्र में होय, सो धर्मफलदायक शास्त्र है।

और तीन काल का कथन सो अनंत अतीतकाल व्यतीत भया, वर्तमानकाल का

एक समय और अतीतकाल तैं अनंतगुणा अनागतकाल है। तथा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल, तिन कालन को फिरन को लिये प्रथम दूजे आदिक षट्कालविषैं आयु काय सुख दुःख का कथन की चर्चा इत्यादिक तीनिकाल का कथन है। सो या कथन की परस्पर चर्चा वार्ता करनी सो कालकथा पुण्यदायक है। जिन शास्त्रविषै इन तीनि का कथन होय सो धर्मशास्त्र है। याको पूजै पढ़ै सुनै उपदेशै पुण्यफल होय।

आगे भावकथन–सो तहाँ पंचभाव जो उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, औदयिक भाव, क्षायकभाव और पारिणामिकभाव। तहाँ उपशम भाव ताको कहिये जो कर्म के उपशमतें होय। ताके दोय भेद हैं उपशमसम्यक्त्व, उपशमचारित्र। सो यह दोऊ भाव अपने घातकर्म उपशमाय प्रगट होवें सो उपशम भाव हैं और तिस कर्म के केतेअंश तो उदयभाव रूपहोंय, केते अंश उपशम भये तथा क्षय भये होंय। सो तिनकरि उदय भया जो रस ता रस प्रगट होते, आत्मा के भाव जैसे होंय, सो क्षयोपशम भाव कहिये। तिनके भेद अठारह-कुज्ञान तीनि, सुज्ञान चारि, दर्शन तीनि, क्षयोपशमसम्यक्त, क्षयोपशमचारित्र, देशसंयम, पंच अन्तराय का क्षयोपशम, ऐसे अष्टादश हैं। और तिन गुणन के प्रतिपक्षी कर्म सर्वथा नाश भये होय सो क्षायकगुण है। सो क्षायक भाव के नव भेद हैं क्षायकज्ञान, क्षायकदर्शन, क्षायकचारित्र, क्षायकसम्यक्त, पंचलब्धि ए नव हैं। और जे भाव कर्म के उदय तैं होंय सो औदयिक भाव हैं। ताके भेद इक्कीस–कषाय चारि, गति चारि, लेश्या षट्, वेदतीनि, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व। और कर्म सहाय रहित स्वयं सिद्ध आत्मा के भाव सो परि-

णामिक भाव हैं। ताके भेद तीनि—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व। ये सर्व मिलि मूल भाव पाँच और उत्तरभाव तिरेपन जानना। सो इन पंच भावन के मूल भेद, उत्तर भेद आदि अनेक भावनि का जामें कथन होय, सो धर्मशास्त्र है। और परस्पर भावन की चर्चा सो भावकथा है। और जहाँ तें यतीश्वर कर्मनाश शिव गये सो सिद्धक्षेत्र जैसे गिरनारजी, सम्मेदशिखरजी, शत्रुंजयजी, सोनागिरजी, मांगीतुङ्गीजी, गजपंथाजी इन आदि सिद्धक्षेत्रन का जामें कथन होय सो धर्मशास्त्र, भले फल का दाता जानना। और इन सिद्धक्षेत्रन की परस्पर चर्चा कीजियें, सो धर्मकथा है। तथा पंचकल्याणकन के जे क्षेत्र, तिनकी कथा तथा इन आदि जे धर्मस्थान की कथा करनी, सो तीर्थ कथा होय। आगे जहाँ जीवपुद्गलादि द्रव्य तथा जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, इन सप्त तत्व का तथा इनमें पुण्य और पाप मिलाये नव पदार्थन का कथन जिस शास्त्र विषैं होइ, सो धर्मशास्त्र है। इन सप्त तत्वनि की विशेष भेदाभेद चर्चा करनी सो फल कथा है। आगे अनेक दृष्टान्त, जुगति व नाना प्रकार नयन करि मिथ्यात्व नाश करना, धर्मसाधक पापकर्म नाशक अनेक अलंकारन का कथन जिन शास्त्रन में होय सो धर्मशास्त्र हैं। और अपनी बुद्धि करि धर्म स्थापन कूं, पापमग छेदन कूं, दृष्टान्त जुगति देय प्रश्न-उत्तर करि चर्चा करना, सो प्रस्ताव कथा है। ऐसे कहे सात भेद धर्मकथा के सो इन सात कथान का जा शास्त्र में कथन होय, सो धर्मशास्त्र कहिये। और जहाँ इन सात कथा रहित कथन सहित शास्त्र हो सो मिथ्यात्वमयी शास्त्र सामान्य जानि तजना योग्य है। तातैं शुभ सात कथा हैं सो इन बिना, विषयन के कारण, हिंसा के बंधावनहारे, मिथ्यासरधान के

स्यावनहारे जो शास्त्र हैं सो लोक कथा मयी, विकथारूप हैं। भो भवि हो, इस शास्त्र विषैं सातों ही कथान का रहसि पाइये है। सर्व प्रकार धर्मकथा धर्मफल दाता है तातें धर्मात्मा जीवन कों इस ग्रंथ का अध्ययन करना योग्य है ॥३॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ विषैं इष्टदेव नमस्कार पूर्वक, ग्रंथ करवे की प्रतिज्ञा कों लिये, अपनी आलोचना सहित, सम्यक्त्व के पचीस दोष कथन सहित आदि मंगल षट् भेद लिये, सात भेद धर्मकथादिक वर्णन करने वाला, तीसरा पर्व पूर्ण भया ॥३॥

आगे कहिये है—जो मोक्षमहल के चढ़वे कों सोपान तथा शिवरूपी कल्पवृक्ष ताका मूल ऐसा सम्यग्दर्शन, ताकी उत्पत्ति कों कारण तत्त्व भेद है। सो जिन देव करि कहे जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व इन दोय भेद मई है। सो एक तो चेतना लक्षण कों लिये देखने-जानने हारे जीवतत्त्व है। एक अजीवतत्त्व, सो जड़ है। सो चेतना गुण का धारक आत्मतत्त्वज्ञानी के मोक्ष होय है। सो तिनकी उत्पत्ति कहिये है। जो उत्तम तीनि कुल के उपजे शुभाचारी बालक, तिनकों तिनके माता-पिता महाधर्मी, सो अपने कुल के आचार धर्मपरंपराय चलवे कों, अरु पुत्र को इहां जस अरु पर भव सुखी होने कों, पुत्र पर स्नेह दृष्टि करि, पुत्र को पाँच-सात वर्ष की अवस्था में विद्या का अभ्यास करावने कूं, गृहस्थाचार्यन पर पढ़ावे हैं। कैसे हैं गृहस्थाचार्य, महाधर्म के धारी, सर्व धर्म कला विषैं प्रवीण हैं, अनेक शस्त्र-शास्त्र विद्या के वेत्ता हैं, महादयालु हैं, कोमल हैं, सौम्यमूर्ति, शुभाचारी हैं। ऐसे उत्तमगुण सहित, निर्मलचित्त, महाउद्दिम, तिन पै भले श्रावकन के बालक पठन करें हैं। सो वह सुबुद्धि, गुरु के दिये अक्षर

अनेक तनक्रिया वचन क्रिया करि सर्व को संतोष करि सुख उपजावे । परन्तु यह धर्मात्मा गुरु के पास देखा जो प्रथमानुयोग का रहस्य सो पापारंभ का फल खोटा जानि गृहकार्यन में रंजायमान न होय । यह तत्त्ववेत्ता उदासीन वृत्ति का धरणहारा, पापारंभ रहित भया, अपने जुग भव सुधारता अपने शुद्धधर्म की रक्षा करता, विचक्षण, अपने घरके पुत्र-कलत्र-कुटुम्बादिक की रक्षा करै । ऐसे जे भव्यप्राणी गृह में रहैं ते परभव में सुखी होंय । और जे बालक अवस्था ही के अज्ञानी, कुआचारी, पाप भयरहित, शरीर भोगन में मोहित, इन्द्रिय सुख के लोभी, तन-धन-संपदा सास्वती जाननहारा धर्मभावना रहित हैं, ते जीव गृहारम्भ में अदयासहित प्रवृतैं पापबन्धकरि कुगतिविषैं दुःखी होय हैं । तातैं सुबुद्धि, तीनि कुल के उपजे बालकनकूं अपने सुख निमित्त, बालपने ही तैं विद्या पढ़ावना योग्य है । जो धर्मात्मा विद्यावान पुत्र होई तौ मातापिता को सुखकारी होय । और जो मूर्ख, अज्ञानी, पापाचारी, अविनीत पुत्र होय तो माता-पितान को दुखकारी होय । ऐसा जानि धर्मात्मा विवेकी पुरुष होय हैं सो अपने पुत्रन कूं धर्मशास्त्रानि विषैं प्रवेश करावैं हैं । जे पंडित धर्मात्मा, धर्मशास्त्रन का अभ्यास करैं सो धर्मशास्त्र के अभ्यास तैं सम्यकदृष्टि का लाभ होय है । सम्यक्त के होते, जीव-अजीव तत्त्वन का जानपना होय है । सो जीवतत्व तौ देखने-जानने रूप है, अरु अजीवतत्त्व के पांच भेद हैं । ए पांच ही जड़ हैं, ज्ञानरहित हैं । ऐसे जीव-अजीव तत्त्व, जिनदेव ने प्ररूपे हैं । तैसे ही सम्यकदृष्टि श्रद्धान द्वारा धारण करि, पदार्थन में हेय-उपादेय करै हैं । ऐसा बिचारै हैं जो जिनदेव ने जीवाजीव तत्त्व भेद कहे हैं सो प्रमाण हैं, सत्य हैं । ऐसा दृढ़ श्रद्धान सो व्यवहार

महाविनय तैं अंगीकार करै है । सो गृहस्थाचार्य या शिष्य कूं शुभलक्षणी विनयवात्सल्यादि गुण सहित जानि, या बालक की अनेक प्रकार परीक्षा करि, शुभ चेष्टा जानि, याकों इस भव-परभव कल्याणकारी सुख की करणहारी उत्तम विद्या पढ़ावें हैं। सो प्रथम तौ धर्मशास्त्र, पीछे कर्मशास्त्रन का अभ्यास करावें हैं। तहाँ धर्मशास्त्र में प्रथम तौ प्रथमानुयोग पढ़ावैं। ताकरि पुण्य-पाप के फल कों जानि, पापकर्मन का फल नरक-पशून के महातीव्र दुख जानि, पाप तैं भय खाय करि, नहीं करना वांछै। और पुण्य का फल मनुष्य में चक्री, कामदेव, नारायण, बलभद्र, मंडलेश्वरादि महान राजान के वांछित भोग, अर देवन के उत्तम सुख इत्यादि भला फल जानि, पुण्य के उपायवे का उद्यम करै। ऐसे पुण्य-पाप का स्वभाव जनायवे कों प्रथमानुयोग का अभ्यास पहिले ही करावें हैं। पीछे करणानुयोग पढ़ावें। तातें तीनि लोक का स्वरूप-आकार-स्वभाव जानैं। ताके ज्ञान होतें भोरे जीवन का सा भ्रम नांही उपजे, कि—“जो यह लोक काहू का बनाया है। वह लोक का कर्ता चाहे तौ लोक समेटि लेय, तौ संसार का अभाव होय, शून्यता होय जाय। तातें यह लोक कृत्रिम है।” ऐसे कोई एक भोरे जीव बालकवत कहै हैं सो तिनके वचन सुन के करणानुयोग के जाननेहारे को भ्रम नहीं उपजै। अपने सांचे ज्ञान की चेष्टा तें लोक स्वयंसिद्ध जानैं। तातें करणानुयोग पढ़ावें। और पीछे चरणानुयोग पढ़ावें। ताकर मुनि-श्रावकन का आचार जानैं। मुनि का निर्दोष भोजन, चालना, बोलना, बैठना आदि, यती का आचार जानैं। तथा श्रावकन का खाना-पीवनादि योग्य-अयोग्य आचार, धर्म सेवनादि क्रिया जानैं। तातें अपने ऊँच कुल के ऊँच धर्म, ऊँच आचार कूं नाहीं

तजैं। तातैं आप म्लेच्छ, अभक्ष्य के खायवे हारन की संगति तैं कुआचार नहीं ग्रहैं। तातैं चरणानुयोग पढ़ावें। पीछैं गुरु पै द्रव्यानुयोग पढ़ैं। ताकरि जीव अरु अजीव का भेद जानैं। इन जीव-अजीव के द्रव्य-गुण-पर्याय कों जानैं। तातैं संसार दशा आपतैं भिन्न जानैं। अपने तनतैं भी जड़त्व भाव जानि एकत्व तजैं। तन-धन-कुटुम्बादि का वियोग होतैं अज्ञानी मोही जीवनि की नाईं दुखी नहीं होय, तातैं द्रव्यानुयोग पढ़ावैं। ऐसे धर्मशास्त्र का रहस्य जनाय धर्मसम्बन्धी भरम खोवैं। ताके प्रसाद मिथ्या धर्म नहीं रुचै। शुद्धधर्म-अङ्गीकार करि परभव सुधारे। पीछे कर्मशास्त्र पढ़ावें, तहाँ ज्योतिष-निमित्तशास्त्र, वैदिक, चित्रकला, संगीतकला, शिल्पशास्त्र, कोकशास्त्र, पिङ्गलशास्त्र, छंदशास्त्र, रतनपरीक्षा, धातुपरीक्षा इन आदि अनेक देशभाषा, अनेक देशन के अक्षरन की स्थापना आदि अनेक शास्त्र-कलादिक पढ़ाय प्रवीण करैं। ताके जोग तैं इस लोक विषैं श्रेष्ठता पावैं, सर्व उत्तमलोकन कर पूज्यपद पावैं। और पाखंडी पापीन करि ठग्या न जाय। सर्वकलापूरण सुखी होय तातैं अनेक कर्म कला सिखावैं। ऐसे गुरु की दया करि, पाई जो विद्यानिधि, ताकरि उत्तम तीनि कुल के बालक, अपनी बुद्धि को निर्मल करि, सर्वसंसार दशा का वेत्ता होय। सो गुरुप्रसाद के जोग तैं पाया जो जीव अजीव तत्व का भेद, तातैं निर्मल बुद्धि परद्रव्यनि तैं भिन्नचित्तकरि जड़पदार्थ शरीरादि तिनमें निर्ममत्वता करिकैं, कर्मबन्धन तैं छूटवे की है इच्छा जाके, सो जामनमरण दुःखन तैं भय खाय, दीक्षा धरै। तथा यदि दीक्षा को समरथ नहीं होय तौ अशुभोपयोगी पापारम्भ का फल दुःख जानि, पापकार्य में जतन तैं दयामई भाव सहित प्रवर्तें। श्रावकधर्म का साधन करता

गृहस्थ ह रिहै । सो चारित्रमोह के उदय तें कुटुम्ब शरीरादिक के पोषवे कों तथा अपनी मन इन्द्रिय वशीभूत नहीं भई तिनके पोषन कों तथा अपने पदस्थप्रमाण कषायनि के जोगतें मान-बड़ाई पोषवे कों, अपने गुरु का दिया ज्ञान ताको प्रगट कर जगतविषैं जस रूपी बेल बधाय, न्यायमार्ग सहित अपनी बुद्धि बल तें धन का उपार्जन करै। ताकरि अपने तन, कुटुम्ब की रक्षा करै। सर्व कुटुम्ब लोकन तैं यथायोग्य विनयबचन बोल, सर्व कों हित उपजावे। आप तें, गुरुजन तें, माता-पिता होंय तिनतैं, नम्रतापूर्ण बचन सुंदरविनय सहित प्रकाशिकै तिनकौं सुखी करै । अरु आपतें छोटे होंय तिनतें महा हित-मित, अमृत समान कोमल बचन बोलि कें हँस मुख तैं सौम्यदृष्टि करि देखि, तिनकूं पुचकार सुखी करै । ऐसे यथायोग्य संभाषण कर, सबको साता करै । और यह तत्ववेत्ता सदैव राजसम्पदादि भोगता ऐसा विचार चित्तविषैं किया करे, जो मैं अनादि काल तैं संसार भ्रमण करता नरकादिक कुगतिन का पापफल भोग दुःखी भया। कबहूं शुभपरिणति के फलकर पुण्य तें देवादि शुभ गति के इन्द्रियजनित सुख मनवांछित भोगे । परंतु इस जीव की भोगतृष्णा नहीं मिटी, संसार भ्रमण नहीं मिटा। मैं जन्ममरण के दुःखन तैं कब छूटूंगा? धन्य है मुनि तीर्थंकर देव, जिनने राज्यसंपदा तजि, सिद्ध लोक पांया। सो मैं भी अब भला अवसर पाया है। सो ऐसा कार्य करूं जातें संसार का भ्रमण छूटै। सदैव ऐसा उपाय विचारै। दीक्षा के द्रव्य क्षेत्र काल भावन की एकता का निमित्त न मिले तौं धर्मात्मा श्रावक पुत्र, अपनी बुद्धि बलतैं कमलसमान अलिप्त भया गृह में रहे। सो सर्वगृहपालवेकूं उद्यम करे। औरन कूं मोही सा दीखै।

अनेक तनक्रिया वचन क्रिया करि सर्व को संतोष करि सुख उपजावे । परन्तु यह धर्मात्मा गुरु के पास देखा जो प्रथमानुयोग का रहस्य सो पापारंभ का फल खोटा जानि गृहकार्यन में रंजायमान न होय । यह तत्त्ववेत्ता उदासीन वृत्ति का धरणहारा, पापारंभ रहित भया, अपने जुग भव सुधारता अपने शुद्धधर्म की रक्षा करता, विचक्षण, अपने घरके पुत्र-कलत्र-कुटुम्बादिक की रक्षा करै । ऐसे जे भव्यप्राणी गृह में रहैं ते परभव में सुखी होंय। और जे बालक अवस्था ही के अज्ञानी, कुआचारी, पाप भयरहित, शरीर भोगन में मोहित, इन्द्रिय सुख के लोभी, तन-धन-संपदा सास्वती जाननहारा धर्मभावना रहित हैं, ते जीव गृहारम्भ में अदयासहित प्रवृतैं पापबन्धकरि कुगतिविषैं दुःखी होय हैं । तातैं सुबुद्धि, तीनि कुल के उपजे बालकनकूं अपने सुख निमित्त, बालपने ही तैं विद्या पढ़ावना योग्य है । जो धर्मात्मा विद्यावान पुत्र होई तौ मातापिता को सुखकारी होय। और जो मूर्ख, अज्ञानी, पापाचारी, अविनीत पुत्र होय तो माता-पितान को दुखकारी होय । ऐसा जानि धर्मात्मा विवेकी पुरुष होय हैं सो अपने पुत्रन कूं धर्मशास्त्रनि विषैं प्रवेश करावैं हैं । जे पंडित धर्मात्मा, धर्मशास्त्रन का अभ्यास करैं सो धर्मशास्त्र के अभ्यास तैं सम्यकदृष्टि का लाभ होय हैं । सम्यक्त के होते, जीव-अजीव तत्त्वन का जानपना होय है । सो जीवतत्व तौ देखने-जानने रूप है, अरु अजीवतत्त्व के पांच भेद हैं । ए पांच ही जड़ हैं, ज्ञानरहित हैं । ऐसे जीव-अजीव तत्त्व, जिनदेव ने प्ररूपे हैं । तैसे ही सम्यकदृष्टि श्रद्धान द्वारा धारण करि, पदार्थन में हेय-उपादेय करै हैं । ऐसा बिचारै हैं जो जिनदेव ने जीवाजीव तत्त्व भेद कहै हैं सो प्रमाण हैं, सत्य हैं । ऐसा दृढ़ श्रद्धान सो व्यवहार

सम्यक्त है। और दर्शन मोहनीय की तीनि, अनन्तानुबन्धी की चारि, इन सात प्रकृतिन का उपशम होना तथा क्षय होना, ऐसे सात प्रकृतिन के क्षय तथा उपशम होतें प्रगटा जो आत्मा का अन्तरंग गुण पर्यायसहित प्रत्येक अनुभव को लिये शुभज्ञान, तातें षट्द्रव्यन में ऐसा भाव जानता भया जो जीव, अजीव तत्त्व कर दोय भेद तत्व हैं, सो पंचद्रव्य तौ ज्ञान रहित अचेतन हैं, तिनके गुण भी अचेतन हैं, पर्याय भी अचेतन हैं। एक जीवतत्व चेतन है ताके गुण पर्याय भी चेतन देखने-जानने हारे हैं, सो ऐसे जीवतत्व भी अनन्ते हैं। सो सर्व जीव अपनी-अपनी सत्ताकों भिन्न-भिन्न लिये हैं। कोऊ जीव, काहूतैं मिलता नहीं। सर्व की सत्ता जुदी-जुदी है। और सर्व के गुण-पर्याय भी भिन्न-भिन्न सत्ता को लिये हैं, कोऊ के गुणपर्याय कोऊ तें मिलते नांही। ऐसे सर्व संसारी जीव अनन्ते पाइये हैं। तिन विषैं मैं एक सत्तागुणपर्याय का धारी आत्मा, सो अपने शुभाशुभ कर्मन का फल भोगनहारा, अरु अपने भावन अनुसार शुभाशुभ कर्मबन्ध का करनेहारा, एक मैं ही हूं। सो जब मैं ही रागादिक उपाधि से छूटूं, तौ कर्मबन्धन नाश करि, सिद्धलोक का वासी होहुं। ऐसा आत्मा के भेदाभेद रूप अनुभवविषैं जाके दृढ़ सरधान होय, सो निश्चयसम्यक्त है। सो मुक्ति स्त्री के विवाह कों प्रथम सगाई समानि है॥ ऐसे कहे जे व्यवहार अरु निश्चयसम्यक्त्व, सो तत्वसरधान होतें होय हैं। तातें जिनेन्द्र देव ने प्ररूपे जो जीव-अजीव तत्व, तिन जीवाजीवतत्वन का दृढ़ यथावत् सरधान, सो भव्यन कूं करना योग्य है॥ इहां प्रश्न, जीव-अजीव ए दोय तत्व तो और भी अनेक मतन में कहे हैं। तुमही अपने जिनदेव के भाषे कहने की महिमा काहे

कों कहो हो? यामें महत्वता का भई? ताका समाधान—हे भाई, तैंने कही सो प्रमाण है। परन्तु सर्वमतनि विषैं जीवाजीवतत्त्व भेद कहा है सो जिनदेव के कहने विषैं अरु अन्यमतन के कहने विषैं वड़ा अन्तर है। जैसे वालक के वचन अरु वड़े पंडित पुरुषन के वचन में अन्तर, एता है। जो वालक समानि ज्ञानी भोरे जीव के वचन प्रतीतिरहित हैं और वड़े पंडित पुरुष के वचन प्रतीति सहित होय हैं। तैसे ही समान्य ज्ञान के धारी तुच्छबुद्धि अज्ञानी के वचनविषैं अरु अन्तर्यामी सर्वज्ञ केवली के वचनविषैं वड़ा अन्तर है। तातें जिनदेव के कहे जीवाजीवतत्व हैं सो सत्य हैं। तुच्छज्ञानी के कहे तत्वभेद प्रमाण नांही। तातें हे भाई, जिनदेव करि कहे तत्वन की महत्वता रहैगी। और भी देख, जो सामान्य ज्ञानी के वचन तो असत्य हैं और केवलज्ञानी सर्वज्ञ के वचन सत्य हैं। तातें प्रमाण हैं। सो ही चित्त देय के सुनो। यातें ताका धारण भये तेरा भी भ्रम जाय। ज्ञान की प्राप्ति होय, और सम्यक्त्व का लाभ होय। तातें तू धर्मार्थी है सो हे भव्य तेरे शुभफल के मिलाप की इच्छा होई, मिथ्यात्व फंद तें छूटने की वांछा होई तो भले प्रकार धारना।

भो भव्य; तू देखि। जो और मतन में तत्वन का स्वरूप कहा है, सो जैसे अंधन का हाथी देखना। एक-एक अंग हस्ती का कह के, हस्ती के आकार का अभाव करना। तैसे ही भोरे जीवन का तत्व भेद कहना है। जो तत्व का एक अङ्ग लेय कैं प्रकाशैं हैं सो तत्व का अभाव अतत्वरूप कहैं हैं। जैसे छै अन्धों ने एक हस्ती आवता सुना। तब अन्धों ने कही आपन ने हस्ती नहीं देखा, सो एक हस्ती आवै है ताहि लिपटि जावो। अरु ताके तन पै हाथ फेरियो

ज्यों सर्व हाथी जानिये। ऐसा विचारि के उस ही हस्तीकूं नजीक आया जान, हस्ती पकड़ा। सो छहों ही अन्धों ने षट्अंग हस्ती के पकड़े। किसी ने तो हस्ती का पांव पकड़ा, किसी ने कान, किसी ने दाँत, किसी ने सूंडि, किसी ने पूंछ, किसी ने पेट इत्यादिक एक-एक अंग पकड़, तापै अपना हाथ फेरा। सो अपना सरधान ऐसा किया जो हाथी ऐसा होय है! अपने मनमें भिन्न-भिन्न कल्पना करि, हस्ती छोड़ा। सो पीछे सर्व अंधे आपस में कहते भये। एक अंधा बोला हे भाई, हमने हस्ती देखा। तब पांव पकड़ने हारा कहे जो हस्ती थंभ सा होय है हमने भले प्रकार देखा। तब कान पकड़नेहारे ने कही तू असत्य बोला, हस्ती सूपसा होय है, हमनें नीके देखा है। तब दांत पकड़ने हारे ने कही तैंभी नहीं देखा हस्ती मूसल सा होय है। तब सूंड पकड़ने हारे ने कही तैं भी नहीं देख्या, हस्ती दगली की बाँह समान होय है। तब पेट पकड़नेहारा बोला, जो तूं भी असत्य बोला है हस्ती छैने (कंडे) के बिठा समानि होय है। तब पूंछ पकड़ने हारा बोल्या रे भाई, तुम काहे को वृथा कहो हो। हमने हाथी भले प्रकार देख्या, हस्ती सोटि समान होय है। ऐसे इन षट् ही अन्धन में विवाद होय है, सो सर्व झूठ है। एक अंग सा हस्ती होता नांहीं। हस्ती का अंग देख्या सो एक अंग कूं हस्ती कहै हैं। नेत्र होय तो सब हस्ती का स्वरूप दीखे, सो नेत्र नांही। तातें इन अन्धन का विवाद मिटता नांही। अपन-अपन अंग कूं सर्व ही हठतें कहैं हैं। तैसे ही तत्त्वज्ञान का स्वरूप अतत्त्वरूप करि कहै हैं। सो ही स्वरूप तोकों सामान्यपनैं समझाय कर कहैं हैं। सो हे भव्य, तू नीके करि धारणा करियो। जीवात्मा को देखो, कोई मतवारे तौ सब संसारी के

आकार मानैं हैं तहां देव, नरक, पशु, मनुष्य तिन अंनते-असंख्याते शरीर में एक आत्मा मानैं हैं। अरु कोई एक ज्योतिस्वरूप परमब्रह्म है ताका अंश सर्व जगत के घट-घट विषैं कंकरी-पथरी, जल-थल, पवन-पानी सर्व जगह व्याप रहा है। जहाँ-तहाँ उस ही एक परब्रह्म का रूप फैल रहा है। जो कुछ करै है सो वह ही करै है, ऐसा कर्त्ता हर्त्ता है; केई तौ ऐसा ही जानि दृढ़ करि रहे हैं। और कोऊ आत्मा को क्षण भंगुर मानै। कि शरीर में आत्मा छिड़-छिड़ और २ आवै है। और कोई कर्तावादी कहैं कि जीव को कोई उपजावै है। ऐसी कहैं हैं कि भगवान, नवीन जीव बनाय-बनाय संसार में धरता जाय है। वही चाहे तब मारै है। और कोई एक मतवारे, जीव का अभाव ही मानैं हैं। और केई मतवारे मोक्ष आत्मा का पीछे फेरि संसार विषैं अवतार मानै हैं। केई मतवारे मोक्ष विषैं आत्मा कूं ज्ञानरहित मानैं हैं। केई अज्ञानवादी ऐसा कहैं हैं जो आत्मा में परवस्तु के जानने का ज्ञान है, सो ही उपाधि है। जब ज्ञान मिटेगा, तब मोक्ष होगा। और कोई स्थिरवादी ऐसा मानैं है जो देव मरै तो देव ही होय। मनुष्य मरै तो मनुष्य ही होय। पशु मरै तो पशु ही होय। नारकी मरै तो नारकी ही उपजै। स्त्री मरै तो स्त्री ही उपजै। रंक मरै तो रंक ही उपजै। राव मरै तो राव ही उपजै। ऐसे अनेक मतवारे जीवतत्त्व का स्वरूप अपनी-अपनी इच्छा प्रमाण बतावैं हैं। और कोई मतवारे अजीवतत्त्व को भी और का और ही कहैं। सो कोई मतवारे, कालद्रव्य जड़ है ताको चैतन्य रूप मानैं हैं। ऐसा कहैं हैं जो यह काल द्रव्य है सो यम है। और कोई बालबुद्धि मेघ अचेतन कूं देवों का नाथ इन्द्र मानैं हैं।

ऐसे इन आदि जीव-अजीव तत्वन का भेद अन्यमतनविषैं और ही कहैं हैं । जैसे उन्मत्त, वस्तु को और की और कहै । तैसे उन्मत्त की नाईं विपरीत भेद कहैं । सो हे भवि, तु सुनि । और एकाग्रचित्तकरि तूं इस संवाद को धारण करि, ज्यों अनेक नयका ज्ञान बढ़ै, संशय मिटै । तातें अब सबका भ्रम नाशने कों जिनमत अनुसार केवलज्ञानधारी सर्वज्ञभगवान भाषे तत्वभेद ताही प्रमाण कहिये है । ताके जाने-सरधान किये सम्यकदर्शन सम्यकज्ञान होय और अनेक धर्मार्थी जीवन का भ्रम जाय । इहां प्रश्न ॥ तुमने ऐसा समुच्चय बचन क्यों न कह्या जो याके सुने सर्व का भ्रम जाय । ऐसा ही क्यों कह्या जो धर्मार्थी जीवन का भ्रम जाय ॥ ताका समाधान ॥ जाका भ्रम जाता जानिये, ताका ही कथन करिये । और जाका भ्रम जाता ही नांही, तौ ताका कथन काहे कों करिये । जैसे सूरज के उदै सर्व संसार का अन्धकार जाय किन्तु जे पर्वतन की भारी गुफा है तिनका अंधकार नांहीं जाय । तौ ऐसा कथन कैसे कहैं, जो गुफान का भी अन्धकार जाय । तातें जाका भ्रम जाता जानिए, ताही का कथन इहां कहा है । तातें जे धर्मात्मा निकटभव्य शान्तिस्वभावी हैं तेतौ पापफल नरकादि दुःख जानि पापमार्ग तैं उदास होय, पापकूं तजैं । और धर्म का फल स्वर्गादिक परंपराय मोक्ष का सुखदाता जानि, धर्म को सेवैं तो याका चित्त जिनदेव की आज्ञारूप होय प्रवर्तें । अरु जिन आज्ञा की प्रतीति भये जीव-अजीव तत्व का निर्णय होय, जाकरि सम्यकदृष्टि होय । ता सम्यक्त्व के होतें इस धर्मार्थी का भरम भी नाश होय जाय है । और जे धर्मार्थी नहीं हैं ते पापबुद्धि तें उदास होते नांहीं । धर्म के फल की इच्छा नाहीं । ऐसे भ्रम बुद्धि का भ्रम कैसे जावे और

ऐसे भ्रमबुद्धि अनेक धर्म के अंगन की सेवा करैं, नाना प्रकार तप करैं। और ये अनेक शास्त्र पढ़ें होंय और भली-भली चर्चा धर्मकथा आदि होय तो भी भ्रम बुद्धि कूं धर्म का लाभ नहीं होय। वह मोक्षमार्ग का भूल्या, उलटेपंथ का जानेहारा, मोक्ष स्थान नहीं पावै। ज्यौं-ज्यौं ए भ्रमबुद्धि घने-घने तपकरै, घने-घने शास्त्रन का पाठ करै, त्यौं-त्यौं मोक्षमार्ग ते घना-घना अन्तर होता जाय। जैसे कोई द्वीपान्तर का जानेहारा पंथी, राह भूल, उलटी राह लागा। ताको जाना तौ था पूर्व दिशा को, अरु मार्ग लागा पश्चिम दिशा को। सो यह मार्ग भूल्या, जेता-जेता रोज चलै है त्यौं-त्यौं पूर्व दिशा तैं दूर-दूर होता जाय है। तैसे ही यह भ्रमबुद्धि ऐसा जानै है जो मैं भले पंथ लागा हूं। ऐसा जानि यह स्वेच्छाचारी, काहू का उपदेश मानता नांही। तातैं इस धर्म भावना रहित कों जिन आज्ञा का उपदेश गुणकारी नांही। इस वास्ते याके भ्रम जाने की नहीं कहैं। ऐसे तेरे प्रश्न का उत्तर जानना॥ जो धर्मार्थी का भ्रम जाय और धर्मभावनारहित मिथ्यात्वप्राणी का भ्रम नांही जाय है। जातैं धर्मार्थी का भ्रम जाय ताके निमित्त जो धर्म धुरंधर, धर्म के धारी, परंपराय सांचे धर्म का प्रकाश वांछन हारे, मिथ्यात्वगिरि कौं वज्र समानि ऐसे सुदृष्टि आचार्य कहै हैं—कैसे हैं आचार्य, जिनेन्द्रदेव की आज्ञाप्रमाण धर्मप्रवृत्ति के करनहारे, भेदज्ञानी, सम्यकदृष्टि, जिनमत के दास, अनेकांत मत के समझने हारे, अनेक नय के ज्ञाता, स्याद्वादी, तत्वन का स्वरूप कहैं हैं। हे एकान्त मत के धारी सुबुद्धि पंडित हो! तुमतें मैं परमार्थ के निमित्त 'जिन' का भाष्या अनेकांत धर्म, ताको रहसि लेय कहूं हूं। जो हे एकान्त मत के धारी, तूं ऐसा मानै है, कि सर्व संसारी जीवन के अनेक

शरीर हैं। तिंन अनेक शरीर में तू एकान्त आत्मा मानै है। तू जो ऐसे कहै है कि एक परमात्मा है ताकी ही शक्ति सर्व जगत विषैं घट-पट, जल-थल, कंकरी-पथरी, पवन-पानी, आदि सर्वव्यापिनी है। ऐसा भ्रम तेरे पाईये है। सो हे भव्यात्मा, तू अब भले प्रकार विचार देखि। जो परमात्मा तौ निर्दोष-निर्मल है और सर्व संसारी जीव राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ रूप मलदोष सहित महामलीन हैं। सो हे सुबुद्धि, निर्मल परमात्मा की शक्ति मलीन, दोष सहित कैसे होय ? और परमात्मा है सो तो महासुखी है। संसारी, सर्व ही राग, दोष, जन्म, मरण, क्षुधा, तृषा, वायु, पित्त, ज्वर, कुष्टादिक दुःख तिन करि रहित, सुख का समूह है। और संसारी जीव सर्व ही हैं सो इष्टवियोग अनिष्ट संयोग के दुःख, तनदुःख, मनदुःख, धनदुःख इत्यादिक अनेक दुःखसागर विषैं डूब रहे हैं सो भी हे भव्य, तू विचारि। जो महासुखी रोगरहित परमात्मा की शक्ति, दुःखमई कैसे संभवै ? परमात्मा तौ सुखी, अविनाशी, निर्दोष, जन्म-मरण रहित है। तातैं परमात्मा की शक्ति होती तौ सर्व जीव भी निरोग, निर्दोष और महासुखी होते। सर्व अविनाशी होते, निर्मल होते, जन्ममरण रहित होते। जैसे अग्नि आप तापमई है तौ ताकी प्रभा जो शक्ति, सो भी तापमई है। तथा जैसे दीपक आप प्रकाशरूप है तो ताकी प्रभा भी प्रकाशमई है। तातैं जैसे वस्तु होय, तैसी ही ताकी शक्ति होइ। सो तो परमात्मा की शक्ति संसारी जीवनिविषैं एक भी नहीं दीखती है। हे भाई तू देखि, जो सर्व जीवनि विषैं परमात्मा की एक सत्ता होती तौ एक जीव कौं सुख होते, सर्व ही जीव सुखी होते। और एक दुखी होता, तो सर्व जीव दुखी होते। एक

जीव का नाश होते सर्व का नाश होता। जो हे भाई, सर्व की एक सत्ता होती तौ एक जीव की जो अवस्था होती, सो सर्व की अवस्था होती। जैसे एक सूर्य की सत्तामई अनेक किरण अनेक घट-पट व पृथ्वी कों प्रकाशमान किये हैं। सो सूर्य और सूर्य की किरणें तिन दोऊन की एक सत्ता है। सो उस सूर्यसत्ता का प्रकाश पृथ्वी विषें जेते घट—पट, कंकर-पत्थर, जल-थल, पवन-पानी, भली-बुरी वस्तु इत्यादिक सर्व पदार्थन को जाय प्रकाशमान किये है—सर्व को प्रकाशै है। सर्व में रविप्रभा एक सी दीखे है। परन्तु जब सूर्य अस्त होय, तब ताके संग ही ताकी शक्ति रूप जो किरण, सो भी अस्त होय। क्योंकि इनकी सत्ता एक है। तातें सूर्य अस्त होतें किरण भी अस्त भई। अरु किरण अस्त होते, सर्व पृथ्वी विषें अंधकार होय है। तैसे ही सर्व जीवनि की सत्ता एक होती तौ सुख-दुःख एकै काल एकसा सर्वजीवनि कूं होता। सो संसार विषैं तो कोई जीव सुखी है, कोई जीव दुःखी है। कोई रंक है कोई राजा है। कोई रोगी है, कोई निरोगी है। कोई दुःख तें रुदन करै है कोई सुख तें प्रफुल्लित है। कोई कैसा दीखै। काहू के गर्मी है। कोई जीव मरि अन्य गति गया है। कोई आय उत्पन्न भया है। ऐसे सांसारीक दशा भिन्न-भिन्न देखिये है। तातें हे एकान्त-मत के धारण हारे भव्य, तूं भले प्रकार विचारि। जो एक सत्ता सर्व जीवनि की कैसे संभवै? और सुनि—जो परमात्मा सर्व जगत विषैं व्यापक होय, शुभाशुभ कर्म जीवन पै करावता, तौ परमात्मा के पुण्य-पाप का बन्ध होता। और तुम कहोगे, परमात्मा के कर्म का बंध होता नाहीं। तौ ए पाप-पुण्य का बंध कौन के भया? तुम कहोगे काहू को भी नहीं भया, तौ

पाप पुण्य का फल वृथा हो गया । अर पाप-पुण्य का फल वृथा भये, पापी जीव तौ पाप बधावेंगे-तजैंगे नांहीं। कहेंगे पाप का फल तो कोई को होता नांही। अरु कोई पुण्य उपजावने को नाना दान, पूजा, तप, संयम काहे को करेगा ? क्योंकि पुण्य का फल तो होता नांही। तातैं ऐसे श्रद्धानतैं तौ पृथ्वी में पाप बहुत फैलि जाय। और शास्त्र उपदेश, देहरे (मंदिर) बनावना, तप, संजम, तीर्थ करना इत्यादिक धर्म के अंग हैं सो ए सर्व मिट जायें। सो या बचन कहने विषें प्रत्यक्ष में बड़ी विपरीतिता प्रगट होय और जे पापाचारी विषयाभिलाषी ते ऐसा कहेंगे जो हमारी शक्ति पाप करने की नाहीं, जो कछु करै है सो परमात्मा करै है। तो पाप की वृद्धि होयगी। और जो तुम कहोगे कि ए पाप-पुण्य का फल संसारी जीवन को ही होय है तौ तुम्हारे परमात्मा की एक सत्ता का क्या माहात्म्य रहा ? तातैं हे भाई, तूं ऐसा भ्रम तजिकै ऐसा दृढ़ करि कि जो जीव पुण्य-पाप करै ताका फल ते ही जीव सुख-दुःख, स्वर्ग नरकादिक भोगवैं हैं। ऐसा श्रद्धान होतैं यह जीव पाप का फल महादुःख जानि पाप तजै और जे जीव दान, पूजा, बड़े-बड़े दुद्धर तप, संयम इन आदिक शुभ कर्म करैं सो ही जीव स्वर्गादिक विषें नाना प्रकार इन्द्रियजन्य सुख भोगवैं हैं। तातैं भो-भो धर्माभिलाषी, तूं ऐसा समझि, "जो करै सो पावै।"

अरु कोई भ्रमबुद्धि कहै सो हमको पाप कर्म का बंध होता नांही। सो इस अज्ञान आत्मा ने अपनी दृष्टि ससा, (खरगोश) की सी करलई है। जैसे ससा कान तैं अपने नेत्र मूंद संतोषी भया, तो क्या भया ? जब यह खेटकी (शिकारी) नहीं मारै तब ही सुखी

होय। जैसे कोई एक शिकारी एक ससा के मारिवे को वनमें गया सो ससा भागा। ताके पीछे शिकारी लागा। सो ससा के बूते भागा नहीं गया तब अपने कानन तें नेत्र मूंदि करि बैठ रहा। याने जानी शिकारी गया, मोकूं अब यहाँ कोई दीखता नहीं। ऐसा विचारि सुखी भया, तौ क्या भया। पीछे तैं आय शिकारी ने ससा के शस्त्र मारया। सो ससा अपनी मूर्खता के जोग मरया। तैसे ही यह एकान्तमती भोरा जीव ऐसा विचारै है। जो ए पाप मोकों नहीं लागै है, ऐसा जानि राजी होय पापभार लेय नरकादिक दुःख को प्राप्त भया चाहै है। सो पापाचारी, परायेधन हरणहारे, पराये मान हरनहारे, अपनी महत्त्वता बताय औरन कूं छलि, अपने उपायन तैं ताका मान खंड करि, अपने महत्त्व भाव का किंचित चमत्कार औरन कूं बताय कै, अपनी बुद्धि की चतुरता करि माया जो दगाबाजी ताको विचारि, भोरे जीवन का मान हरि, धन हरि, वहकाय, कुपंथ लगाय, आपको धर्मी जानि ऐसा मानते भये जो हमको पाप नहीं लागै। ऐसे विचारि पापबंध करि परभव कुगति के पात्र भये। तातैं भो भव्य, तू ऐसा जानि। ज्यौं संसार विषैं जीव अनन्त है तिनकी सत्ता भी भिन्न-भिन्न अनन्त है। अपने-अपने परिणामन का उपार्जित पापपुण्य फल भोगवैं हैं। जो करै हैं सो ही भोगवैं हैं, ऐसा तू जानि। और पापात्मा पाप तौ आप करै और फल औरन को लगावै। तथा पाप लागै ही नांहीं, ऐसा मानै। ऐसे जीव हैं तिनका मनोरथ ऐसा है जो पाप नहीं तजिये। ऐसे दुरात्मा पापारम्भी को कुगतिगामी जानहु। और जे धर्मी हैं ते पुण्य-पाप का फल आपको लागता जानि, पापतैं भयखाय, पाप तजि, शुभ उपजावैं हैं। तातैं भो भव्य; जो ऐसे नहीं होती

तौ बड़े-बड़े पंडित पुरुष; दान, पूजा, तप, संजम, तीर्थ काहे कों करते । तातैं हे भव्य, तूं ऐसा
जानि, जो करै है सो ही पावै है । और जगत में भी ऐसा ही सर्वजन कहैं है "जो करैगा सो
भोगैगा ।" तातैं जाका किया कर्म ताही कूं लागै है । अरु जब ये आत्मा पाप-पुण्य तैं रहित
होय है, तब परमात्मा होय है । ताही कौं परब्रह्म कहिये, ताही कों भगवान कहिये । ऐसा
दृढ़ जानि दयाभाव सहित प्रवर्तना योग्य है । और जगत जीव अनन्त हैं । तिनकी सत्ता
जुदी-जुदी हैं । अपने परिणामन के फल करि सुखी-दुखी होय हैं और जाके आप्त, आगम, पदार्थन
विषैं सर्व जीवन की एक ही सत्ता मानैं हैं सो असत्य है, तजने योग्य है । ऐसे सर्व जगतविषैं
एक सत्ता सर्व जीवन की माननहारे ताकों समझाय, अतत्व श्रद्धान मिटाय, जिनभाषित तत्व
का श्रद्धान कराया । सत्यधर्म के सन्मुख किया । इति सर्व जीवन की एक सत्ता माननेहारे एकां-
तवादी का भ्रम निवारण सम्पूर्ण ॥ १ ॥

आगे क्षणिकमती का संबोधन कहिये है—केई क्षणिकमतवारे आत्मा को क्षणभंगुर, समय-
समय एक शरीर विषैं अनेक आत्मा क्षण-क्षण और २ उपजते मानैं हैं । ताकों समझाइये
है । भो अध्यात्मा, क्षणिकवादी मत के धरनहारे, तू आत्मा को क्षणिकस्थाई मानै है । एक
शरीर विषैं क्षण-क्षण और २ आत्मा आवते मानै है । सो हमको यह बड़ा आश्चर्य है । तुम
सरीखे बुद्धिवान ऐसे भूलो तो भोरे जीवन कों कहा कहिये ? हे विचक्षण, तू ही विचार । वर्ष-
दो वर्ष पहिले की कोई दस-पाँच बात तोकों याद हैं, या नाहीं ? तथा पहर दोय पहर की कोई
बात तोकों याद है, कि नाहीं ? जो तोकों याद होय, तो तूही विचार कि आत्मा क्षणभंगुर नाहीं।

तथा एक-दो वर्ष पहिले तूने काहू कों दस-पांच हजार रुपया कर्ज दिये थे। सो तोकों याद है, कि नाहीं। तूने ताके पास तैं खत मंडाया था। तापै दस-पांच भले मनुष्यों की गवाह कराई थी। सो तोकों यह बात याद है, कि नाहीं ? तू कहैगा यादि है। तो तेरे मत के आप्त, आगम, पदार्थ झूठे होंयगे। और जो तू कहेगा कि मेरे आप्त, आगम, पदार्थ झूठे नाहीं, सत्य हैं, आत्मा क्षणभंगुर है। तो तेरे खत-पत्र दोय वर्ष पहिले के हैं, सो झूठे होय हैं। तोकूं कर्ज के दाम नाहीं मिलेंगे। क्योंकि आत्मा तो क्षणभंगुर है। सो एक शरीर में क्षण-क्षण और-और आवै है। सो कर्ज देनेवाला और कर्ज लेनेवाला कोई रह्या नाहीं। आत्मा नवीन आया। सो लेन-देन की तिन्हें ठीक नहीं। तेरे रुपया गये। अरु गवाह वारे भी सर्व क्षणभंगुर सो भी गये। उनके तन विषैं अन्य २ आत्मा आया सो उनको गवाह की ठीक नाहीं। तातैं गवाह भी झूठी भई। खत मांड्या था, सो भी झूठा भया। रुपया गये। और तू कहैगा रुपया कैसे जांयगे ? भले आदमिन की तौ गवाह है। अरु मोकों भी भलेप्रकार मितीवार याद है। और इनके दोय हजार आये हैं सो मैंने जमा किये हैं। सो मोकों याद है। मेरे कर्ज में संदेह नाहीं। यामैं संदेह कहा है ? तो हे भाई, तेरे मत की तूही विचार। देख, तेरा मत तेरे ही श्रद्धान करि झूठा भया। तो और विवेकी, पर भव के सुख निमित्त, तेरा क्षणभंगुर मत कैसे अंगीकार करैगा ? अरु एक और भी सुन। हे भाई, तेरा क्षणिक मत कोई हमारे ही आगम करि नाहीं निषेध किया, किन्तु और भी संसार विषैं जेते तुच्छबुद्धि बालगोपाल हैं तिनकर भी निषेधिये है। देखि, तू किसी बालक से कहै कि हे पुत्र, तोकूं कोई दस-बीस दिन की बात यादि है।

तौ बालक भी कहै मोकों तौ महीना-दो महीना की केई बात यादि हैं । तब बालक कौं कहिए । भाई, आत्मा तौ चणभंगुर है सो शरीर में छिन-छिन में आवै है तौ तोकों पहिले की बात कहां से यादि होयगी ? तौ बालक भी कहै, या बात झूठ है । मोकूं कहो तो दस-बीस बात, पांच-चार महीना की बताऊँ, तो हमको सांचे कहौ । जो कोई आत्मा चणभंगुर बतावै है, सो झूठ है । बालक भी ऐसा कहै है। सो हे भाई तूं सुनि । देखि, बालक अज्ञानी भोरा हैं, वह भी तेरा चणिक मत झूठा कहै है । तौ विवेकी कैसे सत्यमानि सरधान करै ? और सुन कोई भोरा अज्ञानी, पशुओं का चरावनहारा गुवाल, कोई चणिक मती के ढोर चरावै था सो ढोर के धनी पास जाय कही । तुमारे ढोर चरावतैं चारि महीना भये, सो अब मेरी चढ़ी गुवाली देऊ । तब ताकूं ता चणिकमती ने कही । हे गुवाल, आत्मा तो छिनभंगुर है, शरीर में आत्मा छिन-छिन और आवै है । सो दोय महीना पहले कौन आत्मा था, तानैं गुवाली देनी कही थी, सो आत्मा अब नाहीं, अरु गुवाल भी वह नाहीं । तब ऐसी सुनिकैं गुवाल ने कही । भो सेठ, ऐसे बड़े आदमी होयकैं ऐसी महाझूठी-वृथा बात काहे कौं कहो हो । अब ताईं शरीरविषैं आत्मा छिन-छिन उपजते-मरते सुने नांहीं । कोई हजारौं बात तौ बीस-बीस बरस की देखी मोकों यादि है । और केई बात हमारे बड़ों के मुखतैं सुनी थी सो सौ-सौ बरस की, सो भी केतीक यादि हैं । परंतु ऐसी तुमारी सी झूठ अब ताईं नहीं सुनी । मेरी गुवाली देवो । तब या सेठ ने नहीं दई । तब गुवाल ने अपने मनमें विचारि, मतौ (सलाह) करिके, वाके ढोर अपने घर बांधि राखे । दोय दिन भये जब ढोर नाहीं आए । तब गुवाल

कौं बुलाय सेठ ने कही । रे गुवाल, दोय दिन भये सो हमारी भैंसि-गइयां नहीं आईं सो क्यों ? तब या गुवाल ने कही । सेठ साहिब, गैया तौ कैसी, अरु भैंसि कैसी ? मोकों कछू ठीक नाहीं । आत्मा, शरीर में छिन-छिन और आवै है सो अगले तो गये और मैं तो अब आया हौं । सो मोकों किसी के ढोरन की ठीक खबर नाहीं । तब या सेठ ने कही । रे गँवार, हमतैं चौट्टाई (धूर्तता) करि झूठ बोलै है । तब या सेठ ने कुतवाल कूं कहि, गुवाल कूं रुकाया । तब गुवाल ने कही मोकों काहे कों रोक्या है ? तब कुतवाल ने कही, सेठ के ढोर ल्याव । तब गुवाल ने कही, मेरो न्याय करौ । तब कुतवाल ने कही, न्याय काहे का है ? गुवाल ने कही, सेठ कूं पूछौ । तब कुतवाल ने सेठ कूं बुलवाया । अरु कही, गुवाल कूं क्यों रुकाया है ? तब सेठ ने कही, आजि दोय बरस तें हमारे ढोर चरावै है । सो अब दोय दिनतें, ढोर चुराय राखे हैं । तब कुतवाल कूं गुवाल ने कही । भो कुतवाल, याके मत विषैं एक शरीर में आत्मा छिन-छिन और-और आवता मानै है । मैंने यापै गुवाली मांगी, तब याने कही गुवाली काहे की । वह आत्मा लैने-दैने वाला नाहीं । तब मैंने याकै ढोर बांधि राखे । यह सेठ अपना मत झूंठा कहि, मेरी गुवाली मोकूं देय, अपने ढोर लेवे । तब कुतवाल ने हजारों ही आदमीन मैं सेठ को झूठा कह्या । गुवाल की गुवाली दिवाई, ढोर धनी को दिवाये । सो हे भ्रात, क्षणिकवाद मत धरनहारे, तेरे मतकौं गँवार अज्ञान ढोरन का चरावनहारा गुवाल भी झूंठा कहै है । सो तूं देखि, यह बाल-गोपाल संसार में सबतें हीन अज्ञानी हैं, सो भी तेरा मति असत्य कहैं हैं । तौ भो भ्रात क्षणिक मतवारे, जो विवेकी होंय, सो कैसे सत्य कहैं ? तातैं जाके

मत विषैं आत्मा क्षणभंगुर कह्या होय ताके आप्त, आगम, पदारथ असत्य हैं। ऐसे याका क्षणिकमत प्रत्यक्ष असत्य बताय स्याद्वाद मत के सनमुख किया। इति क्षणिक मती सम्बोधन। आगे कर्त्ता वादी कौं सम्बोधन का संवाद लिखिये है—

केई मतवारे, नवीन आत्मा उपजावनहारा मानैं हैं। ऐसा कहैं हैं जो कोई नवीन आत्मा बनाय-बनाय पृथिवी पै धरता जाय है, ऐसा कोई एक भगवान है। और याही भगवान की जब इच्छा होय तब आत्मा कों हरै है। जो उपजावै है सो ही मारै है। जो ऐसा कहै हैं ताकों कहिये है। हे भाई, आत्मा कोई का बनाया बनता व उपजाया उपजता, तौ लौकीक में संतान की उत्पत्ति के निमित्त विवाहादि काहे कौं करते? जो कोई पुरुष नवीन आत्मा बनावै था ताही को सेवा करते। जब वह आत्मा का पैदा करनहारा राजी होता, तब सौ-पचास तथा लाख-दो लाख तथा चोहणी बंध आत्मा कर देता। जैसी जाकी सेवा देखता, तैसे आत्मा बनाय देता। तौ लोक, चाकर-फौज काहैं कौं राखते? अरु विवाहादिक करिकै कुटुंबादिक की बृद्धि काहे कौं करते? सो ऐसी प्रवृत्ति अनादिकाल तैं कोई सुनी नांही। कि काऊ ने कोई कैं दस-बीस आत्मा बनाय दए। अरु अब कोई बनावनेवारा जगत में दीखता नाहीं। कि वह फलाना तथा कोई देव-दानव नवीन जीव बनावै है। और कदाचित् तेरे ऐसा ही हठ होय जो, कोई जीव का करता है तौ हम तोकों पूछैं हैं। कि उस करता ने जब पहले कोई ही जीव नहीं बनाये थे। तब संसार-सृष्टि थी या नाहीं? या वह कर्ता अकेला ही था? और कहौ कि उस करता ने पहले कौनसा जीव बनाया था, ताके पीछे कौनसा बनाया। और

जब नई वस्तु बनाइए है सोइ काहू की नकल बनाइए है । सो प्रथम कोई वस्तु होय तौं बनावै । जैसे कोई सिंह का आकार बनावै है । तौ प्रथम कोऊ सिंह होय तो ताकौ देखि, ताकी नकल का सिंह बनावै है । बिना नकल नवीन वस्तु होती नांहीं । सो करता ने जीव किया, सो कौन की नकल बनाया ? और आत्मा, बनाया होय है तौ वह परब्रह्म-आत्मा कूं किसने बनाया, सो कहौ ? करता का करता बताओ ? और तुम कहोगे जो सृष्टि तौ अनादि की है और करता भी अनादि का है । तो हे भाई, जहाँ अनादि सृष्टि होय, तहाँ नवीन कर्ता का अभाव आया । संसार स्वयंसिद्ध अनादि-निधन है । अनादि काल का है । अरु तुम स्वयंसिद्ध आत्मा कौं मानते नांहीं । आत्मा नया होता-उपजता मानौ हौ । सो कै तौ कोई करता बताओ जाने सृष्टि करी है, तथा सृष्टि जब इस करता नै नहीं बनाई थी तब कछु था । कै नांही था ? अरु तुम कहोगे पहले कछू नहीं था, करता ने बनाई तब भई है । तौ पहलै शून्यता आवैगी । जो कर्ता बिना भी संसार रह्या था तौ ऐसे कहने में तुमारे कर्ता का अभाव हो गया । तातैं भो विवेकी, तुम एक बचन की ठीकता करके कहो । तब करतावादी ने विचारी । जो करता कहैं, तौ संसार का अरु करता इन दोऊ का ही अंत आवे । तब करतावादी बोल्या जो करता भी अनादि, अरु सृष्टि भी अनादि है । तब स्याद्वादी ने कही जो सृष्टि अनादि है तौ करता की महंतता कहाँ रही । करता कहना शब्द वृथा भया । अरु हे भ्रात, और भी देखो । जो तुम कहौ हौ कि करता प्रथम तो बनावै है अरु पीछे करता ही चाहै तब मारै है । तौ या विषैं कुछ गंभीरता नाहीं । जो प्रथम तो बनावै पीछै वाकौं आप ही बिगाड़ै ।

तो बालक कीसी लीला भई । जैसे बालक प्रथम तो नाना प्रकार रचना, खेल में बनावै, पीछे बिगाड़ै । तातैं भो भवि, प्रथम तो बनावै पीछे बिगाड़ै, ताको बालक समानि कौतुकी-अज्ञानी जानना । तथा संसार में कोई एक जीव मारै, ताकौं दोष लगावें हैं । सो कोई अनंते जीव मारै, तौ ताकों तौ बड़ा ही दोष होय । तथा जाकौं आप पैदा करे, सो पुत्र समानि हैं, अरु ताहीं कूं मारें तौ पुत्र मारे सा दोष लागै । तातैं करता कौं हरतापना संभवै नाहीं । अरु तुम कहोगे करता हरै, ताकों दोष नांहीं । सो तुम देखो कोई को मारै हैं तब प्रथम तो क्रोध-अग्नि उपजै है तब अन्य (दूसरे) का घात करै है । बिना कषाय पर की घात होती नांहीं । तातैं जाके कषाय होय सो संसारी, तनका धारी जगत जीव जानना । ता बिषैं नवीन जीव उपजावने की शक्ति होती नाहीं । तातें हे भाई, घनी (बहुत) कहाँ ताईं कहिए । अनेक नयों से करतापने का बचन खंडित होय है । तातैं भो धर्मार्थी, ऐसा सरधान तजना ही योग्य है । अब तूं देखि, जो यह संसार अनादि-निधन है, कोई का किया नाहीं । इस संसार विषैं अनंतै जीव हैं । सोभी अनादि निधन हैं, काहू के किए नांहीं । अनंते जीव द्रव्य, अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न सत्ता कों लिए अपने-अपने गुण-पर्याय सहित अनादि काल से, चार गतिनि विषैं, सुख-दुख कों भोगवैं हैं । जैसी-जैसी अपनी-अपनी परणति, उसके अनुसार पुण्य-पाप के फल को भोगता, पुनि पुण्य-पाप उपार्जता, जगत में भ्रमण करै हैं । ताही का फल सुरग-नरकादिक के सुख-दुख कौं पावै है । अरु जब यह आत्मा पुण्य-पाप के उपजावनै रहित होय है । तब वीतराग दशा कों धारेगा । तब ही सर्व कर्म नासिकै, परमात्मा-सिद्ध पद कौं

धारैगा । तब यह सिद्ध भगवान, ज्योतिस्वरूप, स्वयंसिद्ध, जगतनाथ काहूका करता होता नांहीं । अरु जेते करता-हरता हैं, तेते भगवान नांहीं । और सिद्ध भये, करता नाहीं । तातैं जो नवीन आत्मा कोई उपजावे है ऐसा सरधान जाके मत मैं होय, ताके आप्त आगम, पदारथ असत्य हैं । ऐसे नवीन जीव का करता कोई है ऐसा मानै था सो ताका सरधान मिटाय शुद्ध सरधान कराया । आत्मा स्वयंसिद्ध है काहू का किया होता नहीं ऐसा दृढ़ कराय, जिन भाषत सरधान कराया । इति करतावादी को समझाय शुद्ध कीया ।

आगे केई नास्तिकमतनि का संवाद लिखिए हैं । केई मतवारे जीव कौं नास्ति ही मानै हैं । ऐसा कहै हैं जो, जीव वस्तु है ही नाहीं । वह जीव का अभाव मानैं हैं । ते नास्तिमती यह भी कहैं हैं । जो जीव होय तो दया करिए । तातैं जीव नांही, तो जीव के अभाव तैं दया का भी अभाव है । अरु दया के अभाव तैं पुन्य-पाप का भी अभाव है । जो जीव ही नाहीं, तो पुन्य-पाप का फल कौन भोगवै ? तातैं पुन्य-पाप भी नांहीं और पुन्य-पाप के फल अभाव तैं परलोक का भी अभाव है । जो परलोक ही, नाहीं तो पुन्य-पाप का फल स्वर्ग-नर्कादिक की गति कहाँ तैं होय ? तातैं जीव नांहीं, पुन्य-पाप नाहीं, नरक-सुरगादि गतिभी नाहीं । संसार भी नांहीं । ऐसा नास्तिमती का मत है । सो ता नास्तिमती तैं कहिए है । भो नास्तिकमती, जो तू जीव नहीं है । सो यह तो विचार तूं जो ए प्रश्न-उत्तर करैं है सो कौन है ? और यह तूं ऐसे ज्ञान का जानने हारा कौन है ? जाके ऐसा ज्ञान तैं विचार होय है । सो तूं इसे निश्चय आत्मा जानि । आत्मा बिना, संदेह काहू के होता नांहीं । आत्मा ही कैं विकल्प उपजैं हैं । ऐसा तूं

सत्य करि जानि। यह शरीर है सो तो जड़ है, मूरतीक है। याविषैं देखने-जानने की शक्ति नांहीं। या तन कें विकल्प होता नांहीं। तातें यह पूछने हारा, संदेह करनेहारा, हठका करनहारा, खाटे-मीटेका स्वाद जाननेहारा, अच्छी-बुरी धारि रागदोष करनेहारा, क्रोध मान माया लोभ का करनेहारा कोई है। ताही कूं तूं आत्मा जानि। और लौकीक विषैं भी जीव ऐसा कहैं हैं, जो फलानां मूवा है, सो फलानी जगह भूत भया है। तथा केई कहै हैं जो हमारा फलाना बड़ा बुड्ढा, आगे मूवा था सो अब आय, हमारे पास पूजा मांगै है। तथा केतेक लोक ऐसा कहै हैं, जो फलाना भूत भया था सो आज फलाने कौं लागा है। ऐसी जगतविषैं प्रसिद्धि सब कोई कहै हैं। और हे नास्तिमती, अवार तोकूं भी कहीए। जो मसान भूमि विषैं तुम रात्रि कौं रहौ, तौ तू भी या कहै के जो मसांन विषैं बहुत भूत-प्रेत हैं। हम ऐसी भयानीक जगह मैं नहीं जांय, ऐसा तूभी कहै। और लोक भी या कहैं हैं। तातैं हे नास्तिमती भ्रात, तूं विचारि। जो कोई जीव है तभी तो भूत भया है। और कोई परलोक है तभी तौ व्यंतर देव भया है। तातें हे नास्ति बुधी, तूं ऐसा जानि। कि जीव है, अरु परलोक भी है और पाप के फलतैं जीव नरक-पशू के दुख पावै है। और मनुष्य ही होय तो अंधा, लूला, बहरा, दरिद्री, अभिमानी, रोगी, दीन, वस्त्र रहित होय। और पुन्य के फल तैं देव होय। अरु मनुष्य होय तौ सर्व दुख रहित सुखी होय। तातें विवेकी हैं सो पाप नहीं करैं हैं। और बड़े बुधिवान शुभकार्य करैं हैं। और एक अज्ञानी है सो भी कहै है। जो कोई हमारी दया लेयकैं हमारी आत्मा जो अन्नपट बिना दुखी है सो देय पोखै। हमारी दया करि रोटी वस्तर देय हमारी आत्मा पोख सुखी

करै, ताकौं बड़ा पुरुय होय। ऐसे रंक भी कहै है। तातें हे भव्यात्मा, देखि। जीव भी है, जीव की दया भी है। पाप भी है, पाप का फल नरकादिक दुःख भी है। पुन्य भी है, पुन्य का फल स्वर्गादिक भी है। ऐसा जानिकैं अनेक मतन के धर्मात्मा हैं सो पाप का निषेध करें हैं। अरु पुन्य करना उपादेय बतावें हैं। पाप-पुन्य फल के स्थान, अनादि संसारीक देवादिक चारि गति रचना सहित षट्द्रव्यनि करि बनी जो जगत रचना, सो यह चारि गति रचना भी अनादि की है। तातें हे नास्तिबुधी देख। संसार भी है, अरु सर्वकर्मनाश करनहारा भी है। सर्व दुख तें रहित सुख समूह अतिन्द्रिय भोग का स्वादी अनंतबली ज्योतिस्वरूप परब्रह्म भगवानपद का धारी सदैव मोक्षरूप है, तातें मोक्ष भी है। हे नास्तिकमती, तेरा नास्तिमत सर्वमतन तें खंड्या जाय है। तेरे नास्तिकमत का सरधान होतें सर्वमत, देहरे (मंदिर) दान, पूजा, भगवान की भक्ति, जप, तप, संयम, शीलादिक, भले जगत के पूज्य गुण, तिन सर्वका अभाव होय। तातें कोई मततें मिलता नाहीं। सर्व मतन के शास्त्रन के अभिप्राय तें, अरु लौकीक प्रवृत्तितें नास्ति मतझूठा भया। जो लोक में तौ दान-पूजादि गुण पूज्य दीखें। तातें नास्तिमत अनेक भाव विचारतें असत्य है। तातें जाके मत विषें आत्मा नास्ति कह्या होय। ताके आप्त आगम, पदार्थ, अतिहेय हैं। ऐसे नास्ति मती का श्रद्धान मिटाय, स्याद्वाद मतके सनमुख किया॥ इति नास्तिमती संवाद विजय कथन॥ ४॥ आगे अवतारवादी एकांतमती का संवाद लिखिए है॥

आगे कई इक अवतारवादी मोक्ष गये आत्मा का पीछा अवतार मानें हैं।

ताकौं कहिए है । भो मोक्षजीवन कूं अवतार माननै-हारे भव्य आत्मा, तू सुनि । चांवल जामैं निकसैं ऐसा धान ताकौं उगावै तौ उगै है । और जब धानकौं कूटि, ताके छिलका दूरिकरि, शुद्ध चांवल भए पीछे उनको उनके ही भुसमैं धरि उगईए, तौ ऊगतै नाहीं । तैसे ही इस संसारी अशुद्ध आत्मा कौं कर्मरूपी छिलका लगा है, तेतेकाल तौ चारि गति शरीरन मैं उपजि, शुभाशुभ फल कौं भोगवता उपजै है । और जब नाना प्रकार चारित्र सहित तपकरि अष्ट कर्म नाशतें, कर्म रहित शुद्धात्मा होय सिद्धलोक विषैं विराजे हैं । तब पीछे संसारीक शरीर कबहूँ नहीं धारै हैं । और जे आत्मा अवतार धारें हैं सो संसारी हैं । शुद्धात्मा नाहीं । और शुद्ध है ताके अवतार नाहीं है । और कोई कहै जो भगवान तौ शुद्ध ही है परंतु जब कोई देव, दानव, राक्षस, भगवान की प्रजाको पीड़ा करै है । तब वह ज्योतीस्वरूप परमात्मा भगवान, प्रजा की रक्षा करवे कों, राक्षसनि के मारिवैकौं, अवतार लेय है । और भांति शुद्धात्मा अवतार नाहीं लेय है । ताकों कहीए है । हे भाई, तैंने कही सो तेरे कहने करि और दोष प्रगट भया । तूनैं कही जो भगवान की प्रजाकौं राक्षस, देव, दानव, पीड़ा उपजावै हैं तिन राक्षसादि मारवेकौं अरु प्रजा की रक्षा निमित्त भगवान अवतार लेय हैं । सो प्रजा तैं तो रागभाव आया । और राक्षसादिक तैं द्वेष भाव आया । तातैं हे भाई, जाकैं राग-द्वेष होय, सो भगवान नाहीं । और भगवान कैं रागद्वेष नाहीं । परकौं मारै सो क्रोधी होय है । सो क्रोधी जीव जगनिंदा पावै है । तातैं क्रोधी होय सो संसारी है, भगवान नांहीं । तातैं धर्मार्थी तूं ऐसा जानि । जाकै काम, क्रोध, राग, द्वेष, मान, मत्सर, छल, जन्म,

मरण होय सो भगवान नाहीं ऐसा जानना । देखि, गर्भवास मेटवे के निमित्त नाना प्रकार के दुर्धर तप कर बाईस परीसहन के महासंकट सहकैं वीतराग भाव धरिकैं महा कठिनतैं कर्मनाशिकरि मोक्षभए तनबंदीखाने तैं छूटै । और गरभवास के महादुखनतैं बचै । अब फेरि गर्भवास के विकट दुखन में कैसे जाय ? कबहूँ भी नहीं जाय । जैसे कोऊ भले आदमी कौं दोष लगाय कुतवाल ने पकरि कैं तहखाने में मूंधा । तहाँ मलमूत्र करना, तुच्छ अन्न जल देना, सो वह महामरण समानि दुख सहता व्याकुल भया । रोज के रोज नाना प्रकार दुख भोगना । औरन के दुर्वचन सहना । ऐसे महा दुख सदैव देखि व्याकुल होय इस भले आदमी ने विचारी, वंदी खाने में दुख भोगतैं दीर्घकाल भया सो कैसे छूटिये? तब यानै कोई बीचवाले की बड़ी स्तुतिकरी । अरु कही मैं इहां महादुखी हौं सो यह कुतवाल माँगै सो दैहों । मोकों छोड़ो, मैं महा दुखी हौं । तब बीचिवारैने याकी दया करि कुतवाल कूं बड़ा धन देना कराय यह छुड़ाया । वांछित धनदेय बीचिवारे की बड़ी स्तुति करि उपकार मानि छूटा । कठिन तैं अपनै घर आया । कुटुम्बी जनतैं मिल महा सुखी भया । अब कोई उस भले आदमी कौं फेरि कहै तुम इस कुतवाल के तहखाने में चालौ, तौ वो कैसे आवै ? कबहूँ नहीं आवे । तैसे ही तनबंदीखाने तैं महादुख भोगतैं कोई पुन्यतैं छूटनै का उपाय गुरुनि का निमित्त पाय जान्या । सो राज संपदा तजि चारित्र अंगीकार करि नाना तपकरि कर्म बंधन का क्षय करि सिद्धलोक कौं प्राप्तभए निरबंध महासुखी भए । सो अब जगत-पूज्यपद पाय वह केवल ज्ञान का धारी परमात्मा भगवान इस दुर्गन्ध स्थान सतधात मई गरभस्थान में कैसे आवै ?

कवहूँ भी नहीं आवे। तातैं भो भव्य, अब सुनि। जाके मत में मोक्ष तैं पीछा अवतार होता होय ताके आप्त, आगम, पदारथ हेय हैं। इति अवतारवादी का संवाद कथन ॥

आगे अज्ञानवादी का संवाद लिखिये है। अब केई मतवारे मोक्ष आत्मा कौं ज्ञान रहित माने हैं। ऐसा कहैं हैं, जो आत्मा विषैं पर पदारथ के जानने का जेता ज्ञान है सो ही उपाधि है। जब परके जानने के ज्ञान का अभाव होयगा तब मोक्ष होयगी। ऐसा मानैं हैं। ताकौ कहिए है। भो मोक्ष आत्मा को ज्ञानरहित मानने हारे, तू आत्मा कौं मोक्षविषैं ज्ञान रहित मानैं हैं। जो पर पदारथ के जानने का आत्मा विषैं ज्ञान है। सो तो आत्मा का स्वभाव है। और ज्ञान स्वभाव का नाश भए आत्मा का अभाव होय है। जैसे अगनि विषैं तताई (गर्मी) का गुण है सो तहाँ तताई का अभाव भये अगनि का भी नाश होय। तथा दीपक का गुण प्रकाश है सो प्रकाश का नाश भये दीपक का भी अभाव होय। तातैं हे भव्य परपदारथ के जानने का ज्ञान है सो आत्मा का स्वभाव है। सोई ज्ञान के अभावतैं आत्मा का अभाव होय है। सो आत्मद्रव्य का अभाव कबहू होता नांहीं। तातैं भो भव्यात्मा, तूं सुनि। आत्मा परपदारथ कौं जानैं है; सो परपदारथ के जाननें विषैं कछू दोष नाहीं। दोष तो राग-द्वेष विषैं है। सो राग-द्वेषकरि परपदारथकौं देखना, सो आत्मा की अशुद्धता है। और भो अज्ञानवादी, तूं मोक्षभए पीछे, आत्मा कौं ज्ञान रहित मानेगा तौ भगवान कैं सर्वज्ञपने का अभाव होयगा। तब भगवान कूं अंतरयामीपने का पद नहीं बनैगा और तब अंतरयामीपना नहीं भए भगवान कूं अज्ञानता आवैगी। अज्ञानता आए अज्ञान कौं जगतनाथपना नहीं

संभवै है। तातैं हे अज्ञानवादी, सुख है सो परपदारथ के जानने का ही है। सो जानपना ज्ञानतैं होय है। तातैं ज्ञान विना सुख नाहीं। सुखविना दुखी रहै। सो मोक्षजीवकौं दुखीपना संभवता नांहीं। तातैं अनंत सुखका धनी भगवान है। सो केवलज्ञान ही सुखका कारण जानना। सो तूं देखि, लौकीक विषैं भी जानैं थोरे पदारथ देखे-जानैं होंय, ताकैं ज्ञान भी थोरा होतैं, सुख भी थोरा होय। विशेषज्ञानी कूं विशेष सुख होय है। जैसे कोई पुरुष अनेक देशन का फिरनहारा होय, अनेक राजसभा का बैठनेहारा होय अनेक मनुष्यन तैं बात करनहारा होय, अनेक तरह के नृत्य-गीतादिक का देखने हारा होय, अनेकजाति के लौकीक चरित्र देखनेहारा होय, अनेक शास्त्रनि का देखने-जानने हारा होय, ताकैं ज्ञान विशेष होय। जाने एते स्थान नहीं देखे, ताके ज्ञान भी अलप होय। सो सुख है, सो ज्ञान के आश्रय है। सो जाके ज्ञान बहुत, सो बहुत सुखी और जाके अलपज्ञान, ताकैं सुख भीं थोरा होय। तथा कोई स्थान विषैं नृत्यगीत अनेक कौतुक होंय हैं। सो जाकौं दीखता नाहीं ताकैं तिनका सुख भी नाहीं। जाकूं अलप दीखै है तिनको अलप सुख है। और कोई पुरुष उतंग (ऊँचे) स्थान पै नजदीक बैठा, ताकौं सर्व दीखै है। सो सर्व सुखी है ऐसा जानना। तथा जैसे काहू सेठ का मंदिर है सो नाना प्रकार की महिमा को लिए है। कहीं तो अनेक रतन जड़ित शोभा है, कहीं अनेक प्रकार चित्राम है, कहीं मनोज्ञ महलन सहित बाग हैं। कहीं फुहारे अनेक छूटैं हैं। कहीं नृत्य है, कहीं गान होय है। कहीं अनेक प्रकार की बिछायत बिछी हैं, कहीं महा सुंदर नरनारी अनेक वादित्र बजाय क्रीड़ा करैं

हैं, इत्यादि अनेक शोभा सहित मंदिर है । तहाँ केई परदेशी अनेक पुरुष, इस मंदिर की शोभा देखने कूं गये । सो किसी ने एक स्थान देख्या, किसीनैं दोय किसीनैं चारि किसीनैं दस और किसी ने सर्व स्थान देखे । सो अब देखि, जानैं जैसा स्थान देख्या, याके जानपने में आया तैसा ही सुख भया । जानैं सर्वस्थान देखे ताकैं सर्व सुख भया । तैसे ही यह तीन लोकमंदिर में अनेक रचना पाईए है । तामें अनंते जीव परदेशी तमाशगीर आए हैं । तिन जीवन कूं लोकविषैं जेता-जेता पर पदार्थन का जानिपना होय । ता जीवकों तैसा ही सुख होय है । और श्रुतज्ञान के अंश भी अनेक हैं । सो कोई जीव श्रुतज्ञान थोरा पढ्या है, ताकैं सुख थोरा है । और जो अंग-पूर्व विशेष पढ़े हैं, तिनकैं बड़ा सुख है । और अवधिज्ञानी अपने ज्ञानतैं लाखों योजन प्रमाण क्षेत्र कों, अवधिज्ञानतैं जानैं, सो विशेष सुखी है । ये ज्ञान एक स्थान पै तिष्ठता दूरवर्ती पदारथन कौं जानैं, ताके सुख विशेष ही होय । और मनः पर्ययज्ञानतैं परके मन-विकल्प जो होंय तिन सबन कौं जानैं । ताकैं और भी विशेष सुख होय । और इनतैं अनंतगुणा सर्व लोकालोक के घट-घट की जानैं सो केवलज्ञानी महासुखी हैं । तातैं भो अज्ञानवादी, तूं ऐसा जानि । जो परपदार्थन के जानने का ज्ञान है सोही सुखका कारण है । परन्तु इतना विशेष है कि जो संसारी जीव परपदार्थन कौं जानै हैं । सो तो राग-द्वेष सहित जानैं हैं । ताकरि कर्मबंध का करता होय है । और जे वीतरागी कर्मनाशक सर्वज्ञकेवली स्वपर पदार्थन कूं जानै हैं । सो राग-द्वेष रहित जानैं हैं । सो इन भगवान के रागद्वेष अभावतैं कर्मबंध नहीं होय है । तातें परपदार्थन का ज्ञान रागद्वेष सहित तो संसार का कारण है । सोतो

आत्मा कूं दुखदाई है। और रागद्वेष रहित परपदार्थन का जानपने रूप ज्ञान है सो सुखदाई है। तातें हे भ्रात अज्ञानवादी, तू ऐसा दृढ़ सरधान करि, कि जो ज्ञान है सो आत्मा का गुण है। ज्ञान बिना जीव नाहीं। जीवबिना ज्ञान नाहीं। ज्ञान अरु जीव इन विषैं गुणगुणीपना है। सो गुणी के नाश तैं गुण का नाश होय, गुण के नाश तैं गुणी का नाश होय। तातैं गुण गुणी का नाम भेद है। सत्ता भेद नाहीं। जैसें लवण में अरु क्षार गुण में नाम भेद है, सत्ता भेद नाहीं। लवण है सो तौ गुणी है अरु क्षारपणा लवण का गुण है। गुण है सो गुणी के आश्रय है। जैसे क्षार गुण है सो लवण के आश्रय है। ऐसे ही आत्मा में अरु ज्ञान में गुणगुणीपना जानना। आत्मा तौ गुणी है अरु ज्ञान गुण है। जाकरि गुणी कों जानैं सो गुण कहिये। तैसें आत्मा को ज्ञान कर जानिये है। ऐसे ही गुणगुणी में एकता जानना। एक के अभाव तैं दोऊ का अभाव होय है। जैसे सूरज तौ गुणी है अरु जाकरि सूर्य जान्या जाय ऐसा प्रकाश सो सूर्य का गुण है। सूर्य के अभाव होतैं तेज-प्रकाश का अभाव होय। प्रकाश के अभाव तैं सूर्य का अभाव होय। तैसे ही आत्मा विषैं अरु ज्ञान विषैं एकता जानि। नाम भेद है, प्रदेश सता भेद नाहीं। तातैं भो सुबुद्धि, तूं आत्मा विषैं ज्ञान कों उपाधि मति मानैं। ज्ञान है सो आत्मा का गुण जानि। ज्ञान के अभाव तैं आत्मा का अभाव होय, आत्मा के अभाव तैं मोक्ष का अभाव होय, मोक्ष के अभाव तैं कर्म का बँधाव होय, कर्म के बँधाव तैं जगत में भ्रमाव होय और जगतभ्रमाव तैं दुख का बढ़ाव होय। तातैं भो भव्य आत्मा, तूं जगत तैं छूट्या चाहे अरु सुख कौं भोग्या चाहे है तौ आत्मा कौं मोक्ष

विषैं केवलज्ञान सहित जानि। जाके मत विषैं मोक्ष आत्मा ज्ञान रहित होय ताके आप्त, आगम, पदार्थ असत्य-हेय हैं। ऐसे अज्ञानवादी कौं समझाय शुद्ध श्रद्धान कराया॥ इति अज्ञानवादी का कथन ॥ ६ ॥ आगे स्थिर वादी का संवाद लिखिये है। केई स्थिरवादी ऐसा मानैं हैं। जो जैसा मरै, तैसा ही उपजै। जो देव मरै तो देव ही होय, नारकी मरै तौ नारकी उपजै, तिर्यंच मरै तौ तिर्यंच ही उपजै। तामें भी जैसी जाति का पशु मरै, सो ही जाति का पशु उपजै। हस्ती मरै तौ हस्ती उपजै, घोटक (घोड़ा) मरै तो घोटक उपजै, इत्यादिक जिस जाति में जैसा मरै सो ही उपजै, अपनै स्थान को नहीं तजै। मनुष्य मरै तौ मनुष्य उपजै, तामें भी राव (राजा) मरै तौ राव उपजै, रंक मरै तौ रंक उपजै, ऐसैं जो मरै सो ही उपजै। याके मत का यों रहस्य है। जो चारगति संसार तौ है। परंतु जैसा मरै तैसा ही उपजै सो अपनै मत के पोषनैं कौं ऐसा शब्द ताके ग्रन्थ में कहै।

दोहा—राज करंता जे मरैं, ते फिर राजकरांय।
मरैं भीख कया मांगते, ते नर भीख मगांय॥

ऐसे शब्द करि स्थिरवादी ने अपना मत दृढ़कर रक्खा है। ऐसे स्थिरवादी कौं कहिये है—भो भाई, तूं सुनि। तेरा मत प्रत्यक्ष अनेक नयन करि खंड्या जाय है। तेरा मत कोई मत तैं नाहीं मिलै, तातैं असत्य है। प्रत्यक्ष तूं देखि। जो तेरा मत प्रमाण होता तौ संसार में मतान्तर भी नहीं होता, और कोई काहे कौं धर्म सेवन करते? जब जैसा मरै तैसा ही उपजै तौ धर्म के अंग कहा फल करैंगे? तातैं देखि, अनेक मत वारे कोई

तौ नाना तप करैं हैं, जप करैं हैं, केई दान करैं हैं, भगवान की पूजा करैं हैं । इत्यादिक धर्म अंग सेवनि करि, ऐसा विचारैं हैं जो हमें धर्मप्रसाद तैं कुगति नहीं होय तो भली है। और धर्म फल तैं देवादिक शुभगति होय है, ताके निमित्त केई धर्मात्मा तौ तीर्थ यात्रा करैं हैं। तामैं अनेक धन खर्चनैतैं खेद सहे हैं। अनेक घर धन्धा तज, कुटुम्बादि तैं मोह तज दूर देशान्तर जांय हैं। और केई परभव सुख कौं नाना तप करै हैं, केई परभव सुख कौं वांछित दान देय हैं, केई भगवान के मंदिर बनावैं हैं, केई धर्मफल कौं भगवान के नाम का सुमरन करैं हैं, केई राज, संपदा, कुटुम्ब, लोक, इन्द्रिय सुख, शरीरतैं ममत्व इत्यादि सुख छोड़ि दीचा धरि वन में ध्यान करि अपनैं पापनाश किया चाहैं हैं । इत्यादिक अनेक जीव अनेक मतन में अनेक प्रकार धर्म का साधन करते देखिये है। तातैं भो भ्रात, तेरे मत का रहस्य लेय, तौ सर्व धर्मसेवन का अभाव होय । तातैं तेरा मत कोई मत मैं संभावता दीखता नाहीं, तातैं असति है। और तूं देखि, जो सर्व संसार ऐसा कहै है, जो धर्म सेवन करैगा सो देव पद पावैगा, मनुष्य होय तो बड़े पुण्य का धारी राजपद पावेगा। सेठ पद पावैगा। और जे पापाचारी दुर्बुद्धि, पाप का सेवन करेंगे ते पशु होयंगे। तहां भूख, तृषा, शीत, उष्णादिक अनेक दुःख भोगैंगे । तथा पाप के करनहारे नरक विषैं नाना विधि के छेदन-भेदनादि दुःख पावैंगे। तथा लोक विषैं तथा शास्त्रन विषैं ऐसा कहैं हैं। फलाना धर्मात्मा धर्म प्रसाद तैं देव भया । फलाना पापाचार करि नरक गया। ऐसे-ऐसे व्याख्यान लौकिक विषैं प्रकट सुनिये है । अरु कदाचित ऐसी होती कि जो जैसा

मरै तैसा ही उपजै तौ "पुण्य–पाप का फल जीव भोगवैगा" ऐसा नहीं कहते। तातैं भो भव्य आत्मा, यह चारगति संसार विषैं जीव अनन्त काल का अरहट की नाईं भ्रमण करै है। पाप के फल तैं अधोगति विषैं और पुण्यफलतैं ऊर्ध्व गति विषैं इत्यादिक जीव उपजै हैं। तातैं जाके मत विषैं पुण्य–पाप का फल उथापि (नष्ट करि) जैसे का तैसा ही उपजता मानैं, ताके आप्त, आगम, पदार्थ असत्य हैं। सो हेय हैं। तातैं भो भव्य धर्मार्थी, अशुभ कर्म किये दुःख स्थान विषैं उपजै है और शुभ कर्म तैं सुख स्थान विषैं उपजै है। ऐसा धारणा करि मिथ्या श्रद्धान।तजि। तो तेरा भला होय। ऐसे या स्थिर वादी का भरम गुमाय, जिन भाषित श्रद्धान कराया ॥ इति स्थिर वादी का संवाद कथन ॥ ७ ॥

आगे केई विपरीतमति अजीव तैं जीव उपजता मानैं हैं तिनकौं समझाइये है। केई भोले प्राणी ऐसा कहैं हैं। जो यह आकाश तैं जल बरसै है सो इन्द्र है। ताके भरम मिटावे कौं ताकौं कहिये हैं। हे भाई, मेघ है सो तौ वरषा ऋतु विषैं ऋतु का कारण पाय "पुद्गल" है सो जलमयी परणमि जाय है। सो पुद्गलन के स्कन्ध, बरषा ऋतु के कारण तैं जलरूप होंय, धारा सहित वरषैं हैं। सो यह जल अचेतन है, जड़ है, चेतन नाहीं। मूर्तीक पुद्गल है। सो पुद्गल सम्बंध जलमयी भये पीछे अन्तर्मुहूर्त काल गये उस जल में अपकायक एकेन्द्री थावर नामकर्म के उदयतैं महापाप के फल करि आय, एकेन्द्री जीव उपजै हैं। सो यह महा दुःखी हैं। ताकैं एक शरीर ही है। और च्यारि इन्द्री नाहीं। पाप उदयतैं होय हैं। और इन्द्र है सो पंचेन्द्री है। महा जप, संयम, ध्यान, पूजा, दान

आदि अनेक धर्म के फल तैं होय है । सो इन्द्र देवनि का नाथ बड़ी शक्ति का धारी है। अद्भुत बड़ी लक्ष्मी का ईश्वर है। अनेक देवांगना सहित सुख का भोगनहारा है, ऐसा इन्द्रपद वीतरागी, योगीश्वर समता रस के स्वादी-षट् कायके पीहर (रक्षक) दीनदयाल, जगत गुरु, उत्कृष्ट दया के फलतैं इन्द्र होय हैं। हीन पुनीन को इंद्र पद होता नाहीं। तातैं इंद्र है सो देव नाथ है और मेघ है सो पुद्गल स्कंध की मिलापतैं ऋतु का कारण पाय जल होय वरसै है। तामैं पाप करनहारा महा जीवहिंसा का करनहारा जीव आय एकेन्द्री उपजे है। यहां प्रश्न-जो इंद्र नहीं तो ऐसा निर्मल आकाश विषैं अनेक प्रकार के बादल अरु दीरघ गरजना के शब्द कौन करै है? और तुम पुद्गल बन्ध कहो हो, सो पुद्गल अचेतन में ऐसी शक्ति कैसैं संभवै। ताका समाधान : जो हे भाई, तैंने कही कि शब्दादिक की शक्ति इंद्र बिना कैसे बनै। सो हे सुबुद्धि, पुद्गल की शक्ति बड़ी है। देखि चिन्तामणि रत्न जड़ है। तामैं मनवांछित देवे की शक्ति है। पारस पाषाण जड़ है उसमें लोहकौं कंचन करवे की शक्ति है। कल्पवृक्ष है सो जड़ है। तामैं वांछित फल देवे के शक्ति है और अनेक औषधि हैं सर्व जड़ हैं, तिनमें अनेक रोग खोवने की शक्ति है और धतूरा में ऐसी शक्ति है जो विवेकी का ज्ञान भंगि करि नाशै है? इत्यादिक जड़ वस्तूनमें ए शक्ति है के नाहीं? और देखि, हल्दी पीत है साजी श्याम है, तिन दोनों के मिलायेतैं लाली होय है। और देखो चकमक अरु लोह पाषाण के मिलाप करि झाड़ (वृक्ष) दाह करने की शक्ति है कि नाहीं। ऐसी अगनि उपजै है। इत्यादिक और भी अनेक शक्ति पुद्गल द्रव्य में है। तैसे ही मेघ की गर्जना का शब्द भी तूं पुद्गल स्कंध-

मयी जानना। तातैं हे भाई या मेघ विषैं जीवत्वपना नाहीं, यह अचेतन-जड़ है। तातैं तूं इस जड़ द्रव्य विषैं जीवत्वभाव मत कल्पना करै। यह देवनि का नाथ इंद्र नाहीं। और तूं कहेगा कि इस मेघ कूं तो सर्व जगत मैं इंद्र ही कहैं हैं सो हे भाई जे भोरे, सांचे शास्त्रज्ञान रहित जीव हैं। तिनने याका नाम रूढ़िक इंद्र धर लिया है जैसे कोई भूखे पुरुष का नाम इंद्रदत्त धर लिया होय। सो इंद्रदत्त तो ताकों कहिये जो औरन कों इंद्र पद देय, यह तो भूखा-दीन है। सो याका नाम रूढ़िक नयते इंद्र ही कहिए है। तैसे ही आकाश विषैं बिना सहाय जल बरसता देखि गरज शब्द होता देखि भोरे प्राणी देवत्वभाव की कल्पना करि इंद्र नाम कहैं। बाकी (वास्तव में) यह इंद्र देवन का नाथ नाहीं। चेतना नाहीं, ज्ञानसहित नाहीं, यह मेघ है सो पुद्गल के स्कंध ही वर्षा ऋतु का निमित्त पाय जलमयी होय हैं जैसे शीत ऋतु का निमित्त पाय सर्व आकाश मैं पुद्गल महाशीत रूप होय हैं उष्ण ऋतु का निमित्त पाय सर्व आकाश विषैं पुद्गल स्कंध उष्ण रूप होय हैं। सो इन तीनों ऋतु का कोई करता नाहीं। अनादितैं ऐसा ही स्वभाव है। जैसे काल का निमित्त होय ताही प्रमाण पुद्गल रूप परणमैं हैं। ऐसा तूं निश्चय जानना। इस मेघ कूं इन्द्र कहैं हैं सो यह इन्द्र चेतन नाहीं, जड़ है। तातैं भो भव्य, जे विवेकी हैं तिनकों अजीव विषैं जीव मानना जोग्य नाहीं। ऐसैं मेघ अचेतनत्व विषैं इंद्र पद देवनाथ मानने का सरधान मिटाय जथावत् सर्वज्ञ केवली भाषित सरधान कराया॥ अरु जाके मत विषैं मेघ कौं देवनाथ इंद्र मानैं, ताके आप्त, आगम, पदारथ सत्य नाहीं होय हैं॥ इति मेघ जड़ कौं देवनाथ मानैं था ताका संदेह निवारक कथन॥८॥

आगैं और भी केई भोरे जीव मंद ज्ञान तैं अजीव तत्व में जीव तत्व का भाव मानैं हैं। इस अचेतन काल द्रव्य कौं ऐसा कहैं हैं। जो यह काल द्रव्य है सो जम है। सो यह भगवान हजूर के पास का रहनेहारा सेवक है। सो यह भगवान की आज्ञा पाय जीवन कौं शरीर में तैं काढ़ ल्यावै है। यह यम महा निर्दयी है। सो जीव मोह के योग तैं कुटुम्ब नहीं तज्या चाहै हैं। तिन कुटुम्ब में तथा ता तन में सुखी हैं। ताकौं सोंटा तैं मारि-मारि महा दुखी करि जोरावरी शरीर तैं काढ़ि ल्यावै हैं। और केई जीव, भगवान के भगत हैं तिनकूं मारै नाहीं। तिनके तनमें छापे तिलक, कण्ठ में काष्ठ की माला देखि वाके तन तैं दूर तैं ही विनय तैं काढ़ ल्यावै हैं। परंतु छोड़ता काहू कौं नाहीं। फेर कैसा ही समय होय, रात होय दिन होय, शीत, उष्ण, बरसा, सुखिया, दुखिया होय, शादी होय या गमी होय, भोजन करता होय, सूता होय, धनधारी होय, रोगी होय, निरोगी होय इत्यादिक चाहे जैसा समय होय परंतु दया रहित जम काहू कौं छोड़ता नाहीं। ऐसा विभ्रम उपजाय कैं अजीव तत्व विषैं जीवत्वभाव की कल्पना करैं हैं। तिनकौं कहिये है। हे भाई, भगवान तौ काहू कौं मारता नाहीं और काहू कौं मारवे की आज्ञा भी करता नाहीं। वह भगवान जगत का पिता सर्व का रक्षक दया निधान, वीतराग, केवलज्ञानी, शुद्ध आत्मा, निर्दोष, काहू के मारनै का विचार भी करै नाहीं। यहां भी लौकीक में किसी कौं कहकैं काहू कौं कोई मरवावै तौ ताकौं भी पाप लगाय दण्ड पहुँचाइये है। तातैं अल्प से धर्मधारी जीव होय हैं सो भी पापतैं डर ऐसा बचन नाहीं कहैं, जो तूं याकौं मार। और कोई कषाय के वश होय कहै ही, तौ

के धर्म कूं दोष लागै। और लौकीक में कहैं यह महापापी है, यानैं फलानैं कौं फलाने के मराया है, ऐसा लोक भी कहैं हैं। और शास्त्रनि विषैं भी ऐसाही उपदेश देहैं। जो मन बचन काय, कृत कारित अनुमोदना इनका पुण्य-पाप में फल एकसा है। तौ हे भाई, तूं बिचार। जो जगपति दया निधान वीतराग भगवान, परके मारवे का वचन कैसे कहैं। तातैं ऐसा दोष भगवान को लगावना योग्य नाहीं। जो कोई निर्दोष कौं दोष लगावै ताकौं महापापी कहिये है। तातैं भो भव्य, भगवान है सो तौ निर्दोष है। वीतराग, दया भण्डार, सर्व का रक्षक है। और तिस भगवान के बचन हैं सो सर्व जीव कौं अमृत समान सुखदायी हैं। सो भी अमृत तैं तौ तन का आताप ही मिटै है। और भगवान के बचन अमृत तैं जन्म-मरण आताप मिटै है। तातैं भगवान का बचन परघात रूप होता नाहीं। और जो जमकूं तूं जीव मानै है। सो जम कोई जीव वस्तु नाहीं। जाकौं तूं जम कहै सो काल द्रव्य जड़ है, जीव नाहीं। इस संसार विषैं षट् द्रव्य हैं तिनमें एक जीव और पांच अजीव हैं। तिन अजीव द्रव्यन में भी एक पुद्गल द्रव्य तौ जड़ मूर्तीक है वाकी चार अमूर्ति हैं। तिन अमूर्तीन में सर्व भिन्न-भिन्न गुण पर्याय सत्ता धरैं हैं। तिनमें एक काल द्रव्य है ताका गुण तौ वर्तना है। और ताकी व्यवहार पर्याय समय, घटी, पहर, दिन, पक्ष, मास, वर्ष, पूर्व, पल्य, सागर है सो यह समय-समय करि ही, जीव की जैसी-जैसी पल्य सागरन आदि की आयु है सो बीती जाय है। सो जा जीव ने पूरव भव में जेते समयन का आयु बान्ध्या है। तैसा भोगि पर्याय पूरण करि परगति कौं जाय है। ताका नाम भोरे या कहैं हैं।

कि काल ले गया। सो जम कोई चेतना नहीं था। येही काल द्रव्य की व्यवहार पर्जाय समय-समय करि प्रवृर्तती पलक, घरी, दिन, पक्ष, बरष तैं जाय है। सो जाका जितना आयु होय तेते समय ही रहै, पीछे तन तजै। बन्धी आयु के समय भोग लिये पीछे एक समय नहीं रहै है। देव, इन्द्र, चक्री आदि ये भी थिति पूरण भये पीछे एक घरी भी नहीं रहैं। जा समै थित पूरी हो, आत्मा काय तजै है। ताकौं भोरे प्राणी या कहैं हैं। जो याकौ जम ले गया। सो काल तौ जीव नाहीं, जो जीव कौं ले जाय। यह काल द्रव्य तौ जड़ है अरु जड़त्व ही ताकी पर्याय हैं। सो व्यवहार पर्जाय तौ अपनै स्वभावमयी समय-समय प्रवृर्तती जाय सो तौ अनन्त काल अनन्त परिवर्तनमयी होते चले जांय हैं। तिनमें इन संसारी जीवन की थिति के भी समय पूरण होते चले जांय हैं। सो थिति पूरण का नाम मरण कहिये है। सो यह इस जीव ही का उपारजा (किया) है। सो शुभ परिणामन तैं तौ देवन की तथा उत्कृष्ट भोगभूमि की आयु कर्म पावै है। और पाप कर्म तैं नरकादिक का उत्कृष्ट आयु कर्म पावै है। और भली जांयगा ऊंच कुल में उपजि हीन आयु पाय मरण करै सो पर जीवन की हिंसा का फल जानना। जैसी-जैसी इस जीव की परणति शुभाशुभ भई, तेती ही थिति पाई, अरु वह पूरण भये पर्जाय तजता भया। तातैं हे भाई, तूं ऐसा भ्रम तजि, कि कोई जम जीवन कौं लेजाय है। सो जम (काल) कोई जीव नाहीं, जड़ है। तातैं जाके मत विषै काल जड़ द्रव्य कौं जम नामा जीवमानते होय ताके आप्त, आगम, पदारथ असति हैं। ऐसे काल कौं जम नाम जीव मानने वाले का भ्रम दूर करि शुद्ध

सरधान कराया । इति काल द्रव्य-जड़ कौं जम मानने हारे जीवन का सरधान पलटन कथन ॥९॥

आगे केई मतवारे अजीव वस्तून तैं जीवत्व वस्तु उपजते मानैं हैं ताका सम्बोधन कथन कहिये है ॥ केई अल्पज्ञानी, पञ्च अजीव वस्तून कों मिलाय कर जीव की उत्पत्ति मानैं हैं ऐसा कहैं हैं कि जो जीव वस्तु जुदी ही नाहीं, अजीव तत्वन के मिलाप तैं एक जीव शक्ति उपजे है। जैसे, अजीव वस्तु-जड़ द्रव्य जे महुआ, बेरजड़ी, गुड़, दही इत्यादि अचेतन वस्तु विषैं-भिन्न, भिन्न देखिये तौ मद शक्ति नाहीं। अरु इन सबन कौं इकट्ठी करि जंत्र में धरि इन सब का अर्क काढ़िये है, ता अर्क जो दारू, ता विषैं मद शक्ति प्रगट होय है। सो मद भये नाना शक्ति प्रगट होय। अनेक जाति के चरित्र, जीव ताके पीये करैं हैं। मद उतर गये नाना कौतुक करवे की शक्ति मिट जाय है। तैसे ही पृथ्वी तत्व, अप तत्व, तेज तत्व वायु तत्व, और आकाश तत्व इन पंच तत्व के मिलाप कर जीव शक्ति प्रगट होय। भिन्न-भिन्न देखिये तौ जीवत्व शक्ति काहू में नाहीं, मिलाप तैं जीव होय है। जब शक्ति प्रगट होय तब नाना देखने-जाननै मयी क्रिया करै है। अरु जब तत्वन का मिलाप छूट जाय, तब पंच ही तत्व अपने अपने तत्वन विषैं मिल जांय हैं। ऐसे पृथ्वी पृथ्वी में, अप अप में, तेज तेज में, वायु वायु में, आकाश आकाश में ऐसे तत्वन में तत्व समाय जांय हैं। तब शक्ति भी मिट जाय है। तहां वे एक दृष्टान्त देय अपना मत पोषैं हैं सो सुनो।

दोहा—पवन पैंच आँटी परी, धरयौ बधूरयौ नाम।
निकस पैंच बाहर परयौ, नाम ठाम नहिं ग्राम ॥ १ ॥

ऐसा इस तत्ववादी के मत में कह्या है। जो पवन चलती में (वेग में) आँटी पड़ गई, ताके योगतैं रज, बालू, रेत, पत्ता, तिणकादि पदारथ उड़ने लगे, जो सबनैं देखे। तब वाका नाम सबने बधूरया धरया। विस्तार भया। पीछे पवन का पेच पड्या था सो मिटगया। तब अँधूरे का भी नाम मिट गया। तैंसे ही अँधूरे की नांई पंच तत्वन का मिलाप मिटता नाहीं, तेते कालतो जीवनामा विकार प्रगट भया और सबने देखा, परन्तु जब तत्व विछुरैं सो तो अपने-अपने तत्वन में मिलैं। तब देखिये तो जीव तत्व तो कछू वस्तु नाहीं। ऐसा केई तत्व वादीन का मत है। तिनके मिथ्यात्व दूर करवे कौं स्याद्वादी कहैं हैं। भो तत्ववादी, तूं सुनि। सिंहनी के गर्भतैं मृगन का अवतार होता नाहीं। और मृगी के गर्भतैं सिंहका अवतार होता नाहीं। तैंसें ही जड़-अचेतन वस्तून तैं चेतन पदारथ वस्तु होती नाहीं। और जीव वस्तूनतैं अजीव वस्तु होती नाहीं, ऐसा नियम है। जो पंच जड़ तत्वतैं जीव होता तो पंच तत्वन तैं लोक भरया है सो हरकोई पंचतत्व मिलाय जीव तत्व बनाय लेता। पुत्र-कलित्र करिवे कूं काहे को कोई उपाय करते। तथा हे तत्ववादी, पंचतत्व मिलाय करि तूं हमारे पास पांच जीवतत्व बनाय तो सही, देखैं केसै बनाइए है। जैसे तैंने दारू का दृष्टांत दिया, सो जैसे गुड़, दही, मऊआ, विरजड़ी, इत्यादिक मिलाय हरकोई दारू कर लेय है तैसे एक–दो जीव तूँ भी बनाय लेय। अरु तूं कहेगा, मेरे बने तो नाहीं बनै। तो हे भाई, ऐसा सरधान झूंठा है। वृथा तूँ काहे कौ हठग्राही होय है। अजीव वस्तु तैं जीव वस्तु होती नाहीं। संसार विषैं जीव और अजीव ये दोय तत्व अनादि निधन हैं। यह अजीव वस्तु तैं

करथा, जीव होता नाहीं। तातैं जाकै मत विषैं पंच अजीव तत्वन का जीव होता मानै, ताके आप्त, आगम, पदारथ, असत हैं। ऐसे अजीव का जीव तत्व होता माने था, ताकौं समझाय, यथा योग्य जिन भाषित तत्वन का सरधान कराया। इति तत्ववादी व पंचतत्व अजीतैं जीव होता मानै था ताका संवाद कथन ॥ १० ॥ अब इन एकांत वादीन के एक पक्ष कूं मिथ्यात बताय इनहीं के बचन, तिनको केई नय करि स्याद्वाद मततैं मिलाय, सत्य मैं बताईए है ॥ जैसे अंधन का हाथी, अंधन के बचन करि एक पक्षतैं असत्य है अरु नेत्रन वारा, अंधन के बचन मिलाय सबकों हाथी कहै, कोई-कोई नय अंधनके हाथी कहने के बचन सत्य मैं बतावै, तैसेही कथन कहिए है। भो संसार बिषैं एक आत्मा माननेहारे, जो तूं एकही आत्माकी सर्व लोक में सत्ता मानै है सो या नय करिकैं तौ तेरा शब्द असति बताय आये। जैसे अंधा दगली की बाँह ऐसा हाथी मानै, सो तो असति है, ऐसा हाथी होता नाहीं। तो इन अंधे का बचन कोई नयतैं (हस्ती का अंग सूड़ि है या नयतैं) सत्यहै। ऐसे ही तेरा सर्व संसार में आत्मा है सो सर्व बात तेरी या नयतैं सत्य है। सो तूँ सुनि। इस संसार मैं अनंते आत्मा भिन्न-भिन्न सत्ता कौं धरैं, सर्व लोक मैं सूक्ष्म जाति के भरे हैं। पृथिवी कायिक सूक्ष्म, अप सूक्ष्म, तेज सूक्ष्म, वायु सूक्ष्म, और वनस्पति सूक्ष्म इन पंच स्थावरसूक्ष्मन करि यह लोक भरया है। घीव घटवत्। जैसे घीव का घड़ा भरया है। तामैं कोऊ जगै खाली नाहीं। तैसे ही यह लोक सूक्ष्म जीवनतैं भरया है। तहां बनस्पती सूक्ष्म तौ अनंत हैं। और चारि स्थावर सूक्ष्म असंख्यात हैं। सो सर्व सूक्ष्म जीवन करि पूरित है। कोई स्थान खाली नाहीं। जल, थल, अग्नि, वायु, आकाश,

कंकर, पत्थर, घट, पट सर्व जगे सूक्ष्म जीव भरया है। जीव बिना कोई क्षेत्र नाहीं। ऐसे तेरा बचन सत्य होय है। येता विशेष जानना, जो तेरा बचन एक सत्ता रूप सर्व जीव, सो तो असति है और सर्व जीवन की सत्ता भिन्न-भिन्न है। यह जिन बचन सत्य है। तातैं धर्म उपदेश भी संभवै, और पुन्य-पाप भी संभवै है। पाप-पुन्यका फल भी संभवै है। तातैं सर्व संसार मैं जीव भरि पूर हैं। परन्तु एक सत्ता नाहीं। सर्वकी सत्ता भिन्न-भिन्न है। ऐसा श्रद्धान कर। इति कोई नयतैं सर्व संसारमैं घट, पट, जल, पवन, पानीमैं आत्मा है ऐसा कथन आगे अवतार वादी का बचन कोई नय प्रमाण बताइये है। अहो अवतार वादी, तूँ मोक्ष आत्मा कौं अवतार मानै है सो मोक्ष दोय प्रकार है एक तो सालोक मोक्ष है सो भोरे जीवतौ सालोक कौं ही मोक्ष कहैं हैं। सो सालोक मोक्षतौ ताकौं कहिए जो या चारि गति समानि जनम-मरण दुख सहित होय। इंद्रीजन्य सुख बहुत होय। जीवना एक शरीरतैं बहुत होय। सागरों पर्यंत असंख्यात् बरष ताईं जीवना होय। ऐसा इन्द्रलोक, ता इंद्रलोक कौं भोरे जीव मोक्ष कहैं हैं। इहाँ कोई कहै, देव लोक को मोक्ष कौन नयकरि भोरे जीवन नैं मानी, ताकौ कहिये। हे भव्य, मोक्ष कर्म रहति है। तहां तिष्ठते सिद्ध, सो महा सुखी हैं कबहूँ मरैं नाहीं। तातैं तिन मोक्ष जीवन कौं अमर कहैं हैं। और इंद्रलोक के देव भी दीर्घ आयुधारी हैं। सो मनुष्यनि अपेक्षा, अत्यन्त जीवैं हैं। मनुष्य के असंख्यातै भव बड़ी २ आयुके होंय तो भी देव का एक भव पूरण नहीं होय। देवका आयु कर्म बड़ा है। तातैं शास्त्रन मैं देव का नाम अमर है और सिद्धन का नाम भी अमर है। सो अमरपनेकी कल्पना करि देव-

लोक कौं भोरे जीवन नैं मोक्ष मानी है। सो बालक ज्ञानी, ताहीं तैं इन्द्रकौं भगवान जानि, ऐसा कहैं है। जौं मोक्षमें नाना रतन मई महल हैं। तहाँ भगवान विराजैं हैं। बड़े-बड़े देव, दानव, भगवान के पास हस्त जोड़े खड़े हैं। अनेक अपसरा भगवानपै निरत गान करैं हैं। ऐसे अनेक सुखन सहति भगवान हैं। इनकौं आदिलै बहुत पंचेन्द्री जनित सुख दीरघ जानि भोरे प्राणीन तैं याका नाम सालोक मोक्ष कहिए है। सो इस सालोक मोक्ष का नाथ इंद्र है। सो भोरे जीव इन्द्रको भगवान मानैं हैं। इंद्रलोक को मोक्ष मानैं हैं। सो हे अवतार वादी भव्य, इस सालोक तैं इंद्र मरि अवतार धरै है सो या नयतैं अवतार मत प्रगट्या है। और दूसरा निरालोक मोक्ष है। सो यह मोक्ष अष्ट कर्मन के नाशतैं शुद्ध परणति के धारी यतीश्वरों को होय है। जब यह आतमा कर्म नाश, तन छोड़ि, मोक्ष होय। सो फेर संसार में अवतार नाहीं लेय है। याका नाम निरालोक मोक्ष है। या मोक्ष में जनम-मरण नाहीं, इंद्री जनित सुख नाहीं तनका पुद्गलीक आकार नाहीं। निरंजन, निराकार, निरदोष, शुद्ध भगवान सिद्ध हैं। सो निरालोक मोक्ष जानना। भो अवतारवादी भव्य, यह शुद्ध मोक्ष है इहाँ तैं अवतार नाहीं होय है। ऐसा जानना। और तेरे मतका वचन सालोक मोक्ष जो इन्द्रलोक, तहां तैं अवतार जानना। इति अवतार वादी का मोक्ष तैं अवतार कथन ॥

आगे क्षणिकमती नय का स्थापन। जो एक नयतैं तौ असति है और कोई नयतैं आतमा क्षणभंगुर है ऐसा कहिए है—भो क्षणिक मतवादी भव्य, तूं एक शरीर में अनेक आत्मा छिन-छिन आवते मानै है। सो तेरा मत तोकूं प्रत्यक्ष असत्य बताया। सो या नय तौ

तेरी खंडी गई । अरु जा नय तें आत्मा क्षणभंगुर है, सो तोकौं जिन आज्ञा प्रमाण आत्मा में क्षणभंगुरपना कहिए है, सो सुन। एक शरीर में तिष्ठता इस जीव ने अपनी विशेष आयुकर्म के जोगतैं, अनेक अल्प आयु के धारी मनुष्य, तिर्यंचन की पर्याय विनशती देखी । सो यह निकट संसारी जीवन की पर्याय विनशती देख, उदास होय विचारता भया । जो मेरे देखते एती पर्याय उपजी, एती पर्याय विनशी, सो संसार में जीवों की पर्याय क्षणभंगुर है । ऐसा क्षणभंगुर जगत-जीवों का जीवन है । ऐसी ही अपनी पर्याय क्षणभंगुर जानि, उदास होय, राज सम्पदा तजि, दीक्षा अंगीकार करै है। ऐसे क्षणभगुरपना जानना है। सो कल्याण करता है । एक शरीर में ही आत्मा रहता नांही, कबहूँ देव होय मरै है। कबहूँ मनुष्य होय मरै है। कबहूं पशु होय मरै है। कबहूँ नारकी होय मरै है। ऐसे चारि गति में अनादि काल का परिभ्रमण करै है, कहीं थिर रहता नांही। थिरी रहने का स्थान एक मोक्ष है । ऐसा विचार, संसार-दशाकूं क्षणभंगुर जानि, संसार तें उदास होय, परिग्रह तज करि, मोक्षाभिलाषी अपना कल्याण करै है। तातें भो भव्य क्षणिक मतवादी, तूं संसार में आत्मा तौ सदीव शाश्वत जानि । परंतु पर्याय चारगति रूप है सो क्षणभंगुर जानि । ऐसा श्रद्धान करि तो तोकौं कल्याण करता होयगा ॥ इति क्षणिक मतीन का भ्रम निवारण कथन ॥ आगे केई कर्तावादी आत्मा कूं भगवान् उपजावै है ऐसा मानैं हैं। ताका श्रद्धान तो आगे खंडन करया है। परन्तु कर्तापना भी कोई वस्तु का अंग है । सो जिन आज्ञा प्रमाण करता का स्वभाव कहिए है। भो कर्त्तावादी भव्यात्मा, तूं नवीन आत्मा का करता भगवान मानै,

सो नय तो तेरी असति है। परन्तु कर्त्ता का शब्द कोई वस्तु का अंग है। ताका छुवा लेयकैं भोरे जीवन ने कोई भगवान कर्त्ता जान्या है। सो संसारीक जीवों की पर्याय का कर्त्ता भगवान है, सो तौ नांहीं। अब संसारी जीवन की पर्यायन का कर्त्ता बताईए है। सो कर्त्ता के भेद दोय हैं। एक तौ भावकर्म कर्ता है। दूसरा द्रव्यकर्म कर्ता है। सो भाव कर्मन का कर्त्ता तो यह संसारी आत्मा है। अपने रागद्वेष भावन तैं शुभाशुभकरि च्यारिगति रूप उपजावे योग्य विकल्प का करना सो भाव कर्म है। अरु इन भाव कर्म के अनुसार प्रवृत्ते जो लोक विषैं तिष्ठते पुद्गलस्कंध ज्ञानावरणादिक कर्मरूप, सो द्रव्य कर्म हैं। सो इन द्रव्य कर्म के जोगतैं आत्मा देव, मनुष्य, नारक, पशु, एकेन्द्रिय, विकले-न्द्रिय, पचेंन्द्रिय आदि की उत्पत्ति रूप आकार सो नाना प्रकार जे शुभाशुभ शरीर तिनका कर्ता द्रव्यकर्म है। सो जैसा-जैसा शरीर आकार होय तैसा-तैसा भीतर आत्मा का आकार होय है। ताप्रमाण आत्मा सुख-दुख का भोक्ता होय है। हे कर्तावादी ! इन शरीर, च्यारि गतिका कर्ता तो द्रव्यकर्म पुद्गल है। और भावकर्म रागद्वेष है, ताका कर्ता आत्मा है। जैसा-जैसा भावकर्म उपार्जता है, तैसा-तैसा शुभाशुभ शरीर होय है। तातैं याका कर्ता आत्मा ही है। ऐसा जानना जो भगवान काहू का कर्ता नाहीं। ताही तैं धर्मात्मानकूं पाप कार्यन का कर्ता-पना तजि, शुभ कार्यन का करता होना जोग्य है। इति करतावादी की एक नय मिटाय जीवादि तत्वनिका करतापना कोई नय बताया ॥ आगे नास्तिक मती सर्व प्रकार जीव का अभाव मानै हैं। ताका एकान्त छुड़ाय, आत्मा कोई नय करि नास्ति भी है ऐसा कथन बताईए है।

भो नास्तिक मती, तेरा मत जीवकौं सर्व प्रकार नास्ति मानै है । सो यह एकांत मत तौ असति है । जीव द्रव्य का कबहूं नाश नाहीं। परन्तु जा अपेक्षा जीव नास्ति भी है ऐसा उपदेश जिन भाषित तत्वन की नय करि तोकौं बताईए है, सो तूं चित देय सुन । भो भव्य! जीव, द्रव्यार्थिक नयतैं तौ सदीव शाश्वत है । सो द्रव्य वस्तु का तौ कबहूं नाश नाहीं । और देव, नारकादि च्यारि गति पर्याय हैं सो नास्तिरूप हैं । सो पर्याय के नाश होते जीव का नाश कहिए है, सो व्यवहार नय है । या व्यवहार नय तैं पर्याय विनशते लौकिक में ऐसा कहैं हैं । जो यह देव जीव मुआ (मरया), यह नारकी जीव मुआ। जो यह नर जीव हुआ, यह तिर्यञ्च जीव हुआ । ऐसा कहैं हैं । सो पर्याय नाशतैं जीव की नास्ति कही, सो पर्यायार्थिक नय जानना । इति नास्तिक नयकौं सर्व प्रकार असति बताय, कोई नय नास्ति कहैं ऐसा कथन । आगे केई मतवारे मोक्ष आत्माकौं सर्व प्रकार अज्ञान मानैं, ताका एकांत मिटाय कोई नय तैं ज्ञान रहित मोक्ष जीव कौं बताइए है—

भो अज्ञानवादी भव्य आत्मा, तूं सर्व नयकरि मोक्ष आत्मा ज्ञान रहित मानै है । अरु तूं ऐसा कहे है । जो आत्मा में पर पदारथ देखने-जानने की शक्ति है सो ही उपाधि है । जब पदारथ के देखने-जानने की शक्ति मिटैगी तब जीव मोक्ष होयगा । ऐसा एकांत मत तेरा है सो तो असत्य तोकौं पूर्व बताया ही । अब ज्ञान रहित मोक्ष आत्मा है । यह बचन कोई नय है सो तोकौं बताइए है । जो या ज्ञान तैं रहित मोक्ष जीव है, सो तूं चित्तदेय सुनि । देखना-जानना तौ जीव का स्वभाव है तातैं ज्ञान का अभाव भये तौ आत्मा का

अभाव होय। तातें जेते इंन्द्रिय जनित पदारथन को देखना–जानना, सो आत्मा में उपाधि है, तबलौं मोक्ष आत्मा नाहीं। इन्द्रिय जनित ज्ञान का अभाव होय, केवलज्ञान होयगा। तब जीव मोक्ष होयगा। तातें उपाधि ज्ञान जो इंद्रिय जनित ज्ञान, सो तो इंद्रिय ज्ञान है। तबलौं पदारथन में राग-दोष होय है। जब इन्द्रिय ज्ञान मिटि, केवलज्ञान होयगा, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है, सो यह अतीन्द्रियज्ञान आत्मा का स्वभाव है। याके भए पदारथन तें राग-द्वेष नांहीं होय है। तातें भो भव्य ज्ञान वादी सुनि, मोक्ष आत्मा है सो सर्वज्ञ लोकालोक का जाननहारा, घट-घट का अंतरजामी भगवान, ताके अतीन्द्रिय ज्ञान है सो कर्म बंध रहित है। सो तो मोक्षजीव का स्वभाव है, ऐसा जानना। और मोक्ष आत्मा में इंद्रिय ज्ञान नाहीं। यह इन्द्रिय ज्ञान है सो विनाशीक है, चंचल है, हीन ज्ञान है, कर्म बंध करता है। सो यह इन्द्रिय ज्ञान रहित, मोक्ष आत्मा जांनना। ऐसा इस नयतें मोक्ष आत्मा ज्ञान रहित कह्या। इति मोक्ष आत्मा, इन्द्रिय ज्ञान रहित कोई नय है, सो कथन कह्या।

आगे कोई मतवारे जैसाही जीव मरे, तैसाही उपजता मानैं हैं, सो इसका एकांत मत खंडकै अब कोई नय करि जैसा मरै, तैसा ही उपजे, है ऐसा कहैं हैं। भो स्थिरवादी, तेरा मत व तेरी नय तो असति है, सो तोकों कह्या। अब कोई नय तेरा वचन सत्य कहैं हैं, सो सुनि। जो तूं जानैं कि जैसी पर्याय छोड़ै सोही पर्याय उपजे, सो सर्व प्रकार तेरा एकांतमत तो असत्य है। कोई नयतें वही पर्याय धरै है, कोई और भी पर्याय धरै है, सो तू सुनि। जिनदेव कह्या है ता प्रमाण कहिये है—जो मनुष्य मरै

तौ शुभ भावनतैं देव होय, अशुभ भावनतैं नारकी व पशु होय। और कोई सरल भावनतैं मनुष्यतैं मनुष्य भी होय उपजै है, ऐसा जानना। और तिर्यञ्च मरै सो शुभ भावनतैं देव होय, अशुभ भावनतैं नारकी होय, कोई सरल भावतैं मनुष्य होय। तथा आर्त भावनतैं पशुमरि पशुभी होय है, ऐसा जानना। और नारकी मर, नारकी होता नाहीं, यह निश्चय है। और देव मर देव होता नाहीं। ऐसैं कोई जैसा मरै, तैसाही उपजै और कोई मर, और ही पर्यायमें उपजै है। ऐसा जिन भगवान ने कह्या है। और तेरे मतमें या कही कि मरै सोही उपजै। सो पर्याय नयतौ बनै नाहीं। सो तूं ऐसा जानि, कि जो मरे सो ही उपजै। आत्माही पर्याय तजि मरण करै है। सो ही आत्मा, और पर्याय में उपजै है। सोही आत्मा, अनेक पर्याय में मरण करै है। यही आत्मा, अपने भाव प्रमाण शुभाशुभगति में उपजै है। सो ऐसे अनंतकाल भ्रमण करते भया। यही आत्मा मरया, यही उपज्या, ऐसा जानना। इस नयतैं यह बचन सत्य है कि जो मरै सोही उपजैहै। मोक्ष भये पीछे मरता भी नाहीं, अरु उपजता भी नाहीं, ऐसा जानना। इति स्थिरवादी का वचन कोई नय करि सत्य बताया ऐसा कथन।

इति सुदृष्टितरंगणी नामग्रंथमध्ये एकांतवादीन के नय वचन असत्य किए। कोई नय, वचन प्रमाण बताए। जैसे एक अंग तो हस्ती नाहीं, सर्व झूठे हैं। अंगन का समूह हस्ती है। कोई नय, एक अंग करि सत्यभी है। ऐसा कथन वर्ननो नाम चतुर्थ पर्व समाप्त ॥ ४ ॥

इस संधि में अनेक मतनि का विचार किया, ऐसे अन्य मतन के धर्मार्थी जीव थे तिनको समझाय, [redacted] जिन देव करि भाषे जीव अजीव तत्व तिनका स्वरूप कहिए

है। सो मोक्षाभिलाषी जीव होंय, सो इन तत्व भेदन कौं समझें। सो जा मोक्ष के निमित्त, तत्त्व भेद जानिए, तप चारित्र करिए, सो प्रथम मोक्षका स्वरूप कहूँ हौं।

भो मोक्षाभिलाषी हो तुम धर्मार्थी हो, तातैं प्रथम मोक्ष का स्वरूप सुनो। पीछे तुम्हारे इस मोक्ष की इच्छा होयगी, तौ तुमकों मोक्ष का मार्ग भी बतावेंगे। कैसा है मोक्ष? जेते संसार में जनम मरण, भूख प्यास, वात पित्त कुष्टादि रोग इन आदिक अनेक दुख हैं। तिन सर्व दुख-दोषतैं रहित है। और अविनाशी, निराकुल, इन्द्रिय रहित, सुखका स्थान है। और अनोपम सर्व लोकालोकवर्ती पदारथका जाननहारा, ऐसा केवलज्ञान सहित भगवान पद, जगत के पूज्यवे योग्य है। ता मोक्ष कौं इन्द्र, देव, चक्री, गणधर, मुनि, सर्व सदैव ताकौं वांच्छैं-पूजे हैं। तहां के सुख अखंड हैं, अविनाशी हैं, सर्व कर्म मल रहित हैं निराबाध हैं, तिन सुखका कबहूं अन्त नाहीं है। और जेते संसार में देव, इंद्र, अहमिंद्र, चक्री, कामदेव, विद्याधर, इन सबनि के सुख अनंतकाल के बीते, सो सबनिकौं इकट्ठे करिए, तौभी मोक्ष सुख के, एक समय मात्र भी नाहीं होय हैं। इहां प्रश्न—जो अहमिंद्र अरु इंद्रके सुख तें भी बहुत सुख और कहा होयगा, सो कहो? ताकौं कहिये हैं। भो भव्य सुनि, जैसे कोई पुरुष ऊंटकी असवारी किए राह में ऊंट को दौड़ावता, चल्या जाय है। सो ताके पीछे एक मारने को वैरी पीठि पीछे लागा, सो वाकौं देखि भय खाय ऊंट दौड़ाया, सो कुदाता चल्या जाय है। पीछे वैरी भी चल्या आवे है। ऐसे जाते राह (रास्ते) में भूख लागी, अरु प्यास लागी। सो ताके पास लाडू थे सो खाता जाय है। अरु प्यास लागी

सो ठंडा नीर था सो बेला (कटोरा) भरि, पीवता जाय है और भागता भी जाय है। सो कछु अन्न-पानी मुख में, कछू भूमि में पड़ता जाय है। ऐसे पुरुष ने ऊंटपै लाडू खाय, ठंडा पानी पीयकै, क्षुधा तिरषा मेटि, सुख मान्या है! अरु एक पुरुष अपने घरके बागमें सघन छाया में तिष्ठा, ताके पासि अनेक सज्जन सुखकारी बैठे हैं। सो द्वेषी कोई नाहीं। सो या पुरुष ने भूख तिरषा मेटवेकों ठंडा जल पीया, भोजन खाया, अरु सुख तें सोय रह्या। सो इन दोनों में घना (बहुत) सुख किसकैं? लाडू जलतो ऊंट वारे ने भी खाये; लाडू जल घर बैठने वारेने भी खाये। सो जैसा अंतर इनके सुख में है। तैसा अंतर देव, इन्द्र, अहमिंद्रन के सुख में, अरु मोक्ष के सुख में हैसु। मोक्ष का सुख तो निराकुल है, भय रहित है, अविनाशी है। और इन्द्र अहमिन्द्र-देव के सुख हैं सो विनाशीक हैं। इनके पीछे काल रूपी वैरी लागा है, तातैं भय सहित सुख है। ऐसे सामान्य दृष्टान्तका भाव जानना। सो हे भाई, संसारी इन्द्रादिक के सुख, इन्द्रिय जनित, तिनतैं मोक्ष के अतीन्द्रिय सुखतैं अनंतानंत गुणा अंतर है। तातें जो भव्य सुख का अर्थी होय, सो मोक्ष जावे का उपाय करौ। ऐसा उपदेश सुनि, कोई भव्यात्मा मोक्ष सुखका अभिलाषी पूछता भया। हे गुरु नाथ! मोक्ष के सुख आपने सर्व दुख रहित कहे। सो मोक्ष कैसे पाईए, ताका मार्ग कहो। तब गुरु हैं सो शिष्य के प्रश्नपाय ताके हितकूं कहते भये। भो भव्य सुनि! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है सो मोक्षमार्ग है। सो हे भव्य सम्यग्दर्शन तें तो मोक्षका सरधान (श्रद्धान) होय है। मोक्ष, अनन्त सुख का स्थान है। ऐसे श्रद्धान होते पीछे सम्यक्ज्ञान होय। तातें मोक्षमार्ग जान्या जाय है। ता मोक्ष मार्ग

में चालिए है। तातैं प्रथम तौ श्रद्धान चाहिये, पीछे जानपना चाहिये, पीछे मार्ग में चलना होय है। तब वाञ्छित स्थान पहुंचैं हैं। तातें हे भव्य, तूं प्रथम तो ऐसा सरधान करि, कि मोकूं ऐसी मोज कब होय ? ऐसे गुरु बचन सुनिकैं महा विनयतैं, रुचि सहित पूंछता भया। भो गुरो, सरधान का करावनहारा सम्यक्त्व कैसे होय, सो मोहि कहो। तब गुरु या शिष्यकूं रुचिक जांनि कहते भये। तत्वार्थ सूत्र की फाँकी—'तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'। याका अर्थ—भो भव्य, तत्त्वन का श्रद्धान है सोही सम्यग्दर्शन है। तब शिष्य कही भो गुरो, तत्त्व कहा, सो कहो। तब गुरु दया करि कही। भो वत्स, तत्त्व भेद जीव अजीव कर दोय प्रकार है। तब शिष्य कही भो गुरो, जीव अजीव का स्वरूप मोहि विशेष समझाय करि कहो। तब गुरु कहैं हैं। भो भव्य, तूं चित्त देय सुनि। अजीवका स्वरूप तोहि प्रथम कहों हों। सो अजीव द्रव्य पंच प्रकार है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, आकाशद्रव्य, पुद्गलद्रव्य। ये पंच द्रव्य अजीव हैं, जड़ हैं। तिनमें धर्म, अधर्म, काल, आकाश ए च्यारि अजीवद्रव्य अमूर्तीक हैं। सो इनका स्वरूप आगे कहेंगे, तातें यहां नहीं कह्या है। और पुद्गल अजीव द्रव्य है, सो मूर्तीक है। सो ताके दोय भेद हैं। एक तौ नो कर्म, एक द्रव्यकर्म। जहां ताकों देखि जो कर्म प्रगट होय, सो नो कर्म। जैसे अपने वैरीकों देखि क्रोध प्रगट होय, सो वैरीकों क्रोधका नो कर्म कहिए। तथा रूपवान स्त्री कौं देखि विकार भाव होय, सो विकार भावका नो कर्म स्त्री है। ऐसे सर्वत्र नो कर्म का स्वरूप जानना। और द्रव्य कर्म है सो पुद्गलीक है। सो ताके तेईस भेद हैं। सोही कहिए हैं—अणु ॥ १ ॥ संख्याताणु ॥ २ ॥ असंख्याताणु ॥ ३ ॥

अनंताणु ॥ ४ ॥ आहाराणु ॥ ५ ॥ आहार अग्राह्याणु ॥ ६ ॥ तैजस अणु ॥ ७ ॥ तैजस अग्राह्याणु ॥ ८ ॥ भाषाणु ॥ ९ ॥ भाषा अग्राह्याणु ॥ १० ॥ मनोवर्गणा ॥ ११ ॥ मनो अग्राह्यवर्गणा ॥ १२ ॥ कार्माणवर्गणा ॥ १३ ॥ ध्रुववर्गणा ॥ १४ ॥ सांतरवर्गणा ॥ १५ ॥ शून्य-वर्गणा ॥ १६ ॥ प्रत्येक वर्गणा ॥ १७ ॥ ध्रुवशून्यवर्गणा ॥ १८ ॥ वादर निगोद वर्गणा ॥ १९ ॥ वादर शून्य वर्गणा ॥ २० ॥ सूक्ष्मनिगोदवर्गणा ॥ २१ ॥ नभोवर्गणा ॥ २२ ॥ महास्कंधवर्गणा ॥२३॥ ऐसे ए तेईस जाति के पुद्गल वर्गणा के भेद हैं । सो अपने-अपने स्वभावरूप सदीव वरतें हैं । ए सर्व भेद पुद्गल के, तीन लोक प्रमाण महास्कंध है तामें तिष्ठै हैं। ए महास्कंध है सो सर्वलोक में जेती (जितने) परमाणु हैं तिन सर्वका एक बंधान रूप है । अनादि निधन महावज्र समानि महास्कंध जानना । तामें असंख्यात परमाणु तो ऐसे हैं जो स्कंधरूप नाहीं, एक-एकही हैं। और असंख्याते स्कंध दोय परमाणु के हैं। असंख्याते स्कंध तीन-तीन परमाणु के हैं। ऐसेही एक-एक अधिक परमाणून के स्कंध, च्यारि परमाणु का स्कंध, पांचका, षट् आदि उत्कृष्ट संख्यात पर्यन्त जानना । सो ए संख्याताणु स्कंध है । अत्र या संख्याताणु स्कंधतें एक अधिक परमाणु के असंख्याते स्कंध हैं। सो ए जघन्य असंख्याताणु स्कंध है । यातें एक परमाणु और अधिकके असंख्याते स्कंध हैं। और असंख्याते स्कंध ऐसे हैं जो उत्कृष्ट संख्यात तें तीन-तीन परमाणु के अधिक जानना । च्यारि-च्यारि परमाणु अधिक के असंख्याते स्कंध हैं। पांच अधिक के असंख्याते स्कंध हैं इन आदिक उत्कृष्ट संख्यात तें एक-एक परमाणु के स्कंध वधते उत्कृष्ट असंख्यात पर्यन्त जानना । सो एक-एक परमाणु के अधिक हैं सो असंख्याते

असंख्याते । जनना । उत्कृष्ट असंख्यात परमाणु से एक परमाणु अधिकके स्कंध असंख्याते हैं । सो यह जघन्य अनंताणुनके स्कंध हैं। दोय परमाणु अधिकके स्कंध असंख्याते हैं। तीन अधिक, च्यारि आदि अधिक के स्कंध एक-एक जाति के असंख्याते स्कंध हैं सो सर्व अनंताणु पुद्गल स्कंध हैं। ऐसे संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणु के स्कंध हैं। सो सर्व जाति के स्कंध असंख्याते असंख्याते हैं। ऐसे पुद्गलके स्कंध अनेक प्रकार हैं। तहां जे तैजस जाति के पुद्गल स्कंध हैं तिनका तो तैजस शरीर होय है । और भाषा जाति के पुद्गल स्कंधन करि, भाषा योग्य जे वेन्द्रिय आदि जीवन के यथायोग्य बचन बोलने की शक्ति लिये स्थान कंठादि बनि भाषा खिरै है । और मन जाति की वर्गणा करि, संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवन के हृदय कमल में अष्टपाखड़ी का कमलाकार द्रव्य मन होय है । जातें आत्मा के शुभाशुभ विचार की शक्ति होय है। और बादर निगोदि वर्गणा के स्कंधन तें, वादर निगोदिया जीवन के शरीर बने हैं और सूक्ष्म निगोदि वर्गणा के स्कंधतें सूक्ष्म निगोदिया जीवन के शरीराकार होय हैं। और प्रत्येक जाति की वर्गणा तें प्रत्येक शरीरन का बंधन होय है । और कार्माण वर्गणातें ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप कर्मस्कंध मई ऐसा कार्माणशरीर होय हैं। कर्म होने योग्य होंय जे पुद्गलस्कंध सो कार्माण वर्गणा है। तहां आत्मा के जैसे-जैसे राग-द्वेष भावन सहित आत्मा परिणमै, ताही प्रमाण अष्टकर्म रूप होय कार्माण वर्गणा परणमै है । सो अष्टकर्म कौन हैं । तिनके नाम कहिए हैं। ज्ञानावरणी ॥१॥ दर्शनावरणी ॥२॥ वेदनी ॥ ३ ॥ मोहनी ॥ ४ ॥ आयु ॥५॥ नाम ॥ ६ ॥ गोत्र ॥ ७ ॥ अंतराय ॥८॥ ऐसे ए अष्टकर्म तो मूल हैं। तिनकी उत्तर प्रकृति एकसौ

अड़तालीस हैं। ज्ञानावरणी के नाम—मतिज्ञानावरणी ॥ १॥ श्रुतज्ञानावरणी ॥ २ ॥ अवधिज्ञानावरणी ॥ ३ ॥ मनपर्यय ज्ञानावरणी ॥ ४ ॥ केवलज्ञानावरणी ॥ ५ ॥ ए पंच हैं सो जिस-जिस ज्ञानके आवर्ण की हैं ते-ते ज्ञान कों घातें हैं। तातें इनका नाम आवर्ण कहिये है। ज्ञान नाम तो जानपने का है। जातें ज्ञेय जानिए, सो तो ज्ञान है। सो ज्ञानपने की अपेक्षा तो एक है। अरु अब एक ज्ञान कों जितना-जितना इन पंच ज्ञानावरणीननै आवरणया है, तेता ज्ञान की पंच भेद करि कल्पना करी है। अरु जब इन आवरणीन का अभाव होय, तब भेदभाव मिटि एक ज्ञानभाव ही रहै है। पंचभेद ज्ञानावरणी के निमित्त तैं कहिए हैं। ऐसा जानना। और दर्शनावरणी प्रकृति नव हैं। सो प्रथम ही चक्षुदर्शनावरणी ॥ १ ॥ अचक्षुदर्शनावरणी ॥ २ ॥ अवधिदर्शनावरणी ॥ ३ ॥ केवल दर्शनावरणी ॥४॥ ए चारि दर्शनावरणीय की हैं। सो अपने आवरणे योग्य दर्शन कों आवरणे हैं। और निद्रा-निद्रा ॥ १ ॥ प्रचला-प्रचला ॥ २ ॥ स्थानगृद्धि ॥ ३ ॥ निद्रा ॥ ४ ॥ प्रचला ॥ ५ ॥ ए नव दर्शनकों घातैं हैं। यहां प्रश्न। जो दर्शन तो च्यारि भेद रूप है। और दर्शन की आवरणी नव हैं। सो च्यारि दर्शनावरणी तो च्यारि दर्शनकों घातैं हैं। यह पंच निद्रा काहे कौं घातैं हैं। ताका समाधान। च्यारि दर्शन के क्षयोशम की घातक च्यारि दर्शनावरणी हैं। और दर्शन की देखने रूप प्रवृत्ति ताकौं पंच निद्रा घातैं हैं। ऐसा जानना। आगे वेदनीय के साता, असाता ॥ २ ॥ ए दो भेद हैं। सो मोह सहित जीवन कौं वेदनी का उदय साता तो अपना उदय बताय जीव कौं सुखी करै है और असाता के उदय तैं मोही जीव दुखी होय। ऐसे वेदनी हैं। आगे मोह कर्म दोय

भेद रूप है-एक दर्शनमोह ॥ १ ॥ एक चारित्रमोह ॥ २ ॥ तहां दर्शनमोह के भेद तीन हैं-मिथ्यात्व ॥ १ ॥ सम्यग्मिथ्यात्व ॥ २ ॥ सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व ॥ ३ ॥ ए तीनभेद हैं। और चारित्रमोह के पच्चीस। तिनके नाम-अनन्तानुबन्धी ॥ १ ॥ अप्रत्याख्यान ॥ २ ॥ प्रत्याख्यान ॥ ३ ॥ संज्वलन ॥ ४ ॥ इन च्यारि चौकड़ी के क्रोध, मान, माया, लोभ इन करि सोलह भेद जानना। और नव हास्यादिक के नाम-हास्य ॥ १ ॥ रति ॥ २ ॥ अरति ॥ ३ ॥ शोक ॥ ४ ॥ भय ॥ ५ ॥ जुगुप्सा ॥ ६ ॥ पुरुषवेद ॥ ७ ॥ स्त्रीवेद ॥ ८ ॥ नपुंसकवेद ॥ ९ ॥ ए पच्चीस चारित्र मोहनी के हैं। इनका सामान्य अर्थ कहिए है—तहां अनन्तानुबंधी क्रोध, महातीव्र पाषाण की रेखा समानि। याका वासनाकाल अनंतभवमें भी नहीं जाय। जातें एक बार क्रोध भया होय, तौ अनंते भव तांई तातें समताभाव नहीं होय। याके उदयसे प्राणी अनंतकाल संसार भ्रमै है! सो अनन्तानुबंधी क्रोध जानना। और अनन्तानुबन्धी मान, महातीव्र पाषाण स्तंभ समान। कठोर परणामी प्राण देय, पै नमै (नम्र होय) नाहीं। याका भी वासनाकाल अनंतकाल है। जातें एक बार मान खंडना होय, तातें अनंतभवनमें भी निशल्यभाव करि नमैं नाहीं, सो अनन्तानुबंधी मान जानना। और अनन्तानुबंधी माया, महातीव्र बांसकी जड़की गांठी समानि, वचनमें कटुताई (कटु) रूप भाव रहै, ताका वासना काल अनंत है, जातें एक बार परणति में द्वेषभाव होय तौ तातें अनंते कालमें भी निशल्यभाव-सरलता नहीं होय। सो अनन्तानुबंधी माया जानना। और अनन्तानुबंधी लोभ, महातीव्र किरमके रंग समानि। जैसे वस्त्र फटै, परन्तु किरम का रंग नहीं

जाय। ऐसा ही यह लोभ है। याका वासनाकाल अनंत है। एक बार लोभ प्रगटभया पीछे अनन्त काल गए भी समताभाव-निर्लोभता नहीं होय। ऐसे ए अनन्तानुबंधी की चौकड़ी है। या के फल तैं अनन्तकाल संसार में भ्रमवा नहीं मिटै। इनके उदय होते सम्यकभाव नहीं होय। और अप्रत्याख्यान की चौकड़ी-तहां अप्रत्याख्यान का क्रोध, सो हल रेखावत। जैसे हल की रेखा वर्ष छहमहीनामें वर्षादि कारणपाय मिटै। तैसें ही यह अप्रत्याख्यान क्रोध मिटै। और अप्रत्याख्यान मान अस्थि के स्तंभ के समान, जतनविशेष किए नमैं है। तैसे ही यह मान कारणपाय विशेष काल गए पीछे मिटै भी है। और अप्रत्याख्यान माया हिरन के सींग के गांठि कौ धरै है। याकी माया बहुतकालगए मिटै है। और अप्रत्याख्यान लोभ कुशुंभ के रंग समान है। जैसे विशेष जतन तैं कुशुम्भरंग मिटै है। तैसे ही बहुत काल गए यह लोभ जाय है। ऐसे यह अप्रत्याख्यान की चौकड़ी, श्रावक के अणुव्रत का स्थान जो पंचमगुणस्थान ताकौं रोके है। याके उदयमें पंचम गुणस्थान नाहीं होय है। और प्रत्याख्यान की चौकड़ी कहिए है। तहां प्रत्याख्यान क्रोध गाड़ी की रेखा समानि है। जैसे पांच-च्यारि दिन तथा पहर में तथा मास पक्ष में गाड़ी की रेखा मिटि जाय। तैसे ही अलपकाल में प्रत्याख्यान क्रोध उपशांत होय। और प्रत्याख्यान मान कछू मंद है। जैसा काष्ठका स्तम्भ अल्प जतन तैंनमैं तैसे ही स्तुतिमात्र अल्पकाल में उपशांत होय है। और प्रत्याख्यानी माया मेंढ़े के सींग में अल्पगांठि होय तैसेही इस मायाका उदय अल्पकाल होय मिटै। और प्रत्याख्यान लोभ है सो हल्दीके रंग समानि है। जैसे हल्दी का रंग अल्प जतनतैं मिटै। तैसे ही प्रत्याख्यान लोभ शीघ्र ही मिटै।

ऐसे प्रत्याख्यान की चौकड़ी है। सो अपने उदय मुनि पद नहीं होने देय है। अब संज्वलन की चौकड़ी कहिए है—सो संज्वलन क्रोध महामंद। जैसे जल रेखा तुरंतमिटै, तैसे यह संज्वलन क्रोध का उदय मिटै है। और संज्वलनमान, उदय देय वेतसमान तुरंत मार्दवभाव होय। जैसे बेतका स्तम्भ तुरत नमै है। और संज्वलनमाया, गईयाके सींगवत्, अल्प बांकी (टेढ़ापन) लिये सरल है। याका उदय, तुरत होय तुरत मिटै है। और संज्वलन लोभ पतंग के रंग समानि है। जैसे पतंगरंग तुरत मिटै, तैसे संज्वलन लोभ उदय होय, अल्प रस देय मिटै है। ऐसे संज्वलनकी चौकड़ी अपने उदय होतैं यथाख्यात चारित्र नहीं होने देय है। ऐसे तौ सामान्य सोलह कषाय जांनना। आगे नो कषाय—तहां जाके उदय जीवके हाँसि, कौतुक प्रगटै, सो हास्य कर्म है। और जाके उदय जीवकूं पर वस्तु शुभलागै, सुख उपजावै, सो रति-कर्म है। और जाके उदय जीवकूं परवस्तु अनिष्ट लागै, सो अरति कर्म है। जाके उदय जीवकूं चिन्ता शोक होय, सो शोक कर्म है। और जा कर्म के उदय जीवका उर कम्पायमान होय, पर वस्तु तैं भय उपजे, सो भय कर्म है। और जा कर्म के उदय जीवकूं परवस्तु देखि ग्लानि उपजे, सो जुगुप्साकर्म है। और जा कर्म के उदय जीवकूं स्त्री के स्पर्श करनेकी अभिलाषा होय, सो पुरुषवेद कर्म है। और जा कर्मके उदय से जीवकूं पुरुष के सेवन-स्पर्श की इच्छा होय, सो स्त्री-वेद कर्म है। और जा कर्म के उदय युगपत पुरुष-स्त्री के स्पर्श की इच्छारूप भाव होय, सो नपुंसक वेद कर्म है। ऐसे चारित्रमोह की पच्चीस कहीं। दर्शनमोह का स्वरूप आगे कहैंगे। आगे देव आयुका उदय जेते काल रहै, तेते काल देवका शरीर आत्मा तैं नहीं छूटै। और

जाके उदय मनुष्यका शरीर आत्मातैं नहीं छूटै, सो मनुष्य आयु है। और जा कर्म के उदय जीव तिर्यञ्च गति को न छोड़ि सकै, सो तिर्यञ्च आयु कर्म है। और जा कर्म के उदय जीव नारकी का शरीर नहीं तज सकै, सो नारक आयुकर्म है। ऐसे चार आयु जानना। आगे नाम कर्म कहिए है सो प्रथम ही वर्ण चतुष्क की कहैं हैं। सो तहां स्पर्श की आठ-जाके उदय शरीर कठोर होय, सो कठोर कर्म है। जाके उदय शरीर कोमल होय, सो कोमल कर्म है। जाके उदय शरीर भारी होय, सो भारी कर्म है। जाके उदय शरीर हलका होय, सो हलका कर्म है। और जाके उदय शरीर उष्ण होय, सो उष्ण कर्म है। अरु जाके उदय,शरीर शीतल होय सो शीतल कर्म है। जाके उदय शरीर चिकना होय, सो चिकन कर्म है। जाके उदय शरीर रूखा होय, सो रूक्ष कर्म है। आगे रसकी—जाके उदय शरीर खाटा होय, सो खट्टा कर्म है। जाके उदय शरीर मिष्ट होय, सो मीठा कर्म है। जाके उदय शरीर कड़वा होय, सो कड़वा कर्म है। जाके उदय शरीर कषायला होय, सो कषायला कर्म है। जाके उदय चिरपरा होय, सो चिरपरा कर्म है। आगे गंध की कहिए-जाके उदय,शरीर में सुगंध होय, सो सुगंध कर्म है। जाके उदय शरीर में दुर्गंध होय, सो दुर्गंध कर्म है। आगे वर्ण कहिए है। जाके उदय शरीर सुरख होय, सो लाल कर्म है। जाके उदय शरीर सब्ज (हरा) होय, सो हराकर्म है। जाके उदय शरीर श्याम होय, सो श्यामकर्म है। जाके उदय शरीर पीत होय, सो पीत कर्म है। जाके उदय शरीर श्वेत होय, सो श्वेत कर्म है। ऐसे वर्ण चतुष्क। आगे संहनन षट् के नाम—वज्रवृषभनाराच ॥ १ ॥ वज्रनाराच ॥ २ ॥ नाराच ॥ ३ ॥ अर्धनाराच ॥ ४ ॥ कीलक॥५॥ स्फाटिक

॥ ६ ॥ ए षट् हैं । अब इनका अर्थ—वृषभ नाम तो नस का है । अरु नाराच नाम कीली का है। अरु संहनन नाम हाड़का है। सो जाके उदय नस, हाड़, कीली, वज्रमई होय, सो वज्रवृषभनाराच संहनन कर्म है। और जाके उदय शरीर में नसें तो वज्ररहित होंय अरु कीली, हाड़, वज्रमई होय, सो वज्रनाराचसंहनन कर्म है। और संधनि में दृढ़ कीली होय, तीनों ही हाड़, कीली व नसें वज्ररहित जाके उदय होंय, सो नाराच संहनन कर्म है और जाके उदय संधनिमें अर्ध कीलिका होय, सो अर्धनाराच संहनन कर्म है। और जाके उदय शरीर में कीली रहित हाड़न की नोक तैं नोक अड़ी होय अरु गांठतैं दृढ़ होय, सो कीलक संहनन है । और जाके उदय शरीर के हाड़, घास के पूला समानि नशा चांमतैं दिढ़ होंय, सो स्फाटिक संहनन कर्म है। ऐसे संहननकर्म है। आगे संस्थान षट् कहिए हैं। तिनके नाम—समचतुर ॥ १ ॥ निग्रोध परिमण्डल ॥ २ ॥ स्वाति ॥ ३ ॥ कुब्जक ॥ ४ ॥ वामन ॥ ५ ॥ हुंडक ॥ ६ ॥ ए षट् हैं । अब इनका अर्थ वताइये है—तहां जा कर्म के उदय शरीर महा सुन्दर शास्त्रोक्त प्रमाण मई आंगोपांग सहित होय, सो समचतुर संस्थान है। और जाके उदय शरीर ऊपरि तैं चौड़ा, नीचे तैं कृष होय, सो निग्रोध परिमण्डल संस्थान है । जाके उदय शरीर ऊपरितैं कृष अरु नीचेतैं दीर्घ होय, सो स्वाति कर्म है। और जाके उदय शरीर में पीठि, छाती ऊँची होय सो कुब्जक संस्थानकर्म है। जाके उदय शरीर काल मर्यादा तैं बहुत छोटा होय, सो वामन नाम कर्म है । और जाके उदय शरीर बेघाटि-रुंडमुंड-हीनाधिक अंगोपांग सहित अशुभ होय, सो हुंडक

संस्थान है। आगे च्यारि गति कहिए है—जाके उदय देवका शरीर होय, सो देव गति है। जाके उदय मनुष्य शरीर पावै, सो मनुष्यगति कर्म है। और जाकर्म के उदय तिर्यञ्चका शरीर पावै, सो तिर्यञ्चगति कर्म है। जाकर्म के उदय नारक शरीर पावै, सो नारक गति कर्म है। ऐसै गति। आगै गत्यानुपूर्वी कहिए है--तहां देवगति में उपजनेहारा मनुष्य अपनी आयुभोगि, शरीर तजि, जाकर्म के उदय, ताही मनुष्य के आकार आतम प्रदेश अंतराल में राखे, और रूप नाही होंय, सो देवगत्यानुपूर्वी है ॥ १ ॥ और मनुष्य गति में उपजनेहारा जीव, अनियतगतितैं आवै, सो अपने तैजस शरीर के आकार आत्मप्रदेश अन्तरालमें राखै, पलटै नाहीं सो मनुष्यगत्यानुपूर्वी कर्म है ॥ २ ॥ और तिर्यञ्च गति में उपजनेहारा जीव जा कर्म के उदय जा शरीर कौं तजि आवै, ताका आकार उपजनेके संस्थान तांई लिए आवै, और रूप नाहीं होने देय, सो तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी कर्म है ॥३॥ और जाकर्म के उदय नरक में उपजनेहारा जीव परगति का जैसा शरीर तजे तैसे ही आकार, नरक में उपजने के संस्थान तांई आवै, आत्मा प्रदेश और रूप नाहीं होंय, सो नरकानुपूर्वी कर्म है ॥४॥ ऐसे पूर्वी हैं। आगे पंच शरीर स्वरूप कहिए हैं—तहां जा कर्म के उदय वैक्रियक शरीर रूप पुद्गलन कूं परणमाय, शरीर का बंधान करि, पुण्य-पाप फलतैं देव नारकी होय, सो वैक्रियक शरीर है ॥ १ ॥ और जाके उदय आहारक जाति शरीर रूप पुद्गलन के स्कंधकौं परणमाय आहारक शरीर का बंधान होय, सो आहारक शरीर है ॥ २ ॥ और जाकर्म के उदय पुद्गल का ग्रहण करि मनुष्यतिर्यञ्चन के शरीर मई परणमावै, सो औदारिक शरीर है ॥ ३ ॥ और

जा कर्म के उदय तैजस जाति के पुद्गलनकौं ग्रहण करि, आत्मा शरीर के बंधान रूप करै, सो तैजस शरीर है ॥ ४ ॥ और जाकर्म के उदय संसारी जीव, पुरातन अगले कर्म के शुभाशुभ परिणाम तिनतैं ज्ञानावरणादिक कर्मरूप होने योग्य जे कार्माणवर्गणा पुद्गल स्कंध, तिनकूं ग्रहण करि, अष्ट कर्मरूप शरीर का बंधान करै, सो कार्माण शरीर है ॥५॥ इति शरीर भये। आगे पंच बंधान व पंच संघात का स्वरूप कहिए है, सो जैसे दिवाल कौं गारा, ईंट, पत्थरादि इनकर दिवाल खड़ी करिये, ऐसा तौ बंधान है। और ता दिवाल पै लेप करि साफ करिए, सो संघात है। तैसे ही शरीरन के बंधान संघात हैं। तहाँ इन पंच शरीरन के नस, हाड़, मांसादि अवयवन का बंधानकरि शरीर का करना सो बंधान है। ते पांच जानना। अरु इन शरीरन में वातादि लपेटन रूप सफाई, सो पंच संघात हैं। इति बंधान संघात। आगे पंच जाति का स्वरूप कहिये है—तहाँ जाके उदय एकेन्द्रिय का क्षयोपशम पावै, ताके स्पर्श इन्द्री सहित जो एकेन्द्रिय का शरीर तामें आत्मा का रहना, सो एकेन्द्रिय जाति है ॥ १ ॥ और जा कर्म के उदय स्पर्श वरसन इन दोय इन्द्रिय के क्षयोपशमसहित शरीर में आत्मा का रहना सो बेइन्द्रिय जाति है ॥२॥ और जा कर्म के उदय स्पर्शन, रसन, घ्राण इन तीन इन्दिय के क्षयोपशम सहित शरीर का धारण सो ते इन्द्रिय जाति है ॥ ३ ॥ और जा कर्म के उदय स्पर्शन रसन, घ्राण और चक्षु इन च्यारि इन्द्रिय के क्षयोयशमसहित शरीर का धारना, सो चौ इंद्रिय जाति है। और जाकर्म के उदय पांचों इन्द्रियों का क्षयोपशम सहित शरीर का धारना, सो पंचेन्द्रिय जाति है। इति जाति। आगे अंगोपांग का स्वरूप कहिए है—अंग आठ, ताके

उपांग। सो हाथ दोय, पांव दोय, मस्तक एक, नितम्ब एक, छाती एक, पीठ एक, ऐसे आठतो ए अंग है। और अंग में जे लक्षण होंय, सो उपांग हैं। जैसे शीश में मुख, कांन, नांक, नेत्रादि ए उपांग हैं। तथा हाथ, पांवन की अंगुली आदि अनेक विधि सो उपांग हैं। सो ए अंग-उपांग तीन शरीरन में होंय हैं। तैजस कार्माण के नाहीं। तहां जा कर्म के उदय मनुष्यतिर्यञ्चके शरीरन में अंगोपांग होंय, सो औदारिक अंगोपांग है। और जा कर्म के उदय प्रमत्तगुणस्थानवर्ती मुनीश्वर के मस्तकतें संशय के निमित्तपाय आहारक शरीर में अंगोपांग होंय, सो आहारक अंगोपांग है। और जा कर्म के उदय देव नारकी के वैक्रियक शरीर में अंगोपांग होय, सो वैक्रियक अंगोपांग है। इति तीन अंगोपांग। आगे विहायोगति कहिए है। तहां जा कर्म के उदय जीव की शुभचाल होय, सो शुभ विहायोगति कर्म है। जाके उदय अशुभ चाल होय, सो अशुभ विहायोगति कर्म है। इति चाल। ऐसे पिंडप्रकृति पैंसठि कहीं। आगे अपिंडप्रकृति कहिए है—तहां जा कर्म के उदय जीवका शरीराकार आत्मप्रदेश यथावत् रहै, हलकाभारी नहीं होय, सो अगुरुलघुकर्म है। और जहां शरीर में जाके उदय ऐसे स्थान होंय, जिनकरि पवन खैंचे-निकासे, सो श्वासोश्वास कर्म है। तहां जाके उदय ऐसा शरीर होय, जो मूल में तो शीतल अरु जाकी प्रभा उष्ण सो आतापकर्म है। सो यह प्रकृति सूर्य के विमान सम्बन्धी पृथ्वी कायक जीव हैं, तिनकें होय है। इन एकेन्द्रिय विना और स्थावरन कें इसका उदय नाहीं। और जाका शरीर शीतल होय, व ताकी प्रभा भी शीतल होय, सो उद्योत कर्म है। ए प्रकृति एकेन्द्रिय आदि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चन के उदय होय है। बाकी तीन गति में नाहीं।

और जहाँ जा शरीर में ऐसे चिन्ह आंगोपांग होय जाकरि अपना ही घात होंय, जैसे साम्हरिके सींगादिक जाके भरतैं मरै सो अपघात कर्म है। और जहाँ जाके उदय शरीर में ऐसे चिन्ह आंगोपांग होंय जाकरि आप परका घात करै सो परघात कर्म है। और निर्माण प्रकृति के दोय भेद हैं। एकस्थान निर्माण—एक प्रमाणनिर्माण है। जहां शरीर में जाके अंगोपांग के स्थान होंय, सो तौ स्थाननिर्माण कर्म है। और जाके उदय शरीर में अंगोपांग के प्रमाण यथावत् होंय सो प्रमाणनिर्माण है। जो प्रमाणनिर्माण भला नहीं होय तौ अंगोपांग अधिक हीन होय, कै तौ अंगुली चारि होंय, तथा छह अंगुली होंय, तथा हस्त, पांव, नाक, नेत्र, कानादि छोटे होंय, तथा बड़े होंय। अरु जो स्थाननिर्माण भला नहीं होय तो अंगोपांग स्थान चूकि होंय, तब असुहावने होय। ऐसे निर्माणप्रकृति दोय प्रकार जानना। और जा जीवनैं पहले भव में सोलहकारणभावनादिक निमित्तकरि तीर्थंकरकर्मबांध्या होय जाके उदय पंचकल्याण होंय। तथा दीक्षाके आठवर्ष पहिले जिनने तीर्थंकरका कर्मबाध्या ताके तीनकल्याणक होंय, तथा दीक्षा लिये पीछे बांध्या होंय, ताके दोय कल्याणक होंय, और जाके अन्तमुहूर्त आयु में बाकी रह्या ऐसा यतीश्वरकैं तीर्थंकर का बंधभया होय तिनकैं ज्ञान-निर्वाण दोय ही कल्याणक एकैं काल होंय। सामोशरणादि विभूति प्रगट नहीं होय। ऐसे जा कर्म के उदय पंचकल्याणक तथा तीन कल्याणक होंय, जिनकैं समोशरणादि विभूति प्रगटै सो तीर्थंकर कर्म है। ऐसा अगुराष्टक। आगे दुकदश है। तहां जाके उदय अपने योग्य जीव पर्याप्ति धारि, पांच, षट् का धारन करै सो पर्याप्त कहिए। जाके उदय शरीर

पर्याप्ति पूरण नहीं होय पहले ही मरण करै सो अपर्याप्ति कर्म है। जा कर्म के उदय एक शरीर का स्वामी एक जीव होय सो प्रत्येक कर्म है। जाके उदय एक शरीर के अनन्त जीव स्वामी होय, सो साधारण कर्म है। जाके उदय दुख आये दुख मेटवेकी शक्ति होय, और सुखी होने कौ अपनी शक्ति प्रमाण करि कायकौ चंचल करि सकै सो त्रसकर्म है। और जाके उदय सुख दुख आये स्थावरपै ही सहै, मेटनेंको असमर्थ सो स्थावर कर्म है। औरजाके उदय ऐसा शरीर पावै जाकरि अन्य वादर पदार्थन कौं आपरोकै तथा अन्य वादर पदार्थन करि अन्य वादर पदार्थन कौं आप रोकै, तथा अन्य वादर पदार्थन करि आप गमन करता रुकै, सो वादर कर्म है ॥ जाके उदय आपकै ऐसा शरीर होय, सो कोई पर्वत, वज्रादिक तें नहीं रुकै। तथा आप कोईन कूं नहीं रोकै अग्नितें, शस्त्रतें, इत्यादिक निमित्तन तें नहीं मरै, सो सूक्ष्मकर्म है। और जाके उदय महानिष्ट शुस्वर सबकौं प्रिय शब्द निकसै सो सुस्वर कर्म है। और जाके उदय ऐसा शब्द निकलै जो सर्वकौं बुरा लगै आपकौं भी बुरा लागै सो दुस्वर कर्म है। और जाके उदय शरीर में कोई ऐसा शुभ चिंह अंगोपांग में होय जाकरि सबकौं वल्लभ (प्रिय) होय, सो शुभ कर्म है। ताके और उदय शरीर में ऐसा कोई चिंह होय, जाकरि आप सबकौं बुरा लागै सो अशुभ कर्म है। जाके उदय शरीर के सप्तधातादि पुद्गल स्कंध स्थिरिभूत रहैं ताकरि रोगादि रूप धातु नहीं सो स्थिर कर्म है। और जाके उदय शरीर के सप्तधातादि चलाचल रहैं जाकरि रोग वेष्टित शरीर होय सो अस्थिरकर्म है। और जाके उदय आत्माजहाँ जाय तहाँ आदर पावै सो आदेय कर्म है। और जाके उदय आत्मा जहां जाय तहां अनादर

पावे, अपमानतें आत्मादुखी होय, सो अनादेय कर्म है। और जाके उदय जीव सुखी रहै और सर्व लोग सुखी कहैं, भले कहै, सो सुभग कर्म है। और जाके उदय जीव दुख दारिद्र-करि पीड़ित होंय ताके जन्मतेंही माता पितादिक कुटुम्ब के मरण कूं प्राप्त भए होंय महा दुखी रहता होय, लोग ताकों रंक दीन कहते होंय, सो दुर्भगकर्म है। और जाके उदय जगत तैं जश पावै, बिना दिये बिना जाने लोग जाकी कीर्ति करैं सो यशस्कीर्ति कर्म है। और जाके उदय जगत विषैं विना जानैं विना देखैं लोग जाकी निंदा करैं अपकीरति धारी होय, सो अयस्कीर्ति कर्म है। ऐसे नाम कर्म की तिरानबे प्रकृति जानना। इतिनामकर्म। आगे गोत्रकर्म। जहां जाके उदय वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्री, इन तीन कुलके मनुष्यों में तथा चारि प्रकार के देवन में उपजे सो ऊंच गोत्र कर्म है। और जाके उदय नारक, तीर्यञ्च इन दोगति में उपजे तथा मनुष्य में हीनाचारी शूद्र तिनमें उपजे सो नीचगोत्र कर्म है। इति गोत्रकर्म। आगे अन्तरायका स्वरूप कहैं हैं। जा कर्म के उदय धन होतें भी दान नहीं दिया जाय सो दानान्तराय कर्म है। और जा कर्म के उदय अनेक दिनलों उद्यम करै, पराईसेवा करि परिकों राजी करे, अपनी चतुरतातें सर्वकों प्रसन्न राखै, अनेक उपाय द्वीप, उदधि, फिरि व्यापारादि करै तौ भी लाभ नहीं होय, सो लाभान्तराय कर्म है। और जाकर्म के उदय से वस्तु भोगी नहीं जाय, आपका चित्त अपने घर में अनेक शुभ वस्तु देख भोग्या चाहे है परन्तु भोगि नहीं सकै, सो भोगअन्तराय कर्म है। और जाकर्म के उदय घरमें अनेक उपभोग योग्य बस्तु है विस्तर, हस्थी, घोटक, रतन, आभूषन, मंदिर, स्त्री, रथादि अनेक हैं परंतु भोगि नहीं सकै

सो उपभोगांतराय है। और जाकर्म के उदय अनेक भेषजादि यतन करना, नाना प्रकार षट्रस भोजन करना तौ भी तन में पुरषार्थ, पराक्रम नहीं होय, सो वीर्यान्तराय कर्म है। इति अंतरायकर्म। ऐसे अष्टमूल कर्मकी एक सौअड़तालीस (१४८) उत्तर प्रकृति कहीं आगे घाति अघाति कहैं हैं। तहां नानावरनी, दर्शनावरनी, मोहनी, अंतराय, ए चारिकर्म घातिया हैं। तिनकी प्रकृति सैंतालीश हैं। वेदनी, आयु, नाम, गोत्र, ए चारि अघातिया हैं। इनकी प्रकृति एकसौ एक हैं (१०१) तहां घातिया के भेद दोय हैं एक तो सघातिया, एक सर्वघातिया। तहां केवल ज्ञानावरनी विना चारि तौ ज्ञानावरनी, तीन दर्शनावरनी, अंतराय पांच, हास्यादि नव, संज्वलन की चारि और सम्यक्प्रकृति ए छब्बीस प्रकृति देशघातिया है। और केवलज्ञानावरनी, केवलदर्शनावरनी, निद्रा पांच, अनंतानुबंधी च्यारि, अप्रत्याख्यान च्यारि, प्रत्याख्यान च्यारि, मिथ्यात्व और सम्यकमिथ्यात् ए सब इक्कीस सर्वघाती हैं। जे अपने घातवें योग्य जे गुण तिनकौं सर्वप्रकार नहीं घात सकैं। एकोदेश घातैं सो तौ देशघातिया कहिये। और जे अपने घातवे योग्य जे गुण तिनकौं सर्वप्रकार घातैं सो सर्वघातिया कहिये हैं। ऐसे घातिया के दोय भेद कहे। आगे जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी भवविपाकी, क्षेत्र विपाकी, इन सबका स्वरूप कहिए है। तहां प्रथम ही पुद्गलविपाकी है सो कहिए है। शरीर पांच, बंधन पांच, संघात पांच, अङ्गोपांग तीन, संहनन षट्, संस्थान षट्, वर्णचतुष्ट की वीस, स्थिर, उद्योत, आताप, निर्माण, अस्थिर, अगुरलघु, अशुभ, साधारण, प्रत्येक, अपघात, शुभ, परघात, ए बासठि प्रकृति हैं सो तो पुद्गलविपाकी हैं। इन सर्व का उदय शरीर स्कंध

ऊपर ही होय है । जीव पै इनका बल नाहीं । तातैं पुद्गलविपाकी कही है । इति पुद्गल विपाकी । आगे जीवविपाकी कहिये है । तहां घातिया की सैतालीस, ॥ ४७ ॥ गोत्र की दोय ॥ २ ॥ वेदनी की दोय ॥ २ ॥ जाति पांच ॥ ५ ॥ चाल दोय ॥ २ ॥ गति च्यारि ॥ ४ ॥ तीर्थंकर ॥ १ ॥ उच्छ्वास ॥ १ ॥ पर्याप्ति—अपर्याप्ति ॥ १ ॥ त्रस ॥१॥ स्थावर ॥ १ ॥ सूक्ष्म ॥ १ ॥ वादर ॥ १ ॥ सुस्वर ॥ १ ॥ दुस्वर ॥ १ ॥ आदेय ॥ १ ॥ अनादेय ॥ १ सुभग ॥१॥ दुर्भग ॥ १ ॥ यशस्कीर्ति ॥ १ ॥ अयस्कीर्ति ॥ १ ॥ ऐसे अठत्तरिप्रकृति अपना उदय जीव पै करि सुख-दुख करैं हैं । तातैं इनकों जीवविपाकी कहिए । इति जीवविपाकी । आगेत्तेत्र-विपाकी । आनपूर्वी च्यारि ए अपने योग्य अन्तराल का त्तेत्र तामें इनका ही उदय होय है । भावार्थ—जो जीव वर्तमान शरीर तजिकैं वक्रगति सहित अन्यपर्याय में उपजकौं जाय तब अन्तरालमें कार्माणअवस्थाके त्तेत्र विषैं आनुपूर्वीका उदय होय है । इति त्तेत्रविपाकी । आगे भवविपाकी । आगे च्यारि आयुकर्मन का उदय अपने अपने भव विषैं ही होय है । तातैं च्यारि आयु भवविपाकी जानना । इति भवविपाकी । ऐसे पुद्गलविपाकी वासठि ॥ ६२ ॥ जीवविपाकी अठत्तर ॥ ७८ ॥ त्तेत्रविपाकी च्यारि ॥ ४ ॥ भवविपाकी च्यारि ॥ ४ ॥ ऐसे ए सर्व एकसौअड़तालीस हैं ॥ १४८ ॥ ऐसे कहे जो ए अष्टमूल कर्म सो द्रव्यकर्म है । ए सर्व द्रव्यकर्म पुद्गलन के स्कंध जानना । सो इन अष्टकर्मन करि समस्त संसारी जीव बंधे हैं । सो जीवराशि दोय प्रकार हैं । एकतौ संसारी, एक मोत्तजीव । तिनमें संसारीन के दोय भेद हैं । एक भव्य, एक अभव्य । तहां अभव्य राशि, अरु भव्यराशितैं अनंतानंत

गुणे जीव और दूरभव्य, अभव्य, समानि कबहूं मोक्ष योग्य नाहीं । तथा और भी केते मिथ्यादृष्टी जीव मोहराग के चोर सो कर्म संकलान (जंजीर) तैं बंधे, मोहनृप के वंदी खाने पड़े हैं सो मिथ्यात योग बंधानतैं कबहूं नहीं छूटैं । ऐसे अनादि मिथ्यात्वधारी जीव अनंत हैं । और इनमें कोई जीव मोक्ष जावे योग्य हैं, ते कारन पाय मोक्ष होंय, सो एतौ संसारी राशि कही । अरु निकटभव्य जीव जो सासादन दूसरे गुणस्थान तैं लगाय अयोगी गुणस्थान पर्यंत है सो यह मोक्षजीव हैं ए सर्व मोक्ष जावे योग्य हैं । इनमें यथायोग्य कर्मन का संबंध है । कोई कर्मबंध करने योग्य हैं । इन जीवन पै द्रव्यकर्म का बंध पाइए है । सर्व अष्टकर्म की प्रकृति एकसौअड़तालीस हैं । तिनमें बंध योग्य एकसौबीस हैं । बाकी अठाईस इनकी इन ही में गर्भित करी हैं । वर्णचतुष्क की बीस थीं सो च्यारि ही मूल राखी, उत्तर भेद तिनके सोलह सो तिन च्यारि में ही गर्भित किये और पंच बंधन, पंचसंघात ए दश प्रकृति पंच शरीरन में मिला दई । दर्शनमोह के तीन भेद थे सो दोय भेद एक मिथ्यात में मिलाए । ऐसी वर्ण की सोलह, शरीरादिक की दश, दर्शनमोह की दोय । ए सर्व अठाईस एकसौ बीस में गर्भित करीं । और एकसौबीस राखीं सो बंध योग्य प्रकृति नाना जीवापेक्षा एकसौबीस । तिनकौं अब गुणस्थानत्व प्रति कहिए हैं । सो मिथ्यात गुणस्थान में आहारक द्विक की दोय एक और तीर्थंकरए तीन प्रकृति नहीं बधैं हैं । उपरिले गुणस्थान में यथायोग्य आय मिलैंगी । मिथ्यात्व में एकसोसत्तरा प्रकृति नाना जीवापेक्षा बंधयोग्य हैं । और मिथ्यात्व छूटि जब इस जीवकूं उपरिले गुणस्थान की प्राप्ति होय है । तिनके बंध कहिए

है। सो सासादन में ये सोलह प्रकृति का बंधनाहीं। मिथ्यातूही में रहै है। तिनके नाम मिथ्यात्व। "नपुंसक बेद" के "नरककात्रिक, ॥ ३ ॥ स्फाटिक संहनन ॥ १ ॥ हुंडक संस्थान ॥ १ ॥ जाति च्यारि ॥ ४ ॥ सूक्ष्म ॥ १ ॥ साधारण ॥ १ ॥ अपर्याप्ति ॥ १ ॥ आताप ॥१॥ स्थावर ॥ १ ॥ ए सोलह का बंध दूसरे सासादनगुणस्थान में नाहीं। तातें सासादन में एक सौएक का बंध है। और तीसरे गुणस्थानमें दूसरे सासादन से पचीसकी व्युच्छित्ति करी तिनके नाम। अनन्तानुबंधी च्यारि ॥ ४ ॥ मध्य के संहनन च्यारि ॥४॥ संस्थानमध्य के च्यारि ॥४॥ निद्रामोटी तीन ॥ ३ ॥ तिर्यञ्चत्रिक कीं तीन ॥ ३ ॥ दुर्भग ॥ १ ॥ दुस्वर ॥१॥ अनादेय ॥ १ ॥ स्त्रीवेद ॥ १ ॥ नीचगोत्र१उद्योतनाम ॥१॥ अशुभ चाल ॥१॥ ए पचीस तजि तीसरे गुणस्थान छिहंतरि लेय आया यहां देव और मनुष्य आयु ये दो का बंध भी नाहीं चौहत्तरि का बंध तीजे गुणस्थान है। इहां व्युच्छित्ति नाहीं एही चौहत्तरि लेय चौथे गुणस्थान आय तहां तहां देवायु मनुष्यायु तीर्थंकर, ए तीन यहाँ मिली तव सर्व मिल सतेत्तरि ॥ ७७ ॥ का बंध चौथे गुणस्थान में है। तहां दश की व्युच्छित्ति तिनके नाम। अप्रत्याख्यान की च्यारि ॥ ४ ॥ मनुष्यकात्रिक ॥ ३ ॥ औदारिक शरीर ॥ १ ॥ औदारिक अंगोपांग ॥ १ ॥ वज्रवृषभनाराच संहनन ॥ १ ॥ इन दश की व्युच्छित्ति करि सड़सठिका बंधलेय पंचम गुणस्थान में आया। तहाँ प्रत्याख्यान की चौकड़ी की व्युच्छित्ति करि तिरेसंठिलेय छटेगुणस्थान में आया। यहां प्रमत्त में त्रेसठिकाबंध है। यहाँ षट् की व्युच्छित्ति तिन के नाम अस्थिर ॥ १ ॥ अशुभ ॥१॥ असाता ॥१॥ अयश ॥१॥ अरति ॥१॥ शोक ॥१॥ ए षट्की व्युच्छित्ति करि सत्तावन लेय सातवें

गुणस्थान गए तहां अहारक द्विक मिल्या तब गुणसठि (उहसठि ५६) का बंध अप्रमत्त में । तहां देवायु की व्युच्छित्ति । अठावन लेय आठ में गुणस्थान आया । तहाँ छत्तीस प्रकृति की व्युच्छित्ति तहां सातभाग । सो प्रथम भाग में निद्रा ॥१॥ प्रचला ॥१॥ ए दोय की विच्छुत्ति । और चारभाग में व्युच्छुत्ति नाहीं । और छटेभाग में तीसकी व्युच्छित्ति । तहाँ अगुरुलघु ।१। उच्छ्वास ॥ १ ॥ अपघात और परघात ए च्यारि अगुरुलघु चतुष्ककी हैं । और तीर्थंकर ॥ १ ॥ निर्माण ॥ १ ॥ पर्याप्त ॥ १ ॥ प्रत्येक ॥ १ ॥ त्रस ॥ १ ॥ वादर ॥ १ ॥ सुस्वर ।१। शुभ ॥ १ ॥ स्थिर ॥ १ ॥ आदेय ॥ २ ॥ सुभग ॥ २ ॥ वरणचतुष्क की च्यारि ॥ ४ ॥ पंचेन्द्रिय ॥ २ ॥ समचतुर संस्थान ॥ २ ॥ शुभचाल ॥ २ ॥ देवगति ॥ २ ॥ देवगत्यानुपूर्वी ॥ २ ॥ वैक्रियक अंगोपांग ॥ २ ॥ अहारक अंगोपांग ॥ १ ॥ वैक्रियक शरीर ॥ २ ॥ अहारकशरीर ॥ १ ॥ तैजसशरीर ॥ १ ॥ कर्माणशरीर ॥ २ ॥ ऐसे ए तीस प्रकृति की छठे भाग में व्युच्छित्ति । अरु सातवें भाग में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, ए च्यारि, ए सर्व सातही भाग की छत्तीस की अष्टममें विच्छित्ति करि नवम में गये तहाँ बाइस का बंध है इहां संज्वलन की चौकड़ी की च्यारि ॥ ४ ॥ पुरुषवेद ॥ १ ॥ इन पंचन को व्युच्छित्ति अनिवृत्त में करि सत्तराप्रकृतिन का बंध दशमें लेय गया । तहाँ सोलह की विच्छुत्ति । ज्ञानावरणी की पांच ॥ ५ ॥ अंतराय पाँच ॥ ५ ॥ दर्शनावरण च्यारि ॥ ४ ॥ उच्चगोत्र ॥ १ ॥ यशस्कीर्ति ॥ १ ॥ इन सोलह की विच्छुत्ति दशमेंगुणस्थान में करि । एक साताबेदनी रही सो ग्यारहमें बार में तेरह में इन तीन गुणस्थान में एक साता का बंध है । तेरह में तैं चौदह में गए तब

साता की व्युच्छित्ति, तेरहमें करि चौदहवें गुणस्थान गया। तहां बंध नाहीं। यह कर्मबंध सयोग गुणस्थानवर्ती भगवान कैं कह्या है। सो योगनके निमत्तपाय सातावेदनी का उपचार करि बंध कह्या है। सो बंध स्थिति-अनुभाग रहित है। परन्तु निमित्तके सद्भाव होतें प्रकृति प्रदेशबंध है। सो आत्मा कौं सुख-दुखकारी नाहीं। सुख-दुखदायक तो स्थिति-अनुभाग है। सो मोहके अभावतैं कषायनका अभाव है। अरु कषायन के अभाव तैं स्थिति अनुभागबंध का अभाव है। तथापि यहाँ योगत्रिक है। तातें योगनके निमित्ततैं तेरहवेंगुणस्थान ताईं कर्मका बंध कह्या है। और केतेक अतत्वश्रद्धानी दीर्घमोहके उदयतैं ऐसा मानै हैं। जो हम सम्यकवंत है। सो हमारे कर्मबंध होता नाहीं–हम अबंध हैं। ऐसा उल्टा श्रद्धानकरि कर्मबंधके मेटवेतैं निरुद्यमी होय, आपकों अशुद्ध का शुद्ध मानि अनेक असंयमक्रियाकरि, विषय-कषायन रूप परणति करि, अपना परभव विगारै हैं। ताकौं कहिए है। भो विषयन के लोभी, तूं देखि। कर्मनका बंध मुनीश्वरों तें लगाय केवलीभगवान् ताईं यथायोग्य गुणस्थान ताँई पदस्थप्रमाण, समस्त संसारी जीवन कौं होय है। और जे कर्मरहित जीव हैं तिनके कर्मका बंध नाहीं होय है। तातें भो भव्यात्मा, तूं स्वेच्छाचार परणाम तजिकैं जिनदेव भाषित प्रमाण, सरधान (श्रद्धान) करि, आपका अनादि संचित कर्मबंध रूप मलतें शुद्ध होयवे का उपाय करि। तातैं अतीन्द्रियसुख का भोक्ता होय। ऐसे सयोग केवलीगुणस्थानमें एक सातावेदनी का बंध, ताकी व्युच्छित्तिकरि अयोगकेवली होय, अल्पकाल रहकैं सिद्धपद पावै हैं। ऐसा सामान्य बंधकास्वरूप कह्या। इति बंध प्रकरण समाप्तम् ॥ ४ ॥

आगे गुणस्थानप्रति कर्मनका उदय कहिए है। तहाँ बंधमें मिथ्यात एक था। यहाँ दर्शनमोह की तीन जानना, सो एकसौबीस तो बंध की। और सम्यग्मिथ्यात व सम्यक्प्रकृति ए दोय और बधाई, तब उदय योग्य एकसौबाईस हैं ॥ १२२ ॥ अब नानाजीव अपेक्षा गुणस्थान कहिए हैं। तहां मिथ्यातमें आहारकद्विक की दोय। तीर्थंकर ॥ १ ॥ सम्यग्मिथ्यात ॥ १ ॥ सम्यकप्रकृति ॥ १ ॥ ए पंच प्रकृति मिथ्यातमें उदययोग्य नाहीं। तातें प्रथम गुणस्थान में एक सौ सत्रह का उदय है। तहां सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्ति, आताप और मिथ्यात ए पंचप्रकृति मिथ्यात्वमें व्युच्छित्ति कर एकसौबारह प्रकृति लेय सासादन में आया। सो यहां नरकानुपूर्वी उतारी, तहां एकसौग्यारह का उदय। तहां अनंतानुबंधी ॥ ४ ॥ जाति च्यारि ॥४॥ और स्थावर इन नवकी व्युच्छित्ति करि मिश्रगुणस्थान में एक सौ दोय लेय आया। तीन आनुपूर्वी उतारी, तब निन्यानवै रहीं। तहां एक मिश्रमोहनी मिली। तहां मिश्रगुणस्थान में एकसौप्रकृति का उदय है। तहां मिश्रमोहनी की व्युच्छित्ति तीजे गुणस्थान करि, चौथेगुणस्थान में आया। तहां आनुपूर्वी च्यारि ॥ ४ ॥ सम्यक प्रकृति ॥ १ ॥ ए पंच यहां मिली तब चौथे में एकसौच्यारि का उदय है। इहां सत्तरहकी व्युच्छित्ति। तिनके नाम—अप्रत्याख्यान ॥४॥ देवगति ॥ १ ॥ देवगत्यानुपूर्वी ॥ १ ॥ देवायु ॥ १ ॥ नरकगति ॥ १ ॥ नरकगत्यानुपूर्वी ॥ १ ॥ नरकआयु ॥ १ ॥ वैक्रियक ॥ १ ॥ वैक्रियकअङ्गोपांग। तिर्यंचगत्यानुपूर्वी ॥ १ ॥ मनुष्यगत्यानुपूर्वी ॥ १ ॥ दुर्भग ॥ १ ॥ अयशस्कीर्ति ॥ १ ॥ अनादेय ॥ १ ॥ ए सत्तरह

व्युच्छित्ति करि पंचगुणस्थान में आया। तहाँ सत्यासी (८७) का उदय है। इहां आठ की व्युच्छित्ति, प्रत्याख्यान च्यारि ॥ ४ ॥ तिर्यञ्चगति ॥ १ ॥ तिर्यंचायु ॥ १ ॥ नीचगोत्र ॥ १ ॥ उद्योतनाम ॥ १ ॥ ए आठ की व्युच्छित्ति करि पंचमें तैं छठेमें आया। यहां अहारकद्विक मिले तब इकयासी का उदय होय है। इहां अहारकद्विक की दोय ॥ २ ॥ मोटी निद्रा तीन ॥ ३ ॥ इन पंचन की व्युच्छित्ति छठेमेंकरि सातवें में आया, सो अप्रमत्तमें छिहत्तरि का उदय है। इहां संहनन अन्त के तीन ॥ ३ ॥ सम्यक्प्रकृति ॥ १ ॥ इन च्यारि को व्युच्छित्ति करि आठवें में आया, सो यहां बहत्तर का उदय है। यहां षट् हास्यादिककी व्युच्छित्ति करि नववें में आया, तो यहां छयासठि का उदय है। नववें में तीनवेद, संज्वलनकी लोभविना तीन, इन षट्की व्युच्छित्ति करि साठि लेय दशवें में आया। दशवें में सूक्ष्मलोभ की व्युच्छित्ति करि ग्यारहवें में आया, यहां गुणसठि (उनसठि) का उदय। नाराच, वज्रनाराच, इन दोय की व्युच्छित्ति करि बारहवें में गया। यहां विशेष एता जो नाराच, वज्रनाराच, इन दोय संहनन सहित क्षायिक श्रेणी नहीं चढ़ै है। जो उपशांत के मार्ग आवै सो उपशम श्रेणीवाला आवै है। जे जीव क्षायिकश्रेणी चढ़ै सो पंच संहनन की व्युच्छित्ति सातवें में ही करै है। एक वज्रवृषभ नाराचसंहननसहित श्रेणी चढ़ि दशमें ते बारह में ही आवै। ग्यारह में नहीं जाय। ऐसा जानना और इहां उपशमश्रेणीवारे की अपेक्षा ग्यारवें में नाराच, वज्रनाराचसंहनन की व्युच्छित्ति कही है। प्रथम संहनन वाला तो दोऊ श्रेणि चढ़ै है ऐसा जानना। अब सत्तावन लेय बारहवें में आया। तहां ज्ञानावरणी पांच, दर्शनावरणी छह ॥ ६ ॥ अंतराय पांच ॥५॥

ए सोलह प्रकृति बारवें में व्युच्छित्ति करि तेरवें में आया। तहां तीर्थंकरप्रकृति आय मिली बियालीस का उदय सयोग में है। तहां तीस की व्युच्छित्ति-वर्णचतुष्ककी च्यारि ॥ ४ ॥ अगुरुचतुष्ककीच्यारि ॥ ४ ॥ संस्थानषट् ॥ ६ ॥ चाल दोय ॥ २ ॥ औदारिक ॥ १ ॥ औदारिक अंगोपांग ॥ १ ॥ तैजस ॥ १ ॥ कार्माण ॥ १ ॥ शुभ ॥ १ ॥ अशुभ ॥ १ ॥ स्थिर ॥ १ ॥ अस्थिर ॥ १ ॥ सुस्वर ॥ १ ॥ दुस्वर ॥ १ ॥ प्रत्येक ॥ १ ॥ निर्माण ॥ १ ॥ वज्र-वृषभनाराच संहनन ॥ १ ॥ वेदनी ॥ १ ॥ ए तीस की व्युच्छित्ति तेरवें में करि बारह लेय अयोगगुणस्थान गया। तहां चौदहवें में बारह का उदय अरु बारह ही प्रकृति की व्युच्छित्ति पंचेन्द्रिय, पर्याप्ति, त्रस, बादर, मनुष्यगति, मनुष्यायु, ऊंचगोत्र, यशस्कीर्ति, आदेय, सुभग, तीर्थंकर, वेदनी, इन बारहों ही की चौदहवें में व्युच्छित्ति करि, आत्मा अष्टकर्म रहित शुद्ध, परमात्मा निरंजन अमूर्तीक, इत्यादि गुण प्रगट होय, सिद्धलोक कौं प्राप्त होय है। ऐसे सिद्धभगवानकौं हमारा नमस्कार होऊ। ऐसे उदयका सामान्यस्वभाव कह्या। इति उदय ॥

आगे सत्ता का स्वरूप संक्षेप कहिए है। तहां सत्तायोग्य प्रकृति एकसौअड़तालीस हैं। नाना जीव अपेक्षा जहां विशेष है सो पहले कहिए है। जो जीव सम्यक् पायकैं ऊपर ले गुणस्थानन में कबहूं नहीं गया होय, सो ऐसा अनादिमिथ्यादृष्टि, ताके आहारकचतुष्क की च्यारि ॥ ४ ॥ सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात और तीर्थंकर, इन सात बिना एकसौइकतालीस की सत्ता है। और सादि मिथ्यादृष्टि कें जाके मिश्रमोहनी की सत्ता होय, ताके एकसौ बियालीस की सत्ता है। जहां मिश्र-मोहनी की सत्ता नाहीं, ताकी जगह सम्यक्प्रकृति की सत्ता होय, तौ भी एकसौव्यालीस की ही

सत्ता होय। और एकसौ इकतालीस तौ अगली अरु मिश्रमोहनी व सम्यक्प्रकृति इन दोय की और भए एकसौतियालीस (तितालीस) की सत्ता होय है। और जाके तीर्थंकर की सत्ता होय, मिश्रमोहनी की नहीं होय। ताके भी एकसौ तियालीस की ही सत्ता होय है। और जाके मिश्रमोहनी व आहारकचतुष्क की सत्ता होय ताके एकसौअड़तालीस की सत्ता होय। ऐसे सामान्य सत्ता का स्वरूप कहिए है। विशेष भंग इहां ग्रंथ बढ़ने के भय से तथा यह बालबोध ग्रंथ है सो कठिन होने के भयतैं नहीं लिखे हैं। इनका विशेष श्री गोमट्टसार जी के "कर्मकांड" महाधिकार तामें विशेष सत्ता अधिकार है तहां तैं जानना। ऐसे सत्ता योग्य प्रकृति नाना जीव अपेक्षा एकसौअड़तालीस हैं। तहां प्रथम गुणस्थान में एकसौअड़तालीस की सत्ता है। और आहारकद्विक, तीर्थंकर इन तीन बिना सासादन में एकसौपैंतालीस की सत्ता है। इन तीन प्रकृति की जाकें सत्ता होय, ताके दूसरा गुणस्थान नहीं होय। सो तीसरे गुणस्थान में अहारकद्विक आय मिला। तातैं मिश्रमें एकसौसैंतालीस की सत्ता भयी। और चौथे गुणस्थान मैं तीर्थंकर भी मिला, सो चौथे में एकसौ अड़तालीस की सत्ता है। और यहां चौथे गुणस्थान में नरकायु की व्युच्छित्ति करि पांचवों गुणस्थान आया। भावार्थ-जाके नरकायु की सत्ता होय ताके पंचम गुणस्थान नहीं होय, तातें पंचवों में एकसौ सैंतालीस की सत्ता है। और जाके तिर्यंचायुकी सत्ता होय तिनकौं महाव्रत नहीं होय, तातें तिर्यंचायु की व्युच्छित्ति पांचवैं में करि छठे में आया। तहां प्रमत्त में एकसौ छियालीस की सत्ता है। इहां व्युच्छित्ति नाहीं। और आगे जे जीव उपशमश्रेणी चढ़ैं ताके ग्यारहवेंगुणस्थान लूं एकसौ छयालीस

की सत्ता होय है, आगे गमन नाहीं । और क्षायकश्रेणी चढ़नेवालाजीव सप्तमगुणस्थान में अनंतानुबंधी की च्यारि ॥ ४ ॥ दर्शनमोहनीकीतीन ॥ ३ ॥ देवायु ॥ १ ॥ इन आठन की व्युच्छित्ति अप्रमत्तमें करि एकसौअड़तीस लेय अष्टम में आया, इहां व्युच्छित्ति नाहीं । अरु एकसौअड़तीस लेय नवममें गया । तहां नववें में व्युच्छित्ति तिनके नाम—प्रत्याख्यान ॥ ४ ॥ अप्रत्याख्यान च्यारि ॥ ४ ॥ लोभविना संज्वलनकी तीन ॥ ३ ॥ हास्यादि नव ॥ ९ ॥ ए मोहकी वीस ॥ २० ॥ दर्शनावरणीकी मोटीनिद्रातीन ॥ ३ ॥ और नामकर्म की जाति च्यारि ॥ ४ ॥ नरकगति ॥ १ ॥ नरकगत्यानुपूर्वी ॥ १ ॥ तिर्यंचगति ॥ १ ॥ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी ॥ १ ॥ सूक्ष्म ॥ १ ॥ साधारण ॥ १ ॥ अपर्याप्ति ॥ १ ॥ आताप ॥ १ ॥ स्थावर ॥ १ ॥ ए सोलह नामकर्मकी सर्व मिल छतीस भई । ए नवमें में व्युच्छित्ति करि दशवें में आया । इहां एकसौ दोय की सत्ता है । तहां सूक्ष्म लोभकी व्युच्छित्ति करि वारवें में आया । तहां एकसौएककी सत्ता है । सो इहां ज्ञानावरणीपांच, दर्शनावरणीकीषट्, अन्तराय की पांच । ए सोलह की व्युच्छित्ति करि वारवें तें पच्यासी लेय कें तेरहवें में गया । तहां व्युच्छित्ति नाहीं। पच्यासी लेय चौदह में गया। तहां पच्यासीकी सत्ता अरु यहां ही उनकी व्युच्छित्ति सो चौदहवें गुणस्थान के अन्त के दोय समय में पिच्यासी की व्युच्छित्ति । सो प्रथम समय में वहत्तरि, चरम समय में तेरा । सो प्रथम समय वहत्तरि तिनके नाम वेदनी एक ॥ १ ॥ गोत्रकी एक ॥ १ ॥ नीचगोत्र ॥ १ ॥ वरणचतुष्ककी वीस ॥ २० ॥ संस्थान ॥ ६ ॥ संहनन ॥ ६ ॥ शरीर पांच ॥ ५ ॥ बंधन ॥ ५ ॥ संघातपांच । अंगोपांगतीन । चालदोय । देवगति ।

देवगत्यानुपूर्वी। अगुरुलघु। निर्माण । उच्छ्वास। अपघात। परघात। उद्योत। प्रत्येक। स्वरदुकक्रीदोय। शुभ। अशुभ । स्थिर । अस्थिर । दुर्भग। अनादेय। अयश। ए सर्व मिलि बहत्तरि जानना ॥ ७२ ॥ ए तौ चौदहवें गुणस्थान का सर्व काल पूरण होते दोय समय बाकी रहे तहां ताईं तो व्युच्छित्ति नाहीं । अरु दुचरमसमयमें इन बहत्तरि की व्युच्छित्ति करी। अब अन्त के समय मैं व्युच्छिति-पंचेन्द्रिय, पर्याप्ति, त्रस, बादर, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, ऊंचगोत्र, यशस्कीर्ति. आदेय, सुभग, तीर्थंकर, वेदनी, ए तेरा प्रकृति चरम समय व्युच्छित्ति करि जीव सिद्ध होय है । ऐसे अयोगगुणस्थानमें पिच्यासी कर्म प्रकृतिन की व्युच्छित्ति करि सर्व कर्मरज रहित शुद्ध निरंजन अमूर्ति सिद्ध परमात्मा होंय हैं। ऐसे शुद्धआत्मा कौं बारंबार नमस्कार होऊ। ऐसे यह पुद्गल द्रव्य संसारी जीवनके रागद्वेष परणामकरि ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप होय, जीवन के बंध उदय सत्ता रूप होय, नर नारकादि अनेकगतिन में भ्रमण करावै हैं। इति श्रीसुदृष्टितरंगिणीनामग्रंथ मध्ये अजीवतत्व द्रव्यकर्मपुद्गलीक तिनका बंध, उदय, सत्तारूप परिणमन शक्ति सहित कथन वर्णनो नाम पंचमपर्व सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

अथानन्तर मोही जीवन कूं जैसे द्रव्यकर्म नचावै है तैसे ही नाचैं हैं। जैसे बाजीगर दंडकरि बंदर कौं अनेकवार नचावै है। तैसे ही संसारी जीवनकौं कर्मबाजीगर आशारूपी दंड तैं अनेक बार नचावै है। तथा जैसे कोई नट, धन के लोभ तैं अपने एक तनके अनेक स्वांग धरि, लोकन कूं दिखाय आश्चर्य उपजावे। कबहूं राजाका स्वांग धरै, कबहूं रंकका,

कबहूं स्त्री, कबहूं नर, कबहूं सिंह, कबहूं बकरी आदि अनेक स्वांग अपने तनके उपरला खलका रूपी वस्त्र ताकूं फेरि-फेरि स्वांग बदलि-बदलि तमाशगीरिनकों हर्ष—विषाद उपजावै है। तैसे ही यह जीवरूपी नट अपने कर्मजनित शरीरका खलका (आवरण) ताकौ पलटि २ अनेक स्वांगकरि नांचै है। अनेक स्वांगधरि जगत में निरत (नृत्य) करता गमन करै है सो या जीवके गमन करवेके मार्ग चौदह हैं। इनही चतुर्दशमार्गन में अनादि कालका जीव गमन करै है। सोही मार्ग बताईए है॥ गाथा—

[गई इंदियं च काये, जोंए वेए कसाय णाणेया।
संजम दंसण लेस्सा, भविया सम्मत सण्णि आहारे॥

गति च्यारि। इन्द्रिय पांच। काय षट्। योग पन्द्रह। वेद तीन। कषाय पच्चीस। ज्ञान आठ। संयम सात। दर्शन च्यारि। लेश्या षट्। भव्य-अभव्य मार्गणा। सम्यक् षट् संज्ञीदोय, और आहार दोय ऐसे चौदह भेद मार्गणा हैं। अब इनका सामान्य अर्थ लिखिए है। तहां गति नाम कर्म के उदय गतिसम्बन्धी शरीरनके आकार धरना सो गति है। और इन्द्रियनामकर्म के उदय तें जेती इन्द्रिय अपने शरीर योग्य इन्द्रियनके आकार होंय, सो इन्द्रियमार्गणा है। त्रसस्थावर नाम कर्म के उदय करि त्रस और स्थावर पर्याय में जन्म लेना सो काय है। और नोइन्द्रियकर्मके बलतै अष्टपांखड़ीका कमलाकार द्रव्यमन के निमित्तपाय आत्माके प्रदेशन का चंचल होना सो मनोयोग है। और स्वर कर्म के उदय बचन बोलनेका च्यय, उपशम होना, ताके निमित्त पाय आत्मा के प्रदेशन

चंचल होना, सो वचन योग है। और पंच प्रकार शरीर के उदयतें यथायोग्य काय का निमित्त पाय, आत्मा के प्रदेशन का चंचल होना, सो काय योग है। ऐसे योग हैं। और वेदकर्मके उदयसे स्त्रीकी चाहि तथा पुरुष की चाहि तथा स्त्री-पुरुष की युगपत चाहि, इत्यादि भाव सो वेद है। और चारित्रमोह के उदय क्रोध-मानादिक कषाय रूप होना, सो कषाय है। और जोकरि आत्मा स्वपर पदार्थन कौं जानै, सो ज्ञान है। और मोह के तीव्र उदय करि, विषयन में मोहित होय, दया विषैं प्रमादी होय प्रवर्तना, सो असंयम है। और अप्रत्यक्त ज्ञानके उदय सहित आत्मा का व्रताव्रत रूप युगपत प्रवर्तना, सो देश संयम है। और सर्व सावद्य-रहित क्रिया रूप प्रवर्तना, सो सकल संयम है। ताके पंच भेद हैं। और दर्शनावरणी के क्षयोपशमतैं स्वपर के देखने की शक्ति, सो दर्शन है। और कषायन सैं रंजायमान योग, सो लेश्या है। और मोक्ष होने योग्य सम्यग्दर्शनादि सामग्री प्रगट होने की नाहीं, सो अभव्य है। और मोक्ष होने योग्य रत्नत्रयादि सामग्री प्रगट होय ताके, सो भव्य है। ता भव्य के तीन भेद हैं। और जीव, अजीव, तत्वन का भले प्रकार जानपना, दिढ़ि श्रद्धान, सो सम्यक् है। सो तत्व श्रद्धान तथा अतत्व श्रद्धान करि षट् भेद रूप है। और मन का क्षयोपशम होने योग्य तथा मन का क्षयोशम नहीं होने योग्य ऐसा जीव, सो संगी मार्गणा है। और औदारिक, वैक्रियक, आहारक इन तीन शरीर रूप पुद्गलनका ग्रहण, सो आहारक है। कर्माण अन्तराल में इन तीन शरीर का ग्रहण नाहीं, सो अनाहारक है। ऐसे जीव के आवागमन करवे के चौदह मार्ग कहे। और भी जीव के गमन के स्थान हैं सो कहिए हैं—

गाथा—गुण जीवा पज्जत्ती, पाणा सरणाय मग्गणा ओय ।
उवओगोविय कमसो, वीसंतु परुवणा भणिदा ॥

अर्थ—तहां गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणा, उपयोग. ऐसे इस गाथा में बीस प्ररूपणा जानना । अब सामान्य अर्थ—तहां प्रथम गुणस्थानन का सामान्य अर्थ—तहां दर्शन मोह तीन, अनन्तानुबंधी च्यारि इन सात कर्म प्रकृतिन के उदय जीव कौं अतत्व श्रद्धान भाव का होना, ताकरि पंच प्रकार मिथ्यात रूप रहना, सो मिथ्यात गुण स्थान है। इसके होतें जेते गुण होय, सो मिथ्यात गुण है। तातें याका नाम मिथ्यात गुणस्थान है। और प्रथमोपशम सम्यक्धारी, अपने योग्य अन्तमुहूर्त काल पूरण करतें, उत्कृष्टपने छह आवली काल बाकी रहतें, अनन्तानुबंधी च्यारि में ते, कोई एक कषाय का उदय होतें, मिथ्यात रहित अनन्तानुबंधी सहित होय, सो सासादन सम्यक् कहावे हे। सो यह सासादन, मिथ्यात समानि गुण को धरे है। जैसे खीर भोजन करि पीछे वमन करिए ताका लेश रह जाय, अलपकाल खीरका स्वाद रहै पीछे जाता रहैगा। तैसे ही सम्यक् पाय कें, ताकौं वमन कहिए तजिकैं, मिथ्यातकों आवै हे। सम्यक् काल है तातें सम्यक् कह्या हे। तातें सासादन सम्यक है। और मिश्रमोह के उदय तें मिश्र श्रद्धान होय है। जैसे मिश्री अरु दही मिलाय के खाये, खाटामिष्ट स्वाद दोऊ एकै काल आवै। तैसे ही मिथ्यात अरु सम्यक् इन दोऊ रूप एक श्रद्धान होय है तातें याकानाम मिश्रगुणस्थान है। और दर्शन मोह की तीन, अनन्तानुबंधी च्यारि इन सातन के क्षयोपशमतैं भया जो आत्मा कें षट् द्रव्य,

नव पदार्थ, पंचास्तिकाय, इन के गुणपर्यायनका यथावत श्रद्धान का अनुभवन सो ही सांची दृष्टि, वही सम्यक कहिए। यह चारित्र मोहके उदय, संयम नहीं धर सके, सो असंयमी है। तातें अव्रत सम्यग्दृष्टि कह्या है। और तहां त्रस हिंसा का त्याग सो तो व्रत है। और पंच स्थावरन में व्रत करना तो है, परन्तु सर्व प्रकार हिंसा बचती नाहीं, निमित्त पाय स्थावर हिंसा होय है, तातें स्थावर हिंसा का त्याग नाहीं। मन और इन्द्री वश रहती नाहीं। तातें ग्यारह अव्रत हैं तातें इस पंचम गुणस्थान में व्रत, अव्रत, दोऊ हैं। तातें याका नाम व्रताव्रत है। तथा अल्प व्रत के योगतें देशव्रत भी नाम है। और तहां प्रत्याख्यान के अभावतें सकल संयम भया ताके, सो एकाग्र ध्यान का अवलम्बन छूटि, किंचिद् प्रमाद के वश करि, आहार विहार उपदेशादि रूप क्रिया, वचन इत्यादिक रूप प्रवर्त होना, सो प्रमत्त छठा गुणस्थान है। और तहां विहार उपदेशादि क्रिया रहित ध्यानावलम्बी योगीश्वर ताकौं प्रमाद रहित अप्रमत्त गुणधारी कहिए। और तहां करण होने के निमित्त पाय परिणामन की महा विशुद्धता के योगतें समय-समय अनंत गुणी विशुद्धता लिए समय-समय असंख्यात गुणी निर्जरा कर्मनकी होय, सो अपूर्वकरण अष्टम गुणस्थान कहिए। और याहीतें अधिक विशुद्धता लिये हास्यादिक नो कषाय के रस रहित, अपने गुण योग्य काल एक रूप वर्तना, अनेक जीवन की एकसी विशुद्धता होनी और रूप नाहीं होनी, सो अनिवृत्त करण है। और अल्प मोह के अंशनि का सद्भाव और सकल मोह का अभाव सहित, निराकुल सुख का स्थान, सो सूक्ष्मसाम्पराय दशमां गुणस्थान है। और सकल मोह के उपशम भावतें आत्मा के

प्रदेश अडोल—निराकुल सुख मई यथाख्यात चारित्र का स्थान, उपशांत मोह नाम
ग्यारमां गुणस्थान है। और सकल मोह के क्षय भावतें प्रगट होय महासुख स्थान, केवल-
ज्ञान का निकटवर्ती सो क्षीण मोह बारमां गुणस्थान है। और च्यारि घातिया कर्म रहित
अनन्त चतुष्टय सहित केवलज्ञानी सकल सिद्ध भगवान्, रागद्वेष कषाय रहित मन, वचन,
काय, योग सहित, सो सयोग गुणस्थान है। इहां भव्य जीवन के सम्बोधन निमित्त वचन-
प्राण की शक्ति सहित वचनयोग के निमित्त पाय, वचन का उपदेशरूप खिरना, ताकौं सुनि
भव्य ताकौं शिव सुख मार्ग बतावनेकूं दिव्यध्वनि करि उपदेश करते, काय प्राण के जोरतैं
काययोगतैं अनेक देशन में विहार कर्म करते, समोशरण सहित विचरैं सो, तेरमां गुणस्थान
है। सो याही गुणस्थान विषैं अन्तर्मुहूर्त बाकी रहै, केईक केवलीन कैं समुद्घात होय है। सो
समुद्घात के भेद सात हैं। सो यहां केवल समुद्घात का निमित्त पाय समुद्घात का
स्वरूप कहिए है। सो प्रथम ही नाम कहिए है—वेदना, कषाय, वैक्रियक, मारणान्तिक,
तैजस, आहारक, केवल, ए सात तौ समुद्घात हैं। एक भेद उत्पाद ऐसे ए आठ
भेद हैं। अब इनका संक्षेप स्वरूप लिखिए है। तहां महावेदना के योगतैं आत्मा के
प्रदेश शरीरके बाहिर निकसना, सो वेदना समुद्घात है। सो वात, पित्त, ताप, पेट, नेत्र,
क्रिमि इत्यादिक अनेक रोग सहित, कोई जीवके तौ शरीरतैं एक प्रदेश, कोऊ कैं दोय प्रदेश,
किसीकैं तीन प्रदेश इत्यादिक अनेक जीवन सम्बन्धी एक-एक प्रदेश बधतैं असंख्यात
प्रदेश बधते भेद बधै हैं। सो उत्कृष्टपने मूल शरीरतैं नव गुणे भये और शरीर प्रमाण ऊंचे

ऐसे आत्माकौं तीव्र वेदना होय तौ मारे वेदना के शरीरकौं छोड़ि प्रदेश बाहिर निकसैं हैं। सो इस वेदना समुद्घात वाले वनस्पति जीव तीन अशुभलेश्या सहित अनंत हैं। और वायु तेज अप पृथ्वी इन च्यारि स्थावरन में तीन अशुभ लेश्या सहित जीव असंख्याते-असंख्याते हैं। इनका क्षेत्र तीन लोक है। सो इसमैं ऐसा कोई प्रदेश क्षेत्र नहीं बच्या है जहां इस आत्मा नैं अनन्त-अनन्त बार महादुख भावन करि वेदना समुद्घात तैं क्षेत्र नहीं स्परसा, सो सर्व देश प्रदेशनि विषै वेदना भोगी है। सो पाप परणातिका फल जानना। इति वेदना समुद्घात ॥

आगे कषाय समुद्घात का स्वरूप लिखिए है। तहां क्रोधादिक तीव्र कषाय के निमित्त पाय आत्मा के प्रदेश, मूल शरीरतैं निकसैं तौ एक प्रदेश, कोई के दोय प्रदेश, तीन प्रदेश आदि एक-एक प्रदेश बधतैं, मूलशरीरतैं तिगुणे निकसैं हैं। और ऊंचे शरीर प्रमाण निकसैं, सो घन रूप करिए, तौ मूल शरीरतै नव गुणे होंय। सो इस कषाय समुद्घात वाले अशुभ तीन लेश्या वारे, वनस्पती मैं अनंत हैं और वायु तेज अप पृथ्वी इन च्यारि स्थावरन में असंख्यात हैं। भावार्थ—इस लोक मात्र प्रदेशन में कोई एक प्रदेश नहीं रह्या, जहां अनेकबार कषाय समुद्घात तैं क्षेत्र नहीं स्परसा। यानै सर्वलोक प्रदेशन पै कषाय समुद्घात किए हैं। सो अशुभ फलका उदय जानना। इति कषाय समुद्घात ॥ २ ॥

आगे मारणांतिक समुद्घात का स्वरूप लिखिए है—मारणान्तिक समुद्घात वाले जीव तीन अशुभ लेश्या सहित, तिनका क्षेत्र सर्व लोक है। तहां जो जीव मरण के अन्तर्मुहूर्त पहले अपने शरीर मैं तिष्ठता ही, आत्मा प्रदेशन कूं बधायकैं, अपने उपजने के स्थान क्षेत्रकूं

जाय स्परसै, पीछे आय मूल शरीर में समाहि, पीछे मरै। सो पहले तहां तांई आत्म प्रदेशन की डोरी पङ्कति रूप विस्तारै, सो मारणांतिक समुद्घात है। भावार्थ—तीन लोक क्षेत्र विषैं ऐसा प्रदेश क्षेत्र नाहीं, जहां इस आत्मानें अनंतवार मारणांतिक समुद्घात करि प्रदेश नहीं स्पर्शा। सर्व आकाश क्षेत्रन में मारणांतिक समुद्घात करै है। सो पापके उदय का फल है। इति मारणांतिक समुद्घात ॥ ३ ॥

ऐसे वेदना, कषाय, मारणांतिक इन तीन समुद्घात सहित अशुभ तीन लेश्या सहित जीव, वनस्पति में अनन्ते और स्थावर आदि स्थानमें असंख्याते व मनुष्यन में संख्याते हैं। ऐसे तीन अशुभ लेश्या में समुद्घात कह्या। आगे शुभ तीन लेश्यान में समुद्घात कहिए है। तहां कषाय समुद्घात विषैं तथावेदना समुद्घात विषैं तौ प्रदेशनि का निकलने का प्रमाण आगे अशुभ लेश्या में कहिआए। मूल शरीरतैं नवगुणे चौड़े, शरीर प्रमाण ऊंचे, ताही प्रमाण जानना। और मारणांतिक समुद्घात विषैं पीत लेश्या वारे भवनत्रिक तथा सौधर्म ईशान वाले देव विहार करि कोई निमित्त पाय, तीसरी नारकी पृथ्वी पर्यन्त जांय, अरु तहां ही आयु अंत होय मरण करैं, सो जीव आठमी मोक्ष शिला में बादर पृथ्वी काय में उपजैं। सो अपने अशुभ भावन की उपार्जना तैं, सो जीव नव राजू क्षेत्र पर्यन्त आत्म प्रदेश कौं बधाय अपने उपजने का क्षेत्र स्परसै है। ऐसा जानना ॥४॥ और तैजस समुद्घात में आत्म प्रदेश बारह योजन लम्बे, नव योजन चौड़े और सूच्यांगुल के संख्याते भाग ऊंचे विस्तरै हैं। तहां कोई देश में बड़ी वेदना प्रजाकौं होय। तथा कोई देशमें

महा दुःख ईति, भीतिकरि भरथा होय। अरु ताकूं देखि कदाचित ऋद्धिधारी मुनिकौं करुणा उपजै, तौ मुनीश्वर के दाहिने स्कंधतैं शुभ तैजस पुतला निकसै, सो बारह योजन चौड़े क्षेत्र तांई के जीवन की सर्व वेदना तत्क्षण मेटि, सर्व प्रजाकौं सुखी करै है। कदाचिद् प्रजा (देश जीवन) कै पाप का उदय आवै तौ ऋद्धिधारी मुनिकौं कोप उपजै, तौ बामे स्कंधतैं अशुभ तैजस निकसै, सो अपने विषय योग्य क्षेत्रकूं भस्म करै। पीछे मुनी के आत्म प्रदेश निकसि कोपतैं अग्निमई होय पृथ्वी को क्षय करि, पीछे मुनि के तन में प्रवेश करैं, सो मुनि का तन भी भस्म होय। ऐसे तैजस दोय प्रकार है। सो तैजस समुद्घात जानना। इति तैजस समुद्घात ॥ ५ ॥

आगे आहारक समुद्घात का स्वरूप कहैं हैं। तहां आहारक समुद्घात विषैं एक जीव अपेक्षा कोई योगीश्वर को तत्वज्ञान विचार में संशय उपजै, तौ ऋद्धिधारी मुनिकौं ऋद्धियोगतैं आहारक पुतला निकसै, सो संख्यात योजन अढ़ाई द्वीप प्रमाण क्षेत्र लम्बे आत्म प्रदेश होंय। अरु सूच्यांगुलके संख्यात भाग चौड़े ऊंचे विस्तार धरै हैं। और शुक्ल लेश्याविना इन लेश्यानमें केवल समुद्घात होता नाहीं। इति आहारक समुद्घात। आगे केवल समुद्घात विशेष कहिए है। शुक्ललेश्या में और समुद्घात तौ पूर्ववत जानना। और केवल समुद्घात का विशेष है, सो कहिए है—तहां केवल समुद्घात के च्यारि भेद हैं। दंड, कपाट, प्रतर, लोकपूर्ण। तहाँ दंड के दोय भेद हैं—एक स्थितिदंड, एक उपविष्टदंड, और प्रतर व लोक पूर्ण इनका एक-एक ही भेद है। तहां पद्मासन सहित दंड समुद्घात होय, सो स्थिति दंड समुद्घात है। और

कायोत्सर्ग आसन सहित दंड होय, सो उपविष्ट दंड है । तहां स्थितिदंड समुद्घात में एक जीव अपेक्षा प्रदेशन का विस्तार—वातवलय विना लोक की ऊंचाई प्रमाण है । सो किंचित् घाटि चौदह राजू प्रमाण तौ लांबे होय हैं । और बारह अंगुल प्रमाण चौड़ा गोलाकार प्रदेश हो है । और उपविष्ट दंड समुद्घात विषै लम्बाई तौ पूर्ववत् ही है । और चौड़ाई स्थिति दंडतैं तिगुणी, छत्तीस अंगुल प्रमाण गोलाकार दंड हो है । ऐसा तौ समुद्घात कह्या । आगे कपाट समुद्घात के च्यारि भेद हैं । पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट, उत्तराभिमुख स्थिति कपाट, पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट, उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट, तहाँ पूर्वदिशामुख सहित केवली पद्मासन होय कपाट करैं, सो पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट कहिए । तहां इस कपाट में आत्मा के प्रदेश वातवलय विना लोक प्रमाण कछू घाटि चौदह राजू तौ लम्बे हैं । और उत्तर-दक्षिण दिशा विषैं लोक की चौड़ाई प्रमाण सात राजू चौड़े हैं । और पूर्व-पश्चिम दिशा विषैं बारह अंगुल मोटाई लिये ऊंचे हैं । ऐसे पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट समुद्घात जानना । और पूरबदिशा मुख किए केवलज्ञानी कायोत्सर्ग आसन सहित कपाट समुद्घात करैं सो पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट समुद्घात कहिए । तहाँ एक जीव अपेक्षा प्रदेशन की लम्बाई कछू घाटि चौदह राजू है । चौड़ाई सात राजू और छत्तीस अंगुल मोटाई प्रमाण प्रदेश ऊंचे हैं । ऐसे पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट समुद्घात है । तथा उत्तराभिमुख स्थिति कपाट समुद्घात ताकौं कहिए है, जहां उत्तर दिशा मुख किए केवली पद्मासन सहित कपाट समुद्घात करैं सो कछूघाटि चौदह राजू लम्बे आत्म प्रदेश होय हैं । और पूरब-पश्चिम दिशा विषैं

सो प्रथमतें दूसरे तांई कषाय पच्चीस ही हैं। और तीसरे-चौथे में कषाय इक्कीस हैं। और पंचवें में कषाय सत्तरा हैं। और छठेतें अपूर्व करण पर्यन्त तेरा कषाय हैं। नववें में सात हैं। दशवें में एक सूक्ष्म लोभ है। आगे कषाय नाहीं। बहुरि अब ज्ञान कहिए हैं। सो प्रथम-दूसरे में तो तीन कुज्ञान हैं। और तीसरे में मिश्रज्ञान है। और चौथे-पंचवें में तीन सुज्ञान हैं। और प्रमत्त तें लगाय बारहवें पर्यंत ज्ञान च्यारि हैं। तेरहवें-चौदहवें में एक केवल-ज्ञान है। आगे संयम कहिए हैं—सो मिथ्यात तें असंयत पर्यन्त तो असंयम है। और पंचवें में देश संयम एक है। और प्रमत्त-अप्रमत्त इन दोऊन में सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ए तीन संयम हैं। और आठवें-नववें में सामायिक, छेदोपस्थापना ए दोय संयम हैं। और दशवें में सूक्ष्म साम्पराय संयम है। और ऊपरे एक यथाख्यात ही संयम है। आगे दर्शन कहिए हैं-सो प्रथम तें तीजे पर्यन्त तो दोय दर्शन हैं। और चौथे तें लगाय बारहवें पर्यन्त तीन दर्शन हैं। तेरवें-चौदहवें में एक केवल दर्शन है। आगे लेश्या कहिए है—सो चौथे गुणस्थान पर्यन्त तो षट् लेश्या हैं। और पंचवें तें लगाय सप्तम पर्यन्त तीन शुभ लेश्या हैं। और अष्टम तें लगाय तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त एक शुक्ल लेश्या है। चौदहवेंमें लेश्या नाहीं। आगे भव्य कहिए है—तहाँ मोक्ष कबहूँ नहीं जाय, सो अभव्य है। मोक्ष जाने योग्य होय सो ताकों भव्य कहिए। सो प्रथम गुणस्थान में तो भव्य अभव्य दोय हैं। और ऊपरले सर्व गुणस्थानभव्य को होय हैं। आगे सम्यक कहिए है। सो मिथ्यातमें मिथ्यात सम्यक है। सासादनमें सासादन सम्यक है। मिश्रमें मिश्र है और असंयततें लगाय अप्रमत्तलों उपशम,

कायोत्सर्ग आसन सहित दंड होय, सो उपविष्ट दंड है । तहां स्थितिदंड समुद्घात में एक जीव अपेक्षा प्रदेशन का विस्तार—वातवलय बिना लोक की ऊंचाई प्रमाण है । सो किंचित् घाटि चौदह राजू प्रमाण तौ लांबे होय हैं । और बारह अंगुल प्रमाण चौड़ा गोलाकार प्रदेश हो है । और उपविष्ट दंड समुद्घात विषै लम्बाई तौ पूर्ववत् ही है । और चौड़ाई स्थिति दंडतैं तिगुणी, छत्तीस अंगुल प्रमाण गोलाकार दंड हो है । ऐसा तो समुद्घात कह्या । आगे कपाट समुद्घात के च्यारि भेद हैं । पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट, उत्तराभिमुख स्थिति कपाट, पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट, उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट, तहाँ पूर्वदिशामुख सहित केवली पद्मासन होय कपाट करैं, सो पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट कहिए । तहां इस कपाट में आत्मा के प्रदेश वातवलय बिना लोक प्रमाण कछू घाटि चौदह राजू तौ लम्बे हैं । और उत्तर-दक्षिण दिशा विषैं लोक की चौड़ाई प्रमाण सात राजू चौड़े हैं । और पूर्व-पश्चिम दिशा विषैं बारह अंगुल मोटाई लिये ऊंचे हैं । ऐसे पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट समुद्घात जानना । और पूरबदिशा मुख किए केवलज्ञानी कायोत्सर्ग आसन सहित कपाट समुद्घात करैं सो पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट समुद्घात कहिए । तहाँ एक जीव अपेक्षा प्रदेशन की लम्बाई कछू घाटि चौदह राजू है । चौड़ाई सात राजू और छत्तीस अंगुल मोटाई प्रमाण प्रदेश ऊंचे हैं । ऐसे पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट समुद्घात है । तथा उत्तराभिमुख स्थिति कपाट समुद्घात ताकौं कहिए है, जहां उत्तर दिशा मुख किए केवली पद्मासन सहित कपाट समुद्घात करैं सो कछूघाटि चौदह राजू लम्बे आत्म प्रदेश होय हैं । और पूरब-पश्चिम दिशा विषैं

रूप, रसरूप करै है। सो खलरूप करै तिनके तौ कठोर अवयव अपने शरीर योग्य बनावै है अरु रसरूप भई तिनके बह चलै ऐसे रसरूप पतले अवयव बने हैं। पीछे अपने-अपने शरीरनके अंगोपांगरूप परणमै हैं। तहां आहारक वैक्रियक शरीरनके तौ उन प्रमाण अंगोपांगरूप बनै हैं। और औदारिक शरीरके औदारिक शरीर प्रमाण अंगोपांग बनै हैं। ऐसे अपने-अपने शरीर पद्स्थ योग्य पुद्गल स्कंधनका परणमण है। सो सहजैही परणमै हैं। असहाय, विना यतन परणमण जानना। ऐसे आहार पर्याप्ति करि पीछे तिन ग्रहे परमाणु कठोर तथा नरम अव्ययरूप पुद्गलन का शरीररूप बंधान करना, सो शरीर पर्याप्ति है। और किया जो शरीर ताके यथायोग्य इन्द्रियन के आकार स्थान के स्थान होना, सो इंद्रिय पर्याप्ति है। और जा शरीरमें श्वासोच्छ्वास लेनेके स्थान-क होना, सो तिनतैं पवनकौं अङ्गीकार करि, वाहिरतैं भीतर लेना, पीछे वाहिर काढ़णा। ऐसे पुद्गलीक आकार शरीर में होना, सो श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति है। ऐसे पीछे जिन स्थाननतैं बचन बोल्या जाय, ऐसे पुद्गलीक आकार शरीर में होना, सो भाषा पर्याप्ति है। और हिरदे विषैं विकल्प करने का आकार, तातैं शुभाशुभ विचारि कीजिए, ऐसा अष्ट पांखड़ी का कमलाकार द्रव्यमन पुद्गलीक स्कंध का परणमण सो मन पर्याप्ति है। इति पर्याप्ति। आगे प्राणन का संक्षेप स्वरूप कहिए है। तहां शरीरादि यथायोग्य इन्द्रियन में अपने-अपने विषय ग्रहण की शक्ति रूप परिणमण, सो प्राण कहिए। तहां पंचेन्द्रिय अपने विषय में रंजायमान करै। सो जैसे स्पर्श इन्द्रिय अपने योग्य अष्ट विषय तिनका निमित्त मिलै सुख-दुख करने की शक्ति सो स्पर्श इन्द्रिय प्राण है। और जहां रसना इन्द्रिय अपने योग्य पंच विषय तिनमें

रंजायमान करै, सो रसना इन्द्रिय प्राण है। और घ्राणइन्द्रिय अपने योग्य दोय विषयन में रंजायमान करै, सो घ्राण इन्द्रिय प्राण है। और तहां चक्षु इन्द्रिय अपने योग्य पंच विषयन में रंजायमान करै, सो चक्षु इन्द्रिय प्राण है और जहां श्रोत्र इन्द्रिय अपने योग्य विषय में रंजायमान करै, सो श्रोत इन्द्रिय प्राण है। ऐसे तो पंचेन्द्रिय प्राण हैं। और जहाँ मन विषैं शुभाशुभ संकल्प-विकल्प करि हर्ष-विषाद उपजावने की शक्ति, सो मन प्राण है। और वचन बोलनेकी शक्ति सो वचन प्राण है। और जहाँ काय विषैं हलन-चलन रूप गमनागमन की शक्ति, सो काय प्राण है। और जहां शरीर विषैं श्वासोच्छ्वास लेने की शक्ति सो श्वासोच्छ्वास प्राण है। और जहां अनेक दुख-सुखन में आत्मा शरीरतें भिन्न नहीं होय, सो आयु प्राण है। ऐसे सामान्य दश प्राण जानना। इति प्राणस्वरूप॥

आगे संज्ञा का स्वरूप सामान्यपने लिखिए है। जहां वस्तु की इच्छा का क्षयोशम होय सो संज्ञा है। जहां आहार की इच्छारूप निमित्त सहित क्षयोपशम, सो आहार संज्ञा है। और जहां भय का निमित्त मिले भय की इच्छा का क्षयोपशम, सो भय संज्ञा है। और जहां मैथुन की सामग्री सहित इच्छाका क्षयोपशम सो, मैथुन संज्ञा है। और परिग्रह का निमित्त मिलै परिग्रह की इच्छा सहित क्षयोपशम, सो परिग्रह संज्ञा है। ऐसे सामान्य संज्ञा कही। इति संज्ञा। आगे चौदह मार्गणा, तिनका स्वरूप ऊपर कहा है नाममात्र यहां कहिए है। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्, सैनी, आहार, ए चौदह मार्गणा है। इति मार्गणा।

आगे उपयोग—तहां ज्ञानोपयोग आठ प्रकार, दर्शनोपयोग च्यारि प्रकार ए दोऊ दर्शन ज्ञान, मिलि उपयोग भेद बारह जानना। इति उपयोग। ऐसे सामान्य गुणस्थान, मार्गणानिका स्वरूप कह्या। आगे इनहीं गुणस्थानन में मार्गणा लिखने रूप आलाप कहिए है। सो प्रथम ही गुणस्थानन में मार्गणादि चौबीस ठाम (स्थान) लगाईये है। तहां चौथे गुणस्थान तांई तो गति च्यारि ही हैं। और पंचम गुणस्थान में मनुष्य वा तिर्यंचगति है। और छठेतैं उपरिलै गुणस्थानन में एक मनुष्यगति ही जानना। और इन्द्रिय मार्गणा-सो प्रथम गुणस्थान तो पंच ही इन्द्रिय धारक जीवन कें होय है। और दूसरेतैं लगाय चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त ए सर्वस्थान पंचेन्द्रिय सैनी कें होय हैं। और कोई आचार्य एकेन्द्रियादि असैनी पर्यन्त जीवन कैं सासादन कहै हैं। ताकी मुख्यता नाहीं जानना। यथायोग्य समझि लेना। बहुरि कायमार्गणा-सो प्रथम गुणस्थान तो षट्काय जीवन के ही जानना। और दूसरे तें लगाय चौदहवें तांई ए स्थान त्रसजीव काय के होय हैं। आगे योग मार्गणा—तहां प्रथम गुणस्थान में आहारक द्विक विना योग तेरा हैं और सासादन में भी ए ही तेरा योग हैं। और मिश्र में मन के च्यारि, बचन के च्यारि, काय के दोय, ऐसे दशयोग हैं। और असंयत चौथै में अहारक द्विक बिना, तेरा योग हैं। और पंचवें में नव, छटे में आहारक द्विक सहित ग्यारह योग हैं। और सातवें ते लगाय बारहवें पर्यन्त नवयोग हैं। तेरवें में सात योग हैं। चौदहवें में योग नाहीं। आगे वेद—सो प्रथम तैं लगाय नववें गुणस्थान के सवेदभाग पर्यन्त तीनों वेद हैं। आगे वेद नाहीं। आगे कषाय-

सो प्रथमतैं दूसरे तांई कषाय पच्चीस ही हैं । और तीसरे-चौथे में कषाय इक्कीस हैं । और पंचवें मैं कषाय सत्तरा हैं । और छठेतैं अपूर्व करण पर्यन्त तेरा कषाय हैं । नववें में सात हैं । दशवें में एक सूक्ष्म लोभ है । आगे कषाय नाहीं । बहुरि अब ज्ञान कहिए हैं । सो प्रथम-दूसरे में तौ तीन कुज्ञान हैं । और तीसरे में मिश्रज्ञान है । और चौथे-पंचवें में तीन सुज्ञान हैं । और प्रमत्त तैं लगाय बारहवें पर्यंत ज्ञान च्यारि हैं । तेरहवें-चौदहवें में एक केवलज्ञान है । आगे संयम कहिए हैं—सो मिथ्यात तैं असंयत पर्यन्त तौ असंयम है । और पंचवें में देश संयम एक है । और प्रमत्त-अप्रमत्त इन दोऊन में सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ए तीन संयम हैं । और आठवें-नववें में सामायिक, छेदोपस्थापना ए दोय संयम हैं । और दशवें में सूक्ष्म साम्पराय संयम है । और ऊपरे एक यथाख्यात ही संयम है । आगे दर्शन कहिए हैं-सो प्रथम तैं तीजे पर्यन्त तौ दोय दर्शन हैं । और चौथे तैं लगाय बारहवें पर्यन्त तीन दर्शन हैं । तेरवें-चौदहवें में एक केवल दर्शन है । आगे लेश्या कहिए है—सो चौथे गुणस्थान पर्यन्त तौ षट् लेश्या हैं । और पंचवें तैं लगाय सप्तम पर्यन्त तीन शुभ लेश्या हैं । और अष्टम तैं लगाय तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त एक शुक्ल लेश्या है । चौदहवेंमें लेश्या नाहीं । आगे भव्य कहिए है—तहाँ मोक्ष कबहूँ नहीं जाय, सो अभव्य है । मोक्ष जाने योग्य होय सो ताकौं भव्य कहिए। सो प्रथम गुणस्थान में तौ भव्य अभव्य दोय हैं । और ऊपरले सर्व गुणस्थानभव्य को होय हैं। आगे सम्यक कहिए है। सो मिथ्यातमें मिथ्यात सम्यक है। सासादनमें सासादन सम्यक है। मिश्रमें मिश्र है और असंयततैं लगाय अप्रमत्तलौं उपशम,

तहाँ मन वचन काय योग नाहीं। तातैं अयोगचौदहमां गुणस्थान है। पीछे इहां लघु पंच अक्षर काल प्रमाण स्थिति करि निर्वाण हो है। ऐसे सामान्यभाव चौदह गुणस्थान का स्वरूप कह्या। इति गुणस्थान ॥

आगे जीवसमास कहिए है। तहां एकेन्द्रियसूक्ष्म, वादर, वेन्द्रिय (दोय इन्द्रिय) तेन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, सैनी, असैनी, ऐसे सात भये। तिनके पर्याप्ति, अपर्याप्तिकरि चौदहभेद जीवसमास है। इनहीं के विशेष भेद एक, दोय, तीन, च्यारि आदि एक-एक बढ़ती उगनीस (उन्नीस) भेद हो हैं। अड़तीस, संतावन, च्यारिसौषट् भेद भी हैं। सो आगे कहेंगे। सो भी इन चौदह ही में गर्भित हैं। इति जीव समास। आगे पर्याप्ति का स्वरूप कहिए है। तहाँ शरीरादि यथायोग्य इन्द्रियन का पुद्गलीक आकार होना सो पर्याप्ति है। तहाँ औदारिक, वैक्रियक, आहारक, इन तीन शरीर जाति की पुद्गल परमाणु कौं ग्रहण करि इन तीन शरीररूप परणमाय केतीक परमाणु, अस्थि, चांम, नशा, मांसादि कठिन अवयव करना सो इनका नाम खलरूप है। और केतेक परमाणून कौं श्रोणित, वीर्यादिक रसभागरूप पतले अवयव परणमावै है ऐसे पुद्गलन कौं परिणमाय रस रूप करै। ऐसे अन्तर्मुहूर्त काल यथायोग्य तांई क्रिया करै, सो आहार पर्याप्ति कहिए है। और इन ग्रहे पुद्गल स्कंधनकौं आत्मा आकर्षण करि शरीररूप करै, सो शरीर पर्याप्ति है। इहां प्रश्न-जो तुमने कह्या कि आहारपर्याप्ति करतैं पुद्गल हाड़, मांसादि रूप करै, है सो वैक्रियक आहारक शरीरन में हाड़, मांस कैसे संभवै ? ताका समाधान-जो पुद्गल तीन शरीर रूप होने योग्य होय, ताकौं आत्मा आकर्षण करकैं खल

अधोलोक के नीचे सात राजू आत्मप्रदेश चौड़े होय हैं, अरु उपरि क्रमतैं घटते-घटते मध्यलोक में एक राजू मोटे, पीछे उपरि क्रमतैं बढ़ते-बढ़ते ब्रह्म स्वर्ग पर्यन्त पांच राजू, उपरि क्रमतैं घटते घटते लोक शिखर पै एकराजू हैं। ऐसे पूर्व-पश्चिम दिशामें लोक प्रमाण प्रतर होय हैं। और उत्तर-दक्षिण दिशा विषैं बारा अंगुल प्रदेश मोटे जानना। ऐसे उत्तराभिमुख स्थिति कपाट कह्या। आगे उत्तर दिशा कौं मुखकरि कायोत्सर्ग आसन सहित केवलज्ञानी कपाट करैं, सो उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट कहिए। तहाँ आत्म प्रदेशन की लम्बाई तौ किंचित् न्यून चौदह राजू है। और उत्तराभिमुख स्थिति कपाटकी मोटाई का प्रमाण बारह अंगुल है। तातें तिगुणे छत्तीस अंगुल मोटाई आत्म प्रदेश जानना। इति कपाट। आगे प्रतरका स्वरूप कहिए है। तहाँ तीन वातबलय बिना सर्व लोक विषैं आत्म प्रदेशनका फैलना सो ए सर्व क्षेत्र प्रतर समुद्घात है और वातवलय सहित सर्व लोक चौदह राजू पुरुषाकार में सर्व जगह आत्मप्रदेश फैलें, सो लोक पूरन समुद्घात है। तातें ही एक जीव के प्रदेश, लोक प्रमाण कह्ये हैं। सो ही "तत्त्वार्थ सूत्र" में कहिए है। फांकी—"असङ्ख्येयाः प्रदेशाः धर्माधर्मैकजीवानाम् ।" याका अर्थ—जो धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य और जीव इन तीनूं के प्रदेश असंख्याते हैं। तथा लोक प्रमाण हैं ॥ इति सामान्य समुद्घात स्वरूप ॥ ऐसें समुद्घातनका सामान्य स्वरूप कह्या। विशेष 'श्रीगोमट्टसारजी' से जानना। तहाँ तेरहवें गुणस्थान में केवल समुद्घात करै। ताका विशेष कह्या। सो याविधि केवल समुद्घात करि पीछे समुद्घात मेटि मूल शरीर में सर्व आत्म प्रदेश समाहिकैं तिष्ठैं, सो तेरहवाँ सयोगकेवली गुणस्थान जानना। और अन्तमुर्हूर्त पीछे अयोगकेवली गुणस्थान होय।

क्षयोपशम और क्षायिक सम्यक है। और आठवें तैं लगाय ग्यारवें लूं उपशम और क्षायिक दोय सम्यक हैं। और बारवें तैं लेय सिद्धन पर्यन्त एक क्षायिक सम्यक है। आगे संज्ञी कहैं हैं। सो प्रथमगुणस्थानमें सैनी असैनी दोऊ। दूसरे तैं लेय बारवें लौं सैनी ही हैं। तेरवें चौदहवें में दोऊ नाहीं। आगे आहार मार्गणा कहिए हैं। तहां प्रथम, दूसरे, चौथे इनमें आहारक अनाहारक दोऊहैं। और मिश्र तीजे में व पंचवें में एक आहारक है। और छठेमें आहारक अनाहारक दोऊ हैं। अप्रमत्ततैं लगाय बारहवें पर्यन्त आहारक है। तेरवें में दोऊ हैं। चौदहवें में अनाहारक है। इति प्रथममार्गणाप्ररूपण ॥

आगे गुणस्थान प्ररूपण—तहां गुणस्थान का स्वरूप-अपने-अपने गुणस्थान में स्वकीय गुणस्थान चौदह ही सामान्यवत जानना। आगे जीव समास गुणस्थान पै लगाइए है। तहां प्रथमगुणस्थान में चौदह ही जीवसमास हैं। और सासादन, असंयत, प्रमत्त, सयोगकेवली इन च्यारि गुणस्थानन में पंचेन्द्रिय की पर्याप्ति, अपर्याप्ति, ए दोऊ ही जीव समास हैं। और बाकी के सर्व गुणस्थानोंमें एक पंचेन्द्रिय पर्याप्ति जीव समास है॥ आगे पर्याप्ति कहिए हैं—सो प्रथम गुणस्थान तैं लगाय चौदहवें पर्यन्त छहों पर्याप्ति हैं ॥ आगे प्राण कहिए हैं—सो मिथ्यात तैं लगाय बारहवें गुणस्थान पर्यन्त तो दश प्राण हैं। और तेरवें के अपर्याप्ति में तो आयु, काय दोय प्राण हैं। और पर्याप्ति में च्यारि हैं। और अयोग में एक आयु प्राण है॥ आगे संज्ञा कहैं हैं—तहां संज्ञा च्यारि हैं। सो तहां प्रथम तैं लगाय प्रमत्त छठे तांई संज्ञा चारौं हैं। और सातवें आठवें गुणस्थान में आहार बिना तीन संज्ञा हैं। और नववें में मैथुन

परिग्रह दोय संज्ञा हैं। और दशवें में एक परिग्रह संज्ञा है। आगे कषायन के अभावतैं संज्ञाका भी अभाव है। ए संज्ञा हैं सो कषायन के योगतैं होय हैं। सो अप्रमत्तमैं ध्यान अवस्थातैं आहार-विहारादि प्रमाद के अभाव तैं आहार संज्ञा का अभाव है। और भय कषाय के निमित्त तैं भयसंज्ञा उपजे है। और वेद कषाय तैं मैथुन संज्ञा होय है। और लोभ कषाय के निमित्त पाय परिग्रह संज्ञा होय है। जहां कषाय नाहीं, तहां संज्ञा भी नाहीं। ऐसे संज्ञा जानना॥ आगे उपयोग बारह हैं—तहां मिथ्यात सासादन इन दोऊ गुणस्थानन में दर्शन दोय, कुज्ञान तीन ए पांच उपयोग हैं। और मिश्र गुणस्थान में मिश्र ज्ञान तीन, दर्शन दोय ए पांच उपयोग हैं। कोई आचार्य इहां तीन दर्शन भी कहैं हैं। ता अपेक्षा छह उपयोग हैं। चौथे पंचवें में सुज्ञान तीन, दर्शन तीन ए षट् उपयोग हैं। और छठे तें लगाय बारवें गुणस्थान पर्यन्त ज्ञानि च्यारि, दर्शन तीन ए सात उपयोग हैं। और तेरवें चौदहवें में केवलज्ञान, केवल दर्शन ए दोय उपयोग हैं। ऐसे सामान्य बीस प्ररूपणा का स्वरूप कह्या। इति बीस प्ररूपणा॥ आगे ध्यान, आश्रव, जाति, कुल, ए च्यारि गुणस्थान प्रति लगाईए है—

गाथा—झाणवेय पत्तावेय, जायए कुलकोड संजया सव्वे।
गाहा तयेण भणिया, कमेण चौवीस ठाणाणीं॥ १३॥

अर्थ—ध्यान सोलह, आश्रव सत्तावन (कषाय पच्चीस, योग पंद्रह, अव्रत बारह, मिथ्यात पांच, ए सर्व सत्तावन जानना) सो ध्यान अरु आश्रवन का स्वरूप आगे कह्या है। तातैं यहां

नहीं कह्या, वहां तैं जानना । और एकेन्द्रिय जातिमें पृथ्वी, अप, तेज, वायु, साधारण वनस्पति के इतरनिगोद नित्यनिगोद, करि दोय भेद हैं । ए षट् स्थावरन की सात—सात लाख जाति हैं । प्रत्येक बनस्पति की दश लाख जाति हैं । बेन्द्रिय (दो इन्द्रिय), तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, इन तीनन की दोय-दोय लाख जाति हैं । देव, तिर्यञ्च, नारकी इन तीनन की च्यारि-च्यारि लाख जाति हैं । मनुष्य की चौदह लाख जाति हैं । ए सर्व मिल चौरासी लाख जाति जानना । इति जाति ॥

आगे कुल कहिए हैं । सो पृथ्वी काय के बाईसलाख कोड़ि कुल हैं । अप, वायु इन दोऊ के सात—सात लाख कोड़ि कुल हैं । तैजस काय के तीन लाख कोड़ि कुल हैं । और वनस्पति के अट्ठाइस लाख कोड़ि कुल हैं । बेन्द्रिय के सात लाख कोड़ि कुल हैं । तेन्द्रिय के आठ लाख कोड़ि कुल हैं । चौइन्द्रिय के नवलाख कोड़ि कुल हैं । और पंचेन्द्रिय के तहां जलचर जीव जे जल ही में रहैं तिनके साढ़े बारह लाख कोड़ि कुल हैं । और थलचर जो पृथ्वी पर विचरनेहारे दुपद, चौपद ऐसे जो थलचर हैं, सो इनके बारह लाख कोड़ि कुल हैं । नभ में उड़नेहारे पक्षी सो नभचर हैं, तिनके दश लाख कोड़ि कुल हैं । और जे छाती ही तैं चलैं ऐसे सर्पादि जीव, तिनके नव लाख कोड़ि कुल हैं । मनुष्यन के बारा लाख कोड़ि कुल हैं । देवन के छब्बीस लाख कोड़ि कुल हैं । नारकीन के पच्चीस लाख कोड़ि कुल हैं । ए सर्व मिलि एकसौ साढ़े सित्याणवै लाख कोड़ि कुल जानना । ऐसे इस गाथा का सामान्य स्वरूप कह्या । अब इन ध्यान, आश्रव, जाति, कुल च्यारन कौं गुणस्थाननपै लगाईए हैं । तहाँ

प्रथम ध्याननकूं कहिए हैं। सो प्रथम–दूसरे गुणस्थान में आर्त, रौद्रध्यान के आठ भेद हैं। और तीसरे मिश्रमें आर्त–रौद्र के आठ, धर्मध्यान के एक आज्ञा विचय, ए नव ध्यान हैं। और असंयतमें आर्त–रौद्र के आठ भेद अरु आज्ञा, अपायविचय ए दोय धर्मध्यान के ऐसे दश भेद हैं और पंचवें में आर्त–रौद्र के आठ, स्थानविचय विना धर्मध्यानके तीन, सर्व मिल ग्यारह ध्यानहै। और प्रमत्तमें धर्म ध्यान च्यारि, आर्तध्यान निदान वंध विना तीन, ए सात ध्यान हैं। और अप्रमत्त में धर्म ध्यान के च्यारि भेद हैं। और आठमें ते लगाय ग्यारवें पर्यन्त एक पृथक्त्ववितर्क वीचार नाम शुक्ल ध्यान है। और वारहवें गुणस्थान में एकत्ववितर्कवीचार नामा शुक्ल ध्यान है और तेरवें में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम शुक्ल ध्यान है और चौदहवेंमें व्युपरतिक्रिया निवर्ति नाम शुक्ल ध्यान है। इति ध्यान !

आगे गुणस्थान प्रति आश्रव कहियेहैं, आश्रव संतावन हैं तहां मिथ्यात में आहारक द्विक योग विना पचवन आश्रव हैं। और सासादन में पंच मिथ्यात व आहारकद्विक विना पचास आश्रव हैं। और मिश्रमें कषाय इक्कीस, योग दश, अव्रत वारह, सर्व मिलि तियालीस आश्रव हैं। आगे चौथे में अव्रतबारह, कषाय इक्कीस, योग तेरह सर्व मिलिछ्यालीस आश्रव हैं। और पंचममें कषाय सत्तरा, योग नव, अव्रत ग्यारा, ए सर्व मिलि सैंतीस आश्रव हैं। और प्रमत्त में कषाय तेरा, योग ग्यारा, ए सर्व मिलि चौबीस आश्रव हैं। और सातवें आठवें–में कषाय तेरा, योग नव मिलि करि बाईस आश्रव हैं। और कषाय सात, योगनव मिलि आश्रव सोलह नवमें गुणस्थानमें हैं। और कषाय एक, योग नव मिलि दश

आश्रव सूक्ष्म साम्पराय में हैं। और ग्यारहवें—बारहवें में नवयोग आश्रव हैं। और तेरवें में सात योग आश्रव है और चौदहवें में आश्रव नाहीं। इति आश्रव ॥

आगे जाति गुणस्थाननै कहिए हैं। तहाँ जाति चौरासी लाख हैं सो प्रथम गुणस्थान में तौ सर्व जाति हैं। और सासादन, मिश्र, असंयत, इन तीनमें देव, नारक, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य, इनकी छब्बीस लाख जाति हैं। और पंचवें में मनुष्य, तिर्यञ्च सम्बन्धी अठारह लाख जाति हैं। और प्रमत्ततें लगाय अयोगि पर्यन्त, मनुष्य सम्बन्धी चौदह लाख जाति हैं। इति जाति ॥

आगे गुणस्थान पे कुल लगाइये हैं। कुल एकसौ साड़े सत्याणवें लाख कोड़ि कुल हैं। तहां मिथ्यात में सर्व कुल हैं। और सासादन, मिश्र, असंयत इनमें एकेंद्री बिकलेंद्री संबंधी घटाय एकसौ साड़े छै लाख कोड़ि कुल हैं। और पंचम गुणस्थान में पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्यसम्बन्धी साड़े पचपन लाख कोड़ि कुल हैं। और प्रमत्त तैं लगाय चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त मनुष्य सम्बन्धी बारा लाख कोड़ि कुल हैं इति कुल ॥ ऐसे सामान्य गुणस्थानन पै चौबीस ठाणें लगाया। अब कहे जो ए जीव तिनमैं स्थावरन के पंच भेदनमें बनस्पती है। सो बनस्पती जीवनकी उत्पत्ति के कारण बीज सोसात प्रकार हैं। सोही कहिए हैं—

गाथा—पल्लव मूल पव्वो, कर खंदोय बीय सम्मुच्छो।
भेयो सत्त पयारो, इक अक्खो वणप्फदी वीयो ॥ १४ ॥

अर्थ—पल्लव, मूल, पर्व, कंद, स्कंध, बीज, सम्मूर्च्छन ए सात भेद वनस्पति उपजने कूं

बीज समान हैं। जाकी कोंपल उपरि तें तोड़ि लगाय लागे, ऐसे हजारी गेंदा कों आदि देय केतीक वनस्पति हैं जिनका पल्लव लगावो तो लगे। सो पल्लव बीज कहिए। तथा अग्रबीज कहिए। और केतीक वनस्पती ऐसी हैं। तिनकामूल कहिये जड़ सो ताकीं जड़, कों लगाये लागे, ऐसे कदली आदि अनेक वनस्पती ऐसी हैं। तिनका मूल ही बीज है। मूलतें ही उपजें, तातें मूल बीज कहिए। और केतीक वनस्पती ऐसी हैं, तिनकी पोरी ही तें उत्पत्ति है। ताकी पोरी लगाय लागे ऐसे सांठे [गन्ना] आदि सो इनका बीज पोरी ही है तातें इनकूं पर्व बीज कहिए है। और केतीक वनस्पती ऐसी हैं। तिनका कंद ही लगाय लागे। सो कंद ताकौं कहिए है जो भूमि ही विषें जाकी वृद्धि होय ऐसे आदा, सूरण, जमीकंद, सकरकंद, रतालु, पिंडालू आदि इनकी कंद ही तें उत्पत्ति है तातें इनकों कंदबीज कहिए है। और केतीक वनस्पती ऐसी हैं तिनका स्कंध जो शाखा सो तिनकी छोटी-मोटी शाखा तोड़ि लगाईए तो लागें। ऐसे गुलाब, चमेली, अमरबेलि, आदि वनस्पती सो स्कंध बीज हैं। और केतीक वनस्पति ऐसी हैं जिनकी उत्पत्ति कौं कारण बीजही है, बिना बीज नाहीं होय, ऐसे गेहूं, तंदुलादि अन्न ए बीज ही तें उपजे हैं इनका बीज अन्नादि है। और केतीक वनस्पती ऐसी हैं। जिनकी उत्पत्ति कौं कछू कारण नाहीं, बिना बीज सहज ही उत्पत्ति होय ऐसे घास, डाभ, जड़ी, बूटी आदि सो इनकी उत्पत्ति कूं बीजादि नाहीं, सो सम्मूर्च्छनपनाही बीज है। ऐसे सात भेदरूप वनस्पती की उत्पत्ति कही। इति सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थमध्ये जीवतत्व वर्णन विषैं चौबीस प्ररूपणा सामान्य गुणस्थान पैं, समुद्घात के लक्षण तथा सात भेद वनस्पती उत्पत्ति इत्यादि

कथन वर्णनो नाम षष्ठमोपर्व सम्पूर्णम् । आगे गुणस्थान सम्बन्धी जीवन की संख्या कहिए है । तहाँ प्रथम ही मिथ्याती जीवन की संख्या कहिए है—

गाथा—थावरमिच्छ अणंतो, विकलतीए पंचलय सव्वविणसंखा ।
देव असंखाणास्य, मिच्छाण एसं स्वमासयं देव ॥ १५ ॥

अर्थ—अब कहिए है जो स्थावर एकेन्द्रिय मिथ्यातीन की राशि अनंत हैं । और विकलत्रय मिथ्यादृष्टि राशि असंख्यात हैं । और मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात हैं । और नारक मिथ्यादृष्टि असंख्यात हैं । मनुष्य मिथ्यादृष्टि संख्यात हैं । ऐसे च्यारि गति सम्बन्धी मिथ्यादृष्टीन का प्रमाण कह्या । भावार्थ—पांच स्थावर हैं । तिनमें सर्वतें थोरे प्रमाणधारी अग्निकायक जीव जानना । सो भी ऐसे—ऐसे असंख्यात लोकन के जेते प्रदेश होंय, तेते अग्निकाय जीव हैं । और अग्निकायतें असंख्यात अधिक पृथ्वी कायक जीव हैं । और पृथ्वीकायतें असंख्यात अधिक अपकाय के जीव हैं । और अपतें असंख्यात अधिक वायुकायके जीवन का प्रमाण है । और अग्निकाय के असंख्यातवें भाग घटते वेन्द्रिय जीव हैं । वेन्द्रियतें असंख्यात घाटि तेंद्रिय हैं । तेंद्रियसे असंख्यात घाटि चौइन्द्रिय हैं । चौइन्द्रियतें असंख्याति घाटि पंचेन्द्रिय हैं । ऐसे सब सेथोरे पंचेन्द्रिय हैं । तिनमें भी मिथ्याती बहुत हैं । और पंचही स्थावर में सर्व कहे स्थावर तिनतें अनंत गुणे जीव वनस्पतीका प्रमाण जानना । इन पंच स्थावरन में सूक्ष्म जीवराशि बहुत हैं, बादर थोरे हैं । काहेतें सो बताइए है—कि सूक्ष्म जीवन का क्षेत्र तो लोक है । सर्व लोक सूक्ष्म पंचस्थावरनतें अजयटक्त् भर‍्या है । और बादर, सहाय—

तैं होय है। सो सहाय का क्षेत्र अल्प है। तातें सूक्ष्म राशि विशेष, बादर राशि थोरी, ऐसा जानना। सो ए स्थावर विकलत्रय राशि, एतो सर्व मिथ्यात समुद्र में मगन ही हैं। और च्यारि गति सम्बन्धी पंचेन्द्रियन में भी मिथ्यात राशि तो बहुत है, अरु सम्यदृष्टी थोरे हैं। सो अगली गाथा में सम्यदृष्टि च्यार गति संबन्धी अरु सासादन मिश्रगुणस्थान अविरत तथा पंचमषष्टम तैं लगाय चौदहमा गुणस्थानवर्ती जीवन का प्रमाण कहिए हैं—

गाथा—बावण इकसय चउक्को, सत्ताय तिदसय कोड़ीए।
सासा मिस्सा संजय, देस संजाय होयणार भव्वा ॥ १६ ॥

अर्थ—भव्यराशि मनुष्यन में—सासादन गुणस्थानवर्ती मनुष्य बावन कोड़ि हैं। और मिश्र गुणस्थानवर्ती मनुष्य एकसौ च्यारि कोड़ हैं। और असंयति चौथे गुणस्थानवर्ती मनुष्य सात कोड़ हैं। और पञ्चम गुणस्थानवर्ती मनुष्य तेरह कोड़ि हैं। ऐसे सासादनतैं लगाय पञ्चम गुणस्थानवर्ती कहे। सो उत्कृष्टपने कहे। इनतैं अधिक नहीं होय, ऐसा जानना। इति मनुष्यन में गुणस्थानवर्ती जीवन का प्रमाण कह्या। आगे देव, नारकी, तिर्यञ्चन में सासादन, मिश्र, असंयत, तिनका प्रमाण, अरु पंचम गुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च और छठे गुणस्थान तैं लगाय चौदहवें गुणस्थानवर्ती मनुष्यन का प्रमाण कहिए है—

गाथा—सुरय सुणारय गतयो, सासामिस्सो असंजविरा संखा।
असंख पसु अणुवरती, पमत्तादो णो कोड़ी ति उत्तोय ॥ १७ ॥

अर्थ—देव नारक तिर्यञ्च यह असंयत सम्यक्दृष्टि, मिश्र, सासादन और तिर्यञ्च देश

संयमी ए सर्व प्रत्येक असंख्यात जानना । और प्रमत्त तैं सगाय अयोगि पर्यन्त जीवन का प्रमाण तीनघाटि नव कोड़ि जानना । भावार्थ—

तीन गति सम्बन्धी सासादन, मिश्र, असंयमी, देश संयमी तिनके प्रमाण की अधिक-हीनता बताईए है । सो सर्व तैं बहुत सम्यक् दृष्टि, देवन में हैं । सो ही दिखाईए है । वहां प्रथम युगल में सम्यग्दृष्टि सर्वतैं अधिक हैं । सो असंख्याते हैं । ते सर्व पल्य के असंख्यातवैं भाग जानना । याही युगलके सम्यग्दृष्टितैं असंख्यातवैं भाग ह्यांके मिश्रगुणस्थानी हैं । और इन मिश्रतैं संख्यातवें भाग प्रथम युगल के सासादनी हैं और प्रथम युगल के सासादनी तैं दूसरे युगल के सम्यग्दृष्टि असंख्यातवें भाग हैं । दूजे युगल के सम्यग्दृष्टितैं असंख्यातवैं भाग यहां ही के मिश्रगुणस्थानी हैं । इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग इसही दूसरे युगल के सासादनी हैं । और दूसरे युगल के सासादीनतैं असंख्यातवें भाग तीसरे युगल के सम्यग्दृष्टिन का प्रमाण है । इन सम्यदृष्टिन तैं असंख्यातवैं भाग यहीं के मिश्र हैं । इन मिश्रनतैं संख्यातवें भाग तीसरे युगल के सासादनी हैं । और तीसरे युगल के सासादनीनके असंख्यातवैं भाग चौथे युगल के सम्यग्दृष्टि हैं । इनतैं असंख्यातवें भाग मिश्र गुणस्थानी हैं । मिश्रनतैं संख्यातवौं भाग सासादनी है । और चौथे युगल के सासादनी तैं असंख्यातवौं भाग पंचम युगल के सम्यग्दृष्टि हैं । इन सम्यक्तीनतैं असंख्यातवें भाग ह्यां ही के मिश्र हैं । इन मिश्रन तैं संख्यातवौं भाग पंचम युगल के सासादनी हैं । और पंचम युगल के सासादनीन तैं छठे युगल के सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुने घाटि हैं । इन सम्यक्दृष्टिनतैं

असंख्यातवें भाग मिश्र गुणस्थानी हैं। मिश्रनतें संख्यातवें भाग ह्यां ही के सासादनी हैं। और छठे युगल के सासादनीनतें असंख्यातवें भाग ज्योतिष देवन के सम्यक्दृष्टि हैं। तिनतें असंख्यातवें भाग मिश्रगुणस्थानी हैं। मिश्रनतें संख्यातवें भाग ज्योतिषीन के सासादनी हैं। और ज्योतिषीन के सासादनी तें असंख्यातवें भाग व्यन्तरन में सम्यग्दृष्टि हैं। ह्यां के सम्यग्दृष्टीनतें असंख्यातवें भाग मिश्र हैं। और व्यंतर मिशनतें संख्यातवेंभाग सासादनी व्यंतर हैं। आगे सासादनी व्यंतरनतें असंख्यातवें भाग भवनवासीन के सम्यग्दृष्टि हैं। सम्यक्तीनतें असंख्यातवें भाग मिश्र हैं। मिश्रनतें संख्यातवेंभाग भवनवासी सासादनी हैं। आगे सासादनी भवनवासीनतें असंख्यातवें भाग तिर्यञ्चन के सम्यग्दृष्टि हैं। सम्यग्दृष्टीनतें असंख्यातवेंभाग मिश्रगुणस्थानी तिर्यञ्च हैं। मिश्रतें संख्यातवेंभाग सासादनी तिर्यञ्च हैं। और सासादनी तिर्यञ्चनतें असंख्यातवें भाग देश संयमी तिर्यञ्च हैं। और जेते देश संयमी तिर्यञ्च हैं। तितने ही प्रथम नरक में सम्यग्दृष्टि हैं। इनतें असंख्यातवें भाग मिश्रसम्यक्ती हैं। इन मिश्रनतें संख्यातवेंभाग प्रथम नरक के नारकी सासादनी हैं। प्रथम नरक के नारकी सासादनीनतें असंख्यातवें भाग दूसरे नरक के सम्यग्दृष्टी हैं। इनतें असंख्यातवेंभाग मिश्रसम्यक्ती हैं। इन मिश्रनतें संख्यातवेंभाग दूसरे नरक के सासादनी जीवन का प्रमाण है। और दूजी पृथ्वी के सासादनीनतें असंख्यातवेंभाग तीसरे नरक में सम्यग्दृष्टि हैं। इन सम्यक्तीनतें असंख्यातवेंभाग मिश्र हैं। मिश्रनतें तीसरे नरक के सासादनी संख्यातवें भाग हैं। और तीसरे नरक के सासादनीनतें असंख्यातवें भाग चौथे

नरक के सम्यक्दृष्टी हैं। इन सम्यक्तीनतैं असंख्यातवैंभाग यहां ही के मिश्र हैं। इनमिश्रनतैं संख्यातवैं भाग चौथे नरक के सासादनी हैं। चौथे नरक के सासादनीन के असंख्यातवैंभाग पंचम नरक के सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं असंख्यातवैंभाग पंचम नरक के मिश्र सम्यक्ती हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग पंचम नरक के सासादनी हैं। और पंचम नरक के सासादनीनतैं असंख्यातवैं भाग छठे नरक के सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं ह्यां ही के मिश्र असंख्यातवैंभाग हैं। इनतैं संख्यातवैंभाग छठे नरक के सासादनी हैं। इन छठे नरकके सासादनीन तैं सातवें नरक के सम्यग्दृष्टी असंख्यातवैं भाग हैं। इन सम्यक्तीनतैं असंख्यातवैं भागि ह्यां के मिश्र सम्यक्ती हैं। इन सातवें नरक के मिश्रतैं संख्यातवैंभाग सातवें नरक के सासादनी हैं। इहां ताईं षट् युगल भवनत्रिकमैं, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चमैं, सातही नारकीन मैं, सम्यग्दृष्टिनतैं असंख्यातवैंभाग मिश्र, अरु मिश्रतैं संख्यातवैं भाग सासादनी, ऐसा अनुक्रम कह्या। आगे सातवैं युगलतैं संख्यातभाग का अनुक्रम लिये जानना। आगे सातवें नरक के सासादनीतैं संख्यातवैं भाग सातवें युगल के सम्यग्दृष्टी देव हैं। सातवैं युगल के सम्यक्तीनतैं संख्यातवैं भाग ह्यां ही के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग सातवैं युगल के देव सासादनी हैं। और सातवैं युगल के सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग आठवें युगल मैं सासादनी हैं। और आठवैं युगल के सासादनीन तैं संख्यातवैं भागि प्रथम ग्रीवेक मैं सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग इहां के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग प्रथमग्रैवेक के सासादनी हैं। इन प्रथमग्रीवेक के सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग दूसरे ग्रीवेक

में सम्यग्दृष्टी हैं। इन सम्यक्तीनतैं संख्यातवैं भाग इहां के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग दूसरी ग्रीवेक के सासादनी हैं। इन दूसरीग्रीवेक के सासादनीनतैं संख्यातवैंभाग तीसरी ग्रीवेक के सम्यग्दृष्टीन का प्रमाण है। इन सम्यक्तीन के संख्यातवैंभाग इहाँ के मिश्र जीव हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैंभाग तीसरीग्रीवेक के सासादनी हैं। इन तीसरी ग्रीवेक के सासादनीनतैं संख्यातवैंभाग चौथी ग्रीवेक के सम्यग्दृष्टी है। इनतैं संख्यातवैंभाग इहां के मिश्र सम्यक्ती हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग चौथी ग्रीवेक के सासादनी हैं। इन चौथे ग्रीवेक के सासादनीनतैं संख्यातवैंभाग पंचम ग्रीवेक के सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग इहां के मिश्र सम्यक्धारी हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग पंचम ग्रीवेक के सासादनी हैं। अरु पंचम ग्रीवेक के सासादनीतैं छटी ग्रीवेक के सम्यग्दृष्टी हैं सो संख्यातवैं भाग हैं। इन सम्यक्तीनतैं संख्यातवैं भाग इहां के मिश्र हैं। इनमिश्रनतैं संख्यातवैं भाग छठी ग्रीवेक के सासादनी हैं। इन छठी ग्रीवेक के सासादनीतैं सातवीं ग्रीवेक के सम्यग्दृष्टी संख्यातवैं भाग हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग यहां के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग सातमी ग्रीवेक के सासादनी हैं। और सातमी ग्रीवेक के सासादनीतैं संख्यातवैं भाग आठमी ग्रीवेक के सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग यहाँ के मिश्र हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग आठमी ग्रीवेक के सासादनी हैं। और आठवीं ग्रीवेक के सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग नवमग्रीवेक के सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग यहां के मिश्र। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग

नवबें ग्रीवेक के सासादनी हैं। ऐसे प्रथम युगलतें लगाय नवग्रीवेक पर्यन्त अनुक्रमतें असंख्यात भाग कही। संख्यातभाग घटे। परन्तु अन्त ग्रीवेक में जे सम्यग्दृष्टी हैं। ते भी असंख्याते जानना। और इन अंत ग्रीवेकतें अल्प सम्यग्दृष्टी देव ऊपरले नव अनुत्तरमें हैं। इहाँ सर्व सम्यग्दृष्टी ही हैं। नवग्रीवेक ऊपरि मिथ्याती नाहीं, सर्व सम्यग्दृष्टी ही हैं। अनुत्तरों तें थोरे विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, इन च्यारि विमानन में सम्यग्दृष्टी हैं। इन च्यारि विमाननतें असंख्यातवैंभाग जीव सर्वार्थसिद्धि विमानमें हैं। सो सर्व संख्याते जानना। सो केते हैं? सो ही कहिए हैं। अढ़ाई द्वीपवासी मनुष्यन का जो प्रमाण है। तिनतें नवगुणे सर्वार्थसिद्धि के देवन का प्रमाण जानना। ऐसे च्यारि गति सम्बन्धी सम्यग्दृष्टी, मिश्र, सासादन, देशसंयमी, इनका सामान्य प्रमाण कह्या। आगे कहे गाथा विषैं सकल संयमीन का प्रमाण तीनघाटि नव कोड़ि जीव, नव गुणस्थान सम्बन्धी तिनकौं गुणस्थान प्रति कहिए हैं। सो प्रथमतें छठे गुणस्थानवरती यतीन का प्रमाण पाँच कोड़ि तिराणवै लाख अठ्याणवै हजार दोयसै छै, ५९३९८२०६ जानना। और अप्रमत्त सातवैं गुणस्थान वरती मुनीन का प्रमाण दो कोड़ि छयानवैलाख निन्यानवै हजार एकसौ तीन, (२९६९९१०३) एते जानना। और च्यारि उपशम श्रेणि के गुणस्थान वारे जीव ग्यारासौ छयानवै ११९६ जानना। और च्यारौं गुणस्थान क्षपक श्रेणिवारे जीव सो उपशमवारेतैं दूने जानना, तेईससै बाणवै २३९२। और तेरवें सजोग गुणस्थानवरती जीवनका प्रमाण आठलाख अठ्याणवै हजार पांचसै दोय, ८९८५०२ एते जानना। और चौदहवें गुणस्थान सम्बन्धी जीवन का प्रमाण पांचसौ

अठ्याणवै जानना । ऐसे प्रमत्ततैं समाय अयोग पर्यन्त आठ कोड़ि निन्यानवैलाख निन्यानवै हजार नवसौ सित्याणवै, ८९९९९९९७ ए सर्व जानना । यह नाना जीव नाना काल अपेक्षा उत्कृष्टपने कथन हैं । इनतैं अधिक प्रमाण नहीं होय, निश्चय कर ऐसा जानना । और छः महीना आठ समय में "छह सौ आठ" जीव मोक्ष जाय हैं । ऐसी परिपाटी अनादि चली आई है । अधिक-हीन, नाहीं जाय । और केई अनंतकाल गए कदाचित विरह काल पड़ै तो षट्मास मोक्ष बंद होय । कोई जीव मोक्ष नहीं जाय, तो अंत के आठ समयमें 'छै सौ आठ, जीव मोक्ष होय हैं । ऐसा जानना । और कदाचित उपशम श्रेणि का भी विरह पड़ै तो छै महीना कोई जीव उपशम श्रेणि नहीं चढ़ै । और अन्त के आठ समयनमें 'तीनसौ च्यारि, जीव उपशम श्रेणि मांडै, ताकी विधि–जो प्रथम समयमें सोलह, दूसरे समयमें चौबीस, तीसरे समय में तीस, चौथे समय में छत्तीस, पंचम समय में वियालीस, छठे समयमें अड़तालीस, सातमें समयमें चौवन, आठमें समयमें चौवन ऐसे इन आठ समय में तीनसौ च्यारि जीव निरन्तर उपशम श्रेणि मांडै । और कदाचित् क्षायिक श्रेणि का उत्कृष्ट अन्तर पड़ै तो षट्मास होय, तो अन्त के आठ समय में 'छहसौ आठ, जीव निरन्तर माड़ैं—सो प्रथम समयमें बत्तीस ३२, दूसरे समय में अड़तालीस ४८, तीसरे समय में साठि ६०, चौथे समयमें बहुत्तर ७२, पंचम समय में चौरासी ८४, छठे समय में छयानवैं ९६, सातवें में एकसौ आठ १०८, आठवें में एक सौ आठ १०८; ऐसे आठ समय में निरन्तर श्रेणि चढ़ै हैं । और कदाचित्

एक समय युगपत क्षायक श्रेणी मांड़ै तौ च्यारिसौ बत्तीस, जीव एकै काल मांडै। ताकी विधि-जो इनमैं कौन-कौन जीव श्रेणी चढ़ैं सो कहिए हैं। तहां बुद्धिबोधित ऋद्धि के धारी 'एकसौ आठ, जीव १०८। और पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़ैं ऐसे जीव 'एकसौ आठ १०८। और सुरगनतैं चय मनुष्य होय महाव्रत धरि क्षपकश्रेणि मांड़ै ऐसे जीव, एकसौ आठ १०८। और प्रत्येक बुद्धि रिद्धि के धारी क्षपकश्रेणी चढ़ैं, ऐसे जीव १०। और तीर्थंकर प्रकृति के उदय सहित तीर्थंकर पदवीधारी क्षायिक श्रेणी जीव षट् ६। और स्त्रीवेद सहित जीव श्रेणी चढ़ैं ऐसे बीस २०। और नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ़ै ऐसे जीव दस १०। और मनः पर्ययज्ञान सहित श्रेणी माडैं ऐसे जीव बीस २०। और अवधिज्ञान सहित श्रेणी चढ़ैं ऐसे जीव अट्ठाईस २८। और उत्कृष्ट अवगाहना के धारी मोक्ष होने योग्य शरीर सहित क्षायिक श्रेणी चढ़ैं ऐसे जीव दोय। २। और मोक्ष होने योग्य जघन्य अवगाहना के धारी ऐसे जीव च्यारि ४। और मध्यम अवगाहना के धारी श्रेणी चढ़ैं ऐसे जीव आठ ८। ऐसे ए कहे जीव युगपत एक समय च्यारिसौ बत्तीस ४३२। जीव क्षायिक श्रेणी चढ़ै हैं सो जानना। और युगपत एक समय उपशम श्रेणी चढ़ने बारे क्षायिकतैं आधे इन ही पदस्थवारे जीव 'दोसौ सोलह, २१६ जीव जानना। और कदाचित केवलज्ञानका विरह काल पड़ै तौ षट् महीना ताईं कोई जीवकूं केवलज्ञान नहीं उपजै। अढ़ाई द्वीप में तौ अंतके आठ समय में 'बाईस' जीवनकूं केवल ज्ञान होय। ताकी विधि-आदि के षट्समयन मैं तीन-तीन जीव एक-एक समय मैं

केवली होंय और अंत के दो समय में दोय-दोय जीव केवली होंय, ऐसे अंत के आठ समय में वाईस कहे। और केई आचार्य, अंत के आठ समय में चवालीस केवली कहें हैं। सो आदि के षट् समय में षट-षट, अंत के दोय समयमें च्यारि-च्यारि जीव केवली होंय। और केई आचार्य अट्याली केवली कहें हैं। तहाँ आदि के षट् समयनमें बारह-बारह और अंत के दोय समयमें आठ-आठ ऐसे अंत के समय में केवली होंय हैं। और केई आचार्य अंत के आठ समय में 'एकसौ छिहत्तरि' केवली कहें हैं। सो आदि के षट् समयनमें चौवीस-चौवीस और अंत के दोय समय में सोलह-सोलह केवली होंय हैं। ऐसा विशेष जानना। ए उत्कृष्ट कहे हैं। इनतें अधिक नाहीं हो हैं, ऐसा जानना। ऐसा सामान्यपने चौदह गुणस्थान सम्बन्धी जीवन की संख्या कही। विशेष श्रीगोमट्टसार जी के "जीवकांड" तें जानना। यहाँ राह पावने के निमित्त, तथा यादि राखने—सीखने निमित्त कथन किया है। सो धर्मात्मा जीव इस सामान्य कथन कों जानि महा ग्रन्थन में प्रवेश करो, तातें मोह मंद होय, सम्यक् श्रुत का प्रकाश होय। ऐसा जानि आत्म कल्याणी जीवनकों इन ग्रन्थन में प्रवेश करना योग्य है। विशेष यह जो ऊपर कहे सम्यग्दृष्टी तिनविषैं क्षायक सम्यग्दृष्टी बहुत हैं। और तिनतें असंख्यातवौं भाग क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी हैं। इनतें असंख्यातवौंभाग उपशम सम्यग्दृष्टि हैं। उपशमतें असंख्यातवैंभाग मिश्र सम्यक धारी हैं। मिश्रतें संख्यातवैं भाग सासादनी हैं तहां विशेष एता-जो सर्व तें सम्यग्दृष्टी, देवलोक में बहुत हैं। तिनमें भी तीन गति के सम्यग्दृष्टीनतें तथा चारौं गतिके सम्यग्दृष्टीनतें प्रथम युगलमें असंख्यात गुणे बहुत हैं।

ऐसे च्यारों गति संसार में तिष्टे सो जीवन की संख्या, अरु अपनी-अपनी गति सन्बन्धी गुणस्थानवर्ती जीवनकी संख्या कही। सो इन संख्या में संसारी जीव तन धरता, मरता, शुभभावन का फल भोगता, अनादि का भ्रमण करै है। तिन में विरले भव्यात्मा सत्संग के निमित्त करि, जिन देव के बचन की प्रतीतिकरि, सम्यग्दर्शनादि मोक्ष मारग योग्य सामग्री पाय, कर्म नाश करि शुद्ध होय, आगे मोक्ष पावैं। इति समान्य जीव तत्व कथन॥

आगे धर्मद्रव्य वर्णन। अब अजीव तत्वनमें धर्म द्रव्य है सो ताका गुण चलन सहाई है। तीन लोकमें तिष्ठते जे जीव, पुद्गल तिनकूं गमन करते धर्मद्रव्य सहाय करै है। जैसे जलचर जीव मच्छी आदि तिनके चलनेकूं जल सहाई है प्रेरक होय गमन नहीं करावै है। जो मच्छादि जीव जल में चलैं, तौ उदासीन वृत्ति सहित सहज ही सहाय होय है। तैसे यह धर्म द्रव्य प्रेरक होय जीवादि पदार्थनकों गमन नहीं करावै है। जो जीव पुद्गल अपनी शक्ति तैं गमन करै, तौ उदासीन वृत्ति तैं गमनमें सहाय होय है। ऐसा अनादि निधन इस द्रव्य का स्वभाव है। ऐसे चलन सहाई गुण सहित धर्मद्रव्य की अनादि स्थिति लोकमें जानना। और इस धर्म द्रव्य की पर्याय दोय प्रकार हैं। एक अर्थ पर्याय, सो तो द्रव्य का परणमन है। सो तो व्यंजन पर्याय द्रव्य का आकार है। सो धर्म द्रव्य की व्यंजन पर्याय, तीन लोक प्रमाण है। एक पटल रूप है, खंड नाहीं। अरु पुद्गल परमाणुके गजतैं नापिए तौ असंख्यात प्रदेशी होय। ऐसे इसका स्वरूप है। सौ धर्म तौ द्रव्य है गुण चलन सहाय है। पर्याय तीन लोक है ता सामानि है। इति धर्मद्रव्य॥

आगे अधर्म द्रव्य । अब अधर्म द्रव्य है अरु ताका गुण स्थितिकरण है । तीन लोक में तिष्ठते जेते जीव पुद्गल तिनकौं स्थिति करने में सहाय है । प्रेरक होय स्थिति नाहीं करावै है । जो जीव पुद्गल अपनी शक्तितैं स्थिति करैं तो यह अधर्म द्रव्य उदासीन वृत्ति भरे स्थिति करतैं सहकारी है । जैसे राह के चलन हारे पंथी कूं ग्रीष्म ऋतु में वृक्ष की छाया स्थिति कूं करतै सहाय होय है । वृक्ष बुलायके पंथी कूं अपनी छायामें बैठारि, सहाय नाहीं करै है । पंथी अपनी ही इच्छा तैं ताप मेटवे कौं वृक्ष नीचे तिष्ठै, तो उदासीन वृत्ति सहित पंथी कूं स्थिति में कारण है । ऐसे ही अधर्म द्रव्यका गुण स्थिति करना जानना । और अधर्म द्रव्यकी पर्याय भी अर्थ पर्याय, व्यंजन पर्याय करि दोय प्रकार हैं । सो अर्थ पर्याय तो स्तन लहरिवत् द्रव्य परणमण है और व्यंजन पर्याय धर्म द्रव्य प्रमाण लोक के आकार है । ऐसे अधर्म द्रव्य के गुण पर्याय कहे । इति अधर्म द्रव्य ॥

आगे काल द्रव्य । आगे काल तो द्रव्य है । गुण ताका वर्तना लक्षण है । पर्याय दोय प्रकार हैं । सो अर्थ पर्याय तो स्तन लहरिवत् द्रव्य का परिणमण है । अरु व्यञ्जन पर्याय द्रव्य का आकार है । जैसे नदी तो द्रव्य, अरु नदी के दोऊ तटन की समुद्र पर्यन्त लम्बाई का आकार, सो नदी की व्यंजन पर्याय है । और ता नदी में निरन्तर जल का प्रवाह चलना, रात-दिन पानी का बहना सो नदी का गुण है, और नदी के जलमें अनेक प्रकार तरंगनि का उपजना अरु ताही में विनसना, सो नदी की अर्थ पर्याय है । तैसेही काल द्रव्य का नदी की नाईं निरन्तर वर्तना लक्षण गुण है । और कालाणुद्रव्य का मंद गमन पलटा खाना, एक

सो आकाशप्रदेश पै तिष्ठती जो कालाणु सो पलटि, दूसरे लगते प्रदेशपै आवना सो मंद गमन है। सो याका नाम समय है। सो यह समय कालकी व्यवहार पर्याय है। इस समयतें, काल का सूक्ष्म अंश और नाहीं। और ऐसे-ऐसे समय, असंख्यात होंय, तब एक आवली नामा काल की पर्याय का भेद होय। ऐसी-ऐसी हजारों आवली व्यतीत होंय, तब एक श्वासोच्छ्वास कालका प्रमाण है। और सात श्वासोच्छ्वास काल का एक स्तोक नामा काल की पर्याय होय है और सात स्तोक का एक लव मात्र काल पर्याय होय है। और साढ़े अड़तीस लव की एक नाली होय है इस नाली ही का नाम घड़ी है। और दोय घड़ी का नाम एक मुहूर्त है। और एक समय घाटि दोय घड़ी का नाम अन्तर्मुहूर्त है। और तीस मुहूर्त का एक अहोरात्रि है। और पन्द्रह अहोरात्रि का एक पक्ष होय है। और दोय पक्ष का एक मास होय है। और दोय मास की एक ऋतु होय है। और तीन ऋतुका एक अयन होय है। दोय अयन का एक वर्ष होय है। और सत्तरि लाख करोड़ि वर्ष अरु छप्पन हजार करोड़ि वर्ष इन सबनिकौ मिलाए एक पूरब काल होय है। और ऐसे असंख्यात पूरब कालका एक पल्य होय है। दश कोड़ाकोड़ि पल्यका एक सागर होय है। अरु बीस कोड़ाकोड़ि सागर का एक काल चक्र होय है। ऐसे-ऐसे अनंतानंत काल चक्र व्यतीत होंय, तब एक काल का परावर्तन होय है। ऐसे काल की व्यवहार पर्याय का स्वरूप जानना। ऐसे कालतौ द्रव्य, गुण वर्तना लक्षण और कालाणुतें निपज्या जो समय, घड़ी, दिन, मास, वर्ष, पल्य, सागर, सो पर्याय हैं। ऐसे काल द्रव्यका लक्षण कहा। इति काल द्रव्य।

आगे आकाशद्रव्य। आगे आकाश तो द्रव्य है। ताका अवगाहन देना गुण है।

पर्याय लोकालोक प्रमाण है। ता आकाश के दोय भेद हैं। एक अलोक है, सो अनंत प्रदेशी है तहां और द्रव्य नाहीं, शून्यता लिए है। शुद्ध एक आकाश ही है। और एक लोकाकाश है। तहां षट्‌द्रव्य रचना सहित च्यारि गतिरूप संसार कूं धरे है। अरु कर्म सहित शुद्ध जीव तिन सहित यह असंख्यात प्रदेशी, सो सर्व रचना जामें पाईए, सो ऐसा लोकाकाश है। यामें षट् द्रव्य तिष्ठें हैं। इति आकाश द्रव्य।

ऐसे ए षट् ही द्रव्य अपने-अपने गुणपर्याय सहित, अपने-अपने स्वभावमें तिष्ठें हैं। एक क्षेत्रमें सर्व की स्थिति है, परन्तु कोई काहूतें मिलते नाहीं। ऐसा कोई अनादि व्यवहार है जो कोई द्रव्य, काहू द्रव्यतें मिलता नाहीं। किसीके गुणनें कोईका गुण नहीं मिलै। किसी पर्यायतें पर्याय नहीं मिलै। ऐसी उदासीन वृत्ति है। जैसे एक कंदरा (गुफा) में षट्‌मुनि बहुत काल रहे। परन्तु कोई काहूतें मोहित नाहीं। उदासीनता सहित एक क्षेत्र में रहे हैं। तैसे ही षट् द्रव्य, एक लोक क्षेत्र में जानना। तिनमें पंच अजीव द्रव्य हैं। तिन पंच अजीवद्रव्यनके गुणभी अजीव हैं। पर्याय भी अजीव हैं। और एक चेतन द्रव्य है। ताके द्रव्य, गुण और पर्याय भी चेतना हैं। तातें भो भव्यात्मा, तू देखि! यह जीव ज्ञानरूप देखने-जानने रूप है। सो अनादि परद्रव्यन के मोहतें, परमें ममत्वभाव धरकैं, आपनपौ भूलि, पर द्रव्यकौं अपना इष्ट जानि, पररूप सा होय गया। आप अमूर्तीक है। सो भूलितें आपकूं मूर्तीक जड़ भावरूप मानने लागा, परन्तु जड़ नहीं होय गया। आप अपने चेतना के व्यवहार कौं नहीं तजे है। जैसे कोई नट मनुष्य, लोभ के वशीभूत होय अपने

तनपै नाहर की खालि नाखि, सिंहका स्वांग धरि आया, नाना चेष्टा, कूंदना, धड़ूकनादि भी करै है। ताकूं देखि अजान भोरे जीव याकौं सिंह जानि भयभीति होय हैं। परन्तु वह सिंह नाहीं है। लोभके वशीभूत होय इस नटनैं अपनारूप पशुका बनाया, आपकूं पशु मांनि विचरै है। परन्तु पशु नाहीं, नर ही है। तैसेही यह संसारी जीव अपनी अनादि भूलितैं जा गति मैं गया, ताही गतिरूप होय रह्या। च्यारि गति के शरीर पुद्गलीक अनेक धारि, आपकौं देव नारकादि आकार मान्या, मैं देव हौं, मैं नारक हौं, मैं पशु हौं, मैं मनुष्य हौं, मैं सुखी हौं, मैं दुखी हौं, यह धनधान्यादि कुटुम्बी मेरे हैं। मैं बड़े तनका धारी हौं। ऐसे आपकौं कर्मनिमित्ततैं जड़ समान पुद्गलीक तनमैं तिष्ठता, अचेतन की चेष्टा बतावता भया। परन्तु अपना विशेष देखना-जानना रूप चैतन्यरूप भाव सो नहीं छूटता भया। आप जीव ही है॥ जैसे नट, सिंह की खालि नाखि दूरि भया, तव सबका भरम गया। सबै याकूं नर मानते भये॥ यह भी नर ही रह्या, और आगे भी नर ही था। भरमतैं सिंह भया था। तैसे तनरूपी खालि तजि, तब शुद्ध आत्मा भया। ऐसे जीव अजीव का स्वरूप है। सो हे भव्य, तू निश्चय करि जानि। जैसे जीव, अजीव का स्वरूप कह्या तैसे ही सम्यक् होते ये विचार सहज ही होय उपजै हैं। पर वस्तुनतैं ममत्व छूटि, भरम मिटि, शुद्ध श्रद्धान होय है। सो अमूर्तीक शुद्धात्मा सिद्ध भगवान ताका स्वरूप, सम्यग्दृष्टी अपने अनुभवनमैं ऐसा विचारै है। जो चौदहवें गुणस्थान जा शरीर में तिष्ठता आत्मा, अपनी शुद्ध परणति के जोगतैं जा शरीरमैं था, ताके हाड़, मांस, चाम, नशादि जो पुद्गलीक आकार स्कंध सो तिनकौं छोड़िकैं ता शरीरके आकार आप

चेतनरूप सिद्धदेव होय तिष्ठै । तैसे ही सम्यग्दृष्टी विचारै है, जो मैं भी दिव्य दृष्टीतैं निश्चय करि देखौं तौ अपना चैतन्यभाव इस पुद्गलीक शरीरतैं, ऐसे भिन्न विचारों हौं। कि जो मैं वर्तमान में ए शरीर क्षेत्र में तिष्ठौं हौं । सो या तन में देखन-जानन हारा गुणतौ मेरा है। यह तन जड़ है। सो आयु अंत खिरै है । तथा सिद्ध होते खिरै है । सो तैसे ही मैं तौ या क्षेत्र में तिष्ठौं ही हौं । अरु या तन के चांम, हाड़, मांस, नश, पुद्गलीक आकाररूप मूर्तीक हैं, सो मेरा अंग नाहीं, मैं तो चैतन्य हौं। ए चांम तन के खिर जावो, मांस स्कंध खिर जावो, हाड़ खिर जावो, इत्यादिक पुद्गलीक स्कंध खिरै हैं, तौ खिरौ । मैं देखने-जानने हारा, मेरे स्थान में तिष्ठौं हौं। सर्व पुद्गलीक मूर्तीक मेरे प्रदेशनतैं एक क्षेत्र हैं, सो सर्व खिर गये। मैं ही एक, अमूर्तीक, देखने-जानने हारा, सिद्ध समांनि आत्मा रह जा हौं । सम्यक होते आपा-पद का विचार ऐसे भी होय है । ऐसा विचार होतैं सम्यग्दर्शन के शरीरादि परवस्तुनतैं ममत्व छूटै है । पर वस्तुनतैं ममत्व छूटतैं निराकुलता सहज ही प्रगट होय है । और निराकुलता प्रगटै चारित्र की बधवारी (बढ़वारी) होय है । और चारित्र की वृद्धितैं विशुद्धता की विशेष वृद्धि होय है। विशुद्धता बधे (बढ़े) केवलज्ञान की प्राप्ति होय है । और केवलज्ञान भए संसार भ्रमण मिटि, सकल शुद्ध सिद्ध पद पाय, सर्व सुखी होय है। पीछे सिद्धस्थान विराजि अकलंक निर्दोष सिद्ध होय है। जगतपूज्य पदधार अविनाशी सुखरूप होय है। ऐसे सिद्ध पदकौं हमारा नमस्कार होऊ । इनकी भक्ति के प्रसाद मोकौं इनसा पद होऊ । ऐसे भी

सम्यग्दृष्टी भावना भाय, अतिशय सहित पुण्यबंध का संचय करै है। इहां प्रश्न–जो सम्यग्दृष्टीकौं पुण्य की इच्छा काहे को चाहिए ? और तुमने कह्या जो अतिशय सहित पुण्य का बंध सम्यग्दृष्टी ही करै है, सो औरन कैं क्यों नहीं होय ? अरु अतिशय सहित पुण्य काहेकौं कहिए ? ताका समाधान। भो भव्य, जो पुण्य के बंध भये पीछे वह पुण्य घटने नहीं पावै। दश पांच-भव जेते लेना होंय, तेते ऊंच लेय, पीछे ताकौ मोक्ष ही होय है। ताकौं अतिशय सहित पुण्य कहिए। और कबहूं शुभभावतैं पुण्य का बंध होय। कबहुं अशुभ भावनतैं पापबंध होय। पुण्यबंध होता रहि जाय। ता फल कबहूं देव, कबहूं पशु होय। ऐसे पुण्यकौं अतिशय रहित कहिए। ए पुण्य, संसार का ही कारण है। ऐसा जानना। और सुनि। भो भव्य ! सम्यग्दृष्टी कैं तो पुण्य बंध की इच्छा नाहीं। परन्तु सम्यक भए पीछे दोय-तीन भव लेने होंय, तौ तेते काल संसार में रहै। पुण्य फल सम्यग्दृष्टीन के बंध भए पीछे टूटता नाहीं। सो संसार में रहैं जेते देव, इन्द्र, चक्री, महान राजा, सुखी होय, पीछे परम्पराय मोक्ष ही होय। तातैं सम्यग्दृष्टी के ऐसा अतिशय सहित पुण्य बंध ही होय है। ऐसा यह सहज ही भाव जानना। ऐसे तेरा उत्तर जानहु। ऐसा जीव-अजीव तत्वन का स्वरूप जिन देवतैं दिव्य ध्वनि करि कह्या। तैसेही गणधरदेव ने प्ररूप्या तैसे परम्पराय आचार्य प्ररूपते आए। तिनके भेद पाय-पाय अनेक भव्य प्राणी अनादि मिथ्यात बंधन तोड़ि सम्यग्दृष्टी भए। ताही का अनुसार लेय इहां भी सामान्य तत्त्व भेद कह्या है। ताका रहस्य जानि अब भी भव्य तत्वज्ञानी होऊ। इति जिनभाषित अनुसार सामान्य तत्त्वभेद कथन।

ऐसे अनादि भरम भूले, भोरी चेष्टा के धरन हारे, अतत्व श्रद्धानी जीव कुगुरुन के उपदेशरूपी फांसीमैं परे, धर्मवासना रहित, संसार भोग के अभिलाषी, समता रस बिना उत्पत्ति भई है त्रषना (तृष्णा) रूपी तप जिनकैं, ऐसे ज्ञान चक्षु रहित अंधसम, बालक सम लीला करन हारे, भोरे प्राणी, तिनकौं सो नबुद्धि धर्मार्थी जानिकै दयाभाव करि तिनके समझावे के अर्थ कुवादीन के प्ररूपे जे अनेक कर्तत्व मत, तिन विषैं भिन्न-भिन्न स्वइच्छा बुद्धि कल्पना करि, तत्व भेद कहे थे। तिन वादीन कूं प्रगट असत् करि जिनभाषित जीव अजीव तत्व, द्रव्य गुण पर्याय सहित भिन्न-भिन्न नय करि बताए। सो यह सर्वज्ञ भाषित तत्व भेद सत्य है। काहू वादी करके खंड्या नहीं जाय। ऐसे तत्व भेद हैं सो प्रमाण है। ए जीव अजीव तत्व सत्य हैं। इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अतत्व श्रद्धान अन्य मतन सम्बन्धी जीव अजीव तत्व विपरीत कथन प्ररूपणे हारे कुवादी तिनिका भरम मेटि, जिनभाषित तत्वज्ञान वर्णनो नाम, सप्तम प्रभावः [पर्वः] समाप्तः ॥ ७ ॥

इन शुद्ध तत्वन का जिस विषैं भले प्रकार कथन पाईए, सो शुद्ध आगम है। और आगम है सो काहूका उपदेश्या नाहीं। जो ऐसे शुद्ध आगम का करता है, सो ही सर्वज्ञ भगवान वीतराग शुद्ध आप्त है। आप्तनाम भगवान का है। सो उस शुद्ध भगवानकौं जान्या चाहिए। सो कैसे जानिए? तौ विवेकी ऐसा बिचारै, जो वस्तु जानिये है, सो गुणतैं जानिए है। तातें प्रथम ही भगवान के गुण जानैं, तौ शुद्ध भगवान जान्या जाय। तातैं भगवान के गुण कहिए है। सो एक तौ जिम भगवान वीतरागी होंय, वीतराग भाव बिना सरागी

जीवन पै यथावत् उपदेश होता नाहीं, अपना भगत होय ताकी प्रशंसा करै, रचा करै। अपना भक्त नहीं होय तौ ताकी निन्दा करै, ताका बुरा चाहै। तौ ऐसे देव का वचन प्रमाण नाहीं। तातें यथावत् उपदेश, बीतरागी बिना होता नाहीं। तातें देव बीतरागी चाहिए और सर्वज्ञ चाहिए। सर्वज्ञ बिना लोकालोक की नहीं जानैं। जीवन के अतरंग घट-घट की नहीं जानै, ऐसे तुच्छ ज्ञानीन का बचन प्रमाण नाही। तातें भगवान् सर्वज्ञ चाहिए। और वीतराग सर्वज्ञ तौ है किन्तु तारक नाहीं, तौ किस काम का भगवान्? काहू का तौ भला करता नाहीं। तातें भगवान् तारक चाहिए। जाका नाम लिए, ध्यान किए, पूजे, भगतन का भला होय। इहाँ प्रश्न—जो भगवान् वीतराग है तामें तारकपना कैसे संभवै? तारकपना तौ सरागी कौं होय है। अरु वीतरागी कूं भगत के तारने की इच्छा भए, वीतराग भाव कैसे रहै? अरु बिना इच्छा भगत का भला कैसे होय? सो कहो। ताका समाधान। जैसे सूर्य के ऐसी इच्छा नाहीं, जो मैं अपना उदय करौं, जिससे कमल प्रफुल्लित होंय। परन्तु सूर्य का उदय होते सहजभाव ही कमल प्रफुल्लित होय हैं, सूर्य में कोई ऐसा गुण सहज ही पाईए। तैसे ही भगवान् कैं तो ऐसी इच्छा नाहीं, जो भगतन का भला करौं। परन्तु भगवान् मैं कोई तारण गुण सहज ही ऐसा पाईए है। जो ताकरि भगत का भला होय ही होय। और जो सूर्य की तरफ कड़ी नजरि (दृष्टि) करि देखै, तौ ताके नेत्रन आगे अंधकारसा फैलि जाय, नेत्रन की ज्योति मंद होय, सो सूर्य कै तो ऐसी इच्छा नाहीं जो मेरी तरफ क्रूर देख्या, तातैं अन्धा करौं। परतु सूर्य के तेज मैं कोई सहज ही ऐसा अतिशय है। सो सूर्य की तरफ

सख्त (तेज) दृष्टि करि देखे, तौ नेत्र की ज्योति मंद होय। तैसेही भगवान् की तौ ऐसी इच्छा नाहीं जो इस निंदक का बुरा करौं। परन्तु कोई ऐसाही अतिशय है। जो भगवान की निन्दा किए, नरकादि दुःख सहज ही होंय। तातैं भगवान् में वीतरागता, सर्वज्ञता, तारकपना, ए तीन गुण तौ मुख्य हैं। अरु और अनंते गुण हैं, तिनमें केतेक वाह्य, आभ्यंतर गुण अतिशय कहिए हैं। तिनके जानें भगवान् कौं पहचानिए। सो ही कहिए है—

गाथा—दोह अठारह रहियो, गुणसड चालीय होय सजुत्तो।
सव्वगो वीयरायो, सदेवो भव्वतार पणमामी ॥ १८ ॥

अर्थ—दोह अठारह कहिये, अष्टादसदोष रहित होय। गुण सड चालीय होय संजुत्तो कहिए, छयालीस गुण सहित होय। सव्वगो कहिए, सर्वज्ञ होय। वीयरायो कहिए, वीतरागी होय। सदेवो कहिए, सो देव। भव्वतार कहिए, भव्यन का तारक होय। पणमामी कहिए, ताकौं नमस्कार करौं हौं। भावार्थ—जाके रागद्वेष नहीं, सो वीतरागी है। केवलज्ञान सहित होय सो सर्वज्ञ कहिए। और जाका नाम लिए पाप का नाश होय, ऐसे अतिशय का धारी होय और क्षुधादिक अठारह दोष रहित होय और छयालीस गुण सहित होय, सो देव जानना। तहाँ प्रथम अठारह दोषन का स्वरूप कहिए है।

सो प्रथम क्षुधा जगत के जीवनकौं महादुःख करन हारा, ताके पोखे बिना मरण होय, ये क्षुधा बड़ा रोग है। सो जाके ऐसी क्षुधा होय, सो देव नाहीं। जाके छूते (किये), अपनो क्षुधा महाव्याधि ही नहीं मिटी, तो भक्तन की क्षुधा कैसे मेटे ? तातैं भगवान् के

क्षुधा रोग नाहीं ॥ १ ॥ बहुरि तृषा समान तीव्ररोग दुखदाई नाहीं, जो जलनामा औषध नहीं मिलै, तौ प्राण जाय। ऐसी तृषारूपी व्याधि जाकैं होय, सो देव नाहीं। और भगवान् कैं तृषारोग नाहीं। अपनीं तृषा तपन जाकैं नहीं मिटी, तो भगतन की तृषा-तपन कैसे मेटै ? तातें प्रभुकैं तृषा नाहीं ॥ २ ॥ बहुरि जहां रागभाव होय सो भगवान नाहीं, भगवान्जी कै रागभाव नाहीं ॥ ३ ॥ और जाके द्वेषभाव होय सो परका बुरा करै। तातैं जाकैं रागद्वेष होय, सो भगवान् नाहीं। अरु भगवान् कैं द्वेषभाव नाहीं ॥ ४ ॥ और जो माता के गर्भ में आवै, गर्भ के महा दुःख, मल-मूत्र विषैं नवमास अधोशीश उर्ध्व पांव महासंकट में अवतार लेय, सो भगवान नाहीं। अरु भगवानकैं अवतार नाहीं ॥ ५ ॥ और जरा जो बुढ़ापा जाकरि सर्व अंग शिथिल होंय, दीनता पावै, ऐसी जरा जाकैं होय, सो भगवान् नाहीं। भगवान् कै जरा नाहीं ॥ ६ ॥ और जाका मरण होय सो भगवान् नाहीं, जो अपना ही मरण नहीं मेटै तौ भगत का मरण कैसे मेटै ? तातैं भगवान् कैं मरण नाहीं ॥ ७ ॥ और जाकैं रोग होय, सो देव नाहीं, जो अपना रोग ही नहीं हरै, सो भगत कूं कैसे सुखी करै ? तातैं भगवान कैं रोग नाहीं ॥ ८ ॥ और जाकैं इष्ट वस्तु का वियोग होतैं शोक होय, सो देव नाहीं। जो अपना ही शोक-दुख नहीं टारि सकै, सो देव, भगत का शोक कैसे टारि सकै है ? तातें जाकैं शोक होय, सो देव नाहीं। भगवान कैं शोक नाहीं ॥ ९ ॥ और जाकैं शत्रु, रोग, मरणादि दुखन का भय होय, सो भगवान् नाहीं। जो अपना ही भय नाहीं टारै, सो भगतन कौं कैसे सुखी करै ? तातैं सर्वज्ञ देवकैं भय नाहीं ॥ १० ॥ और जाकैं

विस्मय होय । जो यह कहा भया, तथा बड़ा आश्चर्य भया, ऐसा विद्या रहित अज्ञानीनकैं होय, याका नाम विस्मय है । सो जाके विस्मय होय, सो भगवान् नाहीं। केवलज्ञानीकें कछू बिस्मय नाहीं ॥ ११ ॥ और निद्रा के जोरतैं प्राणी सर्व सुध-बुध भूलिजाय । महा प्रमाद की की करनहारी, मृतक समान करनहारी, ऐसी निद्रा जाकैं होय, सो भगवान् नाहीं । भगवान् सदैव चैतन्यमूर्तीक, जाग्रत दशारूप, सर्व प्रमाद रहित, जगत गुरुकैं, निद्रा नाहीं ॥ १२ ॥ और जाके खेद होय, सो देव नाहीं । जो अपना ही खेद नाहीं मेट सके, सो भगतकौं निर्खेद कैसे करै ? तातैं भगवान सर्व सुखीकैं, खेद नाहीं ॥ १३ ॥ और शरीरमैं पसेव होय सो हीन पराक्रमतैं होय है । तातैं जाकैं पसेव होय, सो भगवान् नाहीं । अनंतबली भगवान् कैं पसेव नाहीं ॥ १४ ॥ और मद है सो मान कर्म के उदय तैं, मानी संसारी अनेक क्रोधादि कषायन के पात्र, तिनकैं होय है । सो जाकें मद होय, सो भगवान् नाहीं । भगवान् कै मद नाहीं ॥ १५ ॥ और परवस्तु कूं देखि अरति होय है । जो अरति के उदयतैं होय, सो अरति है । जाके कर्म उदय अरति होय, सो भगवान् नाहीं, बीतराग भगवान् कै अरति नाहीं ॥ १६ ॥ और महादुख का मूल, संसार का बीज, संसार भ्रमण करावनहारा ऐसा मोह जाकैं होय, सो भगवान् नाहीं । जगत उदासी भगवान् कैं, मोह नाहीं ॥ १७ ॥ और जाकैं रति कर्म के उदय, अनेक वस्तुनमैं हर्ष मानै-रंजावै, ऐसा रति कर्म का जोरि जाकैं होय, सो देव नाहीं । भगवान् वीतराग देव कैं रति नाहीं ॥ १८ ॥ ऐसे कहे अठारह दोष जाके पाईए, सो भगवान नाहीं । भगवानकैं ए अठारह दोष, सर्व प्रकार नाहीं, ऐसे जानना । और

भगवान् कैं छयालीस गुण होय हैं, तिनका कथन कहिए है—

अतिशय चौंतीस। तहाँ प्रथम ही भगवान अंत का शरीर धरैं हैं। जब गर्भ अवतार होय, तब ए दश अतिशय, होंय हैं—सो तहाँ पसेव (पसीना) नाहीं। १। समचतुर संस्थान है। २। वज्रवृषभनाराच संहनन। ३। तनमैं मल नाहीं। ४। शरीर महा सुगंध। ५। अनंत महासुन्दररूप होय है। ६। शरीर में अनेक भले लच्छण होय हैं। ७। तनमैं स्वेतरुधिर होय॥ ८॥ बचन महासुन्दर मधुर होय। ९। और तिनके तनमैं अनंत बल होय। १०। ऐसे दश अतिशय तौ जन्मतेही होंय, सो भगवान् जानना। और दश अतिशय केवलज्ञान भये पीछे होय हैं। तिनके नाम—तहाँ समोशरणमैं चतुरमुख दीखैं। भगवान् का समोशरण जहाँ होय, तहांतैं चौतरफ सौ योजन दुर्भिच्छ नहीं होय। आकाश निर्मल होय। सर्व जीवनकैं दयाभाव होय। गमन करते कोई जीवकों बाधा न होय, कवलाहार नाहीं। इहां प्रश्न—कवलाहार के षट् भेद हैं सो यहां कवलाहार मनैं किया, सो केवलज्ञानमैं पंच आहार तौ होते ही हैं। ताका समाधान—

भो भव्य, तूं षट् ही प्रकार आहार का स्वरूप सुनि, ज्यौं तेरा सन्देह जाय। प्रथम नामकर्म आहार, नोकर्म आहार, ओज आहार, मानसीक आहार, कवलाहार, लेपआहार, ए षट् हैं। अब इनका सामान्य अर्थ कहिए है—तहाँ ज्ञानावरणी आदि कर्म वर्गणा का ग्रहण करना सो कर्म आहार है। सो केवली कैं और कर्मका बंध नाहीं, सो बंध के अभावतैं कर्म का आहार नाहीं। एक सातावेदनीका बंध है सो भी नाममात्र उपचार बंधहै। सो स्थिति

अनुभाग रहित है । परन्तु उपचार से कर्म आहार इहाँ कहिए है । १ । और औदारिक, शरीर जाति के नोकर्म परमाणु का ग्रहण तेरहवें गुणस्थान तक है । तातें नोकर्म आहार केवली कैं पाइये है परन्तु यहां कवलाहार की मुख्यता है तातें याका विचार नाहीं किया । २ । और ओज आहार ताका नाम है । जेसे चिड़िया अंडेन कूं छाती नीचै दावै तिष्ठी रहै, ताकरि अंडा में उपजनहारेन का पोख है । सो ओज आहार कहिए । सो ए आहार अडंज जीवन कै होय है, और कै नाहीं । तातें केवली कैं ओज आहार नाहीं । ३ । और भोजनपै मन चलै ही तृप्ति होय, सो मानसीक आहार कहिए । यह आहार देवन के होय है, और कै नाहीं । तातें जिनदेव कै मनसा आहार भी नाहीं । ४ । और शरीर में लगै तृप्तता होय, सो लेप आहार है । यह एकेन्द्रियनकैं होय है, औरन कैं नाहीं । तातें भगवान केवली कैं लेप आहार भी नाहीं । ५ । और अन्न मेवा, जल, इन आदि अहार मनुष्य तिर्यञ्चन कै है, सो कवलाहार है । यह जिह्वा इन्द्रिय द्वारा ग्रहण होय है । सो यह कवलाहार भी, निर्दोष जिन भगवान कैं नाहीं । अरु यहाँ मुख्यता कवलाहार के कथन की है । तातें भगवानकैं कोई आहार नाहीं जानना । ६ । ऐसे भगवान कैं केवलज्ञान भए कवलाहार नाहीं ॥ ५ ॥ और केवलज्ञान भए पीछे जगतबंधु कैं उपसर्ग नाहीं होय । ६ । केवली के शरीरकैं छाया नहीं होय । ७ । सर्व विद्या के नाथ हैं । ८ । नख केश नहीं बढ़ै, केवलज्ञान उपजतैं जेते थे, तेते ही रहैं । ९ । और अनंतबली की भौंह टिमकैं [चलैं] नाहीं, एकाग्र रहैं । १० ।

ऐसे भगवानकूं केवलज्ञान होय पीछे, ए दश अतिशय प्रगट होय हैं। ऐसे केवल ज्ञान भए के अतिशय कहे। आगे देवनकृत चौदह अतिशय कहिए हैं—

जब भगवान् केवली की समोशरण में वाणी खिरै, ताकूं सुनि सर्व प्राणी अपनी-अपनी भाषा में समझि लेय हैं। ऐसा ही अतिशय है ।१। जहां भगवान तिष्ठै, तहां तिष्ठते—सर्प, मोर, सिंह-गाय, इत्यादि जाति विरोधी जीव, द्वेष तजि मित्रता भजैं।२। और तहां की भूमि आरसी [दर्पण] समान निर्मल होय ।३। और भगवान् विराजैं ता बन में, षट् ऋतु के फल-फूल होंय।४। और समोशरण के चारों तरफ मंद-सुगंध पवन चालै (बहे), तातैं सर्व जीव सुखी होंय।५। और जहाँ भगवान विराजैं, तहाँ के प्राणी सदीव-सहज ही सुख मई रहैं।६। और सर्व भूमि कंटक रहित होय ।७। और महा सुगंध जल की वर्षा होय। और भगवान्जी बिहार कर्म करैं, तव पद-पद पै देव कमल रचते जांय, भगवान् जहां पांव धरैं, तहां दे पन्द्रह २ फूलन की पन्द्रह २ पंक्ति करि दो सौ पच्चीस कमलन का चौकोर समूह धरते जाय हैं।८। और आकाश निर्मलताकूं धरै। रज [धूलि] बद्दलादि नाहीं होंय।१०। दशौं दिशा महाशोभायमान निर्मल भासैं ।११। और बिहार समय देव अपने शीश पै धर्मचक्रकौं आगे लिए चलैं।१२। और अष्ट द्रव्य-पंखा, चमर-छत्र, कलश, झारी, दर्पण, पध्यो [ध्वजा], ठौनां ए मंगल द्रव्य एक-एक जाति के एक सौ आठ होंय, सो आठसौ चौंसठि भए। तिनकौं एक-एक देव, एक एक मंगल द्रव्य, विनय सहित भगति [भक्ति] तैं, बिहार समय लिए चलैं ।१३। और आकाशमैं असंख्यात देव जय-जय

शब्द करते चले जांय। १४। ऐसे चौदह अतिशय देव कृत हैं। सो अतिशय का महात्म तौ भगवान् का है, निमित्त मात्र देवन की भक्तिका सहाय है। ए सर्व मिलि चौंतीस अतिशय भए। आगे वसु [आठ] प्रातिहार्य कहिए हैं—

गाथा—तरु असोय सविठो, दिव्वधुणि चमर सीहपीठाया।
भामंडल दुंदुभि वयणो, आतपहर पातहाज वसुभेयो ॥ १६ ॥

अर्थ—अशोकवृक्ष, महा सुगधित फूलों की वर्षा, दिव्यध्वनि, चमर, सिंहासन, प्रभामंडल, दुंदुभीबाजे और छत्र, ए अष्ट प्रातिहार्य हैं। भावार्थ-भगवान् के विराजवे की गन्धकुटी ताके उपरि अशोक नाम रतनमई वृक्ष है। तामैं ऐसा अतिशय पाइए है, जो ताकौं देखैं महातीव्र शोक होय, सो भी जाता रहै और सुखी होय। १। और जहां भगवान् विराजैं, तहां कल्प वृक्षन के रतन मई, महा सुगंधित, कोमल, अनेक वरण के फूलों की वर्षा होय ॥२॥ और भगवान् की वाणी बिन अक्षरी, मेघ की गर्जना समान, होटतैं होट नहीं लगै, सर्व जीवन कौं हितदाई, अनेक संशय नाशनी, भगवान् की दिव्यध्वनि खिरै है। सो एक दिन मैं तीन बारप्रभात, मध्यान्ह और सांझ खिरै। और कोऊ शास्त्रन मैं अर्धरात्रि कूं खिरै, ऐसी कही है। ताकी अपेक्षा एक दिन मैं च्यारि बार वांणी खिरै है। सो एक-एक वांणी की ध्वनि छै-छै घड़ी पर्यन्त काल समय होय। सो दिव्यध्वनि प्रातिहार्य कहिए है ॥ ३ ॥ और चौंसठि चमर इन्द्रन के हस्ततैं ढुरैं हैं ॥ ४ ॥ अति रमणीक, महामनोग्य, अनेक शोभा

सहित, रतन मई, मेरु समान उतंग कों धरे, सिंहासन है। ताके चारों पायन की जगह, च्यारि बैठे सिंहन के आकार, रतन मई, महा सौम्य मूर्तीक, सर्व अंग सुन्दर, नेत्र, कर्ण मुख जिह्वा, केशावली आदि सर्व नख, मानो साक्षात कोई धर्मात्मा श्रावकव्रत के धारी सिंह ही भक्ति के भरे सिंहासन धरैं तिष्ठैं हैं। ऐसा सिंहासन प्रातिहार्य है ॥ ५ ॥ और भगवान् के शरीर की प्रभा का चौतरफ मंडलाकार होना, सो प्रभा मंडल है। तामें देखैं जीवन कूं परभव केई (बहुत) दीखें हैं ॥ ६ ॥ और अनेक जाति के वादित्र (बाजे) मधुर शब्द सहित, एक रँग होंय बाजना, सो दुंदुभी प्रातिहार्य है ॥ ७ ॥ और भगवान के मस्तक पर तीन छत्र फिरैं, सो मानों तीन लोक की प्रभुताई बतावैं हैं, सो छत्र प्रातिहार्य है ॥ ८ ॥ ऐसे आठ प्रातिहार्य कहे। और अनंत पदार्थन देखने—जानने रूप प्रवृतैं, सो अनंतज्ञान व अनंतदर्शन कहिए। और अनंत पदार्थन के देखने-जानने से अनंत ही अतीन्द्रिय सुख है। और अन्तराय कर्म के नाशतैं अनंतपदार्थ जानने की प्रगटी जो शक्ति, सो अनन्तवीर्य है। ऐसे ए अनंतचतुष्टय हैं। इन सर्वकों मिलाए जन्मके दश, केवलज्ञान के दश, देवकृत चौदह, प्रातिहार्य आठ, अनंत चतुष्टय चार, सर्व मिल छयालीस गुण हैं। सो ए गुण जामैं पाइए सो तरण-तारण, शुद्ध भगवान सम्यग्दृष्टीन करि पूज्यवेयोग्य जानना। ऐसा भगवान् उपादेय है। इति सुदेव लक्षण। आगे कुदेव का लक्षण कहें हैं—

जहां ऐसे लक्षण होंय सो कुदेव। जो सरागी होय, भक्त कूं देखि राजी होय, अपना

अविनयवान् देखि कोप करै। ऐसा रागी-द्वेषी होय, तिनकूं लोक विषैं भी और कोई २ जीव ऐसा कहै हैं जो यह देव रीझै तौ राज—सम्पदा देय, सुखी करै है। और ए देव कदाचित कोप करै, तौ दुखी करै, रोग करै, पीड़ा देय, धन रहित करै, मरण करै। और कल्पवासी, भवन-वासी, व्यंतर, ज्योतिषी, ए च्यारि जाति के देव हैं सो योनिभूत देव हैं, जन्म—मरण सहित हैं। अपने किये पुण्य के फल ताहि भोगवै हैं। ए सौम्यदृष्टी, तिनकूं देखे सुख होय है। ए काहू कूं दुखी करते नाहीं। और केतेक भोरे प्राणीननें अपनी बुद्धि कल्पना करि देवनाम देय, स्थापन किए, सो लौकीक देव हैं। सो ए लोकनकौं आश्चर्यकारी हैं। सो ऐसा कहै हैं। जो हमकौं पूजो, तृपति करो, अनेक भोग योग्य वस्तु हमकौ चढ़ावो, तो हम तुमतें प्रसन्न होय हैं। ऐसी सुनि भोरे जीव, केतेक तौ ऐसा कहै हैं। जो याकौं तेल चढ़ाय प्रसन्न होय है। केई कहैं, या देव कौं सिन्दूर चढ़ाय राजी होय है। केई कहैं, याकौ बड़ा रोट चढ़ाय सन्तुष्ट होय है। कोई कहैं याकूं जीर्णवस्त्र चढ़ानू एय तन देय है। कोइ कहैं, या देव को गुड़ चढ़ै है। कोई कहैं याकौं मोदक (लड्डू) चढ़ाईए है। कोई कहै, याको फूल फल पत्र दोभ चढ़ाये प्रसन्न होय है। कोई कहैं याकौं मद की धारा चढ़ावो। कोई कहै याकौं जीव का भक्षण चढ़ै है। इत्यादिक अनेक लौकिक देव हैं। सो इनकी चेष्टा रागद्वेषरूप जानि, सम्यग्दृष्टी जीवन के सहज ही हेय भावरूप हैं। त्यागवे योग्य हैं। इनकी सेवा-भक्ति सुख दैने योग्य नाहीं। ए संसारी देव हैं, ऐसा जानना। इति कुदेव कथन॥

आगे गुरु परीक्षा में ज्ञेय, हेय, उपादेय बताइए है—

याचना आये दीन होय। साता भये प्रफुल्लित होय। चाम, घास, बक्कल इत्यादिक पटकाधारी होय। जो रंकवृत्ति, ता याचना का धारी होय, सो कुगुरु है। और आपका अपमान भए तथा आपकौं मनवांछित दान नहीं दिये, परकौं सराप देवेकौं महाक्रोधी होय। और आपकूं गुरु संज्ञा मानि अवधि धारत होय, पर पीड़ा करवेकौं निरदई होय। अरु पराए आश्रयकूं वांच्छता होय। और मिष्ट सुर करि गावना-बजावना आदि क्रिया करि अन्य गृहस्थीन कौं राजी करवे का उपाई होय। रसायन रसकूप धातु मारवे की प्रवीणता बताय, अपने वशीभूत करवे की इच्छा होय। भूख, तृषा, शीत, उष्णादि परीषह आए, महा कायर होय। काम विकार रोकवेकौं असमर्थ होय। स्त्री सहित होय। तथा मन, इन्द्रिय के जीतवेकौं दीन होय। तथा इन्द्रिय फाड़ि तामैं लोह, सांकल तथा कड़ी नाथे होय। तथा संसारी गृहस्थीन की नांई नाता पालता होय। होली, दिवाली, त्योहार आए बहिन बेटीनकौं भेंट देता होय, सो कुगुरु है। और ध्यान-अध्ययन विषैं प्रमादी होय। और शरीर के धोवने, पोंछने, खुजावने, पियावने, लिटावने, उठावने आदि काय सुश्रूषा में प्रवीण होय। और आचार्यन की परम्पराय परिपाटी मर्यादा का लोपनेहारा होय। रात्रिविषैं अन्न-जलका ग्रहण करता होय। अज्ञान तपस्या करता होय और महल, मन्दिर अटारी बनाय स्थिति करता होय। कूप, बावड़ी, तलाब, बाग बनवायकैं अपना नाम चलायवे की इच्छा होय। इत्यादिक अनेक भेष बनाय अपनी-अपनी परणति लिए जगतमैं आपकूं गुरुपद मानै है। सो ए कुगुरुन के लक्षण, हेय जानना। इति कुगुरु वर्णन। आगे सुगुरु तरण-तारण, संसार-सागरकौं नौका समान, तिनका स्वरूप कहिए है—

गाथा—कोहादीय कसायो, गंथो गह तंतमंत च कत्ताए।
पर वंचण पासंडो, पूजा सत्तार वंच्छई कुगुरो ॥ १६ ॥

अर्थ—क्रोधादि कषाय सहित होय। ग्रन्थ जो परिग्रह, ताका धारी होय। तंत्र, मंत्र, नाड़ी, वैद्यक का करता होय। परकों ठगनेहारे होंय, पाखंडी होय, पूजा-मान बड़ाईकों आप चाहता होय, ताकूं कुगुरु जानहु। भावार्थ-जे अपना मान भए राजी होंय, अपना अपमान भए क्रोधी होंय, आपकों कोई आय नमस्कार करें स्तुति करें तासों खुशी होंय, व भला भोजनदीये राजी होंय, परकौं धनवान जानि ताकी विशेष सुश्रूषा आव-आदर करें। और कोई धन अपनी नजरि लाय करै ताकों भला सेवक मानैं, इत्यादि लक्षण तैं कुगुरु जानहु। और परिग्रह धारिके आपकूं गुरुपद मानता होय, रागद्वेष भाव सहित होय, तथा बड़े धन का धनी होय, और धन मिलायवे की इच्छा होय, बहुत खेद खाय द्रव्य इकट्ठो करने कों महा लोभी होय और अपने गुरुपद मनायवे कों अनेक जंत्र, मंत्र, तंत्र, वैद्यक, ज्योतिष, इन आदि अनेक चमत्कार प्रकट करि, भोरें जीवनकों विस्मय (आश्चर्य) उपजाय मोहित करे, सो कुगुरु है। और परके ठगवेकों महाप्रवीण होय, अपने चित्तकी बात महागूढ़ राखिके, अपनी बुद्धिके बलतें भोरे जीवनका धन हरवेकों आप महा समता भाव धरै, अनेक मिष्ट वचन बोले। आये भक्त का भले प्रकार सत्कार करै। परकौं संतोष विश्वास उपजाय, तिनतें पुजावना, तिन भोरे जीवनकों अपने प्रति नमावना, सो कुगुरु है। आपकूं गुरुपद मान हिंसा रूप प्रवर्तना, अरु हिंसा का उपदेश देना। और आप क्रियाहीन होय, खाद्य-अखाद्य के बिचार रहित होय, उपसर्ग

गाथा—अरिमित जीतव मरणं, तिणधण सुहदुह सकल समभावो।
सो गुरु भवदधिणावो, विराई णाणणाणमय जोई ॥ २० ॥

अर्थ—वैरी अरु मित्र में समभाव होय। जीतव्य मरण में समभाव होय। तिनका अरु कंचन में समान भाव होय। सुखदुख में समभाव होय। और जो गुरु भवदधि कूं नाव समान होय। वीतरागी होय, नग्न होय, ज्ञान मूर्ति होय, सो यतीश्वर हमारे गुरु हैं।

भावार्थ—जिन यतीश्वरन कैं अपनी निंदा करनहारा क्रूर स्वभावी, अविनयी, अपना द्वेषी अरु अपनी सेवाका करनहारा विनयवान शिष्य, तथा अपना मित्र इन दोऊन मैं समभाव होय, सो गुरु पूज्य हैं। और बहुत काल शरीर में रहना, सो जीवना। अरु अल्पकाल मैं तनका तजना, सो मरण। इन जीवन-मरण दोऊ में जिनकैं समभाव, होय सो जगत गुरु हैं। और तनके पुष्ट करनहारे नाना प्रकार भोजन। और नाना प्रकार तन निरोगतादि अनेक सुख। तथा अनेक परीषहन का खेद। तन-रोगादिक अनेक दुख। इन सुख-दुख मैं समताभाव जाकैं होय, सो सुगुरु हैं। और जीर्ण घास के तिनका में अरु नाना प्रकार रतनादि स्वर्ण इनमैं समता होय, इत्यादिक बीतरागता सहित गुण जामैं होंय, ते गुरु भव समुद्र के तारवे कौं नौका समान हैं। और कैसे हैं, उन गुरु का काहूतैं राग द्वेष नाहीं, बीतरागी हैं। और अन्तरंग तो कषाय कीच रहित, महा निर्मल। अरु बाहिर सर्वप्रकार परिग्रह रहित मातृजात नगन हैं। और मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय इन आदि महा अतिशयकारी ज्ञान के धारी हैं। ऐसे योगीश्वर सो सुगुरु हैं। इन्द्र, देवादि, चक्रवर्त्यादि

सम्यग्दृष्टी जीवन करि पूजने योग्य हैं। आगे सुगुरु ही का स्वरूप कहिये है—

गाथा—मणइन्दी जय सूरा, वीरा संकट सहण दो बीसा।
तण खीणा मण सुखिया, सो होई गुरु तरणताराए ॥ २१ ॥

अर्थ—पंचइन्द्रिय अरु मन, ए महा बलवान हैं। इनके वश इन्द्र, चक्री आदि तीन लोक के राजा होय रहे हैं। जैसे मन-इन्द्री चलावें है तैसे इन्द्रादिक चालैं हैं। तातें संसार में ए मन इन्द्रिय ही महा योधा है। तिनके जीतनेकौं यतीश्वर ही महा सूरमा हैं। और कैसे हैं गुरु, बाईस संकट जो परीषह, तिनके देखैं ही बड़े-बड़े साहसीन का साहस भयखाय जाता रहै। ऐसे दुर्धर परीषह तिनके जीतवे कौं येही योगीश्वर महा धीरवीर हैं। सो इन परिषहन का स्वरूप आगे कहैंगे, तातें यहां नाहीं कह्या। फेरि गुरु कैसे हैं? नानाप्रकार तपरूप अगनि में जल्या शरीर, सो तन, तपतें महाचीण भया है। वाकी नसें चांम हाड़न का जाल रह गया है ।।तातें तनके तौ चीण हैं अरु मन विषैं समताभाव करि अनुपम अमृतपान तैं महा सुखी हैं। सो ही गुरु तरण-तारण हैं। ये ही सम्यग्दृष्टीन करि पूजने योग्य उपादेय हैं। आगे और भी सुगुरु का स्वरूप कहिए है—

गाथा—पंच महावय सहिओ, समदीपण अक्खगयंद वसी करई।
आवसि षट् सेसो जो सत्त अट्ठवीस मूलगुण साहू ॥ २२ ॥

अर्थ—पंच महाव्रत सहित होंय, पंचसमिति के रक्षक होंय, पंच इन्द्रियरूपी हस्ती कूं वशि करनहारे होंय, षट् आवश्यकन में सावधान होंय, और जो सात शेष (फुटकर)

गुण के धारक होंय। ऐसे अठाईस मूल गुण जा मुनि कैं होंय, सो शुद्ध गुरु हैं।

भावार्थ—जे जोगीश्वर ध्यान-अध्ययन विषैं प्रवीण, जगत गुरु, अठाईस मूलगुण पालवे मैं प्रमाद रहित होय प्रवर्तैं हैं। सो ही मूलगुण यतीश्वर का धर्म है। सो मूलगुण बताइए हैं। महाव्रत पाँच, समिति पांच, पंच इन्द्रिय वशिकरण, आवश्यकषट्, भूमिशयन, मंजनतजन, बसनत्याग, कचलोंच, एक बार भोजन, आसनस्थिति, दंतधोने का त्याग, ए सर्व मिलि अठाईस भए। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिए हैं। प्रथम ही महाव्रतन का सामान्य लक्षण-तहाँ सर्वत्र स्थावर जीवन पैं समताभावधारि, जगत का पीर (दुख) हर, परमदयालु, कोमल चित्त का धारी, जगत जीव सर्व आप समानि जानि सर्वजीव की रक्षा करनी, सर्व प्रकार हिंसा का त्याग, सो अहिंसा महाव्रत है। और याही का नाम अभयदान है। केई भोरे जीव जन्मते गौपुत्र के मुखमैं मोती सुवर्ण धरि दान देना, ताकौं अभयदान कहैं हैं। सो यह उपदेश, लोभ के महात्म्यतैं भोरे जीवनकूं लोभी गुरुने बताया है। अभय नामतो वाकौं कहिए जो ताकूं सर्व भयतैं रहित करै। मरणतैं राखै, ताका नाम अभयदान है। सो ए अभयदान वाकों होय जो हिंसा रहित व्रत का धारी होय ॥ १ ॥ और सर्व प्रकार असत्य का त्यागी होय, जिन आज्ञा प्रमाण बोलना, सो सत्यमहाव्रत है ॥ २ ॥ और सर्व प्रकार अदत्तादान जो बिना दिया पदार्थ नहीं लेना, राह पड़ी वस्तु मन वचन काय करि नाहीं लेय, इत्यादिक चोरी का त्याग, सो अचौर्य महाव्रत है ॥ ३ ॥ और सर्व प्रकार स्त्री के विषयन का मन वचन काय, कृत कारित अनुमोदना करि देवस्त्री, पशुस्त्री,

मनुष्यस्त्री, काष्ठ पाषाण की अचेतन स्त्री, इन च्यारि प्रकार स्त्रीन के भोग स्पर्शनादि विषय का त्याग, सो ब्रह्मचर्य महाव्रत है। इहां प्रश्न-जो चेतन स्त्री का त्याग सो शील है। अरु अचेतन स्त्री का भोग त्याग को शील कह्या, सो ब्रह्मचर्य महाव्रत हैं। सो अचेतन में भोग काहे का है? ताका समाधान—भो भव्य! भोग हैं सो यथायोग्य मनकरि, वचन करि, काय करि तीन प्रकार हैं। चैतन्य स्त्री-भोगतौ तीनों प्रकार करि होय है। सो तुम भले प्रकार जानौ ही हो। और अचेतन स्त्री तैं काय वचन का भोग तौ नाहीं बनें है। और मनके भोगकों अचेतन स्त्री कारण है। अचेतन स्त्री कूं देखि हर्ष का होना कि जो यह चित्रांम काष्ट पाषाण की स्त्री महा सुन्दर है। याका रूप देवांगना समान है। इत्यादिक अचेतन स्त्री कूं देख चेतन स्त्री का सुमरनि करि हर्ष का होना, सो मन सम्बन्धी तथा कोई प्रकार वचन सम्बन्धी भोग जानना। तातें ब्रह्मचर्य व्रत का धारी अचेतन और चेतन स्त्री का त्यागी जानना। यह ब्रह्मचर्य महाव्रत है ॥ ४ ॥ नो कषाय नव, मिथ्यात एक, संज्वलन की चौकड़ी चार, ये चौदह प्रकार अंतरंग परिग्रह का त्याग और धन, धान्य, दासी, दासादि दस प्रकार बाह्य परिग्रह ए चौवीस प्रकार परिग्रह का त्याग, सो नगन यतीकें परिग्रह त्याग नामा महाव्रत है ॥ ५ ॥ इति महाव्रत ॥ आगे पंच समिति का स्वरूप कहिए है—तहां योगीश्वर दयाके भंडार जब पृथ्वी विषें विहार करें तब चलते च्यारि हाथ धरती देखतें चलें हैं। सर्व जीवन प्रति महा कोमल चित्त का धरनहारा करुणानिधान, धरती देखें कि कोई जीव हमारे तनतें पीड्या नहीं जाय। जैसे काहू का रतन भूमि विषैं पड़ गया, सो रतन

शोधवे निमित्त नीची दृष्टी किए, धरती देखता चालै । तैसे ही जगत का पीर (दुख) हर, जीवरूपी आप समानि रतन, ताके बचावने के निमित्त देखता चलै, सो ईर्या समिति है ॥ १ ॥ और यतीश्वर बचन बोलैं, तब महा हित वचन बोलैं। ताकूं सुनि अन्य जीव सुखी होय, पुण्य का बंध करैं। ऐसा पाप रहित जिन आज्ञा सहित मिष्ट वचन बोलैं, सो भाषा समिति है ॥ २ ॥ और भोजन समय यती भोजन करैं तब मन वचन काय एकाग्र करि भोजन विषैं दृष्टी राखैं सो निर्दोष छयालीस दोष टारि [बत्तीस अंतराय, चौदह मलदोष टारि] भोजन करैं । सो भी यती, जगत भोगनतैं उदासीन, तन ममत्व रहित, निष्प्रहता लिए भोजन करैं। सो मुनिका भोजन पंच प्रकार है । सो ही कहिये है। प्रथमनाम-गोचरी, भ्रमरी, गरतपूरन, दाह शमन, औंगण। इनका अर्थ-जैसे गैया बनमें चरै सो घास रूखड़ी वृक्षकूं चरै, सो मूलतैं नहीं उपोरे (उखाड़े) । उपरि-उपरि तैं चरै। तैसे ही मुनी गृहस्थकूं नही सतावै, सहज भ्रमण करि भोजन लेंय। सो गोचरी भेद है ॥ १ ॥ और जैसे भ्रमर फूलकूं नहीं सतावै दूरतैं बास लेय, तैसे मुनि गृहस्थकूं नहीं सतावै, गृहस्थ के घर तैं दूरि अंतर गमन करै, यह पड़गाहै तब भोजन लेय । सो भ्रमरी भेद है ॥ २ ॥ और जैसे कोई खाड़ा (गड्ढा) पूरै तब घास, लकड़ी, पत्थर, राख, मिट्टी, धूल जो हाथ आवै, तातैं खाड़ा पूरै। तैसेही यतीनाथ क्षुधारूपी खाड़ा पूरैं । सो चाहे तौ भोजन रस सहित होय तथा रस रहित होय। मुनि, योग्य भोजन आचार सहित लेंय । पीछे कैसा होय, इनकैं स्वादतैं काम नाहीं। क्षुधारूपी खाड़ा जैसे-तैसे भरैं, सो गर्त पूरण है ॥ ३ ॥ और

जैसे घर कूं अग्नि लगै तब राखि धूलि पानीसे जैसे बनैं तैसे बुझावें। तैसे ही मुनिकों नीरस तथा रस सहित चाहे जैसा भोजन मिलौ, क्षुधा अग्नि बुझावनी। सो याका नाम दाह शमन है ॥ ४ ॥ और गाड़ी नहीं चलै तब तिल तेल घृततैं ओंग के चलाय जैसे-तैसे मंजिल (रास्ता) काटि, घर पहुँचैं। तैसेही मुनी मोक्ष घर जातैं, तनरूपी गाड़ी पै चलैं हैं। सो रूखा-सूखा शीत-उष्ण चाहे जैसा होहु, शुद्ध आहार चाहिये। सो जब क्षुधा का निमित्त जानैं तब भोजन का ओंगन देय मोक्ष घर पहुँचे, सो ओंगण भेद है ॥ ५ ॥ ऐसे यती भोजन करैं, सो दोष रहित करैं। दोष कैसे, सो कहिए हैं—

गाथा—दोह छियाली रहियो, अंताय तीस दो सुद्धो ॥
दह चव मल दोह हीणो, मुणि भोयण होइ णिदोसो ॥ २३ ॥

अर्थ—छयालीस दोष, बत्तीस अन्तराय, चौदह मल दोष, जहाँ एते दोष टलैं, तब मुनीश्वर का भोजन शुद्ध होय है।

भावार्थ—यती का भोजन निर्दोष होय, तौ लेय हैं। कदाचित् दोष लगै तौ अन्तराय करैं। सो दोष कैसे सो कहिए हैं। प्रथम छयालीस दोष के नाम—अर्थ कहिए है। तहाँ प्रथम उद्गम दोष सोलह, सो दाता के आधीन हैं। इनकी रक्षा दातार के आधीन है। इनकी सावधानी दातार करै, नहीं तो दातार कौं दोष लागै। तिन सोला के नाम—तहाँ मुनि के निमित्त भोजन करै (बनावै), तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम उद्दिष्ट दोष है ॥ १ ॥ तहां आगे भोजन किया होय, अरु मुनिकौं आये जानि, उस भोजनकौं अल्प

जानि, तामैं और अन्नादि मिलाए, मुनीकौं भोजन देय, तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम साधिक (अध्यधि) दोष है ॥ २ ॥ और मुनीश्वर कौं अप्राशुक जो सचित्त भोजन देय, तौ दाताकौं दोष लागै, याका नाम पूर्ति कर्म दोष है ॥ ३ ॥ और केई असंयमी की भाँति मुनीकौं भोजन देय तौ दाताकौं दोष लागै, याकानाम मिश्र दोष है ॥ ४ ॥ और जिस पात्र मैं भोजन किया (बनाया) था, तातैं काढ़ि और पात्रनि मैं धरि, मुनीकौं भोजन देय, तौ दाताकौं दोष लागै। याकानाम स्यापिमन्यस्त दोष है ॥ ५ ॥ और कोई व्यंतरादिक देवन के निमित्त भोजन किया होय, तामैं मुनिकौं दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम बलिदोष है ॥ ६ ॥ और कालकी हीनता, अधिकता तथा भोजन का समय चूकि पड़गाहना, तथा काल जो दुर्भिक्ष ताके योग करि जो सस्ता धान होय, सो उसका मुनीकौं भोजन देय। तथा आपकूं आकुलता जानि शीघ्र-शीघ्र भोजन देय। तथा धीरे-धीरे भोजन देय। ऐसे काल की हीनता-अधिकता करि यथायोग्य भोजन नहीं देय, तौ दाता कौं दोष लागै। याकानाम प्राभृतक दोष है ॥ ७ ॥ मुनि महाराज के घर आने पर, भाजनों का अन्य स्थान से अन्य स्थान पर ले जाना, बर्तनों का भस्मसे मांजना, जलसे धोवना, तथा मंडप का उघाड़ना, दीपक का उद्योत करना, सो प्रादुष्कर नामा दोष है ॥ ८ ॥ और मुनीश्वर कौं भोजन के निमित्त आए जानि, तत्काल ही अपना सचित्त द्रव्य व अचित्त द्रव्य देय करके आहार कों मोलि ल्याय, साधुकों आहार देवै, वा मंत्र तंत्र विद्या परकूं देय भोजन बनवायकैं मुनिकौं दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम क्रीत

दोष है ॥ ९ ॥ और अपनी शक्तितौ नाहीं, परन्तु पराया कर्ज लेय मुनि कौं भोजन देय, तौ दाताकूं दोष लागै, याकानाम प्रामित्य दोष है ॥ १० ॥ और अपने घरमें हीन अन्न था जो जवारि कोदूं, सो तिनकूं बदलाय तंदुल गेहूं लाय मुनीकौं दानदेय, तौ दाताकौं दोष लागै, याकानाम परिवर्तित [परावर्त] दोष है ॥ ११ ॥ अन्य गृह, अन्य ग्राम, स्वदेश व अन्य देश से आये हुए भोजन को, दाता मुनिको पड़गाह करके देय, तो दोष लागे । ताका नाम अभिघट [अभिहृत] दोष है ॥ १२ ॥ और यतिकौं पड़गाह लाये, कोई वस्तु किसी पात्र में थी ताका मुख बंधा था ताका मुखखोलि, मुनिकौं दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम उद्भिन्न दोष है ॥ १३ ॥ और मुनी आए पीछे, कोई वस्तु ऊपरले खंड है ताकूं, लाय मुनिकौं भोजन देय, तौ दाताकौं दोष लागै, याकानाम मालारोहण दोष है ॥ १४ ॥ और श्रावक कूं तौ मुनीदान देवे की वांच्छा नाहीं, परणामण में भक्ति नाहीं । परन्तु राजा, पंच, नगर के लोक धर्मात्मा हैं, सो राजपंच के भय करि लोक दिखावने कूं मुनिकौं दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै । याका नाम आच्छेद दोष है ॥ १५ ॥ अनिसृष्ट [निषिद्ध] दोष दो प्रकार है । एक ईश्वर दूसरा अनीश्वर । तहाँ घर का मालिक तो होय परन्तु मंत्री आदि के आधीन होय, सो सारक्ष ईश्वर है। और जो मंत्री आदि के आधीन न हो सो असारक्ष ईश्वर है । और जो मंत्री आदि के अधीन न होकर उनसे सलाह लेकर कार्य करता है सो सारक्षासारक्ष ईश्वर है । इस प्रकार के ईश्वर से प्रतिषिद्ध आहार को देना, सो ईश्वर निषिद्ध दोष है। और जाका घर-धनी तौ नाहीं, और ही आय दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै । याकानाम अनीश्वर निषिद्ध

दोष है ॥ १६ ॥ इनका जतन दाता करै॥ यह उद्गम दोष कहे॥ आगे सोलह उत्पादन दोष हैं। सो पात्र के आधीन हैं। सो ही कहिए हैं। तहाँ मुनीश्वर दाता के घर भोजनकौं जाँय, ताके बालकनकूं धाय की नाईं रमावैं। सिंगारादि करावैं। तौ यतीकों दोष लागै। याकानाम धात्री दोष है ॥ १ ॥ और यतीश्वर भोजनकौं दाता के घर जायकैं, ताकौं संबन्धी व दूरदेश के समाचार कहैं, तौ पात्रकौं दोष लागै। याका नाम दूत दोष है ॥२॥ और मुनीश्वर दाताकूं निमित्तज्ञानादि अतिशय बताय भोजन करैं, तौ यतीश्वर कौं दोष लागै, याकानाम निमित्त दोष है ॥ ३ ॥ और मुनीश्वर दाता के घर जाय, आजीविका की बात कहैं, जो आज काल भोजन का निमित्त अल्प है, इत्यादिक कहि भोजन करैं, तौ मुनीश्वरकौ दोष लागै। याकानाम आजीव दोष है ॥४॥ और यतीश्वर दाताके घर भोजनकौं जाय, दाता के सुहावती बात कह, भोजन लेंय। तौ मुनीकौं दोष लागै। याकानाम विनयक दोष है ॥५॥ और मुनि दाता के घर भोजन कौं जाय, नाड़ी वैद्यकादि औषधि बताय भोजन करैं, तौ मुनिकौं दोष लागै। याकानाम चिकित्सा दोष है ॥ ६ ॥ और जहां मुनीश्वर भोजन समय कोई पै कोप करि भोजन करैं, तौ यतीकौं दोष लागै। याकानाम क्रोध दोष है ॥७॥ और मुनि आपकूं उत्तम राजवंश का जानि दाता के घर मान सहित भोजन करैं, तौ यतीकौ दोष लागै। याकानाम मान दोष है ॥ ८ ॥ औ यतीश्वर अपने चित्त की गूढ़ वार्ता कोईकौ नहीं जनावता भोजन करै, तौ यतीकौं दोष लागै। याकानाम मायादोष है॥९॥और यती भले भोजनकौं रुचि सहित करै, तौ मुनिकौं दोष लागै। याकानाम लोभ दोष है ॥ १० ॥ और मुनिराज, दाता के घर

जाय भोजन किये पहले, दाता की स्तुति करैं, तौ यतीकों दोष लागै। याका नाम पूर्व स्तुति दोष है ॥ ११ ॥ और यतीश्वर भोजन लिये पीछे दाता की स्तुति करे, तौ मुनीकों दोष लागै। याकानाम पश्चात् स्तुति दोष है ॥ १२ ॥ और यतीश्वर श्रावकनकों पढ़ाय भोजन करैं, तौ यतीकों दोष लागै। याकानाम विद्या दोष है ॥ १३ ॥ और यती मंत्र, तंत्र, जंत्र, टोना, जादू इन आदि अनेक अतिशय अपने श्रावकनकों बताय, तिनकैं भोजन करैं, तौ मुनीकों दोष लागै। याकानाम मंत्र दोष है ॥ १४ ॥ और मुनीश्वर गृहस्थन कूं नेत्र कौं अंजन, पेट रोग कूं चूरन बताय, भोजन लेंय, सो चूर्ण दोष है ॥ १५ ॥ और ऋषीश्वर श्रावकनकौं वशीभूत करि मंत्रादि बताय भोजन करैं, तौ यतीकौं दोष लागै। याका नाम मूल कर्म (वश्यकर्म) दोष है ॥१६॥ यह षोड़स दोषों की यती सावधानी राखै, नाहीं तो मुनिकौं दोष लागै, यती का पद कलंक पावै। ऐसे सोलह उत्पादन दोष हैं।

आगे ऐषणादोष दश कहिए हैं। भोजन करते ऐसा सन्देह, उपजै जो यह भोजन शुद्ध है, अक [अथवा] अशुद्ध है। ऐसा सन्देह होतैं भोजन करैं, तौ यतीश्वर कौं दोष लागै याका नाम शंकित दोष है ॥१॥ और यती दाताके हाथ चीकने देखैं तथा बासन चिकने देख, तौ भोजन नहीं लेंय, अरु लेंय तौ यती कौं दोष लागै। याका नाम मृक्षित दोष है॥२॥ और सचित्त वस्तु तें व भारी अचित्त वस्तु तें भी ढांकी जो भोजन वस्तु सो यती नहीं खाँय, खाँय तौ मुनीकों दोष लागै। याका नाम पिहित दोष है ॥३॥ सचित्त पृथिवी, जल, अग्नि, वनस्पति, बीज तथा त्रस जीव के ऊपर धरया हुआ आहार मुनि नाहीं गृहण करें, यदि करें तो याका

नाम निक्षिप्त दोष है ॥ ४ ॥ और सूतक के घर, रोगी के हाथ का, वृद्ध बालक नपुंसक गर्भ सहित स्त्री इनके करतैं भोजन नहीं लेंय, और जलती अग्नि कौं बुझावती देखैं, तथा स्त्री कौं बालक चुखाती, बालक कौं आंचल से छुटावती देखैं, तौ भोजन नाहीं करैं। करैं तौ दोष लागै, याका नाम दायक दोष है ॥५॥ जो भोजन पृथ्वी, जल, हरितकाय पत्र, पुष्प, फल, बीज इत्यादिक करि मिल्या होय, सो मिश्र दोष सहित है ॥ ६ ॥ भय से अथवा आदर से वस्त्रादिक को यत्नाचार रहित खींच कर जो मुनीश्वर को आहार देना, सो व्यवण [साधारण] दोष है ॥ ७ ॥ और जा वस्तु का वर्ण नहीं फिरया होय, अधकच्ची वस्तु होय, सो यतीश्वर नहीं लेंय, याकूं लेंय तौ दोष लागै। याका नाम अपरिणत दोष है ॥ ८ ॥ और यती भोजन समय दाता के हाथ व तौला, भरत्याई, हांडी तथा और पात्र, खिचड़ी तैं, तथा व्यंजन तिरकारी तैं लिपटे देखैं तौ गुरुनाथ भोजन नहीं करैं। करैं तौ दोष लागै। याका नाम लिप्त दोष है ॥६॥ जो हाथ की चंचलता कर छाछ, घृत, दुग्धादि का झरना अथवा छिद्र सहित हस्तनिकर बहुत भोजन तो गिर जाय अर अल्प ग्रहण में आवे, अथवा हस्तपुट को पृथक करके भोजन करना, सो त्यक्त [छोटक] दोष है ॥ १० ॥ ए दश ऐषणा समिति के दोष हैं।

आगे च्यारि खेरीनि [फुटकर] दोष अथवा भुक्ति दोष कहिए हैं। जहाँ शीत उष्ण वस्तु मिलाए सुख निमित्त खावना, ताका नाम संयोग दोष है ॥ १ ॥ और भोजन का प्रमाण तथा काल का प्रमाण ताकौं उलंघिकैं भोजन करै, तौ यतीकौं दोष लागै। याका नाम

प्रमाण दोष है ॥२॥ और भला भोजन, षट् रस सहित मिष्ट भोजनकौं, रति सहित खाय खुशी होय दाता की सुश्रूषा करैं, तौ मुनीश्वरकौं दोष लागै, याका नाम अंगार दोष है ॥ ३ ॥ और यतीकौं रूखा-सूखा, रस रहित, प्रकृति विरुद्ध भोजन मिलै तौ अरुचिसौं खांय, तौ यती कौं दोष लागै। याका नाम धूम दोष है॥४॥ए च्यारि खेरीज हैं। ऐसे उद्गम सोलह, उत्पादन सोलह, एषणा दश, खेरीज च्यारि। सब मिलि छयालीस दोष भए। इन टले शुद्ध भोजन हो है। इति छयालीसदोष॥ आगे बत्तीस अन्तराय कहिए हैं। जहाँ मुनि भोजन करतैं कोई काकादिक जीव बीट (मल) करता देखैं, तौ भोजन तजैं। याका नाम काक अन्तराय है। १। गमन करते साधु के पगमें अमेध्य जो (विष्टा) मल लग जाय, तो भोजन नाहीं करें। याका नाम अमेध्य अन्तराय है। २। और मुनिके भोजन करतैं वमन होय जाय तौ, भोजन तजैं। याका नाम छर्दि अन्तराय है। ३। और मुनीश्वर को भोजन के लिये गमन करते समय कोई रोक देवे, तौ भोजन तजैं। याका नाम रोधन अन्तराय है।४। और भोजन समय मुनि आपकैं तथा परकैं लोहू चार अंगुल या अधिक बहता देखैं, तो भोजन तजैं। याका नाम रुधिर अन्तराय है। ५। साधु दुःख शोकादिकतैं आपके अश्रुपात देखैं, अरु समीपवर्ती जननका मरणादि कर अति रोदन-विलाप श्रवण करें, तौ भोजन तजैं। याका नाम अश्रुपात अन्तराय है। ६। और भोजन करतैं दातार तथा पात्र कोई प्रमाद वशाय, जंघा नीचे का अङ्ग छीवै, तौ यती भोजन तजैं। याका नाम जावन्धः परामर्श दोष है। ७। जानु प्रमाण तिर्यग् निक्षिप्त काष्ठादि का उल्लंघन करना। सो जानुव्यतिक्रम अन्तराय है। ८। और यती

भोजन करतैं कोई मनुष्यकौं नाभि नीचैं मस्तककौं नवाय निकलता देखैं, तौ यती भोजन तजैं याका नाम नाभ्यधोनिर्गमन अन्तराय है। ६। और मुनि भोजन समय तजी वस्तु का ग्रहण करैं, तौ भोजन तजैं। याका नाम प्रत्याख्यात सेवन अन्तराय है। १०। और भोजन करतें यती सामने, दूसरेसे कोई जीव मुवा [मरा] देखैं, तौ भोजन तजैं। याका नाम जंतुवध अन्तराय है। ११। और भोजन करतैं काकादिक जीव ग्रास लेजाय, तौ यती भोजन तजैं। याका नाम काकादि पिण्डग्रहण अन्तराय है। १२। और भोजन करतैं पात्र के हाथतैं ग्रासपिंड भूमि में पड़े, तौ यती भोजन तजैं। याका नाम पिंडपतन अन्तराय है।१३। और साधु के हाथ में जीव स्वयं आकर मर जाय, तौ भोजन तजैं। याका नाम पाणिजंतु वध अन्तराय है। १४। और भोजन समय यती आमिश [मांस] व मुर्दा देखैं, तौ भोजन तजैं। याका नाम मांसादि दर्शन अन्तराय है।१५। और भोजन समय कोई उपसर्ग होय तौ यती भोजन तजैं। याका नाम उपसर्ग अन्तराय है।१६। और भोजन करते समय यतीके दोनौं पांव के बीच में होय, पंचेन्द्रिय जीव कोई गमन करता मुनि जानैं, तौ भोजन तजैं, याका नाम पंचेन्द्रिय जीव गमन अन्तराय है। १७। और भोजन करते दाता के हाथतैं भूमि में पात्र पड़ै, तौ भोजन यती नहीं करै। याका नाम भाजन संपात अन्तराय है। १८। और भोजन करतैं मुनीश्वर अपना मल खिर्या जानैं, तौ भोजन नहीं लेय। याका नाम उच्चार अन्तराय है।१९। और भोजन करतैं यति आप के मूत्र खिर्या जानै, तौ अन्तराय होय। याका नाम प्रस्रवण अन्तराय है। २०। और भोजन समय मुनि प्रमाद वशाय भूल मैं, शूद्र के घर में

प्रवेश कर जाँय, तौ अन्तराय करैं, याका नाम अभोज्य गृह प्रवेश अन्तराय है।२१। और यती का मूर्छा कर पतन हो जाय, तौ अन्तराय करैं। याका नाम पतन अंतराय है।२२। और भोजन समय कर्म करि, भूलिकैं तथा प्रमाद तैं तथा तनकी हीन शक्ति तैं कबहूँ मुनि बैठि जॉय, तौ अन्तराय होय, याका नाम उपवेशन अन्तराय है ।२३। और भोजन करतैं कोईकौं कुत्ता, बिल्ली काटिता देखितैं भोजन तजैं । याका नाम सदंश दृष्ट अन्तराय है ।२४। और भोजन पहलै सिद्ध भक्ति के पश्चात् करतैं भूमिस्पर्शैं तो अन्तराय है । याकानाम भूमि स्पर्श अन्तराय है । २५ । और भोजन करतैं मुनीश्वर स्वतः कफादिक का निष्ठीवन करें, तौ भोजन तजैं याका। नाम निष्ठीवन अन्तराय है । २६ । और भोजन समय मुनि अपने उदरतैं कृमि खिरी जानैं, तो अन्तराय करैं । याका नाम कृमिगमन अन्तराय है । २७ । और भोजन समय दाता के विना ही दिए प्रमाद योगतैं कोई भोजन यती अङ्गीकार करैं, तो भोजन तजैं.। याका नाम अदत्तग्रहण दोष है । सो अन्तराय है । २८ । खड्गादिक तैं साधु का कोई घात करै वा अन्यका घात करै, तो अन्तराय होय । याका नाम शस्त्रप्रहार अन्तराय है। २६ । और भोजन समय मुनिनाथने नगर मैं जाते, नगर में अग्नि लागी देखी, तौ भोजन तजैं, याका नाम ग्रामदाह अन्तराय है । ३० । और भोजन कौं नगर मैं जाते कोई पड़ी वस्तु पावतैं ग्रहणकरैं तौ भोजन तजैं, याका नाम पादग्रहण अन्तराय है । ३१ । और भोजनकौं नगर में जाते प्रमाद वशाय कोई राह पड़ी वस्तु हाथतैं छीवैं तो भोजन तजै, याका नाम करग्रहण अन्तराय है । ३२ । ऐसें जगत का गुरु शरीरतैं मोहका तजनहारा, संसारीक सुखतैं उदास,

इन्द्रिय जनित आनंद तैं निष्प्रह ए बत्तीस अन्तराय भोजन समय टालैं, तब शुद्ध भोजन होय है। और चौदह मलदोष और टालैं, तिनके नाम कहिए है—नख, रोम, मृतक जीव, हाड़, गेहूँ–जव अन्न के बाह्य–अभ्यन्तर अवयव, पक्व रुधिर, तिलादिक के सूक्ष्मअवयव, चाम, रुधिर, आमिष, ऊगने योग्य बीज, फल जाति, आदादि कंद (अदरकआदि), मूलादि मूल, ऐसे चौदह मलदोष हैं सो मुनि के भोजन में आवें तो, तथा केईक देखैं तो, वे भोजन तजैं। ऐसे छयालीस दोष, बत्तीस अन्तराय और चौदह मल दोष–टालैं। तब बीतरागी गुरु का शुद्ध भोजन होय है। याका नाम तीसरी ऐषणा समिति है ॥३॥ और आदान तो नाम लेने का है, अरु निक्षेपण नाम धरवे का है। सो पुस्तक, पीछी, कमण्डल, शरीर, इन कूं जहां धरै सो निर्जीव जगह देखि धरै। इनको उठावै, तब जतन तैं उठावै। सो आदाननिक्षेपण समिति है ॥४॥ और यति तन के मल—मूत्र सो निर्जीव भूमि देखि नाखैं (डालैं), सो प्रस्थानी [व्युत्सर्ग] समिति है ॥५॥ ए पांच समिति कहीं। आगे पंचेन्द्रिय वशीकरण कहै हैं। सो तहां स्पर्श के आठ विषय हैं। तिन आठ का निमित्त मिलै, राग–द्वेष नहीं करै सो स्पर्शन इन्द्रिय विजयी साधु कहिए ॥ १ ॥ और रसना इन्द्रिय के पांच विषय हैं। सो इन पांच का निमित्त मिलै, तहां राग–द्वेष नहीं करै, सो रसना इन्द्रिय विजयी साधु कहिए ॥ २ ॥ और घ्राण इन्द्रिय के विषय दोय हैं। तिनका निमित्त मिलै, रागी–द्वेषी नहीं होय, सो घ्राण इन्द्रिय विजयी साधु कहिए ॥ ३ ॥ और चक्षु इन्द्रिय के पंच विषय हैं। तिनका निमित्त मिलै रागी–द्वेषी नहीं होय, सो चक्षु इन्द्रिय विजयी साधु कहिए ॥ ४ ॥ और श्रोत्र इन्द्रिय

के तीन विषय हैं। तिनका निमित्त मिले, रागी–द्वेषी नहीं होय, सो श्रोत्र इन्द्रिय वशीकरण (विजयी साधु) कहिए है ॥५॥ ऐसे पंच इन्द्रियन के विषय का निमित्त मिले, रागी—द्वेषी नहीं होय, सो पंचेन्द्रिय विजयी साधु हैं। बहुरि आवश्यक षट् का स्वरूप कहिए है। सो प्रथम ही सामायिक आवश्यक कहिये है—

गाथा—णाम सथापण दब्बो, खेत्ते कालेय भाव सम्मायो।
एसड भेय मुणिंदो, अह णिस धारणेय आवसियो॥

ऐसे सामयिक के षट् भेद हैं। नाम सामायिक, स्थापना सामायिक, द्रव्य सामायिक, क्षेत्र सामायिक, काल सामायिक और भाव सामायिक। अब इनका अर्थ सामान्य करि बताइए है। तहां इष्ट पदार्थ, राग, रंग, गीत, नृत्य, रूप, रतन, कंचन, सपूत पुत्र, भाई, माता, पिता, राज इन आदिक वस्तु के नाम सुनि राग नहीं करना, सो नाम सामायिक है। तथा शत्रु, अविनयी, दुराचारी इत्यादि खोटे नाम सुनि द्वेष नहीं करना, सो नाम सामायिक है। तथा ऐसा विचारना कि जो मैं सामायिक करौं हौं, इत्यादिक भावना, सो नाम सामायिक है। और मनुष्य, पशु तथा मिट्टी, काष्ठ, पाषाण के मनुष्य पशून के नाना प्रकार आकार देखि, ऐसा नहीं विचारना कि ए भला है, ए भला नाहीं। तथा बावड़ी, कूप, सरोवर, मंदिर आदि देखि राग–द्वेष भले–बुरे नहीं कल्पना, सो स्थापना सामायिक है। और चेतन, अचेतन, द्रव्य–पदार्थ देखि राग द्वेष नहीं करै, तथा कोई भव्यात्मा द्रव्यसामायिक के सर्व पाठ जानने–वारा संध्या समय सामायिक करवे को पद्मासन तथा कायोत्सर्ग तनकी मुद्रा किए तिष्ठै है।

है । अरु पाठ शुद्ध पढ़ता तिष्ठै है
ताका चित्त वशीभूत नाहीं, सो अनेक जगह भ्रमण करै है । अरु पाठ शुद्ध पढ़ता तिष्ठै है
सो जीव तथा शरीर सामायिक रूप है, ताकूं द्रव्य सामायिक कहिए । और स्वर्ग, नरक,
पाताल, मध्यलोक के अनेक द्वीप–समुद्र, अढ़ाई द्वीप विषैं तिष्ठते आर्य–मलेच्छ क्षेत्र, वन,
बाग, पर्वत, इत्यादिक जो सुख–दुख रूप शुभाशुभ देश, ग्राम, क्षेत्र तिन में रागद्वेष नहीं
करना, सो क्षेत्र सामायिक है । और वसंतादि षट् ऋतु तथा शीत, उष्ण,
वर्षाकाल, तथा शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, तथा दिन, रात्रि तथा वार, नक्षत्रादि ए शुभाशुभ
देखि इनमें रागद्वेष नहीं करना । तथा उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी तथा प्रथम, दूजा, तीजा,
चौथा, पंचमा, छठा काल, इन सब कालन की प्रवृत्ति विषैं शुभाशुभ नाहीं होना, रागद्वेष
नाहीं करना सो काल सामायिक है । और सामायिक करते जीव–अजीवादि तत्वन में तो
उपयोग की प्रवृत्ति, शरीर की एकाग्रता–निश्चलता, और मिथ्यात प्रमाद के अभाव तैं शुद्ध
समता रस भींजते भाव, और सामायिक करते वचन, मन, काय इनकी एकता सहित
सामायिक ही विषैं भावन की प्रवृत्ति, सर्व जीवन तैं स्नेहभाव, सर्व की रक्षाभाव, व्रत संयम
की बढ़वारी रूप परणाम, धर्म शुक्लध्यान मई भाव चेष्टा, सो भाव सामायिक है । सो इन
षट् भेद रूप सामायिक का धरनहारा, शुद्ध भावन सहित, जगत गुरु, मुनीश्वर, षट् काय का
पीर हर, सो सदीव सर्वकाल सर्व संयम का धारी गुरु के सामायिक आवश्यक है ॥ १ ॥ और
यतीश्वर कैं अरहंत-सिद्ध की बारंबार स्तुति, सो स्तवन आवश्यक है ॥ २ ॥ और अरहंत
सिद्ध कौं बारंबार नमस्कार रूप मन वचन काय, सो बंदना आवश्यक है ॥३॥ और कोई

प्रमाद वशाय (वश) संयम कौं दोष लागा होय, तो ताकौं यादि करि ताके दूर करवे कौं क्रिया करनी, सो प्रतिक्रमण आवश्यक है ॥ ४ ॥ और पाप क्रिया का त्याग सो प्रत्याख्यान आवश्यक है ॥५॥ और तहां शरीर तैं मोह रहित होय प्रवर्तना, ध्यान रूप होना, तन त्याग रूप उदास भावना, कायोत्सर्ग आसन करि तिष्ठना, सो कायोत्सर्ग आवश्यक है ॥ ६ ॥ ऐसे महाव्रत, समिति, पंचेन्द्रिय वशीभूतकरण, षट् आवश्यक, सात खेरीज गुण ऐसे अष्टाविंशति मूल गुण की रक्षा रूप सदीव प्रवर्तना, सो गुरु वंदने योग्य हैं।

इति श्रीसुदृष्टितरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये अठाईस मूल गुणन में ऐषणा समिति में छयालीस दोष, बत्तीस अन्तराय, चौदह मलदोष रहित शुद्ध ऐषणा समिति सहित गुण वर्णनो नाम अष्टमपर्व सम्पूर्णम्।



आगे भी मुनिधर्म की प्रवृत्ति है। तहां तेरह प्रकार चारित्र—उत्तमधर्म, सो पंच महाव्रत, पंच समिति, इनका स्वरूप तो उपरि कहि आए हैं। और तीन गुप्ति, तिनका स्वरूप कहिए हैं। जहां मनका चिंतवन होय, सो जिन आज्ञा अनुसार होय। सर्व जीवन कूं सुख रूप, प्रमाद रहित मनका विचार अपने अभिप्राय बिना और रूप नहीं होय, सो मन वशी जानना। याही का नाम मनगुप्ति है। और जहाँ वचन का बोलना सो स्वपर-हितकारी जिन आज्ञा समानि बोलना, आत्मा के अभिप्राय बिना प्रमाद वचन नहीं बोलना, सो प्रमाद रहित सत्य जिन आज्ञा अनुसार कहना, सो वचन वशी जानना, याही का नाम वचन गुप्ति है। और

जहाँ कायतैं चालना सो समिति सहित चालना, अपने आंगोपांग चंचल करना सो जिन आज्ञा अनुसार करना, महा दया भावन सहित शांति मुद्रा कर रहना, अशुभ तनकी शुश्रूषा रूप नहीं रहना, अपनी काय करि कोई प्राणी भय नहीं करै, सो मुद्रा बनाय तिष्ठकैं रहे। आत्मा के अभिप्राय बिना कायक्रिया प्रमाद तैं नहीं करना, सो काय का वशी करना है। याही का नाम काय गुप्ति है। ऐसे तेरह प्रकार चारित्र जानना। इस चारित्र सहित जे मुनि होंय, सो गुरु सत्य जानना। येही गुरु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन रत्नत्रय सहित हैं। सो सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र का स्वरूप तो उपरि कहि आए हैं। अरु सम्यग्ज्ञान का स्वरूप कहिए है। सो सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार का है। जिन आज्ञा अनुसार स्वपर पदार्थन का स्वभाव जानना, सो सम्यग्ज्ञान है। इनका स्वरूप आगे कहेंगे, तहां तैं जानना। ऐसे शुद्ध रतनत्रय का धारी योगीश्वर सम्यग्दृष्टीन का गुरु है, पूजवे योग्य हैं। ये ही गुरु महाधीर, कर्मशत्रु के जीतवे कूं महा सामंत, तन ममत्व के त्यागी, जगत गुरु, कर्मशत्रुन के किए महाघोर परीषह तिनके सहवें कूं साहसी हैं। ते परीषहन के भेद बाईस हैं। सो ही कहिए हैं—

गाथा—छुद तिस सीतय उसणाऊ, दंसा णगणाय अरतितीय चज्जाए ॥

आसण सयण कुवयणं, बधबंधा जाचमालाभो ॥ २४ ॥

गद तण फासय मल्लयो, सबकारो पुरुसकार पराणाय।

अणसाणोय अदसणं, सब्बे बावीस मुण सहधीरा ॥ २५ ॥

युग्मार्थ—क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमसक, नगन, अरति, स्त्री, चर्या, आसन, शयन, दुर्वचन, बधबंधन, याचै नाहीं, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार–पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन, ए बाइस उपद्रव हैं। अब इनका अर्थ कहिए है। तहां मुनीश्वर नाना उपवास के पारणे को भोजन समय नगर में जाँय अरु तहां अन्तराय होय, तौ यती व्रत का लोभी, पीछा बनकूं जाय। क्षुधातैं तन महाक्षीण होय परन्तु जगतगुरु, परणति खेद रूप नहीं करैं। अन्न के सहाय बिना तनने अपनी सत्ता छोड़ दई, परन्तु यतीने अपना मनका पुरुषार्थ नहीं तजा, सो शिथिल भया शरीर ताकूं अपने पुरुषत्व करि यथावत उचित क्रिया चलावते भए। जैसे कोई दीपान्तर का जानेहारा सेठजी कर्णरथ पै चढ्या गमन करै है, सो कहीं–कहीं पर्वतन की घाटी बिकट पत्थरन सहित आवैं। तहाँ रथकूं जीर्णजानि जतनतैं साधि, द्वीपान्तर पहुँचै। तैसे यती मोक्ष द्वीप का चलनेहारा, तन रूपी रथपै चढ़ि के जाय है। सो कहीं क्षुधा परीषह रूपी घाटी आवै है तहां महा उदासीन व्रत का धारी अपनी साहस वृत्ति कर क्षुधा परीषह कूं जीतैं, सो क्षुधा परीषह विजयी साधु कहिए। १। और तहां जे गुरु नाना तप उपवास दुर्धर करते, जेठ मास के दीर्घघामनि का निमित्त पाय भई जो तन विषैं तपन की ज्वाला, अरु ऐसी ऋतु में भोजनकौं नगर में गए, तहाँ प्रकृति विरोधी दाहकारी भोजन का निमित्त मिल्या। तथा मासोपवासी कौं नगर में अन्तराय भई। ताके निमित्त तैं बधी (बढ़ी) जो तनमें तृषा की वेदना, ताके निमित्त पाय सर्व शरीर अग्निवत तपि चला, नेत्रनकें आगे तमारे आवनें लगे, तारागनसी (चिनगारीसी) नेत्र पै टूटिनें लगी, लोचन फिरने लगे, इत्यादिक

भई जो तृषा की बाधा, ताकौं सहते धीर साधु वीतरागी मुनी खेद भाव नाहीं करैं। ताकूं तृषा परीषह विजयी साधु कहिए। २। और तहां राज अवस्था में शीत की बाधा मेटवें कौं अनेक उपाय करते अग्नि, रुई, रोम, शाल, दुशाले, रजाई, कोमल स्त्री के तनका उष्ण स्पर्श, अनेक गर्म मेवा, भोजन और औषधादिक रस भोगना। और अनेक महलन के गर्भनके अन्दर सोना इत्यादि गृहस्थ अवस्था में तन के जतन करते, सो अब यतीपद विषैं नदीतट, चौपट, बन, इत्यादिक शीत के स्थान तिनमें तिष्ठतें योगीश्वर समता रस पीवते, ध्यान अग्नि की महिमा विषैं तपते, शीत की बाधा नहीं गिनैं, सो शीत परीषह विजयी साधु कहिए। ३। बहुरि समता रस अमृत के स्वादी यतीश्वर, तपकरि भया जो तन क्षीण ताकरि तन की शोभा अरु ज्ञान शोभा प्रगट करी ऐसे तपज्ञान भण्डार यती, चैत्र वैशाख ज्येष्ठ इन मासन के घामनि करि सूखि गए हैं नदी सरोवर के नीर, अरु बनके वृच्छन के पत्ता अरु कूप बावड़ीन के जल नीचे बैठि गए। और पृथ्वी, पर्वत, अग्निवत तप चले। बन बाग शोभा रहित होय गये। ऐसे दुर्धर (घोर) घामन में अनेक बनचर जीव अपने-अपने स्थानन में, गमन तजि तिष्ठ रहे। केईक पशु वृच्छन की छाया में तिष्ठ रहे हैं। मार्ग चलन-हारे पंथीजन मनुष्य, सो भी मार्ग तजि बैठि रहे हैं। ऐसे घामन विषैं योगीश्वर, पर्वतन के शिखरन पै, शिलान पै, समता सुधारस पीवने हारे। सुखतें अडोलशरीर करि तिष्ठते, नहीं है परणति में खेद जिनकै, ऐसे यतीश्वर सो उष्ण परीषह विजयीसाधु कहिए।४। और वर्षाकाल विषै वर्षा का निमित्त पाय, वृच्छन के नीचे डांस, मसक, विच्छू, कानखजूरे, आदिक दुख

के उपजावन हारे जीव, मुनि के तनकूं उपद्रव करें हैं। तिन यतीन के तनकों काटै हैं। तनकें लिपटैं हैं। तिन बाधा के आगे, जगत का पीर हर, दया भण्डार, तनकों नहीं हिलावें है। ऐसा विचारैं है जो मेरा तन चंचल भया तौ ए हीन शक्ति के धारी दीन जीव, भय पावेंगे। तथा दीन जीवनकी घात होय तौ हिंसाका दोष उपजैगा, ऐसा जानि तिन दीन जीवन की रक्षा कूं धीर-वीर अपनी काय निश्चल करि बाधा सहता कायर भाव नहीं करै, सो दंशमशक परीषह विजयी साधु कहिए। ५। और जे गृहस्थ अवस्था में आप चक्री, कामदेव, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वरादि बड़े पदधारी राज सम्पदा में, तनमें अनेक शृंगार करते, तनक भी शरीर उघड़ता तौ लज्जाकौं धरते, अपने तनकी शोभा आपही देखि-देखि देवन का रूप अल्प मानते महाभोगी, शरीर के अङ्ग-उपांग उघड़ते शंका करते, सो ही अब संसार की दशा विनाशीक जानि, सर्व राज-सम्पदा चपलासी (विजलीसी) चपल जानि, तातें ममत्व छोड़ि नग्न अवस्था धारि, निशंक, निर्विकार पद धरि, जगत शंकाकूं छोड़ि नग्न पद धारते भए। सो नगन परीषह विजयी साधु कहिए। ६। और जे वीतरागी, इन्द्रियनकौं अनेक अनिष्ट सामग्री मिलै भी चित्त अरति रूपी नहीं करैं, सो अरति परीषह विजयी साधु कहिये। ७। और जो निर्विकार यती देवाङ्गना, मनुष्यनी, तिर्यञ्चनी, काष्ठ-पाषाण-चित्राम की सुन्दर पुत्तलिकायें ए चेतन-अचेतन च्यारि प्रकार की स्त्रीन का निमित्त मिलै रागद्वेष नहीं करैं। तहां कोई देवांगना तथा विद्याधरी आय यती पै अनेक हाव-भाव, विनय, मंदहास्य, नेत्रनतैं सरागता बताय यती कौं विकार उपजावे, तौ भी यह ज्ञान सम्पदाकाधारी सुमति रूपी सखी

करि जान्या है मोक्ष स्त्री का स्वरूप अरु सुख तिननैं सों यती मोक्ष स्त्री अनुरागी इन च्यारि जाति स्त्रीन के शुभाशुभ देखि रागद्वेष नहीं करैं सो स्त्री परीषह विजयी साधु कहिए । ८ । और राज अवस्था में जे रथ, पालकी, घोटकादि की सवारी करते । पांवन कबहू नहीं चलते सो अब वही सुकमाल सत्संग के निमित्त पाय सर्व सम्पदा बिनाशीक जानि सर्व वाहन की सवारी तजि नगन अवस्था धरि एकाएक वनविषैं पगप्यादे फिरैं हैं । सो बिहार करतें कोमल पावन में कंटक, तिनका पाषाण खण्ड कठिन धरती चुभती भई । ताकरिपावन में रुधिर धारा चलती भई । ताकरि भी यती समता रसका भरमा धीर बीर साहसी संयम का लोभी खेद नहीं लेता भया । सो चर्या परीषह विजयी साधु कहिये । ९ । और जहां मुनि गुफा, मशान, मण्डप, वृक्ष के कोटर वनादिक में तिष्ठैं आसन करैं वहां आगे पीछे विचारैं जो यहां गुफादि में सिंहादिक जीवन के खोजि बिल मालूम होय हैं । तो इस स्थान में तो नाहीं रहे ? यह स्थान आगे काहू जीव करि रोक्या गयो तो नाहीं ? कदाचित कोऊ देवादिक के क्रीड़ा का स्थान न होय । और कोउ स्थान में काहू का ममत्व भाव होय, ऐसे स्थानन में यती नहीं रहे । ऐसे अनेक विचार सहित निर्दोष स्थान तामैं काहू का ममत्व नाहीं, ऐसे स्थान में स्थिति करि तिष्ठैं । अरु तिष्ठैं पीछे कोई देव, विद्याधर सिंहादिक दुष्ट जीव उपद्रव करि स्थान तैं यती कों चलाया चाहैं तो यती महा धीरज का धारी शूर वीर साहसी समता रस का स्वादी सकल परीषह सहैं, परन्तु आसन नहीं तजै सो जगत गुरु आसन परीषह विजयी कहिए । १० । और मुनिनाथ निशि दिन ध्यान

अध्ययन में बितावैं, प्रमाद वशी नहीं होय। और कदाचित प्रमाद वसाय निद्राकर्म का उदय होय हीं तौ पिछली रैनि (रात्रि) तुच्छ निद्रा करि प्रमाद खोवैं। सो भी सोवैं तो महाविकटासन सोवैं। तिन आसन के नाम बताइए है। गोदूहन आसन, वीरासन, धनुष्कासन, वज्रासन, मडासन, इन आदि अनेक आसन हैं। अब इनका अर्थ कहिए है। तहां जैसे गैया के दूहन कौं ग्वाल बैठे। ऐसे प्रमाद खोवनेकूं तिष्ठैं सो गोदूहन आसन है। और तहां जैसे लौकिक मैं भोरे जीवन नैं हनुमान का स्थापन किया है सो वीरासन है। जैसे शूरवीर लड़वे कूं ठाड़ा होय यती प्रमाद शत्रु तैं लड़वे कूं वीरासन करे। तथा जैसे जौकिक मैं धनुष वांका होय है तैसे यतीश्वर तनकूं वांका भूमि मैं डारि शयन करें सो धनुष्कासन है। और जैसे वज्रदण्ड भूमि डारिये तब सरल सूदा पड़ा रहे। तैसे यति सरल तन करि आंगोपांग सोवैं सो वज्रासन है। तथा जैसे मसान भूमि मैं डारया मुर्दा का तन चेतना रहित अडोल पड़ा होय। तैसे यती मसान भूम्यादि मैं सर्वश्वासोच्छ्वास मैंटि शरीर कूं काम गुप्ति के योग तैं लम्बा का तिष्ठै सो मडासन है। इन आदि क्रियादि करि प्रमाद कौं खोय ध्यान अध्ययन मैं स्थिर रहै सो शयनाशन परीषह विजयी कहिये।११। और जे दुष्टनर योगीश्वर कौं देखि दुर्वचन कहैं हैं कोई कहैं चोर है, कोई कहैं ठग है, कोउ कहैं पाखंडी है। कोऊ कहैं दीन है कोऊ कहैं रंक है। कोऊ कहैं कमाऊ है। और केई कहैं राज लक्षण नाहीं, तातैं राज तजि उदर भरवेकूं मुनी भया है। इत्यादिक दुष्ट अज्ञानी जीव वचन रूपी बांणन करि मुनिकूं पीड़ा का निमित्त मिलावैं हैं। तौ भी योगीश्वर समता रस का भरया भली

भावना भावने हारा बीतरागी कोई के वचन रूपी वांण अपनी समता रूपी ढाल करि अपने लागनैं नहीं देय। और परणाम निर्दोष राखै सो दुर्वचन परीषह विजयी साधु कहिए। १२। और कोई पापीजन निर्दोष वीतराम मुनिकूं मारैं हैं। बाधैं हैं, केई अग्नितैं जलावैं हैं। इत्यादिक उपद्रव करैं हैं। तौ भी करुणाभावी समता सागर जगत का पीर हर कोई तैं द्वेष भाव नहीं करै। जो कोई निर्दयी पुरुष मुनी कौं लात मुक्की तैं मारैं। तब योगीश्वर ऐसा बिचारैं जो मोतैं याका कछू अपराध बना है तातैं यह मारे है। यह कोई दयावान् है। तातैं मोकूं लकड़ी तैं तौ नहीं मारै है। तनतैं ही देय है। और कोऊ कठोर चित्तधारी मुनीकूं लाठी लकड़ी तैं मारै, तौ ऐसे बिचारैं जो कोई शस्त्र तौ नहीं मारै है। और कोऊ पापात्मा शस्त्र हीं मारै तौ यती ऐसा बिचारैं जो मैं चेतना अमूर्तीक मेरा तौ घात है नाहीं। मैं इस तन बंधन बंदीग्रह में रुका हौं। सो यह उपकारी मोकूं करुणा करि तन बंदीग्रहतैं छुड़ावै है ऐसा बिचारैं। समता रस का धारी आप में दोष जानैं, परतैं दोष भाव नहीं करै सो वधवन्धन परीषह बिजयी साधु कहिए। १३। और जो मुनीश्वर तप भण्डार अनेक उपवासन के पारणे नगर में भोजनकौं जांय तहां अन्तराय होय तौ पीछे वनकौं जांय ध्यान अध्ययन करैं। दूसरे दिन फिर जांय तब अन्तराय होय ऐसे अनेक उपवासन के पारणे मुनी कौं ऊपरा उपरि अन्तराय होय तौ भी ज्ञानामृतपानपुष्ट यती तनतैं निस्पृह, क्षुधा के योगतैं याचना नहीं करैं। ध्यानमूर्तीक चारित्रभंडार अपनी संयम प्रतिज्ञा का लोभी अपनी अयाची वृत्ति मलीन नहीं करै सो अयाचना परीषह विजयी साधु कहिए। १४। और

मुनीश्वर के भोजनकौं नगर में भ्रमतैं अन्तराय होय। तथा काहूनैं पड़गाहा नाहीं। ऐसे बहुत दिन भए होंय भोजन का लाभ नहीं होय तौ परम योगी तनका त्यागी सन्यासी गुरुकौं खेद नाहीं होय तो यतीश्वर पुद्गलीक तनकूं जुदा जानि उपचार नाहीं करैं सो रोग परीषह विजयी साधु कहिए। १६। और राज अवस्था में गलीचा गदेलादिक (गद्दादि) अनेक कोमल बिछौना पै पांवधरैं सो ही जीव जगका विभव विनाशीक जानि सर्वविषय सामग्री विषवत जानि करि जगत पूज्य यतीपदकौं धारि एकाकी कठिन धरती पै चलै सो कोमल पांवन लगै जो तीक्ष्ण कांटे, पाषाण खंड, काष्ठखंड, तिनकादिक तिनकरि पांव फटि गए सो पांवनतैं श्रोणित की धारा चली तौ भी यती ईर्या समिति धारक चित्त विषैं कायर नाहीं होय, सो तृणस्पर्श परीषह विजयी साधु कहिए। १७। और जे राज अवस्था में अनेक सुगंध लेप, चन्दन, अरगजा, अतर, खुशबू, केशर, कस्तूरी आदि अनेक सुगंध लेप करि गमन होते, सो ही अब सर्वदशा संसारीक की विनाशीक जानि तनतैं ममत्व भाव छोड़ि, डारी है तनकी शोभा जिननें। तिनका सर्व तन मांस सूखगया। नशा जाल रह गया। यावज्जीवन स्नानका त्यागी, तपकरै तनपै मैलि पुञ्ज जमि चल्या। सो वाह्य मैलि करि शरीरतैं बास चलने लगी है। तो भी नासिका इन्द्री का वशीभूत करने हारा ग्लानिचित्त नाहीं करै ताको मल परीषह विजयी साधु कहिए। तहां मल के दोय भेद हैं। एक द्रव्यमल एक भाव मल। तहां द्रव्यमल के भेद दोय हैं। एक वाह्यद्रव्यमल। एक अंतरंग द्रव्यमल। सो कीच, कांदो, पसेवतैं रजका जमना ए तौ वाह्यद्रव्य मल है। और ज्ञानावरणादिक द्रव्य कर्म का आत्माकैं लेप सो

अंतरंग द्रव्य मल है। और रागद्वेष भाव पाप परणति ए भाव मल है। ऐसे कहे जो मल तिनमैं भाव मल का त्यागी, अंतरंग पवित्र है आत्मा तिनकी, सो यति महा निर्मल है। और द्रव्य मलतैं समभावी यति सो मल परीषह बिजयी साधु कहिए। १८। और राज अवस्था में आप चक्री थे। तथा कामदेव तथा विद्याधर मण्डलेश्वर महामण्डलेश्वर इन आदि बड़े वंश के राजा थे सो मान के अर्थ अनेक युद्ध करते। अनादर भए दण्ड देते अपना अमल [हुक्म] सर्व पर चलावते। सो ही अब संसार दशा चंचल जानि, राजभार तजि, नगन होय, वनवासी भए। सो अब वैराग्य के बल करि कषाय जीतीं, सो ऐसे जगतगुरु वीतरागी का कोई मंदभागी अज्ञानी आव-आदर नहीं करैं नमस्कार वन्दना नहीं करैं ताजीम नहीं करैं तो वीतरागी सर्वका बंधू काहू तैं रोष भाव नहीं करै सो सत्कार पुरस्कार परीषह विजयी साधु कहिए। १९। और जे जगत गुरु नाना प्रकार तप भण्डार अनेक चारित्र गुण के धारी वीतरागी कौं, कोई ज्ञानावरणी कर्म के क्षयो पशमतैं तथा उदयतैं ज्ञान की बढ़वारी नहीं होय तो यतीनाथ और मुनीश्वरन कौं अनेक शास्त्रन के पाठी विशेष ज्ञानी देखि ऐसे नहीं विचारैं। जो मैं बड़ा तपसी बड़ी उम्रकाहूं भले पद का धारी, सो मेरी विशेष बुद्धि नाहीं। मोकौं कोई कहा कहेगा? ऐसा विचार नहीं करै, सो प्रज्ञा परीषह विजयी साधु कहिए। २०। और यतीकौं तपस्या करते, चारित्र पालते, बहुत दिन भए होय, अरु कर्म योगतैं कोई अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान नहीं भया होय तो योगीश्वर अपना चित्त धर्मतैं तथा चारित्र तैं अरुचिभाव नहीं करैं हैं। सो साधु अज्ञान

परीषह विजयी कहिए। २१। और मुनीकौं तप करते चारित्र पालते बहुत दिन भए होंय अरु तप बलतैं कोई ऋद्धि नहीं उपजी होय, तथा कोई निमित्त ज्ञानादिक अतिशय नहीं देख्या होय, तौ ऐसा नहीं विचारै जो आगे शास्त्रन में ऐसी सुनी थी जो तपके बलतैं अनेक ऋद्धि होय हैं। सो हमकौं कछू प्रगट नहीं भई। सो न जानैं शास्त्र भाषित सत्य है तथा असत्य है। ऐसा सन्देह रूप मिथ्या मई विकल्प नहीं करैं सो अदर्शन परीषह विजयी साधु कहिए। २२। ऐसे बाईस परीषह सहवेकौं धीर सो ही जगत का गुरु है। सो ही गुरु सम्यग्दृष्टीन करि पूज्य है। सो ही गुरु जानना। सो ऐसे मुनीश्वरन के भेद दश हैं। सो ही कहिए—

गाथा—सूरोप वज्झाय तपसी, सिसिगलांणगण कुलय संजाती।
साहू मणोगय दहदा, जोई भेयाण जिणसुत्ते भासई॥ २६॥

अर्थ—आचार्य, उपाध्याय, तपसी, शिक्ति, ग्लाण, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ। ए मुनि जाति के दश भेद हैं। तहाँ प्रथम आचार्य का स्वरूप कहिये है—

गाथा—दहधम्मो तप बारह आवसि सड पणणाचार तोए गुत्ती।
इण छत्तीस गुण जुत्तो, सूतो जगपूज्ज होई मुणणाहो॥२७॥

अर्थ—धर्म दश भेद, बारह भेद तप, षट् भेद आवश्यक, पंचभेद आचार, गुप्ति भेद तीन, ऐसे ए सर्व छत्तीस गुण आचार्य जी के हैं। तहाँ प्रथम ही दशधर्म भेद कहिये है—

गाथा—सार खमा मादव्वो, आज्जव सच्च सौचधम्म संज्जाए।
तप तागो अहकंचो, वंभचज्जाय धम्म दह भेवो ॥ २८ ॥

अर्थ—उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य, ए दश प्रकार धर्म हैं। तहां प्रथम ही उत्तमक्षमा का लक्षण कहिए है। तहां आप समान पद के धारी जीवन का शुभाशुभ चारित्र देखि क्षमा करनी सो क्षमा है। और आपके पदतैं हीन शक्ति के धारी तथा चौइन्द्रिय, तेन्द्रिय, बेन्द्रिय, एकेन्द्रिय, आदि ए महा हीन शक्ति के धारी तिनतैं समता भाव क्रोध नहीं करना सो उत्तम क्षमा है। इहां प्रश्न, जो पंचेन्द्रिय आदि आप समान पदधारी तौ कोपादि कषाय करैं हैं सो इन तैं द्वेषभाव नहीं करना सो तौ क्षमा जानिए है। और एकेन्द्रिय जीवन पर्यन्त जीवन कैं तौ कोई कैं कोप करने की शक्ति नाहीं इनतैं क्षमा कैसे करैं? इनतैं क्षमा करनी सो उत्तम क्षमा कैसे कही, सो कहो। ताका समाधान!

भो भव्य, तूँ चित्त देय सुनि। जो आप समान पदस्थधारी जीवन तैं तो कोप का कारण, इनकी हिंसा का निमित्त तौ अल्प समय पाय परै है। अरु एकेन्द्रिय विकलत्रय की हिंसा का निमित्त बारंबार बहुत मिलै है। ताही तैं श्रावक कैं स्थावर हिंसा नहीं बचै है। इनकी हिंसा महाव्रती यती तैं बचै है। सो तू सुनि बनस्पती तोड़ना, तुडावना, खावना, ।, चालते खूँदना, सुखावना, छीलना छोलवाना, सूघना, इत्यादीक मिटै तब बनस्पती की हिंसा नहीं लागै। और कच्चे जल का छीवना, ऊलातपावना स्नान करना

धोवना, धुवावना, पीना, और कौं प्यावना इत्यादि जल का कार्य छूटै, तब जल काय स्थावरन की हिंसा छूटै है। और अग्नि का बारना, कहिकैं जलवाना, छीवना, दाबना, प्रगट करना, दीपक करना, करावना, याकी प्रभा में तिष्ठना इत्यादिक अग्नि के आरम्भ छूटैं तब अग्नि-जीवन का पाप छूटै है। और पवन पंखेतैं लेना, कपड़ा हलावना, कूदना, हाथन तें तारी बजावना, फूकैं देना, वस्तु पटकना, इत्यादि पवन घातके कार्य छूटैं तब पवन कायकन की हिंसा छूटै। और पृथ्वीका खुदावना, खोदना, झाड़ना, छीवना, फोड़ना, फुड़ावना, इत्यादिक पृथ्वी काय के कार्य छूटैं। तब पृथ्वी एकेन्द्रिय की हिंसा छूटै है। इत्यादि पंच स्थावरन की हिंसा कही। विकलत्रय की हिंसा तब टरै। जब जतन तैं चलै, जतनतैं बैठे, जतनतैं सोवै, जतनतैं बोलै, जतनतैं खाय, जतनतैं वस्तु धरती पै धरै, जतनतैं उठावै, खाजि चलै तो नहीं खुजावै, अन्न, मेवा, जे वस्तु खावे योग्य होय सो खाय, अयोग्य नहीं खाय। अन्न, तेल, घीव, मेवादिक, किरानादिक वस्तु नहीं बेचै, नहीं लेय, इत्यादिक जे कार्य एकेन्द्रिय के आरंभ घात निमित्त बहुत हैं। तातैं जो इनकी रक्षा रूप वर्तना सो उत्तम क्षमा जानना। सो ए कहे जेते कार्य्य सो सर्व ही सर्व प्रकार यती महाव्रती कैं पलै हैं। गृहस्थ कैं नाहीं। तातैं याका नाम उत्तम क्षमा कह्या है।१। और अष्टप्रकार मद का त्याग सो मार्दव धर्म है।२। और भावन में दगाबाजी का त्याग, और बाह्याभ्यन्तर एकसी मनकाय की क्रिया, सरल भाव, कुटिलता रहित परिणाम सो आर्जवधर्म है।३। और मन वचन कायकर असत्यका त्याग, जिन आज्ञा प्रमाण हित मित बोलना सो सत्यधर्म है। ता सत्य वचनके दश भेद हैं सो कहिए है।

गाथा—जणवद संवदिठवणा, णाम सत्तोय रूप पत्तीतो ।
ववहारण संभावण, भावउपमाए सत्यदह भेवो ॥ २६ ॥

जनपद सत्य, संवृत्ति सत्य, स्थापना सत्य, नाम सत्य, रूप सत्य, प्रतीति सत्य, व्यवहार सत्य, संभावना सत्य, भाव सत्य, उपमा सत्य, ए दश । इनका अर्थ । तहां जिस देश विषें जिस वस्तु का जो नाम होय, ताको तैसेही कहना, जैसे कर्नाटक देश में उड़दन का नाम भूतिया कहै हैं । सो वह देश प्रमाण है । याकानाम जनपद सत्य कहिए ।१। बहुरि जाको बहु जीव मानें ताकों तैसाही कहिए । जैसे काहू निर्धन पुरुष का नाम लक्ष्मीधर है । ताको सर्व देश नगर के लोक लक्ष्मीधर ही कहैं हैं । याकानाम संवृत्ति सत्य है । २ । और जहाँ काहू राजा की छवी काहूनैं काष्ठ पाषाण चित्रामकी करी है । सो वा छवि कूं राजा कहना, जो यह फलाने राजा की छवी है । ऐसा कहना याकानाम स्थापना सत्य है । ३ । जिसका नाम लोक में प्रसिद्ध होय, तिस वस्तुकूं ताही नाम लिए सब जानैं ! जैसे काहू देश के पुरुष का नाम बाबा है । तिसकूं सर्व देश नगर बाबाही कहै । सो याकानाम ठाम(स्थान) पूछिए, तो बाबा के नामतें मिलै, तातें बाबा कहना, याकानाम नाम सत्य है ।४। और शरीर के वर्ण की अपेक्षा करि कहना जो यह काला है, लाल है इत्यादिक कहना सो रूप सत्य है।५। और वर्तमान काल में वस्तुकों छोटी बड़ी कहना, जो बड़ी की अपेक्षा ये छोटी है । छोटी की अपेक्षा यह वस्तु बड़ी है । ऐसा कहना सो प्रतीति सत्य है । ६ । और नैगम नय करि बचन बोलिए सो व्यवहार सत्य है । जैसे कोई कमर बांध घरतैं विदा होय परदेश कूं गया । अरु वाके घर

कोऊ तब ही पूछै, जो फलाना कहां है तब वाके घर वारे कहैं, वह तौ फलाना देश गया। सो तुरंत तौ ग्राम वाहिर भी निकस्या नहीं होयगा देश गया केसे कहें हैं। तौ इन घर वारों की तरफतें गया ही कहिए, सो व्यवहार सत्य है। ७। और इन्द्र विषें ऐसा वल है, जो चाहै तौं पृथ्वीकौं उठाय लेय। सो पृथ्वी तौ अनादि ध्रुव है। काहूनै उठाई नाहीं परन्तु इन्द्र में ऐसी शक्ति जाननी। सो शक्ति अपेक्षा कहिए। सो संभावना सत्य है। ८। और सिद्धान्त शास्त्रन के अनुसार अमूर्तीक पदार्थन का श्रद्धान। जैसे धर्म अधर्म द्रव्य लोक प्रमाण हैं तथा जलकी बूंदमें असंख्याते जीव हैं। परन्तु प्रत्यक्ष नाहीं। जिन प्रमाण हैं, सो सत्य है। याकानाम भाव सत्य है।९। और कोई वस्तु की कोई वस्तु कूं अपेक्षा देनी जैसे यह राजा कल्प वृक्ष है, सो वृक्ष नाहीं मनुष्य ही है। परन्तु वांछित दान देय है। ताकी अपेक्षा लेय कल्प वृक्ष कह्या याकानाम उपमा सत्य है। १०। ऐसे कहे जो सत्य के दश भेद सो नय प्रमाण ए दश ही सत्य हैं। तातें जो इन दश भेद वचनन कौं बोलैं सो सत्य है। ४। और परवस्तु का सर्व प्रकार त्याग सो शौच धर्म है। ५। और पंचेन्द्रिय और मनका वश करना सो इंद्रिय संयम है। और षट् कायके जीवन की दया रूप प्रवर्तना सो प्राण संयम है। ऐसे दोय भेद रूप संयम धर्म है।६। और वाह्य आभ्यन्तर करि तप भेद वारह हैं। सो तप करना सो तप धर्म है। ७। और मन वच कायतें परवस्तु के ममत्त्व भावका त्याग, सो तथा तन धन कुटुम्वादिका त्याग सो त्याग धर्म है। ८। और वाह्य आभ्यन्तर दोय प्रकार परिग्रह का त्याग सो आकिंचन धर्म है। ९। और चेतन अचेतन स्त्री का भोग

सो आगे या ब्रह्मचर्य के दश अतीचार हैं सो अभिलाष का त्याग सो ब्रह्मचर्य धर्म हैं। शील ब्रत का धारी शरीरकौं शृंगार सुगंध लेपन नहीं करै। धोवना, पोंछना, चहिए हैं। इत्यादिक कहैं कार्य करै तौ ब्रतकौं दोष लागै।१। स्नानादि तनकी सुश्रूषा नहीं करनी। गरिष्ट भोजन करै। २। वेश्यादिक के गीतनाद नृत्य और पेट भर भोजन करै। शीलवान स्त्री पुरुष का सुनै। ३। और शीलवान पुरुष स्त्री का निमित्त करै। और गृहस्थ अवस्था के इन्द्रिय जनित भोग सुख रूप जानि निमित्त मिलावै।४। और आपने तथा स्त्री के आंगोपांग निरख (देखि) तिनकौं विचारे।५। और स्त्रीन के आव आदर सुश्रूषा सत्कार बहुत करना सो शील को रागद्वेष करे।६। और पूरब भोगे जो सुख इन्द्री जनित तिनकौ बार-बार विचारे।८। और दोष हैं।७। और वीर रज के खेरवे का जैसे तैसे स्त्री के मिलापकौं बार बार आरति करना, चाहना।९। ये दश अतीचार शील के सो शील धर्म को मलीन करे हैं। तातैं ब्रह्मचर्य उपाय करना।१०। ब्रत का धारी ए दश दोष नहीं लगाय के अपना ब्रह्मचर्य वृत निर्दोष राखे हैं। याका नाम ब्रह्मचर्य धर्म हैं। इति दश धर्म। और तप बारह इनका स्वरूप आगे कहेंगे। और आवश्यक षट और गुप्ति तीन इनका स्वरूप आगे कह आये। और पंचाचार का स्वरूप आचार सार जी से जानना ऐसे दश धर्म।१०। तप बारह।१२। आवश्यक षट।६। पंचाचार।५। गुप्ति तीन।३। इन छत्तीस गुण सहित आचार्य मुनिके भेद हैं।

इति श्री सुदिष्टि तरंगनी नाम ग्रन्थ मध्ये अष्टाविंशति यती का धर्म तेरह प्रकार चरित्र रत्नत्रय बावीश परीषह कथन दशभेद सत्य अतीचाररहित के दश छत्तीस गुण आचार्य वरननो नाम पर्व पूर्णम् ॥ ६ ॥

आगे पच्चीस गुण सहित उपाध्याय का स्वरूप कहिए है ।

गाथा—अंग एकादह जुत्तो चउदह पूव्वाय णाण संजुत्तो ।
सो उवभाओ अप्पा, गुणवीसाय पण सहिओ । ३० ।

अर्थ—ग्यारह अंग, चौदहपूर्व, उपाध्याय जी के ए पच्चीस गुण हैं। सो ही संक्षेप मात्र कहिए हैं। आचारांग, सूत्रांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्त्यांग, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृतदशांग, अनुत्तरोपपाददशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग, ए ग्यारह अंग हैं। अब इनका अर्थ सो जिस जिस अंग में जो कथन है ताकी मुख्यता लेयकें सामान्य भाव इहां कहिए हैं। तहां प्रथम ही गणधर देव नें प्रश्न किये। जो हे प्रभो! कैसे खाइए? कैसे बोलिये, कैसे चालिये, कैसे बैठिये इत्यादिक क्रिया तो कीजे अरु पाप नहीं लागे सो मार्ग बताइये जिस करि जीवन का कल्याण होय। ऐसा प्रश्न होते जिन देव ऐसा उत्तर कहने भए। जो यतन तें खाइए। यतनतें चालीए, यतनत बोलिए, यतनतें बैठिए। इत्यादिक जो क्रिया करिए सो यत्न तें करिए तो पाप नहीं लागे। यती के आचार का कथन जहां चलै सो आचारांग नाम अंग है। इसके अठारह हजार (१८०००) पद हैं।१। आगे जहां देव, धर्म, गुरु का विनय ऐसे कीजिए। ऐसे विनय तें देवकी पूजा कीजे। विनयतें शास्त्रन का बांचना, सुनना, धरना, राखना,

गुरुकौं बन्दना करनी, पूजा करनी सो विनय तैं करनी। ऐसे विनय का कथन तथा अपना मत परके मतन की क्रिया स्वभाव प्रवृत्ति आदि कथन होय सो दूसरा सूत्रांग कहिए। याके छत्तीस हजार [३६०००] पद हैं। २। आगे जीवस्थान के एक भेद कौं आदि एक एक जीव समास वधावते [बढ़ावते] च्यारि सौ षट् स्थान आदि, जीव के स्थान का कथन होय जामैं सो तीसरा स्थानांग है। याके बियालीस हजार[४२०००] पद हैं।३। आगे जहां द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव, करि सम ही सम का जामैं कथन होय। जैसे धर्म अधर्म द्रव्य लोकाकाश सम हैं। तथा सब सिद्ध राशि सम है। इत्यादिक सौ द्रव्य सम हैं। और क्षेत्रकरि प्रथम नारक का प्रथम पाथरे का प्रथम इन्द्रकविल पैंतालीस लाख योजन प्रमाण हैं। और अढ़ाई द्वीप पैंतालीस लाख योजन है। और प्रथम स्वर्ग का प्रथम इन्द्रक रुचिक नाम सो पैंतालीस लाख योजन है। और मोक्ष शिला पैंतालीस लाख योजन है और सिद्धन के विराजिवे का सिद्धक्षेत्र पैंतालीस लाख योजन है। ये पंच पैंताले हैं सो क्षेत्रसम हैं। तथा जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धिविमान, सातमें नरक का इन्द्रक विल, नन्दीश्वर द्वीप की वापिका ये चार एक लाख योजनक्षेत्र प्रमाण हैं तातैं क्षेत्र सम कहिए इत्यादिक क्षेत्र समान जानना। आगे समयतैं समय सम हैं उत्सर्पिणी अपसर्पिणी दोउका दस दस कोड़ा कोड़ी सागर काल है, तातैं सम हैं। इत्यादिक काल सम के भेद हैं। और केवल ज्ञान• केवल दर्शन ए दोऊ भाव सम हैं। इत्यादिक भाव सम हैं। ऐसे सम ही सम का व्याख्यान जामैं होय सो समवायांग हैं। याके एक लाख चौसठि हजार (१६४०००) पद हैं।४। आगे जहां गणधर देव ने प्रश्न किए। भो

भगवान् ये वस्तु अस्ति हैं अरु (अथवा) नास्ति हैं ? अरु जीव एक हैं या अनेक हैं। जीव सादि हैं कि अनादि हैं ? इत्यादि साठ हजार प्रश्न किए। तहां उत्तर। कि वस्तु द्रव्य की अपेक्षा सदैव अस्ति है द्रव्य वस्तु का नाश कबहूं होता नाहीं। और वस्तु पर्याय की अपेक्षा नास्ति है। जितनी पर्यायें उपजें हैं सो निश्चय करि नाश हो हैं सो जीव अनन्त है और नाम अपेक्षा तो एक है कि यह जीव द्रव्य है। जैसे बहुत रतन की राशि है सो नय अपेक्षा तो रतन राशि एक। अरु पर्याय गुण सत्ता की अपेक्षा रतन भिन्न भिन्न अपनी कीमत लिए हैं। केई रतन उत्कृष्ट हैं, कोई मध्यम हैं, केई हीन हैं, झूठे हैं। तैसे ही जीवभी पर्याय सत गुणतें जुदे भिन्न-भिन्न हैं। केई सिद्ध हैं, केई संसारी हैं। तामें भी केई भव्य हैं केई अभव्य हैं। ऐसे अपने कर्मउपार्जन प्रमाण फलरूप हैं। और जीव, द्रव्य अपेक्षा अनादि है। पर्याय अपेक्षा सादि हैं। इत्यादि अनेक उत्तर करते भए। ऐसा कथन जामें चले सो व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग है। याके दोय लाख अट्ठाईस हजार [२,२८,०००] पद हैं। ५। और जहां समोशरण कथन तथा दिव्यध्वनि खिरवे का कथन। तथा तीर्थंकरन के अतिशयन का कथन इत्यादिक कथन जामें होय सो ज्ञातृकथा छठा अंग है। याके पांचलाख छप्पन हजार[५५६०००]पद हैं।६। आगे श्रावक का आचार, ग्यारह प्रतिमादि, जामें श्रावक कों धर्म कर्मरूप कैसे प्रवर्तना इत्यादिक कथन जामें होय सो उपासकाध्ययन सातवां अंग है। याके ११ लाख सत्तर हजार[११७००००] पद हैं।७। और एक एक तीर्थंकरके बारे [समय में] दश दश मुनीश्वरों ने आयु के अन्तसमय केवल ज्ञान पाया तिनकूं अन्तकृत

केवली कहिए। तिनका कथन जहां चलै सो अन्तकृत दशांग है याके तेईस लाख अठाईस हजार [२३,२८०००] पद हैं।८। और एक एक तीर्थंकर के वारे [समयमें] दशदश मुनीश्वर अति उपसर्ग सहकैं अहमिंद्र भए। तिनका कथन जहाँ चलैं सो अनुत्तरोपपाद दशांग है। याके वानवे लाख चवालीस हजार [९२,४४,०००] पद हैं।९। और जहाँ होनहार त्रिकाल सम्बन्धी होय सो बतावैं। मुठी वस्तुराखि पूछै तौ बतावैं। इत्यादिक जो प्रश्न करै सो ही बतावैं, याकानाम प्रश्नव्याकरण अंग है। याके बानवेलाख सोलह हजार (९२,१६,०००) पद हैं।१०। और जहाँ कर्मका उदय भया तब शुभाशुभ रस जिसजिस तरह जीवने उपाजैं अरु वे जिस-जिस तरह उदय होय। ऐसा कथन जामैं होय सो विपाक सूत्र नामा अंग है। याकै एक कोड़ि चौरासी लाख [१८४,०००००] पद हैं।११। ऐसे ग्यारह अंग का ज्ञान उपाध्याय जी कूं होय। और चौदह पूर्व का स्वरूप नाम लिखिए है। तहाँ उत्पाद पूर्व, अग्रायणी पूर्व, वीर्यानुवाद, अस्तिनास्ति, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुवाद, कल्याणप्रवाद पूर्व, प्राणवाद, क्रियाविशालपूर्व, त्रिलोकवि-दुपूर्व, ए चौदह पूर्व के नाम है। अब इनका अर्थ। ताका रहस्य लेय सामान्य अर्थ दिखाईए है। तहाँ व्यय ध्रुव उत्पाद का लच्छणकौं लिए षट् द्रव्यादि वस्तुन का परणमण है। जहाँ इन व्यय ध्रुव उत्पाद का लच्छण होय सो उत्पादपूर्व है। याके एक कोड़ि [१००,००,०००] पद हैं। और जहाँ बस्तु कहा, पदार्थकहा, द्रव्य कहा, सुनय कहा, कुनय कहा इत्यादिक व्याख्यान जामैं होय सो अग्रायणी पूर्व है। याके छ्यानवै लाख [९६,००,०००] पद हैं। और जामैं वीर्य का कथन

जो आत्मवीर्य कहा, क्षेत्र वीर्य कहा, कालवीर्य कहा, भाववीर्य कहा, इत्यादि वीर्यका कथन जहा होय तहाँ सामान्य भाव जो चेतना शक्ति सहित अनंत पदार्थन में प्रवर्तते खेद नहीं होय सोही अनन्त वीर्यरूप आत्मा का परणमण सो आत्मवीर्य है । और अतीत अनागत कालरूप अनन्त परावर्तन रूप परणमण सो कालवीर्य जानना । और अनन्त पदार्थ जीव अजीवनकों अवगाहना देनेकी शक्ति सो क्षेत्र का वीर्य है । और इस लोक में तिष्ठते द्रव्य जीवाजीवरूप षट् द्रव्य तिनका तीन काल सम्बन्धी शुभाशुभ परणमण जानने रूप केवल ज्ञान सो भाववीर्य है। इत्यादिक वीर्य का ही व्याख्यान जामें होय सो वीर्यानुवादपूर्व है। याके सत्तरिलाख [७०,००,०००] पद हैं और जीवअजीवादि द्रव्यन के स्वभाव अस्तिनास्ति रूप काल क्षण आदि जामें कथन होय सो अस्तिनास्ति पूर्व है। याके साठिलाख [६०,००,०००] पद हैं। और जहाँ आठ ज्ञानका लक्षण कहा, ज्ञान का फल कहा, ज्ञानका यत्न कहा। ज्ञानका विषय कहा। इत्यादिक कथन जामें होय सो ज्ञान प्रवाद पूर्व है। याके एक घाटि एक कोड़ि (९९९९९९९] पद हैं और जहाँ नाना प्रकार वचन बोलने के भेद । ए वचन सत्य हैं। ए असत्य हैं। ऐसे निर्धार करता, नय प्रमाण लिए कथन जामें होय सो सत्यप्रवाद नाम पूर्व है। याके एक कोड़ि षट् [१०,००,००, ०६] पद हैं। और जहाँ आत्मा की स्तुति बनायवे का तथा निश्चय व्यवहार रूप नयन करि आत्म स्वभाव का साधना सो आत्मप्रवाद पूर्व है। याके [२६,००,००,०००] छत्तीस कोड़ पद हैं और तहां आठ मूलकर्म के उत्तर भेद एकसौ अड़तालीस तिनका स्वरूप बंधरूप जो आत्मा अमूर्तीक ए कर्म कैसे बांधै सो बंध,

और बंधे पीछे जेते काल अवाधा पूरण न होय, उदय नहीं आवै सो सत्व है। और अवाधा पूरण भए उदय होय सो अपना रस कर्म प्रगट करि जीवकूं सुखी दुखी करे सो उदय, ऐसे बंध उदय सत्तारूप का परणमना सो कर्मप्रवादनाम पूर्व है । याके एक कोड़ अस्सी लाख [१८०,००,०००] पद हैं। और जहां मत विधि, तपविधि, व्रत का फल, चारि निक्षेपणान का विस्तार इत्यादि जहां कथन होय सो प्रत्याख्यान पूर्व है। याके चौरासी लाख [८४,००,०००] पद हैं। और जहां अनेक विद्या साधनेका विधान, विधान कौं कैसे साधीए सो विधान, विधान के सिद्ध होने योग्य तप जान जो मंत्र तें जो विद्या सिद्ध होय ऐसे मंत्र से फलानी विद्या सिद्ध भई तथा ऐसा फल करै, या विद्या की इतनी सामर्थ्य है । और अष्ट निमित्त ज्ञान के भेद इत्यादिक कथन विद्यानुवाद पूर्वमें होय है। तहां निमित्त ज्ञान के आठ भेद बताइये हैं

गाथा—अंतरिक्खं भौमाए, अंग सुर णिमित्त णाण विजणायो ।

लक्खण सुपणाय छिणण, वसु णिमित्त णाण भेदाहु । १ ।

अर्थ—अन्तरिक्ष निमित्त, भौम निमित्त, अंगनिमित्त, स्वरनिमित्त, व्यञ्जननिमित्त, लक्षणनिमित्त स्वप्ननिमित्त, छिन्न निमित्त । अब इनका सामान्य अर्थ । जहां सुर्यचिन्ह, शशिचिन्ह, तारा-नक्षत्रचिन्ह, बादलचिन्ह, संध्या समय आकाश के वर्णादिकचिन्ह, इत्यादिक आकाशसें शुभा-शुभ उल्का (विजुली)पातादि देखि शुभाशुभ कहै । सो अन्तरीक्ष निमित्तज्ञान हैं ।१। और भूमि में रतन, सुवर्ण, चांदी पाषाणादिक भूमि के चिन्ह जानि शुभाशुभ बतावै सो भूमि निमित्तज्ञान है । २ । और मनुष्य तिर्यञ्चन के शरीर के रस, रुधिर, प्रकृति, इत्यादि

चिन्ह देखि शुभाशुभ कहै सो अंग निमित्तज्ञान है।३। और जहां मनुष्य तिर्यञ्चन के शब्द सुनि शुभाशुभ होनहार कहै सो स्वरनिमित्त ज्ञान है।४। और जहां शरीर के तिल, मसा, करमैं पांवमैं उरमैं मुखपै इत्यादिक अंग उपांगमैं तिल मसा देखि शुभाशुभ होनहार बतावै सो व्यंजन निमित्त ज्ञान है।५। और जहां शरीर में श्रीवत्स लक्षण, स्वस्तिक, भृंगार, कलश, वज्र मत्स्यादिक चिन्ह देखि शुभाशुभ बतावै सो लक्षण निमित्त ज्ञान है।६। और कोई वस्तु वस्त्रादि मूसादिक पशुनैं काटी होय। ताकों देखि शुभाशुभ चिन्ह बतावै सो छिन्ननिमित्तज्ञान कहिए।७। और जहां नाना प्रकार के स्वप्न तिनकूं जानि तिनके शुभाशुभ लक्षण कहै सो स्वप्न निमित्तज्ञान है।८। ऐसे ए आठ प्रकार ज्ञान कों आदि अनेक ज्ञान का शुभाशुभ बतावै सो विद्यानुवाद नामा पूर्व है। याके एक कोड़ी दश लाख [११००००००] पद हैं और जहां तीर्थंकर के पंच कल्याणक तथा और चरम शरीरन के एक दोय कल्याणन का कथन तथा ज्योतिष देवन का गमन क्रिया होय सो कल्याण वाद पूर्व है। याके छब्बीस करोड़ [२६०००००००] पद हैं। और जहां वैद्यक कथन, व्यंतरादिक वशीभूत करवे के विधान, विष उतारवे के मंत्रादिक इत्यादिक विधान जहां होय सो प्राणवाद पूर्व है। याके तेरहकरोड़ [१३०००००००]पद हैं। और जहां संगीतकला, छंदकला, अलंकार कला, चित्राम कला, शिल्पकला, गर्भाधान शोधवे की कला, तथा स्त्रीन की चतुराई हावभाव रूप चौंसठिकला, इत्यादिक कथन जहां होय सो, क्रियाविशाल पूर्व है। याके नब्बे कोड़ि [९०,००००,०००] पद हैं। और जहां त्रिलोक विन्दु में तीन लोक उर्ध्व, मध्य, पाताल तथा

पाताल लोक विषैं प्रथम पृथ्वी रतनप्रभा ताके तीन भेद हैं। खरभाग, पंकभाग, अब्बहुल-भाग। तहां खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है ताके हजार हजार योजन के मोटे सोलह भेद हैं। तिनके नाम चित्रापृथ्वी, वज्रापृथ्वी, वैडूर्या, लोहिता, मसारकल्पा, गोमेधा, प्रवाला, ज्योतिरसा, अंजना, अंजनमूलिका, अंकापृथ्वी, स्फाटिका, चंदना, सर्वार्थका, वकुला, शैला, ऐसे सोलह भाग हैं। और पंक भाग चौरासी हजार योजन है। इन दोऊ भागन में तो व्यंतर, भवनवासी देव बसैं हैं। और अस्सो हजार योजनका जाड़ायण (मोटा) लिये अब्बहुल भाग है। तहां प्रथम नरक है। तहां पाथड़े तेरा हैं। और सर्वबिल तीस लाख हैं। तहां आयु उत्कृष्ट एक सागर है। काय की ऊंचाई सवाइकतीस हाथ है। ऐसे प्रथम नरक ।१। आगे दूसरा शर्करानामा नरक तहां पाथड़े ग्यारह। काय साढ़े वासठि हाथ, आयु तीन सागर, और बिल पचीस लाख। मोटाई पृथ्वी की बत्तीस हजार योजन है। २। और बालुका नरक में पाथरे नव, बिल पन्द्रह लाख, आयु सात सागर, पृथ्वी की मोटाई अठाईस हजार योजन, और काय एक सौ पचीस हाथ। इति तीजी नारक। ३। और चौथी पृथ्वी पंकप्रभा में पाथड़े सात, आयु सागर दश की, काय दोय से पचास हाथ है। भूमि की मोटाई चौवीस हजार योजन है और बिलन का प्रमाण दश लाख है। ऐसे चौथी नारक। ४। आगे धूम प्रभा पांचवी नारक। तहां पाथड़े पांच, काय हाथ पांचसै, आयु सत्तरह सागर, बिलन का प्रमाण तीन लाख, पृथ्वी की मोटाई बीस हजार योजन, इति पांचमी नारक। ५। आगे छठी पृथ्वी तमनामा, तहां पाथड़े तीन हैं। काय एक हजार हाथ है। बिलन का प्रमाण पांच

घाटि एक लाख है। भूमि की मोटाई सोलह हजार योजन है । इति छट्ठी पृथ्वी ।६। आगे सातमी पृथ्वी महातम । तहां पाथड़ा एक है । विल पांच हैं। काय दोय हजार हाथ (पांच सै धनुष) है । आयु तैंतीस सागर है । भूमि की मोटाई आठ हजार योजन की है। इति सातमी पृथ्वी। ७। ऐसे अधो लोक का समान्य कथन कह्या।

आगे मध्य लोक एक राजू विस्तार सहित है। तहां असंख्याते द्वीप, असंख्याते समुद्र हैं। तहां असंख्यात द्वीप तो तिर्यक लोक है । तिनके मध्य में अढ़ाई द्वीप, पैतालीस लाख योजन क्षेत्र, मनुष्य लोक है। इससे आगे मनुष्य का गमन नाहीं । तहां प्रथम, लाख योजन विस्तार सहित जम्बूद्वीप है । तहां दोय चन्द्रमा दोय सूर्य हैं । और लवण समुद्र में चन्द्रमा चार हैं। सूर्य चार हैं। सो ए सागर दोय लाख योजन विस्तार धरै है। जम्बूद्वीप तैं दूना जानना। तहां आगे च्यारि लाख योजन विस्तार सहित लवणोदधितैं दूना बड़ा धातकीखंड, द्वीप है। तहां चन्द्रमा बारह और सूर्य बारह हैं। और धातकीखंडतैं दूना विस्तार सहित आठ लाख योजन विस्तार धरैं कालोदधि समुद्र है । तहां चन्द्रमा वियालीस हैं सूर्य वियालीस हैं। याकें आगे यातें दूना विस्तार] सहित पुष्कर द्वीप है । ताके अर्द्ध मध्य भाग में मानुषोत्तर पर्वत के बाहर कूं आधे पुष्कर द्वीप में चन्द्रमा बहत्तरि हैं और सूर्य बहत्तरि हैं। ऐसे ए सर्व मिल अढ़ाई द्वीप विषैं चन्द्रमा एक सौ बत्तीस और सूर्य एक सौ बत्तीस जानना। तहां एक चन्द्रमा का परिवार कहिए है। तहां चन्द्रमा एक, सूर्य एक, ग्रह अठ्यासी, नखत्र अट्ठाईस, छयासठि हजार नव सौ पिचहत्तरि कोड़ाकोड़ि तारे हैं । यह एक चन्द्रमा

ज्योतिषी देवन का इन्द्र, ताका सर्व परिवार जानना । सो जम्बूद्वीप विषैं चन्द्रमा दोय, सूर्य दोय, ग्रह एक सौ छिहत्तरि, नक्षत्र छप्पन, और तारे एक लाख तेतीस हजार नव सौ पचास कोड़ाकोड़ि हैं। सो जम्बूद्वीप के भाग भरत क्षेत्र समान करिए, तौ एक सौ नब्बे होंय। सो भरत तैं लगाय विदेह पर्यन्त क्षेत्र पर्वत दुगुने दुगने विस्तार वाले हैं। और विदेह क्षेत्र तैं उत्तर दिशा कौं क्षेत्र पर्वत हैं। सो ऐरावत क्षेत्र पर्यंत अर्ध अर्ध हैं ऐसे जम्बूद्वीप की शलाका भरत क्षेत्र समान एक सौ नब्बे कही ।१।२।४।८।१६।३२।६४।३२।१६।८।४।२।१ ए सर्व एक सौ नब्बे हैं। सो एक एक शलाका पै केते तारे आए सोही कहिए हैं। तहां भरतक्षेत्र पै सात सौ पांच कोड़ाकोड़ि तारे हैं। और हिमवत पर्वत पै चौदह सौ दश कोड़ाकोड़ी तारे हैं। और हैमवत क्षेत्र पै अट्ठाइससो वीस कोड़ाकोड़ी तारे हैं। और महा हिमवत पर्वत पै छप्पन सौ चालीस कोड़ाकोड़ी तारे हैं। और हरिक्षेत्र पै ग्यारह हजार दोय सौ अस्सी कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और निषध पर्वत पै बाईस हजार पांच सौ साठि कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और विदेह क्षेत्र पै पैंतालीस हजार एक सौ बीस कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और नील पर्वत पै बाईस हजार पांच सौ साठि कोड़ाकोड़ी तारे हैं। और रम्यक क्षेत्र में ग्यारह हजार दोय सौ अस्सी कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और रुक्मि पर्वत पै छप्पन सौ चालीस कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और हिरण्यवत क्षेत्र पै अट्ठाईस सौ बीस कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और शिखरी पर्वत पै चौदह सौ दश कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और ऐरावत क्षेत्र पै सात सौ पांच कोड़ा कोड़ी तारे हैं। ऐसे जम्बूद्वीप के एक सौ नब्बे भागन पै तारान का प्रमाण कह्या। ऐसे

अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी चन्द्रमा सूर्यन का प्रमाण परिवार सहित कह्या। आगे मध्यलोक मैं असंख्यात द्वीप हैं। तिन मैं आदि के सोलह द्वीपन के नाम कहिए है। जम्बूद्वीप, धातकी खंड, पुष्करद्वीप, वारुणी द्वीप, क्षी खर द्वीप, घृतवर द्वीप, क्षुद्रवर द्वीप, नंदीश्वर द्वीप, अरुणवर द्वीप, अरुणाभासवर द्वीप, कुंडलवरद्वीप, संखवरद्वीप, रुचिकवर द्वीप, भुजंगवर द्वीप, कुसंगवरद्वीप, क्रौंचवर द्वीप, ए आदि के सोलह द्वीप कहे। आगे असंख्याते द्वीपन के अंत के सोलह द्वीपन के नाम बताईए है। मशिलाद्वीप, हरताल द्वीप, सिंदूरवर द्वीप, श्यामवर द्वीप, अंजनवर द्वीप, हिंगुलवर द्वीप, रूपवर द्वीप, सुवर्णवर द्वीप, वज्रवर द्वीप, वैडूर्यवर द्वीप, नागवर द्वीप, भूतवर द्वीप, पत्तवर द्वीप, देववर द्वीप, अहमिंद्रवर द्वीप, और स्वयंभू रमण द्वीप, ए अंत के द्वीप कहै। और विशेष एता जो आदि दोय समुद्र द्वीपन का नाम तौ और और है। बाकी असंख्याते द्वीप समुद्र हैं, तिनका समुद्र का नाम सोही द्वीप का नाम जानना। ऐसे सामान्य मध्यलोक का कथन कह्या। सो एक राजू तौ मध्यलोक चौड़ा है। लाख योजन मेरु प्रमाण मध्यलोक की ऊँचाई है। तामैं ही ज्योतिष लोक जानना और ज्योतिषी देवन का प्रमाण अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी सामान्य कहिये है। तिनमैं ध्रुवतारान का प्रमाण कहिए है। तहां जम्बूद्वीप सम्बन्धी ध्रुवतारे छत्तीस हैं। ३६। और लवण समुद्र मैं एक सौ गुणतालीस (उतनालीस) ध्रुव तारे हैं (१३६)। और धातकीखंड विषैं एक हजार दश (१०१०) हैं। और कालोदधि समुद्र विषैं ध्रुवतारे इकतालीस हजार एक सौ बीस (४११२०) हैं। और आधे पुष्कर द्वीप मैं मनुष्य लोक की तरफ त्रेपन

हजार दोय सो तीस ध्रुवतारे हैं [५३२३०] ऐसे सर्व मिलि अढ़ाई द्वीप के विषैं पिंचाम्नवे हजार पांच सो पैंतीस [९५,५३५] ध्रुवतारे हैं । अब मध्यलोक सम्बन्धी अकृत्रिमजिन चैत्यालय जहां जहां हैं । सो ही बताइए है । तहां एक मेरु सम्बन्धी च्यारि वन हैं । एक एक बनमें च्यारि च्यारि जिन मंदिर हैं ! सो च्यारि बनके सोलह जिन मंदिर भये । और एक मेरु सम्बन्धी च्यारि गजदंत हैं । तिन पै च्यारि मंदिर हैं । षट कुलाचलन पै षट् । जम्बू शालमली दोय वृक्षन पै दोय मंदिर हैं । विजयार्ध चौंतीस पै चौंतीस जिन मंदिर हैं । वक्षार सोलह पै सोलह ही मंदिर हैं । ऐसे एक मेरु सम्बन्धी अठहत्तरि भए, सो पांचन के मिलाए तीन सौ नब्बे होय । ३९० । इष्वाकार च्यारिन पै च्यारि जिन मंदिर हैं । मानुषोत्तर की चारों दिशा सम्बन्धी च्यारि जिनग्रह हैं । और नंदीश्वर के च्यारि दिशा सम्बन्धी बावन जिन मन्दिर हैं । और ग्यारहमां कुंडल गिरी द्वीप के मध्य भाग कुंडल गिरि है ताकी चारों दिशा च्यारि जिन मन्दिर हैं । और तेरमां रुचक गिरीद्वीप ताके मध्यभाग में रुचिकगिर पर्वत है । ताके चारों दिशा च्यारि मन्दिर हैं । ऐसे सर्व मिलाईए तो च्यारिसौ अठावन भए, तिनकूं बारंबार नमस्कार होहु । ऐसे यहां सामान्य मध्यलोक का कथन पूर्ण किया ।

आगे उर्ध्व लोक रचना सामान्य कहिये । तहां स्वर्गलोक के दोय भेद हैं । एक कल्पवासी एक कल्पातीत । तहां कल्पवासीन के स्वर्ग सोलह हैं । तिनके नाम । सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ए सोलह हैं । तिनके आठ युगल जानना । तहां युगल-युगल प्रति उत्कृष्ट

आयु कर्म कहिए है। तहां प्रथम युगल में दोय सागर कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है। दूसरे युगल में उत्कृष्ट आयु सात सागर कुछ अधिक है। और तीसरे युगल में दश सागर कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है। चौथे युगल विषैं चौदह सागर कुछ अधिक आयु है। पांचमैं युगल में सोलह सागर कुछ अधिक आयु है। और छठे युगल में अठारह सागर कुछ अधिक आयु है। सातमैं युगल में बीस सागर आयु है। आठ में युगल में आयु बाईस सागर है। उपरि नव ग्रैवेयक हैं तहां प्रथम ग्रैवेयक में तेईस सागर आयु है। दूसरे ग्रैवेयक में चौबीस सागर है। तीजे ग्रैवेयक में पचीस सागर है। चौथे ग्रैवेयक में छब्बीस सागर है। पांचमी ग्रैवेयक में सत्ताइस सागर है। छठी ग्रैवेयकमें अठाईस सागर है। सातमी ग्रैगेयक में गुणतीस [उनतीस] सागर है। आठमी ग्रैवेयक में तीस सागर है। नवमी ग्रैवेयक में इकतीस सागर उत्कृष्ट आयु है। ऐसे अच्युत स्वर्गतें एक एक सागर अधिक ग्रैवेयक पर्यंत बधाय [बढ़ाय] लेनी। और नव अनुदिश में बत्तीस सागर है। पंच पंचोत्तर में तेतीस सागर आयु है। इति आयु।

आगे युगल प्रति कायका प्रमाण कहिए है। युगल प्रति शरीरन की ऊंचाई। तहां प्रथम युगल के देवन की काय हाथ सात है। दूजे युगल के देवन की काय हाथ षट् है। तीसरे युगल के देवन की काय हाथ पांच है। चौथे युगल के देवन की काय हाथ पांच है। पंचम युगल के देवन की काय हाथ च्यारि है। और छठे युगल के देवन की काय हाथ चार है। और सातमें युगल के देवन की काय हाथ साढ़े तीन है। और आठमें युगल के देवन की काय

हाथ तीन है। और नव ग्रैवेयक में प्रथम त्रिक के देवन की काय हाथ अढ़ाई है। और
दूसरे त्रिक देवन की काय हाथ दोय हैं। और तीसरे त्रिक देवन और नव अनुदिश की
काय हाथ डेढ़ हैं आगे पंच पंचोत्तरन के देवन की काय हाथ एक है। इति काय। आगे स्वर्गन
के पटल कहिए है। तहां प्रथम युगल के पटल इकतीस हैं। और दूजे युगल के पटल
सात हैं। और तीसरे युगल के पटल च्यारि हैं। और चौथे युगल के पटल दोय हैं। और
पंचम युगल का पटल एक है। और छठे युगल का पटल एक है। और सातमें युगल के
पटल तीन है। और आठमें युगल के पटल तीन हैं। और नव ग्रैवेयकन के पटल नव हैं।
और नव अनुत्तरन का पटल एक है। पंचपंचोत्तर का पटल एक है। ऐसे सर्व स्वर्गन के
पटल त्रेसठि हैं। इति पटल।

आगे स्वर्ग प्रति इन्द्र कहिए है। तहां प्रथम युगल के इन्द्र दोय हैं। दूसरे युगलविषैं
इन्द्र दोय हैं। तीसरे युगल में इन्द्र एक है। चौथे युगल में इन्द्र एक है। पंचमें युगलमें
एक इन्द्र है। छठे युगल में इन्द्र एक हैं। सातमें युगल में इन्द्र दोय हैं। आठवें युगल में
इन्द्र दोय हैं। और अहमिन्द्रन में इन्द्र नाहीं। वह सर्व ही आप आप इन्द्र सम हैं। इति इन्द्र
संख्या। आगे स्वर्ग प्रति विमान की संख्या कहिए है। तहां प्रथम स्वर्ग के विमान बत्तीस
लाख (३२,००,०००) हैं। और दूसरे स्वर्ग के अठाईस लाख (२८,००,०००) विमान हैं।
ऐसे सर्व मिलि प्रथम युगल के साठि लाख [६०,००,०००] विमान हैं। और तीसरे
सनत्कुमार स्वर्ग के बारह लाख (१२,००,०००) विमान हैं और चौथे महेन्द्र स्वर्ग के

आठ लाख [८,००,०००] विमान हैं ए सर्व मिलि दूसरे युगलके बीस लाख [२०,००,०००] विमान हैं। और ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर के मिल च्यारि लाख [४,००,०००] विमान हैं। और चौथे युगल के पचास हजार [५०,०००] विमान हैं। और पंचम युगल के चालीस हजार (४०,०००) विमान हैं। और छठे युगल के षट् हजार [६,०००] विमान हैं और सातमें युगल के अरु आठमें युगल के मिलिकैं सात सौ [७००] विमान हैं और नव ग्रैवेयक के तीन त्रिक हैं। तहां प्रथम त्रिक के एक सौ ग्यारह [१११] विमान हैं। और दूसरे त्रिक के एक सौ सात [१०७] विमान हैं और तीसरे त्रिक के इकानवै [९१] विमान हैं। ऐसे सर्व मिलि नवग्रैवेयक के तीन सौ नव [३०९] विमान हैं। नव अनुत्तरों के नव [९] विमान हैं। और पंच पंचोत्तरों के पांच विमान हैं। ऐसे सर्व कल्पातीतनके तीन सौ तेईस [३२३] विमान हैं। और उर्ध्वलोक के स्वर्गवासी देवन के विमान मिलाईए तो चौरासी लाख सत्यानवै हजार तेईस [८४,९७,०२३] विमान हैं। सो इन सर्व विमानन में एक एक जिन मंदिर है तिनकौं हमारा बारंबार नमस्कार होहु। इति बिमान संख्या। आगे धरती तैं स्वर्ग की उंचाई कहिए। तहां पृथ्वी तैं लगाय लाख योजन ऊंचा तो प्रथम युगल का प्रथम इन्द्रक है और पृथ्वी तैं डेढ़ राजू ऊंचा प्रथम युगल के इकतीस मा पटल का इन्द्रक है। और पृथ्वी तैं तीन राजू अरु अन्त पटल के अन्त पटल तैं डेढ़ राजू ऊँचा दूसरे युगल का अमल है। और दूसरे युगल ते आधा राजू उर्ध्व कौं तीसरे युगल का अमल है। तीसरे युगल तैं आधा राजू तांई ऊपर

चौथे युगल का अमल हैं। चौथे युगल तैं आधा राजू ऊपर तांई पांचमें युगल का अमल है। पांचमें युगल तैं आधाराजू ऊँचे तांईं छठा युगल का अमल है। छठे युगल तैं सातमां युगल आधा राजू ऊंचा है। सातमें युगल तैं आठमां युगल आधा राजू ऊंचा हैं। ऐसे षट् राजू में तो सोलह स्वर्ग के आठ युगल हैं। और ऊपरि राजूके आदि नव ग्रैवेयक हैं राजू के मध्य भाग विषैं नव अनुत्तर है। राजू के अंत सर्वार्थसिद्धि है। ताके ऊपर संख्यात योजन सिद्धसिला है। ताके ऊपरि तनवातवलय मैं सिद्धचक्र चैतन्य अमूर्तीक सिद्ध भगवान् बिराजै हैं। तिनको बारंबार नमस्कार होहु। और जिस क्षेत्र में सिद्धदेव विराजैं सो पैंतालीस लाख योजन सिद्ध क्षेत्र है। तिस उत्कृष्ट तीर्थक्षेत्र कूं नमस्कार होहु। इति स्वर्गन की ऊंचाई।

आगे बिमानन के वर्ण कहिए है। आगे प्रथम युगल के विमानन के पंच ही वर्ण हैं। दूसरे युगल के बिमान कृष्ण विना च्यारि वर्ण के हैं। तीसरे युगल के बिमान नील, कृष्ण बिना तीन वर्ण के हैं। चौथे युगल के बिमान नील कृष्ण बिना तीन वर्णके है। पंचम युगल के बिमान पीत, स्वेत दोय वर्णके है। छठे युगल के बिमान पीत स्वेत वर्णके हैं। और सात में युगल, आठमें युगल तथा अहमिन्द्रन के बिमान ए सर्व एक शुक्ल वर्णके ही हैं। इति वर्ण।

आगे स्वर्गन के आधार कहिए हैं। तहाँ प्रथम युगल तो जलके आधार है। दूसरा युगल पवन के आधार है। तीसरा युगल पवनके आधार हैं। चौथा युगल, पांचमां, छठा ए तीन

युगल जल पवन के आधार हैं। और सातमां, आठवां युगल तथा अहमिन्द्रन के विमान सर्व आकाश के आधार हैं। इति आधार। आगे स्वर्ग प्रति देवन के काम सेवन कैसे है सो बतावे हैं। प्रथम युगल में देवनकों कामसेवन मनुष्य पशुवत् है। दूसरे युगल में तनतैं तन स्पर्श कर तृप्ती होय है। तीसरे युगल में देव देवीनकों परस्पर राग दृष्टि करि रूप देखि ही भोगन की तृप्ती होय है। चौथे युगल में भी रूप देखि तृप्ती होय है। पंचमें छठे युगलमें देव देवीन का परस्पर राग का भरया शब्द सुनि भोगवान् तृप्ती होय है। और सातमें आठमें युगलन के देव देवीन के मनमें भोग अभिलाषा भई अरु तृप्ती होय है। अरु ऊपरि ले अहमिन्द्रनकों काम सेवन की इच्छा नाहीं। इति काम सेवन। आगे देवन के अवधि क्षेत्र कहैं। तहां प्रथम युगल के देवन को अवधि का विषय प्रथम नरक पर्यंत जानैं। इतनी ही विक्रिया होय, अधिक नाहीं। और दूसरे नारक पर्यंत दूसरे युगल के देवन की अवधि व विक्रिया है। और तीसरे युगल के देवन की अवधि, विक्रिया तीसरे नारक पर्यंत हैं। चौथे युगल के देवन की अवधि, तीसरे नरक पर्यंत शुभाशुभ जाननें। इतनी ही विक्रिया होय। पंचमें छठे युगल के देवन की अवधि, विक्रिया चौथे नरक पर्यंत जानना। और सातमें आठमें युगल के देवन की अवधि, विक्रिया पंचम नरक तांई होय। और नव ग्रैवेयक के देवन की अवधि, विक्रिया छठे नरक पर्यंत होय है। और नव अनुदिश पञ्च पञ्चोत्तरन के देवन की अवधि, विक्रिया सातमें नरक पर्यंत होय है! विशेष एता, ऊपरले देवन की विक्रिया विवित्तपने तौ तीसरे नरक पर्यन्त ही है। आगे नाहीं। अरु शक्ति रूप सातमें तांई कही है।

और अवधिज्ञान अपने अपने विषय योग्य क्षेत्र के शुभाशुभभाव सर्व जानैं हैं। इति अवधि, विक्रिया।

आगे देव चए पीछें केतेक काल पीछे देव तहां उपजै, ताका स्वर्ग पर्यन्त अन्तर कहिए है। तहां प्रथम युगल विषै अन्तर उत्कृष्ट सात दिन का है। पीछे कोऊ उपजै ही उपजै। दूसरे युगल में पन्द्रह दिन का अन्तर है। तीसरे युगल में अन्तर एक मास का है। चौथे युगल में अन्तर एक मास का है। पञ्चमें छठे युगलमें अन्तर उत्कृष्ट दोय मास का है। और सातवें आठवें युगल में च्यारि मास का है। ऊपर अहमिन्द्रन में उत्कृष्ट अन्तर षट् मास का है। ऐसे उत्कृष्टअन्तर षट् मास है। पीछे अपने अन्तर उपरान्त कोई पुण्याधिकारी जीव उपजै ही उपजै। स्थान खाली रहै तो इतना रहै। मध्य के अनेक भेद हैं। इति उत्पत्ति अन्तर। आगे देवन के मनसा भोजन केतेक काल में होय सो कहिए है। तहां देवन की जितने सागर की आयु होय, तेते हजार वर्ष गये भोजनपै मन होय है। पीछे तृप्ती होय है। और जहां जितने सागर की आयु होय, तेते पक्ष गये स्वासोच्छ्वास होय है। इति भोजन श्वासोच्छ्वास। आगे स्वर्ग प्रति देवन कैं मुकुट के चिन्ह कहिए हैं। सूर, हिरण, महिष, मछली, कछुवा, मैंडक, घोटक, (घोड़ा) हस्ती, चन्द्रमा, सूर्य, खड्गी, बकरी, बैल, कल्पवृक्ष इत्यादिक चिन्ह देवन के मुकुटनमें होय हैं। इति मुकुट चिन्ह। आगे देवन के विमानन की मोटाई स्वर्ग प्रति कहिए है। तहां प्रथम युगल के विमानन की मोटाई ग्यारह सौ इक्कीस योजन (११२१) जानना। दूसरे युगल के विमानन की मोटाई एक हजार बाईस-

योजन (१०२२) जानना। और तीसरे युगल के विमानन की मोटाई नवसौ तेईस योजन [६२३] जानना। और चौथे युगलके विमानन की मोटाई आठ सो अट्ठाईस योजन [८२८] जानना। और पंचमें युगल के विमान की मोटाई सातसौ पचीस योजन [७२५] जानना। छठे युगल के विमानन की मोटाई छसै छव्वीस योजन [६२६] जानना। और सातमें युगल के विमानन की मोटाई पाचसौ सत्ताईस योजन [५२७] जानना। और आठमें युगल के विमानन की मोटाई च्यारिसै अठाईस योजन [४२८] जानना। और नवग्रैवेयक के विमानन की मोटाई तीनसौ गुणतीस [३२६] योजन जानना। और नव अनुत्तर विमानन की मोटाई दोयसौ तीस योजन [२३०] जानना। और पञ्च अनुत्तरन के विमानन की मोटाई एकसौ इकतीस [१३१] योजन जानना। ऐसे स्वर्ग प्रति विमानन की मोटाई कही। इति विमानन की मोटाई। आगे स्वर्ग प्रति देवन के लेश्या कहिए है। तहां प्रथम युगल में लेश्या पीत है। दूसरे युगल में पीत पद्म दोय लेश्या हैं। तीसरे युगल में पद्मलेश्या है। चौथे युगलमें लेश्या पद्म है। पञ्चम युगल में लेश्या पद्म है। छठे युगल में पद्म शुक्लदोय लेश्या हैं हैं। सातमें आठमें युगल तथा अहमिन्द्रनमें लेश्या एक शुक्ल है। इति लेश्या। आगे स्वर्ग प्रति देवांगना की उत्कृष्ट आयु कहिए है। तहां सौधर्म प्रथम स्वर्ग के देवीन की आयु पांच पल्य हैं। ऐशान स्वर्ग के देवन की देवीन की आयु सात पल्य की है। आगे तीसरे स्वर्गतें लगाय बारहवें पर्यंत दोय-पल्य वधती [बढ़ती] जानना। ऐसे पल्य ।५।७।६।११।१३।१५।१७। १६।२१।२३।२५।२७। अनुक्रम तें जानना। और तेरहवें स्वर्ग की देवीन की आयु चौतीस

पल्य की है। और चौदहवें स्वर्ग की देवीन की आयु इकतालीसपल्य की है। और पन्द्रहवें स्वर्ग की देवीन को आयु अड़तालीस पल्य की है। और सोलहवें स्वर्ग को देवीन की आयु पचपन पल्य की है। ऐसे स्वर्ग प्रति देवीन की आयु कही। इति देवीन की आयु। ऐसे सामान्य देव लोक का कथन कह्या। ऐसे अधोलोक, मध्य लोक, उर्ध्व लोक का व्याख्यान जामें होय सो त्रिलोकविन्दु नामा चौदहमां पूर्व जानना। ऐसे ग्यारह अंग चौदह पूर्वज्ञान के धारी होय सो उपाध्याय मुनि हैं। ये गुरु नगन वीतराग पूजवे योग्य हैं। और जिनकी तप करने की बड़ी शक्ति होय, नाना प्रकार तप करते शरीर मन वचन शिथिल नहीं होंय सो तपसी जाति के मुनि कहिए। ऐसे दुर्धर तपनकौं तपसी करैं तिनका संक्षेप कथन कहिए है। प्रथम जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति नाम तप कहिए है। यातपके उपवास तिरेसठि, तिनकी विधि सोलह कारण भावना का पड़िवा सोलह, और पंच कल्याणक की पाचें पांच, प्रातिहार्य की आठैं आठ, चौंतीस अतिशय की दशैं बीस, और चौदसि चौदह, ऐसे एक एक तिथि का एक एक उपवास करै ताके सर्व मिल उपवास त्रेसठि करैं। सो यतीश्वर निर्ममत्व इस तपकूं करैं हैं। याका नाम जिनगुणसम्पत्ति तप है। आगे श्रुतिज्ञानतप कहिए है। याके उपवास एकसौ अठावन। तिनकी विधी, मतिज्ञान के उपवास अठाईस, और ग्यारह अंग के उपवास ग्यारा। उपक्रम के उपवास दोय। अरु सूत्र के पद अठ्यासी लाख ताके उपवास अठ्यासी। प्रथमानुयोग का उपवास एक। और चौदह पूर्व के उपवास चोदह। और पांच चूलिका के उपवास पांच। अवधिज्ञान के उपवास षट्। मनपर्यय के उपवास दोय। केवल

ज्ञान का उपवास एक। ऐसे एक सौ अठावन उपवास, जो यती तनतें निस्प्रह होय सो इस तपकों करे है। ऐसा श्रुतिज्ञान तप जानना। आगे कर्मक्षय तप कहिये है। अष्टकर्म नाश करने के निमित्त तपसी जाति के मुनि कर्मक्षय तप करें। याके उपवास एकसौ अड़तालीस हैं। तिनकी विधी चौथि के उपवास सात। सातें के उपवास तीन। नवमी के उपवास छत्तीस। दशमी का उपवास एक। वारसि के उपवास सोलह। चौदश के उपवास पच्यासी। ऐसे एक सौ अड़तालीस उपवास सहित तप करे। आगे। सिंह निःक्रीड़ित तप कहिये है यह तप एकसौ सतहत्तरि दिनका है। तिनमें उपवास तौ एक सौ पैंतालीस। अरु पारणा वत्तीस तिनकी विधि कहिए है। उपवास एक, पारणा एक उपवास दोय, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास च्यारि पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास आठ, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास नव, पारणा एक। उपवास आठ, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास आठ, पारणा एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक, उपवास एक, पारणा एक।

ऐसे एकसौ पैंतालीस उपवास और बत्तीस पारणा करि व्रत करैं हैं ।४। आगे सर्वतौभद्रत तप
कहिए है—याके उपवास पचहत्तरि, पारणा पच्चीस। सर्व एक सौ दिन का तप है। ताकी विधि—
उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि,
पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा येक। उपवास दोय, पारणा एक।
उपवास एक, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास
तीन, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि,
पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा
एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक।
उपवास पांच, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास
एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। ऐसे यह व्रत गुरुनाथ निशंक होय करैं हैं।
आगे महा सर्वतोभद्र तप की विधी—उपवास एक, पारणा एक, उपवास दोय, पारणा एक।
उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास
षट्, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय,
पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच पारणा
एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक,
उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक।
उपवास पांच, पारणा एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास एक,

पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पाँच, पारणा एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। या भांति उपवास एकसौ छियानवैं (१९६) हैं और पारणा गुणचास (४९) हैं। ए सर्व मिलि, दोयसौ पैंतालीस दिन का तप है। या तपकौं तपसी जाति के गुरु करैं। इति महासर्वतोभद्र तप।९। आगे लघु सिंह निष्क्रीड़ित तप कहिये है। इस लघु सिंह निष्क्रीड़ित तपकौं यती करैं। ताकी विधी कहिए है—उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पाँच, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक।

उपवास तीन, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। ऐसे यह लघु सिंह निष्क्रीड़ित तप के उपवास साठि (६०) और पारणा बीस (२०), सर्व मिलि अस्सी दिन का तप है। ताहि तपसी गुरु करैं। इति लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप।७। आगे मुक्तावली तप कहिये है—उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। ऐसे या तप के उपवास पच्चीस (२५) और पारणा नव (९), सर्व दिन चौंतीस का तप है। याकौं मुक्तावली तप कहिये। याकौं करैं सो यती, तपसी गुरु कहिये। इति मुक्तावली तप। ८। आगे रत्नावली तप कहिये है। रत्नावली तप की विधि—उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। ऐसे या रत्नावली तप के उपवास तीस (३०) और पारणा दस (१०), सर्व चालीस दिन का तप है। ताकौं तपसी गुरु करैं हैं। इति रत्नावली तप। ९। आगे कनकावली तप कहिये है। कनकावली तप की विधि—शुक्लपक्ष की पड़िवा, पांचैं और दशैं, ए तीनतौ शुक्लपक्ष की और कृष्णपक्ष की दोज, छठि और बारसि, ऐसे एक महीना के उपवास षट् होंय। एक वर्षके बहत्तरि उपवास करै। ऐसा कनकावली तपकौं, तपसी करै हैं। इति कनकावली तप।१०।

आगे आचार वर्धन तप कहिये है। आचार वर्धन तपकी विधि–उपवास एक, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास आठ, पारणा एक। उपवास नव, पारणा एक। उपवास दस, पारणा एक। उपवास नव, पारणा एक। उपवास आठ, पारणा एक। उपवास सात, पारणा एक। उपवास षट्, पारणा एक। उपवास पांच, पारणा एक। उपवास च्यारि, पारणा एक। उपवास तीन, पारणा एक। उपवास दोय, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। ऐसे या व्रत के उपवास सौ (१००) और पारणा गुणीस (१६), सर्वमिलि एकसौ उन्नीस दिन का तप है। ताहि वीतराग तपसी करैं हैं। इति आचार वर्धन तप।११। आगे सुदर्शन तप कहिये है। या तप की विधि–तहां उपशम सम्यक्, क्षयोपशम सम्यक् और क्षायक सम्यक्, ये तीन सम्यक् हैं। तिन एक-एक सम्यक् के शंका, कांक्षादि आठ-आठ दोष हैं। सो तीनों सम्यक् के चौबीस मल दोष भये। तिन चौबीस दोष के चौबीस उपवास एकांतर करैं। या तप के सर्व अड़तालीस दिन भये। १२। इत्यादिक तप तपसी गुरु करैं। इनकौं आदि लेय अनेक दुर्द्धर तप तीन काल के करैं। और परणति महाधर्म शुक्लध्यानमय राखि, समता की वृद्धि करैं। सो तपसी जाति के मुनि हैं। ३। और जे यति आचार्य के पास शास्त्र अभ्यास करैं, तिनकूं शिष्य जाति के मुनि कहिये। जैसे लौकिक में जेते जाका पिता जीवै, ताकौ कुमार कहैं हैं। तैसे जेते काल जिनके आचार्य गुरु विराजे होंय, उन गुरुन पै शास्त्राभ्यास करैं, सो शिष्य जाति के मुनि कहिये। ४। और अनेक रोगन सहित शरीर के धारी

मुनीश्वर, बीतरागी, तन भोगनतैं उदास, आत्म रसरातें, शान्त चित्त के धारी, सो ग्लानि जाति के मुनि हैं। ५। और बड़े—बड़े यतीन का संघ, सो गण जाति के मुनि हैं। सो बड़े—बड़े यतीन के तीन भेद हैं। वय करि बड़े, तथा गुण—ज्ञानादिक करिके बड़े, तथा दीक्षा करि बड़े, इत्यादिक बड़े यतीन का समूह, सो गण जाति के मुनि हैं। ६। और श्रावक, श्राविका, मुनि, अर्जिका, इन चारौं प्रकार के संघ मैं रहैं, सो संघ जाति के मुनीश्वर हैं। ७। और जे मुनि शिष्यन की आम्नाय जानैं, दीक्षा देने की विधि जानैं, इत्यादिक मुनि-धर्म की क्रिया में प्रवीण होंय, सो कुल जाति के मुनीश्वर हैं। ८। और जे वहुत काल के दीक्षित होंय, सो साधु जाति के मुनीश्वर हैं। ६। और जे वाह्य परिग्रह का त्याग करि नगन होय, गुरु चरणारविंदन के पास मुनिपद धरवे कूं सन्मुख भया, मुनि होयवे की क्रिया नेग—चार करावता होय, सो मनोग्य जाति के मुनि हैं। १०। ऐसे दश जाति के मुनिपद पूज्य हैं। आगे ऐसे गुरु के विचारने योग्य समाचार दश हैं। महामुनि इनका विचार कैसे करैं, कहां करैं, सो कहिए हैं। सो प्रथम ही नाम "आचारसार" ग्रन्थ अनुसार कहिये हैं। इच्छाकार। १। मिथ्याकार।२। तथा—कार। २। इच्छाव्रत। ४। आशीष। ५। निषधिका। ६। अप्रच्छिन्न। ७। प्रति प्रच्छिन्न। ८। आन मंत्र। ६। संश्रय। १०। अब इनका सामान्य अर्थ कहिये है। पुस्तक आतापन योगादि अनेक शुभ क्रिया अपने हित निमित्त सीखी जाय, विनय सहित आचार्य पै याचै, सो इच्छाकार है। बिना उपदेश, आप अपनी इच्छा तैं, अपने हितकारी, परभव

सुखकारी, पुण्यकारी, बस्तु विचारि करि, गुरुन पै याचना करै, सो इच्छाकार समाचार है। १। और जे यती महाधर्म मूरती, उदास वृत्ति का धारक, च्यारि गति के जन्म-मरण करि खाया है भय जानैं, सो मुनि, ऐसा विचारैं, जो मैंने अपनी अज्ञान अवस्था में अनेक पाप किए, तिनका फल अब समझा। सो पाप का फल अनिष्ट जानि, महा भयभीत होय, या कहैं, जो मेरे एकीएक अगले पाप मिथ्या होहु। अब मैं पाप नहीं करूँगा। ऐसे पापतैं भय खाय, निःशल्य होय, सो मिथ्याकार समाचार कहिये। २। और जहां तत्त्व पदार्थनकौं श्रद्धै, सो सत्य जिन आज्ञा प्रमाण श्रद्धा है। तथा जिन अंग—पूर्व शास्त्रन का गुरु मुखतैं श्रवण करना, सो विनय सहित करना। तथा आप सभाजनकूं हित का करनहारा उपदेशक है, सो जिन आज्ञा प्रमाण कहै। अरु कदाचित अपनी इच्छाकरि (मनमाना) उपदेश करै, तौ महान् पापी होय। तातैं जीवनकौं दयापूर्वक कहै। जिन आज्ञा सहित सत्य कहै। अपनी बुद्धितैं बनाय नहीं कहै। तथा आप जिन आज्ञा प्रमाण श्रद्धान राखै। और कौं धर्म-राह बतावै, सो जिन आज्ञा प्रमाण कहै। सो तथाकार समाचार कहिये। ३। और आगे किये, जो गुरुके निकटि आतापन योग, तथा उपवासादि तप, धर्मोपकरण, पीछी, कमंडल, पुस्तकादिक तथा महाव्रतादि जो मोक्षमार्ग की साधक क्रिया, तिनमें स्वेच्छारूप नाहीं प्रवर्तैं, सारी मुनिधर्म की साधनहारी जो प्रवृत्ति, सो तामैं प्रमाद छोड़ि साहसी होय, पाप तैं भय खाय, व्रतका लोभी धर्मात्माशिष्य, गुरु की आज्ञा प्रमाण प्रवर्तैं, सो इच्छाव्रत समाचार कहिये। ४। और शिष्य गुरु के पासिं तीर्थादि जानैं कौं सीख (शिक्षा) मांगै, तब ऐसे

विनय सौं कहै। भो प्रभो! अब तांई आपके पद–कमल के शरण रह्या, संयम निधि पाई। अब मेरा मन सिद्ध-क्षेत्रादि यात्राकौं है। सो मोपै दया भाव करि आज्ञा देऊ। ऐसे भक्ति सहित विनय पूर्वक बिनती करि, मौनि करि, गुरु के निकट हस्त जोड़ि खड़ा होय रहै। यथायोग्य अन्तर तें तिष्ठै। तब ऐसे वचन आचार्य शिष्य के सुनि, दयाभाव शिष्य पै धारि, शिष्य के चारित्र की बधवारी (बढ़वारी) की बांच्छा तैं, आचार्य मंगलीक बचन कहैं। भो बत्स, हे आर्य! तेरे व्यंतरादि उपसर्ग तैं रहित, संयम की प्रतिपालना होऊ। ऐसे आचार्य, शिष्यकौं मोक्ष रूप लक्ष्मी की प्राप्ति बांच्छते, आशिष देय। सो आशीष नामा समाचार है।५। और जे मुनीश्वर जहां जाय तिष्ठैं। ता जगह के ऋषि, देव मनुष्यादि होंय तिनकौं यतीश्वर ऐसा बचन कहैं। जो हम इहां तिहारी आज्ञा सहित तिष्ठै हैं। ऐसा कहिकैं बिश्राम करैं। सो निषधिका समाचार है। सो निषधिका तौ मुनि जा स्थान पै गुफा, मसान, वृक्ष की कोटर, मंडप, बसतिका इत्यादिक स्थानकन के देव–मनुष्यादिक की आज्ञा सहित तिष्ठैं, सो निषधि–का समाचार जानना।६। और ऊपर कहा जो आशीष समाचार कहां करैं, सो कहिये है— मुनीश्वर जहां तिष्ठै थे तां स्थानक तजि अन्य स्थान जांय, तब जातैं यतीश्वर तहां के रक्षक देवादिक कूं ऐसे हित–मित बचन कहैं। जो हम तिहारे स्थान पै रहे, सो अब हम चलैं हैं। ऐसे प्रियवचन कहि गमन करैं, सो आशीष कहिये। और अप्रच्छनी समाचार सातवें। ताका अर्थ मूलग्रन्थ आचारसार जी तैं जानना।७। और यतीकौं अपना लोंच करना होय, तथा नवीन ग्रन्थ जोड़वे विषैं प्रारम्भ करना होय। तथा कोई अपूर्वग्रन्थ वाचना होय तथा नगर

में भोजनकौं जाना होय, तथा इन आदि कोइक महान् कार्य करना होय, तौ आचार्य पै आय विनय सहित; हस्त जोड़, मस्तक नमाय, गुरुपै आज्ञा याचैं। सो जैसी गुरुकी आज्ञा होय, ताही प्रमाण करैं। सो प्रति-प्रच्छिन्न समाचार कहिये। ८। और जब काहू मुनिकूं पुस्तक चाहै, सो अपने गुरु पास होय तौ गुरु की आज्ञा सहित लेय तथा अपने गुरु पै नाहीं होय और संघ में आचार्य के पास होय और शिष्य को ल्यावना होय, तो गुरु की आज्ञातैं ल्यावै। अपनी इच्छातैं नहीं करै, सौं आनमंत्र समाचार कहिये हैं। ९। आगे संश्रय। सो संश्रय के पांच भेद हैं। सो कहिये—विनय संश्रय, क्षेत्र संश्रय, मार्ग संश्रय, सूत्र संश्रय, और सुख–दुख संश्रय। ऐसे ये पंच भेद हैं। अब इनका सामान्य अर्थ कहिये हैं। तहां कोई मुनीश्वर अन्य देशान्तर तैं आवे, तौ जिस संघ में आवै तिस संघ के यती, आचार्य, महा हर्ष सहित प्रमाद रहित होय, आये मुनिके सत्कार कौं, ताजीम (आदर) देय, ताके अर्थ सात पैंड़ सन्मुख जाय, यथायोग्य नमस्कार करैं। पीछे आये मुनि के मार्ग-खेद निवारण कूं यथायोग्य तिष्ठवै कौं स्थान देवैं। पीछे मुनि के चारित्र की कुशल पूंछै। या कहैं हे प्रभो, तिहारे रतनत्रय कुशल हैं? याका भावार्थ यह, जो तुम्हारे मोक्षमार्ग निरतिचार रह्या। ऐसे आये मुनिकौं महा विनय सहित वचन कहि, अपना धर्मानुराग प्रगट करते, मन वचन कायकी क्रिया करि तिनकूं साता उपजावैं, सो विनय संश्रय कहिये। इति विनय सश्रय।१। आगे क्षेत्रसंश्रय। तहां जिस क्षेत्रका राजा पापी होय, अन्याई होय, अनाचारी होय, तिस क्षेत्र में यती नहीं रहैं। तथा जिस देश का कोऊ रक्षक नहीं होय, राजा रहित क्षेत्र होय, तौ उस

देश मैं मुनि नहीं रहैं। और जिस देश-नगर मैं जीवहिंसा विशेष होय, तहां यती नहीं रहैं।
तथा जिस देश मैं पापी-निर्दयी जीवन की वधवारी (बढ़वारी) की प्रवृत्ति होय । जहां
धर्म रहित-विपरीत जीवनका अधिकार होय । ऐसे क्षेत्र मैं यतीश्वर नहीं रहैं । तथा जो
देश, दीक्षा योग्य नहीं होय । तथा जहां के जीव महा कषाई होंय, भोग-रत होंय, अनाचारी-
शुभ आचार रहित होंय, दीक्षा योग्य नहीं होय, तिस क्षेत्र विषैं जगत गुरु नहीं रहैं।
और जिस देश मैं अकाल पड़्या होय, अन्न की वेदना करि अनेक जीव दुखिया होय
रहे होंय, इत्यादिक उपद्रव सहित क्षेत्र मैं मुनि का धर्म सधै नाहीं । तातैं दयाभण्डार,
संयम का लोभी, ऐसे क्षेत्रन मैं नहीं रहै । अरु कदाचित रहै, तौ संयम नष्ट होय । तातैं
ऐसे कहे कुक्षेत्रन मैं, योगीश्वर नहीं रहैं ॥ और कैसे क्षेत्रन मैं रहैं, सो कहिए हैं : जहां
कोऊ जाति का उपद्रव नहीं होय, जिस क्षेत्र का राजा धर्मी होय, देश की प्रजा धर्मात्मा
होय, दयावान होय, दीक्षा योग्य जीव होंय, संयमी जीवन की प्रवृत्ति होय, शुभाचारी होंय,
इत्यादिक शुभक्षेत्र का विचार करि, अपने संयम की रक्षा योग्य क्षेत्र मैं रहैं । सो क्षेत्र
संश्रय कहिए। इति क्षेत्र संश्रय ॥२॥ आगे मार्ग संश्रय कहिए है—जहां कोऊ मुनि
देशान्तर तीर्थ विहार करतैं, बहुत दिन तैं मिले होंय । तथा अपूर्व मिलाप होय। तब
यतीश्वर परस्पर-आपस मैं सुख-दुख परीषहादिक मैं चारित्र की कुशल पूछैं। सो मार्ग संश्रय
है। इति मार्ग संश्रय ॥ ३ ॥ आगे सुख-दुख संश्रय—जहां कोई महामुनिकौं देव, मनुष्य,
पशुकृत महाघोर उपसर्ग हुआ, ताकरि पीड़ित मुनिकौं देखि, तिनकौं साता के निमित्त औषधि,

आहार, रहने को स्थानादिक देय, साता उपजावैं । साता भये पै ऐसे वचन कहैं, विनय सहित, धर्म-अमृत की धारा बढ़ावते वचन बोले । जो हे यतीनाथ, हम दुख-सुख में तिहारे हैं । इत्यादिक हित-मित वचन का कहना, सो सुख-दुख संश्रय है । इति सुख-दुख संश्रय ॥ ४ ॥ आगे सूत्र संश्रय कहिए है । तहां शिष्य ने कोऊ आचार्य के पास अनेक शास्त्रन का अभ्यास किया । श्रुत समुद्र का पारगामी होय, बहुत काल पर्यन्त पठन-पाठन किया । अनेक शास्त्र गुरु के मुखतैं सुनैं, तिनका रहस्य पाय सुखी भया । पीछे कोऊ और आचार्यन के ज्ञान की महिमा सुनि, तिनके शास्त्र सुनिनै की इच्छा होय, तथा अन्यमत के अनेक, षट् मतन सम्बन्धी शास्त्र का रहस्य जानने की इच्छा होय । तथा कोई तीर्थ विहार करवे की इच्छा होय, इत्यादिक अपने उर का रहस्य, गुरु के पास कहै । पीछे आचार्य की आज्ञा सहित एक मुनि साथ, तथा दोय मुनि साथ, तथा अनेक मुनि संघ सहित विहार करे, सो सूत्र संश्रय है । इति सूत्र संश्रय ॥ ५ ॥ ऐसे दश समाचार मुनीश्वर के विचारवे योग्य हैं, सो कहे । ऐसे कहे जो गुरु दश भेद, सो यह गुरु जब भगवान के मंदिर विषैं दर्शनकों प्रवेश करैं, सो कैसे जांय ? सो कहिए है । उक्तंच "आचारसार जी ।"

श्लोक—सर्वव्यासंगनिर्मुक्तः, संशुद्धकरणत्रय ।
धौतहस्तपदद्वंदः, परमानंदमंदिरम् ॥ १ ॥
चैत्यचैत्यालयादीनां, स्तवनादौ कृतोद्यमः ।
भवेदनन्तसंसारसंतानोच्छित्तये यतिः ॥ २ ॥

अर्थ—सर्व संग रहित होय, मन-वचन-काय शुद्ध करि, दोऊ हाथ पांव धोय, महा हर्ष सहित चैत्यालय विषैं जाय, प्रतिमाजी की स्तुति करै, सो यती अनंतभव संसार का छेदन करै है। भावार्थ—जब महामुनि श्रीभगवान् के दर्शनकों चैत्यालय में प्रवेश करैं। तब कमण्डल, पीछी, पुस्तकादि परिग्रह होय सो तिनकौं बाह्य स्थान पै, एकान्त, उच्च स्थान पै धरिकैं आप निःपरिग्रह होय मन, वचन, काय शुद्ध करि, अपने दोय हस्तपांव प्राशुक जलतैं धोय कैं, हर्ष सहित परमानन्दित होय, ईर्या समिति करि जिन मंदिर में प्रवेश करैं। पीछे भगवान् की स्तुति करवे का उद्यम करैं। विनयतैं अनेक स्तवन करैं। कैसी है भगवान् की स्तुति, अनंत संसार भवन की मृत्यु-उत्पत्ति की पंक्ती, ताकी छेदनहारी है। कैसी स्तुति करैं? सो कहिये है—

श्लोक—तथार्हदादयश्चास्तरागदोष प्रवृत्तयः।
भक्तिः भक्त्यनुसारेण, स्वर्गमोक्षफलप्रदा ॥ ३ ॥

अर्थ—आप भक्ति रस करि भींजते, मुनीश्वर, भगवान् की स्तुति करैं। भो भगवन्, तुम अष्ट कर्म रहित बीतरागी हो, आपके रागद्वेष भाव नाश हो गये हैं। सो हे भगवन्! तुम तो भक्तन कौं स्वर्ग-मोक्ष नहीं करो हो। परन्तु हे भगवन्, हमसे भक्तजन हैं, तिनके भावन की प्रवृत्ति आपके चरण-कमलन में भक्ति रूप भई। सो वह भाव भक्ति ही भक्तन कूं स्वर्ग-मोक्ष की दाता हैं। आप तो वीतराग हो ही, परन्तु भक्ति की महिमा अपार है। तातैं इह बात निश्चय भई, जो आप बीतरागी ही हो।

श्लोक—घोरसंसारगम्भीरे, वारिराशौनिमज्जताम् ।
दत्तहस्तावलम्बस्य, जिनस्येक्षणार्थमागमेन् ॥४॥

अर्थ—हे भगवन्, यह संसार-सागर दुख-जल करि भऱ्या । तिस विषैं डूबते हमसे संसारी जीव, तिनकौं हस्तावलम्बन करि आप काढ़ो हो । सो तिहारे देखवे कौं भक्तजन आवैं हैं । भावार्थ—जिन देव की स्तुति मुनिजन करैं हैं । हे नाथ ! यह संसार-सागर महा गम्भीर, जाका छोर नाहीं । तामैं पड़ते (गिरते) हमसे संसारी जीव, तिनकूं आप अपनी वाणीरूपी हस्तावलम्बन का सहाय देय, दया-भाव करि भव जल में डूबते बचावें । तातें हे प्रभु, तुम कूं परम उपकारी जांनि, आपके दर्शन कूं हम आये हैं । तथा संसार जल में डूबते भव्य जीव, तिनपै दया भाव करि, आप अनेक जीव, डूबते बचावें हैं । सो तिहारा जगतयश सुनि, जे भव्य हैं सो तिहारे देखवेकौं आवें हैं । तिन भव्यन का भी यही मनोरथ है । जो हे भगवन्, हमकूं भी संसार-समुद्र मैं ते डूबते राखौ । इत्यादिक वीतरागी मुनि भी जिन देव की स्तुति ऐसे करैं हैं । और बिनय तैं हस्तपांव धोय, हर्ष, आनन्द सहित, धरती देखते, ईर्या करते, जिन देव के मंदिरन मैं जांय हैं । तातें अब भी जो भव्य जीव हैं, जिनकौं भक्ति का फल लैना होय, सो भव्य जीव धर्मात्मा मन, वचन, काय की क्रिया शुद्ध करि हर्ष सहित जिन दर्शन कूं करना, सो ईर्या सहित करना योग्य है । आगे कहै हैं जो यह मुनि अपनी प्रमाद अवस्था तैं मन-वचन-कायतैं, कोई क्रिया मैं सूक्ष्म अतीचार लगैं, तौ ताके मेटवेकौं कायोत्सर्ग करैं । कायोत्सर्ग उसका नाम है जो अपनी भूलि की

आलोचना, निंदा, गर्हा करें, सो कायोत्सर्ग कहिए । सो केतेक काल तांई कायोत्सर्ग करें ? ताके काल का प्रमाण बताईए है । और कौन-कौन प्रमाद कार्य भये कायोत्सर्ग करैं, सो स्थान बताइये है–

श्लोक—ग्रन्थारंभे समाप्ते च, स्वाध्यायेस्तवनादिषु ।
सप्तविंशतिरुच्छ्वास, कायोत्सर्गा मताइह ॥ ५ ॥

अर्थ—मुनीश्वर इतनी जगह कायोत्सर्ग करैं । एक तौ कोई न्यूतन ग्रन्थ जोड़वे का प्रारंभ करैं, तब प्रथम कायोत्सर्ग करैं । और जब शास्त्र की पूर्णता होय चुके, तब कायोत्सर्ग करैं । और शास्त्र का स्वाध्याय करैं, तब कायोत्सर्ग करैं । और अर्हन्त सिद्ध जी के गुणों का स्तवन करैं, तब कायोत्सर्ग करैं । इन जगह योगीश्वर कायोत्सर्ग करैं । ताके काल का प्रमाण सत्ताईस श्वासोच्छ्वास है । भावार्थ–इतनी जगह धर्म क्रियान में प्रमाद वशाय अतीचार लागा होय, तौ ताके मेटवे कौं यती कायोत्सर्ग करैं, सो एक-एक कायोत्सर्ग का काल सत्ताईस-सत्ताईस श्वासोच्छ्वास है ।

श्लोक—अष्टाविंशति मूलेषु, दिनस्य मल शुद्धये ।
अष्टाग्रशत मुच्छ्वासाः, निशायामपि तद्दलम् ॥ ६ ॥

अर्थ–यतीश्वर अपने अठाईस मूलगुणन कौं, तथा और व्रत कौं, कोई प्रमादवशाय अतीचार लागा जानैं, तौ ताके शुद्ध करबे कौं कायोत्सर्ग करैं । सो च्यारि प्रहर दिन में कोई अतीचार लागा होय, तौ ताकौं यादि करि ताके मेटवे कौं कायोत्सर्ग करैं । ताका काल

एक सौ आठ स्वासोच्छ्वास है । और कोई च्यारि प्रहर रात्रि मैं दोष लागा होय, तो ताके मेटवे कौं चौवन स्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं ।

श्लोक—पाक्षिके त्रिशतं ज्ञेयं, चतुर्मास समुद्भवे ।

चतुः शतं शतं पंच, सांवत्सरे यथागमम् ॥ ७ ॥

अर्थ—और जहाँ यतीश्वर अपने व्रत मैं पन्द्रह दिन विषैं अतीचार लागा जानैं । तौ ताके मेटवे कौं तीनसौ श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं । और च्यारि महीना मैं अपने संयम कूं दोष लागा यादि आवै, तौ ताके दूर करवे कौं च्यारि सौ श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं । और आपकौं वर्ष दिन मैं कोई दोष लागा यादि होय, तिसके मेटवे कौं पांच सौ श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं ।

श्लोक—पंचविंशति रुच्छ्वासा, गोचरे जिन वंदनां ।

गते मले निषद्यायां, पुरीषादि विसर्जने ॥ ८ ॥

अर्थ—जो यतीश्वर गोचरी, जो नगर मैं भोजन कौं जायकैं आवै, तब राह मैं प्रमाद-वश दोष लागा होय, तौ ताके दूर करवे कौं पचीस श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं । और कहीं जिन बन्दना कौं गये होंय, तौ राह मैं प्रमाद वशाय हिंसा भई, ताके मेटवे कौं पचीस श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं । और आपतैं गुण अधिक आचार्या-दिक मुनीश्वरौं की बंदना कौं गये होंय, अरु गमन करते दोष लागा, ताके मेटवे कौं कायोत्सर्ग करैं । ताका काल पचीस श्वासोच्छ्वास जानना । और यती कोई स्थान तजि

कोई और ही स्थान जाय तिष्ठैं। तौ पचीस श्वासोच्छ्वास काल तांईं कायोत्सर्ग करैं। और तनका मल क्षेपवे जांय, तब आयके कायोत्सर्ग करैं। मूत्र क्षेपैं, तब कायोत्सर्ग करैं। नाक का, मुखका श्लेष्मा क्षेपैं, तब कायोत्सर्ग करैं। सो पचीस-पचीस श्वासोच्छ्वास काल तांईं कायोत्सर्ग करैं। ऐसे कहे जे ऊपरि अपने संयम कूं अतीचार के स्थान, तिनके मेटवे कौं यथा योग्य काल तांईं कायोत्सर्ग करि शुद्ध होंय, सो गुरु बंदवे योग्य हैं। कैसे हैं गुरु, संसार दशा तैं उदास हैं। तनतैं निष्प्रह हैं। पंचेन्द्रिय भोगनतैं विमुख हैं। आत्मीक रस करि रांचे, धर्म मूर्ती, जगत वल्लभ, जगत पूज्य, पाप कर्म तैं भयभीत, दयानिधान मुनि, अपने दोष मेटवे कौं ऐसे कायोत्सर्ग करि, शुद्ध हो हैं। ऐसे कहे भेद सहित यतीश्वर, अनेक गुण सागर पूजवे योग्य हैं। ये ही गुरु उपादेय हैं। और पहले कहे कुगुरुन के लक्षण तिन सहित होंय, ते कुगुरु हेय हैं। जे गुरु होय, शिष्य तें छल करि, शिष्य का धन हरे, वाकौ अपने पांवन नमाय मान करैं, सो कपटी गुरु पाषाण की नाव समान, शिष्य के परभव सुधरवे-विगड़वे का जाकैं सोच नाहीं, सो गुरु लोभी, आप संसार-सागर डूबैं और शिष्यन कौं डोवैं। ऐसे गुरु विवेकीन करि तजिवे योग्य हैं। इति गुरु परीक्षा मैं हेय-उपादेय कही।

इति श्रीसुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, गुरु परीक्षा मैं आचार्यादि दश भेद मुनि, अरु मुनि योग्य समाचार दश, आचारसारजी ग्रन्थानुसार कायोत्सर्ग करने के स्थान तथा कायोत्सर्ग का काल वर्णनोनाम दशमोध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥

आगे धर्म विषैं हेय-उपादेय कहिये है। तहां प्रथम ही कुधर्म के लक्षण कहिये हैं—

गाथा-केवलणाणय रहियो, कल्लाण जीव परघादो।
माण णांण धण हरणो, एवं कुधम्मभासियो देवं ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो धर्म केवल ज्ञान रहित होय, दया भाव रहित होय, पर जीव का घातक होय, मान ज्ञान धन का हरणे वारा होय, ऐसा होय सो कुधर्म हैं। ऐसा जिनदेवने कह्या है। भावार्थ—जो धर्म केवल ज्ञानी के बचन रहित होय, हीन ज्ञानी के बचन करि प्ररूप्या होय, दया भाव रहित हिंसा करवे का जामैं उपदेश होय। जीव हिंसा मैं वड़ा पुराय बंध बताया होय। पराए मान हरवे का छल-बल करि, परकूं अपने पांव नमावे का कथन होय, सो कुशास्त्र है। तथा जिनकौं सुनि, भोरे जीव ज्ञान बढ़ावे की इच्छा तजैं, सो ये पराए ज्ञान हरनहार कुशास्त्र कहिए। और पराया धन पाप मैं लागै, ऐसा उपदेशदाता शास्त्र सो कुशास्त्र है। और भोरे जीवनकौं बहकाय, पाप पंथ लगाय, नरक मंदिर का हिंसा द्वार तामैं घालि, नर्क मंदिर पहुंचावै, सो कुधर्म है। और जा विषैं अनेक मायाचार सहित पाखंडिन करि भोरे जीवन के ठगने का कथन होय, सो कुधर्म है। और जामैं अनेक विषय कषाय पोषने का कथन होय, सो कुधर्म है। जिनका उपदेश सुनैं स्त्रीन के भोग की इच्छा होय, धन बढ़ावे की इच्छा होय, राज की इच्छा होय, तिनकौं सुनि युद्ध की इच्छा होय, सो कुशास्त्र हैं। और अपनी महंतता प्रगट करने के निमित्त कोई व्यंतरादिक देवन का सहाय पाय बनाए होंय, सो कुशास्त्र हैं। और जहां अनेक अभक्ष बस्तु का भोजन कह्या होय, तथा जामैं आचार जो भली क्रिया, ताका निषेध करि, हर कछू का भोजनबताया होय, ऐसा अनाचार सहित

होय, सो कुशास्त्र है। और जहाँ मद्य-मांस—भक्षण में पाप नहीं कह्या होय, सो कुशास्त्र है। और जिनमैं तीर, गोली, बन्दूक, पिंजरा, फंदा, फाँसी, धनुष, बाण, तोप की नालि, रामचंगी, दारु, रंजक, छुरी, कटारी, बरछी, गुप्ती, इत्यादि हिंसा के कारण ए सर्व शस्त्र तिनके बनायवे की कला—चतुराई कही होय, सो कुशास्त्र हैं। और नाना प्रकार चित्रांम कला, शिल्पकला इत्यादिक चतुराई जहां कही होय, सो कुशास्त्र हैं। और जहाँ कुदान जो स्त्री का दान, रति दान, दासी दान, दास दान, ए विषयी जीवन के प्ररूपे, परस्त्रीन के भोगन की इच्छा बारे पंडित, तिनके कहे हैं। जिन में ऐसा कथन चलै, सो कुशास्त्र हैं। और जिनमैं कुतप-हिंसाकारी, कुतीर्थन की महंतता का कथन हो, सो कुशास्त्र हैं। और जिनमैं विषय पोषने के कारण राग-रंग, नृत्य-गान बजावने की कला प्ररूपी होय, सो कुशास्त्र हैं। और जहां मंत्र, जंत्र, तंत्र, ठा न, टोणा इत्यादिक पर के वशीकरणादि का कथन होय, सो कुशास्त्र हैं। और जिनके सुनैं हिंसा बढ़ै, मोह बढ़ै, क्रोध बढ़ै, मान बढ़ै, लोभ बढ़ै, सो कुशास्त्र हैं। और जिनके सुनें काम की उत्पत्ति होय, जिनमैं चार कला का व्याख्यान होय, कंदमूल सहित भोजन, रतालू, पिंडालू, जमीकंद, गूलर, बड़फल, पीपरफल इत्यादिकन का भक्षण करै पाप नहीं कह्या होय, सो कुशास्त्र हैं। और जिनमैं भूत-प्रेतादि व्यंतरदेव तथा अपनी मति कल्पना करि माने ऐसे शीतलादिक देवन का चमत्कार, तिनकी पूजा करवे की विधी, तिनके प्रसन्न होने की विधी, अरु प्रसन्न भये प्रगट होय पुत्रादिक की प्राप्ति यह फल, इत्यादिक जहाँ कथन—उपदेश होय, सो कुशास्त्र हैं। और भी अनेक शास्त्र जो परमार्थ कथा

रहित, पापबंध के करने हारे, हीनज्ञानी कुकविन के प्ररूपे, स्वेच्छा करि रचे, जो रसिक प्रिय सुन्दर शृंगारादि विषयों कर पूर्ण हैं, सो कुशास्त्र हैं। क्योंकि ये मोक्षमार्ग रहित संसार-दशा के बढ़ावनहारे ही हैं। ऐसा जानना। तातें तजने योग्य हैं। और इन ही शास्त्रन की आज्ञा प्रमाण जीव का श्रद्धान, सो ही कुधर्म है। और इनका फल अनिष्ट जांनि सम्यग्दृष्टीन की दृष्टी में सहज हीं हेय भासै है। इति कुधर्म कथन। आगे सुधर्म का कथन संक्षेप कहिए है–

गाथा—अपरापर अविरुद्धो, णवणय भंगाय सत्तस्याज्जुत्तो।
पण पमाण अखंडो, सधम्मो जिण भासयो सुद्धं ॥२३॥

अर्थ–अपरापर जो आगे-पीछे-अन्त तांई शुद्ध कथन होय। नव नय, सप्त भंग "स्यात्" पद सहित होय, पंच प्रमाण करि अखंडित होय, सो धर्म जिन भाषित शुद्ध धर्म है।

भावार्थ–भगवानकी वाणी में जो वस्तु निषेध करी, ताका ग्रहण कोई भी जिन शास्त्र में नाहीं। जैसे कोई शास्त्रनमें प्रथमही सप्त व्यसन का निषेध किया, ताका ग्रहण आदितें अन्त तांई कहूं नांहीं। तथा और क्रोधादि कषाय, पाप के अर्थ अभक्षादि, अनाचार, हिंसादिक पापनका निषेध किया, तिन का ग्रहण कोई भी शास्त्रन में नाहीं। ताका नाम आदि-अंत-अविरुद्ध कहिये। और जो जिस वस्तु कूं कहीं तो निषेधी, कहीं ग्रहण करी। सो कथन, विरुद्ध रूप है। तातें सत्यधर्म आदि-अंत शुद्ध है। और नव नय के नाम–नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजूसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत, द्रव्यार्थिक। और पर्यायार्थिक इनका सामान्य अर्थ–जिस वस्तु का प्रारम्भ किएही ताकौं भई कहिये। सो नैगमनय है। जैसे कोई पुरुष घर तजि अन्य देश

कूं गया। सो दस-बीस दिन गये पहुंचेगा। और तुरत ही वाके घर बारों को पूछिए। जो फलाना कहां हैं? तब वह घरबारे कहैं, फलाना देश गया। सो तुरंत तो अपने नगर में ते ही निकसा नहीं है। परदेश गया, काहे कूं कहे हैं? परन्तु इनकी तरफ तें गया। सब तें मिलि विदा मांगि गया, तातें इनकी तरफ तें गया कहिए। यह नैगम-नय है। ऐसे ही अनेक जगह लगाय लेना।१। और एक बचन में बहुत का नाम ग्रहण होय, सो संग्रह नय है। जैसे काहू नै कही, वह बाग है। सो बाग कछु वस्तु नाहीं, किसी वृक्ष का नाम बाग नाहीं। जुदे-जुदे वृक्ष देखिये, तौ बाग कछू वस्तु नाहीं। परन्तु बहुत वृक्षनका समूह होय, सो बाग कहिये। याका नाम संग्रह-नय है। तथा बहुत मनुष्य के समूह कों यात्रा कहिये। तथा हाट कहिए। तथा गुदरी कहिए। तथा बारात कहिए। ए सर्व यथायोग्य कारण पाय संग्रह-नय के शब्द हैं।२। और जातें लौकिक सधै, सो व्यवहार-नय है। जैसे हुंडी विषै लाख रुपये, सौ योजन दूर क्षेत्र पै दिशावर, तहां कूं लिख दिए। वह तनकसा कागज काहू कूं दिया। सो वानै परतीति करी, रुपये दिये, हुंडी लई। पीछे दूसरी दिसावर में हुंडीके लाखों रुपए पावना, सो व्यवहार-नय है। तथा ऐसा कहना जो यह हमारा पुत्र है, ये पिता हैं, ये माता है, ए स्त्री है, ए अरि (शत्रु) है, ए मित्र है इत्यादिक ए सर्व वचन व्यवहार-नय करि प्रमाण हैं। और निश्चय-नय करि आत्मा काहू का पिता-पुत्र नाहीं। संसार भ्रमण करते ऐसे अनंते नाते भए हैं। परन्तु लौकिक नय करि सत्य भी हैं। तातें यह व्यवहारनय है।३। और "तत्काले तम्मं ये परणातौ" याका अर्थ-जिस काल में द्रव्य जैसा है, तैसा ही कहिए। जैसे कोई कच्चा आम है ताकौ

तब खट्टा ही कहिए। और तिस ही आम कौं पाल में देय, पकाय, लाल-पीत करिए, तब ही उस आम कौं मिष्ट कहिए। जब कच्चा था, तब खट्टा ही था। अरु अब पका, तब मिष्ट ही है। तथा कोई पुरुष काहू तैं युद्ध करै है। तब ताकूं क्रोधी कहिए। और जिस समय वही जीव पूजा—दान करता होय, तब धर्मी कहिए। जिस समय जैसा होय, तैसा ही कहिए, सो ऋजुसूत्र नय है।४। और शुद्ध शब्द का मानना, सो शब्द नय है। जैसे काहू ने कही, राजा। तब शब्द नय वारा कहै। राजा कहना अशुद्ध शब्द है। तातें ऐसा कहौ नरेन्द्र, यह शुद्ध शब्द है। इत्यादिक शब्द के शुद्ध-अशुद्ध भाव की अपेक्षा बोलिये, सो शब्द नय है।५। और जिस वस्तुमें गुण तो और अरु नाम और, सो समभिरूढ़ नय है। जैसे चलती कूं गाड़ी कहिए। तथा गाड़ी कूं उखली कहिए। तथा बलहीन कौं जोरावर नाम कहना। तथा धन हीन को लक्षमीधर कहिए। ए सर्व वचन समभिरूढ़ नय तैं सत्य हैं।६। और जा वस्तु कौं जैसी की तैसी ही कहिए। जैसे काहू कौं राज करते राजा कहिए, सो एवंभूतनय है।७। और वस्तु का कबहूं अभाव नाहीं। जैसे जीव का कबहूं अभाव नाहीं। ऐसा कहना द्रव्यार्थिक नय है। जैसे कहिए, जीव चेतना रूप अविनाशी है, अजर है, अमर है, शुद्ध है, अमूर्तीक है, इत्यादिक कहिये सो निश्चय (द्रव्यार्थिक) नय है। तथा ऐसे कहिए जो एक ही जीव च्यारि गति में भ्रमण करै है, यह निश्चय नय है।८। और ऐसा कहिए जो यह देव जीव, ये मनुष्य जीव, ये पशु जीव, ये नारकी जीव इत्यादिक कहना, सो पर्यायार्थिक नय हैं। तथा ऐसे कहिए जो ए जीव अनंत काल का जन्म-मरन करै है। ए सर्व पर्यायार्थिक नय

है। ६। इनका सामान्य भाव कह्या। विशेष नव ही नयन का नय चक्र आदि ग्रन्थन तैं जानना। इन ही नव नयन करि अनेक वस्तुन का स्वभाव साधिए है। और आगे कहिए है सप्तभंग। सो भी इनही नय करि सिद्ध होय हैं। सो सप्तभंग कहिए हैं—तिनके नाम—स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्तिनास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य। ए सप्तभंग हैं। अब इनका अर्थ—एक ही वस्तु पै नय प्रमाण सप्तभंग साधिए है। जैसे कोई नय कही, हमारा तन स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्ति है। तब जैनी नैं कह्या, स्यात् कोई नय करि। १। तब काहू नैं रतन पै अशर्फी धरी और कही कि रतन परद्रव्य के चतुष्टय करि नास्ति और मेरी अशर्फी अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्ति है। तब जैनी नैं कह्या, स्यात् कोई नय करि। २। अपने चतुष्टय कीं अपेक्षा रतन अस्ति है। पर अशर्फी के चतुष्टय की अपेक्षा रतन नास्ति है। अरु अशर्फी के चतुष्टय की अपेक्षा अशर्फी अस्ति है। रतन के चतुष्टय की अपेक्षा अशर्फी नास्ति है। ऐसे एक बार ही एक वस्तु मैं अस्ति नास्तिपना दोऊ सधै है। तातें अस्ति नास्ति। तब जैनी ने कह्या, स्यात् कोई नय करि। ३। और जो रतन कूं अस्ति कहिए, तौ अशर्फी अपने चतुष्टय कौं लिए है। सो ताकौं नास्ति कैसे कहिए? अरु रतन कूं नास्ति करि अशर्फी अस्ति कहिए, तौ रतन अपने चतुष्टय तैं अस्ति है, ताकौं नास्ति कैसे कहिए? अरु एक ही बार अस्तिनास्ति कही जाती नहीं। तातें अवक्तव्य कहैं। तब जैनी नैं कह्या, स्यात् कोई नय करि। ४। अरु है

भाई ! रतन तो अस्ति है अपने चतुष्टय करि, और रतन के चतुष्टय करि अशर्फी नास्ति भी है। परन्तु कही नाहीं जाय । क्योंकि अपने चतुष्टय तैं अशर्फी अस्ति है तातें स्यात् अस्ति अवक्तव्य है। ५। और अशर्फी के चतुष्टय करि रतन नास्ति है । परन्तु कह्या नहीं जाय। क्योंकि रतन प्रत्यक्ष है। तातें स्यात् नास्ति अवक्तव्य कहैं।६। और रतन अपने चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति है। अरु पर चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति है। परन्तु दोऊ एकही वार कहे जाते नाहीं। अरु अशर्फी अपने चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति, अरु पर के चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति है, परन्तु कह्या नहीं जाय। तातैं स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य कहैं।७। ऐसे सप्तभंग अनेक पदार्थन पै द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि साधिये। ऐसे सप्तभंगन सहित जिन वाणी मैं कथन है। बहुरि कैसा है जिन धर्म, जो पंच प्रमाणन करि खंड्या नाहीं जाय हैं। सो पंच प्रमाण कौन से? सो कहिए हैं। लौकिक प्रमाण, परंपराय प्रमाण, अनुमान प्रमाण, शास्त्र प्रमाण और प्रत्यक्ष प्रमाण। ये पंच प्रमाण हैं। सो इन करि जो धर्म खंड्या जाय, सो धर्म झूठा है। इन पांच प्रमाणों का सामान्य भेद करि निर्धार करिए है। जो वस्तु लौकिक विषै निषेधी होय, सर्व करि निंदवे योग्य होय, जाके किए राज, पंच का दिया दण्ड पावै ऐसी क्रिया जाके देव-गुरु करते होंय सो ताके देव-गुरु झूठे हैं। तिन के कार्यका जिनके शास्त्रनमैं कथन होय, तिनका धर्म झूठा अयोग्य है। तजिवे योग्य है। सो ही कहिए है। जैसे लौकिक मैं सप्त व्यसन निंद्य हैं। सो जिनके देव-गुरु द्यूत-व्यसन रमते होंय, सो हीन हैं। लौकिक मैं द्यूत रमैं, ताकूं लुच्चा कहैं हैं। तिस जुवारी की कोई प्रतीत नहीं करै।

ऐसा जुवा जाके देव-गुरु रमते होंय, सो धर्म तजिवे योग्य है। और पर जीवन के मांस-कलेवर कोई छीवता नाहीं। अरु कदाचित् छीवें ही, तौ महा ग्लानि उपजै। जब स्नान करै, सर्व वस्त्र उतारै, तब शुद्ध होवै। जाके देखै ही घृणा आवै, दीखते महा अशुभ, महादुर्गन्ध, जाकौं स्वानादिक (कुत्ते आदिक) भी नहीं ग्रहैं, ऐसा अशुचि का समूह आमिष है। ऐसे मांस कौं जाके देव-गुरु खावते होंय। जिनके शास्त्रन में मनुष्यन कूं मांस का भोजन लेनैं योग्य कह्या होय। सो धर्म पापाचारी तजिवे योग्य है। यह धर्म लौकिक के निषेधवे योग्य है। और मदिरा के पीये, बुद्धि नष्ट होय। माता, पुत्री, स्त्री, भगिनी इत्यादिक भेद ताकौं नहीं भासै, ए सर्व एकसी जानैं। पग-पग पै मूर्छा खाय पड़े है। लोकन में हाँसि होय, अनेक लोक ताकी अज्ञान चेष्टा देखि, कौतुक देखवे कौं इकट्ठे होंय, ताकी सर्वजन निंदा करैं। ऐसी मदिरा जगत-निंद्य, ताकौं जाके शास्त्रन में लेने योग्य कही होय, ऐसी मदिरा जाके देव-गुरु-भक्त लेते होंय, सो धर्म निंद्य, हीन, तजिवे योग्य है। ये भी लौकिक के निंदवे योग्य है। और जिस वेश्या का तन सदीव सूतवत है। जाकी जाति-कुल की खबर नाहीं। सर्व ऊंच-नीच कुल के मनुष्यन की भोगन हारी। निर्लज्जता की हद। जाके घर-मार्ग की राह विवेकी भूल हूँ नहीं जाय। ऐसी कुशील-मंदिर या वेश्या, जाके घर गमन किए लोक निंदा पावै। पंच सुनै तौ पांति तैं निकासैं। ऐसी वेश्या-कंचनी का सेवन, जाके देव-गुरु-भक्त करते होंय, सो धर्म भी असत्य पापमई, झूठा है। यह भी लौकिक तैं निंद्य है। और कोई जीव काहू जीव का घात करै, तौ लोक कहैं, याने पंचेन्द्रिय मनुष्य या पशु जीव मार्‍या, सबनैं देख्या। सो

यह महा पापी है। हत्यारा है। तब पंच तौ याकौं जीव-हत्या लागी जानि, न्यातितैं निषेधैं। और राजा याकौं पापी जानि, बिना प्रयोजन दीन-पशु का घाती देख, घर लूटि ले, ताका हाथ नांक छेदै। ऐसा प्रत्यक्ष लौकिक मैं जीव घात करना जाके शास्त्रन में पुण्य कह्या होय, और जाके देव-गुरु-भक्त जीव घात मैं मगन होय, जीव घात करते होंय। सो धर्म, दया रहित, जीव घातक, तजवे योग्य है। ये भी धर्म लौकिक तैं निंद्य है। क्यों, जो लौकिक हैं तौ दया करि जीवन की रक्षा कौं सदाव्रत देय हैं। पशून कौं घास निक्षेपैं है, प्यासेन कूं जल देय हैं। नग्न वस्त्र देय है। रोगी कौं भेषज देय है। इत्यादिक जैसे तैसे जीवन की रक्षा करै है। और जाके धर्म मैं जीव घात में पुण्य कह्या होय, जीवन की हिंसा कही होय, सो धर्म दया रहित, असत्य है। यह धर्म भी लौकिक करि खंड्या जाय है। और जे पराया चेतन—अचेतन परिग्रह, छल—बलि करि हरै, ताकौं चोर कहिए। सो जीव राज, पंच करि दंडवे योग्य है। लोक निंद्य है। सो ऐसी चौरी जाके देव—गुरु करते होंय। अपने भक्तकौं छलतैं फुसलाय वाका धन ठगें। पराई स्त्री, पुत्री शुभ देख, हर ले जाँय, सो चोर। ऐसे कथन जाके धर्म में होंय। जाके देव—गुरु ने पराया धन, स्त्री, पुत्री हरना कह्या होय, सो धर्म असत्य है। यह भी चौर धर्म लौकिक तैं निंद्य है तातैं हेय है। हर पर स्त्री के सेवन के योग तैं पंच तौ जाति तैं निकासै हैं। और इस कुशोली पुरुष का राज, घर लूटै है। अंग उपांग छेदै है। मारै है। खररोपणादि (गधे पर चढ़ाना) अपमानादिक अनेक दुख देय है। ऐसी अवार लौकिक विषैं प्रत्यक्ष देखें हैं। अरु जाके धर्म में परस्त्री का

सेवन, जो परस्त्री जाका भरतार जीवता होय, तथा भर्तार रहित विधवा होय, तथा बिना ब्याही कुमारी होय, तथा दासी होय, इत्यादिक परस्त्री हैं। तिनके सेवने का दोष, जिनके धर्म विषैं नहीं कह्या होय। जाके देव-गुरु परस्त्री हर ले जांय, तथा उनके सेवन करते दोष नहीं कह्या होय। जाके देव-गुरु परस्त्रीनतैं हाँसि-कौतुक करते होंय, परस्त्री सेवते होंय, सो धर्म भी कामी देव-गुरुन का उपदेश्या असत्य है। यह भी लौकिक करि खंडिये है। कुशील है सो तो महापाप, लोक में प्रकट कह्या। अरु शील है सो उत्तम धर्म है। तातें यह भी धर्म, लोकापवाद सहित तजवे योग्य है। ऐसे सात व्यसन लौकिक, मैं दंडवे योग्य कहे हैं। सो ऐसे व्यसनों का प्रवेश जाके धर्म में पाईए, जो धर्म लौकिक नय प्रमाण तैं खंड्या जाय, सो असत्य है। और जो क्रोधी होय, ताकौं लोक कहैं यह महा क्रोधी है। पापी, बात कहे ही लड़ै है। मारै है। याका सहज-स्वभाव सर्प समान है। और जो कोई मानी होय, ताकौं लोक कहैं यह बड़ा मानी है, सो कहीं मार्‌या जावेगा, बहुत-मान योग्य नाहीं। और मायावी कौं लोक कहैं, यह बड़ा दगाबाज है। याके चित्त की कोई नहीं जानैं। यह महा पापी है। और कोई लोभी होय, तो ताकौं लोक कहैं, यह बड़ा लोभी है। याके पास बड़ा धन है। यह वा धन कूं नहीं खाय है। नहीं काहू कौं खवावे है। नहीं धर्म मैं लगावे है। और भी धन जोड़वे का उपाय करै है। ऐसे यह क्रोध—मान—माया—लोभ सहित जीव होंय, जो पर कूं मारने कूं शस्त्र धारते होंय। ऐसी कषाय जाके धर्म मैं करनी कही होय, जाके देव—गुरु—भक्त महा कषायी होंय, सो भयानीक धर्म तजवे योग्य है। तातें धर्म कषाय रहित है।

और लौकिक विषैं वड़ा परिग्रह-आरंभ होय, ताकूं वड़ा गृहस्थ कहिए। पुत्र-स्त्री आदि कुटुम्ब होय, काहू तैं स्नेह, कांहू तें द्वेष करनहारा होय, रागी-द्वेषी होय, ते गृहस्थ हैं। सो जाके धर्म में परिग्रह-आरंभ-कुटुम्ब सहित, रागी-द्वेषी देव-गुरु, कहे हांय। सो धर्म संसार विषैं भ्रमण करावनहारा है। क्यों ? देखो, लोक विषें तो त्याग पूज्य है। अव भी जो घर कूं तजि, वन में रहैं। नगन रहैं। तथा लंगोट मात्र होय, तिनकूं वड़े-वड़े परिग्रह धारी राजादि, पूजते देखिए हैं। तातें परिग्रह सहित जे देव-गुरु हैं, सो लौकिक तैं निषेधिये है। तातैं धर्म सो ही सत्य है जाके देव-गुरु, राग-द्वेष-परिग्रह रहित हांय। इत्यादिक लौकिक प्रमाण तैं जो धर्म खंड्या जाय, तो और प्रमाण तें तो खंडै ही खंडै। ऐसे जे-जे दोष लौकिक निंद्य हैं, तिन सहित कोई धर्म होय, सो असत्य है। और कोई लौकिक में भगवान की पूजा करै, दान देय, तप-संयम करै, समता भाव सहित रहै, शीलवान होय, जाके क्रोध-मान माया-लोभ दीर्घ नाहीं होय, इत्यादिक गुण हैं, तिनकों सर्व लोक पूजें हैं। अच्छे जानि प्रशंसा करै हैं। कोई जीव प्रभुकी पूजा स्तुति करै, तो ताकौं देखि लोक कहैं, यह धन्य है, भला भक्त है। याके सदीव प्रभु की भक्ति-पूजा-सुमरण ही रहै है। ऐसा जानि सर्व पूजें। और कोई धर्मात्मा कूं दान देता देखैं, तो लोक कहैं। यह धन्य है। महा दयावान है। वहुत दीनन कूं दान देय, तिनकी रक्षा करै है। और कोई तपसी नाना उपवास सहित अनेक तप-संयम करता होय, तो लोक याकी अवस्था देखि, हर्ष पाय कहैं। यह तपसी महा संयमी है, पूज्य है। सर्व याको ऊंच जानि पूजैं। और कोई समता भावी कूं, दुष्ट जीव दुर्वचन कहै, मारे, बंधन देय। अरु वह

तपसी काहू कूं कछू नहीं कहै। कोई तैं द्वेष नहीं करै, समता भाव राखै, तौ उस तपसी कूं लोक कहैं, यह धन्य है। बड़े धीर समता परिणामी हैं। ऐसा जानि सकल लोक पूजैं हैं। कोई मान नहीं करै, तो लोक कहैं यह बड़ा मनुष्य है। याकैं मान नाहीं। और कोई दगाबाज नाहीं होय तौ लोक कहैं, यह बड़ा शुद्ध जीव, सरल परिणामी है। याके कुटिलताई नाहीं, यह धन्य है। ऐसा जानि स्तुति करैं, याकौं पूजें। और कोई परिग्रह पुत्र, स्त्री, घर, धन तजि बनमें रहै, तौ लोक कहैं. यह धन्य है। सर्व घर–धन–भोग तजि, समता धरि, योग धरया है। ऐसा जानि सर्व लोक पूजें। और कोई नगन रहता होय। मिलै तौ खाय, नहीं भूखा रहै। काहू पै जाँचै नाहीं। तौ लोक याकी पूजा करैं। ऐसे कहे लौकिक करि पूजवे योग्य, जे जगत गुण, सो जिस धर्म मैं इन गुणन का कथन होय, सो धर्म पूजवे योग्य, सत्य धर्म है। ऐसे तौ लौकिक प्रमाण करि धर्म की परीक्षा करिये। सो यह जिन धर्म लौकिक करि पूज्य है। ऊपर कहे जे गुण, यह तिन सहित है। तातें लौकिक प्रमाण करि खंड्या नहीं जाय है। ऐसे लौकिक प्रमाण करि अखंड जिन धर्म जानना। इति लौकिक प्रमाण ॥१॥

आगे परंपराय प्रमाण कहिये है। बहुरि परंपराय ताकौं कहिए। जो वस्तु आगे तैं होती आई होय। अरु काल-दोष तैं वर्तमान काल कबहूं नहीं होय, तो परंपराय तैं जानि लेनी। जैसे अपने पितामह (पिता के पितादिक) कुलविषै आगे बड़े थे, अवार वर्तमानकाल मैं नाहीं, सर्व परलोक गए। परन्तु तिनकी बड़ाई, धन की प्रचुरता, हुक्म, शुभ क्रियादि और के मुख तें सुनि जानिए है, जो हमारे बड़े ऐसे थे। तिनकी ऐसी धर्म-कर्म रूप व्यवहार–चलन

क्रिया थी। ऐसी प्रतीति भई। तथा कागज-पत्रन तैं देखिये, जो अपने वड़ौं के लाखौं रुपये, औरन से लेने हैं। और लाखौं ही वड़ौं के शिरके देने हैं। सो सर्व रोजनामचा, खातान तैं जानिये। परंपराय प्रमाण करिके ही लेनेवारों तैं लीजिये हैं। और देनेवारों कौं दीजिए है। सो आप तौ लेने-देने तैं वाकिफ़-हाल नाहीं। परन्तु रोजनामचा-खातान तैं, खत-पत्रन तैं, देना-लेना सत्य होय है। सो यह परंपराय प्रमाण है। तैसे ही तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, वलभद्र, प्रतिनारायण, कामदेव, नारद, रुद्र, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, अर्धमण्डलेश्वर, इत्यादि पदस्थधारी पुरुष आगे भये थे। अव कालदोष तैं इन पदस्थधारी नाहीं। परन्तु तिनके नाम लौकिक मैं सुनिए हैं। सो तिन पदवीधारीन पुरुषन के कुल, तिनके मात-पितान की परिपाटी आदिक कथा। तथा तिनकी उत्पत्ति, नाम, राज्य-सम्पदा, भोग, सुख, पुरुषार्थ, शूरपणा, पराक्रम, सैन्य, दल, इत्यादिक वार्ता है, सो परंपराय प्रमाण है। सो ऐसा परंपराय शास्त्रन तैं जानिए, अरु लौकिक तैं जानिए है। ऐसा ही श्रद्धान करिए है। सो जिनके धर्मशास्त्रन मैं ऐसे पुरुषन की उत्पत्ति, कुल, राज–सम्पदा, भोग, सुख, वैराग्य भए दीक्षा ग्रहण, मुनिपद का पालना, मुनि–श्रावकन का आचार, प्रवृत्ति, इत्यादिक कथन जहां पाइए, सो धर्म सत्य है। सो ऐसे परंपराय करि मिलता होय, सो धर्म सत्य है। और नग्न गुरु, जिनका निर्दोष भोजन, आरंभ रहित, वीतराग, अनेक गुण सम्पदा सहित, देव-इन्द्रन करि वन्दनीक मुनीश्वर आगे थे, अव कालदोष तैं नाहीं। परन्तु शास्त्रन तैं सुनिये हैं कि ऐसे गुरु होंय, सो आगे थे। सो ऐसे गुरुन का कथन जिस धर्म मैं होय, सो धर्म परंपराय

प्रमाण है। तथा नवनिधि, चौदह रतन, कल्प वृक्ष, पारस, चिन्तामणि, ए उत्तम वस्तु हैं। सो इनका नाम तो सुनिए है। और अवार काल-दोष तें दीखती नाही। आगे थे सो तिनके नाम, गुण, आकार, और ए कौन-कौन कैं होंय सो ऐसा कथन जिस धर्म विषैं होय, सो धर्म परपराय प्रमाण करि शुद्ध, सत्य है। या नय तैं भी अखंड है। ऐसा जिन धर्म अखंड जानना।

इति परंपराय प्रमाण ॥२॥

आगे अनुमान प्रमाण कहिए है। बहुरि अनुमान ताकौं कहिए, जो अपनी बुद्धि के प्रभाव करि वस्तु कौ यथावत् विचार कै श्रद्धान कीजिए। जैसे लौकिक में तथा परंपराय, धर्म दयासहित कहें हैं। अरु कोई अल्पज्ञानी खेटक (शिकारी) व्यसन रंजित, धर्म हिंसा मैं बतावै, तौ विवेकी अनुमान तैं ऐसा विचारैं। जो हिंसा मैं धर्म होय, तौ दीन जीवन कौं तौ सर्व मारैं। रंकन कूं दान, कोई भी नाहीं देय। जहां रंक जाय, सो धर्म होने कूं, हर कोई ही मारै। और सर्व जीव धर्मके लोभी, परस्पर वह वाकौं मारै, वह वाकौं। धर्म के वास्ते सर्व परस्पर युद्ध करि मरैं। सो तौ अनुमान मैं तुलती नाहीं। और लौकिक मैं भी दीखती नाहीं। और लोक मैं भी धर्म के निमित्त केई तौ सदावर्त्त देते दीखैं हैं। केई धर्म निमित्त प्यासे कूं जल पियावैं है। केई दया करि शीत मैं, दीनन कूं वस्त्र देय हैं। इत्यादिक तौ लौकिकमें दीखैं हैं। सो ऐसा भासै है, कि धर्म दयामय ही है। और हिंसा मैं धर्म संभवता नाहीं। ऐसा विचार, बुद्धि ही तैं अनुमान करि, धर्म का श्रद्धान दयामई करै। इनकौं आदि अनेक नयन करि, वस्तु कौं अनुमान तें विचारना। सो अनुमान प्रमाण सत्य है। ऐसे जिस धर्म

मैं अनुमान का कथन होय, सो सत्य धर्म जानना। सो जिन धर्म अनेक नय, युक्ति और अनुमान का समुद्र है। सो यह अनुमान नय तैं अखंड जानना। इति अनुमान प्रमाण ॥३॥

आगे शास्त्र प्रमाण कहिए हैं। केतेक वस्तु पदार्थ ऐसे हैं, जो शास्त्रन तैं प्रमाण कीजिए है। द्रव्य–पदार्थ अपने श्रद्धान पूर्वक तथा प्रत्यक्ष पूर्वक भासै हैं। सो तौ निसंदेह हैं ही। और केई पदार्थ ऐसे हैं। जिनकौं निर्धारि करने को बुद्धि, समर्थ नाहीं। तिन वस्तुन का निर्धार शास्त्रन तैं करिए है। जैसे लौकिक मैं किसी के लेने–देने में संदेह होय, तो सर्व कहैं, तुम अपने कागज-रोजनामचा-खाते लावो। जो कागजन मैं निकसै, सो सत्य है। तैसे ही केतेक वस्तु मति-श्रुत ज्ञान तैं प्रत्यक्ष गोचर नाहीं। जैसे स्वर्ग-नरक की कहा रचना है? तीन लोक की रचना कैसे हैं? जीव, देव मनुष्य पशु नारक में कैसे भ्रमैं? सिद्ध पद कैसे होय? इत्यादिक। तथा मेरु पर्वत, कुलाचल, महान नदी, असंख्यात द्वीप-समुद्र इत्यादिक नाम तो सुनिए हैं, परन्तु प्रत्यक्ष नाहीं। सो शास्त्रन तैं जानिए हैं। सो जिन शास्त्रन मैं इन स्वर्ग नरक की रचना, आयु, काय, दुख, सुख का कथन होय तथा मेरु, कुलाचलादि अगोचर वस्तुन का कथन जिस धर्म मैं होय, सो धर्म सत्य है। अनेक शास्त्रन के प्रमाण करि भी यह जिन धर्म ही अखंड्य जानना। इति शास्त्र प्रमाण ॥ ४ ॥

आगे प्रत्यक्ष प्रमाण कहिए है। बहुरि जो वस्तु इन्द्रिय गोचर तथा श्रद्धान गोचर दृढ़ होय, सन्देह रहित होय, सो प्रत्यक्ष कहिए है। जैसे कोई पुरुष अपने गले विषैं रतनन का हार, परम उत्तम पहरे, तिष्ठै हैं। ताकी शोभा देखि-देखि आनन्दित होय है। सो हार

वा पुरुष के प्रत्यक्ष है। कोई आय, तिस पुरुष कूं कहै, जो यह हार नाहीं है और ही कछू है, तौ वह पुरुष कैसे मानै? कहने वारे कूं ही मंदज्ञानी जानै। वाकैं तौ प्रत्यक्ष है। ताके सुख कूं भोगवै है। तैसेही जीव कैं, सम्यग्दर्शनादिक गुण मई रतनन का हार धरनेहारा भव्य कै, आप आत्म-देखने जानने वारा जो आत्मा, सो प्रत्यक्ष है। इहां कोऊ प्रश्न करै। जो आत्मा तौ अमूर्तीक है। सो अमूर्तीक द्रव्य अव्रतसम्यग्दृष्टी कैं प्रत्यक्ष कैसे होय? ताका समाधान। जो प्रदेशन की अपेक्षा तौ आत्मा प्रत्यक्ष नाहीं। परन्तु गुण अपेक्षा प्रत्यक्ष है। चैतन्य गुण, सम्यग्दृष्टी कैं प्रत्यक्ष अनुभवन में आवे है। तातें प्रत्यक्षसी प्रतीति कूं लिए है। जैसे तहखाने मैं तिष्ठता कोई पुरुष राग करै है। सो पुरुष तौ दृष्टि गोचर नाहीं। परन्तु राग कौं सुनैं तैं ऐसी दृढ़ प्रतीत होय है, जो यह राग है, ताकों कोई पुरुष करै है, या मैं सन्देह नांहीं। तैसे ही इस जड़-तन विषैं देखने–जानने रूप क्रिया, अनेक चेष्टाका करनेहारा आत्मा है, सो मैं ही हौं। मैं ही देखूं–जानूं हौं। सुख–दुख मैं ही वेदूं हूं, और नाहीं। ऐसा प्रत्यक्ष होते, कोई देव भी कहै जो तूं आत्मा नाहीं, देखने-जाननेहारा कोई और ही है। तौ सम्यग्दृष्टीन कौं, वा देवकी ही मिथ्याबुद्धि भासै। परन्तु आप आत्मा है तामैं सन्देह नाहीं। ऐसी दृढ़ प्रतीत सहित प्रत्यक्ष भाव भासै है। अब प्रत्यक्ष देखने-जाननेहारा आत्मा तो मैं हौं सो नाहीं, यह कैसे कह्या जाय? जो बस्तु सन्देह सहित होय, तौ तामैं 'हां, 'ना, भी कही जाय। और निसंदेह विषैं परोक्षसा सन्देह कैसे कह्या जाय? ऐसे दृढ़ जानि सम्यग्दृष्टीन कैं आत्म स्वभाव की प्रत्यक्षता कही है। ऐसे

अनेक वस्तु निस्संदेह होय, सो प्रत्यक्ष प्रमाण कहिए है। ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण, वस्तु का स्वरूप जिन धर्म मैं बहुत है। तातें और के प्रत्यक्ष प्रमाणतैं अखंडित जिन धर्म, सत्य है। ऐसे लौकिक विषैं धर्म दयामई है। और परंपराय भी धर्म दयामई, अनुमान मैं भी धर्म दयामई, और शास्त्रन मैं भी धर्म दयामई, और प्रत्यक्ष भी धर्म दयामई। ऐसे पंच प्रमाण जिन धर्म मैं मिलैं हैं। तातें काहू के भी पंच प्रमाण करि अखंडित, जिन धर्म है, सो सत्य है। ऐसे अनेक नयन करि धर्म की परीक्षा करी, सो जिन धर्म पूज्य है। इति प्रत्यक्ष प्रमाण ॥ ५ ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये, शुद्ध धर्म परीक्षा, सप्तभंग, नवनय, पंच प्रमाणादि कथन, सुधर्म-कुधर्म मैं ज्ञेय-हेय-उपादेय वर्णनो नाम एकादश पर्व सम्पूर्णम् ॥ ११ ॥

आगे किस प्रकार की संगति करनी। सो तामैं ज्ञेय हेय उपादेय कहिए है।—

गाथा—सुह दुह दाणादि जहियो, सो उपादेयो संग हिद करदो।
हेयहेय विभावो, सुदिट्ठी सो होय आदायो ॥ २४ ॥

अर्थ—जो दुख दायक जगत निंद्य संग होय, सो तजिए। और हितकारी संग होय, सो उपादेय है। इस तरह योग्य-अयोग्य विचारि संग करै, सो आत्मा सम्यग्दृष्टी जानना। भावार्थ—सम्यग्दृष्टीन कैं ऐसा विचार सहज ही होय है। विवेकी, जो संगति करै, तामैं तीन

भाव हो हैं। शुभाशुभ भाव संग का समुच्चय विचारना सो तो ज्ञेय संग है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक तजन योग्य, एक ग्रहण योग्य। तहां ऐसा विचारै, जो जिस संगति तैं आपकौं दोष लागै, तथा अपयश होय, तथा आपकूं निंदा आवती होय, तथा पाप का बंध होता होय, सो संगति नहीं करनी। तथा जिस संगतैं अपना यश होय, लोकन में सत्कार होय, भली वस्तु का लाभ होय, शुभ कर्म का बंध होय इत्यादिक सुबुद्धि प्रगटै, कुबुद्धि नाश होय, जो अपने भले की संगति होय, सो करै। पीछे ऐसा विचारै जो इतने तौ कुसंग हैं—चोरी के करनहारे, निशदिन चोरी की चतुराई की नाना कला करन हारे चोर, तथा पराए द्रव्य हरवे कौं अनेक छल-छिद्रम करैं, विचारैं, ते चोर हैं। अरु माया करि नाना प्रकार भेष धरि, पर कौं ठगैं, सो चोर हैं। तथा पराए ठगवे कौं अनेक असत्य वचन भाखनेहारे, इत्यादिक लक्षणन सहित होंय, सो चोर हैं। तिनका संग हेय है। और भी जे तांत, सूत्र, रेशम, वस्त्र की फांसी बनाय, पर जीवन का घात करि, पराया द्रव्य हरैं, सो फांसीया चोर हैं। तथा स्त्री का स्वांग, मांगता, वैरागी, जोगी, व्यापारी, अनेक भेष धरि परकूं छलतैं मारि द्रव्य हरैं, सो ठग जाति के चोर हैं। और राह के मारने हारे, जे जबरदस्ती धन खोसैं, नहीं देय तो मारैं। ऐसे गिरास करने हारे भील, मीणा, मोड़, मेर, इत्यादिक ए चोर हैं। और जैसे लौकिक में चोर-चकार कहे हैं। जो पराए घर फोड़ैं, छल-छिद्र करि पराया धन हरैं। सो तो चोर कहिए। और जे जबरी तैं पराया माल खोसैं, आपकौं जोरावर मानैं, तुरंगन के असवारादि, तिन तैं दीन जन डरैं। बहुत धन के धरन

हारे गिरासीयादिक, ए चकार है। ऐसे चोर अरु चकार ए चोर के दोय भेद हैं। इनकौं आदि और भी लकड़ी, घास, भाजी के चोर, अरु इन चोरन के मित्र, तथा चोरन की विनय करनहारे, चोरन के पास बैठने हारे ए सर्व चोर समान जानि, विवेकी पुरुष इनका संग तजैं हैं। और द्यूतकार जो चौपरि, गंजफा, नरद, मूठि, होड़ादिक, जुवा के खेलने मैं प्रवीण, द्यूत व्यसन के प्रसिद्ध व्यसनी, तिनकूं सब जांनैं, जो ए प्रसिद्ध जुवारी हैं। ऐसे द्यूतन का कुसंग तजना योग्य है। और जे अभक्ष के भखनेहारे मलिन प्राणी, मांसाहारी, अशुचि के भोगी, तिनका संग तजने योग्य है। और जे मद्यपायी, मदोन्मत्त, खफ़्त, दिवाने समान वेसुधि, जिनके वचनन की प्रतीति नाहीं, ऐसे मद्यपी जीवन का संग तजवे योग्य है। और वेश्या व्यसनी, निर्लज्ज, विनय रहित, वेश्यान के संगम के तथा गाने के नृत्य के लोभी, कौतुकी, तिनका संग तजवे योग्य है। और जे महा हिंसक, जीवन के घाती, महा पापी, निर्दयी, भील, चंडाल, मोघिया, कसाई, खटीक इन आदिक जे करुणा रहित, नाश-कारी, ज्ञान अंध, दुराचारी इन आदिक हिंसक जीवन का संग तजवे योग्य है। और जे परस्त्रीन का रूप देखि भोग अभिलाषी, कुशील के प्यारे, दुर्बुद्धि, तिनका संग तजवे योग्य है। ऐसे कहे ये सप्त व्यसनी जीव, पापी, पाखंडी, तीव्र क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, हाँसि, कौतुक, मद–मत्सर के धारी, तिनका संग तजवे योग्य है। इत्यादिक कहे कुसंगन का त्याग, सो सम्यग्ज्ञान सत्य है। इति हेय संग। आगे उपादेय संग। एते संग सुखकारी हैं। तीर्थंकर, केवली, मुनीश्वर, व्रतीश्रावक, सम्यग्दृष्टी,

शान्तस्वभावी, दानी, तपसी, जपी, संयमी, धर्मध्यानी, धर्मचरचा करन हारे, ऊंचकुली, दयावान, विद्यावंत, इत्यादिक गुणवान पुरुषन की संगति पूज्य है। ये पुरुष प्रगटपने जगत में पूज्य पद धारी हैं। इनका यश सब लोग कहैं हैं। ये शुभाचारी हैं। ऐसे ऊंच पुरुषन का संग करना उपादेय है। ऐसे सम्यग्दृष्टीन की बुद्धि सहज ही शुभ संग चाहती व अशुभ संग तैं उदासीन होय है। इति संगति में हेय ज्ञेय उपादेय अधिकार। आगे विचार मैं हेय ज्ञेय उपादेय कहिये हैं।

गाथा—असुहो विचारो हेयो, चदुधो धम्म झाण चिंताये।
सम्मंतं सहल सुहावो, गेहेआदेय हेयणे माए ॥ ३५ ॥

अर्थ—तहां सम्यग्दृष्टी जो विचार करै, सो सहज ही ज्ञेय हेय उपादेय करि, तीन प्रकार होय जाय है। तहां भले-बुरे विचार का समुच्चय विचार करना, सो तौ ज्ञेय है। ताही के भेद दोय हैं। एक विचार तौ हेय हैं। एक उपादेय हैं। सो प्रथम हेय जो त्याग योग्य सर्व विचार, ताका स्वरूप कहिए है। विचारनाम ध्यान का है। सो अशुभ ध्यान के दोय भेद हैं। एक आर्त विचार है एक रौद्र विचार है। जहां परवस्तु की चाहि, सो आर्त है। और जहां पर-जीवन का बुरा चिंतवना, सो रौद्र विचार है। सो आर्त के चार भेद हैं। एक तौ भली वस्तु का वियोग होय, तव ऐसा विचार उपजै, जो ये भली वस्तु थी। मोकूं इष्ट थी। याके निमित्त पाय मोकों विशेष सुख था। अब मेरा सुख गया। ऐसे पुत्र, भाई, मात, तात, धन, हस्ति, घोटिक, राज, मित्र, शरीरादिक का वियोग होतें, मोह के वशी होय

शोक करै। सो इष्ट वियोग रूप विचार है। यह विचार विवेकीन कौं त्यागने योग्य है। याका नाम इष्ट वियोगज आर्तध्यान कह्या है ॥ १ ॥ और दूसरा भेद अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। ऐसे विचार, जहां आपकूं नाहीं चाहिए ऐसे जो खोटे निमित्त का मिलाप होना। ऐसे खोटे मिलाप तैं ऐसा विचार होय, जो मोकों मिल्या, सो मोहि खेदकारी है। मैं याकौं नहीं चाहै था। याके निमित्त तैं मोकों अरति उपजै है। ऐसे बैरी तथा जाका बहुत धन देना होय, तथा राह जाते चोर, नाहर इत्यादिक का मिलाप होते, इनके भय दूर करवे का निमित्त पाय, परणति खेद रूप होय विचार करना, सो अनिष्ट संयोगज आर्त विचार है ॥ २ ॥ और तीसरा आर्त विचार ताकौं कहिए। जो अपने तन मैं पाप कर्म उदय होते, भए जो नाना रोगन की उत्पत्ति, तिनके तीव्र दुख देख ऐसी अरति करनी। जो रोग तीव्र है, कौन उपाय तैं जाय, तथा कब जायगा? ताके मेटवे कूं अनेक सोच, चिंता, मंत्र, जंत्र, तंत्र, औषधादि करना। तथा अन्य कूं तीव्र रोग देख कैं आप डरना, जो ऐसा रोग मोकौं नहीं होय तौ भला है। ऐसे रोग पीड़ा का निमित्त पाय बारंबार विचार करना, सो पीड़ा चिंतवन आर्तध्यान है ॥ ३ ॥ और चौथा विचार जो कोई धर्म-कर्म का कार्य करते, पहले ऐसा विचार करै जो मोकूं याका ऐसा फल होहु। याका नाम निदान बंधा आर्त विचार है ॥ ४ ॥ आगे ए आर्त प्रगट होने कूं चिन्ह कहिए है। प्रथम तौ अंतरंग चिन्ह—जो अंतरंग में परिग्रह की तीव्र वांच्छा होय, जो मैं बहुत धन कैसे पाऊं। १। और कुशील की इच्छा जो मोकौं स्त्री का निमित्त कब मिलैगा। ऐसी चिंता होय। २। और माया कुटिलताई रूप परणति, अपने चित्त के छल-

कुटिलता औरन कों न जनावना, सो आर्तका लक्षण है।३। और अंतरंगकों दाह ऐसी रहै जो कोई कों साता नही चाहै। औरकों सुखी देखि, आप वाके दुखी करने का उपाय विचारना ॥४॥ और अति लोभ परणति, जो राज व लक्ष रुपय होंतै भी तृप्ती नहीं होय ॥ ५ ॥ और अपने भावन का कृतघ्नीपना, जो और अपने ऊपर उपकार करै, काहू का उपकार होय तौ ताकूं भूलि कैं उल्टा तातैं द्वेष भाव करना ॥ ६ ॥ और चित्त महा चंचल करना ॥ ७ ॥ और पंचेन्द्रिय विषयन की बारंबार चाहना करना ॥ ८ ॥ और सदीव शोक रूप परणति राखना ॥ ६ ॥ ए नव चिन्ह तौ अंतरंग आर्त होतें प्रगटें हैं। और वाह्य चिन्ह आर्त के, तहां दिन-दिनप्रति खांन-पांन अल्प होता जाय, तन क्षीण होय सो तन सोखन है ॥ १ ॥ और शरीर का वर्ण मारे चिंता के फिर जाय, सो विवर्ण चिन्ह है ॥ २ ॥ और कपोल पै हाथ धरि बैठना, सो आर्त चिन्ह है ॥ ३ ॥ और तीव्र चिन्ता तैं वार-वार नेत्रन तैं अश्रुपात का चलना ॥ ४ ॥ ए च्यारि चिन्ह बाह्य प्रगट होय हैं। ऐसे चिन्ह संहनन सहित आर्तध्यान के जानना। सो ऐसा विचार तिर्यञ्च गति का दाता जानना। ऐसा आर्तभाव सम्यक भये सहज ही हेय होय है। सम्यग्दृष्टी के त्याग भाव ही रहै है। इति आर्त विचार ॥ आगे रौद्र विचार कहिए है। रौद्र विचार ताकों कहिए। जहां पर-जीवन कों आप मारि हर्ष मानैं, तथा और को आदेश देय जीव घात कराय, हर्ष मानैं। तथा और कोई काहू जीव कूं मारता आप देखै तब हर्ष मानैं। तथा काहू कूं युद्ध करते देखि हर्ष मानैं। तथा अपनी चतुराई करि औरन कों ...र युद्ध कराय कैं हर्ष मानैं। कोई अन्य जीव के, हाथ कान नांकादिक अंग-उपांग

छेद कैं आनन्द मानैं। तथा और कोई, काहू के अंग-उपांग छेदता होय, ताकों देख आप हर्ष मानैं। तथा और का घर-धन लुटता देख आप आनंद मानैं। इत्यादिक जीवन कूं दुखी देखि आप हर्ष पावै, सो हिसानंद रौद्र विचार है॥ १॥ और जहाँ अपनी चतुराई करि असत्य बोलि हर्ष मानैं तथा औरन कों झूठ बोलते देखि हर्ष मानैं, जाकों झूठ प्रिय होय, इत्यादिक झूठ में आनन्द मानैं। सो मृषानंद रौद्रध्यान है। और आप चोरी करि आनंद मानैं, और को आदेश देय चोरी कराय आनंद मानैं। कोई के चोरी भई सुनि आनन्द मानैं। चोर ताकों अति प्यारे लागैं। इत्यादिक चोरी के कार्य-कारणन कों देखि आनन्द मानैं, सो चौर्यानंद रौद्र ध्यान विचार है॥ ३॥ और जहाँ बहुत परिग्रह इकट्ठे करि आनन्द मानैं, और आप गैया, भैंसि, बैल, घोड़ा, हाथी, गाड़ा, गाड़ी, रथ, सैन्यादिक परिग्रह तथा महल, बाग, कूप, बावड़ी, तलाब इनकों आदि बहु आरंभ करि आनन्द मानैं। तथा और कों ऐसे आरम्भ करावते देखि, आनंद मानैं, इत्यादिक बहुत परिग्रहमैं बहु आरम्भन मैं आनन्द का मानना, सो परिग्रहानंद रौद्र ध्यान है॥ ४॥ ऐसे च्यारि भेद रौद्र विचार हैं। सो नरक गति के दाता जानना। ऐसे रौद्र ध्यान च्यारि भेद रूप है। आर्त विचार सम्यग्दृष्टी कैं सहज ही हेय हैं। ए आर्त विचार रौद्र विचार ए दोऊ ही अशुभ फल के दाता हेय हैं। ऐसी जानि इन कुविचारन कूं तजै, हेय करै है। इति कुविचार। आगे सुविचार कहिए है। तहां धर्मात्मा जीवन कैं निरन्तर सहज ही ऐसा विचार रहै है। जीवाजीव पदार्थ केई

प्रगट हैं, केई अप्रगट हैं। केई भासैं हैं, केई ज्ञान की मंदता करि नाहीं भासैं हैं। परन्तु जैसे जिनदेव ने केवलज्ञान करि कह्या है, सो प्रमाण है। मेरी मंद बुद्धि करि मोकूं नाहीं भासै, तौ मति भासौ। परन्तु केवली के कहे मैं, मेरे संशय नाहीं। जिनदेव का कह्या प्रमाण है। ऐसी दृढ़ प्रतीति रूप विचार करना, सो आज्ञा विचय धर्म ध्यान है ॥ १ ॥ और जहां निरन्तर ऐसा विचार रहे जो मेरा धर्म निर्दोष कैसे रहै ? मेरे आयु पर्यंत धर्म का साधन कैसे रहै ? और मेरे तत्वज्ञान कैसे बढ़ै ? और धर्मध्यान मैं चित्त की एकता कैसे होय ? मेरे क्रोध मान माया लोभ कषायन की घटवारी कैसे होय ? समता भाव कैसे बढ़ै ? मैं शांतिरस अमृत का पान कब करूँगा ? मेरे संयमभाव कब प्रकट होंयगे ? इत्यादिक समता सहित धर्म ध्यान वढ़ावे रूप धर्मरुचा रूप बारंबार विचार का होना, सो अपाय विचय धर्मध्यान है ॥ २ ॥ और पूर्व पुण्य के उदय करि, प्रगटी जो अनेक सम्पदा, अनेक पंचेन्द्रिय जनित भोग सुख, तिनकूं पाय धर्मात्मा हर्ष नहीं करैं, मगन नहीं होय और ऐसा विचारैं, जो मैं या संसार मैं भ्रमण करते अनेकबार नरकादिक, तिर्यंचादि, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय आदि के महा दुःख मैंने अनेक बार भोगे। अनेक बार पशु होय घर-घर बिक्यो। अनेक बार मनुष्य होय घर-घर बिक्यौ। भूख सही। अनेक बार बनस्पति मैं उपजि, कटि के अनंतानंत भाग होय बिक्यौ। इत्यादिक अनेक आपदा का भोगनहारा मैं संसारी जीव, सो कोई किंचित पुण्य के उदय देव, इन्द्र, चक्री, विद्याधर, मण्डलेश्वर इत्यादिक विभूति, पंचेन्द्रिय सुख मोकूं आय मिले हैं। सो यह सुख-सम्पदा

कर्म की करी है। सो सर्व चपल है । अपना अल्पकाल उदय करि, जाति रहैंगे । ऐसा जानि कैं सम्यक् धन धारी, भोगरक्त चित्त नहीं करै। मगन नहीं होय । सो विपाक विचय धर्म ध्यान है । तथा अपने कोई पाप के उदय तैं अनेक दुख, संकट, आपदा, वेदना, शरीर पै आई होय। तो ज्ञाता पुरुष असाता नहीं करै, दुख नहीं मानैं । ऐसा विचारै, जो मैं पूर्व भवमैं देव राजादिक के अनेक पंचेन्द्रिय सुख भोगे, कामदेव समान शरीर सम्पदा भोगी हैं। अब कोई किंचित् पाप कर्म के उदय, मोकों तन पीड़ा, वेदना भई है । सो आप ही अपना रस देय, खिर जायगी । इत्यादिक शुभ विचार करि खेद नहीं करे। ऐसेही साता के उदय सुख नाहीं मानै। असाता के उदय दुखी नहीं होय । ऐसे विचार का नाम विपाक विचय धर्म ध्यान कहिये। ३। और स्थान, जो तीनौं लोक के आकार का विचार । जो ए तीन लोक पुरुषाकार है। अनादि निधन है । षट् द्रव्यनतें भरया, च्यारि गति जीवन का स्थान, तहां संसारी प्राणी शुभाशुभ भावन का फल भोगता, तन धरता, तजता, अनंत काल का भ्रमण करता सुख-दुख भाव करै है। ताही के फल फिर जन्म-मरण बढ़ावै है। जे रागद्वेष भाव तजि, कर्म नाश, मोक्ष होव, सो लोकके शीश सिद्ध होय विराजैं हैं। वे सिद्ध भगवान् जगत दुखन तें रहित हैं। जन्म-मरण संसार-भ्रमण ए सर्व दोष छांड़ि, सुखी होय हैं। ते सिद्ध दो प्रकार हैं । जो च्यारि घातिया कर्म रहित, केवल ज्ञान सहित, अनंत सुखी, समोशरण सहित, अनेक लक्षणों से मंडित, परम औदारिक के धारक सो तौ सकल सिद्ध हैं। और ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म रहित, अमूर्ती, चेतन, शुद्धात्मा सो अकल सिद्ध हैं।

औदारिक शरीर का नाम कल है। शरीर रहित अकल हैं। इन ज्ञेय गुण सहित जो सिद्ध हैं सो सर्व लोक के मस्तक, मुकुट समान विराजैं हैं। ऐसे लोकालोक का विशेष विचार चिंतवन-ध्यान करना, सो संस्थान विचय धर्मध्यान है ॥ ४ ॥ ऐसे कहे जे च्यारि प्रकार धर्मध्यान, सो धर्मात्मा जीवन के सहज ही होय हैं। यह विचार का फल स्वर्गादि उत्तम गति है। परंपराय मोक्ष होय है। तातैं ए विचार धर्मात्मा जीवन करि, उपादेय—करने योग्य हैं। इति धर्मध्यान ॥ आगे शुक्ल ध्यान—जहां आत्म स्वभाव का अरु पुद्गल स्वभाव का, भिन्न-भिन्न विचार करना, सो पृथक्त्व-वितर्क विचार शुक्ल ध्यान है ॥ १ ॥ और मनकों एकाग्रभावकरि एक ही अर्थ के विचार करतें केवलज्ञान होय, सो एकत्ववितर्क विचार शुक्ल ध्यान है ॥ २ ॥ और जहाँ मन-वचन-काय योग के अंश सूक्ष्म करने रूप आत्म परणति, सो सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात नाम शुक्लध्यान है। यहां मन प्राण के अभाव होते विचार का भी कथन नाहीं। एक आत्म-भाव ही शुद्ध रूप है, ए तीसरा शुक्लध्यान है ॥ ३ ॥ और जहाँ पुद्गलीक तन क्रिया का सम्बन्ध छोड़ि निर्बंध भाव होना, सो विपरीत क्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान है ॥ ४ ॥ इत्यादिक शुद्ध विचार सो उपादेय हैं। ऐसे विचार निकट संसारी जीवन कैं होय हैं। तथा कर्म रहित जीवन के होय हैं। और संसारी, धर्म रहित, भोरे, परभव में विपरीत दुख-फल के उपजावन हारे जीवन कूं ऐसा विचार महा दुर्लभ है। दीर्घ संसारी, भव भ्रमणहारे, अशुभ भावना के धारी जीवन कौं तौ, शुभ विचार होना महा कठिन है। ऐसे शुभाशुभ विचारमें सम्यग्दृष्टी

जीवन कौं हेय-उपादेय करना महा उत्तम है । सो शुद्धदृष्टि के होते, हेय-उपादेय भाव सहज ही प्रगट होय हैं । इति विचार विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय भावाधिकार समाप्त भया ॥

आगे आचार जो क्रिया, तामैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है । तहां समुच्चय शुभाशुभ क्रियान के विचार, सो तो ज्ञेय हैं । अरु ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं । सो एक तो शुभाचार है, सो तौ उपादेय है । और एक अशुभाचार है, सो हेय है । सो जहां दया सहित चलना, भूमि विषैं जीव देखि, वचाय चलना, सो शुभाचार है । और बोलना सो सर्व कूं सुखकारी वचन, दया सहित, हित-मित, सत्य, पुण्यकारी वचन बोलना, सो शुभ क्रिया है । और स्नान करना सो गाले (छने) जलतें करना, सरोवर नदी वापीन में प्रवेश करि नहीं सपरना (स्नान करना), आपके शरीर की आताप तैं बहुत जल-जीवन का घात होय है, तातें यह कार्य तजना भला है । और कदाचित् ऐसा ही निमित्त मिलै, तौ जलाशय मैं ते जल गालि, दूर जाय, स्नान करना, यह शुभाचार है । और चौका देना, वुहारी देना, तौ भूमि शुद्ध देखि, जीव बचाव करना, ए शुभाचार है । और अग्नि प्रजालना सो ईंधन भूमि शोधि, शुद्ध देखि जलाना, यह शुभाचार क्रिया है । और पीसना सो अन्न, चक्की शोधि, दिनको, उद्योत स्थान मैं, दृष्टी गोचार देख पीसना, सो शुभाचार है । धोवना सो गाले जल से वस्त्रादि धोवना । कचारना, सो दिन छित उद्योत स्थान मैं कचारना । रांधना, भोजन करना सो सब दिन में करना, सो शुभाचार है । इत्यादिक क्रिया करनी, सो सर्व विचारि देखि-दयाभावनतें करनी, सो शुभ क्रिया हैं । और आभूषण-वस्त्र पहिरना, सो शुभाचार है । और अपनी वय प्रमाण

पहराव बंदेज राखै, सो शुभाचार है। जाकरि लौकिक निंदा नहीं पावै। जैसे ऊंचा कुल में वस्त्र-आभूषण पहनते आये, ता प्रमाण पहरै। जो राज करन हारे होय, तथा सेठ व्योपारी होय, तथा निर्धन होय, तथा धनवान् होय। सो सर्व अपने-अपने पदस्थ माफिक राखै। इत्यादिक शुभाचार की प्रवृत्ति, सो शुभ क्रिया है। ऐसी क्रिया-आचार विवेकीन करि उपादेय है। इति शुभाचार ॥ आगे अशुभाचार कहिये है। बिना देखें शीघ्र-शीघ्र चलना, बेमर्याद, बिना विचारै, राज विरुद्ध, लोक विरुद्ध ऐसे वचन बोलना, सो कुक्रिया है। और अनेक आचार ऊपरि कहे तिनतैं विपरीत, खोटे आचार, पर पीड़ाकारी, दया रहित बोलना, नदी सरोवर विषैं कूदना, बड़े द्रह अनगाले जल के समूह तिन में पैठना, तैरना, कौतुक सहित सपरना सो कुक्रिया हैं। तथा वस्त्रादि धोवना और कुल-निंद्य इत्यादिक बे-मर्याद आभूषण-वस्त्र का पहरना, सो कुआचार है। सो ए क्रिया तजवे योग्य हैं ॥ ए घरन सम्बन्धी केतीक क्रिया हैं। सो स्त्रीन के आधीन हैं। तिन स्त्रीन के दोय भेद हैं। एक स्त्री तौ आचार क्रिया रहित, धर्म भावना तैं विमुख, विषय-कषाय में रंजायमान, क्रोध-मान-माया-लोभ सहित, क्रूर स्वभाव धरन हारी, कुटिल चित्त की धरन हारी, अपने शील गुण की रक्षा का नहीं है लोभ जाकें, अशुभ भावना, हीनाचरणी इत्यादिक कुलक्षण सहित, खोटी स्त्री होय हैं। और एक स्त्री हैं सो शुभाचरणी, धर्म परणतिकौं धरैं, पवित्र चित्त की धरनहारी, शीलगुण सहित होय। गुरुजन जो सास-श्वसुर माता-पिता की आम्नाय प्रमाण, विनय सहित प्रवर्त्तनहारी, सौभाग्य गुण की धरन हारी, यशवंती, इत्या-

दिक भले गुण सहित स्त्री होय हैं। यह दोय जाति, शुभाशुभ स्त्री की जाननी। सो इनकी कूंखि विषैं भी जो बालक अवतार लेय, सो शुभ स्त्री के गर्भ तैं शुभ सन्तान की उत्पत्ति होय। और अशुभ स्त्री की कूंख तैं अशुभ जीव अवतार लेय है। जैसे पृथ्वी विषैं दोय खांन निकसैं, सो एक खान मैं तौ उत्तम रतनादिक निकसैं हैं। कोऊ खांन में लोहा निपजै है। तैसेही स्त्रीन की शुभ-अशुभ कूंखि जानना। सो तिन शुभ-अशुभ सन्तान होवेके कारण बताईए है—

गाथा—पुच्छवती जुगवासर, सेवत संताण होय विण सीलो।
विसणाणी अपलच्छो, धम्म रहीयो अणिण विणचारो ॥ ३६ ॥

अर्थ—तहां पुष्पवतीस्त्री धर्म सहित नारी होय, ताकौं कोई कुबुद्धि पुरुष पहले दिन तथा दूसरे दिन, तातैं संगम करे। अरु ताकौं सन्तान उपजै तो वह शील रहित, परस्त्री वेश्यादिक विषै महा काम लम्पटी होय, सप्तव्यसनी होय, अपलच्छणी होय, धर्मरहित होय, अज्ञानी होय, अनाचारी होय। भावार्थ-जो स्त्री स्त्रीधर्म—ऋतुवती होय, ताके करवे योग्य क्रिया कहिए है। जो खोटी स्त्री हैं ते तौ स्त्रीधर्म भए सर्व पुरुष-स्त्री-बालकन कों छीवैं हैं। घर का सकल धंधा-काम करैं हैं। घर के घटपटादि सर्व छीवैं हैं। तन श्रृंगार करैं हैं। ताम्बूल खाय, गरिष्ट पेट भर भोजन करैं, गीत-नृत्यादि रति क्रिया करैं। हाँसि-कौतुकादिक क्रीड़ा करैं। अपना तन, अन्य जीवन के तनतैं स्पर्श करावैं। इत्यादिक क्रिया कही, सो ए अनाचार रूप क्रिया है। सो इस रूप रहने से खोटी स्त्री जानना। हे भव्य, यह ऋतुवती स्त्री, अस्पर्श-शूद्र समान है। छीवे योग्य नाहीं। याके खान-पान का बासन, अस्पर्श—शूद्र के बासन समान है। तातैं जो

स्त्री, स्त्रीधर्म क्रिया मैं शिथिल है। सो महा अशुभ, पाप क्रिया कर्म कूं उपजाय, प्रमाद योग तैं अपना पाया मनुष्य भव बिगाड़ि, परभव कूं दुख करै है। तातैं ऊपर कही जो स्त्रीधर्म भए पीछे अशुभ क्रिया, सौ नहीं करना योग्य है, खोटी स्त्री ऐसी क्रिया करै हैं॥ अब शुभ स्त्रीन की क्रिया कहिए है। सो जे शीलवान स्त्री हैं। ते ऋतुवन्ती भए पीछे, अपने मलिन वस्त्र उतार कैं अप्रच्छन्न धोवैं, कोई देखे नाहीं। आप सपर (स्नान कर) कैं उज्ज्वल और वस्त्र पहिर कैं, एकांत स्थान मैं तिण-घास-डाभ का साथरा (बिछौना) बिछाय तिष्ठैं। अपना मुंह काहू को नहीं दिखावैं। नहीं काहू का मुख आप देखैं। और भोजन करैं सो रस रहित-नीरस भोजन करैं। सो हू उदर भर नहीं खांय। दिन में निद्रा नहीं करैं और तन पै शृंगार नहीं करैं। तांबूलादिक नहीं खांय। गीत-नृत्य, हाँसि-कौतुक आदि नाहीं करैं। सुगन्धादिक तन-लेपन नाहीं करैं। अंजन-सुरमादि नेत्रन मैं अंजन नहीं करैं। हाथ-पाँव के नख नाहीं सुधारैं। अपना अंग छिपाय, तीन दिन अप्रच्छन्न रहैं। सो रात्री मैं ऋतुवन्ती भई होय, तौ दिन नाहीं गिनै। जो सूर्यके उद्योत ऋतुवन्ती भई होय, तौ दिन गिनै। ऐसे तीन दिन एकांत मैं रहैं। और भोजन पातल में खाय। तथा करही (कढ़ाई) में खाय। और जल पीवैं कौं मिट्टी का बासन राखै, तातें जल पीवैं। शुद्ध भए, मिट्टी के बासण डार देय, तथा फोरि डारै। चौथे दिन शुद्ध होय, स्नान करि, अपने पति का मुख देखै। तथा पंचमे दिन पति का मुख देखै। पीछे सास, ननद का मुख देखै। ऐसी उत्तम स्त्री कैं आस रहै। पति संगम तें संतान होय। सो पवित्र बुद्धि का धारक, पिता समान रूप-गुण-लक्षण-काय का धारी होय। शुभाचारी,

दयावान, धर्मवन्त, शीलवन्त, इत्यादिक गुण सहित शुभपुत्र होय ॥ और अब कुस्त्री को का स्वरूप कहिए है। जो कुस्त्री तथा खोटी स्त्री है सो ऋतुवन्ती भए पीछे, पहले दिन तथा दूसरे दिन विसें ही कुशील सेवन करें है। जे महा अभागी, भोरे, काम-लम्पटी, दुर्बुद्धि हैं, तिन के वीर्य तें जो पुत्र-पुत्री होय, सो कुशीलवान होय। द्यूतादिक सप्त व्यसनी होय, मांस-भक्षी होय, सुरापायी होय, वेश्यागमनी होय, जीवघाती-निर्दयी होय, चोरकला में प्रवीन होय, परस्त्री का इच्छुक होय, अभक्ष का भोगी, अभक्ष भक्षण हारा होय, शुभ-अशुभ विचार रहित, महा मूर्ख, अज्ञानी, अंध समान होय। खाद्य-अखाद्य के विचार में पशु समान अनाचारी होय। महा क्रोधी होय, मानी होय, महा दगाबाज होय, लोभी होय, अविनयी होय, इत्यादिक अपलक्षणी होय। परभव के सुख का कारण जो धर्म, तातें रहित अधर्मी होय। माता-पितान कौं दुखदाई अविनयी होय। विशेष ज्ञान-कला-चतुराई लौकिक कला तैं रहित, मूढ़ होय। कुरूप होय, दीन होय, दरिद्री होय, बाल अवस्था ही तैं बड़े कोप का धारी होय। महामानी होय, क्रूर दृष्टि होय। अपना मान भंग भए मरन विचारै, देशान्तर निकस जाना विचारै। महा गूढ़ चित्त का धारी, अपने चित्त का अभिप्राय काहू कौं नहीं जनावै। महालोभी, तन देय धन नहीं देय। आप भूख सहैं, अपयशादि तैं नाहीं डरै, जैसे—तैसे धन जोरै, ऐसा लोभी होय। इत्यादिक अनेक औगुणी होय। ऐसे पुत्र तैं कुल-कलंक चढ़ै है। तातें तिन उत्तम कुल के स्त्री—पुरुषन कूं ऋतु समय की क्रिया में प्रमाद तज, शुभ रूप प्रवर्तना योग्य है। और जे उत्तम स्त्री हैं सो ऊपर कहि आए शुभ स्त्रीन के शुभ लक्षण,

स्त्री धर्म की मर्यादा, सो ताही प्रमाण प्रमाद रहित पालैं हैं। उत्तम धर्मात्मा स्त्री, मंद है भोग अभिलाषा जाकै ऐसी शुभ स्त्री, महा सती कैं, चौथे दिन सपरि (स्नान करि) पति संग तैं गर्भ रहै, तथा पंचम दिन तथा षष्टम दिन तथा सप्तम दिन भर्तार तैं संगम तैं गर्भ रहै है। ता गर्भ विषैं शुभात्मा, पुण्य बंध करने हारा, अन्य गति तैं चय करि, ताके गर्भ विषैं अवतार लेय। सो चौथे दिन का गर्भ रह्या जीव मंद कषायी, धर्म रुचि सहित, संयम–सम्पदा सहित, सम्यग्दर्शन रत्न का धारी होय है। और पंचम दिन का गर्भ रह्या होय, तहां महा उत्तम जीव आय अवतार लेय, सो पुण्याधिकारी अनेक राज भोग का भोक्ता होय, पीछे अणुव्रत तथा महाव्रत का धारी होय। षष्टम दिन का गर्भ रह्या, सो जीव दया–रस का धारी, देश व्रत धारी, शुभ गति जाय, तथा महाव्रती होय। और सप्तम दिन का गर्भ रह्या जीव, निकट संसारी भव्यात्मा आय कैं अवतार धरैं। सो अनेक पंचेन्द्रिय भोग–सुख भोगि, तीर्थंकर, चक्री, कामदेवादिक, महान राज सम्पदा भोग, पीछे संयम पाय सिद्ध पद पावे, ऐसा पुत्र होय। ऐसे शुभ स्त्रीन की शुभ क्रिया कही। इस तरह शुभाशुभ क्रियाचार कह्या। सो विवेकीन कौं समझि, अपने भले योग्य होय, सो करना योग्य है। इति आचार क्रिया मैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कही॥ आगे कहै हैं जो उत्तम श्रावकन के धर्म आभूषण, कर्म आभूषण क्या, सो कहिए है। सो आभूषण भेद दोय हैं। एक तो धर्म आभूषण, एक कर्म आभूषण। इन दोय आभूषण सहित होंय, ते ही महा सुन्दर हैं। तेई बड़ भागी हैं। ते ही सराहबे (प्रसंशा) योग्य हैं। सो

दोय भेद आभूषण का, विशेष कहिए है। जो कर्म अपेक्षा कर (हाथ) आभूषण चूरा (कड़ा), मुंदरी (अगूंठी) आदिक जिन तैं कर शोभै, सो कर आभूषण हैं। और धर्मात्मा जीवन कैं जिन हाथन तैं देव-गुरु-धर्म की पूजा करतैं, नमस्कार करतैं, कर दोऊ कमलाकार होंय। सो ही हाथन का पावना सुफल है। जिन हाथन तैं देव-पूजादि शुभ कार्य करना, सो ही कर आभूषण है ॥१॥ और भुजबंध-बाजूबंधादिक जातैं भुज शोभै, सो भुजाभूषण है। सो ये कर्म सम्बन्धी भुज आभूषण हैं। और धर्मात्मा जीव जिन भुजन तैं परजीवन की रक्षा करैं। तिनकूं देखि कोई दुष्ट जन, दीन जीवन कूं नहीं पीड़ित करि सकै। साधुनकी रक्षा, तिन भुजन तैं दुष्ट जीवन कौं पीड़ा-दण्ड देने की शक्ति, दीन जीवन की रक्षा कूं योधा, शरण आए के रक्षक, इत्यादिक पुरुषार्थ तिन करि जाकी भुजा शोभायमान है, सो ही भुज आभूषण हैं। यातैं धर्मात्मा पुरुषनके भुज शोभा पावैं ॥२॥ और कंठी, माला, हार इन आदिक आभूषण जिनतैं उर शोभा पावै है। सो उर आभूषण हैं। ए कर्म सम्बन्धी हैं। और जा उर में सदीव अरहंतादि पंचपरमेष्ठी के गुणन का सुमरण, वैराग्य चिंतवन, बारह भावना, तथा सोलह कारण भावना का चिन्तवन करना, सो धर्मात्मा जीवन कैं उर आभूषण हैं ॥ ३ ॥ और पांवन के आभूषण जातैं पद शोभा पावै, सो कर्म सम्बन्धी पद आभूषण हैं। और धर्मात्मा जीवनके जिन पावन तैं सिद्ध क्षेत्रादि यात्रा करिए, सो पद पाएका फल है, सो पद आभूषण हैं ॥ ४ ॥ आगे मुकुट, तुररा, शिरपेंचादि इनतैं शिर की शोभा होय, सो शिर आभूषण कर्म सम्बन्धी हैं। और जा शिर तैं देव-गुरु-धर्मकूं नमस्कार कीजिए, सो शिर सफल है।

धर्मी–जीवन कैं ये ही शिर आभूषण हैं ॥५॥ और कर्म की अपेक्षा मुखमण्डलके तिलकादि आभूषण हैं। तथा ताम्बूलादिक पान का खावनादिक ए सर्व मुख के आभूषण हैं। इनतैं मुख भला शोभै है। और धर्मात्मा जीवन कैं जा मुखतैं सर्व-हितकारी, मिष्ट, हितमित वचन का बोलना, सो मुख आभूषण है। तथा अन्य जीवन के रक्षक, दयामई वचन जा मुखतैं बोलना तथा सम्यक प्रकार सत्य, मन-वचन की एकता सहित, जिस मुखतैं पंच परमेष्ठी की स्तुति करना तथा जा मुखतैं इन्द्र, चक्रवर्ती, नारायण, कामदेवादिक महान पुरुषन की कथा करिए, सो मुख का शृंगार है। तथा मुनि गणधरन के वचन सुनिकैं, पीछे अपने मुखतैं वही वचन औरन पै प्रकाशित, करनासो मुख सफल है। तथा यथायोग्य विनयकारी करना, पर के श्रवणन कूं हितकारी वचन जा मुखतैं बोलना, सोही धर्मकारी जीवन कैं मुख आभूषण है॥६॥ और कर्म अपेक्षा नेत्र–अंजन जाकरि नेत्र भले लागैं, सो अंजनादि नेत्रके आभूषण हैं। और धर्मात्मा जीवन के जिन नेत्रनतैं जिनदेव का दर्शन करिकैं, हर्ष मानिए, सो ही नेत्र आभूषण हैं। तथा जिन नेत्रन तैं अनेक जिन शासनके शास्त्रनकौं परमार्थ–दृष्टी करि देखिये, सो नेत्र सफल हैं। तथा पर वस्तु जे सुन्दर स्त्री, देवांगनादिक का रूप जे परम पदार्थ तिनकूं निर्विकार, क्रूरता रहित होय देखना, सो नेत्रन कौं आभूषण हैं। तिन करि नेत्र सफल हैं ॥ ७ ॥ और कर्म अपेक्षा कर्ण मंडन जो कुण्डलादिक, जिनतैं कान भलै शोभैं, सो कर्ण आभूषण हैं। और धर्मात्मा जीवनकैं जिन काननतैं जिनगुण श्रवण करना। तथा तीर्थंकर, केवली, गणधरादिक महामुनीन के गुण श्रवण करना। तथा जिन-भाषित दयामई-

धर्म का जिन कानन तैं सुनना, सो कान कूं आभूषण हैं । कान पाए का फल है ॥ ८ ॥ और कर्म सम्बन्धी तन-मंडन वस्त्रादि अनेक तन आभूषण हैं । इनतैं तन भला शोभै है । और धर्म सम्बन्धी, जा तन तैं महाव्रत-अणुव्रत पालना, पंच समिति, तीन गुप्ति ए गुण-रतन करि तन शोभायमान करना, सो तन पाए की शोभा है । तथा जा तनतैं कोई जीवन कूं नहीं पीड़ना, अन्य की रक्षा करनी, तनका भयानीक आकार बनाय भोरे जीवन कूं भय नहीं उपजावना । और जा शरीर तैं शुभाचार करि, शान्ति मुद्रा सहित रहना, अपनी मूर्ती देखि औरकौं विश्वास उपजावना, सो ही तन आभूषण हैं । ऐसा तन सफल है ॥९॥ और कर्म अपेक्षा घर मंडन, धन की वृद्धि सहित सपूत पुत्र का होना । आज्ञाकारिणी, सुलक्षणी, शीलवान, विनयवान, रूपादि गुण सहित भली स्त्री का होना, सो तथा माता-पिता-भाई-पुत्रादि सकल कुटुम्ब विषैं परस्पर स्नेह, इत्यादिक निमित्तन का मिलना, सो यातैं घर भला दीखै । सो कर्म अपेक्षा ए घर आभूषण हैं । और धर्म अपेक्षा जा घर विषैं शुभाचारी दयावान धर्मी जीव होंय, तथा जा घर मैं मुनि-श्रावकादि धर्मात्मा जीवन का सदीव प्रवेश होय । सो घर की शोभा कारक, घर आभूषण हैं । यातैं घर सफल है ॥ १० ॥ और कर्म अपेक्षा धन मंडन, चित्त की उदारतापनै सहित अपनै अनेक जीव-कुटुम्बादिक तिन सबमैं बाँट खावना । पंचेन्द्रिय सुख में लगावना, रतन-कनकादिक के अनेक मनोग्य मंदिर बनाय, तिनमैं अनेक चित्रामादि शोभा कराय रहना । अनेक जाति के जननकूं यश के निमित्त दान देना, और पुत्र-पुत्री आदिक की शादीन मैं द्रव्य लगावना तथा पुत्रादिक की उत्पत्ति के

उत्सवन मैं धन खर्चना, तथा भाई–बन्धु–मित्रन में धन देना, तथा बहिन–भांजी कूं धन देना, इत्यादि स्थानकन मैं उदारता सहित हित-मित करि धन लगावना, सो धन का आभूषण है। यातैं धन शोभायमान होय है। और धर्म की अपेक्षा, अपना धन उदारता सहित धर्मानुराग करि नवधा भक्ति सहित मुनि कूं दान देना, तहां धन लगावना ॥ १ ॥ तथा सुवर्ण-चांदी के अक्षरन सहित, स्पष्ट भारी पत्रन विषैं शास्त्र लिखाना। तिनमें अनेक भारी मोल के मनोज्ञ वस्त्रन के पूठे बंधन कराय लगावना ॥ २ ॥ तथा जिन पूजा विषैं मोतीन के अक्षत, सुवर्ण–चांदी के फूल, रतननके दीपकादि उत्तम अष्ट द्रव्य मिलाय, प्रभू की पूजा में लगावना। तथा भारी पूजा–विधान, तीन लोक के जिन मंदिरन की पूजा, तथा तेरहद्वीप की पूजा (याही का नाम इन्द्रध्वज विधान है), तथा नन्दीश्वर विधान पूजा तथा अढ़ाई द्वीप का विधान तथा जम्बूद्वीप विधान, कर्म दहन विधान, पंचपरमेष्ठी विधान, पंचकल्याणकादि अनेक विधान कराय, जिन पूजा में धन लगावना ॥ ३ ॥ और महादीर्घ उत्तुंग विस्तार सहित, जिन मंदिर कराय, तिन विषैं अनेक चांदी–सुवर्ण का चित्राम तथा शुभ रंग का चित्राम करावना, तामैं धन लगावना। तथा अनेक परदा, चांदनी, गदरा (गलीचा), शतरंजादि (दरी) अनेक बिछावना, तथा नौवत, निशान, घंटा, छत्र, सिंहासन, चमर, ध्वजा इत्यादि करावना, तथा पूजा के उपकरण–थाल, रकेबी, झारी, प्यालादि अनेक चांदी–सुवर्ण के करावना, इत्यादिक शोभा सहित जिन मंदिर बनाय तामैं धन लगावना ॥ ४ ॥ और जिन बिम्बन की विधी सहित, जिन बिम्ब करावना। सो ताका संक्षेप विधान कहिए

हैं। सो जिन बिम्ब करने कौं प्रथम तौ पाषाण कूं खांनि देखै, सो उत्तम रतन समान पाषाण की खानि देखै। पीछे, पहले दिन तौ खानि–शोधन–क्रिया करै। पीछे तहां अनेक बादित्र सहित शिल्प शास्त्र का वेत्ता शिल्पी, सो अपना तन शुद्ध करि, उज्ज्वल वस्त्र धारि, उस खानि की शास्त्रोक्त पूजा करै। पीछे पाषाण काटै, सो शुद्ध पाषाण होय तौ लावै। रेखा जो जनेऊ तामैं नहीं होय, बीधा नाहीं होय, गल्या नाहीं होय, ऐसे अनेक दोष सौं रहित शुद्ध पाषाण लावै। पीछे एकांत स्थान पै प्रतिबिम्ब का निर्मापण करै। तहां शिल्पी अरु करावनहारा धर्मी श्रावक, दोऊ शील सहित रहैं। जेते काल काम करै, तेते काल प्रमाद रहित शिल्पी रहै। प्रमाद भये विनय करि उठ खड़ा रहै, काम नहीं करै। ऐसे जेते दिन प्रतिबिम्बन का निर्मापण करै, तेते ब्रह्मचर्य सहित रहै। दीन–दुखीन कूं सदीव दान भया करै। शिल्पी एक बार भोजन करै, सो भी अल्प करै। तन मैं विकार नहीं होय। इत्यादिक अनेक शुद्धता सहित जिन बिम्ब कराय, धन लगावै। सो धन सफल है ॥ ५ ॥ पीछे जिन बिम्बन की प्रतिष्ठा करावै। तहां देश-देश के धर्मी श्रावक, विनयतैं पत्रनतैं न्योते देयकैं बुलावै, पीछे सर्व की आये पै सुश्रूषा करै। वांच्छित दान, दुखित–भुखित कूं अन्न वस्त्र देय, और याचिकनि कूं प्रभावना के हेतु वांच्छित पट–आभूषण–घोटिक दान देय। इत्यादिक उत्सवन मैं धन खर्चै। सो धन सफल है ॥ ६ ॥ और सिद्ध क्षेत्रादिक की यात्रा के निमित्त अनेक साधर्मी, आप जैसे धर्मात्मा जीवन कूं संग लेय यात्रा करै, सो मंद गमन करै। जा मैं मुनि-श्रावक-व्रतीन का निर्वाह होय, ऐसे तौ चलै। और राह मैं, बन मैं,

नगर मैं, तहां जे-जे जिन मंदिर आवैं, तहां-तहां सर्व जगह भगवान की पूजा—उत्सव करते चलैं। और दीन-दुखतन कौं दान देता, संघ की समाधानी करता, निराकुलभाव सहित यात्रा करि, धन खर्चे। सो धन सफल है ॥ ७ ॥ ऐसे मुनिदान, शास्त्र लिखावना, जिन पूजा, जिन बिम्ब करावना, जिनमंदिर करावना, जिन प्रतिष्ठा करावना, सिद्धक्षेत्र यात्रा, इन सप्त क्षेत्रनमें धन लागै। सो धन कौ आभूषण हैं ॥ ११ ॥ और कर्म अपेक्षा पुत्र मंडन जाकौं कहिए, गुरुजन जो माता-पितादिक बड़े होंय तिन कूं सुखदायक होय, और यथायोग्य सर्व के विनय-साधन में प्रवीण होय। माता—पितादिकनिकैं वह ही आप सपूत कहाय, अपने गुणन तैं माता-पितानि कौं साता उपजावै। लोकन मैं अपनी सज्जनता, विनय-गुण, उदारतादि गुण प्रगट करि, सर्व तैं सपूत (सुपुत्र) कहावै। सो ए पुत्र कौं आभूषण हैं। और धर्म अपेक्षा चलया आया जो अनादि कालका श्रावकन का धर्म, ताकौं उत्तम जानि सेवते आए तीर्थंकरादि उत्तम श्रावक, ताकी परंपराय लिये देव-धर्म-गुरुकी विनय सहित, च्यारि प्रकार संघ की सेवा कूं लिये, शुभाचार रूप, देव-धर्म-गुरुकी श्रद्धा सहित, धर्म कौं दृढ़ करि, अशुद्ध क्रिया आचार कूं टालिकैं, अपने कुल—मर्याद जो श्रावक धर्म की परिपाटी, बड़े चले आए ता प्रमाण माता-पिता के धर्म आप चालै, कुल-धर्म तै छूटै नाहीं। आप माता-पितान की धर्म मर्यादा नहीं तजै, सो पुत्र कौं आभूषण हैं ॥ १२ ॥ और लौकिक अपेक्षा स्त्री मंडन-दोऊ पक्ष की मर्यादा कूं पवित्र करती। गुरुजन जो सास-स्वसुर-भर्तारादि तथा माता-पिता तिन दोऊ पक्ष में विनय सहित चलन होय, सो स्त्री को आभूषण हैं। या करि

लोकन तैं प्रशंसा पावै, भली दीखै है। और धर्म आभूषण ये हैं जो शुभाचार सहित होय, शील—शृंगार जाके उर में होय, पति आज्ञा में तत्पर होय, देव-धर्म-गुरु की परिपाटी की जानन हारी, दृढ़ श्रद्धान सहित होय। सो स्त्री, धर्मात्मा, लज्जा के भार करि नम्रीभूत दृष्टी धरै, संसार-भोगन तैं उदास, भर्तार आज्ञा भंग नहीं करवे कूं भोगन कूं भोगवै है। ऐसे गुण सहित जा स्त्री के आभूषण होय, सो स्त्री महा सुन्दर जानना। यह कहे जे गुण, सो स्त्रीनके आभूषण हैं ॥१३॥ ऐसे कहे जे कर्ममण्डन आभूषण और धर्म मण्डन आभूषण, सो विवेकी ऊंचकुली धर्मात्मा पुरुषन कौं, दोऊ जाति के आभूषण पहरना योग्य है। कर्ममण्डन तैं तन भला दीखै है, इहां शोभा पावै। और धर्म मंडन तैं याभव, परभव दोय ही भव, शोभा होय है। तातें ऐसा जानि, ऐसे दोऊ भव यश-सुख निमित्त, दोऊ आभूषण उर विषैं धारणा योग्य है। ऐसे दोऊ भव सुधारने का निमित्त योग्य कार्य, कोई दीर्घ पुण्य तैं मिलै है। तातें भव-भव में सुख-यश जिन कौं चाहिए, सो भव्यात्मा धर्म का शरण लेहु। ऐसे शुभ खान—पान तथा अशुभ खान-पान तथा स्त्री धर्म के भेद तथा धर्म-कर्म आभूषण इत्यादिक कथन ऊपर कहि आए। सो विवेकी जीवन कूं इन विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय करना योग्य है। अशुभ आचारका त्यागव शुभ का ग्रहण कार्यकारी है॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये, शुभाशुभआचार, स्त्रीधर्म वर्णन, धर्मकर्म आभूषण कथन वर्णनो नाम द्वादश पर्व सम्पूर्णम् ॥ १२ ॥



आगे खान-पान विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां खान-पान क्रिया है, सो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव करि, विचारि-देखि करना योग्य है। सोई द्रव्य विषैं तो शुभाशुभ जीवन कूं विचारना। और क्षेत्र मैं शुभाशुभ क्षेत्र का विचारना। और काल में शुभाशुभ काल का विचारना। और भावन में शुभाशुभ भाव विचारना। ऐसे विधी विचारिए, जो यह खान-पान किस जीव नें किया है? सो करनेहारा आचरणी-धर्मी है, अक (अथवा) मूर्ख है, पापाचारी मलीन है? सो तो द्रव्य विचार है। और यह खान-पान किस क्षेत्र का किया है? सो क्षेत्र योग्य है, वा अयोग्य है? ऐसे क्षेत्र बिचारिए। और ए खान-पान किया, सो कौन काल में किया है? सो काल योग्य है, वा अयोग्य है? और ए खान-पान किया, सो कैसे भावन तें किया? सो वाके भाव शुभ हैं, अक अशुभ हैं? ऐसे भावन का विचार करैं। ऐसे विचार कें, विवेकी खान-पान मैं ज्ञेय-हेय-उपादेय करैं। सो कैसे करैं, सो कहिए है। तहां क्षेत्र ऐसा होय जो हाड़ नहीं दीखै, मांस पिण्ड नहीं दीखै, जहां रुधिर नहीं दीखै, जहां मदिरा नहीं दीखै, तजी वस्तु अपने भोजन मैं नहीं आवै, अपने भोजन मैं जीव पतन नहीं होय, जहां पंचेन्द्रियका मल नहीं दीखै, ए सात कारण रहित शुद्ध क्षेत्र होय। जहां अंधकार नहीं होय, बहु मनुष्य-पशून का गमन नहीं होय, एकांत होय, सो भोजन-पान क्षेत्र शुद्ध है। और भली क्रियावान भोजन करने हारा होय। भोजन करने हारे का शरीर शुद्ध होय, करनहारा दयावान होय, करनेहारा पाप तें डरता होय, खांसी-श्वास रोग नहीं होय, करनेहारे के तन में जुकाम नहीं होय, कफ नहीं होय, खैन (बमन) नहीं होय, अतीसार नहीं होय, तन में

फोड़ा—दुखना नहीं होय, खुजरी नहीं होय, राजरोग कुष्टादि नहीं होय, इत्यादिक रोग-दुखन करि रहित, शुद्ध भोजन करन हारा होय, बिकलता रहित होय, सो द्रव्य शुद्ध है। तथा भोजन में आवैं ऐसे अन्न, जल, घृत, दुग्धादि तथा तंदुल, गेहूं, चनै, मूंगादि अन्न बींधे गये, जीव सहित नहीं होय। तथा घृत-जल, चर्मादिकका नहीं होय। इत्यादि ये भी द्रव्य शुद्ध जानना। और काल शुद्ध-जो रात्रि का किया आरम्भ नहीं होय, बड़ी बार जो भोजन की मर्यादा का काल उल्लंघन नहीं भया होय, तथा रात्रि बसाया बासी नहीं होय। इत्यादिक काल शुद्ध होय, सो काल शुद्ध जानना। और भाव शुद्धता, जो करने हारा भोजन का, सो विकल परिणामी नहीं होय) भोजनका स्वाद-लम्पटी नहीं होय, भोजनकी तीव्र छुधा सहित परिणामी नहीं होय। योग्य-अयोग्य भोजन में समझनेहारा होय। इत्यादिक धर्मवान विवेक सहित जाके भाव होंय, सो भाव शुद्ध जानना। क्रोधी नहीं होय, जो भोजन करते लड़ता जाय, कोप वचन कहता जाय। इत्यादिक शुद्ध होय, सो भाव शुद्ध है। ऐसे द्रव्य—क्षेत्र—काल—भाव करि खान-पान शुद्ध होय, सो शुद्ध है। धर्मातमा जीवन करि उपादेय हैं। इति शुद्ध खान-पान।

आगे अशुद्ध खान-पान बताइए है। जहां भोजन करने हारा क्रोधी, भोजन करता ही परतैं युद्ध करता जाय, बे मर्याद बोलता जाय, सो खान-पान अशुद्ध है। विकल परिणामी होय, भोजन का भूखा, लोलुपी होय, सो भोजन करता कछू कछू खावता जाय, सो भोजन अशुद्ध है। इत्यादिक भाव अशुद्ध हैं ॥१॥ और रात्रि का पीसा—पकाया—आरम्भा होय, बहुत काल का मर्यादा रहित होय गया होय। तथा रात्रि का किया बासी होय। इत्यादिक

काल-अशुद्ध है ॥ २ ॥ और अंधकार क्षेत्र में किया, जहाँ छोटे-बड़े जीव पतनादिक की ठीक ना होय, जहाँ बहुत जीवन का गमन होय, चौपट स्थान होय, जहाँ बहुत जीवन की उत्पत्ति होय, मच्छर-चींटी-मक्खी बहुत होंय। इत्यादि क्षेत्र-अशुद्ध है ॥ ३ ॥ और करनेहारे का तन, रोग पीड़ित होय। खांसी, श्वांस, खुजरी, जुखामादि रोग सहित होय। तन में फोड़ा दुखना बहुत होय, निद्रा जाके तन में बहुत होय, इत्यादिक दोष सहित करनेवारा होय, सो द्रव्य अशुद्ध है। तथा वीधा अन्न न होय, जल अनगाला होय, घृत चर्म का होय, आटा रात्रि का पीसा होय, इत्यादिक द्रव्य अशुद्ध है॥४॥सो ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि अशुद्ध होय, सो खान-पान अशुद्ध है, धर्मात्मा जीवन करि हेय है। और राह चलते खाते-पीते जाना। चौड़े बैठि खावना। पाँति विरोधी के संग बैठि खावना। कौतुक सहित खावना। बाजार में बिकता, सीधा तैयार भोजन मोल लेय खावना। इत्यादिक खान-पान अशुद्ध हेय है। ऐसे जानि विवेकी हैं तिन कूं शुभ भोजन ग्रहण और अशुभ भोजन तजन योग्य है। इति खान-पान में ज्ञेय, हेय, उपादेय कही।

आगे वचन में हेय, ज्ञेय, उपादेय कहिए है। तहाँ शुभाशुभ समुच्चय वचन का जानना, सो ज्ञेय है। ता ज्ञेय के ही दोय भेद हैं। एक उपादेय है और एक तजवे योग्य है। सो जहाँ जो अन्य जीव कूं सुखदाई होय, दया सहित होय, क्रोध, मान, कुटिलता, लोभ इन च्यारि कषाय रहित होय, धर्म-बुद्धि सहित होय। ज्ञान, पूजा, शील, संयम, तप, व्रतादि, महान पुरुषन की चर्या सहित होय। तथा धर्म उत्सव वचन, शांति भाव सहित हित वचन, सौम्यता सहित

प्रिय वचन, इत्यादिक जिन आज्ञा सहित सत्य हित-मित वचन है, सो उपादेय है। इति उपादेय वचन। आगे हेय वचन कहिए है। तहाँ क्रोध वचन, मान–माया–लोभ वचन, सप्तव्यसन रूप वचन, पाप–पोषण झूठ वचन, सो या झूठि के च्यारि भेद हैं। सोही कहिए हैं। एक तो छती (अस्ति) वस्तु कौं अछती कहना सो असत्य है ॥ १ ॥ और अछती कौं छती कहना सो भी झूठ है ॥२॥ और, वस्तु थी तौ कछू और ही, अरु वाकूं कहना कछू और ही, सो भी झूठ है ॥३॥ और जिन आज्ञा रहित परमार्थ तें शून्य ऐसा वचन, सो झूठ है ॥४॥ और भी योग्य–अयोग्य वचन भेद हैं सो कहिए हैं।

गाथा—वयणो हेयादेयो, सत्तोपादेय वयण जिण धुणि सो।
हेयो वयण अनत्तो, णिंदो कुगइदेय सुत रहियो ॥ ३७ ॥

अर्थ—वचन हेय उपादेय रूप है। सो सत्य तौ उपादेय है। सो वचन जिन आज्ञा प्रमाण है, ग्रहवे योग्य है। और अतत्व वचन है सो हेय है, निंद्य है, कुगति का दाता है, और जिन आज्ञा के विरुद्ध है। भावार्थ—सत्य जिन वचन सो तौ उपादेय है। और अतत्व असत्य वचन हेय है। ता असत्य के भेद ग्यारह हैं। सो ही कहिए है। प्रथम नाम–अभ्याख्यान, कलह वचन, पैशून्य वचन, असम्बद्ध प्रलाप वचन, रति वचन, अरति वचन, उपाधि वचन, निकृष्ट वचन, अपरणति वचन, मौखर्य वचन और मिथ्या वचन। अब इनका अर्थ—तहाँ ऐसा वचन वोलना, कि देखो याने बहुत बुराई करी, याने बहुत बुरा वचन कह्या, याका नाम अभ्याख्याम वचन है। और तहाँ ऐसा कहना जातैं परस्पर युद्ध होय, सो कलह वचन

है। और ऐसा वचन कहना सो जाकरि पराया छिपा दोष प्रगट होय, सो पैशून्य वचन है। और जहाँ धर्म अर्थ काम मोक्ष इनके सम्बन्ध तैं रहित बोलना सो असम्बद्ध प्रलाप वचन है। और इन्द्रियन कौं सुखदाई, जाकूं सुनि रति उपजै ऐसा वचन बोलना, सो रति वचन है। और जाकूं सुनि इन्द्रिय-मन कूं अरति उपजै, अनिष्ट लागै, सो अरति वचन है। और जहाँ अति परिग्रह की आसक्तता रूप लोभ की वृद्धि लिए वचन का बोलना, सो उपाधि वचान है। और जहाँ व्यवहार विषैं ठगवे कूं जुगत रूप वचान का बोलना, सो निकृष्ट बचान है। और जहाँ देव गुरु धर्म व्रतादिक पूज्य स्थान तिनकौं अविनय रूप वचान कहना, सो अप-रणाति वचन है। और जहाँ चोरन की चतुराई—कला की सुश्रूषा रूप वचान, सो मौखर्य वचन है। और जहाँ धर्म—घातक दया—रहित, अव्रत पोषित वचान, सो मिथ्या वचान है। इन कूं आदि जे अशुभ बचन सो सम्यग्दृष्टी कैं सहजही हेय हैं। और जो बिना प्रयोजन परस्पर बात करना, सो विकथा बचन है। ता विकथा के भेद पच्चीस हैं। सो ही कहिए हैं। प्रथम नाम-स्त्री कथा, धन कथा, भोजन कथा, राज कथा, चोर कथा, वैर कथा, पर-पाखंड कथा, देश कथा, भाषा कथा, गुणबंध कथा, देवी कथा, निष्ठुर कथा, पर-पैशून्य कथा, कंदर्प कथा, देश-कालानुचित कथा, भण्ड कथा, मूर्ख कथा, आत्मप्रशंसा कथा, पर-परवाद कथा, पर—जुगुप्सा कथा, परपीड़ा कथा, कलह कथा, परिग्रह कथा, कृष्यारंभ कथा, संगीत कथा, ए पचीस हैं। इनका अर्थ—जहाँ च्यारि पुरुष परस्पर बतलावना (बोलना) ताका नाम कथा है। सो शुभकारी वचन बतलावना, सो तो शुभ कथा है। और वृथा बिना प्रयोजन बतलाय, पाप बंधकरि, काल

गमावना, सो विकथा है। ताके यह पचीस भेद हैं। सो जहाँ परस्पर स्त्रीन के स्वरूप की, चाल की, यौवन की, इन आदिक स्त्रीन की परस्पर कथा करि, काल गमाय, पाप का बंधकरि परभव बिगाड़ै, सो स्त्री विकथा है। और जहाँ परस्पर धन की वार्ता करना, जो धनवान् धन्य हैं। धन बिना जीवन कहा है? धनवान की सब सेवा करें हैं। जगत में धन ही बड़ा है। ये धन कैसे पैदा करिए? पारस तें धन होय, रसायन तें धन होय, चिन्तामणि मिले भला धन होय है। पड़्या पावै, गड्या पावै, कोऊ देवादि मिलै तौ धन जाँचैं। फलाने राजा कैं धन बहुत है। केई कहैं उस सेठ कैं बड़ा धन है। इत्यादिक परस्पर धन की कथा करना, सो धन विकथा है। और जहाँ परस्पर भोजन की बात करना। जो कोई कहै यह भोजन भला है, वह भोजन भला है, वह व्यंजन भला है, वह भोजन भला बनावै है, इत्यादिक भोजन की कथा है। और जहाँ राजान में काहू की बड़ाई, काहू की निंदा। राजान के न्याय-अन्याय की बात। तथा फौज की दीर्घता की तथा लघुता की कथा। ऐसे कोई राजा की निंदा, कोई की स्तुति करि, परस्पर काल खोय बात करना, सो राज विकथा है। और जहाँ अनेक चोरन की चतुराई की कथा। कोई चोर के पुरुषार्थ की कथा। चोरन कूं ऐसो दंड देना। वे चोर जोरावर हैं। इत्यादिक परस्पर चोरन की बात करना, सो चोर कथा है। और जहाँ कोऊ कहै। मेरे-वाकै बैर भाव है। केई कहैं वाके-वाकैं द्वेष है। याके केई बैरी हैं। कोऊ कहै, हम वाकै क्या सारे हैं? इत्यादिक परस्पर कथा करनी, सो बैर कथा है। और जहाँ पराया छिपा दोष प्रगट करना। वह कहै तूं महा पाखंडी है। कोई कहै तेरे दोष मैं

सब जानू हूं) वह कहै, तोसे दुराचारी संसार में नाहीं । इत्यादिक परस्पर बात करना सो पर-पाखंड विकथा है । और जहाँ देशन की निंदा-स्तुति करनी । कोई कहै यह देश भला है, वह देश भला नाहीं । उस देश में शीत-गर्मी बहुत, वा देश में अन्न नाहीं होय, वा देश में जल थोरा, इत्यादिक देशन की बात करना, सो देश विकथा है । और जहाँ कु-कविन के किये अनेक छंद, कवित्त, गीत, दोहा, पहेली, साखी, कहानी, किस्सा इन आदि अनेक वचन बंधान, परमार्थ रहित जिनकी कथा, जो वाने रस-कवित्त बनाये हैं । वाने वा राजा के भले-यशरूप कवित्त किए हैं । वह बहुत किस्सा-कहानी जानै हैं । इत्यादिक कथा करनी सो भाषा कथा हैं । तथा पशून के वचन, जो वह सूवा भला बोले है, वाकी मैना अच्छी बोले है, वाकी तूती अच्छी बोलै है । तीतुर, लाल, कबूतर, काक, कोयल, गर्दभ, स्वानादि अनेक पशून की भाषा-शुभाशुभ की कथा करनी, सो भाषा कथा है । और पराए गुण मेटने रूप उपाय, राज पंचसभा में ऐसा कहै, जो वामें कहा गुण है ? वैसे तुम कूं बहुत बतावेंगे । याही तैं बहुत गुणी हमने देखे हैं । केई कहैं हमनें बातें भी घने गुणी देखे हैं । केई कहैं यह कहा है, वामें बड़े गुण हैं । इत्यादिक परस्पर कथा करना, सो गुण बंध-कथा है । और जहाँ कुदेवन का अतिशय-करामात की कथा, जो केई कहैं शीतला जागती ज्योति है । केई कहैं वह भैरों प्रत्यक्ष, कोई कहैं वह देवी प्रत्यक्ष है । बेटा, धन देय है । इत्यादिक परस्पर कथा करनी, सो देवी कथा हैं । और जहां कोई कहै तू महादुष्ट है । वह महापापी है । याकी मूर्खता जगत जानै है । ऐसे परस्पर कठोर वचन बतलावना, सो निष्ठुर वचन कथा है । और

जहां पराया बुरा करवे की वात, पराई निंदा की वात, पर कौं पीड़ाकारी वचन इत्यादि परस्पर कथा करनी, सो परपैशून्य विकथा है। और जहां नाना प्रकार की शृंगार कथा, जाके सुनैं चित्त विकार रूप होय, ऐसी कथा परस्पर करना, सो शृंगार कथा है। और जहां इस देश मैं यह रीति भली है, यह रीति भली नाहीं। वा देश में फलानी वस्तु अच्छी नाहीं, वह वस्तु अच्छी है। इत्यादिक परस्पर वतलावना, सो देश–कालानुचित विकथा है। और जहां कौतुहल–हाँसी रूप परस्पर हर्ष-हर्ष गाली बोलना, विपरीत बोलना, सो भण्ड कथा है। और जहाँ अविवेकी वार्ता करना, सो मूर्ख विकथा है। और जहाँ परस्पर अपने गुणन की कथा। जहां कोई कहै, अहो! हम में ऐसे गुण हैं। केई कहे हैं, परोपकार हमनें केई करे हैं। केई कहैं, हम बड़े मनुष्य हैं, हम से कोई नाहीं। इत्यादिक अपने-अपने गुण की सर्व कथा करैं, सो आत्म प्रशंसा नाम कथा है। और परस्पर औरन की निंदाकारी कथा करनी सो पर-परवाद कथा है। और जहां अन्यका शरीर तथा वस्त्र मलिन देख तथा रोग-मलीन देख, ग्लानि रूप कथा करैं, सो दुर्गंध विकथा है। और पर को दुखी करने की, पर के घर लूटने की, इन आदि औरन कूं आकुलताकारी कथा करना, सो पर-पीड़ा कथा है। और जहाँ परस्पर युद्ध करने की–लड़ने की कथा करनी, सो कलह विकथा है। और परिग्रह वधावै (बढ़ावै) की वार्ता परस्पर करनी, सो परिग्रह कथा है। और परस्पर खेती निपजने की कथा है। जो अव के मेघ भला है, धरती हमनैं बहुत जोती है। वानैं छोड़ दई–धरती थोरी उठाई, इत्यादि खेती की कथा, सो कृष्यारंभ विकथा है। जहां नाना प्रकार राग, नृत्य, गीतादिक की कथा, सो संगती

विकथा है। ऐसे ए पच्चीस विकथा रूप वचन हैं। सो सर्व पापकारी तजवे योग्य जानना। ऐसे शुभाशुभ वचन मैं हेय, ज्ञेय, उपादेय कह्या। इति वचन मैं ज्ञेय हेय उपादेय कथन।

आगे द्रव्य क्षेत्र काल भाव का स्वरूप लिखिये है—

गाथा—दव्वो खेत्तो कालय, भावो चत्तादि भेय जिण उत्तं।
गेयोपादेय हेओ, सम्मोदिट्ठी सोवि णादव्वो ॥ ३८ ॥

अर्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, ए चारि भेद जिनदेवने कहे हैं। तिनमैं हेय-ज्ञेय-उपादेय करै, सो आत्मा सम्यग्दृष्टी जानना। भावार्थ—द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि वस्तुनका धारन होय है। तहां प्रथम ही द्रव्य विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। समुच्चय जीव का जानना, सो ज्ञेय है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक हेय, एक उपादेय। सो तामैं जाकूं परद्रव्य जानिए, सो हेय है। जैसे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। और आप आत्मतत्व, भेदज्ञान का विचारनहारा, अनुभवी, हेय-ज्ञेय-उपादेय का करनहारा, आत्म द्रव्य है। ता एक आत्मा के सिवाय अनंते जीव द्रव्य, और ऐसे ही षट् ही द्रव्य हैं। सो परज्ञेय जानि हेय हैं, तजवे योग्य हैं। ए सर्व अपने आत्म-स्वभाव तैं भिन्न हैं, तातैं तजवे योग्य हैं। इनके गुण-पर्याय भी जड़ हैं, अज्ञान हैं, मूर्ती हैं, अमूर्ती हैं, तातैं हेय हैं। इहां प्रश्न—जो मूर्ती तौ तजवे योग्य हैं, यह हमने भी जानी। परन्तु अमूर्ती चेतना गुण सहित इनकूं हेय क्यों कह्या? ताका समाधान-भो भव्य, जो तेरे मन मैं पुद्गल द्रव्य, पर है ऐसी आई है, तौ ये भी आ-जाय है। तू चित्त देय सुनि। देखि, पुद्गल तौ मूर्तीक है, सो पर है ही, सो तैं जानीही है। और

धर्म-अधर्मादि च्यारि द्रव्य अमूर्तीक तौ हैं, परन्तु चेतना रहित जड़ हैं। तातें तजवे योग्य हैं, तातैं हेय हैं। और आप स्वभाव तैं, अन्य जीवनके प्रदेश, सत्त्व, गुण, पर्याय भिन्न हैं। उनके किये रागद्वेष भाव का फल आपकों नहीं लागै। अपने किये रागद्वेष का फल उन पर-जीवन कूं नहीं लागै। अन्य कूं सुख भए, आप कूं सुख नाहीं। पर कूं दुख भए, आप कूं दुख नाहीं। अन्य जीव कूं मोक्ष भए, आप कूं मोक्ष नाहीं। तातैं संसार विषैं अनंते जीव हैं, सो सर्व भिन्न-भिन्न हैं। अपने-अपने परणाम के भोगता हैं। और संसारी भोरे जीव भी ऐसी कहैं हैं कि जो करेगा सो पावैगा, ऐसी सर्व जगत में बात प्रगट है। तातैं अनेक नयन करि भी विचार देखि कि आप तैं भिन्न और अनंते जीव हैं। सो भी पर द्रव्य जानि तजवे योग्य है। तातैं हेय किये हैं। ऐसा समाधान जानना। और भी सम्यग्दृष्टी समता-रस प्रगट भए, वैराग्य बढ़ावे कूं जगत का स्वरूप विचारैं। सो द्रव्यन में अल्प-बहुतता ऐसे विचारैं। जो जीव द्रव्यन में तीन गति के जीव तो बहुत हैं। और मनुष्य गति के जीव-द्रव्य बहुत ही थोरे हैं। तहां देव च्यारि प्रकार हैं। सो जुदे-जुदे असंख्याते हैं। और नारकी सात हैं। तहां भी एक-एक में जीव असंख्यात हैं। और तिर्यञ्च गति विषैं जीव तथा पृथ्वी काय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय इन सर्व में असंख्याते-असंख्याते जीव हैं। तिन सर्व तैं थोरी जीव राशि अग्निकाय है। सो भी असंख्यात लोकन के जेते प्रदेश होंय तेते जानना। सोई बताइए है। एक सूच्यांगुल क्षेत्र प्रमाण, एक प्रदेश सूची में केते प्रदेश हैं, सो सुनौं। असंख्यात सागर के जेते समय होंय, तेते प्रदेश जानना। एक अंगुल के क्षेत्र

के ऐते प्रदेश होंय, तौ हाथ भरके केते प्रदेश होंय ? तौ एक कोस के केते होंय ? तौ सर्व लोक के केते होंप ? सो ऐसे-ऐसे असंख्यात लोक के जेते प्रदेश हैं, तेते तेजकायक जीव जानना। ए सर्वतें थोरे हैं। और इन तेजतैं असंख्यात अधिक, पृथ्वी कायक हैं। पृथ्वी तैं असंख्यात बढ़ते, अपकायक हैं। अपते असंख्यात अधिक, वायुकायक हैं। वायुकायतैं असंख्यात अधिक, प्रत्येक वनस्पती के जीव हैं। प्रत्येकतैं तथा सर्व जीवराशितैं अनंतगुणे साधारण वनस्पती जीव हैं। इनही पंच स्थावरन में सूक्ष्म और वादर दोय भेद हैं। तहाँ आश्रय विना उपजैं, आयु अन्त बिना मरैं नाहीं, कांहूतैं रुक न सकैं, सो सूक्ष्म हैं। और परकों रोकैं, परतैं आप रुकैं, शस्त्रादिकतैं घात पावैं, सहायतैं उपजैं, सो वादर हैं। सो वादर चार स्थावरन मैं असंख्यात हैं। वादर तैं असंख्यात गुणे सूक्ष्म हैं। और साधारण में वादर अनन्त हैं। तातैं अनन्तगुणे सूक्ष्म साधारण हैं। और वेन्द्रियतैं, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय व तिर्यञ्चराशि असंख्यात-असंख्यात है और कर्मभूमि के मनुष्य सर्व संख्यात हैं। ऐसे जीव द्रव्य अपेक्षा कथन कह्या। इति द्रव्य क्षेत्र काल भाव का स्वरूप। आगे षट्काय जीवन के शरीरन के आकार कहिए हैं। तहां पृथ्वीकायक का आकार मसूर के समान है और अपकायक का आकार जलविन्दु समान है। और तेज कायकका आकार बहुत सूजी के समूह समान है और पवनकायक का शरीर-आकार ध्वजा समान है। और वनस्पती के तनका आकार अनेक प्रकार है। और वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवन के शरीर के आकार अनेक प्रकार हैं। इति षट्काय शरीराकार। आगे षट्काय-का आयुकर्म कहिए है। तहां पृथ्वी के भेद दोय। एक नरम और एक कठोर। पीली मिट्टी, खड़ी

मिट्टी, गेरू मिट्टी आदि ए नरम पृथ्वी काय हैं। याकी उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष प्रमाण है। और कठोर पृथ्वी जो हीरा रतनादि पाषाण ताकी उत्कृष्ट आयु बाइस हजार वर्ष है। और जल कायकी उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्ष है। और अग्निकाय की उत्कृष्ट आयु तीन दिन है। और पवन काय की उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्ष है। और वनस्पती काय की उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्ष की है। और जल की जोंक, गिंडोला, लट, नारुवादि वेन्द्रिय जीवन की उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष हैं। चींटीं, खट्मल, कुंथुवादि, तेन्द्रिय की उनचास दिन की है। और चौइन्द्रिय मक्खी, भौंरा, टीडी आदि की उत्कृष्ट आयु षट्मास की है। और असैना पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट आयु कोड़ पूर्व वर्ष प्रमाण है। और सैनी पंचेन्द्रिय विषैं देव नारकीन की उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर की है। और उत्कृष्ट भोग भूमियाँ मनुष्य-तिर्यञ्चन की तीन पल्य की है। और कर्म भूमियां मनुष्य-पशु की उत्कृष्ट आयु कोड़िपूर्व वर्ष प्रमाण है। और देव नारकी की जघन्य आयु दश हजार वर्ष की है। और मनुष्य-तिर्यञ्चन की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है। इति षट्काय आयु।

आगे षट्काय जीव उत्कृष्ट कर्मस्थिती केती करैं, सो कहिए है। तहां पंच स्थावर एकेन्द्रियन की उत्कृष्ट कर्मस्थिती एक सागर जानना और सर्व अष्ट कर्मन मैं उत्कृष्ट स्थिति दर्शन मोहनीय की जानना। और वेन्द्रिय उत्कृष्ट कर्मस्थिति बांधै तौ पचास सागर जानना और तेन्द्रिय उत्कृष्ट कर्मस्थिति बाँधै तो पचास सागर जानना और चौइन्द्रिय उत्कृष्ट कर्मस्थिति बांधै तौ सौ सागर जानना। व असैनी उत्कृष्ट स्थिति हजार

सागर की बांधै है। और संज्ञी पंचेन्द्रिय उत्कृष्ट सत्तरि कोड़ाकोड़ि सागर कर्मस्थिति बांधैं है। इति कर्मस्थिति। आगे षट्कायन की पंचेन्द्रिय हैं तिनके आकार कहिए है। तहां स्पर्शन इन्द्रिय शरीर है, सो शरीरन के आकार अनेक प्रकार तैसेही स्पर्शन इन्द्रियन के भी आकार जानना। और रसना इन्द्रिय का आकार गौ के खुर के समान है और नासिका इन्द्रिय का आकार तिल-फूल के आकार है। और नेत्र इन्द्रिय का आकार मसूर की दाल समान है। और श्रोत्र इन्द्रिय का आकार जव की नाली के आकार है। इति आकार। आगे पंचेन्द्रियन का विषय केता-कता है, सो वताइए हैं। तहां संज्ञी पंचेन्द्रिय स्पर्शन, रसना, घ्राण इन तीन इन्द्रियन तैं उत्कृष्ट नव-नव योजन की जानैं। और नेत्र इन्द्रिय तैं उत्कृष्ट सैंतालीस हजार दोय सौ तिरेसठित योजन जानैं हैं। और श्रोत्र इन्द्रिय उत्कृष्ट बारह सौ आठयोजन की जानै। इति सैनी। आगे असैनी विषैं—तहाँ असैनी पंचेन्द्रिय स्पर्शन इन्द्रिय तैं उत्कृष्ट चौंसठिसौ धनुष की जानैं। और रसना इन्द्रियतैं उत्कृष्ट पांचसौबारह धनुष की जानैं। नासिका इन्द्रिय तैं च्यारिसौ धनुष की जानैं। और चक्षु इन्द्रिय तैं गुणसठि (उनसठि) योजन की जानैं। और श्रोत्र इन्द्रिय तैं आठ हजार धनुष की जानैं। इति असैनी। आगे चौइन्द्रिय का विषय—तहां चौइन्द्रिय स्पर्शन इन्द्रिय तैं बत्तीस सौ धनुष की जानैं। औरसना इन्द्रियतैं दोयसौ छप्पन धनुष की जानैं। घ्राण इन्द्रिय तैं दोय सौ धनुष की जानैं। और चक्षु इन्द्रियतैं गुणतीससौचौवन योजन जानैं। इति चौइन्द्रिय। आगे तेन्द्रिय का विषय—तहां तेन्द्रिय, स्पर्शन इन्द्रिय तैं सोलह सौ धनुष की जानैं। रसना इन्द्रियतैं एकसौ अठाईस धनुष की जानै है। और घ्राण

इन्द्रिय तैं सौ धनुष की जानै है। इति तेन्द्रिय। आगे वेन्द्रिय का विषय—और वेन्द्रिय स्पर्श तैं आठसो धनुष की जानैं और रसना इन्द्रिय तैं चौसठि धनुष की जानै। इति वेन्द्रिय। आगे एकेन्द्रिय का विषय—तहां एकेंद्रिय स्पर्शन इंद्रियन तैं च्यारि सौ धनुष की जानैं। इति एकेंद्रिय विषय। ऐसे पंचेन्द्रिय का विषय कह्या। आगे एकेंद्रिय के भेदन मैं निगोदि। सो निगोदि पंचस्थान हैं, ताको भोरे जीव पंच गोलक कहैं हैं। सो कहिए हैं। उक्तंच सिद्धान्त गोमट्टसार—

गाथा—जंबूदीवं भरहो, कोसलसागेदतग्घराइं वा।
खंधडरअवासा, पुलवि सरीराणि दिट्ठंता ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे जम्बूद्वीप, तामैं भरतक्षेत्र, भरत मैं कौशल देश, देश मैं साकेत नगर, नगर में घर। तैसेही निगोदि के पंच गोलक हैं। स्कंध, अंडर, आवास, पुलवी और शरीर ए पंच गोलक हैं। इनका सामान्य स्वरूप कहिए है। तहां एक सूजी की अणी (नोंक) पै साधारण वनस्पति के जेते स्कंध आवें। तेते स्कंध कूं ले केवलज्ञानी सर्वज्ञ कूं पूछिए। भो प्रभो, इन विषैं जीव संख्या कहो। तब ज्ञानी कहैं। इस सूजी के ऊपर निगोदि हैं। तामैं असंख्यात लोक प्रमाण स्कंध हैं। तिस एक-एक स्कंध में असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण अंडर हैं। एक-एक अंडर मैं असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं। एक-एक आवास में असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण पुलवी हैं। एक-एक पुलवी में असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण शरीर हैं। एक-एक शरीर में अक्षय अनंत जीव हैं। एक-एक

शरीर में तैं जीव, घड़ी-घड़ी में अनन्त-अनन्त निकसि, मोक्ष जाया करैं सो ऐसे अनंतकाल तांई मोक्ष जाया करै, तौ भी एक शरीर खाली नहीं होय। तातें वाका नाम अक्षय अनंत है। ऐसे सूजी के अणी प्रमाण साधारण निगोद के जीवन की दीर्घता है। ऐसी निगोदि तैं तीन लोक भर्या है। कोई भोरे जीव ऐसा मानैं हैं। जो सातवें नरक के नीचे पांच गोलक हैं, तहां निगोदियान का स्थान है। सो हे भव्य हो, ऐसा नाहीं है। ए भ्रम है। पंच गोलक तौ एक स्कंध में ऊपरि कही, तैसे हैं। या सर्व लोक मैं निगोदि राशि जल के घटवत् भरी है। ता निगोद के दोय भेद हैं। एक तो नित्य निगोद, एक इतर निगोद है। सो अनंत काल से जानें विहार राशि स्पर्शी हो नाहीं, सो तौ नित्य निगोदि कहिए। और जे जीव निगोदि तैं निकसि, विहार राशि-च्यारि गति पाय, फेरि कर्म तैं निगोदि में गया सो इतर निगोदिया कहिए। ऐसे निगोदि आदि पंचेन्द्रिय पर्यंत जे जीव हैं सो इन षट्काय का उत्कृष्ट आयु तौ ऊपरि कहि ही आए हैं। और जघन्य में विशेष एता जो बहुत ही अल्प आयु-कर्म षट्काय का होय, तो एक श्वास के अठारहवें भाग होय। एक अन्तमुहूर्त में उत्कृष्ट भव धरै तौ छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस वार जन्मे और एते ही बार मरै है। सो ही विधिवार कहिए है। तहां पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय और वनस्पती के भेद प्रत्येक साधारण करि दोय हैं। सो एक शरीर का एक जीव स्वामी होय, सो तौ प्रत्येक वनस्पती है। और जहाँ एक शरीर के अनंत जीव स्वामी होंय, सो साधारण वनस्पती है। तहां प्रत्येक वनस्पती का एक शरीर नाश भये, एक जीव का ही

घात होय। और साधारण वनस्पती का एक शरीर घात होतैं, अनंत जीवन का घात होय है। तातैं धर्मात्मा जीवनकूं साधारण वनस्पती का विशेष यतन करना योग्य है। ऐसे साधारण प्रत्येक वनस्पती तिनमैं तैं प्रत्येक वनस्पती लीजे। ऐसे पंच स्थावर के सूक्ष्म वादर करि दश भेद हैं। एक प्रत्येक वनस्पती ए सर्व ग्यारह भेद एकेंद्रिय के भए। तिन मैं जुदे-जुदे छै हजार बारह-छैहजार बारह, जन्म-मरण करैं, तो ग्यारह स्थान के मिलि छ्यासठिहजार एक सौ बत्तीस जन्म-मरण भए, सो तौ एकेंद्रिय के जानना। और वेन्द्रिय के अस्सी, तेन्द्रिय के साठ, चौन्द्रिय के चालीस, पंचेन्द्रिय के चौबीस, तिनमैं आठ भव सैनी, आठ भव असैनी के और आठ भव मनुष्य के ए चौबीस पंचेंद्रिय के। सर्व मिलि छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण षट्काय जीवन के होय हैं। सो सर्व जीवन मैं मनुष्य राशि अल्प है। और क्षेत्र विषैं देव नारकीन का क्षेत्र असंख्यात योजन का है। और तिर्यञ्च का एकेंद्रिय अपेक्षा सर्व लोक, त्रस अपेक्षा भी असंख्यात योजन क्षेत्र है। और सर्व तैं अल्प क्षेत्र मनुष्य का है, सो पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है। और काल अपेक्षा भी देवनारकीन का आयुकाल तो असंख्यात वर्ष प्रमाण है। और मनुष्य का काल थोरा है। या मैं जीवन अल्प है। और भाव अपेक्षा देव, नारकी, पशु उपजने के भाव बहुत हैं। अल्प से पुण्यरूप भाव होंते देव होय है और अल्प से पापन तैं नरक के दुख का भोगता होय है और आर्तभाव तैं तिर्यञ्च होय है। सो आरति जीवकूं सदीव ही लगी रहै है। परंतु मनुष्य होवे के भाव महा कठिन हैं। कोई दीर्घ पुण्य भाव नाहीं, पाप भाव कोई नाहीं।

मध्य भाव, सरल भाव, मंद कषाय भाव, व्रत सम्यक् रहित, भोरे, सरल, कोमल भाव, ऐसे महा कठिन भाव तैं मनुष्य होय। सो ऐसे मनुष्य होने के भाव थोरे। काल करि मनुष्य थोरा काल जीवै। क्षेत्र करि मनुष्य का क्षेत्र थोरा है। भाव भी मनुष्य होने के थोरे हैं। सो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि मनुष्य थोरे हैं। याका निमित्त मिलना कठिन है। तातैं ऐसी मनुष्य-पर्याय-द्रव्य मैं ज्ञेय हेय उपादेय करना योग्य है। इति द्रव्य मैं ज्ञेय हेय उपादेय कथन। आगे क्षेत्र मैं ज्ञेय हेय उपादेय कहिये है। तहां शुभाशुभ क्षेत्र का जानना सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं एक हेय, एक उपादेय,। सो जिस क्षेत्र में चोर रहते होंय हिंसाधारी मद्यपायी रहते होय, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां महाक्रोधी, मानी, मायावी, महालोभी रहते होंय सो क्षेत्र हेय है। जहां धर्म रहित, दुराचारी, पापी जीव रहते होंय, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां कामी-जीवन की क्रीड़ा का अप्रच्छन्न स्थान होय, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां भांड़, बालक, निर्लज्ज पुरुष कौतुक करते होंय, इत्यादिक क्षेत्र जहां आपकौं पाप लागै, निंदा आवै, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। और जहां धर्मात्मा जीव तिष्ठते होंय, धर्मचर्चा होती होय, तथा जिन मंदिर होय, तथा वन, मसान, गुफा विषैं वीतरागी मुनि विराजते होंय, सो क्षेत्र, तीर्थ समान उपादेय है। इत्यादिक शुभ क्षेत्र, व्यवहार नय करि उपादेय हैं। और निश्चय नयतैं परद्रव्य क्षेत्र हेय हैं। अरु स्वद्रव्य क्षेत्र जो असंख्यात प्रदेशरूप, आत्माकार, ज्ञानमई, अमूर्तीक, पुरुषाकार आत्मा करि रोक्या जो क्षेत्र, सो उपादेय है। इति क्षेत्र विषैं ज्ञेय हेय उपादेय। आगे काल में ज्ञेय हेय उपादेय बताईए है। तहां शुभाशुभ समुच्चय काल का जानना सो ज्ञेय है। ताके दोय

भेद हैं। एक हेय है, एक उपादेय है। तहां तीर्थंकरके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण ए पंच कल्याणकन के काल हैं, सो उपादेय हैं। ए शुभ काल हैं। तथा अष्टान्हिका आदि बड़ी प्रभावना उत्सव के काल तथा भादवांजी आदि संयम के दिन, संवर सहित रहने के दिन तथा आठैं चौदश पर्व के दिन तथा जिस दिन उपवास, एक अन्तर, बेला, तेलादि तप-दिन सो यह सब काल उपादेय हैं। तथा जिस समय अपनी परणति भली होय, शुभ धर्म-ध्यानरूप, शास्त्र अभ्यासरूप, तपरूप, संयम शीलरूप, समता भावरूप, इत्यादिक अपने भावन की विशुद्धता रूपकाल सो शुभकाल, उपादेय है। और तजवे योग्य जो खोटे पर्व होंय। हिंसा का काल होय। तथा जिस समय क्रोध मान माया लोभ की तीव्रता होय। तीन वेदन में कोई वेद का तीव्र उदय होय, सो समय-काल हेय है। तथा कलहकारी पर्व होय, जिस पर्व का निमित्त पाय भले जीव विपरीत बुद्धि होंय। ऐसा मानैं, जो आज वर्ष दिन के त्योहार का समय है। या में ऐसी खोटी चेष्टा होय। ऐसे पर्वकाल हेय हैं। और जिस काल में कोई दया रहित कठोर परणामी ऐसा विचारै जो आज का बड़ा दिन है। यामैं जीव घात किये बड़ा पुण्य होय है। आगे बड़े करते आये है। ऐसी जानि तिस दिन पापरूप परणमैं, सो काल हेय है। और कोई ज्ञान धन रहित भोरे जीव ऐसा मानैं, जो आज का दिन—मास भला है। इन दिनों में नदी सरोवर वापीन मैं जाय, अनगाले जल मैं स्नान करै तौबड़ा पुण्य है। तथा वृच्छन मैं लाय जल डारिए तौ पुण्य होय, ऐसी क्रिया करना जिन दिनों में कही होय, सो पर्व हेय है। केई मिथ्या रस भीजे जीव ऐसा समझैं हैं। जो या पर्व में वनस्पती काटिए,

छेदिए, पत्ता-फूल तोड़ि देवादिक कौं चढ़ाईए, तौ बड़ा पुण्य होय। ऐसे पर्व काल भी हेय हैं केतेक भोरे जीव ऐसा मानै हैं, जो आज दिन ए पर्व ऐसा है, इन दिनों में अपने घरका भोजन नहीं खाईए। घरके वस्त्र नहीं पहरिए। परतैं भीख मांग कैं खाइए व वस्त्र पहरिये, तौ भला फल होय, ऐसे पर्व-काल भी हेय हैं। तथा जगत, अज्ञान दुख करि भर्या, ऐसा मानैं हैं। जो कोई व्यंतरादि देवता तथा कोऊ कुगुरादिक के चमत्कार का दिन जानि कहैं, जो फलानैं की तीर्थ-यात्रा का काल है। इत्यादिक काल सम्यग्दृष्टी तैं सहज ही हेय हैं। तथा पंचमा-छठा काल की प्रवृत्ति हेय है। इत्यादिक पापकारी धर्म-रहित दिन-पर्व-काल सो हेय हैं, तजवे योग्य हैं। इति काल विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे भाव विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां शुभाशुभ भावना का समुच्चय जानना, सो ज्ञेय भाव है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक शुभभाव, एक अशुभभाव। तहां क्रोधभाव, मानभाव, मायाभाव, लोभभाव, सप्तव्यसनभाव, द्यूतभाव, अभक्ष्य-भक्षण भाव, सुरापान भाव, वेश्यागमन भाव, पापार्थ जो जीव हिंसाभाव, परद्रव्यादि हरण जो-चौर भाव, परस्त्रीन संग-कुशीलभाव, धर्मघातिकभाव, इत्यादिक कुभाव तजवे योग्य-हेय हैं। और व्रत भंजनभाव, तपशील संयम दयामार्ग के भंजनभाव, पाखंडभाव, इत्यादिक दुराचारभाव हैं सो विवेकी जीवन करि तजवे योग्य हैं। इति हेयभाव। आगे उपादेय भाव — तहां ऊपरि कहे जो कुभाव, तिनितैं विपरीत भाव जो तप भाव, दान भाव, शील भाव, पूजा भाव, परवस्तु त्याग रूप जे-संतोषभाव, वीतराग भाव, शुद्धोपयोग भाव, तीर्थ बंदनारूप भाव, करुणाभाव, सर्वहित भाव, सर्व जीवतैं मैत्री भाव, गुणीतैं प्रमोद भाव, माध्यस्थ

वन के साधन कूं कुतप, सो हेय हैं। तथा पुत्र, धन, स्त्री इन आदिक अभिलाषा सहित तथा शत्रु के नाश के अर्थ तप, ये कुतप हैं, हेय हैं। और जीवत ही अग्नि में प्रवेश करि जल-मरण तप। और अन्न तजि, वनस्पति फल, फूल, पत्ता, दूध, दही, मठा इत्यादिक का भक्षण तप। इन्द्रिय का छेदन करि, तामैं लोह की कड़ी-सांकल नाथना तप, नीचा शिर उर्ध्व पांव करि तपना, शीश पै अग्निधारण तप, शीशपै तथा हस्तपैं शिलाधारण तप, ए सर्व कुतप हैं। शस्त्रधारा तैं मरना, जलधारा मैं प्रवेश करि मरणतप, तथा चाम, टाट, घास, रोम के वस्त्र रख राक्षस तप करना इत्यादिक ए सर्व कुतप हेय हैं। इति कुतप।

आगे सुतप कहैं हैं। जिस तप के करते स्वर्ग-मोक्ष होय, सो शुभ तप है। ताके बारह भेद हैं। तिनमैं षट् बाह्य व षट् अभ्यंतर के हैं। सो तहां अनशन, अवमोदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश, ए षट् बाह्य तप हैं। और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान, ए षट् अन्तरंग तप हैं। अब सबनिका सामान्य अर्थ कहिए है—तहां वर्ष, षट् मास, चौमास, पक्ष, पंचदिन, दोदिन, एक दिन इत्यादिक उपवास करना, सो अनशन तप है।१। और भूखतैं आधा-चौथाई तथा कछू घाटि खाना, सो अव-मोदर्य तप है। २। और रोज के रोज षट् रसन मैं तैं कोई एक—दो—च्यारि रसन का त्याग, सो रस परित्याग तप है। ३। और जो रोजि के रोजि खान-पान का प्रमाण, तथा और भोग-उपभोग योग्य जे सर्व वस्तु तिनका प्रमाण करना, सो व्रत परिसंख्यान नाम तप है। ४। और जहां तिष्ठैं, तहां स्थान की शुद्धता करि तिष्ठैं, शून्य-एकान्त ऐसे स्थान को देखैं, जहां संयम की

विराधना न हो, सो विविक्त शय्यासन तप है। ५। और अन्तरंग की विशुद्धता बढ़वेकूं बाह्य तनकों जैसे कष्ट होंय सो ही निमित्त मिलावना, सो कायक्लेश तप है। ६। ए षट् तपकों बाह्य कहैं। इनकूं करैं तब और कों जान्या परै, जो याके तप है, तातें बाह्य तप कहिए। और जहां अपने तप-चारित्रकूं तथा षट् आवश्यक कों तथा मूलगुणन इत्यादिक अपने मुनि-धर्म कों, कोई अतीचार लागा जानें। तो गुरु के पास अपने अतरंग का दोष, जाकूं और कोई नहीं जानै ऐसा छिपा दोष, ताकों धर्म का लोभी, गुरुनपै प्रकाशै। पीछे गुरु का दिया दण्ड लेय, लगे दोष कों शुद्ध करै, सो प्रायश्चित्त तप है। ता प्रायश्चित्त के दश भेद हैं सो कहिये हैं। आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युतसर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धान ए दश भेद हैं। अब इनका विशेष-जहां प्रमाद वशाय अपने मुनिपदकूं दोष लाग्या जानि, उर विषै आलोचना करे। तथा गुरुके पास जाय प्रकाशै, पापतैं भय खाय, जैसे आप कों दोष लागा होय, तैसे ही मन-वचन-काय की सरलता सहित, जिस-जिस विधितैं दोष लागा होय, तिस विधी तैं आप गुरुन के पास कहै। तब सहज ही लाग्या पाप नाश होय। इनके परणामन की सरलता तैं निर्दोष संयम होय, दोष नाशै, सो आलोचना प्रायश्चित्त है। केतैक पाप ऐसे हैं जिनका दण्ड आलोचना ही है। आलोचना ही तैं दोष मिटै। जैसे लौकिक में काहू का बिगाड़ किसी तैं भया होय। तौ जाय धनी तैं कहै, जो मेरे प्रमाद तैं भूलिकर आपका बिगाड़ मोतैं भया। अब आपकी इच्छा सो करो। मोतै भूलि भई, आप बड़े हौ नीको जानों सो करो। ऐसे कहे, तौ धनी याकूं सरल जानि, यातैं

द्वेष नाहीं करै, दिलासा दे, सीख देय। दोष दूर होय। तैसे आलोचना शुद्धभाव तैं किए, दोष जाय है ॥ १ ॥ और जहां अपने चरित्र कौं दोष लाग्या जानि, आप मन में बहुत पछतावै। अपनी निन्दा—गरहा करै, तो दोषदूर होय। जैसे लौकिक में काहू तैं पंचन की चूक भई होय, तौ वह जाय पंचन पै सरल-दीन होय कहै। जो मोपै चूक भई, आगे से मैं ऐसी कबहूँ नहीं करूँ। अब पंचन की आज्ञा होय, सो मोकों कबूल है। ऐसे कहते पंच याकूं सरल जानि दोष माफ करैं। तैसेही केतेक दोष ऐसे हैं जो निन्दा—गर्हा किये जांय हैं। सो प्रतिक्रमण आलोचना है ॥ २ ॥ और जहां अपने चरित्रकों कोई दोष लागा जानैं, तौ गुरु के पास भी कहै, अरु बारंबार आलोचना अपनी निन्दा—गरहा भी करै, तो दोष मिटै। केतेक दोष ऐसे हैं जो लौकीकमैं काहू का बिगाड़ रूप काहूतैं भूल होय गयी होय तौ धनी पै जाय कहै, जो मैं आपके पास आया हौं, आपका कार्य मोतैं कछु बिगड़्या है, मैं महामूर्ख मेरे कर्तव्य का निमित्त देखो। आप बड़े हो। जैसे भला होय सो करो। मैं तौ भूल्या हौं। ऐसे कहै तौं धनी याकूं निश्शल्यजानि—भला मनुष्य जानि, दोष क्षमा करै। तैसे ही केतेक दोष ऐसे हैं। सो तिनके मैटवे कौं गुरु पास भी अपना दोष प्रकाशै, अरु अपनी निंदा-गर्हा भी करै। याका नाम तदुभय प्रायश्चित्त है ॥ ३ ॥ और जहां आपकूं कोई वस्तुकरि दोष लाग्या होय, पीछे ताकौ यादि भए वाके दूर करवे को जा वस्तु तैं दोष लागा था ता वस्तु ही का त्याग करै, तब दोष दूर होय। जैसे लौकिक में कोई भूलिकैं किसी मार्ग, राजग्रह में जाय पड़्या, तहां पकड़्या। कही चोर है, मारो। तब यानैं कही, भूलिकैं इस राह आया हौं, चोर नाहीं। अब कबहूं इस राह नहीं

आऊंगा, मोहि तजौ। तब राजा के सेवकौं नै याकौं शुद्ध जानि तज्या। अरु कही, अबकैं बच्या है। अब इस राह आये मार्या जायगा। या कहि कें छोड़्या, दोष मिट गया। तथा कोई रोगी कूं घृत मनैं था, सो वानैं लोभकरि घृत खाया, तब रोग दीर्घ भया। तब वैद्यनै कही, तैं घृत खाया तातैं रोग वढ़्या। तेरे घृततें राग बहुत, तातें रोग मिटता नाहीं। तब रोगीने आपकूं घृत तैं महादुख होना जानिकें, जीवन लौं घृत का ही त्याग किया। तब वैद्य नें याकूं सुखी किया। तैसे केतेक दोष ऐसे हैं जो जिस वस्तु के मोहतैं दोष लागैं, ता वस्तु का ही त्याग करे, तब दोष मिटै है, यह विवेक प्रायश्चित्त है ॥४॥ और जहां मुनीश्वर अपनें चारित्र कौं दोष लागा जानैं, तौ ताके दूर करवे कौं कायोत्सर्ग करैं। तहां पंच परमेष्ठी की स्तुति व अपनी आलोचनादि करैं, तब दोष मिटै। जैसे लौकिक में कोऊ आप मैं दोष लागा होय, ताहि जानि, पंचन मैं खड़ा होय हाथ जोड़ि कहै। मोतैं भूल भई, तुम बड़े हो। ऐसे पंचन की स्तुति, अपनी दीनता करी। तब पंच याकौं सरल जानि, चूक माफ करि, शुद्ध करैं। तैसे केतेक दोष ऐसे हैं, जो कायोत्सर्ग करैं, तथा आलोचना किए नाश जांय, सो व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त कहिए ॥ ५ ॥ और जहां यती, अनेक उपवास धुरंधर तप करनहारा, वीतरागी, तप करतैं कोई प्रमाद वशाय अपने तप कौं दोष लागा जानि, याद करि आचार्यन पै कहै। तब गुरु याकौं कोई यथायोग्य प्रायश्चित्त देंय, सो यह मुनीश्वर का दिया प्रायश्चित्त ताहि महा विनय सहित लेय, तब दोष दूर होय। जैसे लौकिक मैं काहू में कोई चूक परै तब थोरा-बहुत द्रव्य लगाय चेत कराय शुद्ध करैं। तातें केतेक दोष ऐसे हैं, जिनमें आचार्य प्रायश्चित्त

तप बतावै हैं। ताहीं प्रमाण तप धारण करै, तब शुद्ध होय। सो याकानाम तप प्रायश्चित्त है ॥ ६ ॥ और जहां कोई बहुत दिन के दीक्षित बड़े तपसी तिनकूं प्रमाद वशाय कोई दोष लागै, तब याद करि आचार्य कूं कहैं। तब गुरु इनकी दीक्षा मैं के केतेक दिन छेद, नाशैं। दीक्षा के दिन घटाय, शुद्धकरें। जैसे लौकिक मैं काहू मैं चूक पड़े, तब पंच वाके पासतैं केतेक दिनकी कमाई का धन खर्चाय, वाके घरतैं धन घटाय निर्धन करें। आगेतैं ऐसा काम फेरि नाहीं करै। तैसे ही केतेक दोष ऐसे हैं जिनके प्रायश्चित्त में दीक्षा-दिन घटावें। जैसे पांचसौ वर्ष तप कर्या होय तौ दोयसौ पचास वर्ष यथायोग्य घटावैं, तब शुद्ध होय। याका नाम छेद प्रायश्चित्त है ॥ ७ ॥ और कोई मुनिकौं मान के योगतैं दोष लागा होय। तथा कोई मुनि धर्मकूं तजि खोटा मार्ग सेवन कर्या होय, इत्यादिक बड़ा पाप किया होय, पीछे आप गुरु पै कहै तौ आचार्य याकी सर्व दीक्षा छेदैं। नए शिरतैं दीक्षा देंय, तब शुद्ध होय। जैसे लौकिक मैं कोई कौं भारी दोष लागै, तौ ताकौ सर्व घर-माल-धन लूटैं, रंक समान करि डारैं, तब शुद्ध होय। अब नये शिरतें कमावो, तब खावो-इकट्ठा करौ। तैसे केतेक दोष ऐसे हैं जो आचार्य याका दीक्षा धन सर्व छेदैं, गृहस्थ समान असंयमी कर, नये शिरतैं दीक्षा देंय, तब निर्दोष—शुद्ध होय। याका नाम मूल प्रायश्चित्त है ॥ ८ ॥ और नवमा परिहार प्रायश्चित्त है। ताके दोय भेद हैं। एकतौ अनुपस्थापन, एक पारंचिक। तहां अनुपस्थापन के भेद दो। एक निज गणस्थापन, एक परगण स्थापन। तहां शिष्य में प्रायश्चित्त भये आचार्य शिष्यकौं अपने ही संघ मैं राखैं, सो निजगण स्थापन प्रायश्चित्त है। और शिष्य मैं चूक भए संघतैं काढ़ि देंय,

पर संघमैं राखैं। जैसे लौकिक में भी काहू में कोऊ चूक भए, राज-पंच अपने नगर तैं निकासि देंय, पराए देश में राखैं। शुद्ध भए बुलावैं। तैसे संघतैं काढ़ि, परगण में राखि शुद्ध करें। ऐसे केतेक दोष हैं आचार्य जिनमें यह दंड देय शुद्ध करैं हैं, सो परगण स्थापन प्रायश्चित्त है। इनमें निजगण स्थापन उत्तम है। और परगण स्थापन बहुत मानभंग का कारण है। तातैं महा सखत है। सो यह उत्कृष्ट दंड कौनसा है। और कौन गुनाह पै कौन मुनि कूं होय, सो कहिए है। उक्तं च आचारसार ग्रन्थे—

श्लोक—द्वादशाब्देषु षण्मास, षण्मासानसनंमतम् ।
जघन्ये पंच पंचोपवासं, मध्यात्तु मध्यमम् ॥१॥

अर्थ—जहां कोई शिष्य पै उत्कृष्ट दंड देय, तो षट्-षट् मासके उपवास उससे बारह वर्ष पर्यंत करवावैं, और जघन्य दंड देय, तो पंच-पंच उपवास बारह वर्ष लौं करावैं। मध्यम दंड देय तो उत्कृष्ट और जघन्य के मध्य में यथायोग्य उपवास करवावें। और जिनकौं ऐसे भारी दंड होंय सो संघ में कैसे रहैं? सो कहिये है। ऐसा दंड होय तिस शिष्य कौं आचार्य की ऐसी आज्ञा होय जो संघतैं बत्तीस धनुष अन्तर तैं तो रहो। सर्व संघकौं नमस्कार करो। संघ के मुनि ताकौं पिछान नमस्कार नहीं करैं। और ताका दोष जगत में प्रगट करवे कौं ऐसी आज्ञा होय, जो पीछी उलटी राखो। और मौनतैं रहो, कोई मुनि—श्रावकतैं बोलै नाहीं। और कदाचित् बोले ही, तो संघनाथ—आचार्य—अपना गुरु तातैं बोलै, नहीं तो मौनि रहै। ऐसा दंड ऐसी चूक भए होय, जो काहू मुनिनै कोई मुनिका शिष्य फुसलाय हरले गय

हरया होय। तथा कोई श्रावक का पुत्ररतन, होय तथा कोई मुनिकी पीछी, कमंडल, पुस्तकादि हरया होय। तथा कोई मुनि-श्रावक का चेतन-अचेतन परिग्रह हरया होय। तथा स्त्री, सुवर्णादिक हरे होंय, तथा कोई मुनि-श्रावक का चेतन-अचेतन परिग्रह हरया होय, तिस मुनि याकौं आदि और अन्याय कार्य, मुनि धर्म का भंजक—असंयम सेवन करया होय, तिस मुनि कौं ऊपरि कहे दंड होय हैं। ऐसे दंड कौनसी शक्ति वारे कूं होंय, सो कहिए है। जे मुनि महाज्ञानी, दस पू के पाठी होंय, हीन ज्ञानीन तैं दीर्घ दण्ड की सामर्थ्य नाहीं। जैसे बहुत कटुक भेषज स्यान ष ही पीवैं। और बालक तैं अज्ञान तैं नहीं पीई जाय, यह कड़वी औषधि के गुण नाहीं जानैं। तैसे अज्ञानी शिष्य, गुरु के दिये दीर्घ दंड का मर्म नाहीं जानैं। तातैं महान् ज्ञानी कौं होंय है। और वज्र-वृषभ-नाराच-संहनन आदि तीन संहनन का धारी होय, हीनशक्ति कौं नाहीं होय, दीर्घ शक्तिवान कौं होय। क्योंकि जो आचार्य महादयालु, जगत-वल्लभ, सर्व के मात-पिता, सर्व के हित वांछिक हैं। सो जैसे शिष्य का भला होता जानैं, सो ही प्रायश्चित्त देंय। कोई शिष्यतैं द्वेष-भाव नाहीं। अपनी मान-बड़ाई नाहीं। जैसे शिष्यन का पाप क्षय होय, निरतिचार संयम तैं स्वर्ग-मोक्ष होय, सोही करैं हैं। जैसे कोई परोपकारी वैद्य, अनेक रोगीनकौं कोई कारण तैं, खान-पान मनै करै है, काहू कूं लंघन करावै है, काहू कूं कटुक भेषज देय है। सो रोगीन तैं द्वेष नाहीं, उनके सुख हेतु बतावै है। तैसे आचार्यन का दंड जानना। और वह धर्मात्मा शिष्य, गुरुका दिया दंड महा विनय तैं आदर करि लेय, सो निज-गण-स्थापन प्रायश्चित्त है। और पर-गण-स्थापन ताकौं होय, जो आचार्य का दिया दंड महामद सहित अंगीकार करै। ताकौं आचार्य, संघ तैं काढ़ि देंय। जैसे लौकिक

माँहि जो कोई राजा की आज्ञा नहीं मानैं, तौ राजा ताकौं अपने देश-नगर तैं निकासै। तैसे आज्ञा प्रतिकल शिष्य कूं, संघतैं निकासि देंय। तथा मानी शिष्यकं और संघ मैं खिदाय, शुद्ध करैं। जैसे लौकिक मैं अपना पुत्र घर की दूकान पै सीखै नाहीं, तौ ताकौं परकी दूकान पै राखि, गुणवान करि शुद्ध करैं। तैसे ही शिष्य का भला जैसे होता जानैं, तैसे ही भला करैं। ए पर-गण-स्थापन प्रायश्चित्त कहिए। तथा कोई शिष्य गुरु पै मद सहित प्रायश्चित्त याचै, तौ आचार्य शिष्यकौं मद सहित प्रायश्चित्त याचता देखि, ऐसा कहैं। तुम फलानै आचार्य पै जावो, वह तुमकौं प्रायश्चित्त देंयगे। तब शिष्य गुरु की आज्ञा पाय और आचार्य के पास जाय, प्रायश्चित्त याचै। तब वह आचार्य शिष्य कौं मद दोष सहित जानि, ऐसी कहैं। तुम अपने ही गुरु पै याचो। तब शिष्य अनादर जानि, पीछा अपने गुरुपै आवे। प्रायश्चित्त याचे। तब गुरु, और आचार्य के पास फिरावैं। तब वह भी दंड नहीं देय, फिर अपने ही गुरु पै आवै। ऐसे सात संघ मैं, सात आचार्यन के पास खिदावे। कोई भी या मानी-शिष्यकौं दंड नहीं देंय। तब यो अपने गुरु पास आय, मान तजि, सरल होय कहे। मोकों प्रायश्चित्त देहु। तब गुरु याकौं विनय सहित देखि, निःशल्य प्रायश्चित्त याचता देखि, प्रायश्चित्त देय, शुद्ध करैं। इत्यादिक ए अनुपस्थान के भेद जानना। आगे पारंचिक प्रायश्चित्त का स्वरूप कहिए है। जानै मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका इन च्यारि संघ कूं उपद्रव किया होय। तथा कोई पृथ्वी के राजातैं द्वेष-भाव किया होय। तथा जाकूं काहू स्त्री तैं कुशील सेवनादि अन्याय मार्ग का दोष लागा होय। तिस मुनि कूं बड़े दंड होंय। जैसे ऊपर उत्कृष्ट

दंड कहै, सो होय। पीछे धर्म रहित चेत्रन में राखैं और सर्व लोकन कौं ऐसा जनावैं जो ए मुनि महापाप के करनहारे हैं। बड़े पापी हैं, तातैं आचार्यने संघतैं इनकों काढ़ि दिये हैं। संघ बाहिर किया है। ऐसा दीघ दंड अपमान का कारण, लोकनिंद्य, ता दंड कूं पायकें यह धर्मात्मा शिष्य, हर्ष सहित परणति राखि, गुरु की आज्ञा प्रमाण प्रवर्ते है। कैसा है शिष्य, महावैराग्य करि सर्व अंग भरया है। और बड़ी शक्ति का धारी, ज्ञान का भंडार, गुरुके दिए प्रायश्चित्त कूं पाय बढ़्या है बहु हर्ष जाकें, सो ऐसा आचार्य का दिया दंड पाय ऐसा विचारे, जो आजका दिन धन्य है। जो आचार्य हमकौं प्रायश्चित्त देय, शुद्ध करें हैं। हमारे पाप दूर करवे का इलाज बताया है। सो अब हम गुरु के प्रसाद तैं पापकूं मेटि, मोक्ष चलेंगे। ए गुरु धन्य हैं। ऐसा हर्ष सहित प्रायश्चित्त लेय। ऐसे शिष्यन कूं ऐसे दंड होय हैं। ऐसे पारंचिक प्रायश्चित्त जानना। जैसे लौकिक में राजा दीर्घ दंडवारे कौं लोकके जनावे कौं, सर्व नगर में फेरें। सर्वकूं ऐसा कहैं, जो यह राजा का गुन्हगार है। यानैं ऐसा निंद्य कार्य किया था, सो ऐसा दंड पाया है। तैसे ही केतेक पाप ऐसे हैं जो ऐसा दीर्घ दंड भए ही शुद्ध होय हैं, याका नाम परिहार प्रायश्चित्त है। और कोई शिष्य नें जिन आज्ञा लोप, मिथ्यामार्ग सेया होय, तौ गुरु ता शिष्य की सर्व दीक्षा छेद, नवीन दीक्षा देय, तब शुद्ध होय। जैसे लौकिक में काहू नें अपना कुल-कर्म तजि, कोई नीच-कर्म किया होय। तौ राज-पंच वाका घर लूटि लेय। सो केतेक दोष ऐसे हैं, सो सर्व दीक्षा छेद, नवीन दीक्षा देय, छेदोपस्थापन करावैं, तब शुद्ध होय। याका नाम उपस्थापन प्रायश्चित्त है। ऐसे प्रायश्चित्त के दश भेद कहे।

अपना लाग्या दोष कूं याद करि, प्रायश्चित्त लेय शुद्ध होय, सो प्रायश्चित्त तप है ॥७॥ और आपतैं गुणाधिक का विनय, सो विनय च्यारि भेद है। सो ही कहिए है। प्रथम नाम—ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचारविनय। इनका सामान्य अर्थ—तहां विनयतैं शास्त्र बांचना, विनयतैं शास्त्र का सुनना, और पद, विनती, पाठ, स्तुति पढ़ना सो विनयतैं। तथा शास्त्र लिखना-लिखावना, सो विनय तैं। तथा शास्त्र के मनोज्ञ पूठा-बंधना करि हर्ष मानना, इत्यादिक ज्ञान विनय है ॥ १ ॥ अपने दृढ़ श्रद्धान् कूं भलीभांति पालना, ता सम्यक् कूं पचीस दोष नहीं लागवे देय। राजा, पंच, कुटुम्बादि, व्यंतरादि देवन की शंका छांड़ि, निःशंक होय, अपने जिन-भाषित-तत्वनि का श्रद्धान दृढ़ रखना, सो दर्शन विनय है ॥ २ ॥ और जहां पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति इन तेरह प्रकार चारित्र कूं विनय सहित पालना। तथा इन चारित्रों के धारक मुनीन का विनय, सो चारित्र का विनय है। तथा चारित्र की तथा चारित्र के धारक की बारंबार प्रशंसा-स्तुति करना, सो चारित्र विनय है ॥ ३ ॥ और जहां यथायोग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव देख सर्वका विनय करना, सो उपचार विनय है। तहां उपचार विनय के दोय भेद हैं। एक धर्म सम्बन्धी विनय, एक कर्म सम्बन्धी विनय। जहां देव, धर्म, गुरु, तीर्थ, चारित्र, तप और व्रत की पूजा—स्तुति-प्रशंसा करना, सो धर्म उपचार विनय है। तथा पंचपरमेष्ठी, सम्मेदशिखरजी आदि सिद्ध क्षेत्र, अष्टान्हिका आदि शुभकाल, सर्व जीवके हितभाव, धर्म-शुक्लभाव, ए सर्व धर्म सम्बन्धी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव हैं। सो इनकी अष्ट द्रव्य से पूजा-स्तुति करनी, सो धर्म सम्बन्धी विनय है। और राज, पंच, माता, पिता,

व्यवहार गुरु जातें ज्ञान लाभ भया होय तथा उम्र करि बड़े, तिनका यथायोग्य विनय, सो उपचार विनय है ॥८॥ और मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका इन च्यारि प्रकार संघके धर्मात्मा जीवन कूं तनमैं खेद देख, तिनके पांव दावना, यतन करना, सुश्रूषा करना, सो वैयावृत तप है ॥ ९ ॥ और स्वाध्याय जो शास्त्र बांचना, प्रश्न करना, औरनकूं जिन धर्मका उपदेश करना और बारंबार तत्वन का विंचार सुन्या जो गुरु मुखतें उपदेश, ताका बारंबार चिंतवन, तथा जिन आज्ञा प्रमाण श्रद्धानरूप भावन की प्रवृत्ति, ए पंच भेद स्वाध्याय हैं। जहां आत्महित कूं, निराकुल चिंतवन करवे कूं, तत्वन का ज्ञान बढ़ावे कूं, कषायन का बल तोरवे कूं, शांतिरस पीवने कूं, भेद-ज्ञान विचारवे कूं, स्व-स्वभाव विषैं मगन होवे कूं, शास्त्राभ्यास करना, सो स्वाध्याय तप है। तथा तत्वन में कोई प्रकार संदेह हो तो ताके मेटवे कूं प्रश्न करना। तथा अनेक नयका ज्ञान वढ़ावे कौं अनेक युक्ति सहित, तत्व भेदन का प्रश्न, विशेष ज्ञानीनतैं करना, सो स्वाध्याय है। और जहां जिन भाषित तत्वन की प्रतीति करना, कि जो जिन देव ने कह्या है, सो प्रमाण हैं। ताही जिन-आज्ञा-प्रमाण श्रद्धान का करना। ताही आगम (नय) प्रमाण आप रहना, सो आम्नाय भेद स्वाध्याय है। और जहां भव्य जीवनकूं मोक्षमार्ग होवे कूं, पर-भव सुधारवे कूं, संसार दुख मेटवे कूं, तत्वज्ञान वढ़वे कूं, आत्मीक ज्ञानकी प्राप्ति होवे कूं, परोपकार परणति करि और जीवन कूं धर्म का उपदेश देना, सो धर्मोपदेश स्वाध्याय है। और अंगीकार किया उपदेश ताकौं चलते-बैठते—सोवते सदीव चिंतवन करि, संसारीक पदार्थन का यथावत् चिंतवन करना। संसार दशा कूं अथिर विचारना तथा इस जीव कूं

मरण समय कोई शरण नाहीं। माता-पिता, मंत्र-तंत्र-जंत्र, देव, इन्द्र, व्यंतरादिक कोई याकों शरण नाहीं। याके शरण—याके सहाय, कोई नहीं हैं। ऐसे अनेक नयन करि वस्तु कूं अशरण जानि चिंतवन करना, सो अशरण चिंतवन है। और संसार षट्द्रव्यन करि भर्‌या, ता विषैं जीव पर-वस्तु कूं मोहभाव कर अपनी मानता, ताविषैं रति भाव मानता, सो संसार भाव चिंतवन है। और संसार में ए जीव अनादिकाल का च्यारि गति में भ्रमण करता, सुख-दुख का भोगता होय है। सो एकला आत्मा ही है। और कोई संगि नाहीं। जब जीव अपने शुभभाव करि देव होय, तब नाना सुख का भोगता एकला ही होय है। और जब अपने पाप भाव करि जीव नरक जाय है। तब दुख भी एकला ही भोगवै है। और तिर्यञ्च-मनुष्य विषैं भी प्रसिद्ध दीखै ही है। जब इस प्राणी कों पाप उदयतैं तीव्र दुक्ख होय है, तो सर्व कुटुम्ब-जन देखा ही करैं हैं। ये ही पड़्या विलाप करै है। कोऊ बटावता नाहीं। च्यारि गति के दुख-सुख एकला आत्मा ही भोगवै है। ऐसा चित्त में विचारै, सो एकत्व-भाव-चिंतवन है। और संसार में जेते पदार्थ हैं तेते कोई काहूतें मिलता नाहीं। सर्व अपने-अपने स्वभाव करि अन्य-अन्य हैं। ऐसा विचार होय, सो अन्यत्व-भाव-चिंतवन है। और शरीर अशुचि, पुद्गल पिण्डमई, अपावन, सप्तधातु का मन्दिर, ग्लानिका स्थान, ता विषैं निर्मल आत्मा, अमूर्तीक, ज्ञानमई, कर्म वश तें एकमेक दीसै है। परन्तु अपने चैतन्य भावकूं नहीं तजे। यहाँ प्रश्न—जो शरीर कों ऐसा ग्लानि का स्थान बताय कथन किया, सो यामें ज्ञान की कहा महत्वता भई? अरु शरीर कूं ऐसा ग्लानि रूप श्रद्धान करे तो श्रोतान कैं कषायन की क्या

समानता भई ? यामैं तो एक दुरगंच्छा नाम कर्म और बंध्या। दुरगंच्छा प्रगट भये सम्यग्दर्शन कूं मलीनता आवैगी। तातैं शरीर तैं ग्लानि मैं तो कछू नफा नहीं भासै है? ताका समाधान— भो भव्य, जैसे कोई मनुष्य शीतांग में डूबि रहा होय, ताकूं कोई औषधि लगता नाहीं जानि, भला वैद्य होय सो तिस रोगी कूं ज्वर की आताप बढ़ावे का उपाय करै। सो ऐसा विचारै, जो या रोगी का आयु कर्म है अरु रोग जानेवाला है तौ ज्वर बढ़ेगा। और मरन होना है तो शीतांग मिटैगा नाहीं, मेरी औषधि वृथा जायगी। तैसे यह संसारी जीव अनादि मिथ्यात शीतांग में डूबि रह्या है। सो कोई उपाय नाहीं। तातैं हमने दुरगंच्छा रूपी ज्वर की आताप बढ़ावे कौं, यह उपाय किया है। सो हे भव्य, जो तेरे तन तैं अनादि एकता के मोह तें अपनपा मानि शरीर में मगनता भई, ताके पोषवे कूं तूं अनेक मिथ्यात कार्य करै है। अरु जब तेरे, शरीर तैं मोहबुद्धि टूटि, या सप्तधातु मई भासै, तौ चेतन भाव तैं प्रीत आवै, सम्यक् होय। तातैं हमनै शरीरतैं दुरगंच्छा उपजावे कूं, अशुचि भावना का कथन किया है। सो जब शरीर तैं दुरगंच्छा होय, तौ हमारा उपाय सिद्ध होय। तनतैं भिन्नि जानतैं अनादि मिथ्यात शीतांग मिटै, मोक्ष होवे की आशा बढ़े। तातैं ए कथन जानना। ऐसा तेरे प्रश्न का उत्तर है। तातैं अशुचि भावना का चिंतवन है। और जीव राग-द्वेष भावकरि मिथ्यात, अविरत, योग, कषाय इनके निमित्त कौं पाय, कर्म आश्रव करै है। सो ऐसे विचार का करना, सो आश्रवानुचिंतवन है। और जहां आश्रवभाव रोकिए, सो संवर है। सो मिथ्यात आश्रव रोक कें तौ सम्यक् होय। और अव्रतभाव रोक

कैं, व्रत भाव होय और योगिन की अशुभता मेटि शुभता होय । कपाय मेटि वीतराग भाव होय । ऐसे करि मोह मंद करि, रागद्वेष भाव निवारिना, आश्रव रोकि संवर करना, सो संवरानुचिंतवन है । और विशुद्ध भावना करि सत्ता कर्मन कूं खेरि (झाड़ना)-असत्व रूप करना, सो निर्जरा है । सो निर्जरा के दोय भेद हैं । एक सविपाक, एक अविपाक । तहां अपनी पूरण थिति करि कर्मका खिरना, सो सविपाक निर्जरा है । और जो तप-संयम के योगतें, तथा परणामन की विशुद्धतातें कर्म का खिरना, सो अविपाक निर्जरा है। ऐसे विचार का नाम निर्जरानुचिंतवन है । और जहां तीन लोक-संस्थान जो आकार, ताका विचार भेद—भाव करना, सो लोकानुचिंतवन है । और जीवाजीव आदि वस्तु अपने स्वभाव कूं न तजै, स्वभाव रूप रहै पर-भावरूप नहीं होय, सो ऐसे विचार का नाम धर्मानुचिंतवन कहिए । और अपने स्वभाव में रहना, सो तो सुलभ है, पर-स्वभावरूप होय सो दुर्लभ है। जैसे जीवकूं चैतन्य भाव रहना, ज्ञान मई रहना, धर्म भावना होना इत्यादिक जीव के गुण मई जीवकूं रहना, सो सुलभ है । इन मई रहतैं कछू उपाय—खेद नाहीं करना परै है, सहज ही है । और जीवकूं जड़ होना, मूर्तीक होना, महा दुर्लभ है । अनेक कष्ट खाए भी जड़त्व—मूर्तीक नहीं भया जाय है । इत्यादिक चिंतवन सो दुर्लभानु चिंतवन है । ऐसे अनेक प्रकार जिन भाषित तत्वनि का चिंतवन, सो अनुप्रेक्षा नाम स्वाध्याय भेद है। ऐसे पंच भेद स्वाध्याय कह्या । और तनतैं ममता भाव रहित होय, एकासन खड़ा ध्यान करना, सो कायोत्सर्ग तप है । और जहां मन-वचन की एकता रूप, धर्म ध्यानरूप भावना की थिरता और कपायन की मंदता सहित आपा—परके

निर्धाररूप ध्यान करना, सो ध्यान नाम तप है। ऐसे बारह प्रकार तप भेद हैं। सो सुतप उपादेय हैं। इति तप विषै ज्ञेय-हेय-उपादेय कह्या।—आगे व्रत विषै ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये हैं। जहां सुव्रत व कुव्रत का समुच्चय जानना, सो तौ ज्ञेय है। ताही के दोय भेद हैं। एक सुव्रत और एक कुव्रत। जहां भोरे जीवन के प्ररूपे, परमार्थ शून्य, अपनी अज्ञान चेष्टा करि जो व्रत करै, सो कुव्रत है। केतेक तौ क्रोध पोखवे के व्रत हैं। केतेक मान पोखवे के त हैं। केतेक माया पोखवे के व्रत हैं। केतेक लोभ पोखवे के व्रत हैं। ऐसे क्रोध, मान, माया, लोभ पोखवे कौं जो व्रत हैं, सो सम्यग्दृष्टी मैं हेय हैं। जहां पर-जीवन के मारवे कौं, शत्रु आदि के दुख देवे कौं, इत्यादिक विचार सहित व्रत करना, यथा—जो मेरा फलाना शत्रु है सो क्षय होहु। ताके निमित्त एक बार खाना, बहुत धन दान देना, पूजा-उपवास करना, रस रहित खाना, भूमि सोवना, नांगे पांव फिरना, एक अन्न ही खाना, एक रस ही खाना इत्यादिक विधि सहित उपवास-व्रत करना, सो क्रोध सहित व्रत कहिए। और अपनी आज्ञा कोई नहीं मानता होय, वश नहीं होता होय। ताके वश करवे कूं अपने बलकी सामर्थता तौ नाहीं, अरु मान पोखा चाहै। ताके निमित्त कोई देव-व्यंतर के साधनकूं व्रत करना, पराया मान खंडन कूं व्रत करना, सो मान पोखिव्रत है। और जो व्रत आप छल सहित करै। परिणाम तौ दुराचार रूप, और लौकन के दिखावेकूं, आप धर्मी बाजवे कूं व्रत का करना, सो माया पोखि व्रत है। और अन्य जीवन के धन हरवे कूं, हाथी-घोड़ा हरवे कूं, मंदिर हरवे कूं, नाना युक्ति के व्रत करना। तहां ऐसा विचारना जो मोकौं राज मिलै, पुत्र मिलै, कुटुम्ब की वृद्धि होय,

या वृत तैं धन मिले, इत्यादि वत हैं सो लोभ पोषित व्रत हैं। तिन वृतन की लौकिक मैं भोरे जीवन मैं ऐसी प्रवृर्ती है कि जो यह वृत करै तौ शत्रु नाश होय। कोई वृतन का फल ऐसा कह्या है जो याके किए वैरी वश होय, आप ही आय नमैं। केई वृतन का फल ऐसा प्ररूप्या है जो याके किये राज सभा मैं आदर पावै, सभा वशि होय। केतेक वतन का फल ऐसा कह्या, जो इनकौं करै तौ लोकमान्य होय, जगत में पूजा पावै। या वृत तैं धन होय। और स्त्री करै तौ बहुत दिन लौं ताका सुहाग रहै, भर्तार मरै नाहीं, पुत्र होय, सास-श्वसुर सर्व ताकी आम्नाय मानैं, यश पावै, भर्तार वश होय। इत्यादिक व्रत हैं सो क्रोधी, मानी, मायावी, दगावाज, लोभी, पाखंडी जीवन के प्ररूपे हैं। जो भोरे जीवन कों तनिक (थोड़ा) कौटिल्य ताका लोभ वताय, अपनी महंतता—धर्मात्मापना वताय, लोकन का धन हरि लेय जाते रहैं। ऐसे दुशत्मा जो ऊपरि तैं शांति मुद्रा भेषि बनाय, भोरे जीवनकूं विश्वास देय, ठग लेंय। ऐसे जीव धर्म-भावना रहित, तिन नें ए कुवृत प्ररूपे हैं। सो सम्यग्दृष्टी करि सहज ही हेय हैं। और जे वृत हिंसा करि सहित होंय, जिन व्रतन में अनगाळे जल मैं नित्य सपरना (स्नान) कह्या होय। तथा जिन वृतन मैं नाना प्रकार अन्नादिक वनस्पती का उगावना कह्या होय, सो वृत हेय हैं। तथा जिन वृतन मैं ऐसा कह्या हो, कि जो पशुन कों भोजन दिए अपने देवादि तृप्त होंय, सो वृत हेय हैं। और जिन वृतन मैं दिन-भोजन छोड़ि, रात्रि भोजन कह्या है। सो व्रत हेय हैं। और जिन व्रतन में ऐसा कह्या, जो आज मोटा-बड़ा रोट खावना योग्य है, ऐसे वृत हेय हैं। और कोई वृत ऐसा, जिसमें लड्डु खावना कह्या है,

ऐसे वृत हेय हैं। कई वृतन में ऐसा कह्या है जो आजि सूत व रेशम के तागा बनाय ताकों एती गांठि दीजिये, पीछे भुज-बंध करना कह्या, सो वृत हेय हैं। तथा इस वृत के दिन पशून को पूजिए, घास पूजिये, तथा पंचेंन्द्रिय पशून का मल-मूत्र पूजिये, तथा इस वृत में तिल-तेल ही खाइए है। तथा इस वृत के दिन गुड़-भोजन शुभ कह्या, इत्यादिक इन्द्रियन के पोषनेहारे, कामी-लोभी जीवन के प्ररूपे, तन पुष्ट कारी वृत, सो हेय हैं। तथा इस वृत में दूध-दही खाइए हैं। तथा दूध ही डारिए है। तथा इस व्रत में जीवन कों मारिए, इत्यादिक कुवृत भोरे जीवन के करवे योग्य हैं। इन्हें मानी ज्ञान-धन-हीन जीव ही करै हैं। और ऐसे ही मोही जीवन के प्ररूपे हैं। सो ए वृत मोक्ष—मार्ग के ज्ञाता, सम्यग्दृष्टी के धारी जीवन कूं सहज ही हेय हैं। इति कुवृत। आगे सुवृत कथन—भो भव्य, सुवृत तिनका नाम हैं जिनके किए अपने अगले पापन का नाश होय। जिन वृतन का नाम लिए पुण्य बंध होय। जिन वृतन के आगे दया का निदान प्रगट चलता होय, सो दयासागर शुभ-वृत हैं। जिन में पापारंभ का त्याग होय, शुभाचार सहित जिनमें क्रिया कही होय। सत-व्यसनादिक पाप, तिन की प्रवृत्ति नहीं होय। जहां वृत दिन द्यूत खेलना, मनै किया होय। वृत में मांस भक्षण नहीं कह्या होय। जिन वृतन में मदिरा पान नहीं होय। जिन वृतन में वेश्यादिक कंचनी (कुट्टनी) का सेवना, नृत्यादि देखना नहीं होय, सो शुभ वृत हैं। जिन वृतन में दीन जीवन की हिंसा तजि, दया कही होय। तथा जिनमें मनुष्य-घात, भैंसा-घात, बकरी-घातादिक खेदक क्रिया नहीं होय, सो शुभ वृत हैं। जिन वृतन में पराई वस्तु की चोरी नहीं कही

होय। जिनमें पर—स्त्रीन का सेवन, पर स्त्रीन कों रति दानादिक कुशील क्रिया जामें नहीं होय, सो सुव्रत हैं। जिन व्रतन में तन धोवना, सपरना, अभक्ष खावना, कुशब्द बोलना, नहीं कह्या होय, सो शुभ व्रत हैं। जिन व्रतन में शस्त्र चलावना नाहीं कह्या होय, सो शुभ व्रत हैं। जिन व्रतनमें शस्त्र चलावना नाहीं कह्या होय, तथा पाषाण चलावना, मिट्टी राख-वगरावना नहीं होय, सो सुव्रत हैं। और पाखंड रहित होंय, क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादिक दोष रहित होंय, सो शुद्ध व्रत हैं। जा व्रत के किए परणाम समता सहित रहैं, सो सुव्रत हैं। जिस व्रत में एकेंद्रिय आदि त्रस-स्थावर जीवन की दया रूप क्रिया होय, सो शुभ व्रत हैं। और दान, पूजा, शील, संयम, तप इन सहित होंय, सो सुव्रत हैं। तिन व्रतनके भेद बारह हैं। तिनके नाम पंच अणुव्रत हैं। तहां अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहत्यागाणुव्रत। ए पंच अणुव्रत हैं। जहां एकोदेश हिंसा का त्याग, तहां त्रस हिंसा का तो सर्वप्रकार त्याग होय। और स्थावर हिंसा के आरंभ में दयाभाव सहित प्रवर्तना, सो अहिंसाणुव्रत है ॥ १ ॥ जहां झूठ बोले राजा दंड दे, पंच भंडैं, ऐसी तीव्र जूठ का त्याग सो सत्याणुव्रत है ॥ २ ॥ और जाके किए राज दंडै, पंचलोक भंडैं ऐसी तीव्र झूठ का त्याग सो अचौर्याणुव्रत है ॥ ३ ॥ और बड़ी-परस्त्री माता सम, बरोबर भग्नी सम, लघु पुत्री सम, चिंतवन करि तजै, तिनमें विकार भावका त्याग, घर की—परणी स्त्री के संभोग में तीव्र तृष्णा का त्याग, सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है ॥ ४ ॥ और वर्तमान समय अपने पुण्य प्रमाण परिग्रह में तें कछू घटाय कें ताका त्याग, सो परिग्रह त्यागाणुव्रत है ॥ ५ ॥ ऐसे पंच अणुव्रत

हैं। आगे च्यारि शिक्षा व्रत कहिए हैं। सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग प्रमाण और अतिथिसंविभाग। आगे इनका अर्थ—इन व्रतों की साधनरूप क्रिया है, तातें इनका नाम शिक्षा व्रत है। तहां तीन काल सामायिक की विधी का साधना, सो सामायिक शिक्षाव्रत है ॥ १ ॥ और आठें-चौदश के दिन, सोलह प्रहर का पापारंभ का त्यागरूप एक स्थान में धर्म ध्यान सहित प्रतिज्ञा का साधन, सो प्रोषधोपवास शिक्षा वृत है ॥ २ ॥ और आगे अपने पुण्य प्रमाण में तें घटाय भोग-उपभोग का राखना, सो भोगोपभोग परिमाण शिक्षा-वृत है ॥३॥ और जहां अपने निमित्त किया भोजन तामैं तें मुनि, त्यागी. श्रावकादिककूं दान का देना, सो अतिथि करण शिक्षा वृत है ॥ ४ ॥ ए च्यारि शिक्षा वृत। आगे तीन गुणवृत के नाम—दिग्वृत, देशवृत, और अनर्थ दंड का त्याग। अब इनका सामान्य अर्थ—जहां दशों-दिशा विषैं पापारंभ निमित्त गमनागमन का प्रमाण, सो दिग्वृत है ॥१॥ और दिग्वृत मैं तें घटाय रोज व्रत-नियम करना, सो देशव्रत है ॥२॥ और जहां बिना प्रयोजन पापारंभ का त्याग सो अनर्थ दंड का त्याग, सो अनर्थ दण्ड गुण व्रत है ॥ ३ ॥ ऐसे पंचाणुव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत, तीन गुणवृत, सर्व मिलि बारह व्रत हैं। सो ए व्रत पाप नाशक, पुण्य वृद्धि करन हारे, सुव्रत जानना। इन व्रतन के किये तें जग-यश होय। पापनाश होय। समताभाव होय। बुद्धि उज्ज्वल होय। दया मई भाव होय। कुबुद्धि का नाश होय। सुबुद्धि का प्रकाश होय। ऐसे अनेक पाप-दुख मिटि, अनेक गुण प्रगट होय हैं। जैसे काहू पुरुष कूं तीव्र क्षुधा लागी, तब वह बिना भोजन शिथिल होय, नेत्रन आगे तमारे आवैं, चल्या नाहीं जाय।

भागा नहीं जाय। बुद्धि में युक्ति नाहीं उपजै। पुरुषार्थ जाता रहै। दीन होय, पराधीन होय, इत्यादिक अनेक रोग व दुख प्रगट होंय। और जब पेट भर भोजन मिलै, तब सर्व रोग-दुख एक समय में जाता रहै है। तैसेही विवेकी कों भला ज्ञान होतें सुव्रत रूपी भोजन मिलतें ही, कुभावरूपी अनेक दुख-खोटे व्रत रूपी जो वेदना थी सो सर्व, नाशकूं प्राप्त भई। तब अनेक शुभ दायक भाव होय हैं। अनेक युक्ति उपजने लगी, ताकरि तत्त्वन का भेदाभेद विचारि अपना कल्याण करै है। ऐसा जानि विवेकीन कों अनेक विधी विचारि करि, सुख का लोभी-धर्म का इच्छुक, अनेक मतन का रहस्य देखि, जहां शुभ दया भावन कूं लिये, उज्ज्वल आचार सहित व्रत होंय, सो करना योग्य है। जा व्रत के किए तें पाप नाश होय, सो व्रत उत्तम है। और जिस व्रत के किए पाप उपजै, सो हेय करना योग्य है। विवेकी जीवन कूं अपने विवेक तें भले-बुरे व्रत की परीक्षा कर लेनी। कोई कहै हमारा व्रत भला है। तो काहू के कहे तें ही नहीं लेना। अपनी-अपनी सब ही भली कहैं हैं, यह जगत की रीति ही है। परन्तु विवेकी परीक्षा करि जो अंगीकार करै, सो व्रत पक्का है। जैसे गुदरी (बाजार) में अनेक प्रकार रतनादि विकैं हैं। तहां केई तो सांचे रतन लिए खड़े हैं। और केई झूठे रतन लिए खड़े हैं। सो ग्राहक कूं सर्व अपना-अपना रतन सांचा ही कहैं हैं। सो बेचने वारा तो कहे ही कहै। परन्तु लेने वारों को अपनी चौकस कर लेना योग्य है। काहू के कहने पे नहीं जाय। तैसेही धर्म-दुकान अनेक हैं। अपने-अपने व्रतकों सर्व उत्तम मानें हैं। परन्तु धर्मात्मा जीव अपनो बुद्धि के बल करि परीक्षा करै। जहां शुद्ध दया सहित व्रत होय, सो करना। तिनका स्वरूप

ऊपरि कहि आये हैं। अनेक शुभ व्रत हैं व अनेक अशुभ व्रत हैं। इनकी परीक्षा निमित्त अनेक व्रतनका
लक्षण कह्या है। तातैं परख कैं करना। इनका विशेष आगे व्रत प्रतिमा मैं कथन
करेंगे, तहां तैं जानना। इति व्रत विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे दान विषैं ज्ञेय-
हेय-उपादेय कहिये है। तहां समुच्चय शुभाशुभ दान का जानना, सो तौ ज्ञेय है। ताही ज्ञेय
के दोय भेद हैं। एक सुदान ज्ञेय तौ उपादेय है। दूसरा कुदान ज्ञेय, सो हेय है। सो प्रथम
दान का लक्षण कहिये है। सो जाके देते चित्त महा भक्तिरूप होय, सो दान हैं। तथा दान
को देते चित्त दया मई होय, सो दान है। और जाके देते मन मैं नहीं तौ भक्ति भाव होय,
नहीं दया भाव होय, सो दान देना ऐसा है जैसा राजा कौं दंड देना। ए दान दंड समान
है, सो कुदान जानना। जैसे काहू के तन पै पीड़ा आई होय, तब लोभी पुरुष रोगी कूं भोरा
जानि, या कहै। जो हाथी का दान देय, तथा घोड़े का दान देय, तथा गाड़ी—रथ का दान
देय। इसी प्रकार विषय-सेवन के स्थान घर, सो मन्दिर दान। सुवर्ण-चांदी दान। विषय-सेवन
कौं दासी-दास दान, स्त्री का दान, कन्या दान, धरती दान, तिल दान, उड़द दान, श्यामवस्त्र
दान, तेल दान, इत्यादिक दान जो हैं सो लोभी जीवन के तौ प्ररूपे हैं। अरु भोरे जीवन
कौं अज्ञान जानि कहैं हैं। सो कुदान हैं। सो विवेकीन कौं तजना योग्य है। इति कुदान।
आगे सुदान—तहां सुदान के च्यारि भेद हैं। भोजन दान, औषधि दान, शास्त्रदान और
अभयदान। अब इनका अर्थ—तहां अपने निमित्त भोजन किया, तामैं तैं पहलें मुनिकौं
तथा त्यागी-श्रावक कौं, तथा अर्जिका कौं यथायोग्य महा हर्ष धारि, विनय सहित दान देना,

सो भोजन दान है। तथा कोई यती श्रावकादिकका निमित्त नहीं होय तो दीन, बूढ़ा, बालक, रंक, भूखा, अशक्त, अंधा, लूला इन आदिक कौं असहाय देखि, इनके तन की रक्षा कौं करुणा भाव सहित अन्न दान देना, सो याका नाम भोजन दान है। याके फलतैं सदा सुखी होय, अन्न-धन बहुत होय, अन्न बहुतन कौं देय, खानेवारा उदार चित्त का धारी होय ॥१॥ और जहां मुनि, आर्जिका, श्रावक, त्यागी, इनकें तन पीड़ा देखि, इन योग्य प्रासुक औषधि देना। तथा कोई गरीब, रंक, भूखा, दुखिया, बालक, वृद्धादि, असहाई, निर्धन होय, ऐसे जीवनकौं रोग वेदना देखि, धर्मात्मा पुरुष अपना चित्त करुणा रूप करि औषधि करना, जतन करना, सो औषधि दान है। याके फल तैं शरीर निरोग होय ॥ २ ॥ और जहां मुनि, अर्जिका, श्रावकादिक धर्मात्मा पुरुषन के पठन-पाठन कौं शास्त्र देना, सो शास्त्र दान है। सो लिखाय देना, तथा आप लिख देना, तथा अन्य भव्य जीवन कौं धर्मोपदेश देय, धर्म विषैं सन्मुख करना, पढ़ावना, भूलेकूं बतावना, सो शास्त्र दान है। याके फलतैं अतिशय ज्ञानका धारी होय ॥ ३ ॥ और जहां अन्यजीवन का दुख मेटि, सुखी करना। कोई दुष्ट, दीन-जीव, पशु-मनुष्यादिक कौं मारता होय, सो अपनी शक्ति प्रमाण ज्ञान, धन, बल, हुक्मादिक करि मारते कूं बचावना। आप कोई जीवन कौं नहीं सतावना, सर्व कूं सुखी करना। सर्व जीवन तैं मैत्री-भाव राखि सर्वकौं सुखी चाहना, सो अभयदान है। याके फलतैं आप अभय पद जो मोक्ष पद, ताहि पावै। तथा कोई भव धरना होय तो देव-इन्द्रादि पद पावै। तथा मनुष्य होय तौ चक्री, त्रिखण्डी, भटादि, महाशोभा, दीर्घ आयु का धारी होय। ऐसा फल अभयदान का

जानना । यह अभयदान है ॥ ४ ॥ ए च्यारि प्रकार दान हैं, सो शुभ दान हैं । ए दान, सम्यग्दृष्टीन करि उपादेय हैं । इति दान में ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन । आगे पात्र विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है । तहां समुच्चय सुपात्र-कुपात्रके भेदका जानना, सो तौ ज्ञेय है । ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं । एक सुपात्र है, एक अशुभपात्र है । तहां अशुभके भेद दोय हैं । एक अपात्र एक कुपात्र । तहां कुपात्रके तीन भेद हैं । जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट । तहां बाह्य अट्ठाईस मूलगुण धारी होय और अन्तरंग सम्यक् रहित होय, सो उत्कृष्ट कुपात्र है । और बाह्य श्रावकव्रतका धारी, ग्यारह प्रतिमा विषैं प्रवर्तता, शुभाचारी, धर्मध्यानी, जिन आज्ञा प्रमाण श्रावक क्रिया सहित किन्तु सम्यक् रहित, सो मध्यम कुपात्र है । और व्यवहार सम्यक् देव-गुरु-धर्मकी दिढ़ प्रतीत सहित होय, किन्तु भेद-ज्ञान रहित, अनन्तानुबन्धी की चार और दर्शन मोह की तीन ऐसी सब सात प्रकृति के क्षयोपशम रहित, निश्चय सम्यक् जाकैं नाहीं, सो जघन्य कुपात्र है । यह आप षट्द्रव्य, नवपदार्थ, पंचास्तिकाय के नाम और कौं कहै । धर्म वांच्छा सहित, पाप क्रियातैं विमुख, निश्चय-भाव भेद-ज्ञान करि आपा-पर के गुण-भेद तैं विमुख, सम्यक् रहित, अविरत गृहस्थ, सो जघन्य कुपात्र है । ए तीन भेद कुपात्र हैं । सो औरन कूं मोक्ष—राह बतावैं, किंतु आप मोक्ष—राह नहीं लागैं हैं । इन्हें मोक्ष—मार्ग का सुख नाहीं । जैसे राजा का सूपकार (रसोइया) अनेक प्रकार सुन्दर व्यंजन-रसोई करि, राजाकौं जिमावै, राजी करै । किंतु आप वाके किए भोजन का स्वाद नहीं जानैं । तथा जैसे अनेक व्यंजन-भोजन महामिष्ट स्वाद रूप हैं तिनमें सर्व जगह हँडिया में धातु का चमचा फिरै, परन्तु व्यंजन-भोजन के स्वाद

कूं नहीं पावै। तैसे ही अनेक तत्वज्ञान का रहस्य मुखतैं बतावैं, मोक्ष होने के उपाय बताय औरनकूं तत्व-रसका स्वाद कराय, मोक्ष-मार्ग बताय, सुखी करैं। परन्तु आप तत्वरस-स्वाद नहीं पावै, सो कुपात्र है। तातैं कुपात्र तजवे योग्य-हेय है। इति कुपात्र भेद तीन। आगे अपात्र भेद तीन कहै हैं। जे जिन आज्ञा रहित लिंग के धारी, परिग्रह सहित, आपकूं यतीपद-गुरु संज्ञा मानैं हैं। नाना प्रकार तप-संयम-ध्यान करैं हैं। राग-द्वेष पीड़ित उरके धारी, क्रोध-मान-माया-लोभ करि मंडित, मंत्र-तंत्र-जंत्र, औषधि, रसायन धातुमारणा, ज्योतिष, वैद्यक, नाड़ी इत्यादिक चेष्टा करि आजीविका करने हारे होंय, अनेक भेष-स्वांग के धारी, सो उत्कृष्ट अपात्र हैं। सो औरन कूं तौ ए कुमार्ग उपदेशैं हैं, अरु आप शुभ मार्ग रहित हैं। जैसे कोई ठग, राजा का भेष धरि, औरन पै अमल चलावै, अरु कहै जो मैं राजा हौं। जो मेरी सेवा करैगा, सो अनेक रिद्धि पाय, सुखी होयगा। तब ऐसा जानि, भोरे-गरीब जीव ठग कौं राजा जानि, ताकी सेवा करैं हैं। सो ए भोरे जीव ही ठगावै हैं। क्यों, जो ए ऊपरितैं राजा भया है। अरु अन्तरंग मैं भांड है। सो उल्टा कछू भीख मांगेगा, देवे कौं समर्थ नाहीं। यामैं राजा का एक भी चिन्ह नाहीं। आपही भूखा है। औरन कूं सुखी करवे कूं असमर्थ है। तैसे ही ए अपात्र, आप धर्म-वासना रहित है। तथा और कूं धर्मफल बतायवे कूं असमर्थ है। सो ए उत्कृष्ट अपात्र हैं। तातैं तजवे योग्य-हेय हैं। और जे गृहस्थ, कुटुम्बादि सहित, जिन आज्ञा रहित, हिंसा-मई तप-संयम के धारक, कन्दमूल के भक्षक कूं आचार्य, सत्य धर्म-दयामई तातैं रहित, कुधर्म-हिंसा मार्गी, आपकूं व्रती, तपी, जपी, संयमी, धर्मात्मा मानने हारे, सो मध्यम

अपात्र हैं और जिन आज्ञा रहित गृहस्थाचार के धारी, नाम-पूजा-दानादि-अंगी आपकों जानन हारे, अभक्ष के खाने हारे, हिंसा-धर्म के लोभी, दया रहित गृहस्थी, आपकूं धर्मी जानें, सो जघन्य अपात्र हैं। ए अपात्र के तीन भेद हैं। इति अपात्र। आगे सुपात्र नव भेद कहैं हैं। तहां सुपात्र के प्रथम तीन भेद हैं। उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। तहां उत्कृष्ट पात्र के तीन भेद हैं। उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। तहां तीर्थंकर राज अवस्था तजि दिगम्बर भये, जबतैं केवल ज्ञान नहीं होय, तब लौं छद्मस्थ दशा में हैं। तेते इनकों आहर देना, सो ये उत्कृष्ट के उत्कृष्ट पात्र हैं। और जिनकूं चारित्र के बलि करि अनेक ऋद्धि उपजी होय। अवधि मनपर्यय ज्ञानादि अनेक उत्तम ऋद्धिधारी यतीश्वर, सो उत्कृष्ट के मध्यम पात्र हैं। और अष्टविंशति (अट्ठाईस) मूलगुण, तेरह प्रकार चारित्र का प्रतिपालक, वीतराग, सम्यक् सूर्य के धारी यतीश्वर, सो उत्कृष्ट पात्र के जघन्य पात्र हैं। ए तीन भेद उत्कृष्ट पात्र के कहे। इति उत्कृष्ट पात्र भेद तीन। आगे मध्यम पात्र के तीन भेद कहिए हैं। तहां ग्यारहवीं, दशवीं प्रतिमा का धारी त्यागी श्रावक, सो मध्यम सुपात्र का उत्कृष्ट भेद है। और पंचमी, छठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी प्रतिमा के धारी श्रावक सो मध्यम सुपात्र के मध्यम पात्र हैं। और प्रथम तैं लगाय चौथी प्रतिमा पर्यंत सम्यग्दृष्टी श्रावक, सो मध्यम सुपात्र के जघन्य पात्र जानना। ये मध्यम पात्र के तीन भेद कहे। इति मध्यम सुपात्र भेद तीन। आगे सुपात्र जघन्य पात्र के तीन भेद कहिए हैं। तहां क्षायिक सम्यक् सहित अव्रत गृहस्थ, सो जघन्य सुपात्र का उत्कृष्ट पात्र है। और उपशम सम्यग्दृष्टी का धारी, व्रत रहित असंयमी

गृहस्थ, सो जघन्य सुपात्र का मध्यम पात्र भेद है। और क्षायोपशम सम्यक् सहित अव्रती गृहस्थ, सो जघन्य सुपात्र का जघन्य भेद है। ए तीन भेद जघन्य सुपात्र के हैं। ऐसे नव भेद सुपात्र कहे। आगे कहे जो ऊपरि तीन भेद अपात्र के, तिनकूं उत्कृष्ट पात्र जानि, विनय-भक्ति करि, गुरु जानि दान देना, तो अपात्र दान है। याका फल ऐसा है। जैसे जल के स्थान के मेवे के पेड़, गुलाब के पेड़ विषैं जल और डारिए, तो उस पेड़ का नाश, फल व शोभा का नाश और जल डारया सो वृथा गया, क्योंकि आगे धरती जल तैं पूर्ण थी ही, तामैं और जल डारया, सो पेड़ गलि गया। सर्व करी मिहनत वृथा गई। ऐसा ही अपात्र-दान है। दिया धन नाश, फल नाश, सुख नाश। ताके योगतैं निगोद-नरकादिक दुख प्रगट-फल होय है। तातैं अपात्र का दान हेय है। और कुपात्रकूं गुरु जानि, भक्ति सहित दान का फल, कुभोग भूमि का मनुष्य होय। इहां प्रश्न-जो कुपात्र दान का फल हीन कह्या, सो हमकों सुपात्र का भेद कैसे मिलै? देने वाला तो बाह्य चारित्र की तथा मूल गुणन की शुद्धता देखि, दान दिया चाहै। और लाखों-हजारों मुनियों में सम्यक् धारो यतीनाथ तो थोरे, अरु सम्यक् रहित, शुद्ध मूल गुण धारी गुरु बहुत, सो देने वारा शुद्ध मूलगुण देखि पीछे ऐसा विचारे, जो ए कुपात्र हैं वा सुपात्र है? तो अविनय होय, पाप लागै। तातैं केवली के जानने योग्य बात, श्रावक कैसे जानैं? सुपात्र-कुपात्र की बात तो केवल ज्ञान-गम्य है। सो या दान देने वारे के नफा नहीं भासै है। कोई से दाता कैं भला फल होय तो होय, नहीं यामैं तो दान का अभाव होयगा, यह सन्देह है। ताका समाधान-भो भव्य, यह बात तूने कही, सो सत्य है।

परन्तु हे भव्यात्मा, जैसे काहू राजा का राज बैरी ने छीन लिया है सो वह बाहरे जाय, फौज-बंधी करि, युद्ध करै। राज का तखत ताके हाथ नाहीं, परन्तु राज–भ्रष्ट भी राजा ही बाजै है। युद्ध कर रह्या है। सो बैरी कौ जीत कभी राज पावैहीगा, तासूं राजा ही कहिए हैं। तैसे जे मुनि सम्यक् सहित चारित्र के धारक थे सो कोई कर्म की जोरावरी तैं मोह की प्रबलता करि, सम्यक् राजपद छूटि गया होय, तौ भी वह यती अपनी चारित्र सैन्या जोड़ि कें, मोह राजा तैं युद्ध कर रहे हैं। सो कबहूं मोहकौं जीति, सम्यक् राज लेंयगे। तातें ऐसे मुनि, जिनकौं सम्यक् कभूं होय, कभूं जाय, ऐसे निमित्त जिनकें बनि रह्या होय, तिन्हें कुपात्र ही जानना। और कोई जीव कर्म योगतैं चारित्र मोह की मंदता तैं चारित्र तौ धार्या होय । अरु के तौ अभव्य होय, तथा दूरानदूर भव्य होय–अभव्य राशिसा होय। ऐसे मिथ्यादृष्टी के धारी मुनि, सो कुपात्रन में जानना। सो ऐसे मुनि करोड़ों में भी एक–दोय नहीं होय हैं, कठिन तैं होंय। सो ए कुपात्र हैं। तथा जे मुनीश्वर चारित्र-मूलगुण धारैं हैं। परन्तु अन्तरंग कषायन के योगतैं तिनके मूलगुण दूषित हैं। सो मुनि अपनी मायाचारी करि, अपने दोष बाह्य प्रगट नहीं करै हैं। बाह्य, शुद्ध मूलगुण से दीखैं हैं। अन्तरंग-ज्ञानी के जाननै में दोष सहित हैं। ऐसे कषाय भार करि सहित, मूलगुण के धारी, सो मुनि कुपात्रन में हैं। सो ऐसे भी मायावी–मुनीश्वर बहुत थोरे ही हैं। कोई करोड़ों-अरबों में एक होय, तौ होय। नाहीं होय, तौ नाहीं। ए मुनि कुपात्र हैं। सो कोई दाता के अशुभ कर्मतैं ऐसे मुनि के दान का निमित्त मिलै, तौ कुभोगभूमिका फल होय। नहीं मुनि–दान का फल भोरे मिथ्यादृष्टी जीवन

कैं तथा पशून कैं, सुभोग भूमि का फल होय है। और सम्यग्दृष्टी हैं, तिनकूं दान का फल स्वर्ग–मोक्ष ही जानना। ऐसा तेरे का प्रश्न उत्तर जानि। सुपात्रन के दान देने की बुद्धि सदीव राखना, अनुमोदना करनी। ए सब उत्तम फल दाता जानना। कुपात्र का निमित्त कदाचित अशुभ उदय तैं बनै तौ बनै, नहीं तो सदीव सुपात्रन का निमित्त जानना। जैसे देशांतर के फिरन हारे व्योपारी, द्वीपान्तर जाय, अनेक कष्ट खाय, बहुत धन कमाय ल्याय, सुखी होने हारे, ताका निमित्त तौ बहुत है। और देशांतर में लुट जानैं हारे, जहाज डूबनैं हारे, ऐसा निमित्त कबहूं कुकर्म तैं होता है। कमा लाने वारे बहुत हैं। तैसे कुपात्रन का निमित्त अल्प हैं। और सुपात्र के निमित्त की दीर्घता है। ऐसे राह लुटने की नांई कदाचित् कुपात्र–दान का निमित्त मिले, तो कुभोग भूमि का फल जानना। तहां कुभोग भूमि में आकार-शरीर का, नीचे तो मनुष्य का सा होय है और मुख तिनके पशुअन के आकार हैं। सो कोई का मुख सिंह कैसा है। किसी का हस्ती सा मुख है। कोई का सूअर कैसा मुख है। कोई के मुख घोड़े कैसे हैं। केई का मुख मोर सा है। केईन के कान लम्बे हैं। केईन के ऊंट समान मुख हैं। इत्यादिक आकार जानना। और धरती रंधन जो विल तिनमैं रहैं हैं। केई वृक्षन के स्थल–कोटरन में रहे हैं। और तहां की भूमि की मिट्टी अमृत समान, तिसका भोजन है। एक पल्य की आयु, अरु एक कोस का शरीर होय है। ऐसा कुपात्र दान का फल है। और सुपात्र दान का फल स्वर्ग–मोक्ष है। तथा तीन पल्य, दोय पल्य, एक पल्य आयु के धारी, भोगभूमियां होय हैं। ऐसे कहे अपात्र–कुपात्र तौ विवेकीन

कों हेय हैं। और कहे नव प्रकार सुपात्र भेद, सो उपादेय हैं । यथायोग्य पूजिवे–प्रशंसवे योग्य हैं। इति पात्र में ज्ञेय–हेय–उपादेय कथन। आगे पूजा विषैं ज्ञेय–हेय–उपादेय कहिए है। तहां सुपूजा-कुपूजा का समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक सुज्ञेय है, एक कुज्ञेय है। तहां वीतराग होय, जाकैं अपने सेवकनतैं राग नाहीं, कि जो यह मेरा भक्तिवंत है, निश दिन–मोकों आराधै है, सो यातें प्रसन्न होय, याकूं सुखी करौं। ऐसे विचार का नाम तौ राग-भाव है। और जो आपकौ नहीं पूजै, अपना विनय नहीं करै, निंदा करै, आप की प्रशंसा नहीं करै तौ तातें द्वेष भाव करै, ताके मारवे कौं ताकौं रोग करै। इत्यादिक दुख देने का उपाय करै, सो द्वेष-भाव जानना। ऐसे राग-द्वेष जाकैं नहीं होय सो वीतराग, समता-सुख-समुद्र का वासी, परम पवित्र देव, ताकी सेवा-पूजा-वन्दना है, सो सुपूजा है। और लोक-अलोक जानने हारा, इस तीन लोक में जेते जीव-अजीव पदार्थ समय-समय जैसे-जैसे परणमें हैं, आगे अनंत काल में जैसे परणमैंगे, और अतीतकाल में ऐसे परणमे आये ऐसे तीन-काल तीन-लोक के विषैं अनंते जीव जैसे भाव–विकल्प रूप परणमैं हैं। सब के घट–घट की जानैं। ऐसा अन्तर्यामी, सर्वज्ञ भगवान्, अनंत गुण भण्डार, ताकी पूजा है सो सुपूजा है। ऐसे वीतराग सर्वज्ञ कौं बारंबार नमस्कार होऊ। इति सुदेव पूजा। आगे सुधर्म पूजा कहिए है। तहां सर्वज्ञ-वीतराग का वचन सोई शुभ धर्म है। सर्वज्ञपने तैं कछू छिपा नाहीं। और वीतराग भावन तैं जैसा भासै, जैसा का तैसा कहै। और की और नहीं कहै। सो ऐसे भगवान के वचन प्रमाण हैं। इनके भासे वचन ही का नाम शुद्ध मार्ग रूप, भला धर्म है। सो ही धर्म

यथार्थ सत्य है। या धर्म में कहे जो पदार्थ, सो प्रमाण हैं। ये ही धर्म पूज्यवे योग्य, उपादेय है। और इस ही धर्म-प्रमाण जो दीक्षा के धरन हारे, दिगम्बर, वीतराग, इन्द्रियन सुखनतैं विमुख, आत्मरस के स्वादी, तपसी, नगन तन धारी, षट्काय के रक्षक, विनकारण जगतबन्धु, मोक्ष अभिलाषी, और के हित वांच्छक सो ऐसे गुरु पूज्य हैं, उपादेय हैं। ऐसे कहे जे देव-धर्म-गुरु इनकी पूजा है, सो सुपूजा है। सम्यग्दृष्टीन करि उपादेय है। इति सुपूजा॥ आगे कुपूजा कहिये है। तहां ऊपरि कहि आये देव-धर्म-गुरु का स्वरूप तिसतैं विपरीत जो अपनी सेवा-पूजा-प्रशंशा करै, जासूं संतुष्ट होय ताकूं कहै तोकूं धन दें हों। और जो आपकी सेवा-चाकरी-सुश्रूषा नहीं करै, तौ अपनी भक्ति तैं विमुख, आपका निंदक जानैं, ताकौं डरावै। कहै, याकौं रोगी करौं। याका धन-पुत्र हरौं, याकौं बहुत दुखी करूंगा। ऐसे किसी तैं राग, किसी तैं द्वेष करनै हारा देव, सो सरागी-संसारी है, हेय है। इनकी पूजा सो कुपूजा है। और देव तौ कहावै, अरु गई वस्तु कूं खोजता फिरै, नहीं मिलै तौ शोक करै, ऐसे अज्ञानी देव, मोही-देवन की पूजा है, सो कुपूजा है। तथा और के मारवे निमित्त अवधि धारि, विकराल रूप वनाय, सुभट सा दीखै। जाकी छवि देखि, जीवन कौं भय होय। ऐसे भयानीक देवकी पूजा है सो कुपूजा है। और जिन सराग देवों की छवि देखै, भगत-जगत के जीव, तिनकूं काम-चेष्टा होय, सरागता बढ़ै। स्त्री-संगम आदि अनेक इन्द्रिय-भोग याद आवैं। ऐसे विकारी देवन की पूजा है, सो कुपूजा है। और इन्ही कुदेव-सरागीन के उपदेशे शास्त्र, चमत्कार रूप फाँसी कूं धरै, हिंसा-आरंभ के प्ररूपण हारे शास्त्र, तिनकूं सुनै इन्द्रिय-भोग की अभिलाषा

रूपी अग्नि प्रगट होय। श्रोतानि का चित्त स्त्रीन के भोग—रूप होय, ऐसे विकार भाव का उपजावन हारा कथन जिन शास्त्रन में होय, तिन शास्त्रन की पूजा सो कुपूजा है। और क्रोध—मान-माया-लोभ सहित परिग्रही, गृहस्थ समान पापारंभ-कुशील-असंयम के धारी, अपनी महिमा-बड़ाई-सत्कार-पूजा के वांछक, अनेक भेष धरन हारे, जंत्र—तंत्र का चमत्कार भोरे जीवन कूं बताय, अपना गुरुपद मनावतें होय, तथा ज्योतिष—वैद्यकादि विद्याकरि राजानकूं रिझावे की अभिलाषाधारी, याचनाव्रत कौं लिए, विषयाभिलाषी, मोही, घर तजे पीछे भी लौकिक गृहस्थन की नाईं नाता—सगाई की बुद्धि राखते होंय, इत्यादि कुआचार सहित जो होंय और आपकौं गुरु मनाय पुजावैं, सो ऐसे गुरु की पूजा करनी सो कुपूजा है। और एकेंद्रिय घास—वृक्षन की पूजा करनी, सो कुपूजा है। और भूमि—पूजा, अग्नि—पूजा, जल का पूजन, अन्न की पूजा, ए कुपूजा जानना। इहां प्रश्न—जो इनका पूजन क्यों निषेधा? इनमैं तौ देवत्व—भाव प्रगटपने दीखै है। देखो अन्न अरु जल है, सो तो सर्व जगत—जीवन की रक्षा का आधार है। इन बिन प्राण रहें नाहीं। तातें सर्व का रक्षक देव जानि पूजना योग्य दीखै है। और अग्नि है सो याका तेज—प्रताप प्रत्यक्ष दीखै है। इस अग्नि करि अनेक कार्य की सिद्धि होय है। अन्नादिक का पचावना इस ही तें होय है और भी अनेक अलौकिक कार्य अग्नि तें होते दीखैं हैं। तातें यामैं भी देवत्व—भाव भासै है। और वनस्पती है सो वृक्षादिक तौ सर्व जीवन की रक्षा-सुखकौं, छाया करैं हैं। और धरती है सो प्रत्यक्ष धीरजता लिए सर्व जगत का भार सहै है। कोई तौ धरती को खोदैं हैं। कोई

यापै अग्नि प्रजालैं हैं। कोई यापै कूड़ा डारै हैं। केई मल—मूत्रादि डारैं हैं। इत्यादिक जगत—जीव उपद्रव करैं हैं। परन्तु धरती काहू तैं द्वेष नहीं करै है। ऐसी वीतराग दशा धरै है। तातैं प्रत्यक्ष देवता है। ऐसा जानि पूजिए है। ताका समाधान—भो भोरे सरल परणामी, सुनि। हे भव्य, चित्त देय के धारन करना। जो पदार्थ जगत में पूज्य है—बड़ा है—श्रेष्ठ है। ताका अविनय कोई करै भी, तो कदाचित् भी नहीं होय है। या लौकिक प्रवृत्ति अनादि-कालकी, तीन लोक में चली आवे है। जो पूज्य हैं, ताका अविनय जो करै, सो ताकूं महा-पापी कहैं हैं। तातैं हे भाई, तूं देखि। अन्न अरु वनस्पती का तो सर्व भक्षण करैं हैं। और जल कौं पीवैं हैं, डालै हैं, हाथ—पांवन तैं मर्दन करै हैं। कोई अन्न पीसै है। कोई वनस्पती छेदन करैं हैं। इत्यादिक क्रिया होतैं, विनय सधता नाहीं। तौ पूज्य-पद कैसे संभवै? और अग्निकौं जलाईए, बुझाइए, पीटिए, मलिए, दाबिए, हाथ– पांव के नीचे मसलिए, इत्यादिक अविनय होय है। और सर्व तैं हीन मनुष्य होय, सो भी इनका अविनय रूप परणामैं है। तातैं इनमें देवत्व—भाव नाहीं। ये कर्म—योगतैं एकेन्द्रिय भये हैं। सो पूर्वला पाप का फल भोगवै हैं। महा अविनय-अनादर के स्थान भए हैं। तातैं हे भव्य, ऐसा जानि। अविनय का स्थान जो वस्तु होय, सो पूज्य नाहीं। तातैं इनकी पूजा है, सो कुपूजा है। इत्यादिक ऊपर कहे जे स्थान, सो सम्यक्भाव में हेय कहे हैं। इति कुपूजा। ऐसे सुपूजा—कुपूजा में ज्ञेय—हेय—उपादेय कथन।

इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये, व्रत, दान, पात्र, पूजा, धर्म-अंगन में ज्ञेय—हेय—उपादेय वर्णनो नाम, चतुर्दश अधिकार सम्पूर्णम् ॥ १४ ॥

आगे तीर्थ विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां सुतीर्थ-कुतीर्थ का समुच्चय जानना सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक सुतीर्थ है, एक कुतीर्थ है। तहां अढ़ाई द्वीप प्रमाण पैंतालीस लाख योजन क्षेत्र, लोक के शिखर, सिद्ध लोक, सो शुद्ध तीर्थ हैं। तथा सिद्ध आत्मा के असंख्यात प्रदेशन करि रोक्या हुवा सिद्ध क्षेत्र, सो पूजवे योग्य है। सो ही शुद्ध तीर्थ है। तथा जहां तैं यतीश्वर शुद्धोपयोग करि, अष्टकर्म का क्षय करि, सिद्ध पद पाया, सो सुतीर्थ है। जैसे सम्मेद शिखरजी, गिरनारजी, आदि बीस तीर्थंकरनकौं आदि अनेक मुनि जहां तैं सिद्ध भये, तातैं सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्र तीर्थ है। और नेमिनाथजी तीर्थंकर आदि बहत्तर कोड़ि सात सौ यती कर्मनाश, जहां सिद्ध भये, तातैं गिरनारजी सिद्ध क्षेत्र तीर्थ है। और शत्रुंजयजी जहाँ तैं तीन पांडव आदि, आठ कोड़ि यतीश्वर मोक्ष गए। तातैं तीर्थ है। और अष्टापद जो कैलाश पर्वत, जहां तैं आदि—देव वृषभनाथ आदि लेयकैं अनेक ऋषिनाथ निर्वाण गये। तातैं कैलाश तीर्थस्थान है। और चम्पापुरी तैं वासुपूज्य बारहवें तीर्थंकर आदि अनेक तपनाथ कर्म हरि मोक्ष गए। तातैं उत्तम तीर्थ है। और पावापुरी तैं अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी आदि अनेक योगीश्वर मोक्ष गए। तातैं शुभ तीर्थ है। और तारवर (तारंगा) जी तैं साढ़े तीन कोड़ि यती वैकुंठ कूं गये, तातैं भला तीर्थ है। तथा पावागिरवर तैं रामचन्द्र के पुत्रादि पंच कोड़ि तपसी जामन-मरण तैं रहित भए। तातैं शुद्ध तीर्थ है। और गजपंथाजी तैं बलभद्र आदि आठकोड़ि गुरु ने अमूर्तीक पद पाया, तातैं गजपंथाजी उत्कृष्ट तीर्थ है। और तुंगीगिरजी तैं रामचन्द्र, हनुमान, सुग्रीव आदि निन्यानवैं

कोड़ि ऋषिराज भव-समुद्र पार भए। तातैं तुंगीगिर उत्तम तीर्थ है । तथा श्री सोनागिरजी तैं साढ़े पाँच कोड़ि गुरु सिद्ध भए, तातैं पूज्य तीर्थ है। और रेवा नदी के तटन तैं रावण के पुत्र आदि साढ़े पांच कोड़ि यती निर्वाण गये, तातैं जगत-पूज्य तीर्थ है। तथा रेवा नदी के तट, सिद्धवरकूट नाम पर्वत है। ताकी पश्चिम दिशा तैं दोय चक्री, दश कामदेव, आदि साढ़े तीन कोड़ि मुनि सिद्ध लोक गए, तातैं उज्ज्वलतीर्थ है। और बड़वानी नग्र की दक्षिण दिशा में चूलगिर नाम पर्वत है। तहां तैं इन्द्रजीत-रावण का पुत्र, कुम्भकरण—रावण का भाई, इन आदि अनेक ऋषीश्वर मोक्ष भए, तातैं भला तीर्थ है। और अचलापुर की ईशान दिशा विषैं मेढ़िगिर नाम पर्वत है। तहां तैं साढ़े तीन कोड़ि मुनि निरंजन भए, तातैं यह मंगलीक-तीर्थ, पूज्य है। तथा कोटि शिला तैं पांचसौ कलिंग देश के राजा, अरु दशरथजी के केतेक पुत्रन कौं आदि एक कोड़ि मुनि सिद्ध भए, तातैं उत्तम तीर्थ है। तथा पंच मेरु तैं अनेक चारण मुनि सिद्ध भये, तातैं तीर्थ है। तथा इस ही अढ़ाई द्वीप में अनेक अतिशय तीर्थ हैं। तथा नन्दीश्वर द्वीप आदि अनेक तीन लोक क्षेत्र विषैं, अकृत्रिम जिन मंदिर हैं, सो तीर्थ हैं। तथा और तप—ज्ञान—निर्वाण—कल्याणादि अनेक स्थान हैं जो सर्व पूजवे योग्य हैं, शुद्ध तीर्थ हैं। ऐसे कहे जे सकल तीर्थ सो सम्यग्दृष्टीन करि पूजवे योग्य तीर्थ हैं। तथा राग—द्वेष—क्रोधादि कषाय रहित शुद्ध पद, दयामयी भाव, निर्मल भाव, सो उत्कृष्ट निकट तीर्थ हैं। इन तीर्थन की वीतरागी मुनीश्वर भी वन्दना हेतु यात्रा करैं, तौ सरागी सम्यग्दृष्टी गृहस्थी हैं सो उन्हें ऐसे तीर्थन की वन्दना करि अपने लाग्या जो अनादि पाप—

मैल, ताकौं तीर्थ–जल करि धोय, शुद्ध–पवित्र होना, योग्य ही है। ए कहे तीर्थ जिनके किए पाप नाश होय, कषाय मंद होय, सुबुद्धि प्रकाश होय। तातैं ए कहे तीर्थ सो यती–श्रावकन करि पूजवे योग्य हैं। तातैं उपादेय हैं। इति सुतीर्थ ॥ आगे कुतीर्थ का लक्षण कहिए हैं। तहां केतेक भोरे–प्राणी जे पुण्य–उदय रहित हैं ते औरन कूं अनेक राज–भोग भोगते देख, लोभाचारी, विषय पोखवे कूं, वांच्छित सुखकूं उद्यम करता, काहू अज्ञान गुरु कौं पूछ्या। वानै याकूं मूर्ख जानि बहकाया। जो तू महा दीर्घ जल के समूह मैं प्रवेश करि, जल पातन (मरन) करै, तौ यह बड़ा तीर्थ है। और केतेक भोरे प्राणी धन, राज, स्त्री, तन सम्बन्धी अनेक वांच्छित भोग के अभिलाषी होंय। काहू कौतुकी पुरुषकूं पूछ्या, जो वांच्छित सुख ए कैसे मिलै? तब तिस निर्दयी नै कौतुक हेतु, याकौं मूर्ख जानिकैं कही। जो जलती अग्नि मैं निःशंक होय प्रवेश करै, अपना तन भस्म करै, तौ या उत्तम तीर्थके फलतैं तोकूं वांच्छित भोग मिलैं। सो तू अग्नि–तीर्थ भला जानि। ऐसी जानि, बाल-बुद्धि, लोभी, अग्नि ही मैं प्रवेश करि, तीर्थ मानते भये। सो हे सुबुद्धि, अग्नि प्रवेश तीर्थ, सुबुद्धीन के करवे का नाहीं है। सो कुतीर्थ हेय जानना। और केई भोरे जीव, ज्ञान–धन रहित, सुन्दर स्त्रीन के भोग की इच्छा वारेने, काहू कूं पूछी। जो सुन्दर स्त्री–भोग कैसे मिलै? तब याकूं ज्ञान-हीन जानि, काहू निर्दयी नै कौतुक निमित्त करि बहका दिया। कही हे भाई, जो शस्त्रधारा–तीर्थ बड़ा है। सो तूं शस्त्र के मुख निशंक होय, मरण करै, तौ तोकूं जोगणी देवी है सो अपना भरतार करै। तहाँ देवांगना के भोग भोगना, मनुष्यन की कहा बात है। तातैं तूं शस्त्र धारा तीर्थ तैं मरि।

सो यह भोगार्थी भोरा जीव ऐसी ही मानि, धारा-तीर्थ स्वीकार किया। सो हे भव्य, यह धारा-तीर्थ हास्य वचन तें चल्या है, तातें हेय है। यह शस्त्र तें आप मरे, सो महा संक्लेश-भाव होय। और कूं आप रण में मारै, सो महा रौद्र-भाव होय। सो परघात करने हारे पाप-भार सूं देव लोक कैसे होय? परन्तु जैसे अज्ञान-पतंग, दीप कूं महा सुन्दर जानि, विषय-भोग के लोभ तैं, दीपक में पड़ि, भस्म होय है। क्योंकि ए पतंग ज्ञान रहित है। तातैं अपना पुण्य तौ नहीं समझै है, अरु बड़े भोग चाहे है। तातैं मरणकौं पाय, हीन ही गति में उपजै है। तैसे ही ए भोगाभिलाषी शस्त्र के मरण कूं तीर्थ की कल्पना करि, शस्त्र धारारूपी दीपक में पतग की नाईं भस्म होय हैं। सो रौद्र-भावन तैं मरि, अशुभ गति जाय हैं। देव सुख तौ शील पालना, तप-जप-संयम करना, दान देना, प्रभु सेवा-पूजा करना, दया-भाव राखना, समता पालनी, इत्यादिक पुण्य-भावन तैं होंय। तातैं हे सुबुद्धि, ए तीर्थ नाहीं। शस्त्र-धारा कुतीर्थ है। तातैं विवेक में तजवे योग्य है। हे भाई, जो शस्त्र धारा का मरण, तीर्थ होता। तो जगत-जीव शस्त्र तैं डरते नाहीं, सब ही शस्त्र तैं मरते। यह तौ महा सुगम है। निकट ही है। कछू धन लागता नाहीं। परन्तु तूं विचार। जो लोग खेद खाय, लाखौं धन खरचि, हजारों कोस तीर्थन कूं जाय हैं, अरु शस्त्र तैं डरै हैं। तातैं ए कुतीर्थ जानना। और यहां कोई कुबुद्धि कहै जो यह धारा तीर्थ हर जगह के करने का नाहीं। महा सुरिमा के करने का है। तौ भो भव्य, सुनि। बड़े-बड़े महान वंश के उपजे सूरमा-राजा, आगे राज-सम्पदा छोड़ि, युद्ध-शस्त्रघात छोड़ि, समता धारि, तप लेय, वन में तिष्ठ, समता भाव धर,

मान्ना प्रकार तप करते, शुभ मान्या। भली देवादि गति गए, सुखी भए। जो शस्त्र–घास तैं
भला होता तो महा सामंत कुल के, तप काहे को लेते ? तातैं धारा–तीर्थ तजिवे योग्य, हेय
है। अरु केई भोरे जीव, नदीन के जल तैं पाप उतरता मानें हैं। जो उन नदी के जल में
स्नान करैं पाप–मैल धुवै है। सो यह कहने वारा भोरा है। शिथिल श्रद्धानी है। धर्म–गांठ रहित
है। इस ही बात पै दृढ़ खड़ा नहीं रहे है। याही कौं कहिए हैं। जो इस शूद्र से मिट्टी का
कलश लेय कैं, इस नदी के जल में दश–पाँच बार अच्छी रीति तैं धोय लेय। जिससे ये शूद्र
का मिट्टी का कलश, पवित्र होय। ता पीछे इस कलश तैं जल पीया करो। यातैं सपरो (स्नान)
करो। तो यह कहे, ये शूद्र का बर्तन मिट्टी का है, हम यातैं जल कैसे पीवैं? कैसे सपरैं ? यह
मलीन है। याही भ्रम–बुद्धि की ग्लानि नहीं जाय। तो याकौं कहिए। हे विवेकी, तू देखि।
यह मिट्टी का बासन है। ताकौं अग्नि में जाल्या है। ऐसे शुद्ध कलश, ताकूं नदी में दश–
पांच बेर धोय शुद्ध किया। ताकू तौ तूं पवित्र मानता नाहीं। तौ हे सुबुद्धि देखि। ए शरीर
महा मलीन, सप्त–धातु रूप अपवित्र, अरु पाप–मैल तैं मलीन आत्मा, सो इस नदी के जल
तैं सपरै (स्नान करैं) तो कैसे पवित्र होय है? तू ही तौ इस जल तैं धोये पीछे, बासन की
घिन नहीं तजै है। तौ और कोई विवेकी पर-भव सुख का लोभी, आत्मा शुद्ध होता कैसे मानै ?
तातैं तेरे ही एकांत बुद्धि का हठ है। भो भव्य, जिनका हृदय कठिन–दया भाव रहित है ते
अनगाले जलका समूह नदी का स्नान, तीर्थ कहे हैं। नदी है सो तन का मैलि दूर करवे
योग्य है। अरु आत्मा कैं पाप–मैल लाग्या है ताके मैटवे को समर्थ नाहीं। तातैं ऐसा

जानना जो पाप-मैल दूर करवे कूं दान, पूजा, भगवान का सुमरणादि, धर्म अंग ए उत्तम तीर्थ-समता भाव के कारण, समर्थ हैं। नदी तीर्थ हेय है। और ज्ञान चक्षु रहित प्राणी समुद्र कों तीर्थ कहें हैं। ऐसा उपदेश करैं हैं, अरु आप श्रद्धैं हैं। जो जेती नदी, तीर्थ रूप हैं सो सर्व यामैं आय मिली हैं। अरु बहुत जलका समूह है। तातें सर्वतैं बड़ा तीर्थ, समुद्र है। या विषैं स्नान किए, पाप कटते मानैं हैं। सो आचार्य कहैं हैं। हमकूं बड़ा आश्चर्य यह है। जो जाके जल तैं स्पर्श भए तन फाटै, जाके योग तैं केतेक तो जल में पैठते (घुसते) डरैं हैं। उसे केतेक भोरे आत्माराम तीर्थ मानैं हैं। सो जाका जल, तन के लगते खेद करे, तो स्नान किए सुख कैसे होय? तातैं हेय है। और केतेक सामान्य बुद्धि के पात्र ऐसा समझैं हैं। तथा औरन कों उपदेश करैं हैं। कि धरती माता बड़ी धैर्य की धरनहारी है। याकों जगत के जीव अनेक प्रकार खोदैं-फोड़ैं हैं। यापै कोई बूरा डारै हैं। तो भी धरती खेद नाहीं मानैं है। और इह धरती तैं उपज्या अरु इस ही धरती में मिलना है। तातैं जीवत ही धरती में गड़ना, शरीर सहित धरती में प्रवेश करना, सो धरा तीर्थ है। या समान और तीर्थ नाहीं। ऐसा समझ जीवताही धरती में गड़ि, प्राण नाशै है। और याकों धरा-तीर्थ मानैं हैं। और यो भोरा जीव ऐसा नहीं समझै है जो धरती तीर्थ होती तो यामैं मल-मूत्र कैसे करते? खोदन-जालनादि अविनय भी नहीं करते? तातैं हे भव्य, ऐसा जानना। जो सर्व ही धरती, तीर्थ नाहीं। सिद्ध क्षेत्र की धरा तौ तीर्थ है और अन्य धरती-तीर्थ हेय है। इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये तीर्थ परीक्षा विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय

विचार पंच-दश पूर्व सम्पूर्णं ॥ १५ ॥

आगे परस्पर काल गमावना रूप जो चरचा, तामें ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये है—

गाथा—पुराणदा अघखय कारिय, चरचोपादेय परमफलदायी ॥
पावमई शुभहारी, सा चरचा तु हेय जिण मग्गो ॥४१॥

अर्थ—जा चरचा तें पुण्य होय, पाप का नाश होय। सो चरचा तो उपादेय है। और जातें पाप कर्म उपजें और अगले किया पुण्य कर्म ताका अभाव होय, ऐसी चरचा हेय है। ऐसा जिन देव ने कह्या है। भावार्थ—चरचा नाम परस्पर वार्तालाप (बतलावने) का है। सो बतलावना है सो विवेकी जीवन कौं, ज्ञेय—हेय—उपादेय करि बतलावना योग्य है। सो ही कहिए है। शुभाशुभ चरचा का समुच्चय भेद, सो तो ज्ञेय है। ताके ही दोय भेद हैं। एक शुभ चरचा है। और एक अशुभ चरचा है। सो जहां तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र, कामदेव, देव, इंद्र, इत्यादिक महान् पुरुषन की उत्पत्ति राज—सम्पदा, भोग, सुख, इनका वैराग्य, इनके स्वर्ग-मोक्ष होने का कथन सो प्रथमानुयोग, ताकी चरचा परस्पर करना। सो पाप कौं नाशै अरु पुण्य-फल देय। ऐसी चरचा धर्मात्मा सम्यग्दृष्टीन कौं उपादेय है। और तीन लोक की रचना जो अधोलोक सात राजू, तहां भवनवासी-व्यंतर देव, पुण्य का फल भोगते, सुख-समुद्र में मगन भए, काल गवांवैं हैं। ताके नीचे सात नरक हैं। तहां जीव बड़े पापन का फल भोगते, महा दुख-समुद्र में डूब रहे हैं। विलाप करते, काल व्यतीत करैं हैं। और मध्य लोक विषैं असंख्याते द्वीप-समुद्र हैं। तिनमें पैंतालीस लाख योजन तौ मनुष्य लोक हैं। और बाकी के सर्व द्वीपन में

तिर्यक् लोक है। और अढ़ाई द्वीप में मेरु-कुलाचलादिक की चरचा सो उपादेय है। और उर्ध्व-लोक विषैं सोलह स्वर्ग हैं। अहमिन्द्र, सर्वार्थसिद्धि आदि के देव, पुण्य फल-सुख भोगते सुखी हैं। तिनके ऊपरि सिद्ध लोक, तहां अनंते सिद्ध-भगवत विराजैं हैं। ऐसे इन तीन लोक की चरचा परस्पर करनी, सो करणानुयोग चरचा सम्यग्दृष्टीन करि उपादेय-करवे योग्य है। और जहाँ मुनि-श्रावक के समिति, गुप्ति आदि ग्यारह प्रतिमादि आचार की चरचा करना, सो चरणानुयोग की चरचा उपादेय है। और जहाँ जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ए षट् द्रव्य हैं। जीव तत्त्व, अजीवतत्त्व, आश्रवतत्त्व, वंधतत्त्व, संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व और मोक्षतत्त्व। इनमें पुण्य और पाप मिलाये नव पदार्थ। ऐसे षट् द्रव्य, सप्ततत्त्व, नव पदार्थ, आदि की चरचा परस्पर करना सो उपादेय है। याका नाम द्रव्यानुयोग चरचा है। तथा जीव कर्मतैं कैसे बंध्या है? कैसे छूटै? इत्यादिक चरचा उपादेय है। तथा अनेक तीर्थों की चरचा, दान, पूजा, शील, संयम, तप, व्रत, दया भाव, जीवन की रक्षा इत्यादिक केवली भाषित चरचा, सो उत्तम चरचा है। तातैं पाप का नाश और पुण्य कर्म का संचय होय है। तातैं उपादेय है। इति शुभ चरचा। आगे कुचरचा-हेय का स्वरूप कहिए है। जहां परस्पर चरचा तैं पाप का बंध होय, आगे का किया पुण्य सो क्षीण होय, ऐसी चरचा हेय है। भावार्थ—कुदेव, कुगुरु और कुधर्म इनकी पूजा-भक्ति की चरचा। इन कुदेवादिक के अतिशय-चमत्कार की चरचा, प्रसंशा रूपवान, सो हेय है। अपने-पराये राजान के युद्ध की वात, हारे-जीते की, निंदा-प्रशंसा की चरचा, तथा चोर

की चतुराई की चरचा, मंत्र, जन्त्र, तंत्र, टोणा, चौमणा, ज्योतिष, वैद्यकादि के चमत्कार की चरचा, मल्ल युद्ध, हस्ति-घोटकादि की लड़ाई की चरचा, ए कुचरचा हेय हैं। तथा स्त्रीन के रूप-लावण्य की वार्ता करनी। तथा स्त्रीन के अनेक शुभाशुभ चरित्र, कला, गीत, गान, गालि, नृत्य, भोग, चेष्टादि की चरचा, सो हेय है। तथा अनेक प्रकार भोजन, व्यंजन, रस-पान, भोगोपभोग में अच्छे-बुरे की चरचा, सो हेय है। और कूं पीड़ा उपजायवे की, परायाधन नाश करावे की, पराए मान खंडन की परस्पर चरचा सो हेय है। अनेक देशन में, किसी को भला किसी को बुरा कहने की चरचा। परस्पर युद्ध होय, द्वेष वंधे, ताकी चारचा। तथा स्वचक्र-परचक्रादि सप्त ईति-भीति की चारचा, सो हेय है। और तन रोगादिक उपजवे की, चय होयवे की इन आदि अनेक विकथा रूप चारचा, अशुभ बंध को करन हारी, सो हेय हैं। इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये चारचा विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय वर्णनो नाम, सोलहवां अधिकार सम्पूर्णम् ॥ १६ ॥

आगे अनुमोदना अधिकार में ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये हैं। तहां शुभाशुभ कार्यन की अनुमोदना के समुच्चय भाव का जानना, सो तो ज्ञेय है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक शुभ अनुमोदना है। एक अशुभ अनुमोदना है। भावार्थ—जहां लौकिक कार्यन में, पुत्र-पुत्री के शादी-ब्याह में, मंदिर-महल के आरम्भ में, युद्ध विषैं, अपने मन की अनुमोदना हेय है। तथा भले रूप में, भले भोजन में, कूप से पानी के काढ़िवे में, वापी-तालाब के खुदावै में, इत्यादिक भूमि खोदने के आरंभ में अनुमोदना, पाप-बंध करै है, तातें हेय है। तथा काहू

नै काहू पै शस्त्र चलाया, लकड़ी का प्रहार किया, यह देखि, अनुमोदना करनी हेय है। तथा काहू का धन लुटता देखि–सुनि, तथा तन पीड़ा देखि, तथा काहू के हाथ–कान–नाकादि अंग–उपांग छेदते देखि, अनुमोदना करना हेय है। तथा कोई के कुतप व कुज्ञान की दीर्घता देख, अनुमोदना करनी हेय है। और कोई कुदेव–कुगुरुन के बड़े आरंभी-बड़ा द्रव्य लागत के मन्दिर–मठस्थान देखि अनुमोदना करना, अशुभफलदायक जानि, हेय है। और तीर, गोली, नाली, तोप, बन्दूक, कमान, छुरी, कटारी, शमशेर, बरछी इत्यादि अनेक शस्त्र, जीव-घात के कारण देखि, इनकी अनुमोदना करनी हेय है। और कोई भला बाणावणी (धनुर्धारि) अनेक शस्त्र कला में प्रवीण, तीर-गोला–गोली का चलावने हारा पुरुष की अनुमोदना, हेय है। तथा नदी–सरोवरन की पालो (बांध) फोड़िकें तथा फूटी देखि कें तथा नगर वन में अग्नि लगी देखि, तथा नगर–मुल्क कौं लुटता देखि–सुनिकैं अनुमोदना, अशुभ फल देन–हारा है। तातें हेय है। और कुतीर्थन के स्थान तथा तिनके कर्ता देखि, तिनकी अनुमोदना करनी, हेय है। और कृष्यारंभ, पशु संग्रह, खेटकादि जीवघात विषैं हर्ष करना, हेय है। और अनेक मिथ्यात कारणन में तथा बहु पापारंभ–परिग्रह के विकलपन में हर्ष–अनुमोदना, ये जानि तजना, सो गुणकारी है। इति पाप अनुमोदना हेय। आगे शुभ अनुमोदना उपादेय कहिए है। जहां मुनीश्वर ध्यानाग्नि तें कर्मनाशि निरंजन भए, तिनकी बन्दना में हर्ष करना, उपादेय है। तथा कोई भव्य आत्मा, गुरु का उपदेश पाय, संसार–दशा तें उदास होय, तप करता होय, तामें अनुमोदना, उपादेय है। तथा कोई जिन–दीक्षा–धारी मुनीश्वर, शुक्ल ध्यान

करि, च्यारि घातिया कर्म नाश के केवलज्ञान पाया, तिनकी बन्दना में हर्ष—अनुमोदना, उपादेय है। और जिन कालन में निर्वाण, केवल ज्ञान, तप कल्याणक हुए तिन कालन की पूजा—बंदना विषैं अनुमोदना उपादेय है। और जहां कोई भव्यात्मा धर्मी जीव कौं सम्यक प्रकार—बारह प्रकार तप करता देखि तथा अनेक तीर्थ सिद्ध क्षेत्रन की बन्दना करते देखि, तथा अकृत्रिम अरु कृत्रिम जिन चैत्यालयों की बन्दना करता देखि, इन कार्यन मैं भव्यात्मा कूं प्रवर्त्तें देखि, तिनकी अनुमोदना करना उपादेय है। तथा तीर्थंकर के पंच ही कल्याणकन के समय देखि—सुनि हर्ष भाव, उपादेय है। तथा अष्टान्हिका के दिन में इन्द्रादि देव नंदीश्वर द्वीप विषैं जाय पूजा—उत्सव करैं, तिस काल में बन्दना करना, हर्ष सहित—तामैं अनुमोदना उपादेय है। और श्री दशलक्षण पर्व आदि में पूजा, संयम, तप जे भव्य करैं, तिनकी अनुमोदना उपादेय है। तथा जिन मंदिर कराय तिनकी प्रतिष्ठा का उत्सव करि हर्ष मानना तथा और भव्य नै किया होय तो ताकी उत्तम भावना देखि हर्ष अनुमोदना करना, उपादेय है। और जहां निरन्तराय करि मुनि का दान आपकैं तथा परकैं भया जानि, अनुमोदना करना उपादेय है। तथा कोई भव्यात्मा कूं जिन वाणी का अभ्यास करता देखि तथा सुनि हर्ष करना, उपादेय है। तथा कोई धर्मात्मा कूं दीन जीवन कूं दया भाव सहित दान देता देखि हर्ष करना, उपादेय है। तथा काहू भव्यात्मा पुरुष की करी जिन मंदिर की अनेक शोभा—रचना देखि, अनुमोदना करना उपादेय है। तथा जिन मंदिर के उपकरण, छत्र, चमर, सिंहासन, भामण्डल, घंटा, चंदोवा तथा पूजा के उपकरण थाल, रकेबी, झारी, प्यालादि देखि हर्ष करना, उपादेय है। तथा उत्कृष्ट अक्षर, पत्र, बंधना,

लौकिक मोक्ष, सो ता मोक्ष कौं ऐसी मानै हैं। कि जो आत्मा मोक्ष जाय, सो तहाँ महा सुखी रहै। पीछे शुद्धात्मा की इच्छा होय तो संसार विषैं पीछे आवै। सो ऐसी मोक्ष संसार समान है। काहे तें? जो जनम-मरण तौ संसार का स्वभाव है। अरु मोक्ष विषैं जामन-मरण नाहीं है। तातें जे अल्पज्ञानी मोक्ष जीवकौं जन्म लेना फेरि मानैं हैं। सो मोक्ष हेय है। शुद्ध जो मोक्ष है तहाँ गया जीव फेरि अवतार लेता नाहीं। जैसे पृथ्वी की खानि विषैं तैं अग्नि आदि के निमित्त पाय करि यतन पूर्वक काढ्या जो सुवर्ण, सो मिट्टी तैं भिन्न भये पीछे मिट्टी में मिलाईए, तौ मिलता नाहीं। तैसे ही शुद्ध जीव, कर्म-मल दूरि कर मोक्ष भए पीछे, तन रूपी मिट्टी मैं मिलता नाहीं। तातें मोक्ष भए पीछे जिस मोक्ष तें पीछा जन्म होय, सो मोक्ष विवेकीन के तजवे योग्य हेय है। अरु केतेक भोरे पंडित हैं ते मोक्ष जीवकौं रागद्वेष सहित मानैं हैं। ऐसा कहै हैं जो मोक्ष में भगवान्, सर्व संसारी जीवन पै लेखा लेय है। सो जाने अपनी भक्ति नहीं करी, तिनकूं नरक-कुंड में डारै है। और जाकूं अपना भक्त जानै है ताकों अपने पास मोक्ष में राजी होय राखै है। सो भो भव्य हो, ऐसा राग भाव अरु द्वेष भाव मोक्ष में नाहीं। जहां राग-द्वेष होय सो संसार स्थान जानना। तातें रागद्वेष सहित जो मोक्ष होय, सो हेय है। और केतेक संसारी चतुर नर ऐसा मानैं हैं। जो मोक्ष विषैं पंचेन्द्रिय महा सुख है। या कहैं हैं जो मोक्ष विषैं भगवान् कूं इन्द्रिय जनित बड़ा सुख है। ऐसा सुख और कहूं नाहीं। उत्कृष्ट भोजन, अमृतमई भोगने योग्य रस, ताकूं भोगवै है। और अनेक सुख नासिका इन्द्रिय कूं सुखदाई ताहि सूंघै है। और नाना प्रकार के नृत्य-गीत-वादित्र भगवान्

के मुख आगे मोक्ष में अनेक अप्सरा चरित्र सहित करें हैं। तिनकों भगवान देखि महासुख भोगवें हैं। इन आदि अनेक अप्सरान कों भोग सहित अनेक इन्द्रिय जनित सुखकूं भोगवै है। सो हे धर्मात्मा जीव, तूं चित्त देय सुनि। अरु मन में विचारि। जहां इन्द्रिय सुख है, सो मोक्ष नाहीं, संसार ही जानना। और मोक्ष है तहां इन्द्रिय जनित सुख नाहीं। मोक्ष सुख तो इन्द्रियन तें अतीत है। अतीन्द्रिय सुख का भोगता शुद्धात्मा है। इंद्रिय सुख आकुलता रूप है और मोक्ष आकुलता रहित है। तातें जिस मोक्ष में इन्द्रिय सुख होय, सो मोक्ष हेय है। और केतेक ज्ञान-चक्षु-हीन ऐसा कहे हैं। जो मोक्ष विषैं भगवान सदीव बैठे पुस्तक के पत्र देखा करें हैं। तहां ससारी जीवन के आयुष का प्रमाण लिख्या है। सो जाका आयुष्य के दिन पूरण होंय, तब भगवान् के सेवक सदीव पास ही रह्या करें हैं तिन यमन (सेवकन) कूं खिदाय (भेज), ताका जीव भगवान् अपने पास मँगाय लेंय। पीछे सुख-दुख देय हैं। या जीव का लेखा लेय हैं। जो तैं संसार में जायकें कहा किया, सो वाकों पूंछे हैं। सो वानै पाप किए होंय तो तहां भगवान् के लोक में नरक कुंड है तहां नाखि, दुखी करें हैं। और वानै पुण्य किए होंय, तौ भगवान के लोक में नाना प्रकार रतन मई महल हैं सो ताकों धन-धान्य तें भरे महल-मंदिर देय, सुखी करें हैं। जैसा जाका शुभाशुभ कर्तव्य होय तैसा ही सुख-दुख भगवान् देय हैं। ऐसे रात्रि-दिन भगवान निरन्तर लेखा देखा करें हैं। ऐसा विकल्प सदीव मोक्ष में भगवान् कौं बतावें हैं, केते पंडित विवेकी भूले ऐसा कहे हैं। तिनकों कहिए है। भो मोक्षाभिलाषी हो, मोक्ष विषैं ऐसा विकल्प नाहीं। जहाँ विकल्प है ते संसारी स्थान

जानना। मोक्ष तौ निर्विकल्प है, निराकुल है। तातैं जाकी मोक्ष विषैं इतना विकल्प होय, सो मोक्ष हेय है। और केतेक जीव ऐसे ही—शरीर सहित, मोक्ष मैं जाना मानैं हैं। ऐसी कहैं हैं कि जापै भगवान् कृपा करि राजी होंय। ता मनुष्य कूं अपना भक्त जान, यह सप्त धातु के भरे शरीर सहित हो, अपने पास मोक्ष मैं बुलाय, सुखी करे हैं। जो कोई नगर भर के लोक भगवान की भक्ति करैं तौ भगवान् संतुष्ट होय, सर्व नगर के लोकनकौं ही अपने पास मोक्ष मैं बुलाय लेय हैं। केतेक जीव ऐसा मानै हैं, तिनको कहिए है। भो सुज्ञानी जीव, तू समझि। यह अपवित्र शरीर, महा मलीन, सप्तधातु व मल-मूत्र का भर्या, मूर्तीक, जड़ शरीर, सो तौ मोक्ष मैं जाना नाहीं। अरु जहां इस मूर्तीक शरीर का आना-जाना होय, सो संसार अवस्था ही है। मोक्ष विषैं मूर्तीक शरीर है नाहीं। मोक्ष मैं अमूर्तीक शरीर है। तातैं जाकी मोक्ष मैं मूर्तीक शरीर जाना हो, सो मोक्ष हेय है। अरु केतेक ज्ञान-इन्द्री, मोक्ष मैं शून्य भाव मानै हैं। वे जीव ऐसा कहैं हैं। जो जेते सुख हैं। सो तो सर्व संसार मैं हैं। स्त्री सम्बन्धी भोग सुख। नाना प्रकार षट् रस, मेवादि, मोदकादि, जिव्हा इन्द्रिय के सुख। तथा नाना प्रकार सुगंध, नासिका इन्द्रिय के सुख। और नाना प्रकार रतन-कनक के आभूषण-वस्त्र, स्त्रीन के रूप, नृत्य-शोभादि अनेक चक्षु इन्द्रिय के सुख। और अनेक प्रकार मिष्ट-सुर सहित अनेक संगीतादि राग की वीणा, बाँसुरी, पखावज, तंबूरादि अनेक सचित्त-अचित्त मिश्र स्वरन के मनोज्ञ राग शब्द, सो कर्ण इन्द्रिय के सुख। ए पंच ही इन्द्रिय सम्बन्धी जेते सुख हैं सो संसार मैं ही हैं। ए सुख मोक्ष मैं नाहीं, वहाँ तो शून्य है। नहीं कछू सुख, नहीं कछु दुख। शून्य

रूप है। नहीं बोलना, नहीं चालना, नहीं गावना, नहीं खावना, केवल एक शून्यता। ऐसी मोक्ष केई जीव मानै हैं। ताको कहिए है। भो मोक्ष के वांछक, सुनि। अरु विचार देखि। सुख रहित शून्यता तो मूर्ख कैं होय। तथा सोते के होय। तथा वायु-सन्निपात रोग वारे कैं होय। तथा सुख रहित शून्यता दीन-दरिद्री कैं होय। तथा जाके इष्ट का वियोग होय, शोक करि भरया होय, अज्ञान-मोह तैं जड़ समान होय गया होय, तथा काष्ठ-पाषाण की मूर्ती, चेतना भाव रहित कैं होय, इत्यादिक स्थानकन मैं शून्यता होय। और परमात्मा, शुद्ध, निराकार, चेतन-मूर्ती, ज्ञान भण्डार कैं मोक्ष मैं शून्यता नाहीं। महासुख-सागर मैं मगन हैं। जेते सुख संसार मैं है तिनतें अनतगुणे सुख मोक्ष में हैं। तातें जाकी मोक्ष मैं शून्यता भाव होय, सो मोक्ष हेय है। इति हेय मोक्ष।

आगे उपादेय मोक्ष कहिए है। भो सुख के अर्थी, तूं चित्त लगाय सुनि। जो आत्मा जामन-मरण के महा दुखन तैं भय खाय, दिगम्बर पद धारि, नाना तप करि, कर्म बंधन छेद, मोक्ष कौं प्राप्त भया। सो अब जन्म-मरण तैं रहित होय, भव-बंधन तैं छूटा, मोक्ष के ध्रुव स्थान विषैं तिष्ठ्या। सो आवागमण का महा दुख मिटाय, सुखी भया। और मोक्ष विषैं राग-द्वेष का अभाव होतें, महा सुख होय है। ए राग-द्वेष हैं सो ही महा दुख हैं। सो मोक्ष मैं ए राग-द्वेष नाहीं। मोक्ष जीव अनंत सुख का धारी है। जे संसारीक इन्द्रिय जनित सुख हैं सो सर्व विनाशीक हैं। क्षणभंगुर व पराधीन हैं। सो इन्द्र, चक्री, कामदेव, नारायण, बलभद्र और अहमिन्द्रादिक ए सर्व देव-मनुष्यन कैं अनंत काल का सुख है। तिस सुख तैं भी

अनंत गुणा अतीन्द्रिय सुख, मोक्ष का सुख है। तातैं मोक्ष सुख, इन्द्रिय रहित है। तातैं ही
उपादेय है। अर मोक्ष जीव, विकल्प रहित, एकै काल सर्व जगत के पदार्थन का स्वरूप जानै
है। और विकल्प है सो जो हीन ज्ञानी व हीन शक्ति होय, तिन कैं होय है। तातैं अनंतज्ञान-शक्ति
का धारी परमात्मा कैं विकल्प नाहीं। और सर्व द्रव्य-कर्म-अरिन का नाशिकरि, तज्या है
औदारिकादि पुद्गलीक स्कंधमई शरीर जानै, सो सिद्ध पद का धारी सिद्ध जीव, सो अमूर्तीक
है। निरंजन दशा धरे, सुख का पिंड है। और केवल-ज्ञान केवल-दर्शन करि, सर्व लोकालोक का
वेत्ता है। ए सर्वज्ञ, वीतराग, घट—घट के अन्तर्यामी, भवसागर के तारक हैं। और चैतन्य,
सदीव आनंद मूर्ती, जड़त्व भाव जो शून्यता दशा तातैं रहित हैं। ऐसे जामन-मरण रहित,
राग-द्वेष वर्जित, अतीन्द्रिय सुख का भोगी, विकल्प रहित, निराकार, पुद्गलीक शरीर तैं
रहित, सर्वज्ञ पद धारी, ज्ञान मूर्ती, चेतन, चमत्कार लिए, ऐसे गुण का धारी मोक्ष जीव है।
सो ऐसी मोक्ष उपादेय है। इस मोक्ष का नाम लिये, सुमरण किये, पूजा किये, श्रद्धान किये,
आशा किये, महा-पुण्य फल होय। तातैं परभव मैं उत्तम पद पाय, परंपराय मोक्ष का वासी
होय। तातैं सम्यग्ज्ञान सम्पदा के धारक भव्यात्मा कौं, ऐसी मोक्ष उपादेय है। इति श्री
सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, मोक्ष तत्त्व विषैं, ज्ञेय-हेय-उपादेय वर्णनो नाम, अष्ट दश
पर्व सम्पूर्णम् ॥ १८ ॥

आगे ज्ञान विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए हैं—

गाथा—णेय हेयोदेओ, [illegible] वसु भेय जिण उत्तं ॥

जाण कुणाणाय हेयं, उवादेयं पण सुद्ध णाणांतु ॥ ४२ ॥

अर्थ—ज्ञेय-हेय-उपादेय करि ज्ञान के आठ भेद हैं। तिन में तीन कुज्ञान तो हेय हैं अरु पंच सुज्ञान उपादेय हैं, ऐसा जिन देव ने कह्या है। भावार्थ—सुज्ञान-कुज्ञान का समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। और ताही के दोय भेद हैं। एक ज्ञान, हेय है। एक ज्ञान, उपादेय है। तहाँ कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, कुअवधि ज्ञान ए हेय ज्ञान हैं। सो ही कहिए हैं। जहाँ हिंसा-ज्ञान की चतुराई होना। जहाँ जीव पकड़ने कूं जाल बनायवे का ज्ञान, अरु ता ज्ञान तैं फंदा करना, फाँसी, पीजरा, छुरी, कटारी, बरछी, तलवार, बन्दूक इन आदि अनेक हिंसा के कारण शस्त्र बनावना, सो कुज्ञान है। तथा चित्राम, शिल्पकला, भंड कला, युद्ध कला, चौर कला, इनकूं आदि, पर के ठगवे की अनेक चतुराई की युक्ति का उपजना, सो कुज्ञान है। तथा और जीवन कौं अनेक दुख देने की कला, चोर व कुमारगी जीवन कौं दंड देवे की कला—चतुराई, जो इसकूं ऐसे मारिए तो बहुत दुखी होय, इत्यादि ए कुज्ञान है। और कौतुक—हाँसी अनेक भाव करि, परकौं खुशी करिए। तथा नाना प्रकार के स्वांग धारि, लोकन कूं आश्चर्य का उपजावना। चोरी व परदारा-सेवन में प्रीति भाव, इत्यादि ज्ञान की चेष्टा लौकिक में प्रवर्तिती है, सो कुमति-ज्ञान है। इति कुमति ज्ञान। आगे कुश्रुत ज्ञान कूं कहिए है। तहाँ युद्ध शास्त्रन का ज्ञान, नाना प्रकार रसिक—प्रिय शृंगार शास्त्र आदि कामोत्पत्ति के कारण रसशास्त्र, संगीत शास्त्रा-दिक, कुश्रुत ज्ञान हैं। और हिंसा के कारण जिन में परजीव घात का उपदेश, सो कुश्रुत है। तथा जिनमैं कुदेव-कुगुरुन के पोषवे कूं अनेक द्रव्य चढ़ावे का कथन। तथा ए देव ऐसा

भक्ष लेय है, तब तृप्त होय है। इत्यादिक कथन जिन शास्त्रन मैं होय सो कुश्रुत है। तथा कुगुरु पोषवे कूं ऐसा भोजन, ऐसे वस्त्र, धन, मंदिर, देव, गुरु की सेवा कीजे। तथा दासी, दास, स्त्री, गुरुन की सेवा कौं दीजे, तौ अप्सरान का भोगी होय, ऐसा फल पावै। तथा गज, घोटक, रथ, पालकी, गुरुन कूं दीजिए तौ देव-विमान का फल पावै। इत्यादिक कथन, जिन शास्त्रन मैं होय, सो कुश्रुत है। इन कुश्रुत शास्त्रन का जाकै ज्ञान होय, सो कुश्रुत ज्ञान है। सो सुदृष्टीन करि हेय है। इति कुश्रुत ज्ञान। आगे विभंग ज्ञान का कथन करिये है। तहाँ आत्म हित कूं कारण सम्यग्दर्शन, सो ऐसे सम्यक बिना, मिथ्या भाव सहित, इस भव-परभव की वार्ता जानना तथा दूरवर्ती पदार्थन कौं जाने, सो विभंगज्ञान है। तथा याही का नाम कुअवधि भी है। ऐसे कहे जो सामान्य अर्थ सहित कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ए तीन कुज्ञान, सो सम्यग्दृष्टीन तैं हेय हैं। ऐसे तीन कुज्ञान कहे। आगे पाँच सुज्ञान कहिए हैं प्रथम नाम—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान। तहाँ मति ज्ञान कहिए है—सो मति ज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेद हैं सो सुनो। प्रथम भेद चार-अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। इनका अर्थ-जहाँ पदार्थ का दूरतैं सामान्यावलोकन होय, जैसे काहू नै दूर तैं एक स्थंभ देखा, परन्तु भेदाभेद नाहीं किया, सामान्यसा भाव जो कछू है, देखा। ऐसे भाव का जानना, सो अवग्रह कहिए। और उसही देखे स्थंभ मैं भेदाभेद करना। जो यह स्थंभ है या मनुष्य है? ऐसे विकल्प का नाम ईहा भेद है। पीछे वाही स्थंभ कौं जान्या। जो मनुष्य तौ नाहीं, स्थंभ है। ऐसे विचार का नाम अवाय कहिए। और आगे बहुत दिन

पहले स्थंभ देखे थे। तिनका सुमरण किया। जो आगे स्थंभ देख्या, तैसा ही यह है। सो स्थंभ है। निश्चयतें ऐसे दृढ़ भाव विचारना, सो धारणा है। ऐसे अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा इन च्यारि भेदन करि पदार्थ जानिए। सो मति ज्ञान भेद हैं। अरु ए ही च्यारि भेद, पंचेन्द्रिय और मन इन षट् तें परस्पर लगाय गुणिए, तौ चौबीस भेद होय हैं। जैसे स्पर्श इन्द्रिय तैं कोई वस्तु-पदार्थ स्पर्श्या। तब सामान्य भाव जान्या, जो कछू है। विशेष भेद नहीं किया। सो स्पर्श इन्द्रिय तैं अवग्रह भया। फेरि विचारी, जो ए पदार्थ पांव तैं स्पर्श्या सो कहा है? कठोर २ है, गोल है। सो कै तौ कोई रतन हैं या कंकड़ है। इस विचार का नाम स्पर्श इन्द्रिय का ईहा भेद है। फेरि याही को विचारिये कि जो यह गोल है, साफ हैं, सो रतन हैं। इस विचार का नाम स्पर्शन इंद्री का अवाय भेद है। और तहाँ आगे कबहूँ पाँव नीचे रतन आया था। ताकी यादि करि जानी, जो आगे पाँव नीचे रतन आया था तैसा ही ए भी है, सो रतन ही है। ऐसा निश्चय करना, सो स्पर्शन इन्द्रिय की धारणा है। ऐसे कहे स्पर्शन इन्द्रिय तैं च्यारि भेद। सो ऐसे ही रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन, इन छहों तैं लगाय चौबीस भेद हैं। और इन चौबीस में स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र ए च्यारि भेद मिलाये अठाईस होंय। इन अठाईस भेदन कौं बहु, बहुविध आदि बारह भेदन तैं गुणिए, तौ तीन सौ छत्तीस भेद मतिज्ञान के होंय। इन मतिज्ञान के भेदन की पल्टन का एक विधान और तरह है। सो बतावैं हैं। अवग्रहादि च्यारि भेदनकूं पंचेन्द्रिय और मनतैं गुणें, चौबीस भेद होंय। इन चौबीस कौं बहु आदि बारह भेदन तैं गुणें, दोय सौ अट्ठासी होय हैं।

सो ए तो अर्थावग्रह के हैं। और स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र इन च्यारि इन्द्रिय तैं बहु आदि बारह भेदन कौं गुणौं, अड़तालीस भेद भए, सो ए व्यंजनावग्रह के हैं। दोऊ मिल तीनसौछत्तीस भेद रूप मतिज्ञान होय है। इहां सामान्य भाव कह्या। विशेष श्रीगोमट्टसारजी तैं जानना। इति मतिज्ञान भेद। आगे श्रुतज्ञान का सामान्य भेद कहिये है—श्रुतज्ञान के अनेक भेद हैं। तहां मूल भेद दोय। अंग द्वादश, अरु प्रकीर्णक भेद चौदह। तहां द्वादशांग के भेद दोय। ग्यारह अंग, अरु बारहवें अंग के पंच भेद तहां चौदह पूर्व का कथन है। तिनही अंग-पूर्वन मैं गर्भित, योग च्यारि—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। इन योगन मैं कथन—जहां तीर्थंकर, चक्री, प्रतिचक्री, इन्द्र, देव इत्यादि महान पुरुषन की कथा जामैं होय, सो प्रथमानुयोग है। और तीन लोक की रचना का जामैं कथन होय, सो करणानुयोग है। और मुनि-श्रावकन के आचार का जामैं कथन, सो चरणानुयोग है। और षट् द्रव्य, नव पदार्थ, सप्त तत्व, पंचास्तिकाय का कथन जहां होय, सो द्रव्यानुयोग है। तहां षट् द्रव्य के गुण—पर्याय का कथन, सो तिन द्रव्यन करि संसार रचना—च्यारि गति बनी है ऐसा कथन। और द्रव्य में षट्गुण हानि—वृद्धिरूप परिणमण सो तथा द्रव्य का अपने-अपने व्यय, ध्रौव्य, उत्पाद सहित तीन भेद रूप प्रवर्तना कथन, सो ए सर्व श्रुतज्ञान के भेद हैं। तहां उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का सामान्य कथन कहिए है—जो वस्तु बिनसै सो तो व्यय कहिए। और नवीन वस्तु की पर्याय का उपजन सो उत्पाद है। और वस्तु का सदीव शाश्वत रहना, सो ध्रुव है। जैसे कर का कनक का चूड़ा तुड़ाय, कुण्डल करवाना। सो इसी ही मैं तीन

भेद सधैं, सो बताइए हैं। तहां द्रव्य भाव तौ सुवर्ण, सो शाश्वत है, सो ध्रुव कहिये। चूड़ा की पर्याय टूटी, सो ताकूं व्यय कहिए। और कुन्डल बन्या, सो ताकी पर्याय न्यूतन उत्पन्न भई, ताकूं उत्पाद कहिए। ऐसे ए तीन भेद जानना। तैसे ही आत्मा तौ द्रव्य और मनुष्य पर्याय छोड़ि, देव भया। सो मनुष्य पर्याय का तौ व्यय भया और देव पर्याय का उत्पाद भया। जीवत्व भाव दोऊ मैं शाश्वत है। सो ध्रुव है। ऐसे नय भेद तैं व्यय, ध्रुव, उत्पाद अनेक पदार्थन में साधना। ऐसे अनेक नयका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञान उपादेय है। और श्रुतज्ञान तैं और भी ज्ञाता, ज्ञान, व ज्ञेय का स्वरूप जानिये है। तातैं उपादेय है। तहां ज्ञाता तौ आत्मा है। ज्ञाता का गुण, ज्ञान है। और ज्ञान के जानपने में आवे, सो ज्ञेय है। ज्ञान, सर्व ज्ञेय का जाननहारा है। ऐसा ज्ञाता, ज्ञान व ज्ञेय का स्वरूप श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं उपादेय है। और भी श्रुतज्ञान के स्वरूप में ध्याता, ध्येय, व ध्यान का स्वरूप कहिए है। तहां ध्याता तौ आत्मा है। और जा वस्तु कूं ध्यावै, सो ध्येय है। और ध्यावते, ध्याता के भाव का विकल्प, सो ध्यान है। जैसे धर्मी आत्मा तौ ध्याता है। पंचपरमेष्ठी ध्येय है, ताकौं ए ध्याता ध्यावै है। और पंचपरमेष्ठी के गुणन का सुमरण सो ध्यान है। तथा और दृष्टान्त करि कहिए है। जहां कोई पापी आत्मा तौ ध्याता है। और पर-स्त्री भलेरूप सहित देखि ताके मिलाप की चाह ध्येय है। और उस स्त्री के रूपादिक गुण ताका विचार, सो आर्तध्यान है। ऐसे अनेक जगह ध्याता-ध्येय-ध्यान का स्वरूप सधै है। सो ऐसा भाव श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं उपादेय है। और भी कर्ता-कर्म-क्रिया का स्वरूप श्रुतज्ञान तैं कहिए है। कर्ता तौ आत्मा है। और

जो वस्तु यानै बनाय तैयार करी, सो कर्म है। अरु उस वस्तु के करते, भई जो मन–वचन–काय की हल–चल, सो क्रिया है। जैसे कोई धर्मात्मा जीव, अष्ट द्रव्य मिलाय भगवान का पूजन करै है। सो तो कर्त्ता है। और ताके फलतैं देवगति, देवायु, सुभग, आदेय, सौभाग्य, सातावेदनी आदि अनेक बंध किये जो शुभकर्म, सो इसका कर्म है। और पूजा विषैं भले भाव का राखना, विनय तैं काय का राखना, विनयतैं वचन का बोलना, विधि सहित हाथ जोरै हर्षतैं खड़ा रहना, इत्यादिक भक्ति-भाव रूप प्रवृत्ति, सो क्रिया है। तथा और तरह कहिए हैं। जैसे कोई जड़िया तो कर्ता है। और नाना प्रकार रतन जड़ि करि, तैयार किया जो मुकुट तथा हार, सो कर्म है। और इनके करते, भई जो मन–तन की प्रवृत्ति, सो क्रिया है। ऐसे अनेक पदार्थन पै लगावना। इस विधान सहित नय–प्रमाण कथन, श्रुतज्ञान तैं पाईए है। तातैं उपादेय है। और भी श्रुतज्ञान तैं पल्य–सागर का कथन कहिए है। तहां पल्य भेद तीन। जघन्य, मध्यम, अरु उत्कृष्ट। तहां जघन्य का स्वरूप कहिये है—ए जघन्य पल्य ऐसे हैं जैसे मानी–मनेसा के प्रमाण बांधवे कूं रत्ती होय हैं। रत्ती तैं मासा, मासा तैं रुपैया, रुपैया तैं सेर, सेर तैं मनादिक। जैसे रत्ती तैं मनेसा का प्रमाण किया, तैसे जघन्य पल्यतैं सागर की उत्पत्ति होय है। सो ही कहिए है—एक बड़ा योजन का प्रमाण सहित, गोल गड्ढा कीजिये, तेताही चौड़ा, तेताही ऊंडा (गहरा) तामें। भोग भूमिकी बकरीका तुरंतका भया बच्चा, ताके रोम का अग्रभाग का बारीक खंड लीजिये। तिन रोम—खंडन तैं वह कूप [illegible] कूट करि, कूटि–कूटि, धरती बरोबर भरिये। ता पीछे सौ वर्ष जांय, तब एक रोम काढ़िए।

फेरि सौ वर्ष गये, एक रोम काढ़िए। ऐसे करते सर्व कूप खाली होय। ताकूं जेता काल लागै सो जघन्य व्यवहार पल्य कहिए है। और जघन्य पल्य मैं जेता रोम आवे, तितने कूप कूं उस ही कूप प्रमाण करि, वैसे ही रोमों तैं भरिए-दृढ़ करिए। असंख्यात वर्ष जांय, तब एक-एक रोम काढ़तैं एक कूप, दोय कूप रितावतैं, सर्व खाली होंय। सर्व कूपन के रोम खाली होंय। ताकौं जेता काल लागे, सो मध्य पल्य कहिए। और इस मध्य पल्य के जेते रोम भए, तेते ही कूप उस ही विस्तार प्रमाण बनाए। वैसे ही रोमन तैं सबको दृढ़ भरिए। पीछैं असंख्यात लाख कोटि वर्ष गए, एक रोम काढ़िए। फेरि एता ही काल गए, एक रोम काढ़िए। ऐसे करते–करते सर्व कूपन के रोम खाली होंय। ताकौं जेता काल लागै, सो उत्कृष्ट पल्य है। याही उत्कृष्ट पल्य तैं देव, नारकी, भोग-भूमिन की उत्कृष्ट आयु-कर्म है। और मध्यम पल्य तैं द्वीप–समुद्रन की गिनती होय है। सो पचीस कोड़ा-कोड़ी मध्यम पल्य प्रमाण हैं। और दश कोड़ा-कोड़ी पल्य का एक सागर होय है। मध्य पल्य दश कोड़ा–कोड़ी का, मध्य सागर होय है। उत्कृष्ट दश कोड़ा-कोड़ी पल्य गये, उत्कृष्ट सागर होय। ऐसे सामान्य करि पल्य–का कथन किया। विशेष श्री त्रिलोकसार जी आदि ग्रंथ तैं देखि लेना। ऐसे पल्य–सागर का भाव श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञान उपादेय है। और भी श्रुतज्ञान तैं कृतघ्नी, विश्वासघाती का स्वरूप जान्या जाय है। सो कहिए है—जो पराया किया उपकार कौं भूलै, सो कृतघ्नी है। सो कृतघ्नी के भेद, तीन हैं। घर, पर और धर्म। इन तीन का उपकार अन्य जीव पै होय है। सो जैसे माता-पिता ने बालक

अवस्था में महा यतन किये। शीतकाल में तथा उष्णकाल में अनेक सहाय करि, माह के
वशीभूत होय, अनेक यतन करि पाल, रक्षा करी। तरुण किया। सो बड़ा भया, तब माता—
पिता का उपकार भूलि, उनतें द्वेष—भाव करि जुदा होना, अविनय करना, कटुक वचन बोलना,
दुख देना, माता—पिता तें ईर्षा करनी, सो ए घर—कृतघ्नी कहिए। तथा और अन्य घर में बड़े थे।
तिनने भी बालपने में अनेक तरह रक्षा करी। ऐसा विचार करें जो ए बड़ा होय, तब हमारी आज्ञा
मानैगा, हमारी सेवा करैगा, हमको बड़ा मानैगा। ऐसी आशा करि कुटुम्ब के लोगन नें
प्रति—पालना करी थी। सो बड़ा भए, उलटा कुटुम्ब कों दुखी करना। सो घर-कृतघ्नी है,
ऐसा जानना। और कोई जो परजन बड़े मनुष्य बस्ती के और जाति के, तिननें कोई भूखा
देखि अन्न दिया, नागा देखि वस्त्र दिया, बेरुजगार देखि रुजगार लगाय दिया, निर्धन देखि
धन दिया, स्थान रहित देखि रहवे कों मंदिर-स्थान दिया, इत्यादिक दुखन में सहाय किया।
और रोगी कों पीड़ावान देखि, अनेक औषधि देय अच्छा किया। ऐसे अनेक दुःख में सहाय
करि, सुखी किया। अरु पीछे कर्म योग तें आप शक्तिवान भया, तब उन उपकारी का उपकार
भूलि, द्वेष करै। सो पर—कृतघ्नी कहिए। और जाकूं महा अज्ञान में प्रवर्तता देखि, पाप
करता देखि, पर भव नरक पड़ता देखि, कोई धर्मात्मा दयाभाव करि अज्ञानता छुड़ाय,
ज्ञान करावता भया। और पाप—मार्गतें बचाय, धर्म का पंथ बतावता भया। नरकादि खोटी
गति तें बचाय शुभगति बतावता भया। लोकनिंद्य—अनाचार छुड़ाय, सुआचार बतावता
भया। जानी यह जीव सुखी होय तो भला है, ताके निमित्त शुभ पंथ लगाया। अरु पीछे

आपकैं कछू सामान्य भाव–ज्ञान भया, शास्त्र रहस्य पाया। तब उसके उपकार कौं भूलि, द्वेष–भाव करना, सो धर्म कृतघ्नी है। ऐसे तीन भेद कृतघ्नी के कहे हैं। सो महा पाप के स्थान हैं। तातें हेय हैं। आगे विश्वासघाती का स्वरूप कहिये है। तहां परकौं विश्वास उपजावना। कहना जो मैं तेरी सहाय करूंगा। धन द्योंगा। तेरा दुख–दारिद्र हरूंगा। तू कछू उपाय मति करै। ऐसे अनेक मिष्ट वचन बोलि, विश्वास उपजाय, पीछे काम पड़े नट जाय। दगा दे जाय। कहै मोतैं तौ अबार नहीं होय। ऐसे कहि ताके कार्य का घात करै। ऐसी कहै सो विश्वासघाती कहिए। जैसे यहां एक कल्पना करि, लौकिक दृष्टान्त बनाय, विश्वास–घात का लक्षण कहिए है। जैसे एक किसान ने अषाढ़ महीना में नाना प्रकार खेद खाय, हल चलाय कैं, खेत शुद्ध कर राखे थे। सो जब भला मेघ बर्षे पीछे, सर्व खेती बार घरन तैं बीजकी मोटि (गठरी) बांधि, बनकौं चाले। तब एक किसान कौं देखि, एक दुष्ट–मनुष्य की खोपड़ी राह में पड़ी थी, सो हँसती भई। तब किसान कूं आश्चर्य भया। जो ए निर्जीव–खोपड़ी हाड़ की क्यों हँसी! तब इस किसान नें कही। हे खोपड़ी, तूं क्यों हँसे है? तब खोपड़ी ने कही, तोकौं देखि हँसौ हौं। मैं देवता हौं, सो तेरे पै राजी भई। सो अब खेत मैं बीज बोवे मति जाय। मैं तेरे खेत में बिना बोया ही बहुत अन्न करूंगी। तब या किसान नैं जानी, यह देवी है। सो या मोपै राजी भई। तब किसान याके वचन का विश्वास करि, घरि गया। और अन्य किसान अपने खेतन में बीज बोय, घर आये। पीछे दस–बीस दिन गए। अपने-अपने खेत देखवे कूँ सब किसान चाले। सो अन्न उगा देखि, राजी भए। तब यानें भी

सो ए भी देखवे कों चल्या। सो राह में विचारी, जो मेरे खेत में भी अन्न भया होगा। तब कही तोकों देखि हँसे हूँ। तू कहां खोपड़ी फिर हँसी। तब किसान ने कही, क्यों हँसे है? तब कही तोकों देखि हँसे हूँ। तू कहां जाय है? तब किसान नैं कही। औरन के खेत हरे-भरे शोभा देय हैं। सो मैं अपने खेत की शोभा देखवे कों जाऊं हों। तब खोपड़ी कहै है। रे भाई, मैं तेरे पै तुष्टी हों। औरन तें बहुत अन्न तेरे खेत में करूंगी, संतोष राखि। तब किसान, खोपड़ी के वचन का विश्वास करि घरि गया। जब महीना एक-डेढ़ भया, तब सर्व किसान अपने—अपने खेतन तें फल ले-ले, अपने-अपने पुत्रन के निमित्त घर आये। तब किसान के बालक औरन पै अनेक फल देखि, रुदन करते भए। अरु फल मांगते भये। तब किसान नें विचारी, जो औरन के फल आये, सो मेरे खेतमें भी फल आये हों हैं। ऐसी जानि वन कूं, खेत के फल लेने को चाला। तब राह में खोपड़ी हँसी। तब किसान ने कही तू कहा हँसै है? औरन के खेतन में फल भए और सर्व के बालक खाँएँ हैं। और मेरे बालक फल बिना, रुदिन करैं हैं। तब किसान के वचन सुनकर खोपड़ी हँसकें कहती भई। भो सुबुद्धि, धीरज राखि। सोचि मति करै। मेरे वचन का कछू तौ विश्वास राखि। तेरे खेत में एते फल-अन्न होयगा। जो तेरे बूतौ गाड़ानितैं ढोवा भी नहीं जायगा। परन्तु विश्वास राखि, सोच मति करै। ऐसे कही, तब फिर पीछा घर आया। ज्ञानी देव के वचन हैं, सो अन्यथा नहीं हो हैं। ऐसा विश्वास धरि, घर तिष्ठ्या। पीछे महीना दोय-एक भये। और लोक अन्नकूट उड़ाय, गाड़े भरि-भरि अपने घर लाये। तब या किसान नें विचारी, जो

मेरा खेत देखौं तौ सही। तब और हीं राह होय कैं, किसान खेत पैं गया। सो देखै तौ घास ऊंगा है। कोरे मिट्टी के ढीमा पड़े हैं। ऐसा खेत देखि किसान की छाती टूटि गई। महा दुखी भया। रुदन करता भया। जो वर्ष दिन की रोटी गई। अब कहा करैं? तब खोपड़ी याकौं रोवता देख हँसी। तब किसान नै कही, कहा हँसै है? मैं तेरे वचन का विश्वास करि खेत में बीज नहीं डारया। अब और तौ बहुत अन्न लाये, अरु मेरे खेत मैं कछू नाहीं। तैंने मुझे विश्वास देय, बुरा किया। तब यह दुष्ट की खोपड़ी, महा हास्य करि, कहती भई। भो भाई किसान, तू सुनि। हमनैं जीवतैं बहुतनका विश्वास देय, बुरा किया था। और मुए पीछे तो एक तेरा ही बुरा किया है। सो जे दुष्ट, खोपड़ी समान विश्वासघाती, महापाप मूर्ति जीव, सो विश्वासघाती हैं। ए कहे जो कृतघ्नी व विश्वासघाती, ते बड़े पापी हैं। इनका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं पाईए है। सो श्रुतज्ञान उपादेय है। और च्यारि गति के जीवन की आगति-जागति श्रुतज्ञान तैं जानिए है। सो कहिए है। तहां निज स्थान तजि, जा स्थान में उपजै, सो जागति कहिये। और अन्य स्थान तजि, निज स्थान में आवै, सो आगति कहिए। तहां प्रथम देवगति में आगति कहिए है। सो एती जायगा के, देवगति में आय उपजैं, सो कहिये हैं। मिथ्यादृष्टी भोगभूमियां—मनुष्य तिर्यञ्च, कर्म भूमियां-मनुष्य, तिर्यञ्च, सैनी तथा असैनी ए तौ सब भुवनत्रिक में शुभभाव-फलतैं उपजैं हैं। और सम्यग्दृष्टी भोग भूमियां-मनुष्य-तिर्यञ्च ए सर्व पहले-दूजे स्वर्ग पर्यन्त उपजै हैं। और कर्म भूमि के मनुष्य, स्त्री, तिर्यञ्च सोलह स्वर्ग पर्यन्त उपजैं हैं। और सम्यग्दृष्टी तथा मिथ्यादृष्टी मनुष्य, मुनि लिंग धारि

सम्यग्दृष्टी
ग्रैवेयक लौं जाय हैं। और नव अनुत्तर अरु पंचपंचोत्तर इन चौदह विमानन में सम्यग्दृष्टी
मुनि ही जाय हैं। इति देवगति में आगति। आगे देव की जागति कहिए है—च्यारि प्रकार
के देव मरि कहां जाय उपजे हैं, सो जागति है। तहां भवनवासी, व्यंतर,ज्योतिषी देव, पहले-
दूजे स्वर्गवासी देव ए मरि करि पृथ्वी कायिक, अपकायक, वनस्पती, सैनी-पंचेन्द्रिय—तिर्यञ्च,
और मनुष्य इन पंच जगह में जाय उपजैं हैं। और तीसरे स्वर्ग तैं लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यन्त
के देव चयकें, मनुष्य तिर्यञ्च सैनी-पंचेन्द्रिय में उपजैं हैं। और तेरह स्वर्ग तैं लगाय नव
ग्रैवेयक पर्यन्त के देव चय करि, सम्यग्दृष्टी तथा मिथ्यादृष्टी मनुष्य ही उपजैं हैं। और
नवग्रैवेयक तैं ऊपरले देव चयकें, सम्यग्दृष्टी मनुष्य ही उपजैं हैं। इति देव जागति। आगे
नारकी की आगति–जागति कहिये है—तहां नारकी जीव मरि एती जगह में उपजैं सो कहिए
है—प्रथम तैं लगाय छठी नारकी पर्यन्त के जीव निकस, मनुष्य-तिर्यञ्च कर्मभूमि के ही होय
हैं। और सातमी नारकी का निकस्या, पंचेन्द्रिय–सैनी–तिर्यञ्च ही होय है। और विशेष यह
है जो पहली-दूजी-तीजी नारक का निकस्या कोई जीव सम्यग्दृष्टी, तीर्थंकर भी होय है।
चौथी नारक का निकस्या, तीर्थंकर नहीं होय है, चरम शरीरी होय तौ होय। और पंचम
नारकी का निकस्या, चरम शरीर नहीं होय, महाव्रत धरै तौ धरै। और छठे नारक का निकस्या,
संयमी नहीं होय है। और विशेष एता। जो नारकी, असैनी में नहीं उपजै हैं। इति नारकी
जागति। आगे नारक में आगति कहिये है। नारकी में एती जगह के जाय हैं, सो कहिये
हैं—प्रथम नरक में तौ सम्यग्दृष्टी-मिथ्यादृष्टी मनुष्य, तिर्यञ्च–पंचेन्द्रिय-सैनी ए जाय हैं। ३९१
और मनुष्य, पंचेन्द्रिय–सैनी-तिर्यञ्च, अरु जल का उपज्या सर्प ए दूसरी नारक पर्यन्त जाय

हैं। और मनुष्य, तिर्यञ्च, अजगर तथा काला फणधारी सर्प ए चौथे नरक पर्यन्त उपजे हैं। और मनुष्य, तिर्यञ्च, नाहर ए पंचम नरक पर्यंत उपजें हैं। और मनुष्य, तिर्यञ्च, स्त्री छठे नरक पर्यन्त उपजे हैं। और मनुष्य अरु तिर्यञ्च सातमें नरक पर्यन्त उपजें हैं। ऐसे नारक में आगति जानना। इति नरक में आगति। आगे मनुष्य में आगति कहिए है। मनुष्य में एती जगह के आवें, सो कहिए है। तहां सातमी नारकी के निकसे और अग्निकाय, वायुकाय, भोग भूमि के मनुष्य-तिर्यञ्च, इन बिना सर्व जगह के जीव आय, मनुष्य गति में उपजे हैं। इति मनुष्य में आगति। आगे मनुष्य की जागति कहिए है। तहां मनुष्य कहां-कहां जाय उपजें, सो कहिये हैं। सो मनुष्य भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष, सोलह ही स्वर्ग में व सर्व अहमिन्द्र देवन में उपजें। और सातों ही नारकी में उपजें। और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पती, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय—सैनी, असैनी, तिर्यञ्च इन सर्व स्थानन में मनुष्य उपजें हैं। और भोगभूमियां मनुष्य-तिर्यञ्च, कर्मभूमियां मनुष्य और मोक्ष आदि सर्व स्थानक में मनुष्य उपजें हैं। ऐसा तीन लोक में अरु च्यारि गति में कोई स्थान शुभ-अशुभ रह्या नाहीं, जहाँ मनुष्य नाहीं जाय। सो मनष्य कूं सर्व स्थान आगार (घर) है। इति मनुष्य जागति। आगे तिर्यञ्च की जागति कहिये है। तहाँ एकेन्द्रिय, पंचस्थावर, विकलत्रय, ये मर-कर देव, नारकी, भोग भूमियां-मनुष्य-तिर्यञ्च इन विषें नाहीं उपजें हैं। इन बिना कर्म-भूमि के मनुष्य-तिर्यञ्च सम्बन्धी सर्व स्थानकन में उपजें हैं। विशेष एता जो पंच स्थावरन में के अग्निकाय-वायुकाय के जीव, मनुष्य में नहीं होय हैं। और असेनी तिर्यञ्च मर करि मन विकल्प बिना शुभ-भाव तैं भवनत्रिक में

उपजैं हैं। और विकल्प बिना अशुभ भाव तैं मरि, प्रथम नारकी पर्यन्त उपजैं हैं। और भोग भूमि बिना, कर्म भूमिके मनुष्य-तिर्यञ्चन मैं सर्व स्थानकन मैं उपजैं हैं। और सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, भवनत्रिक तैं लगाय सोलहवें स्वर्ग पर्यन्त तो देव मैं उपजैं हैं। और सातों ही नरकों विषैं उपजैं हैं। और कर्म भूमि के मनुष्य, तिर्यञ्च, एकेन्द्रियादि पंच स्थावरन मैं, विकलत्रय, सैनी, असैनी विषैं उपजैं हैं। तथा भोग भूमि के मनुष्य-तिर्यञ्च विषैं उपजैं हैं। ऐसी तिर्यञ्च की जागति कही। इति तिर्यञ्च की जागति। आगे तिर्यञ्च गति मैं आगति कहिये है। तहां पंच स्थावर विकलत्रय इन मैं सर्व देव, व सात ही नारकी के और भोग भूमियां बिना कर्म-भूमि सम्बन्धी सर्व मनुष्य-तिर्यञ्च उपजैं हैं। विशेष एता जो अग्नि—वायु बिना तीन स्थावरन मैं भवनत्रिकके तथा पहले-दूजे स्वर्ग के देव आय उपजैं हैं। और सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च मैं, भवनत्रिकतैं लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यन्त के देव और भोग भूमि बिना, सात ही नारकी के जीव आय उपजैं हैं और कर्म भूमि के एकेन्द्रिय आदि विकलत्रय पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व जीव, एकेन्द्रिय आदि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च विषैं आय उपजैं हैं। इति च्यारि गति सम्बन्धी आगति-जागति कथन। ऐसे च्यारि गति दण्डकन का कथन श्रुत ज्ञानतैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञान उपादेय है। और इस ही श्रुतज्ञानतैं निमित्त—उपादान का स्वरूप जानिए है। सोही कहिए है। प्रथम नाम—निमित्त और उपादान। अब इनका विशेष कहिये है। जो द्रव्य की शक्ति, द्रव्य ही तैं उपजै, सो तो उपादान कहिए। और पदार्थ के मिलाप तैं शक्ति प्रगटै,

सो निमित्त कहिए ।[जैसे जीव विषैं, शुभाशुभ रूप होय राग-द्वेष परिणमणकी शक्ति, सो तौ जीवका "उपादान" है। और जिन पदार्थन के निमित्त पाय रागद्वेष रूप भया, सो वह पर पदार्थ "निमित्त" है । सो इस निमित्त-उपादान तैं ही शुभाशुभ कर्मबन्ध आत्मा कैं होय हैं। सोही कहिए है। जैसे जीवका उपादान भी भला होय । और पूजा, दान, शील, संयम, तप, जिनशास्त्रन का स्वाध्याय तथा सुनना, तथा मुनि-श्रावकादि धर्मी जीवन का संग इत्यादिक शुभ ही निमित्त होंय, तौ दीर्घ स्थिति लिए शुभ भावकर्म उपजें । ताके फल, आत्मा भव-भव सुखी होय । और जहां आत्मा का उपादान खोटा होय। और क्रोध, मान, माया, लोभ, चोरी, जुआ, पर स्त्री, हाँसि, कौतुक, दुराचारी, सुरापायी जीवन का सम्बन्ध, आदि पापकारी निमित्त होंय, तौ आत्मा कैं दीर्घ पाप भावकर्म, बड़ी स्थिति लिए उपजैं । ताकरि भव-भव में दुखी होय। और कहीं उपादान तौ आत्मा का शुभ है। अरु निमित्त अशुभ होय, तौ पापबन्ध नहीं होय। शुभ उपादान तैं पुण्य का ही बन्ध होय है। जैसे कोई मुनि तथा श्रावक महा धर्मात्मा, धर्म ध्यान सहित बनादिक स्थानकन में तिष्ठै। तहां आय, कोई पापी उपसर्ग करै। पाण्डवन की तथा वारिषेणजी की नाईं निमित्त खोटा होय । तथा सेठ सुदर्शन की नाईं निमित्त खोटा होय । तौ फल भला ही उपजे है। और, जहां उपादान तौ खोटा, अशुभ, दगावाजी रूप होय, क्रोध-मानादिक कषाय रूप होय । अरु निमित्त भला होय। पूजा, दान, शास्त्र सुनना-पढ़ना, तप, संयमादिक अनेक भले निमित्त

होंय, तौ भी उपादान अशुभ के योग तैं पापबन्ध ही होय है। जैसे कोई चोर पराया धन हरवें कूं धर्मात्मा का स्वांग बनाय अनेक धर्म सेवन पूजा–पाठ, तपादिक करै है। परन्तु अशुभ उपादान के योग तैं पापही का वन्ध करै है। तैसे ही इस जीव के अनेक भावन की प्रवृत्ति होय है। जैसे कहीं तौ जैसा निमित्त, तैसा ही उपादान भाव होय है। तहां तौ उत्कृष्ट शुभ-अशुभ का बन्ध और कहीं निमित्त तौ और ही और उपादान और ही, तहां फल उपादान प्रमाण होय है। तातैं विवेकी हैं, तिनकौं पर भव सुखके निमित्त तौ भले निमित्त मिलावने। और उपादान सदीव भला ही राखना योग्य है। भले निमित्त तैं शुभ उपादान वारे जीवन कैं बड़ा शुभ फल उपजै है और भले निमित्त तैं परम्पराय उपादान भी शुभ हो जाय है। और खोटे निमित्त तैं उपादान भी खोटा ही होय है। सो जगत मैं प्रसिद्ध देखिये है। भले कुल के जीव खोटे निमित्तन तैं चोर, जुआरी, कुआचारादि कुलक्षण सहित, खोटे होते देखिये है। और हीन कुल के उपजे जीव, भली संगति तैं ऊंचे होय, सुखी देखिये है। तातैं विवेकी जीवकूं निमित्त भले राखनेका उपाय सदीव राखना योग्य है। निमित्त तैं उपादान की शुद्धता होय है। जैसे अग्नि के निमित्त सुवर्ण के उपादान की शुद्धता होय है। और ताम्बा आदि कुधातन के निमित्त तैं, सुवर्णके उपादान की मलिनता होय है। ऐसे जानि, निमित्त भला ही मिलावना योग्य है। जहां-तहां निमित्त की मुख्यता है। सोही दिखाईये है। देखो आदिनाथ स्वामी, उत्कृष्ट भले उपादान के धारक, तिनके

अशुभ निमित्त तैं, तियासी लाख पूर्व, कषायन में जाते भए। दीक्षा रूप भाव नहीं भये। तब इन्द्र महाराज ने अवधि तैं विचारी, जो तीर्थंकर भगवान् का सर्व आयु-कर्म पंचेन्द्रिय भोगन में व्यतीत भया। अरु भगवान् कैं विरक्ति नहीं भई। सो कोई निमित्त विचारिए। तब इन्द्र नै एक नीलांजना नाम अप्सरा का आयु कर्म बहुत ही अल्प जानि, इसकों आज्ञा करी। सो ये देवी ने इन्द्र की आज्ञा लेय, भगवान् के आगे अद्भुत नृत्य-गान आरम्भ्या। सो याके नृत्य कौं देखि, सर्व सभा के देव-मनुष्य आश्चर्य कूं पावते भए। जो ऐसा नृत्य इन्द्रकौं भी दुर्लभ है। ऐसे नृत्य करते समय उसका आयु पूरण भया। जिससे आत्मा तौ परगति गया। अरु शरीर, दर्पण की छाया के प्रतिबिम्बवत् अदृश्य होय गया। सो नृत्य का उत्सव भंग नहीं होने कूं, इन्द्र नै तत्क्षण वैसी ही देवांगना रचि दई, सो नृत्य की ताल-राग-चाल भंग नहीं होनैं पायी। यह चरित्र सर्व सभा के जीव-मनुष्यादि थे, तिन काहूनैं नहीं जान्या। सब नै जान्या वही देवी नचै है। अरु इस चरित्र कौं भगवान् ने अवधि तैं जान्या, जो वह देवी नृत्य करती, काय तजि अन्य लोक गई। यह इन्द्रनै नई रचिदई है। अहो, संसार चपल व विनाशीक है। इत्यादिक प्रकार वैराग्य उपाय, दीक्षा धरि, ध्यानाग्नि मैं कर्मनाश, सिद्ध भये। सो यहां भी देखो, निमित्त ही की महंतता आई। तातैं सत्पुरुषन कूं अपने कल्याण कूं, कुसंग हेय करि, शुभ निमित्त करना सुखकारी है। जैसे बनै तैसे ही, भला निमित्त गुणकारी है। ऐसे एतौ जीव कूं जीवका निमित्त कह्या। अब पुद्गल का पुद्गल तैं निमित्त-

उपादान कहिये है। तहां हल्दी तौ स्वभाव तैं ही पीत है। याकौ घसिकैं जल मैं घोलिए, तौ भी पीत ही जल होय। सो ऐसे पीत जल मैं साजी डारिए, तौ साजी के निमित्त तैं सर्व जल, लाल होय है। सो लाल होयने की उपादान शक्ति तौ हल्दी की ही है। परन्तु निमित्त साजी का मिलै लाल होय है। और स्फटिक मणि निर्मल है सो ताके नीचे जैसा डांक दीजिये, तैसाही मणि भासै। लाल डाक दिये, मणि लाल भासै। पीत डांक दिये, मणि पीत होय। श्याम डांक दिये, मणि श्याम होय। सो मणि, स्वभाव तैं तौ महा निर्मल-श्वेत है। परन्तु जैसे डांक का निमित्त मिलै है, तैसाही भासै है। सो लाल, पीत, श्याम होने की उपादान शक्ति तौ उस स्फटिक मणि की है। अरु निमित्त नीचले डांक का है। सो यहां भी निमित्त की प्रधानता आई। और जैसे लोहा धातु, नीच धातु है। परन्तु जब ऊंच जो पारस पाषाण का निमित्त मिलै, तब कंचन होय है। सो सुवर्ण होनेकी उपादान शक्ति तौ लोहा ही मैं है, और धातन मैं नाहीं। परन्तु जब पारस का निमित्त मिलै तौ सुवर्ण होय है। सो हे भव्य, जीव तैं जीव कूं, पुद्गल तैं पुद्गल कूं, जहां-तहां निमित्त ही की महंतता है। तातें विवेकीन कूं भला निमित्त मिलावना ही योग्य है। विशेष एता है जो अपने परणामण की विशुद्धता तैं अधिक विशुद्धता का निमित्त होय तो अपना उपादान, निमित्त प्रमाण करना और अपने भावन की विशुद्धता तैं निमित्त सामान्य है, तौ अपना उपादान, निमित्त प्रमाण नहीं करना। इत्यादिक विचार है सो सम्यग्दर्शन कूं अपनी बुद्धि करि विचारना

योग्य है। ऐसा श्रुतज्ञान तैं निमित्त-उपादान का स्वरूप जानिए है। तातें श्रुतज्ञान उपादेय है। इति निमित्त-उपादान। आगे श्रुत ज्ञान तैं और भी सुवाणिज्य-कुवाणिज्य का स्वरूप जानिए है। सो ही कहिये है—

गाथा—हिंसावाणिज्ज हेयं, तिल धातु आदि भूमि जल खएडो।
अप्पारंभो सुह कज्जो, विणहिंसा णिच्च मादेओ॥

अर्थ—हिंसा कारी वाणिज्य तजवे योग्य है। तिल, लोह कूं आदि धातुका व्यापार, तजने योग्य है। और जामैं अल्प आरम्भ होय सो शुभ वाणिज्य करना। जामैं हिंसा नाहीं, ऐसा वाणिज्य उपादेय है। भावार्थ—जे सम्यग्दृष्टी धर्मात्मा हैं। सो वाणिज्य करने मैं ऐसे ज्ञेय-हेय-उपादेय विचारैं हैं। सो दिखाईए है। तहां शुभ-अशुभ वाणिज्य का समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक शुभ वाणिज्य है, एक अशुभ वाणिज्य है। तहां जो हिंसा, झूठ, चोरी दोष रहित होय, सो शुभ वाणिज्य है। हीरा, मोती इत्यादिक जवाहिरात सीधा लेना और सीधा ही देना। संचय करि बहु दिन नहीं राखना, यह निर्दोष वाणिज्य, उपादेय है। चांदी, सुवर्ण, टके, रुपये, असर्फी लेना, तैसे ही देना। तथा जरकस, तास, गोटा, मुकेशादि सीधे लेना तैसे ही देना, ए निर्दोष वाणिज्य, उपादेय है। तथा पराया गहणा राखि व्याजका वाणिज्य, सो शुभ वाणिज्य है। ए कहे जो व्यापार, सो अग्नि-जल के आरम्भ रहित तौ शुभ वाणिज्य हैं। और जिन मैं जलका तथा अग्निका

आरम्भ होय, तो ये आरम्भी हिंसा सहित वाणिज्य हेय हैं। और सूजी आजीविका, वचन आजीविका, दृष्टि आजीविका, और कष्टी आजीविका। ए च्यारि आजीविका के भेद हैं। तहां चिकन काढ़ना, कसीदा करना, वस्त्र सीवनादि, दरजी का काम जे सूजी तैं कमावैं, सो सूजी आजीविका है। सो निर्दोष है. उपादेय है। और लेने-देने वारे के बीचि विषैं दूत होय व्यापार करादेना, अपने वचन ज्ञान के बल करि आजीविका पैदा करै। जैसे लौकिक में दलाली करने हारे, सो हिंसादि दोष रहित, शुभवाणिज्य है। सो उपादेय है। याका नाम वचन आजीविका है। और जे अनेक रतन, अशर्फी, रुपैया परख देना। परखाई लेनेकी आजीविका करनी। सो दृष्टि आजीविका है। और अपने तनतें कष्ट करि, पराया कार्य कर देना। जैसे लौकिक में हिम्माली आदि शीश गांठि भारि धरि आजीविका करैं, सो कष्टी आजीविका है। ए कही जो च्यारि प्रकार आजीविका, सो सामान्य पुण्य तैं लगाय विशेष पुण्य पर्यन्त अरु नीच कुली तैं लगाय ऊंच कुली पर्यन्त, सामान्य ज्ञानी तैं लगाय विशेष ज्ञानी पर्यंत जे धर्मात्मा जीव, चोरी झूठ हिंसा आरंभ तैं भयभीति ते सन्तोषी गृहस्थ, इन च्यारि प्रकार शुभ वाणिज्य करि आजीविका करैं, सो उपादेय है। इत्यादिक किसब (व्यापार) जल, अग्नि आदिक बड़े आरम्भ रहित हैं। चोरी, झूठ, हिंसा रहित हैं। तातें निर्दोष हैं। और ए ही झूठ, चोरी आदि सहित होंय, तो ए ही पाप करता होंय, सो हेय होंय। जैसे हीरा, मोती, रतन का व्यापार करन हारा, द्रव्य लगाय, लोभ निमित्त, धरती खुदाय कढ़ावै। तौ पापबंध

करता, आरंभी व्यापार होय। चांदी सुवर्ण का वाणिज्य करन हारा, बहु आरम्भ—अग्नी तपावना, जलाना, फूंकना, धौंकनादि आरम्भ सहित होय, तौ अयोग्य है, हेय है। तथा सूजीवारा पराया वस्त्रादि चोरै, तो सूजी आजीविका भी सदोष होय। दलाली वाला बहुत झूठ बोलि, लेने-दैने वारे का बहुत माल-धन ठिगावै, तौ वचन अजीविका मैं भी दोष लागै, पाप होय। दृष्टि आजीविका वारा अपने लोभ कूं भला-बुरा परखै, तौ चोरी के दोष सहित होय। और कष्टी आजीविका वारा भी लोभाचारी होय, पराये गठिया का माल लेय, तौ चोर के दोष सहित होय। तातें दोष सहित तै सर्व ही हेय हैं। परन्तु दीर्घ तृष्णा रहित, पाप तैं डरनैहारे भव्यन कूं, रतन-सुवर्णादिक, सूजी आजीविका, दृष्टी आजीविका, वचन आजीविका, कष्टी आजीविका ए कहे जो किसब सो सुखकारी हैं। आप-परकों हितकारी हैं। तातें धर्मात्मा जीवन करि उपादेय हैं। यह लौकिक व्यापार कहे। अब निश्चय शुभाशुभ व्यापार कहिये है। तहां राग द्वेष क्रोध मान माया लोभादि कषायभाव, मिथ्यातभाव, निशदिन आर्तरौद्र परणतिका रहना, शोक चिंता भाव, आदि भावनका व्यापार सो हेय है। और सम्यक सहित आत्मीक भाव, पर वस्तु के त्यागका भाव, तप-संयमादि भावन की सदीव परणति, सो ए शुभ व्यापार है, निश्चय उपादेय है। ऐसे विवेकी जीवन कूं अनेक नयन करि व्यापार भेद जानना योग्य है। इति शुभ वाणिज्य। आगे अशुभ वाणिज्य कहिए है। जहां अग्नि—जल का बहुत आरंभ होय। बहुत अग्नि जलावनी-बुझावनी होय, बहुत जल मथन करना होय, नाखना होय, गाले-

अनगाले का विचार रहित होय। जहां झूठ, चोरी, दीर्घ माया करना इत्यादिक खोटी वृत्ति
का वाणिज्य होय, सो हेय है। और बहुत जीवन की उत्पत्ति-मृत्यु का आरंभ जा किसब
में होय, सो अशुभ-हेय है। जहां बहुत अन्न का संग्रह, भंडसाल करि बहुत दिन राखना।
तथा सन, चाम, केश, हाड़ादि इन विषैं जीवन की उत्पत्ति बहुत होय है। तहां सर्दी का
निमित्त पाय हिंसा बधै, निर्दय भाव होय। तातैं हेय है। और शहद, विष, फांसी का रस्सा,
छुरी-कटारादि शस्त्र, कुसी, कुदाली, फावड़ा इत्यादिक वाणिज्य, हिंसा के कारण हैं। तातैं
अशुभ हैं। और जहां लोहा, ताम्बा, जस्ता, सोना, चांदी, हीरादिक की खान खुदावना।
तथा धरती खोदना-खुदावना के किसब, सो अशुभ हैं। और खेती जोतना-जुतावना सो
हिंसा सहित, तजने योग्य हैं। और साजी, फिटकरी, नील, आल, फूल, कंद, मूल, इत्या-
दिक ए हिंसा के कारण हैं। तातैं अयोग्य हैं। और भी इनकौं आदि जे पापकारी वाणि-
ज्य होंय, सो हेय हैं। जे धर्मात्मा जीव हैं सो दया के निमित्त, ये वाणिज्य नहीं करै हैं।
अपना धर्म निर्दोष राखने कौं, सर्व दोष तजैं हैं॥ और येते किसब वारन तैं वाणिज्य नहीं करैं,
तब दया-धर्म निर्दोष है, सो ही कहिए है। तहां चांडाल, कसाई, चमार, राह के मारन हारे
भीलादिक चोर इनकौं कर्ज नहीं देय। और देय, तौ इनके स्पर्श तैं तथा इनके विश्वास तैं
अल्पकाल में क्षय होय। तन-धनादि विनाश पावैं। परभव कौं पाप-बंध होय। तातैं इनका
वाणिज्य हेय है। और धोबी, लुहार, छीपी, कुम्हार, तीर-तुपकादि (बन्दूक) शस्त्रन के करन-

हारे इत्यादिक हिंसा के अनुमोदन हारे हैं, सो इनका वाणिज्य हेय कह्या है। ऐसे कहे जे किमव तिन सबकूं सम्यग्दृष्टी, धर्मात्मा, दयाधर्म पालक, जिनाज्ञा का प्रतिपालक, करुणा-निधान, उज्वल धर्मका दास, इन किसवन में चौगुणे होने होंहि, तौ भी नहीं करें। आप धर्मात्मा, परभव सुख का लोभी, इस लोक निंदा कौं बचाय, यश का इच्छुक, लोभ के वशीभूत होय कैं कुवाणिज्यन का विश्वास अपने घर में नहीं आवने देय है। ऐसा वाणिज्य भेद, श्रुत ज्ञान तैं जान्या। तातें श्रुत ज्ञान उपादेय है। इति कुवाणिज्य। ऐसे वाणिज्य में ज्ञेय हेय उपादेय कही॥ आगे इसही श्रुत ज्ञान का जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट करि तीन प्रकार स्वरुप कहिये है। तहां सर्व ज्ञान तैं छोटा, सो तौ जघन्य जानना और सर्व द्वादशांग प्रकीर्णादि श्रुत ज्ञान सो उत्कृष्ट जानना। और मध्य के अनेक भेद जानना। ऐसे तीन भेद रूप है सो याका स्वरूप आगे कहेंगे। मूल श्रुतज्ञान है, ताके दोय भेद हैं। एक तो अक्षरात्मक, एक अनक्षरात्मक। तहां अक्षर, छंद, पद, काव्य, गाथा, फांकी आदि शब्द तैं उत्पन्न भया, सो अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान है। और भाव ही तें उपजे, अक्षर रूप नाहीं, सो अनक्षर श्रुत ज्ञान है। सो एकेन्द्रियादिक पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व ही जीवन के होय। परन्तु इस अनक्षरात्मक ज्ञान तैं कछु व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं। जीव के भाव-विचार की, सो ही जीव जानै। तथा केवली जानैं। तातें इसकी मुख्यता नहीं लई। और दूसरा अक्षरात्मक ज्ञान है। तातैं कर्म-धर्म-कार्यन की प्रवृत्ति होय है। जातैं लौकिक में लेने-देने रूप खाता-रोजनामचादि सर्व व्यवहार

कार्य होय हैं। और धर्म-शास्त्र का पठन-पाठन प्रवृत्ति सो भी अक्षरात्मक ज्ञान तैं होय है। ताकै बीस भेद हैं। सो ही कहिए है। उक्तञ्च श्री गोमट्टसार जी सिद्धान्त—

गाथा—पज्जायक्खर पदसंघादं पडिवत्ति आणिजोगं च।
दुगवार पाहुडंच य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥ ४५ ॥

अर्थ—पर्यायज्ञान, अक्षर ज्ञान, पदज्ञान, संघातज्ञान, प्रतिपत्तिकज्ञान, अनुयोग ज्ञान, प्राभृतक-प्राभृतकज्ञान, प्राभृतक ज्ञान, वस्तुज्ञान और पूर्वज्ञान ए दशभेद भये। सो इन दशन के संग समास लगाय लेना, जैसे पर्याय, पर्यायसमास, ऐसे सर्वजगह लगाय बीस भेद होय हैं। सो ए बीस भेद अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के जानना। अब श्रुतज्ञान काहे कौं कहिये है। ताका स्वरूप कहैं हैं। सो अक्षर विषैं जो अर्थ होय ताकूं जानने रूप जो भाव, सो श्रुतज्ञान कहिये। ता श्रुतज्ञान के ए बीस भेद हैं। तातें इस ज्ञान की घातनहारी वरणी सो भी बीस भेदरूप परणमि, बीस ही भेद रूप श्रुतज्ञान कूं घातैं हैं। तातें श्रुतज्ञानावरणी के भी बीस भेद जानना। अब इन बीसन का सामान्य अर्थ कहिये है। प्रथम पर्यायज्ञान, जघन्य भेद है। सो अक्षर के अनंतवें भाग ज्ञान है। इस ज्ञान का आवरण इस ज्ञान कूं घात सक्ता नाहीं, ऐसा ही अनादि स्वभाव, केवलज्ञान में भास्या है। जो कदाचित् इस ज्ञान कौं भी आवरण घातै, तौ ज्ञान का अभाव होय। और ज्ञान-गुण के अभाव तैं, गुणी ए आत्मा का अभाव होय। और आत्मा का अभाव भए, संसार च्यारि गति का अभाव होय। सो संसार का अभाव

तौ कबहूं होता नाहीं। तातें आत्मा के सद्भावतैं ज्ञानका सद्भाव है। सो सर्व श्रुतज्ञान केवलज्ञानादि सर्व ज्ञानकौं, आवरण घातै। परन्तु इस अक्षर के अनंतवें भाग ज्ञान कौं नहीं घातै है। तातें यह ज्ञान निरावर्ण सदीव रहै है। सो यह जघन्य ज्ञान कौन समय होय है सो कहिए है। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के उपजने के पहले समय, पर्यायनाम जघन्यज्ञान होय है। सो सूक्ष्म निगोदिया अपने योग्य एक अन्तरमुहूर्त के बटवारे मैं छह हजार बारह क्षुद्रभव, तिनमैं जन्मता-मरता, अत्यन्त संक्लेशिता रूप भ्रमण करता, अन्त के क्षुद्र भव विषैं वक्रता लिए जो विग्रह गति करि जन्म धस्या होय, ता वक्र गति के पहले समय मैं जघन्य ज्ञान होय है। तिसही जीवकैं ता समय स्पर्शन इन्द्रिय का जघन्य मतिज्ञान है। तिस ही जीव कैं ता समय जघन्य अचक्षु दर्शन होय है। इहां बहुत क्षुद्र भवके धरते-धरते बधी जो संक्लेशता, तिन दुखरूप परणामन तें निमित्तपाय, तीव्र अनुभाग लिए ज्ञानावरणादि कर्मन का उदय होते, महादुखरूप क्षुद्र भवों का अन्त क्षुद्र भवका प्रथम समय विषैं, पर्याय ज्ञान के अनंतवें भाग जघन्यज्ञान कह्या है। यह ज्ञान अविनाशी है। याका कबहूं नाश नाहीं। ऐसा नियम जानना। पीछे द्वितीयादि समयन मैं ज्ञान बधता होय है। सो इस जघन्य ज्ञान विषैं अनंत भाग वृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि, अनंत गुणवृद्धि, यह षट् स्थानरूप महानवृद्धि संभवते, अनंत अविभाग प्रतिच्छेद लिए अंश हैं। इहां प्रश्न—जो जघन्य ज्ञान मैं अनंतभाग कैसे संभवैं?

ताका समाधान-जो अनंत के अनंत ही भेद हैं। तहां चौदहाधारा के कथन में द्विरूपवर्गधारा विषैं कथन किया है जो अनंतानंत वर्गस्थान गए पीछे, सर्व जीव राशिका प्रमाण होय है। और जीवराशि तैं अनंतगुणी राशि, पुद्गल है। और पुद्गल राशि तैं अनंत गुणी राशि, तीन काल के समय हैं। और सर्वकाल समय राशि तैं सर्व आकाश प्रदेश राशि, अनंत गुणी है। और सर्व आकाश प्रदेश राशि तैं अनंतानंत वर्ग राशि गए, सूक्ष्म निगोदिया जीव के जघन्य ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदन का प्रमाण होय है। ऐसा आगम में कह्या है। तातैं यामैं अनंतभागवृद्धि संभवै है। ऐसा यह पर्याय ज्ञान प्रथम भेद जानना ॥ १ ॥ अब यातैं अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद बधैं, तब पर्याय समास का प्रथम भेद होय। तातैं अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद बधैं, तब पर्यायसमास का दूसरा भेद होय। ऐसे ही अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद बधैं। एक--एक स्थान बधैं, सो तीन स्थान, पांच आदि असंख्यात लोक प्रमाण षट् स्थान पतित वृद्धि होय, तब तांई पर्याय समास के भेद होय हैं। सो वृद्धि का अनुक्रम ऐसा है जो अनंत का प्रमाण मैं तो जीवराशि जानना। असंख्यात के प्रमाण मैं असंख्यात लोक प्रमाण जानना। और संख्यात वृद्धि में उत्कृष्ट संख्यात है। ऐसी अधिकता-हीनता करि षट् गुण हानि-वृद्धि जानना। ऐसे षट् स्थान पतितन की हानि-वृद्धि होते असंख्यात लोक की अन्त की हानि-वृद्धि पूरी होते, एक भेद घाट पर्यन्त, सर्व ये पर्यायसमास ज्ञान के भेद जानना ॥ २ ॥ आगे अक्षर ज्ञान कहिए है। सो वह पर्याय समास के अन्त भेद में एक

भेद और मिलाईए, तब अक्षर ज्ञान है। सो यह अर्थाक्षर नाम ज्ञान है। सो सर्व श्रुतज्ञान के संख्यातवें भाग, यह अक्षर ज्ञान है ॥ ३ ॥ और याके आगे एक-एक अक्षर ज्ञान की बधवारी होतैं, एक अक्षर घाटि पद-अक्षर पर्यंत ज्ञान बधै, वहां लौं अक्षरसमास ज्ञान कहिए॥४॥ आगे या अक्षर समास ज्ञान के अन्त भेद मैं एक अक्षर और मिलाए, पद ज्ञान होय है ॥ ५ ॥ आगे पद ज्ञान का प्रमाण कहिये है। सो यह तीन प्रकार है। अर्थ पद, प्रमाणपद और मध्यम पद, ये तीन भेद हैं। तहां ऐसा कहना जो "अग्न्यानयः"। याके दोय पद हैं, अग्नि और आनय। याका अर्थ ऐसा जो अग्नि आनि देओ। इत्यादिक अर्थ जिन अक्षरन तैं निपजे, सो अर्थ पद कहिए। और कहिए जो "नमः श्री वर्द्धमानाय"। याका अर्थ यह जो श्री वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार होहु। यह आठ अक्षरन का पद भया। सो याका नाम प्रमाण पद है। और सोलासौ चौंतीस कोड़ि, तियासी लाख, सात हजार, आठसौ अठयासी, अपुनरुक्त अक्षरन का एक पद होय। सो यह मध्यम पद है॥५॥ इस पद के ऊपर एक-एक अक्षर ज्ञान बधता-बधता एक पद जितने अक्षर बधैं, तब पद ज्ञान दूना होय है। यातें एक-एक अक्षर और बढ्या सो बधते-बधते एक पद अक्षर बधैं, तब ज्ञान तीन गुणा होय। ऐसे ही अनुक्रम कौं लिए एक-एक अक्षर बढ़ते पद होंय, तब चौगुणा पद ज्ञान, पचगुणा, षट् गुणा, ऐसेही संख्यात हजार पद ज्ञान जितने अक्षरन मैं, एक अक्षर ज्ञान घटाय, तहां तांई पद समास के भेद जानना ॥ ६ ॥ या राशि विषैं एक अक्षर और

मिलाए संघात ज्ञान होय है॥ ७ ॥ सो इस ज्ञानतैं च्यार गति मैं तैं एक गति निरूपण सम्पूर्ण करैं, सो संघात नाम श्रुति ज्ञान है। बहुरि इस संघात ज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर का अनुक्रम लिए बढ़ते-बढ़ते पद होंय। अनेक पदन का समूह संघात, याही अनुक्रम करि एक संघात, दोय संघात, तीन, च्यारि, आदि संघात, हजार संघात होंय। तहां अन्त का संघात विषैं एक अक्षर घाटि पर्यन्त, संघात समास के भेद हैं। ऐसे संघात समास जानना॥ ८ ॥ अब इस उत्कृष्ट संघात समास विषैं एक अक्षर ज्ञान और बढ़ाइए, तब प्रतिपत्तिक नाम श्रुत-ज्ञान हो है। या प्रतिपत्तिक श्रुत ज्ञान का धारी, च्यारि गति का स्वरूप यथावत् व्याख्यान करै। सो प्रतिपत्तिक श्रुत ज्ञान कहिए॥ ९ ॥ इस प्रतिपत्तिक ज्ञानतैं एक-एक अक्षर बधता पद हाय है। पदतैं बधतैं-बधतैं संख्यात हजार पद बधे संघात होय, संख्यात हजार संघात बधतैं एक प्रतिपत्तिक होय। और संख्यात हजार प्रतिपत्तिक ज्ञान के अन्त भेद मैं एक अक्षर घटि होय, तहां तांई प्रतिपत्तिक समास नाम ज्ञान हो है॥ १० ॥ आगे इस प्रतिपत्तिक समास के अन्त भेद मैं एक अक्षर और मिलाईये, तब अनुयोग नाम श्रुत ज्ञान होय है। सो इस तैं चौदह मार्गणा का स्वरूप भले प्रकार कह्या जाय है। यह अनुयोग नाम ज्ञान है ॥ ११ ॥ आगे इस अनुयोग के एक-एक अक्षर ज्ञान बधतैं, पूर्ववत् अनुक्रमतैं पद ज्ञान, पदतैं संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग सो च्यारि आदि अनुयोग विषैं, अन्त भेद मैं एक अक्षर घटि तांई, अनुयोग समास श्रुत ज्ञान होय है॥ १२ ॥ ऐसे अनुयोग समास के अन्त भेद विषैं एक

अक्षर और मिलाए, प्राभृतक-प्राभृतक ज्ञान होय है ॥१३॥ इस प्राभृतक-प्राभृतक के ऊपरि एक एक अक्षर बधतैं-बधतैं पूर्ववत् अनुक्रमतैं पद संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभृतक-प्राभृतक, ऐसे अनुक्रमतैं चौईस प्राभृतक-प्राभृतक होंय। तहां अन्त भेद मैं एक अक्षर घटता रहै, तहां तांई प्राभृतक-प्राभृतक समास ज्ञान होय है ॥ १४ ॥ आगे इस प्राभृतक-प्राभृतक समास विषैं एक अक्षर और मिलाईए, तब प्राभृतक ज्ञान होय है ॥ १५ ॥ भावार्थ—एक प्राभृतक के चौईस प्राभृतक-प्राभृतक अधिकार होय हैं। और इस प्राभृतक ऊपरि एक-एक अक्षर की बधवारी लिए, पद संघातादि अनुक्रमतैं बधवारी लिए, चौबीस प्राभृतक होंय। तहां अन्त के भेद मैं एक अक्षर घटता रहै, तहां तांई प्राभृतक समास के भेद जानना ॥ १६ ॥ आगे इस प्राभृतक समास मैं एक अक्षर ज्ञान और मिलाए वस्तुनाम श्रुत ज्ञान होय है ॥ १७ ॥ आगे इस वस्तु ज्ञान पै एक अक्षर बधतैं-बधतैं पद संघातादि सर्व अनुक्रम पूर्ववत् करि वृद्धि होते, दश आदि वृद्धि होते, अन्त भेद मैं एक अक्षर घटै, तब तांई वस्तु समास श्रुत ज्ञान है ॥ ८ ॥ आगे इस बस्तु समास मैं एक अक्षर और बधाईए, तब पूर्व नाम श्रुत ज्ञान होय है ॥ १६ ॥ इस ही पूर्व मैं चौदह भेद हैं। तिनका स्वरूप आगे कहि आए हैं। तातें इहां नहीं कह्या है। और पूर्व ज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर ज्ञान बधतैं-बधतैं पूर्व अनुक्रमतैं पद संघातादि अनुक्रमतैं एक अक्षर घाटि श्रुत ज्ञान पर्यन्त, पूर्व समास है ॥ २० ॥ ऐसे बीस भेद श्रुत ज्ञान के कहे। विशेष इनका श्री गोमट्टसार जी के श्रुत-

ज्ञानाधिकारतैं जानना। ऐसे यह श्रुतज्ञान कह्या । सो यह श्रुतज्ञान, केवलज्ञान की सी महिमा कौं धरै है। केवलज्ञान तौ प्रत्यक्ष है। अरु श्रुतज्ञान परोक्ष है । परन्तु केवलज्ञान समान, लोकालोक तीनकाल सम्बन्धी सकल-तत्व-प्रकाशी है । इहां प्रश्न—जो केवलज्ञान तौ अनन्त है। सो अनन्त पदार्थन मैं अनन्त अर्थ रूप होय प्रवर्तें है। और श्रुतज्ञान संख्यात अक्षर मई है। सो केवलज्ञान की बरोबर कैसे सम्भवै ? ताका समाधान—जो हे भाई, तेरी बात प्रमाण है। परन्तु तू चित्त देय सुनि। या प्रश्न का उत्तर धारण किए सम्यक् हो है। हे भव्य, केवलज्ञान तैं कछू छिपा नाहीं। मूर्ती-अमूर्ती पदार्थ सर्व प्रकाशै । ऐसा केवलज्ञान लोकालोक तीनकाल का प्रकाशनहारा है । सो जे-जे पदार्थ केवलज्ञान मैं भास्या, सो सर्व रहस्य केवली के मुखतैं खिरया, सो ही गणधर देव नै प्रगट करि उपदेश दिया। सो मूर्ती-अमूर्ती द्रव्यन का स्वरूप, तीनलोक तीनकाल सम्बन्धी रचना, श्रुतज्ञान के द्वारा सर्व कही। ताकौं भव्य सुनि-सुनि रहस्य पाय, मोक्ष-मार्ग पावते भए। तातैं श्रुतज्ञान कूं केवलज्ञान समान कह्या। और भी देखो, हे भव्य हो. सुनो। जो केवलज्ञान जाकैं होय, सो केवली कहावै है। जाकैं सर्व श्रुतज्ञान होय, ते यतीनाथ श्रुत-केवली कहावैं हैं । तातैं भी केवलज्ञान समान कह्या। ऐसा जानना। इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, सामान्य श्रुतज्ञान वर्णनो नाम, उगणीसवां पर्व सम्पूर्ण भया ॥ १९ ॥

आगे अवधिज्ञान का स्वरूप कहिये है—

गाथा—देसा पम्मा सव्वा, तिय भेयावत्रिणाण जिण भणियं।
जाणय मुत्ती दव्वं, तीताणागत वत्तमाणाय॥ ८६॥

अर्थ—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ए तीन भेद अवधिज्ञान, जिनदेव नैं कह्या है। सो यह ज्ञान अतीत, अनागत और वर्तमान, तीनकाल सम्बन्धी मूर्ती द्रव्य कौं जानैं है। भावार्थ—अवधिज्ञान मूर्ती पदार्थों कौं जानै है। सो अतीतकाल में मूर्तीक पदार्थ जैसे-जैसे परणमैं। स्पर्श के विषय रूप, रसना के विषय रूप, नासिका के विषय रूप, नेत्र के विषय रूप, कर्ण के विषय रूप, स्थूल-सूक्ष्म रूप, जे-जे पुद्गल स्कन्ध परणमैं। सो-सो अपने-अपने विषय-प्रमाण सर्वकूं अवधिज्ञानी जानै है। और आगामी काल में मूर्ती पदार्थ जैसे परणमैंगे, सो तिन सवकूं अवधिज्ञान जानै है। और वर्तमान काल सम्बन्धी जो पदार्थ, तीन लोक मैं जैसे-जैसे परणमते हैं। तिन सबकूं अपने विषय-प्रमाण क्षेत्र-काल की, अवधिज्ञानी जानै हैं। ऐसे अतीत-अनागत-वर्तमान काल सम्बन्धी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपने विषय-योग्य दूरवर्ती तथा नजदीकवर्ती सर्व पदार्थन कूं, अवधिज्ञानी जानैं। सो अवधिज्ञान तीन प्रकार है। सो ही कहिए है। देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। तहां देशावधि के षट् भेद हैं। तिनकूं कहिए है। अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित अरु अनवस्थित। ए षट् भेद हैं। अब इनका सामान्य लक्षण कहिये है। जो अवधिज्ञान जिस पर्याय मैं भई, तामैं आयु पर्यन्त रहै, अथवा ए जीव परगति जाय, तब भी याकी सङ्ग परगति मैं

जाय, सो अनुगामी कहिये ॥ १ ॥ और जो अवधिज्ञान, भले निमित्त पाय, जा पर्याय व
जा स्थान मैं भया, सो ताही पर्याय व ता स्थान पर्यन्त रहै । परन्तु अन्य गति व अन्य
स्थान मैं सङ्ग नहीं जाय, सो अननुगामी कहिए ॥ २ ॥ और जा अवधिज्ञान तैं जबतैं शुभ
निमित्त भया, तबतैं पर्याय पर्यन्त अपनी स्थिती-प्रमाण काल तांई समय—समय विशुद्धता
सहित, ज्ञान के अंश बृद्धि ही भया करैं, सो वर्द्धमान अवधिज्ञान जानना॥ ३ ॥ जो अवधि,
महा विशुद्धता के प्रभावतैं भला निमित्त पाय, जिस जीवकैं जा समय भई, तबही तैं अवधि-
ज्ञानके अंश घटते जांय। सो पर्याय पर्यन्त घट्या ही करैं। अपने काल-थिति की मर्याद मैं
घट चुकैं, सो हीयमान अवधि जानना ॥ ४ ॥ और जो अवधि जबतैं भई, तबतैं जैसी की
तैसी रहै। अपने काल—प्रमाण जेती थिति या ज्ञान की रहै, तेते अंश घटै-बढ़ै नाहीं।
जा समय उपजी थी, तेते ही अंश रहैं। सो अवस्थित अवधिज्ञान कहिये ॥ ५ ॥ और जो
अवधिज्ञान जबतैं भया, तबतैं कबहूं तौ घटै, कबहूं बढ़ै। ऐसे चपल रह्या करै । सो अनव-
स्थित अवधिज्ञान कहिए ॥ ६ ॥ ऐसे इस देशावधि के षट् भेद हैं । तहां अनुगामी के तीन
भेद हैं। एक स्वस्थान अनुगामी, एक परस्थान अनुगामी, एक उभय अनुगामी। तहां जो
अपने क्षेत्र में ही यावज्जीवन अपने साथ जावे, अथवा भवान्तर में जावे, उसे स्वक्षेत्र अनुगामी
कहैं हैं। जो पर—क्षेत्र में यावज्जीवन अथवा भवान्तर में अपने साथ जावे, उसे पर—क्षेत्र-
अनुगामी कहते हैं। तथा जो स्वक्षेत्र व परक्षेत्र में यावज्जीवन व भवान्तर में साथ जावे

उसे उभयानुगामी कहते हैं। अननुगामी भी तीन प्रकार है-स्वक्षेत्राननुगामी, परक्षेत्राननुगामी और उभयाननुगामी। तहां जो स्वक्षेत्र में भी आयुपर्यन्त अथवा भवान्तर में साथ न जावे, उसे स्वक्षेत्राननुगामी कहते हैं। जो परक्षेत्र में और भवान्तर मैं साथ न जावे उसे परक्षेत्राननुगामी कहते हैं। तथा जो स्वक्षेत्र में आयु पर्यन्त अथवा भवान्तर में और परक्षेत्र में साथ न जावे, उसे उभयाननुगामी कहते हैं। ए तीन भेद अननुगामी के कहे। अब आगे क्षेत्र-काल अपेक्षा, अवधिज्ञान की अधिकता तथा हीनता रूप कथन करै हैं, सो सुनो। जो जीव अवधि तें क्षेत्र-अपेक्षा जितने क्षेत्र की जानै है सो काल-अपेक्षा थोरे काल की जानै है। ऐसे और भेद कहिए हैं—तहां जघन्य अवधि का धारी, क्षेत्र-अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र की जानैं, सोही जीव काल-अपेक्षा, आंवलि के असंख्यातवें भाग काल की जानैं, सो भी असंख्यात समय जानना। और अंगुल के संख्यातवें भाग क्षेत्र की जानैं, सोही जीव काल-अपेक्षा, आंवली के संख्यातवें भाग काल की जानैं। ए प्रथम भेद है॥ १ ॥ और दूसरे भेद मैं अंगुल-मात्र क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल-अपेक्षा, किञ्चित् नून आँवली—मात्र काल की जानैं॥ २॥ और तीसरे भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, सात-आठ अंगुल के क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल-अपेक्षा, सात—आठ आँवली काल की जानै ॥ ३ ॥ और चौथे भेद में क्षेत्र-अपेक्षा, एक हाथ क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल-अपेक्षा, अन्तर-मुहूर्त—काल की जानै है॥ ४ ॥ और पञ्चम भेद में क्षेत्र-अपेक्षा, जो जीव

एक कोस क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल-अपेक्षा, अन्तर मुहूर्त—काल की जानै॥ ५ ॥ और छठे भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, एक योजन क्षेत्र की जानै, सोही जीव काल-अपेक्षा, किञ्चित् नून मुहूर्त्त—काल की जानै॥ ६ ॥ और सातवें भेद में क्षेत्र-अपेक्षा, पचीस योजन की जानै। सो ही जीव काल-अपेक्षा, किञ्चित् नून एक दिन—काल की जानैं॥ ७ ॥ और आठवें भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा जो जीव भरत क्षेत्र प्रमाण, क्षेत्र की जानैं। सोही जीव काल-अपेक्षा, पञ्च दिन—काल की अगली-पिछली जानै है॥ ८ ॥ और जे जीव क्षेत्र-अपेक्षा, जम्बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र की जानै, सोही काल-अपेक्षा, किञ्चित नून एक मास की जानै है॥ ९ ॥ और दशवें भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, अढ़ाई द्वीप क्षेत्र की जानैं, सोही जीव काल-अपेक्षा, एक वर्ष—काल की जानै है॥ १० ॥ और ग्यारहवें भेद में क्षेत्र—अपेक्षा, कुण्डलगिर ग्यारहवें द्वीप पर्यन्त क्षेत्र की जानैं. सोही जीव काल-अपेक्षा, कछू घाटि आठ-सात वर्ष की जानै ॥ ११ ॥ और बारहवें भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, संख्यात द्वीप-समुद्र-क्षेत्र की जानैं, सोही जीव संख्यात वर्ष—काल की जानै है ॥ १२ ॥ और तेरहवें भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, असंख्यात योजन की जानैं, सो ही जीव काल-अपेक्षा, असङ्ख्यात वर्ष—काल की अगली-पिछली जानै है ॥ १३ ॥ और चौदहवें भेद मैं तेरहवेंते असङ्ख्यात गुणी क्षेत्र की जानैं, सोही जीव काल-अपेक्षा, तेरहवेंते असङ्ख्यात गुणे काल की अगली-पिछली जानै है ॥ १४ ॥ ऐसे चौदहवें तैं पन्द्रहवां ॥ १५ ॥ पन्द्रहवें तैं सोलहवां ॥ १६ ॥ सोलहवें तैं सत्तरहवाँ ॥ १७ ॥ सत्तरहवें तैं अठारहवां ॥ १८ ॥ अठारहवें ते उगणीसवां ॥१९॥

ए परस्पर क्षेत्र-काल अपेक्षा असङ्ख्यात-असङ्ख्यात गुणे वधते जानना। ऐसे करते अन्त के भेद मैं देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र, लोक प्रमाण है। और काल-अपेक्षा, एक समय घाटि एक पल्य काल की अगली-पिछली जानै है। ऐसे त्रिकाल सम्बन्धी क्षेत्र-काल का विषय-प्रमाण, जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट पर्यन्त, देशावधि का विषय कह्या है। सो अपने विषय-योग्य, क्षेत्र-काल मैं प्रवर्त्तते पुद्गल स्कन्धन की तथा सन्सारी जीवन की पर्याय पलटणि रूप क्रिया कूं जानै है। इस तीन सौ तेतालीस राजू लोक क्षेत्र मैं जीव-अजीव पर्याय जैसे-जैसे भई, आगे होयगी और हैं। सो तीन काल सम्बन्धी अपने विषय-प्रमाण क्षेत्र-काल की जानै, सो देशावधि कहिये। इति देशावधि। आगे परमावधि का संक्षेप कहिए है-परमावधिवाला यती, देशावधितैं असङ्ख्यात गुणी क्षेत्र-काल की जानै है। सो क्षेत्र-अपेक्षा तौ ऐसे-ऐसे असङ्ख्याते लोक-क्षेत्र की जानैं है। और काल की अपेक्षा, सागर की अगली-पिछली जानै है। इति परमावधि। आगे सर्वावधिका संक्षेप कथन कहिए है-सो परमावधितैं असङ्ख्यात गुणी क्षेत्र-काल की सर्वावधिधारक यति जानैं। इति सर्वावधि। ऐसे अवधिज्ञान के तीन भेद कहे। सो यह अवधि, दोय प्रकार है। एक भवप्रत्यय और एक गुण प्रत्यय। तहां गति-स्वभावतैं जन्म धरते अवधि होय, सो भवप्रत्यय कहिए। सो देव-नारकी कैं तथा तीर्थङ्कर कैं होय, सो भवप्रत्यय है। और जहां तप-संयमतैं तथा भगवान के दर्शनतैं, स्तुतितैं, परणामण की विशुद्धतातैं अवधिज्ञान होय, सो गुणप्रत्यय है। ऐसे सामान्य अवधिज्ञान का स्वरूप जानना।

इति अवधिज्ञान संक्षेप सम्पूर्णम् । आगे मनःपर्ययज्ञान का सामान्य भाव कहिए है—

गाथा—मण पज्जयणाणावरणी, खयोपसमञ्जस्स होइ सो जीवो ।
मण पज्जयक्खु पावई, दो भेयो होइ उज्जु विउलमई ॥ ४७ ॥

अर्थ—मनःपर्ययज्ञानावरणी ताका क्षयोपशम जा जीव कैं होय, सो मनःपर्यय ज्ञान पावै। सो ज्ञान ऋजुमति, विपुलमति भेदकरि दोय प्रकार है। भावार्थ—जिस जीव कै मनः पर्यय ज्ञानावरणी का क्षयोपशम होय है। ताके दोय प्रकार ऋजुमति और विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान होय है। सो इनका विषय कहिए है। तहां कुटिलता रहित—सरल मन, सरल वचन और सरल काय करि किये जो कार्य, नाना प्रकार विकल्प, तीन काल सम्बन्धी, तिनकूं जानै। सो ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान है। इति ऋजुमति मनःपर्यय। आगे विपुलमति मनःपर्यय का संक्षेप कहिए है। तहां सैनी के मन सरल, वचन सरल, काय सरल करि किए जो विकल्प, तिन सबकों जानै। और कुटिल मन, वचन कुटिल अरु काय कुटिलता करि किए जो विकल्प रूप कार्य, तिन सबकूं जानैं, सो विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान है। इति विपुलमति। तहां ऋजुमति तौ प्रतिपत्ति है सो होय भी, अरु जाता भी रहै। भये पीछे तें जाता रहै, सो प्रतिपत्ति कहिए। भावार्थ—जिस यतीश्वर कै ऋजुमति ज्ञान होय। अरु वह मुनीश्वर पर्याय छोड़ि, देवलोक में असंयमी उपजै, तौ यह ज्ञान पर-पर्याय में नाहीं जाय। उस मुनि की पर्याय ही मैं रह्या। देव भये जाता रहै, रहै नाहीं। तातें ऋजुमति, प्रतिपत्ति है। और जा

यतीश्वर कें विपुलमति ज्ञान होय, सो जाता नाहीं। इस ज्ञान सहित केवलज्ञान होय, सो ता केवलज्ञान में मिलिजाय है। तातें यह विपुलमति ज्ञान विशुद्ध है। चरमशरीरिन कें होय। ए ज्ञान भए, संसार-भ्रमण नाहीं होय है। ऐसा जानना। तहां मनःपर्ययज्ञानी का विषय, काल-अपेक्षा उत्कृष्ट असंख्यात काल समय की जानैं। और क्षेत्र-अपेक्षा, पैंतालीस लाख योजन-अढ़ाई द्वीप क्षेत्र की जानैं। विशेष एता जो मनुष्य लोक तौ गोल है। अरु मनःपर्यय ज्ञान का विषय चौकोर है। तातें मनुष्य लोक वारे च्यारूं कोएयां में तिष्ठते देव तथा तिर्यञ्च, तिनके मन-विकल्प की भी जानैं। ऐसे उत्कृष्ट मनःपर्यय ज्ञान का विषय कह्या। इति मनःपर्यय ज्ञान का संक्षेप वर्णन। आगे केवलज्ञान संक्षेप वर्णन—

गाथा—तिकाले तियलोये, खट दव्वं जहा य पएणत्ती।
जाणय केवलणाणय, जुगपदेकंकालम्हि विण खेदो ॥ ४८ ॥

अर्थ—तीन-काल और तीन-लोक विषैं द्रव्य जैसे-जैसे परणमैं, तिनकौं केवलज्ञानी निरखेद ऐके काल सबकूं युगपत जानैं है। भावार्थ—सर्व ज्ञानावरणी कर्म के क्षय उत्पन्न भया जो केवलज्ञान, सो क्षायिक ज्ञान है। सो याके होतें, अनन्त अलोकाकाश ताके मध्य-भाग तिष्ठता असंख्यात प्रदेशरूप लोकाकाश, ताविषै तीन लोक रचना षट् द्रव्य करि बनी है। ता विषैं त्रसनाड़ी है। ता विषैं देवादि च्यारि गति, अनन्तकाल की ध्रुव बनी हैं। तिन में संसारी जीव, अथिर पर्याय धारी उपजे हैं। और यह लोक, षट् द्रव्यन करि भर्या है।

सो ए षट् द्रव्य जैसे-जैसे परणमैं, तिन सर्व कूं केवलज्ञानी जानैं हैं। सो कहिए है। जीव-द्रव्य अनन्त है। सो अनन्ते जीव, समय—समय जैसे—जैसे राग-द्वेष भाव, क्रोध-मान-माया-लोभ भाव, हास्य-भय-शोकादि कषायन के अंश सहित ज्यौं—ज्यौं परणम्या, ताकूं केवलज्ञानी युगपत जानै हैं। एक—एक जीवने अनंतकाल संसार—भ्रमण करतैं, एक—एक पर्याय, च्यारि गति सम्बन्धी अनन्त—अनन्त धरी हैं। सो केवलज्ञानी जानैं है। इस जीव ने देव पर्याय अनन्तबार पाई, सो देवगति मैं नाना भोग-भोगते भया जो शुभाशुभ भावन का परणमण, ताकूं केवली जानैं हैं। अनन्तबार इस जीवनैं पाप-भावन तैं नर्क-पर्याय के दुख देखे, तिन मैं भए जो संक्लेश भाव, तिनकूं केवलज्ञान जानै है। पशु पर्याय—एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यंत, अनंतबार पाई। तिनमैं भए जो राग—द्वेष भाव, तिनकूं केवलज्ञान जानै है। संसार भ्रमतैं अनंतबार भया जो मनुष्य, तिन पर्यायन मैं भये जो शुभाशुभ भाव, तिन सबकौं केवलज्ञानी जानैं हैं। और च्यारि गति मैं भ्रमतैं परणम्या जो पुद्गल स्कन्ध, पर्यायन रूप अनेक रूप, तिन सबकौं केवलज्ञान जानैं है। और अवार वर्तमानकाल मैं च्यारि प्रकार देव, सर्व मनुष्य, पशु और नारकी च्यारि गति के जीव, सुख—दुख रूप प्रवर्तैं हैं। तिन सबकूं केवली जानैं हैं। और पुद्गल स्कन्ध जे—जे स्पर्श-रस-गंध-वर्ण होय परणम्या, ते—ते सर्व केवली जानैं हैं। और आगामी अनंतकाल विषैं एक-एक जीव अनंत देव पर्याय और धारेगा। ऐसे अनंते जीवन सम्बन्धी अनागत-अनन्त पर्यायन मैं समय—समय क्रोध-मानादि कषाय, राग-द्वेष भाव

रूप अनन्त जीव ज्यौं–ज्यौं परणमेगें, ते केवलज्ञान सर्व पहले ही जानै हैं। अनागत-अनंत पर्यायन मैं अनन्त-काल की देवन की पर्यायरूप पुद्गल-स्कन्ध, सो केवलज्ञान पहले ही जानैं है। ऐसे अतीत; अनागत और वर्तमान इन काल सम्बन्धी देवन के भाव-विकल्प सो, अरु इन देव पर्याय रूप परणम्या जो समय–समय अनन्त पुद्गल परमाणु सर्व कूं केवलज्ञानी युगपत–एक समय जानैं हैं। और ऐसे ही एक–एक जीव अतीत–अनागत काल विषैं अनन्तानन्ती मनुष्य-पर्याय नीच-ऊंच कुल, तहां नीच-कुल भीलादिक का, और अनन्ती पर्याय ऊंच-कुल क्षत्री-वैश्यादिक का, तिन मैं भये जो समय-समय इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग, पीड़ा–चिन्तवन, निदानबंधादि आर्तभाव, तथा च्यारि भेद रौद्र भाव। इनके निमित्त पाय जो क्रोध-मानादिक राग-द्वेष भावन रूप परणमन, तिन सर्व कूं केवलज्ञानी जानैं हैं। और इन अनन्त मनुष्य पर्यायन मैं परणम्या जो जा-जा रूप-स्पर्श-रस-गंधादिक पुद्गल पर्याय स्कन्ध रूप परमाणु का परणमण, तिन सबकौं केवली जानै हैं। और वर्तमान मैं जो सर्व संख्याते मनुष्य ऊंच-नीच कुल तिन मैं, जैसे-जैसे समय-समय क्रोधादिक कषाय राग-द्वेष भाव का पलटन, तिन सबकूं केवलज्ञानी जानैं हैं। और वर्तमान इनही मनुष्य पर्याय रूप परणम्या जो पुद्गल स्कन्ध, तिन सबकूं केवलज्ञानी जानै है। और अनन्त-अनागत काल विषैं अनन्ती-अनन्ती मनुष्य पर्याय एक-एक और धारैगा, तिनमैं होयगें जो-जो रागादिक भाव-विकल्प, ते-ते सर्व केवलज्ञानी जानैं हैं। और अनागत काल मैं

होयगी जो मनुष्य पर्याय, तिन रूप परणमैंगे जे पुद्गल स्कन्ध, तिन सबकूं केवलज्ञानी जानै हैं। ऐसे कहे जो अतीत-अनागत-वर्तमानकाल सम्बन्धी मनुष्य पर्यायन में अनेक भावन के परणमण, तिन सबकौं केवलज्ञानी युगपत जानैं है। और ऐसे ही एक-एक जीव अनन्त-अनन्त पर्याय नारकी धरि आया। अबार धरै है। आगामी और धारैगा। ऐसे तीन काल सम्बन्धी नारक पर्यायन में भये जो भाव-विकल्प, तिस सर्वकौं केवलज्ञानी जानैं हैं। और ऐसे अतीत-अनागत-वर्तमान काल विषैं एक-एक जीव, अनन्त तिर्यञ्च पर्याय जो एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति, इतरनिगोद, नित्यनिगोद, इनके सूक्ष्म-बादर रूप पर्याय, प्रत्येक वनस्पती, सप्रतिष्ठित, अप्रष्ठित इत्यादिक तथा अनेक भेद मई पशु पर्याय और श्वास के अठारहवें भाग आयु के धारी अलब्ध्यपर्याप्त जीव, सैनी-असैनी, एक अन्तर्मुहूर्त में छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण रूप पर्याय, तिन सर्व पर्यायन कौं एक-एक जीव अनन्त २ बार धरि आया, तिनमैं भये जो भाव-विकल्प, तिन सर्वकौं केवलज्ञानी जानैं हैं। और इन पर्याय रूप परणम्या जो अनन्तकाल तांई पुद्गल स्कंध, तिनकौं केवलज्ञानी जानैं हैं। ऐसे च्यारि गति के जीवन के परणाम और ज्ञाना-वरणादिक कर्मरूप भये जो अनन्ते जीवन के भावन का निमित्त पाय पुद्गल कर्म, तिनकौं केवल-ज्ञानी जानैं हैं। और पुद्गल अनेक रूप भए हीरा, माणिक, मोती, पन्ना, पारस, मिट्टी, खाक, पाषाण, सप्त धात्वादिक अनेक रूप परणमैं जो पुद्गल स्कंध, तिन सब कूं

केवलज्ञानी जानैं हैं। और तीन काल सम्बन्धी धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, आकाशद्रव्य इन अमूर्तीक द्रव्यन का षट्-गुणी हानि-वृद्धि कौं लिये परणमण, तिन परणमण-अंशन कूं केवलज्ञानी जानैं हैं। ऐसे अलोक में तिष्ठता लोक, ता लोक में तिष्ठते षट् द्रव्य के परणमण तीन काल सम्बन्धी, तिन सर्व कूं केवलज्ञान जानै हैं। इस केवलज्ञान के होते ही अनन्त चतुष्टय, संग ही प्रगट होय हैं। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख अरु अनन्त वीर्य। तहां ज्ञानावरणी कर्म के क्षय तैं, अनन्त केवलज्ञान होय। सर्व दर्शनावरणी का नाश भए, केवलदर्शन होय। मोहकर्म के क्षय होतैं, क्षायिक सम्यक् तथा यथाख्यात चारित्र रूप-निराकुल भाव रूप, अनन्त सुख होय। अन्तराय कर्म के सर्व अभाव तैं अनन्त-वीर्य होय। तिनमैं केवलज्ञान-केवलदर्शन होते, तीनलोक व तीनकाल सम्बन्धी पदार्थन का जानपना होय। और अनन्तवीर्य होतैं, अनन्त पदार्थ देखने की अनन्तशक्ति प्रगट होय है। जो अनन्तशक्ति नहीं होती, तौ अनंतपदार्थ के देखनें तैं खेद होता और मोह कर्म का क्षय होता नाहीं, पर पदार्थ मैं रागद्वेष होता, यथावत् सुखी नहीं होता। तातैं केवलज्ञान-दर्शन तैं तो मूर्ती-अमूर्ती पदार्थ जाने। और अनन्तवीर्य तैं सर्व पदार्थ के देखते, खेद नहीं भया। ऐसे अनन्त चतुष्टय सहित, केवलज्ञान का धारी सयोग केवली, अतीन्द्रिय सुख भोगता, तिष्ठै है। ऐसा सुख, संसार दशा में जो तीन काल सम्बन्धी अनन्ते अहमिन्द्र, देव, इन्द्र, सामानिक च्यारि प्रकार देव, अनन्ते चक्री, षट्खंडी, कामदेव, अनन्ते नारायण, प्रतिनारायण,

बलभद्र, अनन्ते ही मण्डलेश्वर, राजादिक अनेक और अतिशय सहित पुण्य के धारी पुरुष विद्याधरादिक इन सबनका इन्द्रिय-सुख तीन काल सम्बन्धी इकट्ठा कीजे, तौहू केवलज्ञान के अनन्तवें भाग नहीं होय, ऐसा सुख केवलज्ञान भए हो है। संसारी सुख तो ऐसा है। जैसे कोई पुर का राजा, काहू बैरी की बंदी पड़्या है। सो राज-धन-सम्पदा बहुत है। सो रुका है तौ भी खान-पान वस्त्र-आभूषण तो वांच्छित पहिरै है। और भोजन रस-मय करै है। सो इन्द्रिय-सुख में कमी नाहीं। परन्तु बन्दी में पड़ा है। सो महादुखी ही रहै है। और जो रुके नाहीं, स्वेच्छा-सुखसूं राज करै हैं, ते महासुखी हैं। तैसे ही देवादिक—संसारी जीव, मोह राजा की बन्दी में हैं। सो शुभ कर्म उदय तैं, इन्द्रिय जनित सुख तो है। परन्तु निर्बन्धन सुख नाहीं। और केवलज्ञानी का सुख स्वेच्छाचारी राजा की नांई, निर्बन्ध सुख है। तातें केवली का सुख अपार है। ऐसे केवलज्ञान सहित भगवान् कौं हमारा नमस्कार होऊ। इति केवलज्ञान का संक्षेप कथन। इति श्री सुदृष्टितरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञान वर्णनो नाम. बीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ २० ॥

आगे कहै हैं जो इस मनुष्य आयु के दिन सोई भई मोतिन की माला, ताकों भोरा जीव वृथा खोवै है। ताहि दृष्टान्त देय दिखावैं हैं—

गाथा—मुत्तादामं तग कज्जय, भंजय मूढ़ा णाण रहिया जे।
इम अखफलं सुह लुहदो, भंजय णरो आयु दिण मुत्त फलं॥ ४६ ॥

अर्थ—मोतीन की माला, धागा के निमित्त कोई मूढ़-अज्ञानी मनुष्य तोड़ि डारै। तैसेही इन्द्रिय-सुख का लोभी मनुष्य, आयुरूपी मोतीन की माल तजै है। भावार्थ—जैसे कोई मूर्ख, जीरण-गल्या वस्त्र फाटा देखि, ताके सीवने कौं तागा ढूंढै था। सो नहीं मिल्या, तब मनोहर मोतीन की माला थी। सो ताहि देख विचारी, जो इस वस्त्र सीवने कौं, तागा मेरी मोती की माल मैं है। तब तागा निमित्त, मूरख ने मोती की माला तोड़ि कैं, तागा लेय, जीरण वस्त्र सीया। सो मोती, तागा विना विखर गये। सो इसकी मूरखता तो देखो, कि जीर्ण वस्त्र के निमित्त मोती की माला वृथा करी। सो यह महामूर्ख जानना। तैसेही भोरे-संसारी जीव, इन्द्रियन के विनाशीक-आकुलता सहित सुख रूपी पुराणा वस्त्र, तामैं भी जारि-जारि फाटि रह्या, गल्या, जाके राखै लज्जा आवै। नाख (फैंक) देने योग्य मलीन, ताकौं बहुत दिन थिरीभूत राखवे कूं, अरु तिसतैं अपनी शोभा जानि कैं, आप ज्ञान की मूढ़ता तैं ऐसे ग्लानि-कारी इन्द्रिय-सुख रूप कपड़ा, ताके सीवने कौं, अपने मनुष्य आयुरूपी मोतिन का हार तोड़ि, ताके दिन-घड़ी रूप तागा काटि, विषय-सुख-कषायरूप वस्त्र कौं शाश्वता राखवे कौं सीवता भया। अरु मनुष्यायु रूपी मोतीन का हार, शोभा में नहीं समझा। सो आयुष के समय तेई भए मोती, तिनकौं वृथा खोवता भया। सो इस भूल की कहा कहिए। अब मनुष्य आयु बार-बार कहां है। विषयभोग तौ गति-गति में आवै हैं। आगे बहु भोगे हैं। तातें जो मनुष्य आयुरूपी मोतीन का हार तोड़ि, तिसके दिन रूपी तागा लेय कैं, विषय-कषाय रूपी वस्त्र

सींव राखि, सुख मानैं। ताके ज्ञान की कहांताई हीनता कहिये। जैसे कोई ज्ञान-दरिद्री भोरा जीव, सुख के निमित्त भ्रमण करते, मनुष्य पर्याय रूपी चिन्तामणि-मन वांच्छित सुख का देने हारा रतन पाया। ताकौं अल्पज्ञानी-भोरा जीव, विषय-कषायरूपी कोरे चने के लिये बेचै। तथा कोई जीव सुख के निमित्त. अनेक देशान्तर भ्रमता-भ्रमता कल्पवृक्ष पावै। ताके पास बालबुद्धि, हलाहल-जहर जांचै। तैसे मनुष्य पर्याय, शिव-सुख की दाता,ताकूं पाय हीन-ज्ञानी विषयभोग-कालकूट-हलाहल-जहर जांच हर्ष मानै। ऐसेही मनुष्य आयुरूपी हार तोड़ि-तोड़ि, ताका डोरा लेय विषय-कषाय मई वस्त्र का सींवना जानना। आगे अपनी भूल करि आप बंध्या है, सो ही दृष्टान्त द्वारा बतावैं हैं—

गाथा—सुक शालणी कप मुट्ठई, मुकरम्हि भमं एत्ति जह साणो।
इम चेदण भमभूलइ, अप्पं बंधइ रायदोसादो ॥ ५० ॥

अर्थ—जैसे नलनी का सुवा (तोता), कपि की मूठी, कांच के महल में दूसरा स्वान नाहीं। तैसे ही आत्मा भ्रम भूला, रागद्वेष तैं आप ही बंध्या है। भावार्थ—नलनी का सूवा (तोता), नलनी पै बैठि कैं आपही उलट्या है। सो पंजन तैं नलनी कौ दिढ़ि पकड़े है। सो ऊर्ध्व पांव, अधोकूं शरीर होय भूलै। काहू नैं पकरया नाहीं, बांध्या नाहीं। आपही ऐसा समझै है जो मैं इस नलनी कौं तजौंगा, तौ मेरे लगेगी। तथा उसे भ्रम भया, जो मोकौं काहू नै पकड़ि, उल्टा बांधि दिया है। ऐसे भ्रमतैं आप महादुखी भया बंध्या। भ्रमजाय, तौ काहू नै

पकस्या नाहीं, सहज ही नलनी तजै, नभ में उड़जाय और सुखी होय । तैसे आप अपनी भूलतैं परवस्तु मैं राग-द्वेष करि, कोऊ कौ भला मानै है, काहू कौं बुरा मानै है। ए मेरी है, ए मेरी नाहीं। ऐसे भ्रम करि आपही बंध्या है। भ्रम गए, सहजही सुखी होय है । और सुनो, जैसे बन्दर कौं पकड़नेवारे ने एक तुच्छ मुख का कलश बन में धस्या, ताके भीतर चने धरे । सो छोटे मुख के कलश मैं तैं चने लेने कौ बंदर ने लोभ के मारे दोऊ हाथ डारै। सो दोऊ मूठि भर काढ़े था। दोऊ मुट्ठी छोटे मुख तैं निकसती नाहीं। तब बंदर ने जानी, जो मेरे हाथ काहू नै पकरे हैं। ऐसे भ्रम होतें आप बन मैं उस घट मैं बंध्या पड़ा है। आपको बंध्या मानै है। सो याकौ काहू ने पकड़्या नाहीं, एही भ्रम बुद्धि के प्रसादतैं चने का लोभी होय, आपही बँधि रह्या है। आप कदाचित मुट्ठी-चने का ममत्व तजिकैं, चने नाखै। तौ सहजही स्वच्छंद होय, बन मैं विहार करै, सुखी होय। तैसेही आत्मा, परद्रव्यन तैं राग-द्वेष भाव करि, मोह के वशि, विषयभोग रूपी चने के लोभतैं, संसार-बन मैं पड़ा, कर्मबंध का करता होय, महादुख पावै है। विषयभोगरूपी चने तैं ममत्व भाव तजै, तौ सहजही सुख-संतोष के प्रसाद तैं सुखी होय। और जैसे कांच के महल-मन्दिर मैं स्वांन जाय पड़ा, सो चारों तरफ स्वांन ही स्वांन देखि, ऐसा भ्रम करता भया। जो ए बहुत स्वांन मेरे मारवे कौं आए हैं। ऐसा जांनि आप उन तैं युद्ध करने कूं गया। सो यह जैसे बोलै, तैसेही कांच के स्वांन बोलैं । ए युद्ध करै, तैसेही कांच के स्वांन युद्ध करैं। सो ए स्वांन महा भयवंत भया। जो मैं तौ एकला,

अरु यहां स्वांन बहुतहैं सो मोहि मारेंगे। ऐसे भ्रमतैं बड़ा दुखी है। सो कांच के मन्दिरमें कोई दूसरा स्वांन नाहीं। एही स्वांन अपना प्रतिबिम्ब कांचमैं देखि, भ्रमतैं दुखी होय है। तैसेही ये आत्मा भी भ्रम-भाव करि, परवस्तु कौं देखि रागद्वेष भाव करि, कर्मबंध का करता होय, दुख उपजावै है। ऐसे ये मूढ़ जीव, नलनी का तोता, घट में मूठी तैं बंध्या चने का लोभी बंदर, और कांच के मंदिर में धस्या स्वांन, अपनी भूलि तैं दुखी होय हैं। काहू कौं दोष नाहीं। तैसेही इनकी नाईं मोही-मिथ्या रस भींजत जीव, परवस्तु कूं अपनाय-रागीद्वेषी होय, संसार दुख का भोगी होय है। और जे सम्यग्दष्टी-सांची दृष्टी वारे हैं, तिनकैं भ्रम नाहीं। ए तवत्त्वज्ञानी, सांची दृढ़ सरधा का धारक है। याके श्रद्धान में परवस्तु में ममत्त्व नाहीं। तातें अपने पदस्थ योग्य कर्म बन्ध नाहीं करै है। और मिथ्यारस भींजे ते कर्मबंध करि जन्म-मरण बेलि, बधावै हैं। अनेक तन धरि-धरि तजि, अशुद्ध भावी जीव दुखी होय हैं। और शुद्धोपयोगी भ्रम रहित हैं, ते कर्मबंध रहित हैं, ऐसा जानना। आगे कहै हैं। जो शुद्धात्मा कैं एते दोष नाहीं—

गाथा—तसकर पय णिप वहणी, दुभखो लोय पाव गद पंचो।
दुठणरपसु यम णिंदो, ए तीयदहमय रहय सुद्धादा ॥ ५१ ॥

अर्थ—तसकर कहिये चोर, पय कहिए जल, णिप कहिए राजा, बहणी कहिए अग्नि, दुभखो कहिये दुर्भिक्ष, लोय कहिए लोक, पाव कहिए पाप, गद कहिए रोग, पंचो कहिए पञ्च,

दुठणरपशु कहिए दुष्ट नर-पशु, यम कहिए काल, णिंदो कहिए निंदा, एतीयदहभयरहयसुद्धादा कहिए इन तेरह भय करि रहित शुद्धात्मा होय है। भावार्थ—शुद्धात्मा कौं चोर का भय नाहीं। सो चोर के अनेक भेद हैं। एक धर्म-चोर, एक कर्म-चोर। सो ही कहिए है-जो धर्म स्थान जो देहरे (देवालय), तिन देहरेन की वस्तु चोरना, भगवान के छत्र, चमर, प्रतिबिम्ब, सिंहासन, भामण्डल, थारा, रकेबी, झारी, झालरि, मजीरा, घंटा, जाजम, चाँदनी, परदादि उपकर्ण वस्तुनकौं चोरै, सो धर्म-चोर कहिए। तथा शास्त्र-चोर, सो शास्त्रजी के वन्धन, पूठा का चोरना, सो धर्म-चोर है। तथा कपटाई करि, छल तैं धर्म सेवन करै, सो धर्म-चोर है। धर्म स्थान तैं कोऊ गृहस्थ की वस्तु चोरना, सो धर्म-चोर है। तथा कषाय के वशीभूत-प्रमादी होय, धर्म वासना रहित अपना हिरदै करकै, पीछे रुचि रहित किञ्चित् कोई धर्म अङ्ग का साधन, लोक के देखने कौं करै है। सो धर्म-चोर है। तथा धर्म की सेवा करि, धर्म का सेवक बाजि (कहलाकर), पुजाया-लोकमान्य भया। पीछे कोई पापकर्म के योगतैं धर्म रहित होय, उल्टा धर्म का द्वेषी होय। सो धर्म-चोर है। एतो धर्म-चोर के भेद कहे। और कर्म-चोर हैं सो इनके भी अनेक भेद हैं। मुख्य ये हैं-एक तन-चोर, एक धन-चोर और वचन-चोर। तहां जे कोई पराए बेटा-बेटी, पर-स्त्री की चोरी कर, परस्थान में जाय बेचना। तथा हस्ती, घोटक, गाय, महिषादिक पशुन की चोरी का करना। सो तो तन-चोर कहिए। और पराए घर विषैं ओड़ादेय (फोड़कर) चुराना। मन्दिरन पै छल-बल करि चढ़ि चोरना।

पराए धरे धन कौं आप जानि ले आवना, सो ए सर्व भेद धन-चोर के हैं। पराया दिया-धरा माल राखि लेना। जानता ही भोले राखना। इन आदिक अपने छल करि पराया धन चोरै, सो धन-चोर कहिए। और पर के छिपे गुप्त वचन होंय, ताकी कोई रहसि जानि, ताकौं प्रगट करना, सो वचन-चोर है। तथा मुखतैं असत्य का बोलना, सो वचन-चोर है। इत्यादिक ए कर्म-चोर हैं। ऐसे जे धर्म-चोर और कर्म-चोर, सो कर्म-चोरतैं अनन्तगुणा पाप धर्म-चोर का है। ऐसे कहे जो अनेक भेद चोर, सो ऐसे चोरन का भय, सन्सारी परिगृहीनकूं है। और अनन्तगुणों का धारी, अतीन्द्रिय सुख-धन के धारी परमात्माकूं, चोर का भय नाहीं ॥ १ ॥ और थोरी-दीर्घ मेघ की वर्षा का भय, तथा नदी-सरोवर-समुद्र-कूप-वापी आदि जल का भय, सन्सारीक तन-धारी जीवनकूं होय है। और शुद्धात्मा, अमूर्तीक, अनन्तसुख के धनीकौं, जल का भय भी नाहीं ॥ २ ॥ और राज भय-सो राज का भय चोरनकूं, परस्त्री-लम्पटन कूं होय, और अन्यायमार्गीनकूं, असत्य वचनीकूं, इन आदिक पाखण्डीनकूं राज का भय होय है। और निर्जरण, कर्म रहित, परमेश्वर, शुद्धात्माकूं, राज-भय नाहीं ॥ ३ ॥ और अग्नि का भय है सो काष्ठ, वस्त्र, तृण, सुवर्ण, चांदी, रतनादि, मनुष्य-पशून के पुद्गलीक शरीर इन आदिक धनधान्यादिक सर्व वस्तु पुद्गल-स्कन्ध है। तिनकूं अग्नि का भय है। तथा इन पुद्गल-स्कन्धन में जिस जीव का ममत्व भाव होय, तिस रागी कूं अग्नि का भय है। और अमूर्तीक, ज्ञानपिण्ड, शुद्धात्माकौं अग्नि का भय नाहीं ॥ ४ ॥ और अन्न ही है सहकारी जाका, ऐसा जो

पुद्गल शरीर का धारी, परिग्रही, बहु-कुटुम्बी, मोही, संसारी-जीव, दुर्भिक्ष होते कुटुम्ब रक्षा तथा अपने तन की रक्षा का करनहारा, ताकूं काल का भय हो है। क्यों? यह मोही परिग्रही तन-धारी, सो याकौं दुर्भिक्ष का भय होय है। और पुद्गल शरीर रहित और कुटुम्बादि जन रहित, वीतराग, मोह रहित, शुद्धात्मा कौं दुर्भिक्ष का भय नाहीं ॥ ५ ॥ और लौकिक का भय है। सो जे तस्कर होय, द्यूत के रमणहारे होंय, पल (मांस) भक्षी होय, मदिरा पायी होय, वेश्या घर गमनी होय, पर-जीवन का घाती होय, तथा परस्त्री भोगनहारे कौं इन सप्तव्यसन सहित, पापाचारी, अयोग्य पन्थ के चलनहारे जीवन कौं लौकिक का भय होय। तथा क्रोधी, मानी, दगावाज, महा लोभाचारी, पाखण्डी, ठग, अनाचारी, विश्वासघाती, स्वामी-द्रोही, मित्र-द्रोही, इन आदि अनेक कुमार्गीनकूं, लोक का भय होय है। और जगत-पूज्य, सर्व-वल्लभ कौं, लोकालोक-ज्ञाता सर्वज्ञ कौं, वीतराग, अमूर्तिक देव कौं, लोक का भय नाहीं ॥६॥ और सरागी, बहु कुटुम्बी, बहु आरम्भी, संसारी, रागद्वेष सहित, पापाचारी कूं पापका भय है। तिनकूं पाप दुखी करै है। और वीतरागी, जगत का पीर हर, पाप-पुण्य संसार-मार्ग तातैं रहित, कर्म-कालिमां वर्जित, शुद्धात्मा कूं पाप का भय नाहीं। इनकूं पाप, भय नाहीं उपजावै है॥ ७ ॥ और रोग-भय ताकौं होय जो शरीर आसरै रहनहारे संसारी जीव, मोही, तन स्थिति सदीव चाहनैहारा, पुद्गल धनधारी जीव, तिनकौं रोग का भय होय। और पुद्गलीक काय रहित, अमूर्ती, शुद्ध जीव कौं रोग-

भय नाहीं ॥ ८ ॥ और पंच-भय है सो अन्याय पंथधारी, पंच-मर्याद लोपनहारे कौं. पंचन का भय होय है । और जगतनाथ, लोक-पूज्यपदधारी कूं, जगत-मर्यादा का बतावनहारा तथा लोक-मर्यादा का चलावनहारा भगवान कूं, पञ्च-भय नाहीं ॥ ६ ॥ और दुष्ट मनुष्य का भय है। सो पर-जीवन तैं कोई जीव द्वेष राखे, ताकौं दुष्ट जीव का भय होय। और जगतनाथ, निर्दोष, वीतराग, जगतपूज्य, शुद्धात्मा कौं, दुष्ट मनुष्यन का भय नाहीं ॥ १० ॥ और दुष्ट पशून का भय है सो इन दुष्ट जीव पशु-हस्ती, सिंह, चीता, सुअर, स्वान, मार्जार, बन्दर, सर्प, बिच्छू आदिक दुष्ट जीव हैं। सो हस्ती आदि तौ दन्ती हैं। सिंहादिक नखी, विषी जो सर्पादिक, ए दन्ती-नखी-विषी इन सर्व दुष्ट-पशून का भय संसारी, सरागी, पुद्गल तन के धारी जीवन कौं, पाप उदय तैं होय है। और संसार दुख रहित, षट् काय का पीरहर, अमूर्ती भगवान् कूं, दुष्ट-पशून का भय नाहीं। इस भगवान् के नाम लेते ही, सुमरण करते ही, दुष्ट-पशु आदि के अनेक विघ्न नाश होंय। ऐसा जानना ॥ ११ ॥ और यम-भय है। सो देव, मनुष्य, नारक, पशु, पुद्गल तन के धारी, संसारी, कर्म बंध सहित, तिन जीवन कौं यम का भय है। और अष्टकर्म-शरीर रहित, अमूर्ती, जन्म-मरण रहित, शुद्धात्मा कूं यम का भय नाहीं ॥ १२ ॥ और निन्दा-भय है सो कुमार्गी, निर्लज्ज, अनेक दोष भरे, अमार्गी जीव, तिनकौं जगत् निन्दा का दुख होय। और जगत पूज्य, स्तुतियोग्य, जाके गुण गाए कल्याण होय, निर्दोष, शुद्ध परमात्मा कूं, निन्दा-भय नाहीं ॥ १३ ॥ ऐसे कहे जो

तेरह प्रकार भय, सो संसार विषैं ही हैं, शुद्धात्मा विषैं नाहीं। ऐसे भय रहित भगवान कूं बारम्बार नमस्कार होहु। ऐसे सामान्य शुद्धात्मा का भाव जानना। आगे कहे हैं जो धर्मके प्रसाद, अचेतन-आकाश द्रव्य भी भक्ति करें है। तो इन्द्र, चक्री आदिक चेतन भक्ति करैं, तो क्या आश्चर्य है। ऐसा कथन कहिये है—

गाथा—आदा धम्म पसायो, णभ अचेय णगधार कय भत्ती।
तो सुरणर खग पूजय, को विसमय धम्म सेय सिव कज्जे ॥ ५२ ॥

अर्थ—आदा धम्म पसायो कहिए, भो आत्मा! धर्म के प्रसाद तें। णभ अचेय कहिए, आकाश अचेतन है सो भी। णगधार कय भत्ती कहिए, रतन की धारा भक्ति करि करै। तो सुरणरखग पूजय कहिए, देव मनुष्य विद्याधर पूजें तो। को विसमय कहिए, कहा विस्मय है। धम्म सेय सिव कज्जे कहिए, मोक्ष-अर्थ धर्म सेवन करि। भावार्थ—भगवान की भक्ति आदि धर्म का फल ऐसा-जो ताके प्रसाद तें अचेतन आकाश तें भी रतन की धारा की वर्षा होय कैं, धर्मात्मा जीवन की महिमा प्रगट करें है। सो मानूं धर्मात्मा जीवन की सेवा ही करे है। इहां प्रश्न-आकाश तो जड़ है। सो भक्ति कैसें करे? रतनधारि तो देव करैं हैं। सो यहां आकाश की भक्ति कैसे भई? ताका समाधान-सो आकाश जड़ तो है। या के भक्ति-भाव कैसे होय, या वात तो प्रमाण है। सर्व जानैं हैं, चेतना नाहीं। परन्तु धर्म का महातम ऐसा है जो आकाश में तिष्टते पुद्गल-द्रव्य-स्कन्ध, सो रतनादिक रूप परणमि-

कैं, ताकी वर्षा होनै लगै है। तातैं हे भव्य, जीवन कूँ अतिशय बताने के निमित्त ऐसा कह्या है। जो आकाश भी धर्म-प्रसाद तैं, रतन-धारा वर्षाय, धर्मात्मा जीवन की सेवा करै, तौ चेतन द्रव्य जो देव, चक्री, खग, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, कामदेव, महामण्डलेश्वरादि राजा ए, और भवनपति, ज्योतिषपति, व्यन्तरदेव, कल्पवासी, कल्पातीतादि देव ए चेतन पदार्थ धर्मप्रसाद तैं, धर्मात्मा जीवन की, तथा धर्म की सेवा करैं, तौ अचरज कहा है। करैं ही करैं। ऐसा जानि भव्य जीवन कौं, धर्म की तथा धर्मी पुरुषन की सेवा-भक्ति करना योग्य है। इति। आगे कहै हैं जो ऐसे २ पुण्याधिकारी, पदस्थवान, पुरुषन के भोग-इन्द्रिय सुख हैं सो विनाशीक हैं। ऐसा दिखावैं हैं—

गाथा—रायधरा महरायो, अधमंडय मण्डेय महामण्डो।
अधचक्की महचक्की, खगसुर देवाण सयल सुह अथिरो॥ ५३॥

अर्थ—राजा, महाराजा, अर्ध मण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, अर्ध चक्री, सकल चक्री, खगेश्वर, देव, इन्द्र इन सर्व के सुख अथिर हैं। भावार्थ—जाके घर में कोटि ग्राम होय, सो राजा है। सो इस राजा के वांच्छित भोग॥ १॥ और जाकी ऐसे-ऐसे पांच सौ राजा सेवा करैं-चाकर होंय, सो अधिराज कहिये। ताके सुख देखते ही विनशै हैं॥२॥ और एक हजार राजा जाकी चाकरी करैं, सो महाराजा है। ताकी विभूति॥ ३॥ अरु दोय हजार राजा जाकी आज्ञा मानैं, सो अर्धमण्डलेश्वर कहिये। तिनकी सम्पदा॥ ४॥ और

चार हजार राजा जाके चरण-कमल की सेवा करें, सो मण्डलेश्वरनाथ कहिये। इनके भोग ॥ ५ ॥ आठ हजार राजा जाकी आज्ञा मानैं, सो महामण्डलेश्वर कहिये। ताकी सम्पदा ॥ ६ ॥ और जाकी सोलह हजार आर्यखण्ड के राजा सेवा करें, सो तीन खण्ड का अधिपति कहिए। ताके भोग ॥ ७ ॥ और बत्तीस हजार देश आर्यखण्ड के, तिनके बत्तीस हजार राजा जिसकी सेवा करें, सो चक्रवर्ती-षट्खण्डनाथ है। ताके पुण्य का महात्म कछु कहने में नहीं आवै। छयानवे हजार तौ देवांगना समानि, महासुन्दर, विनयवान् रानी हैं। नवनिधि व चौदह रतन, इनके दीए अनेक वांच्छित भोग। जाकी हजारों देव आज्ञा मानैं। चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ, इत्यादि का नाथ, मनुष्यन का इन्द्र। ताकी ए ऋद्धि ॥ ८ ॥ और महा मान शिखर पै चढ़्या, महा अतिशय सहित पुण्य का धारी, इत्यादिक पदस्थ का धारी पुरुष, अपनी सम्पदा कूं स्थिरी भूत जानि, सदीव सुखसागर में मगन रह्या चाहै था, सो इनकी सम्पदा देखतें-देखतें नाश कूं प्राप्त होय गई। जैसे बिजली अल्प उद्योत करि नाश कूं प्राप्त होय है, तैसे ही महा-चपल सम्पदा विनश गई। तथा और विद्याधर महा अतिशयवान् पुण्य के धारी, देवन समानि वांच्छित भोगन के निवासी। और च्यारि प्रकार के देव, अद्भुत रस के भोगी महा पराक्रमी। तथा देवन का नाथ जो इन्द्र, जाकी मन-अगोचर लक्ष्मी। असंख्यात देवीनिकी सराग चेष्टा करि मोहित होय रह्या है चित्त जाका। अनेक मन, वचन, काय के चाहे-इन्द्रिय भोग तिनका भोगी

देवेन्द्र । ऐसे कहे जो देव-मनुष्यन की सर्वोत्कृष्ट सुख-सम्पदा, सो सर्व विनाशीक, स्वप्न-सम भ्रम उपजावनहारी जानना । भो भव्य हो ! देखो । ऐसी महान् सुख-सम्पदा तौ थिर रही नाहीं, तो तेरी तुच्छ पुण्य करि उपारजी, अल्प सम्पदा-पराधीन, सो ए कैसे स्थिर रहेगी ? तातैं ऐसी जानि के तुच्छ स्थिति धारो, चपला-विनाशीक सम्पदा तैं ममत्व छोड़िकर, मोक्ष के सुख अविनाशीक तिनके निमित्त, धर्म का सेवन करना योग्य है । इति । आगे ऐसा बतावैं हैं । जो माता-पितादि सर्व जन अपने-अपने स्वार्थ के बंधन तैं बन्धे हैं—

गाथा—जणक पितामह जणणी, तिय सुत मित्तादि वन्ध पुत्तीए ।
सामी भिक्खिक दासो, ए सहु णिज्ज काज वंध बंधाणी ॥५४॥

अर्थ—जणक कहिए, पिता । पितामह कहिये, पिता का पिता । जणणी कहिये, माता । तिय कहिए, स्त्री । सुत कहिये, पुत्र । मित्तादि कहिए, मित्र । वंध कहिए, भाई । पुत्तीए कहिए, पुत्री । स्वामी कहिये, सरदार । भिक्खिक कहिए, मँगता । दासो कहिए, चाकर । ए सहु कहिए, ये सर्व ही । णिज्ज काज बन्ध वन्धाणी कहिए, अपने—अपने कार्य रूपी बन्धन करि बंधे हैं । भावार्थ—जातैं आप उपज्या सो अपना पिता है । सो पिता, पुत्र की बालापने में सेवा करै है । नानाप्रकार खान—पान शीत—उष्ण तैं रक्षा करै है । सो ऐसा विचारै है जो ए मेरा पुत्र है । यातैं मेरा नाम चलेगा । मेरी वृद्धपने में सेवा करेगा । इत्यादि स्वार्थ के बन्धन में ४३३

बन्ध्या, मोह–वश होय, नेह उपजाय, पुत्र की रक्षा करै है। और पीछे पुत्र कुपूत होय, अविनयवान् होय, तौ तातैं स्वारथ नहीं सधता जानि, मोह तजै। घर तैं निकास देय, मारि डालै, जुदा करै। बटाऊ (साझीदार) हूतैं, बुरा लागै। और पिता का पिता, पोते तैं मोह करै है। सो यह जानकर कि ए हमारे पुत्र का पुत्र है। सो मेरा नांती है। यह बड़ा होयगा, तब मेरी वृद्ध–अवस्था में सेवा करेगा। ऐसा स्वारथ के बन्धन तैं बन्ध्या, नांती जानि, बाबा रक्षा करै। और माता ने नव–मास उदर में रक्षा करा, जनम भए पीछे मोह के वश ये पुत्र की रक्षा करै है। सो भरी–राति में शीतकाल समय मल–मूत्र करै, तब आप तौ शीत–आले (गीले) में रहे, अरु पुत्र को सूखे में राखै है। सो ऐसा विचारै है जो बड़ा होय कमाय, मोकूं खुवाय सुखी करेगा। मेरी आज्ञा मानेगा। ऐसे स्वारथ के बंधन तैं बंधी माता, पुत्र की रक्षा करै है। और पति, नाना कष्ट पाय द्रव्य पैदा करै, सो लायकै स्त्री कूं देय। नानाप्रकार पंचेन्द्री जनित भोग–सामग्री मिलाय, स्त्रीकूं सुखी करै है। तातैं स्त्री ऐसा जानै है सो मेरे मनवांच्छित भोग का देनेहारा, एक भरतार है। ऐसै स्वारथ तैं बंधी स्त्री, भरतार की सेवा करै है। और कदाचित् भरतार मन्द–कुमाऊ होय, हीन–भागी होय, दरिद्री होय, अपने सुख का कारण नाहीं होय, तौ अपने स्वारथ रहित भरतार कौं तजै है। और पुत्र अपने–योग्य खान–पान, असवारी, वस्त्र के दाता माता–पिताकूं जानकै, पुत्र, माता–पिता की सेवा करै है। और ऐसा जाने है ये माता–पिता हमारा जतन करैं हैं।

ऐसे स्वारथ तैं बन्ध्या पुत्र, माता–पिता की सेवा करै है, आज्ञा मानै है। कदाचित्
अपना स्वारथ सधता न जानै, तो माता–पिता कूं तजै है। और मित्र है, सो स्नेह करै
है। और ऐसा विचार करै है। जो ये धनवान् है। हुकुमवान है। राज–पञ्चन में इसका
बड़ा चलन है। तातैं यातैं द्रव्य का सहाय, काम पड़ै होय है। तथा खान–पान भली वस्तु–
वस्त्रादि मिलै है तथा प्रयोजन पड़े, कष्ट में सहाय करै है। ऐसे स्वारथ के बन्धन तैं बन्ध्या
मित्र, स्नेह करै है। कदाचित् अपना पुण्य घटै, हुकम मिटै, धन घटै। तो मित्र अपना
प्रयोजन सधता न जानि, मित्रता तजै है। तातैं मित्र भी, स्वारथ के बन्धन तैं बन्ध्या,
स्नेह करै है। और बन्धु जो भाई हैं, सो अपना मनोरथ सधै, तवलूं सनेह-रूप रहैं।
प्रयोजन सधता नहीं जानि, जुदा होंय। पुत्री है सो अपना प्रयोजन सधै, तवलूं माता–
पितान की सेवा करै, उपकार मानै। और स्वामी की आज्ञा–प्रमाण सेवक चलै। जव-
लौं अनेक कारज घर के सुधरे, तवलूं स्वामी कहै, मेरा भला-सेवक है। और जव
आज्ञा न मानै, तौ दूर करै, चाकरी से छुड़ाय देय। तातैं स्वामी भी अपने स्वारथ के
बन्धन तैं बन्ध्या, सेवा करावै है। और भिक्षुक जो जाचक-मङ्गता, ताकी याचना भङ्ग न
होय, जबलौं अन्न-वस्त्र-धन पावै, तवलौं जश गावै। याचना भङ्ग भये, यश न गावै,
निन्दा करै। तातैं याचक भी स्वारथ के बन्धन तैं वन्ध्या है। और सेवक है सो स्वामी
के घरतैं अनेक अन्न, धन, ग्राम, हस्ती, घोटकादि सुख-सामग्री पावै है। तेते काल

सेवक भलीभांति स्वामी की सेवा करै है। और अपना प्रयोजन जब नहीं सधै, तब सेवा-चाकरी तजै। तातैं सेवक भी अपने स्वारथ के बन्धन तैं बन्ध्या है। इत्यादि कहे जे नाते, ते सब अपने २ स्वारथ के जानना। बिना स्वारथ संसार-प्रयोजनवारे, जीव तैं स्नेह करते नाहीं। ऐसा ही अनादि-स्वभाव जगत का जानना। और धर्मरस के पीवनहारे, त्यागी, ज्ञानी, जग तैं उदासीन, समता-भावी, दयाभण्डार, परमार्थ-मार्ग के वेत्ता, धर्मस्नेही, ये जीव जातैं स्नेह करैं, जाकी रक्षा करैं, सो स्वारथ रहित। तातैं धरमी पुरुषन कौं, कोई इन्द्रिय जनित स्वारथ न चाहिये। इनका स्वारथ, परमार्थ-निमित्त है। ऐसा संसार का स्वभाव ही स्वारथ मई जानि, विवेकी हैं तिनकौं अपने स्वारथ साधवे कौं, परमार्थ-मार्ग चलना योग्य है, जातैं परम्पराय मोक्ष होय है। आगे जिन-जिन पदार्थन का चपलता रूप सहज ही स्वभाव है, सो मिटता नाहीं। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—स्वांण पुच्छ अहि गमणो, दुठ चित्तो सहल वक णहपायो।
पीपल दल करि कण्णो, सठ मण अख सुह णाह ध्रुव भावो॥ ५५॥

याका अर्थ—स्वांण पुच्छ कहिये, कुत्ते की पूंछ। अहि गमणो कहिये, सांप की चाल। दुठ चित्तो कहिये, दुष्ट जीव का चित्त। सहल वक कहिये, सहज ही वांका है। णहपायो कहिये, इनके मिटावे का उपाय नाहीं। पीपल दल कहिये, पीपल का पात (पत्ता)। करि कण्णो कहिए, हाथी का कान। सठ मण कहिये, मूरख का मन। अख सुह कहिये, इन्द्रियों के

सुख। णाह ध्रुव भावो कहिये, ए ध्रुव भाव नाहीं। भावार्थ—कुत्ते की पूंछ, सहज ही बांको होय। ताके सीधी करवे कौं, कोऊ उपाय नाहीं। याका सहज ही स्वभाव वैसा है। और सर्प की चाल, स्वभाव ही तैं बांकी है। याभी कोऊ उपाय तैं सीधी होती नाहीं। तैसे ही दुष्ट-जीव-पापाचारीन का चित्त भी, सहज ही बांका-कुटिल है। दगाबाज़ी कर भखा है। याका भी सहज-स्वभाव है। या दुष्ट की बहुत सेवा करौ, तथा याका विनय करौ, याते नमो, तथा याकौं बहुत धन देऊ, इत्यादिक अनेक उपाय करौ, परन्तु कोई भी उपाय तैं इस अनाचारी का चित्त, सीधा नाहीं होय। यातें भो भव्य ! तू सर्व जगह प्रमाद—रूप रहियो। परन्तु दुष्ट-जीव के संग होतैं, गाफिल—प्रमाद रूप मत होईयो। भो भव्य ! काले सर्प तैं क्रीड़ा करते प्रमाद रूप रहै, तो मरण पावैं। सो एकही भव दुखी होय। परन्तु तूं या दुष्ट के स्नेह-सङ्ग पाय, गाफिल रहेगा, प्रमाद के वशीभूत होयगा, तो तेरा भव—भव बिगड़ जायगा। महा—दुर्गति में पड़ेगा। यहां प्रश्न-जो तुमने कह्या, दुष्ट के स्नेह तैं भव—भव दुख उपजै, सो सङ्ग कीए ही दुष्ट कैसे भव बिगाड़ेगा ? ताका समाधान-जो हे भव्य, तूं सुनि। याका उत्तर समझैं—श्रद्धान कीजे, तेरा बहुत भला होयगा। और ज्ञान बधवारी होयगी। भले—बुरे जीवन की परीक्षा का ज्ञान प्रगटैगा। तातैं भो धर्मी ! चित्त लगाय के सुनना। आप काहू तैं द्वेष करै, तो दूसरा भी आपतैं द्वेष करै। सो यह सब संसारी जीवन की रीति है। परन्तु भो भ्रात ! दुष्ट ताका नाम है, जो बिना—दोष परतैं द्वेष करै। याही

परीक्षाकरि तू दुष्ट कूं जानलेना । आपतो कोई प्रकार तें द्वेष-भाव नाहीं करे। और जे दुष्ट हैं ते पराया धन, हुकुम, वस्त्र, आभूषण, हस्ती, घोटक, रथ, पालकी आदि असवारी देख, विना प्रयोजन-सहज ही द्वेष-भाव करैं। लोक में काहू का बड़ा यश, गुणी-जीवन के मुख तैं सुनि, यह पापी वृथा ही द्वेष करे। तथा कोई को सुमारग लगता देखि, धर्म-सेवन करता देखि, द्वेष करे। कहै, ए बड़ा धर्मात्मा भया। हमारे आगे याके बड़े, अनेक पाप करते देखे थे। इत्यादिक परकों सुखी देख, आप निरंतर दुख करे। परकों रोग, शोक, चोट लागी देख, परकूं दुखी-दरिद्री देखि, आप राजी होय। सो दुष्ट जानना। सो या दुष्ट, जगत-निंद्य के सगतैं, भला-जीव निन्द्य होय, अपयश पावे, अनादर होय। ता अनादर तें, आत्मा दुखी होय है। तातैं दुष्ट का संग मनै कीया है। और जो तू कही, परभव में दुष्ट दुखदायी कैसे होय? सो भी तू चित्त देय सुनि। जब दुष्ट जनतैं प्रीति होय। तब वह पापाचारी, पाप-कार्यन में रंजायमान करावै है। यह विना कारण-सहज स्वभाव, धर्म तें द्वेषभाव करनहारा, दुराचारी, धर्म-भावना रहित, अनेक अभक्षादि भोजन करनहारा, याकौं कोई धरम-नाम भला लगता नाहीं। सो पुन्य तैं छुटाय, पाप-पंथ का प्रेरक होय है। जैसे बनै तैसे, अनेक जुगति देय कैं, हाँसि-कौतुकनमें, इन्द्रिय-जनित भोगन में लगाय, धर्म तैं भृष्ट करि, पाप-कार्यन में तन, मन, धन, वचन तैं अनेक प्रकार सहायक होय है। पाप करावै, स्नेही कूं दुर्बुद्धि

करि पापबन्ध कराय, परभव बिगाड़ै। तातैं अनेक दुख ए जीव पावै। ऐसा
जानना। तातैं भो भव्य, तूं याका संग-स्नेह, नरक-पशून के दुख का दाता ही जानना।
तातैं या दुष्ट-जीव का निमित्त सब प्रकार दुख-दाई जानि, तजना सुखदाई है। और कदाचित्
भो धर्मात्मा! तूं सरल बुद्धि है सो दया-भाव करि कभी ऐसा विचारैगा, जो मैं कोई नय-
दृष्टान्त. करि, याकों धर्म-विषैं लगाय, याका भला करूंगा। सो परोपकारी भव्य, तूं ऐसा
भ्रम तज देय। याका सुलटण महा असाध्य-नहीं होने जैसी वार्ता जानि। जो कुत्ते की
पूंछ की कुटिलाई मिटै-सूधी होय, तो इस दुष्ट की दुष्टता छूटि-धर्म रूप होय। तथा सर्प की
चाल वक्रता तजि, सरल होय, तो इस कुबुद्धि कौं धर्म-रुचि होय। तातैं जैसे नाग की चाल
अरु स्वान की पूंछ, इनकी वक्रता अनादि की, कोई उपाय तैं नहीं मिटै। तैसे ही दुष्ट-
स्वभाव, सहज ही अनाचार-रूप होय है। याके धर्म कदाचित् भी नहीं होय। तातैं ऐसा
जानि, दुष्ट का संग-स्नेह तजना योग्य है। और तन-धनादि सामग्री विनाशीक है।
सो इनतैं ममत्व-भाव तजना योग्य है। जैसे पीपल का पत्ता, चंचल है। तथा गज-कर्ण,
चपल है। तथा मूरख का मन, चपल है। तैसे ही हे भव्य, तूं ये जगत के इन्द्रिय-जनित
सुख, चंचल जानना। ए पीपल-पात, गज-कर्ण, मूरख का मन, सहज ही चपल है। तैसे
ही इन्द्रिय-जनित सुखन कूं सहज ही विनाशीक जानि, इन तैं ममत्व-भाव तजि, धर्म
विषैं लगना जोग्य है। तूं विवेकी धर्मार्थी है, तातैं तोकूं धर्म का उपदेश कहैं हैं। सो तूं

सुनि। जो धर्मार्थी हैं, तिनका चित्त तो धर्म के उपदेश सुनिनें में लगे है । और मूरख, धर्म वासना रहित प्राणी हैं, तिनका चित्त धर्मोंपदेश तें चंचल होय है, स्थिरी-भूत रहता नाहीं। यह अज्ञान, धर्म के स्वरूप में ममझता नाहीं । इस दुरात्मा का उपयोग, विकथा, लड़ाई, राज-कथा, धन-कथा, पर की निन्दा करना, इत्यादि पाप स्थानकन में तो निःप्रमाद होय, भले—प्रकार मन-वचन-काय की एकता सहित, या कुबुद्धि का चित्त लागे है। और धर्म-पन्थ-विसरे जीव कों, धर्मोंपदेश दीजिये । तब ये धर्म-दरिद्री और विकल्प विचारें, धर्मोपदेश नाहीं धारें । तथा धर्म सुनतें निद्रा आवे, सो शयन करे--ऊंघे । और कदाचित् जागे, तो दूसरे मनुष्यन तें, जो पासि तिष्ठ्या होय, तातें वार्त्ता करने लगे । सो आप तो पापी है ही। परन्तु समीप तिष्ठ्या जो जीव, ताकों वातों लगाय, वाका धर्म घाति करि, वाका परभव बिगाड़े । तो ऐसे जीव, धर्म सन्मुख कैसे होंय ? तातें कुटिल-चित्त धारी, मायाचारी, दुष्ट—जीवन कूं, धर्मोंपदेश लागता नाहीं । तातें जे जीव विवेकी हैं तिनकों धर्मोंपदेश में प्रमाद करि, चित्त चंचल राखना, योग्य नाहीं। आगे जिन—आज्ञा रहित जे अतत्त्व-श्रद्धानी महा-पण्डित भी होंय, तो ताके मुख का उपदेश सुनना जोग्य नाहीं । ऐसा कहे हैं—

गाथा—अहिसिरणग उकट्ठो, गह्यो पाणांत होय णेमायें ।
इव मिछि मुह उपदेसो, सधा कुगय देय भवमयणं ॥ ५६ ॥

याका अर्थ—'अहिसिरणग' कहिये, सर्प के शीस पै मणि रत्न है सो। 'उक्कट्ठो' कहिये, उत्कृष्ट है। 'गह्ये पाणांतहोय' कहिए, ता रतन कों ग्रहे प्राणन का नाश होय है। 'णेमाए' कहिये, निश्चय तैं। 'इवमिछिमुह उवदेसो' कहिये, तैसेही मिथ्यादृष्टी जीवन के मुख का उपदेश जानना। 'सधा कुगय देय भवमयणं' कहिये, इनका श्रद्धान कीए कुगति के अनेक जनम-मरण देय है। भावार्थ—नाग के मस्तक पर मणि है, सो महा उत्कृष्ट है। अनेक गुण सहित है। सो ताका लोभ कीये, कोई उस रतन को लीया चाहै। तो लोभ भी नहीं सधै, अरु मरण को पावै। क्यों, जो रतन तो बहुत अच्छा है परन्तु महा विष-हलाहल भखा, चपल-बुद्धि, महा क्रोध-कषाय का धारी भुजंग, काल-रूप, ताके पासि है। सो विष का भखा सर्प, ताके शिर तैं मणि-रतन का लेना, सो ही मरण का कारण जान। सो हे भव्य! तैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्म ताका सेवनहारा, जिन-भाषित-धर्म तैं विमुख, महा क्रोध-मानादि कषायरूपी जहर तैं भखा मिथ्यादृष्टी, सो ही भया सर्प, ताके पास भली-विद्या रतन है। परन्तु कदाचित् याके मुख तैं उपदेशरूपी रतन को ग्रह्या चाहै, तथा भला जानि श्रद्धान करै, तो कुगति जे नरक-पशू-गति, सो तिन के जनम-मरण के तीव्र दुख कूं प्राप्त होय है। यहां प्रश्न-जो तुमने कह्या सो सत्य, इसकी मिथ्या-दृष्टि तो हम भी जानैं हैं। परन्तु हमकूं शास्त्र वांचने का ज्ञान नाहीं। अरु जिनवाणी सुनवे की बड़ी अभिलाषा है। तातें यद्यपि इस मिथ्यादृष्टी कूं शास्त्र का विशेष ज्ञान नाहीं है। परन्तु अनेक संस्कृत, प्राकृत, छंद, काव्य, गाथा की वाचनकला

में प्रवीण है। वाचनकला भली है, अच्छे स्वर तें कहै है। अर्थ भी सर्व खोल देय है। कंठ अच्छा है। सो हम याके पास जिन आम्नाय के शास्त्र वचाय, ताके अर्थ का ग्रहण करि, धर्म-ध्यान में काल गमाय, पुण्य का संचय करेंगे। या में कहा दोष है? ताका समाधान-जो हे धर्मानुरागी, तू भी सुनि। ए मिथ्यात्व-मूरति, क्रोध-मान-माया-लोभ का पोषणहारा, दश वचन जिन-वचन अनुसारि कहेगा, तो तिनमें भी दोय वचन मिथ्यात्व पोषक कह जायगा। सो तुम कूं विशेषज्ञान तो है नाहीं। जो ताका निर्धार करोगे। सो सामान्य ज्ञान के जोगतें, तुम मिथ्या कूं भला जानि, श्रद्धान करोगे। अरु मिथ्यावचन श्रद्धान भये तुम्हारा धर्म-रतन शुद्ध-श्रद्धान, ताका अभाव होयगा। संसार-भ्रमण होयगा। च्यारि गति के दुख, जनम-मरण के भोगवोगे। तातैं मिथ्याती के मुख का उपदेश योग्य नाहीं। और जो जिन-भाषित तत्त्वन का वेत्ता होय। सुदेव-वीतराग, गुरु-नगन-वीतराग, धर्म-दयामई ऐसे देव-गुरु-धर्म का दृढ़ श्रद्धान होय। अरु जाकों वाचनकला अल्प होय, तथा ज्ञान जाकें सामान्य भी होय, तो ताके मुख का धर्मोपदेश तो सुखदाई है। परन्तु मिथ्यादृष्टी अतत्व-श्रद्धानी का धर्मोपदेश भला नाहीं। जैसे कोई दोय पुरुष परदेश-ग्रामान्तर गए। सो तिन में एक तो शुभाचारी है व एक कु-आचारी-भोरा है। सो दोऊ ही रसोई नहीं बना जानैं। जब भोजन की भूख लागी। तब परस्पर वतलावते भए। जो हे भाई! भूख लागी, कहा कीजिये? पैसे तो बहुत हैं पर रसोई करना नहीं आवे। तब वह भोरा-जीव, जो आचार में नहीं समझै था। सो बोल्या।

हे भाई! भूख लागी है तो इस भठियारी के घर, तुरन्त का कीया मनवांच्छित स्वाद का देनेहारा भोजन ताजा है। सो या माँगे दाम देय, भोजन करो। तब दूसरे आचारी ने कह्या। भो भाई, भठियारी के घर का भोजन भला है, अनेक रसमय स्वाद सहित है तो कहा भया। परन्तु आचार रहित है। तातें अयोग्य है। और जाति के सुनैं तो जाति तैं निषेधैं। पाँति तैं उठाय देंय। अभक्ष्य के योग तैं परभव में नरकादि दुख होंय। तातैं हम तो अपने हाथ तैं, अथवा अपना जाति-भाई होयगा, ताके हाथ की कच्ची-पक्की-नीरस खाय, चारि दिन परदेश के काटि नाखैंगे। और मरण कबूल है, परन्तु भठियारी की रोटी नहीं खांयगे। ऐसा भठियारी का भला-भोजन तजि, अपने जाति-भाई की करी कच्ची-पक्की, रूखी-सूखी, अङ्गीकार करि, अपना धर्म राख्या। और जे अज्ञानी आचार रहित होंय, भूख मेटवे कूं स्वाद-लम्पटी होंय, ते भठियारी की रोटी खाय हैं। परन्तु आगे कूं जाति में गये, याका अनाचार सुन्या जायगा, तब जाति से निकास्या जायगा। पर-भव दुर्गति में पड़ेगा। तैसे ही भठियारी के भोजन सदृश, मिथ्याती का उपदेश जानि, सम्यग्दृष्टी-दृढ़ श्रद्धानी कूं, तजना जोग्य है। और कोई भोरे ऐसा कहैं—जो शास्त्र तो जिन आम्नाय के हैं। सो कोई ही होऊ, वचवाय के अर्थ समझ लेंयगे। ते भोरे, श्रद्धान रहित, शिथिल परणामी, नामचार-धर्मी, जिन—धर्म का सेवन करि परभव सुख चाहैं हैं। सो ये शिथिल परणामी, अवार भठियारी की सी रोटी खाय, सुखी हुए हैं। परन्तु परभव में तो जिन आज्ञा-

प्रमाण दृढ़ श्रद्धान का फल होय है। सो या कूं परभव में तो कुगति-दुख होंयगे। तातैं हे भव्य, तूं धर्मफल का लोभी है। अरु मोक्ष मारग का अभिलाषी है तो मिथ्यादृष्टी के मुख का उपदेश तोकूं श्रोत्र द्वारे भला, सुर व भला-कण्ठ के जोग तैं अच्छा भी लगता होय, तो भी सर्प की मणिवत्, भठियारी के भोजनवत्, तजना जोग्य है। ऐसा जानना। और केतेक भोरे-संसारी चतुर जीव, ऐसा श्रद्धान करैं हैं। जो मिथ्याती है तो वह है, अपने कूं कहा ? अपने कूं तो वचवाय लेना। और एक-दोय वचन कोई मिथ्यात रूप खोटे कह गया होय, तो वह जाने। वह बलवान् है। सो जिन भाषित अनेक वचनों में कोई दोय वचन अतत्वरूप सरधे गये, तो कहा होय है ? ताका समाधान-जो हे भव्य, ऐसा विचार तो महादुखदायी जानना। जैसे भला षट्रस सहित पुष्टि का करणहारा भोजन बनाया, और कदाचित् ऐसे उत्कृष्ट भोजन में थोड़ासा हलाहल-विष डाल दिया होय, तो उस ही भले भोजन कों खाए, मरण होय। तैसे ही जिन-वचन स्वर्ग--मोक्ष फल के दाता हैं। तिनके सुनैं जीव का कल्याण होय, समभाव बँधै। ऐसे वचन कों उपदेश में कोई पापी आत्मा, कषायरूपी हलाहल-जहर नाखि कैं कथन करै। तो श्रोतान कों दुखदाता होय। ऐसा जानि, मिथ्याती बहुत-ज्ञानी होय, और आप भोरा होय, तो अपने मुख तैं पंच-परमेष्ठी के नाम का जाप करना, परन्तु मिथ्याती के मुख तैं उपदेश नहीं धारना। आगे सर्प हू तैं दुष्ट-जीवन कों विशेष बतावैं हैं—

गाथा—खल अहि कूर सुहावो, तिणमहि खल अति कूरता होई ॥
अहिमन्तर उवचारो, दुठ उवचारोयलोयतियदुलहो ॥ ५७ ॥

याका अर्थ—खल कहिये, दुष्ट। अहि कहिए, सर्प। कूरसुहावो कहिए, इनका क्रूर स्वभाव है। तिणमहि खल अति कूरता होई कहिये, तिन में खल की क्रूरता बड़ी है। अहिमन्तर उवचारो कहिए, सर्प का उपचार तो मंत्र है। दुठ उवचारोयलोयतिय दुलहो कहिये, दुष्ट का उपचार तीन-लोक में दुर्लभ है। भावार्थ---जो दुष्ट हैं सो पर कौं धर्म-कर्म कार्यन में निराकुल-सुखी देख, विना प्रयोजन दुखी होय हैं। ऐसा जो दुष्ट, सो पर कौं दुखी देखि आप हर्ष मानता होय। सो एक तौ यह। और दूसरा सर्प। ए दोऊ महा क्रूर स्वभावी हैं। परन्तु इनमें दुष्ट-जन की क्रूरता विशेष जानना। काहे तैं, सो कहिये हैं--जो महा विष का भरया काल--रूप सर्प, ताके खाये नाहीं बचै। कर्मजोग तैं बचै, नाहीं तो मरै ही है। ऐसे भयानक सर्प की पूंछ तैं पाँव लागै, तो यह सर्प काटै। सो याका विष दूर करवे का अनेक मन्त्रादिक इलाज है। परन्तु बिना ही कारण, द्वेष रूपी विषका भरया दुष्टात्मा, याकी क्रूरता मेटै कौं, कोई तीन लोक विषैं उपाय दीखता नाहीं। तातैं भो भव्य! सर्प की क्रूरता तैं, इस दुष्ट की क्रूरता अधिक जानना। तातैं अपने विवेक-बल तैं ऐसे दुष्टन को परख कैं, इनके सङ्ग तैं बचना बहुत सुखकारी है। जो कुसंगति तैं बचि, सत्संग मिलाय, अपना भला करना है, सो मनुष्य पर्याय के विवेक का, ये ही उत्तम

फल है। आगे सज्जन-दुर्जन का स्वभाव बताईये है—

गाथा—मत्तक जौंक पणंगा, दुठादि चतुक होय दुखदायो।
ईख दंड कणक सुअगरा, सयणादि चतुक होय सुहगेयो ॥ ५८॥

याका अर्थ—मत्तक कहिए, माखी। जौंक कहिये, जल-जौंक। पणंगा कहिये, सर्प। दुठादि चतुक होय दुख दायो कहिये, दुष्टजन को आदि लेय च्यारौं दुखदाई हैं। ईख दण्ड कहिये, सांटा (गन्ना)। कणक कहिये, सोना। सुअगरा कहिये, शुभ अगर-चंदन। सयणादि चतुक होय सुहगेयो कहिए, सज्जन पुरुष को आदि च्यारौं सुखदाई जानना। भावार्थ—मार्खी, जौंक, सर्प अरु दुष्ट-नर ए च्यारि परजीवन कौं दुखदाई कहे। सो ही कहिये हैं—जो माखी, पराये भोजन-जल में पतन होय; मरण करि पीछे अन्न-जल लेने वाले कूं दुखी करै। सो देखो, इस माखी की दुष्टता। जो पहिले तो आप मरि, पीछे और कूं दुखी करे। और जल की जौंक का ऐसा ही सहज स्वभाव है। जो दूध का भरा आँचल पर लगावैं तो दूध कूं तजि, लोहू कूं अङ्गीकार करै है। सर्प का ऐसा स्वभाव है जो ताकौं दुग्ध पिवाइये, तो जहर होय। सो प्यावनेवाला बहुत दिन पर्यन्त सर्प को दुग्ध प्याय पुष्ट करै। परन्तु कदाचित् प्यावनेहारा गाफिल रहेगा, तो ताही कूं खायगा। और ऐसे ही दुष्ट-प्राणी पै अनेक उपकार करि, ताकी रक्षा करि, पालि, पुष्ट करो। परन्तु यह दुष्ट-जन, सर्व उपकार भूलि कैं उल्टा उपकार-करता तैं द्वेष-भाव ही करै है। यह अपने स्वभाव ताकौं न तजै।

जैसे माखी आप मरकर, परकौं खेद उपजावै। ऐसे ही दुष्ट-जन आप मरकर, औरकौं दुख उपजावैं। सो ही कहिये है--जैसे कोऊ दुष्ट-अज्ञानी, काहू तैं कषाय-भाव करि विचारता भया, जो याके घर में धन बहुत है। सो मैं याके शिर कूप-बावड़ी-नदी विषैं, डूबि मरौं। तथा विष-खाय मरौं, तथा छुरी-कटारी खाय मरौं, तौ राज्य याका सर्व-धन खोंसि लेय-लूटि लेय। पंच याकौं, जाति तैं निकासैं। तब याका जगत् में मानभंग होय, महा-दुखी होय। सो देखो, माखी-समान दुष्ट का ज्ञान, जो आप मर करके पर कौं दुखी कीया चाहै। सो दुष्ट तो माखी समान जानि। और कोई दुष्ट जौंक के समानि चित्तके धारी होय हैं। जैसे जौंक, गुण जो दुग्ध, ताहि तजि, औगुण जो लोहू, ताकूं ग्रहै है। तैसे कोई दुष्टन पै, चाहै जेता उपकार करौ। वह सर्व कूं भूलि, पीछे औगुण ही ग्रहण करि, उल्टा द्वेष-भाव ही स्वीकार करै है। जैसे श्वान कूं, कोई चाहै जैसा उपकार करौ। भोजन देय, अनेक आभूषण पहिरावो। तथा पालकी में बैठावो। चाहै-जैसा लाड़ करौ। परन्तु यह अज्ञानी श्वान, जब हाथ तैं छूटेगा, तब घूरे में ही जाय और कुत्तेन में जाय तिष्ठैगा। और भले आभूषण, पालकी के गुण नाहीं विचारै है। तैसे दुष्ट भी कभी किए उपकार रूपी आभूषण, तिन सबको भूलि आप सरीखे दुष्ट-नीच पुरुषन का संग करि, दुख ही उपजावैगा। तथा सर्प कूं बहुत काल ताईं दूध प्याय, पुष्ट करि, अनेक प्रकार प्रतिपालना करौ। परन्तु इस सर्प की रक्षा करन-हारा कदाचित् प्रमाद सहित होय, सर्प कूं अपना पाल्या जानि, वातैं गाफिल रहेगा, तो यह

पापी विष का भख्या सर्प, याकौं खायगा। पालनहारे का मारनहारा होयगा। याकैं ऐसा विचार नाहीं, जो याने तौ मोहि दुग्ध प्याय पाल्या है। यह पापी अपना स्वभाव नाहीं तजै। तैसे ही दुष्ट जीव पर अनेक उपकार करौ। परन्तु जाका नाम दुष्ट है, सो अपना स्वभाव नाहीं तजेगा। यह उपकारी का द्वेषी ही होयगा। ऐसे कहे जो माखी, जौंक, सर्प, दुष्ट-जन, ये चारि सब कूं दुखदाई जानना। और सांठे (गन्ने) कूं जेता पेलोगे, ज्यों २ चिमीटोगे, तो भी त्यों २ मिष्टता ही देयगा। और कनक कूं जेता अग्नि तपाओगे-जारोगे, तेता ही नरम होय, निरमल-निर्दोष होयगा। तैसे भला शिष्य-विद्यार्थी, लौकीक गुरु जो विद्या पढ़ायवेवारा, ताकी मार खाय, उपकार माने। ऐसा विचारै, जो यह शिक्षा-दायक गुरु, मो पै ऐसा उपकार करै है। जो अपने परणाम संक्लेश करि, मोकों उत्तम धन जो विद्या, देय है। तातैं यह धन्य है। ऐसा जानि लौकीक गुरु तैं भला-शिष्य, प्रसन्न ही होय है। सो ये शिष्य, कनक समानि जानना। और अगर-चन्दन ताकौं जेता छेदो, तेती ही सुगन्ध देय है। जेता घिसो, तोड़ो, जालो, पर चन्दन उत्तम है सो त्यों-त्यों भली सुगंधि देय है। तैसे ही सज्जन पुरुषन कौं भी कोई पापी दुर्वचनादि से उपद्रव करै, दुख देय, तो धर्मातमा-पुरुष द्वेष नाहीं करैं। जैसे राजा श्रेणिक का पुत्र-वारिषेण, महा धर्मातमा, सज्जन-स्वभावी, सो ए राजपुत्र पर्व के दिन उपवास करि, रात्रि-समय मसान-भूमि में, सर्व जीवन तैं क्षमाभाव किए, कायोत्सर्ग-मेरु की नाईं, धीर-चित्त किए, धर्मध्यान रूप तिष्ठै

था। सो चोर नै भयतैं चोरी का हार, इनके पासि डारि गया। सो चोर तो भाग गया। अरु पीछे कुतवाल आया। सो हार देख्या व राजपुत्र देख्या। सो याने जानी, ये ही चोर है। सो बिना समझै, कुतवाल ने राजा तैं कही। हे नाथ! वारिषेण ने चोरी करी। तब राजा श्रेणिक भी न्याय मारग के वश, कछु न विचारता भया। राजा नै मारने की आज्ञा दई। तब कुतवाल मसान में जाय, वारिषेण पै मारिवे कूं खड्ग चलाया। तब कुमार के पुण्य-प्रभाव तैं शस्त्र था, सो फूल-माला भई। देवों ने आय सहाय किया। जब ये अतिशय ऐसा हुआ। तब सुनि कैं राजा श्रेणिक, पुत्र पै गया। क्षमा कराय कही, पुत्र घर चालो। तब वारिषेण ने कही, हमारा सबतैं क्षमा भाव है। हमारे प्रतिज्ञा थी कि उपद्रव मिटै, दीक्षा का शरण है। सो अब उपसर्ग गया, तब दीक्षा लई। कोई राजा तैं व कुतवाल तैं सुबुद्धि-कुमार ने द्वेष-भाव नाहीं कीया। सो सज्जन पुरुषन का सहज ही ऐसा स्वभाव है जो परकी अज्ञान चेष्टा नहीं देखैं, अपने सज्जन भाव ही की रक्षा करैं। तातैं ईख-दण्ड, कनक, अगर-चंदन और सज्जन-पुरुष ये च्यार पदार्थ सब जीवन कूं सुखदाई हैं। ऐसा जानना। तातैं जे विवेकी हैं तिनकूं क्रूरता तजि, सज्जनता अङ्गीकार करना जोग्य है। इति श्रीसुदृष्टि-तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हेय-उपादेय स्वरूप वर्णनो नाम, इकईसवां पर्व सम्पूर्ण भया॥ २१ ॥

आगे ऐसा कहैं हैं जो मूरख को धर्मोपदेश कार्यकारी नाहीं—

गाथा—अन्धपैदीपणकज्ञो, वधरोरागस्स हीजतियसंगो।

पतिगतनारिसिंगारो, जोसठयासेयधम्म विणकज्जो ॥ ५६ ॥

अर्थ—अन्धे पै दीपक है, सो कार्यकारी नाहीं। बहरे पर राग (गाना), कार्यकारी नाहीं। अरु हीजरे (नपुंसक) कों स्त्री का संग वृथा है। पति रहित स्त्री कूं, शृङ्गार कार्यकारी नाहीं। तैसे ही मूरखन कूं धर्म की कथा, कार्यकारी नहीं। भावार्थ—अन्धे पै पञ्च-वरन रतन के प्रकाश कार्यकारी नाहीं। तथा अनेक रङ्ग-विरङ्ग, स्वर्ण व रतनन के चित्राम शुभाकार, अन्धे पै वृथा हैं। तथा अनेक दीपकन की माला जो दीपमाला, सो भी प्रकाश अन्धै पै वृथा है। तैसै ही अज्ञानी-मूरख पै, धर्मोपदेश-धर्म कथा वृथा है। और बहरै पै अनेक सुस्वर कंठ सहित, मधुर स्वरको लीए अनेक राग का गावना। सुन्दर वीणा, बांसुरी बाजादि अनेक वादित्रन के सुर। ये सब गाना-बजावना बहरे पै वृथा है। तैसे ही मूरख के पासि धर्म-कथा वृथा है। और नपुन्सक के पास, सुन्दर स्त्री का मिलाप वृथा है। तैसे ही मूर्ख पै, धर्म-कथा करना वृथा है। और पति बिना जो विधवा स्त्री, सो शृंगार करि कौन कौं दिखावे? भरतार तौ है नाहीं। और पर-पुरुष कैं अपना सिंगार दिखावे, तौ कुशील का दोष लागै। तातैं स्त्री का सिंगार भरतार के आश्रय ही, उसे शोभायमान करै है। भरतार बिना विधवा-स्त्री का अनेक शृंगार वृथा है। तैसे ही मूरख-पासि धर्म-कथा वृथा है। कैसा है मूरख, जो ज्ञान-नेत्र रहित, अन्ध समानि है। ये जिन वचन, परभव सुख देनेहारे, तिनके सुनने कूं बधरे समानि, कुकथा का अभिलाषी, क्रोधाग्नि करि भस्म भया है हृदय जाका, अरु

तूने प्रश्न कीया, सो प्रमाण है। जो उपदेश है सो भोरे कूं ही है। परन्तु मूरख- भोरे दोय प्रकार हैं। एक स्वभाव ही तैं, उपज्या तब तैं कछू समझता नाहीं। ऐसा भोरा, पुण्य-पाप में समझता नाहीं। काहू के धर्म-भाव तैं द्वेष नाहीं। आगे कबहूँ धर्म का उपदेश मिल्या नाहीं। ऐसे भोरे जीवन कूं तौ क्रोध-मानादि कषाय भी दीर्घ अंश सहित नाहीं। अनादि सहज (स्वभाव) की मूर्खता लिए है। ऐसे भोरे जीव, सरल भाव सहित कौं तो जिन-आज्ञा में धर्मोपदेश कह्या है। ऐसा भोरा, उपदेश जोग्य है। और ये जीव धर्मोपदेश स्वीकार करि, अपना भला भी करैं हैं। तातैं ये उपदेश-योग्य हैं। और एक मूरख जानता-पूछता ही क्रोध, मान, माया, लोभ के वशीभूत होय; धर्म का भला उपदेश नाहीं अङ्गीकार करै है। ऐसे कूं धर्मोपदेश नाहीं। काहे तैं, सो कहिये है। जो कोई धर्मी जीव तैं प्रथम तो स्नेह था। सो वाके निमित्त पाय, धर्म का सेवन विषैं लगा रह्या-धर्म सेवन कीया कर्‍या। और जब उस धर्मात्मा तैं कोई कारण पाय स्नेह टूटि गया, तब यानैं उस धर्मात्मा तैं द्वेष-भाव के जोग तैं, व्यसनासक्त होय-धर्म सेवन तजि दिया। और मूरख का संग पाय, कुमार्गी भया। अब याकूं धर्मोपदेश कठिन होय गया। अब याके कठोर हृदय विषैं, कोमल वचन परै नाहीं। तब और कोई पापीजन, कोई धर्मात्मा का द्वेषी था, सो यापै जाय अनेक सेवा-चाकरी-खुशामद करि, ताकौं मित्र समानि करि, पीछे वातैं कही। जो ये धर्मात्मा है सो हमारा द्वेषी है। तातैं तुम हमारे हितू हो, कृपा करो हो, सो या धर्मी तैं स्नेह-सत्कार तजो। हम तो आप के सेवक हैं।

मान-कषाय के जोग तें औरकूं नाहीं देखे है, और कदाचित् देखे तो तुच्छ देखे है। जैसे महा अन्ध तो कोई पदार्थ देखता नाहीं। और अलप अन्ध होय है सो परके बड़े पदार्थन कौं, छोटे देखे। तैसे ही मूरख जानना। तथा महा-मायावी, बांस की जड़ की लाठो समानि है गांठ-गठीला, कुल हृदय जाका। तथा हिरण समानि चंचल, वक्रचित्त का धारी, तथा नाग-गमन समानि हृदय का धारी, दुराचारी, मूर्खता सहित, ऐसा मायावी, दगा-वाज होय। तथा महालोभी, मार्जार (बिल्ली) समानि, आमिष (मांस) भक्षी तथा बिषमरे (छिपकली) समानि आमिष लोभ-धारक तथा मधुमाखी समानि लोभ का धारी, ऐसे क्रोधी-मानी-मायावी व लोभी, शान्ति-रस-भाव जो समता-भाव ताकरि रहित, सप्त व्यसनी और अनेक दोषन सहित ताका निवास, इत्यादि औगुणन का धारी, भले गुण रहित, सतपुरुपन की निन्दा करनहारा, सत्संगीन की सभा में अनादर जोग्य, ऐसा महा मूरख, ताके पासि धर्म-कथा करना वृथा है। तातें महा पण्डित विवेकीजन, जो सम्यग्दृष्टी के धारी हैं सो मूरखन कूं धर्म का उपदेश नाहीं देय हैं। यहां प्रश्न—जो तुमने यहां कह्या कि मूरखन कूं उपदेश देना जोग्य नाहीं। सो संसार में पण्डित तो थोड़े दीखें हैं। और भोरे-मूरख जीव बहुत देखिए है। सो उपदेश बिना, मूर्ख का भला कैसे होय? और समझे को, कहा उपदेश है? वह तो सब जाने। अरु उपदेश तो असमझ-मूर्ख-भोरे ही कूं है, सो जोग्य है। यहां भोरे कूं उपदेश मनै कैसे कीया? ताका समाधान-भो भव्य, जो

इत्यादिक कपट वचन कहे। तब वा मूरख नैं वा मूर्ख के कहे तैं, शुद्ध-धर्मात्मा तैं द्वेष-भाव करि, आप भी हठी भया। अरु कुमारग सेवन करता भया। जब उस धर्मात्मा कौं देखै, तब ही द्वेष-भाव रूप भाव होजांय। सो इनका सत्संग छूटिगया। तथा जो संग भया, ताकरि हृदय कठोर भया। अनाचार भला लागनै लागा। तातैं यह भी जानता-पूंछता पापी-मूरख के कहे तैं, शुद्ध धर्म छोड़ कुमारग लागा। उल्टा धर्म तैं तथा धर्मी-जीवन तैं द्वेष-भाव करि, पाप-रूप प्रवृत्त्यां। ऐसी कहने लगा, जो हमारा होना है सो होय है। ऐसी जाति का भोरा-मूर्ख होय सो अपने हिताहित में तो नाहीं समझै और कषाय तीव्र होंय, ऐसे कूं धर्मोपदेश नाहीं है। वाही की काल-स्थिति पकि जाय, संसार निकट रहि जाय, तब सहज ही कषाय मंद होय जाय। सत्संग में आय, अपनी भूलि मानि, अपनी-अज्ञानता को निंद्य, प्रायश्चित्त लेय, शुद्ध होय. धर्म सेवन करै तौ करै। बाकी ऐसा मूरख, उपदेश तैं नाहीं सुलटै है। तातैं ऐसे क्रोधी कौं धर्मोपदेश मनै कीया है। और आप मानी है, सो धर्म स्थान में जाय कैं, देव-गुरु-धर्म कौं नमस्कार करता, चित्त में लज्जा उपजावै। और कोऊ धर्मात्मा, समता-भाव सहित, ताकौं देखि, ताकूं सामान्य जानि, विनय-भाव नाहीं करै। तौ आप कौं विशेष पुण्यात्मा जानि, धर्मात्मा जीवन के अविनय रूप प्रवृत्तैं। ऐसे दीरघ मानी-मूरख कूं, धर्मोपदेश नहीं होय। तथा आप कैं तो काहू तैं मान-भाव नाहीं। आप तौ सुजीव है। परन्तु कोई महापापी मान का निमित्त पाय कैं, सुधर्म तैं तथा धर्मी जीवन तैं, द्वेष-भाव करै। परके कहैं, धर्म का तथा

धर्मी-जीवन का अविनय करै। ऐसे भोरे-मूरखन कूं धर्मोपदेश नाहीं। कोई मायावी-दगाबाजी, जीव, जो जानते ही भोरे जीवन कौं बहकावेकौं तथा ठगवै कौं, देव-धर्म-गुरु का स्वरूप और ही रूप कहै है। नय-जुगति (युक्ति) देय कैं, कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का अतिशय प्रगटावता, लोगन को ठगै। ऐसे मायावी तथा अनेक उपाय करि अपना महन्तपना दिखाय, तिन भोरे जीवन कूं अपने पांयन नमावै। कोई जुगति तैं, उनका धर्म लिया चाहे। ऐसे दगावाज प्राणी को धर्मोपदेश नाहीं। और केई महालोभी, मायाचारी, मनोवांच्छित इन्द्रिय-जनित सुख की इच्छा के धारनेहारे, गज-घोटिक-पालकी-रथादि की असवारी के वांच्छन हारे, जिनका पुण्य तो कम-हीन पुन्यी, कमावे-पैदा करवेकी तो जिन्हें शक्ति नाहीं और भोगोप-भोग की दीर्घ तृष्णा। सो अपने ज्ञान के बल तैं भोरे जीवन कूं, अपने बढ़त्व-भाव का चमत्कार बताय, अपना त्यागी-निष्प्रहपना बताय, पराए घोटक-रथादि असवारी का लोभी। पराये धन का इच्छुक-लोभी, इन कौं सुधर्म का उपदेश नाहीं। क्योंकि ऐसे भोगी, पाखण्डी, माया के जोग तैं इन्द्रिय-भोग के भोगनहारे, इनकौं धर्म रुचै नाहीं। और सुधर्म रुचै, तो याके भोग-भाव, लोभादि सर्व ही अवश्य ही छूटि जांय। सो यो महा-कषायी, भोगी, मानी, इन्द्रिय सुख भोग्या चाहे। सो ऐसे जानते-पूछते धर्म-रहित मूरख कौं धर्मोपदेश मनै है। और भोरे-सरल मूरखन कौं धर्मोपदेश लागै। ऐसा जानना। ये तेरे प्रश्न का उत्तर है। या भांति मूरख दोय भेद कहे। जैसे रोगी जीव दोय प्रकार हैं। सो महारोगी, और असाध्य वेदना के

धारी। एक देशान्तरी वैद्य आया सो बानै दोऊ रोगी देखै। सो उनकी नाड़ी-परीक्षा करि, सब शुभाशुभ जानि कही, ये रोगी तो इलाज जोग्य है। अरु ये रोगी असाध्य है, याका इलाज नाहीं। तब काहू ने कह्या, जो याका इलाज काहे तैं नाहीं ? तब वैद्य ने कही। एक रोगी का आयु-कर्म बड़ा है। और एक का आयु-कर्म अल्प है, सो मरेगा। याका जतन नाहीं। याके ऊपर जितने जतन करौ, सब वृथा जांय, जतन लागै नाहीं। तैसे ही, जाका परभव भला होय, ऐसे सहज का भोरा-मूरख तो उपदेश के जोग्य है। याकौं धर्मोपदेश लागै भी है। और जिसकी परभव में बुरी-गति होय। वह जानता भी कषाय-जोग तैं, सुधर्म तैं विमुख होय। ऐसे जीवन कूं धर्म का उपदेश, सुहावता नाहीं। तातैं धर्मोपदेश लागता नाहीं। यहां बहुरि प्रश्न-जो तुमने कह्या कि धर्म का उपदेश, कोई कौं तो है, कोई कूं नाहीं। सो भगवान् का उपदेश तौ सर्व कूं चाहिये। और कोऊ कूं होय, कोऊ कूं नाहीं, तो इसमैं वीतरागता कहां रही ? सरागता आवेगी। ताका समाधान-जो हे भव्य, तूने कही सो सत्य है। परन्तु अब तूं चित्त देय सुनि। जैसे जगत विषैं वैद्य दोय प्रकार होय हैं। एक तौ भोरा अरु मानी वैद्य होय है। एक परमार्थी, सरल परिणामी अरु विशेष ज्ञानी। ये दोय जाति के वैद्य हैं। सो कोई भोरा-वैद्य शास्त्र-ज्ञान तैं रहित, नाड़ी-परीक्षा, दृष्टि परीक्षा, मूत्र-परीक्षा, पसेव-परीक्षा, शकुन-परीक्षा, इन आदिक जे वैद्य के गुण, तिन रहित मूरख वैद्य होय। सो तो लोभ के वशि तथा मान-बड़ाई के अर्थ, अपनी महन्तता भोरे

जीवन को बतायवे कौं, अजान वैद्य औषधि देय जतन करै। सो केतेक रोगी, दीर्घायु के धारी, सो तो कोई अपने पुण्य तैं बचै हैं। रोग कुछ दिन दुख देय, आखिर जाता रहै। सो वह भोरे-रोगी ने जानी, या वैद्य ने मोहि भला किया है। सो इस वैद्य का जश कीया, धन दीया। और जो अल्प आयु का धारी रोगी था सो जतन करते, औषधि देय तैं ही मर गया। सो इस रोगी के घर-वारे इस वैद्य की बहुत निन्दा करैं। जगह-जगह में वैद्य की निन्दा करते भये। सो जीवना-मरना तो कर्म के आधीन है। वैद्य का कछु सहारा नाहीं। परन्तु या वैद्य की इतनी अज्ञानता है। जो बिना-विचार, परीक्षा-रहित इलाज करै है। तातैं वृथा जगत में निन्दा करावे। सो तो ये मूरख-वैद्य कहावैं हैं। और जे विवेकी वैद्य हैं। सो अनेक वैद्यक शास्त्रों के ज्ञान सहित, नाड़ी-परीक्षा, मूत्र-परीक्षा, दृष्टि-परीक्षा, पसेव-परीक्षा, शकुन-परीक्षा के ज्ञान सहित हाेंय। सो नाड़ी-परीक्षा तो हस्त की, पांव की, शीशकी, छाती की नसें देख, शुभाशुभ रोग का कहना, सो नाड़ी-परीक्षा है। और मूत्र का वर्ण, स्पर्श, गन्ध, छींटादि लक्षण देख, शरीर के रागन का शुभाशुभ जानना, सो मूत्र-परीक्षा है। और रोगी के नेत्र व शरीर की दशा देखि, दृष्टि ही तैं रोगी का शुभाशुभ जानना, सो दृष्टि-परीक्षा कहिए और रोगी के शरीर के पसीना की गन्ध सूंघि करि, रोग कूं जाने, सो पसेव परीक्षा है। और कोई रोगी के समाचार लेय, वैद्य पै आवै। ताके मुख सूं समाचार सुनि तथा वाके मुख की सूरत देखि, रोगी का शुभाशुभ जाने, सो शकुन-परीक्षा कहिए तथा दूत-परीक्षा कहिए। ऐसे

वैद्य के गुण सहित, भला वैद्य होय। सो इतने गुण तैं, रोगी के शुभाशुभ जानै। सो सुवैद्य, जब रोगी का जीवना जानैं, ताका आयु-कर्म बड़ा जानैं, तो जतन करै। और भला होता न जानैं। आयु अल्प जानैं। तो इलाज करै नाहीं। मान-बड़ाई की इच्छा है नाहीं, कोऊ तैं धन लेय नाहीं। परमार्थ कौं, जतन बताय रोग खोवे, ताका यश ही होय। सर्व लोक पूजैं-प्रसंशैं। ऐसे गुण का धारी, सर्व का उपकार करै। अरु काहू तैं, कछू चाहै नाहीं। सो यह वैद्य धन्य है। ऐसा निष्पृह गुणी होय, तो पूजा पावै है। तैसे ही भोरा, तुच्छ-ज्ञानी, ज्ञानरहित, सरागी, हस्ती-घोटक आदि असवारी के इच्छुक, अपनी महन्तता प्रगट करवे की इच्छा जिनकैं, ऐसे रागी-द्वेषी देव तौ सर्व कूं खोटा-अतत्व उपदेश देय, अपना पूज्यपद तौ कराय दें। पीछे सुननेहारा नर्क जावो, चाहे स्वर्ग जावो। चाहे वह जीव उपदेश जोग्य होऊ, चाहे मति होऊ। सर्व कूं एकसा उपदेश देंय। शिष्य का बुरा-भला नाहीं विचारैं। सो तो भोरा देव-गुरु कहिए। और अन्तर्यामी, सर्व-लोक को जाननहारा, केवलज्ञान-धारी प्रभु, शुद्ध-देव वीतराग का उपदेश ताही कौं है, जाकौं उपदेश लागै। अरु जाकौं न लागै, ताकूं उपदेश मनै है। वृथा उपदेश देते नाहीं। देने योग्य कूं देय हैं। जैसे पारस-पाषाण है सो कुधातु जो लोहा, ताकौं अपने स्पर्श तैं कंचन करै है। कांसा, पीतल, तांबादि अनेक धातु हैं। ते धातु पारस लगाय, कंचन न होंय हैं। जे होने योग्य होय, सो होंय हैं। तैसे ही सर्वज्ञ—भगवान् का उपदेश, भव्य होय, निकट संसारी होय, तिनकौं तो होय है। ऐसे

भव्य, निकट संसारी, भोरे-मूरख कूं, धर्म रुचै भी है। ताका लाभ भी होय है। तातैं ऐसे भोरे कूं उपदेश है। और जे अभव्य, तथा अभव्य समान जे दूरानदूर भव्य जीव, तिनकूं कभी भी सुधर्म का लाभ नहीं होय। तिनकूं केवली का उपदेश नाहीं। ऐसे तेरे प्रश्न का उत्तर जानना। तातैं जे भव्य जीव विवेकी हैं। सो जो वस्तु शुद्ध होती जानैं, तौ ताका इलाज भी करै हैं। और जो वस्तु शुद्ध नहीं होती होय, ताका इलाज वृथा है। तातैं जे हठग्राही, क्रोधादि कषाय-मैल करि लिप्त, जानते-पूछते ही धर्म तैं विमुख प्रवर्तैं, तिनकौं उपदेश नाहीं कह्या। जब इनका होतव्य भला होयगा, तब स्वयमेव ही धर्म-सन्मुख होंयगे। ऐसा जानना। आगे ऐसा कहैं हैं जो ये सर्व किसब (व्यापार) दया रहित हैं---

गाथा---पसु रक्खो किस खेटय, णिप वैदो छीय रजक रथवाहो।
वणरक्खो पल भक्खो, एसहु किप्पाय वज्जुयो आदा ॥ ५६ ॥

अर्थ---पसु रक्खो कहिये, तिर्यंच का पालनहारा। किस कहिए, खेती करनेहारा। खेटय कहिए, शिकारी। णिप कहिए, राजा। वैदो कहिए, वैद्य। छीय कहिए, छीपा। रजक कहिए, धोबी। रथवाहो कहिए, रथ--गाड़ी हांकनेहारा। वणरक्खो कहिए, माली। पलभक्खो कहिए, मांस खाने हारा। ए सहु किप्पाय वज्जुयो आदा कहिए, ये सब दया रहित आतमा जानना। भावार्थ--नाहर, सुअर, रोज, सांभर, चीता, रीछ, सीगोस, खरगोश, श्वान, मारजार, मगर, चिड़ूल, तीतर, बाज, बुलबुल, विसंभरादिक तथा गैया, भैंसा, भैंसी, बकरी, भेड़, बैल, हस्ती, घोटकादि इन

पशून कों पालनहारे जीवन का हृदय, दयारहित सहजही कठोर होय है। तथा सर्प, न्यौला, गोहरा, चूहे, तोतादिक जीवन के रक्षक-जीव कठोर होंय हैं। इनकों पर-जीवन पै लाठी, पथरा, लात, मूंकी मारते तथा जीवरहित कार्य करते दया नाहीं होय। ये पशुपालक सहज ही दया-भाव रहित हैं। तातैं जैनी दया-भाव का धारी, षट् काय जीवन का रक्षक, पशून का संग्रह नाहीं करै। यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि पशुन कौं नाहीं पालिये। सो जगह-जगह जैनी धर्मात्मा हैं सो अनेक पशु—जीवन की रक्षा करते देखिए है। कोई तो धन खर्च, घास अन्न लेय, पशुन कूं खुवावते देखिये हैं। बंदी में पड़े जे पशु ते महादुखी देखि, केई धर्मात्मा धन देय, छुड़ाय कैं सुखी करैं। कोई श्वान कों भूखे देखि, रोटी डारते देखिये है। इत्यादिक विधि तैं पशून की रक्षा करैं हैं। जा पशु पै चाल्या नाहीं जाय, ताकूं ठाम ही पै तिण—जल देय पोषैं हैं। कोई पशु का पाँव टूटि गया होय, सो ताकौं तृण-जल करि पोखि, ताकी रक्षा करिये है। सो क्या उनकों जोग्य नाहीं? ताका समाधान-जीव पालन दोय प्रकार है। एक तो शिकारादिक-पाप निमित्त पालिये। सो तो धर्मात्मा कूं जोग्य नाहीं। यातैं पाप उपजै है। और एक पालन, दयासहित है। सो लूला पशु, अंधा, बूढ़ा, दुर्बल, रोगी इत्यादिक पशून कूं निष्प्रयोजन, करुणा हेतु, तिनकी रक्षा कौं, यथायोग्य उन माफिक प्राशुक घास, रोटी, गाल्या जल देय, निरबंध राखि, सब जीवन पर दयाभाव करि सब ही की रक्षा करना योग्य है। और जे कसाई हैं सो अपने प्रयोजन पोखवे कूं, असवारी कूं,

नाहीं करैं। और रथवाहक जो गाड़ी-रथ के हांकनेहारे कूं, बैल कूं मारते, दया नहीं आवे। तातैं यह किसव में दया नाहीं। वन रक्षक जो माली, बाग की रक्षा का करनहारा, सदैव खेतीहारे की नाईं हिंसा-आरम्भ रूप हे तातैं माली के किसव वारे पे भी दया नाहीं पलै। और मांस-भक्षी जो आमिष का खानेहारा, महाग्लांनि उपजावनहारा, ऐसे मांसाहारी पै दया नाहीं पलै। ऐसे कहे जे सर्व किसव के करनेहारे, इन पै करुणा नाहीं पलै। इनसे, सहज ही ऐसा कठोर स्वभावी जीव होय है। तातैं दयावान् हैं तिन कौं कहे जो दया रहित किसव, तिनमें फँसना योग्य नाहीं। तिन किसव वारों में भी वाणिज्य के निमित्त, लोभ करि फँसना योग्य नाहीं, ऐसा जानना। आगे ऐसा कहैं हैं कि कृपणादिक का धन ये कृपण नहीं भोगवैं हैं—

गाथा—संचय पिपील धाणो, माखिक संचय मधुमुखलक्ष्यो।
किप्पण संचय लच्छी, ए ण भुञ्जय अएणभुंजयती ॥ ६० ॥

अर्थ—संचय पिपील धाणो कहिये, चींटी का धान्य संचयना। माखिक संचय मधु मुख लक्ष्यो कहिए, माखी अपनी लार जो शहद ताकूं संचै है। किप्पण संचय लच्छी कहिए, सूम का जोड़या धन। ए ण भुञ्जय अएणभुञ्जयती कहिए, ताकौं ये नाहीं भोगवैं हैं, और ही भोगैं हैं। भावार्थ—वन की रहने हारी चींटी का समूह है। सो तिनने बड़ा खेद खाय-खाय एक-एक अन्न का कण मुख में वन तैं ल्याय-ल्याय इकट्ठा कस्या। सो आप कौं

तो भोगने की शक्ति नाहीं, सो भोग सकी नाहीं। अरु वृथा मोह के मारे, लोभ करि, अन्न का संग्रह कख्या। सो बहुत दिन इकट्ठा करते पांच-च्यारि सेर इकट्ठा भया। तब कोई पापी, अन्याई, निर्दई, अन्न के भूखे, लोभी, निर्धन, भीलादिकने आय चींटीन का घर जानि, तिननैं बिल की धरा (भूमि) खोदि, अन्न लिया। सो हे भव्य हो, देखो। इन चींटीन का लोभ-स्वभाव जगत में प्रगट, सब जानैं थे। जो चींटी अन्न जोड़ि इकट्ठा करैं हैं। ता संचय के निमित्त तैं कोई दुष्ट प्राणी, पराये माल के खानेहारे ने, घर कों फोड़्या। सो घर का नाश भया और घर के क्षय तैं, चींटीन के तन का नाश भया, अन्न गया। सो ये प्रगट देखो। येते दुख, अन्न संचयतैं भये। जो आप खाय लेतीं, तो दुख नाहीं होता। तातैं जे विवेकी हैं तिन कौं अपने कुमाये धन कौं, अपने हाथ तैं भोग लेना योग्य है। और माखीन का समूह, वनस्पति का रस अपने मुख में ल्याय उदर में खाया। पीछे अज्ञानता करि, मोह के मारे, लोभ धारि, मुख की राह होय उदर का खाया रस हुलक करि, पीछे काढ़्या। आप भूखी रह उसे संचय कीया। सो चोरन के भय तैं आकाश विषैं जाय, एकान्त जगह छत्त बान्धा। अपने ज्ञान प्रमाण, बहु यत्न तैं, बड़ा विषम स्थान देखि, छत्ता करि, तामैं जुदा घर बनाय, सर्व माखीन नैं अपना-अपना रस, भेला (इकट्ठा) किया। जब बहुत दिनन में सर्व के घर, रस तैं भरि गये। इकट्ठा बहुत भया। तब कोई पापीजन-लोभी के नजर छत्ता आया। याने जानीं, यामें बहुत मधु है। सो लेने का उपाय किया। सो

जायगा महा विषम, उतङ्ग देखि, दाव नहीं देख्या। तब लोभी ने नीचे आग जलाई। वहुत धूम करी। सो धूम के निमित्त पाय, दुखी होय, सब माखी उड़ गईं। तब याने छत्ता बांस से तोड़ि लिया। माखी थान भ्रष्ट भईं। दुखी होय, दशोंदिशा में भ्रमती भईं। सो देखो, इननैं लोभ करि भूखी ही रह कैं, पेट का उगला काढ़ि, इकट्ठा करि जोड़या था, ताके योग तैं दुखी भयीं। जोड़या रस गया। जो खाय लेतीं, तो खेद नहीं होता। सो देखो, माखी ने तो लोभ कीया, जो उलाक को संच्या। परन्तु जग में ऐसे-ऐसे लोभी-दरिद्री पड़े हैं। सो माखी का उलाक भी नहीं देखि सकें। सर्व लीया। तो ऐसा लोभी, मनुष्यन का उलाक कैसे छोड़े? ऐसे लोभी-बुद्धि कौं धिक्कार होऊ। तातैं जो लोभी, धन पाय कें, धर्म में लगाय, नाहीं भोगवेगा, सो माखीन की नाईं दुख पावैगा। जो सूम जन हैं सो भी चींटी की नाईं माल जोड़ि २ खेद खाय तो इकट्ठा कीया। सो मूरख नैं नाहीं तो आप खाया, नाहीं और कूं दीया, नाहीं धर्म में लगाया, नाहीं कुटुम्ब कूं खुवाया। आप भूखा रह, तुच्छ खाय, मोटा वस्त्र पहिर, दीन वृत्ति धारि, माल जोड़्या। वहुत भय भये, धरती में धर्‍या। जब आप मुवा, तो धरती का धरती में रह्या। तथा जीवित रह्या, तो याकौं धनवान जानि राजा ने कोई दोष लगाय, लूटि लिया। या लोभी ने पूर्व पुण्य तैं पाया था। सो यानैं धर्म-कर्म का फल कछू नाहीं पाया। तातैं भो भव्य हो, पापी का धन, धर्म में नाहीं लागै, वृथा ही जाय। सो ये चींटी, माखी, सूम, इनका पैदा कीया धन ए नाहीं भोगवैं हैं, और ही भोगवैं हैं। तातैं विवेकी हैं तिनकौं पाया धन तैं धर्म

उपार्जना योग्य है। अब येते जीव दया-रहित हैं, सो ही कहिये हैं–

गाथा—सवर खटी चिंयालो, मदवेचा मदपाणकर घूतो।

तसयर सठ कुलहीणो, दुठचित्तो यरहय करणाये॥ ६१ ॥

अर्थ—सवर कहिए, भील। चिंयालो कहिये, चाण्डाल। खटी कहिये, खटीक। मदवेचा कहिए, कलार। मदपाणकर कहिये, मद पीनेवाला। घूतो कहिए, जुवारी। तसयर कहिये, चोर। सठ कहिये, अज्ञान। कुलहीणो कहिए, कुलहीन। दुठचित्तोय कहिये, दुष्ट परणामी। रहय करणाये कहिए, ये सर्व दया करि रहित हैं। भावार्थ—बनचर-बन का रहनेहारा पशु, ता समानि अज्ञान, नाहर समानि हिंसक, ऐसा जो भील का हृदय, सो सहजही दयारहित-कठोर होय है। यातैं दया नहीं बनै। तथा मृत पशून का चरम उतारैं, घर ल्यावै, धोवै, पकावै, रंगे, बेचै सो खटीक। याका भी चित्त महा अनाचार रूप, वज्रपरणामी; यातैं दया नाहीं पलै। और जाकैं सदीव जीवन की हिंसा करि, जीवन का मांस बेचवे का किसब है, सो चाण्डाल है। सो ये भी महा निर्दई है। यातैं भी दया-भाव नहीं पलै। और मद वेचा कहिए कलाल, दारू का बेचनहारा। अनेक जीवन की घाति करि, मद करै। अनेक क्रिमि, पानी में किलबिला उठैं। उनकौं उछलती देखै, तब उस जल कूं यंत्र में डालि, दारू करते, ताकौं दया नहीं होय। तातैं ये भी दया नहीं पालैं। और मद का पीवनहारा, बेसुध-दया रहित है। और चोर, जे पर धनका हरनहारा, महा निर्दई, तातैं भी दया नाहीं बनै। और जो शुभाशुभ विचार रहित, जन्म का अज्ञानी,

खादि--अखादि के ज्ञान रहित, पुण्य--पाप भावना रहित, भोरे जीव, यातें भी दया नहीं पलै। काहे तैं जो दया तो, पुण्य--पाप में समझै, ज्ञानवान् होय, तातें सधै है। सो ये ज्ञान रहित है, यातें दया नाहीं बनै। और कुलहीन होय, तातें भी दया नाहीं बनै। जो ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय इन तीन कुल के उपजे, ऊंच कुली हैं, इनतें दया बनै है। और आगे कह आए भील, चाण्डालादिक नीच-कुल के जीव, तिनतें दया-भाव नहीं बनै। और जाका चित्त नरम होय, सज्जन-स्वभावी होय, सर्व के भले का वांछिक होय, इत्यादि उत्तम गुण जाकें होंय। तातें दयाभाव पलै है। और जे दुष्ट परणामी, बहुत का बुरा वांछनेहारे जीवन तें, दया नहीं पलै। तातें ऊपर के कहे किसब तिन सबतें दया. भाव नहीं बनै। ते मनुष्य दया रहित हैं। सो विवेकीन कौं. इनका सङ्ग करना जोग्य नाहीं। तथा दया रहित हैं, तिनके साथ लेन--देन, विश्वास भी जोग्य नाहीं। इनके सङ्ग तैं, वणिज तैं, विश्वास तैं, कुबुद्धि होय। अपने परणाम निरदई होंय। हिंसा कैसा दोष लागै। वातें नरकादिक दुख होय। यहां प्रश्न-जो तुमनैं कही कि ऊंच कुलीन तैं दया होय, नीच कुलीन तैं नहीं सधै। सो संसार में तो देखिये है जो घने ऊंच कुलीन हिंसक, जीव घातक, अनाचार रूप भावादि सहित, निरदई, हैं। और केई नीच कुली, अपने जोग्य ज्ञान-प्रमाण सुमार्गी--दयावान् दीखैं हैं। यहां नियम तो नाहीं भया। ताका समाधान—हे भव्य, तैंने कही सो प्रमाण है। परन्तु जैसे कोई रतन की खानि है। तामें रतन निकसैं हैं। ताके सङ्ग अनेक अन्य पाषाण भी निकसैं

हैं। परन्तु खानि रतन की ही कहिये। और कोई हीन पुण्य तैं पाषाणादि निकसै, तो निकसौ। नियम नाहीं है। तैसे ही ऊंच कुलीन में दयावान् ही उपजैं हैं। और कोई पूर्व जाका बिगड़ना होय, ऐसे पापाचारी जीव ऊंच कुल में हीन-पुण्यी निरदई होंय, तो नियम नाहीं। रतन खानि में पाषाणवत् जानना। और जैसे पाषाण की खानि में खोदते, कोई रतन निकसै तो निकसौ, परन्तु बहुतता करि खान, पाषाण की है। तैसे नीच कुलीन में पूर्व-पुण्य के जोग तैं, कोई धर्मात्मा-दयावान् होय, तो नियम नाहीं। जैसे पाषाण खानितैं रतन उपजना जानना। किन्तु बहुतता, हीन-कुलन में दया-रहित की ही है, ऐसा जानना। तातैं नीच-कुलन में दयावान् भी होय हैं। और ऊंच-कुल में निरदई भी होय हैं। यामें नियम नाहीं। संसार की अनेक दशा हैं। तातैं विवेकीन कूं, दया-रहित जीवन का निमित्त छोडि, दया-भाव रहना योग्य है। आगे कहैं हैं जो सन्तोषी आत्मा, अपने निर्धनपने तथा दरिद्र आए में, ऐसी भावना भावै है। सो कहिए है—

गाथा—दालय तव य पसायो, मम सिद्धो भवय अमुत्त सहु लोय।
मम सहु लोय पसन्ती, लोए आदाय णाहि मम जोई ॥ ६२ ॥

अर्थ—दालय तव य पसायो कहिए, दारिद्र तेरे प्रसादतैं। मम सिद्धो भवय अमुत्त सहु लोय कहिये, मैं सिद्ध समानि सर्व लोक में अमूर्ति समाया। मम सहु लोय पसन्ती कहिए, मैं तो सर्व लोककूं देखूं हूं। लोए आदाय णाहि मम जोई कहिये, लोक के आत्मा मोकौं कोई भी नहीं

देखैं हैं। भावार्थ—जे धर्मात्मा समतारस के पीवनहारे, सो दारिद्र के उदयतैं ऐसा विचार करि, खेद-मिटाय सुखी होय हैं। भो दारिद्र, तूने बड़ा उपकार किया। जो तेरे प्रसादतैं मैं सिद्ध-समानि अमूर्ति भया, संसार में रहें हों। सो मैं तो सर्व जगत--जीवनकों शुभाशुभ चरित्र करते, निरखेद देखूं हों। मोकों जगत के जीव, कोऊ नहीं देखैं हैं। जैसे अमूर्ति सिद्ध तो सर्व लोक-जीवन कों देखैं हैं। और लोक के जीव, सिद्धन कूं कोऊ ही नहीं देखैं। सो ऐसी दशा सिद्ध-समानि, हमारी भी भई। सो ये तेरा उपकार है। अब मैं सन्तोष के सहाय तैं, निराकुल-सुखी भया, तिष्ठू हूं। ऐसे दारिद्र को आशीष वचन कहैं हैं, सो जानना ॥ ६२ ॥

आगे ऐसा कहे हैं जो धर्म सेवतैं जीवन की अभिलाषा च्यार प्रकार है—

गाथा—धम्मो चतुपयारो, चातुरता लोय रञ्ज लोभाए।
पम्मथ्थो सिव मग्गो, सेसा संसार सायणो मगणो ॥ ६३ ॥

अर्थ—धम्मो चतुपयारो कहिए, धर्म सेवन च्यार प्रकार का है। चातुरता कहिये, चतुरताई कूँ। लोय रंज कहिए, लोक के राजी करवे कौं। लोभाए कहिये, लोभ कूं। पम्मथ्थो सिव-मग्गो कहिये, परन्तु परमार्थीक धर्म मोक्षमारग है। सेसा संसार सायणो मगणो कहिये, बाकी जो धर्म हैं सो संसार-सागर में डुबोनेवाले हैं। भावार्थ-धर्म सेवन जगत-जीव करैं हैं। तिनके अभिप्राय च्यारि प्रकार जुदे २ हैं। कोई जीव तो चतुराई के अभिलाषी हैं। जो लोक हमको ऐसा कहैं कि ये काव्य, छंद, गाथा, पाठ, पद, बिन्ती जानैं हैं। भला चतुर है। यह जैसी सभा

में जाय, तैसी ही बात कर जाने है। धर्म की भी भली २ बात, कथा, चर्चा, पद, बीनती पाठ जानै है। हम कूं लोक धरमी कहैं, चतुर विवेकी कहैं, ऐसी अभिलाषा सहित धर्म का साधन करना। सो चतुरता के हेतु, धर्म का सेवन करै है। इनकैं मोक्ष वांच्छा नाहीं। और केतेक जीव, परके रंजायवे कौं, धर्मात्मा कहायवे कूं, धर्म का साधन करैं हैं। जैसैं और जीव राजी होंय, तैसें करैं। सो परके रंजायवे कौं, भले-स्वर तैं, मधुर-कण्ठ तैं काव्य, गाथा, कवित्त, पद, बिन्ती, महाराग धरि, तालबंध गाय औरकों खुशी करवे कौं, नाना गान-पाठादि करैं। जो ये सर्व, सभाजन राजी होंय, हमकौं भले कहैं। ऐसा जीव, लोक रंजायवे का अभिलाषी है। सो ऐसा जीव जेते तप, संयम, ध्यान, पठन करै है सो सर्व लोकन के रञ्जायवे कूं करै है। केतेक जीवन का ऐसा अभिप्राय है। और आत्मा के कल्याण का स्थान जो मोक्ष, सो ये मोक्ष-भावना रहित हैं। केतेक संसार में धर्म-क्रिया करनेहारे मनुष्य, ऐसे भी जानना। और कोई लोभ-अभिलाषी, धर्म का साधन लोभ कूं करैं हैं। पंचेन्द्रिय सुख की सामग्री धर्म-सेवन के जोगतैं मिलती जानि, धर्म-सेवन करैं हैं। सो लोभी, बारीक वस्त्र तथा, दुशाला रेशमी-रोमी, आदि अनेक भारी वस्त्र के स्पर्श की है इच्छा जिसकैं, सो स्पर्शन-इन्द्रिय पोषवे कूं, धर्म का सेवन करि, भोरे-जीवन कूं अपना धर्मीपना बताय, उनका धन खरचाय, बड़े-भारी मोलके वस्त्र अपने-तन पै राखे। दश-दिन पहिरकरि, पीछे अपना जश करावने कूं, याचकन कूं दे डारे।

अपना यश अपने आगे कान तैं सुनि, राजी होय। ऐसा भोरा प्राणी, जो पराया धन खरचाय अपना जश गावै। अपने चतुराई के जोगतैं, लोकन का भारी धन खरचाय, भारी वस्त्र पहरि लेना, सो स्पर्शन-इन्द्रिय पोषने के निमित्त, धर्म का साधन करै है। और केतेक रसना इन्द्रिय पोषवे कूं धर्म-सेवन करैं। जानैं-हम भला तप करेंगे, तो भक्तजन भला भोजन देंयगे। सो औरन कूं अपना धर्मात्मापना बतायवे कौं धर्म का अंग-जप, तप आदिक प्रगट करि, नानाप्रकार षट्रस भोजन के लोभ कौं धर्म का सेवन करैं हैं। सो केतेक जीव ऐसे रसना-इन्द्रिय पोषने कूं धर्म सेवनेहारे हैं। और केतेक नाना सुगंध की इच्छा के लोभी, केशन में तेल-फुलेल-इतरादि सुगंध मंगाय लगावना। तन पै व वस्त्र में लगाय, खुशी रहना। सो सुगंध (घ्राण) इन्द्रिय के पोषने कों धर्म-सेवन करैं हैं। केई प्राणी ऐसे ही हैं। और चक्षु इन्द्रिय के लोभी, चक्षु के विषय पोषवे कौं, नृत्य करैं हैं। तथा औरन पै नृत्य कराय देखवे के इच्छुक, भले रूपवान् पुरुष-स्त्रीन का रूप देखवैं कौं, धर्म का सेवन करैं हैं। तथा अन्य भोरे जीवन कूं ठगि, तिनका धन लगाय अनेक चित्रामादि रचना। कांचके मंदिर करवाय, तिन मैं रहके, देखि-देखि हर्ष-सहित तिष्ठवे की है अभिलाषा जिनकौं, सो केई ऐसे चक्षु इन्द्रिय के भोग कूँ, धर्म का सेवन करैं हैं। और केईक श्रोत्र इन्द्रिय के भोगी; अनेक राग, आप करि जानैं है। तथा औरके मुखतैं अनेक राग, वादित्र सुनवै की है इच्छा जिनकैं। इत्यादिक कान-इन्द्रिय पोषवे कूं धर्म

का सेवन करैं हैं। ऐसे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र इन पांच इन्द्रिय पोषवे कौं, धर्म-सेवन करैं हैं। और केतेक धन इकट्ठा करवे कूं, धन के लोभी धर्म-सेवन करैं हैं; बनै जैसे धन पैदा करना। सो आप तो अनेक उपवास करैं। तपस्वी का रूप धरि, औरन पै द्रव्य की आज्ञा करि, तिनका धन लेय आप सञ्चय करैं। नानाप्रकार बड़े विधानादि पूजा करनी। करनेहारे पै धन लेना। ऐसा ही उपदेश देना, जातैं भोरे जीवन के घर का धन, अपने घर में आवै। और लोभ के पोषवे कौं, धनवान् का आदर करना। अरु निरधन धर्मात्मा-पुरुष का निरादर। इत्यादिक लोभ के अनेक भेद हैं। सो केतेक जीव ऐसे हैं जो लोभ के निमित्त, धर्म का सेवन करैं हैं। और केतेक धर्मात्मा, सम्यकदृष्टी, जगत--उदासी, परमारथ जो मोक्ष, सो ऐसे परम अर्थ के निमित्त धर्म--सेवन करैं हैं। सो अनेक नय विचार, समता वधावना, धर्मात्मा जीवन तैं स्नेह करना, वांच्छा-रहित तप करना, इत्यादि कार्य करैं हैं। यहां प्रश्न—जो यहां कह्या कि वांच्छा-रहित तप करैं। सो वांछा-रहित तप कैसे होय? तप करैं हैं सो सुख की वांच्छा कूं करैं हैं। वांच्छा बिना तो फल-रहित तप भया। याकी महिमा कहा भयी? ताका समाधान—जो धर्मात्मा, दृढ़ सम्यक् के धारी हैं, ते इन्द्रिय-जनित सुख के निमित्त, तप नाहीं करैं हैं। मोक्षाभिलाषीन कैं तप है, सो मोक्ष निमित्त है। सो स्वर्गादिक इन्द्रिय-जनित सुख तौ सहज ही होय है। जो तप मोक्ष करै, तातैं स्वर्ग तो बिना—वांच्छा के होय। जैसे खेती का करनहारा. धरती में अन्न बोवे है सो वाका अभिप्राय ऐसा नाहीं, जो मेरे खेत में घास होउ।

वाका मन तो अन्न वांच्छै हैं। परन्तु जाने अन्न बोया, ताके घास तो बिना-वांच्छा के होय। तातैं जाने तपरूपी अन्न का बीज धर्म–धरा में बोया है। सो मोक्ष की अभिलाषा के निमित्त हैं। सो स्वर्गादि, घास की नाईं सहज ही होय। यहां फेरि प्रश्न-जो मोक्ष की वांच्छा तैं तप किया, सो भी वांच्छा भई। निरवांच्छापना तो नहीं रह्या। यामें भी वांच्छा भई। ताका समाधान–जैसे कोई पुरुष धन कुमावै। सो एक पुरुष तो ऐसा विचार करै। जो धन बहुत कुमाइये तो व्याह कीजै, घर बढ़ै, बेटा--बेटी होय, गृहस्थपना भला लागै। बिना स्त्री, घर बढ़ता नाहीं। ऐसा जानि धन कुमावै है। अरु कोई पुरुष धन कुमावै है, सो ऐसा विचारै है। जो बहुतसा धन होय तो वेश्याकूं देय, वांच्छित भोग भोगिए। जो व्याह कस्या चाहै है सो तो गृहस्थपने का घर बांधि, सुखी भया चाहै है। सो यो विचारा तो दोष रहित है। क्यों ? जो गृहस्थी ताका ही नाम है। जो घर बांधि, स्त्री परणि, बेटी-बेटा आदि कुटुम्बतैं सदैव सुखी होय। और दूसरा वेश्यावारे का विचार, अज्ञानता सहित है। जो धन का धन खोवना, अरु वेश्या के किञ्चित् सुख भोग, पाप कमावना। सो ए जीव भोरा है। तैसे जो जीव तप करि, मोक्ष चाहै है। सो तो ध्रुव (नित्य) सुख का अभिलाषी मोक्ष-स्त्री परणि, सिद्ध-पद में घर बांधि, अनन्तकाल सुखी भया चाहै है। सो ऐसे तो योग्य ही है। याकौं वांच्छा नहीं कहिए। ये घर बांधि ध्रुव रहना है। और जे तपरूपी धनतैं, वेश्या समानि चञ्चल, देवादिक के सुख चाहैं, ते विवेकी नाहीं, ऐसा जानना। तामैं भी ये विशेष, कि जो परभव के इन्द्रिय

जनित वांच्छित सुख के निमित्त धर्म सेवें, सो धरमी। और इसी भव सम्बन्धी धन, पुत्र, स्त्री, रोग नाशादिककूं धर्म सेवैं, सो पापी हैं। ऐसा जानना। तातैं सम्यग्दृष्टी का तप इन्द्रिय-सुख अपेक्षा निरवांच्छी है। और जिन-आज्ञा प्रमाण देव--धर्म का सेवना, मोक्ष-मार्ग के निमित्त धर्म का सेवना, दया पूर्वक यत्नतैं तप, संयम, पूजा, दानादिक धर्म के अङ्गन का सेवना, सो पारमार्थिक धर्म-सेवन है। ऐसे च्यारि ही प्रकार भिन्न २ धर्म सेवनेवाले जीवन का अभिप्राय जानना। तिनमें पारमार्थिक धर्म-सेवन है, सो तो मोक्ष-मार्ग है। और वाकी के धर्म-सेवन के भाव हैं सो अल्प-सुख देयकैं संसार-समुद्र में नाखैं (डालैं) हैं। तातैं ऐसे भले-बुरे धर्म की परीक्षा करि, धर्म-सेवन करना। सो कषाय सहित इन्द्रिय-सुख की वांच्छा करनेहारे ऐसे कुगतिदाई कुधर्म भाव तजि, परमार्थिक धर्म-सेवन करना योग्य है। आगे शास्त्र, छंद, काव्य, गीत के जोड़नेहारे कवीश्वरन का जो अभिप्राय है, सो ही कहिये है—

गाथा——धम्मी धम्म फल हेतव, जाचिक उदराय अधम्म लोभादी।
परजणाय भंडय, णलजय हासि जोड वकताए ॥ ६४ ॥

अर्थ---धर्मी तो धर्म-फल हेतु, जाचिक उदर भरवेके हेतु, अधर्मी लोभ के हेतु, भांड़ परके रंजायवे के हेतु, निर्लज्ज हाँसी-कौतुक के हेतु, जोड़ के वक्ता होय हैं। भावार्थ--जोड़-कला का ज्ञान अनेक जीवन कैं होय। श्रुतज्ञानावरणी के क्षयोपमश करि, अनेक भले--भले पण्डित होय हैं। सो अनेक शास्त्र जोड़ैं हैं। कोई अनेक छन्द, काव्य, गाथा जोड़ैं हैं।

कोई पद-बिन्ती जोड़ैं हैं। केई गीत, किस्सा, कहानी जोड़ैं हैं। इत्यादिक अनेक जोड़-कला के ज्ञान सहित प्राणी पाइये हैं। परन्तु इन जोड़-कला करवे में परणति-अभिलाषा जुदी २ हैं। अरु जुदी २ अभिलाषा होने, तिन जोड़-कला के ज्ञान का फल भी, जुदा--जुदा पावैं हैं। जोड़-कला करते, अतरङ्ग जैसी अभिलाषा होय है, तैसा ही फल होय है। सोही कहिए है। कोई धर्मात्मा जीवन कौं तो श्रुतज्ञान की अभिलाषा है। सो तो शास्त्र के छन्द, गाथा, काव्य, पद, बिन्ती जोड़ैं हैं। सो धर्म के फल की इच्छाकूं लिये, परभव स्वर्ग--मोक्षादि सुख की वांच्छा सहित हैं। अन्तरङ्ग के श्रद्धान कौं लिये, जोड़ कला करैं हैं। सो इस ज्ञान का फल धर्म, मोंकूं ही उपजौ, ऐसी वांच्छा लिये शास्त्रादि जोड़ैं हैं। कोई तो ऐसे हैं. सो इन्हें धर्मात्मा जानना। और केई जाचिक-जीवन कैं श्रुतज्ञान की विशेष बढ़ती है। सो ए जाचिक छन्द, काव्य, गीत, इनकी जोड़—कला करैं। सो इनका अन्तरङ्ग उदर भरवे का है। जो हम कोई राजादि बड़े पुरुष का यश करैं तो ग्राम, गज, घोटिक, धन मिलै। ताकरि सर्व कुटुम्ब की प्रतिपालना होय। फलाना राजा, यश का लोभी, यश चाहै है। अरु चित्त का उदार है। ऐसे पुरुष का यश करैं, तो वहुत दिन की आजीविका मिलै। सो जांचकि, उस राजा के राजी करवें कौं अनेक छंद, गीत, कवित्त, काव्य, श्लोक बनावै। सो अपनी बुद्धि के जोगतैं जोड़-कला करै। तामैं दीरघ अर्थ, छंद महा सरल, अक्षर महा ललित, व्यञ्जनों का सुन्दर मिलाप इत्यादिक अन्तरङ्ग अभिप्राय सहित, ज्ञान तैं जोड़—कला करै। सो

जाचिक जानना। अर केई जीव भला ज्ञान पाय, बुद्धि का प्रकाश पाय, जोड़–कवित्त करैं। छंद व गीत बनावैं। सो जोड़–कला करतैं उनकैं ऐसे अन्तरङ्ग का अभिप्राय होय। जो हममे बड़ा ज्ञान है सो कोई ग्रन्थादि, काव्य, छन्द, बनाइये तो जग में पण्डितपना प्रगट होय, जश होय। ऐसा जानि केई तो जश के लोभ कौं, जोड़-कला करैं। केई अज्ञानी, इन्द्रिय-सुख भोगवे कौं जोड़–कला करैं हैं, ते पापी जानना। और केई भाँड़न में तीक्ष्ण श्रुतज्ञान होय है। सो भाँड़ भी, जोड़-कला करैं हैं। सो ऐसी अनोखी नकलैं जोड़ैं। ऐसी बात बनाय ठाड़ी करैं। कि ताकी जोड़-कला देखि, अनेक मनुष्य राजी होंय, हँसैं, प्रसन्न होंय। भांड़ की तारीफ करैं। ऐसी नकलैं अपनी बुद्धि तैं, ज्ञान के जोग तैं जोड़ि के, औरन कौं प्रसन्न करैं। सो परके रञ्जायवे कौं गीत, काव्य, गाथा, छन्द, कथादिक जोड़ैं, सो भांड़ कहिये। भाँड़ का अभिप्राय जोड़–कला करते, परके रञ्जायवे रूप होय है। और केई निर्लज्जी जीवन कौं भी ज्ञान की बढ़वारी होय है। सो ए निर्लज्ज पुरुष, जोड़-कला करैं। सो याकी जोड़–कला हाँसि–कौतुक के निमित्त है। जैसे काहू जीवन नैं होरी के भंडउवा जोरे। तथा काहू निर्लज्ज स्त्री ने बड़ा ज्ञान पाय, पापनी नैं गावे के निमित्त गाली–गीत, बनाये, ताका गावना। सो श्रोता ताकी जोड़ि–कला सुनि कैं, विकारी-जीव लज्जा रहित हाँसि–कौतुक रूप प्रवृत्तैं। ऐसी जोड़–कला के ज्ञान-धारी जीव होंय, सो निर्लज्ज कहिए। ऐसे पञ्च प्रकार जोड़–कला करने के मुखिया हैं। तिनमें जे सुबुद्धि पुरुष हैं सो बुद्धिपाय,

धर्म-फल के इच्छुक होय, धर्म मई, दया सहित, पुण्य—दायक जोड़-कला करैं हैं। सो तो धर्म—मूर्ति सत्-पुरुषन के प्रसंशवे योग्य हैं और बाकी के च्यारि जाति के कवीश्वर हैं सो पाप—बंध करनहारे हैं। ऐसे श्रुतज्ञान सहित खोटे कवीश्वर होंय हैं, सो तजिवे योग्य हैं। आचार्य कहैं हैं कि संसार भ्रमतैं, अनन्ते—भव अज्ञानता के होय हैं। तब एक भव, विशेष श्रुतज्ञान सहित, विवेक-चतुराई सहित, ज्ञान का मिले है। सो ऐसा उत्तम ज्ञान कों पाय-कें, यह जीव कुकाव्य करि, वृथा खोवैं हैं। ये सर्व जाति जोड़—कला है। सो तो हीन ज्ञानीन तैं नाहीं होय है। जे जीव विशेष ज्ञानी होंय, महा चतुर होंय, अनेक नय—विवेक के ज्ञाता होंय, तीच्ण ज्ञानधारी होंय, तिनतैं जोड़ि--कला होय। सो ऐसे तीच्ण ज्ञान का धारी उत्तम-बुद्धि भूलै, तौ यह बड़ा आश्चर्य है। अहो भव्य, तुच्छसा इन्द्रिय-सुख अरु अज्ञानी-जीवन के मुख की प्रशंसा के निमित्त, ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान, वृथा करै है। सो हम कहा उलाहिना देहिं? तैंने वैसी करी, जैसे कोई बंदर कूं रतन--कंचन के आभूषण पहराय, मोती की माला ताके उरमें डारि, मस्तक पै रतन-जड़ित मुकुट धारि, अनेक वस्त्र पहराहि, शोभायमान किया और अनेक मेवा ल्याय, ताके आगे खायवे कूं धरै। ऐसे में कोई बन का बन्दर ने. नीम की निवोरी दिखाई। कही, ये बन का भोजन लेऊ। अरु सैन तैं, कहता भया। जो हे मित्र, आप बन्दी में कहा बैठे हो? ऐसे यह बन्दर, अज्ञानी बन्दर के स्नेह तैं अरु निवोरी के लोभ तैं, अपने शिरका रतन-मुकुट फैंकि, मोतीन की माला व वस्त्र डारि, उत्तम भोजन-मेवा तजि कैं,

बन में जाय। सो इस बन्दर की भूल कहां ताईं कहिए ? तैसे, बन्दर की नाईं भूले जो पण्डित, ताकों कहा कहिए। ये विनाशीक-भोग के अर्थि तथा लोक-प्रसंशा कूं अपना भला ज्ञान, मलीन करैं हैं। ये जोड़ि-कला करिवे का उत्तम ज्ञान पाय, ताके भेद को नहीं जानता, पापको उपावै। सो इस बात का बड़ा आश्चर्य है। इस भूल की कहा कहिये? जैसे एक कटईया, लकड़ी काटवै कौं बन में गया। वानै एक चिन्तामणि रतन पाया। ताकूं याने उठाय लिया। ताकों देखि विचारा, कि कोऊ रंगदार पाषाण की गोली है। अच्छी दीखै है। याकूं घर ले चलुं। यातैं लड़का खेला करेगा। ऐसी जानि या मूरख नैं परख्या बिना, चिन्तामणि रत्न को लेय कैं, अपनी फटी लँगोटी ताकी गांठि बांध्या। फेरि बन में लकड़ी काटने लगा। सो काठ के भार को बाँधि, अपने शीश पै धरि, बन कौं तजि, घर को आवै है। सिर पै भार है। सो धिक्कार इस अज्ञानता कौं। जो चिन्तामणि तो पूंछली तैं बंध्या है, सो तो पासि है। और शीश पै काठ-भार है। ऐसे ही सर्व भार तैं राह दुखी भया, घर आया। शाम को गुदरी में काठ-भार बैंचने गया। सो भूखा ही, दरिद्री भया खड़ा है। चिन्तामणि पास है, परन्तु भेद पाये बिना, दुखी होय रहा है। पीछे दोई पैसा कौं भार बैंच, घर आया। तब पैसा स्त्री के हाथ दये। कही, इनका अन्न ल्याव। आठ कौड़ी का तेल ल्याव। ताके उद्योत में रोटी करि लेना। सो पहर भर रात्रि गई तक, सब घर के मनुष्य भूखे मरे, अरु चिन्तामणि पासि है। परन्तु बिना भेद पाये, सुख नाहीं।

प्रगट करि, लोक-पूज्य होता भया। चिन्तामणि के प्रभाव तैं काठ ढोना गया। परम सुखी भया। तैसेही इस आत्मा का ज्ञान, यापैही है। परन्तु भेद पाये बिना, अज्ञानी भया फिरै है। कठेरे की नाईं दरिद्री होय रह्या है। जब गुरु-प्रसाद तैं ज्ञान-चिन्तामणि का भेद पावै, तो जगत-दुख जाय, सुखी होय, पूज्य-पद पावै, उपकारी की सेवा करै। तातैं विवेकी हैं ते भला ज्ञान पाय; धर्म में लगाय, धर्म--सेवन, पूजा, भक्ति, जीवाजीवतत्त्व विचारादि करि, भली जोड़ि--कला करहू। इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, काव्य-परीक्षा वर्णनो नाम, बाईसवां अधिकार सम्पूर्ण भया ॥ २२ ॥

आगे पंचम काल की महिमा कहिये है—

गाथा—जहि थति अरि हितदूरउ, तीथथाणेय रजय विणखेदो।
रंजय तहां न सुसंगो, ए कलुबल गेयतज्ञ समभावो ॥ ६५ ॥

अर्थ—जहि थति अरि कहिये, जहाँ रहिये है तहां बैरी पाईये है। हितदूरउ कहिये, हितू हैं, सो दूर हैं। तीथथाणेय कहिये, तीर्थ स्थान । रजय विणखेदो कहिये, रञ्जक बिना खेद है। रंजय तहां न सुसंगो कहिये, रञ्जत हैं तहां सुसंग नाहीं है। ए कलुबल कहिये, ये कलयुग का बल है। गेयतज्ञ समभावो कहिए, पण्डित हैं ते यह देख समताभाव राखैं हैं। भावार्थ—जे तत्त्वज्ञानी धर्मात्मा हैं, सो जगत की बिटम्बना देखि, ऐसा विचारैं हैं। जो देखो, पंचम काल की महिमा। कि जहां सदीव रहिये, जा क्षेत्र में बहुत दिन का वास, ऐसे

क्षेत्र में तो अदेखा--बैरी जन बहुत हैं। सो कोई धर्म--कर्म, खान-पान, देख सकता नाहीं। और अपने स्नेही हैं, सर्व प्रकार सुख के कारण हैं, तिन तैं बड़ा अन्तर है। वह सज्जन हैं, सो दूर ही देश में बसैं हैं। और जो तीरथ समान उत्तम स्थान हैं, जहां रहैं सदीव पुण्य का बंध कीजे। सत्सङ्गी जीव, पूजा, शास्त्र, ध्यान, चरचा का सदीव निमित्त, सो जहां रहने कूँ सदा मन चाहै। ऐसे उज्ज्वल स्थान पै, रुजगार की ठीकता नाहीं। सो खान--पान की थिरता बिना, रह्या जाता नाहीं। और जहां भला रुजगार है। खान--पान की चिन्ता नाहीं। ऐसे क्षेत्र में सत्सङ्ग नाहीं। जहां अपना परभव सुधारिए, सो पुण्य के निमित्त ध्यानाध्ययन, पूजादिक निमित्त नाहीं। ये पंचमकाल की जोरावरी है। ऐसे खोटे-काल में भली-वस्तु का मिलाप थोरा है। पापकारी, कुआचारी, अशुभ वस्तुन का निमित्त बहुत है। सो इसका यह सहज-स्वभाव है। शुभनिमित्त अल्प, अशुभ का निमित्त बहुत, ऐसी इस काल की सहज प्रवृत्ति है। ताके मेटवे कूँ, कोई उपाय नाहीं। होनहार कोई मेटता नाहीं। जा--जा समय सुख--दुख होवना है, सो हो है। ऐसा जानि, धर्मात्मा विवेकी तिनकौं समताभाव राखि, धर्म--ध्यान का आश्रय लेना योग्य है॥ ६५॥ आगे कहैं हैं कि शुभभावना बिना, करनी का फल शुभ नाहीं। ताकौं दृष्टान्त देय बतावैं हैं—

गाथा—सुक--पठती बक--झाणो, खर-भसमी पसु-णगण तरु-कट्ठो।
उरण सिर कच मुड़ई, भावो सुधी विणा ण सीझंत्ती॥ ६६॥

अर्थ—सुक-पठती कहिए, तोते का पढ़ना। बक-झाणो कहिए, बक का ध्यान। खर-भसमी कहिए, गधे का राख लगावना। पशु-णगण कहिए, पशु का नगन रहना। तरु-कट्ठो कहिए, वृक्षन का कष्ट सहना। उरण सिर कच मुड़ई कहिए, भेड़ के बाल का मूँड़ना। भावो सुधी विणा ए सीझन्ती कहिए, ये सब शुभभाव बिना मोक्ष न होंय। भावार्थ-जीव का भला तथा बुरा, इस ही के परणामन तैं होय है। तातैं शुद्ध-भाव बिना, जीव चाहै जैसा कष्ट करो, भला होता नाहीं। जैसे तोता रात्रि--दिन राम--राम किया करै है। परन्तु याकें राम-नाम तैं कछु प्रीति नाहीं। ऐसा विचार नाहीं, जो राम-नाम ल्यौं हों, त्यों मेरा कल्याण होयगा तथा ये राम-नाम उत्कृष्ट है। याका नाम जो लेय, सो सुखी होय है। ऐसा भेद--भाव नाहीं। जैसे पढ़ावनेहारा पढ़ावै है, उसी ही प्रकार पढ़ै है। यातें याके भावन की शुद्धता नाहीं। अरु शुद्धता बिना, सूवे का पढ़ना--पढ़ावना वृथा ही जानना, फल-दाता नाहीं। और बगुला, पानी विषैं एक-चित्त करि, काय की ध्यानाकार ऐसी मुद्रा बनावै है। जैसे भला तपस्वी ध्यान करै। ऐसी ही नासादृष्टि करि, बगुला भी ध्यान करै है। परन्तु परणाम तो भले नाहीं। मच्छीन के घात-रूप हैं। सो भाव--प्रमाण, खोटा ही फल मिलेगा। ध्यान के आकार, भली-मुद्रा सहित, काया करी है सो भाव-शुद्ध बिना, भला-फल होता नाहीं। तातैं शुद्ध-भाव बिना, बगुले का ध्यान वृथा है। अर विभूति जो राख लगाये भला होय, तो गरधव (गधा) सदीव ही विभूति विषैं, लोट्या ही करै है। परन्तु गरधव के ऐसा विचार नाहीं, जो

राख लगाये. मेरा भला होयगा। यह सहज ही, ज्ञान रहित है। तातें राख तनके लिपेटे पुण्य होता नाहीं। अपने भोरेपन तें, तन की शोभा मिटाना है। बाकी शुद्ध-भाव बिना, राख लगाए मोक्ष होती नाहीं। जो भाव-शुद्ध बिना मोक्ष होय, तो गरधव कौं भी होय। और नगन-तन तैं मोक्ष होय, तो सर्व पशु नगन ही रहैं हैं। तातें शुद्ध-भाव बिना नगन रहना, पशु के कष्ट समान है। और बड़ा कष्ट पाये, मोक्ष होय, तो वृक्षन कों होय। वृक्ष, शीत-काल में तो च्यारि महीना, शीत सहैं हैं। और उष्ण-काल में, च्यारि महीना, सूर्य की आताप सहैं हैं। अर चारि महीना वर्षा-काल में, सर्व पानी तनपैं सहैं हैं। ऐसे तीनों ऋतु के बड़े कष्ट, शुद्ध-भाव बिना तरु सहैं हैं। परन्तु कष्ट के खाये, शुद्ध-भाव बिना भला होय, तो इन वृक्षन का होता, ऐसा जानना। और शुद्ध-भाव बिना, मूड़ मुड़ाये भला होय, तो भेड़ का होय। भेड़ कूँ बरस-दिन में कई वार मूँड़िए। सो भाव-शुद्ध बिना, मूड़--मुड़ावना कहिये केश-लोंचन करना, भेड़ के मूड़ने समानि है, ऐसा जानना। सो भावन की शुद्धता बिना, शास्त्रादि का पढ़ना, सूवे समानि है। शुद्धभाव बिना ध्यान, बगुले समानि है। शुद्ध-भाव बिना विभूति लगावना, गरधव समानि है। शुद्ध-भाव बिना नगन रहना. पशू समानि है। और शुद्ध-भाव बिना तीनों ऋतु के तन पै कष्ट सहना, वृक्ष समानि है। और शुद्ध-भाव बिना शीश मुड़ावना, भेड़ समानिहै। तातें हे भव्य, मोक्ष का कारण एक शुद्ध-भाव है। सो जे विवेकी हैं, ते रागद्वेष मिटाय

अपने हितकौं, परभव सुधारवे कौं, भावन की शुद्धता करौ। यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि शुद्ध-भाव बिना, तप-संयम, पठन--पाठनादि धर्म का फल अल्प होय है, तथा नहीं होय है। शुद्ध-भाव बिना जो स्वाध्याय--शास्त्रोपदेश करना, शास्त्र सुनना, ध्यान करना, सामायिक करना, इत्यादिक धर्म के अङ्ग के सेवनेहारे हैं। सो धर्म-सेवन करते, शुद्ध-भाव सहित तो कोई दीखता नाहीं। आरत, रौद्र-ध्यान बहुत के होय है। शुभ-भाव वारे, अल्प हैं। और जेते जीव, अवार धर्म-अंग सेवन करैं हैं। तिनकैं शुभभाव अल्प भासै है। सो इनको धर्म-सेवन का फल शुभ होयगा, वा नहीं होयगा ? ताका समाधान-भो भव्य, तूँ ने प्रश्न महामनोग्य किया। सत्पुरुषन कूं सुख पहुँचावनहारा, अनेक जीवन का संशय मेटनेहारा, ऐसे भाव सहित तेरा प्रश्न है। सो अब चित्त देय के उत्तर सुन। इस उत्तर का धारण किये धर्म के अङ्गन तैं विशेष प्रीति उपजैगी। धर्म के सेवनेहारे जीवन के अभिप्राय के दोय भेद हैं। एक तो धर्म-फल के हेतु सेवैं हैं। एक लोभी, कषाय के पोषनैं कूं, धर्म-सेवन करैं हैं। सो जे भव्यात्मा, धर्म कूं बड़ा जान, धर्म-फल का लोभी भया, दान-पूजा-तप-ध्यान-शीलादिक करैं हैं। सो परभव के कल्याण कूं शुभभाव लिए करैं हैं। पीछे कर्म के जोग तैं कारण पाय, भाव-चंचल भी होंय, अरति उपजावैं, तौ याका शुभ-फल जाता नाहीं। जैसे कोऊ भव्यात्मा, सामायिक करवे कूं पद्मासन या कायोत्सर्ग काय का आसन करि, चित्त भला करि, सामायिक करै है। सो सामायिक कौं बैठा, तब अभिप्राय तो अच्छा था। अरु मन--वचन--

काय की प्रवृत्ति भी अच्छी थी। पीछे कोई कर्म-जोगतैं रागभावन की प्रबलता करि, परणाम और ही विकल्प-कषाय रूप होने लगे। मन-चंचल होय रह्या। परन्तु काय, सामायिक रूप है। परणति, कर्म की जोरावरी तैं याकै हाथ नाहीं। अभिप्राय याका ये ही है जो मैं सामायिक करौं हों। सो ऐसे धर्मात्मा का सामायिक का फल जाता नाहीं। जैसे कोई सामायिक करनेहारा भव्य जीव, सामायिक समय, घर के अनेक कार्य तजि कैं, धर्म-बुद्धि का प्रेर्या, घर तैं धर्म स्थान में जाय, तनकी शुद्धता करि, अल्प परिग्रह राखि, कायोत्सर्ग तथा पद्मासन ध्यान धरि, पंचपरमेष्ठी के गुणन का विचार करिं, अपने किये पाप यादकरि, तिनकी आलोचना बार २ करि, अपनी निन्दा करि, सर्व-जीवन तैं समता-भाव करि, ऐसा विचार करता भया। जो धन्य हैं वे मुनीश्वर तथा उत्तम प्रतिमाधारी श्रावक, जो सर्व आरम्भ-पाप तैं निर्वृत्त होय, सुख भोगवैं हैं। ऐसी दशा मोरी कब होवेगी ? ऐसे तप की भावना भावता, सामायिक करै। एते ही में एक चिंताकारी बात यादि होती भई। कि जो एक हजार दीनार की थैली, वा दुकानवारे कूं भूलि आया। सो याके याद होते, मन तो चंचल होय, आरति के जाल में पड़्या। सामायिक में चित्त नाहीं लागै। तब यह धर्मात्मा विचारै. जो मेरे दोय-घरी की मर्यादा है। सामायिक कौं बैठा हौं। सो अब कैसे उठ्या जाय ? मेरे भाग्य की है तो मिलेगी ही, कहां जायगी ? अरु मेरे भाग्य में नहीं होय, तौ अब ताईं, प्रगट-चौड़ी जगह में से, कैसे बची होयगी ? और अब मैं कदाचित् लोभ के

जोग तैं उठौं हौं, तौ प्रतिज्ञा मेरी भंग होय। प्रतिज्ञा के भंग होते, मेरा परभव बिगड़ै है। काया-धर्म, नाश होय है। तातैं जो होनहार है, सो होयगी। मैं दोय घड़ी तो नाहीं उठौं हौं। प्रतिज्ञा पूरण भये, जो होनहार है, सो हो जा है। ऐसा विचार, तन कौं स्थिरीभूत किए, तिष्ठ्या है। जो-जो सामायिक की क्रिया-बंदना, आलोचना, सामायिक इत्यादिक पाठ पढ़ै है। परन्तु मन-चंचल भया, सो सामायिक मैं नहीं लागै है। तो भी ये धर्मात्मा का, धर्मफल जाता नाहीं। और कदाचित् दीनारों के लोभ तैं, सामायिक छोड़ि उठ खड़ा होता, तौ पाप-बंध होता। धर्म-क्रिया का अभाव होता। तातैं ये धर्मात्मा, अपनी प्रतिज्ञा तजि, उठै नाहीं। तौ परणति चंचल भले ही होऊ। या धर्मात्मा का अभिप्राय भला है। अभिप्राय शुभ, थिरीभूत नहीं होता, तो सामायिक तजि करि जाता। तातैं अभिप्राय शुद्ध रहते, तत्त्वश्रद्धान दृढ़ता कौं लिए है। सो ऐसा धर्मात्मा उत्तम धर्मी ही है। ऐसेही श्रद्धान की दृढ़ता, अरु परणति का आरति भाव, सर्व धर्म-अंगन में लगाय लेना। सो ऐसे धर्मी का तौ विकल्प होतें भी, धर्म जाता नाहीं, ऐसा जानना। और एक लोभ के निमित्त, धर्म-स्वांग धरि तप, संयम, ध्यान, जिनवानी का पाठ इत्यादिक धर्म-अंग करै। और अभिप्राय चोरी का है। जैसे रुद्रदत्त चोर था, सो लोभ कों देहरे (मन्दिर) जी का माल चोरवे कौं, धर्मात्मा-ब्रह्मचारी का भेष धरि, नाना तप, संजम, भले पाठ करता, सेठ के घर आय, धर्मात्मा होय, जिन-मन्दिर में रह्या। सो जिन-मन्दिर के चँवर, छत्र, कलशादि चोरे। खोटे अभिप्राय तैं धर्म-सेवन करै था, सो तिनका फल तो

नहीं लगा। अरु खोटे अभिप्राय के जोग तैं मरि, नरक गया। तातैं ऐसे धर्म-सेवन मैं तोकौं दोय भेद कहे, सो जानना। जाका धर्म-सेवन में अभिप्राय, धर्म-रूप है। ताकैं तो पुण्य-फल होय है। और जिसके धर्म-सेवन में अभिप्राय खोटा होय। ताकैं पापबंध होय है। तातैं शुद्ध-भावन के अभिप्राय विना, जो धर्म-सेवन है। सो ऊपर कहे तोता, बगुलादिक तिन समानि जानना। शुद्ध-भावन बिना धर्म-साधन, लौकिक के दिखावे कूं करैं हैं। ते जीव, धर्म के अभिलाषी नाहीं। इनका धर्म-सेवन का कष्ट, वृथा ही जानना। जैसे कोई सेठ का मन्दिर बनै है। तहां अनेक मजूर लगे हैं। तिनकूं मजूरी करते देख के, एक अज्ञानी खप्त (पागल) पुरुष आया, सो आप भी बिना कहे, अपनी-इच्छा तैं ही, मजूरी करता भया। सो औरन तैं यह खपुत, बहुत भार उठावै। मजूर उठावैं पांच सेर का पाषाण, तो ये खप्त उठावै दश-पंसेरी का पत्थर। मजूर ल्यावैं एक पत्थर, तौ ये खप्त ल्यावै दश-पत्थर। सो याकी मजूरी देख कैं, अजान-पुरुष ऐसा विचारैं, जो यह मजूरी बहुत करै है। सो याका रोज भी बहुत होयगा। ऐसे सब दिन मजूरी करी। सांझ को मजूर छूटे। तब जिनके नाम मड़े थे, तिन सब मजूरन को दिन मिल्या। सो अपने घर जाय, सुखी भये। जब इस खपत ने भी मजूरी मांगी। तब दरोगा ने कागद में याका नाम देख्या, सो नाहीं निकस्या। तब याकूं पूंछै, तूं कब लागा था? तब यानै कही, मेरी मन आई तब ही लागा। तब याकौं पूंछी, तोकौं कोऊ ने लगाया था? तब या खपत ने कही, हमकौं कौन लगावै, हम ही

अपने मन तैं लागे थे। तब सबनै जानी, ये मजूर नाहीं, कोई खपत (पागल) है। तब धक्के दिवाय, कढ़ा दिया। मंजूरी नहीं मिली, धक्के मिले। सबनै जानी, दीवाना है। मिहनत वृथा गई। क्यों गई ? सो कहिये है। ये दिवाना काहू का चाकर तो भया नाहीं। अपनी इच्छा-रूप रह्या। बंध-रूप नाहीं। इस दिवाने कैं एता विचार नाहीं। जो मैं फलाने का चाकर हौं, यापै कहिकर काम करों। जो धनी की आज्ञा मानता नाहीं, अपनी इच्छा रूप है, तातें मंजूरी नहीं मिली। खेद वृथा गया। तैसेही यह जीव, एक शुद्ध-धर्म की परीक्षा करि, जाकौं कल्याणकारी जानैं, ताकी आज्ञा-प्रमाण धर्म का सेवन करै। तथा धर्म के अंग दान, पूजा, तपादिक करै, तो धर्म का फल भी लागै। और धर्म-स्वांग तो बहुत धारै, परन्तु कोई आज्ञा रूप नाहीं। स्वेच्छा-स्वच्छंद होय, धर्म-अङ्ग का सेवन करै। अनेक कष्ट करै, सो वृथा जाय। जैसे खपती की मजूरी वृथा भई, तैसे जानना। ऐसे धर्म-अंग सेवनहारे जीवन के, दोय भेद कहे। सो हे भव्य, तूं जानि। जो धर्म की आज्ञा सहित धर्म-अङ्गन का सेवन करैं हैं। और निमित्त के दोष तैं, उनके परणाम चंचल भी होंय, तो उनका धर्म-फल जाता नाहीं। और कोई जीव सर्वज्ञदेव की आज्ञा रहित भया, क्रोध-मान-माया- लोभ के जोग तैं छल-बल कूं लिए, पाखंड सहित, धर्म-सेवन लोक-दिखावन कौं करै, तिनका फल भी वृथा होय। ऐसे जानना। यह तेरे प्रश्न का उत्तर है। तातें भावन की शुद्धता सहित धर्म-सेवन ही, मोक्ष-मार्ग जानि। शुद्ध-भाव बिना खेद ही है, सो

भी वृथा जानना। आगे और कहैं हैं, जा शुद्ध-भाव बिना धर्म-अङ्ग वृथा है—

गाथा—मखि पतङ्ग दहकाया, तसयर चित्तोय णमण तण होई ॥
सुरतरु देवहु दाणो, भावो सुधी विना ण सीझंती ॥ ६७ ॥

अर्थ—मखि पतङ्ग दहकाया कहिए, माखी व पतङ्ग काया दहैं हैं। तसयर कहिये, चोर। चित्तोय कहिये, चीता। णमण तण होई कहिये, इनके तन में बहुत नमन है। सुरतरु देवहु दाणो कहिए, कल्पवृक्ष मनवांच्छित दान देय। भावो सुधी विना ण सीझंती कहिये, परंतु भाव की शुद्धता बिना मोक्ष-मारग नाहीं। भावार्थ--भावन की शुद्धता बिना, मोक्ष नाहीं होय है। नाना तप-संयमादि के खेद, सर्व वृथा जानना। सो भाव-शुद्ध बिना केतेक तो भोरे जीव. मोक्ष के निमित्त अपना भला तन, अग्नि में भस्म करैं हैं। सो ऐसे अग्निमें जलने के कष्ट तैं मोक्ष होती, तो शुद्ध-भाव बिना माखी व पतङ्ग कौं होय। माखी व पतङ्ग, दीपक में निशङ्क होय, तनको दाहैं हैं। सो अज्ञान, संक्लेश भावन तैं मरि, खोटी-गति ही विषैं उपजैं हैं। तातैं शुद्ध-भाव बिना, काय का जलाना वृथा है। और काय तैं अत्यन्त नमैं-विनय किये, शुद्ध-भाव बिना मोक्ष होती, तो चोर पराए-घर में चोरी कूं जाय, तब अपना तन--शीश नवावता जाय है। सो यह मायावी, दगादार, महा-खोटे अन्तरङ्ग का धारी ये चोर। तथा चीता पशु है सो अन्य जीवन कौं मारै है, तब पहले अपनी काय कूं बहुत नमाय करि, पीछे चोट करै। सो काय नमाए—विनय किए, शुद्ध-भाव बिना मोक्ष होय, तो चोर तथा चीते

कौं होय। तातैं धर्म-अभिलाषी पुरुषन कौं भाव ही शुद्ध करना. स्वर्ग-मोक्षकारी है। और शुद्ध-भाव बिना, दान दिए मोक्ष होय, तो कल्पवृक्ष कौं होय। जो वांच्छित फल देय है। तातैं तस्कर, चीता, माखी, पतङ्ग, कल्पवृक्ष ज्ञान-रहित हैं, खोटे-भाव सहित हैं। इन कूं परभव सुख नाहीं। तातैं ऐसा निश्चय करना, कि परभव के हित का कारण, भाव की शुद्धता है। तातैं धर्मार्थी जीवनकूं भाव की शुद्धता करना योग्य है। आगे सुसङ्ग-कुसङ्ग के वांच्छिक जीवन कूं बतावै हैं—

गाथा—वायसस्सांण अणाणी, हीण सङ्गोय रज्जई मूढ़ो।
हंस चतुर णर णाणी, ऊंच सङ्गोय वंछिका गेयं॥ ६८॥

अर्थ—वायस कहिए, कौवा। स्सांण कहिए, कुत्ता। अणाणी कहिये, अज्ञानी। हीण सङ्गोय कहिये, नीच सङ्ग विषैं। रज्जय मूढ़ो कहिये, मूरख राचैं हैं। हंस चतुर णर णाणी, ऊंच सङ्गोय वाञ्छिका गेयं कहिये, हंस, चतुर मनुष्य व ज्ञानी पुरुषन कौं ऊंच-सङ्ग ही सुहावै। भावार्थ—काक कौं चाहे जेते ही रतनमई आभूषण पहराय कें शृंगारो। चाहे जैसा भोजन देय पोखौ। चाहे जैसा खेद खाय, पढ़ावो। कनक के पिंजरे में राखो। इत्यादिक याका लाड़ चाहे जैसा करो। परन्तु जब या काक हाथ-पिञ्जरे तैं छूटै, तब ही ये अज्ञानी, नीच जहां स्थान होयगा तहां ही जायगा। तथा आप समानि काक बैठे होंयगे, तहां जाय तिष्ठैगा। और कुत्ते कूं, चाहे जैसा भला-भोजन करावौ। अनेक भले आभूषण याके तन में पहरावो। पालकी व

रथ की असवारी में धरो। नाना बिछौना, गादी, जाजमै पै राखो। इत्यादिक अनेक भले निमित्त मिलाय कैं राखौ। परन्तु जब यह डोर तैं छूटेगा, तब ग्राम-श्वानन विषैं जाय रमनै लगेगा, तथा घूरा पै जाय तिष्ठैगा। ऐसा ही याका सहज-स्वभाव है। और अज्ञानी कौं चाहे जेता समझावो--पढ़ावो, परन्तु याकी अज्ञानता नाहीं जाय। याका सहज-स्वभाव ऐसा ही जानना। सो अज्ञान, ताके अनेक भेद हैं। तहां एक अज्ञान तौ ऐसा है। जो और कला धर्म--कर्म की सब जानै है। अनेक भेद-भाव समझै है। परन्तु शास्त्र-बांचने के ज्ञान से रहित है। कोई पूर्व-कर्म जोगतैं श्रुतज्ञानावरण के उदय तैं संस्कृत, प्राकृत, देश-भाषादिक शास्त्रन के बांचने का ज्ञान नाहीं। तातैं याकौं अज्ञान कहिये। और एक अज्ञान ऐसा है जो ताकौं शास्त्र-बांचने का ज्ञान तौ है। परन्तु योग्य-अयोग्य, भली-बुरी, पुण्य-पाप, हित-अनहित, इत्यादिक शुभाशुभ विचारतैं, हृदय जाका रहित होय। जैसे तोता कौं पढ़ाय पण्डित किया। सो तोता कौं जैसे काव्य-छन्द पढ़ावो सो पढ़ै। ताका पढ़ना देखि और जन राजी होंय। ऐसा पढ़ाय तैयार किया। परन्तु याके मुख आगे अँगुली करो, तो काट खाय। तथा पिंजरे तैं खोल देव, तो मूरख उड़ जाय। कछू विचारै नाहीं। जो मैं इस रतन--पींजरे में, भले भोजन--जल खावता सुखी हौं। मोकौं इननै पढ़ाया है। सो ये अज्ञान, सर्व भूलि, पींजरा छोड़, जाता रहे। सो कोई ऐसा ही मूरख, अनेक शास्त्र संस्कृत--प्राकृतादि तो वाँचि जानै, परन्तु कषाय-सहित, महामानी, पाप का भय नाहीं, पुण्य--फल की चाह नाहीं, ऐसा

हित--अनहित रूप भाव नहीं समझै। काम, क्रोध, लोभ, बहुत होय जाकें। सो पढ़्या-अज्ञान कहिये। और एक शुभाशुभ विचार रहित होय, अरु अक्षर--ज्ञान तैं भी रहित होय, ताकों भी अज्ञान कहिये। और एक बालक अज्ञान होय। सो सुख--दुःख के स्थान-भेद नहीं समझै। ज्यों बालक कौं, वाके माता--पिता कहैं हैं। पुत्र! भोजन खायकैं, पालने झूलौ-सोवो। अरु घाम में मति जाओ, यहां शीतल जल पीवो। लड़कों में मति जाओ, वह मारेंगे। ऐसी हितकारी-सुखदायक शिक्षा, अपने बालक कौं कहैं हैं। ताके भेद नहीं समझा जो बालक-अज्ञान, सो माता--पिता के वचन उल्लङ्घकें, छिपकें, बड़ी घाम में ही भागकें, बालकन में खेलवे जाय है। तहां शीश में रज (धूल) भरे। घाम तनपे सहे। प्यास लागी. सो सहे है। भूख लागी है। औरन के मुख की गारी सहे है। कोई शिर में मारे, सो भी सहे है। इत्यादि खेद के स्थानन में तो जाय। अरु सुख-स्थान अपना घर, तहाँ नहीं रहे। ऐसा अज्ञान ये बालक है। और एक अज्ञान ग्वाल है। जो सदीव ढोर चरावे। बन ही में रहै, या में भी शुभाशुभ का ज्ञान नाहीं। इस गोपाल को शाल का जोड़ा दीजिये। तो ये अज्ञानी नितंब-वल्लभ, शाल के मोल-गुण कूं नहीं जानता-संता, बैठे है तहां शाल कूं, पूंद नीचे देय बैठे। इसको विशेष-विवेक नहीं होय। सदीव पशून की संगति में रहे। सो तैसी ही बुद्धि धारे हैं। इस गंवार कूं बन में तृषा (प्यास) लागे, तब नदी में जाय, पशु की नाईं मुख ही तैं जल पीवे. हाथ तें नहीं पीवे। खड़ा ही नीतादिक बाधा

करै। याकें शुभाशुभ की खबरि नाहीं। तातें ग्वाल भी अज्ञान है। इत्यादिक कहे मूरखन के भेद, सो इन सर्व कूं नीच-संग ही भला लागै है। और ऊंच-संग में जातैं-बैठतैं-बोलतैं, लज्जा उपजै है। जैसे कोई भले-आदमी का पुत्र, होरी के दिन में, अपना मुख श्याम बनाय, नीच-संग के मनुष्यन में खुशी भया, रमै था—स्वछंद खेले था। सो तहां कोई भला-आदमी आय निकसै; तो लज्जा खाय, छिपि जाय है। उस कारे-मुख सहित, भले-संग में लज्जा उपजे। तैसे इस अज्ञान कौं सुसंग में लज्जा उपजे है। और अपने समानि, अज्ञान के धरनहारे जीव होंय, तिन में ये अज्ञानी प्रसन्न रहै है। तातें ये काक, श्वान, अज्ञान इन कूं नीच-स्थान ही प्रिय है। सो इनका ये सहज-स्वभाव जानना। और एतेन कूं ऊँच-संग भला लागै है। सो ही कहिये है। एक तो हंस, महासमुद्र का रहनेहारा, मोती चुगनेहारा, उज्जवल बुद्धि, निर्मल नीर का पीवनहारा, ऐसे भले-स्थान का रहनेहारा, सुबुद्धि, महासुन्दर तनका धारी, हंस कूं ऊँच-स्थान ही अच्छा लागै है। जहां बड़ा दरयाव होय, बड़े जलका विस्तार घणा-जल होय, हंस तहां सुखी होय। और जे चतुर-नर हैं सो भी तहां राजी होय हैं, जहां अनेक-कला के धारी, विवेकी, चतुर, राजकुमारादि, उज्ज्वल-बुद्धि, आप समानि धर्म—कर्म—कला में समझते होंय। अनेक शुभ-विवेक वार्ता होती होय। नाना नय-जुगतिन की रहसि-सहित प्रश्न-उत्तर होते होंय। अनेक धर्म-कथा-चरचा, शास्त्राभ्यास कौं लिये, होती होय। जहां की चतुराई में, तिनकूं भला लागै। कुसंग तैं अरति

होय, सो चतुर कहिए। और जे धर्मात्मा हैं तिन कूं धर्म-स्थान सो ही ऊंच-स्थान, प्यारा लागै है। सो जहां प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग की कथा, पाप-हरनी पुण्य-करनी बात होती होय, सो स्थान धर्मात्मा कूं भला लागै। तथा जहां अनेक-मतान्तर की रहसि कूं लिये, तत्त्वभेदन का निरधार होता होय, जिनतैं मोक्षमार्ग जान्या जाय, संसार-भ्रमण छूटे, परभव सुख होय, लागे-पाप नाश होंय इत्यादिक ऊंच-स्थानक में रंजायमान होय, सो ज्ञानी कहिये। ऐसे कहे जे सुसंगी हंस, चतुर-नर, ज्ञानी-पुरुष, इनकौं ऊंच-संग प्रिय लागै है। इनका ये ही सहज-स्वभाव है। सो हे भव्य हो, जे नीच हैं तिनकौं नीच-संग प्रिय है। ऊंचन कौं ऊंच-संग प्रिय है। ऐसी परीक्षा करि, नीच-ऊंच की पहिचान करना। जिस मे तेरे भले की होय, तिस संगति में रंजना-मगन होना योग्य है ॥ ६८ ॥ आगे हितून के परखिवे कूं नव स्थान, दृष्टान्त पूर्वक बतावैं हैं—

गाथा—णिपभय खेद दरिदये, भोयण सतयार अज्ञुपएणामो।
जरासक्ति अखभ्फहीयो, इ थल हित हेम पाख कसटीये ॥ ६९ ॥

अर्थ—णिपभय कहिए, राजा का भय। खेद कहिए, रोग। दरिदये कहिये, दारिद्र। भोयण कहिये, भोजन। सतयार कहिये, सत्कार। अज्ञुपएणामो कहिये, आरजी परणाम। जरा कहिये, वृद्धपना। असक्ति कहिये, हीन शक्ति। अखभ्फहीयो कहिये, इन्द्रियन के बल घटैं। इ थल हित हेम पाख कसटीये कहिये, ये स्थान हित रूपी कनक (सोना) के परखवे

कौं कसौटी हैं। भावार्थ—संसार में अपने हितकारी जीव तेई भये स्वर्ण, तिनके परखवे कौं ये कहे स्थान, सो कसौटी समानि हैं। सोई बताइये हैं। जहां एक तो भूप-भय होय। जब राजा का कोप अपने ऊपरि होय, तब अपनी सहाय कूं अपनी चाकरी करै। सो भला चाकर जानना। जो ऐसे समय मैं पासि रहै, विनय करै, सेवा करै, सो सांचा चाकर है। अरु कुटुम्बादि, मन्त्री, जे भूप के कोप में सहाय करें, सो सांचा हितू जानना ॥ १ ॥ और नाना-प्रकार तन-विषैं कुष्टादि-रोग की वेदना भई होय। ता समय मल--मूत्रादि की समेटणा करै, सो ही भला-सेवक, सोही कुटुम्ब, सोही मित्रादि जानना ॥ २ ॥ और जब पाप-उदय तैं दरिद्र आवे, धन की हीनता होय। ता समय में भूख-प्यास सहकैं जो सेवा करै, सो भला सेवक कहिए। जो इस दरिद्र-दशा में सङ्ग रहै, विनय तैं पूर्ववत् रहै, सोही कुटुम्ब, मोही मित्रादिक जानना ॥ ३ ॥ और भोजन देते यथायोग्य आदर तैं, विनय सहित, अन्तरङ्ग के स्नेह तैं भोजन देय, सो सांचा हितू, सोही कुटुम्ब, सोही मित्र सांचा है। सोही सेवक भला है ॥ ४ ॥ और आवते, जावते, बोलते यथायोग्य अन्तरङ्ग-मोह सहित, सत्कार करै। आव-आदरै, सोई सांचा मित्रादिक—सज्जन, जानना ॥ ५ ॥ और सरल-भाव तैं, कुटिलाई तजिकैं, विनय तैं सेवा करै, सो भला सेवक है। सोही मित्र, कुटुम्बादि जानना ॥ ६ ॥ और शरीर में कुमावे की शक्ति घटै। कुटुम्बादिक सर्व की, रक्षा करवे की शक्ति घटै। तन अतिही पराधीन होय। बचन बोलतैं मुखतैं नीर चलै। अङ्ग-उपाङ्ग कम्पन लागैं। इत्यादिक अवस्था,

जरा आये होय, तरुणपना जाय। तव कोई विनय सहित सेवा करै, सो तो सेवक। और या दशा में आदर सहित सेवा-चाकरी करै, आज्ञा मानै। सोही भला पुत्र, भाई, स्त्री आदिक कुटुम्बी, मित्र, जानना ॥ ७ ॥ और उदयतैं, उठतैं, बैठतैं, मल-मूत्र खेपनेतैं शरीर की शक्ति घट गई होय, ता समय अशक्त भये पीछे, सेवा-चाकरी करै, सोही मित्र, कुटुम्बादि जानना ॥ ८ ॥ और जा समय, पचेंद्रिय शिथिल होंय। तथा एक-दोय इन्द्रिय की प्रवृत्ति जाती रहै। नेत्रनतैं नहीं सूझै, नहीं दीखै। तथा काननतैं नहीं सुनै। इस समय में जो कोई, विनय सहित, आज्ञा प्रमाण सेवा करै, सोही मित्र, सोही सेवक, सोही स्त्री-पुत्रादि, सांचे जानना ॥ ९ ॥ ऐसे कहे जे सेवक, मित्र, पुत्र, स्त्री, भाई, माता-पितादि स्नेही, सोही भये कञ्चन, तिन सबके परखिवे कौं ये नव स्थान कसौटी समानि हैं। जैसे कसौटीपै घिसे, भले-बुरे कञ्चन की परीक्षा होय, तैसेही इन नव स्थानकन में मित्र, सज्जन, कुटुम्बादिक की परीक्षा होय है। बाकी भले विषैं तो अनेक चाकरी करैं हैं। कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री आदि आज्ञा मानैं ही मानैं। क्योंकि येतौ सर्व का रक्षक है। परन्तु उक्त नव स्थानकन का अवसर आय पड़े, तब चाकरी करै, सोही सांचा नाता जानना ॥ ६९ ॥ आगे ऊपर कहे जे कसौटी समानि सर्व स्थान, इनपै कौन २ कौं परखिये, सो कहैं हैं---

गाथा—ए णव ठाण कसौटी, पीय तीय मित्तादि पुत्त सजणाणी।
संजय तव धम्म कणका, घसि परखणय पमाण सुदिट्ठी ॥ ७० ॥

अर्थ—ये उक्त नव स्थान, कसौटी समानि हैं। अरु पिया, स्त्री, मित्रादि, पुत्र और अनेक सज्जन और संजय कहिये संयम, तव कहिए तप, धम्म कहिये धर्म, ये सब कहिये ये सर्व ही, स्वर्ण समानि हैं। घसि परवणय पमाण सुदिट्ठी कहिये, नय-प्रमाण इन कूं घसि कैं शुद्ध-दृष्टी होय, सो परखै। भावार्थ—ऊपरि गाथा में कहे नव भय—राज भय, रोग भय, दरिद्र भय, भोजन नहीं भये, असत्कार भये, सरल भाव भये, वृद्ध भये, तन अशक्त भये, इन्द्रिय बलहीन भये, ये नव स्थान कसौटी समानि जानना। सो इन कारण पड़ैं, तब धर्म—कर्म सम्बन्धी जो पदार्थ, तेई भये कनक, तिनकौं परखिये। स्त्री तो भरतार कूं, इन कारण में परखै। और भरतार, स्त्री कौं इन कारण में परखै। और मित्र, मित्र कूं इन कारण में परखै। और भाई, भाई कौं इन कारण पै परखै। और पुत्र, पिता कौं इन कारण में परखै। और पिता, पुत्र कौं इन कारण में परखै। और सेवक, स्वामी कूं और स्वामी, सेवक कूं इन कारणन में परखै। और चित्त की धीरजता, धर्म कार्यन में, तप करतैं, संयम की रक्षा करतैं, इन कारण पै परखिये। इत्यादिक कहे जे धर्म-कर्म सम्बन्धी कार्य सर्व-अंग, इन नव अवसरन में दृढ़ रहै। सो साँचा धर्म—कर्म अङ्ग जानना। वाकी पुण्य-उदय में अपने-अपने स्वार्थ पूरवे में तो, सब ही सहाय करैं। व धर्म-सेवन करैं। परन्तु ऊपर कहे अङ्गन में—सहाय में दृढ़ रहै, सो धन्य कहिये ॥ ७० ॥ आगे एक दुःख कौं अपनी-अपनी कलपना करि, अनेक उपचार बतावैं, सो कहिये हैं—

गाथा—वैद्यो कथयत रोगो, भूतो चयटक गहण मंत्तीए।
पूव्वो पाज्जय णांणय, एक गद जथादिट्ठि भासन्ती ॥ ७१ ॥

अर्थ—इस जीव कौं कोई पाप उदय करि, एक रोग होय। ताकौं जगत के चतुर जीव, अपनी दृष्टि माफिक उस दुख का कथन करैं। सो कोई वैद्य कौं पूछिए, जो हमैं खेद (रोग) काहे तैं है, सो कहो। तो कोऊ ज्वर, वाय, खांसी, स्वांसादि रोग बतावै। और कोऊ मंत्रवादी–चेटकी कूं पूछिये। जो हम दुखी हैं, सो क्यों हैं? तब कहै, तुमकौं ऊपरला फेर है। जोरावरी भूत-प्रेत की झरपट में आये हो। सो हम मंत्र, जंत्र, तंत्र, गंडा कर देंयगे, सो सब रफे होय, साता होय जायगी। और निमित्तज्ञानी कूं पूछिये, जो हम कूँ खेद क्यों है? तब कहै, तुमकौं शनीचर-मंगलादि ग्रहों की क्रूरता है। सो इनका कीया खेद है। तातें इनकी पूजा करौ। दान देऊ। फलाने नक्षत्र में, साता होयगी। और कोऊ धर्मात्मा, संसार-भ्रमण का जाननहारा, पुण्य–पाप का समझनेहारा, तत्त्वज्ञानी, सम्यग्दृष्टी कूं पूछिये, जो हमकौं खेद है सो क्यों? तब समता-रस-रंगीला कहै। भो भव्य, कोऊ पूरव उपार्जित पाप का अशुभ-फल प्रगट भया है। इस भव में ताने दुख कीया है। तातें तुम विवेकी हौ, पाप का फल ऐसा दुखदायक जानि, पाप मति करौ। तातें परभव में फेरि दुख नहीं होयवे कूं, धर्म-सेवन करौ, परभव सुख पावोगे। धर्मात्मा ऐसी कहै। ऐसे एक दुख होय, ताके दूर करवे के अर्थि, जो कोई कूं पूछिये, सो अपनी २ जैसी-जाकी दृष्टि होय. जा वस्तु के अतिशय में

जाका चित्त रंजायमान होय, सो ही इस जीव कूं सहायकारी भासै है। सो जैसा जाका ज्ञान था। तैसा ही इन्होंने इलाज बताया। सो विवेकी इन सर्व के वचन सुनि, धर्मात्मा का वचन सत्य जानि, श्रद्धान करि, पाप का फल दुख जानि, पाप तजि, धर्म के सेवन में जतन करैं हैं ॥ ७१ ॥ आगे ऐसा कहैं हैं जो पहलैं घर कौं तजि, कुटुम्ब कौं तजि, भेष धरि, फेरि घर-मित्र चाहै, ताकों कहा कहिए। सो बतावैं हैं—

गाथा—मिंदयतजि कुटइछये, दाणो तजि देण मूठ जाचंती ॥

बंधू तजि इछमित्तो, तव गय को होय सांगधर आदा ॥ ७२ ॥

अर्थ—मिंदयतजि कुटइछये कहिये, मंदिर छांड़ि टपरिया (झोंपड़ी) चाहै। दाणो तजि देण मूठ जाचंती कहिये, दान का देना तजि उलटा भीख मांगै। बंधू तजि इछमित्तो कहिये, कुटुम्ब तजि फेरि मित्र चाहै। तव गय को होय सांगधर आदा कहिये, तेरी कौन गति होयगी? हे स्वांग धरनहारे आत्मा। भावार्थ—केतेक भोरे, शुभ विचार रहित, इन्द्रिय-सुख के लोभी, प्रमादी, तिननैं गृह की अनेक क्लेशता देखि, उदास होय, घर कूं तजि, भेष धास्या। पीछे भेष का निर्वाह करना विषम जानि, जांचने लागे। फिर इन्हैं टपरिया, छप्पर, मिंदर बनाते देखि, औरतैं स्नेह करते देखि, इत्यादिक विपरीत-भेष देखि कैं, गुरु हैं सो दया करि शिक्षा-सहित हितोपदेश करते भए। भो भव्य, तेरे पुण्य तैं, तेरे पुण्य-प्रमाण मन्दिर में रहै था। तिसको तजि, जोग धास्या। सो तू अब मन्दिर बनवाया चाहै। तथा घास की कुटी, व

छप्पर बनवाने के निमित्त, आश्रय देखता फिरै है। सो हे भाई, तू पहिले क्यों भूल्या ? हे भव्य ! अपने घर में तब तो तूं औरन कूं स्थान देय, सहाय करै था। अब घर तजि, टपरिया बनवाने कूं, दीन भया फिरै है। तातें घर तजना, योग्य नाहीं था। और अब तज्या ही है। तौ बन-विहार करना योग्य है। गुफा, मसान (मरघट), वृक्ष की कोटर में तिष्ठना जोग्य है। अरु ऐसी शक्ति तेरी नहीं थी, तो घर तजना योग्य नहीं था। और देखि, हे भव्य ! घर विषैं था, तो अपनी शक्ति-प्रमाण दीन-दुखी कों दान देय, दयाभाव करि पोखे था। अब तूं घर-विषैं दान देना तजि, उल्टा घरि-घरि दीन भया, भीख जांचता फिरै है ! सो भी तो कूं योग्य नाहीं। तो कूं अजांचीक रहना योग्य है। और सुनि, हे भाई ! घर के पिता, माता, पुत्र, स्त्री, भाई, सज्जन, मित्रादि, स्नेही, मोह के करनहारे, तिन कूं तजि; अब भेषि धरि, अन्य गृहस्थन कौं संबोधन देय, खुशामदि करि, विनय करि, तिनतैं नेह बधाय, मोह के बंधन में फेरि बंध्या चाहै है। अर वह तो-तैं मोह करते नाहीं। तातैं मोह बधावना था, तौ तोकौं घर तजना योग्य नाहीं था। अरु अब घर तज्या है, तो निरमोही रहना योग्य है। तातें हे अजान-भोरे, तैं घर तजि मन्दिर बनाये। तुम दान देना तजि, उल्टे याचना कूं आये। तथा तुम घर के कुटुम्बी-मोही तजि, औरन तैं स्नेह करते फिरो हो। सो हे भोरे, ऐसे तेरे भांड़-बहुरूपिया कैसे नाना स्वांग देख, हमकौं बड़ा आश्चर्य आवै है। सो तेरी कौनसी गति होयगी, सो हम नहीं जानैं, अन्तर्यामी जानैं। ऐसी शिक्षा

उत्तम जीवन कों गुरु देते भए। सो विवेकी हैं तिनकौं, तजे पीछे ग्रहण करना योग्य नाहीं। अरु कभू तजै, कभू अंगीकार करैं; सो ताका तप लेना, बालक का सा चरित्र है। तथा नट के समानि स्वांग धरना जानना। ऐसा जानि, विवेकी जो धर्म-कार्य करैं, सो प्रथम ही विचार कैं करना योग्य है॥ ७२ ॥ आगे ऐसा कहैं हैं जो कौन वस्तु तजि, किस वस्तु कौं राखिये, सो ही बतावैं हैं—

गाथा—पुरतज्जे धण कज्जय, सहधणतज्जेय काजकुलरक्खो।
कुल तज्जय तणकज्जय, पुरधणकुलकाय तज्यधम्मकज्जाय ॥ ७२ ॥

अर्थ—पुरतज्जे धण कज्जय कहिये, पुर तौ धन के निमित्त छाँड़िये है। सहधण तज्जेय काज कुलरक्खो कहिए, सो धन, कुल की रक्षा के निमित्त तजिये है। कुलतज्जय तण कज्जय कहिये, कुल को तन के वास्ते तजिये है। पुरधणकुलकाय तज्यधम्मकज्जाय कहिये; पुर, धन, कुल, काय ये सब धर्म के निमित्त तजिये है। भावार्थ—जगत–जीव, कुटुम्ब-मोह तैं तथा मानादि कषाय पोषवे कौं तथा परम्पराय आपकौं सुख होयवे कौं, इत्यादिक कर्म-कार्यन के निमित्त सहायकारी-सुखकारी धन जानि, ताके पैदा करवे कौं यह विवेकी, अपनी बुद्धि के बलतैं अरु पुण्य के सहाय तैं, घर तजिकैं द्वीपान्तर, समुद्र, बन इन आदिक विषम-स्थान कानन (बन) मैं प्रवेश करि, बहुत कष्ट खाय, क्षुधा-तृषा-शीत-उष्ण अनेक कष्ट सहके, धन पैदा करै है। तब धन के निमित्त, घर तजिये। ये बात प्रसिद्ध है

जो देशान्तर जाय, धन कुमाय लावै है, तब धन होय है। और ऐसे कष्ट करि कुमाया धन, सो कुटुम्ब की रक्षा कौं खरचिये-खुवाइये है। कोई ऐसा कार्य बनजाय, जो धन गये कुटुम्ब बचै, तो कुटुम्ब कौं राखिये, धनदीजिये। सो कुल-कुटुम्ब की रक्षा के निमित्त, धन तजिए। और कोई काम-समय ऐसा आवै है। जो अपने तन की रक्षा के निमित्त कुल-कुटुम्ब कौं तजिये है। और कदाचित् अपने धर्म कूं प्रयोजन आय पड़ै; तो कुल, पुर, धन, सर्व ही धर्म की रक्षा कौं तजिये। तनादिक तजें धर्म रहै, तो तनादिक सर्व कौं तजि कैं, अपने धर्म की रक्षा कीजिये। यहां प्रश्न ? जो तुमने कह्या। काय तजि कैं भी धर्म राखिए; सो काय गई तब धर्म कहां रह्या ? अभी लौकीक में भी ऐसा कहैं हैं कि काया राखै धर्म रहै है। तो काय गये, धर्म रहो कैसे कहो हो ? ताका समाधान-हे भव्यात्मा, तैंने कही सो सत्य है। तेरा प्रश्न हमारे उपदेश तैं मिलता ही है। और लौकीक में कहैं हैं, सो भी प्रमाण है। ए भी सत्य है। परन्तु याका भोरे जीव, भेद नाहीं जानैं हैं। लौकीक में काया राखै धर्म कहैं हैं, सो सत्य है। याका स्वरूप आगे कहैंगे। अरु लौकीक में भोरे या कहैं, जो अपनी-काया राखैं धर्म है, सो ऐसा नाहीं। काया राखैं धर्म कैसे रहै। सो ही कहिये है। सो हे भव्य, तू चित्त देय सुनि। तूने प्रश्न भला कीया। घने जीवका संशय मेटनेहारा, तथा तेरा संशय मेटनेहारा प्रश्न है। सो तू उत्तर कूं चित्त देय, सावधानी तैं सुनि। तोकूं हम पूछैं हैं। जो एक शूरमा है, ताकौं कोई बड़े योद्धा नैं आय ललकार्या। कही वह शूरमा कहां, जाका मैं नाम सुन्या करौं

हौं । वह महायोद्धा होय, शूरमा होय, तो मोतैं आय युद्ध करै । वाके हस्त में बड़ा शस्त्र है। देख्या, सो ही मार्या । सो अब इस शूरमा कौं कहा योग्य है ? इसका धर्म कैसे रहै ? इस बैरी के सन्मुख आय, युद्ध में अपनी काय शस्त्रन तैं खंड २ करि मरै, तो धर्म रहै ? तथा भाग कैं अपना तन राखै, तो धर्म रहै ? सो कहौ । तब वाने कही, भागि जाय तो निंदा होय। शूरमा तो मरै, तब ही धर्म रहै। तब तोकूं कहिये है। हे भव्य, यहां काया अपनी राखै, धर्म रहै। ऐसा कहना झूठा भया। अपनी काया राखै, धर्म रहै। तो शूरमा मरता नाहीं। तातैं जे विवेकी हैं सो धर्म राखवे कौं, काय भी तजि, धर्म राखैं हैं। ऐसा जानना। ऐसे धर्म कूं पुर, धन, कुल, काय सब ही तजैं हैं और धर्म राखैं हैं। अब सुनि, तैंने कही जो काया राखै धर्म है। सो श्रेष्ठ धर्म है। यो भी जिनेन्द्रदेव का उपदेश है, जो काया राखै धर्म है। परन्तु ज्ञान-अंध प्राणी, इसके भेदकूं पावैं नाहीं हैं। धर्म तो काया राखे ही है, सो तुम सुनौ। अब यामैं भेद-भाव है। सो अन्तर भेद कहिये है। काया के भेद षट् हैं। सो इन षट्काय की रक्षा, सो ही धर्म। सो कहैं हैं। पृथ्वी काय ॥ १ ॥ अप काय ॥ २ ॥ तेज काय ॥ ३ ॥ वायु काय ॥४॥ वनस्पति काय ॥ ५ ॥ त्रसकाय ॥ ६ ॥ ये षट् काय हैं। इन कौं राखै, सो धर्म है। पृथ्वी जो भूमि, ताहि बिना-प्रयोजन खोदै नाहीं, जालै नाहीं, पीटै नाहीं, इत्यादिक पृथ्वीकायकी रक्षा करि, दयाभाव करि, हिंसा नाहीं करै। सो पृथ्वी कायकी रक्षा है। और अपकाय जो जल, सो जल कूं बिना-प्रयोजन जारे नाहीं, नाखै नाहीं, तथा प्रयोजन होय तहां जतन तैं

घी-तैल की नाईं जल कूं वर्त्ते। बिना-प्रयोजन डारे नाहीं। ऐसे जल-काय की रत्ता करे। और अग्निकाय तैं बिना-प्रयोजन तो आरंभ नहीं करिये। भुजाईये नाहीं, जालिए नाहीं, जहां अग्निका प्रयोजन भी होय, तो घटाय कैं कीजिये। ऐसे अग्नि-काय कौं राखै। बिना-प्रयोजन पंखादि वस्त्र हिलावना, झटकनादि क्रिया करि, पवनकायकौं नहीं सताइये। सो पवन काय की रत्ता है। वनस्पति के प्रत्येक, साधारण, दूभ, घास, पत्ता, बेलि, छोटे वृत्त, बड़े वृत्त, गुल्म, कन्द, मूल, इत्यादिक हरी-नीली कूं बिना-प्रयोजन खेद नाहीं करै। काटै नाहीं, छेदे नाहीं, छीलै नाहीं, पीलै नाहीं, हाथ-पांव तैं मर्दन नाहीं करै, इत्यादि विधि से वनस्पति काय की रत्ता करै। और बेन्द्रिय जौंक, इल्ली, नारु आदिक केंचुवा ए बेइन्द्रिय हैं। इनकी काया राखै। और तेइन्द्रिय-खटमल, चींटी, तिरूला, कुंथुवादि जीव तेन्द्रिय हैं। इनकी काया राखै। और चौइन्द्रिय-माखी, मच्छर, टीड़ी, भ्रमर (भौंरा), डांस, इत्यादिक चौइन्द्रिय जीव, इनके तन की रत्ता करै, इनकौ घातै नाहीं। और पचेन्द्रिय-हस्ती, घोटक, कुत्ता, बिल्ली, मनुष्य, देव, नारकी ए पंचेन्द्रिय हैं इन पे समताभाव राखि, इनके रत्ता रूप भाव राखि, दया करै। ऐसे त्रस जीव च्यारि प्रकार हैं। तिन कौं पीड़ै-सतावै नाहीं, सो त्रसकाय की रत्ता है। ऐसे पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पती, त्रस, ये षट्काय हैं। इन की काया की रत्ता करै, सतावै नाहीं, मारै नाहीं। मन-वचन-काय करि, इन षट्भेद काया है तिन की रत्ता, सो ही धर्म है। सो श्रावक तो एकदेश रत्ता करैं। मुनि सर्व प्रकार करैं। इन षट् कौ राखैं हैं।

सो ही मोक्षमारग-धर्म है। ऐसे इन षट् काया कौं राखै, धर्म कह्या। सो काया राखै धर्म जानना। आगे ऐसा कहिये है, जो जहां ऐती वस्तु नहीं होय, तो तिस देश-नगर कूं तजिए—

गाथा—जहि पुर णह सतकारो, णह-बंधव णह-मित्त जिणगेहो।
त्रिद्या धम्म ण सुसंगो, सह पुरदेसोय हेय बुध आदा ॥ ७४ ॥

अर्थ—जहि पुर णसह सतकारो कहिये, जिस पुर में सत्कार नहीं होय। णह-बंधव णह-मित्त जिण गेहो कहिये, जहां बांधव नहीं होंय, मित्र नहीं होंय, जिन मन्दिर नहीं होंय। विद्या धम्म ण सुसंगो कहिये, विद्यावान् नहीं होंय, धर्म नहीं होय, सत्सङ्ग नहीं होय। सह पुर देसोय हेय बुध आदा कहिये, सो पुर-देश बुद्धिमान आत्मा के तजवे योग्य है। भावार्थ-जे विवेकी हैं ते ऐसे अशुभ देशादि होंय, तहां नहीं रहैं। सो ही कहिये है। जहां जिस पुर-स्थान में अपना आदर-सत्कार नहीं होय, तहां विवेकी नहीं रहैं। रहैं, तो अनादर पावैं हैं। और अनादर तैं, परणति संक्लेश रूप होय है, पाप बंध होय है। तातैं रहना ही भला नाहीं। और जहां अपने भाई-बन्धु-कुटुम्बी-सहकारी सज्जन नहीं होंय, तहां नहीं रहना। और जहां जिन-मन्दिर नहीं होंय, धर्म-प्रवृत्ति नहीं होय, तो ऐसे धर्म-रहित क्षेत्र विषैं, धर्म का लोभी धर्मात्मा सुजीव नहीं रहै। और जा देश-पुर में विद्यावान्-पण्डित नहीं होंय, तिस क्षेत्र में नहीं रहिये। अगर रहै, तो अपना ज्ञान नष्ट होय। अज्ञानी जीवन के संग तैं, आप अज्ञानी होय। जैसे गोपाल, पशून के सदीव सङ्ग तैं, आप भी पशु समानि, अज्ञानी रहै है। और जीव का

भला करनहारे शुद्ध-धर्म की प्रवृत्ती-क्रिया जहां नाहीं होय, ता क्षेत्र में नाहीं रहै। कुधर्मीन में रहै, तौ सुधर्म का अभाव होय। तातैं धर्म-रहित क्षेत्र में नहीं रहिये। और जहां खोटे-संग के मनुष्य सप्त-व्यसनी होंय। चोर, ज्वारी, अनाचारी जीव होंय। अरु सत्संगति के सुआचारी नहीं होंय, तहां नहीं रहिये। और ऊपर कहे कारण जहां होंय, तहां बुद्धि-बल का धारी धर्मात्मा, ऊंच-संग का वांच्छिक, ऐसे स्थान में नहीं रहे। और जो रहै, तो अपने भले गुण-धर्म का अभाव होय। ऐसा जानना। आगे इन स्थान में लज्जा करिये नाहीं, ऐसा बतावैं हैं---

गाथा—हार विहारे जूझे, णित गीतेय द्यूत वादाए।
भोगो वाजय पठती, यह दह थलेय लज्ज नहिं बुद्धा॥ ७५ ॥

अर्थ---भोजन में, विवहार में, युद्ध में, नृत्य करने में, गीत गाने में, जुआ खेलने में, वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) करने में, पंचेन्द्रिय भोगन में, वादित्र बजावने में, पढ़ने में, इन दश स्थानन में, विवेकीन कौं लज्जा करना योग्य नाहीं है। भावार्थ—जहां भोजन जीमतें लज्जा करै, तो भूखा रहै, खेद पावै, लोक-हाँसि होय, भोरापना प्रगट होय। जैसे धर्म-परीक्षा में मूरखन की कथा कही। तहां एक मूरख ससुरार जाय, भोजन में लज्जा करि, रात्रि कों कोरे चांवल खाय, मुख फड़ाया। लोक-हाँसि भई, अज्ञानता प्रकट भई। तातैं भोजन में लज्जा करै, तो इस मूरख ज्यों खेद-हाँसी पावै। तातैं यहां लज्जा नहीं करना॥ १ ॥ और

व्यवहार विषैं लज्ञा करै, तो व्योपार नहीं बनै । तातैं व्योपार में लज्ञा नहीं करनी ॥ २ ॥
और बैरी तैं युद्ध करतैं लज्ञा करै, तौ युद्ध हारै, माख्या जाय ॥ ३ ॥ और नृत्य में लज्ञा करै,
तो नृत्य-कला यथावत् नाहीं बनै, समय वृथा जाय । तातैं नृत्य-समय में लज्जा नहीं बनै
॥ ४ ॥ ज्वारी कौं द्यूत-रमते लज्ञा नहीं होय । तहां लज्जा करै, तो धन हारे । तातैं द्यूत
में लज्ञा नहीं करनी ॥ ५ ॥ और वाद समय, परवादी (प्रतिवादी) सूं धर्म-कर्म का वाद
करतैं लज्ञा करै, तो वाद हारै । तातैं वाद-समय लज्जा नहीं करनी ॥ ६ ॥ और पंचेन्द्रिय-
भोगन समय मैं लज्ञा करै, तो इन्द्रिय-सुख नाहीं होय । तातैं पंचेन्द्रिय-भोग समय, लज्ञा
नहीं करनी ॥ ७ ॥ और वादित्रों के बजावे में लज्ञा करै, तौ वादित्र-कला सम्पूर्ण नहीं बनै।
तातैं वादित्र-समय लज्ञा नहीं करनी ॥ ८ ॥ और गावने में लज्ञा करै, तो गावना नहीं
बनै। तातैं गावने में लज्ञा नहीं करना ॥ ९ ॥ और शुभ-ज्ञान के बढ़ावे कौं, परभव-सुख
पायवे कौं, शास्त्राभ्यास करने-पढ़ने विषैं, लज्ञा नहीं करनी । पढ़ने में लज्ञा करै, तो ज्ञान
की वृद्धि नहीं होय । यातैं शास्त्राभ्यास-पढ़ने में लज्ञा नहीं करनी। चरचान में, प्रश्न करिवे
में, तत्व विचार में, उपदेश करतैं, इत्यादिक विद्याभ्यास के ध्यान में, स्वाध्याय में लज्ञा करै, तो
आप ही अज्ञानी रहै। अपना विगाड़ होय । तातैं विद्या के स्वाध्याय करवै में, लज्ञा नहीं
करनी ॥ १० ॥ ऐसे भोजन, व्यापार, युद्ध, नृत्य, गीत, द्यूत, वाद, भोग, वादित्र, पठन इन
कहे दश भेदन विषैं, चतुरन को लज्ञा जोग्य नाहीं । इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये,

अनेक नय सूचक, उपदेश-कथन वर्णनो नाम, तेईसवां पर्व संपूर्ण भया॥ २३ ॥

आगे ऐसा बतावैं हैं कि जो पक्ष, सबल होय तो निर्बल का भी कार्य सिद्ध होय---

गाथा---गिरि-सिर तरु-फल पकऊ, काको भक्षंति पक्षबल दीणो।
णभूतव्यं सिंहो, पक्षीणो जय गज-घटा सूरो ॥ ७६ ॥

अर्थ---गिर-सिर तरु-फल पकऊ कहिये, पर्वत के शिखर पर एक वृक्ष के फल पके हैं। काको भक्षंति पक्ष बल दीणो कहिये, ताकौं काक तो पंखन के बलतैं, दीन है तौ भी खाय है। पक्षीणो कहिये, परन्तु पंखा नहीं तातैं। णभूतव्यं सिंहो कहिये, ताकूं सिंह नहीं भोग सकै है। जय गज-घटा सूरो कहिये, यद्यपि ये गजन के समूह कूं जीतवे कूं शूर है। भावार्थ--पक्षन का बल होय, तौ समान्य बल-धारी का भी कार्य सिद्ध होय। और पक्षन का बल नहीं होय, तो बड़े बलवान् का भी कार्य सिद्ध नाहीं होय है। सो ही बतावैं हैं। जैसे कोई एक पर्वत के उत्तंग शिखर पर, एक वृक्ष है। ताकै भले-फल, मिष्ट लागें हैं। सो ताकूं खायवे कूं कोऊ समर्थ नाहीं। ऊंचा बहुत है। सो ता फल कों काक तौ अपने पंखन के बल तैं भोग सकै। और तिस फल के भोगवे कौं, सिंह की सामर्थ नाहीं। क्यों? जो सिंह के पांखन का बल नाहीं। बड़े २ हाथिन का समूह कौं तौ सिंह जीतै, ऐसा बलवान् है। परन्तु उत्तंग पर्वत के शीश पर, वृक्षन के फल खायवे कौं समर्थ नाहीं। काहे तैं, कि पांख नाहीं। सो देखो, पांखन के बल तो काक भी बड़ा फल खावै। अरु पंख बिना, सिंह के हाथ भला-फल

नहीं आवै। तातैं सर्व तैं बड़ा बल, पंखन का जानना। तातैं विवेकी हैं ते पक्षबल नहीं तोड़ें हैं। जैसे कोई बड़ा राजा है। ताके धन-खजाना बड़ा है। आप महा बलवान् होय। बड़ा गढ़ होय। ऐसा होय, परन्तु अपनी पक्ष के योद्धान का अपमान करि, तिन बड़े सामंतन का सहाय-पक्ष तोड़ै, तो आप राज्य-भ्रष्ट होय। और योद्धान का पक्ष होय, हजारों राजा जाकी पक्ष होंय। तो जीत पावै, सुखी होय। तातैं विवेकी होंय, तिनकौं तन तैं, धन तैं, राज तैं, विनय तैं, जैसे बैने तैसे, पक्ष-बल राखना योग्य है। तिन में उत्कृष्ट-पक्ष, धर्म का है। ताका ही सहाय राखना योग्य है। आगे हित है, सो बड़ा बल है। ऐसा बतावैं हैं----

गाथा----एोह बल रघु-हरि दोऊ, दहमुह-जय सीय लेय लङ्काए।
दहसिर बंधु विरोधय, तण-कुल-खय राय-खोय अपसाओ ॥ ७७ ॥

अर्थ---एोह बल रघु-हरि दोऊ कहिये, परस्पर स्नेह के बल तैं राम-लक्ष्मण दोऊ। दहमुह-जय कहिये, दशमुख कौं जीत कैं। सीय लेय लंकाए कहिये, सीता कौं लेय लंका से आये। दहसिर बन्धु विरोधय कहिये, दशशीश ने बंधु के विरोध तैं। तण-कुल-खय राय-खोय अपसायो कहिये; तन, कुल अरु राज्य का क्षय करि, अपयश पाया। भावार्थ---परस्पर बन्धुन के स्नेह होय, सोही बड़ी सैन्य है। स्नेह ही बड़ा बल है। सो ही बड़ा खजाना है। सो ही बड़ा पुण्य का उदय है। सो ही बड़ा यश है। और परस्पर बन्धुन में विरोध का होना, सो ही बड़े पाप का उदय है। सो ही अपयश है। सो ही हार है। जैसे राम-लक्ष्मण

दोऊ भाईन ने, परस्पर स्नेह रूपी सैन्या तैं, अपने बन्धु-स्नेह के बल तैं, रावण तीन खण्ड का स्वामी, महा मानी, बड़ा जोधा, च्यारि हजार अक्षोहणी दल का ईश, तिस कौं युद्ध विषैं जीत्या। ताकों मार, अपनी स्त्री महासती, ताहि लई। पीछे इन्द्र की विभूति समानि संपदा सौं भरी, देवलोक की शोभा सहित ऐसी लंका-पुरी, ताका राज्य पाय, इन्द्र की नांईं लंका में प्रवेश करते भये। सीता सहित लंका का राज्य पाय, सुखी भये। सो यह दोऊ भाईन के परस्पर स्नेह रूपी सैन्य-बल का माहात्म्य जानना। और परस्पर बन्धु-विरोध तैं, रावण का क्षय भया। रावण ने भोरापनें तैं, भाई विभीषण से द्वेष-भाव करि, देश तैं काढ्या। सो भाई-विरोध तैं, विभीषण रामचन्द्र पै गये। सो राम महा-सज्जन, आये के रक्षक, विभीषण कूं स्नेह देय राखा। विभीषण के जातैं, रावण निष्पक्षी भया। युद्ध मैं मार्या गया। सो तन नाश भया, कुल नाश भया। अरु राज्य भ्रष्ट होय, अपयश पाय, कुगति गये। सो ये बन्धु-विरोध के अन्याय का फल है। तातैं विवेकी हैं तिन कूं, जश कूं व सुख कूं, बन्धून विषैं स्नेह-भाव राखने का उपाय राखना जोग्य है। और जिन जीवन कैं, रावण की नाईं तीव्र कषाय उदय आवै, तब बन्धु-विरोध होय, ऐसा जानना। आगे न्याय-मार्ग की महंतता बताइये है और अन्याय का फल कहिये है—

गाथा—जुगभट रघु-हरि न्यायो, दहसिर-जय सैण सहित जस पायो।
दहमुख ठांण अणायो, कुलबलतण-णास अयस दुगताई ॥ ७८ ॥

अर्थ——रघु-हरि दोऊ ही भटों ने, न्याय के प्रसाद तैं, दसशीश कूं सैन्या सहित जीत, यश पाया। अरु दसमुख, अन्याय करि; कुल फौज, निज तन, इनका नाश करि, अपयश पाय, दुर्गति गये। भावार्थ--राम लक्ष्मण ये दोऊ महा सुभट, सर्व राजनीति के वेत्ता; आप दोऊ भाई, रावण के जीतवे कौं, लंका चालने कौं उद्यमी भये। तब सुग्रीवादि, बंदर-वंशीन के राजा, सर्व आय कहते भये। हे स्वामी! वह महा योद्धा है। तीन-खंड के सामंतन के जीतवे का, उस एकले में बल है। ऐसा रावण, महा पराक्रमी, चक्र का धारक, तीन-खण्ड नाथ, ताके संग अनेक विद्या के नाथ बड़े राजा, अनेक देव जाके आज्ञाकारी, और हजारों देव जाके तनकी रक्षा करैं हैं। ऐसा जो रावण, ताके जीतवे कौं, इन्द्र भी सामर्थवान् नहीं है। ऐसे त्रिखंडी नाथ के जीतवै कौं उद्यमी भये हो, सो तुह्मारा उद्यम कैसे पूर्ण होयगा? और कदाचित् ये बातैं रावण ने सुनी, तो तुह्मारा तन सहज ही संकट में पड़ेगा। सो तुम विवेकी हो, विचार देखो। तुम तो दो भाई हो, अरु रावण पृथ्वीनाथ है। कैसे जीत पावोगे? तातैं विचार कैं उद्यम करना योग्य है। इत्यादिक रावण के पराक्रम की बात, सर्व विद्याधरों ने कही। तब इन विद्याधरों के वचन सुनि कैं, दोऊ भाई निशंक होय, कहते भये। भो विद्याधीश हो, तुमने रावण के बल—पराक्रम—पुण्य की महिमा, हमारे आगे कही। तुमकों रावण ऐसा ही भासै है। जैसे अनेक बिना सींग के भेड़न का समूह, तामैं एक शृंग का धारी मीढ़ा होय है, सो सर्व भेड़न कौं बली ही दीखै है। वह अज्ञान-भेड़न का समूह,

ऐसा नहीं जानैं है, जो यह फलानी भेड़ का बच्चा है। सो जेते हम हैं, तैसा ही ये है। हमसे ही याके माता-पिता हैं। परन्तु याके शृंग देखि, सर्व भेड़ उस मीढ़ा तैं भय खाय, डरैं हैं। सो मीढ़ा, सर्व भेड़न के समूह कौं बली भासै है। सो सर्व भेड़--बकरी उस मीढ़ा के दास होय, उसकी आज्ञा मानैं हैं। और वह मीढ़ा उन सब बकरी--भेड़न का नाथ होय, अनेक भेड़ अपनी आज्ञा रूप देख, तिन सहित वह मीढ़ा, महा मानी भया, स्वच्छंद होय, बन बिषैं बांका २ फिरै है। सो जब तांईं नाहर का शब्द बन में नहीं भया, तब तांईं वह मीढ़ा फूल्या--फूल्या बन में फिरै है। और जब सिंह की गर्जना का शब्द भया, तब ताकूं सुनि कैं, मीढ़ादि सर्व भेड़--बकरी, भय कर कंपायमान होय, खान-पान की सुधि भूलि जाँय हैं। जीवन का संदेह करैं। ऐसे ही तुम जानों। जब तांईं रामबली के धनुष की टंकार नहीं भई, तब तांईं रावण रूपी मीढ़ा, नभचर रूपी भेड़न में मानी भया है। और जब हमारा सिंह समानि शब्द भया, तब रावण-मीढ़ा कूं, सैन्या रूपी भेड़न सहित, जीवना कठिन जानौ। अहो! खगाधीश हो, चोर का पराक्रम कहा? रावण चोर है। और अन्याय पथ का धारी है। जो राजा होय, अन्याय करै। तो ताका पराक्रम, नष्ट होय। तुम मति डरो। और तुह्मारा चित्त, भय रूप भया होय। तो तुम जाय, अपने घर-कुटुम्ब में तिष्ठो!। हम तो न्याय पै युद्ध करैं है। सो सांचे होंयगे, तो दोऊ भाई जीतेंगे। ऐसी कहि, रावण तैं युद्ध कीया। सो अपनी न्याय रूपी सैन्या के बल करि दोऊ भाई, रावण

कूं मारि, सर्व सैन्या सहित, जीत्या। ताकरि पृथ्वी–मण्डल में यश प्रगट होय, पवन की नाईं भ्रमता भया। सो यौ तो सत्य--मार्ग की महिमा जानौ। और रावण अर्द्धचक्रवर्ती, महा बलवान्, बड़ी सैन्य का धारी था। सो भी अन्याय के जोग तैं, युद्ध हारा। अन्याय के योग तैं, दोय पुरुषन तैं भंग पाय, मार्या पर्या। सो ए अन्याय का फल है। सो न्याय का फल रामचन्द्र कूं, अरु अन्याय का फल रावण कूं मिल्या। ऐसा जानि, अन्याय मार्ग तजि, न्याय मार्ग रूप परणमन करना योग्य है॥ ७८॥ आगे अनेक संकटन विषैं; पूर्व पुण्य, जीव कूं सहाय है। ऐसा कहैं हैं---

गाथा—रण वण अरि जल ज्वाला, सायर सखरेय सैण पम्मत्ते।
मग गज हय असवारो, एको संणाय पुव्व पुण्णाए ॥७६॥

अर्थ—रण कहिये, युद्ध में। वण कहिये, वन में। अरि कहिये, बैरी तैं। जल कहिये, नीर तैं। ज्वाला कहिये, अगनि तैं। सायर, कहिये समुद्र तैं। सखरेय कहिये, पर्वत तैं। सैण कहिये, सोवने में। पम्मत्ते कहिये, प्रमाद समय। मग कहिये, मार्ग (राह) जाते। गज-हय असवारो कहिये, हाथी-घोड़ा की असवारी समय। एको संणाय पुव्व पुण्णाए कहिये, इन कहे ऊपरले स्थानकन में एक पूरव भव का कीया पुण्य ही सहाय जानना। भावार्थ---जब प्राणी युद्ध कों जाय है। तब शरीर पै रक्षा कूं, बखतर, टोप, पाखर, झिलमिल (वस्त्र विशेष), पेटी, ढाल, अनेक वस्तु अपने तन की रक्षा कूं राखै है। और ऐसा विचारता

जाय है। जो पराये तीर-गोली आवेगी, तो बखतर-टोपादिक तैं रक्षा होयगी। और मेरे पास सुभट-सैन्या बहुत है, सो मैं जीतंगा। ऐसा विचार करै है, सो सब वृथा है। रण तैं जीवित आवना, जीति आवना, सो सर्व फल एक पूर्वले पुण्य का है। पूरव पुण्य नाहीं होय, तो मरण ही होय है, ऐसा जानना। और कोई दीरघ अटवी (बन) में भूलकर आगया होय, तो तहां अनेक सिंह, सुअरादि दुष्ट-जीवन तैं बचना। तथा चोरादि के भय तैं बचि, सुख तैं घर आवना। सो भी पूरव-पुण्य का ही सहाय जानना। और कोई दीरघ बैरी के दाव में आजाय, तहां भी पूरव-पुण्य सहाय है। और कोई नदी-सरोवर के दीरघ-जल में जाय पड़ै, तो वहां भी पूर्व-पुण्य सहाय जानना। और दीर्घ-अग्नि बीच में पड़ जाय, तहां भी पूरव पुण्य सहाय है। और कदाचित् समुद्र में जाते, तामैं जाय पड़ै। तो वहां भी पूरव-पुण्य सहाय है। और अनेक भय के स्थान, ऐसे भारी पर्वतन के समूह में जाय पड़ै। तहां पुण्य ही सहायक होय है। सो कैसे हैं पर्वत, उत्तङ्ग शिखर कों धरैं, बड़ी २ गुफान करि पोले, अत्यन्त भय के उपजावनहारे, सिंहादि क्रूर-जीवन करि भरे; ऐसे पर्वतन में, बचावन-हारा एक पुण्य ही है। और जब जीव, निद्रा के उदय तैं निद्रा के वशि होय, तब मृत्यु की नांईं आशंका उपजै है। बेसुध होय, पराक्रम रहित होय है। ऐसी अवस्था में बैरी, चोर, अग्नि, सर्पादिक जीवन तैं बचावनहारा पुण्य ही है। और प्रमाद-दशा में अनेक कार्य करै है। सो अनेक स्थानन में, प्रमाद तैं चलै है। प्रमाद तैं बोलतैं, प्रमाद तैं खावतैं,

प्रमाद तैं भागतैं, इत्यादिक प्रमाद दशान में पुण्य सहाय करै है। और अनेक संकटन में,
अनेक रोग के संकटन में, बैरी के संकट मैं, सिंहादिक जीवन के संकट में, अग्नि-जलादि
अनेक संकटन में पुण्य सहाय करै है। और जब जीव, हस्ती की असवारी करि भ्रमै है तब,
तथा घोटक—असवारी करि भ्रमैं तब; इनकी असवारी का निमित्त, काल-समान भयदाई है।
सो इन गज-घोटक (घोड़ा) की असवारी में, पुण्य ही सहाय है। ऐसे ऊपर कहे जे सर्व
स्थान, तिन में काल का प्रवेश है। ये सब स्थान, दुख के कारण हैं। सो इन में निर्विघ्न
राखनहारा, पुण्य ही जानना। तातैं विवेकी जीव हैं, तिनकौं भव-भव सुख के निमित्त,
पुण्य-उपार्जन करना योग्य है। हे भव्यात्मा, तूं महा संकट पाय के, धन भी उपाया चाहै
है। सो संकट-खेद किये तौ धन का उपार्जना दुर्लभ है। और तूं संकट सेवन करके, धर्म का
सेवन करै। तो धर्म के प्रसाद तैं, धन होना सुगम है। देखि, कष्ट तैं धन होय, तौ नीच-कुली
हिम्मालादि, शीश-भारादिक ढोवन कार्य बहुत करैं हैं। सो तिनका उदर भी कठिनता तैं
भरै है। तातैं तूं धन का अर्थी है, तौ तुझे धर्म का ही सेवन करना योग्य है॥ ७९ ॥ आगे
ऐती वस्तु काहू के कार्यकारी नहीं, ऐसा बतावैं हैं---

गाथा—सर-जल-गत तरु-छाया, सुत-गुण-गत धण-दाण पुस्स-गंधाऊ।
कण्णा तव गत साधउ, इव धम्म-गत-णर णेण-गय-काया॥ ८० ॥

अर्थ---सर जल गत कहिये, सरोवर तौ नीर रहित। तरु छाया गत कहिये, वृक्ष छाया

रहित । सुत गुण–गत कहिये, पुत्र गुण रहित। धन दाण–गत कहिये, धन दान रहित । पुस्स गंधाऊ कहिये, फूल सुवास रहित । कंणा तव गत साधऊ कहिये, दयाभाव रहित साधु । इव धम्म गत णर कहिये, ऐसा ही धर्म-रहित मनुष्य। णेण गय काया कहिये, जैसे नेत्र रहित शरीर । भावार्थ-सरोवर की शोभा जल है। और सरोवर का विस्तार तौ बड़ा होय । पक्की-सुन्दर पारि होय। ऐसे सरोवर में जल नहीं होय । तौ जल रहित सरोवर वृथा है । और वृक्ष की शोभा, छाया तैं है । और वृक्ष बड़ा होय । दूर तैं दीखै, ऐसा है । अरु छाया रहित है । तो वृथा है । और पुत्र की शोभा सुपूत है। सुपूत-पुत्र सब कूं सुखकारी है । और पुत्र तौ है । परन्तु अनेक दोष सहित होय, अविनयी होय, व्यसनी होय, ऐसे अपयशकारी, अवगुण करि सहित होय, गुण-रहित पुत्र होय, तौ वह पुत्र वृथा है । और धन है, सो दान तैं सफल होय है । धन तौ बहुत है किन्तु दान रहित है, तौ धन वृथा है। और फूल है सो सुगन्ध तैं भला लागै है । और फूल दीखने का तो भला है, परन्तु सुगंध रहित है। तौ वह फूल वृथा है । और साधु है सो दयाभाव सहित, महा तपस्वी होय, सो पूज्य है। और साधु है अरु दयाभाव रहित है। तप भावना रहित, दीन होय । तौ ऐसा साधु वृथा है । और शरीर है, सो नेत्रन तैं सफल है। और जो शरीर तौ है, किन्तु नेत्र रहित है। सो काया वृथा है । तैसे ही मनुष्य पर्याय, धर्म तैं सफल है । और जैसे ऊपर कहे-सर, जल बिना वृथा है । तरु, छाया रहित वृथा है । इत्यादिक कहे ए वृथा–स्थान, तैसे ही धर्म-

बिना, मनुष्य-पर्याय वृथा जानना । तातें विवेकी हैं, तिनकौं पाई पर्याय कौं, धर्म विषैं लगाय, सफल करना जोग्य है ॥ आगे ये वस्तु पर-उपकार कौं बनी हैं, सो बताईये है---

गाथा---सरता-पय पुख-गंधउ, तरु-साया-फल ईख-मधुराई ।

सज्जण तणधन वाचउ, इ पर-उवकार कारणं सव्वे ॥ ८१ ॥

अर्थ---सरता-पय कहिये, नदी का नीर । पुख-गंधउ कहिये, फूल की सुवास। तरु साया फल कहिये, वृक्ष की छाया व फल । ईख मधुराई कहिये, ईख जो सांठे का मिष्टपना । सज्जण तण धण वाचऊ कहिये, सज्जन का तन-शरीर, धन, वचन । इ पर-उपकार कारणं सव्वे कहिये, ये कही जो वस्तु सो सब पर-उपकार के निमित्त बनी हैं । भावार्थ-नदी का जल, नदी नहीं पीवै । परोपकार निमित्त, अन्य जीवन के पोषवे कौं, सुखी करवे कौं, जल का प्रवाह सहज ही बह्या करै है। और फूल की खुशबू, फूल नहीं सूंघै है । परन्तु और जीवन के सुखी करवै कूं, फूल खुसबू कौं धारैं हैं। और वृक्षन की सघन-शीतल छाया में, वृक्ष नहीं बैठें हैं। और जीवन के खुशी करवे के अर्थ, परोपकार कूं, सघन-छाया कूं वृक्ष धारैं हैं। और वृक्ष के मनोहर-मिष्ट फल, वृक्ष नहीं खांय हैं । परन्तु पर के उपकार के निमित्त, अन्य जीवन कौं पोषवे कूं, सुखी करवे कूं, वृक्ष फल धारण करैं हैं। ये औरन के पत्थर भी खाय, मिष्ट-फल देंय, ऐसे उपकारी हैं । और सांठे हैं सो आपनो मिष्ट रस, आप नहीं भोगैं हैं। परन्तु पर के उपकार कूं, पर के पोखवे कूं, सुखी करवे कूं, रस का धारण करैं हैं। ऊपर कही

वस्तून के गुण, सो सब पर-उपकार के कारण हैं। तैसे ही सज्जन-धर्मात्मा-दयावान् पुरुष हैं, तिनका शरीर-पुरुषारथ, पर-जीवन की रक्षा कौं, पर-उपकार के निमित्त, बन्या है। और जीवन कूं, सज्जन नाहीं सतावैं हैं। और सज्जन-पुरुषन का वचन भी, पर-उपकार के निमित्त है। जैसें परजीव का भला होय, पर-जीव सुखी होंय, ऐसा वचन बोलैं हैं। और सज्जन का धन, पाप-हिंसा में नहीं लागै। जहां अनेक जीवन कूं पुण्य उपजै, धर्मात्मा जीवन कूं अनुमोदना करि पुण्य उपजावै तथा अनेक जीवन की जहां रक्षा होय, इत्यादिक धर्म स्थानकन में सज्जन का धन लागै। ऐसे ऊपर कहे जे-जे स्थान, सो सर्व पर-उपकार कौं बने हैं, ऐसा जानना ॥ ८१ ॥ आगे इन षट् स्थानन में लज्जा नहीं करनी, ऐसा कहिये है---

गाथा---जिण-पूजा मुणि-दांणउ, पत्ताखाणाय झांण आलोय।
गुरुय णिज अघ जंपय, इह षड थाणेय लज्ज नहिं बुद्धा ॥ ८२ ॥

अर्थ---जिण पूजा मुणि दांणउ कहिये, जिन पूजा अरु मुनि दान में। पत्ताखाणाय झाण आलोए कहिये, त्याग में, ध्यान में, आलोचना में। गुरुय णिज अघ जंपय कहिये, गुरु के समीप अपने दोष कहने में। इह षड् थाणेय लज्ज नहिं बुद्धा कहिये, इन षड् स्थानकन में लज्जा नहीं करनी। भावार्थ---जिन-पूजा में लज्जा करै, तौ पूजा का फल नाहीं पावै। तातैं अन्तर्जामी, सर्वज्ञ, वीतराग भगवान् की पूजा निशंक होय, अष्टद्रव्य तैं करनी। ज्यों

उत्तम फल होय ॥ १ ॥ और यतीश्वर के दान देने विषें लज्जा करै, तो दान के फल का अभाव होय, तातैं जगत गुरु, दयाभण्डार, नगन तन धारी, वीत रागी, समता समुद्र के वासी गुरुन कूं दान दीजिये; तब निशंक होय, दीजिये। तब उत्कृष्ट पुण्य-फल होय। ऐसे मुनीश्वर कौं कोई मिथ्यादृष्टी, भक्ति-भाव तैं दान देय, तौ ये उत्कृष्ट भोग-भूमि में तीन पल्य की आयु सहित, तीन कोस के तन सहित, उत्तम मनुष्य होय। और जो सम्यग्दृष्टी ऐसे गुरु कों दान देय, तौ कल्पवासी-देव होय। तातैं मुनि के दान में लज्जा नहीं करनी ॥ २ ॥ और प्रत्याख्यान जो कोई वस्तु का त्याग करना तथा कोई नियम-आखड़ी करनी होय, तौ निशंक होय करिये। सर्व में प्रगट कर दीजै, यामैं लज्जा नहीं करिये। लज्जा करै, तो त्याग का अभाव होय। तथा कारण पाय, नियम भंग होय। तातैं निशंक होय त्याग प्रगट करने में लज्जा नाहीं करिये ॥ ३ ॥ और लज्जा सहित ध्यान करे, तौ चित्त स्थिरीभूत नहीं रहै। फल-हीन होय। तातैं निशंक होय ध्यान करै, तौ उत्कृट-फल होय। यातैं ध्यान में लज्जा नहीं करिए ॥ ४ ॥ और अपने किए पापन कौं यादि करि; आलोचना करतैं; लज्जा नहीं करिये। कदाचित् ऐसा विचारै; जो मैं ऐसा बड़ा आदमी होय, अपनी निन्दा कैसे करौं ? तौ पाप कटै नाहीं। तातैं निशंक होय, अपनी अज्ञानता, प्रमाद-बुद्धि की, बारंबार आलोचना किये; पाप का नाश होय। ऐसा जानि आलोचना करते; लज्जा नहीं करनी ॥ ५ ॥ और गुरु की पासि जाय; अपने दोष प्रकाशिये—कहिये, तो दोष जाय।

और गुरु पै अपने दोष प्रकाश तैं लज्जा करै, तो दोष नाहीं जाय। जैसे सद्वैद्य के पास रोगी अपना रोग प्रकाश तैं लज्जा करै, भय करै, तो रोग नहीं जाय, आप दुखी रहै। वैद्य पै रोग प्रगट करै; तो वैद्य औषध देय, सुखी करै। तातैं निशंक होय; गुरु पै अपना दोष कहिए, लज्जा नहीं करिये, तौ दोष जाय ॥ ६ ॥ ऐसे कहे ऊपर षट् स्थान; तिनमें लज्जा नाहीं करिये। ऐसा जानना ॥ आगे साहस तैं सर्व संकट मिटैं हैं; ऐसा कहैं हैं---

गाथा—रोगे रण संणासे, संकट मरणेय झाण तव धम्मे।
दालदये जल गहणं, साहसे सफलं होय सहु धीरा ॥ ८३ ॥

अर्थ—रोग में, रण में, सन्यास समय में, अनेक संकटन में, मरण समय, ध्यान समय, तप मैं, धर्म सेवन में, दारिद्र में, दीरघ जल के तिरवे में, इन सर्व जगह में, साहस तैं सब कार्य सफल हो हैं। भावार्थ—पाप कर्म के उदय करि आए नाना प्रकार वात, पित्त, ज्वर, कफ, खांसी, स्वासादिक अनेक रोग, तिनकरि बधी जो बेदना, सो काहू तैं मिटती नाहीं। रोये-चिन्ता कीए; भरम खोवना है। सुखदाता नाहीं। तातैं विवेकी हैं ते ऐसा विचारैं, जो मैंने पूर्व पाप-कर्म उपार्ज्या है; सो अब बिलाप कीए कहा होय? ये कैसे जाय है? तातैं राजी होय, मोकौं भोगना है। ऐसा साहस विचारै; तब सर्व-रोग सहज ही जाय। बेदना मन्द होय जाय है। तातैं रोग-दुख में साहस चाहिये। और युद्ध विषैं; अरि (शत्रु) कौं प्रवल जानि, संग्राम (युद्ध) विषम देखि करि, कायर-भाव करै। कंपायमान् होय, धीरजता

तांई भोगन में ही रंज्यायमान रह्या। सो हे भव्यात्मा ! तुच्छ पुण्य, तुच्छ पुरुषारथ, अल्प स्थिति सहित महां चपल मनुष्य के सुख, तिन मैं तूं कैसे तृप्त होयगा ? तातें हे निकट संसारी ! समता भाव धरि, भोगन तैं उदास होऊ। या मनुष्य पर्याय की अल्प स्थिति और रही है। ता मैं अब तोकूं मोक्ष होवे कूं, धर्म का ही साधन करना योग्य है। फेरि ऐसा अवसर कठिन है। और हे सुबुद्धि ! इन्द्रियन के सुख तौ तैंने अनेक बार भोगे। तिनकूं फेरि भोगने में कहा प्रीति करै है ? और जो नवीन सुख; जो कबहूं नाहीं भोगे होंय; ऐसे सुख कूं भोगवै, तौ नवीन सुख होय। तातें मोक्ष का सुख तैंने कबहूं नहीं भोग्या है। सो याके भोगवे कूं, धर्म का साधन करना योग्य है। येही विवेक का फल है। ऐसा जानना। आगे दीरघ दुःख नरक–पशून के तिनतैं नहीं डर्या, तौ तप के तुच्छ दुखतैं कहा डरै है ? ऐसा बतावे हैं—

गाथा—असुहं फल णक तिरियो, भुंजे दुह अणेय मूढ़ आदाए।
तो तव लव दुह आदा, कंपय किं सेय धम्म सिव कज्ज़े॥ ६०॥

अर्थ—असुहं फल णक तिरियो कहिये, अशुभ के फल नरक–तिर्यंच गति के। भुंजे दुह अणेय मूढ़ आदाए कहिये, भोरे आत्मा ने अनेक दुख भोगै। तो तव लव दुह आदा कहिये, तो तप के अल्प दुखन तैं आत्मा। कंपय किं कहिये, कहा कंपै है ? सेय धम्म सिव कज्ज़े कहिये, मोक्ष होवे कूं धर्म का सेवन करि। भावार्थ—भो आत्माराम ! तूं ने अशुभ के

फल करि, नरक में छेदन-भेदन आदि पञ्च प्रकार दुख अनेक बार सहे। सो कर्म के बसि पराधीन होय, महा दुःखन कूं सहज ही भोग लये। और तिर्यंचन के दुख अनेक प्रकार। भूख, तृषा, शीत, उष्ण, दंश-मंसादि बहुत वेदना, पराधीन पशु काय की भोगी। सो भी सहज भोग लई। सो तहां तू डरया नाहीं। तौ हे भोरे प्राणी! तप विषैं नर्क-पशू तैं अधिक दुख नाहीं। बहुत ही अल्प दुख है। तातैं हे भव्यात्मा! तूं तप-दुख तैं मति डर। तप विषैं तो स्वाधीन खेद है। सो सुख समान है। और पराधीन दुख के भोगतें विकल्प होय, तिनकरि तो पाप बंध होय है। तातैं परम्पराय आगामी काल में भी दुख-फल ही होय है। और स्वाधीन तप का खेद सहते, परणामन में सन्तोषी-धर्मात्मा कैं विकलप नाहीं होय है, तातैं पुण्य का बंध होय। ताकरि आगामी काल में भी सुख-फल होय। तातैं नर्क-पशून के दुख तैं ने पराधीन होय सहे, तहां तो डरया नाहीं। तौ तिन तैं बहुत थोरे तप के खेद तैं, तूं मति डरै। समता सहित तप का खेद सह। अङ्गीकार कर। ज्यों तेरे समभावना सूं किए नाना प्रकार तप, तिनकरि कर्म का नाश होय, मोक्ष होय। तातैं तोकूं धर्म-साधन ही सुखकारी है। ऐसा जानि बारम्बार जिन-भाषित धर्म का, समता करि सेवना योग्य है॥ आगे माया-कषाय का फल, और कषाय तैं अधिक बतावैं हैं——

गाथा——मायागभ असुहो, णिगोयदा अणि कसाय एकदायो।
मायाजुत सयल कसायो, इक बे ते चवाक्ष तण देई॥ ६१॥

अर्थ—मायागभ असुहो कहिये; माया गर्भित जे पाप हैं। णिगोयदा कहिये; वे निगोद के दाता हैं। अणि कसाय एक दायो कहिये, और कषाय नरक की दाता हैं। मायाजुत सयल कसायो कहिये, माया सहित सकल जो सर्व कषाय। इक बे ते चवात्त तण देई कहिये, एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय इनके तन देंय। भावार्थ—सर्व कषायन में माया का फल बहुत ही पाप कौं उपजावै है। जे जीव निगोद में उपजि महा दुखी होंय, सो माया कषाय का फल है। और अन्य जो क्रोध, मान, लोभ, इन कषायन तैं नर्क होय है, निगोद नहीं होय। और इन तीन ही कषायन में जो माया कषाय आन मिलै, तो माया के जोग तैं क्रोध, मान, लोभ इन तीन में एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय होय, ऐसे फल कौं उपजावै। तातैं सर्व कषायन में माया कषाय, दीरघ निखध्य व पापकारी है। तातैं विवेकी पुरुषन कूं परभव सुख के निमित्त, माया शीघ्र ही तजना योग्य है। यहां प्रश्न—जो क्रोध, मान, लोभ इनका फल नरक कह्या। और माया का फल विकलत्रय आदि निगोद कह्या। सो इनमें अन्तर कहा? अरु माया कूं निखध्य कह्या। सो दुख तो नरक में बड़ा दीखै, निगोदिया का दुख तो भासता नाहीं। तातैं जाका फल बहुत दुखकारी होय, ताकौं निखध्य कहिये। तो दुख तो निगोद में अल्प भासै है। अरु नरक में बहुत भासै है। अरु यहां माया कषाय कौं निखध्य विशेष किया, सो काहे कौं? ताका समाधान-भो भव्यात्मा! तू ने प्रश्न भला किया। अब याका उत्तर तूं चित्त देय सुनि। नरक—दुख तो वाह्य, विशेष—

विकराल भासै है। परन्तु पांचों इन्द्रिय साबूत–पूर्ण हैं। अरु इन्द्रिय–ज्ञान सबका खुलासा है। तातैं दुख थोड़ा है। आप कौं कोई नारकी मारै, तब तौ दुख होय है। पीछे आप कोई नारकी कौं मारै, तब आप खुशी होय। आप पै दुख आए, ताकौं मेटवे का उपाय करै है। वैरी कूं तथा स्नेही कूं जानै है। अवधि आदि मति–श्रुति–ज्ञान की प्रबलता पाईये है। तातैं इस नरक में सुख का निमित्त है। पांचों इन्द्रियन का क्षयोपशम है। पर के मारवे कूं, तन का पराक्रम होय है। बड़ा आयु कर्म है। तातैं यहां नरक विषैं, जीव अल्प दुखी है। और एकेन्द्रिय के, चारि इन्द्रिय नाहीं। कर्म के उदय आया दुख, ताकूं मेटवे की शक्ति नाहीं। महा दीन, अल्प समय मैं मरण पावै। और अल्प शीत के दुख तैं मरण पावै। महा अशक्त, ज्ञान रहित, तातैं एकेन्द्रिय महा दुख का स्थान है। तथा जैसे कोई चोर कौं पाँव बांधि, उल्टा टांगि दिया। पीछे च्यारों तरफ तैं अनेक बांसन, कोरडान (कोड़ा) की मार दीजिये, सो महा दुखी है। सो ऐसा दुख तो नारकीन कौं है। और एक चोर का मुख विषैं वस्त्र भरि, ऊपरि तैं सूजीकर मुख सीं दीजिये। मल-मूत्र के द्वार सब बंद कर दीजिये। सो महा दुखी भया। पीछे नाक मैं वस्त्र भरि सूजी तैं सीं दिया। कान में वस्त्र भरि कान सीं दिया। नेत्र सीं दिये। पीछे सब तन कौं बांधि, गठिया सी बनाय कैं, एक खाल की मसक में डारि, मसक ऊपर तैं सीं दई। सो गोला सा बनाय कैं ऊपर दस–बीस मन की एक शिला धर दई। सो अब इसके दुख की केवली जानैं। और कौं तो बाह्य दुख दीखै। परन्तु याके गूढ़

दुख की औरन कौं तो ठीक नाहीं। सो ऐसा दुख, निगोद एकेन्द्रिय के जानना। तातैं नारकीन के दुख तैं असंख्यात गुणा, निगोद एकेन्द्रिय के दुख जानना। ऐसे ही वेन्द्रिय के भी तीन इन्द्रिय नाहीं। तातें ताकूं भी। तथा ते इन्द्रिय के दो इन्द्रिय नाहीं। सो भी महा दुखी। चौइन्द्रिय के एकेन्द्रिय नाहीं। सो भी महा दुखी। ऐसे विकलत्रय के महा दुख, सो भी नारकीन तैं असंख्यात गुणा दुखी है। तातें इन विकलत्रय जीवन में, महा पाप के उदय तें आवै है। ताकरि महा दुखी जानना। सो ये जीव माया कषाय के जोग तैं, इस भवसागर में पड़े हैं। तातैं माया ही में दीरघपना जानना। हे भाई! और तीन कषायन के रस तौ जानि लीजिये है। परन्तु माया नाहीं जानी जाय। जो जानिये, ताका उपचार भी कीजिये। जानने में नहीं आवै, ताका इलाज कहा बनै? सो क्रोधादि तौ जानिए है। और कोई क्रोध करै तौ ताका उपचार यह कि जो कोई क्रोधी मारता आवै, ताके पास दीनता पकरि रहै, तौ मारै नाहीं। और कोई पापी—मानी आपकौं मारने आवै तो ताके पासि अपना मान तजि, वाका विनय करै। वाकी स्तुति करै, तो मानी मारै नाहीं। और कोई लोभी आप कौं मारै तौ वाकौं बहुत धन देय, तौ लोभी मारै नाहीं। ऐसे क्रोध, मान, लोभ इन तीन कषायन का तौ उपचार है। याका उपचार किये शान्त हो जाय। परन्तु यह दगाबाज ऊपर तैं नमन करै। मुख देखे, दीन वचन बोलै। सेवक होय, पुत्र सम होय। पीछे दाव लगै, दगा करै। याका उपचार विवेकीन तैं भी नहीं बनै। तातैं महा मूढ़ है। इस कषाय का फल दीरघ पापकारी है।

ता पाप के फल तैं जीव, नरकन के दुखन तैं बड़ा दुख, निगोद आदि का पावै है। ऐसा जानि माया कषाय कूं तजना। तथा इन पापाचारी—मायावी जीवन कौं अपने बल तैं पहिचान, तिनका संग तजना भला है। ऐसा जानना। आगे धर्म का फल इन्द्रिय—जनित इन्द्रिय—सुख है। यातैं नरकादि खोटी गति नहीं होय है। नरक दाता और ही कार्य हैं। सो बतावैं हैं—

गाथा—धम्म तरु फल अख सुहयो, सो फल दुगय देय णह कवऊ।
धम्म कालय अघ करऊ, कुगय फल देय सोय कीयाय ॥ ६२ ॥

अर्थ—धम्म तरु फल कहिये, धर्म वृष का फल। अख सुहयो कहिये, इन्द्रियन के सुख। सो फल दुगय देय णह कवऊ कहिये, सो फल दुरगति कवहूं नहीं देय। धम्म कालय अघ करऊ कहिये, धर्म काल में पाप करै तो। कुगय फल देय सोय कीयाय कहिये, सो क्रिया कुगति का फल देय है। भावार्थ—यहां कोई ऐसा जानैं, कि जो इन्द्रियन का सुख है सो धर्मघात करके जीवन कौं दुर्गति करै है। सो हे भाई! तूं चित्त देय सुनि। इन्द्रियन के सुख हैं सो तौ पुण्य का फल है। सो पुण्य फल तैं देव, इन्द्र, चक्री, कामदेवादिक का सुख है सो हजारों स्त्रीन के संग नानाप्रकार पंचेन्द्रिय मन—वांच्छित सुख—भाेग भोगवैं हैं। अनेक रथ, हाथी, घोटक, पैदल, आदि अधिक सैन्या सहित, निरखेद भये, अपनी शुभ परणति का फल ताहि भोगवैं हैं। सो ये पुण्य का फल है। सो पुण्य का फल इंद्रिय सुख है। सो ही पुण्य का घात कैसे करै? जे फल हैं सो अपने वृक्ष का नाश नहीं करैं। तातैं इन्द्रिय सुख, धर्म घात करते

नाहीं। इन्द्रिय सुखन तैं दुर्गति होती नाहीं, ऐसा जानना। यहां प्रश्न ? जो जगह-जगह शास्त्रन में ऐसा सुनिये है कि जो फलाना राजादि पुरुष, इन्द्रिय-सुख में मगन होय, नर्कादिक गये। तहां जे महान-बुद्धि चक्रधर राजा थे, सो जगत के भोगन तैं उदास होय, इन्द्रिय-जनित-सुख दुर्गति-दाई जानि, सर्व राज्य-भोग-सम्पदा तजि, दीक्षा धरते भये। तातैं इन्द्रिय जनित सुख पापकारी नहीं होता, तौ काहे कूं तजते ? और यहां ऐसा कह्या जो इन्द्रिय-सुख धर्म का घात नहीं करै है। इन्द्रिय-सुख तैं नरकादि खोटी गति भी नहीं होय है। सो ये बात कैसे बनै ? ताका समाधान-जो हे भव्यात्मा! तेरा प्रश्न प्रमाण है। परन्तु अब चित्त देय सुनि। जो वस्तु जातैं उपजै है, सो ताका नाश नहीं करै। सो देखि, इन्द्रादिक पद, चक्रीपद है, सो वांच्छित इन्द्रिय भोग के सुख का सागर है। जो इन्द्रिय जनित सुख तैं दुर्गति होती, तौ इन्द्रन कौं होय। तथा देवन कूं तथा भोग-भूमियान कूं, परभव दुर्गति होय। तातैं ऐसा जानना। जो खोटी गति होय है, सो इन्द्रिय सुख का फल नाहीं। जातैं इस जीव कूं खोटी गति होय है, सो तोकौं बताइये है। जे जीव धर्म-काल विषैं. धर्म कूं भूलि करि, विषय-कषाय में रंजायमान होय कैं, धर्म का घात करैं। तिस धर्मघात के पाप तैं नरकादि खोटी गति होय है। तातैं नरकादि दुख, धर्मघात का फल जानना। तातैं विवेकी हैं तिनकूं धर्म सेवन के काल में धर्म घाति करि, पाप-विकल्प में काल गमावना, योग्य नाहीं। तातैं धर्मात्मा गृहस्थ हैं सो तिन्हें प्रथम प्रभात धर्म-काल विषैं, भले प्रकार निर्मल भावना सहित धर्म-

कार्य करि, पुण्य का संचय करना योग्य है। पीछे अपने पूर्व-पुण्य का फल इन्द्रिय जनित सुख, ताहि भोग्या करौ। ऐसे सदीव धर्म-काल में धर्म का सेवन करना। और अन्य-काल में कर्म-कार्य करना। ऐसे करि पुण्य का संग्रह करै। ताके फल, फेरि भी परभव में देवादिक के इन्द्रिय-जनित सुख-भोग पावै है। और जे जीव धर्म कों भूलि करि, धर्म-काल विषें इन्द्रिय जनित भोगन में रक्त होय, सुख मानैं, सो मानौ। परन्तु पूर्वले पुण्य का फल भोगि चुकैगा, तो पीछे धर्म-फल बिना, नर्कादि गति होयगी, ताके दुख कूं भोगवैगा। जैसे कोई एक भला व्यापारी, अनेक व्यापार करि, अपनी बुद्धि के बल करि, बहुत धन कमाया। सो दूसरे दिन सुख तैं भोगवै है। अरु जब दुकान पै कमाई का समय आया, तब अनेक सुख भोगे थे तिनकूं तजि, दुकान पै जाय अनेक व्यापार-कला करि धन कुमावै। तौ दूसरे दिन, सुख तैं भोग्या करै। ऐसे भोग के काल में भोग-सुख करै, परन्तु अपनी कुमाई का समय आवै तब अनेक काम छाँड़ि, जाय कुमावै। कुमाई का काल नहीं चूकै। सो तो सदैव कुमावै-खावै, सुखी रहै॥ और जे जीव एक बार व्यौपार करि धन कुमाया। सो धन लेय, नाना प्रकार सुख करता भया। अरु फेरि कुमाई का काल आया, तब भी नांच-नृत्य, खान-पान, भोगही में रत भया धन उड़ाया कस्या, कुमाई कूं नहीं गया। कुमाई का काल, वृथा गमा दिया। और आगे कमाया था, सो धन खाय लिया। सो जीव कुमाई बिना रंक होय, भीख मांगेगा, दुखी होयगा, ऐसा जानना। तथा कोऊ एक पुरुष कैं एक बाग है। तामें नाना प्रकार के मेवा

तजि भागै। तौ लज्जा आवै। युद्ध हारि जाय। कुल कूं दाग लागै। तातैं रण में साहस चाहिये, जाकरि जय होय। और काहू धर्मात्मा ने, अपना आयु-कर्म निकट जानि कैं, इस धरमी जीव नैं; परभव सुधारवे कौं; अनशन का धारण किया होय। खान–पान तजि कुटुम्ब व शरीर तैं मोह तजि, आप तुच्छ-परिग्रह कूं राखि, धर्म-ध्यान रूप तिष्ट्या है। किन्तु काय तैं; आत्मा छूटतैं ढील होय है। सो ज्यों–ज्यों दिन–घड़ी निकसैं हैं; त्यों २ यह सन्यास धारनहारा; ऐसा विचारै। जो अब आत्मा तन तैं शीघ्र छूटै, तौ भला है। अब मेरा साहस रहता नाहीं। इत्यादिक अस्थिरता–भाव विचारै; तौ व्रत तैं डिगना परै। तातैं व्रत की रक्षा के निमित्त ऐसा विचारै; कि मैंने इस काय का ममत्व त्यागा। धर्मध्यान मई, निराकुल होय तिष्टूं हूं। अब यह तन जब जाय; तब जावो; मेरे कछु खेद नाहीं। ऐसा साहस, सन्यास में भले-फल का दाता है। तातैं सन्यास में साहस चाहिये। और मरण-समय महा-वेदना में, मोह के वशि करि, आकुलता करै। तो मरण तौ टलता नाहीं। परन्तु कायरता तैं मरण बिगड़ जाय; कुगति होय। तातैं मरण-समय धीरजता-सहित; मोह-रहित-परणाम करि, मरण करै। तो परभव सुधरै। तातैं मरण-समय साहस चाहिये। और कर्म के उदय तैं; जीव पै अनेक प्रकार संकट आय पड़ैं हैं। तिनमें धीरजता होय; तो बड़ा संकट, सुगम भासै। धीरजता बिना; दुख में बड़ा-खेद होय। तातैं दुख–संकट में साहस चाहिये। और ध्यान करते, चित्त की एकाग्रता सहित, धर्म–ध्यान का विचार

करता, पुण्य का संचय करै है। ता समय कोई पापी जन आय; धर्मध्यान तैं डिगाया चाहै। ताके निमित्त अनेक कुचेष्टा करै । सो वाके उपसर्ग तैं चंचल-भाव होय, तौ धर्म का फल; हीन होय। धीरजता राखै, तौ पूजा पावै। जैसे वह सेठ; चौदश की रात्रि; स्मशान-भूमि में, प्रोषध सहित, ध्यान धरि; तिष्ठै था। पीछे दोय देव; धर्म की परीक्षा कौं आये। तब सम्यग्दृष्टी देव ने कही; ये सेठ गृहस्थ है। हमारा धर्मी है। सो आज चौदश कूं उपासा; ध्यान रूप है। ताहि डिगावौ, तौ जानैं। तब इस ज्योतिषी-मिथ्यादृष्टी देव ने; सर्व रात्रि अनेक उपसर्ग किये, सो नाहीं डिग्या। तब धीरजता देखि, देव ने सेठ की पूजा करी। तातैं ध्यान में साहस चाहिये। और अनेक तप करते; कबहूं तन तैं मोह उपज आवै। विषय–कषाय की इच्छा होय आवै। तब तप तैं दीरघ खेद जानि, विमुख–चित्त करै। तौ तप का फल, नष्ट होय। तातैं तप मैं खेद होय तैं, तप का लोभी साहस राखै; तौ तप का उत्कृष्ट-फल होय। और अपने सुधर्म का घात करनहारे अनेक पापी–जन, आप कौं धर्म्म तैं चलाया चाहैं। तौ पापी-जन के उपद्रव किये में; अपना धर्म-रतन राखवै कूं; साहस राखना योग्य है। और पुण्य के उदय में तौ सब कोई धर्म में; धीरज राखैं हैं। परन्तु जब पाप का उदय प्रकट होय है। तब दरिद्रता में धीरज परणाम राखना, ये महा-विवेकी का बल है। तातैं दरिद्रता में धीरज–साहस योग्य है। और जब कोई कर्म के जोगतैं; कोई दीरघ-जलमें जाय पड़ना होय; अरु कोई उपाय नाहीं दीखै। तब एक साहस ही सहाय जानना। ऐसे कहे जे ऊपर अनेक

तातें सत्संगी तेरा अपमान करैं हैं। सो तेरे उत्कृष्ट-सुख का कारण है। और सत्संग के अपमान तैं कदाचित् मान के योग तैं बुरा मान्या, तौ तेरा परभव बिगड़ जायगा। तेरा औगुण नहीं जायगा। तातें तूं अपना विवेक प्रगट करि, जस चाहै है। तौ सत्संग के पुरुष जो तेरा अपमान करैं हैं, सो परमार्थ के अर्थ जानना। हे भव्यात्मा, जब लौं तोकूं कुसंग का आदर प्रिय लागै है। तबलौं तेरा दोष मिटता नाहीं, अरु सत्संग का अपमान भला लागता नाहीं। तातें तोकूं कुसंग का सत्कार स्नेह-भाव तजना योग्य है। जैसे जुर सहित रोगी कूं दुग्ध अच्छा भी लागै है। परन्तु जुर के जोगतैं तजना योग्य है। और कटुक-कड़वी औषधि तथा लंघन उपादेय-गुणकारी है। तैसे ही सत्संग के पुरुष तोमैं औगुण जानि, तोसूं स्नेह नहीं करै हैं। वर्तमान काल में तोकूं मान-बुद्धि के जोग तैं, बुरा भी लागै। परन्तु तूं विवेकी है। सो कड़वी औषधि की नाईं तथा लंघन की नाईं, सुखकारी जानना। और सुनि। हे भव्य, कुसङ्ग का सत्कार जुर के माँहि दुग्ध समानि है। सो किञ्चित् सुखदेय; पीछें दीरघ-दुख कूं करै है। तैसे ही कुसंग के अज्ञानी, व्यसनी, अपराधी जीव तेरा सत्कार करैं हैं। ताका सुख किंचित् कौतुक-परणति की खुशी प्रमाण है। पीछे तिनका फल विषम-दुखकारी है, जहां कोई सहायी नाहीं, ऐसे नरक के दुख ताहि भोगनैं पड़ैं हैं। ऐसा कुसंग का फल, पीछे परभव में लागै है। तातैं जैसे स्याना रोगी दूध तजै, तैसे कुसंग तजना योग्य है॥ ८५॥ आगे षट् भेद म्लेच्छता के बतावैं हैं—

अशुभ कारण हैं; तिन में साहस ही जोग्य है। ऐसा जानना ॥ ८३ ॥ आगे ये तीन स्थान विवेकी जीव के; हाँसि के कारण हैं; ऐसा दिखावैं हैं---

गाथा—अगय पठत आयाणो, विविधा सिंगार काय विधवायो।
जग निन्दो खुसचित्तो, ए तीए थाणेय हाँसि मग गेयो ॥ ८४ ॥

अर्थ—अगय पठत आयाणो कहिये, अजान होय कैं आगे बोलै। विविधा सिंगार काय विधवायो कहिये, विधवा-स्त्री नाना-शृङ्गार शरीर पै करै। जग निन्दो खुसचित्तो कहिये, जगत निन्द होय कैं, सदा खुशी रहै। ए तीए थाणेय हाँसि मग गेयो कहिये, ये तीनों स्थान हाँसि के कारण जानना। भावार्थ—आपकों जो पाठ आवता नाहीं; सो और कोई पढ़ता होय; ताके आगे २ आप बोलै—पढ़ै; सौ भोरा—अज्ञानी जीव; विवेकीन करि निन्दा पावै। सो जीव; हाँसि का स्थान है। यहां प्रश्न-जो अज्ञान-जीवन का भोरापना देखि, विवेकी जीव कों बता देना जोग्य है। परन्तु हाँसि का करना; जोग नाहीं। ताका समाधान-जो अज्ञानी दोय प्रकार के हैं। एक तौ भोरा; अजान; सरल-परणामी अज्ञान। सो आप कौं ऐसा मानैं; जो मैं कछु समझता नाहीं। मोकौं कोई धरम का मारग बताय, मेरा परभव सुधारै, तौ वा पुरुष का उपकार भव-भव नहीं भूलूं। ऐसा धर्मार्थी होय, सो तो भली सीख मानैं। रुचि तैं अंगीकार करै। ऐसे भोरे-अज्ञानी जीव की हाँसि तौ विवेकी नाहीं करैं। ऐसे कूं तौ भूलै पै बताय, ताकौं सुमारग लगाय, ताका भला करैं। और

गाथा—मण तण घर पुर देसा, खंडादि खंडमलेच्छ भेयाए।
नहिं सु आचरण धम्मो, सो अणाज्ञथल भासियो सुत्त ॥ ८६ ॥

अर्थ—मण कहिये, मन। तण कहिये, शरीर। घर कहिये, मन्दिर। पुर कहिये, नगर। देसा कहिये, देश। खंडादि खंडमलेच्छभेयाए कहिये; खंड को आदि लेय म्लेच्छताई के षट् भेद जानना। नहिं सु आचरण धम्मो कहिये, तहां पर शुभ आचरण नाहीं, शुभ धर्म्म नाहीं। सो अणाज्ञथल भासियो सुत्त कहिये, सो अनार्य-क्षेत्र सूत्र विषैं कह्या है। भावार्थ—भो भव्य! म्लेच्छपने के षट् भेद हैं। सो ही कहिये हैं। सो जहां शुभ आचार नाहीं, सुधर्म की प्रवृति जहां न होय। तिस स्थान कौं म्लेच्छ कहिये। सो ता स्थान के षट् भेद हैं। मन म्लेच्छ, तन म्लेच्छ, घर म्लेच्छ, पुर म्लेच्छ, देश म्लेच्छ और खंड म्लेच्छ। ये छह भेद हैं। सो ही अर्थ सहित बताईये है। जहां जाके मन में शुभ-आचार नहीं होय। सुधर्म की जाके मन में प्रवृत्ति नहीं होय। सो मन, म्लेच्छ समानि है। याकूं मन-म्लेच्छ कहिये। और जा शरीर तैं सुआचार अरु धर्म-सेवन नहीं बनै। सो तन, म्लेच्छ समानि है। याका नाम, तन-म्लेच्छ है। और जाके घर में सुआचार सहित धर्म नाहीं। सो घर, म्लेच्छ समानि है। याका नाम, घर-म्लेच्छ है। और जा पुर विषैं सुआचार अरु धर्म-प्रवृत्ति नहीं होय। सो वह पुर, म्लेच्छ के पुर समानि है। याका नाम, पुर-म्लेच्छ है। और जा देश में शुभ आचार सहित धर्म-प्रवृत्ति नहीं। सो देश, म्लेच्छन के देश समान है। याका नाम, देश-म्लेच्छ है। और जा खंड में

शुभाचार सहित धर्म नाहीं। सो खंड-म्लेच्छ है। ऐसे म्लेच्छ-पने के षट् भेद कहे। सो इनमें जहां२ धर्म प्रवृत्ति नाहीं, सो म्लेच्छ जानना। इनकों सुधर्म का उपदेश शुभ (अच्छा) लागता नाहीं। धर्म में रुचि होती नाहीं। ये कुआचारी, अभक्ष-भक्षणहारे हैं। सो कुगति-गामी जानना॥

आगे मूढ़ता के सात भेद बतावें हैं—

गाथा----जाय लोय धम्म मूढ़य, मूढ़ो मण काय वयण विवहारो।
जथारीय विपरीयो, मिच्छाइट्ठीय होय सय जीवो॥ ८७॥

अर्थ---जाय कहिए, जाति मूढ़। लोय कहिए, लोक मूढ़। धम्म मूढ़य कहिये, धर्म मूढ़। मूढ़ो मण कहिये, मन मूढ़। काय कहिए, तन मूढ़। वयण कहिए, वचन मूढ़। विवहारो कहिये, व्यवहार मूढ़। जथारीय विपरीयो कहिए, इन आदि यथायोग्य, विपरीत क्रिया के धारी। मिच्छाइट्ठीय होय सय जीवो कहिये, ये सब जीव मिथ्यादृष्टी जानना। भावार्थ--मूढ़ता नाम, मूरखता का है। जो भली-बुरी के भेद को नहीं जानै। योग्य-अयोग्य खाद्य-अखाद्य के भेद रहित हठग्राही होय। ताकों मूढ़ कहिये। तहां कोई पाप-क्रिया, परभव दुखकरण-हारी, कोई जीव करै था। ताकौं देख काहू धर्मात्मा ने दया--भाव करि मनै किया। कही हे भव्य, ये कार्य परभव दुख देनेहारा है। तूं मति कर, दुखी होयगा। ऐसी कही। ताकौं सुनि वह मूढ़-अज्ञानी कहता भया। हे भाई, ये क्रिया तो हमारी जाति में करनी कही है। निंद्य नाहीं। जो बुरी होती तौ हमारे बड़े, जाति में काहे कौं करते? तातैं जो अपने बड़े

आगे सूं करते आये, जाति में सब करैं, ताकौं कैसे तजैं ? ऐसा हठी, महा ढीठ, कठोर परणामी, पाप क्रिया कौं नहीं छोड़ै। सो जाति-मूढ़ कहिये ॥ १ ॥ और लोक-मूढ़ ताकौं कहिये; जो लौकिक अनेक खोटी पद्धति, अज्ञानता रूप, पाप रूप, क्रोध-मान-माया-लोभ रूप; चौरी, जुवा, परस्त्री गमनादिक, अनेक पापरूप क्रिया, कोई अज्ञानी जीव करै है। सो ऐसी अयोग्य क्रिया करता देखि, कोऊ धर्मात्मा ने प्रार्थना करि, मनै किया। जो हे भाई, ये कुकारज, महा-दुखदायक, लोकनिंद्य मति करै। तोकूं दोऊ-भव दुःख करेंगे। ऐसे हित-वचन कहे। तब वह अज्ञान, दरिद्री, मूर्ख, बोलता भया। हे भाई, हम हो इस कारज कौं नहीं करैं। ऐसी क्रिया के करता तौ लोक में बहुत हैं। तुम किस—किस कूं मनै करोगे ? संसार में सर्व लोग करै हैं। इस भांति जो अज्ञान—लोकन की देखा-देखी खोटा-कार्य करै, आप ज्ञानअंध कछू विचारे नाहीं, हठग्राही पाप-क्रिया करै है। सो लोक-मूढ़ कहिये ॥ २ ॥ और धर्म—मूढ़ ताकूं कहिये है। जो, तहां आगे कोई कुल विषैं तथा लोक विषैं, अज्ञानता करि तथा बिना विचारे, तथा बिना परखै; खोटा धर्म, हिंसा सहित सेवते आये। ता विषैं प्रत्यक्ष जीव हिंसा है। ऐसे मार्ग के उपदेशदाता कौं महा-क्रोध-मान-माया-लोभ की तीव्रता है। पंचेन्द्रिय भोगन के पोखनहारे, तप-संयम रहित देव होंय, तिनकूं मानैं। ते जीव भोरे धर्म-मूढ़ता लेय हैं। कैसा है वह देव, जाकी छवि देखे महा-भय उपजे। ऐसी विकराल मुद्रा का धारी होय। निरदई-मांसाहारी होय। ऐसे देव कूं प्रभु मान पूजैं, देव मानैं हैं। और बड़े-

क्रोध का धारी, अनेक शस्त्रन के धारनहारे, बहु परिग्रही, भयानक आकार धारैं, क्रूर वचन के धारी, जाका विनय नहीं करैं तो मारैं, महा-मानी, और भोरे जीवन सूं अपनी सेवा करावनहारा, और नय-जुगति देय पराया-धन खावनहारा, मायावी, लोभी, अभक्ष्य भोजन के करता, तिनकौं गुरु मानै। और हिंसा किए धर्म का उत्तम फल होय, भोग-भोगवे तैं पुण्य होय, ऐसा कथन जहां पाईये, ऐसे शास्त्र तैं धर्म मानैं। ऐसे कुदेव, कुधर्म, कुगुरु के सेवनहारे भोरे जीव, धर्मार्थी, धरम जानि, कुमारग-हिंसा रूप, कुआचार रूप प्रवृत्तते भये। ते जीव मोक्ष-मारग जानिते-संते, धर्मफल के लोभी, लोकारूढ़-धर्म सेवते भये। तिनकौं कोई सांची-दृष्टिवारा धर्मात्मा देखि, दया करि कहता भया। भो धर्मार्थी हो, तुम धर्म के अर्थ, पाप का सेवन मति करो। यह जीवघातक-मांसाहारी, देव नाहीं है। भगवान् का ये चिन्ह नाहीं है। परिग्रह धारी, शस्त्रधारी, कषायी, गुरु नाहीं। हिंसामयी, धर्म नाहीं। हे भव्य, तूं विचारि कैं देखि कैं, देव-धरम-गुरु का सेवन करना, ज्यों तेरा भला होय। ऐसे धर्मात्मा के वचन सुनि, यह अज्ञानी ज्ञान-दरिद्री शुभाशुभ-विचार रहित, बिना समझै ही हठग्राही, ऐसा कहता भया। हमारे बड़े-बूढ़े आगे तैं येही धर्म सेवते आये हैं। और हमारे धर्म में ऐसेही देव-धरम-गुरु होय हैं। आगे तैं हमारे कुल में ऐसाही धर्म सेवते आये हैं, सो हम भी सेवन करैं हैं। ऐसा कहि कैं हठग्राही, कुल-धर्म पाप-पंथ नहीं तजै। सो धर्म-मूढ़ता कहिये ॥ ३ ॥ और मन-मूढ़ता ताकों कहिये, जाका मन सदा ही चंचल रहै। थिरी

नाहीं होय। महा लोभ करि, मोहित होय। जाका मन सदीव ऐसा विचार करै, जो मोकौं घना धन कैसे मिलै ? कोई देवता की सेवा करौं, तो मोकों मांगै सो देवे। सो अवार के समय तो शीतला प्रत्यक्ष देखिए है। ताकौं पूजैं तौ धन मिलै। सो ऐसा विचारकर धन का लोभी, अनेक देवन की पूजा करै। तथा ऐसा विचारै, जो हमें पड़्या-गिरया माल मिल जाय, तौ भला है। ताके निमित्त धरती के गड़े पाखान उपाड़ि २ धन देखता फिरै। ऐसी अवस्था सहित, ये अज्ञानी, धर्मपंथ का भूल्या प्राणी, सदीव मन की मूरखता नहीं तजै। ऐसे भरम-बुद्धि कूं कहिये। जो तूं मन की थिरता राख। कुदेवादिक मति पूजो, इससे पाप होयगा। धन मिलैगा नाहीं। तो ताकौं सुनि, अज्ञानी कहता भया। जो पाप कैसे हो है ? यह देव है, राजी भये धन देना, इनकैं सुगम है। अनेकन कौं वाञ्छित देय है। ऐसा जानि अपने मन विषैं, कुदेव-कुधरम-कुगुरु इनके पूजिवै की मूरखता नाहीं छोड़ै। सदीव मन कूं आर्त्त-रौद्र रूप राखै, सो मन-मूढ़ता कहिये ॥ ४ ॥ और जाकी काय तैं, शुद्ध देव-धरम-गुरु की सेवा नाहीं बनै। विनय-भक्ति तिनकी नहीं बनै। कुदेवादिक की नमनता याने वहुत करी होय। और वाही तैं जाका शरीर महा-भयानीक होय। नेत्र क्रूरता लिए, लाल होंय। तन पै भस्मी, शिर पै सिन्दूर की बिन्दी होय। और कंठ-शीश-भुजा में अनेक तावीज होंय। अरु हस्त में अनेक लोह ताके चूड़ा होंय। ऐसे धर्म-ध्यान रहित, शांति मुद्रा-सौम्य भाव रहित होय। महा भयानीक, विपरीत तन का धारी; तामैं धर्म मानता होय। ताकौं कोई

कहै, तोकौं धर्म का फल चाहिये है तौ शान्ति-मुद्रा राखौ। भयानीक आकार रहना तजौ। तौ ताकूं सुनि, मूढ़-आत्मा ऐसी कही। जो हम अंतरंग में तो शान्त ही हैं। बाह्य लोक-दिखावै कूं, अपना-आप छिपाय रहवे कूं, बाह्य भयानीक-स्वांग राखैं। ऐसी नय-जुगति देय। परन्तु काय की क्रूरता नहीं तजै। सो तन-मूढ़ता कहिये। तथा शरीर की चाल मदोन्मत्त, ईर्या-समति रहित होय। और जीव, ताकौं देखि भय-खाय दुखी होते होंय। बिना प्रयोजन अपने हाथ-पाँवन तैं, जीवन कौं दुख देता होय। ऐसी विकट काय का धारी, दया-रहित मुद्रा का धारी, शरीर कौं उद्धत् राखता होय। सो काय-मूढ़ता कहिये ॥५॥ जहां जिन-आज्ञा रहित, पापकारी, पर-जीवन कूं भयकारी, शोककारी, वचन बोलना। अपनी इच्छा-प्रमाण स्वेच्छाचारी-वचन, पापकारी बोलना। सो वचन-मूढ़ता है। याकौं कोई कहै, तुम ऐसे कषाय-वचन मत कहौ। तथा देव कूं गाली, गुरु कूं गाली, तथा गृहस्थन कौं गाली, कठिन ऐसे अयोग्य वचन मति कहो। तो वह मूरख कहै, हम इसी तरह देवकी स्तुति करैं हैं। गृहस्थीन कौं ऐसेही दबाय देय हैं। ऐसे कहै। परन्तु क्रोधादि-कषाय पोषवे के पापकारी—वचन नहीं तजै। सो वचन—मूढ़ता है। और जा वचन तैं पराया-तन क्षय होय। धन-क्षयकारी, मान-क्षयकारी, ऐसे बिना विचारे वचन का बोलना जाकै सुनैं सर्व सभा-जन दुख पावैं, सो वचन-मूढ़ता है। तथा जा वचन कौं सुनि सर्व-कुटुम्ब दुख पावै, सो कुटुम्ब-विरुद्ध कहिये, ऐसे वचन। तथा राज्य-सभा विरुद्ध वचन, जाकै सुनै राजसभा दुख पावै।

इत्यादि वचन का बोलना, सो वचन-मूढ़ता है ॥ ६ ॥ और व्यवहार-मूढ़ ताकौं कहिए। जहां अयोग्य-हिंसाकारी व्यापार कूं ऐसा मानना, जो ये किसब हमारे आगे तैं चल्या आया है। हमारे बड़े, पीढ़ियों तैं यही किसब करते आये हैं। सो बुरा है तो भला है। अरु भला है तो भला है। कुल का किसब कैसे छोड़ैं? ऐसा जानि, महा हठग्राही, पाप कारी-हिंसामई किसब नहीं तजैं। सो विवहार-मूढ़ता है ॥ ७ ॥ ऐसी कही जे सात जाति की मूढ़ता, ताकौं अपनी २ हठ बुद्धिकरि, यथायोग्य विपरीत भावना सहित धारि, अङ्गीकार करना। ऐसे श्रद्धान का धारण जिनकैं होय, सो मिथ्यादृष्टी जानना। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, जाति-व्यवहारादि कथन वर्णनो नाम, चौबीसवाँ पर्व सम्पूर्ण ॥ २४ ॥ आगे हितोपदेश दिखाइये है। तहां मिथ्याज्ञान अरु सम्यग्ज्ञान के प्रकाश कौं दृष्टान्त करि दिखाइये है—

गाथा—उपल वहणि मिछिणांणो, कय उदोय फुणस्याम उर जायो॥
हाटक सम सम्यणांणो, तव वहणी जुइ विमल तण होई ॥ ८८ ॥

अर्थ—उपल वहणि मिछिणांणो कहिये, काष्ठ-छाणैं की अग्नि समान मिथ्याज्ञान है सो। कय उदोय फुणस्याम उर जायो कहिये, उद्योत करि फेरि श्याम शरीर को धरै है। हाटक सम सम्यणांणो कहिये, सम्यक्ज्ञान स्वर्ण समानि है। तव वहणी जुइ विमल तण होई कहिये, तप रूपी अगनि तैं विशेष प्रभा धरै है। भावार्थ—आत्म स्वभाव अरु पर-जड़भाव इनके जुदे २ जानवै कौं, अनुभवन करवै कौं, अतत्त्व श्रद्धानी मिथ्यादृष्टि का ज्ञान असमर्थ है।

इस मिथ्याज्ञान का प्रथम तौ किंचित् प्रकाश होय। ताके फल तैं एक भव देवादि के सुख पावै। पीछे उस देवादि-भव में भोगाभिलाषी चित्त होय, आर्त्त-रौद्र परणति करि, संक्लेशता के फल तैं, एकेन्द्रिय आदि होय, संसार-भ्रमण करै। तथा मिथ्यात-कर्म के योग तैं कदाचित् मनुष्य में उपजै, तौ नीच-कुल में धनवान्-हुकुमवान् होय। राज्य-संपदा का धारी, तीव्र क्रोध-मान-माया-लोभ-का धारी, संक्लेशी होय। इत्यादिक सामान्य सुख का धारी होय। पीछे अनेक पाप करि, अनेक हिंसा-दोष उपाय, नरकादि-दुख कौं प्राप्त होय। ऐसा होय तब मिथ्याज्ञान का प्रकाश, मंद होय। बहुत-काल मिथ्यात्व का फल रहता नाहीं। जैसे अरणे (छाणे) की अग्नि, प्रथम तौ तेज-प्रकाश करै है। पीछे प्रभा-रहित होय, श्यामता धारि, भस्मी होय। तैसेही मिथ्याज्ञान जानना। ये मिथ्याज्ञान है सो अंधे के ज्ञान समानि है। जैसे अंधा चलै, तब उनमान (अनुमान) तैं चलै। परन्तु यथावत्, मार्ग का शुभाशुभ नहीं भासै। तैसे ही मिथ्याज्ञान तैं शुद्ध यथार्थ-मार्ग नहीं भासै। यहां प्रश्न-जो मिथ्याज्ञानी धर्मात्मा हैं। तिनकूं यथावत् पुण्य-पाप का मार्ग नाही भासै, तौ नौ-ग्रीवादिक कैसे जांय? देवादि गति में भी जांय हैं, सो शुभाशुभ-मारग जानै बिना, पाप का तजन व पुण्य का ग्रहण, तप-संयम-चारित्र का सेवन कैसे संभवै? ताकौं पुण्य-पाप का मारग तौ भासै है। भले प्रकार मिथ्याज्ञान कूं अंधे के ज्ञान समानि कैसे कह्या? ताका समाधान-जो पुण्य--पाप तौ संसार-बन के मारग हैं, यथार्थ शुद्ध-मोक्ष का मारग

नाहीं। मिथ्याज्ञान तैं मोक्ष-मारग नहीं सूझै है। तातैं मोक्ष-पंथ के जानवे कूं, अन्ध समानि जानना। और सम्यक्ज्ञान है, सो स्वर्ण समानि है। जैसे स्वर्ण कूं ज्यों २ अग्नि पै तपाईये, त्यों २ ताकी प्रभा, बढ़वारी कौं प्राप्त होय है। और कंचन (सोना) शुद्ध होता जाय है। तैसेही सम्यक्ज्ञान रूप स्वर्ण है सो ताकौं ज्यों २ तप रूपी अग्नि कर तपाया जाय, त्यों २ परम विशुद्धता कौं प्राप्त होय है। सो यह सम्यक्ज्ञान, ज्यों २ निर्मल होय, त्यों २ बढ़ै। सो बढ़ता-बढ़ता केवलज्ञान पर्यंत, सम्यक्ज्ञानावधि पूर्ण होय है। सो केवल-ज्ञान भये, ज्ञान की मर्यादा पूरण होय है। सासता (सदा) रहै है। ये सम्यक्ज्ञान, भये पीछे मिथ्याज्ञान की नाईं, जाता नाहीं। सदीव अनंतकाल ताईं रहै है। ये ज्ञान, मोक्ष ही करै है। तातैं मिथ्याज्ञानी, अङ्ग-पूर्वन का पाठी भी होय, तौ संसार का ही कारण है। और सम्यक्ज्ञान का अंश भी प्रकट होय, तौ बढ़वारी कौं प्राप्त होय, केवलज्ञान ही करै है। तातैं मिथ्याज्ञान, हेय कह्या है। और सम्यक्ज्ञान, उपादेय कह्या है। तातैं विवेकी पुरुष हैं तिनकूं, मिथ्याज्ञान तजि कैं, मोक्ष का करनहारा, सिद्ध पद का देनेहारा, कर्म्मन का नाश करनहारा, ऐसा सम्यक्ज्ञान जैसे बनै तैसे, प्राप्त करना योग्य है ॥ ८८ ॥

आगे इन्द्रिय सुख तैं आतमा तृप्त नहीं भया, सो ही दिखाइये है—

गाथा—हरि हल सुर खग चक्री, पुण फल सुह भुंजेय ण धपे।
तव लव सुह णर आदा, धपो किं धम्मसेय सिवकज्जे ॥ ८९ ॥

अर्थ—हरि कहिये, नारायण। हल कहिये, वलभद्र। सुर कहिये, देव। खग कहिये, विद्याधर। चक्री कहिये, षट्खण्डी चक्री। पुण फल सुह भुंजेय ण धपे कहिये, पुण्य का फल सुख भोग्या, तौ भी नहीं तृप्त हुआ (धाप्या)। तब लव सुह णर आदा कहिये, तो हे आत्मा, मनुष्यन के अल्प सुख तैं। धपो किं कहिये, कैसे तृप्त होयगा ? धम्मसेय सिव कज्जे कहिये, तातैं धर्म का सेवन मोक्ष के निमित्त करौ। भावार्थ—ये जीव तीन खंड का स्वामी, सोलह हजार स्त्रीन के संग भोग-भोगनहारा भया। तहां भोगन तैं तृप्त नहीं भया। तथा हरि कहिये जो देवनाथ-इन्द्र, सो तानैं अनेक देवाङ्गना सहित अनेक वांच्छित भोग भोगे, तौ भी तृप्त नहीं भया। तथा अनेक देवीन सहित सुख भोगनहारे देवपद के अनेक सुख भोगे, परन्तु तृप्त नहीं भया। अनेक गीत-नृत्य-वादिश्रादि के अद्भुत लक्ष्मी सहित, कौतूहल करि अनुपम भोग में रम्या, तहां भी ये आत्मा तृप्त नहीं भया। तथा और भी, देव समानि संपदा के धारी ऐसे विद्याधर, तिनके सुख भोगनहारे, अनेक प्रकार अढ़ाई द्वीप में स्वेच्छा फिरि क्रीड़ा करते, दीरघ सुख भोगे। तौ भी आत्मा विद्याधरन के सुख तैं भी तृप्त नहीं भया। और षट्खंड का पति, छ्यानवे हजार देवाङ्गना समानि रूप-गुण की धरनहारी स्त्री तिन सहित, मन-वांच्छित देवेन्द्र की नाईं सुख-समूह, दीरघ-काल ताइ, नये-नये भोगे। तौ भी आत्मा तृप्त नहीं भया। और भी अनेक मनोग्य वांच्छित अद्भुत सुख भोगे। संसार में कोई ऐसा सुख नाहीं बच्या, जो आत्मा ने अनेक बार, पुण्य के उदय तैं न भोग्या; सर्व भोग्या। चिरकाल

होय हैं। अरु महा-सुन्दर सघन-छाया महा-शोभायमान तामैं पांच सौ रुपया साल का मेवा होय, ताहि बेंचि, तामैं कुटुम्ब कौं पालै। ऐसे साल की साल, पांच सौ रुपया का मेवा बेंचि, सुखी रहै। अनेक मेवा आप भोगवै। बाग की भली रक्षा किया करै। ऐसे बहुत दिन बीत गये। बाग की रक्षा करै, दुष्ट पशून तैं बचावै। बन कौं निर्विघ्न राखै। ताके फलन करि अपने कुटुम्ब का पालन करै। आप आनंद सूं रह्या करै। ऐसे बाग तैं, जाकौं देख तैं सुख होय। सो एक वार काष्ठ काटनहारे आये, इस बाग बारे कौं कही। तेरा बाग मोल दे। तब यानै पांच सौ रुपया में बाग बेच्या। सो वह बाग काटकैं लकड़हारे ले जांय हैं। सो देखो याकी मूर्खता, जो साल की साल पांच सौ रुपया देनेहारे बाग कूं काष्ठ काटनहारे कूं देय है। सो ये रुपैया एक बार के होय जांय हैं। पीछे आप दुखी होय है। बाग की शोभा जाय है। मिष्ट फल जांय हैं। बाग का नाम जाय है। और आप कुटुम्बी सहित दुखी होय है। ये रुपया बरस-एक में खा लेवे है। तथा उस बन की रक्षा छाँड़ि, कोई विषय-कषाय नृत्य-गीतादि में लागि जाय है। सो बाग के बिगड़नै तैं बड़ा दुखी होय है। एकबार ही नृत्य-गीत के सुख हो हैं। परन्तु जिस बाग के पीछे, सर्व कूं रोटी थी। सोच नहीं रहै था, सर्व गीत-नाच अच्छे लागैं थे। सो उजाड़्या। तो सर्व कुटुम्बी सहित दुखी भया। जैसे बाग रहै सुखी रहेगा, तैसे ही धर्म रूपी बाग के फलन करि सदीव सुखी रहै है। ऐसे धर्म-बाग की रक्षा कूं भूलि, बिषय-कषाय में मगन होय रहैगा, तो धर्म रूपी बाग के बिनाश

तैं आप दुखी होयगा। एक बार का ही विषय–सुख होयगा। और पहले सदीव बाग की रक्षा करि, पीछे विषय–सुख भोगेगा। तो ताके फल तैं सुखी रहैगा। तातें हे भव्य, तूं ऐसा जानि। जो आत्मा कूं नरकादि खोटी गति होय है। सो ये धर्म–घात का फल जानना। जे जीव धर्म-काल में धर्म घाति करि, पाप का सेवन करि, विषय–भोगन में रत होवेगा। सो नर्कादि कुगति के दुख भोगवेगा। और जो धर्म–काल में धर्म का सेवन सहित, धर्मकी रक्षा करेगा। पीछे अपने विषय–भोग भोग्या करैगा। अपने पुण्य–प्रमाण मिले जो भोग, सो संतोष करि भोगैगा, तो खोटी गति न होयगी। ऐसा जानना। और तैंने कही, आगे बड़े २ राजा इन्द्रिय-जनित सुखनकूं पापरूप जानि, तिनकूं तजि, उदास होय, दिगम्बर होय, दीक्षा धारी। सो हे भाई, सुनि। इन राजाननैं दीक्षा धरी। अरु इन्द्रिय जनित भोग तजे। सो नरकादिक के भय, दीक्षा नहीं धरी है। नरकादिक के दुखन का अभाव तौ गृहस्थ अवस्था के धर्म सेवन करि होय। घरही विषैं अपने कुटुम्बमें तिष्ठतें, धर्म का सेवन करि, सुखतें पर्याय छांड़िते, तौ देवादि शुभ गति पावते। परन्तु हे भाई, घर विषैं, कर्म का नाश करि मोक्षस्थान चाहै। सो घर में मोक्ष नाहीं होय। तातें भव्यात्मा, जे निकट संसारी हैं। तिनने मोक्ष होवे कूं, सर्व कर्मनाश करि शुद्ध भाव होवे कूं, राग–द्वेष तजवे कूं, केवलज्ञान प्रगट करवे कूं, जनम–मरण के दुख दूरि करवे कूं, सिद्ध पद के ध्रुव पाववै कूं, दीक्षा धारी है। ऐसा भाव जानना। जिन्हें नरकादिक खोटी गति होय है सो धर्म को

छाँड़ि धर्म-काल में पाप का सेवन करै हैं। ते दुखी ही होय हैं । और धर्मात्मा गृहस्थन कौं इन्द्रिय-सुख भोगतैं पाप होता नाहीं और मोक्ष सुख, अविनाशी-अतीन्द्रिय-भोग सुख, मोक्ष बिना होता नहीं। तातैं जे मोक्ष-सुख के वांच्छक होंय, ते तौ दीक्षा ही धारें हैं। और जिन भव्यन कूं मोक्ष वांच्छा तौ है, पर दीक्षा धरवे कूं समर्थ नाहीं। ऐसे धर्मात्मा गृहस्थ हैं, सो घर ही विषैं मुनि का दान, जिन देव की पूजा, शास्त्रन का श्रवण-पठन, संयम, शक्ति प्रमाण तप, इत्यादिक धर्म का सेवन कर ताके फल देवपद, भोग भूमि फल, चक्रीपद, इत्यादिक पावैं। सो इन देवादिक पदन में निशदिन अद्भुत इन्द्रिय जनित सुख-भोग, आयु पर्यंत भोगवैं हैं। तातैं हे भव्यात्मा, इन्द्रिय जनित सुख तैं पाप होता, दुर्गति होती, तौ गृहस्थ-धर्मात्मा का परभव कैसे सुधरता ? अरु धर्मी-श्रावक, धर्म-रस के स्वादी, घर के सुख कैसे भोगते ? तातैं अनेक नयन करि विचारिये है तौ पाप एक धर्म-घात का नाम है। भोगन में पाप नाहीं। तातैं विवेकी धर्मात्मा हैं तिनकौं एक धर्म-काल में धर्म-सेवन ही योग्य है। आगे मुनीश्वरों के मोक्ष कौं कारण, श्रावक का घर है। ऐसा कहैं हैं—

गाथा—जीय सुहचय मोक्खो, मोक्खोत्तयण रयण मुण साहो।
मुणणर तण आहारो, भोयण सावय गेह कर होई॥ ६३॥

अर्थ—जीय सुह चय मोक्खो कहिये, जीव सुख कौं चाहै सो सुख मोक्ष विषै है। मोक्खोत्तयण रयण मुण साहो कहिये, सो मोक्ष रत्नत्रय से होय है अरु रत्नत्रय

मुनि पद तैं होय है। मुणणरतण आहारो कहिये, मुनि पद मनुष्य शरीर तैं होय है अरु शरीर भोजन तैं रहै है। भोयण सावय गेहकर होई कहिये, सो भोजन श्रावक के घर करि होय है। भावार्थ—ये सर्व च्यारि गति संसारी जीवन की आशा, एक सुख है। सो सुख सर्व चाहैं हैं। अरु आया सुख का वियोग भये, जीव दुखी होय है। तातैं ऐसा जानिये है। कि विनाश रहित अविनाशी सुख कौं जीव चाहैं हैं। सुख तैं एक छिनक भी अन्तर नहीं चाहैं हैं, ऐसा सर्व जीवन का अभिप्राय है। सो हे भव्य जीव हो! संसार में देव-मनुष्यन के सुख हैं। सो तो विनाशीक हैं। कोई पुण्य जोग तैं होय हैं। पीछे अपनी स्थिति—मरजाद पूर्ण भये पर्यन्त रहैं हैं। पूरण भए पीछे सुख नाश होय है।सुख नाश भये, बड़ा दुखी होय है। जैसे विद्युत (बिजली) पात, अल्प उद्योत का चमत्कार करि, पीछे अन्धकार करै है। तैसे ही इन्द्रिय—सुख तो तुच्छ सा चमत्कार, सुख की वासना सी बताय, पीछे दुख ही उपजावै है। तातैं ऐसा विनाशीक सुख होने तैं, न होना भला है। यह जीव तो निरंतर अविनाशी सुख कूं चाहै है। तातैं हे सुख के अर्थी जीव हो! तुम्हारी वांच्छा प्रमाण सुख का स्थान सिद्ध पद है। तहां ध्रुव-अविनाशी सुख है। सो सुख, सर्व कर्म के नाश तैं पाईये है। तातैं तुम कौं सदीव अविनाशी सुख की अभिलाषा है तौ जैसे बनै तैसे सर्व कर्मन का नाश करौ, ज्यों मोक्ष होय। सर्व सुख का स्थान मोक्ष है। सो सुख का आश्रय जो मोक्ष है, सो रत्नत्रय के आधीन है। सो सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन रत्नत्रय, मोक्ष का आश्रय हैं। रत्नत्रय

बिना, मोक्ष नाहीं। और रत्नत्रय हैं सो मुनिपद के आश्रय हैं। मुनिपद, बिना रत्नत्रय के होता नाहीं। और मुनिपद है सो नर तन बिना होता नाहीं। तातैं मुनिपद का आश्रय, नर का शरीर है। और मनुष्य शरीर की स्थिरता, भोजन बिना रहती नाहीं। तातैं मनुष्य के तन का आश्रय भोजन है। और मुनीश्वर का भोजन, धर्मी श्रावक सुआचारी बिना होता नाहीं। तातें जे उत्तम श्रावक के मन्दिर हैं सो ही मुनि के तन का आश्रय जानना। तातैं ऐसा जानना। कि जो मोक्ष मारग है, सो श्रावक के घर तिनकै आधीन है। मुनिपद बिना, मोक्ष नाहीं। और श्रावक धर्मात्मा के घर बिना, मुनि के शरीर का सहकारी भोजन होता नाहीं। तातें जो शुभ श्रावकन का घर भोजन देने कौं नहीं होय। तो मुनि का धर्म नाहीं होय। अरु मुनि धर्म नहीं होय, तौ मोक्ष मारग भी नहीं सधै। तातें ऐसा जानना, जो मोक्ष मारग का आश्रय श्रावक का घर ही है। ऐसा जान धर्मात्मा श्रावकन कूं शुभ आचार रूप प्रवर्तना योग्य है। आगे बुद्धि, धन व तन पाये का फल कहै हैं—

गाथा—बुधिफल तत्त्व विचारइ, तण फल तव तीथ झाण चारत्तो।
धण फल पूजा दाणउ, वच फल परपीय जंतु रख सत्तो ॥ ६४ ॥

अर्थ—बुधिफल तत्त्व विचारइ कहिये, बुद्धि का फल-तत्वन का विचारना है। तण फल तव तीथ झाण चारत्तो कहिये, तन का फल-तप, तीरथ, ध्यान और चारित्र है। धण फल पूजा दाणउ कहिये, धन का फल-दान पूजा है। वच फल परपीय जंतु रख सत्तो कहिये, वचन का फल-परकौं प्रिय दयामई सत्य बोलना है। भावार्थ—जे सुबुद्धि कूं पाय, धर्म

मारग भूलि कैं विषयन में प्रवृत्ति करि, पाप करि, शीश अशुभ भार लिया। सो तो बुद्धि भई ही निष्फल भई। और जिन भव्य जीवन नैं बुद्धि पाय करि, तत्त्वन का विचार करि, पाप कर्मका क्षय व पुण्य का संचय करि, मोक्ष होने का उपाय विचार किया। सो ही बुद्धि पाये का उत्कृष्ट फल है। और मनुष्य शरीर पाय कैं अनेक पापकारी स्थानन में प्रवृत्ता, पर पीड़ा करी, परधन हरया, परस्त्री रम्या, पाप स्थानन में तीरथ जानि भ्रमण किया। इत्यादि कार्य-पापाचार करि अशुभ कर्म का बंध किया, सो तो तन पाया जैसा नहीं पाया। शरीर विरथा गया। जो शरीर पाय निर्हिंसक, आरंभ रहित, दयाभाव सहित, अंतरंग तप षट्, वाह्य तप षट्, ऐसे बारह तप कूं करै, सो तन–फल है। तथा जहां तैं कर्म नाश कर जतीश्वर मोक्ष गये, सो स्थान शुद्ध तीर्थ है। सो जा शरीर तैं तिस स्थान की बंदना–पूजा करनी, सो शरीर सफल है। और जिस शरीर तैं विकराल भेष धरि, पाप–पाखंड धरि, औरन कूं भय उपजाया। सो शरीर विरथा है। और जा शरीर तैं कायोत्सर्ग–मुद्रा तथा पद्मासन–मुद्रा धरि, समता भाव धरि और जीवन कूं विश्वास उपजाय सुखी किये। धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान रूप भाव सहित ध्यान किया, सो काय सफल है। और पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति ये तेरह प्रकार चारित्र, तथा बारह व्रत जा शरीर तैं बन्या होय, सो तन पाया सफल है। और जा धन करि पापारंभ क्रिया करि, परभव कूं दुख उपजाया होय, सो धन वृथा है। तथा जा धन तैं अन्य जीवन कूं मोल लेय मारे होंय, जा धन तैं पर-जीव बन्दी

में किये होंय, परस्त्री सेवन किया होय, तथा वेश्या—गमन में दिया होय, नाच कराय, गान कराय, इत्यादि विकार—भावन में धन दिया होय, सो धन वृथा है। तथा द्यूत रमने में धन दिया, तथा द्यूत रमनेके कारण-चौपड़ि, गंजफा, शतरंज, इन आदि द्यूत कार्य के उपकरन तिनकौं बहुत मोल देय लेना, बहुत धन देय चाँदी—स्वर्णादि के बनवावना, महा अनुरागि सहित धन लगाय द्यूत की शोभा करनी, सो धन विरथा है। और जा धन तैं मुनि-बीतराग कूं दान दिया होय, जिन भगवान् की पूजा की होय, सो धन पाया सफल है। और मुख पाय, वचन तैं अनेक जीवन के मान खण्डन किये होंय। पर जीवन कूं कटु बचन कहि दुख उपजाया होय। तथा, विरथा—बे प्रयोजन वचन, अनर्थ दण्ड के उपजावनहारे ऐसे वचन इत्यादिक पापबंध करनहारा बचन बोलना, सो बचन पाया जैसा नहीं पाया, वृथा वचन है। और जिन वचनों कूं अन्य जीव सुनि, साता पावैं। जिन वचनों की प्रतीति करि और जीवन कौं स्थिरता होय, सुख पावैं। ते वचन दया सहित, हिंसा पाप रहित, सत्य, इत्यादिक जिन देव की आज्ञा—प्रमाण हित—मित वचन का बोलना, सो वचन पाया सफल है। ऐसा जानि कैं विवेकी हैं तिनकौं बुद्धि पाय कैं तो जीवाजीवादिक तत्त्वन का विचार करि, बुद्धि सफल करना जोग्य है। और तन पाय, तप तीरथ ध्यान करि, तन सफल करना भला है। और धन पाय दान—पूजादि करि पुण्य उपजावना अच्छा है। और वचन पाय, हित मित सत्य बोलना। और भी इन आदि सुकार्यन में विषैं शुभ रूप रह कैं, भव सफल करना योग्य है।

ऐसा जानना। आगे ऐते निमित्त, काल–मृत्यु समान जानि, तिनमें सावधान रहना ऐसा बतावैं हैं––

गाथा––दुठणारी सठ मित्तऊ, गूढ़ जाणंत मंत्र जे भत्तो।
अहथित घर विसपाणो, एसहु णमत्ताय द्वार जम्म गेयो॥ ६५॥

अर्थ––दुठणारी कहिये, दुष्ट स्त्री। सठ मित्तऊ कहिये, मूर्ख मित्र। गूढ़ जाणंत मंत जे भत्तो कहिये, गूढ़ बात कौं जो सेवक जानता होय। अहथित घर कहिये, घर में सर्पका बास। विषपाणो कहिये, विषका भोजन। ए सहु णमत्ताय कहिये, ये सब निमित्त। द्वार जम्म गेयो कहिये, काल (मृत्यु) समानि जानना। भावार्थ–इस जीव के पाप कर्म का उदय आवै, तब ऐसा निमित्त मिलै। जो घर विषैं महादुष्ट स्वभाववाली, कलह कारिणी, विनय–लज्जारहित, तीक्ष्ण–कटुक वचन भाषणी, क्रोधादि कषायन सहित, कामाग्नि जिसकैं तीव्र होय। इन कूं आदि लेकर अनेक अनाचार, औगुण करि भरी स्त्री मिलै। सो मरण समान दुख सदीव जानना। तथा आप तो महाविवेकी होय, नाना नय-जुगति का जाननेहारा होय। चतुर, अनेक कला का धारी, धर्म–कर्म कार्य में प्रवीण होय और जिनमें सदीव रहना, ऐसे मित्र जो आपके पास निरंतर रहैं, सो मूरख हौंय। तौ आप तौ विचारै कछु भला कार्य, अरु मूरख–मित्र ज्ञान हीन, वह विचारै निंद्यकार्य। अरु समझते नाहीं, कहिये कछू अरु वह मन्दज्ञानी करै कछू। सो ऐसे मूरख के निमित्त तैं, विवेकी कौं

मरण समान निमित्त है। और कोई अपनी गूढ़ बारता है, जो काहू कौं कहने की नाहीं। उस बात कूं कोई जानै, तौ आप कूं दुख होय। और राज-पंच कदाचित् सुनि पावैं, तौ दण्ड देंय। ऐसी बारता गूढ़ थी, सो पहिले कोई चाकर कूं अपना जानि, मित्र जानि, कही होय। तो वह चाकर-मित्र काल पाय, जिनका प्रयोजन नहीं सधै, द्वेष रूप होंय। तब ये ही मित्र, काल समानि हैं। तातैं विवेकी होंय सो स्नेह के वश, सेवक कौं तथा मित्र कौं अपने घरकी छिपी गूढ़ बारता नहीं जनावैं हैं। और जनावैं तो कबहूँ, काल समानि दुखदाता जानना। और जा घर विषैं सर्प होय, ताही घर विषैं निशदिन रहना होय। तौ कभूं न कभूं मरण होय। तातैं विवेकी, जा घरमें सर्प होय, तहां नहीं रहै। और हलाहल विषका खावना। सो मरण का कारण है। इत्यादिक कहे जे खोटे निमित्त, सो कबहूं न कबहूं मरण करैं। तातैं विवेकीन का इतनी जगह सावधानी ही जीतव्य जानना। आगे येती जगह मुनीश्वर नहीं रहैं। अरु रहें तो अपना संयम नष्ट होय। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—जहि मुणि थति णह भूपो, णीरो तण धाण अलप तँह होई।
णह धम्मी जण धम्मो, स पुर देसोय तज्जये जोई ॥ ६६ ॥

अर्थ—जहि मुणि थति णह भूपो कहिये, वहां मुनि की स्थिति नाहीं, जहां राजा नहीं होय। नीरो तण धाण अलप तँह होई कहिये, जल घास अन्न जहां थोरा होय। णह धम्मी जण धम्मो कहिये, धरमी जन अरु धर्म जहां नहीं होय। स पुर देसोय तज्जये जोई कहिये,

सो पुर—देश योगीश्वर तजैं हैं। भावार्थ—इतनी जायगा मुनीश्वर नहीं रहैं। एकतो जा देश मैं तथा पुर में आगे मुनि का वास नहीं होय। जा देश-पुरके बनमें मुनि रहते हौंय, तहां रहैं। तथा मुनि-थिति करने जोग्य जो स्थान नहीं होय, तो ता क्षेत्र में योगीश्वर नहीं रहैं। रहैं तो संयम जाय। और जा देश—नगर का कोई राजा नहीं होय, तौ ता क्षेत्र में मुनीश्वर नाहीं रहैं। क्योंकि राजा रहित क्षेत्रन में प्रजा दुखी होय है। जीवन की दशा अन्यायी होय, जीव तहां अनाचारी हौंय, निर्दयी हौंय, इत्यादिक अनेक विपरीतता होय। सो यती का धर्म, तहां सधै नाहीं। न्याय—राज्य बिना दुष्ट प्राणी, दीर्घ शक्ति के धारी हौंय, सो दीन जीवन कूं पीड़ा दैंय। सो दीन जीवन कूं दुख होता देखि, दया—भण्डार का हृदय कोमल, सो अशक्तिवानों का दुख देखा जाता नाहीं। राजा होय तौ, हीन शक्ति के धारी जीवन कूं, बड़ी शक्ति का धारी पीड़ित नहीं करि सकै। और कदाचित् दीनन कौं शक्तिवान् सतावैं—दुख दैंय, तौ राजा दण्ड देय। और राजा नहीं होय, तो प्रजा दुखी होय। सो प्रजा का खेद दया-सागर देखि, दुखी-चित्त हौंय। तातैं राज्य रहित क्षेत्र विषैं, जतीश्वर नाहीं रहैं। और जिस देश मैं नदी, सरोवर, कूप, बावड़ीन का नीर कठिनता तैं मिलता होय। तहां यतीश्वर का धर्म पलै नाहीं। ऐसे क्षेत्र में नाहीं रहैं। और जहां तिर्यंचन के तनका आधार जो तिण, सो घास की बाहुल्यता होय, तो पशू साता पावैं, सुखी रहैं। और जहां घास की उत्पत्ति अल्प होय, ताकरि घास के खानेहारे तिर्यंच पीड़ा पावैं। ऐसे क्षेत्रन में करुणासागर नहीं रहैं। और

जिस क्षेत्र में अन्न की उत्पत्ति थोरी होय, तहां के जीव सदीव अन्न की चिंता सहित रहते होंय। तो ऐसे क्षेत्र में मुनीश्वर का धर्म, निराबाध नहीं सधै। तातैं ऐसे क्षेत्र में दया-भंडार जगत-गुरु यतीश्वर नहीं रहैं। और जिस देश-पुर विषैं सुआचारी धर्मात्मा जीव नहीं रहते होंय, तो यती के भोजन का अभाव होय। पापाचारी, अभक्ष्य के खानेहारे, दयारहित जीवन करि भरया ऐसा कुक्षेत्र, तहां जती का धर्म नहीं सधै। तातैं ऐसे धर्मी जीवन रहित क्षेत्र में, नहीं रहैं। और जहां जिन धर्म की प्रवृत्ति नहीं होय। जहां जिन चैत्यालय में जैन शास्त्राभ्यास नहीं होय। तो ऐसे कुक्षेत्र में मुनीश्वर नहीं रहैं। इत्यादिक कहे जे आकुलता के कारण खोटे स्थान, तहां जगत पीर-हर नहीं रहैं। और कदाचित् रहैं तो संयम तैं नष्ट होंय। ऐसा जानना। आगे इन जीवनका विश्वास नहीं करिये, सो बताईये है--

गाथा---णख संगा पसु णदियो, विसदंती सत्थणग तीय मदपायो।
कितघण स्वामी दोहो, गभ खल चित्तोय णाहि विसयासो॥ ६७॥

अर्थ---णख संगा पसु कहिये, नख सींग के पशू। णदियो कहिये, नदी। विस कहिये, जहर। तथा दंती कहिये, दंतवारे तिर्यंच। सत्थणग कहिये, जाके हाथमें नग्न शस्त्र होय। तीय कहिये, घरकी स्त्री। मदपायो कहिये, दारु का मतवाला। कितघण कहिये, कृतघ्नी। स्वामी दोहो कहिये, स्वामी द्रोही। गभ खल चित्तोय णाहि विसयासो कहिये, गूढ़ मन का धारी, दुष्ट परणामी, इन सबका विश्वास नाहीं करिये। भावार्थ---जे जीव नख तैं परजीवन का घात करनहारे ऐसे

रीछ, सिंह, श्वान, मार्जार इत्यादिक दुष्ट तिर्यंच, ऐसे नखी जीवन का विश्वास करना जोग्य नाहीं। और जे जीव सींगन तैं परजीवन कूं मारैं। ऐसे भैंसा, वृषभ (बैल), मीढ़ा, मृगादिक, ये तीक्ष्ण सींग के धारी तिर्यंचों का विश्वास करना जोग्य नाहीं। और आप बहुत ही बलवान् जल का तैरनेहारा होय, तौ भी सावन—भादवा की वर्षान करि चढ़या जो बे—मरजाद जल, ऐसी भयानीक नदी बहती होय, ताका विश्वास करना योग्य नाहीं। और महा हलाहल जाके खाये मरण होय। देखे ही प्राण जांय ऐसे विषका, कौतुक मात्र भी विश्वास करि खावना योग्य नाहीं। तथा विषके धरनहारे क्रूर सर्प—विच्छू आदिक विष-वाले जीव, तिन विषीन का विश्वास नहीं करिये। और जे जीव दांतन तैं परजीवन का घात करैं काटैं—मारैं, ऐसे मगर, चीता, ल्याली, स्यार और ये सिंह, श्वान दांत—दाढ़ तैं भी मारैं। तातें सिंह, श्वान, सूस, गेंड़ा, हाथी, इत्यादि जे दंती हैं। सो इन दन्ती तिर्यंचन का विश्वास करना योग्य नाहीं। और जाके हस्त में नगन शस्त्र होय, ताका विश्वास नहीं करिये। और स्त्री का ज्ञान महा शिथिल होय है। ताका चित्त महा चंचल होय। ताके उर विषैं कोई बात ठहरे नाहीं, विषयन की अभिलाखनी, कार्य—अकार्य में नाहीं समझै। इत्यादिक अज्ञान चेष्टा की धरनहारी जो स्त्री पर्याय, महालोभ की धरनहारी, ऐसी स्त्री अपनें घरकी भी होय, तौ भी ताका विश्वास नाहीं कीजिये। अरु मदिरा—पायी मदके अमल मे बेसुध भया। ताकों भले—बुरे का भेद कछु नाहीं। जाका ज्ञान सर्व भ्रममयी होय

गया है। जाकैं अपनी परणति अपने वश नाहीं। पराधीन, अज्ञान चेष्टा का धारणहारा, ऐसा मदोन्मत्त, खस समानि बेसुध, ताका विश्वास नाहीं करिये। और जे जीव पराये किये उपकार कौं भूलें, सो कृतघ्नी कहिये। काहू ने भूखे कूं भोजन दिया। नंग्गे कूं वस्त्र दिया। रोग बिषैं मरते कौं अनेक यतन—औषधि करि बचाया। तुच्छ पदस्थ तैं, बड़े पदस्थ का धारी कीया। आदर रहित कूं आदर सहित कीया। निरधन कूं धनवान् किया। इत्यादिक उपकार जापैं किए होंय, तौ भी तिन सब कूं भूलि जो दुर्बुद्धि उल्टा द्वेष करै। अरु ऐसा कहै, तुमने कहा किया ? हमारे भाग्य तैं भया। तथा हमारी बुद्धि के योग तैं हम सुखी भये व हमने पाया है। ऐसे कहनहारा, पराए किये उपकारन का उगलनहारा कहिये तजनेहारा—भूलनेहारा, ऐसे कृतघ्नी—पापाचारी का विश्वास नहीं करिये। क्योंकि जानैं अनेक उपकार किए, तिसका ही नहीं भया। तो ऐसा कुबुद्धि जीव और के अल्प उपकार कौं कहा मानेगा ! ऐसा जानि यातैं डरि, इस कृतघ्नी का विश्वास नहीं करिये। और एक स्वामीद्रोही, सो जिस स्वामी के प्रसाद अनेक सुखपाये, धन पाया, छोटे तैं बड़े होय गये। समय पाय उसही स्वामी का द्वेषी होय बुरा चाहे, ताकूं दुखदाई होय। ऐसे स्वामी-द्रोही, अपजस की मूर्ति, मृतक समानि, महालोभी, ताका विश्वास नहीं करना भला है। और जो अपने चित्त की बारता औरन कौं नहीं जनावै। महागूढ़ हृदय का धारी। मनमें और, वचन में और, काय में और ऐसी कुटिल परणति का धारी। तीव्र माया कषाय के उदय

का भोगनहारा, दगावाज, ताका विश्वास नहीं करना। ये स्वामीद्रोही है। काहू का मित्र नहीं है। तातें इस स्वामीद्रोही का विश्वास नहीं करना। और एक दुष्ट है सो पराया सुख कूं देखि, आप दुखी होय। पर जीवन कूं दुखी देख आप सुखी होनेहारा, रौद्र परणामी, दुष्ट है। सो ऐसे दुष्ट का विश्वास नहीं करना। यातैं नखी, सींगी, नदी, विषी, दंती, नगन शस्त्रधारी, मदोन्मत्त, कृतघ्नी, स्वामीद्रोही, दुष्ट स्वभावी इन दश जाति के जीवन का विश्वास न करना सुखकारी है। इति सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अनेक जुगति उपदेश वर्णनो नाम, पच्चीसवीं संधि पूर्ण भयी॥ २५॥ आगे मुखमें मीठा, पीठ तैं द्वेष करनहारा ऐसा मित्र, तजवे जोग्य है। सो दृष्टान्त सहित बतावैं हैं—

गाथा—पूठय काजय हंता, पतखो पीय वयण सिरणावो।
सय सठ मायापिंडऊ, जय विसकुंभोय वदन पय जेहो॥ ९८॥

अर्थ—पूठय काजय हंता कहिये, जो पीछे तौ कार्य का घात करै। पतखो पीय वयण सिरणावो कहिये, प्रत्यक्ष मीठा बोलै, मस्तक नवावै। सय सठ माया पिंडऊ कहिये, सो मूरख दगावाजी का पिण्ड जानना। जय विस कुंभोय वदन पय जेहो कहिये, जैसे मुख पै दूध लग्या विष तैं भरया कलश होवै। भावार्थ—जो कोई ऐसा दुर्बुद्धि-कुटिल अपना मित्र होय, तो ताकौं पहिचान कैं तजना भला है। कैसा है वह मित्र, पीठ पीछे तौ अपनी निन्दा करै, हाँसि करै। सदीव ऐसा छल देखा करै जाकरि मान खण्ड करै, तथा धन नाश करावै। मारनेकूं, दुखी करवे

कूं छल देखा करै। इत्यादिक दुष्टता राखै। अरु प्रत्यक्ष मिलै तब मुंह पै हाथ जोड़ि, बारम्बार बहुत शीश नवाय, विनय करै, मिष्ट वचन बोलै, मुख—प्रसन्न करि बातैं करै। स्नेह जनावै, सेवक होय रहै। धरती तैं हस्त लगाय सलाम करै। पुत्र सा होय रहै। किन्तु अन्तरङ्ग की दुष्टता नहीं तजै। ऐसे दुष्ट चित्तका धारी पाखण्डी, मायावी मित्र कूं तजना ही सुखकारी है। कैसा है यह मित्र, जैसे विषका भरया कलश होय, ताके ऊपर थोरा दूध भरया होय। सर्व अनजान जीवन कूं, सर्व कलश दूध का भरया भासै। सो कोई याकौं दूध का भरया जानि, ऊपर के दूध कूं खायगा तौ प्राण तजैगा। तातैं वह दूध भी जहर समानि है। तातैं या सर्व ही विष का भरया जानि, तजना भला है। तैसेही अन्तरंग दोष करि भरया, मुख मीठा, ऐसा मित्र, विषके कलश समानि जानि तजना योग्य है। आगे एती सभा विषैं सभा विरोध वचन न बोलै। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा——धम्मसभा णिप पंचय, जाय लोयोय बंधुवगणाणी।
इणविरुद्ध वच करई, सचर सठ लोयणिद दुहलेहो॥ ६६॥

अर्थ——धम्म सभा कहिये, धर्म सभा। णिप कहिये, राज्य सभा। पंचय कहिये, पंच सभा। जाय कहिये, जाति सभा। लोयोय कहिये, लोक सभा। बन्धु वगणाणी कहिये बन्धुवर्गों में। इणविरुद्ध वच करई कहिये, इन विरुद्ध वचन का बोलना। सचर सठ कहिये सो जीव मूरख। लोयनिंद दुह लेहो कहिये, लोक निन्दा अरु दुख पावै। भावार्थ--

विवेकी होंय सो एती जायगा में सभा विरुद्ध वचन नहीं बोलैं। और ऐती सभान में सभा विरोधी बोलै, ताकूं मूर्ख कहिये। सो ही बताईये है। एक तो मोक्ष मारग सूचक धर्म तथा धर्म के कारण जिन धर्म कों सेवनहारे धर्मात्मा जीव। तिन धर्मात्मा जीवन की सभा विषैं सर्व धर्मात्मा जीव, धर्म को बढ़ावे कौं, प्रभावना होवे कौं, पुण्य बढ़वे कूं नाना चरचा करते होवें। तिस अवसर में सर्व सभाके धर्मात्मा पुरुषों ने ऐसा कह्या, जो यहां कछू द्रव्य लगावना। तथा तन तैं यहां कछू खेद खावना, ज्यों पुण्य होय। ऐसा प्रबन्ध विचास्या। सो सब कौं परस्पर बूझ चले कि जो धर्मवृद्धि कूं यह उपाय विचास्या है, सो इस प्रबन्ध में सर्व प्राणीन कूं रहना योग्य है। सो ऐसा सुनि कें कोई कहै, जो हम काहू के प्रबन्ध में नहीं, अपनी इच्छा होय तैसे धर्म साधन करेंगे, जाकौं प्रबन्ध में रहना हो सो रहो, हम नहीं हैं। ऐसी धर्मात्मा-सभाके खंडवे कौं मद सहित वचन बोलै, सो महामूरख कहिये। ये धर्म सभा विरोधी वचन, महा पाप-फल का दाता, धर्म घातक वचन है। सो धर्मात्मा विवेकी ऐसा नहीं बोलै। धर्मात्मा होय, सो धर्म प्रबन्ध रूप वचन सुनि कैं; हर्ष सहित सर्व कूं ऐसा कहै, जो तुम धन्य हो। भली विचारी। हम आज्ञा प्रमाण सर्व के वचन प्रबन्ध में शामिल हैं। सर्व ने करी, सो हम कूं प्रमाण है। ऐसा वचन सभामें बोलना, उत्तम धर्म-फल का दाता, धर्म सभा सुहावता होय है। सो ऐसी बोलनेहारा पुरुष प्रसंशा योग्य है। और जो पापात्मा होय, सो धर्म सभा विरोधी वचन बोलै है, सो ये पाप बन्ध

का कारण है। तातें पाप तैं भय खाय, धर्मात्मा धर्म-सभा विरोधी वचन नहीं बोलैं हैं ॥१॥ और राजान की सभा विषैं वचन बोलिये सो सत्य व विनय सहित, अपने-पराए पदस्थ प्रमाण, राजा आदि सर्व सभा कूं सुहावता वचन बोलना, सो विवेकी का धर्म है। और कदाचित् राजा के अविनय सहित तथा सभा कूं अप्रिय, सभा विरुद्ध वचन बोलै, तो मरणादि दुख कूं प्राप्त होय। तातें राज्य-सभा विरुद्ध वचन नहीं बोलिये ॥ २ ॥ और पञ्चन में जहां सर्व पञ्च भले-मनुष्य न्याति के तथा परन्याति के मिल, मनसूबा तथा न्याय करैं हैं। तथा कोई प्रबन्ध करते होंय। तहां कोई परस्पर पूंछैं हैं। भाई हो, सर्व पंचन का यह प्रबन्ध है। सो इस मनसूबे में कायम हो अक नाहीं ? फलाना जी, पंच तुम पै ऐसा दोष लगावैं हैं। सो ऐसा दंड विचारैं हैं। सो तुमको कबूल हैं कि नहीं ? तब विवेकी पुरुष तो ऐसा कहै। कि भाई ! हम बड़े हैं, तथा धनवान हैं। तथा राजपंचन में बड़ा हमारा पदस्थ है तो कहा भया। ये हम कूं दोष है। सो सर्व पंच मिल ठहरावैं, सो हमको प्रमाण है। पञ्चन की आज्ञा हमारे शिर पर है। इत्यादिक पंचन की बड़ाई व अपनी लघुता रूप वचन बोलै, सो विवेकी है। सो वचन बोलना, पंचन में प्रसंशा योग्य है। यश दायक है। और कोई भोरा, मन्द ज्ञान करि, अपयश कर्म के उदय, ऐसा कहै। कि जो हम को दोष लगावैं हैं। ऐसे-ऐसे दोष वारे तो हम पंचन में घने बतावेंगे। हमारे ऊपर कोई दोष लगावैगा तो हमभी पंचन तथा कहनेवारे कूं राजी करौंगा। सर्व पंचन में

लाय ऐसी विपत्ति डारोंगा, सो सर्व घर-धन से जायगा। एक-दोय की आबरू ले मरूङ्गा। मोकों दोष लगावनहारा तथा दण्ड देनेहारा कौन है? घनी करोगे तो पंच अपनी पंचायती लेवेंगे। मेरे कछु पंचन तैं अटका नाहीं। इत्यादि पंचन में सभा-विरोध वचन बोलै, सो जीव अपयश की मूर्ति, पञ्चन करि निन्दा पावै है। ताकौं महा मूरख कहिये। तातैं पञ्चन में सभा-विरोध वचन नहीं बोलिये ॥ ३ ॥ और जहां अपनी जाति इकट्ठी होय, कोई जाति का प्रवंध बांध्या होय। तहां कोई जाति में प्रवृत्ति नाहीं है। तथा कोई जाति का खान-पान मनै है। तथा कोई अभक्ष खान-पान मनै है। तथा कोई रीति का वस्त्र-आभूषण राखना मना है। तथा कोई व्यापार—वणिज, बांकी पाग बांधना, फैंटा का बांधना, शस्त्र का बांधना, इत्यादिक मलिन-क्रिया खोटा—चलन मनै है। सो काहू तैं कोई एक बात अयोग्य बन गई। ताकौं जाति के सर्व पञ्चोंने बुलाय कैं कही। हे भाई, तुमने अज्ञानता करि यह जाति-विरोधी कार्य किया है। सो सर्व जाति तेरे पै दण्ड माँगै है। तैंने पञ्चन की मर्यादा उल्लंघन करी है। तातैं ये दण्ड देहु। तब जे विवेकी, जाति मर्याद का जाननेहारा होय। सो तो जाति के वचन सुनि कैं, आप हस्त जोरि बिन्ती करै। जो अयोग्य आचार मोतैं बन्या तो सही है। अब जो सर्व जाति की आज्ञा होय, सो ही मोकों प्रमाण है। अब आगे तैं ऐसा आचार-क्रिया नहीं करूङ्गा। ऐसा वचन सर्व जाति कौं सुखदाई बोलना, सो तो यश पावने का कार्य है। और कोई मूरख होय सो ऐसे कहे, जो हम

काहू की चोरी थोड़ी ही करी है। जाति दण्ड देय, सो जाति कोई राजा थोरी ही हैं। ऐसी सीख और कोऊ कौं देय तो देय। हम तौ जैसी हमारी इच्छा होयगी, तैसा खान-पान, आभूषण-वस्त्र करेंगे। किसका मुँह है सो हम कौं मनै करेगा। इत्यादिक जाति विरोधी वचन बोलना, सो मूर्खता है। निन्दा पावै है। तातैं जाति सभा में सभा विरोध वचन नहीं बोलना ॥ ४ ॥ और लौकिक विषैं भला कार्य प्रगट होय, ताकौं निन्दिये नाहीं। और लौकिक विषैं जो कार्य निंदनीक होय, ताकूं अङ्गीकार नहीं करिये, सो ताकौं विवेकी कहिये। जैसे चोरी, जुआ, परस्त्री, व्यभिचार, वेश्यागमन, पर जीवघात, मदमांसादि खाना, इत्यादिक सप्त व्यसन कारज ये लौकीक कर निन्द्य हैं। सो इनकौं करै, अरु ऐसा कहै कि जो हमारी इच्छा होयगी सो करेंगे। हमारा कोई कहा करेंगा! ऐसा वचन कहै, ताकूं मूर्ख कहिये। निन्दा पावै है। तातैं लोक-निद्य कारज नहीं करिये ॥५॥ और अपने कुटुम्ब, माता, पिता, पुत्र, भाई, स्त्री इत्यादिक सज्जन स्नेही बन्धुओं के समूह कौं सुख उपजावै ऐसा वचन बोलै, सो तो विवेकी है। और बन्धु विरोध बोलना, जो ये सर्व कुटुम्ब मोकों हन्या चाहै है। मैं जानूं हूं, मोहि देखि नाहीं सकैं हैं। मेरे सर्व द्वेषी हैं। सो मेरो दाव लगैगा तो मैं भी सर्व का घात करूंगा। तथा मेरे इन पै कहा अटक्या? मेरे पास धन होयगा तौ आपही आय मेरे पाँयन परैंगे। इत्यादिक जिन कूं सुनि सर्व कुटुम्ब कूं दुख होय। जिन करि सर्व कुटुम्ब का मान खण्डन होय, ऐसे कुटुम्ब दुखदायक वचन बोलना सो मूर्खता है। तातैं

कुटुम्ब विरोधी बचन नहीं कहिये। ऐसे धर्म सभा, राज सभा, पञ्च सभा, जाति सभा, लौकिक सभा, बन्धु सभा, इतने स्थान कहे तिनकौं दुखदाई, सभा विरोध बचन बोलै तौ इस सभा विषैं पञ्च-निंद्य होय, लोक निंद्य होय, बन्धु वर्ग करि निंद्य होय, ये तीन निंदा लेय पीछे जीवना वृथा है। ऐसा पुरुष जीवता ही सर्व कूं मृतक समान भासै है। ताकरि तो यह भव बिगड़ जाय है। और राज सभा विरुद्ध तैं तन का घात, धन का घात होय, आंगोपांग छेदन होय, इत्यादिक होय। और धर्म सभा विरोध तैं पाप बन्ध होय, ताकरि नरकादि दुर्गति के दुख पावै। तातैं धर्मात्मा, विवेकी, दोऊ भव के सुख-यश का अभिलाषी होय, तिनकौ ऐसा वचन हित-मित सर्व कूं हितकारी बोलना। ऐसा जानि विरुद्ध बचन का त्याग करना जोग्य है। आगे शास्त्राभ्यास करिकैं येते गुण नहीं भये, तो वह शास्त्र के अभ्यास का शब्द, काक के शब्द समान है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—सुत सुणि पथण णयोगा, णधम्मो णय सांतरसपाणो।
तऊपथण किंहकाजउ, वायसइव धुणि थांणि उयलायो॥ १०० ॥

अर्थ—सुतसुणि कहिये, शास्त्र सुनि। पथण कहिये, पठन करि। णयोगा कहिये, नहीं वैराग्य। ण धम्मो कहिये, नहीं धर्म। णयसांतरसपाणो कहिये, नहीं शान्ति रस का पान। तऊ पथण किंह काजउ कहिये, सो पठना किह काज है? वायस इव कहिये, काककी नाईं। धुणिथांणि कहिये, धुनि करि। उयलायो कहिये, उकलाया। भावार्थ—यह जिनेन्द्र देव करि

कहा जो दयामई धर्म सहित शास्त्रन का कथन, तिनका रहस्य पाय, अनेक धर्मधारी जीवन ने अपना कल्याण किया। सो ऐसे शास्त्रन का अभ्यास करके तथा सुनि कैं भी जाका हृदय वैराग्य कूं नही प्राप्त भया। तो ऐसे शास्त्रके पढ़ने तैं तथा सुनिवै तैं, कहा कार्य सिद्ध भया? और जिन जीवन नै दयामई रस कर भरे ऐसे शास्त्र, तिनका अभ्यास करके भी पाप कार्यन तैं भय खाय, धर्म रूप नहीं आचरण किया, परणति विषैं धर्म की अभिलाषा रूप नहीं भया। तो ऐसे आगम के अभ्यास का खेद वृथा ही गया। और आप समान सर्व षट्कायक जीव हैं ऐसे भेद का बतावनहारा शास्त्र, तिनका अभ्यास करि, सुनि कैं भी सर्व आकुलता रहित, शान्त रस करि भर्या, समता समुद्र, ताका अर्थ रूपी अमृत कूं पीय, संतोष कूं नहीं पाया। तौ ऐसे शास्त्रन के अभ्यास करि भया जो खेद, सो विरथा ही गया। और कर्म नाश मोक्ष विषैं धरनहारा, पर वस्तु तैं खेद छुड़ाय निरबन्ध करनहारा, ऐसे शास्त्र तिनके अभ्यास करके भी आत्मीक रस पाय निराकुल दशा नहीं करी, तो शास्त्रन के अभ्यास का खेद करि, किछू सिद्ध नहीं भया। भो भव्य, शास्त्रन का अभ्यास करि, नाना प्रकार पठन-पाठन करि, अनेक शास्त्र गुरुन के मुख तैं सुनि, तिन करि अक्षर ज्ञान तो बहुत किया, बांचना भले प्रकार सीखा, अनेक छन्द, काव्य, गाथा, संस्कृत, प्राकृत करि, देश भाषा करि उपदेश देना भी सीखा, इत्यादिक चतुराई तो तैंने सीखी। किन्तु वैराग्य भाव न बढ़ाया। पाप तज, धर्म दयामई नहीं सुहाया। और क्रोध-मानादि

कषाय बुझाय, शान्ति-सुधा—रस नहीं पिया। तौ शास्त्र का पठन-पाठन वृथा ही गया। सम्यग्दृष्टी के मूल अनुभव का फल स्वभाव-परभाव का निरधार ये सर्व ऊपर कहे जो गुण, सो सर्व आत्म—कल्याण के कारण हैं। सो शास्त्राभ्यास तैं होय हैं। शास्त्रन का अभ्यास करि अनेक जीव मोक्ष मारग जानि, समता भाव धरि, मोक्ष कूं पहुंचें हैं। ऐसे शास्त्रन का अभ्यास करि, अनेक खेद खाय पठन करि, ऊपर कहे गुण ताकूं प्राप्त नहीं भया, तो सर्व खेद विरथा ही गया। जो शास्त्राभ्यास तें वैराग्य नहीं भया, धर्म अच्छा नहीं लाग्या, नहीं शान्त भाव भये, तो तेरा शास्त्राभ्यास का शब्द ऐसा भया, जैसा दीरघ शब्द करि काक उकलावे है। तैसे इन गुण बिना शास्त्रके बांचने का शोर, काक शब्दवत् जानना। आगे मरण हू तें अधिक, निद्रा को बतावें हैं——

गाथा——णिंदा मीच समाणो, मीचोय गभवांत होई इकवारऊ।
णिंदो छिंण छिंण घादय, णाण आदाय देयगय असुहो ॥ १०१ ॥

अर्थ——णिंदा मीच समाणो कहिये, निद्रा तौ मौति समानि है। मीचोय गभवान्त होइ इकवारऊ कहिये, मौत एक भव में एक बार होय। णिन्दो छिंण छिंण घादय कहिये, निद्रा छिन-छिन घात करै है। णाण आदाय कहिये, इस प्रकार आत्मा के ज्ञान कूं घात कर। देय गय असुहो कहिये, अशुभगति देय है। भावार्थ-यह संसारी जीव तौ मोह के वशीभूत भये, निद्रा कर्म के उदय भया जो आत्मा के ज्ञान दर्शन का घात, ताके निमित्त पाय, आत्मा जड़ समानि

होय, ता निद्रा को प्राप्त भये जीव, साता—आनन्द भया मानैं हैं। सो हे भव्य, ये निद्रा मृतक समानि चेष्टा लिये जाननी। तथा इसे मृतक हू तैं अधिक दुख-दायक जानना। सो ही बताईये है। जो मृत्यु है सो तो एक शरीर के उदय विषैं एक वार, आयु के अन्त उदय होय, आत्मा के दर्शन-ज्ञान कूं घातै है। और निद्रा है सो आत्मा का मुख्य गुण ज्ञान-दर्शन ताकौं छिन-छिन में घातै है। और ये निद्रा भले गुण का घाति करि, अशुभ कर्म का बन्ध करि, खोटी गति देय है। तातैं निद्रा कूं मृत्यु तैं हू दीरघ दुख-दाता जानना। ताही तैं जोगीश्वर, निद्रा का प्रवेश अपने स्वभाव में नहीं होने देंय हैं। ऐसा जानना। आगे दुष्ट जीवन का स्वभाव दृष्टान्त देकर बतावैं हैं—

गाथा---दुज्जण जोंक समभावो, इगओयण इग रुधर गह लेई।
सथण लगो वा पोसउ, णिजणिजपकत्य णाहि को जहई॥ १०२॥

अर्थ---दुज्जण कहिये, दुर्जन। जौंक कहिये, जौंक। सम भावो कहिये, ये एकसे हैं। इग ओयण कहिये, एक तो औगुण। इग रुधर गह लेई कहिये, एक रुधिर गहलेय। सथण लगो कहिये, थन तैं लागै। वा पोषऊ कहिये, भावै पोषै। णिज णिज पकत्य कहिये, निज २ प्रकृति। णाहि को जहई कहिये, कोई तजता नाहीं। भावार्थ---संसारी जीवन के अनेक स्वभाव होंय हैं। तिन में केतेक ऐसे हैं जो परकौं दुख दाई, दुष्ट स्वभावी, पर दुख सुखिया, पर सुख दुखिया, अन्य जीवन कूं दुखी, दरिद्री, रोगी, शोकी, भयवान्, मान भङ्गी

इत्यादिक असाता सहित देख महा सुखी होंय। और कोई सुखिया को अच्छी तरह खावता पहिरता, अच्छे भोग भोगता, नाचता, गावता, हँसता, रोग रहित, धनवान् इत्यादिक प्रकार सुखी देखैं तौ दुखी होय। ऐसे पापाचारी, दुष्ट अङ्गी, रौद्र परिणामी को दुरजन स्वभावी जानना। सो ये दुर्जन स्वभावो अनेक दोपन तैं भरया है। याका सहज स्वभाव ही दुराचार है। याकौं शुभ करवे का कोई उपाय नाहीं। याकौं शुभ भी करो तो दोप ही अङ्गीकार करै। इस दुष्ट का स्वभाव जौंक समान है। जौंक अरु दुर्जन, इन दोऊन का एक स्वभाव है। दुर्जन अवगुण का ही ग्रहण करे है। यह याका सहज स्वभाव ही है। और जौंक है, सो लोहू काही ग्रहण करै। इस जौंक का भी यही स्वभाव है। देखो इस जौंक को दूध के भरे आंचल तैं लगावो, तो दूध तज कैं स्तन का लोहू पीवै। और इस दुर्जन कौं चाहे जेता पोषौ, ताके ऊपर चाहे जेता उपकार करौ, परन्तु इसका जब प्रयोजन नाहीं साध्या, तब ही सर्व गुण भूलि करि, औगुण ही अङ्गीकार करै। यह अवगुणग्राही, इसका अनादि स्वभाव ही जानना। ऐसे जौंक अरु दुर्जन इनकी प्रकृति-स्वभाव है। सो अपने स्वभाव कूं कोई तजता नाहीं। कोई जतन तैं स्वभाव, काहू का पलटता नहीं। सो ऐसा जानि इस दुष्ट जन का संग हेय करना भला है। आगे अपने भावन की उपराजनातैं ही रोग की दीरघता होय है ताही कौं बतावै हैं—

गाथा—कच कच गद विण संखो, पुव्वो पाजेय जंतु तण होई।
उदय काल अणठो, भोगे ण ठयण और को पायो॥ १०३॥

अर्थ—कच कच कहिये, रोम-रोम । गद विण संखो कहिये, अगणित रोग हैं। पुव्वो पाजेय जन्तुतण होई कहिये, अगले भवके उपारजे, जीव के शरीर में होंय हैं। उदय काल अणठो कहिये, उदय आये अनिष्ट हैं। भोगे ण ठयण और को पायो कहिये, भोगे ही जांय और कोई उपाय नाहीं। भावार्थ—इन संसारी जीवन के तन विषैं देखिये, तौ एक २ बाल के ऊपर अनेक २ रोगन की उत्पत्ति है! रोम—रोम, रोगन तैं भरया है। सो इस जीव ने पूरव भव में जैसे उपारजे हैं तैसे ही शरीर में रोग हैं। सो तिष्ठै हैं, सत्ता में बैठे हैं। सो वर्तमान काल तौ कोई ही रोग दुखदाई नाहीं। परन्तु जब अवाधा काल पूरण होय उदय आवैंगे, तब महाभयानीक दुख कूं करेंगे। तब अनिष्ट लागैगा। दीरघ वेदना प्रगट होयगी। तिनके आगे, आत्मा दुख भोगता—भोगता शिथिल होयगा। अनेक कष्ट उपजेंगे। तिनके दूर करवे कूं कोई की सामर्थ्य नाहीं। मंत्र, तंत्र, जंत्र, देव साधन, ज्योतिष, वैद्यक इत्यादिक सर्व उपाय विरथा होय हैं। तातैं पूरव पाप-परणामन का बन्ध, ताकौं भोगे ही जाय है। और कोई मेटने का उपाय नाहीं। ऐसा जानि विवेकी धर्मात्मा पुरुषन कूं उदय आई असाता मैं समता सहित दृढ़ रहना योग्य है। आगे और दुख मेटने का तथा रोग के मेटने का तौ उपाय है। परन्तु काल का उपाय नाहीं। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—खुधा अण तिषणीरो, आमय कुठादि होउ उवचारो।
अन्तक एह उवचारो, हरिसुर कम्पय दीण लख होई॥ १०४॥

अर्थ——चुधा अग्ण कहिये, चुधा कूं अन्न। तिषणीरो कहिये, तृषा कूं नीर। आमय कुष्टादि दोऊ उपचारो कहिये, कोढ़ कों आदि लेय सब रोगां का भी उपचार है। अंतक एह उपचारो कहिये, परन्तु काल का उपचार नाहीं। हरिसुर कम्पय दीण लख होई कहिये, इन्द्र देव भी उसे देख, दीन होय कंपायमान होंय। भावार्थ——इस संसार में अनेक वेदना–दुख का का इलाज है। परन्तु काल का जतन नाहीं। सो ही बताईये है। बड़ा रोग भूख है, ताका इलाज तो अन्न का भोजन है। ताकरि चुधा रोग उपशान्त हो जाय है। और तृषा रोग की औषधि जल है। सो तृषा, जल तें उपशान्त हो जाय है। और कुष्ट रोग, वायु, पित्त, ज्वर, चय, खांसी, स्वांस इत्यादिक रोगन के जतन कूं अनेक औषधि कही हैं। तिन करि रोग उपशान्त होय है। परन्तु एक काल रोग का उपचार नाहीं। ए काल कोई भी जतन तें मिटता नाहीं। इन्द्र, देवादि ऐसे भी, काल का आगमन देखि, कंपायमान होंय हैं। ताका नाम सुनतें, बड़े २ योधा, दीनता कूं धारैं हैं। तातें हे भव्य, इस काल तैं बड़े-बड़े नहीं बचे, तीन लोक में कोई ऐसा स्थान नाहीं, जहां काल तैं बचैं। सर्व स्थानकन में जहां जाय, तहां मारै। तातें हे धर्मी, तू काल तैं बच्या चाहै है तो मोक्ष के पहुंचने का उपाय करि। तातें तन का धरना-मरना सहज ही मिटै। मोक्ष में काल नाहीं। और मोक्ष बिना सर्व लोक स्थान में, सर्व संसारी तनधारी जीव, काल का भोजन है। आगे इष्ट वियोग कहां है, कहां नाहीं है। ऐसा बतावें हैं——

गाथा—इठ व्योगा णठ जोगा, इठजोगा णठ वयोग कव होई।
ये भवचर ववहारऊ, सिद्धो विवरीय रहइ इण संगो ॥ १०५ ॥

अर्थ—इठ व्योगा णठ जोगा कहिये, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग। इठ जोगा णठ वयोग कव होई कहिये, कबहुं इष्ट का संयोग, अनिष्ट का वियोग। ये भवचर ववहारऊ कहिये, ये संसारी जीवन का व्यवहार ही है। सिद्धो विवरीय रहई इण संगो कहिये, सिद्ध इन सब तैं विपरीत-रहित हैं। भावार्थ—जे संसारी तनधारी जीव हैं। तिनकौं कबहुं इष्ट का वियोग, कबहुं अनिष्ट का संयोग होय है। तिन करि आत्मा दुखी होय, विकल्प-आरति करि पाप का ही बन्ध करै है। और कबहुं इष्ट का संयोग होय है, अनिष्ट का वियोग होय है। तब जीव पुण्य के उदय में हर्ष मानै है। सो ऐसा दुख-सुख संसारी जीवों का विवहार ही जानना। और ये कहे इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगादिक दुख-सुख सो सिद्धन में नाहीं। सिद्धन कों इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगादिक के कारण नाहीं। तातैं कारण के अभाव तैं संसारी सुख-दुख भी नाहीं। तातैं सिद्ध भगवान् सदा सुखी जानना। आगे काल आगे कोऊ शरण नाहीं, एक धर्म शरण है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—जम्मण मण जग लगऊ, सुर णर णारय तिरीय किंह भाजय।
सहु अंतक मुह कवलय, एको संणाय धम्म अणिणाहो ॥ १०६ ॥

अर्थ—जम्मण मण जग लगऊ कहिये, जन्म-मरण जग कौं लागा है। सुर कहिये,

देव। णर कहिये, मनुष्य। णारय कहिये, नारकी। तिरीय कहिये, तिर्यंच। किंह भाजय कहिये, कहां भागैं। सहु कहिये, सर्वही। अंतक मुह कवलय कहिये, ये सब अंत में काल के मुख का ग्रास हैं। एको संणाय धम्म कहिये, एक धर्म का शरण है। अणिणाहो कहिये, और नाहीं। भावार्थ—शरीर—इन्द्रिय नाम—कर्म के उदय तैं नवीन पर्याय का उपजना, सो तो जन्म कहिये, और उत्पत्ति भई थी जो पर्याय सो अपनी थी, मर्याद पर्यंत रही। पीछे आयु के पूरण होते पर्याय तैं छूट कैं अन्य गति जाना, सो मरण कहिये। इसकी आयु-स्थिति का प्रमाण है। सो समय तैं लगाय घड़ी, पहर, दिन, वर्ष, पल्य, सागर, सो ही बताईये है। तहां जघन्य युगता असंख्यात समय जाय, तब एक आंवली कहिये। और असंख्यात आवली काल व्यतीत भये, तब एक श्वासोच्छ्वास काल होय है। ऐसे श्वासोच्छ्वासन तैं संसारी जीवन की स्थिति है। सो ये संसारी जीव इस शरीर में इतने श्वासोच्छ्वास रहेगा। सो काय का आयु-कर्म जानना। सो यह पर्यायधारी संसारी जीव, जब अपनी स्थिति प्रमाण श्वासोच्छ्वास भोग चुके है, तब मरजाद पूर्ण होते, आत्मा पुद्गलीक शरीर के संग कूं तजै है। ताका नाम विवहार नय करि लौकिक में मरना कहैं हैं। ऐसे ये जन्म—मरण, इन जगवासी तन-धारनहारे जीवन कूं सदैव लागा है। नाना प्रकार भोगन के भोगनहारे, अनेक ऋद्धि के धारी, सागरों पर्यंत जीवनहारे, ऐसे जो देव हैं। तथा नानाप्रकार दुख—सुख करि मिश्रित जीवनहारे, जो मनुष्य पर्याय धारी। और अनेक मन—अगोचर दीरघ—दुखन का सागर

ऐसी नरक गति है। और अल्प-सुख, दीरघ-दुख का स्थान तिर्यंच गति है। ऐसे चारि गति के जीव समुच्चय अनंत हैं। सो ये जन्म-मरण के दुख से भागकर कहां जांय ? सर्व जायगा काल मारैं है। तातें ये सर्व च्यारि गति वासी जीवन के तन आकार हैं, सो सर्व काल के ग्रास हैं। भावार्थ—कोई जीव कूं अब, कोई कूं चारि दिन पीछे, काल सर्व कूं खायगा। बचवे का कोई उपायं नाहीं। केवल एक धर्म शरण है, और नाहीं। तातें विवेकी जन जन्म-मरण के दुखन तैं डख्या होय ते भव्यात्मा, धर्म का सेवन करि, सिद्ध में चालो। ये पुद्गलीक तन छोड़ि, अमूर्तीक पद धारो। तहां सदीव सुखी रहोगे। वहां काल का आगमन नाहीं। यहां के शुद्ध अमूर्तीक आत्मा, काल के भय करि रहित हैं। तातें जे च्यारि गति के मरण तैं भागि, काल तें बच्या चाहो, तो धर्म का शरण लेहु, और शरण नाहीं। आगे अग्नि भेद तीन प्रकार हैं। सो ये अग्नि काहे-काहे कूं जालै। ऐसा बतावै हैं—

गाथा—सोगोणल जे दझय, दझय जे आतिझाण वहणीए।
उपला अयणी दझय, इव त्रय ज्वालाय काय मण दाहू ॥ १०७ ॥

अर्थ—सोगोणल जे दझय कहिये, सो शोक अगनि तैं जलै। दझय जे आतिझाण वहणीए कहिये, जे आर्त्तध्यान रूप अग्नि तैं जल्या। उपला अयणी दझय कहिये, जो काष्ठ-छांणें (कंडा-उपला) की अग्नि तैं जला। इव त्रय ज्वालाय काय मण दाहू कहिये, इन तीन अग्नि कर काय-मन जालै है। भावार्थ—शोक अगनि के बहुत भेद हैं। तहां आसाता

कर्म के उदय तैं इष्ट वस्तु का वियोग भया। ताके निमित्त पाय, कर्म के उदय करि भई जो मन की भस्म करनहारी शोक रूपी अग्नि, सो ताकरि दग्धायमान जो जीव, सो सदीव चिंतावान भया, अशुभ कर्म का बंध करता, दुखी होय। तन दुर्बल होय। तातैं इस शोक को अग्नि कहिये। जैसे अग्नि का दग्ध्या पुरुष कूं दुख के आगे अन्न नहीं भावै, निद्रा नहीं आवै। सुख के निमित्त नृत्यादि मिलैं, तो भी दाह के दुख तैं सुखी नहीं होय। तैसेही शोक-अग्नि करि जाका हृदय जल्या होय, ताकौं शोक तैं अन्न नहीं भावै, निद्रा नहीं आवै। अनेक गीत, नृत्य, वादित्रन के सुखतैं अरुचि होय, सुख न होय। इस शोक के तीव्र उदय मे बुद्धि नष्ट होय। उक्ति—जुक्ति नहीं उपजे है। भला ज्ञान का अभाव होय। पढ़्या ज्ञानादिक यादि नहीं आवै। अनेक रोगन की उत्पत्ति होय। इत्यादि दुख, शोक अगनि करि जल्या, ताकैं प्रगटैं हैं। और जाके शोक अग्नि उर में होय, ताके बाह्य चिन्ह एते होंय, सो कहिये हैं। चित्त तो ताका विभ्रम रूप, भ्रमता होय। गाल पै हस्त देय कैं बैठना। अश्रुपात होना। दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेना। रुदन करना। ये सबही कारण दुख के बढ़ावनहारे हैं। ताहीतैं विवेकी समता दृष्टि के धारी धर्मात्मा, इष्ट वियोग में शोक नहीं करैं। ये तो शोक अग्नि है ॥१॥ अब आर्त ध्यान रूप अग्नि है। सो याकौं, कारण रूपी पवन जब मिलै है। तब प्रज्वलित होय, दाह उपजावै है। सोही कहिये है। जो भली वस्तु गई, ताके विचार तैं आर्त्त अग्नि बढ़ै है। तथा खोटी वस्तु के मिलाप की चिंता, ताके निमित्त तैं आर्त्त अग्नि बढ़ै। तथा रोग पीड़ा

काहू की देख ऐसा विचार उपज्या, जो मेरे रोग न होय तो भला है। तथा मेरो रोग कैसे जाय ? ताकी आर्त्त अग्नि प्रज्वलै है। और कार्य किये पहिले, आगामी फल की आरति। इत्यादिक अनेक प्रकार आरति सो ही भई अगनि, सो इस अगनि करि जल्या पुरुष कूं, बड़ा दुख होय। सो इस आरति कौं कैसे जानिये। सो कहिये है। एकान्त बैठना, आरति वाले कूं मनुष्यन की भीड़ अच्छी नाहीं लागे है। तातैं इकला, एकान्त स्थान में बैठे। और की बात नहीं सुहावै। शोर होय—बहुत जन बतलावते होंय, सो नहीं सुहावै। चित्त उदास रहै। खान—पान की अभिलाषा नहीं होय। भोगन में रक्त—भाव नहीं होय। पुरुषारथ की अति मन्दता होय। आलस भाव, शरीर में प्रमाद होय। इत्यादिक ये आर्त्त भाव हैं। सो सर्व पापबन्ध के कारण हैं। तातैं इसे आरति अग्नि का दुख विशेष है। यह दूसरी आरति अग्नि है ॥ २ ॥ और तीसरी छैणा-लकड़ी की अग्नि है। सो इस अग्नि कूं सर्व संसारी जानैं। और याके जालनैं तैं सर्व जीव दुख खाय हैं ॥३॥ ऐसे ये तीन अग्नि हैं। तिन में शोक अग्नि अरु आर्त्त अग्नि, इन दोय अग्नि को मोही जीव, ज्ञान की मन्दता तैं नहीं जानैं हैं। और ये दो अग्नि जो दाह-दुख करैं हैं। ताकौं भी अज्ञानता की विशेषता से नहीं जानैं हैं। और जे जिन देव की आज्ञा प्रमाण चलनेहारे, तत्त्वश्रद्धानी, शुभाशुभ भाव—विकल्प के रहस्य जाननेहारे, समदृष्टी, ज्ञानी है आत्म-काया न्यारी-न्यारी। तिन मिथ्या परणतिजारी, सदीव अनुप्रेक्षा के चिन्तवनहारे, जगत दशा तैं उदासी, अल्पकाल में जे जीव

शिव जासी, जे अनुभव रस के भोगी हैं, ते इन दोऊ अग्नि के भेद-भाव जानें हैं। सो काष्ठ-लकड़ी की जो उपल अग्नि है। सो तो ऊपर तें तन कों जारे है और ये दोऊ शोक व आर्त्त अग्नि हैं। सो अन्तरङ्ग में आत्मा के प्रदेश में दाह उपजाय, मन कों सदीव दाह करैं। और काष्ठ आदि की अग्नि का जल्या तो एक भव में दुख पावे। परन्तु शोक व आर्त्त अग्नि का जल्या, भव-भव विषें दुख पावें। तातें जे विवेकी हैं तिन्हें समता-रूपी शीतल-जल लेय करि, शोकादि अग्नि कों बुझावना योग्य है। इन दोऊ अग्नि के जले, भवान्तर में दुख पावें। ऐसा जानि शोक-आरति तजना सुखकारो जानना। आगे विद्यादिक अनेक भले गुण हं, तिनकों इन्द्रिय-सुख रूपी ठग हैं, सो ठगें। सो बतावें हैं—

गाथा—बोधय तव चारत्तो, संजम झांणोय साम्म पएणामो।
ए सहु गुण जग पूज्यौ, अख सुह वंचय तसयरा बुधे॥ १०८॥

अर्थ—बोधय कहिये, ज्ञान। तव कहिये, तप। चारत्तो कहिये, चारित्र। संजम कहिये, संयम। झांणोय कहिये, ध्यान। साम्म पएणामो कहिये, शान्त परणाम। एसहु गुण कहिये, ये सब गुण। जग पूज्यो कहिये, जगत पूज्य हैं। अख सुह वंचय तसयरा बुधे कहिये, इन्द्रिय सुख है सो इनके ठगने को चोर समानि जानि, पण्डितजन चेतो। भावार्थ—नाना प्रकार शास्त्रन का अभ्यास, सो ही भया वांछित सुख का दाता, मोक्ष मारग दिखावे कूं दीपक समान, चिंतामन रतन। सो सहज ही स्वर्गादिक सुख का देनेहारा

ऐसा जो विद्याभ्यास, जगत पूज्य गुण, ताके ठगवे कौं इन्द्रिय जनित सुख की अभिलाषा, चोर समानि है। भावार्थ---ऐसे ज्ञान गुण के धारी ज्ञानी भी, कदाचित् इन्द्रिय सुखन की आरति में आपड़ैं। तो वह आरति, धर्मशास्त्रन का ज्ञान ठगलेय, लूटि लेय है। तातें जिन-देव भाषित विद्या का भाषी, शुभाशुभ पंथ का वेत्ता, इन्द्रिय जनित सुखन में धर्म छांड़ि नहीं जाय है। और अनेक प्रकार दुर्धर तप के धारी तपस्वी, अनेक ऋद्धि संयुक्त, औरन-कूं पुण्य-संपदा के दाता, जगत पूज्य, गुण भण्डार, ऐसे तपस्वी भी कदाचित् इन्द्रिय-सुखन की लालच करि, भोगन की अभिलाषा करैं, तो तपादिक अनेक गुण, सो इन्द्रिय चोर लूटि लेंय हैं। तातैं जो सांचे तपस्वी वीतराग दशा के धारी हैं, सो इन्द्रिय जनित भोग तैं राग—भाव नहीं करैं। अपने तप-धन की रक्षा करैं। और चारित्र जो पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, तीन गुप्ति ये तेरह जाति चारित्र, मोक्ष रूपी द्वीप कूं पहुंचावने कूं जहाज समानि, त्रिभुवन के जीवन करि बन्दनीक। ऐसे चारित्र रतन के ठिगवे कूं, जो इन्द्रिय सुखन की भावना है सो लुटेरे समानि है। जो ऐसे चारित्र का धारी यतीश्वर भी, कदाचित् अपने धर्म तें बिछुड़ कैं भोगन विषैं आवै, तो ताका चारित्र रतन चुराया जाय है। तातैं जेते चारित्र-धारी तपोधनी हैं ते इन्द्रिय भोगन तैं राग भाव तजैं हैं। और पंचेन्द्रिय तथा मन का जीतनहारा, षट् काय जीवन का रक्षक संयमी, इन्द्रिय संयमी, प्राण संयम का धारी, जोगी, जगत बंदनीक भी भोग विषैं अभिलाषा करै, तो अपना संयम-रतन ठिगावै। तातैं जे संयम

के लोभी हैं, ते अपने गुण की रक्षा के हेतु, भोगन की इच्छा नहीं करैं। और स्वर्गादिक का दाता धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान करि, मोक्ष का अविनाशी सुख पावैं। सो ऐसे धर्म-शुक्लध्यान के धारक यतीश्वर भी कबहूं इन्द्रिय-जनित-सुख के प्रेम में पड़ि जाँय, तौ अपना ध्यान-धन गुमावैं। सो ध्यानी, समतारस का भोगी, इन्द्रिय-सुख की चाह नहीं करै। और सहज सुधारस का स्वादी, अनेक तत्व विचार के जोर करि कषायन का मद तोड़ करि, मोह को निर्बल पाड़ि, आप समता—सागर में प्रवेश करि, निराकुल तिष्ठनेहारा, ऐसा जतीश्वर कदाचित्, इन्द्रिय सुख के द्वार, सराग चित्त करि निकसै, तौ इन्द्रिय चोर ताका समता-धन छिनाय लेय कैं, भिखारी सा करि डालैं। तातैं जे समता-रस के स्वादी, निराकुल भोग के वांच्छक हैं। ते इन्द्रिय भोगन के मारग भी चित्त कूं नहीं चलावैं। ऐसे कहे जे ज्ञान, तप, चारित्र, संयम, शुभ ध्यान, समभाव ये सर्व गुण जगत पूज्य हैं। सो इन गुण-रतन ठगवे कूं इन्द्रिय सुख, चोर रूप हैं। तातैं जो अपने धर्म गुण को बचायवे की चाहि होय तौ इन्द्रिय भोग कूं, धर्म के काल में नहीं सेवना योग्य है। आगे इष्ट वियोग के दोय भेद हैं, सो बतावै हैं—

गाथा—जुगभे यंठ वियोगो, इकासो इग होय एाय आसो।
थिति खय विणासउ, आसय जे भिण गमण उ अण ठांणाय ॥ १०६ ॥

अर्थ—जुगभे यंठ वियोगो कहिये, इष्ट वियोग के दोय भेद हैं। इकासो कहिये, एक

आशा सहित। इग होय एाय आसो कहिये, एक बिन आस। थिति खय कहिये, स्थिति के क्षय भये। विणासउ कहिये, सो बिन आस। आसयजे कहिये, आस सहित जो। भिणगमण उ अण ठांणय कहिये, और स्थान जाने कूं भिन्न होय गमन करै। भावार्थ——संसार विषैं इष्ट वस्तु चेतन-अचेतन इनका वियोग होय है। ताके दोय भेद हैं। सो ही कहिये हैं। चेतन इष्ट जे माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, हाथी, घोटकादिक चेतन पदार्थ। इनके वियोग के दोय भेद हैं। एक तौ आशा सहित वियोग है। और एक आशा रहित वियोग है। तहां जिस चेतन पदार्थ की आयु-स्थिति पूरण होय करि, जो आत्म पर्याय छोड़ि परलोक कों गया, सो अब यातैं वियोग भया, सो अब फेरि मिलने की आशा नाहीं। ये तो आशा रहित वियोग है। और कोई अपना इष्ट, एक स्थान तैं भिन्न होय, विदा मांगि परदेश कूं गमन किया, सो ये आशा सहित वियोग है। यातें मिलने की आशा है। ऐसे वियोग के दोय भेद हैं। सो मोह सहित जीवन कैं आशा सहित वियोग में तो अल्प दुख होय है। और आशा रहित वियोग में बड़ा दुख होय है। और अचेतन पदार्थ रतन, आभूषण, वस्त्र, मंदिरादिक काहू कों माँगे दिये होंय। तथा कर्ज के निमित्त काहू कों धन दिया होय। इत्यादिक बातन करि धनका वियोग होय, सो आशा सहित वियोग है। या धनके आवे की अभिलाषा है, ताकी अल्प चिंता है। और जो धन-अचेतन वस्तु चोरी गई होय, अग्नि में जली होय। काहू गिरासियादि जोरावर ने खोसि (छीन) लई होय, इत्यादिक स्थान मैं गई, ताके आवे की आशा नाहीं। सो निराशा

वियोग है। याका विशेष दुख होय है। ऐसी जगत-जीवन की रीति है। और जे विवेकी, सम्यग्दृष्टी, पुण्य-पाप दशा के जाननहारे हैं। तिनकैं दोऊ ही दशा के वियोग में दुख नाहीं है। सदीव समतारस का भोगनहारा धर्मात्मा, सो भले प्रकार जानै है कि जो इष्ट अरु अनिष्ट दोऊ ही वस्तु विनाशीक हैं। कर्म के आधीन हैं। अपनी स्थिति के प्रमाण रहैं हैं। जो भली वस्तु, अपने पुण्य के उदय मिलै, सो भी अपनी स्थिति-प्रमाण रस देय, विनस जाय है। स्थिति की पूरी भये देव-इन्द्र की राखी भी नाहीं रहै। और अनिष्ट वस्तु का मिलाप, पाप के उदय तैं होय। सो ये काहू की घेरी, जाती नाहीं। अपनी स्थिति पूरण किये जाय। सो जे भोरे, मोही, परवस्तु कौं अपनी करि दृढ़ राखनेहारा जीव तौ इष्टके वियोग में महा दुखी होय है। और सांची दृष्टी के धारी, परकौं पर जाननहारे, तिनकौं खेद-भाव नाहीं होय। आगे जैसी परणति विषय-कषाय में सांची होय लागै है, तैसे ही धर्म विषैं लागै, तौ कहा फल होय? सो बतावैं हैं—

गाथा——जे मण विसय कसायो, जेहो लगाय धम्म कज्जाए।
तउ लव काल णरंजण, इंदो अहमिंद सयल मगलाहो ॥ ११० ॥

अर्थ——जे मण विसय कसायो कहिये, जो मन विषय-कषाय में लगै। जेहो लगाय धम्म कज्जाए कहिये, तैसे धरम कारज में लगावै। तउ लव काल णरंजण कहिये, तौ थोरे ही काल में निरंजन होय। इंदो अहमिंद सयल मगलाहो कहिये, इन्द्र अरु अहमिंद्र सम्पूर्ण

के सुख सहज ही राह में प्राप्त होंय। भावार्थ—जीवन की संसार विषैं अनेक परणति है। सो अनादि काल का भूल्या ये जीव, धर्म के स्वाद कूं नहीं जानैं। अनंतकाल का विषय-कषाय मोहित जीव, गति-गति में भ्रमणनेहारा प्राणी, इन्द्रिय-सुख कूं बहुत चाहै है। परन्तु जगवासी जीव का चित्त, जैसे विषय-कषाय में रंजायमान होय, एकाग्र लागै है। तैसा ही यदि धर्म विषैं एक चित्त होय लागै, तौ अल्पकाल में ही सिद्ध-निरंजन पद पावै। तहां अनंतकाल सुखी रहै। और इन्द्रपद, अहमिन्द्र पद जो नव ग्रीवक, नव अनुत्तर, पंच पञ्चोत्तर इन कल्पातीत देवन के सुख तौ सहजही राह में आय, प्राप्त होंय हैं। तातैं विवेकी जीवन कों विषय-कषाय तजि, धर्म विषैं लागना योग्य है। आगे ऐसा कहैं हैं जो कृपण अपने तन कों ठगै है—

गाथा—किप्पण णिज तण वंचय, वंचय सुयपणण जणक तीए मित्तोय।
तण दे तण णह दाणो, धम्म रहीयो मित्य काय सम जीवो ॥ १११ ॥

अर्थ—किप्पण णिज तण वञ्चय कहिये, सूम अपने शरीर कों ठगै है। वंचय सुयपणण कहिये, अपनी जननी कौं ठगै। जणक कहिये, पिता। तीए कहिए स्त्री। मित्तो कहिये, मित्र। इनकों ठिगै है। तणदे तणणह दाणो कहिये, तन देय परंतु तृण का दान नहीं देय। धम्म रहीयो मित्य काय सम जीवो कहिये, धर्म करि रहित जीव मृतक के शरीर समानि है। भावार्थ—जे जीव महा कृपण मन के धारी सूम हैं। सो अपने तन कौं आदि लेय सर्व

कुटुम्ब कौं ठगैं हैं। सो ही बताईये है। अपने तन निमित्त अल्प-भोजन रस-रहित खाय, पेट में भूखा रहै। लोभी उदर-भर भोजन नहीं करै, भूख सहै। शीत-काल में तन पै मोटा वस्त्र सो भी अल्प, साता तैं सम्पूरण तन नहीं ढकै, शीत की वेदना सहै। घास, लकड़ी जलाकर तातैं तन तपाय, शीतकाल पूरण करै, बहुत कष्ट सहकैं दिन वितावै। दाम-दाम जोड़ि साता मानै। ऐसे तन कूं कष्ट देय। जा तन तैं भार वहि-वहि, मजूरी कराय धन कुमाया, ताही तन कौं नहीं पोषै। पेट भर भोजन नहीं देय। ऐसा लोभी अपने तन कूं ठगनेहारा कहिये। और पुत्र है सो भूख का मार्या रुदन करै। और के बालक अच्छा खाय-पहरैं; तिनकौं देखि याकै पुत्र यापै अच्छा खान-पान माँगैं-तरसैं, परन्तु ये लोभी दया रहित भोजन नहीं देय, तब पट-भूषण कहां से पावैं। ऐसे ये सूम, पुत्र कूं ठगनेहारा कहिये। और या सूम की माता ने, नव मास पेट में राखा था। ऐसी माता, पुत्र पै भला भोजन-वस्त्र मांगै। कहै हे पुत्र, अपने घर में धन अटूट है। अरु तूं हम कौं पेट भर अन्न भी नहीं देय। सो हे पुत्र, हम ऐसा किसकूं कहैं? हमकौं भूख रहै है, शीत वेदना रहै है, अग्नि तैं ताप, दिन-रात काटैं, सो तोहि दया नाहीं आवै है? ऐसे वचन माता के सुनि कैं सूम अगल-बगल हो जाय। सुनी-अनसुनी करै। परन्तु दाम एक भी नहीं देय। सो माता का ठगनहारा कहिये। और इस सूम का पिता, सो ताने बड़े २ कष्ट सहकैं, द्वीप-सागरन-उद्यान-नगर-देशन में गमन करि-करि अनेक भूख-प्यास सहकें, पापारम्भ ठानि अनेक

द्रव्य उपार्ज्यां। जब जानी कि मेरो पुत्र नाहीं, सो धन-घर सोहता नाहीं। तब पुत्र विना, धन-सम्पदा वृथा जानता भया। तब पुत्र के निमित्त अनेक कुदेव-कुभेष पूजे। अनेक मंत्र, तंत्र, यंत्र, करि-करि पापारम्भ बांध्या। और-और व्याह किये। अनेक स्त्री परन्या। तब कोई कर्म जोग तैं एक पुत्र भया। तब पिता बहुत सुख किया। याचकिन कूं मन-वांच्छित दान दिये। पुत्र जन्म का बड़ा उत्सव किया। पीछे अनेक भले-भोजन लाय पुत्र कूं दिया। अनेक पट-भूषण देय, लाड़िला राखा। ऐसे जतन करि बढ़ाया, तरुण किया। आप केतेक दिन में वृद्ध भया। तन की शक्ति घटी। पुत्र बालक था सो अब तरुण भया। तब पुत्र का व्याह करि, घर का धनी कस्या। सर्व घरका धन-धान्य पुत्र ने पाया। अब पिता का तन, दीन भया। इन्द्रिय बल घट्या। तब पुत्र पै भला भोजन मांगै, सो नहीं देय। वस्त्र मांगै, नहीं देय। देय तो तुच्छ देय या बहकाय देय। सो अपयश की मूर्ति, लोभी पुत्र, पिता का ठगनेहारा कहिये। और अपनी स्त्री, भला भोजन-वस्त्र-आभूषण मांगै। कहै हे पति, औरन के घर की स्त्री देखो, भला खाय-पहरैं हैं! अरु तुम्हारे घर में बड़ा धन है अरु हमारा यह हवाल है। जो अन्न, तन कौं तो देय। ऐसे दीन वचन स्त्री कहै। परन्तु यह लोभी स्त्री कूं भीं न देय। सो स्त्री का ठगनेहारा कहिये। और अपने मित्रन की मजलस में जाय, सो उनका धन तो आप खाय आवै। अरु अपना धन मित्रन कूं नहीं खुवावै। सो मित्रन का ठगनेहारा कहिये। ऐसा

कृपण, अशुभ परणति का धारी, दयाभाव रहित है। ये कठिन उर का धारी सूम, सो मरै, अपना तन का घात करै, परन्तु दान के निमित्त घास का तिनका नहीं देय। ऐसा सूम, निर्लज्ज, दुर्भागी, निंदा का पात्र, धर्म भावना रहित, जीवत ही मृतक समानि जानना। भावार्थ—ऐसे इस जीव का जीवना विरथा है। ये सूम जैसा जोया तैसा न जोया। आगे भिक्षुक है सौ मांगने के मिस करि, मानूं घर—घर उपदेश ही देय है। ऐसा बताईये है—

गाथा—भिक्षुक घय घय वोधय, भो सत पुंसाह देह धण दाणं।
विण दीए मम जोवो, लहुवण वारवार जाचंती ॥ ११२ ॥

अर्थ—भिक्षुक घय घय वोधय कहिये, मँगता घर—घर उपदेश देय है। भो सतपुंसाह कहिये, भो सत्पुरुष हो। देय धण दाणं कहिये, धन कौ दान में देओ। विण दीए मम जोवो कहिये, बिना दिये मोकों देखो। लहुवण कहिये, मैं तनक सा होय। वारवार कहिये, घड़ी-घड़ी। जाचंती कहिये, मांगों हों। भावार्थ—ए रंक जो भिक्षा मांगनहारे—मंगता, घर—घर विषैं भूख के मारे याचते फिरैं हैं। सो आचारज कहैं हैं। ए रंक आप जाँचैं नाहीं हैं। मानूं कृपण, कठोर चित्त के धारी, दया रहित जीवन कूं अपनी दशा दिखाय, उपदेश ही देय हैं। तिनके निमित्त ए भिक्षा मांगनेहारे घर—घर में ऐसा कहते फिरैं हैं। हे धर्मात्मा पुरुष हो! तुम्हारे पास धन है सो ताकौं दान में लगाओ, दान कूं करौ। नहीं तौ पीछे हमारी सी नाईं पछतावोगे। बिना दान दिये, हम को देखो। हमने पूरव भव में धन पाया, परन्तु दान नहीं

दिया। सो अब या भव में पेट भर भोजन नाहीं। तन पै ढांकने कूं वस्त्र नाहीं। महा अपमानित भये, दारिद्र के जोग करि दीन होय, रंक भये घर—घर अन्न के दाना याचैं हैं, तो-भी उदर नाहीं भरै है। सो हे सत्पुरुष हो, हमने या बात सत्य मानी। जो लौकिक में ऐसी कहैं हैं कि जो दिया सो पावै, बिना दिये हाथ नहीं आवै। सो अब हमने निश्चय जानी, प्रतीति आई कि जो हमने पूरव—भव में नहीं दिया, तातें लाचार—असहाय होय बारम्बार कहिये घड़ी—घड़ी याचैं हैं। तथा वार—वार कहिये घर—घर के वारने नगर में मांगते फिरैं हैं। तथा बार—बार कहिये हमारा बाल—बाल अशीष देय भिक्षा माँगैं है। तथा बार—बार कहिये अपने घर तैं बाहिर याचैं हैं। तथा वार २ कहिये बायर—बायर करि पुकारैं, शोर करि याचैं हैं। तौ भी उदर नहीं भरै है। तथा वार—वार कहिये, नीर—नीर प्यावो, मारे प्यास के प्राण जांय हैं। सो पानी पियावो, पानी पियावो। ऐसे दीन भये तृषा के दुख तैं पुकारैं हैं। सो पाप के उदय, कोई जल भी नहीं देय। ऐसे हम बिना दिये, कहां तैं पावैं ? महा दुखी भये फिरैं हैं। तातें हे भव्य हो, बिना दान दिये, हमारी सी नाईं दुख पावोगे। अरु हमारी नाईं, पीछे पछतावोगे। तातें अब कछु दान देने की शक्ति होय, तो दान करतैं मति चूकौ। ऐसे ये रंक हैं सो भिखारी का भेष करि, मानो उपदेश ही देंय हैं। या भांति भिखारी का दृष्टांत देय, दान का मार्ग बताया। तातैं जो विवेकी हैं सो अवसर पाय, तिन कूं दान देना योग्य है ॥ ११२ ॥ आगे सर्वज्ञ-केवली तैं लगाय सम्यग्दृष्टी

के अरु मिथ्यादृष्टी के वचन–उपदेश विषैं, अन्तर बतावै हैं---

गाथा---जिण गण मुण वच सावय, अतसय जुय वयण होय समदिट्ठी।
मिच्छो वच विण अतसय, इम णिप्प रंकेय वयण भेयाय ॥ ११३ ॥

अर्थ---जिण कहिये, केवली। गण कहिये, गणधर। मुण कहिये, मुनीश्वर। सावय कहिये, श्रावक। वच कहिये, इनके वचन। अतसय जुय वयण कहिये, अतिशय सहित वचन। होय समदिट्ठी कहिये, ये सम्यग्दृष्टी हैं। मिच्छो वच कहिये, परन्तु मिथ्यादृष्टि के वचन। विण अतसय कहिये, बिना अतिशय हैं। इम कहिये, जैसे। णिप्प कहिये, राजा। रंकेय कहिये, रङ्क के। वयण भेयाय कहिये, वचन का भेद है। भावार्थ---जे वचन अतिशय सहित होंय, सो वचन तो सत्यपणे कूं लिए हैं। तातें तिन वचन का धारण किये तो तत्वज्ञानी होय है। और जे वचन अतिशय रहित होंय, तिन वननों तैं तत्वज्ञानी नहीं होय। सोही कहिये है। जो केवलज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् के वचन की धुनि सुनतैं ही श्रवण पवित्र होंय, पाप का नाश होय। तत्त्वज्ञान के भेद कौं दिखावै है। ऐसे भगवान् अन्तरजामी के वचन, अतिशय सहित हैं। और इनहीं भगवान् के वचन-प्रमाण अर्थ कौं लिए, च्यारि ज्ञान के धारी गणधर देव के वचन प्रमाण हैं। ये वचन अतिशय सहित हैं। तातें सत्य हैं। और इनहीं गणधर देव के वचन–प्रमाण अर्थ सहित प्ररूपे जो आचार्य, उपाध्याय, साधु, मुनिराज इन योगीश्वरों के वचन हैं, सो अतिशय सहित हैं। तातें प्रमाण हैं। और इन ही आचार्यन

के अर्थ कूं लिये, इन के प्रमाण कूं लेय भाषे, पंचम गुणस्थान धारी श्रावक तिनके वचन, अतिशय सहित हैं। तातैं प्रमाण हैं। और इनहीं केवली, गणधर, आचार्य इन के भाषे अर्थ, तिन ही प्रमाण अर्थ का धारण करणहारे चतुर्थ गुणस्थान के धारी सम्यग्दृष्टी जीवन के वचन, देव-गुरु के कहे अर्थ-प्रमाण हैं। तातैं अतिशय सहित हैं। ऐसे जिन वचन, गणधर वचन, आचार्य मुनि के वचन, श्रावक सम्यक् धारी के वचन, असंयमी यती के वचन, ये सर्व सम्यग्दर्शन के धारी हैं। सो इन सर्व के वचन यथायोग्य अतिशय सहित हैं। सो ही कहिये हैं। केवली तीर्थंकर के वचन, अनक्षर मेघ-ध्वनि समानि हैं। तिस के सम्बन्ध से देव, मनुष्य, तिर्यंच ये तीन गति के जीव इनके श्रवण निकट तिष्ठते पुद्गल स्कन्ध, सो अक्षर रूप सहज ही परणमैं हैं। ताकरि ये सर्व उन्हें अपनी भाषारूप समझ लेय हैं। ऐसा अतिशय तो भगवान् के वचन विषैं है। और गणधर देव के वचन, अक्षर रूप हैं। सो तिनका विश्वास तीन लोक के जीवन को होय। तिन के श्रवण किये, पाप का नाश होय। ऐसे इन गणधर देव के वचन का सहज स्वभाव ही है। ऐसा अतिशय गणधर देव के वचन का है। मुनीश्वरों के वचन राग-द्वेष रहित, सरल, मिष्ट, सर्व जीवन कूं सुखकारी हैं। तातैं इनकी भी प्रतीति कर, सर्व जीव-धर्म-सन्मुख होंय। ऐसा अतिशय, मुनि के वचन का जानना। और श्रावक-व्रती अरु असंयत सम्यग्दृष्टी, ये भी केवली के वचन-प्रमाण अर्थ कूं लिये उपदेश करैं हैं। तातैं इन तत्त्वज्ञानी

के वचन भी सर्व धर्मी जीवन कूं, प्रतीति उपजावैं हैं। तातैं ये भी, अतिशय सहित हैं। और मिथ्यादृष्टी के वचन जिन-भाषित-अर्थ रहित हैं। तातैं असत्य हैं। अतत्व के प्ररूपणहारे, राग द्वेष-सहित हैं। तातैं अतिशय रहित हैं। अप्रमाण हैं। ऐसा जानना। जैसे राजा का वचन जो निकसै, सो सर्व कौं प्रमाण है। सत्य है। सर्व अङ्गीकार करैं हैं। और भूप का वचन उल्लंघन किये दण्ड पावै, दुखी होय। भूप की आज्ञा मानै, सुखी होय। तैसे सर्वज्ञ भगवान्, जगत का राजा। ताके वचन प्रमाण चाले, सुखी होय। जिन-वचन उल्लंघन किए, पाप बन्ध होय। दुख उपजै। तातैं राजा का वचन अतिशय सहित है। और रंक का वचन अतिशय रहित है। रंक काहू के ऊपर कोप करै, तो कछु होता नाहीं। तथा कोई पर राजी होय, तो कार्यकारी नाहीं। रंक कहै, तेरा घर लूट लेहों। तो यातैं घर लुटता नाहीं। और रंक कहै कि राजपद दे देहों। तो राज्य मिलता नाहीं। तातैं रंक का शुभाशुभ वचन बोलना, वृथा है। रंक के वचन में अतिशय नाहीं। तैसेही अतिशय रहित मिथ्यादृष्टी के वचन, असत्य, अप्रमाण, रंक के वचन समानि निरर्थक, पापकारी, अतत्वश्रद्धान सहित हैं। तातैं मिथ्या-दृष्टी, मिथ्या श्रद्धानी के वचन अप्रमाण पापकारी जानि, ग्रहण नहीं करिये। ये भले फल रहित, सुखकारी नाहीं। जैसे कोऊ राजा की सेवा करि ताकौं राजी करिये। तो राजी भये कबहूं दारिद्र खोवै। धन देय, ग्राम देय, सुखी करै। तातैं राजा की सेवा तो, शुभ फलदायक है। और कोई रंक की अनेक प्रकार सेवा करि, रंक कूं रिझाय, राजी करै। तो

सेवा का फल विरथा जानना। वह रङ्क आपही दरिद्री-भूखा है, दुखी है। तो और कौं कहा सुखी करैगा ? तैसे ही तीन लोक के राजा इन्द्र, चक्री, धरणेन्द्र हैं। सो इन राजान के राजा भगवान की जो सेवा करैं, तौ सुखी होंय। तिन के वचन प्रमाण करि चालै, तौ देव सुख, इन्द्र सुख, चक्री सुख, खगपति सुख, मण्डलेश्वर राजा आदि अनेक पद के सुख निश्चय ही पावै है। और मिथ्या श्रद्धानी के वचन प्रमाण चालै, तौ सुख नाहीं। ऐसा जानि मिथ्या वचन, शुभ भावना रहित, इनका विश्वास नहीं करना। ये अतिशय रहित हैं। सम्यक् सहित श्रद्धावान के वचन सुखकारी हैं। ये अतिशय सहित वचन जानना। इति सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हितोपदेश कथन वर्णनो नाम, छव्वीसवां पर्व सम्पूर्ण॥ २६॥

आगे षट् लेश्या कथन बताईये है——

गाथा--किएहं णील कपोतय, असुह लेस्साह जीय पएणामो।
पीता पम्मा सुक्का, ये सुह लेस्साय होय खड भेया॥ ११४॥

अर्थ--कृष्ण, नील, कापोत ये तीन अशुभ लेश्या हैं। पीत, पद्म शुक्ल ये तीन शुभ लेश्या हैं। भावार्थ——ऐसे जीव के अशुभ–शुभ परणाम पर षट् भेद लेश्या के हैं। योग अरु कषाय के मिलाप तैं शुभाशुभ जीव की परणति का होना सो लेश्या है। सो इनका स्वरूप कहिये है। जहां बड़ा क्रोधी होय। बैर नहीं तजैं। पर के बुरा करवे का सहज स्वभाव होय। महा दुष्ट परणामी होय। स्वामी–द्रोही होय। माता–पितादि गुरुजन की आज्ञा तैं विमुख होय।

अविनयी होय। और देव–गुरु–धर्म की आज्ञा तैं प्रतिकूल होय। राजविरोध क्रिया का करनहारा होय। जुआ, आमिष (मांस), मदिरा, वेश्या घर गमनी, जीव घाती, चोर, परस्त्री लम्पटी, इत्यादि सप्त व्यसन कर रंजायमान, पापाचारी, अनेक दोषन की मूर्ति, ऐसे अशुभ भाव जाके होंय। सो इन लक्षण सहित जे जीव-भाव, सो कृष्ण लेश्या है। तथा स्वेच्छाचारी, स्वच्छन्द होय। तथा धर्म–क्रिया विषैं प्रमादी होय। मन्द बुद्धि, आलसी, शिथिल शब्दी होय। पर के किए गुण का लोपनहारा, कृतघ्नी होय। विशेष ज्ञान कला चतुराई करि रहित होय। पंचेन्द्रिय विषय का लोलुपी होय। महा मानी होय। अत्यंत गूढ़ चित्त का धारी होय। मायावी होय, जाके चित्त की और नहीं पावै। इत्यादिक चिन्ह कृष्ण लेश्या के जानना। इति कृष्ण लेश्या॥१॥ आगे नील लेश्या–बहुरि जाकैं बहुत निद्रा होय। पर के ठगवे की कला–चतुराई में प्रवीण होय तथा और सीखवे की वांच्छा होय। और अत्यन्त लोभ के उदय सहित, धन-धान्यादिक इकट्ठे करिवे कौं, अनेक आरम्भ करता होय। और काम चेष्टा करि बहुत ही विकल होय। इत्यादिक लक्षण जाके होंय, सो नील लेश्या है। इति नील लेश्या॥२॥ आगे कापोत–तहां औरन कौं दोष लगावै का सहज–स्वभाव होय। अनेक नय–जुगति देय, पर की निन्दा करनहारा होय। जो हँसि–हँसि पराया बुरा करै। पराई निन्दा करै। चुगली करै। ऊपर तैं विनयवान् होय, अन्तरङ्ग में पराया बुरा चाहै। बुरा करवे का उपायी होय। पर कौं भला खाता–पीता–पहरता देखि,

आप खेद पावै। पर कौं सुखी देख, नहीं सुहावै। पर के दुख करवे कौं, अनेक उपाय करता होय। सदीव जाका चित्त शोक रूप रहता होय। जाके निरन्तर भय रहता होय। और पर का अपमान करि, सुख मानता होय। अपने मुख तैं अपनी बहुत प्रसंशा करता होय। और आप जैसा पापी, चोर, असत् मारगी और कौं जानि, कोई का विश्वास नहीं करै। आपकी बड़ाई करै—खुशामद करै, ताकौं राजी होय धन देवे। अपने—पराये हेतु कौं, नहीं समझै। युद्ध विषैं मरण की जाकी इच्छा होय। इत्यादिक चिन्ह जाके होंय, सो कापोत लेश्यी जानना। इति कापोत लेश्या ॥ ३ ॥ आगे पीत लेश्या—तहां कार्य—अकार्य कौं समझै। खाद्य—अखाद्य कौं भी जानैं। भोगवे व नहीं भोगवे योग्य वस्तु कौं जानै। षट् द्रव्य गुण—पर्याय का जाननहारा होय। सर्व पदार्थन में समता होय। पूजा, जप, तप, दान विषैं प्रीतिवान होय। दया धर्म चलावे का अधिकारी होय। मन—वचन—काय करि कोमल होय। इत्यादिक लक्षण सहित होय, सो पीत लेश्यी जीव है। इति पीत लेश्या ॥४॥ आगे पद्म लेश्या—तहां भद्र परिणामी होय। त्यागी होय। भले कार्य रूप भाव होंय। महाव्रत— अणुव्रत का वांछक होय। सिद्ध क्षेत्र, तीर्थ बन्दना का अभिलाषी होय। पंच—परमेष्ठी की पूजा विषै उत्सववन्त होय। कष्ट—उपद्रव भये, धीर बुद्धि होय। देव—गुरु आदि का भक्त होय। इत्यादिक शुभ चेष्टा सहित जाके लक्षण होंय, सो पद्म लेश्यी है। इति पद्म लेश्या ॥५॥ आगे शुक्ल लेश्या-तहां पक्षपात करि काहू कूं बुरा नहीं कहै। सर्व जीवन पै

दया करि, मैत्री भाव राखै। और इष्ट—अनिष्ट में बहुत राग—द्वेष नाहीं करै। और कुटुंबादिक तैं अल्प राग करै। धर्मी जीवन विषैं, प्रीतिवान् होय। इत्यादिक लक्षण सहित होय, सो शुक्ल लेश्यी है। इति शुक्ल लेश्या ॥६॥ आगे लेश्यान के भाव का स्वरूप कहैं हैं। तहां लेश्या, द्रव्य और भाव करि, दोय भेद रूप हैं। तहां जैसा शरीर का वर्ण होय, सो तो द्रव्य लेश्या है। और जीव के जैसे भाव हाेय, सो भाव लेश्या है। सो तिन भाव-लेश्या का दृष्टांत दिखाय, भावन की लेश्या प्रगट करें हैं। तहां एक बन में लकड़ी के काटनहारे, षट् पुरुष आये। सो तिन सबन के पास कुठार हैं। सो एक आम के वृक्ष के नीचे घनी छाया देख बैठ गये। तब एक पुरुष बोल्या कि भाई, भूँख लागी है। तब तिनमें एक कृष्ण लेश्यी जीव बोला कि भाई, जो अपने पै कुठार हैं सो इस आम पै जो फल लगे हैं सो लग जाओ। मारे कुठारन के आम कूं पींड़ तैं काटो, सो सर्व के पेट भरैं। ये तौ कृष्ण लेश्यी है ॥ १ ॥ दूसरा बोल्या, जो पींड़ तैं काहे कूं काटो, वृथा वृक्ष का खोज मिट जायगा। तातैं आधा, एक तरफ तैं बड़ी शाखा काटौ, सो सर्व खांयगे। अपन—लायक बहुत हैं। ये नील लेश्यी है॥२॥ पीछे तीसरा बोल्या, जो आधा गिराये सूं वृथा वृक्ष की शोभा जायगी। तातैं एक छोटी शाखा काट लेऊ। सो अपन कौं बहुत हैं। ऐसा कापोत लेश्यी है ॥ ३ ॥ और तब एक बोल्या, जो शाखा काहे कौं काटो। झूमके—झूमके तोड़ो, सो खाय लेय हैं। ये पीत लेश्यी है ॥ ४ ॥ तब पंचम पुरुष बोल्यो, जो झूमकेन में कच्चे—पक्के

सब ही हैं। तातें पके आम तोड़ लेउ और अपनी क्षुधा मैटो। ये पद्म लेश्यी जानना ॥ ५ ॥ तब षष्टम पुरुष बोल्या। हे भाई हो, इस वृक्ष कूं काहे कौं सतावो हो। भूमि विषैं अपने खाने योग्य तो बहुत पड़े हैं। सो पके २ खाय, अपनी भूख मिटावो। ये शुक्ल लेश्यी है ॥ ६ ॥ ऐसे षट् प्रकार भाव-भेद जानना। इन परणामन करि, अपने तथा पर के परणामन की परीक्षा करि, लेश्या के अन्तरङ्ग भाव जानना। सो अशुभ भावन के वेग कूं पहिचान, तजना योग्य है। ऐसे भेद ज्ञानी, जड़-भाव तजि, चैतन्य के विकल्प जानि, अशुभता तजि, शुभभाव रूप रहना विचारैं हैं। इति षट् लेश्या। आगे नव भेद योनि कथन-

गाथा——संवत्त सीत सचितो, मिस्सो सेताए जोणि णव भेयो।
संखय कुम्मो वंसय, तीए गम्भो समुच्छ उववादो ॥ ११५ ॥

अर्थ——संवत्त कहिये, संवृत। सीत कहिये, शीत। सचितो कहिये, सचित्त। मिस्सो कहिये, मिश्र। सेताए कहिये, इन तीनन की प्रतिपक्षी। जोणि णव भेयो कहिये, इस प्रकार योनि के नव भेद हैं। (भावार्थ—योनि के नव भेद हैं सो कहिये हैं। सचित्त, अचित्त, मिश्र, ये तीन। शीत, उष्ण, मिश्र ये तीन। संवृत याका प्रतिपक्षी विवृत, इन दोऊन का मिलाप सो मिश्र। ये तीन ऐसे नवभेद योनि के हैं।) और संखय कहिये, शंखा योनि। कुम्मो कहिये, कूर्म योनि। वंसय कहिये, वंशा योनि। तीए गम्भो कहिये, ये तीन भेद गरभज के हैं। समुच्छ कहिये, और सम्मूर्छन योनि। उववादो कहिये, तथा उपपाद योनि। ऐसे योनि भेद

कहे। सो प्रथम गर्भज के तीन भेद कहिये हैं—शंखा योनि, वंशा योनि, कूर्म योनि, ये तीन गर्भज के और नव भेद ऊपर कहे और सम्मूर्च्छन, उपपाद। सो इन सबका स्वरूप सामान्य सा कहिये है। तहां तीन भेद गरभज के हैं। सो तिन योनि में कौन २ उपजैं, सो कहिये हैं। तहां जा स्त्री की शंखावर्त नाम शंख के आकार योनि होय, तामें पुरुष का वीर्य नहीं ठहरै। सो स्त्री, जग में वंध्या कहावै ॥ १ ॥ और वंशपत्र योनि जा स्त्री की होय, तामें सामान्य पुरुष उपजैं। पदवी धारक, तीर्थंकरादि, महान पुरुष नहीं उपजैं ॥ २ ॥ और कूर्मोन्नत योनि, जो कछुवा के आकार जा स्त्री की योनि होय, तामें तीर्थंकरादि महान पुरुष उपजैं हैं। सामान्य पुरुष इस योनि में नाही उपजैं ॥ ३ ॥ ये तीन भेद गर्भज के हैं। तहां माता का श्रोणित व पिता का वीर्य, ये दोऊ मिल गर्भ सूं उपजै, सो गर्भज कहिये। और माता–पिता के निमित्त बिना जाकी उत्पत्ति होय, सो सम्मूर्च्छन कहिये। सो बादर सम्मूर्च्छन जीवन की उत्पत्ति तो पृथ्वी आदि के आश्रय तें होय और सूक्ष्म जीवन की उत्पत्ति, बिना सहाय आकाश में होय। सो ये सूक्ष्म सम्मूर्च्छन जन्म जानना। और देवन की उत्पाद–शय्या रतनमई, कोमल, सुगन्धित शय्या, तामें देवन का जन्म होय। और नारकीन के उपजने के स्थान महा दुर्गंधित, घिनावने, अनिष्ट, ऊंट के मुखाकार, नर्कक्षिति के लूमते घटाकारवत् स्पर्श कूं धरैं, सो नारकी के उपजने का स्थान है। ऐसे देव, नारकी का उपपाद जन्म है। ये तीन भेद जन्म–गर्भज, सम्मूर्छन, उपपाद के कहे। अब नव भेद योनि का भाव कहिये

है । तहां अन्य जीव करि ग्रहै जे योनि स्थान, जैसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य उपजने की योनि, सो सचित्त योनि है ॥ १ ॥ और अन्य जीवन करि नहीं ग्रहै, ऐसे पुद्गल स्कन्ध की योनि जैसे देव-नारकीन की, सो अचित्त योनि है ॥ २ ॥ और केईक योनि स्थान सचित्त-अचित्त मिले स्कंध की हैं, सो मिश्र योनि स्थान हैं ॥ ३ ॥ और उपजने के पुद्गल स्कंध शीत होंय। जैसे सातें व छठें नरक के नारकी की शीत योनि है ॥ ४ ॥ और उपजने के योनि स्थान के पुद्गल स्कंध उष्ण होंय। जैसे तीजे वा चौथे नरक पर्यंत, नारकीन के उपजने के उष्ण योनि स्थान हैं ॥ ५ ॥ अरु उपजने के स्थान शीत-उष्ण दोऊ स्कन्ध रूप होंय, सो मिश्र योनि स्थान हैं ॥६॥ और जीव उपजने का योनि स्थान प्रगट नहीं दीखै, सो संवृत योनि स्थान है ॥७॥ और उपजने के योनि स्थान प्रगट दीखैं, सो विवृत योनि स्थान है ॥ ८ ॥ और जीव उपजने के योनि स्थान के पुद्गल स्कंध कछु प्रगट होंय कछु अप्रगट होंय, सो मिश्र योनि स्थान है ॥ ९ ॥ ऐसे सामान्य भेद नव कहे, विशेष चौरासी लाख हैं। इति योनि स्थान ॥ आगे इन योनिन तैं उपजे जीव, तिनके कौन २ के शरीर में निगोद नाहीं, सो कहिये हैं—

गाथा—केवलकायमहारो, सुरणारय तण भोमि जल तेऊ ।
वाय वसु इव ठांणय, रहि नहिं णिगोय जिण भणियं ॥ ११६ ॥

अर्थ—केवली के शरीर में, आहारक शरीर में, देवन के शरीर में, नारकीन के शरीर में, पृथ्वी काय, अप काय, तेज काय और वायु काय, इन आठ स्थानन में निगोद नाहीं।

ऐसा जानना। आगे इन आठ जाति के जीवन तैं शौच नहीं पलै, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—रोगी लोलु दलद्दो, वुधहीणो कुसंग होय मद पाणो।
परवस आलस सहितो, ए वसु आदाय सोच एह पालय ॥ ११७ ॥

अर्थ—रोगी, इन्द्रियन का लोलुपी, दरिद्री, बुद्धि हीन, कुसंगी, मद पायी, पराधीन और आलसी इन आठ जाति के जीवन तैं शौच नाहीं पलै। भावार्थ—रोगी तो अति वेदना के आगे खाद्य–अखाद्य, योग्य–अयोग्य नाहीं विचारै। अपवित्र–पवित्र नहीं विचारै। मारे वेदना के जो मिलै सो ही खाय। मूढ़ वैद्य जैसा भक्ष्य–अभक्ष्य कहै, सो खाय। तातैं शौच नाहीं बनै ॥ १ ॥ और जो इन्द्रियन का लोलुपी होय। सो खाद्य–अखाद्य, योग्य–अयोग्य नहीं विचारै। जैसे बनै तैसे अपने विषय का पोषण करै। अपने कुल योग्य खान-पान का विचार नाहीं। तातैं तिन लोलुपी तैं शौच नाहीं पलै ॥ २ ॥ और जे पूर्व पाप के उदय करि भये जो दरिद्री, सो मारे दरिद्र के केवल उदर पूरण ही कस्या चाहैं। सो योग्य-अयोग्य नाहीं विचारैं। जैसे बनैं, तैसे–उदर भस्या चाहैं। ताके तृष्णा अधिक। सो तृष्णा-तौ पुण्य तैं पूरी जाय। अरु पुण्य, आगे उपार्ज्या नाहीं। तातैं पुण्य रहित जीव, जैसे-तैसे पेट भरैं। सो इस दरिद्री से शौच नाहीं पलै ॥ ३ ॥ और बुद्धि रहित होय, ताकैं योग्य-अयोग्य के विचार का विवेक नाहीं। ज्ञान की मंदता के योग करि, पशू समानि खान-पानादि करै। रात्रि–दिवस का भेद नाहीं। भक्ष्य–अभक्ष्य का ज्ञान नाहीं। तातैं बुद्धि-

रूपी संपदा करि रहित हीन–बुद्धि जीव तैं, शौच नाहीं पलै॥ ४ ॥ और कुसङ्ग के धारन–हारे, सप्तव्यसनी जीवन के स्नेही, तिन की संगति तैं, स्नेह के बंधान करि तिन में तिन जैसा ही खान–पान करैं। हीन कुली, हीन ज्ञानी, सप्तव्यसनी, जैसा अनाचार रूप खान–पान करैं। तैसाही तिनकी संगति में आपकों करना पड़ै। तातैं कुसंगीन तैं शौच नाहीं पलै ॥ ५ ॥ और मदिरापायी कूं सुध–बुद्धि नाहीं। खान–पान के योग्य–अयोग्य खाद्य–अखाद्य का ज्ञान नाहीं। जैसे खपत–बेसुध होय, तैसेही मदिरापायी बेसुध है। तातैं मदिरापायी तैं शौच नाहीं पलै ॥ ६ ॥ और पराधीन होय, सो पराई मर्जी सौं चाल्या चाहै। आप दयावान् संयमी होय, अरु संयमी का सेवक होय। तौ आप के तौ संयम पालवे का काल है। और यदि स्वामी संयमी न होय, तो जा समय सरदार ने कही, यह आरंभ करो। सो नहीं करै तौ आज्ञा भंग भये, चाकरी बनै नाहीं। तातैं असंयम रूप आरंभ ही कार्य, संयम के काल में करना पड़ै। इत्यादिक पराधीनता तैं शौच नाहीं पलै ॥ ७ ॥ और जे आलसी–प्रमादी हौंय, सो जैसा मिलै तैसा भक्षण करैं। प्रमाद के वशीभूत खाद्याखाद्य योग्यायोग्य नहीं विचारैं। तातैं जे आलसी–प्रमादी हौंय, तिनसौं शौच नाहीं पलै ॥ ८ ॥ ऐसे और ग्रन्थ के अनुसार कह्या है। जो इन आठ जाति के जीवन तैं शौच नाहीं सधै। तातैं इनकौं धर्म–लाभ नहीं होय। और शुभाचार इनके हृदय में तिष्ठता नाहीं। ऐसा जानि विवेकी जीवन कौं, इन आठ जाति के निमित्तन तैं रहित होय, सुआचार रूप रहना योग्य

है। आगे निमित्त ज्ञान के आठ भेद हैं सो कहिये हैं—

गाथा—अंग भोम अंतरखऊ, विंजण सुर छिएय लक्खणो सुपणऊ।
इव वसु भेयव भणियं, णिमित्त णाणाय देव सर्वज्ञो ॥ ११८ ॥

अर्थ—अंग कहिये, शरीर। भोम कहिये, पृथ्वी। अंतरखऊ कहिये, अंतरीक्ष। विंजण कहिये, व्यंजन निमित्त। सुर कहिये, शब्द। छिएय कहिये, छिन। लक्खणो कहिये, लक्षण। सुपणऊ कहिये, स्वप्न। इव वसु भेयव कहिये, ये आठ भेद। भणियं कहिये, कहे हैं। णिमित्त णाणाय कहिये, निमित्त ज्ञान के। देव सर्वज्ञो कहिये, सर्वज्ञ देव नैं। भावार्थ—निमित्त ज्ञान के आठ भेद हैं सो ही कहिये हैं। मनुष्य-पशु के तन के आंगोपांग देख, ताके शुभ-अशुभ बताय देना। जो याके एक नेत्र नाहीं, तो ऐसा फल। दोऊ नेत्र नाहीं, ताका ऐसा फल। मूके, लूले, टूटे, कूबरे, बावने का फल कहै। जाके तन का रस खट्टा तथा मिष्ट व कडुवा होय, इत्यादिक जैसा तन का रस होय, सो फल कहै। तथा तन का रुद्र, श्याम व लाल वर्ण होय, ताका फल कहै इत्यादिक शरीर के लक्षण देखि शुभ-अशुभ का फल सुख-दुख कहै। सो अंग-निमित्त-ज्ञान है ॥ १ ॥ और भूमि विषैं जहां-जहां जो वस्तु होय, सो जानै। जो इस जगह रतन-खानि है। यहां कंचन-खानि है। यहां विभूति है। इहां एते खोदो, अन्न समूह है, ताकौं जानैं। तथा इहां जल है। इहां पाखान है। इहां धन है। इत्यादिक भूमि में जहां-जहां शुभ-अशुभ चिन्ह होंय, तिनकौं जानें, सो

भूमि निमित्त ज्ञानी कहिये ॥ २ ॥ और आकाश के विषैं वादर पटल, घन, गाज, बिजली चमकना, चन्द्रमा, सूरज, नक्षत्रादिक इत्यादिक तैं आकाश का शुभाशुभ चिन्ह देखि, सुख-दुख बतावै। सो अंतरीक्ष-निमित्त-ज्ञानी है ॥ ३ ॥ और जहां मनुष्य का शब्द सुनि शुभ-अशुभ कहैं। तहां चाण्डाल, कृषक, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादिक मनुष्यन के शब्द सुनि, सुख-दुख कहैं। तथा पशून के शब्द तीतुर, मोर, काक, सारस, श्वान, गृद्ध, स्यार, मार्जार, व्याघ्री इत्यादिक पशून के शब्द सुनि, शुभ-अशुभ फल बतावैं। सो सुर-निमित्त-ज्ञान है ॥ ४ ॥ और व्यंजन जो शरीर में तिल-मसा देखि, सुख-दुख कहैं। मुख पै तिल, कर में तथा उरमें मसा। पीठ में, नासिका, कान, गाल, अंगुरी इत्यादि हाथ-पाँव अंग में तिल-मसा देखि, शुभ-अशुभ कहैं। सो व्यंजन-निमित्त-ज्ञान है ॥ ५ ॥ और लक्षण जो शुभ चिह्न श्रीवृष, स्वस्तिक, भृङ्गार, कलश, वज्र, मछली इत्यादि शुभ तथा केई अशुभ चिह्न इत्यादिक शुभ-अशुभ चिह्न शरीर में देखि, सुख-दुख कहैं। सो लक्षण निमित्त ज्ञान है ॥ ६ ॥ और छिन निमित्त ज्ञान-सो कोई वस्त्रादि वस्तु कूं मूसादि जीवन कर काटी देखि, ताकरि शुभाशुभ फल कहै। सो छिन निमित्त ज्ञान कहिये ॥ ७ ॥ और स्वप्न-जो शुभाशुभ स्वप्न कौं जानि, ताका सुख-दुख कहै। सो स्वप्न निमित्त ज्ञान है ॥ ८ ॥ ऐसे निमित्त ज्ञान आठ प्रकार कह्या। इहां सामान्य कह्या। विशेष अन्य ग्रन्थन तैं जानना। आगे ज्ञान के आठ अंग बताईये है—

गाथा—विंजन अर्थ समग्गह, सब्दार्थोभय कालधेणोय ।
उपझाण विणय समधय, वहुमाण गुवादि वसु अंगय ॥ ११६ ॥

अर्थ—विंजन कहिये, व्यंजनोर्जित ॥ १ ॥ अर्थ समग्गह कहिये, अर्थ समग्रह ॥ २ ॥ सब्दार्थोभय कहिये, शब्दार्थ उभय पूर्ण ॥३॥ काल धेणोय कहिये, यथा काल अध्ययन करना ॥४॥ उपझाण कहिये, उपध्यान समर्धित ॥ ५ ॥ विणय समधय कहिये, विनय समर्धित ॥६॥ वहुमाण कहिये, बहु मान समर्धित अंग ॥७॥ गुवादि कहिये, गुरुवादि निन्हव अङ्ग ॥ ८ ॥ वसु अङ्गय कहिये, ये ज्ञान के आठ अंग हैं। भावार्थ—जो बिना अर्थ विचारै ही पाठ का पढ़ना । तहां गाथा, काव्य, छन्द, श्लोक, पद, बिन्ती, सामायिकादि पाठ का पढ़ना । सो याका नाम व्यंजनोर्जित अङ्ग है । १ । और जो शास्त्र तो नाहीं, परन्तु अपने उर विषैं, एकान्त बैठा, शास्त्रन का अर्थ विचार करै, सो ये भी ज्ञान का अङ्ग है । याका नाम अर्थ समग्रह अङ्ग है । २ । और जहां शास्त्र, काव्य, गाथा, छन्द अर्थ सहित पढ़ै । पाठ भी पढ़ै, अरु अर्थ का भी विचार करै। सो ये भी ज्ञानी का अङ्ग है। याका नाम शब्दार्थोभय पूरण अङ्ग है । ३ । और जहां जिस काल में जैसा शास्त्र चाहिये, तैसा ही काव्य वखान करै । जैसे प्रभातकाल कौ कौन शास्त्र वांचिए । मध्याह्न में कौन शास्त्र वांचिये । शाम कौं कौन का अभ्यास कीजिये । रात्रि कौं कौन का अभ्यास कीजिये । तथा बाल्य अवस्था में कौन शास्त्र का अभ्यास कीजिये । तरुणावस्था में कौन

शास्त्र का अभ्यास करैं । वृद्धावस्था में कौन शास्त्र का अभ्यास करैं । इन आदि काल में जैसा शास्त्र चाहिये, तैसा ही विचार कैं काल—योग्य शास्त्र का अभ्यास करैं । तैसा ही उपदेश देय । सो ये भी ज्ञान का अंग है । याका नाम कालाध्ययन ध्रुव प्रभाव नाम अंग है । ४ । और शास्त्राभ्यास निरप्रमाद होने के निमित्त उपवास—एकासन करना, रस तजना, अल्प भोजन करना । ऐसा विचारना जो मेरे शास्त्राभ्यास में प्रमाद नहीं होय, ताके निमित्त तप करना । सो ये भी ज्ञान का अंग है। याका नाम उपध्यान समर्धित अंग है । ५ । और जहां शास्त्र का विनय करना । बांचना, सो विशेष उत्तम विनय से बांचना । सुनना सो भी एकचित्त करि, विनय तैं सुनना । उपदेश देना, सो पर—जीवन के कल्याण-हेतु विनय तैं देना । शास्त्र धरना—उठावना, सो भी विनय तैं । इत्यादिक शास्त्र का विनय करना, सो ये भी ज्ञान का अङ्ग है। याका नाम विनय समर्धित अङ्ग है । ६ । और जाके पास आपने ज्ञानाभ्यास किया होय, जातैं आपको ज्ञान की प्राप्ति भई होय, ताकी बहुत सेवा-चाकरी करना । ताकी बारम्बार प्रशंसा करना, बारम्बार ताका उपकार स्मरण करना । ताका उपकार जन्मान्तर नहीं भूलना । सदीव धर्म-पिता जानना । इत्यादिक ज्ञान-दान देने-वारे का विनय करना, सो भी ज्ञान का अङ्ग है । याका नाम बहुमान समर्धित अङ्ग है । ७ । और आपने जा गुरु के पासि शास्त्राभ्यास किया होय, ता गुरु को नहीं छिपाइये । भावार्थ-जा गुरु के पास तैं आपने ज्ञान-धन पाया होय, ऐसा जो गुरु । सो कर्म योग तैं-पीछे

गाथा—विंजन अर्थ समग्गह, सव्दार्थोभय कालधेणोय ।
उपभ्काण विणय समधय, वहुमाण गुवादि वसु अंगय ॥ ११६ ॥

अर्थ—विंजन कहिये, व्यंजनोर्जित ॥ १ ॥ अर्थ समग्गह कहिये, अर्थ समग्रह ॥ २ ॥ सव्दार्थोभय कहिये, शब्दार्थ उभय पूर्ण ॥३॥ काल धेणोय कहिये, यथा काल अध्ययन करना ॥४॥ उपभ्काण कहिये, उपध्यान समर्धित ॥ ५ ॥ विणय समधय कहिये, विनय समर्धित ॥६॥ वहुमाण कहिये, वहु मान समर्धित अंग ॥७॥ गुवादि कहिये, गुरुवादि निन्हव अङ्ग ॥ ८ ॥ वसु अङ्गय कहिये, ये ज्ञान के आठ अंग हैं। भावार्थ—जो बिना अर्थ विचारै ही पाठ का पढ़ना । तहां गाथा, काव्य, छन्द, श्लोक, पद, बिन्ती, सामायिकादि पाठ का पढ़ना। सो याका नाम व्यंजनोर्जित अङ्ग है। १। और जो शास्त्र तो नाहीं, परन्तु अपने उर विषैं, एकान्त बैठा, शास्त्रन का अर्थ विचार करै, सो ये भी ज्ञान का अङ्ग है । याका नाम अर्थ समग्रह अङ्ग है। २। और जहां शास्त्र, काव्य, गाथा, छन्द अर्थ सहित पढ़ै। पाठ भी पढ़ै, अरु अर्थ का भी विचार करै। सो ये भी ज्ञानी का अङ्ग है। याका नाम शब्दार्थोभय पूरण अङ्ग है। ३। और जहां जिस काल में जैसा शास्त्र चाहिये, तैसा ही काव्य वखान करै। जैसे प्रभातकाल कौं कौन शास्त्र वांचिए । मध्याह्न में कौन शास्त्र वांचिये। शाम कौं कौन का अभ्यास कीजिये। रात्रि कौं कौन का अभ्यास कीजिये । तथा बाल्य अवस्था में कौन शास्त्र का अभ्यास कीजिये । तरुणावस्था में कौन

मुनिजन कौं ध्यान करवे के कारण, दश स्थान बतावैं हैं। इतनी जायगा परणामन की विशुद्धता विशेष बढ़ै, ध्यान की एकाग्रता विशेष होय, सो ही बताईये है। ध्यान कौं कदाचित् एकान्त क्षेत्र नहीं होय, बहुत जीवन के शब्द का कोलाहल होय, अनेक जीवन का आवना-जाना होय, तो ऐसे स्थान में परणति चंचल होय। तातैं ध्यान कौं एकान्त स्थान चाहिये। एकान्त बिना ध्यान की सिद्धी नाहीं होय। १। और अशुद्ध क्षेत्र होय तो ध्यान लागै नाहीं, तातैं रमणीक-निर्मल क्षेत्र चाहिये, तब ध्यान की शुद्धता होय। २। और जहां काठ की व चित्राम की पुतरी नहीं हौंय। रंगमहल, रमणीक बिछौने इत्यादिक सराग क्षेत्र नहीं होय। महा उदास, वैराग्य बढ़ने का कारण, राग रहित क्षेत्र चाहिये, तातें ध्यान की सिद्धि होय। ३। तथा महा पर्वतन की गुफा होय। ४। तथा उतङ्ग, मनोहर, उदार पर्वतन के शिखर हौंय। ५। तथा निरमल जल करि सहित बड़े सरोवर तथा बहती गहन बड़ी नदी, तिनके तट ध्यान योग्य हैं। ६। तथा जीर्ण उद्यान, अरु महा भयानीक, मोही जीवन कूं भय उपजावनहारी, विकट, वृक्ष रहित अटवी, ध्यान योग्य क्षेत्र है। ७। तथा दीरघ सघन वृक्षन करि भरया बन होय, सो ध्यान योग्य क्षेत्र है। ८। और जहां अति शीत नहीं होय, ते क्षेत्र ध्यान योग्य हैं। ९। तथा जहां बहु उष्ण नहीं होय, सो क्षेत्र ध्यान योग्य है। १०। ऐसे दश क्षेत्रन में ज्ञान-वैराग्य के बढ़ाने रूप भाव हौंय। धीरजता होय, क्षमा भाव होय। इत्यादिक, भाव सहित ध्यान सिद्धि के क्षेत्र जानना। आगे परणामों की

विशुद्धता कूं कारण, आलोचना भाव है। सो आलोचना के अतिचार दश हैं। तहां प्रथम नाम कहिये--आकम्पन । १ । अनमापित । २ । दिष्ट । ३ । वादर । ४ । सूक्ष्म । ५ । शब्दाकुल । ६ । छिनि । ७ । बहु । ८ । अविक्त । ९ । तत् सेवत । १० । ऐसे ये दश अतिचार हैं। तिनका सामान्य स्वरूप कहिये है—जहां कोई मुनीश्वर कौं अपने संयम में दोष लाग्या दीखै। तब वह यतीश्वर पाप का भय खाय, गुरुन पै पाप दूर करने कूं दण्ड-प्रायश्चित्त जांचता भया। सो दण्ड जांचता कबहू ऐसा विचार करै, जो आचार्य दीर्घ दण्ड नाहीं बतावैं तो भला है। ऐसा भय करना, सो आकम्पन दोष है। १। और कोई यती कौं दोष लाग्या होय तौ अपने गुरु पै जाय, अपने प्रमाद की निन्दा करै। आलोचना सहित अपना लाग्या दोष प्रगट करि, गुरु पै दण्ड जांचता ऐसा विचार करै, जो मेरा तन निर्बल व रोग पीड़ित है, सो दीरघ दण्ड सहवे की मोरी शक्ति नाहीं। तातैं आचार्य मोकौं अलप दण्ड बतावैं तौ भला है। ऐसे विचार का नाम अनमापित दोष है। २। और यती आप कौं कोई दोष लाग्या जानैं तौ विचारैं। जो मेरा दोष फलाने नैं देखा है, तौ अपना दोष गुरु पै कहैं, अपनी निन्दा—आलोचना करैं। और जो अपना दोष काहू ने नहीं देखा होय, तौ गुरु पै नाहीं कहैं। ताका नाम दिष्ट दोष है। ३। और यतीश्वर कौं कोई सूक्ष्म दोष लागा होय, तौ गुरु पै नाहीं कहैं। और कोई वादर—बड़ा दोष लागा होय, तो मान के निमित्त और के दिखावने

कौं आचार्य पै कहैं, आलोचना करैं, सो वादर दोष है । ४ । और जहां मुनीश्वर कौं कोई वादर दोष लाग्या होय, तौ आचार्य के पासि नहीं कहैं । और सूक्ष्म दोष लगा होय, तौ मान—बड़ाई लोक—प्रशंसा कौं गुरु पै जाय प्रकाशैं । अपनी आलोचना करैं । सो सूक्ष्म दोष कहिये । ५ । और कोई मुनि कौं दोष लागा होय, तौ गुरु पै कहैं तो सही, परन्तु मान-बड़ाई के अर्थ, दोष छिपाय कैं कहैं । सो अपना नाम तो नहीं लेंय । अरु गुरु पै कहैं । भो गुरो, ऐसा दोष काहू मुनि पै लागा होय तौ ताका कहा दंड ? सो कहो । ऐसे आलोचना सहित पूछना । अरु निंदा के भय तैं अपना नाम प्रगट नहीं करना, याका नाम छिनि दोष है । ६ । और कोई मुनि कौं दोष लागा होय, सो गुरु पै एकान्त तौ नहीं कहैं । अरु जब आचार्य बहुत मुनि-श्रावकन सहित तिष्ठे होंय, तब मान का लोभी, अपनी प्रशंसा करावने का, अभिलाषी, गुरु कौं कहै । तथा अनेक स्वाध्याय का शब्द होय रह्या होय तथा आचार्य उपदेश करते होंय तथा और शिष्यन का प्रश्न होय रह्या होय इत्यादिक समय देखि, भरी सभा में प्रश्न—उत्तर के शोर में अपना दोष गुरु पै कहै, आलोचना करै । सो गुरु ने कछू सुन्या, कछू नाहीं । ऐसा अवसर देखि कहना, सो याका नाम शब्दाकुल दोष है । ७ । और कोई मुनि कौं दोष लाग्या होय, सो गुरु पै जाय अपना दोष कहै । आलोचना करै । तब गुरु याके पाप नाशने कूं प्रायश्चित्त देंय । सो गुरु का दिया प्रायश्चित्त सुनि विचारी, जो गुरु ने प्रायश्चित्त भारी बताया । तब ऐसी जानि और

ही आचार्य पै जाय, आलोचना सहित अपना दोष कहै। तब उनने भी दंड दिया, ताकौं भी भारी दंड जानि और आचार्य के संघ में जाय आलोचना करि, अपना दोष कहै। ऐसे ही जब तांईं कोई आचार्य अल्प दंड नहीं बतावैं, तब लूं अनेक आचार्यन पै जाय–जाय, आलोचना करि, अपना दोष कहै। याका नाम बहु दोष है। ८। और कोई मुनि कौं दोष लागै, सो पाप के भय तैं अपना दोष प्रकाशैं तौ सही। परन्तु मान–बड़ाई–लज्जा के योग तैं आचार्य कूं नाहीं कहैं। मेरा अपयश–निंदा होयगी, ताके भय तैं गुरु पै नहीं कहैं। अरु कोई आप तैं छोटे पदस्थधारी तथा आप के समानि हौंय, तिस मुनि कौं कहैं। ताके पास अपना दोष आलोचना सहित प्रगट करैं। सो याका नाम अविक्त दोष है। ६। और कोई मुनि कौं दोष लगा होय, सो मान–बड़ाई अपयश–निंदा के भय तैं गुरु पै नाहीं कहैं। और जब कोई आप जैसा दोष और मुनि कौं लागै, सो आचार्य कौं वाकौं प्रायश्चित्त देते देखि, आचार्य कौं आप कहै। भो नाथ, इन मुनीश्वर सा दोष मोकौं भी लागा है। सो जैसा दंड या मुनि कौं दिया, तैसा ही मोकौं देव। ऐसी आलोचना सहित कहना, सो याका नाम तत्सेवत दोष है। १०। ऐसे आलोचना के दश दोष हैं। सो जो अंतरंग के धर्मात्मा हैं तिनकौं अपने धर्म कौं सुधार राखना उत्कृष्ट है। इति आलोचना के दश दोष॥ अब आचार्य कोई शिष्य के कल्याण होने कूं दीक्षा देंय, तो ये दश काल टालि दीक्षा देय हैं। इन कालन में दीक्षा नाहीं देंय। सो बताइये है। तहां प्रथम नाम-ग्रहोपराग

कहिये, जाकौं कोई अशुभ ग्रह होय, तो दीक्षा नहीं देंय। १। सूर्य ग्रहण होय। २। चन्द्र का ग्रहण होय। ३। इन्द्र धनुष चढ़या होय। ४। जाकौं उल्टा ग्रह आया होय। ५। तथा आकाश बादलन करि आच्छादित होय रह्या होय। ६। तथा जिस जीव कौं महिना खोटा होय। ७। तथा अधिक मास होय। ८। तथा संक्रांति दिन होय। ९। क्षय तिथि होय। १०। इन दश अवसरन में भला ज्ञाता, निमित्त ज्ञान के वेत्ता आचार्य, शिष्य कौं दीक्षा नहीं देंय। और कदाचित् कोई ज्ञान की मंदता के जोग तैं इन दश कालन में दीक्षा देंय, तो आचार्यन की परम्परा का लोप होय, निंदा पावैं। जिन आज्ञा का उल्लंघन करनहारा जानि, सर्व आचार्यन के संघ तैं बाहरे होंय, संघ तैं निकसैं, अपमान पावैं। तातैं ये दश काल टालैं हैं। और जिन दिनों में दीक्षा होय, सो बताईये है। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ योग, शुभ मुहूर्त, शुभ ग्रह इत्यादिक शुभ काल में दीक्षा होय है। और दीक्षा कौन २ गुण सहित कौं होय है। सो ही बताईये है। बुद्धिमान् होय। विशुद्ध कुल होय। गोत्र शुद्ध होय। शरीर के आंगोपांग शुद्ध होंय। तहां कांणा, अंधा, लूला, ठूंठा, बावना, कूबड़ा, रोगी, वधिर इत्यादिक दोष रहित होय, सुन्दर मूरत होय। मंद कषायी होय। जाकैं पंचेन्द्रिय-भोगन तैं अरुचि होय। मोक्षाभिलाषी होय। शुभ चेष्टा सहित प्रकृति होय। शुभाचारी होय। हाँसि—कौतूहल रहित, नेत्रन करि चमत्कारक होय। महा वैराग्य दशा करि पूरित होय। इत्यादिक गुण सहित जो शिष्य होय, तिनकौं दीक्षा होय। ऐसे मुख्य गुण हैं सो कहे।

बाकी इनमें सामान्य-विशेष योग्य-अयोग्य सम्हाल कैं-विचार कैं आचार्य करैं हैं। ऐसा जानना। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, षट् लेश्या, योनि भेद, निगोद रहित स्थान, निमित्त ज्ञानादिक कथन वर्णनो नाम, सत्ताईसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ २७ ॥

आगे दश करण का निमित्त पाय, कर्मन की अवस्था कहिये है। प्रथम नाम-बंध, उदय, सत्ता, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उपशान्त, निधत्ति, निकांचित और उदीरणा ये दश हैं। अब इनका अर्थ-तहां प्रथम बंध करण कहिये है। सो जीव, अपने शुभाशुभ परणामन तैं कर्मन का बंध करै है। सो बंध च्यारि प्रकार है। प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, स्थिति बंध और अनुभाग बंध। तहां प्रथम प्रकृति बंध का स्वरूप कहिये है। सो नाना जीव, नाना काल अपेक्षा एक सौ बीस प्रकृति, बंध योग्य हैं। सो ही कहिये है। ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ६, वेदनीय २, मोहनीय २६, आयु ४, गोत्र २, अंतराय ५, ये सात कर्म की प्रकृति ५३, भई। अब नाम कर्म की-वर्ण चतुष्क ४, संस्थान ६, संहनन ६, गति ४, गत्यानुपूर्वी ४, शरीर ५, जाति ५, आंगोपांग ३, चाल २, अगुरु लघु अष्टक ८, दश दुक की २०, ऐसे नाम कर्म की सड़सठ। सर्व मिलि अष्ट कर्म की एक सौ बीस प्रकृति बंध योग्य हैं। सो मनुष्य गति में तौ सर्व का बंध है। तातैं मनुष्य विषैं, एक सौ बीस बंध योग्य हैं। और तिर्यंच गति में पंचेन्द्रिय के बंध योग्य एक सौ सत्तरा है। आहारक दुक की दोय और तीर्थंकर एक, इन तीन बिना जानना। और बेन्द्रिय तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, इन विकलत्रय में बंध योग्य प्रकृति एक सौ नौ हैं। वैक्रियक अष्टक की आठ,

आहारक दुक की दोय और तीर्थंकर एक, इन ग्यारह बिना विकलत्रय में एक सौ नव का बंध है। और पंच स्थावर में बंध योग्य विकलत्रयवत् एक सौ नव प्रकृति हैं। विशेष एता जो अग्नि व वायु कायक इन दोय थावरन कैं ऊंच गोत्र व मनुष्यायु इन दोय बिना, एक सौ सात प्रकृति का बंध है। और देवन के वैक्रियक अष्टक की आठ, विकलत्रय की तीन, आहारक दुक की दोय, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त—इन षोडश बिना, समुच्चय एक सौ च्यारि का बंध है। और तहां विशेष एता जो दूजे तैं ऊपरि, तीसरे स्वर्ग तैं लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यंत के देवन कैं, एकेन्द्रिय जाति, थावर नाम और आतप, इन तीन बिना एक सौ एक का बन्ध है। और बारहवें स्वर्ग तैं ऊपरि के देवन कैं, विकलत्रय की तीन और उद्योत इन च्यारि बिना, सत्यानवे का बन्ध है। ऐसे देव का बंध कह्या। और नारकीन के एक सौ बीस में, वैक्रियक अष्टक की आठ, विकलत्रय तीन, स्थावर, एकेन्द्रिय, साधारण, अपर्याप्त, सूक्ष्म, आहारक दुक की दोय, आतप इन उन्नीस बिना, समुच्चय एक सौ एक का बंध है। विशेष एता जो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध, तीसरे नरक तांई है, आगे नाहीं। तातैं तीजी पृथ्वी तैं नीचे, एक सौ प्रकृति का बंध है। और सातवें नरक में मनुष्यायु बिना निन्यानवै का बंध है। ऐसे च्यारि गति विषैं यथायोग्य सामान्य बन्ध कह्या। और विशेष एता जो एक जीव कैं, एकै काल अपेक्षा, तीन गति में तो गुणसठ प्रकृतिन का बन्ध है। और तिर्यंच गति विषैं एकै काल, तीर्थंकर प्रकृति बिना, अट्ठावन प्रकृतिन का बंध है। इहां प्रश्न-जो तीर्थंकर

प्रकृति का बन्ध तौ मनुष्य में ही कह्या। परन्तु यहां देव-नारकी में भी कह्या, सो कैसे बनै ? ताका समाधान। जो हे भव्य, प्रश्न तुम्हारा प्रमाण है। प्रथम तौ तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध मनुष्य ही कैं होय है। या बात प्रमाण है। परन्तु मनुष्य गति का किया बन्ध देव-नारकी में जाय है। तातें तहां बन्ध, और गति तैं जानना। यहां फेरि प्रश्न—जो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करनहारा सम्यग्दृष्टी, देव गति में जाय। सो देव में तौ तीर्थंकर का बन्ध करै है, सो सम्भवै। परन्तु तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करनहारा जीव, नरक में कैसे जाय ? ताका समाधान—कोऊ जीव नैं मिथ्या-दशा में प्रथम नरकायु का बन्ध किया था, पीछे उस निकट भव्यात्मा संसारी जीव कैं सम्यक् भया। सो तीर्थंकर व केवली के निकट निमित्त पाय, षोडस भावना भाय तथा इन में तैं एक—दोय आदि कोई भावना भाय, परणामन की विशुद्धता तैं तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर, पीछे आयु बन्ध के योग तैं जीव नरक जाय। तहां तीर्थंकर बन्ध लिये जाय। ताकी अपेक्षा बन्ध कह्या है। सो प्रथम नरक में जानेहारा जीव तौ, सम्यक् सहित भी जाय है। और दूजे व तीजे का जानेहारा जीव, मम्यक् कूं तज कैं जाय है। सो अन्त-मुंहूर्त मिथ्यात रहै। कारमान तैं जाय, पर्याप्ति पूरण करै। जहां तांई पर्याप्ति पूरन नाहीं करै, तहां तांई तौ मिथ्यात्व है। पर्याप्ति पूरण किये, तीर्थंकर बन्ध वारे कैं सम्यक् होय है। तब तैं तीर्थंकर बन्ध जानना। ऐसे च्यारि गति में बन्ध कह्या। सो ये तो प्रकृति बन्ध है। और इन एक—एक प्रकृति की साथि, अनन्त-अनन्त परमाणु स्कन्ध रूप होंय। सो समय प्रबद्ध

की गैलि केंती परमाणु बन्धी तिन की संख्या, सो प्रदेश बन्ध है। और बन्धी जो कर्मप्रकृति, तिनमें मोह कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण है। और नाम व गोत्र की बीस कोड़ा कोड़ी सागर स्थिति है। और आयु कर्म की तेतीस सागर स्थिति है। और ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी, अन्तराय इन च्यारि कर्मन की तीस-तीस कोड़ा कोड़ी सागर की स्थिति है। और वेदनी की जघन्य स्थिति द्वादश मुहूर्त की है। और नाम व गोत्र इन दोय कर्मन की जघन्य स्थिति आठ-आठ मुहूर्त की है। बाकी औरन की जघन्य स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त की है। ऐसे यथायोग्य स्थिति का बन्ध होना, सो स्थिति बन्ध है। और बन्ध-कर्म विषैं, उदय भये जैसा रस देवे की शक्ति, जो ये कर्म उदय भये एता रस प्रगट करेगा। सो अनुभाग बन्ध है। ऐसे कहे जो च्यारि प्रकार बन्ध, सो बन्ध है। सो प्रकृति व प्रदेश बन्ध तो, योगन तैं होय है। और स्थिति व अनुभाग बन्ध, कषायन तैं होय है। ऐसे तो ये बन्ध-करण जानना। इति बन्ध करण ॥ १ ॥ आगे उदय करण कहिये है। तहां उदय भी च्यारि प्रकार है। प्रकृति उदय, प्रदेश उदय, स्थिति उदय और अनुभाग उदय। तहां प्रथम ही प्रकृति उदय कहिये है। सो नाना जीव, नाना काल अपेक्षा, उदय योग्य प्रकृति एक सौ बाईस हैं। तहां ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की नव, वेदनीय की दोय, मोहनी की अट्ठाईस, आयु कर्म की च्यारि, गोत्र की दोय, अन्तराय कर्म की पाञ्च। ऐसे सात की पचवन। नाम कर्म की-वर्ण चतुष्क की च्यारि, संहनन षट्, संस्थान षट्, गति च्यारि, गत्यानुपूर्वी च्यारि,

शरीर पाञ्च, जाति पांच, अंगोपांग तीन, चाल दोय, अगुरु अष्टक की आठ और दश दुक की बीस, ऐसे नाम कर्म की सड़सठ। सर्व मिलि एक सौ बाईस, उदय योग्य प्रकृति जानना। तामैं तिर्यंच सम्बन्धी बारह—तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यचायु, जाति च्यारि, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप और उद्योत ये प्रकृति तिर्यंच द्वादश हैं। और वैक्रियक अष्टक, इन बीस बिना मनुष्य योग्य एक सौ दोय हैं। अब देव योग्य, उदय की प्रकृति कहिये हैं। ज्ञानावरण की पाञ्च, दर्शनावरण की छह, वेदनी की दोय, मोहनी की नपुन्सक बिना सत्ताईस, आयु, गोत्र ऊंच, अन्तराय की पांच, ऐसे सात कर्म की सैंतालीस। वर्ण चतुष्क की च्यारि, (संहनन नाहीं) संस्थान एक समचतुर, गति, गत्यानुपूर्वी, शरीर की तीन, अंगोपांग, चाल, जाति, अगुरुलघु, उच्छ्वास, उपघात, परघात, निर्माण, दश दुक की बारह, सर्व मिलि नाम कर्म की तीस, ऐसे देव योग्य उदय प्रकृति सतत्तरि हैं। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा, समुच्चय कथन जानना। और नारकी कैं उदय योग्य प्रकृति छिहत्तरि हैं। सो देव के उदय की प्रकृतिन में तौ दोय वेद घटाय दीजे। अरु नपुन्सक वेद मिलाईये। और यथायोग्य प्रकृति पलट देनी। शुभ की जायगा, अशुभ प्रकृति करनी। ऐसे नरक में उदय योग्य प्रकृति छिहत्तरि हैं। और तिर्यंच के उदय योग्य प्रकृति एक सौ सात हैं। एक सौ बाईस में तैं वैक्रियक अष्टक की आठ, मनुष्य गति आदि तीन, आहारक दुक की दोय, तीर्थंकर, ऊंच गोत्र, इन पन्द्रह बिना एक सौ सात प्रकृति का तिर्यंचन के उदय

है। विशेष तहां एता, जो पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उदय योग्य प्रकृति निन्यानवैं हैं। तिनके नाम— ज्ञानावरणी की पांच, दर्शनावरणी नव, वेदनी दो, मोहनी की अट्ठाईस, आयु, गोत्र नीच, अंतराय पांच, ये सात कर्म की इक्यावन। वर्ण की च्यारि, संहनन षट्, संस्थान षट्, गति, गत्यानुपूर्वी, शरीर तीन, जाति, अंगोपाङ्ग, चाल दोय, और तीर्थंकर व आतप इन दोय बिना अगुरु अष्टक की छह, और दश दुक की मैं तैं सूक्ष्म, साधारण, स्थावर, इन तीन बिना सत्तरा, ऐसे नाम की अड़तालीस, सर्व मिलि निन्यानवै हैं। अब एकेन्द्रिय के उदय योग्य प्रकृति अस्सी हैं। ताकी विधि—ज्ञानावरण की पाञ्च, दर्शनावरण नव, वेदनी दोय, मोहनी चौबीस, आयु, नीच गोत्र, अन्तराय पाञ्च, ये सात कर्म की सैंतालीस। आगे नाम की—तहां वर्ण की च्यारि, (संहनन नाहीं) संस्थान, गति, गत्यानुपूर्वी, शरीर तीन, एकेन्द्रिय जाति, (अंगोपांग तथा चाल नाहीं) तीर्थंकर बिना अगुरु अष्टक की सात, दश दुक की पन्द्रह, ऐसे नाम कर्म की तेंतीस, सर्व मिलि एकेन्द्रिय के उदय योग्य प्रकृति अस्सी। अब विकलत्रय के उदय योग्य प्रकृति कहिये हैं। सो एकेन्द्रिय के उदय योग्य में तैं सूक्ष्म, साधारण, स्थावर, आतप, ये च्यारि तौ काढ़िए, । अरु संहनन, अंगोपांग, चाल, स्वर, त्रस, ये पांच मिलाईये, तब विकलत्रय के उदय योग्य प्रकृति इक्यासी। ऐसे कहे जो सामान्य भाव, च्यारि गति सम्बन्धी उदय, सो प्रकृति उदय कहिये। और समय-समय ये प्रकृति उदय आवैं, तब तिन प्रकृतिन के संग जेती—जेती प्रमाण, कर्म उदय आय खिरैं, सो प्रदेश उदय है। सो ही संक्षेप दिखाइये है। तहां

एकली अणु का नाम तो वर्ग है। अनन्त वर्ग का समूह सो वर्गणा है। और असंख्यात लोक प्रमाण वर्गणा स्कन्ध मिलाईये, तब एक स्पर्धक होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण स्पर्धक मिलाईये, तब एक गुण–हानि होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण गुण–हानि कौं मिलाईये, तब एक नाना–गुण–हानि होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण नाना–गुण-हानि को मिलाईये, तब एक अन्योन्याभ्यस्त राशि होय। ऐसी असंख्यात लोक प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि स्कन्ध मिलाईये, तब एक प्रकृति होय। ऐसे उदय योग्य प्रकृति, तिन के साथ जेते प्रदेश उदय आय खिरैं, सो प्रदेश उदय है। और जिस प्रकृति की जेती जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति थी, तिन में तैं जो समय घाटि उदय आवै, सो स्थिति उदय है। और जिस प्रकृति के उदय होते जो शुभाशुभ रस का प्रगट होना, सो अनुभाग उदय कहिये। ऐसे ये सामान्य करि च्यारि प्रकार उदय कह्या॥२॥ अब सत्व करण कहिये है। तहां ऊपरि कहि आए जो बन्ध, सो कर्म बन्धे पीछे जेते काल उदय होय नहीं खिरैं। आत्मा के प्रदेश तैं, एक क्षेत्र कर्म रहैं। सो सत्व करण है। सो सत्व करण भी चारि प्रकार है। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग। तहां प्रथम ही प्रकृति सत्व कहिये है। सो सत्व योग्य प्रकृति, एक सौ अड़तालीस हैं। सो नाना जीव, नाना काल अपेक्षा हैं। और एक जीव कैं एकै काल तीन आयु बिना, भुज्यमान आयु सहित एक सौ पैंतालीस का सत्त्व है। और भुज्यमान वारे के तीर्थंकर बिना, एकसौ चबालीस का सत्त्व है। और कोई के तीन

आयु, आहारक चतुष्क व तीर्थंकर बिना एक सौ चालीस का सत्त्व है। और किसी के आहारक चतुष्क, तीर्थंकर और बध्यमान आयु सहित एक सौ छयालीस का सत्त्व है । और एक सौ अड़तालीस मैं तैं बद्ध्यमान वारे के तीर्थंकर और दोय आयु इन तीन बिना, एक सौ पैंतालीस का सत्व है। और किसी के आहारक चतुष्क, तीन आयु, इन सात बिना एक सौ इकतालीस का सत्व है। और आहारक चतुष्क व दोय आयु, इन षट् बिना कोई बद्ध्यमान आयु वारे कैं एक सौ व्यालीस का सत्व है। ऐसे अनेक प्रकार नाना जीव कैं सत्व पाईये। ताका सामान्य कथन कह्या। सो याका नाम सत्व करण है॥ ३॥ और जैसे कच्चे आमों कों पाल-पत्ता देय, सिताब (जल्दी) पकाईये। तैसे ही जिस कर्म की स्थिति बहुत होय, ताकौं बलात्कार तप-संयमादि करि, ताकी स्थिति घटाय उदय काल में लावना, सो उदीरणा है। भावार्थ—जो कर्म की बहुत स्थिति कूं घटाय, थोड़ी करि, खेरना। सो उदीरणा करण है॥ ४॥ और जिन कर्मन की बहुत स्थिति थी सो तिनके निषेक, नीचले थोरी-स्थिति वारेन में मिलाय, उदय में ल्यावना, सो अपकर्षण है॥ ५॥ और जिन कर्मन की स्थिति थोरी थी, तिनके निषेक नीचले तैं लेय, ऊपरले बड़ी-स्थिति के निषेकन में मिलावना, सो उत्कर्षण हैं। भावार्थ—जा कर्म की स्थिति थोरी थी ताकी बड़ी करना, सो उत्कर्षण है॥ ६॥ और आगे शुभ भावन तैं पुण्य प्रकृति बांधी थीं, ताके निषेक पाप परणामन तैं पाप प्रकृति रूप करना। तथा आगे अशुभ भावन तैं पाप प्रकृति बांधी, ताकौं शुभ भावना के फलतैं पलटाय

पुण्य प्रकृति रूप करना, सो संक्रमण है ॥ ७ ॥ और कर्म उदयावली वांभि है । सो उदयावली में कर्म कोई उपाय तैं नहीं आवैं, सो उपशांत करण कहिये ॥ ८ ॥ और जिन कर्मन के परमाणु संक्रमण नहीं होंय । तथा उदयावली में नहीं आवैं । सो याका नाम निधत्ति करण है ॥९॥ और जा कर्म के परमाणु उत्कर्षण जो कर्म स्थिति का वढ़ावना, अपकर्षण जो कर्म स्थिति का घटावना, संक्रमण जो कर्म कौ और रूप करना, सो जामें तीनों ही नहीं होय उदयावली में नहीं आवै । जिस अंशन करि बन्ध्या है, तिन ही अंशन करि उदय आवै । सो निकांचित नाम करण है ॥ १० ॥ य दश करण हैं । इनकौ जानैं, कर्म की अवस्था भले प्रकार जानी जाय है । ऐसा जानना । इति दश करण । विशेष इनका श्रीगोम्मटसारजी तैं जानना । ऐसा करण का स्वरूप, मिथ्यात गये जानिये है। सो मिथ्यात का स्वरूप कहिये है । मिथ्यात के दोय भेद हैं । सादि मिथ्यात और अनादि मिथ्यात । सो जीव कैं अनादिकाल संसार भ्रमण करतैं, कबहूं भी सम्यकत्व का लाभ नहीं भया होय, सो तो अनादि मिथ्यादृष्टी है ॥१॥ और जे जीव सम्यक्त्व कूं पाय, पीछे पाप भाव—अतत्व की वांछा तैं मिथ्यात में आया होय, सो सादि मिथ्याती कहिये ॥२॥ इनके होतैं कर्म का स्वरूप नहीं पावै । इति मिथ्यात । आगे भाव भेद तीन बताईये है । शुद्ध भाव, शुभ भाव और अशुभ भाव । इनका अर्थ—तहां राग-द्वेष का अभाव, शत्रु-मित्र, कंचन—तिण, रतन—पाषान इनमें राग—द्वेष नहीं होय, सो शुद्ध भाव कहिये ॥१॥ और दान, पूजा, शील, जप, तप, संयम, ध्यान, शास्त्राभ्यास, इत्यादिक क्रिया

भाव इत्यादिक पाप बन्ध के कारण, सो अशुभ भाव हैं ॥ ३ ॥ ये तीन, भाव के भेद हैं। तिन में शुद्ध भाव तौ भव्य ही कैं होय हैं। और शुभ, अशुभ ये दोय भाव, भव्य तथा अभव्य दोऊन के होय हैं। तहां भव्य के भी तीन भेद हैं। निकट भव्य, दूर भव्य और दूरानदूर भव्य। तहां जे जीव थोड़े काल विषैं मोक्ष जांय, सो निकट भव्य हैं। १। और जे जीव बहुत काल में मोक्ष होंय। तथा कबहू न कबहू अनन्त काल में होंयगे, ऐसी केवल-ज्ञान में भासी है। सो दूर भव्य हैं। मोक्ष होवे योग्य हैं, तातें इन को दूर भव्य जानना। २। और जे जीव भव्य हैं, केवलज्ञान में भासे हैं। सो भव्य राशि हैं। परन्तु मोक्ष होने की सामग्री जो सम्यग्दर्शनादि जिनकै कबहू प्रगट नाहीं होय। सदीव संसार वासी, अभव्य समानि, कबहू मोक्ष नहीं जांय, सो दूरानदूर भव्य हैं। ३। यहां प्रश्न—जो भव्य कह्या अरु मोक्ष कबहू नहीं होय, सो कैसे बनै ? ताका समाधान—हे भव्य, तू चित्त देय सुनि। अभव्य राशि तौ बहुत ही अल्प है। सो देखि। सर्व जीव राशि तैं अनन्तवें भाग तो सिद्ध राशि का प्रमाण है। और सिद्ध राशि तैं अनंतवें भाग, अभव्य राशि है। सो भी जघन्य जुगता अनन्त है। सो ये अभव्य तौ जव कहिये तुच्छ राशि जानना। और भव्य राशि बहुत है।

सो सुनि, ज्यों तेरा भ्रम जाय। एक महा छोटा खस–खस दाने प्रमाण निगोद स्कन्ध में, असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर हैं। तहां एक–एक शरीर में अक्षय अनन्त जीव हैं। इनका अन्त नाहीं। इस शरीर में तैं निकसि-निकसि अनन्तकाल तांईं, अनन्त जीव मोक्ष होवे करैं, तौ भी केवली कूं पूछिये, तब ही उस शरीर तैं निकसे तिनतैं अनन्त गुणे जीव, भव्य राशि और कहैं। ऐसे ही इस संसार तैं अनन्त काल तांईं जीव मोक्ष होवो करैं, तौ भी सिद्ध राशि तैं अनन्त भव्य जीव जब पूछौ, तब ही केवली बतावैं। तातें सदीव मोक्ष जातैं भी, जब केवली कूं पूछिये तब ही अभव्यन तैं अनन्त गुणे भव्य, एक शरीर में जानना। और कदाचित् मोक्ष जाते-जाते, भव्य राशि मोक्ष जा चुकै, तो मोक्ष का पीछे अभाव होय। मोक्ष बन्द होय। सो मोक्ष मारग कबहूं बन्द होता नाहीं, शाश्वत् है। छह महिना आठ समय में, छह सौ आठ जीव, निरन्तर मोक्ष जांय। सो ये अनुक्रम कबहूं बन्द होता नाहीं। सो ऐसा जानना कि जो अनन्ते जीव, भव्य–राशि में ऐसे हैं, सो कबहूं मोक्ष होते नाहीं। जब केवली कूं पूछौ, तब ही अभव्य राशि तैं अनन्त गुणै भव्य बतावैं। तामें दूरानदूर भव्य राशि भी, अभव्यन तैं अनन्त गुणी जानना। सो ये दूरानदूर भव्य, अभव्य समानि हैं। इति। आगे तीन भेद आंगुल के कहिये हैं। सो प्रथम ही नाम–उच्छेद आंगुल। १। आत्म आंगुल। २। प्रमाण आंगुल। ३। इनका अर्थ–तहां प्रथम ही उच्छेद आंगुल कौं बतावैं हैं। ताके निमित्त, उगुणीस भेद गिणती कहिये। अवसनासन। १। सनासन। २। तटरेणु

। ३ । त्रसरेणु । ४ । रथरेणु । ५ । उत्तम भोग भूमि के बाल का अग्रभाग । ६ । मध्य भोग-
भूमि के बाल का अग्रभाग । ७ । जघन्य भोग भूमि के बाल का अग्रभाग । ८ । कर्म भूमि के
बाल का अग्रभाग । ६ । लीख । १० । सरसौं । ११ । जव नाम अन्न । १२ । आंगुल । १३ ।
ये तेरह स्थान हैं । सो अवसनासन स्कन्ध तें लगाय, आंगुल पर्यंत तेरह स्थान, आठ-आठ
गुणा अधिक जानना । भावार्थ—जैसे अवसनासन स्कन्ध है सो अनन्त पुद्गल परमाणून का
स्कन्ध होय है । और आठ अवसनासन का, एक सनासन स्कन्ध होय है । और आठ
सनासन मिलाये, तब एक तटरेणु होय है । और आठ तटरेणु मिलाये, तब एक त्रसरेणु होय
है । ऐसे आठ-आठ गुणा आंगुल पर्यंत जानना । और इस आठ जव प्रमाण उच्छेद आंगुल तैं
पांच सौ गुणा प्रमाण—आंगुल है । १४ । और चौबीस आंगुल का एक हाथ होय है । १५ ।
और च्यारि हाथ का एक धनुष होय है ।१६। और दो हजार धनुष का एक कोस होय है ।१७।
और च्यारि कोस का एक योजन होय है ।१८। और असंख्यात योजन का एक राजू होय है
। १६ । और उगणीस (१६) भेदन में से तेरहमा भेद, आठ जव प्रमाण उच्छेद आंगुल है
।१। और जिस काल में जैसा शरीर होय तैसा ही आंगुल, सो आत्म आंगुल जानना ।२। और
अवसर्पिणी का प्रथम चक्रवर्ती, पांच सौ धनुष के शरीर वारा, ताका आंगुल सो ये प्रमाणां-
गुल है । सो ये उच्छेद आंगुल तैं पांच सौ गुणा मोटा, प्रमाण-आंगुल जानना ।३। इति । आगे
अक्षर के तीन भेद हैं, सो कहिये हैं । प्रथम नाम—निवृत्ति अक्षर । १ । लब्धि अक्षर । २ ।

स्थापना अक्षर । ३ । अब इन का अर्थ—तहां ओंठ, तालुवादि स्थान तैं उत्पत्ति होय जो शब्द रूप अक्षर, सो निवृत्ति अक्षर है। १ । और ज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम तैं भई जो पदार्थ जानने की भावेन्द्रिय द्वारा अक्षर शक्ति, सो लब्धि अक्षर है ।२। और जो अपने—अपने देश भाषा रूप अक्षरन का आकार बनाय के, तिन तैं कर्म—धर्म का कार्य करना, शास्त्र पढ़ना—समझना । इत्यादिक सो स्थापना अक्षर है। ३ । ऐसे तीन भेद अक्षर जानना । इति। आगे पर्याप्ति के तीन भेद—पर्याप्ति। १ । अपर्याप्ति, तिसका ही नाम निर्वृत्य पर्याप्ति।२। लब्धि अपर्याप्ति । ३ । इनका अर्थ—जहां पर्याप्ति नाम कर्म के उदय सहित जीव पर्याप्ति पूरण करै, सो पर्याप्ति है ।१। और पर्याप्ति प्रकृति के उदय सहित जीव जेते काल शरीर पर्याप्ति पूरण नहीं किया होय, सो निर्वृत्य पर्याप्ति जीव है । २ । और अपर्याप्ति के उदय सहित जीव शरीर पूर्ण करतैं पहले मरण करै है, सो लब्धि अपर्याप्ति है । ३ । ऐसे तीन भेद पर्याप्ति के जानना । इति । आगे चक्षु दर्शन के दोय भेद हैं। एक शक्ति चक्षु दर्शन । १ । एक व्यक्त चक्षु दर्शन । २ । इनका सामान्य अर्थ—अपर्याप्ति प्रकृति के उदय सहित ऐसे लब्धि अपर्याप्त, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय के शक्ति चक्षु दर्शन है। इनके चक्षु दर्शन का क्षयोपशम तो है, परन्तु अपर्याप्ति कर्म उदय तैं, अपर्याप्त दशा में ही मरैं हैं। तातैं प्रगट नहीं होने पावै। तातैं शक्ति चक्षु दर्शन कहिये ।१। और पर्याप्त चौइन्द्रिय सो ये व्यक्त चक्षु दर्शनी हैं ।२। इति। आगे उपशम सम्यक् के दोय भेद बताईये हैं——प्रथमोपशम सम्यक् ।१। द्वितीयोपशम

सम्यक् । २ । इनका सामान्य अर्थ—तहां अनादि काल संसार भ्रमण करते कबहूं मिथ्यात छुटि, सम्यक् होय । आगे कबहूं नहीं भया था, अब ही अनन्त काल में सम्यक् भाव जिस जीव कैं होय, सो प्रथमोपशम सम्यक् है । १ । और श्रेणी चढ़ते अप्रमत्त गुणस्थान विषैं क्षयोपशम सम्यक् तैं उपशमसम्यक् होय, सो द्वितीयोपशमसम्यक् कहिये । २ । इति । आगे योग स्थान के तीन भेद बतावैं हैं——प्रथम उत्पाद योग स्थान । १ । एकांत वृद्धि योग स्थान । २ । परणाम योग स्थान । ३ । इनका सामान्य अर्थ—तहां जो उपजने के प्रथम समय में ही जो योग स्थान होय, सो उत्पाद योग स्थान है। याका जघन्य व उत्कष्ट काल एक ही समय है ।१। और उपजने के द्वितीय समय तैं लगाय, पर्याप्ति पूरण होने के एक समय घाटि पर्यन्त, एक—एक समय बढ़ाईये। तातैं एकान्त वृद्धियोग स्थान हो है। याका भी जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय है । २ । और पर्याप्ति पूर्ण हो चुकी तव तैं लगाय, आयु पर्यन्त होय, सो परणाम योग स्थान है । ३ । यहां प्रश्न—जो परणाम योग स्थान तो पर्याप्त जीव कैं सम्भवै है और अपर्याप्ति कर्म के उदय वारे कैं कैसे सम्भवै ? ताका समाधान—जो इस लब्धि अपर्याप्त जीव का आयु, श्वास के अठारहवें भाग है। ताके तीन भाग कीजिये, सो दोय भाग बिना एक भाग अन्त का है, सो याका परणाम योग स्थान जानना। ये तीन योग स्थान कहे । इनका विशेष श्रीगोम्मटसारजी के जीव कांड तैं जानना । इति । आगे धर्म सें अरुचि होवे के तीन कारण बताईये हैं। एक तो जो जीव, जन्म का ही अज्ञान है। ताकों

अज्ञानता के योग करि धर्म्म तैं अरुचि रहै है।१। और कोई जीव कैं कषाय के दोष तैं धर्म तैं अरुचि होय है। २। और कोऊ के धर्म सेवन करते ही, पाप के उदय तैं अरुचि होय। ३। अब इनके दृष्टान्त दिखाइये है। तहां जैसे कोई जीव जन्म रोगी तथा जन्म दरिद्री, इन दोऊ ही नैं कबहू घृत-मिश्री का भोजन नहीं किया। इन के स्वाद कूं कबहू नहीं पाया। तैसे ही कोई पापात्मा, अनादि ज्ञान—दरिद्री, मिथ्या रोग पूरित, सहज ही अज्ञानता करि पाप—पुण्य के भेद कूं नहीं जानै। तातैं धर्म तैं अरुचि होय है। १। दूसरा जो कोई जीव कषाय करि तथा जाकैं कोई खोटी आयु का बन्ध होय गया होय, ताकरि कोई तैं लड़—पड़ा। सो वाके ऊपरि अपघात करवे कूं कूप, नदी, बावड़ी में कूदि मरै। तथा कोई पै जहर खाय व छुरी कटारी करि, मरै। तैसे ही पाप कर्म के उदय करि, धर्म सेवन करता भी, काहू तैं द्वेष—भाव करि धर्म तैं अरुचि करै है। २। और कोई अच्छी तरह खाता—पीता जीव कैं, पाप कर्म के उदय तैं पेट में रस बढ़ चल्या। ताके योग तैं खान-पान तैं अरुचि होय चली। ज्यों-ज्यों पेट में रस बढ़ने लगा, त्यों-त्यों रोग बढ़्या। त्यों-त्यों अन्न तैं अरुचि होय चली। तैसे ही अच्छा-भला धर्म सेवन करता ही जीव, पाप उदय तैं तथा कोई खोटी गति के बन्ध तैं तथा आयु के बन्ध योग तैं, शनैः-शनैः धर्म तैं अरुचि करै है। दीरघ आरति के योग तैं भोगासक्त भया, ताके दोप करि धर्म तैं अरुचि करै है। ३। ये तीन भेद भाव तैं धर्म तैं अरुचि करि, पाप बन्ध करि, आतमा अपना परभव

बिगाड़ै है। ऐसा जानना। इति। आगे तीन शल्य के भेद कहिये हैं—माया शल्य।१। मिथ्या शल्य।२। अग्र सोच (निदान) शल्य।३। इन का अर्थ—तहां माया की परणति आप तज्या चाहै है। धर्म सेवन करै। परन्तु अपने हृदय तैं माया नाहीं जाय। कबहूं न कबहूं माया की वासना प्रगट हो ही जाय, सो माया शल्य कहिये।१। और जहां धर्म सेवन करतैं मिथ्यात आप तज्या चाहै, कुदेवादिक की सेवा का भी त्याग करै, परन्तु कारण पाय कबहूं न कबहूं अतत्व भाव उपजै है। मिथ्या भाव तैं अतत्व उपजै तथा जिन भाषित में संशय होय, सो मिथ्या शल्य है।२। और जहां धर्म सेवन निरवांच्छित होय कैं सेवतैं ही, चित्त मैं कबहूं न कबहूं धर्म सेवन तैं पहिले ही, सेवन के फल की वांच्छा होय, कि धर्म का मोकौं क्या फल होयगा? तथा नहीं होयगा। तथा ऐसा फल उपजियो। इत्यादिक भाव—विकल्प, सो अग्रसोच (निदान) शल्य है।३। इति। आगे निक्षेप च्यारि का स्वरूप कहिये है। प्रथम नाम—नाम।१। स्थापना।२। द्रव्य।३। भाव।४। अब इनका अर्थ—तहां कोई वस्तु का कछू नाम कहना, सो नाम निक्षेप है।१। और कोई वस्तु का आकार करना, सो स्थापना निक्षेप है।२। और कोई वस्तु-पदार्थ होवे कौं कोई वस्तु होय, सो द्रव्य निक्षेप है।३। और वस्तु प्रत्यक्ष होय, सो भाव निक्षेप कहिये है।४। यहां इनका दृष्टान्त करि कहिये हैं। जैसे वृषभ आदि तीर्थकरों के नाम लेय, सुमरन करि पुण्य का बंध करना, सो नाम निक्षेप है।१। और चौवीस तीर्थकरों के शरीर के आकार, वर्ण, लक्षण, रूप सहित

कायोत्सर्ग तथा पद्मासन प्रतिमा, रतन की, स्वर्ण की, चांदी की, धातु की, मनोग्य उत्तम पाषाण की स्थापना करि, पूजा–स्तुति करि, पुण्य उपार्जन करना, सो स्थापना निक्षेप है। २। और तीर्थंकर का जीव परगति में ही है। अरु षट् मास पहिले नगर की रतन मई रचना, पंचाश्चर्य करि पुण्य उपावना। तथा जो तीर्थंकर भये हैं। तिन के गर्भ-कल्याणादि अतिशय का, उछाह करि स्तुति करि पुण्य का बांधना, सो द्रव्य निक्षेप है। तीर्थंकर भये नहीं हैं परन्तु वह गर्भ में तिष्ठती आत्मा, तीर्थंकर होने योग्य है। काल पाय तीर्थंकर पद पावेंगे। सो द्रव्य तीर्थंकर कहिये। सो इनकी सेवा–पूजा किये, पुण्य बन्ध होय है। सो द्रव्य निक्षेप है। ३। और जहां समोशरण सहित, गन्ध कुटी विषैं सिंहासन युक्त कमल, तिसतैं अन्तरीक्ष चार अंगुल विराजमान भगवान्, घातिया कर्म नाश करि, अनन्त चतुष्टय सहित विराजमान, दिव्य ध्वनि करि उपदेश देते तिष्ठैं, सो भाव निक्षेप है। इन की पूजा–स्तुति कूं करि पुण्य उपावना, सो भाव निक्षेप है। ४। ऐसे च्यार निक्षेप तीर्थंकर के हैं। यहां एक दृष्टान्त और भी कहिये है। काहू का नाम सिंह कहना, सो नाम सिंह है। और काष्ठ, पाषाण, चित्राम का नाहर का आकार बनाया, सो स्थापना सिंह है। और नाहर की पर्याय में उपजवे कूं सन्मुख भया जो जीव, सो तौ अंतराल में है, सो द्रव्य नाहर है। और साक्षात् कूदता, फांदता, बोलता सिंह, सो भाव सिंह है। इत्यादिक भेद सब जगह चेतन–अचेतन पदार्थन पै लगावना। इन च्यारों के मारे पाप

होय व इन पै दया भाव किये पुण्य होय । मिट्टी के स्थापना-नाहर के फोड़े-मारै का दोष लागै है । यहां निक्षेपन का स्वरूप सामान्य कह्या । विशेष विवेकी-सम्यग्दृष्टी अपने ज्ञान के महात्म्य करि, सर्व स्थान पै यथायोग्य लगाय लेना । इति। आगे अलौकिक मान के च्यारि भेद हैं। सो बताईये है । प्रथम नाम-द्रव्य मान । १ । क्षेत्र मान । २ । काल मान । ३ । और भाव मान। ४ । अब इनका अर्थ——सो इन च्यारों मान विषैं, जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट ये तीन-तीन भेद हैं । तहां मान नाम प्रमाण का है । सो जो एक पुद्गल परमाणु, है, सो जघन्य द्रव्य मान है। यातैं छोटा द्रव्य और नाहीं। और महास्कंध तीन लोक के प्रमाण, सो उत्कृष्ट द्रव्य मान जानना । या महास्कंध तैं बड़ा और पुद्गल स्कंध नाहीं । तातैं महास्कंध, उत्कृष्ट द्रव्यमान जानना। और पुद्गल परमाणु से ऊपर, महास्कन्ध से एक पुद्गल परमाणु-कम जो बीच के भेद हैं, सो मध्यम द्रव्य मान है।१। और एक प्रदेश आकाश का क्षेत्र, सो जघन्य क्षेत्र मान है। यातैं छोटा क्षेत्र नहीं। और तीन लोक क्षेत्र प्रमाण क्षेत्र, सो लोकाकाश की अपेक्षा उत्कृष्ट क्षेत्र मान है । और अनन्त अलोकाकाश क्षेत्र है, सो उत्कृष्ट क्षेत्र मान है। या अलोकाकाश तैं उत्कृष्ट क्षेत्र नाहीं । और एक प्रदेश के ऊपर तैं एक-एक प्रदेश बढ़ता उत्कृष्ट पर्यन्त, मध्य के भेद हैं। ये क्षेत्र मान के तीन भेद हैं । २ । और एक समय तैं छोटा काल-भेद नाहीं। तातैं एक समय तो जघन्य काल मान है । और अतीत, अनागत, वर्त्तमान ये तीन काल के जेते समयन का प्रमाण, सो उत्कृष्ट काल मान है । और दूसरे

समय तैं एक-एक समय काल बढ़ता, सो उत्कृष्ट तैं एक समय घाटि पर्यन्त, मध्य के भेद हैं। ऐसे काल-मान के तीन भेद कहे।३। और सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जीव, एक अन्तर्मुहूर्त में छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण करै। सो तिन में छह हजार ग्यारह जन्म-मरण निगोदिया सम्बन्धी करि चुक्या होय। अरु बारहवें जन्म धर तैं, प्रथम समय में अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान रहे है। सो जघन्य ज्ञान है। सो ही जघन्य भाव-मान जानना। यातैं अल्प भाव-मान नाहीं। और इस जघन्य भाव तैं एक-एक ज्ञान अंश बढ़ते, एक अंश घाटि केवलज्ञान पर्यन्त, मध्य भाव मान के भेद हैं। और सर्व तीन काल की जाननहारा अंतरजामी सर्वज्ञ कें केवल ज्ञान है, सो उत्कृष्ट भाव मान है। ये तीन भेद भाव मान के जानना।४। ऐसे सामान्य च्यारि भेद मान के जानना। इति। आगे अर्जिका जी के च्यारि गुण कहिये हैं। प्रथम नाम--लज्जा।१। विनय।२। वैराग्य।३। शुभाचार।४। इनका अर्थ—प्रथम अर्जिका जी का रहने का स्थान बतावैं हैं। सो जहां अर्जिका जी के रहने का स्थान होय। सो नगर तैं अति दूर नहीं होय। बहुत नजदीक भी नहीं होय। ऐसा यथायोग्य कोई मध्य स्थान होय, तहां तिष्ठै। और जब आहार कौं नगर में जाय तौ अकेली नहीं जाय, कोई बड़ी अर्जिका जी के साथ जाय। सो भी मौन सहित, विनय तैं, अङ्ग सङ्कोचती, नीची दृष्टि किये, ईर्य्या समिति सहित, नगर में भोजन कौं जाय। तन को छिपाये रहे, अंगोपांग प्रगट नहीं दिखावे। एक पट तैं सर्व तन कौं आच्छादित राखती,

लज्जा सहित प्रवृत्ते, सो लज्जा गुण कहिये।१। और अर्जिका जी आचार्य के दर्शन कौं जांय, तौ पांच हाथ अन्तर तैं विनय सहित नमस्कार करैं हैं। और उपाध्याय जी के दर्शन कौं जांय, तब षट् हाथ तैं नमस्कार करैं हैं। और साधु जी के दर्शन कौं अर्जिका जी जांय, तब सात हाथ के अन्तर तैं नमस्कार करैं। सो अर्जिका जी इन गुरौं को नमस्कार करैं, तब पंचांग नमस्कार करैं। और अर्जिका जी कौं गुरुन पै कोई प्रश्न करना होय, तौ अकेली जाय, नहीं करै। एक बड़ी अर्जिका कूं अपना प्रश्न कहै, जो इस प्रश्न का उत्तर गुरु के मुख तैं सुन्या चाहौं हौं ऐसा कहि, बड़ी अर्जिका जी कौं अगवानी करि, प्रश्न करावै। और भी इनकौं आदि देव, गुरु, धर्म, विषै योग्य विनय सहित रहै, सो विनय गुण है। २। और निरन्तर वैराग्य बढ़ावने के अर्थ, अनेक तप करना। यत्न तैं संयम—ध्यान करना। निरन्तर संसार की अनित्यता का विचार करना। भोगन को भुजंग समानि जानना। तन कौं सप्त धातु मई जान, ताके धारण तैं चित्त की उदासीनता, इत्यादिक भावन सहित विरक्त भाव रहना, सो वैराग्य गुण है। ३। और परम्पराय जिन आज्ञा प्रमाण कही है जो अर्जिका के आचार की प्रवृत्ति, ताही प्रमाण क्रिया करनी, सो शुभ आचार गुण है। ४। इन च्यारि गुण सहित होय, सो सतीन में परम शिरोमणि, धर्म्म मूर्ति अर्जिका जानना। इति आर्यिका गुण। आगे दत्ति भेद च्यारि कहिये है। तहां नाम—पात्रदत्ति। १। समदत्ति। २। करुणादत्ति। ३। सर्वदत्ति। ४। अब इनका अर्थ—तहां मुनिराज कौं नवधा

भक्ति करि दान देना, तथा आर्यिका जी कूं भोजन–वस्त्र भक्ति सहित दान देना । तथा त्यागी, अवलि, खलिक, प्रतिमाधारी, तिन कौं भोजन–वस्त्र देना तथा संघ में मुनि–श्रावकन कौं कमण्डलु–पीछी देना । इत्यादिक चारि प्रकार संघ में महा विनय सहित भक्ति-भाव करि दान देना, सो पात्रदत्ति है । १ । और आप समानि धर्म श्रद्धा का धारक गृहस्थ, धर्मात्मा, ज्ञानी, वैराग्यवान, संतोषी, सम्यग्दृष्टी, शुद्ध देव–गुरु–धर्म की श्रद्धा को समझनेहारा, उत्तम शुभ कर्मी, ताकौं यथायोग्य भक्ति–अनुराग करि, विनय पूर्वक भोजन–वस्त्रादि देना । तिन की स्थिरता करनी, साता करनी, सो समदत्ति है । प्रयोजन पाय इनकौं दान दीजिये तथा उनका आप लीजिये । तातैं इनका लेना–देना, सो समदत्ति है । २ । और जहां दीन, दरिद्री, अंधा, भूखा, बालक, वृद्ध, अशक्त, रोगी, असहाय, इत्यादिक कौं देखि अनुकंपा करि, दया-भाव सहित दान का देना, सो करुणादत्ति है।३। और जहां सर्व परिग्रह–आरम्भ का त्याग करि, मुनीश्वर का पद धरना, सो सर्वदत्ति है । अब कछु देने का नाम नहीं, जो देना था सो सर्व दिया । सर्व संसार में तिष्ठते जो–जो त्रस–स्थावर जीव, तिन सब में समता भाव करि, सब कौं अभय दान देना, सो ये सर्वदत्ति जानना । ४ । ऐसे दत्ति चारि । इति दत्ति । आगे कुलकर तैं लगाय भरत चक्रवर्ती पर्यन्त जीवन में, चूक भये दण्ड होय । ताके भेद च्यारि हैं । सो बताईये हैं—तहां तीजे काल के व्यतीत भये, पल्य का अष्टम भाग काल, बाकी रह्या । तब ज्ञान का सामान्य–विशेष भया । कोई जीव विशेष ज्ञानी, कोई जीव सामान्य ज्ञानी ।

ताके याग तैं कुलकर भये। सो और जीवन में ज्ञान अल्प और कुलकरन में ज्ञान विशेष भया। सो प्रथम कुलकर तैं लगाय पञ्चम कुलकर पर्यन्त कोई चूक भये, जीव कौं ऐसा दण्ड होय जो "हा"। याका अर्थ यो, जो "हाय–हाय ! (ये कार्य मति करौ)"।१। ऐसे ही पंचम तैं लगाय दशवें पर्यन्त ऐसा दण्ड जो "हा मा"। याका अर्थ यह, जो "हाय–हाय ! यह कार्य मति करो"। २। और वृषभ देव पर्यन्त पंचम कुलकरों के वारे ऐसा दण्ड भया, जो "हा मा धिक्," याका अर्थ–"हाय हाय ! यह कार्य मति करौ, तौ कौं धिक्कार है"। ३। पीछे काल–दोष तैं जीवन के कषाय वढ़ी। तव राज–दण्ड भी दीरघ भया। सो चूक भये भरत चक्रवर्ती के समय वारे जीव, वक्र-कषाई भये। अपराध बड़े करने लगे। सामान्य दंड का उल्लंघन करने लगे। तव छेदन–भेदन, वध–बन्धनादि दंड भये। ४। ऐसे दंड भेद च्यारि कहे। सो जीवन की जैसी–जैसी कषाय भई, तैसा २ दंड विधान चल्या। सो अव भी देखिये है। जो दीरघ चूक तैं, दीरघ दण्ड पावैं। अल्प चूक तैं, थोरा दण्ड पावैं। और चूक रहित व गुण सहित जीवन की, पूजा होती देखिये है। तातैं ऐसा जान, विवेकी पुरुषन कूं चूक (अपराध) भाव छांड़ि, गुण करना योग्य है। इति दण्ड भेद। इति श्रीसुदृष्टि-तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, दश करणादि भेद वर्णनो नाम, अट्ठाईसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ २८ ॥

आगे श्रावककी क्रिया पच्चीस हैं। इन–इन भावन तैं जीव, कर्म का आश्रव करै है, सो ही बताईये है। प्रथम सम्यक्त्व की क्रिया कहिये है––तहां अठारह दोष रहित शुद्ध

देव की पूजा, शुद्ध गुरु की पूजा, शुद्ध धर्म की पूजा, जिन बिम्ब की पूजा, सिद्ध क्षेत्र पूजा। धर्मात्मा पुरुषन के गुणन में अनुराग भाव, वात्सल्य भाव। दीन, दुखित, रोगी, दुखी–दरिद्री, इत्यादिक क्लेशवान् जीवन कौं देख, दया भाव करै। समता भाव बढ़ावै। इत्यादिक समभावना सहित जीव, शुभ कर्म का आश्रव करै है। याका नाम सम्यक् क्रिया है। ये तौ शुभ आश्रव है ।१। आगे मिथ्यात प्रवर्द्धिनी क्रिया कहिये है–तहां कुदेव पूजा, कुगुरु पूजा, कुतीर्थ पूजा, हिंसा सहित कुतप तिनके करवे की भावना, औरन के हिंसा तप की प्रसंशा, कुदान करवे की अभिलाषा, कुव्रतन में काय की प्रवृत्ति, सर्व में विनय, सुदेव–सुगुरु, कुदेव–कुगुरु, इनकौं एक से जानना, इत्यादिक भावन तैं अशुभ कर्म का आश्रव होय है। याका नाम मिथ्यात प्रवर्द्धिनी क्रिया है। ये अशुभ कर्म कों उपजावै है।२। और असंयम प्रवर्द्धिनी क्रिया कहिये है–तहां मन में अनेक विकल्प धन–धान्य की चाह करना। भोग–उपभोग में अभिलाषा रूप रहना, इन्द्रियन के पोखवे की वांच्छा, इत्यादि असंयम के विकल्प रूप मन का वेग, सो मन असंयम है। पंचेन्द्रिय अपने विषय कौ चाहती। सो रसना इन्द्रिय, षट् रस के भोग में लुब्ध। स्पर्श इन्द्रिय, अपने अष्ट विषयन में लुब्ध। घ्राणेन्द्रिय, सुगन्ध इच्छुक। नेत्र इन्द्रिय, पंच वर्ण विषैं लुब्ध। श्रोत्र इन्द्रिय, सुस्वर शब्द-वादित्रन में लुब्ध। इत्यादिक इन्द्रिय, असंयम रूप। ऐसे मन व इन्द्रिय आत्मा के वश नहीं रहैं। और त्रस–स्थावर के षट् कायन की दया नहीं पालै। ऐसे बारह असंयम रूप भावन के विकल्प तैं,

अशुभ कर्म का आश्रव जीव करै है। याका नाम असंयम प्रवदृर्धिनी क्रिया है। ३। आगे प्रमादनी चौथी क्रिया कहिये है--तहां जो जीव प्रथम तौ आप संयम, व्रत, आखड़ी (प्रतिज्ञा) कौं धारतें, तप के फल का वांच्छिक होय। तपस्वी नाम बाजै। पीछे काल पाय, तप के कष्ट तैं भय खाय, जल की इच्छा, अन्न की इच्छा, स्त्री की इच्छा। शीत--उष्ण नहीं सह्या जाय सो और असंयमी जीव कौं खावते--पीवते, स्त्री संग करते, शीत--उष्ण में अनेक तन के जतन करते सुखी देखि, विचारी। जो मैं तो संयम तैं दुखी होय रह्या हौं और ये असंयमी सुखी है, अच्छा खाय है--पीवै है। ऐसे भाव करि आप संयमी होय कर, पीछे प्रमाद योग तैं, पाप उदय करि, असंयम कूं भला जान, संयम तैं विचल्या चाहै। सो प्रमादनी नाम की क्रिया है। ऐसे भाव तैं अशुभ कर्म का आश्रव होय है।४। आगे ईर्यापथ क्रिया कहिये है। सो याकरि दोय भेद आश्रव होय है। जो जीव अन्तरङ्ग में सर्व जीव पै दया भाव करि, गमन करतें नीची दृष्टि करि देखता चालै। धीरा चालै। छोटा--बड़ा जीव नजर में आवे, सो राह में वचाय लेय, ऐसे दया भाव सहित जतन तैं भूमि शोधता गमन करै, तौ चलता जीव कैं ही पुण्य का आश्रव होय। और गमन करते, ईर्या तजि, प्रमाद तैं उतावला चालै। राह में आप समान आत्मा अनेक, छोटी कायधारी, पशु चींटा--चींटीं हैं। तिनकी रक्षा रहित, प्रमाद तैं गमन करता आत्मा, अशुभ कर्म का आश्रव करै। याका नाम पंचम भेद ईर्य्यापथ क्रिया है। ५। आगे प्रादोषकी क्रिया कहिये है--जहां ये जीव धर्म भाव तजि, क्रोध के वशीभूत होय, अनेक पाप करै।

जाकौं क्रोध का उदय होय, तब जीव घात करै, दया तजै। क्रोधी जीव देव, गुरु, माता आदि गुरुजन का अविनय करै। शस्त्र घात तैं, आप तन हतै। क्रोधी, अग्नि तैं ग्राम, बन, घर जालै। क्रोधी नर, पुत्र, स्त्री, भाई आदि का घात करै। इत्यादिक पाप, क्रोध भाव तैं करै। तहां क्रोधी भी अशुभ कर्मन का आश्रव करै है। याका नाम प्रादोषकी क्रिया है। ६। अब कायिक क्रिया कहिये है—तहां जानैं शरीर पाय, चोरी करी। जीव घात किया। परस्त्री सेवन किया। मद्य—मांस भक्षण किया। अपने कुल निंद्य, अपने धर्म निंद्य, खान—पान निंद्य क्रिया करी। द्यूत रम्या। युद्ध किया। पर जीवन कूं भय उपजाये। इत्यादिक ता शरीर तैं बहुत अपराध किये। ताके फल तैं शरीर की नाक छेदन कराई, पांव छेदन कराये, इत्यादिक अंग—उपांग छेदन सहित रहे। तौभी परघात का तौ उद्यम किया करै। ऐसे बहुत पाप—अकार्य करि, भाव बिगाड़ि, अशुभ कर्म का आश्रव किया। और शुभ कर्म तो, शरीर कौं धारि, कबहूं नहीं कस्या, अपराध कीये। सो सातमी कायिक क्रिया है। ७। आगे अधकरणी क्रिया कहिये है—तहां जाकौं हिंसा के उपकरण, बहुत वल्लभ (प्यारे) लागैं। तीर, तलवार, तुपक, तोप, सेल, बरछी, कटारी, छुरी इत्यादिक अचेतन, हिंसा के उपकरण हैं। सो ये जा कूं बहुत अनुराग उपजावैं। तिनके निमित्त श्रृङ्गारवे कौं अनेक द्रव्य लगाय आभूषण करावै। तथा चीता, बाज, श्वान, सिंह, सुअर, मार्जार, चोर, ऐंठा देनेहारे, घर फोड़नेहारे, ठग, फांसी करनहारे इत्यादिक ये चेतन, हिंसा के उपकरण जाकौं प्यारे लागैं।

इनकौं भला भोजन देय। बड़े भारी वस्त्र देय। इत्यादिक चेतन—अचेतन हिंसा के-पाप के सहाई उपकरण, तिन कौं देखि हरष भाव करना, सो अशुभ आश्रव के करनहारे भाव जानना। याका नाम आठवीं अधकरणी क्रिया है। ८। आगे परितापकी क्रिया कहिये है। तहां अपनी इच्छा करि जान-पूँछ करि ऐसी क्रिया करै, जाकरि पर जीवन कूं पीड़ा होय। जैसे काहू ने कौतुक हेतु, हस्ती का युद्ध कराया। मीढ़ेन का युद्ध कराया। क्रूर जीव नाहर का युद्ध क्रिया, सर्प—नेवले की युद्ध क्रिया, घोटक युद्ध, महिष युद्ध, ऊँट युद्ध, नर युद्ध इत्यादिक युद्ध क्रिया अन्य जीवन की करावनी। तिन तैं कोई के शिर फूटें। केई के पद भङ्ग भये। इत्यादिक अन्य जीवन कूं बलात्कार दुखी करि, आप हर्ष पावना। सो परितापकी क्रिया, अशुभ आश्रव की करनहारी है। तथा नदी, कूप, बावड़ी, सरोवर विषैं, कौतुक-हर्ष के हेतु कूदना। ताकरि अनेक दीन जीव जलचर, तिनका घात करना, दुखी करना। जान-पूंछ काहू के लात, मूकी, लाठी, शस्त्र मार, दुखी किये। इत्यादिक क्रिया करि अशुभ कर्मन का आश्रव करना। याका नाम नववीं परितापकी क्रिया है। ६। आगे प्राणपातकी क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपने तन तैं परजीवन के तन का नाश करै। जैसे खेटक (शिकार) करनेवाले की क्रिया। तथा चांडालादिक दया रहित, पर जीवन का घात करनहारे तिनकी क्रिया। तथा चोर व फँसियारा अपने हाथ तैं पर जीवन का घात करैं, सो क्रिया। इत्यादिक पर जीव घातवे की क्रिया हैं। सो सर्व पाप का आश्रव करैं हैं।

याका नाम प्राणपातकी दशवीं क्रिया है।१०। आगे दर्शन क्रिया कहिये है—जहां पराया भला रूप देखवे की इच्छा, कोई स्त्री-पुरुष का अच्छा रूप सुनै, तो ताके देखवे की अभिलाषा होवे की क्रिया। पुरुष कौं अनेक पट—आभूषण पहराय, स्त्री का रूप—आकार बनाय, देखवे के परणाम। कोई देव, देवी, मनुष्यनी के रूप का बखान सुनि कैं, तैसे रूप देखवे कूं चित्त का विह्वल होना। तथा अनेक प्रकार षट्रस भोगवे की अभिलाषा। रसना के रंजावनेहारे भोजन तैं सुखी, रसना कूं अरति उपजावनेहारे भोजन—रस मिलै दुखी, ऐसे भावन तैं जीव अशुभ कर्म का आश्रव करै। याका नाम ग्यारहवीं दर्शन क्रिया है। ११। आगे स्पर्शन की क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपने काय के स्पर्शने कूं कोमल शय्या के निमित्त, सचित्त फूल—बोंड़ी तिनकी शय्या रचना करै। तामें शयन करि—लोट, आनन्द मनावै। पाप का भय नाहीं, दया का विचार नाहीं, हिंसा का तरस नाहीं, अपनी इन्द्रिय पोषी जाय सो करना। तथा योग्य-अयोग्य कुल नहीं विचारै। भावै स्पर्शवे योग्य होऊ, भावै नीच अस्पर्शवे योग्य होऊ, जाका तन सुन्दर होय कोमल होय, सौ स्पर्शन इन्द्रिय का भोगनेहारा ताकौं स्पर्शै है। नीच—ऊंच नहीं विचारै। सो बारहवीं स्पर्शन क्रिया है। १२। आगे प्रत्यायिनी क्रिया कहिये है। जहां पाप करवे के कारण नाना प्रकार शस्त्र, तीर, गोली, छुरी, कटारी, तरवार, जाल, पींजरा, फाँसी, फंदा, चेप, कुप इत्यादिक हिंसा के कारण शस्त्र तिनकी अत्यन्त चतुराई बनावने की जानैं होय। सो ऐसे अद्भुत शस्त्र बनावै, तैसे और कोई तैं नही बनैं। ऐसे अपूरव

दुख के कारण शस्त्रादि करवे की कला—चतुराई, सो महा अशुभ कर्म का आस्रव करै । याका नाम प्रत्यायिनी क्रिया है ।१३। आगे समन्तानुपातनी क्रिया कहिये है । जो गृहस्थ के मन्दिर प्रसूत के स्थान हैं। ये भोगी जीवन के स्पर्श करवे के हैं। जहां सराग क्रीड़ा सदीव होय। सो ऐसे स्थान त्यागीन के रहवे के नाहीं। ये सराग स्थान त्यागीन कौं योग्य नाहीं, अयोग्य हैं, भय के कारण हैं। तातें जो यती आदि संयमी, इन गृहस्थन के घर में आवैं, तौ महा सावधान, प्रमाद रहित, वीतराग दशा सहित, भोजन निमित्त आवैं। सो जेते काल सराग नहीं होंय, दोष टालि भोजन लेंय। सो जातैं तथा आवतैं, संयमी अपने तन के श्लेषमादि मल—मूत्र, प्रमाद के योग तैं कदाचित् गृहस्थी के घर विषैं नाखैं। तौ ऐसे प्रमाद—भावन तैं अशुभ आस्रव करैं। याका नाम समन्तानुपातनी क्रिया है । १४ । आगे अनाभोग क्रिया कहिये है। जहां बिना देखे वस्तु कौं धरती पै धरना, विना देखे धरती तैं उठाना । सो यती तौ कमण्डलु, पीछी, तन इत्यादिक धरैं सो विना शोधे धरती, बिना पीछी तैं पूछैं धरैं, तौ अशुभ आश्रव करैं हैं। और श्रावक भी अनेक वस्तु धरना—उठवना विना देखे, प्रमाद सहित करैं, तौ अशुभ आश्रव करैं। याका नाम अनाभोग क्रिया है। १५ । आगे स्वहस्त क्रिया कहिये है। तहां जे दुराचारी, दुष्ट स्वभाव का धरनहारा, महा पापी, अपने हाथ ऐसे पाप का कार्य करै। जो ऐसा निषिद्ध खोटा कार्य और तैं नहीं बन। ऐसी काय का धारी महा पाप आस्रव करै । यह ऐसा पापी है कि यदि याके कहे कोऊ पाप कार्य न करै ।

तथा कोई करता पाप कार्य तैं डरै। तो यह निर्दयी ऐसा प्रेरक होय कहै। जो हे भाई, यो पाप हमारे शिर है। तू मत डरै। ये पाप का कार्य निशङ्क होय करि। ऐसे भाव का धारी बड़े पाप का आस्रव करै। याका नाम स्वहस्त क्रिया है।१६। आगे निसर्ग क्रिया कहिये है। तहां जा दुरात्मा कौं भला कार्य तो सिखाये ही नहीं आवै। शुभ कार्यन विषैं मूढ़ता, भली बात वोलना न आवै। और अनेक कुकार्य, बिना सिखाये ही अपनी बुद्धि तैं उपावै। अनेक युक्ति, पाप कार्य करवे की उपजैं। आप करै, औरन कूं कुकार्य उपदेशै। ऐसे जीव अपने भाव तैं पाप कर्म का आस्रव करैं। याका नाम निसर्ग क्रिया है। १७। आगे विदारण क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपना अवगुण लोकन में आप प्रगट कहै। जो मैं बड़ा चोर हूं। मो सा और नाहीं। अनेक संकट में, महा गूढ़ स्थान में, धन धरया होय, तहां तैं ल्याऊं। तथा कहै, जो मो सा ज्वारी और नाहीं। तथा कहै, हम पर स्त्री सेवनहारे हैं। तथा कहै, मैं बड़ा पाखण्डी हूं। मो सा पाखण्डी और नाहीं। बड़ा झूठा हों। तथा मैं बड़ा दगाबाज़ हों। इत्यादिक अपने अवगुण की प्रसंशा, अपने मुख तैं करै। ऐसा जीव अपने भावन की वक्रता करि, अशुभ कर्म का आस्रव करै। सो याका नाम, विदारण क्रिया है।१८। आगे जिन आज्ञा उल्लंघन क्रिया कहिये है। जो जीव विषय–कषायन में उद्यमी, पंचेन्द्रिय पोषवे कूं अनेक उद्यम करै। कदाचित् तन की शक्ति नहीं भई होय, तो बुद्धि बल करि मन तैं बड़ा उपाय करै। परन्तु जैसे बने तैसे, विषय पोषण करि, सुख मानै। और जिनके

सेवन तैं पुत्र व धन होता जानै, ऐसे कुदेव तथा जिनतैं रसायन होती जानै तथा वैद्यादिक कला के धारी, जन्त्र—मन्त्रादि चमत्कार बतावनहारे—गुरु, इनकी सेवा में सावधान। तिनकी आज्ञा प्रमाण तौ करै। और जिन भाषित धर्म सेवन में शिथिल, स्वर्ग—मोक्षदाता तप, व्रत, पूजा करवै में प्रमादी। कायर ऐसा कहै, जो मेरे तन में शक्ति नाहीं। अशक्ति जानि, आलस सहित, शुद्ध धर्म की क्रिया करै। सो भी अपनी इच्छा रूप करै, जिन आज्ञा प्रमाण नाहीं करै। ऐसे भावन का धारी अशुभ आस्रव करै। याका नाम जिन आज्ञा उल्लंघन क्रिया है ।१६। आगे बीसवीं अनादर (अनाकांक्षा) क्रिया कहिये है। जो जीव शास्त्रोक्त तप, संयम, पूजा, दान, चारित्र, ध्यान, पाठादि धर्म क्रिया करै, सो सर्व अनादर सहित करै। यह अभागी, धर्म भावना रहित पापाचारी, आर्त्त—रौद्र के विकलपन करि भस्या है हृदय जाका। ताकैं चोर—ज्वारीन का तौ आदर, आप जैसे पापी, पाखण्डी, सप्त व्यसनी, चोरन के सहाई, तिनका आदर करै। और महा लोभी, पर स्त्री इच्छुक, धन के लोभ कौं व पर स्त्री वश करवे कौं अनेक मन्त्र—तन्त्रन का साधन करै, तप करै, जप करै, सो महा आदर सूं करै। अरु कल्याणकारी धर्म क्रिया आदर बिना करै। ऐसी परणति का धारी, अशुभ कर्म का आस्रव करै। याका नाम अनादर क्रिया है। २०। आगे आरम्भ क्रिया कहिये है। तहां अपनी शक्ति तौ आरंभ करवै की नाहीं। तब और के किये पापारंभ, तिनकौं देख हर्ष करना। जैसे किसी के किये मन्दिर, गढ़, कोट, कूप, बावड़ी, सरोवर बनते देखि—महा आरंभ

देख, आप अनुमोदना करनी। तथा पर के व्याह में बड़ा आरंभ देखि, प्रसंशा करनी। इत्यादिक भावन तैं, अशुभ कर्म का आस्रव करै है। याका नाम आरंभ क्रिया है। २१। आगे परग्राहणी क्रिया कहिये है। तहां जे जीव लोभ के भरे, योग्य—अयोग्य नहीं गिनैं। ये लेने योग्य है, ये नहीं लेने योग्य है। ऐसा भेद, तीव्र लोभ के उदय नहीं विचारै। पर वस्तु अपने हाथ आवै, सो सब लेय। देव—धर्म का माल जो धर्म निमित्त का और भगनी—पुत्री का, भानजे का, इत्यादिक ये लौकिक निंद्य पर-द्रव्य है। सो जो महा लोभ सहित जीव होय है सो लोभी धर्म—अर्थ का भी द्रव्य, विषय में लगावै। बहिन—भानजे का धन लेय। इत्यादिक लोभी के हाथ आवै, सो तजै नाहीं। ऐसे पर माल ग्रहण रूप भावन का धारी, अशुभ कर्म का आश्रव करै। याका नाम परग्राहणी क्रिया है। २२। आगे माया नाम क्रिया कहिये है। तहां जे जीव पर जीवन के ठगवे कौं महा चतुर, अनेक युक्ति देय, अनेक विद्या कर पराया धन हरैं। अनेक कलान करि, अपने विषय—कषाय पोषण करैं। इत्यादि पाप कार्यन में तो प्रवीण होय हैं। और जे जिन भाषित, शुद्ध धर्म की क्रिया, तिनमैं मूरख समानि भोरा। जिन पूजा नहीं जानै, जो कैसे करैं व कैसे पढ़ैं हैं। भगवान् की स्तुति, नहीं करि जानैं। प्रभु का दर्शन, नहीं करि जानैं। जिनकी दया महा पुण्यकारी होय, ऐसे षट् काय जीव तिनके नाम—भेद नही जानैं। संसार—भ्रमण के जो स्थान च्यारि गति, ताका स्वरूप नहीं जानैं। आप जीव है सो आप कूं जीवत्व भाव नहीं जानैं। इत्यादिक कल्याणकारी धर्म सम्बन्धी बात—

क्रिया तौ नहीं जानै। ऐसे भाव का धारी जो पाप में चतुर, धर्म में मूढ़। सो पाप आस्रव करि, परभव बिगाड़ै है। याका नाम तेईसवीं माया क्रिया है।२३। आगे मिथ्या दर्शन क्रिया कहिये है। जो जीव आप मिथ्यात्व रूप क्रिया करै। औरन कूं उपदेश देय। जेसे आप तौ धन का लोभी, तथा मान—बड़ाई के अर्थ, मिथ्या देव—गुरु की सेवा करै। जो मोकूं धन देय, मोकूं पुत्र हाथी घोटक देय, इत्यादिक वस्तु के लोभ कौं मिथ्या—मारग सेवन करै। तथा और भोरे अज्ञानी जीवन कूं उपदेश देय, कुदेवादिक के अतिशय कौं कहै। कि ये देव प्रत्यक्ष वांच्छित देय है। हमने इनकी सेवा करी, सो हमें ऐसी वांच्छित वस्तु देय हमारी वांच्छा पूरी करी। इत्यादिक अतिशय जानि, देवादिक कूं आप सेवना, औरन कूं उपदेशना। सो ऐसे भावन तैं जीव, संसार दुख देनहारे पापकर्म, ताका आस्रव करैं हैं। याका नाम चौबीसवीं मिथ्या दर्शन क्रिया है। २४। आगे अप्रत्याख्यान क्रिया कहिये है। सो जे जीव अज्ञानता के योग तैं तथा परणामन की क्रूरता तैं, सर्व ही पाप कार्य करैं, कोई पाप का त्याग नाहीं। ते मूर्ख केई तो ऐसा कहैं, जो हम तौ भोरे हैं। हमकौं पाप नाहीं लागै। जो समझै हैं, ताकौं पाप भी लागै है। सो हम तौ कछू समझते नाहीं, जो पाप कहा होय है, अरु पुण्य कहा होय है? और केई जीव कहैं हैं कि जो हे भाई, पाप—पुण्य तो है ही नाहीं। तातैं भय काहे का? निशंक होय भोग सुख करना। केई प्राणी कहैं हैं। अरे, देख लेहैं जब मरेंगे तब, हाल तौ अपनी इच्छा होय सो करौ। मरतीबार धर्म सेय लेहैं। केई कहैं हैं,

कि जो तुम चाहौ सो करौ, पाप होय तौ याका फल हम कूं लागै। इन क्रियान तैं नर्क होय, तौ हमें होऊ। हे भाई, यहां ही वांच्छित नहीं मिलै, तौ नर्क है। और यहां ही सुख मिलै, तौ स्वर्ग है। तातें सुख तैं रहौ। हालही, छते सुख काहे कौं तजौ हौ? इत्यादि स्वेच्छाचारी होय, सर्व पाप करैं। योग्य–अयोग्य कछू विचार नाहीं। कोई पाप का त्याग नाहीं करैं। ऐसे भावन के धारी अशुभ आस्रव करैं। याका नाम पच्चीसवीं अप्रत्याख्यान क्रिया है। २५। इति पच्चीस क्रिया आस्रव की कहीं। आगे राजा श्रेणिक ने श्री गौतम स्वामी तैं प्रश्न किये थे तथा तीर्थंकर की माता तैं, देवाङ्गना ने प्रश्न किये थे तथा और अनेक शास्त्रन में धर्मी जीवन के प्रश्न प्रमाण, यहां पुण्य–पाप का फल प्रगट जानवे कूं, शिष्यन की प्रश्नमाला लिखिये है। तहां शिष्य, गुरु के पास विनय सहित होय, पुण्य–पाप के फल प्रगट जानवे कूं प्रश्नमाला की जो पंकति सो पूछै है। हे गुरुदेव जी! यह जीव अंधा कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही, जिन जीवन ने अन्य भव विषैं अन्य जीवन के नेत्र दुखाये होंय। पर के नेत्र फोड़े होंय। पर की आंख दुखती देख, सुखी भया होय। पर कौं अन्धा भया जान, अनुमोदना करी होय। अन्धे जीवन की हाँसि करि बहकाया होय। अन्धेन का धन, वस्त्र, छल–बल करि हरया होय। इत्यादिक पापन तैं जीव अन्धे होंय तथा नेत्र रहित तेइन्द्रिय आदि अंधे जीव उपजैं हैं। १। बहुरि शिष्य पूछै है। भो प्रभो! जीव बधरे कौन पाप तैं होंय? सो दया करि कहौ। तब मुनि कही, जे जीव अपने कानन तैं विकथा सुनि, हर्ष पाया

होय। सत्य वचन सुनि ताकूं असत्य कहा होय। झूठा वचन सुनि–जानि, ताहि सत्य करि, मान्या होय। तथा अपराधी चुगलन के मुख तैं असत्य–पापकारी वचन सुनि कैं, पर जीवन पर, दोष लगाय घर लूट्या होय। दण्ड कर दिया होय। घर, स्त्री, गज, घोटकादि खोंस लिये होंय। औरन के कान द्वेष–भाव करि छेदन किये होंय। तथा औरन कूं बधरे जानि कुवचन बोले होंय। तथा पर कूं बधरे जानि, ताकी हाँसि–कौतुक करि हर्ष मान्या होय। पराये दीनता के वचन न्याय रूप सुनि कैं, अनसुने किये होंय। तथा दीन आय–आय याचना रूप वचन कहैं तिन कूं सुनि, मान के जोर तैं जवाब नहीं दिया होय। तथा अन्य जीवन नैं आप कूं भला मनुष्य जानि विनय-वचन कहे, नमस्कारादि किया। तिनकौं, मानी होय, पीछे प्रति-उत्तर नमस्कारादि नाहीं कर्या। सुन्या–अनसुन्या किया होय। इत्यादि पापन तैं बधिरा होय है। तथा कान रहित चौइन्द्रिय होय है। २। पीछे और प्रश्न शिष्य करता भया। हे यतीनाथ! लूला कौन पाप तैं होय? तब यती कही। हे वत्स! जाने परभव में अपने हाथ तैं पर के पाँव तोड़े होंय। तथा दीन पशून कूं लाठी–लोठी मारि, दया रहित चित्त करि तिनके पाँव तोड़े होंय। तथा शस्त्र तैं दीन पशून के पाँव तोड़े होंय। पर कौं लूला–पग रहित जान, ताका वस्त्र बासनादि ले भागा होय। तथा पर के पाँव छेदतें आप खुशी भया होय तथा इस कौतुक कूं देख हर्षाया होय। तथा पर कौं लँगड़े जानि बहकाये होंय, ताकी हँसी करी होय। इत्यादि पाप तैं लँगड़ा होय।

तथा पाँव रहित, हलन–चलन रहित एकेन्द्रिय होय ।३। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ! मुख रहित तथा मुख सहित मूंका, कौन पाप तें होय? तब गुरु कही। हे वत्स सुबुद्धि! चित्त देय सुनि। जिन जीवन नें पर के मुख मूंदि, तिन्हें शस्त्र मारे होंय। तथा मुख में वस्त्र घालि, वचन बन्द करि, दुखी किया होय। तथा पर कों भले वचन बोलते देखि, ताकों मनै किया होय। तथा मुख पाय कें असत्य बोलि कें, अन्य जीवन का बुरा किया होय। तथा रसना इन्द्रिय का लोलुपी बहुत रह्या, ताके निमित्त अनेक जीवन की हिंसा करी होय। तथा अभक्ष्य वस्तु ता रसना तें बहुत भली लागी होय। तथा मुख करि अन्य जीवन कों कोप करि, श्वानादिक की नाईं काटे होंय। तथा और कूं मूंका देखि, तिनकी हाँसि करि, बहकाये होंय। तथा अन्य जीवन कूं प्रच्छन्न वचन, जामें वह नहीं समझे ऐसे वचन बोलि, दुर्वचन कहि कें हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पापन तें मूंका होय है। ४। तब फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ, यह जीव निर्धन कौन पाप तें होय? तब गुरु कही। भो वत्स! जिननें पर भव में अन्य जीवन का धन चोर करि, उन्हें निर्धन किया होय। तथा पर कों झूठा दोष लगाय, आपने जबरी तें ताका धन लूट, अन्य कों निर्धन किया होय। तथा पर कों भय देय, दुख देय, ताका धन छीन लिया होय। तथा धन जोड़वे कों अनेक स्वाङ्ग धरि, पराया धन ठगा होय। ऐसे अपराधी जीव, निर्धन होय हैं। तथा परकों धनवान् न देख सक्या होय। पर के घर में धन देखि, आप दुखी भया होय। तथा परकों धनवान् देखि

ताके धन खोवने कूं अनेक चुगली, राज-पंचन में करि, ताका धन नाश कराय, निरधन किया होय। तथा अन्य कूं धन की पैदायश कोई कार्य में जानि, ताके कार्य का घात किया होय। इत्यादिक पाप-भावन तैं प्राणी, भवांतर में निर्धन होय। तथा निर्धन होने के अनेक भेद हैं। जिननैं पराया-धन अग्नि में जलता देखि, हर्ष पाया होय। तथा आपने पराये-धन कौं अग्नि लगाय, निरधन किया होय। तौ तिस पाप तैं अपना धन अग्नि में जल, आप निर्धन होय। तथा पर-धन, जल में डूबता देखि–सुनि, हर्ष पाया होय। तथा अपनी दगावाजी तैं नदी–सरोवर में पराया धन डुबोय, पर कौं निरधन किया होय। तिस पाप तैं भवान्तर में आपका धन, नदी–सरोवर में डूबै, जहाज डूबै, नाव डूबै। ऐसे आप निरधन होय। तथा औरन के घर–नगर लुटे सुनि–देखि, आप सुखी भया होय। तौ आप भी ताकै फल तैं फौजनि सूं लुटि, निर्धन होय। तथा पर का धन, आपने जबरई लूट्या होय। तथा पर का धन चोरन तैं लुटता देखि तथा सुनि, आप हर्ष मान्या होय। ताकै पाप तैं भवान्तर में आप का धन चोरन तैं लुटि, आप निर्धन होय। इत्यादिक निर्धन होने के अनेक भेद हैं। जा–जा परणामन तैं पर कौं निर्धन वांच्छया होय, तथा जा–जा प्रकार पर कूं निरधन भये देखि, आप खुशी भया होय। तिस ही निमित्त पाय, आप निर्धन होय। ५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। भो गुरु-नाथ! यह जीव धनवान् कौन पुण्य तैं होय? तब गणधर नैं कही। हे भव्यात्मा, जिन

जीवन नैं निरधन पुरुष की दया करि, तिनकौं दान देय, धनवान् करि, सुखी किये होंय। तथा निर्धन जीव देखि, तिनकी दया करि धनवान् होना वांच्छा होय। तथा पर जीवन कूं धन की प्राप्ति भई सुनि, आप सुखी भया होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, आप धनवान् होय। ६। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। भो गुरु देव, यह जीव, पुत्र रहित कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जो जीव परभव में पर के पुत्र नहीं देख सक्या होय। पर जीवन कूं पुत्र की प्राप्ति भई सुनि, आपनैं दुख पाया होय। पर के पुत्र का मरण सुनि, आप सुखी भया होय। तथा पर-पुत्र देखि, हत्या चाह्या होय। इत्यादिक पापन तैं जीव, पुत्र रहित होय। ७। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ! यह जीव कौन पुण्य तें पुत्र सहित होय है? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन नैं भवांतर में पर जीवन कौं, पुत्र सहित देखि सुख मान्या होय। तथा पर कौं पुत्र की प्राप्ति सुनि, हर्ष पाया होय। तथा पर कौं पुत्र रहित आर्तध्यानी-दुखी, पुत्र का अभिलाषी देखि, ताकी दया भाव करि, ताकौं पुत्र होना वांच्छा होय। इत्यादिक पुण्य तैं पुत्र सहित होय। ८। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ! यह जीव कूं कुपूत पुत्र का संयोग, कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स, जिननैं पर पुत्र कूं बहकायवे में सहाय दी होय, उसे पाप कार्यन में लगाय, अनेक कुबुद्धि सिखाय, माता-पिता का अविनयी किया होय। ताकौं अनेक कुमारग लगाय, माता-पिता तैं युद्ध कराया होय। पुत्र के पास माता-पिता की निंदा करी होय। तथा

पर का सुपूत पुत्र देखि, ताकौं नहीं सुहाये होंय। तथा पर के पुत्र चोर, ज्वारी, कुशील आदि विशेष व्यसनी देख, आप हर्षवन्त भये होंय। पर कूं अनाचारी देखि, सुख पाया होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं, कुपूत पुत्र का संयोग होय है। ९। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे जगतपति! सुपूत पुत्र का लाभ कौन पुण्य तैं होय? तब गणधर ने कही। जिन जीवन ने पराये कुपूत–कुमारगी पुत्रन कौं अनेक शिक्षा देय, सुमारग लगाये होंय। अनेक नय–युक्ति करि, तिनकूं सुबुद्धि उपजाय, माता–पितान की आज्ञा में किये होंय। पर के सुपूत पुत्र देख, आप कूं सुख उपज्या होय। पर के सुपूत–पुत्रन के शुभ लक्षण देखि, तिनकी प्रसंशा करी होय। पुत्र कूं माता–पिता सूं विनयवान् देखि, आप हर्ष पाया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, सुपूत पुत्र का लाभ होय है। १०। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ, खोटी स्त्री, कौन पाप तैं पावै, सो कहो। तब गुरु कही। हे वत्स, जे जीव पर के घर में खोटी स्त्री-कलहकारणी देखि, सुखी भये होंय। तथा पर स्त्री–भर्तार में माया करि, कलह कराया होय। परस्पर द्वेष पाड़ि, आप हरषाया होय। पर के घर में सती, विनयवती, भली स्त्री देखि, आप कौं नहीं सुहाई होय। पर की भली स्त्रीन कौं देखि, तिनकी निंदा करी होय। इत्यादिक पापन तैं परभव में खोटी स्त्री पावै। ११। फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ! भली स्त्री कौन पुण्य तैं पावै? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा! जानै पर-स्त्रीन के अवगुण छुड़ाय, उन्हें गुणवती करी होय। तथा पर-स्त्रीन के शीलादिक गुण,

भरतार के विनय रूप देखि, जाकौं सुख भया होय। तथा पर-स्त्रीन के शील—गुण की रक्षा करी होय। तथा शीलवान् सती स्त्रीन की प्रसंशा करी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं शुभस्त्री पावै।१२। तब फेरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे नाथ, ये जीव संसार में अपमानी कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे भव्य, जिनने परभव में अनेक जीवन का मान खण्ड्या होय। तथा माता—पिता-गुरुजन का मान नहीं राखा होय। तथा देव—गुरु—धर्म का अविनय किया होय। तथा पर-जीवन कूं अल्प पुण्यी जानि, तिनका अनादर करि, पर जीवन कूं दुख उपजाया होय। तथा अपनी महिमा अपने मुख तैं करि, पर कौं निन्दे होंय। तथा आप कूं महन्त जानि, दीन जीवन कूं पीड़ा उपजाई होय। इत्यादिक पाप भावन तैं, पर-भव मैं अपमानी होय। १३। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरुदेव जी, जीव जग में कीर्तिवान् कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन ने अपने मुख तैं परभव में तीर्थंकर, चक्री, कामदेवादिक महा पुरुषन के गुण की कीर्त्ति करी होय। पर की कीर्त्ति सुनि, आप सुख पाया होय। पराये दोष देख, आपने दाबे होंय। तथा देव—गुरु—धर्म की महिमा, अपने मुख तैं करी होय। तथा माता—पितादि गुरुजन की विनय सहित, सेवा—चाकरी करी होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं कीर्त्तिवन्त होय है। १४। तब फेरि शिष्य मस्तक नमाय पूछता भया। भो त्रयज्ञानी ! इस जीव का सर्व कुटुम्ब दुख—दायक कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे शिष्य, जिननैं पर के कुटुम्ब में परस्पर साता देखि, आपने

दुख मान्या होय। पर के कुटुम्ब में कलह देखि, सुख पाया होय। तथा पर के घर में परस्पर भ्रातृ–स्नेह देखि, अपनी दगावाजी तैं झूठे वचन बनाय, इत के उत–उत के इत कहि, परस्पर द्वेष कराय, हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं सर्व कुटुम्बी-जन दुख-दायक होय हैं। १५। तब फेरि शिष्य पूछी। हे जगत पूज्य! सर्व कुटुम्ब, सुखदायक कौन पुण्य तैं होय है। तब गुरु कही। हे वत्स, हे आर्य, जाने और के कुटुम्ब में परस्पर द्वेष देखि, अपनी बुद्धि के बल करि, तिन का परस्पर स्नेह कराय, सुखी किये होंय। पर के कुटुम्ब विषैं परस्पर स्नेह देखि, सब कूं साता देखि, आपनैं हित पाया होय, आप सुखी भया होय। पर के कुटुम्ब सुखी करवे कूं, बहुत धन दिया होय। तन का कष्ट तथा बुद्धि के प्रकाश करि, पर के कुटुम्ब में साता करी होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, सर्व कुटुम्ब सुखदायक पावै। १६। बहुरि शिष्य पूछी। हे संघनाथ, शरीर विषैं रोग का समूह कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जाने परभव में कोऊ कौं औषधि दान देते मनैं किया होय। पर के शरीर में रोग देखि, सुखी भया होय। पर शरीर रोग रहित देखि, आप दुख पाया होय। तथा पर जीवन कूं, रोग वांच्छा होय। औरन के शरीर में रोग देखि, बहुत ग्लानि करी होय। तथा रोगी जीव देखि, तिन पै दया भाव नहीं किया होय। तथा अन्य जीवन के तन विषैं रोग बढ़वे कौं, दगावाजी तैं, अनेक वस्तु खुवा दई होय। तथा कबहूं, औषधि दान नहीं दिया होय। तथा पराये तन में रोग देखि, तिनकी हाँसि करि उन्हें

बहकाये होंय, तिनकी निन्दा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं रोगी-तन होय। १७। आगे शिष्य फेरि प्रश्न किया। भो प्रभो! ये जीव, निरोग शरीर कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स! जिन जीवन ने पूरव भव में सुपात्रन के तन में रोग की बाधा देखि, भोजन समय प्राशुक औषधि देय, साता उपजाई होय। तथा दीन-दुखितन के तन में रोग देखि, करुणा भाव करि, रोग नाशने कूं औषधदान दिये होंय। तथा परके शरीर में रोग देख, अनुकंपा करी होय। तथा पर का निरोग शरीर देखि, सुखी भया होय। तथा पराये शरीर में रोग देख, ग्लानि नहीं करी होय। तिनकी दया करि, साता वांच्छी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, रोग रहित शरीर होय है।१८। फेरि शिष्य पूछी। हे गुरु नाथ! क्रूर परणामी, दुरजन-स्वभाव, जीवन में कौन कर्म के उदय तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, जे जीव दुराचारी, नरकन के निवास तैं बहुत काल दुख भोगि, निकसैं होंय। सो नरक का आया प्राणी, पूरव पाप तैं, महा क्रोधी, दुराचारी, क्रूर परणामी होय। तथा पूर्व भव में मनुष्यायु का बन्ध करि, पीछे कुसंग का निमित्त पाय, महा क्रूर हिंसा मई वर्त्या होय। सो जीव पूर्वली वासना सहित, दुराचारी होय, क्रोधी होय। तथा जाका परभव बुरा होय। इत्यादिक कर्म चेष्टा तैं, क्रूर परणामी होय है। १९। तब फेरि शिष्य पूछी। हे गुरो। सज्जन भाव सहित जीव, कौन पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही। हे वत्स, जो जीव देवगति आदि शुभ गति तैं आया होय। सो जो पूरव-भव की भली चेष्टा थी सो

इत्यादिक खावने विषैं अंतराय किया होय । तिनकूं भली वस्तु द्वेष–भाव करि, खावने नहीं दई होय । औरन कौं सूखी–रूखी, कोरी–रस रहित खावता देखि, आप खुशी भया होय । औरन कौं सुख तैं खान–पान करते देख, नहीं सुहाया होय । औरन कूं भूखे–प्यासे देख, तिनकी हाँसि करी होय, दुर्वचन कहि दुखी किये हौंय । आप रसना इन्द्रिय का लोलुपी होय, नाना प्रकार भोग वस्तु भोगी होय । अपने विषय–पोषने कौं नानाप्रकार छल–बल दगाबाजी करि रसनादिक के विषय भोग, सुख मान्या होय । तथा पर का भोजन, श्वान–मार्जारादि पशू ले गये देख, आप सुखी भया होय । इत्यादिक पापन तैं छती (उपस्थित) वस्तु, भोग में नहीं आवै । और कदाचित् लोभ का मास्या, दुग्धादि भली वस्तु खाय ही, तो रोग वधै, दुखी होय । तातैं अन्तराय कर्म के उदय, भली वस्तु नहीं पचै है । ३५ । और शिष्य प्रश्न किया । हे सुखमूर्ति ! जाके घर में सुन्दर स्त्री, वस्त्र, आभूषण, घोटक, रतनादिक भली वस्तु उपभोगयोग्य पाईये और भोग नहीं सकै । सो यह कौन पाप का फल है, सो कहौ । तब गुरु कही । जिन जीवन कौं परभव विषैं, पराये हस्ती, घोटक, स्त्री, वाहनादि उपभोग योग्य पदार्थ सुंदर देख कैं, आप कौं नहीं सुहाये हौंय । तिनके भले पदार्थ देख, छल–बल करि, लूट लिये हौंय । भय देय, जोरावरी खोंस लेय, आप भोगे हौंय । पराये भले पदार्थ उपभोग योग्य देख, जाकौं नहीं सुहाये हौंय । पराये घर में भली वस्तु, रतन, हस्ती आदि देख, भय बताया होय कि जो ये भली वस्तु राज में छिना देहौं ।

बहकाये होंय, तिनकी निन्दा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं रोगी-तन होय। १७। आगे शिष्य फेरि प्रश्न किया। भो प्रभो! ये जीव, निरोग शरीर कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स! जिन जीवन ने पूरव भव में सुपात्रन के तन में रोग की बाधा देखि, भोजन समय प्राशुक औषधि देय, साता उपजाई होय। तथा दीन—दुखितन के तन में रोग देखि, करुणा भाव करि, रोग नाशने कूं औषधदान दिये होंय। तथा परके शरीर में रोग देख, अनुकंपा करी होय। तथा पर का निरोग शरीर देखि, सुखी भया होय। तथा पराये शरीर में रोग देख, ग्लानि नहीं करी होय। तिनकी दया करि, साता वांछी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, रोग रहित शरीर होय है।१८। फेरि शिष्य पूछी। हे गुरु नाथ! क्रूर परणामी, दुरजन—स्वभाव, जीवन में कौन कर्म के उदय तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, जे जीव दुराचारी, नरकन के निवास तैं बहुत काल दुख भोगि, निकसै होंय। सो नरक का आया प्राणी, पूरव पाप तैं, महा क्रोधी, दुराचारी, क्रूर परणामी होय। तथा पूर्व भव में मनुष्यायु का बन्ध करि, पीछे कुसंग का निमित्त पाय, महा क्रूर हिंसा मई वर्त्या होय। सो जीव पूर्वली वासना सहित, दुराचारी होय, क्रोधी होय। तथा जाका परभव बुरा होय। इत्यादिक कर्म चेष्टा तैं, क्रूर परणामी होय है। १९। तब फेरि शिष्य पूछी। हे गुरो। सज्जन भाव सहित जीव, कौन पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही। हे वत्स, जो जीव देवगति आदि शुभ गति तैं आया होय। सो जो पूरव-भव की भली चेष्टा थी सो

ताही कूं लिये, दया—भाव के फल तैं महान् पुरुषन की संगति पाय, तामें भले उपदेश सुनि सज्जन स्वभावी होय। तथा पर-जीवन की सज्जनता देखि, हर्ष पाया होय। बड़े गुरुजन की सेवा-चाकरी-सुश्रूषा करी होय। इत्यादि पुण्य तैं सज्जन स्वभावी होय। २०। तब फेरि शिष्य पूछी। हे गुरो, ये जीव समता भावी कौन पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही। हे धर्मार्थी, सुनि। जे भव्य जीव, परभव में मुनि—श्रावकन की शांत मुद्रा देखि, हर्षे होंय। तथा जिनेन्द्र देव की शांत मुद्रा देखि, पद्मासन कायोत्सर्ग मुद्रा देखि, जिनने अनुमोदना करी होय। तथा परजीवन के क्रूर वचन सुनि कैं, समता धर, तिन पर क्रोध—भाव नहीं किये होंय। औरन की क्रूरता देखि, आपने तिन पै दया करी होय। तथा संसार की विटंबना देखि, संसार तैं उदास भये होंय। तथा धन—तनादि संपदा—सामग्री चंचल देखि, राग—द्वेषादि भाव दुखदाता जानि, क्रोध—मानादि तजि, मन्द कषाय रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं समता भाव प्रगट होय है। २१। तब फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे जगत गुरु! यह जीव धर्मात्मा कौन पुण्य तैं होय? तब दयालु भाव सहित गुरु ने कही। हे भव्यात्मा, हे भद्र परणामी, जिन जीवन नैं परभव में महा समता भाव राखे होंय। धर्मात्मा जीवन कौं धर्म सेवन करते देख अनुमोदना करि, पुण्य उपाया हो। तथा अनेक जीवन पै दया भाव किये होंय। तथा धर्म उत्सव देखि, हर्ष पाया होय। तथा धर्म के अनेक भेद हैं। सो जिस जाति के धर्म अङ्ग देखि, आप कों अनुमोदना उपजी होय। तिस ही जाति के धर्म अङ्ग का लाभ,

परभव में जीव कौं होय है। सो ही कहिये है—जिस जीव ने परभव विषैं और धर्मात्मा जीवन कौं तप करते देखि, हर्ष किया होय। तपस्वी पुरुषन की सेवा—चाकरी करी होय। तप कौं उत्कृष्ट सुखदाता जानि, ताके करवे की अभिलाषा करी होय। इत्यादिक तप—अङ्ग की अनुमोदना के फल तैं भवांतर में, तप धर्म का लाभ पावै। बहुरि जिनने औरन कौं भगवान् की पूजा व स्तुति करते देखि, अनुमोदना करी होय। तथा भगवान् के भक्त जन देखि, तिन में प्रीति—भाव करि तिनकी सेवा—चाकरी करि होय। आप कौं भगवान् की पूजा करवे का अभिलाष, बहुत रह्या होय। इत्यादिक पूजा की अनुमोदना चाहि-रूप भाव-पटल तैं भवांतर में प्रभु की पूजा के भाव होंय। पूजा धर्म-अङ्ग पावै। और जिन जीवन नें परभव में अन्य जीवन कूं नियम-आखड़ी करते देख, तथा घृत-दुग्धादि रसन कौं त्याग करते देख, तथा ताम्बूल वस्त्रादि परिग्रह के प्रमाण करते देखि, तथा दया भाव सहित प्रवृत्ति देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा अन्य कूं संयमी देखि, संयम की अभिलाषा की होय। इत्यादिक संयम की अनुमोदना के फल तैं, भवांतर में संयम-संपदा पावै। और जिननैं परभव में और जीवन कौं सिद्ध क्षेत्र यात्रा कूं गमन करते देख तथा सिद्ध क्षेत्र बन्दना के निमित्त संघ जाते देखि, ताकी अनुमोदना करी होय। तथा सिद्ध क्षेत्र यात्रा करवे की अभिलाषा रही होय। तथा सिद्ध क्षेत्र यात्रा करवे वारौं की सहायता करि, साता उपजाय सुखी किये होंय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं, भवांतर में सिद्ध क्षेत्र यात्रा का बहुत लाभ होय। और परभव में

आचार्यन कौं उपदेश देता देख, तिन धर्मी पुरुषन का उपदेश सुनि, तिनके ज्ञान की शान्ति-भावन की, प्रसंशा करी होय। धर्म के उपदेश दाता की भक्ति करि, आनन्द मान्या होय। इत्यादिक भावन तैं धर्मोपदेश देने का उत्तम ज्ञान पाय, अपना तथा पर जीवन का कल्याण करै है। ऐसे धर्म अंगन के अनेक भेद हैं। सो जा-जा धर्म-अंग का सहाय किया होय, अनुमोदना करी होय, ताही धर्म-अंग का लाभ होय। धर्म का फल उपजावै। २२। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ, यह जीव बलवान् कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। हे भव्य, जिन जीवन नैं परभव विषैं दीन-जीवन की दया करि, रक्षा करी होय। तथा अशक्त जीवन कौं देखि, तिन पै दया भाव करि, तिनके दुख मैट, सुखी करवे कौं अनेक उपाय करि, रक्षा करी होय। निर्बल जीवन कौं भले भोजन-पान देय, दया भाव करि सुखी किये होंय। नंगेन कूं को वस्त्र, रोगीन कौं औषधि देय, पुष्ट किये होंय। औरन कौं अनेक साता उपजाय, रक्षा करी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, जीव भवान्तर विषैं बलवान् होय। २३। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ, हे यति पति, यह जीव निर्बल कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन ने पर जीवन का खान-पान बन्द करि, निर्बल करि डारे होंय। तथा दीन जीव बल रहित देख, तिन की हाँसि करि, तिनकौं लज्जावान् किये होंय। तथा बल रहित जीवन कौं मारे होंय, बांधे होंय, लटकाए होंय। आपकौं बलवान् जानि, अपने बल-मद आगे औरन कौं बल रहित जानि, अनेक भय उपजाय, दुखी किये होंय।

तथा अपने बल मद के आगे, सिंह-हस्ती की नाईं, मदोन्मत्त वर्त्या होय । अन्य जीवन का बल देख, आपने द्वेष-भाव किया होय। इत्यादिक पापभावन तैं बल रहित होय है।२४। फेरि शिष्य पूछी। हे नाथ ! यह जीव भयवान् कायर-चित्त का धारी, कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, सुनि। जिन जीवन नैं पर-जीवन कौं अनेक भय उपजाये हौंय। प्राण नाश का भय देय, कंपायमान करे हौंय। धन नाश का भय दिया होय। घर लूटवे का भय दिया होय। तथा ताकी आबरू-खंडवे का भय दिया होय। तथा घर के मनुष्य पकड़वे का भय दिया होय। तथा राजपंच का भय बताय, भयवंत किये हौंय। तथा चोर, सिंह, हस्ती इन आदि पशून का भय देय, दुखी किये हौंय। तथा रण तैं भागते भयवन्त दीन जीव, तिन की हाँसि करी होय। तथा औरन कौं भयवन्त-कायर देख, आप हर्षवन्त भया होय। इत्यादिक दया रहित भावन तैं कायर होय है।२५। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरो, यह जीव शूरवीर-निर्भय कौन पुन्य तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन नैं परभव में दीन-जीवन कौं अभयदान दिया होय। करुणा करि, परजीवन की रक्षा करी होय। तथा किसी जीव ने काहू दीन-दुखी जीव कौं भय बताय, दुखी किया होय। ताकौं देख आप दया भाव करि, अपने भुजबल तैं दीन कौं दुष्ट तैं बचाय, सुखी करि, भय रहित किया होय। तथा त्रस-स्थावर जीवन पै दया-भाव राखे हौंय। तथा अनेक जीवन कूं राज, पंच, दुष्ट, सिंहादि जीव तिनके उपद्रव तैं बचाय, निर्भय किये हौंय। तथा

भयवन्त जीवन के, दया भाव करि स्थिर–भाव किये होंय। तथा भय रहित सुखी जीवन कूं देख, आपकूं सुख भया होय। इत्यादिक शुभ भावन के फल तैं, निशंक चित्त का धारी शूरवीर होय है। २६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी! यह जीव उदारचित्त सहित दातार कौन पुन्य तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, जिन जीवननैं, पर जीवन कौं सुपात्र दान देते देख, अनुमोदना करी होय। तथा दीन दुखित–भुखित देख, तिन जीवन कौ तानैं दया करी होय। तथा दान देने की बहुत अभिलाषा करी होय। तथा धर्म निमित्त धन देते, सुख पाया होय। इत्यादिक शुभ भाव तैं उदार चित्त सहित दाता होय है। २७। बहुरि फेरि शिष्य कही। हे यति पति, यह जीव सूंम किस कर्म के उदय करि होय, सो कहो। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में कोई जीव कूं दान देते, मनैं किया होय। औरन कौं धन खर्चते देख, आपने दुख मान्या होय। पर भव में नाना कष्ट पाय, धन जोड़ि कर, आप नहीं खाया, नहीं औरन कूं खुवाया, अरु और धन जोड़वे की अभिलाषा रही होय। अत्यंत तीव्र तृष्णा के भावन में मरण किया होय। तथा औरन के दान की निंदा करी होय। इत्यादिक पाप–भावन तैं सूमता सहित लोभी होय। २८। फेरि शिष्य पूछी। यह जीव पण्डित कौन कर्म तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन नैं पर-भव में विद्या का दान दिया होय। औरन कूं पण्डित–विद्यावान् जीव देख, तिनकी सेवा–चाकरी करी होय। अज्ञानी जीवन की संगति तैं, जिन के अरुचि रही होय। जो धर्म शास्त्रन के वेत्ता हैं, ति-

नकी स्तुति करी होय। तथा धर्म शास्त्रन कौं आप लिखे, तथा घर—धन खरच के लिखाय, धर्मात्मा—जीवन के पठन—पाठन कौं दिये हौंय। तिन शास्त्रन के उपकरण जो पूठा—बंधना उत्तम कराये हौंय। तथा शास्त्राभ्यास करवे की, बहुत अभिलाषा रही होय। तथा अन्य विद्या अभिलाषी, भव्य जीवन कौं, धर्म शास्त्र का ज्ञान कराया होय। इत्यादिक पुण्य—भावन तैं पण्डित होय।२६। और फिर शिष्य पूछी। हे नाथ! हे तपोधन! यह जीव मूरख कौन पाप तैं उपजै है? तब गुरु कही। जिन जीवन नै पण्डितन की हाँसि करी होय। तथा धर्म शास्त्र के सुनवे में तथा पढ़वे में अरुचि भाव किये हौंय। तथा धर्म शास्त्र चुराये हौंय। तथा तिनके बंधन—पूठे चुराये हौंय। तथा धर्मार्थी पण्डितन तैं द्वेष—भाव किये हौंय। इत्यादिक पापन तैं मूरख होय। ३०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पराधीन कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्य, जिन जीवन नै परभव में पर जीवन कौं बंदी में राखे हौंय। तथा अन्य जीवन कूं तुच्छ धन देय, अपने वशीभूत राखे हौंय। तथा कर्जादिक के आवने करि, निरधन जीवन कूं रोके हौंय। तिनकौं तुच्छ—अल्प अन्न—जल देय, अपने वश राखे हौंय। तथा बलात्कार—जोरावरी करि, पर-जीवन कौं अपने आधीन राखे हौंय। तथा पराधीन जीवन की हाँसि करी होय। तथा पशून कौं राखि, तृण—जलदेने में प्रमादी रह्या होय। इत्यादिक पापन तैं पराधीन होय। ३१। बहुरि शिष्य पूछी। हे प्रभो, यह जीव स्वाधीन कौन पुण्य तैं होय। तब गुरु कही। जिन जीवन नें परभव में अन्य कौं

खान–पान देय, कुटुम्ब सहित तिन की स्थिरता करी होय। तथा दीन जीवन कौं खान–पान देय, साताकारी वचन कहि, तिनकौं निराकुल किये होंय। तथा पराधीन जीव देखि, ताकौं अनुकम्पा उपजी होय। पर जीवन कूं स्वाधीन–सुखी देख, आप साता पाई होय। इत्यादिक पुण्य तैं स्वाधीन होय है।३२। बहुरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो, यह जीव कुरूप किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही भो भव्यात्मा, जिन जीवन कौं परभव में पराये रूप की महिमा नहीं सुहाई होय। तथा कोई पाप-उदय तैं जो रूप रहित भया होय, तिन जीवन के तन की ग्लानि करी होय, सो जीव कुरूप होय। तथा कुरूप मनुष्य देखि, ताकी हाँसि करी होय। तथा पराया भला रूप देख ताकौं दोष लगाया होय। तथा पराये भले रूप कूं विभूति–धूल–कर्दमादि लगाय, विपरीत करि डार्या होय। इत्यादिक भावन तैं कुरूप होय। ३३। बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञानमूर्ति ! ये जीव रूपवान् कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन नैं परभव मैं पर जीवन का रूप देख, निरविकार चित्त किये देख, सुख मान्या होय। तथा पर-जीवन कूं रूप के योग तैं अनादर पाया देख तिनकी दया करि, रूपवान् होना वांच्छया होय। धर्म का सेवन करि, रूपवान् होना वांच्छया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं रूपवान् होय है। ३४। तब फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे धर्ममूर्ति, यह जीव पुण्य के उदय करि अनेक भोग्य वस्तु मिली तिनकौं भी नहीं भोग सकै, सो यह कौन पाप का फल है ? तब गुरु कही। जिन जीवन नें परभव में अन्य जीवन कौं अन्न, जल, मेवा, पान, मिठाई

इत्यादिक खावने विषैं अंतराय किया होय। तिनकूं भली वस्तु द्वेष–भाव करि, खावने नहीं दई होय। औरन कौं सूखी–रूखी, कोरी–रस रहित खावता देखि, आप खुशी भया होय। औरन कौं सुख तैं खान–पान करते देख, नहीं सुहाया होय। औरन कूं भूखे–प्यासे देख, तिनकी हाँसि करी होय, दुर्वचन कहि दुखी किये हौंय। आप रसना इन्द्रिय का लोलुपी होय, नाना प्रकार भोग वस्तु भोगी होय। अपने विषय–पोषने कौं नानाप्रकार छल–बल दगाबाजी करि रसनादिक के विषय भोग, सुख मान्या होय। तथा पर का भोजन, श्वान-मार्जारादि पशू ले गये देख, आप सुखी भया होय। इत्यादिक पापन तैं छती (उपस्थित) वस्तु, भोग में नहीं आवै। और कदाचित् लोभ का मार्या, दुग्धादि भली वस्तु खाय ही, तौ रोग वधै, दुखी होय। तातैं अन्तराय कर्म के उदय, भली वस्तु नहीं पचै है। ३५। और शिष्य प्रश्न किया। हे सुखमूर्ति ! जाके घर में सुन्दर स्त्री, वस्त्र, आभूषण, घोटक, रतनादिक भली वस्तु उपभोगयोग्य पाईये और भोग नहीं सकै। सो यह कौन पाप का फल है, सो कहौ। तब गुरु कही। जिन जीवन कौं परभव विषैं, पराये हस्ती, घोटक, स्त्री, वाहनादि उपभोग योग्य पदार्थ सुंदर देख कैं, आप कौं नहीं सुहाये हौंय। तिनके भले पदार्थ देख, छल–बल करि, लूट लिये हौंय। भय देय, जोरावरी खोंस लेय, आप भोगे हौंय। पराये भले पदार्थ उपभोग योग्य देख, जाकौं नहीं सुहाये हौंय। पराये घर में भली वस्तु, रतन, हस्ती आदि देख, भय बताया होय कि जो ये भली वस्तु राज में छिना देहौं।

कहै कि ये वस्तु राजा देखेगा, तौ खोंसेगा। इत्यादिक पाप तैं, अच्छी वस्तु नहीं भोग सकै है ।३६। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरो, ये जीव तीव्र क्रोध का धारी किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स, जा जीव नैं परभव में क्रोधी जीवन कूं क्रोध करते देखि, भले जानें होंय। तथा पर जीवन तैं युद्ध करवे का जाका स्वभाव, परभव में बहुत रह्या होय। तथा पर कूं युद्ध करते देखि, सुख मान्या होय। तथा परभव में आप सिंह, सुअर, श्वान, सर्प, भीलादि की पर्याय धारि, पर जीव अनेक पीड़े होंय। तथा समता भाव के धारी धर्मात्मा तिनकौं देखि, तिनके समभावन की निंदा करी होय। शान्त परणाम जीवन की हांसि करी होय। इत्यादिक पापन तैं महा क्रोधी होय। ३७। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो, यह जीव आप तौ मान चाहै, अरु मान नहीं रहै। सो ये किस पाप का फल है, सो कहौ। तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, जिन जीवन नैं पर जीवन का मान नहीं राखा होय। तथा अपने तन, धन, यौवन, राज, हुकुम, बल इत्यादिक के गर्व करि, अन्य जीवन का अनादर किया होय। तथा आप कौं भला मनुष्य जानि और जीवन नैं शीश नमाये, सो तिनकौं शीश नमाते देखि, अपने मान—भाव तैं पर कौं तुच्छ जानि, पीछा शीश नहीं नमाया होय। तथा गुरुजन की आज्ञा तैं प्रतिकूल होय स्वच्छंद वर्त्त, बड़ेन की आज्ञा खण्डी होय। तथा दीन जीवन कों जोरावरी भय देय, अपने पाँयन नमाये होंय। तिनके मान खण्ड किये होंय। तथा कहीं किसी का मान खंड भया सुनि, आप सुख पाया होय। इत्यादिक क्रूर भावन तैं अप-

मानी होय, मान चाहै अरु ना रहै। ३८। बहुरि शिष्य ने प्रश्न किया। भो दयासागर ! यह जीव अपना मान नहीं कराया चाहै, अरु बिना चाहे ही और जीव आय-आय मस्तक नमावैं, आज्ञा मानैं, सेवा करैं। सो ऐसी महिमा कौन पुण्य तैं होय, सो कहो। तब गुरु कही। हे भव्य, सुनि। जिन जीवन नैं परभव विषैं, महा भक्ति करि शुभ भावन तैं देव-धर्म-गुरु की सेवा-पूजा, विनय सहित मस्तक नमाय करी होय। ताके फल तैं ताकी सेवा देव करैं, ऐसा इन्द्र होय। तथा मनुष्यन का इन्द्र चक्री होय, तथा अर्ध चक्री होय, तथा अनेक राजान करि वन्दनीक महामण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर राजा होय। इत्यादिक पद के धारी पृथ्वीपति होंय। तिनकौं बड़े-बड़े महंत राजा, स्वयमेव ही भक्ति सहित, शीश नमावैं हैं। तथा जिन जीवन नैं परभव में गुरु-जन जो माता-पिता, तिनकी सेवा करवे कौं बारम्बार शीश नमाय, विनय तैं चाकरी करी होय। ताके पुण्य तैं सर्व कुटुम्ब के आज्ञाकारी रहैं, सर्व में आदर पावै। तथा जिसने परभव में अन्य जन, अपनी वय तैं बड़े पुरुष तिनका विनय करि, मान राख, साता उपजाई होय, आदर किया होय। सो जीव बड़े-बड़े वय के धारी पुरुषन के बंदवे-सराहवे योग्य हैं। आप तैं बड़ी-बड़ी उमर करि सहित जीव आय-आय शीश नमावैं, मान राखैं, ऐसा होय। तथा जो विवेकी, संसार रचना का जाननहारा, धर्म शास्त्र का पाया है रहस्य जानैं, यथायोग्य विधि वेत्ता, सो जिसने बल, कुल, धन, बुद्धि, वय इत्यादिक करि जे छोटे, तिन सब का यथायोग्य विनय करि, सत्कार करि, साता

उपजाई होय। तिन सब का मान राखा होय। सो जीव जगत में प्रसंशा पाय, सर्व करि पूज्य होय। ताकौं जगत–जीव स्वयमेव ही आय–आय शीश नमावैं, याका मान राखैं, ऐसा पदधारी होय। तथा जानैं कोऊ ही जीव का मान खण्डन नहीं किया होय। पर जीवन कूं अनेक आदर करि सुखी किये होंय। इत्यादिक शुभ भावन के फल तैं ऐसा पद पावै, जो आप तौ अपना मान नहीं चाहै, अरु अन्य जीव अपनी इच्छा तैं यातैं स्नेह करि आय–आय शीश नमाय, आदर करैं। ऐसा जानना। ३९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु नाथ जी ! यह जीव दगावाज–मायावी कौन पाप तैं होय, सो कहो। तब गुरु कही। हे वत्स, दगावाज के अनेक भेद हैं। सो जिस जीव नैं परभव में पराये भले तप कौं देख, दोष लगाय, ताकी निंदा करी होय। तौ वह पाप के फल तैं भवांतर में जब कबहूँ मनुष्य होय तप धारण करै, तौ मान के अर्थ करै। अंतरंग में धर्म–चाह नहीं रहै। लोगन में पुजावे कौं, दगावाजी भाव करि तपस्वी होय। ताके तप में दगा होय। प्रच्छन्न भोजन लेय, अरु औरन कौं तप–अनशन बतावै। इत्यादिक तप पावै, तौ दगा सहित तपस्वी होय। और जिन जीवन ने पराये भले दान में दोष लगाय, दगा करि निंदा करी होय। सो जीव इस पाप तैं भवांतर में जब कबहूँ मनुष्य होय दान देय, तौ दगा सहित दान का देनेहारा होय। आप दान देय, सो लोगन कौं तौ बहुत द्रव्य बतावै, अरु आप थोड़ा ही धन दान देय। लोक जानैं, याका दान दगावाजी लिये है। सो निंदा पावै। वस्त्र देय, तौ

जीर्ण तौ देय, कहै बड़े—बड़े मोल के नूतन वस्त्र दिये। इत्यादिक पाप भावन तैं, दान में दगा करनेहारा होय। और जिन जीवन नैं परभव में पराये भले धर्म, पूजा, सामायिक, ध्यान, अध्ययनादि अनेक धर्म अङ्ग हैं तिनकूं देख, शुद्ध धर्म अङ्गन कौं दोष लगाया होय, ताकै पाप फल तैं भवान्तर में कबहूं मनुष्य उपजैं तौ ऐसे होंय, कि धर्म का सेवन करैं तौ भाव रहित करैं। प्रभु की पूजा करैं, तौ भाव रहित करैं। अल्प धन लगावैं, लोगन कौं कहैं हमने बड़ा धन लगाया है। और घर में धन होतैं भी, धर्म कार्य में धन का काम पड़ै तौ अपनी दगावाजी—चतुराई तैं, अपना निरधनपना बताय, घर का दुख बतावैं। धर्म में धन नहीं खरचैं। ता पाप—फल तैं, धन रहित, धर्म विषैं दगावाज होंय। और जाने परभव में पराये ध्यान कौं दोष लगाय, हाँसि करी होय। सो ताके पाप तैं भवान्तर में दोष सहित, ध्यान का धारी होय। बगुला की नांईं कुध्यानी होय। धर्म—अंग सेवन करै, सो दगा सहित करै। तथा परभव में दगा सहित धर्म के सेवनेहारे तिनके पाखंड देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जीव धर्म—दगावाजी करनेहारा होय। और जिन जीवन ने परभव में अन्य जीवन कौं कुटम्ब तैं दगावाजी करते देख, सुख पाया होय। ते जीव भवान्तर में कुटुम्ब तैं, दगावाजी करनेहारे उपजैं। और जिननैं परभव में दगावाजी सहित आजीविका पूरी करते देख, तिनकी माया की प्रसंशा करी होय, सुख पाया होय। सो जीव भवान्तर में अपनी

आजीविका दगावाजी तैं पूरी करैं, ऐसे होय। और दगावाजी के अनेक भेद हैं। सो परभव में जैसा दगा, भला लागा होय। तैसा ही दगावाज उपजै है। इत्यादिक भले धर्म कार्यन कौं जैसी दगावाजी के कार्य जानें होंय। तैसी ही जाति का धर्म–दगावाज उपजै है। तथा जैसे कर्म कार्यन कौं दोष दिये होंय, तिस जाति का कर्म कार्यन में दगावाज उपजै है।४०। बहुरि फेरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो, यह जीव चोर कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। परभव में चोरन को भले जानें होंय। तथा चोरन तैं व्यापार करि, तिनका बड़ा नफा खाय, चोरन तैं हित किया होय। तथा चोरन का सहकारी होय, पराये धन हराये होंय। अपने मन में पराये धन चुरावे की अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जीव, चोर उपजै है। ४१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह हिंसा का करनहारा जीव, कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। जिननें परभव में हिंसा भली जानी होय। तथा हिंसक जीवन कूं हिंसा करते देख, तिनकी अनुमोदना करी होय। तथा परभव में हिंसा करवे की अनेक कला-चतुराई सीखी होय। तथा परभव में आपने अनेक हिंसा के उपकरण बनाये होंय। तथा तीर, तुपक, जाली, फन्दा, चेप, गुलेल, सेल्ह, बर्छा आदि अनेक शस्त्र राखि, आप सुख पाया होय। तथा शस्त्रन के उज्ज्वल करवे की, तीक्ष्ण करवे की चतुराई परभव में करी होय। तथा परभव मैं शस्त्र बेंचे होंय, बनाये होंय। इत्यादिक पाप तैं परभव में शस्त्र तैं मरै तथा आप हिंसक होय। ४२। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे जगत गुरो, यह जीव क्रिया रहित अनाचारी किस पाप तैं होय ?

जाकौं खान–पान की सुधि नाहीं, विकल भाव सहित सदीव रहै। सो कौन पाप का फल है ? तब गुरु कही। जिनने परभव मैं शुभ आचारी जीवन की निंदा करी होय। तथा भला आचार देख जाकौं नहीं सुहाया होय। तथा आचार करवे में प्रमादी रह्या होय। तथा परभव में पराई जूंठी खाय, सुख मान्या होय। तथा आगे परभव, पशु पर्याय में–श्वानादि की पर्याय में अशुभ भक्षण करे होंय। तथा सिंह की पर्याय में तथा और पशून की पर्याय में जहां खाद्य–अखाद्य का भेद नाहीं जान्या, तहां विचार रहित वरत्या होय। तथा औरन कों अभक्ष्य वस्तु खावते देख, आप सुखी भया होय। तथा अनाचारी जीवन में विशेष रह्या होय। तथा अनाचारी जीवन की प्रसंशा करी होय। तथा और का अनाचार देख, आपकौं अनाचार करवे की अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पापन तैं पशु होय तौ श्वान, वायस, गर्दभ आदि अशुभ भक्षक की पर्याय धरै। तथा मनुष्य होय तो भीलादि नीच कुली होय। कदाचित् ऊंच कुली होय, तौ शूद्र समान अनाचारी होय। ४३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव शुभ आचारी कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिनकूं परभव में अनाचार-प्रक्रिया देख कैं ग्लानि उपजी होय। तथा भला आचार सहित, दयामई प्रवृत्ति देख, हर्ष मान्या होय। तथा परभव में भले सुआचारी क्रियावंत पुरुषन की संगति रही तथा भली लागी होय। तथा अभक्ष भक्षण तैं अरुचि भाव रहे होंय। और जिनकूं कुशब्द भले नहीं लागे होंय। और सप्त व्यसनादि अनाचार देख, तिन कूं कुफल-

दायक जानि, तजे होंय। और पराये दान, पूजा, शील, संयम, तप, व्रत, दयामई आचार देख, तिनकी अनुमोदना करी होय। तथा परभव में आप कूं शुभाचार भले लागे होंय। तथा भले आचार करवे की आप कूं इच्छा भई होय। इत्यादिक शुभ परणामन तैं शुभाचारी होय।४४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, संसार में भाई समान वल्लभ नाहीं। सो ऐसे भाई-भाई में परस्पर द्वेष कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। भो भव्य! सुनि। जिनने परभव विषैं एक माता के गर्भ में निकसे दोऊ भाईन का युगल, तथा हस्ती, घोटक, भैंसा, श्वान, मीढ़े, तीतुरि, लाल, मुनैयां, मुर्गा, मोर, तथा मनुष्य इत्यादिक दुपद, चौपद, भूचर, नभचर, पशु-मनुष्यन के युगल तिनकौं कौतुक के हेतु तथा द्वेष भाव करि तिनकूं परस्पर लड़ाये होंय। तथा कोई दो भाइयों को परस्पर लड़ते देख, सुख मान्या होय तथा कोई दोय भाईन में स्नेह देख, नहीं सुहाया होय। तथा अपनी चतुराई करि, बीच में माया-दगाबाजी करि, दोय भाईन कौं परस्पर लड़ाय दिये होंय। तथा कोऊ कौं खोटी सलाह देय, परस्पर दोय भाईन में द्वेष पाड़ि दिया होय। तथा कोई की, भायन में दोष करावे की वांच्छा सहित पर्याय छूटी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भाई-भाई, शत्रु समानि होंय। ४५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरु, भाई-भाई में परस्पर स्नेह कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिसने परभव में और के दोय भाईन में स्नेह देख, सुख मान्या होय। तथा दोयन कौं लड़ते देख, आपने सज्जनता करि समझाय, दोयन की राड़ि (लड़ाई) मिटाय, स्नेह करा दिया होय।

इत्यादिक भले भाव तैं, भाईन मैं परस्पर स्नेह पावै। ४६। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे ज्ञानवान्, माता–पुत्र में द्वेष कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जो परभव में पर के माता-पुत्र तिनमें स्नेह नहीं देख सक्या होय। पर के माता–पुत्रन कौं लड़ाय, सुख मान्या होय। माता–पुत्र लड़ते देख, खुशी भया होय। इत्यादिक द्वेष भावन तैं माता–पुत्र में द्वेष होय। ४७। बहुरि शिष्य पूछी। हे करुणानिधान! माता–पितान कैं पुत्र का वियोग किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जिसने परभव में पशु-पखेरून के बच्चन कूं पकड़ि, माता–पिता तैं उनका वियोग किया होय। तथा जो पराया पुत्र, चोरी तैं तथा जोरी तैं पकड़ लेगया होय। तथा काहू का पुत्र भला देख, ताकौं शस्त्र तैं तथा विषादि तैं मार, वियोग कस्या होय। तथा किसी के पुत्र का वियोग देख, आप खुशी भया होय। तथा किसी का पुत्र–वियोग, वांच्छया होय। इत्यादिक पापन तैं माता–पितान कैं, पुत्र वियोग होय। ४८। बहुरि शिष्य कही। हे दयानिधान! पुत्र का वियोग न होय, सो कौन पुण्य तैं? सो कहो। तब गुरु कही। जानैं परभव में पर के पुत्र का वियोग सुनि कैं दयाभाव करि, वाकूं पुत्र का मिलाप वांच्छया होय। तथा काहू का गया पुत्र बहुत दिन विषैं मिलाप भया सुनि–देख, आप सुखी भया होय। तथा किसी का पुत्र कोई दुष्ट बन्दी में लेगया सुनि, ताकौं धन देय तथा जोरी तैं छुड़ाय, जाका पुत्र वाकौं दिवाया होय। तथा कोई पशू का पुत्र बिछुड़या देख, ताकी दयाकरि, तलाश करि लाय, ताके पुत्र का संयोग कराय दिया होय।

तथा कोई कौं ही, पुत्र का वियोग नहीं वांच्छया होय। इत्यादिक पुण्य–भावन तैं पुत्र न बिछुड़े का लाभ होय। ४९। बहुरि शिष्य पूछी। हे जगत गुरो! पिता, पुत्र के निमित्त अनेक कष्ट पाय, पुत्र की उत्पत्ति कौं चाहै। सो ऐसे पिता–पुत्र में परस्पर द्वेष कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जिननैं परभव में पराये पिता–पुत्र में द्वेष कराया होय। तथा तिनकौं लड़ते देख, आप सुखी भया होय। तथा और के पिता–पुत्र में स्नेह देख, आपकूं नहीं सुहाया होय। तथा और के पुत्र–पिता में द्वेष कराय दिया होय। तथा कोई के पुत्र–पिता में द्वेष चाहया होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं पिता–पुत्र में द्वेष होय। ५०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! पिता–पुत्र में स्नेह कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिननैं पर भव में और के पिता–पुत्र में स्नेह देख, सुख पाया होय। पराये पुत्र–पिता मैं द्वेष भाव देख, अपनी बुद्धि के बल करि दोऊन कौं समझाय, स्नेह कराय दिया होय। औरन के पिता–पुत्रन में स्नेह चाहया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं पिता–पुत्र में स्नेह होय। ५१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, गर्भ में पुण्याधिकारी का अवतार भया कैसे जानिये? तब गुरु कही। जाके गर्भ में आवते, माता–पिता प्रसन्न चित्त रहैं। कुटुम्ब में मङ्गल होय। माता का चित्त भगवान् की पूजा रूप होय। ताकैं दान की अभिलाषा होय। दिन–दिन कुटुम्ब तैं जाकी प्रीति बधै। माता–पिता का चित्त उदार होय। माता–पिता, कुटुम्ब जन के तथा परजन के सत्कार रूप प्रवर्तैं। माता के

चित्त में उज्ज्वल, भली वस्तु, आचार सहित उपजी ताके खावने की अभिलाषा होय। तथा माता–पिता कूं दीरघ धन का लाभ होय। माता–पिता कोई दीन–दुखी–दरिद्री कौं देखें, तो तिनका चित्त दया रूप होय। इत्यादिक शुभ लक्षण सहित, शुभ जीव का अवतार जानना। ५२। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, पापात्मा का अवतार कैसे जान्या जाय? तब गुरु कही। जाके गर्भ में आवते, माता–पिता कौं दुख–संकट होंय। अभक्ष्य वस्तु खावने पर मन चलै। माता–पिता का चित्त क्रूर होय। चित्त उद्वेग रहै। कुटुम्ब में क्लेश बधै। माता–पिता के मन में सूमता प्रगटै। क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायन की तीव्रता बधै। माता–पिता का चित्त, दुराचार मई होय। घर–धन नाश होय। तथा माता–पिता की मृत्यु होय। इत्यादिक चिन्ह गर्भ में आवते होंय, तब पापाचारी जीव का अवतार जानना। ५३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, अनेक भोग योग्य वस्तु, अन्न, मेवादि षट् रस का भोगी, सुगंधादि भली वस्तु का भोगनेहारा जीव, किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिननैं परभव में दीन–दुखी जीवन कूं देख, दयाभाव करि दान दिये होंय। तथा परभव में मुनि–श्रावक कौं भक्ति सहित दान दिये होंय। औरन कूं दान देते, भले जाने होंय। और जीवन कौं भला अन्न, मेवा, मिठाई खावते देख, अनेक सुगंधादि सहित सुखी देख, आपने हर्ष पाया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं वांच्छित भोग योग्य, षट् रस मेवादि भली वस्तु का भोगी होय। ५४। बहुरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो, यह जीव अनेक उपभोग

योग्य वस्तु विस्तर, आभूषण, मन्दिर, हस्ती, घोटक, रथादि वाहन, पालकी आदि बहुत पदार्थ का भोगी, किस पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं परभव में मुनिन कौं वस्तिका का दान दिया होय। तथा श्रावकन कौं तथा आर्यिका कौं वस्त्र दान दिये होंय। तथा जिन देव कूं छत्र, चमर, सिंहासन आदि उपकरण कराय के पुण्य पाया होय। तथा पर जीवन कूं वस्त्र-भूषण पहरे देख, आप हर्ष मान्या होय। तथा जिननैं सर्व जीवन कूं सर्व प्रकार सुख वांच्छया होय। इत्यादिक शुभ भाव सहित होय तौ अनेक उपभोगन का भोगनहारा होय। ५५।

बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, ये जीव बावने शरीर का धारी कौन कर्म तैं उपजै है ? तब गुरु कही। जानै परभव में पर कूं छोटे शरीर का धारक देख, तिनकी हाँसि-निंदा करी होय। तथा आप बड़े तन का धारक होय, अभिमान किया होय। पर का बावना शरीर देखि, आप हर्ष पाय भला जान्या होय। अपने बड़े तन तैं अन्य छोटे शरीर वालों कौं पीड़ा पहुँचाई होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं, छोटे शरीर का धारी बावना होय है। ५६।

बहुरि शिष्य पूछी। हे मुनिनाथ, इस जीव कूं कूबड़ा शरीर किस पाप भावन तैं होय ? तब गुरु कही। हे दयालु चित्त के धारनहारे वत्स ! तूं चित्त देय सुनि। जिन जीवन नैं परभव में पर जीवन कौं लाठी, लात, मूकी मारि ताके हाड़ तोड़, तिनकूं दुखी करि, आप सुख पाया होय। तथा पराये शरीर कूँ गांठ—गठीला रोग—सहित देख, आप सुखी भया होय। तथा औरन का शरीर आंका—बांका, कुरूप देख, हाँसि करी होय। अपने भले तन का भारी

गर्व कर, औरन कों बहकाए होंय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं कूबड़ा शरीर होय है। ५७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, ये जीव, देव किस पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में सम्यक् धारा होय। तथा पंच परमेष्ठी की पूजा, बंदना, स्तुति करी होय। तथा तप, शील, संयम पाले होंय। तथा दीन जीवन की रक्षा रूप भाव करि, करुणा भाव धारे होंय। तथा मुनि, श्रावकादिक च्यारि संघ का, वैय्यावृत कस्या होय। तथा भले भाव सहित जिनवाणी सुनी होय। इत्यादिक धर्म का सेवन कस्या होय। तथा औरन कों धर्म सेवते देख, अनुमोदना करी होय। तथा नंदीश्वर द्वीप, कुण्डलगिरि, रुचिकगिरि आदिक क्षेत्रन के जिन मन्दिर बंदना की अभिलाषा राखी होय। इत्यादिक धर्म भावन तैं देव होय है। । ५८। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, मनुष्य किस भाव तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में सरल भाव राखे होंय। कोई जीवन तैं, द्वेष—भाव नहीं किये होंय। मंद कषाय धरैं, धर्म भाव सहित, आर्जव परिणामी रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं मनुष्य होय। ५९। बहुरि शिष्य पूछी। हे करुणानिधान, यह जीव नरक किस पाप तैं पावै ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में अनेक पर—जीव सताये होंय। दीरघ क्रोध धास्या होय। जाका हृदय महा दगाबाजी तैं भस्या होय। जानैं मद्य—मांसादि अभक्ष्य भक्षण करे होंय। धर्म भाव रहित, पाप सहित वरत्या होय। तथा धर्म तैं द्वेष भाव करि, पाप कार्यन की रक्षा करी होय। तथा पर जीवन के मारवे—बांधवे की विशेष इच्छा रही होय। इत्यादिक भावन तैं नरक में उपजे

है । ६० । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरुदेव जी ! यह जीव पशु में, किस पाप तैं उपजै ? तब गुरु कही । जिननैं परभव में पर वस्तु की आरति करी होय । कर्म के वश अनेक खान—पान की आरति, धन जोड़वे की आरति, शरीर पुष्ट करवे की आरति करी होय । इत्यादिक भाव, जानैं अशुभ राखै होय । तथा अक्रिया सहित खान—पान करे हौंय । तथा खाद्य—अखाद्य वस्तु का विचार नहीं कर्या होय । प्रमाद सहित, धर्म भावना रहित वरत्या होय । इत्यादिक अज्ञानता सहित अनेक आर्त्तध्यान तैं तिर्यंच होय । ६१ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरु जी, यह जीव कुभोग भूमि का मनुष्य, जाका मुख तौ अनेक पशून के आकार, अरु नीचले अंगोपांग सर्व मनुष्यन केसे महा सुंदर सुघड़ हौंय, सो ऐसा शरीर कौन कर्म के उदय तैं पावै ? तब गुरु कही । जा जीव नैं पूर्व भव में मिथ्यादृष्टी मुनि कौं दान दिया होय तथा कुमुनीनकौं भक्ति करि दान दिया होय । तथा शुभ मुनिन कौं कपटाई सहित दान दिया होय । तथा मुनीश्वरों को दान देते, चित्त लोभ रूप रह्या होय, तथा मानी चित्त रह्या होय, तथा मान की इच्छा रही होय । तथा मुनीश्वर कौं दोष—सहित भोजन दिया होय । तथा नवधा भक्ति में अभिमान राख्या होय। तथा दाता के सात गुण * हैं, तिनमें कोई हीन होय । इत्यादिक भावन तैं कुभोग-भूमियां मनुष्य होय है । ६२ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो, सुभोग भूमि विषैं, तीन पल्य की आयु

* भक्तिकं तौष्टिकं श्राद्धं, सविज्ञानमलोलुप । सात्विकं क्षमकं सन्तः, दातारं सप्तधाविदुः॥ १ भक्ति, २ तुष्टि, ३ श्रद्धा, ४ ज्ञान, ५ अलोलुप (अलोल्य) ६ सत्व, ७ क्षमा, ये सात दातार के गुण हैं ।

सहित, देव समान दश प्रकार कल्पवृत्तन के दिये सुख तिनका भोगता, किस पुण्य तें होय, सो कहौ। तब गुरु कही। जानें परभव विषैं नवधा भक्ति सहित (१ प्रतिगृह, २ उच्च स्थान, ३ अंघ्रि प्रक्षालन, ४ अर्चा, ५ आनति, ६ मन शुद्धि, ७ वचन शुद्धि, ८ काय शुद्धि, ९ अन्न शुद्धि ये नवधा भक्ति हैं।) दान दिया होय। तथा और भव्यन कूं मुनि—दान देते देख, अनुमोदना करी होय। तथा मुनीश्वरों कौं दान देवे की अभिलाषा रही होय। तथा मुनिदान समय, देवन के पंचाश्चर्य होते देख, तथा सुनि कें, मुनि के दान की महिमा—बड़ाई करी होय। तथा मुनि दान देनेहारे दाता की स्तुति करी होय। इत्यादि शुभ भावन तें उत्कृष्ट भोग-भूमियां होय है। ६३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! कुक्षेत्र का वास किस पाप कर्म तें होय? तब गुरु कही। जिन जीवन नें परभव विषैं, पर जीवन कूं झूठा दोष लगाय, सुक्षेत्रन तें निकासि उद्यान में राखा होय। तथा म्लेच्छन के भोग भले लागे हौंय। तथा कोई पै कोप करि, ताहि पकड़, निर्जन—भयावने स्थान मे राखा होय। तथा कुक्षेत्र में वास करनेहारे, अनाचारी जीवन की प्रसंशा करी होय। तथा पशु पालक होय, उद्यान में रह के, हर्ष पाया होय। इत्यादिक कुचेष्टा तें, कुक्षेत्र का वास पावै। ६४। बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञान नेत्रे, सुक्षेत्र का वासी जीव किस पुण्य तें होय, सो कहो। तब गुरु कही। जाने परभव में कुक्षेत्रवासी जीवन की दया करि सुक्षेत्र में बसाये हौंय। तथा दीन—दुखित जीवन कूं उद्यान में से ल्याय, सुख में राखे हौंय, तिनकौं साता उपजाई होय। तथा आपने राज्य भोग छोड़,

तप लेय, बन में रहवे का उद्यम किया होय। तथा बनवासी मुनीश्वरों की धीरजता देखि, प्रसंशा करी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, सुक्षेत्र का वास पावै।६५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ, यह जीव अल्प आहार में संतोषी किस पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में मुनीश्वरों कों अल्प दान एक—दोय ग्रास देय, अपना भव सफल मान्या होय। और दीन-भूखे जीवन कूं वांछित भोजन देय, तृप्त किये होंय। तथा परभव में अनेक वांछित भोग थे तिनकौं छाँड़ि, उदास होय, अल्प भोजन राखा होय। अनेक सुभग रस का त्याग किया होय। इत्यादिक समता भाव के फल तैं अल्प भोजन में तृप्त होय है।६६। बहुरि शिष्य पूछी। हे पूज्य, ये जीव बहुत भोजन करवे की इच्छा राखै, अरु मिलै नहीं। सो यह कौन कर्म का उदय है, सो कहो। तब गुरु कही। जिननैं परभव में अन्य जीवन कौं तरसाय, भोजन दिया होय। तथा परभव में मनुष्य, श्वान, मार्जारादि की पर्याय में पराया भोजन, ले भाज्या होय। तथा धर्मात्मा जीवन का अल्प भोजन देख, हाँसि करी होय। तथा पशु—हस्ती, घोटक, बैल, महिष आदि अनेक जीवन का बहुत भोजन देख, सुख मान्या होय। तथा परभव में रात्रि—दिन मुख तैं भोजन करता भी, तृप्त नहीं भया होय। इत्यादिक अशुभ-भावन तैं बहुत भोजन करता, तृप्त नहीं होय है।६७। बहुरि शिष्य पूंछी। हे गुरु देव जी ! यह जीव चतुराई-कलारहित मूर्ख, हृदय शून्य, लौकीक ज्ञान रहित, किस पाप तैं उपजै ? तब गुरु कही। जाने परभव में पराई कला-चतुराई देख द्वेष—भाव तैं, दोष लगाय हाँसि

करी होय। अरु अपने दोष छिपावे कूं अनेक माया-चतुराई करि, अपना दोष छिपाया होय। भांड-कला देख, हरष पाया होय। पराया गावना, खावना, हाव-भाव, नृत्य, वादित्रादि कला देख, तातैं द्वेष भाव किया होय। पराई चतुराई प्यारी नहीं लागी होय। तथा परभव में याके रिझावे कूं, काहू ने अनेक कला-चतुराई करि राजी किया, ताकी रीझ (इनाम) पचाय गया होय। इत्यादिक पापन तैं मूढ़, लौकिक ज्ञान-चतुराई रहित होय है। ६८। बहुरि शिष्य पूंछी। हे ज्ञानमूर्ति, यह जीव लौकिक कला-चतुराई सहित कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में औरन की गान, नृत्य, वादित्र, चित्रकला, शिल्प-कलादि अनेक चतुराई देख, हरष पाय, तिन कूं उदार चित्त सहित अनेक रीझ दई होय। पराई चतुराई, विवेक, भला ज्ञान देख, भला लाग्या होय। तिनकी प्रसंशा करी होय, कही कि याकी ज्ञान-कला, शास्त्र प्रमाण है। गुणी जन का आदर किया होय। इत्यादिक अपनी सज्जनता प्रगट करि, औरन के सुखी करवे के निमित्त, भला ज्ञान खर्च किया होय। सो जीव लौकिक कला-चतुराई में प्रवीण होय। ६९। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो! यह जीव बहु भार का बहनेहारा मनुष्य-पशु, किस पाप तैं होय है? तब गुरु कही, जिन नैं पर-जीवन पै बहुत भार लादा होय। तथा बेगारि पकड़, तापै बराजोरि भार धरया होय। तथा पशून पै बहुत भार देय चलाये होंय। तथा अल्प भार का नाम लेय, बहुत भार बांध-धरा होय। तथा अपने लोभ कौं, पर जीवन पै भार लादि, कुटुम्ब की रक्षा करी

होय। तथा पर पै दीरघ भार लदा देख, हर्ष पाया होय। इत्यादिक भावन के अशुभ फल तैं बहुत भार का बहनेहारा होय है। तिर्यंच में वृषभ, महिष, ऊंट, गर्धवादि बहुत भार बहनेहारा होय। मनुष्यन में बहुत भार बहनेहारा हिम्माल व बेगारी होय। ७०। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, यह जीव रंक–दरिद्री किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जिननैं परभव में अपनी अन्याय बुद्धि तैं, जोरी करि अनेक जीवन कौं दुखी करि, धन खोंसि निर्धन–दरिद्री करे होंय। तथा पर जीवन कों लुटे–खुसे देख, हर्ष मान्या होय। तथा कोई रंक का जोड़या अल्प धन, सो परभव में चोरया होय। तथा कोई दीन–दुखी जीवन कूं दुर्वचन कहि पीड़े होंय। तथा दीन–दरिद्री जीवन कौं देख, तिनकौं झूठा चोरी का दोष लगाया होय। तथा दीन–दरिद्री जीव देख, तिनकी हाँसि करी होय। इत्यादिक परभव में पाप भाव करे होंय, जिन तैं ये जीव रंक–दरिद्री होय है। ७१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी! यह जीव कुकाव्य–कला का धारी चतुर, कौन कर्म तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन कूं कुकथा भली लागी होय। तथा कहानी–किस्से भले जानि-सुनि, हरष पाया होय। तथा लौकिक चतुराई के शास्त्र, धर्म जानि, दान दिये होंय। तथा उदर पूरण के कारण ऐसे ज्योतिष, वैद्यक, सुभाषित-सभा चातुरी के शास्त्र, तथा शिल्प कलादिक चतुराई के शास्त्र, धर्म जानि दान दिये होंय। तथा धर्म के अर्थ औरन कौं लौकिक विद्या, कला–चतुराई सिखाई होय। तथा अपवित्र शरीर तैं धर्म शास्त्रन का अभ्यास करया होय। तथा अनेक

आरंभ, अन्याय—पाप करि धन उपाय, वह धन शास्त्रन की लिखाई निमित्त दिया होय। तथा आप उत्तम धर्म सेवता, कुकवीन के ज्ञान की प्रसंशा करी होय। व आप कौं सीखवे की वांच्छा रही होय। इत्यादिक भावन तैं जीव भवान्तर में कुकवि होय है । ७२ । बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, सुकवि, धर्म शास्त्रन के छंद—काव्य—कला का जोड़नेहारा, सुबुद्धि का धारी, किस पुण्य तें होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में गणधरादि कवि-नाथ, गाथा—छंद—काव्य के करता आचार्य, तिनकी काव्य—कला शास्त्रन में देख—सुनि, तिनका रहस्य जानि, कविनाथ जो गणधरादि तिनकी महिमा करी होय। तथा सुकाव्य धर्म शास्त्रन के करता तिनकौं देख अंतरंग में प्रसन्न होय, तिन तैं वात्सल्य भाव जनाये, होंय। तथा धर्म की जोड़—कला करते सुकविन की सेवा—सहाय करि, साता उपजाई होय। तथा सुकविन के किये छंद, गाथा, श्लोक तिनकौं वांचि, धर्म का रहस्य जानि, हरषायमान होय, कविन की प्रसंशा करी होय। तथा धर्म शास्त्रन की जोड़—कला करते कवीश्वर की, कछू सहाय करी होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं विशेष ज्ञान का धारी सुकवि होय। ७३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव दीरघ आयु का धारी, जन्मान्तर पर्यंत सुखी, कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में पर जीवन कूं मरते बचाय, फिर तिनकौं अनेक भोजन कराय, वस्त्रादि देय, मिष्ट वचन भाषण करि साता उपजाई होय। तथा अनेक जीवन कों बंदी तैं छुड़ाय, सुखी करे होंय। पर जीवन कूं सुखी करवे की सदीव अभिलाषा

रही होय। औरन कौं अल्पायु मरते देख, संसार तैं उदास होय, दयाभाव सहित जाका चित्त भया होय। दीन जीवन की रक्षा, विशेष चाही होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, दीरघ आयुधारी, जीवन पर्यन्त सुखी रहै। ७४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव दीरघ आयु पाय, दुखी किस पाप तैं रहै है? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में पर-जीवन का घात किया होय। अनेक जल गाहन, तरु छेदन, भूमि खोदन, अग्नि जालन इत्यादिक क्रिया के आरंभ तैं अनेक जीव त्रस-स्थावरन का घात किया होय। अनेक छोटी काय के धारी दीन-जीवन कौं सताये होंय। और कौं दुखी या रोगी रोवते देख, खुशी भये होंय। पर कौं सुखी देख, ताका बुरा करना वांच्छया होय, इत्यादिक पाप-भावना तैं दीरघ आयु पाय दुखी होय। ७५। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी, ये जीव सदीव शोक रूप कौन पाप तैं होंय? तब गुरु कही। जे जीव परभव में पर जीवन कूं शोक सहित देख, सुखी भया होय। तथा पर कौं द्वेष भाव तैं भय देय, शोक उपजाया होय। तथा असत्य वचन तैं हाँसि करि कही, फलानी जगह तेरा धन राह में लूट्या गया। ऐसा कहि शोक उपजाया होय। तथा पर के शोक में ताकी हाँसि करी होय। तथा पराये मंगलाचार में उपद्रव कस्या होय। इत्यादिक पापन तैं शोकवन्त रहै। ७६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव सदीव शोक रहित सुखी, किस पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में तीर्थंकर के पंच कल्याणक उत्सव देख, हर्ष-अनुमोदना करी होय तथा जिन पूजा, जिन

प्रतिष्ठा, सिद्ध क्षेत्र यात्रा कूं संघ जावता इत्यादिक उत्सव देख, बहुत हर्ष किया होय। धर्म उत्सव करनेहारे जीव की बड़ी प्रसंशा करी होय। अनेक जीवन के शोक जानैं धन तैं, मन तैं, तन तैं अनेक उपाय करि मिटाय, सुखी करे होंय। तथा और जीवन कौं शोकवंत देख, करुणा भाव करि, तिनकौं सुख वांच्छया होय। पर कौं सुखी—मङ्गलाचार रूप देख, सुख पाया होय। इत्यादिक शुभ भावना तें शोक रहित, सदैव सुख रूप होय ।७७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव, यह जीव अनेक जीवन करि पूज्य, बहुतन का ईश्वर, कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जाने परभव में अनेक धर्मात्मा जीवन की वैय्यावृत करि, साता उपजाई होय। तथा देव—गुरु—धर्म कूं उत्कृष्ट जानि पूजे होंय। तथा औरन कौं धर्मात्मा जीवन की सेवा करते देख, तिनकी अनुमोदना करि, तिनकौं भले जाने होंय। तथा परभव में जाने अनेक जीव असहाई-दीन की दया करि अन्न देय, धन देय तथा वस्त्रादि तैं सुखी किये होंय। तथा जाकैं च्यारि प्रकार संघ की सेवा करवे की अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं बहुत जीवन का नाथ होय। ७८। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, यह जीव कौन पाप तैं बहुत जीवन का दास होय। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं पर भव में अन्य जीवन कौं भय देय, तिन तैं बेगारि कराई होय। तथा सेवक राखि, चाकरी कराय, कछू दिया नाहीं होय। तथा सेवकन कौं रुजगार हेतु भेले राखे होंय। तथा पर जीवन कौं अपराधी देख, सुख पाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं

बहुत का दास होय । ७९ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो, यह नपुन्सक लिङ्गी काहे तैं होय ? तब गुरु कही । जानै परभव में पुरुष कौं नारी का आकार बनाय, सुख पाया होय । तथा कोई नर, स्त्री का रूप बनाय लोकन कौं मोह उपजावै था सो ता रूप देख, आप हरष मान्या होय । तथा नपुन्सक जीवन कूं नाचता–गावता कौतुक–हाँसि करते देख, तिनकी चेष्टा आपकौं प्यारी लागी होय । तथा अन्य जीवन कूं नपुन्सक, जोरी तैं कर डाख्या होय । तथा नपुन्सक का संग भला लागा होय । तथा नपुन्सक मनुष्य कैसी चेष्टा करवे की, आपके अभिलाषा भई होय। तथा पर स्त्री व पर पुरुषन के बीचि आप दूत होय, तिनका शील खंडन कराया होय । तथा एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय ये नपुन्सक वेदी हैं तिनकी हिंसा करते, करुणा नहीं भई, निरदई रह्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं जीव नपुन्सक होय । तथा स्थावर, विकलत्रय होय । ८० । बहुरि शिष्य पूछी । हे ज्ञान सरोवर गुरो ! यह जीव की स्त्री पर्याय, कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही । जिसने परभव में स्त्रीन का संग भला जानि, तिन मैं स्त्री कैसी चेष्टा करि, सुख माना होय । तथा अपनी चेष्टा औरन कौं स्त्री की सी बताय, औरन कौं वशीभूत किये हौंय । तथा स्त्रीन में मोहित बहुत रह्या होय । तथा परभव में आप पुरुष था, सो नारी का रूप बनाय, औरन कौं मोह उपजाया होय । इत्यादि कुचेष्टा तैं स्त्री पर्याय होय । ८१ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो, यह जीव एकेन्द्रिय स्थावर किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही । जो परभव में बीतराग देव–धर्म–

गुरु की निन्दा करि, द्वेष भाव करि, सुखी भया होय। तथा देव–गुरु–धर्म की व धर्मात्मा जीवन की, कुसंग के दुर्बुद्धि जीवन का निमित्त पाय, निन्दा करी होय। ते जीव साधारण वनस्पति व निगोदिया होंय। तथा जानैं परभव में वृक्ष छेदे होंय। तथा अनेक वनस्पति खोदी, छेदी, छीली होंय। तथा बहुत भूमि खोदी होय। तथा जल डाल्या होय। तथा अग्नि प्रजाली-बुझाई जिससे पवनकाय के जीव घाते होंय। इत्यादिक पंच स्थावरन की दया रहित प्रवृत्या होय। तथा औरन कौं पञ्च स्थावर घात करते देख, अनुमोदना करी होय। इत्यादिक पाप तैं एकेन्द्रिय स्थावर काय होय। ८२। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव विकलत्रय में कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जे जीव विकलत्रय आदि त्रस जीवन की घात करते, निर्दय रूप रहे होंय। तथा तिली, गेहूं आदि अन्न की भण्डशाला (बंडा–खत्ती धरि) करि बहुत दिन राखि, अनेक त्रस जीवन का समूह उपजाय कैं, क्षय किया होय। तहां दया नहीं उपजी होय। तथा त्रस जीवन सहित अनेक मेवा, फल, फूल पकवानादि अनेक रसना इन्द्रिय के वशीभूत होय, भक्षण किये होंय और दया नहीं उपजी होय। तथा नर–पशून का मूत्र इकट्ठा करि, त्रस जीवन की उत्पत्ति–क्षय होते, दया नहीं उपजी होय। इत्यादिक बिकलत्रय की दया रहित वर्तें होंय, सो जीव विकलत्रय में होंय। ८३। बहुरि शिष्य पूछी। गुरु जी, यह जीव विकलांगी, अंगोपांग रहित कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव विषैं पर–जीवन के हाथ, पांव, कान, नाक,

शीश, अंगुली आदि अङ्ग—उपाङ्ग छेदन किये होंय। तथा कोई के अङ्ग—उपांग छेदते देख, हरप पाया होय। तथा दीन—पशून के अङ्ग—उपांग शस्त्रन तैं छेदन किये होंय। तथा पाहन, लाठी, लात, मूकी तैं पराधीन नर—पशुन के अङ्गोपांग तोड़ि डारे होंय। तथा अङ्गोपांग रहित जीव देख तिनकी हाँसि करि, हरष मान्या होय। इत्यादिक पापन तैं विकल अङ्गी, अङ्गोपांग रहित होय है। ८४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, अष्ट अङ्ग सहित सम्पूरण, कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिननैं परभव विषैं, अन्य जीवन के अङ्ग-उपांग की रत्ता करी होय। तथा कोई के हाथ-पांवादिक अङ्ग-उपांग कटते राखे होंय, दया भाव करि धन देय बचाये होंय। तथा औरन के अङ्ग-उपांग में दुख देख, आप दया करि औषधि देय, ताकौं साता करी होय। तथा अङ्गोपांग रहित काऊ कौं देख, अनुकंपा करी होय। तथा औरन के अङ्गोपांग शुद्ध-पुष्ट देख, सुख मान्या होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं अष्ट अंग शुद्ध पावै। ८५। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव नीच कुली किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन ने परभव में ऊँच कुली पुरुषों की निंदा करी होय। तथा अपने मुख तैं अपनी प्रसंशा करी होय। तथा पराये भले गुणन का आच्छादन किया होय। तथा अपने औगुण आच्छादन किये होंय तथा। पराये दोष प्रगट करे होंय। तथा नीच कुलीन के खान-पान विषैं रंजायमान होय, अनुमोदना करी होय। तथा अपने अभिमान करि, औरन का अनादर किया होय। तथा नीच संग में बहुत रह्या होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं नीच

कुली होय। ८६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, ऊँच कुली कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जानैं सत्पुरुषन के गुण की प्रसंशा करी होय। तथा अपने औगुण गुरुन पै प्रगट प्रकाशै होंय। तथा पराये औगुण देख आच्छादन करे होंय। तथा चारि प्रकार के संघ की सेवा करी होय। तथा दुराचार तैं डरया होय। अनेक दीन-जीवन कूं अनेक भोजन-पान-वस्त्र देय, सुखी करि, मिष्ट वचन तैं साता उपजाई होय। तथा अपने भावन तैं कोऊ का भी अनादर नहीं करया होय। तथा आप दीन समानि आपकौं जानि, अभिमान रहित रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं ऊँच कुली होय। ८७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु, यह जीव नीच कुल में उपजै। तिनकौं दीरघ धन, हुकुम, लोक में मान, पुरुषारथ होय, सो कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में अनेक अज्ञान तप करे, कबहूँ अन्न का त्याग करि, साग-भाजी भोजन करी होय। तथा बनफल-पत्ता का भोजन करया होय। तथा सर्व त्याग, दूध लिया होय। मही पिया होय। घासि घोट के पिया होय। अग्नि में तन तपाया होय। ऊर्ध्व पांव—अधो शीश, भूल्या होय। भूमि गड़्या। पर्वत पतन किया। जल पतन, इत्यादिक बाल तपस्वी होय, अनेक कष्ट, धर्म के निमित्त सहे होंय। तथा अज्ञान तपस्वीन कौं, भले धर्मात्मा जानि, विनय सहित, सरल भावन तैं तिनकी पूजा करी होय। धर्म के निमित्त याचकन कौं दान दिया होय। तथा लौकिक कार्यन में धर्म जानि, धर्म फल कौं धन खर्चा होय। तथा अपनी अज्ञानता तैं अन्य भोरे जीवन कूं धर्मी जान पूजे होंय।

तथा आप ज्ञान रहित होय, मंद कषायी रह्या होय। इत्यादिक भावना सहित नीच कुल में उपजि, धनवान्–हुकुमवान् होय। सो तिर्यंच गति का बंध किये पीछे ऐसे भाव होंय, तौ शुभ भावना के फल तैं कोई राजा का हस्ती–घोटकादि पशू होय। ताके पीछे अनेक जीव पलैं। भले वस्त्र-आभूषण, भले भोजन का भोगनहारा आप सुखी होय। तथा पहिले मनुष्यायु का बंध किया होय, तौ नीच कुल में उपजै। सो हुकुम का धारी होय। तथा पहिले देवायु का बंध किया होय तौ भवनत्रिक में अल्प ऋद्धि का धारी, हीन देव होय। इत्यादिक भावन तैं ऐसे होंय। ८८। बहुरि शिष्य पूछी। ये जीव ऊँच कुली होय दीन दशा धारै, धन रहित होय। सो किस पाप का फल है? सो कहिये। तब गुरु कही। जिसनैं परभव में शुभ भावन तैं ऊँच गोत्र का बंध करि पीछे विपरीत कषाय रूप भाव भये, सो मान के वश होय, मोह के जोर तैं मदोन्मत्त होय, पर जीवन का मान खंड कर, हर्ष पाया होय। आप गुरु जन की आज्ञा रहित रह्या होय। तथा दीन जीवन पै द्वेष-भाव करि तिनकूं कुवचन करि पीड़ा उपजाई होय। पर का धन छल-बल करि नाश कराय, सुख पाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं ऊँच कुली होय, परन्तु धन-धान्यादि रहित, दीन दशा का धारक होय। ८९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी, यह जीव बहुत देशान्तर भ्रम आजीविका पूर्ण करै। ऐसा किस कर्म तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में दीन कौं दान दिये होंय, सो अनेक जगह भ्रमाय-भ्रमाय दिया होय। तथा दान के दाम अन्य ग्राम में बताय, दीन कौं भटकाय दान

दिया होय। तथा और दीनन पै अनेक सेवा-चाकरी कराय, बहुत दिन तक भटकाय, पीछे दया करि दान दिया होय। तथा अनेक ग्राम-देश भ्रमाय, सेवा-चाकरी कराय, पीछे धर्म जानि दान दिया होय। तथा कासीदन कौं अनेक देश भ्रमाय, ताकी चाकरी नहीं दई होय। तथा कसर करि दई होय। तथा धर्म निमित्त पर कौं ग्राम, धन, वस्त्र देय तिनतैं अनेक चाकरी कराय, बहुत देश-नगरन कौं कासीद (हलकारे) की नाईं भ्रमाय, तिनपै खेद कराया होय। तथा धर्मात्मा पुरुषन कूं आधीन राख, अनेक देश-ग्राम अपने संग भरमाय, तिनकी स्थिरता कौं आजीविका बताई होय। तथा देशान्तर की आजीविका करनेहारे जीव की हाँसि करी होय। आप मद करि एक जागि तिष्ठा, धन पैदा करता, मत्सर भाव करि अन्य कौं बहकाये होंय। इत्यादिक अशुभ भावना सहित, भवान्तर में मनुष्य होय, तौ देशान्तर भ्रमण करि आजीविका पूरण करणहारा होय। ६०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव एक स्थान पै तिष्ठा, आजीविका कौं अनेक धन पैदा करता, कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिसने परभव में अनेक धर्मात्मा जीवन की स्थिरता कौं खान-पान धन—दानादि देय निराकुल, धर्म सेवन कराया होय। तथा अनेक पशु तथा दीन मनुष्य इनकौं अशक्त देख, दुखी देख, तिनकी दया करि तिनके स्थान बैठे ही असहाय जानि, तिनके खान-पान की खबर लेय, साता उपजाई होय। तथा निर्धन धर्मात्मा जीवन कौं निराकुल धर्म सेवन करते देख, समता सहित देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा औरन कौं सुख तैं धन पैदा करते देख, खुशी भया होय। इत्या-

दिक शुभ भावन तैं एक स्थान में धन पैदा करि सुखी होय। ६१। बहुरि शिष्य पूछी।
हे गुरो, यह जीव दगाबाजी सहित आजीविका पैदा करनेहारा किस पाप तैं होय ? तब
गुरु कही। जानैं परभव में दान में कपटाई करी होय। दीन जीवन कूं कपटाई सहित
दान दिये होंय। गुरुजन जो मुनि, तिनकौं भक्ति-भाव रहित दान दिया होय। दुखित-
भुखितन कौं दया रहित दान दिया होय। तथा माया तैं उदर भरनेहारे चोर, फांसी, गिरी,
ठग तिनकी कला-चतुराई देख, तिनके ज्ञान की प्रसंशा करी होय। तथा पराया धन धस्या
ही जानता, मुकरि गया होय। औरन के भले किसब (व्यवसाय) कौं दोष लगाया होय।
इत्यादिक पाप भावन तैं दगाबाजी सहित अजीविका करनेहारा होय। ६२। बहुरि शिष्य
पूछी। हे दयालु गुरुनाथ जी ! सरल भाव सहित सत्यवादी होय आजीविका पूर्ण करै, सो
किस पुण्य तैं करै ? सो कहो। तब गुरु जी कही। जिननैं परभव में सरल भाव तैं धर्म-
राग करि धर्मात्मा जीवन कूं अन्न-पान विनय सहित देय, साता करी होय। तथा दगाबाजी
रहित, दया सहित, दीन जीवन कूं खान-पान देय रक्षा करी होय। औरन कौं निर्दोष
आजीविका उपजावते देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा परभव में सत्य वचन व सरल
भाव सहित आजीविका नहीं मिलै भी, अनेक भूख सही, संकट सहे। परन्तु कपटाई सहित
उदर पोषण नहीं किया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, न्याय सहित सरलता तैं आजीविका
पैदा होय है। ६३। बहुरि शिष्य पूछी। यह जीव नर व पशु होय, घर-घर बिकता फिरै।

सो कौन पाप—कर्म का फल है ? तब गुरु कही। परभव में जा जीव नैं बल करि, छल करि, पराये पुत्र-पुत्री बैंचे होंय। तथा पराये पशु छल-बल करि हर के, घर-घर बैंचे होंय। तथा पराये पुत्रादि मनुष्य तथा हस्ती, घोटक, महिष, वृषभ, आदि जीव कोऊ के प्रबल शत्रु ने अन्याय भाव तैं लूटि, पकड़ ल्याय, घर-घर बैंचे होंय, तिनकौं देख सुखी भया होय। तथा बीच में दलाली खाय, पराये मनुष्य-पशु बिकाये होंय। इत्यादिक भावन तैं आप घर—घर विषैं बिकै है। ६४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, एक बार ही बहुत जीव—समुदाय मरण कौं प्राप्त होय। सो कौन कर्म के उदय तैं होय ? सो कहिये। तब गुरु कही। परभव में जिन बहुत जीवन नैं एक ही बार पाप उपाया होय। जैसे कोई, मनुष्य कूं तथा पशु कूं मारै है। तहां कौतुक के हेतु अनेक जीव देख, सुखी होय, पाप भार उपाया होय। तथा कोई नरनारी कूं अग्नि में जलते देख, अनेक जीव सुखी भये होंय, अनुमोदना करी होय। तथा युद्ध विषैं अनेक जीवन का मरण सुनि तथा देख, अनेक जीव राजी होय, हर्ष पाया होय। तथा अनेक जीवनि नें मिलि वीतराग देव—गुरु-धर्म की निंदा—हाँसि करी होय। इत्यादि पाप भावन तैं समुदाय सहित अनेक जीव मरण पावैं हैं। ६५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो! यह जीवन के समुदाय कूं सुख किस पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं तीर्थंकर के गर्भ उत्सव, तथा देवन के किये जन्मोत्सव, तप उत्सव, ज्ञान उत्सव, निर्वाण उत्सव इन पांच कल्याण के बड़े उत्सव, अनेक देव सहित, इन्द्र-शची कौं करते देख तथा सुनि,

जिन जीवन नैं इकट्ठे होय, अनुमोदना करी होय। तथा इन्द्र महाराज इंद्राणी सहित अनेक देव लेय, नन्दीश्वर जी के उत्सव कौं जाते देख तथा सुनि, परम सुख कूं पाय, अनेक जीवन के समुदाय ने अनुमोदना करि पुण्य बांध्या होय। तथा बड़ा संघ सिद्ध क्षेत्र की यात्रा कौं जाता देख, ताका जय-जयकार उत्सव देख, अनेक जीवन नैं अनुमोदना करि, पुण्य बन्ध किया होय। तथा च्यार प्रकार सङ्घ की वीतरागता देख, अनेक जीवों ने सुख पाया होय। तथा समोशरण की महिमा देख, तथा बड़ी पूजा-विधान-प्रतिष्ठा तिनके उत्सव देख तथा शास्त्रन तैं सुनि, अनेक जीवन कौं अनुमोदना उपजी होय। इत्यादिक शुभ कार्यन में अनुमोदना करि, बहुत जीवन नैं समुच्चय पुण्य बन्ध किया होय। तिनकूं समुदाय ही सुख होय है। ६६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, बहुत जीव एक बार ही तप लेय, स्वर्ग-मोक्ष कौं सङ्ग ही जांय। सो किस पुण्य का उदय है सो कहो? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में तीर्थंकरों को, देवोपुनीत राज्य-सम्पदा छाँड़ि तप लेते देख, तथा चक्रवर्ती षट् खंड की विभूति तृणवत् तजि दीक्षा लेंय, तिस उत्सव कौं देख, तथा बलभद्र, कामदेव, मण्डलेश्वरादि महा राजान् कौं दीक्षा लेते देख, हर्ष करि अनुमोदना करी होय। तथा एक-एक राजान् की सङ्गति करि अनेक राजा व तिनकी रानी, राज्य-संपदा छांड़ि, दीक्षा लेंय। ऐसे हजारों जीवन की दीक्षा देख तथा शास्त्रन तैं सुनि, बहुत भव्य जीवन नैं एक बार ही तप की अभिलाषा सहित अनुमोदना करि, समुदाय सहित पुण्य का बन्ध करि, वैराग्य भाव किये होंय। इत्यादिक समुदाय

पुण्य तैं, समुदाय तप अङ्गीकार कर स्वर्ग–मोक्ष होय है। ९७। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, बहुत जीवन कैं एक ही बार रोग होय। सो किस कर्म तैं होय? तब गुरु कही। जिननैं परभव में वीतरागी यतीश्वर का, जो अपने शरीर ही तैं निष्प्रयोजन हैं तिनका शरीर मलीन देख तथा तप तैं क्षीण देख तथा मुनीश्वर के शरीर में दीरघ रोग देख, बहुत जीवन ने एक ही बार ग्लानि करी होय तथा निन्दा करि अनादर किया होय। तो उन बहुत जीवन के एक साथ ही रोग होय तथा कोई आर्यिका के तन में रोग देख तथा धर्मात्मा श्रावक, श्राविका, अविरत सम्यकदृष्टी इनके शरीर रोग तैं क्षीण व अशुचि देख, बहुत जीवन नैं एक ही बार ग्लानि करी होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं बहुत जीवन कैं एक ही बार रोग होय है। ९८। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी! इस जीव कूं पर स्त्री तथा पर पुरुष कूं देख काम विकार होय, मोह उपजै। सो किस कर्म का फल है? तब गुरु कही। जो जीव पर भव की स्त्री होय। तथा पर भव में जिनको परस्पर व्यभिचार का बन्ध भया होय। तथा परभव की हाँसी, खिलवती, नाच, गीत की सुहवति–संग का जीव होय। इत्यादिक परभव के विकार सम्बन्ध तैं भवान्तर में ताकौं देख काम–विकार होय है। ९९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! पर जीव कौं देख, बिना कारण द्वेष-भाव होय। सो कौन कारण? तब गुरु कही। जाकौं देख द्वेष भाव होय, सो पर भव का बैरी होय। आपने वाकौं परभव में दुखी किया होय। तथा वानैं आपकौं काहू तैं युद्ध कराय, हर्ष मान्या होय। तथा आपने वाकौं भिड़ाय, सुख

मान्या होय। इत्यादिक पूर्व द्वेष जातैं होय, ताकों देखे भवान्तर में द्वेषभाव होय। १००। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी, पर जीव देव, मनुष्य, पशु ताकों देख हर्ष होय। सो कौन सम्बन्ध है? तब गुरु कही। कोई परभव का पुत्र का जीव होय। तथा भाई का जीव, तथा माता का जीव, तथा बहिन का जीव, तथा पिता का जीव इत्यादिक परभव का कोऊ कुटुम्बी जीव होय। तथा परभव का कोई मित्र होय। तथा अपना कोई परभव में उपकार करनहारा होय। तथा आपने वाके ऊपर कोई उपकार परभव में किया होय। इत्यादिक सम्बन्ध वातैं कोऊ पूरव भव का होय, ताकी सूरत देख मोह उपजै है। १०१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, अपने दुख में बिना प्रयोजन कोई आय सहाय करै। सो कहा सम्बन्ध? सो कहिये। तब गुरु कही। परभव में आपने वाके ऊपर कोई उपकार किया होय। जो भूखे कूं अन्न-भोजन दिया होय, सो आय आपकों बड़े सङ्कट में भोजन का सहाय करै। जानैं तृषावंत कौं जल प्याय, साता करी होय। सो आपकों दीर्घ पर्वत, बन, उद्यान में तथा युद्ध में जहां जल नहीं होय, तृषा—सङ्कट में प्राण जांय, ऐसे दुःखन में जल प्याय सुखी करै। तथा जानै नग्न रहते कौं वस्त्र देय, साता करी होय। सो भवान्तर में ल्याय, अनेक वस्त्र नजर करै। तथा आपने काहू कों अभयदान देय दुख तैं मरतैं बचाया होय, तो वह हस्ती, सर्पादि दुष्ट जीवन करि प्राण जावतैं, आय सहाय करै, मरते कौं बचावै है। तथा महा संग्राम विषैं आय सहाय करै। इत्यादिक जाके ऊपर जाने जैसा उपकार किया होय, तैसा ही आपकों

दूसरा भी आय सहाय करै है। तथा नये सिरेतैं उपकार करवे की अभिलाषा होय है।१०२। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु नाथ ! जाका धन, रोग निमित्त बहुत लागै। परन्तु सुख नहीं होय। सो कौन पाप का फल है ? तब गुरु कही। जानै परभव विषै, अनेक भोरे जीवन कौं बहकाया होय। अर तिनकौं रोग नाश करि पुष्ट करवे का लोभ देय, तिनका धन छल-बल करि आप लिया होय। तथा रोग नाश का लोभ देय, ताका बहुत धन खराब कराया होय। तथा अल्प मोल की वस्तु देय, बहुत धन छलि करि, लिया होय। तथा अन्य कौं दुखित-रोगी देख, तिनका धन औषध निमित्त विरथा लागता देख, आपने हर्ष मान्या होय। तथा पर कौं रोग नाश करवे निमित्त, कुदेवादिक के निमित्त पूजा बताय, ताका धन क्षय किया होय। तथा कोई रोगी कौं ग्रह-नक्षत्र का भय देय, तिनका धन ग्रह-दान में क्षय कराया होय। इत्यादिक कुभावन तैं भवान्तर में मनुष्य होय, ताका धन रोग निमित्त जाय है।१०३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, इस जीव का भला धन, कुव्यसन विषैं लागै। सो किस पाप का फल है ? सो कहो। तब गुरु कही। जानैं परभव में पराया धन कुव्यसन विषैं शिक्षा देय, लगवाया होय। तथा पराया धन कुव्यसन में लागता-उजड़ता देख, आप सुखी भया होय। द्यूत रमाय, पराया धन हरा होय। अभक्ष्य भक्षण कराय, परधन खोया होय। तथा आपनें चोरी करि, पराया धन हरा होय। मदिरा प्याय, धन ठगा होय। तथा वेश्या के नाच-गान व पर स्त्री आदि भोगन में, पर धन नाश होता देख, आप खुशी भया

होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भवान्तर में कुव्यसन में धन नाश होय है। १०४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव गर्भ में ही कौन पाप तैं नाश हो जाय? तब गुरु कही। जिन नैं पर जीवन कौं परभव में गर्भ में ही मारे होंय। अनेक बनवासी पशु तिनकूं आप निर्दयी होय, गर्भ में ही हते होंय। तथा आप दाई का स्वांग धारि, अनेक त्रियों के बालक गर्भ में ही मारि डारे होंय। तथा औषध देय तथा जंत्र-मंत्र करि गर्भ का निपातन किया होय। तथा पर के बालक गर्भ विषैं मरे सुनि, आप सुखी भया होय। तथा कोई तैं द्वेष भाव करि ताका बालक किसी कौं कहि के, गर्भ में ही नाश कराया होय। इत्यादिक पापन तैं जीव भवान्तर में गर्भ में ही मौत पावै है।१०५। बहुरि शिष्य कही। हे गुरो! इस जीव कौं भली सीख बुरी क्यों लागै? सो कहो। तब गुरु कही। जानैं पर कौं अनेक खोटी सीख देय, पर का बुरा करि, आप सुख पाया होय। तथा पर कौं खोटी सीख देय, कुमारग चलाया होय। तथा गुरु जन जो माता-पितादिक, तिनके हितकारी शिक्षा वचन सुनि, जाकौं नहीं सुहाये होंय। जिननैं उल्टे गुरु जन कौं अविनय वचन कहे होंय। औरन कौं अविनय सहित चलते देख, आप राजी भया होय। शिक्षा के देनेहारे गुरु जन, तिनकी हांसि करी होय। स्वेच्छाचारी पशु पर्याय, तामैं तैं चय कैं मनुष्य भया होय। तथा पापाचारी, अविनयी, कुसंगी जीव तिनके वचन भले लागे होंय। इत्यादिक पाप भावन तैं, भली सीख वचन नहीं सुहावैं हैं।१०६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! इस जीव कौं अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान की प्राप्ति कौन शुद्ध

परणति तैं होय ? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, सुनि । जिननैं परभव में तपस्वी मुनि अवधि—मनःपर्यय ज्ञान धारी, तिनके ज्ञान का महात्म्य देख, हर्ष पाया होय। तथा ऐसे दीरघ ज्ञान के धारी तपस्वी, तिनकी सेवा-चाकरी करि, अपना भव सफल मान्या होय । तथा ऐसे अवधि—मनःपर्ययादि ज्ञान का अतिशय देख, तिनकी बहुत महिमा करी होय, बारंबार स्तुति करी होय, तिन तापसी ज्ञान—भंडार यतीन की वैयाव्रत करवे की अभिलाषा रही होय, तथा मुनि पद धारि अवधि मनःपर्यय ज्ञान उपायवे की वांच्छा रही होय। तथा केवली के वचन सुनि, सत्य जानि हर्ष पाया होय। तथा केवलज्ञानी के अतिशय, देव—इन्द्रन करि बन्दनीक जानि, आपकूं केवली के गुण तैं बहुत अनुराग भया होय। तथा केवलज्ञानी के वचन प्रमाण तीन लोक, तीन काल, जीव—अजीवादि द्रव्य, तिनके प्रमाण का स्वरूप, परोक्ष तौ जान्या होय अरु ताके प्रत्यक्ष जानवे का परम अभिलाषी भया, वीतराग भावन की इच्छा सहित प्रवृर्तका होय। इत्यादिक शुद्ध भावना तैं अवधि—मनःपर्यय-केवल ज्ञान की महिमा—प्रसंशा भक्तिभाव सहित कर, तिन उत्तम ज्ञान की प्राप्ति कौं दीक्षा का उद्यमी भया होय। इत्यादिक शुद्ध भावना सहित जीवन कूं भवान्तर में अवधि, मनःपर्यय, केवल ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति होय है। १०७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी ! इस जीव का धन, धर्म कार्यन विषैं लागै। सो किस पुण्य का फल है ? सो कहो। तब गुरु कही। जिन जीवन ने परभव में औरन कौं धर्म विषैं धन खर्च करते देख, अनुमोदना करि हर्ष उपाया

होय। तथा आपने चोरी दगाबाजी रहित, न्याय मारग सहित, धन उपारज्या होय। औरन कौं तीर्थ स्थान में धन लगावते देख तथा जिन मन्दिर के करायवे में द्रव्य लगावते देख तथा पूजा—प्रतिष्ठा विषैं धन लगावते देख, आपने विशेष अनुमोदना करी होय। तथा आपने परभव में अनेक प्रभावना अङ्गन में द्रव्य लगाया होय। तथा औरन कौं इन स्थानकन में धन लगावते देख, भले जानें हौंय। ऐसे पुण्य परणामन तैं इस जीव का धन शुभ कार्य में लागै है। १०८। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव व्रत लेय भङ्ग करि डारै। सो किस कर्म का फल है? तब गुरु कही। जानैं परभव में पर जीवन के व्रत भङ्ग किये हौंय। तथा पराये शुद्ध व्रत कौं दोष लगाया होय। तथा अन्य अज्ञानी जीवन कौं व्रत लेय भङ्ग करते देख अनुमोदना करी होय। तथा कोई धर्मात्मा जीवन का व्रत, कोऊ दुष्ट भङ्ग करै है। सो तामैं सहाय होय, पराया व्रत भङ्ग कराया होय। तथा बाल्यावस्था में अनेक बार कौतुक मात्र आखड़ी लेय-लेय कैं भङ्ग करी होय। इत्यादिक अशुभ कर्म तैं भवान्तर में शिथिलांगी व्रत करनेहारा होय। १०९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पशु पर्याय में उपजि कसाई के हस्त तैं मरै। सो कौन पाप का फल है? तब गुरु कही। जिसने परभव में कसाई का किसब (व्यवसाय) किया होय। तथा जिननैं परभव में अन्य जीवों कौं विश्वास देय, अनेक भले खान—पान तैं पोष, तिनका घात किया होय। तथा पर—जीवन कौं छल—बल करि हते हौंय। तथा पर—जीवन कौं मोल लेय, मारे हौंय। तथा पर—जीवन के अण्डा मोल

लेय मारे, तथा अण्डे बैंचे होंय। तथा पर–जीवन कौं पालि पीछे लोभ के अर्थ, कसाईन कों बैंचे होंय। तथा बिना अपराध बन-जीवन कौं अपने हाथ तैं हते होंय। तथा कसाई के घर का आमिष मोल लाय, भक्षण कस्या होय। तथा पर–जीवन कौं कसाई के हाथ तैं मरते देख, सुख मान्या होय। तथा पर–जीवन का आमिष बहुत खाया होय। इत्यादिक पापन तैं जीव की कसाई के हाथ तैं मौति होय। ११०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पाप परणामी, पाप क्रिया सहित कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं परभव में पापी, चोर, ज्वारीन का संग बहुत किया होय। तथा पर–जीवन का घात किया होय। तथा पापी जीवन कौं कुबुद्धि–पाप रूप क्रिया करते देख, अनुमोदना करी होय। तथा हिंसा सहित पाखंडी जीवन के कल्पित देव–गुरु मांस-भक्षी, तिनकी सेवा–पूजा करी होय। तथा धर्मात्मा जीवन की निन्दा करि, अविनय करि, सुख मान्या होय। तथा शुद्ध देव–गुरु–धर्म की निन्दा करि, विपरीत भाव रह्या होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं पापी, पाप-क्रिया का करनहारा होय है। १११। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव भली-उत्तम मनुष्य पर्याय पाय, खपत कैसे पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जानै परभव में अन्य जीवन कौं मंत्र-यंत्र करि खपत (पागल) करे होंय। तथा अनेक जड़ी-बूटी खुवाय के, जीवन कूं खपत करै होंय। तथा केई जीव पाप के उदय तैं खपत होय गये, तिनकी हाँसि करी होय। तथा केई खपत की अज्ञान चेष्टा देख, तिनकौं चोरी आदि झूठा दोष लगाया होय। तथा कोई हौल-

दिल (पागल) कूं स्वच्छंद प्रवृर्त्तता देख, ताकौं मारया होय । तथा मदिरादि अमल पीय, अपनी अज्ञान चेष्टा करि, सुख मान्या होय। तथा कोई मदिरा पीवनेहारा, तिनकी अज्ञान-चेष्टा देख, आप सुख मान्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं जीव भवान्तर में खपत होय है। ११२। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव कुशीलवान् किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं परभव में वेश्या का संग बहुत किया होय। तथा वेश्या, नृत्यकारिणी तथा कुशीली स्त्री, निपुन्सक–पुरुषाकार तिनके संग बहुत अज्ञान चेष्टा देख, तथा उन समान आप कुचेष्टा करि, हरष मान्या होय। तिन मैं गोठी कर, रम्या होय। और जीवन कौं कुशील करते देख, अनुमोदना करी होय। तथा श्वानादिक पशु पर्याय में कुशील-रूप वरत्या होय। तथा औरन के बीच में दूत होय, कुशील में सहाय दी होय। तथा दिन विषैं कुशील के वीर्य का उपज्या होय। इत्यादिक पाप भाव तैं कुशीली ही होय। ११३। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, ये जीव शीलवान किस पुण्य–कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। जानै परभव में शीलवान् पुरुष–स्त्री जीवन की प्रसंशा करी होय। तथा शीलवान् पुरुष के शील राखवे कौं सहाय करी होय। पूर्वें संयमी पुरुषन की संगति करी होय। तथा कुशीलन की संगति तैं मन उदास रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं शीलवान् होय। ११४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव जनमते ही मरण कौं प्राप्त किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं औरन कौं जनमते ही मारे होंय। तथा अल्प आयु के धारी जनमते ही मरते देख,

हरष पाया होय। तथा द्वेष भाव तैं कोई कौं जनमते देख, हस्त तैं मास्या होय। तथा सम्मूर्च्छन एकेन्द्रियादि त्रस जीवन के घात के उपाय करि, तिनकी हिंसा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जन्म समय ही आप मरण पावै। ११५। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव बन्दी होय, परवश पर के किये दुख कौं सहै। सो किस पाप का फल है? सो कहो। तब गुरु कही। जिननैं बिना अपराध, धन के लोभ कौं पर जीव जोरावरी पकड़ि कैं बन्दीगृह में राखे होंय। तथा पर भव में दुपद, चौपद, नभचर, जलचर, उरपद इत्यादिक पशून कौं बलात्कार, पींजरा—फंदा आदि बंधन में राखे होंय। तथा पर जीवन कौं द्वेष-भाव करि, चुगली खाय, पराये मान खण्डन कौं, धन नाश कौं झूठा दण्ड लगाय, बन्दी में दिवाये होंय। तथा पर कौं बन्दीगृह में देख, अनुमोदना करि खुशी भया होय। इत्यादिक पाप तैं, जीव नृपादिक का बन्दी होय। ११६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव अकस्मात् शस्त्र तैं, फांसी तैं, गोला तैं, सिंहादि दुष्ट पशून तैं, अग्नि तैं, जल तैं, बिष तैं, इत्यादिक कारणन तैं मृत्यु पावै। सो किस पाप के फल तैं पावै? सो कहो। तब गुरु कही। जानै पर भव में पर जीवन कूं दोष लगाय, विष देय मारे होंय। तथा विष तैं मूए देख, हर्ष पाया होय। सो जीव इस पाप तैं, विष तैं अकस्मात् मृत्यु पावै। और जानैं पर जीवन कौं फांसी तैं मारे होंय। तथा फांसी तैं मूये सुनि, अनुमोदना करि हर्ष पाया होय। ते जीव चोरन का निमित्त पाय, फांसी तैं मरैं। और जिननें पर जीवन कौं

तीर, गोली, बर्छी, कटारी, छुरी, तलवारादि शस्त्र तैं मारे होंय। तथा मुये सुनि, अनुमोदना करी होय। ते जीव अकस्मात् शस्त्र तैं मौति पावैं। और जिन जीवन नैं परभव में सिंहादि जीवन कौं शस्त्र तैं हते होंय। तथा औरन तैं मारे सुनि, सुख पाया होय। ते जीव सिंहादि दुष्ट जीवन तैं अकस्मात् मृत्यु पावैं। और जिननें पर जीवन कूं अग्नि में जाले होंय। तथा अग्नि में जले सुनि, हरष पाया होय। सो जीव अकस्मात् अग्नि में जलैं। और पर-जीवन कौं जिनने जल में डुबोय मारे होंय। तथा जल में डूबे सुनि, सुख पाया होय। ते जीव अकस्मात् जल में डूबि मरैं। इत्यादिक जे पाप किया, ताही निमित्त पाय अकस्मात् मरण होय। ११७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पर का खानाज़ाद गुलाम, किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जानैं परभव में बलात्कार पर-जीवन कौं गुलाम किये होंय। तथा धन लोभ देय तथा भूखे कौं खान—पान वस्त्रादिक का लोभ लगाय, तथा पराया मनुष्य बिकते देख मोल देय इत्यादिक कारण तैं पर जीवन कौं गुलाम किये होंय। तथा अन्य जीव कोई का गुलाम भया होय। तथा अपने बीचि-दूत होय, किसी कौं किसी का गुलाम कराय, दलाली खाय, हर्ष पाया होय। इत्यादिक पापन तैं जीव भवान्तर में आय, अन्य घर बिक गुलाम होय। ११८। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, यह जीव लोक-निंद्य कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जाने जगत्पूज्य जो वीतराग देव-धर्म-गुरु की निन्दा करी होय। तथा और कोई देव—धर्म—गुरु के निन्दक जानि,

तिन में प्रीति भाव किया होय। तथा तीन जगत्पूज्य, प्रसंशा योग्य ऐसे वीतरागादि उत्तम गुण, तिनकी निन्दा करी होय। तथा धर्मात्मा पुरुषन की निन्दा करी होय। तथा लोक-निन्द्य पुरुषन के संग कौं पाय, अनेक निन्द्य-कार्य किये हौंय। अयोग्य खान—पान करे हौंय। इत्यादिक पापन तैं, जीव लोक—निन्द्य पद पावै। ११६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, इस जीव कौं पुत्र, स्त्री, माता, पिता, भरतार आदि इष्ट वस्तु का वियोग किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जानैं पर-पुत्र हरे हौंय। तथा पराये पुत्र हरे जान, जानै अनुमोदना करी होय। तथा पराई स्त्री कौं, ताके भर्तार तैं वियोग कराया होय। तथा पर स्त्री—पुरुष का वियोग सुनि, हरष पाया होय। ताकैं स्त्री का वियोग होय। तथा पर का कुटुम्ब—माता—पितादिक तैं वियोग कराया होय। तथा पर का कुटुम्ब तैं वियोग सुनि, महा हर्षवान् भया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भवान्तर में जीव कूं कुटुम्बादिक का वियोग होय है। १२०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, इस जीव कौं धन का वियोग किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जानै पर भव में पर का धन हर्या होय। तथा चोर तैं, जल तैं, अग्नि तैं, राज्य तैं, फौज तैं, इत्यादिक निमित्त पाय, पर का धन नाश भया सुनि, अनुमोदना करी होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं भवान्तर में आप कैं धन का वियोग होय है। १२१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी! इस जीव के घर में अग्नि किस पाप तैं लगै है? तब गुरु

कही । जानें पर जीवन के घर में आग लगाई होय । तथा पराया घर जलते देख, हरष पाया होय । इत्यादिक पापन तैं, घर में अग्नि लगै है ।१२२। बहुरि शिष्य पूछी । हे नाथ, इस जीव कैं कण्ठ विषैं नरैल समान मेद किस पाप तैं होय? तब गुरु कही । जानै पर भव में पर जीवन कौं लाठी, सोठी, मूंकी मार ताका कंठ सुजाय दिया होय । तथा जानैं पर के मुख आगे भार बांध, दुखी कस्या होय । तथा पर के कंठ में मेद देख, ताकी हाँसि करि बहकाय, हर्ष मान्या होय । इत्यादिक पाप भावन तैं भवान्तर में आप के कंठ में नरैल तैं दीर्घ मेद हो है ।१२३। बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो ! यह जीव सर्व कौं वल्लभ किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही । जानैं परभव में सर्व संसारी जीवन तैं स्नेह भाव कस्या होय । तथा देव, गुरु, धर्म जाकौं महा वल्लभ लागे होंय । तथा जाकौं परभव में च्यारि प्रकार के संघ के धर्मात्मा जीव, महा वल्लभ लागे होंय । तथा गुनी जन तैं, स्नेह जनाया होय । तथा दीन–दरिद्री दुखित–भुखित, सोच जलधि में पड़े महा दुखी जीव तिनकों देख, दया भाव करि तिनकौं स्नेह सहित विश्वास उपजाय, सुखी किये होंय । इत्यादिक शुभ भावन तैं जीव भवान्तर में सब कूं सुखदाई परम वल्लभ होय ।१२४। बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरुनाथ जी ! इस जीव के घर, सदीव मंगल रहै । सो किस पुण्य तैं होय? सो कहो । तब गुरु कही । जो परभव में तीर्थंकर के पंच कल्याणक देख तथा सुनि करि, हर्षवंत भये होंय । तथा जिन पूजा, जिन प्रतिष्ठादि मंगलाचार उत्सव देख, अनु-

मोदना करी होय। तथा पुण्योदय तैं काऊ के घर मंगलाचार गाजते-बाजते देख, हर्षित भया होय। तथा कोई के घर शोक, चिंता, भय देख, तिनकी दया करी होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं सदीव घर में मङ्गल होय है। १२५। ऐसे एक सौ पचीस प्रश्न शिष्य नैं गुरु तैं स्व-पर कल्याण के अर्थ किये। सो ये प्रश्न हैं, इन में के केतेक प्रश्न तो त्रैलोक्यनाथ की माता तैं देवाङ्गना ने करे हैं। तिन के उत्तर तीर्थंकर की माता ने दिये हैं। और केतेक प्रश्न, राजा श्रेणिक महा धर्ममूर्ति बुधिवान् तानैं गौतम स्वामी गणधर तैं करे। तिन के उत्तर श्री गौतम स्वामी ने करे हैं। सो इन कौं इकट्ठे करि, यहां भव्य जीवन के कल्याण हित, समुच्चय वखान किये। तिन के भेद जानि, पाप पंथ तजि, सुपंथ लागि, अनेक जीवन नैं पुण्य बंध किया। और इन कौं सुनि अनेक भव्य, पुण्य उपारजैंगे। तातैं विवेकी इस प्रश्न माला कौं बांचि, निकट संसारी इनका रहस्य पाय, अपना कल्याण करें। इस प्रश्न-माला के धारण किये, भव्य जीव भव-भव में सुखी होंय। कैसी है ये प्रश्नमाला, गुरु के वचन रूपी महा शुभ सुगंधित फूल तिनकी बनाई है। सो इस माला कौं निकट भव्य, मोक्ष-रमणी का दूलह, हर्षाय कैं अपने हृदय विषैं पहरि, सुखी होऊ। कवीश्वर कहैं हैं, इस माला कूं मैं अपने हृदय में फेरि, अपना भव सफल जानि कृत-कृत्य भया। और भी जे अमर-पद के लोभी इस प्रश्नमाला कों अपने कंठ में पहिरेंगे। ते भव्यात्मा कल्याण के वांच्छी, सुबुद्धि, युग भव में तथा भव-भव में शोभा पावेंगे। ऐसी जानि इस प्रश्नमाला कूं धारण

करहु। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रंथ मध्ये, अनेक ग्रंथानुसारेण, प्रश्नमाला कर्मविपाक वर्णनो नाम, गुणतीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ २६ ॥

आगे हिंसा विषैं पुण्य का प्रभाव बतावैं हैं—

गाथा—पय वहणी थल पदमो, जल मथ घी घाण होय तुख खंडय ॥
रवि हिम ससि तप करई, तव हिंसा पुण्य देय भो आदा ॥ १२० ॥

अर्थ—पय वहणी कहिये, जल विषैं अगनि। थल पदमो कहिये, पृथ्वी में कमल। जल मथ घी कहिये, पानी के बिलोये घृत। घाण होय तुख खंडय कहिये, भुस के कूटे अन्न। रवि हिम कहिये, सूर्य्य के ऊगते शीत। ससि तप करई कहिये, चन्द्रमा तपति करै। तव हिंसा पुण्य देय कहिये, तो हिंसा पुण्य देय। भो आदा कहिये, हे आत्मा। भावार्थ—जल विषैं अगनि कबहूँ नहीं होय। तैसे ही जीव हिंसा विषैं पुण्य का फल कबहूँ नहीं होय। और कठोर भूमि विषैं कमल कदाचित् न होय। तैसे ही हिंसा में धर्म—फल नहीं। और जल बिलोए घृत कबहुँ न होय। तैसे ही प्राणी घात में पुण्य नाहीं। और तुष के कूटे अन्न नहीं निकसै। तैसे ही जीव घात तैं पुण्य नाहीं होय। और सूरज के उदय होते शीत नहीं होय। तैसे ही जीव घात किये धर्म नाहीं। और चन्द्रमा के उदय होते, आताप नाहीं होय। तैसे ही हिंसा विषैं पुण्य कदाचित् नाहीं। ऐसे कहे जो ऊपर एते नहीं होने योग्य स्थान। तैसे ही जीव घात में हिंसा होय है, अरु धर्म कबहुँ नहीं होय। सो हे भव्यात्मा, तूं भी परभव

सुधारवे के निमित्त, ऐसा श्रद्धान दृढ़ करि। कि जो जीव घात विषैं कोई प्रकार पुण्य नाहीं। ऐसा श्रद्धान तो कूं भव-भव विषैं सुखकारी होयगा। ऐसा जानि, अपने समान सर्व जीव कूं जानि, तिनकी दया भाव सहित रहना योग्य है। आगे फुनि हिंसा विषैं पुण्य का अभाव बतावैं हैं--

गाथा—अह मुह अमि सुत वंझय, गणका सुत जनक सिध अवतारो।
सठ सुचि सूम उदारऊ, तव जीव हिंसोय देय पुण आदा॥ १२१॥

अर्थ—अह मुह अमि कहिये, सर्प के मुख में अमृत। सुत वंझय कहिये, वंध्या के सुत। गणका सुत जनक कहिये, वेश्या के पुत्र का पिता। सिध अवतारो कहिये, मोक्ष भये पीछे जीव का अवतार। सठ सुचि कहिये, मूर्ख के शौच। सूम उदारऊ कहिये, सूम का मन उदार। तव जीव हिंसोय देय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तव जीव हिंसा में पुण्य होय। भावार्थ—महा भयानीक काल रूप सर्प के मुख में अमृत होय, तो जीव हिंसा में पुण्य-फल होय। और बांझ के पुत्र होता नाहीं। सो बांझ के पुत्र होय, तो प्राणी वध में पुण्य होय। और वेश्या के पुत्र के पिता होता नाहीं, तैसे ही जंतु-बध में हिंसा होय, तहां धर्म नाहीं। और शुद्ध जीव कर्म नाश सिद्ध होय, तिस मोक्ष जीव का संसार में अवतार नाहीं। तैसे ही जीव हिंसा में पुण्य नाहीं। और मूर्ख के शौच नाहीं होय, तैसे ही हिंसा में पुण्य का फल नहीं होय। और सूम शरीर देय, परन्तु दान कूं एक दाम नहीं देय। सो या सूम का चित्त उदार होय, तौ हिंसा में पुण्य-

फल होय। ऐसे ऊपर कहे कारण, सो कबहूँ नहीं होय। तैसे ही धर्मात्मा तूं ऐसा जानि। जहां जीव घात होय, तहां पुण्य फल नहीं होय। तातैं ऐसा जानि, जीव घात तजि, दया सहित रहना योग्य है। आगे और भी हिंसा का निषेध बतावैं हैं—

गाथा——पच्छिम रवि सिल तरई, भू पलट वहण सीत तण धरऊ।
मेर चलय अंध देखय, तव हिंसा देय पुण आदा ॥ १२२ ॥

अर्थ—पच्छिम रवि कहिये, सूर्य पश्चिम दिशा से उदय होय। सिल तरई कहिये, शिला तैरे। भू पलटय कहिये, पृथ्वी उलट-पलट होय। वहण सीत तण धरई कहिये, अग्नि शीतल तन धरै। मेर चलय कहिये, मेरु चलै। अंध देखय कहिये, नेत्र रहित देखै। तव हिंसा फल देय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तौ हिंसा का फल पुण्य होय। भावार्थ—पश्चिम दिशा में सूर्य कबहुँ नाहीं ऊगे। तैसे ही हिंसा में धर्म का फल कबहुँ नहीं होय। और पाषाण की शिला जल विषैं तैरे, तो हिंसा में धर्म होय। और पृथ्वी पल्टै, तौ हिंसा में धर्म होय। सो पृथ्वी कबहुँ पलटती नाहीं, अनादि ध्रुव है। तैसे ही हिंसा में पुण्य फल नाहीं। और अग्नि शीत अंग धरै, तौ हिंसा में धर्म फल होय। और सुमेरु पर्वत अनादि अचल है, सो ये मेरु हालै तो हिंसा में धर्म फल होय। और जन्म के अंधे कों कछु नहीं दीखे। तैसे ही जीव घात में पुण्य का फल कबहुँ नहीं होय। ऐसे ये कहे नहीं योग्य स्थान, तैसे ही हिंसा विषैं धर्म कदाचित् नाहीं। ऐसा जानि हिंसा धर्म तजि, दया सहित धर्म का अंगीकार करना योग्य

है। आगे फुनि हिंसा निषेध—

गाथा—पंग चढ्य गिरि सिहरे, वधरो रंजाय राग सुह पाई।
कातर रण जय पावय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२३ ॥

अर्थ—पंग चढ्य गिरि सिहरे कहिये, पैर रहित पुरुष, पर्वत के शीश पर चढ़ै। वधरो रंजाय राग सुह पाई कहिये, बहरा राग के सुख कौं पावै। कातर रण जय पावय कहिये, कायर युद्ध में विजय पावै। तव हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मन्! तौ हिंसा में पुन्य फल होय। भावार्थ—पांव रहित पुरुष कौं, पर के सहाय बिना अल्प भी नहीं चल्या जाय। सो ऐसा पंगल पुरुष, उत्तंग पहाड़ के शिखर पर भागि के चढ़ै, तो जीव घात में पुण्य होय। और बहरा पुरुष कान तैं कछू सुनता नाहीं। सो बहरा पुरुष राग के सुन्दर शब्द सुनि राजी होय, तौ हिंसा में पुण्य होय। और जे कायर नर होंय, सो युद्ध तैं डरैं। सो कायर पुरुष बैरी की सैना भगाय, जीति पावै, तौ हिंसा विषैं धर्म का लाभ पावै। और ऊपर कहे जे कारण सो कदाचित् नहीं होंय। सों होंय तौ हिंसा में धर्म फल होय। तातैं हे धर्म फल के लोभी, सर्व जीव आप समान जानि, सब की रक्षा के निमित्त उपाय करना, सो भव-भव में सुखकारी है। आगे फुनि हिंसा निषेध—

गाथा—जम उर करुणा धारय, काको मुह सौच मित्य तण जीवो।
दुठ जण पर सुह इच्छय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२४ ॥

अर्थ—जम उर करुणा धारय कहिये, काल के हृदय करुणा होय। काको मुह सौच कहिये, काक का मुख पवित्र होय। मित्य तण जीवो कहिये, मृतक जीवै। दुठ जण पर सुह इच्छय कहिये, दुष्ट पुरुष पर के सुख कौं वांच्छै। तव हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तो हिंसा के करबे में पुण्य होय। भावार्थ—यम जो काल, सो जड़ दया रहित है। सो काल कौं दया आवै, संसारी जीव नहीं मारै, तो हिंसा में पुण्य फल होय। और काक का मुख तौ सदा अपवित्र ही है। सो कदाचित् काक का मुख शौच रूप होय, तो हिंसा में पुण्य फल होय। और आयु कर्म पूरण होय जे आत्मा पर्याय तज मरा, सो कबहुँ जीवता नाहीं। सो मृतक जीवै, तौ हिंसा में पुण्य होय। और जे दुष्ट स्वभावी, पर दुख रंजन, पर कौं सुखी देख महा दुखी होंय। सो ऐसा क्रूर स्वभावी दुर्जन प्राणी, पर जीव कौं साता देख सुखी होय, तौ हिंसा में पुण्य होय। ऐसे ऊपर कहे कारण सो कबहुं नहीं होंय, सो ये होंय तो जीव घात में धर्म होय। तातैं धर्म लोभी कूं धर्म के निमित्त, दया भाव करना योग्य है। आगे बहुरि हिंसा का निषेध करिये है—

गाथा—विस पय जीवय जीवो, णागो गमणाय सरल तण होई।
स्वाण पुच्छ सुध होवय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२५ ॥

अर्थ—विस पय जीवय जीवो कहिये, जहर खाय कैं जीव जीवै। णागो गयणाय सरल तण होई कहिये, सर्प सीधा होय चालै। स्वाण पुच्छ सुध होवय कहिये, कुत्ते की पूंछ सीधी

होय । तव हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मा ! तो हिंसा में पुण्य होय। भावार्थ--हलाहल जहर खाय कोई जीवता नाहीं। ऐसा विकट विष खाये जीवै, तौ हिंसा में धर्म-फल होय । और काल नाग, सहज ही वक्र चाल चालै । सो कबहुं सांप सूधा होय गमन करै, तौ हिंसा में शुभ फल होय । और श्वान की पूंछ का सहज स्वभाव ही वक्र है। सो कदाचित् श्वान की पूंछ सूधी होय, तौ हिंसा में धर्म होय। ऐसे ऊपर कहे नहीं होने योग्य पदार्थ होंय, तौ हिंसा में धर्म होय । तातैं हिंसा तजि, दया का पथ समझने में अपनी रक्षा जाननी । आगे और भी ऐसा कहैं हैं जो जीव-घात में पुण्य नाहीं--

गाथा---रज पीलय णेह पावइ, रजनी रवि विहोंति णभ णपाये ।
काय धरा णह खपई, तव हिंसा सुह देय णेमाए ॥ १२६ ॥

अर्थ---रज पीलय णेह पावइ कहिये, रज के पेलैं तैं तेल होय । रजनी रवि कहिये, रात्रि में सूर्य्य होय । विहोंति णभ णपाए कहिये, बालिश्त तैं आकाश नपै । काय धरा णह खपई कहिये, काय के धारी मरैं नाहीं । तव हिंसा सुह देय णेमाए कहिये, तो निश्चय तैं हिंसा में पुण्य होय । भावार्थ--रज जो बालू-रेत ताकौं घाणी में पेलैं तैं तेल निकसै, तौ हिंसा में धर्म-फल होय । अरु रात्रि कौं सूर्य्य का उद्योत होय, तौ हिंसा में पुण्य होय। और अंगुल-बालिश्त करि आकाश नापना होय, तौ हिंसा में धर्म-फल होय । और शरीर-अवतार का धारी, सदीव शाश्वत रहै, तौ हिंसा में पुण्य होय । ऐसे ऊपर कहे जे नहीं होने

ऐसा जानि धर्म के इच्छुक धर्मी जीव हैं तिनकौं,
योग्य कार्य, सो ये हौंय तौ हिंसा विषैं पुण्य होय। आगे हिंसा में धर्म नाहीं, ऐसा और भी बतावे हैं—
दया-भाव का मार्ग जानना योग्य है।

गाथा—खल पीलय सनेहो, सायर लंघाय पाल मज्जादो।
एक सुह तैं सुर अघ दय, तव हिंसा फल देय सुह आदा ॥ १२७ ॥

अर्थ—खल पीलय सनेहो कहिये, खली के पेलै तैल निकसै। सायर लंघाय पाल मज्-
जादो कहिये, समुद्र अपनी पार की मर्यादा लंघै। एक सुह तैं कहिये, शुभ कार्य किये
नरक होय। सुर अघ दय कहिये, स्वर्ग स्थान पाप फल तैं होय। तव हिंसा फल देय सुह
आदा कहिये, हे आत्मा तौ हिंसा का फल शुभ होय। भावार्थ—जैसे मूरख खली कौं पेल
तेल काढ़्या चाहे, सो कबहूँ नाहीं निकसै। जो खली पेले तेल निकसै, तौ हिंसा में पुण्य
होय। और समुद्र अपनी मर्यादा कौ उलंघै, तौ हिंसा में धर्म का फल होय। और पाप के
करनहारे कुगति जांय सो कदाचित् पाप करनहारे देव हौंय, तौं हिंसा में पुण्य होय।
और पुण्य के करनहारे स्वर्ग—मोक्ष जांय हैं। सो यदि धर्म किये नरक होय, तौ हिंसा में
धर्म लाभ होय। ऐसे ऊपर कहे स्थान, ते नहीं होने योग्य हैं। तैसे ही हिंसा में शुभ नाहीं
है। तातैं तूं अपना कल्याण चाहै है। तो समता भाव करि सुखी होयगा। आगे फेरि हिंसा
में धर्म का अभाव बतावैं हैं—

गाथा—जड़ दव्वो जुय णाणऊ, चेदण दव्वोय होय विण णाणो।

कलहो कय जस होई, तव हिंसा पुण देय णेमाए ॥ १२८ ॥

अर्थ—जड़ दव्वो जुय णाणऊ कहिये, अचेतन द्रव्य ज्ञान सहित होय। चेदण दव्वोय होय विण णाणो कहिये, चेतन द्रव्य ज्ञान रहित होय। कलहो कय जस होई कहिये, कलह करते यश होय। तव हिंसा पुण देय णेमाए कहिये, तौ हिंसा पुण्य का फल देय। भावार्थ—जीव बिना, पांच द्रव्य हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश। ये पांच द्रव्य अनादि तैं जड़त्व भाव कौं लिये हैं। इनके गुण भी जड़ हैं, और पर्याय भी जड़ हैं। सो ये अजीव द्रव्यन में ज्ञान का अभाव है। सो इनमें ज्ञान होय, तौ हिंसा में धर्म—फल होय। और चेतन, गुण सहित देखने-जाननेहारा, दर्शन—ज्ञान का समूह, सो याका ज्ञान कर्म—योग तैं घटै, तौ अक्षर के अनंतवें भाग रहै, परन्तु ज्ञान का अभाव कबहूँ नहीं होय। अरु कदाचित् जीव ज्ञान रहित होय, तो हिंसा में धर्म फल होय, । तथा अपयश का कारण कलह है। सो कलह—युद्ध किये यश होय, तौ हिंसा के किये पुण्य का फल होय। ऐसे ऊपर कहे कार्य होंय, तो हिंसा में धर्म का फल होय। तातैं धर्म इच्छुक ! धर्म के निमित्त, दया धर्म का अध्ययन करहु। और भी अब करुणा का स्वरूप कहैं हैं, और दया का फल कहिये हैं—

गाथा—दीरघ थिति भू जसयो, गद रह तण भोय इच्छ सहु होई॥
सुर चक्की सुह सह लय, ये करुणा फल होय णेमाए ॥ १२९ ॥

अर्थ—दीरघ थिति कहिये, बड़ी आयु। भू जसयो कहिये, धरती पै यश। गद रह तण

कहिये, रोग रहित शरीर। भोय इच्छ सहु होई कहिये, मनवांच्छित भोग। सुर चक्की कहिये, देव चक्रवर्ती। सुह सह लय कहिये, इनके सुख सहज ही होंय। ये करुणा फल होय एमाए कहिये, ये दया का फल निश्चय से जानना। भावार्थ—इस जीव की भव-भव में रक्षा करनहारी, दया है। सो दया भाव जिनके सदीव रहै है, तिनकी आयु तो सागरों पर्यंत बड़ी हो है। और जे दया भाव रहित होय हैं, ते जीव अल्पायु पाय मरण करैं हैं। और दया के फल तैं जगत में सहज ही यश होय है। और जो जीव पर-भव में पराया यश नहीं देख सक्या। तथा जिसने महा निर्दय भाव करि पराया यश हत्या है। ते जीव, दया रहित भावन के फल तैं, दया तैं प्रगट भया जो यश, सो ऐसा यश चाहैं, तौ लाखों दाम खर्चैं भी यश मिलै नाहीं। यश के निमित्त प्राण देय मरैं, तौ भी दया बिन यश नहीं मिलै। दीन होय बोलैं, सब तैं नम्रीभूत होय मस्तक नमावैं, तौ भी यश नहीं मिलै। काहे तैं, जो पर भव विषैं पराया मान राखा होय, प्राण राखे होंय, इत्यादिक मन-वचन-काय करि सर्व कौं साता करी होय, ते जीव सहज ही जगत में यश पावैं। तातैं यश है सो दया भाव का फल है। और निरोग शरीर पावना, आयु पर्यन्त सुखी रहना, सो दया भाव का फल है और मन वांच्छित सुख का मिलना, सो दया भाव का फल है। जो मन में कल्पना करी सो ही वस्तु देवादिक की नांईं तुरंत मिलै, सो दया भाव का फल है। और दया बिना ये जीव तृण जो घास, सो भी पेट भर नहीं भोगवै है। सदीव अन्न व तन करि बहुत दुखी होय, सो दया रहित भाव

का माहात्म्य है। और देवन के नाना प्रकार भोग, असंख्यात द्वीप—समुद्रन में गमन, नंदीश्वर, कुण्डलगिरि, रुचिकगिरि इन द्वीपन में भगवान के मन्दिर हैं तिनकी यात्रा का करना, ये शुभ फल उपावना। और असंख्यात देव—देवी आज्ञा मानैं, अनेक देवांगना के समूह तिनका आयु पर्यन्त सुख, सो दया भाव का फल है। और चक्री के चौदह रत्न, नव निधि, छियानवै हजार स्त्रियां, षट् खण्ड का राज्य इत्यादिक सुख सो भी दया भाव का फल है। और ऊपर कहे जे भले फल, दीर्घ आयु, जगत यश, निरोग तन, वांच्छित भोग, देव सुख, चक्री सुख ये सर्व दया भाव का फल जानना। आगे और भी दया भाव का फल कहिये हैं—

गाथा—सुर तरु चिन्ता रयणो, काम धेयोय पास पासाणऊ।
चित्ता लता सुसंगो, ये सहु किप्पाय भाव फल आदा ॥ १३० ॥

अर्थ—सुर तरु कहिये, कल्पवृक्ष। चिंता रयणो कहिये, चिन्तामणि रतन। काम धेयोय कहिये, कामधेनु। पास पासाणऊ कहिये, पारस पाषाण। चित्ता लता कहिये, चित्राबेलि। सुसंगो कहिये, सत्संग। ये सहु किप्पाय भाव फल आदा कहिये, हे आत्मा ये सब दया भाव का फल है। भावार्थ—दश प्रकार कल्पवृक्ष कर दिये जो उत्तम भोग, सो दया भाव का फल है। और मन—चिंते भोग सुख का देनेहारा चिन्तामणि रत्न का मिलना, सो कृपा भाव का फल है। और वांच्छित सुख की देनहारी कामधेनु गाय का मिलना, यह भी दया भाव का माहात्म्य है। और कुधातु कों सुवर्ण करनहारा जो पारस—पाषाण सम्पदा—सागर

भाव का फल है। और अल्प वस्तु को अटूट करनेहारी चित्रा-
ताका मिलना, सो भी दया भाव का फल है। और पाप के उदय,
बेलि नामक बनस्पति ताका पावना, ये भी दया भाव का फल है। और पाप के उदय,
निर्दयी-भावन के फल करि, अनन्तकाल कुसंग विषैं गमन होता आया। सो ताके सम्वन्ध तैं,
त्रस-स्थावरन की अनेक पर्याय धरि दुख विषैं डूबा। सो अदया का फल है। जब जीव
का संसार निकट होय, तब याकों सत्संग का मिलाप होय है। सो सत्संग का मिलना भी
दया भाव का फल है। ऐसे ऊपर कहे सुर तरु, चिन्तामणि, कामधेनु, पारस, चित्राबेलि, सत्संग
ये तीन जगत में उत्कृष्ट वस्तु हैं। सो दया भाव के फल तैं मिलैं हैं। ऐसा जानि विवेकी पुरुषन
कों पर-जीवन की रक्षा रूप भाव राखना योग्य है। आगे और भी दया भाव का फल बतावैं हैं—

गाथा—सहु हित कय पज्जाओ, आदे सहु थाण सुंद तण होई।
इंद अहमिन्द णगंदउ, किप्पा भावोय होय फल येहो ॥ १३१ ॥

अर्थ—सहु हित कय पज्जाओ कहिये, सर्व कों हितकारी पर्याय। आदे सहु थाण कहिये,
सर्व स्थान विषैं आदर। सुंद तण होई कहिये, सुंदर शरीर होय। इंद कहिये, इंद्र पद। अहमिन्द
कहिये, अहमिन्द्र पद। णगंदउ कहिये, नागेन्द्र पद। किप्पा भावोय होय फल येहो कहिये, दया
भाव का फल ऐसा होय है। भावार्थ—जिनका मुख देखतें ही सर्व जीवन कूं सुख उपजै,
विश्वास उपजै, मोह उपजै, ऐसी सुंदर काया पावनी, सो दया भाव का फल है। दया-
भाव बिना महा कुरूप, भयानीक, रौद्र आकार, सर्व कों अरति उपजावै ऐसा शरीर पावैं है।

और जिन जीवन का जगह-जगह आव-आदर होय, जिनकूं देख सर्व प्राणी प्रीति भाव करैं, ऐसा आदेय कर्म के उदयवारा सर्व कों वल्लभ होय। सो दया भाव का फल जानना। और जाका शरीर महा सुंदर, कामदेव के शरीर की शोभा कूं जीतै, देवन के मन कों मोह उपजावै, अद्भुत शोभाकारी शरीर, सो दया भाव का फल है। और ग्लानि उपजावनहारा, विकट, असुहावना, कुरूप इत्यादिक अशुभ कर्म के उदय का शरीर पावना, सो निर्दई भाव का फल है। और देवन का नाथ, असंख्याते देव-देवी जिसकी आज्ञा मानैं, आय-आय महा-भक्ति करि अपना शीश नमावैं, सर्व देव जाकी स्तुति करैं, ऐसा इन्द्र पद का पावना, सो भी दया भाव का फल है। तथा कल्पातीत जो देव हैं, जिनकी महिमा वचन–अगोचर है। जितना सुख सर्व कल्पवासी सोलहों स्वर्गों के इन्द्र–देवन का है, तिन तैं अधिक कल्पातीत जो अहिमिन्द्र तिनका है। यहां प्रश्न–जो तुमने कह्या कि कल्पवासी देव–इन्द्रन तैं अह-मिन्द्रन कैं सुख अधिक है। सो कल्पवासी देव–इंद्रन कैं तो अनेक देवांगना हैं। तिन सहित सुख भोगैं हैं। और अनेक देव आय–आय शीश नमावैं हैं। असंख्याते देवों के नाथ हैं। पंचेन्द्री सम्बन्धी सुख, मान पोषवे सम्बन्धी सुख, सो सर्व इन्द्रन कैं प्रत्यक्ष दीखैं हैं। परन्तु अहिमिन्द्रों के देवांगना नाहीं, कोऊ आज्ञाकारी सेवक–देव नाहीं। तौ इनकैं कल्पवासी इन्द्रन तैं अधिक सुख कैसे सम्भवै ? ताका समाधान–भो भव्य! तुम चित्त देय सुनो। सुख के दोय भेद हैं। एक तो संक्लेशता सहित सुख, एक निराकुलता

सहित सुख। सो संक्लेश सुख तैं, निराकुल सुख अधिक है। जैसे एक पुरुष अपनी रत्नों की पोट अपने शीश पै धरै, अपने घर कौं, राह में चल्या जाय है। अरु भले मोदक खावता जाय है। ताकरि सुखी है। और एक पुरुष अपने मन्दिर में तिष्ठता, शीतल जल पीवता, भला मोदक खाय के सुखी है। इन दोऊन में तूं विचार, जो विशेष सुखी कौन है? जाके शीश मोट है अरु मोदक खावता राह चलता जाय है, ताका सुख तौ आकुलता सहित है। और शीश भार रहित, एक स्थान तिष्ठता मोदक खाय, सो सुख निराकुल है। सो कल्पवासी का सुख तौ शीश गठियावारे का सा है। अरु अहमिन्द्रन का सुख, एक स्थान तिष्ठनेहारे समान है। ऐसा जानना। और सुनौं, जो व्रती पुरुष हैं, सो तौ मंद कषायन करि सुखी हैं। और इन्द्र–चक्री ये सुखी हैं सो संक्लेश–सुखी हैं। ताही तैं देव, इन्द्र, चक्री आदि बड़े २ पदधारी, व्रती पुरुषन कौं पूजें हैं, सुश्रूषा करैं हैं। अरु ऐसी याचना करैं हैं। जो हे गुरो! तुम्हारी भक्ति के फल तैं, हमारे भी आप कैसा निराकुल–स्वाधीन सुख होय। अरु हमारे शान्ति भाव प्रकटै। ऐसी प्रार्थना करैं हैं। सो यहां भी निराकुल सुख की महिमा आई। तैसे ही इन्द्र–देवन का सुख तौ साकुल है। और कल्पातीतन का सुख निराकुल है, मन्द कषाय रूप है। तातैं कल्पातीतन तैं कल्पवासीन का सुख अधिक जानना। तथा जैसे एक पांवरा–खुजली के रोग वाला पुरुष, ताने एक टटरे का टूंक पाया। सो तिस टटेरे के टूंक तैं अपना तन खुजाय, सुखी भया। सो

टटेरे में कहा सुख है ? परन्तु याके तन में खुजली का रोग है। सो टटेरे तैं खुजाया, तब खाजि का दुख मिटने तैं कछु सुखी भया। और कोई पुरुष खाज रहित सुखी है। सो ये भी सुखी है। सो इन दोऊन में खुजली रोग बारे तैं, उस निरोगी कैं बड़ा सुख है। तातें हे भव्य! देवांगना के सुख की वांच्छा सो ही भया खुजली का रोग, सो जब देवांगना का निमित्त पावै, तब किञ्चित् सुखी होय है। सो ये खुजली वाले रोगी समानि है। जब काम रूपी खुजली चलै, तब देवाङ्गना रूप टटेरा तैं खुजाय सुखी होय। सो कल्पवासी देव-इन्द्रन का सुख, देवाङ्गना का जेसा जानना। अरु अहमिन्द्रन का सुख है सो खुजली रहित, निरोगी पुरुष जैसा है। इन कल्पातीतन कैं, काम रूप खुजली रोग नाहीं। तातैं ये परम सुखी हैं। कल्पवासीन कैं काम रोग है। अरु कल्पातीतन का रोग रहित सुख है। ऐसे तेरे प्रश्न का उत्तर जानना। सो ऐसा जो अहमिन्द्र पद है, सो उत्तम दया का फल है। और भवनवासी देवन का नाथ नागेन्द्र ताका पद, सो भी करुणा का फल है। तातैं हे भव्योत्तम ! ये ऊपर कहे उत्कृष्ट पद, सो इन सर्व के सुख, सर्व दया भाव का फल है। ऐसा जानि विवेकी पुरुषन कौं सर्व हितकारिणी जो दया, ताकौं धारणा योग्य है। आगे और भी दया भाव की महिमा कहिये है—

गाथा—तण वीजय बहु दासऊ, भय रहियो सोक तीत चतुयायो।
तणांत लव चिर सुहियो, ए किप्पा फल होय सुह आदा ॥ १३२ ॥

अर्थ—तण वीजय कहिये, तन का वीर्य। बहु दासऊ कहिये, बहुत दास। भय रहियो कहिये, भय रहित। सोक तीत कहिये, शोक रहित। चतुयायो कहिये, चतुर। तणांत लव कहिये, तनके अन्त लूं। चिर सुहियो कहिये, बहुत काल तक सुखी। एकिप्पा फल होय सुह आदा कहिये, हे आत्मा! ये दया भाव का फल है। भावार्थ—शरीर विषैं, बड़ा वीर्य होय। सो जैसे चक्री में षट्-खण्ड के मनुष्यन तें अधिक पराक्रम होय है। ऐसा बल पावना। तथा तीन खण्ड के मनुष्यन में जेता बल होय, तेता पराक्रम एक वासुदेव में होय, जैसा जोर पावना। तथा कोड़ि योद्धान का बल एक पुरुष में होय, ऐसा कोटी भट का बल पावना। लाख जोधान कों एकला जीतै, सो लख भट है। ऐसा बल पावना। सहस योद्धा जीतै, सौ सहस्र भट का बल पावना। शत भट कों जीतै, सो शत भट होना। ऐसे कहे जो पराक्रम, सो सब दया का फल है। जिन जीवन नें हिंसा करि पर-जीव घाते हैं। ते जीव भवांतर में एकेन्द्रिय-विकलत्रय में हीन—शक्ति धारी उपजैं हैं। और कदाचित् तिर्यंच-पंचेन्द्रिय उपजैं, तथा मनुष्य उपजैं तो दीन, रोगी, शक्ति रहित, दरिद्री, हीन भागी होंय। सो ये भी पर जीवन कौं दीन जानि, तिनको घात का फल जानना। और अनेक सेवक, बड़े-बड़े सामन्त, महा बल के धारी योधा, पराक्रम धारी पै आय—आय हस्त जोड़ नमस्कार करैं। ऐसे बली, मानी राजा हजारौं जाकी सेवा करैं, आज्ञा याचैं, विनय करैं, सो ऐसा पद पावना भी दया भाव

का फल है। और पर जीवन की सेवा आय–आय करना, हस्त जोड़ आज्ञा माननी, सो हिंसा भाव का फल है। और जिननैं परभव में तीर, गोली, गिलोल, लाठी, मूकी, शस्त्रादिक तैं पर जीवन कूं भय उपजाया होय। ताके पाप फल तैं भवान्तर में आय मनुष्य–पशु में उपजै, तहां भयानीक रहै। सदीव ताका हृदय, भय तैं कम्पायमान होय। सो भय के सात भेद हैं। इस भव का भय, पर भव का भय, मरण का भय, रोग का भय, अनरक्षा भय, गुप्त भय और अकस्मात् भय। ये नाम हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप बताइये हैं। तहां इस पर्याय में मोकों कछु दुःख नहीं होय। ऐसा विचार राखना, सो इस भव का भय है।१। और पर भव में मोकौं तिर्यंच गति के दुःख नहीं होंय, नरक के दुख नहीं होंय तो भला है। ऐसे विचार का नाम, परलोक का भय है।२। मरण समय महा वेदना होती सुनिये है। सो मरण समय मोकों वेदना नहीं होय, तो भला है। ऐसे विचार का नाम, मरण भय है।३। और जहां औरन की अनेक रोग-वेदना देख, भयवन्त होना। जो ये रोग के बड़े दुःख हैं, मोकों कोई बड़ा रोग नहीं होय, तो भला है। ऐसे भय रूप रहना, सो रोग का भय है।४। और जहां यह कहना कि जो मेरे कोई सहायक नाहीं। सहाय विना सुख कैसै होय ? मैं अशक्त हों। ऐसे भय रूप होय विचार करना, सो अनरक्षा भय है।५। और यहां मोकों तथा वहां मोकों, कोई भय नहीं होय। मैं इस घर में बैठा हों, सो घर नहीं गिर पड़ै। तथा इस घर में कोई सर्पादि दुष्ट जीव मोकों खाय नहीं। तथा कोई बैरी मोकों मारै नहीं।

इत्यादिक भय रूप भाव रहना, सो गुप्त भय है। ६। और मोकों कोई अचानक—अकस्मात्
भय नहीं होय, तो भला है। ऐसे भावन में भय राखना, सो अकस्मात् भय है। ७। ऐसे
कहे जे सप्त भय, सो जीवन कूं दुख उपजावैं हैं। सो ऐसे भय का होना, सो निर्दय भावन तैं
पर कौं भय उपजाया, ता पाप का फल है। और इन ही सप्त भय तैं रहित, निर्भय भाव,
निशंक होय रहना, सो दया भाव का फल है। और जिननैं पर भव में मन, वचन, काय
करि पर-जीवन कौं शोक कस्या होय, तिस पाप के फल तैं भवान्तर में सदीव शोक रूप
रहैं। और सदीव शोक रहित, सदा सुखी मङ्गलाचार रूप रहना, सो दया भाव का फल
है। और जानैं पर कौं बुद्धि सीखवे में, ज्ञानाभ्यास में, घात करी होय। द्वेष भाव तैं
पराई बुद्धि, घात करी होय। सो बुद्धि रहित मूर्ख उपजै। और अनेक बुद्धि का प्रकाश
पावना, अनेक कला पावनी, धर्म—कर्म सम्बन्धी अनेक चतुराई का पावना, इत्यादिक गुण
होना, सो पर—जीवन की दया का फल है। और कोई जीव माता के गर्भ में आया, सो
नव मास तो उदर में दुखी भया। फेरि जन्म धस्या। सो जन्म तैं ही माता—पिता का मरण
भया। तब असहाय होय, महा दुख तैं आयु के वशाय जीय, तरुण भया। सो भी ऐसे
ही अन्न रहित, पट रहित, धन रहित, मान रहित इत्यादिक महा दुख तैं पर्याय पूरी
करि, पर भव गया। सो ये निर्दयी भावन का फल है। और जब तैं माता के गर्भ में आये,
तब ही तैं सदीव घर में पूरण मंगलाचार होना। और जन्म भया तब तैं ही, अनेक

दान, पूजा, गीत होते भये। अनेक सुख पूर्वक तरुण अवस्था कौं प्राप्त होय, महा सम्पदा के धनी हुए, सो दया भाव का फल है। सो ऐसा जानि अपने सुख कौं, पर जीवन की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी दया भाव की महिमा बतावैं हैं—

गाथा—झहियो आरय झांणउ, तणांगोपांगाय सहु णीको।
सउ बन्धव णेह करयो, कोमल चित्तोय होय किप्पाए॥ १३३॥

अर्थ—झहियो आरय झांणउ कहिये, आर्त्तध्यान करि रहित होय। तणांगोपांगाय सहु णीको कहिये, तन के अंगोपांग सकल शुद्ध होंय। सउ बन्धव णेह करयो कहिये, सकल बांधवन विषैं प्रीति होय। कोमल चित्तोय कहिये, कोमल चित्त का होना। होय किप्पाए कहिये, ये सब दया भाव तैं होय। भावार्थ—जीव कूं नहीं सुहावती जो वस्तु, तिनके मिलाप कर भई जो आरति, तथा भली वस्तु के जाने की आरति, खोटी वस्तु के मिलाप की आरति, रोग होने की तथा भय के मेटने की आरति, तथा आगे मैं ऐसा करूंगा इत्यादिक भावन के विचार कर अपने उर में खेद का करना, सो निर्दय भाव का फल है। और इन च्यारि भेद आर्त्त-भाव रहित निराकुल सुख रूप भाव रहना, यह दया का फल है। और जिननैं अंगोपांग सहित सुघड़ शरीर पाया होय, सो दया का फल है। तिन अंगोपांग के नाम हस्त दोय, पांव दोय, छाती, पीठ, मस्तक और नितम्ब ये अष्ट अङ्ग हैं। सो इनका शुभ—शास्त्रों प्रमाण आकार पावना, सो करुणा भाव का फल है। और केई नेत्र रहित, केई जिह्वा रहित, केई श्रोत्र

रहित इत्यादिक उपांग रहित होना। तथा पांव रहित, हाथ रहित होना। अंगुली, नासिकादि अंगोपांग करि हीन होना। महा विकट शरीर का आकार, भयानीक पांव, कुरूप होना, महा कुघाट शरीर पावना, ये सब निर्दय परणाम का फल है। और सर्व कुटुम्ब माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री इत्यादिक सर्व बांधव सुखकारी मिलना, सो दया भाव का फल है। पुत्र भला, ताकूं पिता खोटा। भला पिता कूं, पुत्र खोटा। भली माता के पुत्र-पुत्री दोऊ खोटे। पुत्र-पुत्री कों माता खोटी। परस्पर भाई खोटे। भली स्त्री कूं भर्तार खोटा। भले भर्तार कूं, स्त्री खोटी। इत्यादिक परस्पर कुटुम्ब विषैं विरोध भाव। केई महा क्रोधी, केई मानी, केई दगाबाज, केई लोभी, केई कुव्यसनी, केई चोर, केई ज्वारी, केई पाखंडी और केई परस्पर बांधव द्वेष सहित विरोधी मिलैं, सो हिंसा भाव किये, तिन का फल है। और जिन जीवन के दीरघ पुन्य का फल उदय होय, सो कोमल चित्त पावैं। ताकैं कोई तैं द्वेष भाव नाहीं। कोई कूं दुख नहीं वांच्छैं। सर्व का हित वांच्छनहारा ऐसा कोमल चित्त पावना, सो दया भाव का फल है। और जाकौं पर जीव बहुत दुखी देख, दया नहीं उपजै। ऐसा कठोर चित्त पावना, सो निर्दय भाव का फल है। ऐसे ऊपर कहे शुभ लक्षण, आरति रहित शुभ भाव, शुद्ध अंगोपांग, कुटुम्ब मोही, कोमल चित्त ये सब शुद्ध सामग्री पावना, सो दया-भाव का फल है। आगे करुणा भाव की महिमा और भी कहिये है—

गाथा—कम्म हणी शिव कएणी, तणी भव णीर वोर पड कायो।

जणणी इव जीय रखय, किप्पा इव जोय होय शिव आदा ॥ १३४ ॥

अर्थ—कम्म हणी कहिये, कर्म नाश करनी । शिव कएणी कहिये, मोक्ष कारणी । तणी भव णीर कहिये, संसार-जल कों जहाज । वीर पड कायो कहिये, पट् काय कों भाई सम । जणणी इव जीय रखय कहिये, माता समान जीव की रक्षा करनहारी । किप्पा इव जोय होय शिव आदा कहिये, दयाभाव कों ऐसा जानै तो यह आत्मा मोक्ष होय । भावार्थ—धर्म के अनेक अंग हैं । तप, जप, संयम, व्रत, ध्यान, नग्न रहना, बड़े-बड़े तप करना । पक्ष, मास, वर्ष के अनशन करना। महाव्रत, समिति, गुप्ति पालना । इन्द्रियन का जीतना । भूख-प्यास सहना। पञ्चाग्नि तपना । शीश पै केशन का बधावना । चर्मादिक तैं शरीर ढाँकना । वस्त्र का त्याग करना । ऊर्ध्व पांव, अधो शीश भूलना । भूमि विषैं गड़ि मरना । जीवत ही अग्नि में जरना। पर्वत पात करना । जल प्रवाह लेना । कंद, मूल, वनस्पति खावना । अन्न तज, दूध-मठा पीवना । इत्यादिक अनेक कष्ट मारग हैं । सो यह जीव, धर्म के निमित्त अनेक कष्ट खाय है । सो ये कहे जो कष्ट, सो दया भाव विना मोक्ष मारग नहीं करैं । सर्व वृथा ही जांय हैं । तातैं जेते धर्म अंग हैं, तिनमें यह जीव-दया सर्व का मूल है । कैसी है यह दया, सर्व कर्मन की काटनहारी है । दया भाव विना, निर्दयी जीवों के कर्म कटै नाहीं । फेरि यह दया कैसी है, या बिना सिद्ध पद नहीं होय । कैसा है सिद्ध पद, जन्म-मरण रहित है। निराकार, निरंजन-कर्म अंजन रहित है। फेरि कैसा है मोक्ष पद; देव, इन्द्र, चक्री, धरणेन्द्रादि महान

पुरुषों करि पूजवे योग्य है। सो ऐसे सिद्ध पद कौं यह दया भाव ही देय है। दया रहित प्राणीन कौं ऐसा सिद्ध पद होता नाहीं। बहुरि कैसी है दया, संसार-समुद्र के दुख-जल, ताहि पारि करवे कौं, जहाज समान है। दया नाव बिना, संसार-सागर तिरया नहीं जाय है। हिंसा-धर्म है सो पाहन-जहाज समानि है। सो ये आप भी डूबै है और पाहन-नाव का आश्रय लेनेहारा भी डूबै है। तातें हिंसा तजि, दया भाव राखना भला है। बहुरि ये दया भावना कैसी है। षट् कायक जीवन की रक्षा करवे कौं भाई समान है। कैसे हैं षट् कायक, सो कहिये हैं। पृथ्वी कायिक तौ, मिट्टी-पाषाणादिक के जीव हैं। अप-कायिक, जल के जीव हैं। तेज कायिक, अग्नि के जीव हैं। वायु कायिक, पवन के जीव हैं। बनस्पति कायिक, हरी-पीली बेलि, घास, वृक्ष। इन आदि अनेक तन के धारी पञ्च स्थावर हैं। और त्रस जो वेइन्द्रिय-इल्ली (लट), जोंक, नारुवा, केंचुवा आदि वेइन्द्रिय हैं। तेइन्द्रिय-चींटी, चींटा, खटमल, कुंथुवा, इन आदि अनेक तन के धारी तेइन्द्रिय हैं। और चौइन्द्रिय में मक्खी, मच्छर, भ्रमर, टिड्डी, इन आदि चउ इन्द्रिय हैं। पंचेन्द्रिय में देव, मनुष्य तिर्यंच, नारक ये सर्व त्रस हैं। सो ऐसे कहे जो त्रस-स्थावर षट् कायिक जीव, सो इनकी रक्षा करवे कौं दया भाव, भाई समानि है। और इन षट् कायिक जीवन की रक्षा करवे कौं दया, माता समानि है। जैसे माता, पुत्र की रक्षा करै है। ऐसे ही दया, सब जीवों की रक्षा करै है। तातें हे भव्यात्मा, ये दया सर्व गुण भण्डार जानि, याका साधन करि। याके

उत्कृष्ट सेवन को जानैं, तो कूं मोक्ष होयगी। यहां प्रश्न—जो दया के उत्कृष्ट जानैं ही मोक्ष कैसे होय ? दया पालैगा तो मोक्ष होयगी। ताका समाधान—जो हे भव्य, जो तैंने कही सो सत्य है। परन्तु जाकौं उत्कृष्ट जानैं, तो ताका सेवन भी करै। तातैं प्रथम पक्का श्रद्धान करावना, कि दया तैं मोक्ष होय है। जैसे लौकिक में भी ऐसी प्रवृत्ति देखिये है। जो जाकौं बड़ा मानैं, तो ताके वचन की भी प्रतीति करै है। जो फलाना बड़ा आदमी है, उदार है, ताकी सेवा किये अनेक जीव धनवान् होय सुखी भये। सो मोकौं भी याकी सेवा मिलै, तौ मोकौं भी धन मिलै। मैं भी सुखी होऊं। ऐसे पुरुष की सेवा बिना, चाकरी बिना, दरिद्रता जाती नाहीं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान होय है। तब पीछे यह धन का इच्छुक, सुख के निमित्त, उस ऊंच पुरुष की सेवा करवे कौं, वाके पास जाय, मान तजि, नमस्कार करि, बारम्बार शीश नमावै, विनय करै है। ताकी आज्ञा प्रमाण करै। निश-दिन सेवा विषैं सावधान रहै। अनेक भूख—प्यासादिक कष्ट सह करि भी रहै। कष्ट सहै, परन्तु उसकी आज्ञा भंग नहीं करै। जब वह बड़ा पुरुष, याकी सेवा बहुत प्रीति सहित जानैं, तब वह उत्कृष्ट पुरुष याकौं धन देय सुखी करै है। और कदाचित् सेवा करनेहारे कौं बड़े पुरुष का उत्कृष्टपना भासै ही नाहीं, बड़ा ही नहीं जानै, तौ सेवा कैसे करै ? अरु सेवा नहीं करै, तौ याका दुख—दरिद्र कैसे मिटै ? तातैं प्रथम ताके बड़प्पन कौं जानै, तौ पीछे श्रद्धान होय। जो ये बड़ा पुरुष है, याकी सेवा किये सुखी होऊंगा, तब सेवा करै। ऐसी प्रतीति लौकिक में प्रत्यक्ष देखिये है।

सो पहिले जानपना होय। पीछे श्रद्धान होय। ता पीछे ताकी सेवा करी जाय। तैसे ही दया-भाव की उत्कृष्टता पहिले जानै, तौ पीछे ताका दृढ़ श्रद्धान करै। पीछे दया कौं उत्कृष्ट जानि, ताकी रक्षा करै-सेवा करै। दया धर्म की पूजा करै-विनय करै। जब याके ऐसा सांचा दृढ़ श्रद्धान प्रगटैगा। तब इस निकट संसारी भव्य के ऐसे परणाम होंयगे, जो सुख का समूह तौ मोक्ष स्थान है। अरु मोक्ष है, सो दया-भाव तैं होय है। सो मैं महा गृहारम्भ विषैं पड़्या हों। तहां पर-जीवन की रक्षा होती नाहीं। मोकों मोक्ष के सुख कैसे होंय? तातैं सर्व प्रकार दया-मारग सद्गुरु जानैं हैं। वह गुरु दया का भण्डार बाजैं हैं। तातैं मैं गुरु के पास जाय, विनती करौं। तौ दया के समूह मोपै कृपा करके, मेरा मनोरथ पूरा करैंगे। ऐसा विचार करि, ये भव्यात्मा, मोक्षाभिलाषी, श्री गुरु पै जाय, नमस्कार करि, तीन प्रदक्षिणा देय, महा विनय सहित हस्त जोड़ खड़ा होय, अपने अन्तरंग का अभिप्राय कहता भया। हे नाथ! हे प्रभु! हे दीन दयालु! मैंने सांसारिक सुख बहुत भोगे। परन्तु हे नाथ! मेरी वांच्छा पूर्ण नहीं भई। जैसे कोई अन्तरंग ज्वर का रोगी, सदीव क्षीण तन होय। सो तन पुष्ट करवे की बड़ी इच्छा जाकैं, सो तन स्थूल करवे कौं अनेक पुष्ट-गरिष्ट भोजन करै। परन्तु पुष्ट होता नाहीं, दिन-प्रति क्षीण होता जाय है। याकी इच्छा पूरती नाहीं। तातैं दुख ही बधै है। तैसे ही हे नाथ! मैंने सुखी होयवे कूं अनेक भोग-सामग्री पाय-पाय भोगी। परन्तु सम्पूर्ण सुखी नहीं भया। सो मेरे सर्व सुखी होयवे की इच्छा बनी रहै है।

मेरैं इच्छा नाम रोग का महा दुख, मिटता नाहीं। तातैं भो जगत गुरु! जैसे मोकों सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति होय, सो ही उपदेश करौ। जाकै धारण किये, मैं सुखी होऊं। अब मोकों यह इन्द्रिय जनित सुख है सो महा भय उपजावै है, प्रिय नाहीं। तातैं अब आज्ञा करौ, सो ही करूं। तब योगीश्वर ने जानी, जो ये जीव मोक्ष सुख कौं बड़ा-सर्वोत्कृष्ट जानै है, ताही के योग करि याके दृढ़ श्रद्धान प्रगट्या है। ऐसा विचार, आचार्य दया भाव करि कहते भये। भो भव्य! तैंने भली विचारी। यह सांसारिक भोग, अज्ञानी जीवन कौं अपने सुख की आभासा सी दिखाय, मोह उपजावैं हैं। बाकी ये सर्व-इन्द्रिय भोग, रोग करि पूरित हैं। गुण रहित हैं। जैसे शरीर बाह्य में मोही जीवन कौं सुख की आभास सी बताय, मोहित करै है। बाकी सुख रहित है। सप्त धातु मई, श्रोणित, पक्व रुधिर, अस्थि, रोम, तिन-करि स्थान-स्थान पूरित है। ऊपर चरम तैं लिपटा है। विनाशीक है। इत्यादिक अनेक अवगुण करि भरा है। तातैं हे भव्य! ऐसा विचार, जो ये शरीर विनश्वर है। सो याके आसरे जो इन्द्रिय जनित सुख, सो ये कैसे स्थिरीभूत रहेंगे? और हे भव्य, देख। शरीर तौ ऐसा है, अरु तूं इस शरीर मे बैठा है। बहुत काल का, या तन के मोह करि, इसमें बंध्या है। तातैं, तूं विषयन तैं उदासीन भया है। सो हे भव्यात्मा, ऐसा ही तूं इस शरीर तैं भी उदास होऊ। ज्यों तेरी अभिलाषा पूर्ण होय। क्योंकि ये शरीर विनाशीक है। तातैं अब जेते याकी स्थिति है तेते तूं यातैं दीक्षा अङ्गीकार कर, उत्कृष्ट दया धर्म पाल। और मोक्ष

जा। क्योंकि जो त्रस–स्थावर की सर्व प्रकार दया, इस गृहस्थावस्था में तौ पलै नाहीं।
काहे तैं, जो इस परिग्रह के संयोग तैं उत्कृष्ट दया पलती नाहीं। लंगोट मात्र परिग्रह होय,
तौ भी सम्पूर्ण दया नहीं बनै, तो इस बहुत परिग्रह में कैसे पलै? तातैं हे भव्यात्मा,
सर्व प्रकार त्रस–स्थावर जीवन की दया, महाव्रत भये पलै। तातैं अब तूं भले प्रकार
महाव्रत अङ्गीकार कर। समता भाव धारि, शुभ भाव धारि। त्रस–स्थावर जीवन की रक्षा
के निमित्त सर्व जीवन तैं क्षमा भाव करि कैं, सर्व कूं अभय दान देय। तब तूं सर्व दया
का धारी भया। जातैं अब तेरे नूतन कर्म का वन्ध होयगा नाहीं। और आगे तैंने
अज्ञानावस्था में इन्द्रिय और शरीर के पोषवे कूं हिंसा करि कर्म कों वाँधे थे, सो याही
शरीर तैं नाना प्रकार तप करकै, पिछले कर्मन का नाश करि। सर्व कर्म का नाश भये, तूं
मोक्ष–सुख पावैगा। सो वह मोक्ष-सुख अविनाशी है, अखण्ड है, अनंत है। ये सुख भये
पीछे जाता नाहीं। हे भव्य, यहां तेरी अभिलाषा पूरी होयगी। ऐसे आचार्य ने कह्या।
तब शिष्य, गुरु की आज्ञा सुनि, महा विनय तैं उल्लास करि, ऐसा विचारता भया। जो आज
का दिन धन्य है। आजि मोकों गुरु ने ऐसा इलाज वताया, जा करि मेरे पूरव किये पाप का
नाश होयगा। और अनन्त सुख का स्थान, सर्व कर्म रहित निरंजन पद, केवलज्ञान सहित
सिद्ध पद की प्राप्ति होयगी। सो अब तौ श्री गुरु के प्रसाद करि, मैं मोक्ष को पाऊंगा। सो ये उप-
कार गुरुन का है। ये गुरु वांछित सुख देने कूं कल्पवृक्ष समान हैं। परन्तु कल्पवृक्ष तौ एक

स्थान ही स्थिरीभूत रहै। यापै कोई चल करि आवै, तौ फल पावै। घर बैठे देने नाहीं जाय है। और तामें भी यह भोजन-भूषणादि इन्द्रिय जनित सुख देय, सो भी शाश्वत नाहीं। किञ्चित् काल सुखसा दिखाय विनश जांय। और श्री गुरु कल्पवृक्ष हैं। सो भव्य जीवन कूं घर बैठे ही वांच्छित सुख देवे कूं, आप देश विहार करि, सब की आशा पूरैं हैं। तातैं श्री गुरु धन्य हैं। जिनकी क्रिया करि संसारी जीव मोक्ष पावैं। ऐसे नाना प्रकार गुरु की महिमा करि, पीछे शिष्य गुरु के बताये नाना प्रकार तप तिनकौं करि, सर्व कर्म नाश के, मोक्ष—रानी का भर्त्तार होय है। तातैं प्रथम जानना होय, पीछे जानी वस्तु का पक्का श्रद्धान होय। सो श्रद्धान होय, तो कष्ट पाय कें भी अपने भले का कार्य करै ही करै। ऐसे तेरे प्रश्न का समाधान जानना। तातैं हे भव्य, पहिले तो भली-बुरी वस्तु का जानपना होय। भले प्रकार जाने पीछे, ताका दृढ़ श्रद्धान होय और भली-बुरी का निरधार करै है। और कोई बाल-बुद्धि पदार्थ कौं जानैं। परन्तु तामें ताका ग्रहण-त्याग नहीं करि जानैं। ऐसे मिथ्यादृष्टी, मोहित, भोरे जीव, संसार में बहुत हैं। इनके ज्ञान के जानपने का, इनकौं कछु नफा नाहीं। इन मिथ्याज्ञानीन का जानपना, निज-पर जीवन के ठगवे कौं प्रगट होय हैं। और सम्यक्त्व सहित जानपना है सो तामें पहिले श्रद्धान करि, पीछे तिनका त्याग-ग्रहण होय है। सो जो अपने भले योग्य, हितकारी, परभव में सुखकारी होय सो ताका तो ग्रहण करै। और जो पदार्थ आपकौं इस भव-परभव में दुखकारी हौंय, पाप बंध करता हौंय, परंपराय जातैं

दुख होता जानैं, तिन पदार्थन का त्याग करै। ऐसा त्याग-ग्रहण करि सम्यक्दृष्टी जीव
नैं ऐसा विचार्या। जा सर्व धर्म-अंगन में एक दया भाव है, सो मुख्य धर्म है। काहे तें जो
तप, संयम, दान, पूजादि हैं सो तो धर्म के अंग हैं। और जीव-दया है, सो ये मूल धर्म है। इस
जीव दया के पालवे के निमित्त, धर्म है। सो हिंसा के कारण राज्य, गृहारम्भ छाँड़ि अपने
तन सम्बन्धी भोगन तैं ममत्व भाव छोड़ कैं, पीछे मोह तजि, नग्न काय होय, सर्व पट्-
कायिक जीवन के सुख देवे कौं, आप यती का पद धार्या। तहां सर्व प्रकार जीवन की
रक्षा करि, जगत्पूज्य सिद्ध पद ताकौं पाय, मोक्ष स्थान विषैं, अखण्ड सुखी होता भया।
तातैं यह बात सिद्ध भई, कि जो दया ही धर्म है। दया बिना कोई धर्म कहै, सो वृथा है।
और लौकिक में भी बाल-गोपाल दया ही कौं धर्म कहे हैं। तथा और देखो, इस दया की
पट् मत विषैं प्रसिद्धि है। व सर्व जीव यश गावैं हैं। देखो जो अज्ञान-रंक भूखा होय, सो भी
ऐसा कहै है। कि जो हम भूखे हैं सो कोई दया धर्म का धारी होय, सो हमारी दया कर हमारा
दुख मैटो। सो देखो, रंक भी ऐसा जानैं हैं। और दया कौं ही धर्म कहैं हैं। तौ जे विवेकी
हैं सो तौ दया में धर्म कहैं ही। तातैं ऐसा जानना, जो ये दया सो ही धर्म है। तातैं
जगह-जगह जिनेश्वर देव ने भी ऐसा ही कह्या है। कि दया धर्म है। सो अब ऐसा विचार
कैं, धर्म एक दया ही का निश्चय करना। अब ऐते भी कोई प्राणी, जीव घात में ही धर्म
मानैं, तो याका चित्त ही महा कठोर है। याका परभव बिगड़ना है व दुखी होना है। याकौं

परभव में दुखदायक पर्याय उपजैगी। दीन, दरिद्री, अन्धा, असहाय, हीन होना है। तथा नारकी व पशु होना है। इन स्थान में महा दुखी होयगा। इसका किया ये ही भोगवेगा। इसके श्रद्धान की यही जानै। परन्तु हमने तौ ऐसा ठीक किया, कि जो धर्म एक दया–भाव है। तातैं जिनकौं परम सुख की इच्छा होय। सो धर्मात्मा, सर्व जीवन तैं क्षमा भाव करि, षट् काय जीवन कौं अभय दान देओ। बहुत कहवे करि कहा। ऐसा अवसर फिर मिलना कठिन है। इति श्री सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हिंसा निषेध, दया का माहात्म वर्णनो नाम, तीसवां पर्व सम्पूर्णम्।

आगे राज लक्षणों का स्वरूप कहिये है। जाकरि प्रजा सुखी होय, राजा का तेज-प्रताप बधै, लक्ष्मी बधै, यश होय, सुखी रहै, पर भव सुधरै। ऐसे गुण श्री आदि पुराण जी अनुसार कहिये है—

गाथा—षट् गुणा चव विद्याए, पण बल अणि होय सुभग गुण सेसा।
सउ णिप जस लछि पावइ, फुण तव लेय होय सिव णाहो ॥ १३५ ॥

अर्थ—षट् गुणा चव विद्याए कहिये, छह गुणा अरु च्यारि विद्या। पणा बल अणि होय सुभग गुण सेसा कहिये, पञ्च बल और अनेक गुण होंय। सउ णिप जस लछि पावइ कहिये, सो राजा यश-सम्पदा पावै। फुण तव लेय होय सिव णाहो कहिये, फिर तप लेय मोक्ष लक्ष्मी का भरतार होय। भावार्थ—ऐसे षट् गुण, च्यारि विद्या, अरु पंच–बल ये राजान के गुण हैं। सो जिनमें ये गुण होंय, सो भला प्रजापति है। सो ही प्रथम षट् गुण कहिये हैं। प्रथम नाम-संधि, विग्रह, यान, आसन, संस्थान, और आश्रय। ये षट् भेद हैं। अब इनका विशेष कहिये

है। तहां कोई आप तैं अधिक बलवान राजा, बड़ी फौज का धारी होय। तथा आगे कहेंगे राजाओं के पांच गुण, सो आप तैं पर–राजा के पास बहुत हौंय। आप तैं पंच बल भी तिस राजा के पास बलवान् हौंय। जातैं युद्ध किये जीतिये नाहीं। ऐसा बलवान बैरी होय। तौ ताकौं ग्राम, देश, धरती देय राजी कीजिये। हस्ती–घोटकादि दीजिये। अपने घर का उत्तम रतन–धन दीजिये। ताकी विनय कीजिये। ताकी सेवा–चाकरी कीजिये। जैसे बनै तैसे, प्रबल बैरी कूं राजी कीजिये। तासों स्नेह होय, सो ही कीजिये। ताका नाम संधि नामा गुण है। सो जो विवेकी राजा–मंत्री, भली बुद्धि कौं धरैं हैं। सो इस संधि गुण कौं अवसर पाय प्रगट करि, अपना राज्य राख, सुखी हौंय हैं। और ये संधि गुण जामें नहीं होय, तौ अपने तैं विशेष जोरावर राजा तैं युद्ध करि, रावण की नाँईं मरण पावै। कुल का, तन का, धन का क्षय होय। राज्य जाय, दुखी होय। जातें विवेकी राजा हैं ते कोई ऐसे ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, जान के इस संधि गुण के बल करि, बैरी कौं उपशान्त करैं हैं। आप तैं जोरावर राजा तैं शीश नमावते, उसकी सेवा करते, अपना मान-खंड नहीं मानैं। बलवान्–सेवा, अपनी रक्षा का कारण जानि, संधि करैं हैं। ये विवेकी राजा का धर्म है। इति प्रथम संधि गुण॥ १॥ आगे विग्रह गुण कहिये है। तहां और कोई राजा प्रबल–बैरी, धीठ-बुद्धि होय। धन देते, देश देते, चाकरी कबूल करते, हस्ती–घोटकादि देते, इत्यादिक विनय करते जो वैरी उपशान्त नहीं होय, तो पीछे युद्ध करै। युद्ध में शंका नाहीं करे। निशंक होय

वैरी तैं युद्ध करै। अपना पुरुषार्थ-पराक्रम प्रगट करै। सो विग्रह नाम गुण है॥२॥ आगे यान गुण है सो कहिये है। जे महान् वंश के उपजे राजकुमार, तिनकौं यान गुण में प्रवीणपना चाहिये। सो ही बताईये हैं। हस्ती की असवारी, गज का जीतना, गज क्रीड़ादि में गज को चलावना, अपने वश हस्ती करना। इन आदि गज-असवारी में सावधान रहना। और घोटक चढ़ना, दौड़ावना, दुष्ट अश्व को वशीभूत करना इत्यादिक घोड़े की असवारी में सावधान होय। तथा रथ के चलावे में सावधान होय। रोज को असवारी जानैं, सिंह की असवारी जानैं। करहा सांड की असवारी करना जानैं। महिष की असवारी, वृषभ की असवारी, गैंडा की असवारी, इत्यादिक असवारिन में प्रवीणता, सो यान गुण है। सो ये गुण, राज-पुत्रन में अवश्य चाहिये। ये गुण नहीं होंय, तो युद्ध हारैं। और अन्य राज-पुत्रन में जांय, तौ लज्जा पावैं। तातें यान गुण चाहिये। इति यान गुण॥ ३॥ आगे आसन गुण कहिये है। राजान में आसन गुण चाहिये। तहां बैठवे की दृढ़ आसन चाहिये। जहां तिष्ठै, तहां एकासन दृढ़ होय बैठे, चला-चल आसन नहीं राखे। कबहूँ कहीं, कबहूँ कहीं, ऐसे चंचल भाव नहीं होय। एक स्थान दृढ़ होय तिष्ठै। तथा देशान्तर गमन करते जहां मुकाम करे, तहां अपने तन की सावधानी करै। जहां जल, तृण, अन्न की प्रचुरता होय, तहां मुकाम करै। तथा सैन्या के लोकन की रक्षा करै। जहां डेरा होय, तहां अपने तन के मोही सेवक-सुभट, तिनके डेरा अपने चौं-तरफ राखि, अपने तन की रक्षा देख, मुकाम करे। इत्यादि सावधानी राखनी। सो आसन गुण कहिये।

ये आसन गुण है ॥ ४ ॥ आगे संस्था गुण कहिये, है—संस्था गुण ताकौं कहिये जो अपने मुख तैं वचन बोलना, सो फेरि अन्यथा (झूठ) नहीं होय । वचन की दृढ़ना राखनी । जो वचन बोल्या, सो ताकी मर्यादा निवाहनी । तन गये भी जो वचन कह्या, ताकौं नहीं उल्लंघिये । जैसे दशरथ राजा ने अपनी रानी कैकई को वर दिया । सो समय पाय वानै पुत्र—भरत कूं राज्य याच्या । सो अयोध्या का राज्य भरत कूं देय, वचन राख्या । तैसे ही राजान कौं अपने वचन की दृढ़ता राखनी, सो संस्था गुण है । ये वचन-दृढ़ का गुण राजा में नहीं होय, तौ ताकी प्रजा दुख पावै । अन्याय विस्तरै । राजा का वचन प्रतीति रहित भये, अपयशादि दोष प्रगटै । तातैं वचन सत्य बोलना, सो संस्था गुण है । इति संस्था गुण ॥५॥ आगे आश्रय गुण कहिये है—सो राजान में आश्रय गुण चाहिये । कोई भयवंत होय, जोरा—वर का सताया, अपने आश्रय आवै । तो आप ताकूं अपने शरण राखै । संतोष उपजावै । तथा आप पै भय आये, आप तैं प्रबल होय ताके आश्रय जाय, सुखी होना । सो अपने तैं बड़े के शरण जावे में, अपना मान खंड नहीं मानना, और अन्य कूं अपने आश्रय राखने में काहू का भय नहीं करना । ये आश्रय नाम गुण है । ये गुण नहीं होय, तो महिमा नहीं पावै । तातैं आश्रय गुण राजान में चाहिये । इति आश्रय गुण ॥६॥ ऐसे राजों के षट् गुण जानना । आगे राजा के सीखवे योग्य च्यारि विद्या हैं, तिन का कथन कहिये है । प्रथम नाम—आन्वीक्षकी विद्या, त्रई विद्या, वार्ता विद्या और दण्डनी विद्या, ये च्यारि हैं । अब इनका सामान्य

स्वरूप कहिये है। जैसे जौंहरी अपनी बुद्धि के योग तें, भले-बुरे रत्न कूं जानैं। तैसे ही विवेकी राजा, प्रथम तो अपने-पराये बल—पराक्रम कौं जानै। ऐसा विचारै, फलाने राजा का पराक्रम ऐसा, उस राजा की सैन्या इतनी, भुजबल ऐसा, ताके एता मुल्क, ऐसा खजाना है। ऐसे-ऐसे सामन्त राजा ताके सेवक हैं। ऐसे बुद्धिमान् मंत्री हैं। और मेरे शरीर का जोर एता है, मेरा एता मुल्क है, एता खजाना है। एते सामंत—सेवक हैं। ऐसे मंत्री हैं। इत्यादिक भेद जानै, सो विवेकी राजा है। और जो अपने-पराये पराक्रम विषैं नहीं समझै, तो आप तैं बड़े बलवान् राजा तैं द्वेष करि, अपना राज्य खोय, दुखी होवै। अपने सेवक, मित्र, प्रजा के लोग इनके स्वभाव कूं जानैं। जो ए बुरा है, ये भला है। ये दुष्ट अंगी है, ये सज्जन अंगी है। ये गुण—लोभी है। ये सत्यवादी है। ये झूठा है। ये सुस्वभाव का धरनहारा है। ये पराया बुरा करनहारा, चुगल है। ये पर के भले का करनहारा है। यह यश का लोभी है। ये धन का लोभी है। ये चोर स्वभावी है। यह क्रोधी है। ये मानी है। यह दगावाज—मायावी है। यह सरल स्वभावी है। यह चित्त का उदार है। यह सूम है। यातैं मोकौं सुख है। यातैं मोकौं निन्दा आवै है। यातैं मेरा यश होय हैं। यह पर कौं पीड़ै है। ये पर का रक्षक है। इत्यादिक विवेक-विद्या, राज पुत्रन कौं सीखना सुखकारी है। याका नाम आनीषकी विद्या है। इस विद्या का ज्ञान होय, तौ अपने ज्ञान-बल तैं, कठोर चित्ती है तिनकौं कोमल करै। यहां प्रश्न-जो कठोर स्वभावी है तिनकौं कोमल स्वभावी कैसे करै? ताका तो स्वभाव ही कठोर

है, सो वस्तु का स्वभाव कैसे मिटै है ? ताका समाधान-जैसे पृथ्वी—काय स्वर्ण, चांदी, तांबा, पीतल, लोहादि अनेक धातु करि, अनेक वर्तन बनैं है। सो ये सर्व ही धातु कठोर हैं। सो भला कारीगर, इन धातून की कठोरता जानि, प्रथम तौ अग्नि मैं तपावै है। पीछे घन तैं, हथौड़े तैं कूटै है। बहुरि तपावै है। ऐसे करते, कछू नरम पड़ै है। तब छोटी हथौड़ी तैं अल्प पीटै है। ऐसे सख्त, महा-कठोर धातु भी विवेकी के हाथ पड़ै है, तब नर्म होय है। तैसे ही दुष्ट मनुष्य है, सो महा कठोर है। तिनकौं विवेकी राजा, अपनी न्याय बुद्धि के बल करि उनकौं, उन योग्य कठोर दण्ड ही देय है। तब दुष्ट प्राणी भी, राजा के दीरघ भय करि, अपनी कठोरता तजि, कोमलता रूप होय हैं। पीछे तिनकौं भला निमित्त मिलै, तौ वे भी अपना भला करैं हैं। ऐसे यह आनीषकी विद्या है। सो महान् वंश में उपजे जो विवेकी राजा, तिनके सीखवे योग्य है॥ १ ॥ आगे दूसरी त्रई विद्या। सो विवेकी राजा शास्त्रन के वेत्ता, जान्या है इस भव-परभव सुधरने का भेद जिननैं, सो महान् बुद्धि, धर्मशास्त्र के वेत्ता, पाप-पुण्य के फल कौं जानि, आप पाप तजि, अनेक धर्म अङ्ग दान-पूजादि तिन रूप परणमैं। और जिन क्रियान तैं पाप बधै, हिंसा होय, दुराचार प्रगटै, ऐसी क्रिया अपने मुल्क में नहीं होने देंय। अनेक पाप क्रिया, अज्ञानी जीवन के करवे की, जिनकौं करि भोरे जीव अपना भव बिगाड़ैं। कुक्रिया करैं, जीव हिंसा होय। इत्यादिक पाप प्रवृत्ति कौं जानि, विवेकी राजा आप तजै, और पर के कल्याण कौं पाप करते तिनकौं मनै करै। अपनी

प्रजा पाप रूप प्रवर्तै, ताकौं दंड देय, धर्म में लगावै। जो प्रजा धर्मात्मा दयाभाव सहित शुद्ध प्रवृत्ति की धारी होय, ताकी रक्षा सहित शुश्रूषा करै। जैसे प्रजा धर्म रूप प्रवर्तै, सो ही कार्य करै। पृथ्वी में शुभाचार बधावै। धर्म क्रिया, भला आचार, आप करै। औरन कौं उपदेश देय पूजा, दान, शील, संयम, तप, व्रत, इत्यादिक धर्म को बधावै। पाप कौं मैटे। निरंतर धर्म सेवन का सोच राखै। संसार-भोग विनश्वर जानि, विषयन में रत नहीं होय। आगे महान् राजा भरत-चक्री आदि बड़े-बड़े पुरुष, राज्य संपदा छोड़, जिनेश्वरी दीक्षा धरि, तप करि, मोक्ष गये। तिनके गुणन की कीर्त्ति करता, वैराग्य भावना का अभिलाषी, प्रजा की रक्षा करता, ऐसे भावन सहित राज्य करै। सो त्रई नाम दूसरी विद्या है ॥ २ ॥ आगे तीसरी वार्त्ता विद्या है। तहां नीति शास्त्रन तैं जानी है राजान की परंपराय जानें। सो यश का अर्थी राजा, अपनी प्रजा कूं पालवे की, सुखी राखवे की है वांच्छा जाकैं। ऐसा सुबुद्धि राजा, प्रजा के न्याय-अन्याय, सुख-दुख, जानिवे कौं फैलाये हैं देश-नगर में हलकारे (गुप्तचर) रूपी नेत्र जानैं। जैसे नेत्रन से सब देखा जाय, तैसे बड़े राजों के नेत्र, हलकारे (दूत) हैं। सो तिन सूं दूर-दूर की बात जानी जाय है। सो विवेकी राजा दसों दिशा हलकारे भेज, पृथ्वी की खबर राखै। स्व-चक्र-पर चक्र की हीनता-अधिकता जानैं। तिन हलकारेन तैं योग्य-अयोग्य सब जानै। सो अपनी प्रजा कौं दुखदाई-चोर, चुगल, पाखंडी, अदेखा, दुराचारी, दीन जीवन कौं सतावनहारा, इत्यादिक दुष्ट जीवन कौं जानि,

अपने मुल्क-देश तैं निकास देय। और जे धर्मात्मा, सज्जन, दयावान्, संतोषी, संयमी, न्यायी इत्यादिक गुण सहित साधु जन होंय, तिनकी सेवा-चाकरी, रक्षा करै। इत्यादिक हलकारान तैं प्रजा की कथा जानै। ऐसी विवेक बढ़ावनहारी यह विद्या, जिम राजा के हृदय में बसै, ताका यश होय। प्रजा सदीव सुखी रहै। यह तीसरी वार्ता विद्या है॥ ३॥ आगे चौथी दण्डनी विद्या है। सो यातैं विवेकी राजा, अपनी न्याय बुद्धि करि, अपनी बस्ती में चोर, चुगल, जो अपनी आज्ञा के प्रतिकूल होय, सप्त व्यसन का उपदेशक होय, तिनकौं दंड देय, दुखी करि, लोकन कौं बतलावै। कि जो कोई न्याय तजि, अन्याय चलैगा। सो ऐसा दुखी होय, दंड पावैगा। और बस्ती में जो भले मनुष्य न्यायवान् होंय, तिनकी रक्षा करै। ये दण्डनी नाम चौथी विद्या है॥ ४॥ ऐसी च्यारि विद्या कही। सो महान् कुल के उपजे, दोऊ पक्ष जिनके पवित्र होंय, ऐसे राजकुमारन कौं सीखना मंगलकारी है। ये सब विद्या, जिस भूपतिके हृदय में तिष्ठैं, सो राजा यश पावै। परंपराय शुभ गति भोग, मोक्ष पावै। इति च्यारि राज्य विद्या। आगे राजा के पंच बल कहिये हैं। प्रथम नाम-भाग्य बल, दैव बल, मंत्र बल, शरीर बल और सामंत बल। अब इन पंच बलन का सामान्य अर्थ कहिये है। जानैं पूर्व-भव में विशेष पुण्य किया होय, सो पुण्य के उदयवाला जीव राज्य पावै। तौ ताकै पुण्य के आगे, अन्य राजा सहज ही भय खाय, आय-आय शीश नमावैं, सेवा करैं, आज्ञा याचैं, अपने मुकुट नमावैं, ताकौं अपना प्रभु मानैं। जैसे तीन खंड का राजा वासुदेव, तथा

षट्खण्ड का राजा चक्रवर्ती है। सो इनका राज्य, पुण्य के उदय का है। क्योंकि जो इनकी दृष्टि महा सौम्य है। वचन महा मिष्ट हैं। तिनकी मूर्ति महा विश्वास उपजावनहारी, सुन्दर, मन कौं मोह उपजावै। महा सज्जन, तिनके वचन सुनतैं पर जीवन कूं समता होय, स्थिरता बंधै। आप तौ ऐसे और इनका बाह्य प्रताप ऐसा कि तिन के भय सूं देव-विद्याधर कंपायमान होंय। कोई आज्ञा भंग नहीं करि सकै। विना भय बताये ही बड़े—बड़े पृथ्वीपति आय—आय मुकुट नमावैं। ऐसा उनके पुण्य का तेज है। जैसे सूरज, मूल में तो तिसकी प्रभा शीतल है परन्तु औरन कौं तेजकारी होय है। तैसे ही सूर्य की नांईं तेज धारै। सो राजाओं का भाग्य बल है ॥१॥ और कर्म जाका भला करै, ताकौं कौन बिगाड़ि सकै? जाकों कर्म भला दिखावै, ताकी बुराई काहू तैं नहीं होय। जैसे रावण तीन खण्ड का नाथ, सर्व विद्याधरन का नाथ, महा-न्यायी, महा बलवान्, अरु जिसके विभीषण-कुम्भकरण से भाई, अरु इन्द्रजीत—मेघनाद से पुत्र जाके। ऐसा रावण जानैं इन्द्र-विद्याधर कौं जीत्या। अरु जीवता पकड़ लाया। ऐसा राक्षसन का पालनहारा, तीन खण्ड का अधिपति। ऐसे बली कौं राम-लक्ष्मण दोई भाईन ने युद्ध में जीत्या। ये कर्म का बल है। जाकौं कर्म जितावै, सो जीतै। जाका कर्म भला करै, ताका भला होय। सो दैव बल है। तथा जैसे मैना सुन्दरी ने कही। सुख-दुख कर्म करै सो होय। तब ताके पिता ने द्वेष-भावतैं कर्म-परीक्षा करवे कूं, अपनी पुत्री श्रीपाल जी कूं, कोढ़ी जानि परनाई। पीछे शुभ कर्म तैं श्रीपाल जी का कुष्ट गया। राज्य पाया।

मैना सुन्दरी आठ हजार रानीन में पट्टरानी होय, सुखी भई। तब ताके पिता ने देख, कर्म-कर्तव्य सांचा जाना। सो यह दैव बल है ॥ २ ॥ और जानें नाना प्रकार की विद्या का साधन करि, अनेक विद्यान कौं अपने आधीन करी। तिन विद्यान के प्रसाद करि अनेक मानी राजा जीति, अपनी आज्ञा मनवावै। सो मंत्र बल जानना ॥ ३ ॥ और अपने शरीर का भुजबल बड़ा होय। कोटि भट, लक्ष भट, सहस्र भट, इत्यादिक अनेक हस्ती-सिंह कूं जीतने का पराक्रम होना। तथा अनेक सैन्या कूं आप एकला ही जीतै, ऐसा शरीर-बल पावना। सो शरीर बल है ॥ ४ ॥ और जाकी आज्ञा विषैं अनेक बड़े-बड़े सामन्त-राजा होंय। सर्व सैन्या के सुभट अपनी आज्ञा प्रमाण होंय। बहुत सामन्तन का नाथ होय। सो सामन्त बल है ॥ ५ ॥ ये राजा के पांच बल हैं। सो विवेकी राजा कौं इनकी रक्षा करनी योग्य है। इति राजा के पांच बल। ऐसे राजा के षट् गुण, च्यारि राज्य विद्या, पांच बल। ये सर्व राजा की सम्पदा है। जिनकी ऐसी संपदा होय ते राजा सदीव सुख के भोगता होय, यश पावैं। तप लेय, देव इन्द्र अहमिन्द्र निर्वाण एते पद पावै हैं। ये शुभ राज लक्षण कहे। आगे पुण्याधिकारी पुरुषन के सीखवे की विद्या हैं, तिनके नाम-लक्षण कहिये है। तहां प्रथम नाम-प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, शिक्षा कल्प, व्याकरण, छंद, अलंकार, ज्योतिष, निरुक्त, आतिहाँसि, पुराण, मीमांसा और न्याय, ये चौदह विद्या हैं। अब इनका विशेष कहिये है। तहां सामान्य बुद्धिन कौं धर्म विषैं लगावने कूं अनेक

महान् पुरुष तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, कामदेवादि पुरुषन की कथा, पुन्य-पाप का फल, नरक-स्वर्ग का सुख-दुख कथन, इत्यादिक हितोपदेश देवे की कला, सो प्रथमानुयोग नाम विद्या है ॥ १ ॥ अधो लोक, मध्य लोक, ऊर्ध्व लोक, इन तीन लोकन की सर्व रचना, लोक का जो आकार, तामैं च्यारि गति रचना का कथन, इत्यादिक तीन लोक के कथन-उपदेश करवे की कला, सो करणानुयोग विद्या है ॥ २ ॥ और जहां मुनि—श्रावक के आचार विषैं प्रवीणता, इनके खान-पान की विधि जानना। मुनि कौं पड़गाहवे की विधि व नवधा भक्ति की विधि समझना। त्यागी—प्रतिमाधारी श्रावक कूं भोजन निमित्त ल्यायवे की विधि, तिनकूं भोजन देवे की विधि, इत्यादिक यती-श्रावक के उपदेश करवे की कला, सो चरणानुयोग विद्या है ॥ ३ ॥ और जहां षट् द्रव्य, इनके गुण-पर्याय का समझना। जीव के राग-द्वेष भाव जैसे होंय, सो जानना। और पुद्गल के स्कंध ज्ञानावरणादि कर्म रूप कैसे होंय ? और जीव, कर्मन तैं कैसे बँधै, कर्मन तैं कैसे खुलै (छूटै)? इत्यादिक कर्म का बंध होना, उदय होना, सत्त्व रहना, इत्यादिक द्रव्यानुयोग के उपदेश देवे का कला, सो द्रव्यानुयोग विद्या है॥४॥ और शिष्यन के कल्याण होने के निमित्त, यथायोग्य उपदेश देने का ज्ञान। जो बालक कौं उपदेश ऐसे दीजिये, तरुण कौं उपदेश ऐसे, वृद्ध को उपदेश ऐसे, विशेष ज्ञानी कौं ऐसे सामान्य-ज्ञानी कौं ऐसे, ऊंच-कुली कूं उपदेश, नीच-कुली कूं उपदेश, चंचल बुद्धि कूं ऐसे, बालक-तरुण स्त्री कूं, वृद्ध स्त्री कूं, पति सहित स्त्री कूं, विधवा स्त्री कौं ऐसे। इत्यादिक यथा योग्य

उपदेश देवे की कला। जैसे शिष्यजन का भला होता जाने, तैसे तिनके पर-भव सुधारवे कौं उपदेश देना, सो शिक्षा-कल्प विद्या है ॥ ५ ॥ और अनेक प्रकार के शब्द की स्पष्टता, विभक्ति सहित, पद सहित, लिंग के साधन, धातून के साधन सहित, शुद्ध शब्द का बोलना। अनेक गद्य, काव्य, छंदन का विभक्ति अर्थ सहित, पदच्छेदन सहित, भले प्रकार अर्थ करना। इत्यादिक संस्कृत का विशेष ज्ञान बधावना, सो व्याकरण विद्या है ॥ ६ ॥ और जहां अनेक जाति के छंद, गाथा, आर्या, श्लोक, काव्य, इत्यादि बहुत प्रकार छंद की चाल जानना, पर कौं उपदेश देना-सिखावना, सो छंद विद्या है ॥ ७ ॥ और जहां नाना प्रकार अलंकार, जैसे स्त्री का मुख चंद्रमा के समान, तथा यह नरेन्द्र अपने प्रताप के आगे सूर्य कूं जीतै है। इत्यादिक अलंकार कला का सीखना-जानना-उपदेश देना, सो अलंकार विद्या है ॥ ८ ॥ और जहां चन्द्रमा, सूर्य्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, इत्यादि इनके गमनागमन क्रिया तैं शुभाशुभ फल का सीखना-जानना, उपदेशना, सो ज्योतिष विद्या है ॥ ९ ॥ और जहां नाना प्रकार की युक्ति का ज्ञान, अनेक युक्ति उपजावना। बहु प्रकार दृष्टांतादि कला का सीखना-उपदेश देना, सो निरुक्त विद्या है ॥ १० ॥ और जहां अनेक चतुरता सहित सभा रंजित बोलवे की कला, जैसा अवसर देखे तैसे शब्द बोलवे की कला, जैसा मनुष्य देखै तैसा बोलवे का ज्ञान, इत्यादिक सभा व समय पहिचान, अपना-पराया पदस्थ पहिचान बोलना, इत्यादिक चतुराई सहित, सर्व सभा रंजन, मिष्ट, विनयकारी, आनंदकारी वचन

बोलवे की कला, सो अति-हाँसि-कला नाम विद्या है ॥ ११ ॥ और जहां धर्म कथा के अनेक पुराण वांचना, कंठ पाठ जानना-पढ़ना-उपदेशना, सो पुराण विद्या है ॥ १२॥ और जहां अनेक मीमांसादि मतांतर के शास्त्रन का पढ़ना, रहस्य जानना। अनेक मतान्तर के वाद जीतवे की कला, नास्तिकमती, एकान्तमती, विनयवादी इन आदि अनेक मतन का रहस्य जानना, सीखना, औरन कों उपदेश देना, सो मीमांसा विद्या है ॥ १३ ॥ और अनेक-प्रकार तर्क-युक्ति उपजाय, प्रश्न करना। न्याय करि पर-वादी की असत्य युक्ति का खण्डना। अपना न्याय वचन स्थापना। पर-वादी अनेक असत्य युक्ति देय, ताका रहस्य जानि, ताका खंडना। इत्यादिक न्याय पूर्वक नय-युक्ति का सीखना, औरन कों उपदेश देना, सो न्याय विद्या है ॥ १४ ॥ ऐसे ये चौदह विद्या, शास्त्रोक्त कहीं हैं। सो ज्ञान बढ़ावे के पात्र पुरुषन कौं, सदीव इनका अभ्यास करना योग्य है। इति शास्त्रोक्त चौदह विद्या कहीं। आगे लौकिक चौदह विद्या कहिये हैं। तहां प्रथम नाम-ब्रह्म, चातुरी, बाल, बाहन, देशना, बाहु, जल, रसायन, गान, संगीत, व्याकरण, वेद, ज्योतिष और वैद्यक। ये चौदह लौकिक विद्या हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। तहां आत्मा चैतन्य है, ज्ञान रूप है, शुद्ध है, अशुद्ध है, इत्यादिक आत्माका का स्वरूप जानिये, सो आत्म विद्या, सो ही ब्रह्म विद्या है ॥ १ ॥ जहां नाना प्रकार बातन का करना। राज्य सभा, पंच सभा, जैसी सभा होय तैसी बात करना। पर कौं रंजावना। चित्रकला, शिल्पकलादि अनेक लौकिक चतुराई सीखना, सो

चातुरी विद्या है ॥ २ ॥ और बाल्यावस्था ही तैं अनेक प्रकार विद्याओं का सीखना, सो बाल विद्या है ॥ ३ ॥ और जहां हस्ती, घोटक, रथादिक की असवारी जानना-सीखना, सो बाहन विद्या है ॥ ४ ॥ धर्मोपदेश देवे की कला, सो देशना विद्याहै ॥५॥ और जहां दण्ड पेलनादि पर-मल्ल जीतवे की चतुराई, नाना कला का कूदना-फाँदना, नेजम झाड़ना, मोगरी फेरना इत्यादि कला सीखना, सो बाहु विद्या है ॥ ६ ॥ और जल विषैं नाव चलावना, जहाज चलावना, भुजबल तैं तेरने की कला सीखना, सो जल विद्या है ॥७॥ बहुरि कुधातु कूँ, सुधातु करना। जैसे तांबे कूँ स्वर्ण करना, रांग की चांदी करना। पारा-हरतालादि शुद्ध करि, रसायन पैदा करनी। इत्यादिक कला सीखना, सो रसायन विद्या है ॥ ८ ॥ और जहां अनेक स्वर सहित, काल-मर्याद रूप, मिष्ट स्वर सहित, ताल कूं लिये गावना, सो गान विद्या है ॥ ९ ॥ और अनेक प्रकार वादित्र कला, नृत्य कला, इनके हाव-भाव, गति, ललितता, चाल, ताल, इत्यादिक में शास्त्रोक्त समझना, सो संगीत विद्या है ॥ १० ॥ और अक्षर का सुस्पष्ट स्वर, व्यंजन, विभक्ति सहित समझना, सो व्याकरण विद्या है ॥ ११ ॥ और अनेक शास्त्रन का सीखना, सो वेद विद्या है ॥ १२ ॥ और पंच प्रकार ज्योतिषी देवन की चाल करि शुभाशुभ जानना, सो ज्योतिष विद्या है ॥ १३ ॥ और अनेक प्रकार शरीर के रोग जानवे की बहुत परीक्षा का जानना। हाथ की नस, मस्तक की नस, पांवन की नस, हृदय की नसों का परखना। सो याही नसों को परखाई का नाम नाड़ी परीक्षा है। सो

नाड़ी परीक्षा जानै। मूत्र परीक्षा, जो मूत्र कूं देखि रोग जानै। दृष्टि परीक्षा, सो दृष्टि देख कें रोग जानें। पसीना कूं देख-सूंघि रोग जानै, सो स्वेद परीक्षा है। इत्यादिक चिन्हन तैं रोग जानि, ताके नाश करवे की कला, सो वैद्यक विद्या है ॥ १४ ॥ ये चौदह कर्म-विद्या हैं। और ऊपर कहीं चौदह, वे धर्म विद्या हैं। तिन सब का स्वरूप विवेकी, राज—पुत्रन आदि सर्व कुलीन कूं सीखना योग्य है। और जिस राजपुत्र कूँ इन विद्यान का ज्ञान होय, सो प्रजा कूं सुखी करै, आप यश पावै। ऐसे जानि इन विद्या रूपी गुणन का संग्रह करना योग्य है। इति लौकिक विद्या। आगे राजान का इन्द्र जो षट्खण्डी चक्रवर्ती, ताके पुण्य का माहात्म्य पाय, चौदह रत्न व चौदह निधि हो हैं। तिनके नाम व गुण कहिये हैं। तहां प्रथम रत्न नाम-सुदर्शन चक्र, चंड वेग दण्ड, चमर, चूड़ामणि, काकिणी, छत्र, असि, सेनापति, बुद्धिसागर पुरोहित, शिल्पी, गृहपति, विजयगरि हस्ती, घोटक और स्त्री ये चौदह रत्न हैं। एक-एक रत्न की हजार-हजार देव सेवा करें हैं। अब इन रत्नन तैं कहा-कहा कार्य होय, सो कहिये हैं। तहां चक्री, जिस पै आज्ञा करै चाहे। तापै चक्र के रक्षक देव जाय, चक्री की आज्ञा कहैं। यह चक्र रत्न का कार्य है ॥ १ ॥ और विजयार्द्ध पर्वत की गुफा के कपाट सेनापति तोड़ै है, सो गदा रत्न है तासैं तोड़ै है। सो ये गदा का कार्य है ॥ २ ॥ और जहां राह में नदी—सरोवर का बड़ा गहन जल आवै है। तब चरम रत्न, जल में बिछाय दीजिये। सो ताके प्रसाद करि, सर्व जल धरती समानि होय।

तापै तैं चक्री का सर्व कटक पार होय है। ये चमर रत्न का गुण है ॥ ३ ॥ और विजयार्द्ध की गुफा, पचास योजन लम्बी है। तामें महा अंधकार है, सो चक्री कैसे धसै है। तहां चूड़ामणि रत्न के उद्योत करि, सूर्य—प्रकाश की नाईं उद्योत में, गुफा पार हो है। ये चूड़ामणि रत्न का गुण है ॥ ४॥ और काकिणी रत्न तैं चक्री अपना नाम लिखै है। वृषभाचल पर्वत पै, जब ठाम नहीं मिलै है। तब इस काकिणी रत्न तैं, और चक्री का नाम मेटि, अपना नाम लिखै है। और याके प्रकाश तैं भी बारह योजन गुफा में प्रकाश होय है। ये काकिणी रत्न का गुण है॥ ५ ॥ और चक्री के कटक पर मेघ बरसै, तौ छत्र रत्न के विस्तार करि जल की बाधा मेटै, सब सैन्या छाया लेय है। ये छत्र रत्न का गुण है॥ ६ ॥ और जाके तेज तैं बैरी डरैं, सर्व शत्रु जातैं जीतिए, ऐसा असि रत्न का गुण है॥ ७ ॥ ये सात रत्न तो अचेतन कहे। और सर्व आर्य—म्लेच्छ खण्ड के राजान कूं जीति, सर्व कूं लाय चक्री के चरणन में नमाय सेवा करावै, ए सेनापति का गुण है ॥ ८ ॥ और पुरोहित ऐसी सलाह देय जातैं प्रजा सुखी होय, बैरी वश होय, ये पुरोहित रत्न का गुण है ॥ ९ ॥ और चक्री की आज्ञा तैं तत्क्षण, मनवाञ्छित, अनेक शोभा सहित, बहुत खण्ड के सुन्दर महल बनावै, सो ये शिल्पी रत्न है ॥ १०॥ और चक्री के घर का सर्व कारबार, आरम्भ कार्य की सावधानी राखै, सो ये गुण गृहपति रत्न का है॥ ११ ॥ और चक्री के मन कूं सुखकारी असवारी का देनहारा, ऐरावत इन्द्र के हस्ती समान विजयगिरि नाम सुन्दर हस्ती रत्न है ॥ १२ ॥ और

वांच्छित असवारी देनेहारा, पवन समान वेग तें चलनहारा, चंचल, सुन्दर अश्व है ॥ १३ ॥ और महा सती, शची समान रूप की धरनहारी, महा सुन्दर, चक्री के मन कौं हरनहारी, आज्ञाकारिणी, महा बलवान्, रत्न चूर्ण करै ऐसी, स्त्री रत्न है ॥ १४ ॥ ये सात चेतन रत्न हैं। सब मिलि चौदह होय हैं। ये जहां-जहां उपजें, सो स्थान बताईये हैं। चक्र, छत्र, असि, दंड ये चार तो आयुधशाला में उपजें हैं। और चरम काकिणी, चूड़ामणि, ये तीन श्रीगृह में उपजें हैं। हस्ती, घोटक, स्त्री, ये तीन विजयार्द्ध पर्वत पे उपजें हैं। और सिलावट, पुरोहित, सेनापति, गृहपति, ये च्यारि निज-निज नगरी में उपजें हैं। । ऐसे चौदह रत्नों का सामान्य स्वरूप कह्या। विशेष अन्य पुराणन तें जानना। इति चौदह रत्न ॥ आगे नव निधि के नाम व लक्षण कहिये हैं। काल, महाकाल, नैसर्प्प, पाण्डक, पदम, माणव, पिंगल, शंख और सर्व रत्न ये नवनिधि हैं। ये कहा-कहा कार्य करैं हैं, सो ही कहिये हैं। काल निधि तो वांच्छित पुस्तक देय है॥ १ ॥ और महा काल वांच्छित असि देय है ॥ २॥ और वांच्छित भोजन देय, सो नैसर्प्प निधि है ॥ ३ ॥ और वांच्छित षट्‌रस देय, सो पाण्डक निधि है ॥४॥ और वाँच्छित वस्तु देय, सो पदम निधि है॥५॥ और वांच्छित नीति शास्त्र व शस्त्र देय, सो माणव निधि है ॥ ६ ॥ और वांच्छित आभूषण देय, सो पिंगल निधि है ॥ ७ ॥ और अनेक बाजे देय, सो, शंख निधि है ॥ ८ ॥ और वांच्छित सर्व रतन देय, सो सर्व रत्न निधि है ॥ ९ ॥ ये सर्व मिलि नव निधि जानना। सो इन निधिन के आकार व प्रमाण कहिये है। ये सर्व निधि

गाड़ी के आकार हैं। लम्बी-चौकोर जानना। आठ पहियान सहित हैं। सो एक—एक निधि, बारह-बारह योजन लम्बी है। नव—नव योजन चौड़ी है। आठ-आठ योजन ऊंची है। और एक-एक निधि के हजार—हजार देव रक्षक हैं। इन निधिन पैं चक्री की आज्ञा है। ये निधि, चक्री के पुण्य-प्रमाण हैं। ऐसे चौदह रत्न, नव निधि ये पुण्य का फल है, बिना पुण्य नाहीं। इति निधि। आगे चक्री की सेना षट् प्रकार है, सो कहैं हैं। तहां प्रथम नाम-हस्ती चौरासी लाख, रथ-सैन्या चौरासी लाख, घोड़ा अठारह कोड़ि, सर्व दोऊ श्रेणी के विद्याधरन की सैन्या, भरतक्षेत्र संबंधी देवन की सैन्या, और पयादेन की सैन्या। ये षट् प्रकार की सैन्या है। सामान्य राजा कैं तो च्यारि जाति की सैन्या होय, देव-विद्याधर की सैन्या नहीं होय। अरु चक्रधारी के षट् प्रकार की सैन्या जानना। ऐसी विभूति सहित श्री आदिनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती, सोलहवें कुलकर, पहले चक्री, सो महा विवेक के सागर होते भये। सो इनके काल विषैं भोग भूमि के बिछुरे, प्रजा के लोग भोरे जीव, कर्म—भूमि की रचना में नहीं समझैं। अरु कल्पवृक्षन का अभाव भया, जीवन के क्षुधा बधी। तब भोरे जीव, उदर पूरण की विधि बिना, दुखी होने लगे। विशेष ज्ञान-चतुराई, कर्म-भूमि-संबंधी-आरंभ नहीं जानैं। तिनके दुख निवारवे कूं भरत चक्री हैं सो प्रजा कों कर्म-भूमि की रचना का ज्ञान होवे कूं, प्रजा कूं सुखी होने के निमित्त, षट् कर्म का उपदेश देते भये। तिनके नाम व स्वरूप कहिये है। इज्या, वार्ता, दान, स्वाध्याय, तप और संयम। ये षट् कर्म हैं। अब इनकी प्रवर्ति कहिये है। तहां भगवान्, सर्वज्ञ

जगतनाथ कौं तरन-तारन जानि, पापहरन मोक्षकरन जानि कैं, विवेकी भक्ति के वशीभूत होय, आपकौं पाप सहित जानि, कर्म सहित जन्म-मरण करि दुखिया जानि, आप दीन होय, विनय सहित, अपने पाप हरवे कूँ, भगवान् का पूजन करना। तिनके सन्मुख खड़ा होय, उत्कृष्ट अष्ट द्रव्य मिलाय, अपनी काय पवित्र करि, मंत्र सहित प्रभु के चरण आगे धरै। जैसे लौकिक में निज उत्कृष्ट वस्तु लेय, राजान के सन्मुख जाय, चरण पास धरैं। पीछे राजा की स्तुति करैं। तैसे ही भगवान् की पूजा—स्तुति किये, पाप क्षय होय। सो तिस पूजा के च्यारि भेद हैं। तिनका नाम—एक तौ प्रतिदिन अष्ट द्रव्य तैं भगवान् की पूजा करना, सो नित्यमह है। १। और चतुरमुख पूजा—ये महा पूजा-विधान सो मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वरादि बड़े राजान तैं बनैं है। २। और कल्पवृक्ष पूजा-सो तामैं उत्तम नेवज, नेत्र कूं सुखकारी, जाकौं देख देव भी अनुमोदना करैं, ऐसे उत्तम द्रव्य तैं पूजा करनी और ता समय जेते दिन लौं पूजा—विधान आरंभ रहै। तेते दिन सर्व कौं किमिच्छक कहिये मन वांच्छित दान, याचकन की इच्छा—प्रमाण कल्पवृक्ष की नांई दान देना, सो कल्पवृक्ष पूजा है। सो ये पूजा चक्रवर्ती तैं बनै है। ३। और अष्टान्हिक पूजा—याका नाम ही इन्द्र-पूजा है। सो या पूजा इन्द्र तैं बनै है। ४। ऐसे च्यारि प्रकार प्रभु की पूजा का, भरतेश्वर अपने निकटवर्ती राजान कौं तथा प्रजा कूं उपदेश देते भये। याका नाम इज्या क्रिया है। इति इज्या। आगे वार्ता क्रिया कहिये है। और वार्ता कहिये, दगावाजी सहित आजीविका का विचार त्याग

करि, न्याय सहित आजीविका पूरी करनी, सो वार्ता है। ताके अनेक भेद हैं। मुख्य-असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और पशु पालन ये षट् भेद हैं। तहां असि कहिये खड्ग, सो शस्त्र बांध, न्याय पूर्वक, दया सहित, दीन जीवन की रक्षा करता, दुष्ट जीवन कों दंड देता, प्रजा-पालन करै। सो शस्त्र सहित आजीविका करनी, सो असि वार्ता कहिये ॥ १ ॥ मसि कहिये स्याही, तातैं धर्म-कर्म के अक्षर लिखने का व्यवहार करना, पाप रहित-न्यायसहित लिखने करि, आजीविका पूर्ण करना। मो मसि वार्ता है ॥ २ ॥ और कृषि कहिये, खेती करना। अपनी बुद्धि के बल करि, धरती विषैं अनेक प्रकार बीज बोय, बहुत प्रकार अन्न, मेवा, अनेक रस निपजाय, धन का उपजावना, सो कृषि वार्ता है ॥३॥ और अनेक न्याय सहित वाणिज्य-व्यौपार, हिंसा-पाप रहित व्यापार करना। तामें बहुत आंरभ, बहु हिंसा, असत्य, चोरी, इत्यादिक दोष रहित, भला यश सहित, धन को उपजावने के निमित्त व्यापार करना। सो वाणिज्य वार्ता है ॥४॥ और जहां अनेक महल-मन्दिर बनावने की कला प्रगट करि आजीविका करनी, सो शिल्प वार्ता है ॥५॥ और पशु पालन कहिये, अनेक पशून की रक्षा करि, तिनके पालवे की विद्या। पशून की पीड़ा पहिचानना, पशु परीक्षा करनी, तिनके शुभाशुभ चिन्ह, वय का समझना, तिनके खान-पान में समझना, तिनके अनेक रोग समझ, ताकी औषधि का जानना। सो पशु पालन वार्ता है ॥ ६ ॥ ऐसे षट् कर्म-भेद, वार्ता-आजीविका की विधि, आदि-चक्री नैं प्रजा के सुखी होवे कूं, भोगभूमि के बिछुरे भोरे जीव तिनकौं बताई।

ता प्रमाण सर्व प्रजा के लोग, अपने तन की तथा कुटुम्ब की रक्षा करते भये। ये षट् भेद वार्ता कर्म के हैं ॥ २ ॥ ये दोय कर्म तो इस भव के यश-सुख कौं उपदेशे। और च्यारि कर्म पर-भव के कल्याण कौं, स्वर्ग-मोक्ष की राह बतावैं कों उपदेशे। सो कहिये हैं। दोय तो ऊपर कहे। और तीसरा कर्म जो दान, सो च्यारि प्रकार है। भेषज, अन्न, शास्त्र और अभय। सो औषधि दान तैं तो पर-भव में निरोग शरीर पावै है। और अन्न दान करि, पर-भव में सदा अन्न भोजन करि, सुखी रहै। औरन कूं पालनहारा होय। आयु पर्यंत सुखी रहै। और शास्त्र दान तैं भवान्तर में ज्ञानवान् महा पण्डित होय। और अभय दान करि, दीरघ आयु का धारी इन्द्र-अहमिन्द्र होय। तथा निर्भय जो मोक्ष स्थान, ताहि पावै। तातैं च्यार दान दीजिये। सो दुखित-भुखित दीनन कों तो करुणा करि, संतोष सहित, पुचकार करि देना। और पात्रन कूं भक्ति करि देना। इस दान करि जीव पर-भव में बहुत सुखी होय। सो ऐसा दान-कर्म का उपदेश किया ॥ ३ ॥ और चौथा स्वाध्याय-सो जिनवाणी का पाठ, अनेक धर्म-शास्त्रन का अध्ययन करना, सो ऐसा स्वाध्याय नाम कर्म उपदेश्या ॥ ४ ॥ और बारह प्रकार तप-सो अन्तरंग-वाह्य करि, दया भावन सहित, समता भाव की विधि लिये करना, सो तप कर्म है ॥ ५ ॥ तहां पंचेन्द्रिय तथा मन कौं वशीभूत करना, षट् काय की दया करनी। सो द्विविधि संयम बारह प्रकार है। सो उपदेश्या ॥ ६ ॥ ऐसे षट्-कर्म भरत चक्री प्रजा

का पिता, सो सब के युग—भव के सुख का अभिलाषी, कर्म-धर्म के मारग कों दीपक समान जो भला उपदेश, सो षट्—कर्म रूप उपदेश देय, लोकन कों सुखी करै। इति भरत चक्री के उपदेशित षट् कर्म। पीछे भरतनाथ भरत चक्रवर्ती कों सोलह स्वप्ने आये। तिन का फल चक्री ने श्री आदिनाथ जिन से पूछा। तब भगवान् ने कही। हे राजन्, इनका फल चौथे काल में नाहीं। आगे पंचम काल में, इन स्वप्नन का फल प्रगट होयगा। सो कहिये है। प्रथम नाम-प्रथम तौ तेवीस सिंह देखे। दूसरे स्वप्न में एकाला सिंह, ताके पीछे मृगन का समूह गमन करते देखा। तीसरे स्वप्न में हस्ती का भार धरैं, तुरंग देखा। चौथे स्वप्न में काकन करि, हंस पीड़ित देखा। पांचवें स्वप्न में बकरे कूं सूखे पत्र चरते देखा। छट्ठे स्वप्न में बंदर कों हस्ती के कंध पर चढ़्या देखा। सातवें स्वप्न में भूत नाचते देखे। आठवें स्वप्न में एक सरोवर ताका मध्य तो सूखा और तीर में अगाध जल देखा। नववें स्वप्न में रत्न राशि रज (धूलि) करि मंडित, कांति रहित देखी। दशवें स्वप्न में श्वान कूं पूजा का द्रव्य खाते देखा। ग्यारहवें स्वप्न में तरुण वृषभ दहँकता देखा। बारहवें स्वप्न में चन्द्रमा कों शाखा सहित देखा। तेरहवें स्वप्न में दोय वृषभ इकट्ठे होय, गमन करते देखे। चौदहवें स्वप्न में सूर्य विमान कों मेघ पटल से आच्छादित देख्या। पन्द्रहवें स्वप्न में छाया रहित सूखा एक वृक्ष देखा। सोलहवें स्वप्न में जीर्ण पत्रन का समूह देखा। ये सोलह स्वप्न भये। अब इनका अर्थ कहिये है। तहां तेवीस सिंह देखे, तिनका फल ये, जो तेईस तीर्थ-

करन के समय में तो खोटी चेष्टा के धारी, परिग्रह सहित, जिन धर्म विषैं मुनि नहीं होंयगे ।१। और एक सिंह तरन-तारन, ताके पीछे मृगन के समूह गमन करते देखे। तिनका फल ये है। जो अंतिम चौवीसवें जिन-महावीर, तिनके निर्वाण भये पीछे, यती मृग की नाईं दीन, नग्न परीषह सहवे कौं असमर्थ, सो परिग्रह का धारन कर, यति वाजैंगे। जिन-लिंग तज, कुलिङ्ग धरेंगे। २। और हाथी के भार सहित तुरंग (घोड़ा) देखा। ताका फल ये है। जो पंचम काल में साधु, तप के भार करि दुखी होंयगे। तप धारवे कौं असमर्थ होंयगे। ३। और वकरे कूं सूखे पत्र खाते देखा। तिसका ये फल है। जो ऊंचे कुल के मनुष्य शुभाचार तैं भ्रष्ट होय, खोटा आचार आदरेंगे। ४। और बंदर कौं हाथी के कंधे पै चढ़्या देखा। ताका फल ऐसा, जो आदि तैं चला आया जो क्षत्रीन का वंश, तिसकी व्युच्छित्ति (नाश) होयगी। और हीन कुल के धारी अकुलीन, पृथ्वी पर राज्य करेंगे।५। और वायसन के समूह करि, हंस पीड़ित देखा। ताका फल ऐसा। जो पंचम-काल में अज्ञानी भोरे जीव, धर्म के अर्थ मुनि धर्म तजि कैं, अनाचारी-हिंसक जीवन की सेवा करेंगे। और असंयमी कषाई जीवन करि, धर्मात्मा जीव पीड़े जांयगे। पापी जीवन करि, धर्मी जीवन का अपमान होयगा। ६। और भूत नाचते देखे। तिनका फल ऐसा। जो पंचम काल में अज्ञानी जीव, भगवान् जानि धर्म के अर्थ भूतादि व्यन्तर-देवन की पूजा करेंगे। ७। और सरोवर मध्य में सूखा, तीर में अगाध जल देखा। ताका फल ऐसा। जो उत्तम तीर्थ-स्थानकन में धर्म का अभाव रहेगा।

हीन स्थानन में धर्म रहेगा। ८। और रत्न राशि धूलि करि लिप्त देखी। ताका फल ऐसा। जो पंचम काल में शुक्लध्यानी नहीं होंयगे। धर्मध्यानी केईक रहेंगे।९। और जिन पूजा का द्रव्य, श्वान खाते देखा। ताका फल ऐसा। जो पंचम काल में पात्र की नांईं, अव्रती तथा कुपात्र व अपात्र ये आदर पावेंगे। १०। और तरुण वृषभ शब्द करते देखा। ताका फल ऐसा जानना। जो पंचम काल के जीव, तरुण समय में तो धर्म-ध्यान के आदरने विषैं उद्यम करेंगे। परन्तु वृद्ध भये, धर्म में शिथिल होय, अरुचि करेंगे। ११। और चन्द्रमा के शाखा देखीं। ताका फल ऐसा। जो पंचम काल में अवधि, मनःपर्यय ज्ञान के धारी मुनि होंयगे। १२। और दो वृषभ साथ ही गमन करते देखे। ताका फल ऐसा। जो पंचम-काल के मुनि, संघ में रहेंगे। एका-विहारी नहीं होंयगे। १३। और सूर्य मेघ पटल करि आच्छादित देखा। ताका फल ऐसा। जो पंचम काल के मुनीन कों, केवल-ज्ञान नहीं होयगा। १४। और सूखा वृक्ष, छाया रहित देखा। ताका फल ऐसा। जो पंचम काल के स्त्री-पुरुष शील व्रत धारि, पीछे कुशील सेवेंगे। १५। और सूखे पत्रन का समूह देखा। ताका फल ऐसा। जो अन्न आदि औषधि हैं तिनका रस जायगा, सर्व औषधि नीरस होयगीं। १६। ऐसे भगवान् वृषभदेव ने कही, कि भो चक्रेश्वर! इनके फल अब नाहीं। आगे पंचम काल के उतार में दिखेंगे। इति भरत चक्रवर्ती के स्वप्न-फल समाप्त। आगे पंचम काल में भोरे जीव, अपनी बुद्धि तें कल्पना करि, अनेक प्रकार भगवान् कूं

स्थाप्य कौं पूजेंगे, बहु विधि तैं भगवान् के भेद कहैंगे। तातैं शुद्ध भगवान् के जानवे कौं, भगवान् के गुण कहिये हैं। जिन में ये गुण होंय, सो शुद्ध भगवान हैं। जिनमें ये गुण नाहीं होय, सो शुद्ध देव नाहीं। ये अतिशय जामें होंय, सो शुद्ध तरन–तारन जानना। सो प्रथम अतिशय तीन हैं। वचन अतिशय, आत्म अतिशय और भाग्य अतिशय। इनका अर्थ–जाकी वाणी मेघ समान अनक्षरी, अनुक्रम रहित खिरै। सो अपनी-अपनी भाषा में सर्व बारह सभा के जीव समझैं। सर्व का संदेह जाय, संशय रहै नाहीं। जाकौं सुनि, भव्य का कल्याण होय। पाप नाश होय, पुण्य-फल उपजै। सो वचन अतिशय है॥ १॥ और कर्म के क्षय तैं प्रगट्या जो अनंत चतुष्टय-अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य। सो ये आत्म अतिशय है॥ २॥ और गर्भ के पहिले, रत्नों की वर्षा का होना, नगर सब रत्नमई होना, इन्द्रादिक देव सेवा करैं। केवलज्ञान-स्वभाव प्रगट भये, समोशरण–विभूति का प्रगट होना। इत्यादिक महिमा, सो भाग्य अतिशय है॥ ३॥ ऐसे तीन अतिशय जिनमें होंय, सो भगवान् हैं। इति तीन अतिशय। आगे भगवान् की माता कौं गर्भ के पहिले, सोलह स्वप्न आये हैं। तिनके नाम व लक्षण कहिये हैं। प्रथम नाम-ऐरावत हस्ती, श्वेत वृषभ, सिंह, पुष्पमाला, लक्ष्मी कलश स्नान करती देखी, पूर्ण चन्द्रमा, सूर्य, कनक कलश, मच्छ युगल, सरोवर, सागर, सिंहासन, स्वर्ग विमान, धरणेन्द्र विमान, रत्न राशि और निर्धूम अग्नि। ये सोलह स्वप्न भगवान की माता ने देखे हैं। अब इनका

सामान्य फल कहिये है। प्रथम ऐरावत हस्ती देखा। ताका फल ऐसा, जो पुत्र महान् पुण्य का धारी, सर्व तैं ऊंचा होयगा ॥ १ ॥ और श्वेत वृषभ देखा। ताका फल ऐसा, जो पुत्र धर्म का धारी, जगत्–पूज्य होयगा ॥२॥ और सिंह देखा। ताका फल ऐसा, जो पुत्र अनंत बल का धारी होयगा ॥ ३ ॥ और पुष्पमाला देखी। ताका फल ऐसा, जो पृथ्वी में धर्म को प्रगट करनहारा होयगा ॥ ४ ॥ और लक्ष्मी को कलश स्नान करती देखी। ताका फल ऐसा, जो पुत्र का सुमेरु पर्वत पै स्नान होयगा ॥ ५ ॥ और पूर्ण चन्द्रमा देखा। ताका फल ऐसा, जो तीन लोक के जीवन कों आनन्दकारी होयगा ॥ ६ ॥ और सूर्य देखा, ताका फल ऐसा, जो महा प्रतापी होयगा ॥ ७॥ और कनक (स्वर्ण) कलश देखा, ताका फल ऐसा। जो अनेक निधि का भोगता होय ॥ ८॥ ता पीछे मच्छ-युगल देखा। ताका फल ऐसा जो अनेक सुख का भोक्ता होयगा ॥ ९ ॥ और सरोवर देखा। ताका फल ऐसा, एक हजार आठ लक्षण का धारी होयगा ॥ १० ॥ पीछे कल्लोल करते समुद्र देखा। ताका फल ऐसा, जो केवल–ज्ञान का धारी होयगा ॥ ११ ॥ और पीछे सिंहासन देखा। ताका फल ऐसा, जो बड़े राज्य का भोगता होयगा ॥ १२ ॥ और पीछे स्वर्ग-विमान देखा। ताका फल ऐसा, जो स्वर्ग तैं चय कैं अवतार लेयगा ॥ १३ ॥ और पीछे पाताल तैं निकसता धरणेन्द्र का विमान देखा। ताका फल ऐसा, जो जन्म तैं ही ताकैं अवधिज्ञान होयगा ॥ १४ ॥ और पीछे रत्न राशि देखी, ताका फल ऐसा, जो गुणन का निधान होयगा ॥ १५ ॥ और निर्धूम अग्नि देखी। ताका फल ऐसा, जो

अष्ट कर्मन का जारनहारा होयगा ॥१६॥ ऐसे भगवान् के अवतार होने के पहिले के सोलह स्वप्नों का फल जानना । इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, राजान के गुण, तथा चौदह विद्या, तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्न, इत्यादि कथन वर्णनो नाम, इकतीसवां पर्व संपूर्ण॥३१॥

आगे भगवान् वृषभदेव ने जन्म पीछे तेरासी लाख पूर्व राज्य किया। तामैं भगवान् दीर्घ पुण्य का फल दशधा भोग भोगि कैं सुखी भये । तिनके नाम-प्रथम मन वांछित रत्न, ज्योतिषी देवन की प्रभा कौं जीतनेहारे, अनेक वरन के, तिनके सुख-भोग ॥ १ ॥ और नव निधि कौं आदि लेय, परम सम्पदा के भोग ॥२॥ और महासती, शची के रूप कौं जीतनहारी, आज्ञानुसारी, विनय सहित, अनेक मन-मोहन चेष्टा की धारनहारी, सुन्दर रानी का भोग ॥ ३ ॥ और अनेक संपदा करि भरे नगर-देश, तिनके राज्य का भोग ॥ ४ ॥ और देव, विद्याधर, भूमि गोचरी राजान सहित, अनेक महान् पुरुषन करि बंदनीक, हस्ती घोटक पयादे इन षट् प्रकार सेन्या के ईश्वर, ताके भोग ॥ ५ ॥ और महान् सुगंधता सहित, अनेक रत्न मई कोमल शैय्या के भोग ॥ ६ ॥ और रत्न मई सिंहासन, तख्त, बैठने के स्थान महा उदार, उत्तम मन्दिरन के भोग ॥ ७ ॥ और अनेक रत्न मई, स्वर्ण, चांदी आदि अनेक मनोहर धातु के अनेक आकार के बासन के भोग ॥ ८ ॥ और नाना प्रकार षट्‌रस मई अनेक भोजन-व्यंजन, जिह्वा रंजित वस्तु के खावने के भोग ॥ ९ ॥ और देव, देवी, मनुष्य, स्त्रीन के गाये-बजाये अनेक सुन्दर स्वर सहित संगीत, गान, नृत्यादिक, अनेक राग-रंग के

भोग ॥१०॥ ऐसे दश प्रकार के भोग, देवाधिदेवं वृषभ नाथ-जिन ने राज्यावस्था में भोगे। सो अतिशय पुण्य का फल जानना। इति दश जाति भोग॥ आगे सहज षट्-गुण पुण्यवान् के परखवे कौं बताईये हैं। एक तो आप, सर्व जगत के देव-मनुष्यन करि पूजनीक पद के धारी, सर्व तैं बड़े होंय। अरु अपने बड़प्पन का मान नहीं करैं, ये महा पुण्य का फल है। हीन पुण्यी, अल्पसा भी लोक में आदर-सत्कार पावै, तौ मान करै। पुण्यवान् बड़ा भी सत्कार पावै, तौ भी मान नहीं करै॥ १ ॥ और हीन पुण्यी, अल्पसा सत्य बोलै तो मान करै। कहै, हम जैसा सत्यवादी और नाहीं। और पुण्यवान् का सहज ही सत्य बोलवे का स्वभाव होय है। तातैं पुण्यवान् सत्य बोल, मान नाहीं करै। ये पुण्यवान् का दूसरा भेद है ॥ २ ॥ हीन कुली, तुच्छ पुण्यी, अल्पसा पुरुषार्थ पाय, मान करै। दीन-जीवन कौं पीड़ै, भय बतावै। कहै, हम से बलवान्-पुरुषार्थी और नाहीं। ऐसा कहि, अभिमान करै। और जे महान् पुण्यी हैं ते बड़ा भी बल-पराक्रम धार, मान नाहीं करैं। और दीन जीवन की रक्षा करैं। ये तीसरा पुण्यवान् का चिन्ह है ॥३॥ और हीन पुण्यी, महा रौद्र-परणामी, अंतरंग मे तो महा निर्दय भाव, अरु बाह्य लोक दिखावै कौं दान देय, दया करि मान करै। कहै हम दयावान् हैं। और जे दीरघ-भागी हैं वे सहज ही कोमल चित्त के धारी, महा दया भाव करि भी, मान नहीं करैं। ये चौथा पुण्य का फल है ॥ ४ ॥ और अल्प पुण्य का धारी, अल्प दान देय कैं कहै, हम से दाता और नाहीं। ऐसा मान करै। और दीरघ पुण्यी,

सहज ही चित्त का उदार, दयावान्, बड़ा दान करै भी, मान नहीं करै। ये पुण्य का पांचवां चिन्ह है ॥ ५ ॥ और हीन पुण्यी, अल्प सा ही विरक्त होय मान करै। कहै हम त्यागी हैं, हमें कछु भी वांच्छा नाहीं। और जे बड़भागी-महान् पुण्यी हैं। ते अनेक भोग–सम्पदा पाय, तासैं उदास रहैं। मान नहीं करैं। ये पुण्य का छट्ठा चिन्ह है॥ ६ ॥ जो इन षट् बातन में मान नहीं करै, सो ये पुण्य का फल है। इति षट् गुण। सो ये भगवान् विषैं पाईये है। भगवान्, राज्य अवस्था में इन्द्र के ल्याये अनेक आभूषण--रत्न मई आभूषणन कौं अलंकृत करि, भूषणन कौं शोभा देते भये। सो आचार्य कहैं हैं कि जो अपने आश्रय आवे, ताकौं यशवंत करै, भला दिखावे। भगवान् के तन का आश्रय आभूषणन ने लिया, सो आभूषण भले शोभते भये। तिन सर्व आभूषणन में मुख्य हार है। सो हार के अनेक भेद हैं। सो ही कहिये हैं। हार के तीन भेद हैं, एकावली जिष्टी हार, रत्नावली जिष्टी हार, और अपवृत्तक। ये तीन भेद, हार के हैं। तहां जिष्टी के पांच भेद हैं। सीरख, उपसीरख, अवघाट, प्रकांडक और तरल-प्रबंध। ये पांच जिष्टी हार के भेद हैं। सो जिष्टी नाम लड़ी का है। हार में जेती लड़ी हौंय, तिन कौं जिष्टी कहिये। सो लड़ के पांच भेद हैं। तहां जिस हार में केवल मोतो ही मोतीन की लड़ी हौंय, सो एकावली जिष्टी हार कहिये ॥ १ ॥ और जाके मध्य में तो मणि होय और दोय तरफ मोती हौंय, सो रत्नावली नामा जिष्टी हार है॥ २ ॥ और जामें दोय मोती एक मणि, ऐसे जो लड़ी पोई होय। केई में तीन मोती, एक मणि। तीन–तीन मोतीन

के अन्तर में एक-एक मणि होय। तथा च्यारि-च्यारि मोती और एक मणि पोई गयी होय। तथा
पांच-पांच मोती और एक मणि ऐसे पोई गई होय, सो इनका नाम अपवृत्तक है। यहां मणि के दोय
भेद हैं। एक मणि, और दूसरा माणिक्य। तहां जामें छिद्र होय, सूत में पोई जाय, सो तो मणि कहिये।
और जो छिद्र रहित होय, स्वर्ण में जड़या जाय, सो माणिक है। सो जा लड़ी में एक मोती, एक मणि
और एक माणिक्य होय, सो भी अपवृत्तक नाम हार है ॥३॥ और जहां जा लड़ी के सर्व मोती तौ
बराबर के होंय, अरु मध्य में एक बड़ा मोती होय। ताकौं सीरख नाम लड़ी का हार
कहिये ॥ १ ॥ और जामैं मध्य में तीन बड़े और अन्य बराबर के मोती होंय, सो उपसीरख
कहिये है ॥२॥ और जाके मध्य में पांच बड़े मोती होंय, सो प्रकाण्डक नामा जिष्टी हार कहिये
है ॥३॥ और जाके मध्य का मोती तौ बड़ा होय। और दो तरफ के मोती क्रम तैं छोटे-छोटे
होंय, सो अवघाटक नाम जिष्टी कहिये ॥ ४ ॥ और जामें सर्व मोती समान होंय, सो तरल-
प्रबंध नाम जिष्टी है ॥ ५ ॥ ये पांच जाति की लड़ी, हारन में होय हैं। सो तिन हारन के
ग्यारह भेद हैं। सो ही बताईये हैं। तिनके नाम-अर्ध मानव, मानव, अर्ध गुच्छ, निपत्रमालिका,
गुच्छ, रम्यकलाप, अर्ध, देवछंद, हार, विजयछंद, और इन्द्रछंद। ये ग्यारह प्रकार के हार
हैं। सो इनके पहिरने हारेन के पदस्थ कहिये हैं। तहां दश लड़ी का हार, सो तो अर्ध मान-
व हार है। १। और बीस लड़ी का हार, सो मानव नाम हार है। २। और चौबीस लड़ी
का हार, सो अर्ध गुच्छ हार है। ३। और सत्ताईस लड़ी का हार, सो निपत्रमालिका हार है। ४।

और बत्तीस लड़ी का, गुच्छ नाम हार है।५। और चौवन लड़ी का, रम्यकलाप नाम हार है।६। और चौंसठ लड़ी का, अर्ध हार है।७। और इक्यासी लड़ी का, देव छंद नाम हार है।८। और एक सौ आठ लड़ी का हार, सो हार नामा हार है।९। और जो पांच सौ च्यारि लड़ी का होय, सो विजय छंद नामा हार है।१०। और एक हजार आठ लड़ी का होय, सो इन्द्र छंद नामा हार है।११। ये ग्यारह भेद कहे। सो इनमें पहिले कहे जो नव भेद, सो इन हारन कों महा मण्डलेश्वर राजा तांई पदवारे पहिरें हैं। और दशवां विजय छंद हार कों नारायण-प्रतिनारायण पद के धारी पहिरैं हैं। और जो इन्द्र छंद नामा हार है सो देव, इन्द्र, चक्री पहरैं। ये भगवान् के निकटवर्ती सेवक हैं, सो ये पहिरैं। तथा इन देव-इन्द्रन के नाथ तीर्थंकर पहिरैं। एक हजार आठ लड़ी का हार, देवोपुनीत है। ताहि पहिरैं जिन देव ऐसे सोहते भये, मानों सर्व ज्योतिषी देव मिलि कैं, भगवान् की भक्ति करवे कौं, निकट ही आये हों। ऐसे भगवान् बहुत काल पर्यंत राज्य करि, ता पीछे तप लेय, केवल-ज्ञान पाय, समोशरण सहित विहार कर्म करि, धर्मोपदेश देते भये। तिसकूं सुनि बारह सभा के धर्मार्थी जीव, धर्म-मारग लागते भये। सो तिन बारह सभा के नाम कहिये हैं। प्रथम सभा में कल्पवासी देव, दूसरी में ज्योतिषी देव, तीसरी में व्यन्तर, चौथी में भवनवासी देव, पांचवीं में कल्पवासी देवियां, छठी में ज्योतिषी देवांगना, सातवीं में व्यंतर देवों की देवियां, आठवीं मे भवनवासी देवियां, नववीं सभा में मुनि, दसवीं में अर्यिका व सर्व स्त्री, ग्यारहवीं में मनुष्य,

बारहवीं में सर्व जाति के सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच। इन बारह सभा सहित, भगवान् मोक्ष-मारग प्रगट करते, जगत्-जीवन के पुण्य के प्रेरे, उन के कल्याण के अर्थि, विहार करते भये। सो अनुक्रम तैं कैलाश पर्वत पर आये। जब भगवान के निर्वाण होने में चौदह दिन बाकी रहे, तब भरत चक्री आदि आठ मुख्य महान् राजा, तिनकूं शुभ स्वप्न भये। तिनके नाम व चिन्ह बताइये हैं। जिस दिन भगवान ने योग निरोधे, उस दिन की रात्रि विषै भरतेश्वर चक्री कूं ऐसा स्वप्न हुआ। कि मानो सुमेरु पर्वत ऊंचा होय, सिद्ध क्षेत्र तैं जाय लग्या है ॥ १ ॥ और भरत जी के पुत्र अर्ककीर्ति, ताकूं ऐसा स्वप्न भया। कि स्वर्ग लोक के शिखर तैं एक महान् औषधी का वृक्ष आया था, वह जगत्-जीवन के जन्म-मरण का दुख खोय कैं, अब लोक के शिखर जायवे कौं उद्यमी भया है ॥ २ ॥ और भरत चक्री का गृहपति-रत्न, तिस कूं ऐसा स्वप्न भया, कि ऊर्द्ध लोक तैं एक कल्पवृक्ष आया था, वह जीवन कौं मन-वांच्छित फल देय कैं, पीछा स्वर्ग लोक के शिखर जायगा ॥ ३ ॥ और चक्री का मुख्य मंत्री, ताकौं ऐसा स्वप्न आया। कि लोकन के भाग्य तैं एक रतन दीप आया था, सो जिनकूं रतन लेवे की इच्छा थी तिनकूं अनेक रतन देय कैं, पीछे ऊर्द्ध लोक कौं गमन करेगा ॥ ४ ॥ और भरत जी के सेनापति कौं ऐसा स्वप्न आया। कि एक अनंतवीर्य का धारी मृगराज, अद्भुत पराक्रमी, सो कैलाश पर्वत रूपी वज्र का पींजरा ताकौं छेद करि, ऊर्द्ध विषैं उछलवे कौं उद्यमी भया है ॥ ५ ॥ और जयकुमार जी का पुत्र अनंतवीर्य, ताकौं ऐसा स्वप्न आया।

कि एक अद्भुत् चंद्रमा, अनंत कला का धारी, जगत विषैं उद्योत करि, तारानि सहित, ऊर्द्ध-लोक कौं जायवे कौं उद्यमी भया है ॥६॥ और भरत चक्री की पटरानी सुभद्रा ताकूं, ऐसा स्वप्न आया। कि वृषभदेव की रानी यशस्वती अरु सुनंदा ये दोऊ, तथा इन्द्र की पटरानी शची ए तीनों मिलकर बैठी, सोच करती हैं ॥ ७ ॥ और काशी देश का राजा चित्रांगदत्त कौं ऐसा स्वप्न आया। जो अद्भुत तेज का धारी सूर्य, पृथ्वी विषैं उद्योत करि, ऊर्द्ध लोक कौं गया चाहै है ॥८॥ ऐसे आदिनाथ स्वामी के निर्वाण सूचक आठ स्वप्ने, आठ पुरुपन कौं आये। जिन स्वप्नों का स्मरण-पाठ किये, भव्यन का कल्याण हो है। ये श्री आदि देव, पृथ्वी के आदि-नायक भये। इनतैं ही धर्म की मर्यादा चली है। तातैं ये भगवान् सर्व जगत् के नायक हैं। सो नायक के तीन भेद हैं। सो ही बताईये हैं। तिन के नाम-देश नायक, घर नायक और मन नायक। अब इनका अर्थ-जो देश नायक तौ राजा है। सो देश का राजा धर्मी होय, तौ देश के जीवन कूं धर्म-राह लगाय, धर्मी करै। और देश में जो धर्मी, दान, पूजा, शील, संयम, तप के धरनहारे, तिनकी रक्षा करै। और जे अपने देश में पापी, अन्यायी, चोर, दुराचारी, जीव होंय, तिन कूं दंड देय। सो तौ देश नायक धर्मात्मा कहिये। और जो देश-नायक पापी होय, तौ पाप कौं अपने देश में विस्तारै। चोर, चुगल, अन्याय पथ के चलनेहारे जीव तिन की रक्षा करै। अरु ता देश में साधु पुरुष, भले मारग के चलनहारे, तिनकूं पीड़ा होय। तातैं जैसा देश नायक होय, तैसा ही देश में चलन प्रगटै। ये तौ देश नायक जानना ॥१॥ और जो देशनायक पापार्थी

होय, पाप बन्ध करै। ताकी तो सो ही जानैं। परन्तु देश में घर बहुत होय हैं। सो जा घर विषैं
सर्व कुटुम्ब का रक्षक, जो सर्व कौं अन्न—वस्त्र देय सब की रक्षा करै, सो घर नायक कहावै। सो
घर नायक धर्मात्मा होय, तौ सर्व घर कौं धर्म रूप चलावै, सब का भला करै। और घर नायक
पापी होय तौ ताके घर—जन भी पाप रूप प्रवृत्तैं। ए घर नायक कह्या ॥ २ ॥ और घर
नायक कदाचित् पापी होय, तौ होऊ। ताका फल वही भोगवेगा। परन्तु मन नायक आत्मा
है। सो जाका आत्मा भली गति का जानेहारा होय, सो अपने मन कौं सदैव धर्म रूप
राखै। और जाका आत्मा पापी होय, सो अपने मन कौं आर्त—रौद्र रूप राखै। पाप बन्ध
करि पर भव बिगाड़ै है ॥ ३ ॥ ऐसे ये नायक के तीन भेद कहे। सो देश नायक, घर नायक,
तौ अपने पुण्य के प्रमाण रहना योग्य है। और मन नायक सदीव है, सो अपने मन कौं सदा-
काल धर्म रूप राखना उचित है। इति नायक के तीन भेद। आगे अणुव्रती श्रावक के तीन
भेद हैं। पाक्षिक, साधक और नैष्ठिक। अब इनका विशेष दिखाईये है। जे धर्मात्मा
पुरुष राजादिक, बड़े बल के धारी, धर्म की रक्षा तथा धर्मी जीवन की रक्षा के
करनहारे, जिन के राज्य में धर्मात्मा जीवन कूं कोई पीड़ित नहीं करि सकै। महा
धर्मात्मा, धर्म के पक्षी, इन्हें पाक्षिक श्रावक कहिये। जैसे तीर्थंकर, चक्री, अर्द्ध चक्री,
कामदेव, प्रति चक्री, बलभद्र, महा मण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर, इत्यादिक महान् राजा, पृथ्वी नाथ,
दया मूर्ति, न्याय मार्गी, जिनके भय तैं कोई क्रूर जीव, धर्म कूं—धर्मी जीवन कूं सता नहीं सकैं।

मुनि-श्रावकन कों कोई दुष्ट पीड़ा नहीं करि सकै। चैत्यालयन का बन में कोई अविनय नहीं करि सकै। ऐसा जिन का भय का कोई कुवादी झूठा नय-दृष्टान्त देय, सत्य धर्म तैं झूठे धर्म की प्रवृर्ति चाहै, तौ अपने ज्ञान के प्रकाश तैं, बुद्धिके बल तैं, न्याय मार्ग करि, सर्व जगत जीवन के कल्याण कूं कुधर्म उखाड़ि, सुधर्म प्रवृत्ति राखै, सो पाक्षिक श्रावक है। इनके राज्य में पाप नहीं बधै ॥१॥ दूसरा साधक—जे धर्मात्मा श्रावक, जिनकों धर्म साधन करते बहुत काल भया। सो इन्द्रिय-भोगन तैं विरक्त होय, तन के जीतव्य तैं निष्प्रह भया, अपना आयु-कर्म नजदीक जान कैं, ए मोक्षाभिलाषी, पर-भव सुधारवे कौं, सर्व जीवन तैं क्षमा—भाव करि, अरु घर, धन, धान्य, कुटुम्बादि स्व-पर जन तैं मोह—ममता भाव तजि, अपनी काय तैं ममत्व छोड़ि, च्यारि प्रकार का आहार त्याग, पञ्च परमेष्ठी का स्मरण करता, तत्वन का विचार करता, धर्म—ध्यान सहित सन्यास लेय, तिष्ठ्या याति ऋषि होय। सो साधक जाति का श्रावक है ॥ २ ॥ और तीसरा भेद नैष्ठिक, ताके ग्यारह भेद हैं, सो बताईये है ॥ प्रथम नाम—

गाथा—दंसण वय सामायो, पोसय सचित्त रयण भख त्यागो।
वंभारंभ हेय परिग्गह, अणमत्त उदिठ्ठ त्याज सागारो ॥ १३६ ॥

अर्थ—दंसण वय सामायो कहिये, दर्शन व्रत सामायिक। पोसय सचित्त रयण भख त्यागो कहिये, प्रोषध सचित्त व रात्रि भोजन त्याग। वंभारंभ हेय परिग्गह कहिये ब्रह्मचर्य्या, आरंभ त्याग, परिग्रह त्याग। अणमत्त उदिठ्ठ त्याज सागारो कहिये अनुमति त्याग, उद्दिष्ट त्याग

ये ग्यारह भेद नैष्ठिक श्रावक के हैं। भावार्थ—ये ग्यारह प्रकार प्रतिज्ञा, पञ्चम गुणस्थान धारी नैष्ठिक श्रावक की हैं। तहां जाके सम्यक्त्व को पच्चीस दोष नाहीं लागें और सप्त व्यसन का त्याग व पंच उदम्बर, तीन मकार, इन आठ का त्याग, सो अष्ट मूल-गुण हैं। सो इनके अतिचार रहित शुद्ध व्रत, सो प्रथम दर्शन-प्रतिज्ञा है। अब इनके अतिचार कों बताईये हैं। सो प्रथम सम्यक्त्व के अतिचार कहिये हैं। सम्यक्त्व के आठ दोष, मद दोष आठ, अनायतन षट् और मूढ़ता तीन। इन पच्चीस के होते सम्यक्त्व मलिन हो है। सो इनका स्वरूप ऊपर कह आये हैं। और द्यूत, मांस भक्षण, सुरा पान, वेश्या गमन, शिकार (जीव वध करना), चोरी (बिना दिया धन लेना) और पर स्त्री सेवन, ये सात व्यसन हैं। सो जामें आत्मा के भाव बहुत एकाग्र होय मगन होना, सो व्यसन है। ताके सात भेद कहे। इनमें द्यूत, मांस, सुरापान, चोरी और शिकार, इन पांच व्यसन का पाप तौ लोभ कषाय तैं होय है। और वेश्या, परदारा, इन दो व्यसन का पाप काम—कषाय तैं होय है। ये व्यसन, कषायन तैं होंय हैं। सो कषाय बताईये हैं। हे भव्य! लोभ और काम ये दोऊ कषाय, सर्व पापन का बीज जानना। जगत में जेते पाप हैं ते इन दोई कषायन तैं होंय हैं, ऐसा समझ लेना। इन लोभ अरु काम के वशि जीव, पिता पुत्र कों मारै। पुत्र, पिता कों मारै। भाई, भाई कों मारै। तातैं सर्व दुख, संकट और अपयश का मूल ये कषाय हैं। देखो, काम के माहात्म्य तैं रावण मरा, और लोभ तैं भरत चक्रवर्ती का मान भंग भया।

इत्यादि अनेक स्थानन पै लगाय लेना। सो जेते पाप हैं तेते सर्व काम और लोभ तैं होय हैं। तातैं इन काम अरु लोभ तैं उपजे सात व्यसन, सो ये भी महा पाप का मूल हैं, ऐसा जानना। और वड़ फल, पीपल फल, उदम्बर फल, कठूम्बर फल और पाकर फल, ये तो पंच उदम्बर हैं। मद्य, मांस, मदिरा ये तीन मकार हैं। ये आठ हैं, सो इन के अतिचार सप्त-व्यसन में गर्भित हैं। सो जान लेना। तिनका आगे कथन करेंगे। अब प्रथम ही द्यूत व्यसन के अतिचार कहिये हैं। तहां चोपड़ का खेल है, जो असत्य का मन्दिर, कुफर का बोलनेहारा, द्यूत खेल है। और सतरंज है सो ता विषैं ऐसे पाप वचन, मन का विकल्प रहै है जो राजा मारौं, हाथी मारौं, घोड़ा मारौं, ऊंट मारौं, वजीर मारौं, पयादा मारौं। इत्यादिक मन-वचन-काय करि पंचेन्द्रिय के घात रूप भाव-चेष्टा करनहारा, सतरंज जुआ है। और नरद का खेल है, सो दीरघ द्यूत का कारण है। और गंजफा का खेल है सो ता विषैं राज्य के राज्य हारिये है। महा दगावाजी के या खेल तैं कुभावना रहै है, ये भी द्यूत है। और मूठी जो आप दाव लगाय खेले, सो प्रत्यक्ष निंदा का कारण द्यूत है। और परस्पर होड़ लगाय के रमना, सो द्यूत है। और मूठी भर के ऊंना-पूरा मांगना, सो द्यूत है। और कौड़ी नभ में वगाय (फैंक), उल्टी-सूधी नाखि, हारि-जीत करना, सो भी द्यूत है। और नव कंकरीन तैं चिरभरि (बग्घा) खेलना भी द्यूत है। और षोडस कांकरीन तैं राजा-रानी खेलना, सो द्यूत है। और होड़ लगाय मुट्ठी तैं नारियल फोड़ना, और हाथ तैं लाठी-लकड़ी

तोड़ना, सो भी द्यूत है। और पैद (होड़) वदि कैं पाषाणादि भार उठाना, सो भी द्यूत है। और भीती उछलना, सो भी द्यूत है। और कुंआ, बावड़ी, दीवालादि पैद लगाय कैं कूदना, सो जुआ है। और होड़ लगाय मार्ग चलना-भागना, सो भी द्यूत है। और कौं खेलते देखना, सो भी द्यूत सम पाप है। और द्यूत कार्यन तैं व्यापार करना, सो द्यूत सा पाप है। और ज्वारी पै तैं जीति लेना, सो द्यूत सम पाप है। और द्यूतकार की वस्तु सस्ती देख, लेना। इन आदि क्रियान में द्यूत समान पाप उपजै है। और ज्वारी की वस्तु गहना राखि, बहुत व्याज लेना। और भी जे द्यूत समान पाप की करनहारो क्रिया, सो विवेकीन कों तजना योग्य है। द्यूतकारन का संग ही सर्व प्रकार पापकारी है। विष व शस्त्र तैं घात भली, सर्प के मुख में हस्त देना भला, परन्तु द्यूत—संगति भली नाहीं। कैसी है द्यूत संगति, जातैं प्रतीति जाय, धन जाय, लोक विषैं अनादर होय, बड़प्पन नाश होय, अगला किया पुण्य नाश होय। तातें हे भव्य ! ये द्यूत—संग भला नाहीं, तजना ही योग्य है। इस द्यूत के रमने तैं लोक, चोर—ज्वारी कहैं। तातैं ये द्यूत, सर्वथा अपयश की मूर्ति-खानि ही जान, इसका निवारना भला है। ये द्यूत, सर्व पापन का गुरु है। याके फल, आत्मा नरक दुख कौं पावै, घने कहने करि कहा। तब यहां कोई विवेकी—द्यूतकार प्रश्न करता भया। जो द्यूत कार्य और तौ हमने भी बुरे जानै, परन्तु चौपड़ कूं जुआ में कही, सो इस में कहा पाप है? ताका समाधान-जो हे भव्य ! एक तौ चौपड़, झूठ वचनन की खानि है।

और कुफर-लज्जा रहित वचन यामैं बहुत होंय हैं। मुख तैं मार ही मार शब्द निकसै। चित्त, दगा रूप रहै। चोर समान प्रवृत्तै। तातैं इन आदिक बड़े पाप, या चौपड़ में हैं। तातैं तजने योग्य कही है। तब द्यूतकार फेरि प्रश्न करता भया। जो चौपड़ हमने बुरी जानी। परन्तु सतरंज में पाप कहा है, सो कहो। तामैं मौन सहित, वचन रहित, नेत्रन तैं देखना हो है। सो पाप कैसे है? ताका समाधान-जो हे भ्रात! सतरंज विषैं चौपड़ तैं विशेष पाप है। सो तैं सुनि। या विषैं परणति अरु वचन तौ रौद्र—भाव रूप रहैं हैं। ऐसे भाव रहैं हैं, जो बादशाह तैं वजीर जीतौं। हस्ती तैं, घोटक मारौं। इत्यादिक पंचेन्द्रिय घातक भाव रहैं हैं। तिनही के मारवे का विकल्प रहै है। सो ऐसे भावन मैं तौ नरक जाय। तातैं विवेकीन कौं सतरंज तजना ही योग्य है। तब फेरि भी द्यूतकार ने प्रश्न किया। जो सतरंज पापकारी है, सो हमें भासी। परन्तु गंजफा में कहा पाप? सो कहो। ताका समाधान-जो हे भाई! तू विचार। जो कोई दोय कौड़ी हारै, तौ लोक कहैं, यह बड़ा ज्वारी है। और वाकौं भी चिन्ता होय, जो मैं हास्या हौं। ताके भी योग तैं जगत में अपयश पावै। तो हे भाई! जो गंजफा के खेल में राज्य के राज्य हारै, ताकी चिंता अरु पाप की कहा कहनी! और जहां अशर्फी हास्या, रुपया हास्या, तरवार हास्या, बगीचे हास्या, स्त्री हास्या, गुलाम हास्या, सिर का ताज हास्या, इत्यादिक सर्व घर का सरजाम स्त्री—वाहनादि धन हारे। ताके दुख की-पाप की कथा, कहां—तांईं कहिये! तातैं कुगति दुख तैं डरि, गंजफा भी तजना योग्य है। तब द्यूतकार ने कही। गंजफा

भी पाप रूप है, सो हमने जान्या। परन्तु अल्प से धन से मूठि-दाव विषैं खेलना, यामैं कहा पाप ? सो कहो ? ताका समाधान-जो हे भव्य ! मूठी का खेल है सो लौकिक में लुच्चेन का है। सो प्रथम तौ जो देखै, सो लुच्चा कहै। चोर-ज्वारी कहै। और हारै, तौ चोरी करने का उपाई होय। तातैं हे भव्य ! ऐसे भावन में बड़ा पाप होय। यामें ऐता पाप लेके, अपयश लेके खेलिये, सो बड़ाई कहा? सो विचार देखो। इस भव निंदा, अरु पर-भव दुर्गति के दुख होंय। तातैं तजना ही योग्य है। तब द्यूतकार बोल्या। जो जुवा तौ पाप-मई जान, मैंने तजा। परन्तु ब्याज के निमित्त द्यूतवारेन कूं कर्ज देना, यामैं पाप कहा ? ताका समाधान-जो हे भव्यात्मा ! द्यूत का धन ही महा पापकारी है। जैसा पाप, द्यूत रमने में होय। तैसा ही पाप, ताके धन लेने में होय है। तातैं मन, वचन, काय करि तजना योग्य है। तब द्यूतकार का चित्त द्यूत में पाप जानि, शंका कौं प्राप्त भया—डर्या। तब फेरि प्रश्न किया। जो जुआ में तौ पाप है, सो हमने तजा। परन्तु जीते पै लेंय, तामैं तौ पाप नाहीं है ? ताका समाधान-जो हे भाई ! आप को देनेहारा होय, ताकी तौ जीत चाहै। आपकौं नहीं देय, ताकी हार चाहै। ऐसे पर की हार-जीत रूप परणाम राखै। सो अल्प लोभ के योग के निमित्त तैं, पराया बुरा चाहै। सो पापी ही जानना। तातैं जीते पै द्रव्य लेना, योग्य नाहीं। तब द्यूतकार कही, द्यूत की जीत का माल भी नहीं लेंय। परन्तु हमारे घर विषैं ठाम बहुत है, सो रात्रि कौं बैठने कौं जगह देय, भाड़ा प्रमाण, जीते पै द्रव्य लेंय, तौ कहा दोष ? सो कहो। ताका समाधान-हे भाई, द्यूतकार कौं घर ल्याय जुवा खिलावै। सो तो प्रत्यक्ष पाप है। तिनका

सहाई होय जुवा रमावै, सो द्यूत कैसा पाप पावै है। हे भव्य, जाका संग किये ही पाप लागै। तौ घर ल्याये, मंगल कहां तैं होय? तातैं घर ल्याय, सहाय करि द्यूत रमावना, योग्य नाहीं। तब द्यूतकार ने कही, घर ल्याये भी पाप है, सो जान्या। सो नहीं ल्यावै। परन्तु हमारी देखने की अभिलाषा रह्या करै है, सो देखने में पाप कहा? ताका समाधान-हे भाई! देखने में पाप बहुत है। खेलनहारे का तौ घर-धन लागै है। सो तो व्यसनी होय, लज्जा छोड़ि, जग-निन्दा अंगीकार करि, द्यूत खेलना शुरू किया। सो तो लोभ के योग तैं, ताकौं तौ अर्थ-पाप लागै है। और देखनेहारे का आवना-जावना तो कछु भी नाहीं। अरु वृथा ही-बिना प्रयोजन, पाप विषैं काल लगावै। सो याकौं अनर्थदण्ड-पाप होय है। सो अर्थ-पाप तैं अनर्थ-पाप का फल, विशेष दुखदाई जानना। ऐसा जानि, द्यूत देखना भी तजना योग्य है। तातैं द्यूत देखना, द्यूत खेलना, द्यूत का ब्याज लेना इत्यादिक द्यूत के सर्व कार्य, पाप के दाता हैं। हे भव्य! ये द्यूत, सर्व पाप का राजा है। निन्दा-अपयश का समूह है। याकै रमैं, निरादर होय है। द्यूत, कोई प्रकार भला नाहीं। आगे पाण्डव-युधिष्ठिर ने द्यूत-क्रीड़ा करी। ताके फल राज्य गया। वनवास रहे। दुख पाया। अपयश बधा। औरों ने भी जगत विषैं प्रगट देखा, जो द्यूतकार की महिमा नहीं, निन्दा ही हो है। तातैं हे भव्य हो, तुम अपने विवेक तैं विचार देखो। जो द्यूत खेलतैं यश होय, पुण्य होय, तौ करौ। नहीं तो तत्क्षण ही तजौ, बहुत कहने करि कहा। ऐसा जानि, धर्मात्मा सम्यग्दृष्टी श्रावकन कौं ये

द्यूत-व्यसन, अतिचार सहित तजना योग्य है। इति द्यूत व्यसन।

आगे आमिष व्यसन कहिये है—हे भव्य, ये आमिष है सो जीव-हिंसा तैं तो उपजै है। फिर मृतक-जीवन का कलेवर है। महा ग्लानि का पिंड है। जिसके देखते ही चित्त मुरझाय जाय। और सात धातून का निषिद्ध मैल है। ताकौं खानेहारे किस तरह खांय हैं? हे भव्यो, देखो। जो कान का मैल, नाक व मुख का मैल लग जाय। तो जल लेय, मिट्टी तैं धोय, शुद्ध करैं। तौ भी घिन नहीं जाय है। सो ये तो मृतक पशु का मल-आमिष खांय हैं। ऐसी मलिन वस्तु, ऊंच-बुद्धि नहीं लेय हैं। जो आमिष खानेहारे हिंसक जीव हैं। सो बताइये हैं-सिंह, स्याल, मार्जार, सुअर, श्वान, चीता, काक, चील्ह, बाज, बिसमरा, सर्प, मीगोस इत्यादिक दुष्ट जीव हैं, ते मांस खांय हैं। मनुष्य होय, ऐसी मलीन वस्तु छीवने योग्य भी नाहीं। सो कैसे खांय हैं? और कदाचित् मनुष्य होय, मांस खांय हैं। तो भील, चांडाल, कसाई, कोली, चमार इत्यादिक नीच कुल के उपजे, अस्पर्श-शूद्र ही मांस खांय हैं। तिनमें भी केतेक उज्ज्वल-बुद्धि, पाप तैं डरनेहारे, कोमल परणामी शूद्र भी, प्रभु कौं भजैं हैं। तिलक-छापे करैं हैं। ते आमिष नहीं खांय हैं। अशुचि-बुद्धि निर्दयी खांय हैं। सो भी कहा जानैं, ऐसी दुर्गंधित-वस्तु कैसे खांय हैं? कैसा है आमिष पिंड, ग्लानिकारी है। जिसकी बिना गंध लिये, देखै ही चित्त दुखी होय, सो खांय कैसे? सो ताकी तेही जानैं। परन्तु ऐसा अशुचि मांस-पिंड खावना, नीच-कुली का प्रगट चिन्ह है। और जे ऊंच-

कुल के उपजे क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य, ये उत्तम वंश के हैं। सो इन वंशों के उपजे भव्यात्मा, उज्ज्वल आचारी हैं। सो आमिष कौं छीवैं भी नाहीं हैं। जो दयावान पुरुष हैं सो तौ ऐसी वस्तु देखते ही, भागैं हैं। तथा जे भव्यात्मा आमिष त्यागी हैं, सो अपने व्रत की रक्षा कौं ऐती वस्तु नहीं खांय हैं, जिनके खाये मांस का दोष लागै। त्रस जीवन के कलेवर का नाम मांस है। तातैं जा वस्तु में त्रस जीव उपजैं, तथा जो त्रस का कलेवर होय, सो वस्तु आमिष त्यागी नहीं खांय हैं। सो जहां-जहां त्रस उपजैं तथा त्रस का कलेवर है, तेते स्थान बताईये हैं। सो अनगाल्या जल में, दुहे पीछे दोय घड़ी उपरांत के कच्चे दूध विषैं और मर्यादा पूर्ण हुए आटे विषैं, इनमें त्रस जीवन की उत्पत्ति है। सो आमिष त्यागी, ये तीन वस्तु नहीं खांय। और चर्म का तेल-घृत-जल इन आदि और रस जाति वस्तु, त्रस जीव की उत्पत्ति का स्थान है। तथा रात्रि का पीसा आटा, अन बीन्धा अन्न, फफूंड़ी वस्तु, रात्रि की पकायी हल्वाई के घर की बनी वस्तु, दूकानदार की दूकान—बिकता आटा, हींग, मधु, इत्यादिक वस्तु, आमिष त्यागी नहीं खांय। और ओला, घोरबरा, निशि भोजन, बैंगन, बहु बीजा, संधाणा, बड़ फल, पीपल फल, उदंबर फल, कठूम्बर फल, पाकर फल, कंद मूल, मिट्टी, बिष, आमिष, मधु, मक्खन, मदिरा, तुच्छ फल, अचार, चलित रस और अजान फल। ये बाईस अभक्ष आदि वस्तु आमिष त्यागी नहीं खाँय। और रात्रि बसी काँजी और गुड़-दही मिलाय कें व द्विदल दाल, दही तैं मिलाय नहीं खांय। साधारण फल-फूल-बौंड़ी ये वस्तु आमिष त्यागी नहीं खांय।

और भी जे अभक्ष, इस विवेकी के ज्ञान में आवैं, सो अपने व्रत की रक्षा के निमित्त, अतिचार जानि, नाहीं खाय। ये आमिष व्यसन, महा पाप का स्थान जानना। और भी देखो। मांस-भक्षी कौं संसार निंदै है। और केतेक महा जिभ्या लोलुपी, जिनके कुल में मांस नहीं लेंय। सो जीव, मांस की नकल की तरकारी बनाय खावैं हैं। तिनकौं भी आमिष खाये का सा दोष लागै है। मांस-भक्षी कौं नरक में ताका तन काटि, ताही कौं खुवावैं हैं। तातैं आमिष कौं विवेकी नहीं तौ खाँय, नहीं खाते देख अनुमोदना करैं, नहीं अपने व्रत कौं अतीचार लगावैं। सो आमिष-त्याग व्रत जानना। इति आमिष व्यसन ॥ २ ॥

आगे सुरापान व्यसन लिखिये है। जो मन–वचन–काय करि सुरापान में रत होय, ताकौं मदिरा व्यसन कहिये है। सो जे विवेक के धारी व यश के लोभी हैं ते या व्यसन कौं तजैं हैं। और जे लज्जा रहित, अज्ञानी, नीच कुली पुरुष हो हैं, ते सुरापान को लेंय हैं। ये व्यसनी महा मूरख, दाम कूं खोय निंदा उपार्जैं हैं। इस मदिरापान के करनहारे जीव, महा-कठोर परणामी होय हैं। अनेक वस्तु मिलाय, तिन सर्व कौं कूटि, एक जल–कुंड में डालि सड़ावैं हैं। ता विषैं कुछ दिन में कीटि पड़ि चलैं हैं। जल में दुर्गंध चलै, तब उस जल कूं सर्व जीवों सहित यंत्र में डालि, अग्नि पे चढ़ाय, ताका अर्क काढ़ैं। ऐसी जो मदिरा, ताकौं विवेकी, उत्तम आचारी, शुभ कुली नहीं खांय हैं। जाके पिये बुद्धि जाय, वचन प्रतीति जाय, लोक जो देखें सो धिक्कारें। जो ऐसा जानि कैं भी मदिरा नहीं तजैं, तिन की समझि कौं

विवेकी निंदैं हैं। मद्यपायी, पाप के योग तैं नरक जाय है। तहां ताका मुख चीरि, ताती-ताती धातु गालि, ताकौं पियावैं हैं। यहाँ प्रश्न—नरक में धातु कहां है? ताका समाधान—वहां धातु तो नाहीं, परन्तु जीवन के पाप करि, तहां के पुद्गल परमाणु गलि, धातु तैं ही असंख्यात गुणी अधिक उष्णता रूप, धातु के आकार होय हैं। सो धातु पिवाय कैं ते नारकी, मद्यपायी कौं पाप यादि करावैं हैं। कि जो पर-भव में तैंने सुरापान किया, सो ताका फल इस लोक में ऐसा होय है। और इस मदिरापायी कैं बुद्धि का अभाव होय है। मद्यपायी के वचन की प्रतीति नाहीं। मद्यपायी कैं पुरुषार्थ का अभाव होय है। यह पग—पग पै मूर्च्छा खाय पड़ै है। मद्यपायी का किया धर्म, विफल होय है। शीश तैं पगड़ी पड़ै। वस्त्र फटैं। मर्याद रहित, मुख आवै सो बकै। माता, स्त्री, भगिनी, पुत्री का ज्ञान नाहीं, सर्व कौं एकसा देखै। खाद्य—अखाद्य का ज्ञान-रहित होय। इत्यादिक पाप व निंदा का स्थान मदिरा, ताका त्याग करना योग्य है। और जिनतैं अपने व्रत कौं अतीचार लागै, सो भी तजना योग्य है। सो दारू के अतीचार कहिये है—भांग, तमाखू, गांजा, ककड़, चरस, पाकादिक विषय—पोषण के निमित्त वस्तु का खावना। सो दारू का सा दोष है। और खम्मीर राखी वस्तु, जौ की जलेबी, अनगाले जल का मही, और जे बहुत दिन की रस—वस्तु होय, सो खाये तैं मदिरा समान दोष कं उपजावै है। और अर्क, गुलाब जल, ये मदिरा सम हिंसा उपजावैं हैं। और सिंगिया विष, सौंठिया बिष, हल्दिया बिष, सोमला खार, इत्यादिक विष जाति, मदिरा सम दोष उपजावै है। और कोई

कूं मदिरा पीयवे की इच्छा होय, तो इहां मद्य कूं देख लेवे। पीछे कछू बड़ाई होय, तो पीवना। हे भव्य, कोई नेत्र रहित अंध होय है। परन्तु मद्यपायी है, सो नेत्र सहित अंध है। मद्यपायी कूं सर्व ऐसा कहैं हैं कि यह ख़स्त (पागल) है। मद्यपायी की करी धर्म-क्रिया, विफल होय है। कै तो मद पीवनेहारा ख़स्त कहावै, कै वायु—सन्निपात रोग सहित बोलनेहारा ख़स्त कहावै। तथा हौल-दिल होय गया होय, सो ख़प्त कहावै। ये तीनों एकसे हैं। इनकौं दिवाने कहिये, बेसुध कहिये। इत्यादिक मद्य लेने में जगत निंदा होय, घर धन जाय, सो प्रसिद्ध है। और देखो, जो दारू पीय कैं कोई ने यश पाया होय, तौ बताओ। देखो, यादव-सुतौं ने धोखे तैं मद पीया, सौ सर्व कुल सहित द्वारका का नाश भया। तातैं हे भाई! तेरे घर में धन—दाम बहुत होय, तो जल में डारि दे। परन्तु व्यसन विषैं मत लगावो। हे भव्य, दारू तैं दावानल भली है। अग्नि-प्रवेश भला है। तन विषैं पीड़ा भई भली है। इत्यादिक दुखन तैं एक-एक भव विषैं दुख होय है और दारू तैं अनेक भवों में दुख होय है। तातैं दारू तैं, हलाहल विष भला है, परन्तु दारू व्यसन भला नाहीं। तातैं अनेक प्रकार पापकारी जानि, धर्मार्थी श्रावक कौं अपने व्रत की रक्षा कौं, अतिचार सहित दारू व्यसन का त्याग करना योग्य है। इति दारू व्यसन॥ २॥

आगे वेश्या व्यसन कहिये है। कैसी है यह वेश्या, जाके चित्त करि मोह्या गया है कामी पुरुषन का मन, सो ताकैं सदीव धर्म का अभाव है। जो पर के पास का दाम लेय, व्यभिचार क्रिया रूप प्रवृत्तै, सो ताकूं वेश्या कहिये। याकी संगति तैं, चित्त विकल होय है।

या वेश्या के काहू तैं स्नेह नाहीं, एक द्रव्य तैं स्नेह है। जो कोई महा नीच-कुली होय, अरु ताके पास धन होय, तौ वेश्या तातैं संगम करै। ग्लानि नाहीं करै। जाका तन विरूप होय, बुद्धि-हीन होय, रूप-हीन होय, अरु तापै द्रव्य होय, तो वेश्या ताका आदर करै, तातैं स्नेह करै। और महा बुद्धिमान् होय, कामदेव—समान रूप का धारी होय, पराये मन का मोहनेहारा होय, ऊंच कुली—बड़े वंश का होय। इत्यादिक गुण सहित, शुभ-लक्षणी होय, अरु कदाचित् धन रहित होय, तो वेश्या के घर जाय आदर नहीं पावै। धन रहित पुरुष तैं वेश्या स्नेह नाहीं करै। याकें धन मित्र है, और नाहीं। तातैं वेश्या का नाम धन—मित्रा भी कहिये है। कैसी है यह वेश्या, जो याका तन भूमि के मार्ग समान है। जैसे मार्ग पै नीच— ऊंच सर्व ही चलैं हैं, तैसे ही वेश्या का तन है। याके तन पर भी नीच—ऊंच सभी जांय। यह वेश्या, महा लोभ की खानि है। धन के निमित्त अपना तन बैंचै है। महा निर्लज्ज है। और निर्लज्ज पुरुषों के भोग का स्थान है। जूंठी पातल समान है। जैसे काहू ने जूठी पातल फैंकी। ताकै ऊपर अनेक श्वान चाटवे कूं आवैं हैं। तैसे ही काहू की भोग-नाखी वेश्या रूपी जूंठी पातल, ताके ऊपर अनेक व्यसनी—श्वान आवैं हैं। जगत निंद्य है। तातैं वेश्या के सर्व चिन्ह पापकारी जानि, बुद्धिमान कूं तजना योग्य है! और ये वेश्या, शील वृक्ष के छेदवे कूं कुठार समान है। याका संग किये, धर्म साधन किया था ताका फल,

नाश होय है। तातैं विवेकी-धर्मात्मा पुरुषन कौं, वेश्या-संगति तजना योग्य है। और जिन-जिन कार्यन में वेश्या संग किये का सा दोष होय, सो भी कार्य, व्रत के रक्षक धर्मी-पुरुष तजैं हैं। सो ही बताईये है। जाके वेश्या—व्यसन का त्याग होय, सो एती जायगा नाहीं जाय। अरु कदाचित् जाय, तौ अपने व्रत कौं अतिचार लागे। जहां वेश्या का स्थान होय, तहां नहीं जावै। और जहां वेश्या-कंचनी का नृत्य, गान, वादित्र होय, तहां नहीं जाय। और वेश्या तैं वाणिज्य नाहीं करै। और वेश्या के मुहल्ले जाय बसना नाहीं। और वेश्या तैं हाँसि, कौतुक, वचनालाप नहीं करै। इत्यादिक कहे जो कार्य, सो व्यसन समान पाप उपजावैं हैं। और वेश्या के तन कौं नहीं निरखै। और वेश्या के हाव-भाव नहीं देखै। ताके गान, रूप, वादित्र, नृत्यादिक नाहीं सुनै—देखै। आगे तिनकी प्रसंशा-अनुमोदना नाहीं करै। बार-बार वेश्या के गुणन की कथा नाहीं करै। ताकी कथा औरन तैं सुनि, हर्ष नाहीं करै। वेश्या का सत्कार नाहीं करै। ताके संगी-कुटुम्बीन तैं हित-भाव नाहीं करै। इत्यादिक वेश्या—सेवन के दोष हैं। सो सर्व का त्याग करतैं ही, अपने व्रत की रक्षा हो है। हे भव्य, वेश्या के संग विषैं गुण नाहीं। याके संग तैं लोकन में अपयश-निंदा होय है। वेश्या का संग, चोरटे—पराये धन के हरनहारे करैं हैं। तथा जे लुच्चे, जुवारी आदि निर्लज्ज पुरुष हैं ते वेश्या के घर जांय हैं। तथा कुलहीन पुरुष ही वेश्या का संग करैं हैं। तथा जाके आगे-पीछे कोई कुटुम्ब नाहीं, सो वेश्या—गमन करे है। देखो, आगे चारुदत्त सेठ—पुत्र

ने वेश्या का संग किया था। सो वेश्या ने ताका सर्व घर-धन लेय, पीछे उसे दुर्गंध भरी छारछोवी (पाखाना) मैं डाल दिया। सो नरक समान दुःख, इहां ही भोगता भया। जगत-बिछौना समान, वेश्या जानना। याका तन, सर्व जन नीच-ऊंच स्पर्शैं हैं। वेश्या के संग तैं, शील का अभाव होय है। ताका फल, दुर्गति होय है। ये वेश्या महा दगावाजी की मूर्ति है। अरु ऐसे ही महा निर्लज्ज, दगावाजी की खानि, दुर्बुद्धि पुरुष ताका संग करैं हैं। अहो भव्य, सिंह की गुफा मैं जाना तो भला है, परन्तु वेश्या का संग भला नाहीं। तातैं हे भव्य, घनी कहने करि कहा, वेश्या का संग तजना ही भला है। इस वेश्या-व्यसनी कौं चोर, लुच्चे, वेश्या के गमनी भला कहैं हैं। तब यह मूर्ख अपनी प्रसंशा सुनि, प्रफुल्लित होय है। और जब विवेकी, ऊंच कुली, पंडितन में जाय है तब उसे अधोमुख होना पड़ै है। अपने भले कुल में, कलंक चढ़ावै है। या वेश्या के संग तैं सर्वप्रकार कुकीर्ति की बेलि, जगत-मंडप में पसरै है। जिनने वेश्या का संग किया, ते प्राणी अपना पाया भव, हारते भये। वेश्या के संग तैं, खाद्य-अखाद्य का विवेक नाहीं रहै है। अभक्ष्य भोजन करै। लज्जा रहित वचन कहै। वेश्या का संग करनहारा जीव, देव-गुरु—धर्म की आज्ञा ऐसे लोपै है जैसे मदोन्मत्त हस्ती, अंकुश कौं लोपै। वेश्या—व्यसनी, माता—पितादि गुरुजन की आज्ञा तैं प्रतिकूल होय है। कोई तौ नेत्र-रहित अंध होय है। परन्तु वेश्या—व्यसनी उकर अन्ध है। इत्यादिक अनेक दोष सहित वेश्या—व्यसन है। सो विवेकी—धर्मात्मान कूं अपने व्रत की रक्षा कूं, अति-

चार सहित वेश्या–व्यसन तजना योग्य है। इति वेश्या व्यसन ॥ ४ ॥ आगे पारधी व्यसन लिखिये है–यह व्यसन, निर्दय चित्त के धारी जीवों का है। जे नीच–कुल के उपजे, तिनतैं ऐसा अन्याय बनै है। ऊंच कुली, दयावान्, शुभाचारी, सत्–पुरुषन तैं, पर–जीव–घात नाहीं बनै है। यह बड़ा आश्चर्य है कि लोक में तौ पराये परणाम खुशी करवे कौं, भला खान–पान दीजिये है। भूखे पशून कौं घास डालि, सुखी कीजिये है। आये का सत्कार कीजिये है। कोई अपने घर मंगता–रंक आवै, तो ताकी दया करि, दीनन कौं भोजन-दान दीजिये है। परतैं मिष्ट वचन बोलि, ताका यथा-योग्य विनय करि, ताकौं साता कीजिये है। इत्यादिक क्रिया करि, जैसे बनै तैसे, यश के निमित्त, तथा पुण्य के निमित्त, भला–भला कार्य करि और–जीवन कौं सुखी करैं हैं। सो जगत में जिनकी ऐसी उज्ज्वल प्रवृत्ति, दया सहित देखिये है। वे ही सुबुद्धि जीव, जानि–पूछि कैं पर–जीव दीन–पशु तिन के तन विषैं शस्त्र मारि, तिनकौं हतैं। सो ये बड़ा आश्चर्य है। ऐसे सुज्ञानी जीवन के भाव ऐसे कठोर कैसे हो जाँय हैं ? सो उन पशून के ही पाप का उदय है कि जो सज्जन सदाव्रत देय, शीत में वस्त्र देय, दीनन की रक्षा करैं। वे ही पुरुष जब पशून कैं शस्त्र–तीर–गोली मारैं हैं तब तिनकौं दया नहीं आवै। ऐसे बड़े आदमी, बुद्धिवान, दयावान, धर्म निमित्त धन के लगावनहारे, ते पर–प्राण का घात कैसे करैं हैं ? तातैं ऐसा जानना, जाकैं पर–प्राण–पीड़ितैं, दया नाहीं होय, सो दया रहित भावन का धारी, शिकारी कहिये। अपने पुत्र पालवे कौं, पराये पुत्र हतैं, उसे

पारधी कहिये। ते जीव पाप के अधिकारी होय, नरक के पात्र होय हैं। अपनी जिभ्या-इंद्रिय पोषवे कौं तथा अपनी भूख मिटावने कौं, पराये पुत्र दीन-पशून कौं हतैं हैं, ते दया रहित पारधी जानना। कैसे हैं बन-जीव, महा दीन हैं। महा भयवान हैं। कोई तैं तिनका द्वेष नाहीं। बन का घास-तृण चुग कैं, अपने तनकी रक्षा करैं हैं। ऐसे दीन-निर्दोष पशून कौं जो शस्त्र मारै, सो महा कठोर चित्त का धारी निर्दई है। बन के पशु भोरे, अज्ञान, असहाय, तिनकूं केई पापाचारी छल-बल करि मारैं हैं। सो बड़ा पाप-भार बांधैं हैं। सो ये पाप कब कटैगा? केई ज्ञान रहित, दया रहित, नीच-कुली ऐसा कहैं हैं, कि यह हमारा धर्म है। केई कहैं हैं, कि यह हमारा किसब (व्यापार) है। सो ऐसे जीव कषाई हैं। जे जीव हतैं, ते चांडाल हैं। उनके घर में, धर्म का अभाव है। जीव-घात करनेहारे प्राणी, खटीक समानि हैं। तिन जीव-घाती जीवन का मुख देखे, पाप लागै है। जे भले कुल के उपजे हैं, ते पर-जीवन कौं नहीं घातैं हैं। जो पर-जीव घातैं, सो हीन-कुली समझना। पर-जीवन के प्राण राखैं, सो ऊंच कुली हैं। भीलादिक बनचर हैं, सो बनचर जीवन कौं मारैं हैं। उत्तम प्राणी, पर-घात नाहीं करैं। जे दयावान हैं, वे ऐसा विचारैं। कि हाय, बिना दोष पर-जीव कैसे घातैं हैं? ये विचारे दीन, बन के प्राणी, काहू के घर जाय सतावते नाहीं। काहू पै कछू मांगते नाहीं। काहू का खेत नाहीं खून्दते। किसी का फल नहीं खावते। बन के तृण, बन-फल, घास, पत्र तो ये खांय हैं। नदी-तालाबन का जल पीवते हैं। नहीं

मिलै, तो क्षुधा सहित भूखे ही पड़ि रहैं हैं। नहीं काहू तैं लड़ैं, नहीं काहू पै कोप करैं। ऐसे दीन पशून कौं जे मारैं, ते शठ अपना पर-भव बिगाड़ैं हैं। सर्व जीवन में पापी तौ सिंह है। ऐसे पापी सिंह कौं मारिकैं अपनी शूरता मानैं, सो याहू तैं पापी हैं। और केई, बन के सुअरन कौं मारैं हैं, और कहैं हैं कि हम शूर हैं। ते शूर नाहीं, पारधी हैं। हिरन, खरगोश, स्याल इनकौं मारैं, ते श्वान हैं। और भवांतर में श्वान ही उपजैं हैं। और चिड़िया, कबूतर, मोर, तीतर, बाज, मछली, मगर इन आदि पक्षी, तथा जलचर जीवन कौं मारैं, सो खेटकी हैं। ये पर–जीवन के हतनहारे, निर्दय परणामी, निश्चय तैं नरकादि गति के पात्र जानहु। तातैं जे विवेकी–दयावान, जीव–घात नाहीं करैं, उत्तम परणाम के धारी हैं। ते भव्य, येते काम और भी नाहीं करैं। सो कहिये हैं। जे दयावान होंय सो तीर, गोली, गिलोल, कृपाण, बंदूक, कटार, छुरी, तलवार इत्यादिक शस्त्र नहीं राखैं। शस्त्र तैं मारूँगा, ऐसा वचन नाहीं कहैं। और फंदा, फाँसी, पींजरा ये नाहीं बनावैं, नाहीं राखैं। बड़, थूहरि, आक के दूध तैं चैंप बनाय, पंखी नाहीं पकड़ैं। लाठी व लात तैं नाहीं मारैं। जाल नाहीं बनावैं, नाहीं राखैं, नाहीं बेचैं। इत्यादिक हिन्साकारी वस्तून का व्यापार नाहीं करैं। और जे तीर, बंदूक, तोप, बरछी, छुरी, आदि पर-जीव घातक शस्त्र बनावैं, तिनतैं दयावान लेन–देन नाहीं करैं। खुसी, कुदाली, खुरपी, हँसिया इनके बनानेवालों तैं भी लेन–देन नाहीं करैं। और भूमि के खोदनेहारे, ताल–नदी–बावड़ी–कूप इनमें जल काढ़ने व फोड़ने-

हारेन तैं भी लेन-देन नाहीं करैं। और जामैं बहुत जल बिलोलना पड़ै, बहुत नीर ढोलना पड़ै, बहुत अग्नि जलाना पड़ै, तथा जो नील-आल का काम करैं, उनके साथ भी लेन-देन नाहीं करैं। इत्यादिक सब खेटक-हिन्सा का दोष करैं हैं। इनका पैसा घर में आये, खेटक का सा दोष उपजावै। और अन्न, तिल, जीरा, धना, सौंठि, हल्दी इन आदि काष्ठादिक किरानों तथा रेशम, सन, चाम, हाड़, केश, सींग, शहद इनकी भड़शाला (दूकान) नाहीं करैं। तथा शीशा, शोरा इत्यादिक हिन्सक व्यापार नहीं करैं। इनमें खेटक समान दोष जानि, दयामूर्ति ऐसा व्यापार नाहीं करैं। और काष्ठ-पाषाण-चित्राम की पुतली तथा देव-मनुष्य-पशु की स्थापना का आकार बिगाड़ै, तो खेटक समान दोष होय। और सतरंज मैं नाम-निक्षेप के धारी जीव-हस्ती, घोटक, मनुष्य, राजादिक ताके हारे-जीते, खेटक समान दोष होय। तातैं धर्मात्मा सतरंज तैं नाहीं खेलैं। और बन मैं, घर मैं अग्नि लगाये, खेटक समान दोष है। तथा पर-जीव कौं भयकारी मार-मार शब्द नाहीं कहैं। और वृक्ष, बेल, घास, झाड़ी नहीं छेदैं। वस्त्र, धूप विषैं नाहीं नाखैं। चौपट राह में खटमलन की खाट नाहीं झाड़ैं। पर-जीवन कूं शोक नहीं करावैं और मर्याद तैं अधिक भार, जीवन पै नाहीं लादैं। भाड़ा किया होय, तो वाहन पै छिपाय कैं अधिक भार नहीं धरैं। इत्यादिक कहे कार्य, धर्मात्मा-दयावान् अपने व्रत का लोभी, अपने व्रत की रक्षा कौं, ये पाप नहीं करै। और जुआं, लीख दयावान् नहीं मारैं। सर्व जीव आप समान जानि,

सर्व की रक्षा करैं। और जे दया रहित, दुर्गति–गामी अज्ञानी जीव, पर कौं शस्त्र मारते दया नहीं करैं। अरु अपने तन में तनिक सा कांटा लगै, तौ कायर होय दुख मानैं। सो ये कठोर बुद्धि, पर कैं शस्त्र कैसे मारैं हैं? आप तनक सा भय सुनै तौ छिपता फिरै, भय करि कंपायमान होय। अरु पापी जन दीन–पशून पै, नग्न शस्त्र चलावतैं नहीं कंपैं हैं। सो ताकैं खेटक–व्यसन कहिये। देखो, जब आप रण में जाय, तौ अपने तन की रक्षा कौं बखतर पहिनै। शिर पै टोप धरै। आगे उरस्थल में आड़ी ढाल धरै। तौ भी पापी–कायर चित्त का धारी, डरता–डरता जाय है। ताकूं दीन पशून के तन में निशंक होय तीर, गोली, तलवार मारते पीड़ा नहीं उपजै। निशंक वन में फिरते, दीन जीवन कूं दगा करि, जाल में पकड़ि, शस्त्र मारते दया नहीं आवै। सो जीव दुर्गति–गामी पारधी जानना। ऐसे प्राणीन कौं, तीन लोक में सुख नाहीं। ये खेटक का व्यसन, पाप है। ये पाप, भव-भव में खेटक करै। महा दुख उपजावै। तातैं विवेकी–धर्मात्मा, आप समान सर्व जीवन कूं जान, सर्व जीवन की रक्षा करैं। सो खेटक व्यसन का त्यागी कहिये। इति खेटक व्यसन॥५॥

आगे चोरी व्यसन कहिये है। जे जीव बिना दिया, पर का पदार्थ नहीं लेंय, सो चोरी व्यसन का त्यागी है। कैसी है चोरी, सो कहिये है। एक तौ महा दगाबाजी का समूह हैं। अदत्ता दान कौं लेय, सो चोर है। सो जे चोर हैं सो पर-धन हरवे कौं, अनेक चतुराई करि पराया घर फोड़ना, पराये खीसे में से धन काढ़ि लेना, पराये धरे धन कौं छिपाय कैं उठाय

लावना, तथा पराया धन उठाय कहीं का कहीं धर देना, आदि कार्य करैं हैं। ये सर्व चोरी व्यसन है। इस चोरी करनेहारे का परणाम महा कठोर–निर्दय होय है। पराया धन चोरै है, सो महा पापी है। संसार में जीवन कौं, ये धन अपने प्राणन तैं भी प्यारा है। ये जीव अपने दस प्राण (५ इन्द्रिय, ३ बल, आयु और श्वासोच्छ्वास) कूं धारि सुखी रहैं हैं। तैसे ही यह जीव, धन तैं सुखी रहे है। तातैं ये धन, जीव का ग्यारहवां प्राण है। जो इस धन कौं हरैं, ते महा पापी जानना। जे पराये धन हरवे कौं अनेक छल–बल करैं हैं। कोई तौ पर–धन हरवे कौं, राह चलते जीवन कूं डरवाय, धन हरैं। कोई जबरी तैं नगर, घरन पै धाड़ा मारि करि, घर–धन लूटि ले जांय। सो तो जोरावरी के चोर हैं। और केई दगाबाजी सहित, अनेक भेष बदल, फांसी तैं मारि, धन हरैं। ते चोर हैं। कोई पराया धन, लेखा करने में भूलि करि राखैं। ते चोर हैं। कोई पराया धन धरया हुआ नहीं देंय, जानि–पूंछ, मुकरि (मेंट) जांय। सो भी चोर हैं। कोई पराया धन कर्ज खाय रहे, नहीं देय। सो चोर है। ऐसे कहे जो ये सो सर्व चोरन के चिन्ह हैं। और कोई ऐसे हैं जो आप तौ चोरी नहीं करैं, परन्तु चोरन कौं चोरी करवे में सहायक होय हैं। चोरी करावे कौं, तिनकौं चोरी के उपकरण देंय। मार्ग बतावैं। सो भी चोर समान हैं। और जे चोरन की पक्ष करि, चोरन की लाँच खाय, चोरन कौं चाकर राख, चोरी कराय धन बांट लेंय। सो भी चोर समानि फल का धारी है। और चोरन कौं चोरी पै कर्ज देय, चोरन तैं वाणिज्य–व्यापार

राखना, ये भी चोरी सा ही फल प्रगट करै है। तातैं जे विवेकी हैं ते अपने व्रत कौं निर्दोष राखैं। सो एती बात नहीं करैं, जिनका कथन ऊपरि कहि आये। और इस अदत्ता दान के अतिचार हैं सो भी न लगावैं, सो ही कहिये हैं। कोई भली चोर-कला का धारी होय, तो ताकी अनुमोदना नहीं करै। और तराजू तैं तौलिये ताके सेर-पंसेरी आदि वांट तथा कुड़ा-पाई छोटी—बड़ी रक्खै। सो लेने के तो बड़े, अरु देने के सेर-पंसेरी, कुड़ा-पाई छोटी, ऐसे राखै। सो चोर है। ऐसे ही भली वस्तु विषैं-बड़े मोल की वस्तु विषैं, अल्प मोल की वस्तु मिलावना। सो चोरी समान है। सो विवेकी ऊंच-कुली, ऐसी चोरी नहीं करैं। जे हीन-कुली हैं, ते चोरी करैं हैं। जैसे—भील, मीणा, गौंड़, ये मनुष्य चोरी करैं हैं। तथा धन हास्या ज्वारी, चोरी करै। तथा जीभ-लोलुपी चोरी करै। तथा जो खान—पान वस्त्र-आभूषण तौं भलै चाहै, अरु कुमाय नहीं जानै। ऐसा कुपूत पुरुष, चोरी करै। वेश्या व्यसनी होंय, ते चोरी करैं। मांसाहारी, चोरी करै। तथा पर-स्त्री—लंपटी, चोरी करै। इत्यादिक कुबुद्धि के धारी जीव, चोरी करि अपना पाया भव वृथा कर, अपना किया धर्म कौं विनाशैं हैं। तथा अपने स्वामी का बुरा चाहनेहारा, स्वामी-द्रोही चोरी करै। तथा मित्र तैं कपटाई करनेहारा मित्र-द्रोही, चोरी करै। तथा पर के किये उपकार कौं भूलनेहारा कृतघ्नी होय, सो चोरी करै। तथा धर्म भावना रहित पुरुष, चोरी करै। इत्यादिक जीव चोरी करैं। सो चोरी के अनेक भेद हैं। एक तो धर्म चोर, एक कर्म चोर। सो जो पापी जीव, धर्मस्थान में चोरी करै, सो तौ

धर्म—चोर कहिये। और जे माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, इन तैं धन चुराय राखैं, सो घर-चोर हैं। तथा पराये घरन का हरनहारा होय, सो घर-चोर है। ताकरि राज्य—पंच का किया दण्ड पावै। और बालक, पुत्र, तथा स्त्री तैं छिपाय खाय, भली वस्तु छिपाय कैं खाय, सो पुत्र-स्त्री-चोर है। ये सर्व चोरी समान दोष करैं हैं। ता चोरी के दोय भेद हैं। एक चोरी, दूसरा चरपट। जो छल कर, छिप करि, परधन हरै। सो चोर है। और गिरासियादि जोरी तैं डराय, प्रगट पराया धन हरैं। सो चरपट कहिये। सो ये चोरी—चरपट, भेद भी पाप जानि, तजना योग्य है। ये चोरन की चतुराई, सब ही दुखदाई, ताहि तजना जिन-गाई, मैं भी धर्म-हित भव्य जीवन कूं सुनाई। तातैं तजौ समझ सब भाई, याके किये हानि दाई, जस हानि गुरु सुनाई। पर-भव दुर्गति होय, सकल पाप थान जोय, ऐसो लक्ष्य तजो सोय, मानो सीख भव्य होय। इत्यादिक, चोरी सर्व पाप का मुकुट जानि, तजना योग्य है। इस चोरी ही के चिंतवन किये, पाप-बंध होय है। तातैं अपने पर-भव सुधारवे कूं, संतोष भाव भजि कैं, बहुत तृष्णा का कारण जो चोरी, ताहि निवारौ। ये सीख सुपूत कौं है। जो कहे का उपकार मानै। और जिनकौं चोरी भली लागै। सो सुनि करि, भले उपदेश सूं द्वेष-भाव करैं। चोरी व्यसन का त्याग सुनि, चोर हैं ते धर्म सभा तजैं। परन्तु चोरी नहीं तजैं। सो ऐसा प्राणी धर्म-सीख काहे कौं मानै है? ये सीख सपूत कौं है। तातैं श्रावकन कूं, अतिचार सहित, चोरी व्यसन तजना योग्य है। इति चोरी व्यसन ॥ ६ ॥

आगे परदारा व्यसन कहिये है। जहां पर-स्त्रीन के रूप, हाव–भाव कौं देख, भोगवे की इच्छा, सो परदारा व्यसन है। या व्यसनी की दृष्टि तौ भगनी, पुत्री, माता कौं भी रूपवान देख, विकार रूप ही प्रवृत्ते है। और जे धर्मात्मा हैं, सो पर-स्त्रीन कूं भगनी, माता, पुत्री समान देखैं है। ऐसा भिन्न भेद इनकी दृष्टि में जानना। ये जीव उस ही दृष्टि (आंख) तैं भगनी-पुत्री कौं देखैं हैं। अरु उसही दृष्टि तैं, अपनी स्त्री कूं देखैं हैं। सो धर्मात्मा तो यथावत जानैं हैं। अरु व्यसनी, विकार दृष्टि करि जानै है। सो यह जीवन की दृष्टि का ही भेद जानना। कैसी है या व्यसनी की दृष्टि। दोऊ भव दुख–अपयश की करनहारी है। इस व्यसनी कौं पर-स्त्री गमन तैं पकड़िये, तो जाति तैं निषेधैं हैं। और राजा है सो ताका तन छेदन करि, घर लूटै है। और खर-रोहण करि, देश तैं निषेधै है। तातैं हे भाई, कहा जानैं नरक-फल परभव में कब लागे? हाल ही में जीव कौं नर्क समान दुख देखने पड़ैं हैं। लोक में निंदा होय है। नाक-कान–हस्त–पांव अंगादि छिदैं हैं। सो ये फल तौ खराबी के, यहां ही प्रत्यक्ष देखना होय है। तातैं धर्मी-जन, अपने हित कौं, पर-स्त्री, धर्मरूपी कल्पवृक्ष के छेदवे कूं करोत समान जानना। और ये पर-स्त्री, यश रूपी पर्वत के नाशवे कूं वज्र समान है। देखो रावण सा महा-बली, तीन खण्ड का स्वामी, यश का तिलक, जाके यश-सौभाग्य की देव भी महिमा करैं। ऐसा दीरघ पुण्यी, सो भी पर-स्त्री के दोष तैं, अपयश पाय, हीन-गति का बासी भया। राज्य गया, कुल क्षय भया, पर-गति बिगड़ी। तातैं हे भाई, नाग के

मुख हस्त देना, विष भोजन करना, ये तो भला है। परन्तु पर-स्त्री-संग, भला नाहीं। छुरी, कटारी, बर्छी की धारन पै कूदना भला। इन तैं एक भव दुख होय। अरु पर-स्त्री संगति तैं, भव-भव में दुख होय। तातैं विवेकीन कौं पर-स्त्रीन का त्यागना भला है। अरु जिन बातन में पर-स्त्री संग का दोष लागै, ऐसे अतिचार भी तजना योग्य है। सो अतिचार कहिये हैं। पर-स्त्रीन तैं सराग भाव सहित हँसि बोलना। कौतुक सहित तिनके तन तैं लिपटना। पर-स्त्रीन के पट्-आभूषण देख कहै, जो तुम कौं यह भला लागै है, ये भला नहीं सोहै है। पर-स्त्रीन के अंग-उपांग चाल की सराहना करना। ये सर्व पर-स्त्री व्यसन समान दोष करैं हैं। और विकार चित्त करि पर-स्त्रीन का काम-काज करै। ताकौं भले-भले पट्-आभूषण लाय देय। राग सहित मुख तैं वचन बोलै। ताकूं पर-स्त्री का व्यसनी कहिये। और जहां नारी, स्वेच्छा भईं कौतुक करतीं होंय, गाली-गीत गावती होंय। तहां आप जाय, सुनि करि हर्ष कौं प्राप्त होय। चित्त देय सुनै, तिनकी प्रशंसा करै, सो पर-स्त्री का व्यसनी है। और पर-स्त्रीन के समूह में जाय, तहां बैठ के तिन स्त्रीन की सुहावती बात कहै। तिनकौं अनेक कौतुक कथा कहिके हँसावै-सुखी करै। सो पर-स्त्री का व्यसनी कहिये। और जे पनघट-घाट, जहां अनेक स्त्री-समूह जल कौं जांय। तथा और जगह जहां अनेक स्त्रीन के गमन का स्थान होय। ऐसे स्थान पै जाय तिष्ठना, सो पर-स्त्री का व्यसनी है। तथा पर-स्त्रीन की चाल-काय सराहना। पट्-आभूषण-रूप देख हर्ष करना। सो पर-स्त्री का व्यसनी है। और

अपने घर में चेटी (दासी) राखनां। तथा विधवा स्त्री कौं मोह के वश करि, घर में राखना। तातैं भोगन की अभिलाषा पूर्ण करनी। सो पर-स्त्री का व्यसनी है। और बालक-नर कौं नारी बनाय देखना। तथा सुन्दर स्त्रीन कूं, नर-भेप बनाय, देख सुखी होय, स्पर्श करि सुखी होय। सो पर-स्त्री का व्यसनी है। और विधवा तथा पर-स्त्री जाका भर्तार जीवता होय, तिनतैं एकांत विषैं बतलावना। तिनतैं ऐसा कहना, जो आज-कल तो हम पै कोप है, तातैं नहीं वोलो हो। सो हम पै ऐसी कहा चूक परी है, सो कहो। हम तो आप के आज्ञाकारी हैं। इत्यादिक राग सहित वचन भाषण करै, सो व्यसन का लोभी है। अरु पर-स्त्री तैं अबोला रहै, रूठना करै। फेरि तिसके बोलने कौं, औरन तैं प्रार्थना करै। कहै जो हमकों वाकौं बुलाय देउ। इत्यादिक भावन का धारी, इस व्यसन का धारी है। और जे अपने तन में नाना प्रकार वस्त्र-आभूषण पहरि, पर-स्त्रीन कौं दिखाया चाहैं। अपना भला रूप-यौवन, तन की ललाई-पुष्टता, पर-स्त्रीन कौं दिखाया चाहैं, सो पर-स्त्री व्यसन मोही हैं। इत्यादिक कहे जो पर-स्त्रीन के व्यसन के दोष, तिन सहित सब कौं त्याग, अपना व्रत निर्दोष राखै, सो पर-स्त्री व्यसन का त्यागी कहिये। इति पर-दारा व्यसन ॥७॥ ये कहे जो सात व्यसन, सो सर्व पाप के मूल हैं। जेते जगत के पाप हैं, तेते सर्व इन व्यसनन में गर्भित हैं। सो जिनके उदर विषैं, इन व्यसनन की वासना है। सो धर्म-विमुख प्राणी, अपने भव का विगाड़नहारा है। हे भव्य! ये सात व्यसन, सात नरक के दूत हैं। ये व्यसन, जीव कों

किञ्चित् सुख की छाया सी बताय, लोभ देय, नर्क विषैं धरैं हैं। जे प्राणी इन व्यसनन में फँसैं हैं, तिनने अपना भव वृथा किया, धर्म छोड़ि दिया। और जे जीव इन कूं परख, व्यसन जानि, इन विषैं रंजायमान होय प्रवर्तें, इन कौं सेवन करैं। सो जीव पाप के निशान हैं। तिस व्यसनी का चलन ही अशुभ होय, धर्म-क्रिया हीन होय, परणति खोटी होय, जिन आज्ञा रहित होय, अभिमानी होय, सुबुद्धि–जीवन करि निन्द्य होय। दरिद्री अन्न करि दुखी होय। इत्यादिक युग-भव दुख का सहनहारा, ये व्यसनी है। सो विवेकी जीवन करि तजिवे योग्य है। या व्यसनी का संग भला नाहीं। अहो भव्य हो! दीन होय रहना भला है। तातें समता सधै, कोई जीवन कौं पीड़ा नहीं होय। ऐसा उपदेश सुनि, जो जीव व्यसन का सेवनेहारा, अञ्जन चोर की नाईं निकट संसारी होय। तो ऐसे निकट–भव्य जीव तौ, व्यसन कौं बुरे जानैं। अपनी निन्दा करते, अत्यन्त अलोचना करते, उपदेशी का उपकार मानैं। स्तुति करि, व्यसन-भाव तजैं हैं। अपना भव सफल जानि, धर्म विषैं लागैं। सत्संग की महिमा करैं। कहैं सत्संग धन्य है जो मोकों व्यसन के पाप का भेद बताय, संबोधित किया। जैसे काहू कौं कूप पड़ते राखै। तैसे सत्संग ने मोकों-नरक पड़ते कौं, बचाया। तथा जैसे कुधातु जो लोहा, ताकौं पारस (पत्थर) लाग, कंचन करै। तैसे ही मोसे पापी-व्यसनी लोहे समान कूं, पाप तैं छुड़ाय, धर्मी किया। इत्यादिक भव्य–व्यसनी तो अपना भला जानि, सत्संग की स्तुति करै। और जे पापी–व्यसनी दीर्घ–संसारी हैं। ते व्यसन की

निन्दा सुनि, आप बुरा मानैं। सत्संग कूं तजें। परन्तु सप्त व्यसन कूं नहीं तजैं। ऐसे पापी–व्यसनी कौं, धर्मोपदेश नाहीं लागै। ये सात व्यसन हीं धर्म के घातक हैं। ऐसा जानि उत्तम श्रावक, जिन आज्ञा प्रमाण व्रत के धारी कूं, अपने व्रत की रक्षा–निमित्त, ये सात ही व्यसन, अतिचार सहित तजना योग्य है। इन सप्त व्यसन के अतिचार में, आठ मूल-गुण के अतिचार, बाईस अभक्ष्य आदि आगये, सो जानना। इत्यादिक सर्व दोष रहित सम्यग्दर्शन व अष्ट मूल गुण होंय। और ये सात व्यसन व बाईस अभक्ष्य का त्याग, सो प्रथम दर्शन प्रतिमा जानना ॥१॥ इति श्रीसुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, सागार धर्म–एकादश प्रतिमा विषैं, प्रथम दर्शन प्रतिमा के बाईस अभक्ष्य, अतिचार सहित सात व्यसन त्याग, अष्ट मूल गुण सहित कथन वर्णनो नाम, बत्तीसवां सर्ग सम्पूर्णं ॥३२॥

आगे दूसरी व्रत प्रतिमा का संक्षेप लिखिये है। दूसरी व्रत प्रतिमा है। ता व्रत के बारह भेद हैं। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और च्यारि शिक्षा व्रत। ये सब मिल बारह भये। तहां प्रथम नाम–अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्य्याणुव्रत, ब्रह्मचर्य्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत। ये पांच अणुव्रत हैं। अब इनका सामान्य अर्थ। जहां एक–देश पांच पापन का त्याग, सो अणुव्रत हैं। अणु नाम थोरे का है। सो ये त्रस हिंसा का तो सर्व प्रकार त्यागी है। बाकी बारह में, ग्यारह तैं असंयम है। परन्तु महा दयालु है। कोई यहां ऐसा जानेगा, जो त्रस रक्षक है तौ स्थावर घात करता होयगा। मन–इन्द्रिय वश नहीं होय, सो मन–

इन्द्रिय करि महा विकल रहता होयगा ? सो हे भव्य, ये अणुव्रती श्रावक, संसारीक इन्द्रिय-भोगन तैं महा उदास है। पांच-पापन तैं महा भय—भीत है। सो इन्द्रिय—मन कौं सदीव रोकता, धर्म ध्यान मई प्रवर्तै है। ये भोग-भाव, ताहि काले नाग समानि भासैं हैं। ताका इनमें मन रंजै नाहीं। और स्थावर की हिंसा का त्यागी तौ नाहीं, परन्तु पंच स्थावर के आरंभ में दया—भाव सहित आरंभ करै। जहां अल्प हिंसा होय, तामें भये पाप की आलोचना रूप रहै है। तातैं ए अणुव्रती, मन—इन्द्रिय वश करिवे का तौ उपाई है। और स्थावर की रक्षा—रूप भावना का भोगी है। तातैं ये व्रती श्रावक, महा दया धर्म का धारी है। गृह—आरम्भ-परिग्रह के योग तैं, सर्व प्रकार स्थावर की हिंसा बचती नाहीं। तातैं तिस श्रावक कूं, अणुव्रती कह्या है। अपने हाथ तैं त्रस हिंसा का आरम्भ नहीं करै। सो याका नाम अहिंसाणुव्रत है। याके पांच अतिचार हैं। सोही कहिये हैं—अपने हाथ तैं कोई त्रस जीव कूं नहीं बांधै। जैसे हस्ती, घोटक, गाय, बैल, भैंस, बकरी, मनुष्य, इत्यादि त्रस जीव के हाथ-पांव, बंधन तैं नहीं बांधै। गले में फंदा डाल कोई कौं नहीं बांधै। तथा बालक कूं भी क्रीड़ा—मात्र नहीं बांधै। याका नाम बंध अतिचार तजन है। १। और बेइन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय इन आदि त्रस जीवन कौं; कोड़ा, लाठी आदि शस्त्रन तैं नहीं मारै। सो ये वध दोष त्याग है।२। और मर्यादा के उपरांत; पशु पै, मनुष्यन पै भार नहीं लादै। सो याका नाम अतिभारारोपण दोष त्याग है।३। और त्रस जीवन के अंगो-

पाङ्ग अपने हाथ तैं नहीं छेदै। सो ये छेदन दोष निवारण है।४। और कोई त्रस का, अन्न–जल–घासादि खान–पान नहीं रोकै। जैसे कोई के सिर अपना कर्ज आवै था। सो ताकौं ऐसा नहीं कहै, जो हमारा कर्ज देव, नहीं तो अन्न–जल खायगा तौ तोकौं ऐसी आण (कौल) है। ऐसा वचन, व्रती श्रावक नहीं कहै। तथा गाय, बैल, हस्ती, घोटक के खान–पान कूं बंद नहीं करै। याका नाम अन्न-पान-निरोध दोष तजन है।५। ऐसे पांच अतिचार नहीं लगावै। सो शुद्ध व्रत अहिंसाणुव्रत है। इति अहिंसाणुव्रत ॥ १ ॥ आगे सत्याणुव्रत का अतिचार सहित स्वरूप कहिये है। तहां ऐसी स्थूल झूठ नहीं बोलै, जातैं लोक निन्दा होग, दूसरों कौं बुरा लागै। कोई दगाबाजी सहित वचन, कठोर वचन, मर्म छेदन वचन, पर-दोष प्रगट करन वचन, कलहकारी वचन, द्रोह वचन, गाली वचन, पाप-बंधकारी वचन, पर-घर धन मन तन-हरन वचन, पर-निन्दा वचन, क्रोध वचन, लोभ वचन, राग-द्वेष वचन, अविचार वचन, इत्यादिक असत्य वचन के भेद हैं। इन सर्व का त्यागना, सो सत्याणुव्रत है। सो याके भी पांच अतिचार हैं। सो दिखाईये हैं। प्रथम नाम–मिथ्या उपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेख क्रिया, न्यासापहार, और साकार मंत्र भेद। इनका अर्थ–तहां झूठा उपदेश देना, झूठा मार्ग बतावना, तथा बालकन तैं असत्य भाषण करि, क्रीड़ा करनी। इत्यादिक असत्य वचन बोलना। सो मिथ्योपदेश है।१। और जहां पराई एकांत की बात कोई बतलावते होंय, ताकौं कोई अनुमान तैं जानि, अन्य लोकन में प्रकाश करै। सो रहोभ्याख्यान अतिचार है।२। और जहां

झूठा खत, हुण्डी, चिट्ठी लिखना। झूठा लेखा माड़ना। इत्यादिक ये कूट-लेख-क्रिया दोष है।३। और पराये गहने आदि धरे माल कौं राखि, जानि—पूंछि मुकरि (मेंट) जाना, सत्यघोप पुरोहित की नांईं । सो न्यासापहार नाम अतिचार है।४। और कोई के शरीर के चिन्ह तैं, नेत्र के चिन्ह तैं, मुख के चिन्ह तैं, ताकी अक्रिया देख, ताके मरम की बात कौं जानि, पीछे द्वेष—भाव करि, पराई छिपी बात कूं सब में प्रगट करना। सो साकार-मंत्र-भेद दोष है।५। ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो सत्याणुव्रत कहिये है ॥ २ ॥ आगे अचौर्य्याणुव्रत का स्वरूप कहिये है। तहां पराया धन बिना दिया लेय, सो अदत्तादान है। ये चोरी जानना। जो पराये पुत्र, स्त्री, दासी, दास, हस्ती, घोटक, गाय, बैल, बकरी, इत्यादिक चेतन वस्तु ।.अरु रत्न, स्वर्ण, चांदी, वस्त्र, अन्न, धन ये अजीव वस्तु । ऐसे इन चेतन—अचेतन द्रव्य कौं चोरना, सो चोरी है। सो या चोरी के पांच अतिचार हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम—स्तेय प्रयोग, स्तेय वस्तु आदान, राज्य-विरुद्ध क्रिया, मानोनमान, पर-रूपक व्यवहार। ये पांच अतिचार हैं। इन का अर्थ—तहां चोरी का उपदेश देना, चोर कूं राह बतावना, पराया घर—मन्दिर फोड़बे कूं कुसिया, कुदारी देय, चोरी का मनसूबा बतावना। इत्यादिक चोरी के प्रयोग बतावना, सो स्तेय प्रयोग नाम दोष है।१। और चोरी की वस्तु कूं सस्ती जानि, बड़ा नफा देख, मोल लेना । सो याका नाम तदाहरतदान दोष है। याही का नाम स्तेय वस्तु आदान दोष है।२। और राजा की मर्यादा लोपना, राजा की आज्ञा टालना,

सो राज्य–विरुद्ध नाम दोष है ।३। और जहां लेने के तोलादि तो बड़े होंय, और पर कौं देने के पाई, कुड़ा, तोला, सेर, पंसेरी सो छोटी–हीन राखै। सो याका नाम हीनाधिक मानोन्मान नाम अतिचार है ।४। और बड़े मोल की वस्तु में, थोड़े मोल की वस्तु कौं मिलाय के बेचना । सो प्रतिरूपक व्यवहार नाम दोष है ।५। ऐसे इन पांच अतिचार रहित होय, सो अचौर्य्य नाम अणुव्रत है । इति अचौर्य्याणुव्रत ॥ ३ ॥ आगे ब्रह्मचर्य्याणुव्रत कहैं हैं । जाकैं छोटी पर-स्त्री, पुत्री; बराबर की स्त्री, बहिन; व बड़ी स्त्री, माता समान है । ऐसी दृष्टि तौं पर-स्त्रीन पै रहै । और अपनी परणी स्त्री में संतोषी, तीव्र राग रहित, समता भाव सहित, संतान उत्पत्ति निमित्त स्व–स्त्री तैं रति समय संगम करै । बाकी च्यारि प्रकार चेतन–अचेतन स्त्री विषैं राग–द्वेष का अभाव, विकार दृष्टि करि नहीं देखै । तथा पर-स्त्रीन में काम चेष्टा रूप विकार वचन, हाँसि वचन, परस्पर प्रेम बधावनेहारे निर्लज्ज वचन, कुशील–राग करि भरी दृष्टि करि देखना, पर-स्त्रीन तैं गोष्टी, चर्चा–वार्ता करनी, इत्यादिक पर-स्त्री संबंधी दोष हैं । कैसी है पर–स्त्री की दृष्टि ? बिषनाग समान राग–जहर करि भरी । यौवन करि मदोन्मत्त, विकराल स्वरूप की धरनहारी । शीलवान् पुरुषों कों भयकारी। महा विष नागनी। बालक, वृद्ध, देव, पशु, सर्व तीन गति के जीवन कूं डसनहारी । बड़ों की आज्ञा रूपी मंत्र-मर्याद की लोपनहारी । ऐसी पर–स्त्री का त्याग, सो ब्रह्मचर्य्याणुव्रत है । सो याके पांच अतिचार हैं। सोही कहिये हैं ।प्रथम नाम–पर-विवाह-करण, इत्वरिका-गमन, परगृहीतागृहीत

गमन, अनंग क्रीड़ा, काम तीव्राभिनिवेश। ये पांच हैं। इन का अर्थ-तहां पराया विवाह करावना। बीचि में पड़ि, सगाई करावना। बीच में फिरि, लड़का—लड़कीन के नाता मिलाय, राख मिलाय, व्याह के नेग-चार करावना। इत्यादिक व्याह के कार्य करावना, सो पर-विवाह करण नाम दोष है॥ १॥ और दासी कूं घर में राखना, तातैं स्त्री—व्यवहार की चेष्टा करनी। सो इत्वरिका-गमन नाम अतिचार है॥२॥ और पर-कर-गृहीत जे स्त्री, जिनका भर्तार जीवता होय। तथा पर-कर नहीं गृहीत जो विधवा स्त्री—भर्तार रहित। तथा कुवांरी विवाह रहित। इनतैं विकार चेष्टा करि, तिनके घर गमनागमन करना। सो परगृहीतागृहीत-गमन नाम दोष है॥ ३॥ और जहां स्त्री का भोग योग्य योनि स्थान तजि, बाह्य अंगन तैं क्रीड़ा करनी। जैसे श्वानादि पशु भोग—योग—स्थान तजि, ऊपर-ऊपर क्रीड़ा करैं। तथा हाथ—पांव अंगन तैं क्रिया करि, वीर्य का गिराना। इत्यादिक ये अनंग क्रीड़ा दोष है॥४॥ और जहां, जा भोजन तैं, तथा जिन वचनन तैं, तथा जिस क्रिया तैं, तीव्र काम की बधवारी होय। सो कामतीव्राभिनिवेश दोष है॥५॥ ऐसे ये पांच अतिचार रहित होय, सो ब्रह्मचर्य्याणुव्रत है। इति ब्रह्मचर्य्याणुव्रत॥४॥ आगे परिग्रह परिमाणाणुव्रत कहिये है-तहां दस प्रकार परिग्रह, तिनका प्रमाण करै। सो तिन दस के नाम-क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, चौपद, दोपद, आसन, शयन, कुप्य, और भाण्ड। ये दस भेद परिग्रह के हैं। सो तहां चौतरफ क्षेत्र का प्रमाण करना। जो येते क्षेत्रन में, कर्म सम्बन्धी क्रिया करनी। या तैं अधिक क्षेत्रन में कर्म-सम्बन्धी कार्य करने के ममत्व का त्याग।

सो क्षेत्र परिमाण है। तथा एते क्षेत्र विषैं हल जोति खेती करना, अधिक क्षेत्र नहीं जोतना। ऐसा
परिमाण करना। सो क्षेत्र परिग्रह परिमाण है॥१॥ और जहां दुकान, मन्दिर, नगर का परिमाण
जो एते मन्दिर राखे। सो वास्तु परिग्रह परिमाण है॥२॥ और स्वर्ण, चांदी, रत्न इत्यादिक
का प्रमाण करना, जो एता धन राखना, सो धन परिग्रह का परिमाण है॥३॥ और तहां
तन्दुल, गेहूं, जव, ज्वार, मोंठ, मूंग, उड़द, चना, कोदों, बटरा, मसूर, तूअर इत्यादिक अन्न
की संख्या का परिमाण, जो एते अन्न राखे, सो येते तौल प्रमाण। सो धान्य परिग्रह का परिमाण
है॥ ४ ॥ और दासी-दास-सेवक, दो पद के धारी जीव एते राखना, सो दुपद परिग्रह
का परिमाण है॥ ५ ॥ और हस्ती, घोटक, ऊँट, गाय, भैंस, बकरी, ये चौपद हैं। सो इनका
परिमाण करना, जो एते चौपद अपने आधीन राखूंगा। सो चौपद परिग्रह परिमाण है॥६॥
और रथ, गाड़ी, गाड़ा, सिंहासन, पालकी, म्याना, इत्यादिक आसन हैं। सो इनका परिमाण
राखना। सो आसन परिग्रह परिमाण है॥ ७ ॥ और पलंग, खाट, बिछौना, तकिया इनका
परिमाण कर लेना। सो शयन परिग्रह परिमाण है॥८॥ और सूत, रेशम, घास, रोम, इत्यादिक
के कोमल-कठोर वस्त्र तिनका प्रमाण। सो कुप्य नाम परिग्रह परिमाण है। तथा केशर, कपूर, अगर,
चन्दन, इतर, इनकी खुसबू का परिमाण, एती खुसबू राखी। सो याका नाम कुप्य परिग्रह
परिमाण है॥ ९ ॥ और धातु-मात्र के बासन-चांदी, स्वर्ण, कांसा, पीतल, तांबा, लोहा,
जस्ता, सीसा, रांगा, इत्यादिक पृथ्वी काय धातु-पात्रन का परिमाण राखना। जो एते थाल,

रकेबी, चरुवा, बेला, भरत्याई, सर्व की गिन्ती-तौल का परिमाण रखना। सो भाण्ड नाम परिग्रह परिमाण है ॥१०॥ इन दस जाति परिग्रह के परिमाण का नाम तौ, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार जी के अनुसार कहा। और तत्त्वार्थ सूत्र जी विषैं-क्षेत्र, वास्तु, स्वर्ण, हिरण्य, धन, धान्य, दासी, दास, भाण्ड, कुप्य। ये दस हैं। सो नाम भेद है। अर्थ भेद केवली-गम्य है। तथा विशेष ज्ञानीन के गम्य है। इन दश जाति परिग्रह का परिमाण करना। सो परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। अति बाहन, अति संग्रह, विस्मय, अति लोभ, और अति भारारोपण। ये पांच हैं। इनका सामान्य अर्थ—गाड़ा, गाड़ी, रथ, हस्ती, घोड़ा इत्यादिक असवारी जाति के जैसे दस हजार घोड़ा, दस रथ, इत्यादिक परिमाण राखे थे। सो वर्तमान काल में आप के पास परिमाण तैं थोड़ा है। सो ताके पूर्ण करवे कौं अनेक उपाय करते, ऐसा विचारै। जो मेरे तो दस का प्रमाण है। सो पांच तौ हैं, अरु पांच और ल्यौं। तौ मेरे व्रत कूं दोष नाहीं। ऐसा विचारकर पूरण कस्या चाहै है। सो बहुत बाहन नाम दोष है। तथा अपने परिमाण तैं बहुत इकट्ठे करवे की इच्छा होय। तथा अपने प्रमाण तैं बहुत वाहन होंय। तौ कहै, ये मेरे नाहीं, मेरे पुत्र के हैं, तथा स्त्री के हैं, तथा भाई के हैं। इत्यादिक अपने मन तैं कल्पना करि, तिनकौं इकट्ठे करै। सो अति बाहन नाम दोष है ॥ १ ॥ और अपनी मर्याद उल्लंघि तथा सन्तोष छोड़, अत्यन्त लोभ के योग तैं, अपने जेते अन्न की मर्यादा राखी थी; ताही प्रमाण अनेक जाति का

अन्न संग्रह करि, भड़शाला में बहुत दिन राखै। तिनमें अनेक जीव पड़ चलैं। सो तिनकौं देख कैं, निर्दय-भावना करि, ऐसा विचारै। जो मेरे एते अन्न की मर्यादा है। कोई मर्यादा कूं उल्लंघि करि, थोड़े ही राख्या है। अरु जीव पड़े, सो पड़ैं ही, पड़ैं। अन्न है। ऐसी कहां सधै ? व्यापार है। नहीं करिये, तौ बने नाहीं। ऐसा विचार करि, कठोर भाव राख, दया नाहीं करै। सो बहुत संग्रह नाम दोष है ॥ २ ॥ और कठार-खाने की दुकान सम्बन्धी किराना-धना, जीरा, हल्दी आदि अनेक वस्तु लेनी—बेचनी। तिन में सामान्य—विशेष लाभादि नहीं जान, परणामन में खेद करना, संक्लेशता रखनी। तथा पहिले तौ लाभ जानि, वस्तु ल्यावना। पीछे लाभ नहीं भासै, तब बहु तृष्णा करि बेचना। तथा अपनी मर्यादा तैं अधिक आई जान, ताके फेरवे कौं विसंवाद करना। सो विस्मय नाम दोष है ॥ ३ ॥ और जहां वाणिज्य के निमित्त, अनेक वस्तु संग्रह करना, लेना। पीछे बैंचना, तब अल्प मोल की वस्तु में मिलाय बैंचना। सो अति लोभ नाम दोष है॥ ४ ॥ और तहां वृषभ, भैंस, खर, हिम्माल, इनके ऊपर, मर्यादा के उपरान्त भार का धरना। जैसे भाड़ा तो तिनके भार की मर्याद-प्रमाण मनुष्य तैं किया। अरु पीछे राजा के कर के भय तैं चुराय, ताके ऊपर बड़ा भार धरना। तथा नफा के लोभ तैं पर-जीवन पै मर्याद कौं उल्लंघि, भार का धरना। सो अति-भारारोपण दोष है ॥५॥ ऐसे कहे जो पांच अतिचार बचावै, तौ परिग्रह प्रमाण का वृत, शुद्ध होय है। इति पांच अणुवृत के, पच्चीस अतिचार कथन ॥ आगे तीन गुणव्रत के नाम व

अतिचार कहिये है। प्रथम नाम—दिगवृत, देशवृत और अनर्थ दण्ड त्याग वृत। इनका अर्थ—तहां पूर्व दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, दक्षिण दिशा, और पूर्व-दक्षिण के बीचि आग्नेय कोंण विदिशा है। और दक्षिण—पश्चिम के बीच में नैऋत्य विदिशा है। पश्चिम-उत्तर के बीचि में वायव्य कोंण है। उत्तर—पूर्व के बीचिमें ईशान कोंण है। ये च्यारि विदिशा हैं। तथा उर्ध्व दिशा, और अधो दिशा। ऐसी इन दसौं दिशाओं का परिमाण करना। तथा दिशा—विदिशा विषैं ऐसी प्रतिज्ञा करनी। जो फलानी दिशा—विदिशा कूं, फलानी नदी तांईं, तथा फलाने पर्वत तांईं, फलाने देश तांईं, फलाने नगर तांईं, एती मर्याद में कर्म—कार्य करूंगा। एती ही दूर तांईं पत्र लिखूंगा। एतो ही दूर का पत्र आय, तौ बांचूंगा। ऐती ही मर्याद में वस्तु भेजूंगा। ऐती ही मर्याद तैं मँगाऊंगा। इस मर्याद को उल्लंघ कैं पत्र नहीं लिखूंगा। और उर्ध्व दिशा में एते उंचे पर्वत तांईं चढ़ूंगा। और अधो दिशा में एती नीची धरा तांईं, पाताल में, नदी—कुएं में जाऊंगा। ऐसे दसौं दिशा का प्रमाण करैं। सो दिग्व्रत है। याके पांच अतिचार सो ही कहिये हैं। अधोतिक्रम, उर्ध्व अतिक्रम, तिर्यग्गमन अतिक्रम, क्षेत्र परिमाण उल्लंघन और अंतर स्मरण। अब इनका अर्थ—अपनी मर्यादा कूं उल्लंघि कैं धरती, कूप, बावड़ी, नदी, इत्यादिक पृथ्वी में उतरना। सो अधो दिशा-तिक्रम नाम अतिचार है ॥१॥ और जहां पर्वत-शिखरन पै, अपनी मर्याद उल्लंघ के चढ़ना, सो उर्ध्व दिशातिक्रम अतिचार है ॥२॥ और मर्याद उल्लंघि कैं, विदिशा में गमन करना।

सो तिर्यग्गमन अतिक्रम अतिचार है ॥ ३ ॥ जिन क्षेत्रन में मर्यादा की थी। सो तिसकों उल्लंघि, अधिक क्षेत्र में कर्म-कार्य करना। सो क्षेत्र उलंघन अतिचार है ॥ ४ ॥ और जहां दिशा में सीमा की थी। ताकूं अंतरंग में भूलकर विचारना, जो मेरे कौनसी दिशा की मर्यादा थी? ऐसे करि मर्यादा का भूलना। सो अंतर-स्मरण नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे अतिचार रहित, दिग्व्रत का पालना। सो दिग्व्रत है ॥ १ ॥ आगे दूसरा देशव्रत कहिये है। तहां आगे कह्या दिग्व्रत-परिमाण, ताही में घटाय के मर्यादा करना। जो पहिले दिग्व्रत किया। सा आयु पर्यंत है। और तिस व्रत में घटाय, रोज–रोज की मर्यादा करनी। तथा वर्ष, षट् मास, चतुर्मास, एक माम, पन्द्रह दिन, पहर, घड़ी का नियम करना। जो एते काल, एते दिन, एते मास तांई, एते भोग–उपभोग राखे। भोग वस्तु में एते अन्न, एते मेवा, खावने; अधिक नाहीं। ऊपर-भोग में एते वस्त्र, गाड़ी, रथ, घोड़ा, हस्ती, महल, बिछौना, स्त्री, एते–एते राखे। सो भोगना, अधिक नाहीं। एते क्षेत्र में कोस, दस–पांच धनुष, जाऊंगा। ये क्षेत्र में, एते काल तांई रहूंगा। इत्यादिक नियम रूप मर्याद, सो देशव्रत है। याही के पांच अतिचार हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम–आसन–शयन, पर-पेक्षण, शब्द, रूप और पुद्गल-क्षेपण। ये पांच हैं। इनका अर्थ–जहां जेते स्थान का परिमाण करि, जेते काल पर्यंत दृढ़ होय तिष्ठना, शयन करना, बैठना। इतनी मर्याद में ऐसे रहना। ऐसे मर्याद करि, फेरि ताके काल–क्षेत्र कों उलंघि कैं क्रिया करनी, सो आसन–

शयन अतिचार है ॥ १ ॥ और जेते क्षेत्र में, काल की मर्यादा करी। तामें तिष्ट्या ही और के पास संज्ञा, उपदेश देय कार्य करावना। सो पर-पेक्षण अतिचार है ॥ २ ॥ और आप अपनी सीमा-मर्यादा में बैठा ही, और कों बुलाय कार्य करावे। तथा अन्य कूं दूर बैठे तें बतावे। तथा अन्य कोई कार्यवारें ने आय कही। कि फलाने जी कहां हैं ? तब अपने स्थान में तिष्ट्या ही, खखार करि, तथा खाँसि करि, अपना अस्तित्व बतावे। जो हम यहां हैं। ताका नाम शब्द दोष है ॥ ३ ॥ और आप तो अपने स्थान में तिष्ठे है। और कोई प्रयोजनहारा आवे। अरु कहे, फलाना कहां है? तब वाका शब्द सुनि, प्रयोजनी जान, गोख-तें, खिड़की तें, अपना मुख काढ़ि, ताकों बतावे। ताकों संज्ञा करि, कार्य सिद्ध करे। सो रूप नाम अतिचार है ॥ ४ ॥ और अपने परिमाण क्षेत्र में तिष्ठता, कोई कार्य काहू तें जानि, बातें बोल्या तो नाहीं। परन्तु कंकर, वस्त्रादि पुद्गल-स्कंध डार, अपना कार्य सिद्ध करना। सो पुद्गल-क्षेपण नाम दोष है ॥५॥ ऐसे पांच अतिचार माहीं लागें। सो शुद्ध देशव्रत है। इति देशव्रत ॥ २ ॥ आगे अनर्थ दण्ड त्याग व्रत का कथन करिये है-तहां बिना प्रयोजन पाप कार्य करना। सो अनर्थ दण्ड है। ताके पांच भेद हैं। प्रथम-पापोपदेश, हिंसा का उप-करण राखना (हिंसादान), अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमाद-चर्य्या। इनका अर्थ-जहां पाप का उपदेश, पर कों देना। जो आओ, बैठो। कहा करो हो। चौपड़, सतरंज, गंजफा, मूठ आदि द्यूत खेलौ। ज्यों दिन कटै। ऐसा उपदेश देना, सो अनर्थ दण्ड है। तथा चोरी

करवे का मनसूबा करना। चोरन की चतुराई की प्रसंशा करनी। चोरी का उपदेश देना। कुशील सेवन की कथा करनी। कुशील सेवन के कारण धातु आदि कामोद्दीपन औषधि की कथा करनी। ये सब अनर्थ दण्ड है। तथा वेश्या—कंचनी के रूप की कथा। तिनके नाच, गान, नृत्य, इनकी कथा। सो अनर्थ दंड है। तथा जातैं परिग्रह बधै, ताका उपदेश देना। मोह बधै, क्रोध बधै, मान—माया—लोभ बधै, मत्सर बधै। इत्यादिक दोष बधैं, ऐसा उपदेश देना। तथा भूमि खोदने का उपदेश देना। वहुत अग्नि जलावने का उपदेश, तथा पराये घर-नगर-वन में अग्नि लगायवे का उपदेश देना। ये अनर्थ दण्ड है। और भूमि—खुदाय खेती करने का उपदेश देना। तथा नदी, तालाब, बावड़ी, कूप का जल बहावने, फोड़ने का उपदेश देना। वस्त्र धुलवाने का उपदेश। कूप, तालाब बावड़ी, महल, मन्दिर, बनावने का उपदेश देना। परस्पर औरन के युद्ध करायवे का उपदेश। ये सर्व अनर्थ दण्ड हैं। तथा नदी, तालाब, बावड़ी में कूदने—सपरने (स्नान) का उपदेश। तथा वहुत वृक्ष, बनस्पति छेदने का उपदेश। बन कटायवे का उपदेश। बाग कटायवे का उपदेश। घास कटायवे का उपदेश। अन्न, तिल, शहद, सन, हाड़ का संग्रह—भण्ड़शाल करने का उपदेश। ये सर्व अनर्थ दण्ड है। तथा धर्म-घात का उपदेश देना। जो हे भाई, धर्म तौ तब याद आवै, जब पेट-भर रोटी मिलै। तातैं वड़ा धर्म येही है। जैसे दोय पैसा पैदा होंय, सो करौ। धर्म-सेवन में कहा खावगे ? ऐसा धर्म-घातक उपदेश, सो अनर्थ दण्ड है। तथा कोई तीर्थ-यात्रा कों

जाता होय। ताकौं ऐसा उपदेश देना। जो हे भाई, अभी तो कुमाई के दिन हैं। तोकों दोय–च्यारि महिना परदेश में लगैं। पांच–पचास रुपया खर्च पड़ैं। ऐसे तीर्थ में कहा पाय है? तातैं घर ही तीर्थ है। तेरे भाव अच्छे राख। इत्यादिक उपदेश देना। सो अनर्थ दण्ड है। तथा तू सर्व दिन धर्म-सेवन, पढ़ना-सीखना, जप, तप, इत्यादिक धर्म-विषैं लगावै है, घर का सोच नाहीं। सो खायगा कहा? आगे घर का काम कैसे चलेगा? तातैं कुमाई में लागो। इत्यादिक धर्म-घातक उपदेश देना। सो अनर्थ दण्ड है। सो याका नाम पापोपदेश है॥ १॥ और हिंसा का उपदेश देय, हिंसा के उपकरण करावना। चक्की, ऊखली, मूसली, छुरी, कटारी, बर्छी, तलवार, तुबक, कुल्हाड़ी, कुदारी, कुसिया, हँसिया, इन आदि कों बनवायकर, मांगे देना। इत्यादिक पाप कार्य करना, करावना, अनुमोदना। सो हिंसा दान नाम, अनर्थ दण्ड है॥२॥ और जहां खोटे पापकारी व्यापार का उपदेश देना। आप दीर्घ हिंसा सहित व्यापार का करना, तथा परकौं ताका उपदेश देना। तथा पर कौं पाप-व्यापार–वाणिज्य का उपाय बतावै। कहै कि शीशा, शोरा, शहद, नील, अदरख, इनका वणिज करने में, बड़ा नफा है। सन, साजी, लूंण [नमक], चर्म इनके व्यापार में विशेष नफा है। इत्यादिक पाप–व्यापार का उपदेश देना। सो अपध्यान नाम अनर्थ-दण्ड है॥ ३॥ और जहां स्वेच्छा–अर्थ कल्पना करि, कामी जीवन कों विकार–भाव करिवे कूं, कवीश्वरों नें बनाये जो शृङ्गार शास्त्र, संगीत शास्त्र, जो राग-मालादि रसिक प्रिय

सुन्दर शृङ्गार इत्यादिक शास्त्र, जिनकौं सुनि भोरे मोही जीव, अपने भाव काम-चेष्टा रूप करि, पर-स्त्री आदि भोगने की अभिलाषा करि, पाप बन्ध करैं। तथा जिन शास्त्रन में पर-स्त्री सेवने में पाप नहीं कह्या। तथा विधवा-स्त्री कों घर में रख, उससे काम सेवन में पाप नहीं कह्या होय। इत्यादिक कामी जीवन कूं मोह उपजायवे कूं. रंजायवे कूं, अपने २ विकार भाव पोषिवे कूं, जे शास्त्रन का कथन करना। सो अनर्थ दण्ड है। तथा लोभी कवीश्वरों ने अभक्ष्य भोजन में पाप न कह्या। मद्य-मांस के खावने के अभिलाषी जीव, तिनके राजी करवे कूं बनाये जो कल्पित—अपनी मति अनुसार शास्त्र। तिनमें हिंसा का पाप नहीं कह्या। मद्य, मांस, मधु, खावने का पाप नहीं कह्या होय। सो शास्त्र अनर्थ दण्ड है। और जिनमें नाहर, सुअर, हिरण मारने का पाप नहीं कह्या। बनस्पती छेदवे में पाप नहीं कह्या। अनगाले जल पीवने, सपरने में पाप नहीं कह्या। ऐसे जो कषाई जीवन के बनाये कल्पित शास्त्र, परम्पराय योगीश्वरों की आम्नाय रहित कल्पित शास्त्र करे, सो अनर्थ दण्ड है। और जिनमें जादू करना, वशी करना, पर-मोहन, ऐसे कल्पित मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, स्तम्भन इत्यादिक चमत्कार बतावने का कथन करि, भोरे जीवन कूं आश्चर्य उपजावना। ऐसे कल्पित स्वेच्छा शास्त्रन का जोड़ना, सो दुःश्रुति नाम अनर्थ दण्ड है॥ ४॥ और प्रमाद सहित, ईर्य्या भाव रहित, शीघ्र-शीघ्र चलना। त्रस जीवन की विराधना सहित, अदया भाव करि चलना। बिना प्रयोजन पृथ्वी, अप, तेज, वायु, बनस्पती आदि का छेदना। इसी का नाम प्रमाद—चर्या अनर्थ दण्ड

है ॥ ५ ॥ ऐसे इन पांच भेद मई अनर्थ दण्ड है। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। प्रथम नाम—कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, अति प्रसाधन और असमीक्ष्याधिकरण। इनका अर्थ—तहां काम चेष्टा सहित, काय का स्फुरावना। नेत्र की चेष्टा, विकार रूप करनी। मुख, विकार रूप करना। काम पोषक, शील भंजन, भयानीक, राग भरे वचन कहना। भय बतावना। पर कौं लोभ बतावना। काय मोड़ना, आदि अनेक कुचेष्टायें लिये, काम-विकार सहित बोलना। सो कन्दर्प नाम अतिचार है॥ १ ॥ और जहां कौतुक लिये मदोन्मत्त भया, हाँसि सहित भण्ड-वचन बोलना। गालि काढ़िने मई हाँसि वचन, शील-खण्ड पाप रूप वचन, काम—चेष्टा—विकार मई आलस का लेना, दीर्घ ऊछ्वास का करना। अपने शरीर के गूढ़ चिन्ह प्रगट करि, अन्य कौं दिखावना। सो कौत्कुच्य नाम अनर्थ दण्ड दोष है ॥ २॥ और जहां प्रयोजन रहित वृथा वचन भाण्ड़वत् बोलना। सो धर्म—कर्म रहित बिना प्रयोजन ही खस की नाईं वचन बोलना। सो मौखर्य नाम दोष है ॥ ३ ॥ और जहां हिताहित-ज्ञान रहित, अविचार सहित, मूर्ख वचन भाखना। ताकौं सुनि, बे प्रयोजन बहुत जीव द्वेष-भाव करैं। मूरख कहैं, निन्दा पावैं। इत्यादिक द्वेष उपजावनहारा, बिना प्रयोजन वचन बोलना। सो असमीक्ष्याधिकरण दोष है॥ ४ ॥ और जहां संसार विषैं अनेक भोग वस्तु, अनेक उपभोग योग्य वस्तु, नाना प्रकार इन्द्रिय सुख। देव, इन्द्र, चक्री, कामदेव, भोगभूमियां, इत्यादिक पुण्याधिकारी जीवन के भोग योग्य वस्तु, तिनके भोगने की अभिलाषा करनी। सो पुण्य

तौ हीन, जो उदर पूरणा ही होती नाहीं। और इन्द्रिय सुख भोगवे की इच्छा—देव—इन्द्र कीसी राखना। तथा पराया राज्य—भोग देख, पुण्य—रहित ऐसा विचारै। जो ये राज्य नहीं करि जानै। अरु राज्य—लक्ष्मी नहीं भोग जानै। अरु ये हस्ती, घोड़ा, पालकी पै नहीं चढ़ जानै। प्रजा नहीं पाल जानै। जो ऐसी राज्य—लक्ष्मी मोकों मिलै, तौ मैं ऐसे राज्य करौं। ऐसे हस्ती, घोटक, रथ, पालकी पर चढ़ौं। ऐसे राज्य—लक्ष्मी भोगूं। इत्यादिक पुण्य रहित होय, अर्थ रहित विचार, सो भोगोपभोग (अति प्रसाधन) नाम दोष है॥ ५ ॥ इति तीसरा अनर्थ दण्ड त्याग गुणव्रत ॥ २ ॥ इति श्री सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावक धर्म प्ररूपण रूप, एकादश प्रतिमा विषैं, दूसरी व्रत प्रतिमा के बारह व्रतन में, तीन गुण—व्रत अतिचार सहित कथन वर्णनो नाम, तेतीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ ३३ ॥

आगे च्यारि शिक्षाव्रत कहिये है। प्रथम नाम-सामायिक, प्रोपधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, और अतिथि संविभाग। इनका अर्थ-सामायिक के दोय भेद हैं। एक द्रव्य—सामायिक, और दूसरा भाव—सामायिक। तहां सामायिक करते विनय सहित, समता लिये, शांत मुद्रा धार, कायोत्सर्ग तथा पद्मासन तिष्ठ, शुद्ध सामायिक—पाठ करै है। अरु परणति सामायिक तैं छूटि, अन्त गई होय। प्रमादवशात् अन्य ही विकल्प में लागै। सो द्रव्य—सामायिक है। और जो सामायिक करनेहारा भव्य, शुद्धासन करि पाठ करै। सो अर्थ विषैं चित्त राखि, सामायिक करै। सो भाव—सामायिक है। यहां प्रश्न-जो

सामायिक प्रतिमा तो तीसरी है। अरु यहां दूसरी—प्रतिमा विषैं व्याख्यान किया। सो क्यों ? ताका समाधान-जो सामायिक प्रतिज्ञा का अतिचार रहित धारी तो तीसरी प्रतिमा में है। परन्तु यहां शिक्षाव्रत में कथन किया, सो साधन रूप कथन है। जैसे रण विषैं लड़ने-युद्ध-करनहारे पुरुष, सुभट हैं। सो तीर, गोली, तलवार राखैं हैं। जो युद्ध में काम पड़े, तो सुभट अपना पौरुष प्रगट करि, तीर-गोली चलावैं। और वैरीन कों जीतैं हैं। सो तो सुभट शूर ही हैं। और उन सुभटों के बालक हैं, सो तिनका भी अभिप्राय अपने बड़ों की नाईं, युद्ध करि, रण में शस्त्र चलाय, वैरी जीति, यश प्रगट करबे रूप है। सो वह भी अपने बड़ों से शस्त्र—विद्या सीखैं हैं। सो ते बालक भी तीर-गोली राख, चलावैं हैं। सो इन बालकन कों, सीखनेहारा कहिये। इन तैं हाल, युद्ध नहीं जीत्या जाय। ये सुभट नाहीं। जब शस्त्र—विद्या सीख चुकेंगे, तब ही सुभट कहावेंगे। हाल शस्त्र राख, तीर—गोली कों मिट्टी के तोसदान में चलावना सीखैं हैं। तैसे ही शिक्षाव्रत वाला, सामायिक करना सीखै है। सामायिक नामा प्रतिमाधारी नाहीं। यहां कोई अतिचार भी लागै। तथा कोई समयान्तर, काल भी उल्लंघन होय, तो होय। कोई अतिचार भी यहां होय। तातैं यहां शिक्षाव्रत, ऐसा कह्या है। ये शिक्षाव्रत वाला, अतिचार रूप वैरी कों, नहीं जीति सकै है। तीसरी प्रतिमा विषैं, निर्दोष वृती होय है। ऐसा जानना। इति सामायिक शिक्षाव्रत ॥ १ ॥ आगे प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहिये है। जहां सोलह—सोलह पहर का अनशन होय। सर्व

सो प्रोपधोपवास शिक्षा-
काल धर्मध्यान में, अपनी मर्याद सहित एक स्थान में व्यतीत करै। सो प्रोपधोपवास शिक्षा-
व्रत है। इनके अतिचारन का कथन, आगे इन की प्रतिमा विषै करेंगे। तहां तें जानना।
इति प्रोषधोपवास ॥ २ ॥ आगे भोगोपभोग शिक्षाव्रत कहिये है। जहां एक बार भोगवे
में आये ही, जो वस्तु अयोग्य हो जाय। सो वस्तु, भोग कहावे। और जो बार-बार भोगवे में
आवे। सो वस्तु उपभोग कहावै है। तहां भोग वस्तु के दोय भेद हैं। एक तो भोग-योग्य
वस्तु है। दूसरी भोग-अयोग्य वस्तु है। जहां अन्न, मेवा, पकवान, इत्यादिक निर्दोष
वस्तु। सो तो भोग वस्तु हैं। तथा मिष्ट, तिक्त, कटुक, खारा, दुग्ध, घृतादिक षट्रस। ये
भोग-योग्य वस्तु हैं। तथा चन्दन, केशर, कपूर, गंधादि अन्तर्जाति सर्व वस्तु। खाद्य, स्वाद्य,
लेय, पेय, इत्यादिक ये सब भोग-योग्य वस्तु जानना। और कन्द-मूल आदि बाईस अभक्ष्य,
अभोग-योग्य वस्तु हैं, सो ये सर्व तजवे योग्य जानना। ऐसे भोग वस्तु दोय रूप कहीं।
और स्त्री, वस्त्र, आभूषण, चांदी, स्वर्ण, रत्न, माणिक, मोती, हीरादि रत्न जाति और देश,
नगर, मन्दिर, हस्ती-घोटकादि चौपद, तथा दोपद-दासी, दास, सेवक। ऐसे ये चेतन-अचे-
तन करि दोय भेद रूप उपभोग वस्तु हैं। सो इन भोगोपभोग का प्रमाण राख लेना। सो
भोगोपभोग शिक्षाव्रत है। सो याके पांच अतिचार कहिये हैं। प्रथम नाम-सचित्त, सचि-
त्तसंबंध, सम्मिश्र, भिपव और दुःपक्काहार। इनका अर्थ-तहां सचित्त वस्तु का भोगना,
सो सचित्त नाम अतिचार है ॥ १ ॥ तहां सचित्त वस्तु तैं ढांकी जो वस्तु तथा सचित्त

वस्तु ऊपर धरी होय। इत्यादिक वस्तु कों सचित्त का संयोग भया होय। सो सचित्त-संयोग है ॥ २ ॥ और सचित्ताचित्त वस्तु का मिलाप सहित भोजन लेना। सो सम्मिश्र अतिचार है ॥ ३ ॥ और तहां अनेक प्रकार बलकारी–पुष्टकारी रस का खावना। सो भिषव नाम अतिचार है ॥ ४ ॥ और जो भोजन, लिये पीछे दुःख कर पचे, ग्लानि करै, डकार करै। सो ऐसे गरिष्ट भोजन का करना। सो दुःपक्वाहार अतिचार है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो शुद्ध भोगोपभोग नाम शिक्षाव्रत है। सो ये व्रत के धारी जो उत्तम फल के लोभी हैं। सो इन दोषों कों टालि, व्रत निर्दोष राखैं हैं। इति तीसरा भोगोपभोग शिक्षाव्रत ॥३॥ आगे अतिथिसंविभाग नाम शिक्षाव्रत कहिये है। तहां तिथि नाम परिग्रह का है। सो जो परिग्रह रहित होय, सो अतिथि है। तथा तिथि नाम वांच्छा का है। सो जाके वांच्छा नहीं होय, सो अतिथि है।"मूर्च्छा परिग्रहः।" ऐसा तत्त्वार्थ सूत्र का वचन है। सो अतिथि के दोय भेद हैं। एक अतिथि तो ऐसा है। कि पाप के उदय करि नहीं है अन्न-धन-वस्त्र जाके पास। उदर-पूरण कों पर–घर फिरै है। याचै है। तौ भी ताके उदर–मात्र की वांच्छा पूर्ण नहीं हो है। ऐसा महा दीन, दरिद्री, अनेक रोगन करि दुखिया, वृद्ध, बालक, अन्धा, लूला इत्यादिक ये असहाय, जिनके पास एक वक्त का अन्न नहीं। कोई दया करि देय, तब पेट भरैं, सुखी होंय। याका नाम वांच्छा सहित अतिथि है। यह अशरण है, दया करवे योग्य है। याका नाम वांच्छा सहित अतिथि है। अरु वांच्छा है, सो याचना करावे है। ऐसी याचना का धारी, वांच्छा

सहित रंक, ताकौं असहाय जानि, दया भाव करि दान का देना। सो करुणा सहित अतिथि का दान है। और बीतरागी, तपसी, ज्ञानी, ध्यानी, यमी, दमी, शांति रस का भोगी, नग्न-दिगम्बर, याचना रहित, जगत् पिता, सर्व का गुरु, त्रिलोक पूज्य, सर्व जीव का पीड़ा-हर, दया सागर, षट् कायक जीवन कूं अभय-दान का दाता, योगीश्वर, मोक्षाभिलाषी, परीषह सहवे कूं साहसी, तन-ममत्व रहित, इत्यादिक कहे गुण सहित जे मुनीश्वर, सो उत्तम पात्र हैं। सो इन पात्रन कूं महा भक्ति-भाव सहित, नवधा भक्ति करि दान देनेहारा दाता, ताके सात गुण हैं। सो ही कहिये हैं—

गाथा—सध्धा भत्ती सत्तय, विणाणमलुब्ध होय क्षम भावो।
जम्मं गुण सुह तज्यो, इव सत्तय गुण ज्ञेय आदाए ॥ १३७ ॥

अर्थ— सध्धा कहिये, श्रद्धा। भत्ती कहिये, भक्ति। सत्तय कहिये शक्ति। विणाणं कहिये विज्ञान। अलुब्ध कहिये, अलुब्धता। होय क्षम भावो कहिये, क्षमा भाव होय। जम्मं गुण सुह तज्यो कहिये, अंत का शुभ-गुण, त्याग है। इव सत्तय गुण कहिये, ये सात गुण। ज्ञेय आदाए कहिये, दाता के हैं। भावार्थ—श्रद्धा, भक्ति, शक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, और त्याग। ये सात हैं। जहां दाता के ऐसा श्रद्धान होय। जो परलोक है। च्यारि गति हैं। पाप-फल तैं नरक-पशु होय है। पुण्य-फल तैं सुर-नर के सुख होय हैं। अरु मुनि का दान, स्वर्ग-मोक्ष का दाता है। जिनका निकट संसार रह्या होय, तिन-

के घर यतीश्वर का दान होय है। ऐसी श्रद्धा का अस्तित्व सहित दान देना। सो श्रद्धा गुण है ॥ १ ॥ और जो मुनिराज भोजन कों अपने घर में आये। तिनके गुण सूं प्रीति–भाव करना। सो भक्ति गुण है ॥ २ ॥ और जगत के गुरु कों, प्रमाद रहित, विनय सहित, भोजन देवै की शक्ति होना। सो शक्ति गुण है ॥ ३ ॥ और मुनिराज के भोजन विषैं प्रवीणता। सो यथा–योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जानि, भोजन देय। विवेकी–दाता ऐसा विचारै। जो ये मुनि वृद्ध हैं, तो इनके योग्य पुष्टता रहित भोजन देय। अरु गरिष्ट देय तौ वृद्ध–मुनि कौं खेद करै। तातैं वृद्ध की वय (उमर) प्रमाण देय। तथा मुनिराज तरुण हैं तो ता माफिक देय। तथा ये मुनि, रोग सहित हैं। सो फलाना रोग है। वैसी ही दवा सहित, भोजन देय। तथा इन यती का तन, वायु सहित है। तथा पित्त सहित है। तथा कफ़ सहित है। इत्यादिक तौ द्रव्य कौं विचारै। और ऐसा जानै, जो यह ऋतु उष्ण है। तथा शीत है। तथा मध्यम है। इन मुनि की ऐसी प्रकृति है। इन्हें ऐसा भोजन रुचै, ऐसा नहीं रुचै। ऐसा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार करि, मुनीश्वर कों भोजन देने में प्रवीणता। सारी दान की विधि जानैं। सो विज्ञान गुण है ॥ ४ ॥ और मुनि के दान देने योग्य वस्तून में लोलुपी नहीं होना। जैसे घर विषैं एक–दोय भोजन, आपने रुचिकर बनवाये होंय। सी वस्तु अल्प होय। तो ऐसा नहीं विचारै, जो भोजन की फलानी वस्तु अल्प भई है, हमने अपने वास्ते कराई है। सो मुनीश्वर कों देहौं, तो मोकों नाहीं बचि है। तातैं वह वस्तु नहीं द्यो। और भोजन बहुत

है, सो दै हों। ऐसा विचार नहीं करै। सो अलुब्ध गुण है ॥ ५ ॥ और मुनि कों भोजन देते, मान मत्सर क्रोध लोभ क्रूरता सर्व तजि, समता भाव सहित, सर्व जीवन तैं स्नेह भाव सहित, क्षमा-भाव धारि, भोजन देना। सो क्षमा गुण है ॥ ६ ॥ और उदारता सहित, लोभ भाव रहित, भक्ति करि भख्या, मुनि कों भोजन देय। सो त्याग गुण है ॥७॥ ऐसे कहे जो दातार के सप्त गुण, सो इन गुण सहित जो यती कूं दान देय, सो उत्तम फल पावै। सो जो इन सात गुण का धारी दाता, यतीश्वर कों दान देय, सो नवधा भक्ति करि दान देय है—

गाथा—पितगहणं उच्चथाणं, पदधोणमर्चएव होहु पणणामो।
मन वय तण त्रण सुद्धा, एषण सुध्यय भक्त णव सुहदा ॥ १३८ ॥

अर्थ—पितगहणं कहिये, प्रतिग्रहण। उचथाणं कहि, ऊंच स्थान। पदधोणं कहिये, पद धोवना। अर्च एव कहिये, अर्चन करना। होहु पणणामो कहिये, प्रणाम करना। मण वय तण त्रण सुद्धा कहिये, मन, वचन, काय इन तीनों की शुद्धता। एषण सुध्यय कहिये, एषणा शुद्धि। भक्त णव सुहदा कहिये, ये नवधा भक्ति सुखदाता हैं। भावार्थ—प्रतिग्रहण, ऊंच स्थान, अंघ्रि-प्रक्षालन, अर्चन, प्रणाम, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, और एषणा शुद्धि। ये नव भक्ति हैं। तहां श्रावक, मुनि-भोजन समय, उज्वज्ल वस्त्र धारण करि, प्राशुक जल की झारी सहित अपने मन्दिर (घर) के द्वारे, विधि सहित खड़ा होय, मुनि आए, उनको पड़गाहना। सो प्रतिग्रहण नाम भक्ति है ॥ १ ॥ जब योगीश्वर ईर्य्या समिति करता, दातार की घर-भूमि

पवित्र करता, दाता के घर विषैं प्रवेश करि भोजनशाला में जाय। तहां ऊंचे आसन पै विनय सहित स्थापना। सो ऊंचस्थान नाम भक्ति है॥ २॥ तहां मुनिराज के दोऊ चरण-कमल कौं, श्रावक अपने दोऊ हाथन तैं स्पर्श करि, अपने हस्त सफल करता, प्राशुक अल्प-जल तैं पद धोवना। सो पद धोवन नाम (अन्घ्रि प्रक्षालन) भक्ति है॥ ३॥ और पीछे अष्ट द्रव्य तैं, जगत्गुरु की पूजा करनी। सो अर्चन भक्ति है ॥ ४॥ और पीछे विनय सहित नमस्कार करना। सो प्रणाम भक्ति है॥ ५॥ और मन को, भक्ति सहित, विनय रूप करि, मुनीश्वर में मन लगावना। उत्साह सहित, प्रमाद रहित, विकल्प तजि, एकाग्र होय मुनि के दान में मन राखना। सो मन शुद्धि भक्ति है॥ ६॥ और जहां मुनीश्वर के भोजन समय, घर-जन तैं वचन बोलना-कोई कारण पाय के सलाह करनी होय, तौ परम्पराय विचार कैं बोलै। सो वचन शुद्धि है॥ ७॥ और मुनि कौं भोजन देते समय, दाता अपनी काय कौं शुद्ध राखै। और क्रियान तैं छुड़ाय, भोजन देने में एकाग्र करि शुद्ध राखना। सो काय शुद्धि भक्ति है॥ ८॥ और शुद्ध भोजन, अधा-कर्म रहित, सो शुद्ध भोजन है। सो अधा-कर्म कहा? सो कहिये है। अधा-कर्म चार प्रकार है-आरम्भ, उपद्रव्य, विद्रावण और परतापन। इनका अर्थ—जो प्राणी के प्राण घात तैं निपजै। सो आरम्भ दोष है।१। और अन्य जीवन कौं मन, वचन, काय विषैं दुखी करि, भोजन बनावना। सो उपद्रव्य दोष है।२। और अन्य जीवन के अङ्गोपाङ्ग छेदन करि, भोजन निपज्या होय। सो विद्रावण दोष है

। ३ । और पर-जीवन कौं सन्ताप-क्लेश उपजाय, भोजन निपज्या होय । सो परतापन दोष है । ४ । इन च्यारि दोषों सहित भोजन देय । सो अधा-कर्म दोष है । ऐसे च्यारि भेद अधा-कर्म रहित भोजन देना। सो एषणा शुद्धि भक्ति है ॥ ६ ॥ ये नवधा भक्ति कहीं । सो दाता के सात गुण, नवधा भक्ति। इन गुण सहित मुनीश्वर कौं भोजन देना । सो पात्र दान है। सो श्रावक के घर में, जो श्रावक ने अपने निमित्त किया होय। तामें तैं भोजन देना। सो अतिथि संविभाग व्रत है । सो यति अतिथि हैं। वे भक्ति सहित, दान देने योग्य हैं। भक्ति सहित पात्रन कौं दान दिये, महत्-फल का लाभ होय है । सो इन पात्रन कूं अन्नदान, औषधिदान, शास्त्र-दान, और अभयदान दीजिये। यहां प्रश्न—जो तुमने मुनि कौं च्यारि ही दान देने योग्य कहे। सो अभय-दान कैसे सम्भवै ? अभय-दान तौ दया मई भावन तैं दिया जाय है । सो दया एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, इन आदि दीन-दुखी जीवन की कीजिये। तिनकौं अभयदान सम्भवै है। अरु जगत गुरु, त्रिलोक पूज्य की दया कैसे सम्भवै ? तातैं इनकौं अभय-दान कैसे कह्या ? ताका समाधान—जैसे कोई राजा के प्रबल बैरी थे । सो कोईक छल करि, राजाकौं अकेला पाय, ताकौं पकड़ि कैं मारने का उद्यम किया । तब ऐसे समय विषैं, इस राजा का सेवक-महा योद्धा, आय गया। सो वानै अपने नाथ कौं दुःख जान, वैरीन तैं युद्ध किया । अपने पुरुषार्थ तैं अरिन कौं जीति, अपना नाथ-राजा, ताकौं बचाय लाया । पीछे राजा कौं सुखी कर, नमस्कार किया । विनती करी। कि भो नाथ ! मैं आपका सेवक हों । ऐसे ही अपने नाथ-

वीतरागी जो गुरु, तन तैं निष्प्रिय, शत्रु–मित्र में समभावी, ऐसे गुरुनाथ कौं पापीजन, कोई प्रबल द्वेष-भाव तैं उपसर्ग करैं। ता समय महा घोर उपसर्ग मैं कोई महा धर्मात्मा, यतीनाथ का सेवक आय, अपने बल तैं पापीजन कौं दण्ड देय, मुनीश्वर का उपसर्ग टालि, पीछे जाय यतीश्वर कौं नमस्कार करि, स्तुति करि, विनती करै। सो यह मुनि कौं अभयदान भया। ऐसे कहने में कछू दोष नाहीं। तातैं मुनि कौं च्यारों ही दान सम्भवै। यामैं कछु दोष नाहीं। और एता विशेष है कि जो दीन कौं अभयदान देने में तौ करुणा--भाव होय है। और मुनि कौं अभयदान देने में भक्ति-भाव होय है। इन च्यारि दानन में अभयदान उत्कृष्ट है। अरु याका फल भी औरन तैं उत्कृष्ट है। जैसे राजा की और अनेक सेवा करने तैं, राजा कौं मरते राखै। सो उत्कृष्ट सेवा है। मरण समय सहाय करि, बैरी तैं बचाय करि राखै। सो उत्कृष्ट सेवक है। और यों ही उत्कृष्ट सेवा का, उत्कृष्ट फल है। तैसे ही मुनि कौं तीन दान तैं, उपसर्ग तैं बचायवे का महान् पुण्य है। तातैं च्यारौं दान यती कौं कहे हैं। इस नय प्रमाण करि समझ लेना। कोई नय, शास्त्र बड़ा दान है। सो शास्त्रदान के दान तैं, जिनवाणी का अभ्यास करि, केवलज्ञान पावैं हैं। इस नय तैं शास्त्रदान, बड़ा है। कोई नय तैं अन्नदान बड़ा है। और जहां रोग की बधवारी भये, यती-श्रावकन कौं ध्यान में स्थिरता नहीं होय। रोग गये ध्यान—ध्येय की प्राप्ति होय है। इस नय तैं औषधिदान बड़ा है।

और जो छुधा दिन–प्रति खेद करै, तब शिथिल होय। भोजन विना तन चीण होय। धर्मध्यान नहीं सधै। तातैं तन की स्थिरता तैं, भाव की स्थिरता होय है। और भाव की स्थिरता तैं, कर्म नाशि, केवली होय, सिद्ध पद पाय है। इस नय तैं आहरदान वड़ा है। ऐसे अपनी–अपनी जगह, नय–प्रमाण सर्व ही उत्कृष्ट हैं। यह आत्मा अन्नदान तैं, सदीव सुखी होय है। और अनेक जीवन का पोषणहारा होय है। और औषधिदान तैं, शरीर रोग रहित होय। औरन के रोग नाशवे की कला का धारी होय। और शास्त्रदान तैं अंग–पूर्व आदि श्रुत-ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति होय। आप भवान्तर में औरन कूं ज्ञानदाता होय। और अभयदान तैं भवान्तर में कोटी–भटादि महा योद्धा होय है। दयावान होय। तथा अनुक्रम तैं, अनंतकाल सुख का स्थान, स्थिरीभूत, लोक शिखर पै, सिद्ध होय। ऐसा जानि, च्यारि ही दान देना योग्य है। अरु यहां मुख्यता कथन, अतिथि संविभाग व्रत का है। तातैं अपने भोजन में अतिथि का संविभाग करना, सो अतिथि संविभाग व्रत है। याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। प्रथम नाम–सचित्त निक्षेप, सचित्तापिधान, पर व्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम। इनका अर्थ–जहां भोजन की वस्तु, सचित्त वस्तु पै धरी होय। सो सचित्त निक्षेप नाम अतिचार है ॥ १ ॥ और जहां भोजन की वस्तु, सचित्त वस्तु से ढांकी होय। सो सचित्तापिधान नाम दोष है ॥२॥ और जहां भोजन समय मुनीश्वर कौं आए जानि, औरकौं कहै। जो मोकूं काम है। तुम मुनिकौं आहार देय लेना।

ऐसा कहिकैं, अन्य से अपना भोजन—दान करावना। सो पर—व्यपदेश नाम अतिचार है ॥ ३ ॥ और जहां और अन्य दातार का दान नहीं देख सकै। तथा अपने भाव, मत्सर सहित राख दान देवे। सो मात्सर्य दोष है ॥ ४ ॥ और जहां भोजन का काल उलंघि जाय। आप अपने घर—धंधे में लग गया। सो प्रयोजन के वशीभूत होय, मुनीश्वर के भोजन का काल उलंघि दिया। पीछे सुचिताई में याद आई। तब द्वार—पेक्षण क्रिया करी। सो कालातिक्रम नाम अतिचार है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार रहित होय। सो शुद्ध अतिथि संविभाग नाम व्रत है।॥ ४ ॥ ऐसे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और च्यारि शिक्षाव्रत। ये बारह अणुव्रत (देश व्रत) भये। एक—एक व्रत के, पांच—पांच अतिचार। सर्व मिलकर साठ भये। सो ये व्रत प्रतिमाधारी सम्यग्दृष्टी, सो ताके सम्यक्त्व कौं पांच अतिचार नहीं होंय। सो ही कहिये हैं। शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टि संस्तव। इनका अर्थ— जिनवाणी में कहे जे धर्म—अंग, तिनके सेवने में शंका राखना। सो शंका नाम अतिचार है ॥ १ ॥ और जहां धर्म सेवन में इस—भव संबंधी वांच्छा तथा परभव संबंधी वांच्छा करनी। सो कांक्षा दोष है ॥ २ ॥ और जहां धर्मात्मा मुनि—श्रावकादिक निर्मल दृष्टि के धारी पुरुषन के तन में रोग देख, तन मैल तैं लिप्त देख, मुख वासना देख, इत्यादिक रोग देख ग्लानि करनी। सो विचिकित्सा दोष है ॥ ३ ॥ और जहां मिथ्यादृष्टी जीवन के गुण देख, बारंबार याद कर, प्रसंशा करनी। ते गुण भले जानना। सो अन्यदृष्टि प्रसंशा नाम दोष

है ॥ ४ ॥ और मिथ्यादृष्टी की अपने वचन तैं स्तुति करनी, सो संस्तव नाम दोष है ॥५॥ ऐसे पांच अतिचार रहित, सम्यग्दर्शन सहित जो व्रत का धारी, कोमल चित्त सहित, दया भण्डार, संसार तैं उदासीन, पाप तैं भय-भीत होय, च्यारि गति वास दुखदाई जान, तन धरने व मरने तैं दुखी भया है मन जाका, सो मोक्षाभिलाषी, अजर-अमर पद का लोभी, धर्मात्मा! जो अपने मन-वचन-तन तैं क्रिया करै। सो सर्व जीव आप समानि जानि, ये त्रस-हिंसा का त्यागी श्रावक, यत्न तैं करै। कैसा है धर्मी श्रावक ? निरंतर समता सहित काल कौं व्यतीत करवे की है इच्छा जाकैं। निराकुल परणति सहित, शांति रस का अभिलाषी। षट् काय जीवन कूं अभयदान देने की है अभिलाषा जाकैं। ऐसा धर्मात्मा श्रावक भव्य, तन-धन तैं उदास होय, सल्लेखना व्रत धारै। सो कैसे धारै ? सो कहिये हैं। तहां प्रथम तौ सर्व जीवन तैं समता-भाव करै। पीछे अपने तन, धन, राज्य-लक्ष्मी, इन्द्रिय-सुख, कुटुम्बी, सज्जन तिन सर्व तैं मोह-ममता भाव तज, सन्यास धारै। सो कब धारै ? सो समय कहिये हैं। कै तो यह धर्मात्मा अपना आयु-कर्म नजदीक आया जानै, तब सन्यास धारै। तथा शरीर में कोई तीव्र रोग जानै तब। तथा शरीर पै कोई दुष्ट पशू सिंह-सर्पादिक का उपद्रव जानै। तब सल्लेखना करै। तथा कोई कारण पाय, राजादिक का तीव्र कोप जानै। इत्यादिक दीर्घ उपद्रव जानै, तौ सल्लेखना करै। सो ता समय यह श्रावक ऐसा विचारै, जो इस उपद्रव तैं बच्या तौ अन्न-जल ग्रहण करूंगा। नहीं तौ अन्न-जलादिक का त्याग है।

ऐसी प्रतिज्ञा का धरना, सो तो सागार सन्यास है। और अपने बचनेका उपाय कछू नहीं भासै, तौ अनागार सन्यास करै। और उपसर्ग तौ नाहीं, परन्तु अनन्त संसार–भोग तैं उदासीन, काय धरने तैं आकुलित होय कैं, मुनिपद धरवे कूं असमर्थ, नहीं पाया है यती-पद धरवे का द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव जानै। सो भव्यात्मा, अपने तन तैं निष्प्रिय होय, काय तजवे का उपाय शनैः–शनैः करै है। सो ही कहिये है। प्रथम तौ जातैं अपने परणामन की विशुद्धता वधै, संक्लेश भाव नहीं होंय, ऐसा तप करै। एकांतरे करै, पीछे एक–एक उपवास साधै। पीछे दोय–दोय उपवास साधै। तीन, च्यारि, पांचादि उपवास का साधन करै। पीछे पारना के दिन अल्प आहार लेय-ऊनोदरी साधै। ऐसे केतक दिन करि, पीछे रस–त्याग साधै। पीछे केतक दिन गये, नर्म भोजन साधै। पीछे पतला दलिया साधै। पीछे भात का पानी साधै। पीछे अन्न तजि, दूध साधै। पीछे दूध तजि, दही। पीछे दही तजि, मही। फिर मही तज, जल राखै। ऐसे करते–करते अनुक्रम तैं, जब काय तजवे का समय नजदीक जानैं। तब अपने सज्जन–कुटुम्बी जन बुलाय, उन तैं मोह घटावे के निमित्त हितोपदेश देय, महा हित–मित वचन कहि, उन्हें संतोषित करै। पीछे यह सम्यग्दृष्टि का धारी, जगत तैं उदासी आत्मा, शरीर कौं भिन्न अवलोकनहारा, सर्व जीवन कौं सुख चाहता ऐसा विचारै। जो सर्व जीव साता पावैं। कोई भी प्राणी, दुखी मत होऊ। कोऊ रोग–पीड़ा, दुख–दरिद्र, अन्न–तन करि दुखी मत होऊ। मेरे सर्व जीवन तैं क्षमा-भाव है।

और सर्व जीव मोक्ष-मार्ग पावने का भाव करौ। अब मैंने मन—वचन—काय करि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, आदि त्रस—स्थावर जीव, सो सर्व कूं अभयदान दिया। सर्व जीव मेरे पै दया भाव करि, अभयदान देओ। ऐसे सर्व जीवन तैं क्षमाय, पीछे अपनी आलोचना करै। कि जो मैंने अपनी अज्ञानता करि, मोह फाँसि में फँसि, राग-द्वेष करि, पर वस्तु में ममत्व अपनाय—अपनाय, पाप—फंद विषैं आत्मा उलझाया। मनुष्य पर्याय पाय, वृथा दुख बधाया। हाय! हाय! अज्ञान चेष्टा का करनहारा, भ्रम-बुद्धि मोसा और कोई नाहीं। देखो, जो आगे महान् बुद्धिमान् भये। तिनने मनुष्य पर्याय पाय, धर्म साधन किया। पीछे संसार-भोगन तैं उदास होय, राज्य-संपदा व इन्द्रिय-जनित-सुख काले नाग के समान जानि, तजे। तन तैं ममत्व निवार, दिगम्बर होय, नग्न मुद्रा धारि, मोह फाँस छेद, बन विहारी भये। बाईस परीषह सहके, कर्म रूपी ईंधन कौं ध्यान रूपी अग्नि में भस्म करि, सिद्ध-लोक विषैं जाय तिष्ठे। अविनाशी भये। काय धरने तैं रहे। निरंजन भये। ते ही धन्य हैं! और मैंने तो कल्पवृक्ष समान मन-वांछित सुख को देनेहारी मनुष्य पर्याय पाय, हलाहल विष समान विषय चाहे। सुकृत कछू नहीं बन्धा, अरु मरने के दिन आय पहुँचे। इत्यादिक आलोचना करि, कषायन का मद तोड़, मंद कषायी होय कैं। पीछे ये पवित्र बुद्धि का धारी, महा विनय सहित, नम्र भावन तैं, परमेष्ठी कौं नमस्कार करि, बारंबार तिन पंच गुरुन की स्तुति पढ़ता, परणति विशुद्ध राख कैं। यह सर्व नय का वेत्ता, श्रावकन की लौकिक पर-

पराय-मर्यादा का जाननहारा, अपूर्व-गुण का धारी, मोह तैं रहित होय, व्यवहार पोषवे कौं, अपने तनके प्रयोजन धारी–कुटुम्बी–मोही जन तैं, यथा-योग्य विनय तैं, मिष्ट क्षमा-वचन कहै। शुभ अक्षर उचारता, न्याय वचन–धर्म रस के भींजे, संसार तैं उदास, मर्यादा प्रमाण वचन कहै। भो कुटुम्बी जनो! अब तांईं तुम्हारे–हमारे पर्याय के संबंध करि, एक क्षेत्र विषैं येते दिन रहना भया। तातैं परस्पर मोह के बंधान करि, एकत्व भया। सो अब हम इस पर्याय तैं भिन्न होंयगे। सो तुम कछु मोह-भाव तैं, आर्त्त–भाव नहीं करना। जाकरि अशुभ कर्म का बंध होय, परभव में दुख उपजे। सो ऐसा भाव नहीं करना। तुम सर्व ही जिनधर्म के वेत्ता, संसार-कला विनाशीक जाननेहारे हो। भो पुत्र! तू इस पर्याय संबंधी पुत्र है। दोऊ भले कुल का धारी, धर्मात्मा, सज्जन अंग का धारी है। सो जैसे हमने इस भव में पर्याय पाय कैं, न्याय करि, धन उपारज्या। कुटुम्ब की रक्षा करी। यथायोग्य सज्जन का विनय किया। जिनधर्म विषैं दृढ़ प्रतीति होय प्रवृत्ते। तैसे तूं भी करियो। सो न्याय तैं धन, यश, पुण्य उपजवाना। मोह नहीं बधावना। और हे इस भव के माता, पिता, स्त्री, भ्रातृ, मित्र हो! हमारे इस पर्याय का नाता है। और तो ये जीव अनंत-पर्याय में कई बार पुत्र तैं पिता, पिता तैं पुत्र; माता तैं पुत्री, पुत्री तैं माता; स्त्री तैं भगनी, भगनी तैं स्त्री; भाई तैं पिता, पिता तैं भाई; मित्र तैं बैरी, वैरी तैं मित्र; इत्यादिक अनेक नाते भये। जिस पर्याय में यह जीव मिल्या, तैसा ही नाता पाल्या। अरु ताही रूप प्रवृत्त्या। सो अब इस पर्याय के संबंधी, तुम

कुटुम्बी भये हो। सो तुम सब ही सज्जन अंगी हो। सुकृत्य के इच्छुक हो। सो तुमने मेरे ऊपर उपकार करि, इस पर्याय का यत्न करि, याकौं बधाय पुष्ट करी। सो मैं अज्ञान रस भीना, अविनय चेष्टा कौं धारि, तुम्हारी सेवा–बंदगी इस काय तैं कछू नहीं करी। अरु और भी इस पर्याय तैं कछु शुभ कार्य नहीं बना। हे कुटुम्बी प्रीतम हो! मैं मंद बुद्धि, इस पर्याय कूं पाय, कुसंग-योग तैं कुमार्ग चल्या। अरु सुपात्रन कूं भक्ति सहित दान नहीं दिया। दीन–दुखित कूं करुणा करि, दान नहीं दिया। और छल–बल करि, पराये धन, प्रपंच करि हरे। और शरीर पाय शीलव्रत नहीं पाल्या। पशुवत् कुशील–सेवन किया। सुदेव–सुधर्म–सुगुरु की सेवा नहीं करी। अरु पाखंडी कुदेव–कुधर्म–कुगुरु कूं शुभ–अतिशय सहित जानि, पूजे। संतन की संगति तजकर, निंदा करी। अरु पापाचारी-कुमार्गीन की प्रसंशा करी। पर कौं दोष लगाये, अपने दोष ढांके। शुभाचार तज्या, कुआचार सेवन किया। निशि-भोजनादि कुकार्य रूप प्रवृत्त, पाप बंध किया। खाद्याखाद्य नहीं विचार्या। उत्तम मार्ग तज्या। हीन मार्ग विषैं गमन किया। अनेक दीन मनुष्य–पशून कूं, द्वेष-भाव करि पीड़े–दुखी किये। मत्सर-भाव करि सताये। सामान्य प्राण के धारी अनेक जीव, दया रहित भावन तैं हते। इत्यादिक तिहारे कुल योग्य नाहीं, ऐसी हीन–क्रिया करि, मो मंद-बुद्धि ने पाप-बंध करि, अशुभ का भार अपने सिर लिया। अकार्य सहित प्रवृत्य, अपयश रूप वासना फैलाई। ऐसे अज्ञानी जीव की, तुमने अनेक बरदासि कर (सह कर), अपनी सज्जनता

प्रगट करी। मो तैं मोह बुद्धि करि, तुमने अपने पास राखा। इत्यादिक भो सज्जन हो! तुम्हारी प्रीति, तुमने विशेष जनाई। परन्तु अहो सज्जन, अंगी हो! अहो कुटुम्बी लोगो! अब मेरा आयु-कर्म पूर्ण होने आया। सो तुम मो पै, समता-भाव राखो। मैं महा अज्ञान, मोतैं तुम्हारी सेवा कछु बनी नाहीं। अरु हमारे—तुम्हारे वियोग होने का समय-आय लग्या। सो तुम कछु चिंता—आर्त्त नहीं करना। ये जीव ऐसे ही अनंते नाते करता, अनंत काल का जन्म—मरण करता आया। जो पर्याय पाई, सो ही काल ने हरी। परन्तु मेरी अज्ञानता नहीं छूटी। जैसे कोई अन्याय व चोरी करनेहारे कूं, राजा अनेक दंड देय। पीछे और सामान्य दंड तैं नहीं मानै, तो मारि डारै। ऐसा कठिन दण्ड देखकर भी, यह जीव अमार्ग—चोरी नहीं तजै। तो राजा कहा करै। तैसे ही राग—द्वेषादि प्रवृत्ति तैं अनेक पाप-कार्य किये। ताका फल; बहुत प्रकार राग, द्वेष, चिन्ता, शोक, भय, इत्यादिक भोगे। तो भी यह जीव पाप नहीं तजै। राग-द्वेष रूप अपराध कौं करता ही गया। तब काल रूपी राजा ने बड़ा दोषी जान, मारि डाख्या। तो भी रागादिक कुमार्ग, मेरा नहीं छूटा। ऐसे अनंतकाल मोकों भ्रमण करते होय गये। जगत में गया, वहां भी रागादिक-कुमार्ग चल्या। तहां काल-राजा ने मास्या। सो अब भी इस पर्याय में मैंने अनेक—अनेक रागद्वेष भाव करि, पाप किये। सो तातें काल रूपी राजा के वश भया। सो मोकों काल—राजा, अब मारने का उपायी है। सो मारेगा। तातें तुम मोह तजो। इत्यादिक अनेक समता

करि, अनेक वैराग्य भावना सहित, यह सन्यासी–धर्मात्मा, अपने चित्त कौं निर्मल करिकैं, शुभ भावना भाय, व्यवहार नय तैं कुटुम्बी-जन कौं अनेक संबोधन रूप हितकारी–धर्म सूचक वचन बारंबार कहि, मोह फंद छुड़ावै। हे जन हो ! तुम इस पर्याय के स्नेही हो। सो तुम सब, चित्त देय सुनो। कि जो तुमने इस पर्याय तैं मोह बधाय करि, अब तांई मेरी योग्य–अयोग्य क्रिया में नजर नहीं करी। अरु स्नेह बुद्धि करि, अब तांई मेरे तन की रक्षा करी। तुमने सज्जनतता प्रगट करि, इस तन की प्रतिपालना करी। जैसे स्नेह बुद्धि के धारी बड़ी बुद्धि वारे करैं, सो जो तुम्हारे करवे की थी, सो तुमने करी। परन्तु हे प्रीतम हो ! इस तनकी स्थिति पूर्ण होने आई। सो अब ना-इलाज है। काहू की राखी रहेगी नाहीं। तातैं इस शरीर तैं, अब तिहारा वियोग होयगा। तातैं तुम सब ही विवेकी हो। सो मोह भाव करि, शोक-चिंता नहीं करो। अनादि तैं जगत की ऐसी ही परिपाटी चली आई है। सो अनेक भवन में, अनेक नातान का संयोग भया, अरु छूटा। सो अब भी तुम तैं कुटुंब का संबंध भया था, सो ये भी छूटेगा। तातैं अब तांई इस तन तैं, तुम्हारी वचन-काय करि, तुम योग्य विनय-क्रिया नहीं भई होय। तथा अविनय भया होय। तो तुम अपनी सरल-बुद्धि करि, क्षमा-भाव करो। इत्यादिक शुभ शब्दन करि सबकौं समाधान लाय, साता उपजाय, लौकीक मोह छुड़ाय, पीछे यह भव्यात्मा च्यारि प्रकार आहार तजन करता भया। सो इन आहारन के नाम-तहां जाके खाये पेट भरै। सो खाद्य आहार है॥१॥ और जे लौंग, सुपारी आदि स्वाद के

निमित्त खाईये, सो स्वाद आहार है ॥२॥ और तहां जाकों अंगुली से चांटिये, सो लेय आहार है ॥३॥ और तहां जाकों पानी की नांईं पीजिये, सो पेय आहार है ॥४॥ ऐसे खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय, इन च्यारि प्रकार आहार कों तजन करि, डाभ के विस्तर कों निर्जीव भूमि शोधि, तापै बिछावै । तापै तिष्ठ करि, साधर्मी जन तें चर्चा करता, तत्त्व विचार करता, द्वादशानुप्रेक्षा विचारता। वीतराग देव का स्मरण, वीतराग गुरु, दया धर्म, इत्यादिक पंच-परमेष्ठी के गुणन का चिन्तवन, इत्यादिक धर्म-ध्यान भावना सहित, काय तें भिन्न होय। इस भांति सन्यासी काय तज कैं, महा ऋद्धि धारी कल्पवासी देव होय है । ऐसे सल्लेखना व्रत जानना । और याही व्रत के पंच अतिचार हैं । सो नाम कहिये हैं । जीवित संशय, मरण संशय, मित्रानुराग, सुखानुबंध, और निदान । इनका अर्थ—तहां संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारना, जो मैं बहुत जीऊं नाहीं, तो भला है । ऐसा विचारै । सो जीवित संशय अतिचार है ॥ १ ॥ जहां संन्यास लिये पीछे ऐसा विचार करना, जो मैं मरूंगा अक नाहीं ? अब पर्याय रही, भली नाहीं । ऐसी भावना का नाम मरण संशय है ॥२॥ और संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारना, जो फलाना हमारा बाल-मित्र है । तातें मिलाप होय तौ भला है । ऐसे विचार का नाम मित्रानुराग अतीचार है ॥३॥ तथा अगले भोगे भोगन कूं यादि करै । सो याका नाम सुखानुबंध अतिचार है ॥ ४ ॥ और संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारै, जो इस व्रत का मोकौं ऐसा भला फल उपजियो । सो याका नाम निदान-बंध अतिचार है ॥५॥ ऐसे ये पांच अतिचार

नहीं लागैं, सो शुद्ध सल्लेखना व्रत है। या प्रकार शरीर कौं व्रत सहित तजिये है। सो शरीर तजे के तीन भेद हैं। च्युत, चाव्यक और त्यक्त। इनका अर्थ—तहां कदली घात बिना, संन्यास बिना, अपनी संपूर्ण आयु-सर्व भोग कैं, उदय—मरन करै, सो जो शरीर आत्मा ने तज्या, सो च्युत शरीर है ॥ १ ॥ अब कदली घात का स्वरूप कहिये है। सो बिष तैं मरै। मरै। शस्त्र तैं, जल तैं, अग्नि तैं पर्वतादिक तैं गिरि मरै। रोग की तीव्र बेदना तैं, इत्यादिक कारणन तैं, मरै सो कदली घात मरण है। सो इस कदली घात सहित, संन्यास रहित, जा शरीर कौं आत्मा ने तज्या, सो चाव्यक शरीर है ॥ २ ॥ और तीसरे त्यक्त के तीन भेद हैं। याकौं आत्मा चाह करि, अपनी इच्छा सहित तजै है। तातैं याका नाम त्यक्त कह्या है। सो ये त्यक्त शरीर, महा उत्तम मुनि तथा श्रावक का होय है। ताके तीन भेद हैं। उनके नाम—भक्त प्रतिज्ञा, ईंगणी और प्रायोगमन। इनका अर्थ—तहां भोजन का त्याग करै, सो जघन्य तौ अन्तर्मुहूर्त काल भोजन कौं तजै। अरु उत्कृष्ट बारह वर्ष लूं अनशन करै। मध्यम के अन्तर्मुहूर्त तैं लगाय, एक-एक समय अधिक, उत्कृष्ट बारह वर्ष पर्यंत के अनेक भेद हैं। सो ऐसे भोजन का प्रमाण सहित— अनशन करि शरीर तजै, सो भक्त प्रतिज्ञा संन्यास सहित शरीर है ॥ १ ॥ और जा शरीर तज तैं, सन्यास करनेहारे के शरीर में, तप के योग तैं कदाचित् खेद होय। तौ अपने शरीर का वैय्यावृत आपही अपने हाथ तैं करै। और शिष्यादिक तैं नहीं करावै।

भक्त प्रतिज्ञा वाला संन्यासी, शरीर में खेद भये, अपने हाथ तैं अपने पांव, पीठ, शीश, आदि अङ्गोपांग दाब लेय था और शिष्यादिक तैं भी अंगोपांग दबावै था। अरु जो पर-तैं वैय्यावृत नहीं करावै, अपने हाथ तैं अपना वैय्यावृत करै। सो ईगणी सन्यास सहित शरीर है ॥ २ ॥ और नहीं तो आप करै, नहीं और पै संन्यास में वैय्यावृत करावै। संन्यास लिये पीछे जो-जो उपद्रव-खेद -दुख शरीर पै आवैं, सो समता सहित एकासन सहै। शरीर कौं चलाचल नहीं करै। संन्यास धर तैं जैसा आसन सूं, जा भांति बैठा था, ताही तरह जीवन लूं रहै। हालै-चालै नाहीं। सो प्रायोगमन संन्यास सहित त्यक्त शरीर है ॥ ३ ॥ ऐसे इन आदि संन्यास के अनेक भेद हैं। सो जो भव्यात्मा, जन्मन-मरण करि डरया होय। तिस निकट संसारी कौं ऐसे संन्यास सहित काय तजवे कौं मिलै है। और जे दीर्घ संसारी, मोही, धर्म-बासना रहित हैं। तिन जीवन कूं ऐसा मरण नाहीं होय। ऐसा जानना। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावक की एकादश प्रतिमा विषैं, सम्यक् सहित बारह व्रत कूं लिये, सल्लेखना व्रत मिलाय इन चौदह के पांच-पांच अतिचार सहित, दूसरी व्रत प्रतिमा कथन वर्णनो नाम, चौंतीसवां पर्व संपूर्णम् ॥ ३४ ॥

आगे तीसरी सामायिक प्रतिमा का स्वरूप कहिये है—

गथा—सहु चर किप्पा भावो, तव संजय वरत भाव बधवाए।
आरदि रुद्द विहीणो, सामायो तस भासयो सुत्त ॥ १३६ ॥

हीं। ऐसे मन-चंचल रहै। अरु काय कूं, झूले की नांई झुलाया करै। सो दोलायत अतिचार है ॥ ५ ॥ और हाथ की अँगुली कूं अंकुशाकार करि, मस्तक में लगाय नमस्कार करै। सो अंकुश दोष है ॥ ६ ॥ और सामायिक करते कटि पे हाथ लगाय, काय कौं संकोच, कछुवा के आकार करै। सो कच्छप दोष है ॥ ७ ॥ सामायिक करते कटि कौं हिलावे, मछली की नांई चंचल राखे। सो मछोव्रत दोष है ॥ ८ ॥ और जहां सामायिक करते, भया जो सूर्य का घाम, ताके सहवे कूं असमर्थ होय, परणति संक्लेश रूप करै। सो मन दुष्ट नाम अतिचार है ॥ ९ ॥ और सामायिक करते, काय कौं हाथ तैं दाबि, दृढ़ बंधनसा करै। सो बंधन अतिचार है ॥ १० ॥ और सामायिक करते कोई देव, मनुष्य, सिंह, सर्पादि जीवन के भय सहित कायोत्सर्ग करै। सो भय दोष है ॥ ११ ॥ और सामायिक करते, अपने तौ स्थिरता नाहीं, अरु धर्म—फल की इच्छा भी नाहीं। परन्तु गुरु के भय से, तथा संघ के भय से, सामायिक क्रिया करै। सो परमार्थ रहित करै। सो विभ्य दोष है ॥१२॥ और तहां च्यारि प्रकार संघ के खुशी करवे कौं, तथा अपनी महिमा पर के मुख तैं सुनिवे कौं, शोभा के हेतु सामायिक करै। सो गौरव-वृद्धि दोष है ॥ १३ ॥ और अपना माहात्म्य करायवे कौं, इन्द्र के सुखन की इच्छा सहित, मान—बड़ाई के हेतु सामायिक करै। सो गौरव दोष है ॥ १४ ॥ और, जो गुरु के पास सामायिक करूंगा, तो कोई मेरा प्रमाद देख, औगुन काढ़ेंगे। ऐसा जानि, एकांत में गुरु तैं छिपकर, सामायिक करै।

सो वचन दोष है ॥ २ ॥ और जहां सामायिक करते शुद्धासन तजि, आसन चंचल किया करै। सो काय अतिचार है ॥ ३ ॥ और जहां सामायिक करते पाठ भूलि-भूलि जाय, कि जो मैंने यह पाठ पढ़या, अक नाहीं ? मैं कहा पढ़ों हौं ? ऐसा भ्रम-भाव रहै। सो विस्मरण दोष है ॥ ४ ॥ और सामायिक करतें वचन-काय प्रमाद सहित राखै। अनादर भाव तैं सामायिक करै। सो अनादर दोष है ॥ ५ ॥ जो इन पांच दोषों कौं टालै, सो ही याका नाम शुद्ध सामायिक व्रत है ॥ और इस सामायिक व्रत के बत्तीस अतिचार हैं। तिनकौं व्रतधारी धर्मी टाले है। सो ही कहिये है। प्रथम नाम-अनादर, ततध्व, प्रतिष्ठा, प्रतिपीड़ित, दोलायत, अंकुश, कच्छप, मछोव्रत, मन दुष्ट, बंधन, भय, विभ्य, गौरव-वृद्धि, गौरव, न्यति, प्रतिनीति, प्रदुष्ट, शब्द, ताड़ित, हीलित, त्रिबलित, संकुचित, दृष्टि, अदृष्टि, करमोचन, लब्धि, आलब्धि, हीन, उद्धत दो चूलि, मूक, दादुर और चूलित ये बत्तीस हैं। इनका अर्थ-तहां सामायिक करते नमस्कारादि क्रिया करै, सो प्रमाद सहित, विनय रहित करै। सो अनादर दोष है ॥ १ ॥ और सामायिक करते, विद्या के मद सहित, उद्धत होय, अशुद्ध क्रिया करै। सो ततध्व दोष है ॥ २ ॥ और जहां प्रतिमा जी के बहुत ही नजदीक-सन्मुख होय, सामायिक करै। सो प्रतिष्ठा दोष है ॥ ३ ॥ और जहां दोऊ हाथ तैं जंघा दाबि कैं नमस्कार करै। सो प्रतिपीड़ित दोष है ॥ ४ ॥ और सामायिक करै, सो पाठ विसर्जन होय जाय। तथा शुद्ध ही पढ़ै, तौ चित्त संशय रूप होय, कि यह पाठ पढ़या, अक नाहीं ? पढ़या तौ

मोकौं यादि नाहीं। ऐसे मन-चंचल रहै। अरु काय कूं, झूले की नांईं झुलाया करै। सो दोलायत अतिचार है॥ ५॥ और हाथ की अँगुली कूं अंकुशाकार करि, मस्तक मे लगाय नमस्कार करै। सो अंकुश दोष है॥ ६॥ और सामायिक करते कटि पै हाथ लगाय, काय कौं संकोच, कछुवा के आकार करै। सो कच्छप दोष है॥ ७॥ सामायिक करते कटि कौं हिलावे, मछली की नांईं चंचल राखे। सो मछोव्रत दोष है॥ ८॥ और जहां सामायिक करते, भया जो सूर्य का घाम, ताके सहवे कूं असमर्थ होय, परणति संक्लेश रूप करै। सो मन दुष्ट नाम अतिचार है॥ ६॥ और सामायिक करते, काय कौं हाथ तैं दावि, दृढ़ बंधनसा करै। सो बंधन अतिचार है॥ १०॥ और सामायिक करते कोई देव, मनुष्य, सिंह, सर्पादि जीवन के भय सहित कायोत्सर्ग करै। सो भय दोष है॥ ११॥ और सामायिक करते, आपने तौ स्थिरता नाहीं, अरु धर्म—फल की इच्छा भी नाहीं। परन्तु गुरु के भय से, तथा संघ के भय से, सामायिक क्रिया करै। सो परमार्थ रहित करै। सो विभ्य दोष है॥१२॥ और तहां च्यारि प्रकार संघ के खुशी करवे कौं, तथा अपनी महिमा पर के मुख तैं सुनिवे कौं, शोभा के हेतु सामायिक करै। सो गौरव-वृद्धि दोष है॥ १३॥ और अपना माहात्म्य करायवे कौं, इन्द्र के सुखन की इच्छा सहित, मान—बड़ाई के हेतु सामायिक करै। सो गौरव दोष है॥ १४॥ और, जो गुरु के पास सामायिक करूंगा, तो कोई मेरा प्रमाद देख, औगुन काढ़ेंगे। ऐसा जानि, एकांत मैं गुरु तैं छिपकर, सामायिक करै।

सो न्यति दोष है ॥ १५ ॥ और जहां सामायिक करते गुरु की आज्ञा रहित, गुरु तैं प्रतिकूल होय, अपनी इच्छा रूप, गुरु के कहे बिना ही, गुरु की आज्ञा बिना ही, सामायिक करै। सो प्रतिनीति दोष है ॥ १६ ॥ और सामायिक करते, अन्य जीवन तैं द्वेष-भाव राखै। तथा युद्ध करवे का, तथा कलह करवे का अभिप्राय राखै। सो प्रदुष्ट दोष है ॥ १७ ॥ और जहां गुरु करि ताड़ित। जो गुरु ने अविनयी जानि, तथा प्रमादी जानि, धर्म–भावना रहित जानि, संघ तैं काढ़ि दिया होय। सो गुरु के भय तैं, तथा संघ के भय तैं, सामायिक करै। सो ताड़ित दोष है ॥ १८ ॥ और सामायिक करते, मौन तजि बोलि उठै। सो शब्द दोष है ॥ १९ ॥ और तहां सामायिक करते, गुरु की अविनय रूप भाव हो जांय, गुरु के मान–खण्डन रूप परणति हो जाय, माया रूप भाव होंय। सो हीलित दोष है ॥२०॥ और सामायिक करते ऊंचा होय, त्रिबलीभंग करै, तथा ललाट पर त्रिबली करै। सो त्रिबलित दोष है ॥ २१ ॥ और जहां सामायिक करते, सिर कूं हस्त तैं छीय करि, काय कौं संकोच करि, गठिया समान होय, करै। सो संकुचित दोष है ॥ २२ ॥ और गुरु के देखते तथा अन्य कोई के देखते सामायिक करै, तब तौ महा विनय सहित खड़ा होय करै। काय की शुद्ध–भली क्रिया सहित सामायिक करै। अरु कोई नहीं देखता होय, तो प्रमाद सहित स्वेच्छाचारी होय करै। चहुँ दिशा अवलोकन रूप काय–मन चंचल राखै। इस भांति सामायिक करै। सो दृष्टि दोष है ॥ २३ ॥ और सामायिक करते अपने गुरु तैं अपरिच्छिन्न

होय, तथा संघ में और वृद्ध मुनि, बड़े—बड़े गुरुजन तैं दृष्टि चुराय, अपने तन की शोभा निरखै। सो काय-रूप देख राजी होय। मन—तन चलित—चंचल राखै। सो अदृष्टि दोष है ॥ २४ ॥ और जहां च्यारि संघ तथा अन्य जन राजी करवे कौं सामायिक करै। सो करमोचन दोष है॥ २५ ॥ और तहां सामायिक करते, आप कूं पीछी आदि पदार्थ की प्राप्ति वांच्छै। जो मेरे पास पीछी—शास्त्रादि उपकरण नाहीं, सो मिलैं तौ भला है। ऐसी जानि सामायिक करै। सो लब्धि दोष है ॥ २६ ॥ और श्रावक के षट् कर्म रूप उपकरणन की प्राप्ति जानै, तो सामायिक करै। सो आलब्धि दोष है ॥ २७ ॥ और जहां काल की मर्यादा टालि, सामायिक करै। अरु ग्रन्थन के अर्थ विचार रहित भाव राखै। सो हीन दोष है॥२८॥ और तहां सिताब-सिताब (शीघ्र-शीघ्र) क्रिया करि, अल्प काल में सामायिक पूर्ण करै। तथा धीरे-धीरे प्रमाद सहित क्रिया करि, बहुत काल में पूर्ण करै। अरु पाठ पढ़ै, सो भूलि-भूलि जाय, फेरि पढ़ै। फेरि पढ़ै, सो फेरि भूलै। ऐसी सामायिक करै। सो उद्धत् दो चूलि दोष है॥ २९ ॥ और जहां सामायिक करते, मूके की नांईं हूं—हूं शब्द बोलै, और अंगुली—नेत्रादि तैं संज्ञा बतावै। सो मूक दोष है ॥ ३० ॥ और तहां सामायिक करते, शोर करि पाठ पढ़ै। जैसे मैंड़क शोर करै, तैसे पाठ करते शब्द बोलै, सो बहुत शोर करै। सो दादुर दोष है ॥ ३१ ॥ और सामायिक करते एकासन तैं ही, एक क्षेत्र तिष्ठता, सर्व देव—गुरु की स्तुति करते नमस्कार करै। अरु पाठ पढ़ै, सो महा मिष्ट स्वर तैं, राग सहित, पर का मन रंजायवेहारा स्वर तैं पढ़ै। सो

चूलित दोष है ॥३२॥ ऐसे कहे बत्तीस दोष, तिनकौं टालि सामायिक करै। सो शुद्ध सामायिक धारी श्रावक है ॥ इति बत्तीस दोष ॥ आगे बाईस दोष, सामायिक करते कायोत्सर्ग करै, तब टालै। सो कहिये हैं। तहां प्रथम नाम—घोटक, लता, स्थंभ, कूट्या, माला, बधू, लंबोतर, तन-दृष्टि, वायस, खलिन, जुग, कपिथ, सिर-कंपित, मूक, अँगुली, भ्रू-विकार, सुरापान, दिशावलोकन, ग्रीवा, परणमन, निष्ठीवन, और अङ्गमरच। इनका अर्थ—तहां घोड़े की नांईं खड़ा होय सामायिक करै। सो घोटक दोष है॥ १ ॥ सामायिक करते शरीर कों बेलि की नांईं आंका—बांका करै। सो लता दोष है ॥ २ ॥ और सामायिक करते शरीर कों स्थंभ तथा भीति का सहारा देय खड़ा होय सामायिक करै। तथा शास्त्रन के अर्थ चिन्तवन करि रहित, शून्य चित्त करि ,स्थम्भ की नांईं खड़ा होय, सामायिक करै। सो स्थम्भ दोष है॥ ३ ॥ समायिक करते महल, गुफा, गृह, कुटी, मंडपादिक वांच्छै। सो कूट्या दोष है ॥ ४ ॥ और सायायिक करते ऊंचा सिंहासन, पाटा या चौकी पर खड़ा होय, सामायिक करै। सो माला दोष है ॥ ५ ॥ जैसे कोई भली स्त्री, लज्जा सहित, अंग छिपाय खड़ी होय. तैसे वस्त्र तें व कर तें अंग ढांकि खड़ा होय। सो बधू दोष है॥ ६ ॥ और सामायिक करते व्युत्सर्ग समय लम्बे हाथ करि अर्द्ध नमस्कार करै। सो लम्बोतर दोष है ॥ ७ ॥ और सामायिक करते अपने शरीर कों निरखै। सो भला, कोमल, सुन्दर, शुभाकार देख खुशी होय। अरु मलिन, क्षीण, शोभा रहित देखे, तथा श्याम कर्कश देखै, तो मन में बेराजी होय। सो तन-दृष्टि दोष है ॥ ८ ॥ और

जहां सामायिक करते काक की नांईं नेत्र चंचल राख, चारों दिशा अवलोकन करै। सो वायस दोष है ॥ ९ ॥ और सामायिक करते घोटक की नांईं दांत चबाया करै। मुख–तन कठोर राखै। सो खलिन दोष है॥ १० ॥ और सामायिक करते वृषभ की नांईं नार (ग्रीवा) कूं ऊंची–नीची करै। सो जुग दोष है ॥ ११ ॥ और सामायिक करते मूंकी बाँधि सामायिक कूं खड़ा होय। सो कपिथ दोष है ॥ १२ ॥ और सामायिक करते शीश धुनै–हिलावै। सो सिर-कंपित दोष है ॥ १३ ॥ और सामायिक करते, मुख, नाक, नेत्र, वांके (टेढ़े) करता जाय, सो मूक दोष है ॥ १४ ॥ और सामायिक करते हाथ–पाँव की अंगुली हिलावै। सो अँगुली दोष है ॥ १५ ॥ और सामायिक करते नेत्र वक्र करै, भौंह धनुषाकार चढ़ावै, दृष्टि वांकी करै सो भ्रू विकार दोष है ॥१६॥ और समायिक करते मतवाले की नांईं झूमै। सो सुरापान दोष है ॥ १७ ॥ और सामायिक करते नीचा–ऊंचादि दशों दिशा, इत–उत देखा करै। सो दिशा अवलोकन दोष है ॥ १८ ॥ और तहां सामायिक करते ग्रीवा (गर्दन) कों इत-उत हिलाय, बांकी-नीची–ऊंची करै। सो ग्रीवा दोष है ॥ १९ ॥ और सामायिक करते ध्यान तजि और ही क्रिया करन लागै। सो परणमन दोप है ॥ २० ॥ और सामायिक करते, मुख तैं थूकै। नाक तैं नाक-मैल काढ़ै। तथा तन के अंगोपांग मर्दन करि मैल उतारै। तथा मुख में जीभ कूं हिलावै, फेरया करै। दांतन कूं होंठ तांईं चलावै। तथा पद्मासन तिष्ठता, पांव की पगथली छीया करै–मसलै। सो निष्ठीवन दोष है ॥२१॥ और सामायिक करते नीति करने

का स्थान, मल करने का स्थान छीवैं।सो अंगमरच्च दोष है ॥२२॥ ऐसे सामायिक के पांच अतिचार, तथा बत्तीस और बाइस, एते अंतराय टालि कैं, धर्म फल का लोभी, सामायिक प्रतिमा का धारी, अपने व्रत की रक्षा करता, सामायिक करै। सो सामायिक कौन स्थान में करै, सो स्थान बताईये है। जहां सूना महल होय। घर-मन्दिर सूने होंय। तथा बिना धनी के, ममत्व रहित, जामें कोई का ममत्व नाहीं होय, ऐसे मंडप होंय। तथा सिंहादिक के ममत्व रहित, गुफा होय। तहां सामायिक करै। तथा वन, श्मशान भूमि, वृक्ष की कोटरन में, जिन मन्दिर, इत्यादि एकान्त स्थान, शुद्ध देख। जहां अति शीत नहीं होय, अति गर्मी नहीं होय। जहां दंश-मसकादि नहीं होंय। जहां कोलाहल शब्द नहीं होय। जहां काहू का युद्ध नहीं होय। जहां परस्पर काहू के कटुक शब्द नाहीं होंय। इन आदिक शुद्ध गुफा। सो जीव रहित, वैराग्य भावना के बधावने कूं कारण, निर्जन स्थान होय। तहां निष्ठ कैं मन-वचन-काय करि एकाग्र, शुद्ध होय। सर्व जीवन तैं दया भाव करि, कोमल भावन सहित, सामायिक करै। सो शुद्ध सामायिक प्रतिमा का धारी, उत्तम श्रावक जानना। सो सामायिक समय, लँगोट मात्र आदि अल्प-परिग्रह का धारी होय तिष्ठै। चित्त की वृत्ति निर्मल, मुनि समान राख, अपने तन तैं ममत्त्व भाव तजि, वैराग्य भाव का समूह मोक्ष-मार्ग के विहार करवे की इच्छा का धारक, ऐसा साधर्मी श्रावक। नहीं चाहै है च्यारि गति के शुभाशुभ शरीरन का वास। तथा अपने पदस्थ तैं ऊपर के स्थान चढ़वे की है इच्छा जाकैं।

ऐसा जगत–सुख तैं उदासी, श्रावक–धर्म का धारी, तीसरी सामायिक प्रतिमा धारी है ॥ ३ ॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, एकादश प्रतिमा के कथन विषैं, तीसरी प्रतिमा कथन वर्णनो नाम, पैंतीसवां पर्व संपूर्ण ॥३५॥

तहां आगे चौथी प्रोषध प्रतिमा, ताकौं कहिये है । सो सर्व पापारंभ का त्याग करि, शरीर–भोगन की इच्छा निवार, उदासीन भाव धारण करि, धर्मध्यान का अभिलाषी होय, खान-पान का तजन करै । सो प्रोषधोपवास है । एक मास विषैं दो आठैं (अष्टमी), दोय चतुर्दशी, ये च्यारि उपवास करैं । सो तेरस के दिन प्रभात उठ, भगवान् का पूजन करै । पीछैं शास्त्र श्रवण–पठन करै, दोय पहर धर्म-ध्यान सेय, मुनि-श्रावक कूं दान देय, आप भोजन करै । सो निष्प्रमाद होय रहने कौं अल्प भोजन करि, पीछे षोड़स पहर खान–पान का सेवना तजै । सो दोय पहर तो तेरस के दिन के, च्यारि पहर तेरस की रात्रि के, आठ पहर चौदश की दिन–रात्रि के, दोय पहर पूर्णिमा के । ऐसे सोलह पहर जागरन, पूजा, ध्यान, स्वाध्याय, चर्चा, शुभ अनुप्रेक्षा का चितवन, इत्यादिक धर्म-ध्यान विषैं पूर्ण करै । पीछे पूर्णिमा के दिन दोय पहर कूं घर जाय, द्वार-पेक्षण भावना भाय, मुनि–श्रावक कूं दान देय, दुखित–भुखित कूं संतोषित करि, पीछे आप पारणा करै । सो एक बार भोजन करै । ऐसे ही मास–मास के च्यारि उपवास, आयु पर्यन्त, प्रमाद रहित होय करै । अरु नीचली प्रतिमा में जो क्रिया कहीं, सो सर्व ऊपरलो

में गर्भित जानना। नीचे दूसरी प्रतिमा में प्रोषध कह्या। सो वहां शिक्षा-मात्र, साधन रूप कह्या था। अरु यहां चौथी प्रतिमा में प्रोषध का स्वामित्व-भाव है। सो यहां अतिचार रहित, आयु पर्यंत वृत का धारना है। तातैं यहां प्रोषध प्रतिमा कही। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। अप्रत्यवेक्षित, अप्रमार्जित, उत्सर्गदान, संस्तरोपक्रमण, अनादर-अनुस्मृत्य। अब इनका अर्थ—जहां प्रोषध कौं बैठै, सो बिना भूमि शोधै—झाड़ै ही प्रोषध कौं तिष्ठै। सो अप्रत्यवेक्षित अतिचार है॥ १॥ और जहां वृत धारी प्रोषध करते भूमि शोधै तो सही, परन्तु कोमल पीछी तैं तथा कोमल वस्त्र तैं नहीं झाड़ै, मोटे वस्त्र तैं तथा कठोर पीछी तैं झाड़ै। सो याका नाम अप्रमार्जित अतिचार है॥२॥ और भूमि विषैं, बिना शोध ही मल—मूत्र का क्षेपना। सो याका नाम उत्सर्गदान है॥ ३॥ और प्रोषधधारी जिस स्थान पै बैठे—आसन करै, बिछौना बिछावै, सो भूमि शोधै—झाड़ै नाहीं। सो याका नाम संस्तरोपक्रमण है॥४॥ और जहां उत्साह बिना, धर्म भावना रहित, प्रमाद सहित, परमार्थ-शून्य, लौकिक यश का लोभी, और के दिखायवे कौं, अनादर भाव सहित, प्रोषध क्रिया करै। सो याका नाम अनादर-अनुस्मृत्य है॥ ५॥ ये पांच अतिचार प्रोषधोपवास व्रत के हैं। इन रहित, शुद्ध भावना सहित, वैरागी—व्रती अपने व्रत की प्रतिपालना करै। सो प्रोषध प्रतिमा का धारी उत्तम श्रावक कहिये है॥ इति प्रोषधोपवास नाम चौथी प्रतिमा॥४॥

आगे सचित्त त्याग पांचवीं प्रतिमा कहिये है। यह पांचवीं प्रतिमा का धारी श्रावक सचित्त

वस्तु का त्यागी होय है। सो यह सचित्त जल नहीं वर्तै है। हाथ—पाँव—शीशादि अंगो,-पांग, कच्चे जल तैं नहीं धोवै है। अपने हस्त तैं नदी, सरोवर, कूप, बावड़ी का जल नहीं भरै। कच्चे जल तैं स्नान नहीं करै। और बनस्पती कूं छीले नाहीं, काटै नाहीं। भोगी जीवन के भोगवे योग्य, ऐसी फूल—मालादि, तथा महा सुगंधित अनेक जाति के फूल, सो ये वृती अपने हाथ तैं छीवै नाहीं, पहिरे नाहीं, सूंघे नाहीं। और अनेक जाति का सचित्त मेवा-दाख, अनार, केला, आमफल, जामुन, नारंगी, जंभीरी, नीबू, सेव, सीताफल, बेर, बिही, (अमरूद), कमरख, खिरनी, खजूर, आंडू, मौलशिरी, तेंदू, पीलू, अखरोट, अंगूर इत्यादिक भोगी जीवन के भोग योग्य, सचित्त वस्तु का त्यागी नहीं खाय, नहीं छीवै, नहीं तोड़े। और ककड़ी, खरबूजा, तरबूजा, इत्यादिक नहीं खाय। और अनेक व्यंजन, अयोग्य वस्तु, तरकारी जाति, पत्ता, फल—फूल, बौंड़ी, जड़ जाति, कंद जाति, बक्कल जाति, कौंपल जाति, औषध जाति, चमत्कार गुण कों लिये प्रत्यक्ष रोग नाशनहारी—इत्यादिक हरी बनस्पति, ये सर्व, विषयी जीवन के भोग्य योग्य वस्तु, सो सचित्त त्यागी धर्मात्मा श्रावक नहीं खाय है। ऐसे अनेक भली वस्तु भोगियों कों वल्लभ, जिनके भोगवे कूं; भोगी अनेक कष्ट पाय, तिनके निमित्त मन, वचन, काय अरु धन लगाय, तिनके मिलाप कूं अनेक उपाय करि, भोगवैं हैं। तिन भोगन तैं बड़े-बड़े सुभट सुख मानैं हैं। ऐसी वस्तु कूं सचित्त का त्यागी, धर्मात्मा श्रावक, तन—भोगन तैं उदासी, आत्मिक सुख का भोगी, ये सचित्त वस्तु कूं नहीं खाय है। इस

सचित्त त्यागी कूं, जगत—भोग, इन्द्रिय जनित सुख, वल्लभ नाहीं लागैं। यह श्रावक, घर में हो यती सरीखे भाव धरै है। विरक्त भावना सहित, काल-क्षेपण करै। सो पंचम प्रतिमा का धारी, सचित्त त्यागी है ॥ ५ ॥ आगे छठी प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। इस प्रतिमा का धारी, रात्रि भुक्ति त्यागी धर्मात्मा, दिन कूं कुशील-सेवन नहीं करै। रात्रि का भोजन त्याग, यहां भया है। तातें रात्रि भुक्ति त्यागी कहिये हैं। यहां प्रश्न—जो रात्रि भोजन का त्याग यहां किया, सो नीचली प्रतिमा वारे, रात्रि में खावते होंयगे? अरु दिन का कुशील यहां तज्या, सो नीचली प्रतिमा में, दिन कूं कुशील सेवते होंयगे? ताका समाधान—हे भाई, तेरा प्रश्न भला है। परन्तु तूं चित्त देय सुनि। अब भी जगत में ऐसी प्रवृत्ति देखिये है। जो हीन-ज्ञानी, अरु हीन-पुण्यी, भोरे हैं। ते कहैं तो बहुत। मुख तैं बाचाल-क्रिया तो विशेष करैं। अरु तिनतैं बनैं कछु भी नाहीं। सो तो असत्यभाषी हैं; पाखण्डी हैं। पर का ठगनेहारा, अपने यश का लोभी, बाल-बुद्धि है। और जे महा ज्ञानी पण्डित हैं, दीर्घ पुण्यी हैं, सज्जन स्वभावी हैं। सो कार्य तो बड़ा—महत करैं, अरु अपने मुख तैं अल्प प्रगट करैं। ते धर्मात्मा धीर-बुद्धि हैं। तैसे ही पराये दिखायवे कूं, पर के रंजायवे कौं, भोरे जीवन का मान हरवे कूं, अपने पद-नमावे कौं, ते पाखण्डी अपने कुज्ञान की प्रबलता तैं अनेक धर्म-सेवन के स्वांग धरि। जप, तप, कथा तो वचन-आडंबर तैं बहुत करैं। अरु इन परमार्थ-शून्य प्राणीन तैं, बनै कछू भी नाहीं। सो जीव

तौ धर्मात्मा नाहीं। अरु धर्मार्थी भी नाहीं। और जे जगत-यश तैं उदासी, जिननें तोड़ी ममता फांसी, ते अल्प काल में शिव जासी। स्वर्ग—संपदा होय जिन दासी। मिथ्यादृष्टी तिन नाशी। वह भव्य सुख-राशी। ऐसे निकट संसारी, धर्म का सेवन तो बड़ा करैं। अरु अपनी महिमा नहीं चाहैं। सो धर्मात्मा हैं। तातैं तुम विचारौ—देखो। जे जीव अल्प से भी धर्म-सेवन कौं उत्कृष्ट जानि, पाप तैं भय खाय हैं। ते जीव ही विषय—कषाय कौं तजि, शुभाचार रूप परणमैं हैं। केई घर—स्त्री का त्याग करैं। केई दिन का भी भोजन तजि, उपवास करैं। केई जन्म पर्यन्त, स्त्री-विषय का त्याग करैं। केई भव्यात्मा, रात्रि-जल का भी त्याग करैं हैं। इत्यादिक प्रवृत्ति भोरे जीव, धर्मानुराग तैं करैं हैं। तो जे समता-रस के चखैया, जिनका दर्शन-मोह गया, तब सम्यक् घर भया। भेद-ज्ञान तब लया। तब ऐसा भाव भया, विषय-भोग विषमयी। गुणस्थान चौथा लया। पर सेती भिन्न भया। विषय—राग तब गया। समता-भाव परणया। बाह्य विषयी सा रह्या। बाकी अंतरंग भेद भया! ऐसे जिन-आज्ञा-प्रमाण, तत्त्व के वेत्ता भव्य, अव्रती होय हैं। सो विषयन तैं विरक्त रहैं हैं। येही रात्रि-भोजन नहीं करैं। दिन में कुशील नहीं सेवैं। तो हे भव्य! जे पंचम गुणस्थान धारी, व्रती श्रावक हैं। सो प्रथम, द्वितीय, तीसरी, चौथी प्रतिमा, पांचवीं प्रतिमा का कथन, इनका त्याग, इन प्रतिमाओं की क्रिया-प्रवृत्ति, इनके धारी धर्मी-श्रावक तिनकी वैराग्य दृष्टि का रस, सो तो नीके कथन करि आये हैं। सो नीके सुन्या ही है। सो अब तूं विचार देखि। जो

नीची प्रतिमा विषैं स्त्री का भोग, अरु रात्रि, भोजन कहां रह्या ? ये छट्टम प्रतिमा धारी श्रावक-महा उदासीन वृत्ति का धारी, बैराग्यी, बड़भागी, इनकौं इतना विषय-रस नाहीं, जो दिन में स्त्री का भोग होय। ये महा धर्मात्मा हैं। इन्हें रात्रि काल विषैं स्व-स्त्री का ही नाम-मात्र संतोष है। तृष्णा रूप नाहीं। ऐसा जानना। ये धर्मी, दिवस विषैं ही, एक दिन में एक बार ही, अल्प रस भोजन करनहारा, ताके रात्रि-भोजन कहां पाईये ? परन्तु जिनदेव की ऐसी आज्ञा है। जो यहां पांचवीं प्रतिमा तांई, कोई प्रकार अतिचार लागै था। इस भय तैं नीचली प्रतिमा में नाहीं कह्या। अरु इस छट्ठी प्रतिमा विषैं, रात्रि-भोजन का, अरु दिन विषैं कुशील का अतिचार भी नाहीं लागै। तातैं व्रत प्रगट किया। ऐसा जानना। सो रात्रि का पिसा, पोया, रात्रि का बींधा, रांध्या, शोध्या, बांट्या, घिस्या, छाण्या, धोया इत्यादिक रात्रि का आरंभ्या ऐसा भोजन होय। सो छटवीं प्रतिमा का धारी नहीं खाय। और रात्रि का आरंभ्या-भोजन खाय, तो रात्रि-भोजन का दोष लागै। तातैं इनमें जो कोई अतिचार सूक्ष्म, पहले नीचली प्रतिमा में लागें थे, सो छट्ठी प्रतिमा में यहां नाहीं लागैं हैं। और दिन में अपनी स्त्री कौं देख, विकार भाव होय जाय थे। कभी-कभी सरागता सहित वचन होय जांय थे। काय तैं कोई विकार चेष्टा होय थी। सो अब यहां छट्ठी प्रतिमा में मन, वचन, काय करि; दोष नाहीं लागै। तातैं यहां छट्ठी प्रतिमा विषैं रात्रि-भोजन, अरु दिन कूं कुशील का त्याग कह्या है। तातैं याका नाम, रात्रि भुक्ति त्याग कह्या ॥६॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये,

एकादश प्रतिमा विषैं, छट्ठी प्रतिमा का कथन वर्णनो नाम, छत्तीसवां पर्व सम्पूर्णं ॥ ३६ ॥

आगे सातवीं ब्रह्मचर्य्य प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। याका नाम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। सो छठीं तांईं तो, स्व-स्त्री का त्याग नहीं है। तौ भी महा संतोषी, परन्तु पदस्थ-योग तैं अपनी परणी स्त्री कूं, स्त्री-भाव करि जानै है। जो ये मेरी स्त्री है। अरु सातवीं प्रतिमाधारी के, स्व-पर स्त्री दोऊन का त्याग है। सो पर-स्त्री का त्यागी तो पूर्व में था ही। स्व-स्त्री का त्याग, सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा विषैं है। अब यहां स्व-स्त्री, पर-स्त्री दोऊन का त्यागी भया। अपनी स्त्री कौं भी विकार-क्रिया तैं नहीं देखै। इस प्रतिमा विषैं, महा शील-व्रत का धारी, ब्राह्मण—ब्रह्मचर्य व्रती भया। अब यहां चेतन—अचेतन स्त्री का त्याग भया। तातैं इस प्रतिमाधारी कौं, ब्रह्मचारी कह्या है। सो यहां ब्रह्म शब्द के च्यारि भेद हैं। सो ही कहिये हैं—

गाथा—वंभ सुभावो आदा, त्याज वंभोय जोय पय हारो।
किय्या वंभाचारो, भत्तो कित्तेय वंभ कुल होई ॥ १४० ॥

याका अर्थ—वंभ सुभावो आदा कहिये, आत्मा का स्वभाव ही ब्रह्म है। त्याज वंभोय जोय पय हारो कहिये, त्याग ब्रह्म सो याके निज-स्त्री का त्याग। किय्या वंभाचारो कहिये, आचार व्रत का धारी सो क्रिया ब्रह्म है। भत्तो कित्तेय वंभ कुल होई कहिये, भरत करि किये सो कुल-ब्रह्म हैं। भावार्थ—स्वभाव ब्रह्म, त्याग ब्रह्म, क्रिया ब्रह्म, और कुल ब्रह्म। ये च्यारि हैं। इनका विशेष अर्थ— तहां स्वभाव ब्रह्म तो आत्मा का नाम है। सो ताके दोय भेद हैं। एक ब्रह्म,

दूसरा पर-ब्रह्म। तहां कर्म-मल सहित, जन्म—मरण का धारी, च्यारि गति वासी जीव, सो ब्रह्म है। राग-द्वेष का धारी, इष्ट वस्तु मिले सुखी होय, अनिष्ट वस्तु मिले दुखी होय, सो तो ब्रह्म जानना। भूख-तृषा नाम रोग जाकैं उपजता होय, सो ब्रह्म है ॥ १ ॥ और जन्म-जरा-मृत्यु रहित होय, अमूर्ति, सर्व दुख—दोष रहित, केवल-ज्ञान का धारी, अतंर्यामी होय। सो पर-ब्रह्म है। ऐसे स्वभाव-ब्रह्म के दोय भेद जानना ॥२॥ यहां ब्रह्म नाम आत्मा का जानना ॥ १ ॥ और दूसरा ब्रह्म, सातवीं प्रतिमा धारी ब्रह्मचारी, स्व-पर-स्त्री का त्यागी, ताका कथन ऊपरि करि आये। सो याका पद अनुक्रम तैं, प्रथम प्रतिमा तैं लगाय; सातवीं प्रतिमा पर्यंत, ज्यों-ज्यों त्याग बध्या; त्यों—त्यों प्रतिमा चढ़ी। तातैं याका नाम त्याग-ब्रह्म है ॥ २ ॥ और तीसरा क्रिया—ब्रह्मचारी, ताके जानवे कों उपासकाध्ययन के सातवें अंग ताके अनुसार, बड़े आदि-पुराण जी विषैं दश अधिकार कहे। ताके अनुसार कारण पाय, यहां भी लिखिये है—

गाथा—सिसि विद्याय कुलावधि, वएणोत्तम पात सेय विवहारो।
अवधा अदंड मणनीयो, पज्ञा सम्मधाण दह भेयो ॥ १४१ ॥

अर्थ—सिसि विद्याय कहिये, बाल विद्या। कुलावधि कहिये, कुलावधि। वएणोत्तम कहिये, वर्णोत्तम। पात कहिये, पात्रत्व। सेय कहिये, श्रेष्ठ पद। विवहारो कहिये, व्यवहार सत्ता। अवधा कहिये, अवध्यता। अदंड कहिये, अदण्डता। मणनीयो कहिये माननीयता। पज्ञा सम्मधाण कहिये, प्रजा संबंधांतर। दह भेयो कहिये, ये दश भेद हैं। भावार्थ—बाल विद्या, कुलावधि,

वर्णोत्तम, पात्रत्व; श्रेष्ठता, व्यवहारता, अवध्यता, अदंडता, माननीयता, और प्रजा संबंधान्तर। ये दश हैं। जो जीव इन दश क्रियान करि सहित होय। सो क्रिया-ब्रह्म है। सो ही विशेष-कर कहिये है। तहां बालावस्था तैं ही विद्या का अध्ययन करि, पण्डित होय। तो शुभाशुभ मार्ग जानै, खाद्याखाद्य जानै, पाप–पुण्य का भेद जानै। केई अज्ञानी–कुवादी, आप कौं शुद्ध धर्म तैं डिगाय; विषयी, मोही, हिंसक धर्म विषैं लगाया चाहैं, तो नहीं लागै। पाखण्डीन के ठगवे में नहीं आवै। तातैं तीन कुल का उपज्या, भव्य का बालक होय, सो विद्याभ्यास करै। अरु विद्या नहीं पढ़्या होय, तो आप कुधर्म–सुधर्म की परीक्षा नहीं करि सकै। तब अपना भला-धर्म तजि, कुधर्म सेवन में लागै। परभव बिगाड़ै। अरु अज्ञान भया, खाद्याखाद्य न समझ कैं, अभक्ष्य का भक्षण करि, अपनी बुद्धि नष्ट करै। विद्या बिना, जगत में निन्दा पावै। दीन कहावै। दीनता के योग तैं याचना करै। तब याचकता के योग तैं, अपने उत्तम-कुल कूं कलंक लगावै। तातैं ऐसा जानना; जो सर्व सुख की दाता, अनेक गुण मंडित, एक विद्या है। ऐसी विद्या का अध्ययन, बाल्यावस्था विषैं ही करना। बालावस्था गये, जिह्वा कठिन होय। कषाय–अंश विशेष होंय। तिस दोष तैं, विद्या-दाता का विनय नहीं सधै। बाल्यावस्था मन्द–कषाय सहित होय है। तातैं बालपने में ही विद्या का अभ्यास करना। ता विद्या करि, पाप तजि, पुण्य ग्रहण करै। सो परोपकारी होय है। अपना–पराया भला करै। याका नाम बाल–विद्या अधिकार है ॥ १ ॥ और दूसरे; ब्राह्मण,

कुल का उत्तम है। सर्व विषैं बड़ा है। और ब्राह्मण का आचार भी सर्व तैं उज्ज्वल, दया सहित, उत्तम है। अरु एक दिन में, एक बार, एक स्थान बैठा, भोजन करै है। सो भी जहां अन्धकार नहीं होय, उद्योतकारी स्थान होय, तहां भोजन करै। अरु अन्धकार–गृह में भोजन करै, तो रात्रि–भोजन दोष पावै। तातें रात्रि रहित, अन्धकार रहित, उत्तम स्थान में, निर्दोष आहार करै। इन आदिक अनेक शुभाचार होंय। अरु कदाचित् ऐसा उत्तम आचार नहीं होय, तो क्रिया–भ्रष्ट भया। कन्द–मूलादि अभक्ष भोजन, रात्रि भोजन, अनगाल्या पानी, खान–पान करि। दया रहित, कुभावना सहित होय। सो उत्कृष्ट कुलाचार तैं भृष्ट होय। तातें उत्तम आचार सहित ब्राह्मण कूं, ये कार्य तजना चाहिये। याका नाम कुलावधि नाम अधिकार है॥ २॥ और सर्व कुलन तैं, ब्राह्मण कुल की अधिकता है। तो याका उत्कृष्ट चलन ही चाहिये। महा दयावान्, पर-जीवन की रक्षा–रूप भाव होंय। अरु निर्दयी होय। तो शिकारी समान हिन्सा करि, पापाचारी होय के, निन्दा पावै। तातें शुभाचारी, सर्व झूठ का त्यागी होय। जो झूठ भाषै, तो ब्रह्म की मर्यादा जाय। तातैं ब्राह्मण सत्यवादी चाहिये। और सर्व–चोरी का त्यागी होय। जो चोरी करै, तो राज्य–पंच–दण्ड पावै। अपयश होय। तातैं ब्राह्मण चोर–कला–दोष तैं रहित चाहिये। और पर-स्त्री का त्यागी होय। जो पर–स्त्री लम्पटी होय। तो राजा ताका शिर, नाक, कान, पांव, हस्त, छेदन करै। पंच, जाति तैं निकासैं। तौ ऊंच कुल कूं दोष लागै। तातैं ब्राह्मण शीलवान् चाहिये।

और ब्राह्मण, सर्व आरम्भ व बहुत परिग्रह का त्यागी होय। निर्लोभी होय। इत्यादिक गुणवान् होय, तो शोभा पावै। और अनाचारी भया, महा आरम्भ करै। महा लोभी होय, दया रहित सा दीखै। तो उत्तम कुल कौं दोष लगावै। तातैं ब्राह्मण बहुत आरम्भ व बहुत परिग्रह का त्यागी चाहिये। और ब्राह्मण, अपने से ही हीन आचारी, ऐसे हीन देव, हीन गुरु कौं नाहीं सेवै। जैसा आप दयावान् है, शीलवान्, समता भावी है, तातैं भी अधिक वीतराग देव–गुरु होय, ताकौं सेवै। और जैसा आप पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिग्रह के योग तैं; क्रोधी, मानी, दगावाज, लोभी है। ऐसा ही क्रोध, मान, आदि दोषों तैं भरया जो देव–गुरु; ताकूं नहीं सेवै। जाकौं सेवै, सो परीक्षा करि सेवै। अपने जैसे रागी–द्वेषी; पर–स्त्री, धन, वाहनादि परिग्रह भारी; देव–गुरु कौं नहीं सेवै। सर्व दोष रहित, वीतराग, सर्वज्ञ; आरम्भ-परिग्रह, स्त्री, धन, घर रहित देव–गुरु की सेवा करै। हीन देव–गुरु कौं नहीं सेवै। यह तो वर्णोत्तम नाम तीसरा अधिकार है॥ ३ ॥ और ब्राह्मण में गुण की अधिकता है। तातैं याकूं पात्रत्व भाव है। ये पात्र है, तातैं आदर तैं दान देवे योग्य है। अरु बड़े पुरुषन करि, माननीय है। तातैं विवेकी ब्राह्मण कूं, गुण बधावना योग्य है। ये शील, सन्तोष, दया, क्षमा, निर्लोभादि उत्तम गुण करि तो पूज्य है। अरु इन गुण बिना, महापुरुषन करि, मानवे योग्य नहीं होय। बड़े–बड़े राजा, गुणी जन तैं अनादर पावैं। पण्डितन सभा में जाय, लज्जा पावैं। तातैं ब्राह्मण कौं दान, पूजा, जप, तप, संयम, शील, दया,

सन्तोषादि अनेक-अनेक गुणन का संग्रह करना योग्य है। याका नाम, पात्रत्व नाम चौथा अधिकार है ॥ ४ ॥ और जहां श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, तिनकौं मिथ्या श्रद्धान तजि कैं, सर्वज्ञ देव-केवली भाषित पदार्थन का श्रद्धान करना योग्य है। कोई सामान्य ज्ञान के धारनहारे मानी जीवन ने, अपना मान पोषवे कौं, भोरे जीवन के बहकावे कौं, अपनी इच्छा करि, कल्पित शास्त्र बनाये। तिनमें तीन लोक का स्वरूप अयथार्थ कह्या। ता तीन लोक का प्रमाण, तुच्छ कह्या। सो कोई तो भोरे भव्य, ऐसा मानैं। जो लोक की रक्षा, निरन्तर भगवान् करैं। नहीं तो कोई चोर, या सर्व लोक कौं चुराय, वस्त्र में समेट लेय जाय। तातें भगवान् सदीव रक्षा करैं हैं। और कोई कहैं हैं। जो काहू कर्त्ता ने लोक बनाया है। सो कबहूं काल पाय, क्षय भी होयगा। ऐसे कल्पित विकल्प करि, लोक-स्वरूप कहें हैं। सो असत्य है। ताके भेद कौं जानैं। और सर्वज्ञ केवली करि कह्या लोकाकाश रूप-अनादि, अकृत्रिम, अविनाशी, ध्रुव, पुरुषाकार सो सत्य है। ताके भेद कूं जानैं। शुद्ध केवली के भाषे लोक का श्रद्धान् करै। मिथ्या-कल्पित लोक के स्वरूप का श्रद्धान् तजै। और भी जीव-अजीव का श्रद्धान् सहित, शुद्ध सम्यग्ज्ञान का धारी, ब्राह्मण चाहिये। और जो आप के भी यथार्थ दर्शन-ज्ञान नहीं होय। तो औरन कूं मिथ्या उपदेश देय, औरन का बुरा करै। अपने उत्तम कुल कूं दोष लगावै। तातें ब्राह्मण कूं यथार्थ श्रद्धान् आप कूं चाहिये, तो औरन कूं भी सत्य-उपदेश देय, औरन का भला करै। तब ब्राह्मण-कुल की

श्रेष्ठता रहै। याका श्रेष्ठता नाम, पांचवां अधिकार है ॥ ५ ॥ और जो ब्राह्मण आप पण्डित होय। दया—धर्म का धारी होय। अन्य शिष्यजन कों कल्याण के अर्थ, मोक्ष-लक्ष्मी का वांच्छनहारा होय। अनेक प्रायश्चित्त शास्त्रन का वेत्ता होय। श्रावकन के व्यवहार की परिपाटी का जाननहारा होय। जहां कोई श्रावक कों प्रमाद-वशात्, संयम में दोष लगा होय, तो दया-भाव करि, ताके मेंटवे कूं, शिष्यन के पाप नाशवे कूं, यथा-योग्य प्रायश्चित्त बताय, शुद्ध करै। ऐसा ब्राह्मण चाहिये। और कदाचित् आप ही अशुद्ध होय, क्रोध—मान—माया—लोभ—पाखण्ड करि भरया होय। तथा अज्ञानी होय। तो औरन कों धर्म-मारग कैसे बतावै? जैसे कोई ठग सूं उद्यान में शुद्ध-राह पूछै। तो ठग, शुद्ध राह कैसे बतावै? तथा कोई अंधे सैं उद्यान की राह पूछे। तौ वह उद्यान की राह कैसे बतावै? तैसे ही कषाय सहित सो तौ ठग समान, सो शुद्ध मार्ग नहीं बतावै। वह अज्ञान, अंधे समान है। सो आपही कौं सुमार्ग नहीं सूझै। तौ और कौं कैसे बतावै? तातैं ब्राह्मण के ये दोऊ दोष कहे। सो कषाय अरु अज्ञानता तैं रहित, सज्जन स्वभावी, दयामूर्ति, महा पण्डित, अनेक प्रायश्चित्त शास्त्रन का ज्ञाता ब्राह्मण चाहिये। अरु जो ब्राह्मण, आप प्रायश्चित्त शास्त्र तो नहीं जानै। आप कौं दोष लागै, तब आप कूं औरन पै, दीन होय, प्रायश्चित्त याचना पड़ै। तातैं आपा-पर के सुधारवे कूं, अनेक नय का वेत्ता, गृहस्थन की क्रिया-व्यवहार जानैं। सो व्यवहार नाम छट्ठा अधिकार है ॥ ६ ॥ और ब्राह्मण, उत्तम गुण—संपदा का धारी, उत्कृष्ट—पूजनीक

गुण सहित, धीर बुद्धि, पूजा—जप—तप—संयम सहित, अनेक गुण पालक, सत्पुरुष ब्राह्मण, राजान करि अवध्य है। जैसे चोर, चकार, चमचोरादि सप्त व्यसन के धारी जीव, वधवे योग्य हैं। तैसे अनेक गुण का धारी ब्राह्मण, वधवे योग्य नाहीं। पूजवे योग्य है। और जो गुणी, पूजन योग्य, दीर्घ ज्ञानी कूं हनै, तो महा पाप होय। ज्यों—ज्यों दीर्घ ज्ञानी का घात होय, त्यों—त्यों विशेष पाप जानना। जैसे एकेन्द्रिय के घाततैं, दो-इन्द्रिय के घात का पाप बहुत है। ते-इन्द्रिय का दो-इन्द्रिय तैं बड़ा है। ते-इन्द्रिय के घात तैं चौ-इन्द्रिय के घात का पाप विशेष है। ऐसे ज्यों—ज्यों ज्ञान वध्या, त्यों—त्यों इन्द्रिय वधी। सो इन्द्रिय के बधवे तैं, ज्ञान वध्या। तातैं ज्यों—ज्यों ज्ञान बधता होय, ताके घात का वड़ा—वड़ा पाप है। पशु तैं पापाचारी चोर, ज्वारी, पर-स्त्री सेवी, इत्यादिक अशुभ-कर्मी मनुष्य के घात का पाप विशेष है। सो इन तैं भला मनुष्य, व्यसनादि दोष रहित होय, ताके घात का पाप विशेष है। और ऐसे सामान्य मनुष्यन तैं, जपी, तपी, संयमी, दानी, दयावान्, निर्दोष, इनकैं विशेष ज्ञान है। सो इनके मारने का विशेष पाप है। तातैं ऐसा जानना, जो ब्राह्मण संयम, जप, तप, व्रत का धारी है। तातैं याकी घात का पाप विशेष है। विवेकी राजा, ऐसा दीर्घ पाप नहीं करै। तातैं राजा तैं, ब्राह्मण बध रहित है। पूजवे योग्य है। मारवे योग्य नाहीं। और यह धर्म का माहात्म्य है। कि धर्मी कों, कोई पीड़ै नाहीं। और कदाचित् ब्राह्मण, दया रहित होय। लोभ—क्रोध—मान—मायादि व्यसन का धारी होय।

तो दीनता पावै। गुण बिना महत्वता जाती रहै। सामान्य मनुष्य की नांईं राजा करि, दण्ड कौं प्राप्त होय है। हर कोई, पीड़ै। दुर्वचन कहै। और ब्राह्मण का पद होते, सुमार्ग का लोप होय। ऊंच-कुली कुमार्ग में लागैं, तौ दीनता पावैं। अपयश पावैं। धर्म–आचार मिटै। सुमार्ग–दया धर्म तैं रहित भये, पूज्य पद मिटै। राजा तैं अनादर पावै। तातैं विवेकी उत्तम ब्राह्मण कौं उत्तम–दया धर्म, संतोष, जप, तप, इन आदिक अनेक गुणों की रक्षा करनी, त्रस–स्थावर सर्व जीवन का भला चाहना, यह उत्तम गुण है। सर्व के भले में अपना भला है। तातैं ब्राह्मण कूं धर्म-रक्षा करनी। याका नाम सातवां अवध्य गुण है ॥ ७ ॥ और धर्म विषैं स्थिरी-भूत है आत्मा जाका, ऐसा ब्राह्मण; सर्व करि अदंड है। काहू तैं दण्डवे योग्य नाहीं। और कोई धर्म–बुद्धि कूं, धर्म-सेवन में दोष लाग्या होय। तौ ताकौं शुद्ध करवे कूं यह धर्मात्मा ब्राह्मण, ता कूं दण्ड देय, शुद्ध करै। परन्तु आप दण्ड-योग्य नाहीं। आप अपनी शांत-दशा दया-भाव सहित, शास्त्रन का अभ्यास करै। ताके अर्थ प्रगट करि, आप धर्मात्मा भया और धर्मी-जीवन कूं उपदेश देय, सुमार्ग लगावै। और जे धर्मात्मा होंय। सो धर्मी–जीव का दिया उपदेश, तथा अतिचार लाग्या ताका प्रायश्चित्त, अंगीकार करैं। तातैं धर्मात्मा–पुरुष, राजा करि दण्डवे योग्य नाहीं। और कदाचित् ऐसे धर्मी-जीव में, कोई कर्म–योग तैं दोष पड़ गया होय। तौ धर्मात्मा–राजा, यथा-योग्य दण्ड देय, फेरि ताकूं धर्म–विषैं दृढ़ करै। ऐसा दण्ड नहीं देय, जातैं याकौं धर्म तैं अरुचि होय। धर्म-सेवन

में आकुलता बधै। घर–धन नहीं लूटै। तन–घात नहीं करै। ऐसा दण्ड देय, जातैं याकौं धर्म में प्रीति उपजे। और जिन-धर्म का अतिशय देख, दया-धर्म का सेवन करै। यह धर्मात्मा ब्राह्मण, सर्व लौकिक दोष तैं रहित, उत्तम आचारवान्, दया-धर्म का धारी, राजाओं करि अदंड है। और पापीजन की नांईं, धर्मात्मा कूं भी दण्ड योग्य जानै। तो दण्डनेहारा राजा, प्रजा का पालनहारा, अन्याय के योग तैं अपयश पाय, थोड़े ही दिनों में राज्य-भ्रष्ट होय। याकी अनीति देख, धर्मात्मा पुरुष तौ देश तज देंय। तब देश धर्मी-जन रहित भया। तामैं पाप-कार्यन की बधवारी होय। पाप के बधतैं, देश–ग्राम धीरे–धीरे अनुक्रम करि नाश कूं प्राप्त होंय। तातैं धर्मात्मा–ब्राह्मण, अदण्ड है। यह अदंड नाम आठवां अधिकार है॥८॥ बहुरि धर्मी–जीवन कौं सर्व पूजैं। यथा-योग्य सर्व मानैं। सो यह बात सत्य ही है। जो धर्मात्मा, गुणन करि अधिक होय। सो धर्मी–जीवन करि, मानवे योग्य होय ही होय। और कदाचित् विप्र विषैं, गुणन की अधिकता नहीं होय। तो पूज्य-पद मिटै। अनादर पाय। पद भ्रष्ट होय। रंक-दशा धारै। तातैं विवेकी ब्राह्मण, समतादिक गुणन का जतन करि, अपने विषैं धारै। सो यह ज्ञान, चारित्र और तप, उत्कृष्ट ऋद्धि है। सो जे गुणवान् हैं, सो गुण–विभूति का यत्न करो। यह गुण-संपदा जप–तप पूज्य हैं। तिन कौं भूल कर भी विवेकी नहीं विसारैं। याका नाम माननीयता नववां अधिकार है॥ ९ ॥ और यह धर्मात्मा ब्राह्मण का, प्रजा-संबन्धांतर गुण है। सो विवेकी अपना उत्कृष्ट गुण छाँड़ि, जगत–जीव–अज्ञान की नांईं नहीं

होय। सो प्रजा-संबंधांतर गुण कौं राखै। भावार्थ—जो जैसे गुण अन्य प्रजा में नहीं पाईये, ऐसे गुण आप में धारण करै। प्रजा के गुण तैं अधिक गुण-संपदा का धारी होय। तब प्रजा करि, पूज्य होय। प्रजा-जैसे, अज्ञान चेष्टा रूप गुण, आप में नहीं धारै। सो प्रजा से अन्तर जानना। और प्रजा समान गुण, अज्ञान—विषयी की चेष्टा आप में धारै। तो अपना पूज्य-पद खोवै। महंतता नहीं रहै। प्रजा समान आप भी होय। तो जैसे निर्मल स्वर्ण में, कुधातु के सम्बंध करि मलिनता होय। और जैसे निर्मल स्फटिक मणि, डांक के संयोग तैं अपना स्वच्छ गुण तजि, श्याम—हरित—रक्तादि अनेक वर्ण कौं प्राप्त होय। तैसे ही यह धर्मात्मा जीव, ब्रह्मचारी, उत्कृष्ट गुणों का धारी, आचारवान्, सौम्यमूर्ति, संसारी—अज्ञानी जीवन की संगति तैं, आप भी अज्ञानी—जीवन की नाई, इस प्रजा में एकमेक होय। क्रोध—मान—माया—लोभ रूप प्रवृत्ति तैं, अपना पद लोप करै। सर्व गुणन का अभाव होय। तातैं विवेकी धर्मात्मा ब्राह्मण, अपने गुणन तैं और अज्ञानी—गुण रहित जीवन कौं, गुण—खान करै। आप अज्ञानी की संगति तैं, अज्ञानी नहीं होय। जैसे पारस—पाषाण अपने गुण तैं लोह—कुधातु कौं कंचन करै, परन्तु आप लोह नहीं होय। तैसे उत्तम ब्रह्मचारी, अपना शील, संतोष, तप, संयम, व्रत, दया सहित गुण, जगत में प्रगट करि, और—जीवन कौं आप समान गुणवान करै। जो भोरे, अज्ञानी, अशुभाचारी, दया रहित, पाप-कलंक सहित जीव, तिनकौं धर्मोपदेश देय, तिनके दोष मेटि, शुद्ध-निर्दोष करै। यह गृहस्थाचार्य, तीन कुल का

उपज्या, ब्रह्म-पद के धारी विषें, यह प्रज्ञा-संबंधांतर गुण है। ताके योग तें औरन कों गुण-रूप करै। और कदाचित् यह गुण नहीं होय, तो अज्ञानी के संग तें, आप अज्ञानी होय। गुण रहित होय। तब अपना पूज्य-पद नहीं रहै। तातें प्रज्ञा के गुणों तें मिलै नाहीं, अलग रहै। याका नाम प्रज्ञा-सम्बन्धांतर दशवां अधिकार है ॥ १० ॥ ऐसे ये बाल-विद्या तें लगाय, प्रज्ञा-संबन्धान्तर, दश अधिकार कहे। ताकी जुदी—जुदी क्रियान का कथन कह्या। सो जो इन दश क्रिया रूप प्रवृत्ते। सो क्रिया-ब्रह्म जानना। तीन कुल का उपज्या धर्मी जीव, इन क्रियाओं सहित शीलादिक गुण पालै। सो क्रिया-ब्रह्म है। इति क्रिया-ब्रह्म के दश भेद। आगे ब्राह्मण, शील गुण की प्रतिपालना करै। सो ब्रह्मचारी कहावै। सो शीलाधिकार लिखिये है—

गाथा—सिव सिंद जाण द्वारय, भव सायर पार तार तंणीए।
अघ तम हर रवि जे हो, मोख मग्गोय बंभ भावाए ॥ १४२ ॥

अर्थ—सिव सिंद जाण द्वारय कहिये, मोक्ष-महल के जाने कूं द्वार। भव सायर पार तार तं-णीए कहिये, संसार-सागर के तरवे कूं नाव समान। अघ तम हर रवि जे हो कहिये, पाप-रूप अंधकार के नाशवे कूं सूर्य समान। मोख मग्गोय बंभ भावाए कहिये, मोक्ष-मार्ग रूप एक ब्रह्म-भाव ही है। भावार्थ—यह ब्रह्मचर्य भाव है, सो मोक्ष-महल में जाने का एक ही ये मार्ग है। इस शील बिना, मोक्ष कौ जावे का और कोई द्वार नाहीं। कैसा है शील-भाव, संसार-समुद्र के

तिरवे कौं जहाज समान है। कैसा है भव—समुद्र, महा गंभीर, राग-द्वेष रूप जो जल, ताकरि भर्या है। तामें विकार रूप अनेक तरंगें उठें हैं। और वेद-भाव, रति, अरति, क्रोध, मान, माया, लोभादि ये कषाय हैं। सो ही भये मगरादि जलचर क्रूर जीव। तिनके केलि (क्रीड़ा) करने का स्थान, ये भव-सागर जानना। ऐसे विकट भव-सागर तारवे कूं, ये शील व्रत नाव समान है। कैसा है शील, पाप अंधकार करि चारि-गति के जीवन कूं, मोक्ष-मार्ग नहीं सूझै। ऐसा अंधकार नाशवे कूं, यह ब्रह्मचर्य—भाव, सूर्यसमान है। तातें मोक्ष का मार्ग, एक शील ही है। भावार्थ—इस शील गुण विना, अनेक धर्म-अङ्गन का साधन, कार्यकारी नाहीं। तातें मोक्षाभिलाषी जीवन कूं, मोक्ष के कारण रूप शील की ही रक्षा करनी चाहिये। आगे और भी शील गुण की महिमा कहिये है—

गाथा—सोपाणो सिव गेहो, सिव तिय लावण दूत सम जोई।
धम्मा भूसण भणयं, सिव दीयो जाण वंभ गुण गेयो ॥ १४३ ॥

अर्थ—सोपाणो सिव गेहो कहिये, ये ब्रह्म-भाव मोक्ष-मंदिर के चढ़वे कों सीढ़ी समान है। सिव तिय लावण दूत सम जोई कहिये, मोक्ष रूपी स्त्री के ल्यावे कों चतुर-दूती समान है। धम्मा भूसण भणयं कहिये, ये धर्म का आभूषण है। सिव दीयो जाण वम्भ गुण गेयो कहिये, शिव द्वीप के पहुंचावे कों ब्रह्मचर्य वाहन-समान है। भावार्थ—जैसे मन्दिर पै जांय, सो सीढ़ीन पर से जांय हैं। सो मोक्ष-महल, अद्भुत सुख का स्थान है। सो लोक के शिखर

पर है। मध्य लोक तैं, सात राजू ऊंचा है। तहां चढ़वे कूं, शीलव्रत सीढ़ी-समान है। इस शील रूप पैढ़ीन की राह चढ़नेहारा भव्य, सहज ही में मोक्ष-महल में पहुंचै है। और जैसे दूती, पर-स्त्रीन कूं शीघ्र ही मिलावैं। तैसे मोक्ष रूपी स्त्री के मिलावे कूँ, ब्रह्म दूती-समान जानना। और जैसे आभूषण करि, तन शोभा पावै। तैसे धर्म के जेते अङ्ग हैं। दान, पूजा, जप, तप, त्याग, चारित्र, इन आदि जे-जे धर्म अङ्ग हैं। तिनके भले दिखावे कूं—शोभायमान करवे कूं, शील गुण है सो आभूषण-समान है। और जैसे कोई-देशांतर जावे कूं रथ, गाड़ी, सुखपालादि असवारी, सुख तैं परदेश लेय जाय हैं। तैसे ही शिव-द्वीप के पहुंचावे कूं, शील-गुण है सो यान कहिये असवारी-समान है। तातैं इस शील-गुण की रक्षा करनी योग्य है। आगे शील गुण की और महिमा कहिये है—

गाथा—मोख तरु दिठि मूलो, खग देव णरय पूज्य असुरायो।
तिभवण चर जस करई, हरई भव दुक्ख वंभ वाताये ॥ १४४ ॥

अर्थ—मोख तरु दिठि मूलो कहिये, ये ब्रह्म-भाव मोक्ष-वृक्ष की जड़ है। खग देव णरय पूज्य असुरायो कहिये, विद्याधर, देव, मनुष्य और असुरन करि पूज्य है। तिभवण चर जस करई कहिये, तीन लोक के जीव ताका यश गावैं। हरई भव दुक्ख वम्भ वाताये कहिये, संसार के दुःख कूं ब्रह्मचर्य्य मैटै है। भावार्थ—यह शील व्रत है सो मोक्ष रूपी वृक्ष की ज़ड़ है। जैसे वृक्ष की जड़ नहीं होय, तो वृक्ष नहीं ठहरै। अल्प-काल में क्षय होय। तैसे

ही शील-भाव रूपी जड़ नहीं होय, तो मोक्ष-रूपी कल्प-वृक्ष नहीं रहै । बिनसि जाय। बहुरि यह शील-भाव कैसा है ? विद्याधर, राजा; ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी, कल्पवासी ये च्यारि प्रकार के देव, चक्री, अर्ध-चक्री, कामदेव, बलभद्र, मण्डलेश्वरादि महान् ऋद्धि के धारी बड़े-बड़े राजा, इन सर्व देव—मनुष्यन करि पूजनीय है। और शीलभाव कैसा है? जाका यश तीन लोक के प्राणी गावैं हैं। बहुरि शीलभाव कैसा है जन्म—मरण दुःख का नाश करनहारा है। इत्यादिक अनेक गुण सहित, यह शील व्रत है। ताकी रक्षा करना योग्य है। आगे शील का माहात्म्य और बताइये है—

गाथा—सिंह ण वाधा करई, चंपय पद णाग दाग णह होई।
वण वारण मिग जायो, यह फल सीलोय होय णियमेण ॥ १४५ ॥

अर्थ—सिंह ण वाधा करई कहिये, ब्रह्मचारी कौं सिंह बाधा नहीं करै। चंपय पद णाग दाग णह होई कहिये, पांव के नीचे नाग आवै तौ भी नहीं काटै। वण वारण मिग जायो कहिये, बन का हाथी मृग समान हो जाय। यह फल सीलोय होय णियमेण कहिये, ऐसा फल नियम से शील व्रत का होय है। भावार्थ—जहां भयानीक आकार, तीक्ष्ण हैं नख अरु दांत जाके, काल—पुत्र समान बिकराल, भयानीक रूप ऐसा नाहर, उद्यान में शीलवान कौं नहीं सतावै। और काल समान बिकराल, फण का धारी, विष का समूह, जाके मुख तैं निकसै है अग्निवत् हलाहल विष-ज्वाला, मणिधारी, ऐसा भयानीक नाग,

शीलवान् पुरुषन के पांव नीचे दबि जाय, तो इल्ली समान दीन होय जाय। शील के माहात्म्य करि, पीड़ा नहीं करै। और महा उद्यान में बन का मदोन्मत्त हस्ती, स्वेच्छारूप वर्तता, अपनी लीला करि बड़े—बड़े वृक्ष तोड़ता, नदी—सरोवर का जल बिलोलता, काल समान भयानीक, वर्षा-काल के मेघ समान गर्जता, दीर्घ शब्द करता, अजंनगिरि समान ऊंचा, मेघ-घटा समान श्याम वर्ण का धारी हस्तो तैं, गहन बन में भेंट हो जाय। तौ ऐसा भयानीक गयंद, शील के माहात्म्य करि ब्रम्हचारी कूं बाधा नहीं करै। मृग के समान सरल हो जाय। इत्यादिक फल प्रगट करनहारा, उत्तम शील गुण है। तातैं ऐसे शीलगुण की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी शील गुण का माहात्म्य कहिये है—

गाथा—सुर सुह कर सिव करऊ, वहणी णिज पतण होय दुह सामो।
सुर-तरु दहदा सुह दय, गहणो वण साय वंभ वय करई ॥ १४६ ॥

अर्थ—सुर सुह कर कहिये, स्वर्ग का सुख करनहारा। सिव करऊ कहिये, मोक्ष करनहारा। वहणी णिज पतण होय दुह सामो कहिये, शीलवान् का अग्नि में पड़ना होय तो यह दुःख भी शांत होय। सुर-तरु दहदा सुह दय कहिये, दश प्रकार कल्पवृक्ष के सुख का दाता है। गहणो वण साय वंभ वय करई कहिये, ब्रह्मचर्य व्रत सघन बन में सहाय करै। भावार्थ—यह ब्रह्मचर्य व्रत कैसा है? याके फलतैं नाना प्रकार, पंचेन्द्रिय, देवोपुनीत, अद्भुत, अमर-पर्याय के सुख होय हैं। और शीलवान् जीव कूं कर्म-रहित जो मोक्ष; ताके अखंड, अविनाशी, अचल,

अतीन्द्रिय-सुख होय हैं। और शीलवान् के चौ-तरफ अग्नि ज्वाला जल रही होय, तौ भी ताहि बाधा नहीं होय। तथा शीलवान् पुरुष कौं, कोई पापी अग्नि-ज्वाला विषैं गिरावै। तौ सब अग्नि, जल होय। जैसे सीता के शील-माहात्म्य करि, अग्नि जल भई। तैसे ही शीलवान कूं अग्नि का भय नहीं होय। और दश प्रकार के कल्पवृक्ष का दिया वांच्छित सुख, सो शील के माहात्म्य तैं सहज ही होय। और शीलवान् पुरुष अटवी में जाय पड़ै, तो बाधा नहीं होय। कैसा है बन? महा उद्यान, बड़े—बड़े सघन वृक्ष का समूह, तहां महा भयानीक सिंहन के धड़ूके (गुफाएं) हैं। तहां मेघ की नाईं, हस्तीन की गर्जना होय। तहां सिंहन की गर्जना के शब्द सुनि, मदोन्मत्त हस्तीन के समूह स्वेच्छाचारी भये, बन के वृक्ष उखाड़ते, लीला करते फिरैं। सो सिंह के शब्द सुनकर, हस्ती अपने छावान् (बच्चों) सहित, भागते फिरैं हैं। उतर गया है मद जिनका, सो भयवान् भये भागते दीखैं हैं। और जा बन में बड़े—बड़े पर्वत, सो गुफान करि पोले होय रहे हैं। तिन गुफान तैं निकसे जो बड़े दीर्घ तन के धारी अजगर सर्प, सो दीर्घ उच्छ्वास लेते गुफा तैं निकसते देखिये है। इत्यादिक भय तैं भरा जो भयानीक बन, सो ऐसे बन विषैं शीलवान् आय पड़ै। तो शील के माहात्म्य करि, निःखेद होय निकसै। ऐसे अतिशय सहित जो ये शीलगुण, ताकी रक्षा करनी विवेकीन कों योग्य है। आगे और भी शीलगुण का माहात्म्य बतावैं हैं—

गाथा—सिसरो अबंभ भंजई, बंभ वतोय वज्ज छिण एको।

काम भुयंगय मंत्तो, वसि करई वंभ एय गरुडाये ॥ १४७ ॥

अर्थ—सिसरो अवंभ भंजई कहिये, अब्रह्म रूपी पर्वत के फोड़वे कौं, वंभ वतोय वज्ज छिण एको कहिये, ब्रह्मचर्य एक वज्र के समान है। काम भुयंगय मंत्तो कहिये, काम रूपी सर्प के वश करवे कों ब्रह्मचर्य एक मंत्र समान है। वसि करई वंभ एय गुरुडाये कहिये, तथा ताके वश करवे कूं ब्रह्मचर्य एक गरुड़ ममान है। भावार्थ—कुशील रूपी उत्तंग पर्वत के चूरण करवे कूं, शीलभाव वज्र समान है। एक छिन में कुशील रूपी पर्वतन कूं फोड़ै है। और कैसा है शीलभाव? कुशीलभाव रूपी जो सर्प, ताके वश करवे कूं मंत्र समान है। तथा ताके वशी करवे कूं शील भाव गरुड़ समान है। ऐसे शीलव्रत की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी शील व्रत की महिमा बताइये है—

गाथा—मदणो मद गय थंभउ, अंकस सिर दाग लाग वस करई।
मण कपि वस कर फंदई, वंभो वय एय गेय णियमेण ॥ १४८ ॥

अर्थ—मदणो मद गय थंभउ कहिये, मदन रूपी मदोन्मत्त हस्ती ताके जीतवे कूं। अंकस सिर दाग लाग वस करई कहिये, शिर में अंकुश के दाग लगाय वश करवे समान। मण कपि वस कर फंदई कहिये, मन रूपी बन्दर के वश करवे कौं फंद समान। वंभो वय एय गेय णियमेण कहिये, एक ही ब्रह्मचर्य व्रत नियम से जानना। भावार्थ—काम रूपी मदोन्मत्त हस्ती, महा बलवान्, सो ताके जीतवे कूं इन्द्र, देव, चक्री, कामदेव, नारायण, बलभद्र, कोटीभटादि महा-

पुरुष, बड़े-बड़े बैरीन के जीतवे कूं बलवान्, इनको आदि बड़े-बड़े सामंत, ते भी इस काम रूपी हस्ती के वशी करवे कूं असमर्थ भये। ऐसे काम रूपी हस्तो के वशी करवे कूं, ये शील भाव है सो अंकुश के दाग समान है। और कैसा है शीलभाव ? सो मन रूपी बंदर के बांधवे कूं, लोहे की सांकल समान है। इनकों आदि अनेक गुण सहित, शीलभाव जानना। आगे और भी शीलव्रत की महिमा कहिये है—

गाथा—कुगय वार कपाटो, अवंभ तरु छेद तीच्छ कुठहारो।
सिव गछ्छत सुह सुकणो, इंदी मिग जाल वंभ वाताए ॥ १४६ ॥

अर्थ—कुगय वार कपाटो कहिये, ये ब्रह्मभाव कुगति-द्वार कों कपाट समान है। अवंभ तरु छेद तीच्छ कुठहारो कहिये, कुशील रूपी वृक्ष के छेदवे कूं तीक्ष्ण कुठार है। सिव गछ्छत सुह सुकणो कहिये, मोक्ष चलवे कूं शुभ शकुन है। इन्दी मिग जाल वंभ वाताए कहिये, इन्द्रिय रूपी मृग के पकड़वे कूं ये ब्रह्मचर्य, जाल समान है। भावार्थ—यह ब्रह्मचर्य व्रत है, सो कुगति जो नरक-तिर्यंच गति, तिनमें नहीं जाने देयवे कूं, कपाट समान है। और कैसा है शीलव्रत, जो कुशील रूपी बिकट वृक्ष, सो आर्त्त-रौद्र भाव रूप कांटेन सहित, आकुल भाव रूपी छाया का धारी, अपयश रूपी फूल करि फूल्या, नरक-तिर्यंच गति हैं फल जाके ऐसा कुशील वृक्ष, ताके छेदवे कूं शीलभाव तीक्ष्ण कुठार समान है। बहुरि कैसा है शीलभाव, जैसे कोई बड़े लाभ निमित्त द्वीपांतर जाते, भले शकुन होंय। तो जाते ही कार्य सिद्ध होय।

तैसे ही मोक्ष रूपी द्वीप के गमन करनेहारे यतीश्वर तथा और भव्य श्रावक, तिनकौं शुद्ध शील व्रत का मिलाप, भले शकुन समान है। बहुरि कैसा है शीलभाव ? जैसे काहू का तैय्यार भया धान्य का खेत है। ताकौं उद्यान में मृग उजाड़ैं हैं, खाय जांय हैं। तिन मृगों कों, स्याना खेत का लोभी किसान, जाल तैं पकड़ कैं, अपना खेत बचावै है। तैसे ही अनेक गुणन का उपजावनहारा संयम रूपी खेत, ताकों इन्द्रियरूपी मृग बिगाड़ैं हैं। सो अपने संयम-खेत की रक्षा का करनहारा धर्मात्मा पुरुष, सो इन्द्रिय रूपी मृग तिनकूँ, शील रूपी जाल तैं पकड़ि, अपने वश करि, अपने संयम खेत को बचावै। इत्यादिक अनेक गुणों का भण्डार, यह शीलव्रत है। तातैं याकी रक्षा किये, स्वर्ग-संपदा दासी होय। मोक्ष-संपदा घर बिषैं आवै। सो विवेकी हो ! इस शील की रक्षा करो। इति शील-महिमा। आगे कुशील का स्वरूप कहिये है—

गाथा—धम्म तरु भंज गयंदो, मिच्छा रयणीय मांहि मिग्गांको।
आपद धन गह भरई, ये सऊ दोसाय जणणि अवंभो॥ १५० ॥

अर्थ—धम्म तरु भंज गयंदो कहिये, धर्म रूपी वृक्ष के छेदवे कूं हस्ती। मिच्छा रयणीय मांहि मिग्गांको कहिये, मिथ्यात्व रूपी रात्रि के करवे कूं, ताका नाथ चन्द्रमा समानि। आपद धण गह भरई कहिये, आपदा रूपी धन तैं, घर कौं भरनहारा। ए सऊ दोसाय जणणि अवम्भो कहिये, इन सब दोषों की जननी अब्रह्म है। भावार्थ-धर्म रूपी वृक्ष, यश रूपी

सुगंधित फूलों करि फूल्या, स्वर्ग-मोक्ष हैं फल जाके ऐसा धर्मवृक्ष, ताकों तोड़-विध्वंश करवे कौं कुशील भावना, मतंग हस्ती समान है। और सम्यक्ज्ञान रूपी दिन, सर्व पदार्थन का जनावनहारा, ताके हरवे कूं अरु मिथ्यात्व रूपी रात्रि के प्रकाश करवे कूं, कुशीलभावना रजनीपति-चन्द्रमा समान है। और आपदा कहिये नाना प्रकार दुःख, दारिद्र, रोग, भय, जेई भईं संपदा; तिन तैं घर भरनहारा, कुशील है। भावार्थ-जाके कुशील है, ताके घर तैं आपदा कबहूं नहीं छूटैं। इत्यादिक अनेक दोषों के जन्म देवे कूं समर्थ, कुशील भावना माता समान है। ऐसा जानि, कुशील भावना तजना भला है। आगे और भी कुशील का स्वभाव कहै हैं—

गाथा—वंभ हणए तिय कुटिला, कुगय गमण कर हरय सिव मग्गो।
एहो भाव अवंभो, हेयो कीय भव्व वंभ पादेयो ॥ १५१ ॥

अर्थ—वंभ हंणए तिय कुटिला कहिये, ब्रह्मचर्य नाशवे कूं कुटिला स्त्री। कुगय गमण-कर कहिये, कुगति में गमन करै। हरय सिव मग्गो कहिये, मोक्ष मार्ग कौं हरै। एहो भाव अवंभो कहिये, ऐसा कुशील भाव है। हेयो कीय भव्व कहिये, ये भव्य जीव के हेय है। वंभ पादेयो कहिये, ब्रह्मचर्य भाव उपादेय है। भावार्थ-जैसे कुटिला स्त्री है, सो अनेक हाव-भाव करि, पर-पुरुष का मन मोह कर, ताका शील हरै है। तैसे ही कुशील भाव है, सो ब्रह्मचर्य के हरवे कूं कुटिला-स्त्री समान है। फेर कुशील भाव कैसा है? कुगति जो नरक-तिर्यंच गति, ताके मार्ग कूं बतावै है। और कैसा है कुशील? जो मोक्ष-मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, इन

कूं हरै है। तातैं हे भव्य हो ! यह कुशील भाव है, सो याकौं तजौ। अरु शीलभाव कूं अंगीकार करहु। ऐसे कहे जो शीलभाव अरु कुशीलभाव, तिनका स्वभाव अपनी बुद्धि के बल करि पहिचान, समता रस के स्वादी होय, इस जगत विडम्बना रूप विकार भाव सहित जो कुशीलभाव, तिनका तजन करि, मोक्ष रूपी स्त्री के सम्बन्ध तैं उत्पन्न, जो निराकुल, अद्भुत, अतीन्द्रिय सुख, ताही कौं तुम शीलभाव के प्रसाद भोग करि, सुखी होऊ। यह कह्ये जो कुशीलभेद, तिन कूं तजि, ऊपर कहे शील गुण कौं धारै। सो क्रिया–ब्रह्म जानना। इति कुशील निषेध, शील की महिमा कही। आगे च्यार भेद क्रिया–ब्रह्म के हैं। तिनकी क्रिया लिखिये है—

गाथा—सिर लिङ्गन उर लिङ्गो, कटि लिंगो उरय लिंग चव भेयो।
धारय सो दुज सुद्धो, वंभचारोय धार समभावो ॥ १५२ ॥

अर्थ—सिर लिंगन कहिये, सिर का चिन्ह। उर लिंगो कहिये, उर (छाती) का चिन्ह। कटि लिंगो कहिये, कमर का चिन्ह। उरय लिंग कहिये, जंघा का चिन्ह। चव भेयो कहिये, ये चार प्रकार क्रिया–ब्रह्म है। धार समभावो कहिये, समता भावों को धारण करै। वंभचारोय कहिये, वही ब्रह्मचारी है। धारय सो दुज सुद्धो कहिये, वही शुद्ध द्विज है। भावार्थ-भले तीन कुल के उपजे धर्मात्मा-गृहस्थ के बालक, जेते काल गृहस्थाचार्य के पास विद्या का अभ्यास करैं। तेते समय गुरु की आज्ञा-प्रमाण ब्रह्मचर्य-व्रत पालैं। अरु च्यारि चिन्ह सहित रहैं। सो सिर लिंग ताकौं कहिये। जो नम्र शीश रहै। सो चोटी

में गांठ राखै। सो सिर लिंग है ॥ १ ॥ और उर लिंग ताकौं कहिये, जो गले विषैं रत्नत्रय का प्रसिद्ध चिन्ह, जिन—धर्म का निशान, पक्का जैनी अपना जिन—धर्म प्रगट करवे के निमित्त, गले में तीन वाड़ (लर) सूत की-उर विषैं जनेऊ डालै। सो उर का चिन्ह है ॥ २ ॥ और डाभ की तथा मूंज की रस्सी का, कमर की करधनी की जायगा, ताका बंधन राखै। सो कटि का चिन्ह है ॥ ३ ॥ और उरु नाम जंघा का है। सो जांघ पर उज्ज्वल धोती राखै। सो उरु का चिन्ह है ॥ ४ ॥ इन च्यारि गुण सहित जो क्रिया होय। सो क्रिया—ब्रह्म है। और उर का चिन्ह जनेऊ है। ताके नव गुण हैं। इन नव गुण सहित जो भव्य होय, सो जनेऊ राखै। अरु इन गुण बिना जनेऊ राखै, तो परंपराय तैं, धर्म का लोप होय। ताकौं पाप—बंध का करनहारा कहिये। सो वे नव गुण कैसे, सो ही कहिये है—विज्ञानता, क्षमावान्, अदत्त त्याग, अष्ट मूल गुणधारक, लोभ रहित, शुभाचारी, समिति धर, शीलवान् और त्याग गुण। भावार्थ—विज्ञानता जो नाना प्रकार विशेष—गुणन की सावधानी राखना। क्षमावान होय, तपस्वी होय। दया सहित, आप समान सब जीवन का जाननहारा होय। उदार चित्त होय। सर्वज्ञ भाषित शास्त्रन का धारी पण्डित होय। यथा योग्य देव-गुरु—धर्मव, आप सम, आप तैं लघु, इत्यादिक सर्व की विनय में समझता होय। आपका हृदय विनयवान् होय। इन आदिक विशेष ज्ञानवान होय। सो विज्ञान लक्षण है ॥ १ ॥ और दूसरा क्षमागुण-सो शांत स्वभाव होय। क्रोधी नहीं होय। सर्व जीवन के मंगल का इच्छुक होय। अदेख-

सका नहीं होय। क्रोध, मान, माया, लोभ, पाखण्ड का त्यागी होय। कषायी नहीं होय। इत्यादिक गुणी, सो क्षमा गुण है ॥ २ ॥ और अदत्त का त्यागी होय। राह पड़्या द्रव्य कों नहीं छीवै। बिना दिया, किसी का गड़्या, धर्‌या, भूल्या धन लेय नाहीं। इत्यादिक चोरी का त्यागी होय। सो तीसरा अदत्त–त्याग गुण है ॥३॥ और मूल गुण का धारी होय। ऊमर, कठूमर, पाकर फल, बड़ फल, पीपल फल, ये पांच उदंबर। मद्य, मांस, मदिरा, ये तीन मकार। सब मिल आठ भये। सो इन आठन का त्याग, सो अष्ट मूल गुण हैं। सो इन गुणन का धारी होय। रात्रि–भोजन का त्यागी होय। इत्यादिक अभक्ष्य कंद–मूल का त्यागी होय। सो चौथा अष्ट मूल गुणधारक गुण है ॥४॥ और निर्लोभता–सो परिग्रह तृष्णा का त्यागी होय। संतोषी होय। अहंकार, ममकार जो मैं ऐसा, मोसा कोई दूसरा नाहीं, सो अहंकार है। और यह मेरी, वह मेरी; तन, धन, पुत्र, स्त्री, घर मेरा। ऐसा कहना सो ममकार है। जो ऐसे भावन का त्यागी होय। सो निर्लोभता पंचम गुण है ॥५॥ और शुभाचारी होय। जो पूजा जप, तप, संयम सूं रहना। अयोग्य खान-पान का त्याग। और भला भोजन देख के लेना। इत्यादिक शुभ-क्रिया करि रहना। सो शुभाचार है। अनछना जल पीवै नाहीं। ऐसे जल तैं सपरे (स्नान करै) नाहीं। नदी, सरोवर, बावरी, कूप में कूदके स्नान करै नाहीं। इत्यादिक भले गुण धारै। सो शुभाचार नाम छट्टा गुण है ॥ ६ ॥ और सांतवां समिति गुण–सो धरती पै चलै तो नीची दृष्टि करि, देखता चालै। अपनी दृष्टि में छोटे–मोटे जीव आवैं। तिन कूं दया-

भाव करि बचावता चालै। उर्द्ध–मुख करि, नाहीं चालै। शीघ्र–शीघ्र नाहीं चालै। राह चलते इत–उत नहीं देखै। भागै नांहीं। भाषा बोलै, सो विचार के बोलै। भोजन के समय, बोलै नाहीं, लड़ै नाहीं, काहू कों गाली नहीं काढ़ै। इत्यादिक शुद्धता सहित, देख के भोजन लेय। वस्तु कहीं से लेय, सो देख कर लेय। घींस के नहीं लेय। वस्तु कहीं धरै, तो देख के धरै। धरती बिना देखे, नहीं धरै। मल–मूत्र अपने तन का डारै। सो जीव रहित–स्थान में देख-शोध डारै। इत्यादिक शुद्धता सहित रहना। सो सातवां समिति गुण है॥७॥ और आठवां शील गुण- सो पर–स्त्री विषैं विकार बुद्धि का त्यागी होय। निज–स्त्री के संभोग विषैं, संतोषी होय। अल्प निद्रा का करनहारा होय। अल्प निद्रा होय, तो प्रमादी नहीं होय। दीर्घ निद्रा करै, तो अपने गुणन कूं कलंकित करै। और अल्प आहारी होय। बहुत भोजन करै, तो शील कौं दूषण होय। काष्ठ–पाषाणादि की स्त्री देख, विकार रूप चित्त नहीं करै। इत्यादिक शीलभाव राखै। सो आठवां शील गुण है॥८॥ और त्याग नववां गुण है। सो कुटुम्ब, परिग्रह, और शरीर में मोह का त्यागी होय। अनरंजन भाव होय। मंद मोह कौं लिये, सरल चित्त का धारी होय। चिन्ता, शोक, भय करि रहित होय। बड़ा दानी होय। इत्यादिक गुण, सो त्याग गुण है॥ ९ ॥ ऐसे कहे नव गुण सहित जो होय। सो तिस भव्यात्मा कौं, यज्ञोपवीत फल-दाई होय। इन गुण बिना यज्ञोपवीत राखै, तो परभव कौं दूषित करै। प्रायश्चित का धारक, सत्पुरुष, ब्रह्मचर्य का धारी; तिन करि निंद्य होय। दुख पावै। जैसे मंत्र का जाननहारा, सर्प

राखै। तो निर्दोष है। और विना मंत्र जानै, सर्प राखै। तौ दुखी होय। ऐसे कहे गुण–प्रमाण यज्ञोपवीत राखै, तौ शुभ उपजावै। नाहीं, दुख उपजावै। ऐसा जानि गुण सहित, यज्ञोपवीत राखै। सो क्रिया–ब्रह्म है। आगे इन ही श्रावकन के भोजन समय, सात अंतराय होय हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम–जहां कौंड़ी आदि निर्जीव हाड़ देखै, मांस पिंड देखै, रौद्र धार देखै, भोजन करते थाल में जीव पतन होय, पंचेन्द्रिय का मल देखै, कच्चा पक्का सूखा चमड़ा देखै व स्पर्शै और तजी वस्तु भोजन में आवै। ऐसे सात अंतराय हैं। सो इनका निमित्त मिलै, तो दयावान् कोमलचित्त का धारी श्रावक, भोजन तजै। ता दिन अनशन करै। जब से अंतराय भया, तब तैं अन्न-जल नहीं लेय। ऐसा जानना। आगे ये क्रिया–ब्रह्म के पालने योग्य, सत्तरह नियम हैं। सो कहिये हैं—

गाथा——भोयण षड रस पाणो, लेय पुखोय गीत तंबोलो।
.णित अवंभ सणाणो, आभूसण पट्ट पम्माणो॥ १५३॥

अर्थ–भोयण कहिये, भोजन। षड रस कहिये, षट् रस। पाणो कहिये, पान करवे योग्य जलादिक। लेय कहिये, लेप करने योग्य वस्तु। पुखोय कहिये, पुष्प। गीत कहिये, राग। तंबोलो कहिये, नागर पान। णित कहिये, नृत्य। अवंभ कहिये, कुशील। सणाणो कहिये, स्नान। आभूसण कहिये, गहना। पट्ट कहिये, वस्त्र। पम्माणो कहिये, इनका प्रमाण करना। इनका भावार्थ आगे कहेंगे।

गाथा—वाहण सज्ञा आसण, सचित्त संज्ञाय सत्त दस णियमो।
धम्मी सावय धारय, जाम दिण पक्ष मास वस्सादि ॥ १५४ ॥

अर्थ—वाहण कहिये, असवारी। सज्ञा कहिये, शैय्या, सोने का स्थान। आसण कहिये, बैठवे का स्थान। सचित्त कहिये, जीव सहित सो सचित्त। संज्ञाय कहिये, वस्तु। सत्त दस णियमो कहिये, ये सत्तरह नियम हैं। जाम दिण पक्ष मास वस्सादि कहिये, पहर-दिन-पक्ष-मास—वर्षादि तक। धम्मी सावय धारय कहिये, धर्मी श्रावक धारण करै। भावार्थ—भोजन, रस, पान, लेपन, फूल, ताम्बूल, गीत, नृत्य, अब्रह्म, स्नान, आभूषण, वस्त्र, बाहन, शैय्या, आसण, सचित्त, और वस्तु। इन सत्रह का नियम करै। इनका अर्थ-तहां गेहूं, चना, चांवल, मूंग, मोंठ, यव, ज्वार, आदि अन्न का प्रमाण। जो मैं एते अन्न खाऊंगा, बाकी अन्न तजे। ऐसे अन्न-भोजन की संख्या राखना। सो भोजन प्रमाण है ॥१॥ और आज षट्‌रस विषैं एते रस खाऊंगा, सो अगार है। बाकी के तजे। ऐसे षट् रसन में तैं, जो एक—दो—तीन—च्यारि आदि रस का प्रमाण करना। सो रस नियम है॥ २ ॥ और पान करवे योग्य जो जल, मही, दूध, ईख—रस, आदि वस्तुन का प्रमाण करना। जो एती वस्तु पान योग्य राखी, सो अगार है। सो खाऊंगा। बाकी त्यागीं। ऐसा प्रमाण करना, सो पान प्रमाण है ॥ ३ ॥ और एती सुगंधी अगर, चंदन, अगरजा, तेल, फुलेल, इतरादि इनका प्रमाण करना। जो एती खुशबोय राखी, बाकी तजी। तिनकी प्रतिज्ञा करनी, सो लेप नियम है॥ ४ ॥ और अनेक जाति के

फूलन में तैं, फूलन की संख्या राखनी। जो आज ऐते फूल राखे, सो सूंघना। ढांकने, पहरने इत्यादिक का प्रमाण करना, सो फूल नियम है ॥ ५ ॥ और जो आज ऐते ताम्बूल राखे। सो खावना, सो ताम्बूल नियम है ॥ ६ ॥ और आज ऐती राग सुननी। षट् राग, छत्तीस रागनी, अरु तिनकी अनेक भार्ज्या हैं, तिनमें तैं प्रमाण करै। सो राग सुनै, बाकी नाहीं सुनै। सो राग नियम है ॥७॥ और अनेक जाति के नृत्य हैं। पातरा नृत्य, वेश्या-नृत्य, देवांगना नृत्य, घर-स्त्रीन का नृत्य, भाण्ड नृत्य, भवैया नृत्य, नर कों नारी बनाय नृत्य, नारी नर-रूप धर नृत्य करै, इत्यादिक अनेक हैं। तिनमें तैं प्रमाण करना। जो येते नृत्य आज देखने, बाकी का त्याग है। सो नृत्य नियम है ॥ ८ ॥ और पर-स्त्री का सर्वथा त्याग तो पहिले ही था, अरु स्व-स्त्री में संतोष सहित प्रमाण करना। जो आज एती बार कुशील-सेवन का प्रमाण है। बाकी का त्याग है। ऐसा प्रमाण, सो कुशील नियम है ॥ ९ ॥ आज एती बार स्नान करूंगा, बाकी तज्या। सो स्नान नियम है ॥ १० ॥ और आज ऐते आभूषण राखे, सो पहरने, बाकी का त्याग। ऐसा प्रमाण करना, सो आभूषण नियम है ॥ ११ ॥ और ऐते वस्त्र राखे। एते सूत के, एते रेशमी, एते रोमी। इत्यादिक वस्त्र का प्रमाण करना, सो वस्त्र नियम है ॥ १२ ॥ और हाथी, रथ, घोड़ा, ऊँट, बैल, रोज, महिष, अंबाड़ी, मियाना, पालकी, नालकी, तखतरवां, गाड़ी इत्यादिक अनेक असवारी के भेद हैं। तिन में ते ऐते राखीं, बाकी तजीं। ऐसे अनेक पुण्य-प्रमाण में भी

संतोष करि, असवारी की संख्या राखना। सो बाहन नियम है ॥ १३ ॥ और सोवने का स्थान, महल, पलंग, बिछौना, तकिया, पिछौरा, रजाई, इत्यादिक का प्रमाण करना। सो शैय्या नियम है ॥ १४ ॥ बहुरि एती जायगा बैठना, एती जगह जाना। ऐसा प्रमाण करना, सो आसन प्रमाण है ॥ १५ ॥ आज एती सचित्त वस्तु खावना, बाकी का त्याग। सो सचित्त नियम है ॥ १६ ॥ और आज एती वस्तु राखी सो लेना, बाकी का त्याग है। ऐसी प्रतिज्ञा करनी, सो वस्तु नियम है ॥ १७ ॥ ऐसे ये सत्रह नियम कहे। सो धर्मात्मा अव्रती श्रावक पर्यंत कूं करना योग्य है ॥ इनका प्रमाण होते, इस जगत तैं उदासी, धर्मात्मा श्रावक का चित्त, विषय-भोगन तैं विरक्त रहे है। तातें प्रमाद नहीं बधने पावै। इनके विचार तैं, स्यात-स्यात (घड़ी-घड़ी) में धर्म की यादगारी रहै है। अनर्थ-दण्ड पाप छूटै है। सो जे धर्मात्मा ब्रह्मचर्य व्रत का धारी इन कूं विचारैं, यादि करै, सो क्रिया-ब्रह्म है ॥ इति सत्रह नियम ॥ आगे क्रिया-ब्रह्म धर्मात्मा श्रावक, ताके इक्कीस गुण कहिये है। तहां प्रथम नाम-प्रथम लज्जावान् होय। अगर निर्लज्ज होय तो देव, गुरु, धर्म की मर्यादा लोप देय। कुल-धर्म तजि, कुधर्म का सेवन करे। बड़े गुरुजन की अविनय रूप प्रवृत्ति करै। माता-पिता कूं खेदकारी होय। एते दोष भये धर्म का अभाव होय। तातें धर्म का स्वभाव लज्जा है। तातें धर्मी, लज्जा गुण का धारी है ॥ १ ॥ और अदया, सर्व पाप का बीज है। तातें दयावंत होय, निर्दयी नहीं होय ॥ २ ॥ और तीव्र कषायी होय, तौ लोक में निंदा

पावै। धर्म-कल्पवृक्ष विनशि जाय। तातें शांत स्वभावी होय, क्रोधादि कषाय जाके नहीं होय ॥ ३ ॥ और केवली सर्वज्ञ-भाषित धर्म का श्रद्धान सहित, जिनधर्म का उपदेशक होय। स्वेच्छाचारी, मिथ्या-धर्म का उपदेशक नहीं होय ॥ ४ ॥ और पर-दोषन का ढांकनहारा होय। अपने औगुण का प्रगट करनहारा होय ॥ ५ ॥ और परोपकारी होय। पर-द्वेषी नहीं होय ॥ ६ ॥ और सौम्य-मूर्ति होय। जाके देखे प्रीति उपजै। भयानीक आकार नहीं होय ॥ ७ ॥ और गुण-ग्राही होय। औगुण-ग्राही नहीं होय ॥ ८ ॥ मार्दव धर्म का धारी, यथायोग्य विनय कूं लिये होय ॥ ९ ॥ और सर्व जीवन कूं, आप समान मानै। सर्व तैं मैत्री-भाव लिये होय। द्वेषभावरूप काहू तैं नहीं होय ॥ १० ॥ न्यायपक्ष का धारी होय। अन्याय पक्ष का पोखता नहीं होय ॥ ११ ॥ मिष्ट-मधुर स्वर का भाषणहारा होय। कठोर वचनी नहीं होय ॥ १२ ॥ गंभीर स्वभाव सहित, दीर्घ विचारी होय। बालकवत् सामान्य विचारी नहीं होय ॥ १३ ॥ विशेष-ज्ञानी होय। कोई कुवादीन की खोटी नय-युक्ति तैं, सत्यधर्म तैं नहीं डिगै। आप अनेक सद्युक्ति, सद्दृष्टान्त, सच्चे शास्त्र-न्याय तैं बताय; कुवादीन का खण्डनहारा, भला ज्ञानी होय ॥ १४ ॥ सर्व कौं सुखी देख, सुख पावनहारा। सज्जन स्वभावी होय। दुर्जन-अदेखा नहीं होय ॥ १५ ॥ दया धर्म-अंग का धारी, दान-पूजादि गुण सहित, धर्मात्मा होय। पापी नहीं होय ॥ १६ ॥ भली बुद्धि का धारी होय। कुबुद्धि धारी नहीं होय ॥ १७ ॥ योग्यायोग्य का जाननहारा होय,

मूर्ख नहीं होय ॥ १८ ॥ दीनता, उद्धत्ता रहित, मध्यम-स्वभावी होय ॥ १६ ॥ सहज ही विनयवान् होय, अविनयी नहीं होय ॥ २० ॥ पापारंभ क्रिया तैं रहित, शुभाचारी होय ॥२१॥ ऐसे कहे गुण सहित होय, सो क्रिया-ब्रह्म जानना। इति इक्कीस क्रिया-ब्रह्म के गुण ॥ आगे क्रिया-ब्रह्म के भेद, पर-मत में भी कहे हैं, सो कहिये हैं। जो ये गुण होंय, सो क्रिया-ब्रह्म है। ताकी क्रिया कहैं हैं। सो ही कहिये है—"उक्तंच मार्कण्डेय जी कृत, सुमति-शास्त्र"—जे उत्तम ब्राह्मण होंय, सो एती क्रिया करैं। सो बताईये है। जहां अनछान्या पानी पीवै, तो मदिरा समान दोष होय। अनगाले जल में स्नान करै, तो काय अशुचि होय। अनगाले जल में रसोई करै, तो सात भव जलचर-जीव होय। तातैं उत्तम द्विज कों अन-गाल्ये जल तैं क्रिया करना मना हैं। ऐसा जानना। आगे व्यास वचन—महाभारत के सातवें खण्ड में कह्या है। ब्राह्मण कूं शीलव्रत ही शृङ्गार है। शील बिना पूजा, जप, तप, सर्व नष्टकारी हैं। फलदाता नाहीं। तातैं उत्तम गुण का लोभी, शील सहित रहै है। और ब्राह्मण, दया पाल करि गमन करै है। आप समान सर्व जीवन कों जानि, तिन की रक्षा करवे निमित्त, नीची दृष्टि किये चलै। जो कीड़ी, कुंथुवादि अपनी दृष्टी में आवैं, तो बचावता, धरती देखता, या बिधि सूं गमन करै। बिना देखै, पांव नहीं धरै। और भोगी—जीवन के सोवने का स्थान जो पलंग, तापै नहीं सोवै। भूमि पै सोवै। और जातैं रागभाव बधै, काम बधै, ऐसा वस्त्र नहीं राखै। राग रहित, वैराग्य कों कारण, ऐसा वस्त्र पहिरै। और शरीर

कूं चंदन, अगरजा, तैल, फुलेल, इतरादिक सुगंधित वस्तु नहीं लगावै । ताम्बूल–पान नहीं खाय । और संसार के मोही, प्रमादी, कुशीलवान् जीव, तिनकी सी नाईं निशंक होय, निद्रा नहीं करैं । कामी पुरुष की नाईं, विषयन में मोहित नहीं होय । और भोगाभिलाषी कामी पुरुष, तिनके मुख सूं स्त्रीन की कथा, राग-भाव सहित नहीं सुनैं । अपने मुख तैं काम कथा, स्त्रीन के गुण, रूप, भोग की कथा, नहीं कहै । और क्रोध, मान, माया, लोभ तजिवे का उपदेश, औरन कूं देय। अपने तन पै शृङ्गार नहीं करै । हस्ती, घोटक, पालकी, रथादि वाहन पै नहीं चढ़ै । दया के हेतु, पांव–प्यादा धरती शोधता चलै। दंत नहीं धोवै। इत्यादिक अपना ब्रह्मपद जो ब्रह्मचर्य, ताकी रक्षा करता, भली-क्रिया करै। प्रभात व शाम दो वखत, संध्या नहीं चूकै। इन क्रियान सहित होय। सो ब्रह्म, सत्पुरुष करि सुश्रूषा योग्य होय है। ये लक्षण क्रिया-ब्रह्म के कहे। और इन क्रिया रहित होय, सो क्रिया-ब्रह्म नाहीं। जो कुशील भाव, क्रोध, मान, माया, लोभ कूं लिये अहंकार–ममकार सहित होय। सो शीलवान करि सुश्रूषा नहीं पावै। दोष सहित है। ये गुण जामें नहीं होंय, सो कुल-ब्राह्मण है, क्रिया-ब्रह्म नाहीं। ऐसा जानना। इति व्यास वचन॥ आगे मार्कण्डेय कृत सुमति शास्त्र, तामैं ऐसा कह्या है। कि जो दिन के प्रथम पहर में भोजन करै, सो देव-भोजन है। दूसरे पहर में भोजन करै, सो ऋषीश्वर का भोजन है। और तीसरे पहर में भोजन करै, सो पितृन का भोजन करै। और चौथे पहर में भोजन करै, सो दैत्यन का भोजन करै। तातें दिन का

अष्टम भाग, च्यारि घड़ी बाकी रहै। जब सूर्य की कांति मंद होय। तब तैं उत्तम आचारी, ब्रह्मचर्य का धारी, भोजन नहीं करै। अरु कदाचित् करै, तो अपने ब्रह्मचर्य पद कूं दूषित करै। ऐसा जानना। आगे शिव-पुराण मैं कह्या है। जो उत्तम ब्रह्मव्रती एती वस्तु नहीं खाय। बैंगन, गाजर, मूली, आदी, सूरण, मधु, मद्य, मांस, इत्यादि अभक्ष्य वस्तु नहीं खावै। ब्रह्मव्रत धारी उत्तम जीव नहीं खाय। और कदाचित् लोभ धारिके खाय, तौ जो बारह वर्ष दान-पूजा–जप–तप किये, तिनका फल मिटि जाय। तातें ब्रह्म भक्त, येती वस्तु नहीं खांय। आगे और पुराणन में भी कह्या है। जो कृष्ण महाराज, युधिष्ठिर जी सूं कहैं हैं। भो युधिष्ठिर ! मेरा भक्त होय के ब्रह्मव्रती कंद–मूल खाय। तो दया, पूजा, दान, इन्द्रिय–मन का जीतना, ये सर्व क्रिया विफल होय। तातें मेरे भक्त कौं, कन्द–मूल तजना योग्य है। और काश्यप मुनि के वचन हैं। जो ब्रह्मभक्त पूजा करै, तौ तब सुफल है। जब कंद–मूल नहीं खाय। याके खाये से सर्व क्रिया नष्ट होय। और शिवपुराण में कह्या है। जो दया समान दूसरा तीर्थ नाहीं। दया भाव है, सो ही एक भला तीर्थ है। दया बिना तीर्थफल नाहीं। ऐसे कहे जो अनेक धर्म अङ्ग, सो इनकूं पालै। वही उत्तम धर्म का धारी क्रियाब्रह्म है। इति क्रिया-ब्रह्म। आगे कुलब्रह्म के दशभेद अन्यमत संबंधी कहे हैं। सो ही बताईये है—

काव्य——सुरो मुनीश्वरो विप्रो, वैश्यः क्षत्रिय शूद्रको।

विजातिपशुमातंग,–म्लेच्छाश्च दश जातयः॥

अर्थ—देव जाति, मुनि जाति, विप्र जाति, वैश्य जाति, क्षत्रिय जाति, शूद्र जाति, विजाति, पशु जाति, म्लेच्छ जाति, मातंग जाति, ये दश भेद व्यास भाषित, मत्स्य पुराण अनुसार हैं। इनका अर्थ—जहां तत्त्वज्ञान विषैं प्रवीण होय। अपने आत्म कल्याण का अर्थी होय। निर्हिंसक क्रिया का करनहारा होय। बहु आरंभ—परिग्रह का त्यागी, संतोषी होय। त्रिकाल संध्या की क्रिया में सावधान होय। आपा—पर के ज्ञान का धारी होय। आत्म—तत्त्ववेत्ता होय। इत्यादिक गुण सहित होय, सो देव जाति का ब्राह्मण है ॥१॥ और जो उत्तम, तीन कुल का भोजन करनहारा होय। नगर का वास तजि, वन का निवासी होय। तीनकाल आत्मध्यान में प्रवर्तनहारा होय। इत्यादिक गुणसहित होय. सो ऋषीश्वर जाति का ब्राह्मण है ॥ २ ॥ और अनेक प्राशुक सुगंध द्रव्य मिलाय, अग्नि में खेवैं—होमै। अग्नि कबहूं बुझने नहीं देय। होम-क्रिया में सावधान होय। दया रूप धर्म जानता होय। देव-गुरु पूजा में विनयवान् होय। अपने भोजन में तें अतिथि कौं देय, ऐसे अतिथि व्रत का धारी होय। गृहस्थ के षट् कर्म—क्रिया में सावधान होय। ऐसे गुणसहित जो होय, सो विप्र जाति का ब्राह्मण है ॥ ३॥ और जे हस्ती, घोटक, रथादिक की असवारी विषैं प्रवीण होय। युद्ध करवैं की जाकैं चाह होय। युद्ध की अनेक-कला तीर, गोली, खड्ग, पटा, सेल्ह, धूप, बांकि, खंजर, छुरी, कटारी इत्यादिक शस्त्र-कला में सावधान होय। लड़ने में मरने कूं, नहीं डरता होय। मन का शूरवीर होय। बड़े आरंभ, राज्य-संपदा का भोगी होय। जो इन गुण सहित होय। सो क्षत्रिय जाति का ब्राह्मण

है ॥ ४ ॥ और ब्राह्मण के कुल में तो उपज्या होय, अरु खेती करता होय । गाय, महिष, वृषभादि पशून के पालवे की कला में प्रवीण होय । आचार रहित खान—पान का करन-हारा होय । इन लक्षण महित होय, सो शूद्र जाति का ब्राह्मण है ॥ ५ ॥ और ब्राह्मण के कुल में उपज्या होय, अरु इन वाणिज्य—व्यापार की चतुराई जानता होय । वस्त्र परीक्षा, सोना—चांदी की परीक्षा जानता होय। रुपया, मुहुर, रत्न की परीक्षा जानता होय । अन्ना-दिक लेन—देन में सावधान होय । अनेक लेखे करवे की जो कला, व्याज फैलाना आदि ज्ञान सहित आजीविका करता होय। सो वैश्य जाति का ब्राह्मण है ॥ ६ ॥ और ब्राह्मण-कुल में तो अवतार लिया होय, अरु पराई निंदा करनहारा होय। पर-दोष का देखनहारा होय। अनेक पर-स्त्री का भोगनहारा, पशु समान कुशीलवान् होय। पंचेन्द्रिय-विषय में लोलुपी होय। अपना यश, अपने मुख तैं करता होय। अपनी संतोष-वृत्ति कूं तज, द्रव्य के लोभ कूं अनेक स्वांग धरि, छल—बल करि, धन पैदा करता होय । अनेक गावना, बजावना, नृत्य करनादि कलाकर, आजीविका करता होय । अनेक यंत्र, मंत्र, तंत्रादि के चमत्कार लोगन कूं दिखाय, अपने कुटुम्ब का पालन करता होय । इन लक्षण सहित होय । ताकूं विजाति ब्राह्मण कहिये ॥ ७ ॥ और ब्राह्मण के कुल में तो अवतार लिया होय, अरु खावे योग्य वस्तु अरु ऊंच कुली मनुष्य के नहीं खावे योग्य वस्तु विषैं, विचार रहित होय । क्रोध-वचन, गाली वचन, श्राप वचन, कुफर जो भण्ड वचन, इत्यादिक दुर्वचन; पर पीड़ाकारी,

पापमई, बोलने का स्वभाव होय। भली-क्रिया रहित होय। महा प्रमादी, बहुत सोवने का स्वभाव होय। इत्यादिक लक्षण जामें हौंय, सो पशु जाति का ब्राह्मण है ॥८॥ और ब्राह्मण कुल में तो अवतार धर्या होय; अरु नदी, तालाब, बावड़ीन की क्रीड़ा-तैरना—कूदना, ताकूं भला लागता होय। मद्य—मांस भक्षण करता होय। बहुत हिंसा करनहारा होय। दयाधर्म-शुभाचार रहित होय। इत्यादिक लक्षण जामें हौंय। सो म्लेच्छ जाति का ब्राह्मण है ॥ ९ ॥ और महा हिंसा का करनहारा होय। मनुष्य—पशू के मारवे कूं निर्दयी होय। भली—भली द्विज योग्य क्रिया, तिनकरि रहित होय। हिताहित विचार करि, रहित होय। पूजा, दान, जप, तप, आदि धर्म-क्रिया करि, शून्य होय। पाप परणति सहित होय। इन आदि लक्षण सहित, सो मातंग जाति का ब्राह्मण है ॥ १० ॥ ऐसे ब्राह्मण के दश भेद कहे। सो आचार के योग तैं कहे। परन्तु ब्राह्मण के कुल में उपज्या है, सो जिस कुल में उपज्या होय, सो ही नाम कहना। सो क्रिया चाहे जैसी करो। ब्राह्मण में उपज्या, ताकौं ब्राह्मण कहना। सो कुल-ब्रह्म है। या प्रकार स्वभाव-ब्रह्म, क्रिया-ब्रह्म, त्याग-ब्रह्म, कुल-ब्रह्म ये च्यारि ब्रह्म के भेद कहे। सो सातवीं प्रतिमा धारी, च्यारि कुलका उपज्या धर्मात्मा श्रावक, सर्व स्त्री का त्यागी, सौम्य मूर्ति, ये सातवीं प्रतिमा धारै। सो ये त्याग-ब्रह्म जानना॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावक भेद रूप एकादश प्रतिमा विषैं, सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा के भेद, शील महिमा, भोजन के सात अंतराय, सत्रह नियम, श्रावक के इक्कीस गुण, अन्य-मत संबंधी केतीक, सीख सहित

क्रिया-ब्रह्म भेद, दश-भेद कुलब्रह्म, कथन वर्णनो नाम, सैतीसवां पर्व संपूर्णम् ॥ ३७ ॥

आगे अष्टमी प्रतिमा का कथन लिखिये है। तहां अष्टमी प्रतिमा, आरंभ-त्याग है। सो कोई भव्य, जब अष्टमी प्रतिमा धारै। तब पापारंभ तैं उदास होय, वह मोक्षाभिलाषी ऐसा विचारै। जो इस संसार में, गृहारंभ के पाप तैं, मोह के वशीभूत भया यह आत्मा, नरक-दुख में अपनी आत्मा डुबोवै है। और जिनतैं मोह बुद्धि करि, पाप-भार शिर पै धरै है। सो पाप फल आये, इन मोहीन का नाम भी नहीं दीखैगा। द्रव्य खाय-खाय, सर्व अपने-अपने मारग लागैंगे। अरु तिन पापन का फल, मोकौं ही भोगना पड़ेगा। जैसे एक चोर के घर में आप, माता, पिता, स्त्री, पुत्र ये पांच आदमी थे। ये पांचों कौं ही पाप-फल तैं भूखों मरते, अन्न विना तीन दिन भये। तब पुत्र ने रुदिन करि कह्या। हे पिता ! अब हम सब घर-जन, अन्न विना मरैं हैं। भोजन विना तीन दिवस भये, सो दुखी हैं। तातैं अन्न लाय देव। तब चोर ने कही। हे पुत्र ! बहुत फिरौं हों, परन्तु पाप-उदय तैं, कछू मिलता नाहीं। अब तुम धीरज धरो, मैं और जाऊं हूँ। सो ये चोर, कुटुम्ब के मोह तैं चोरी कौं गया। एक घर में खीर होय थी। सो इस चोर ने अपनी चतुरता तैं, खीर का बासन चुरा लिया। सो ल्याय, घर में आया। कुटुम्ब के आगे धरी। सो पांच थालियों में, पांचों ने परोसी। तब सब ने कही, भोजन तो भला ल्याया। परन्तु मिष्टान्न होता, तौ भला था। तब चोर-कला-वारै ने कही। तुमने कहा है, तौ मैं मिष्टान्न भी ल्याऊं

हूँ। तब यह चोर तौ मिष्टान्न कौं गया। सो बड़ी बार (देर) लागी। सो इनको थिरता नहीं रही। सो अपनी-अपनी थाली की खीर, भूख के मारे खाय गये। बाकी जो चोर गया था, सो ताका थाल ढांक रख्या। सो एते में एक मिजवान आया। सो चोरी वारे का खीर का थाल, मिजवान के आगे धर्या। सो मिजवान ने खाया। तब वह चोर किसी का मिष्टान्न चुरा के आया, सो देखे तो खीर नहीं। घर वारों कों पूछी, तब उन्होंने कही मिजवान आया, ताने खाई। ये चोर तीन दिन का भूखा, दुखी है। एते में खीर अरु मिष्टान्न की खोज करते, कोतवाल चोर कूँ हेरते आये। सो कोतवाल ने, इस चोर कूं पकड़्या। सो घर-जन अरु मिजवान खीर खावनहारे, सर्व भाग गये। या चोर की मुसकैं बँधीं। सो नाना प्रकार की मार चोर ने भोगी, महा दुखी भया। तैसे ही कुटुम्ब के निमित्त पापारंभ करौं हौं। सो चोर की नांईं मोकूं दुख भोगना पड़ेगा। ये कुटुम्ब, दुख के आये सर्व जाते रहेंगे। ऐसे ये शिव-सुख का अभिलाषी, संसार-भोगन तैं उदास, ऐसा विचारै। कुटुम्ब तैं अरु गृहारंभ तैं ममत्व छांड़ि, पीछे घर में अपने पुत्रादिक कूं विवेकी देख, जो यह घर-भार चलायवे कूं समर्थ, ताहि बुलाय कैं, प्रथम तो ताकौं हित-मित हितोपदेश देय, संतोषित करै। पीछे अपने चित्त का रहस्य बताय, ताकौं कहै। हे भव्य! अबलौं तो घर-भार हमने चलाया। अब तोकौं सपूत, सज्जन-अंगी, विवेकी, विनयवान् देख, बड़ा हर्ष भया। हमारी गृह-पालन की चिन्ता गई। सो हे धर्मी! अब तुम इस कुटुम्ब की

रक्षा करौ। न्याय पूर्वक धनोपार्जन करौ। धर्म सेवन कर, पर—भव सुधारो। ऐसा कहि, पीछे सर्व जाति, कुटुम्ब, पंचन कूं बुलवाय, विनय सहित हित—मित वचन कहै। कि हे पंच हो! अब तांईं हमने, कुटुम्ब के संग तैं आरंभ किया। अब हमारा मनोरथ, परभव सुख के निमित्त, आरंभ रहित धर्म-सेवन का है। तुम सर्व भाईयन के सहाय तैं, यह भव सुधर्या। तुम्हारा दिया धन—यश पाया। अब इस गृह का भार, इस पुत्र कौं सौंप्या है। सो अब तुम, याकी प्रतिपालना करो। जैसे सर्व भाई, मोतैं धर्म स्नेह करि, मेरी प्रतिपालना करी। तैसे ही याकी करौ। जैसे प्रयोजन पाय, मोसे आज्ञा करौ थे। तैसे इस पर करोगे। जैसे मो-भूले कूं क्षमा भाव करि शिक्षा देय थे, तैसे याकूं शिक्षा देय, प्रवीण करोगे। तातैं अब मैं तुम सर्व भाईयन तैं, ऐसी विन्ती करौं हौं। जो अब तांईं आरंभ—प्रारंभ विषैं, मोपै कृपा करि, मोकौं यादि करकैं, मेरा नाम लेय, नेवता—बुलावा भेजो थे। सो अब पंचायती व विवाहादिक के आरंभ विषैं, याकौं याद करि, याके नाम न्योता—बुलावा भेजोगे। अब मैं गृह आरम्भ तैं, तुम सर्व भाईयन की साक्षी तैं न्यारा हौं। इत्यादिक सर्व पंचन तैं, शुभ-वचन कहै। तब सर्व पंच, इन की धीरता देख बहुत प्रसंशा कर, इनका कह्या करैं। तिस ही दिन तैं आप, पापारम्भ का त्यागी भया। पापारम्भ तैं न्यारा होय, घर विषैं तिष्ठता धर्म-साधन करै। घर ही में स्तुति करना, पूजा, दान, ध्यान, संयम करता; काल गुमावै। भोजन समय घर-जन बुलावैं, तब भोजन कौं जाय। अरु अपने पदस्थ-प्रमाण, परि-

ग्रह अल्प राखै। सो आरम्भ त्यागी, आठवीं प्रतिमा का धारी है। इति आठवीं प्रतिमा ॥ ८ ॥ आगे नववीं प्रतिमा का स्वरूप कहिये हैं। अब नववीं परिग्रह-त्याग प्रतिमा विषैं, सर्व परिग्रह-आरम्भ के ममत्व का त्यागी होय। आगे अष्टम प्रतिमा में, अल्प परिग्रह का त्यागी नहीं था। सामान्य परिग्रह था। सो अब सर्व परिग्रह त्याग कर, एकान्त स्थान विषैं, धर्मध्यान सेवन करै। प्रथम दिन कोई नेवता दे जाय, ताके घर भोजन करै। अपना घर तथा पराया घर, एकसा देखे। पाद्य पच्चेवरी राखै, न्यौता जीमें। सो महा सौम्य मूर्ति धारी, दयाधर्म पालक है। ऐसे गुण, नववीं प्रतिमा धारक के जानना। इति नववीं परिग्रह त्याग प्रतिमा ॥ ९ ॥ आगे दशवीं प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। अब अनुमति जो उपदेश, सो दशवीं प्रतिमा का धारी, पापारम्भ के उपदेश का त्यागी है। सो भोजन-मात्र भी कह के नहीं करै। यह न्यौता नहीं मानै। भोजन समय कोई बुलाय ले जाय, तो भोजन करै। न्यौता नहीं जाय। बिना न्यौता जीमैं, सो अनुमति त्यागी है। इति दशवीं प्रतिमा ॥१०॥ आगे ग्यारहवीं प्रतिमा के धारी श्रावक, तिनके दोय भेद हैं। एक छुल्लक, दूसरा ऐलक। तहां कटि-बंधन अरु लँगोट-मात्र परिग्रह राखनेहारा, बनो-विहारी, उदंड (अनुद्दिष्ट) आहार करै। अरु धरती बिछा-यवे कूं, आसमान ओढ़वे कूं, महा दयालु, मुनि समान चित्त का धारी; नग्न बिना, इकीस परीषह का जीतनहारा, निर्मल आचारी, कमण्डल पीछी का राखनहारा, यती समान व्रत का धारी, मुनि पद का अभिलाषी, इस धर्मात्मा कूं कोई सूक्ष्म जाति का अंश लिये, शङ्का-

रूप परणति है। सूक्ष्म अंश काम विकार के मन, वचन, काय में, कोई जाति के भंगा लिये हैं। जो केवली गम्य हैं। आप कौं भासै हैं, तातैं ये नगन-मुद्रा नहीं धारै। ये सूक्ष्म काम विकार गये, यती पद लेवे के योग्य होयगा। ऐसा श्रावक, सो ऐलक श्रावक है। सो यह ऐलक श्रावक का पद, तीन कुल के उपजे भव्यात्मा कूं होय है। शूद्र कौं नाहीं होय है ॥१॥ और छुल्लक पद है सो नीच कुल, तथा ऊंच कुल दोऊ जाति कूं होय है। सो छुल्लक के पास, कछू कपड़ा-मात्र परिग्रह होय। एक दुपट्टा, एक शिर पै फैंटा राखै। सो नहीं तौ बहुत बारीक-मुलायम, तातैं सराग भाव होंय। अरु नहीं बहुत दृढ़, तिन में जीव पड़ैं। मलीन भये रंक सा दीखै, ऐसे भी नाहीं। मध्यम भाव धरैं, राग रहित, ऐसे वस्त्र राखै। सो जे शूद्र जाति के छुल्लक होंय। सो शूद्र के दोय भेद हैं। एक स्पर्श शूद्र, दूसरा अस्पर्श-शूद्र। तहां धोबी, नाई, बढ़ई, दर्जी, इत्यादिक जिनके छूये लोक में ग्लानि नाहीं, सो स्पर्श शूद्र हैं ॥ १ ॥ और जहां भंगी, चाण्डाल, चमार, कोली इन आदिक जिन कूं छूये लौकिक में ग्लानि होय, स्नान किये शुद्ध होंय। सो अस्पर्श शूद्र हैं॥२॥ सो इन दोऊन में तैं, स्पर्श-शूद्र कौं तो छुल्लक व्रत होय, और अस्पर्श शूद्र कूं व्रत नाहीं होय। सम्यग्दर्शनादिक गुण, होय हैं। सो तहां तीन ऊंच कुल का छुल्लक श्रावक तौ भोजन कौं जाय, सो गृहस्थ के चौके में ही भोजन करै। और शूद्र जाति का छुल्लक है, सो गृहस्थ के भोजन-स्थान में नहीं जाय। क्योंकि याका कुल, हीन है। तातैं ये धर्मात्मा, संसार से उदासीन, व्रत का धारी,

धर्म-मर्यादा का जाननहारा, पुण्य-फल का लोभी, परभव के सुधारवे की है अभिलाषा जाकैं, परम्पराय मोक्ष का इच्छुक, जन्म-मरण तैं भयभीत भया है चित्त जाका, ऐसा सौम्य स्वभावी, धर्म मूर्ति, मार्दव-धर्म का साधनेहारा, यह नीच कुली श्रावक; अपना नीच कुल प्रगट करवे कूं, एक लोहे का पात्र भोजन करवे कूं, अपने पास राखै। जब कोई धर्मात्मा श्रावक, इस छुल्लक कौं भोजन निमित्त अपने घर ल्यावै। तब यह शूद्र कुली धर्मात्मा, याके संग तहां तांई जाय, जहां तांई काहू का अटक नहीं होय। पीछे चौक में खड़ा होय रहै। तब श्रावक इनकूं उत्तम जानि, आगे बुलावै। तब यह धर्मी चौक में ही तिष्ठै, अरु लोह का पात्र दिखावै। तब लोह के पात्र कूं देख कैं दाता जानै, जो यह शूद्र जाति है। तातैं यह धर्मात्मा, ऊंचे नहीं आया। तब दाता श्रावक, इस छुल्लक कूं, भले आदर तैं, विनय सहित, अनुमोदना करता, हर्ष सहित भोजन देय। सो उस बाखर (घर)में च्यार, दो, एक घर श्रावकन के होंय, तौ थोड़ा-थोड़ा सर्व घर तैं भोजन लेय। नाहीं होंय, तौ दोय घर का, एक घर का भोजन करै। अपना कुल छिपावै नाहीं। यह उत्तम व्रत का धारी श्रावक है। ऐसे ऊंच कुल तथा स्पर्श नीच कुल दोय ही कुल, में यह श्रावक पद होय है ॥ २ ॥ और ऐलक पद ऊंच कुली कूं ही होय है। यह उत्कृष्ट श्रावक पद है। ऐसे सातवीं प्रतिमा तैं लगाय, ग्यारहवीं पर्यन्त भेद कहे। सो ये त्याग-ब्रह्म के भेद जानना। जैसा-जैसा त्याग, जिस-जिस स्थान पै भया, सो-सो नाम पाया। सो श्रावक के उत्कृष्ट त्याग की हद, ऐलक लँगोट-

मात्र परिग्रह धारी की है। याके आगे श्रावक-भेद नाहीं। इस के पीछे, मुनि का ही पद है। तातैं सातवीं प्रतिमा तैं लगाय, ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यन्त श्रावक कौं, ब्रह्मचर्य पदवी है। पीछे लँगोटी-परिग्रह परिहार भये, यती का पद होय है॥ तातैं भरत-क्षेत्र का इन्द्र, भरत-नाथ; आदिनाथ का बड़ा पुत्र, भरत चक्री; महा धर्मात्मा, ताने परम्पराय धर्म-मर्याद चलायवे कूं स्थापे ऐसे ब्रह्म भेद, सो कुल-ब्रह्म कहिये। या अवसर्पिणीकाल के आदि, नव कोड़ा-कोड़ी सागर काल पर्यन्त तौ भोग-भूमि वर्ती। तहां वर्ण भेद-नाहीं, सर्व एक से। पीछे चौदहवें कुलकर नाभिराजा भए। तिनके कुल-मण्डन, श्री आदिनाथ पुत्र भये। सो इनने सर्व कर्म-भूमि का उपदेश दिया। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तीन वर्ण स्थाप, संसारी-मार्ग बताया। अरु इनके पुत्र भरत ने, धर्म की प्रवृत्ति चलावे कूं, ब्राह्मण-कुल थाप्या। सो च्यारि वर्ण जानना। अब काल-दोष तैं, सर्व कुलन का आचार, हीन भया। तातैं ब्रह्म-क्रिया, दया-विना भई। जीव अनेक क्रिया रूप भये। परन्तु कुल-भेद नहीं गया। अनेक प्रकार आचार होय, तौ भी कुल-ब्रह्म कह्या। सो जग में प्रगट ही है।१। और कुल तौ कैसा ही होय, अरु क्रिया-आचार जाका दया सहित, उत्तम शीलादिक गुण सहित होय। सो क्रिया-ब्रह्म कहिये।२। और स्त्री आदि परिग्रह का त्यागी होय, सो त्याग-ब्रह्म कहिये।३। और चैतन्य गुण सहित, अमूर्ति, जीव पदार्थ, सो स्वभाव-ब्रह्म है।४। ये च्यारि भेद, ब्रह्म के कहे। सो विवेकी उत्तम पुरुषन कूं, सब का रहस्य धारण करना योग्य है। इति श्री सुदृष्टि तरं-

गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अष्टमी प्रतिमा तैं लगाय, ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यन्त, कथन वर्णनो नाम, अड़तीसवाँ पर्व सम्पूर्णम् ॥ ३८ ॥

ऐसे यह श्रावक-धर्म कह्या। और मुनि धर्म के अष्टाविंशति (२८) मूल गुण हैं। ताका स्वरूप ऊपर कह आये। सो यह मुनि-श्रावक का धर्म, परम्पराय मोक्ष-फल प्रगट करै है। याका तुरन्त फल तौ देव–लोक की विभूति सहित, नाना-प्रकार इन्द्रिय-जनित भोग हैं। जाकों जेता काल संसार में रहना होय, सो जीव श्रावक-धर्म तैं मनुष्य-देवन के सुख पावै। पीछे भव-स्थिति पूर्ण भये, मुनि-धर्म का साधन कर, मोक्षपद पावै है। तातें जो कोई भव्य कूं, इन्द्रिय-सुख का लोभ होय। सो इस श्रावक-धर्म का साधन करौ। और जे भव्य, निकट संसारी, अतीन्द्रिय सुख चाहैं। सो मुनि-धर्म आदरौ। ऐसा यह मुनि-श्रावक का धर्म, भव्य-जीवन कूं सदा-काल, मंगलकारी होऊ। यह सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ है। सो या विषैं प्रथम तो गेय-हेय-उपादेय का कथन है। सो विवेकी अपना हित जानि, हेय-गेय-उपादेय करौ। और केताक कथन या विषैं, विवेक की वृद्धि के निमित्त उपदेश रूप है। ताके रहस्य कौं जानि, धर्मात्मा अपना कल्याण करौ। अब यहां इस ग्रन्थ का करता, जैन-शास्त्र के अर्थ कूं अगाधि जानि, अपनी बुद्धि सामान्यता रूप, जानता भया। जो यह जिन-वचन का अर्थ तौ, अपार है। याके सम्पूर्ण व्याख्यान करवे कौं, गणधर-देव भी समर्थ नाहीं। तो हमसे किंचित् बुद्धि-धन के धारीन तैं, सर्व अर्थ कैसे कह्या जाय? ऐसा जानि,

इस ग्रन्थ के पूरण करवे की है अभिलाषा जाकैं। सो अन्त में मंगल होने के निमित्त, महान् पुरुषन के नाम; जिनके कुल-सुमरण होवे करि, मंगल होय है। सो ऐसे तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका पुरुषन के नाम, पुण्य के कारण हैं। तातैं यहां प्रथम चौबीस तीर्थंकर, तिनके नाम कहिये हैं—ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मनाथ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर स्वामी। ये चौबीस तीर्थंकर-जिन, अवसर्पिणी काल के तीर्थ हैं॥ आगे चौबीस-जिन के पिता के नाम—नाभिराजा, जितशत्रु, जयतार, सुवीर, मेघ, धरण, सुप्रतिष्ठित, महासेन, सुग्रीव, दृढ़रथ, विमल, वासुदेव, जयति धर्म, सिद्धसेन, भानु, विश्वसेन, सूर्य, सुन्दरसेन, कुंभ, यशोमति, विजयरथ, समुद्रविजय, अश्वसेन, और सिद्धारथ राजा। ये चौबीस, प्रजा के प्रतिपालक, महान राजेन्द्र भये। सो तीर्थंकर रूपी दिनकर (सूर्य) के उदय करवे कौं, उदयाचल पर्वत समान जानना। इति जिन पिता॥ अब जिन माता का नाम—मरुदेवी, विजयादेवी, श्रीषेणादेवी, सिद्धार्थादेवी, मंगलादेवी, सुसीमादेवी, पृथ्वीदेवी, सुलक्षणादेवी, रामादेवी, सुनन्दादेवी, विमलादेवी, जयादेवी, रामादेवी, सूर्यादेवी, सुव्रतादेवी, एलादेवी, श्रीमतीदेवी, सुमित्रादेवी, सरस्वतीदेवी, वामादेवी, विमलादेवी, शिवादेवी, वामादेवी और त्रिशलादेवी, ये चौबीस महादेवी, परम—पवित्र जगत-गुरु की माता सो

जगत की माता, परम सती, भगवान् रूपी सूर्य के जन्म देवे कूं पूरब दिशा समान, तिनके नाम भव्यन कों मंगल करो । ये माता, जगतपति भगवान् रूपी रत्न के उपजायवे कूं, रतन-खानि हैं। ये चौवीस जिन की माता के नाम की माला कही ॥ आगे चौवीस जिनकी काय की ऊंचाई कहिये हैं-पांच सौ धनुष, साढ़े चार सौ, चार सौ, साढ़े तीन सौ, तीन सौ, ढाई सौ, दोय सौ, डेढ़ सौ, एक सौ, नव्वे, अस्सी, सत्तरि, साठ, पचास, पैंतालीस, चालीस, पैंतीस, तीस, पच्चीस, बीस, पन्दह धनुष, दश धनुष, नव हाथ और सात हाथ । ये चौवीस जिन के शरीर की उंचाई अनुक्रम तें कही ॥ अब चौवीस-जिन के प्रतिबिंब पहिचानवे कों चिन्ह कहिये हैं-आदि नाथ का बैल का चिन्ह । और जिनों का अनुक्रम तें कहिये हैं-हस्ती, घोटक, कपि(बन्दर), कोक(चकवा), लाल कमल, सांथिया, चन्द्रमा, मगर, कल्प वृक्ष, गेंडा, महिष, सुकर, सेही, वज्रदंड, हिरण, बकरा, मछली, स्वर्ण कलश, कछुवा, कनक कमल, शङ्ख, सर्प और सिंह । ये चौवीस जिन के चिन्ह कहे । सो एक हजार आठ चिन्ह, सर्व शरीर-अंगोपांग में यथा-योग्य स्थान पर होय हैं । अरु ये चिन्ह जो प्रतिबिम्ब के सिंहासन में लिखिये हैं । सो भगवान् के दाहने चरण विषें जानना । जैसे आदि देव के चरण में वृषभ का चिन्ह है । तैसे ही सर्व जिन के पांवन में जानना । इति जिन-चिन्ह ॥ आगे चौवीस जिन के शरीर का वर्ण कहिये है-तहां चन्द्रप्रभु अरु पुष्पदंत ये दोय जिन, शुक्ल वर्ण भये । अरु मुनिसुव्रत स्वामी, अंजन-गिरि समान

श्याम वर्ण हैं। और नेमिनाथ जिन, मोर कंठ समान हरित तन धारी हैं। और पद्मप्रभु, रक्त-कमल समान तन धारी हैं। और बारहवें वासुपूज्य जिन, केसू के फूल समान तन धारी है। और सातवें सुपार्श्वनाथ जिन की काय, वैडूर्य मणि समान, हरित वर्ण है। और पार्श्वनाथ-जिन की काय, सजल मेघ घटा समान, श्याम वर्ण है। और बाकी षोड़स जिन के शरीर, ताये स्वर्ण समान वर्ण के हैं। ये चौबीस-जिन के तन का वर्ण कह्या॥ अब आगे ये जिन, पूर्व-भव में जो मनुष्य थे। सो वह नाम कहिये हैं। वृषभदेव पूरव-भव में वज्रनाभि चक्रवर्ती थे। और शेष-जिन के पूर्व-भव के नाम, क्रम करि कहिये हैं-विमल राजा, विमल वाहन, महाबल भूप, अतिबल, अपराजित, नंदसेन राजा, पद्म, महापद्म, पद्म गुल्म, नील गुल्म, पद्मोत्तर, पद्मासन, पद्म, दशरथ, मेघरथ, सिंह रथ, धनपति, वैश्रवण, श्रीधर्म, सिद्धारथ, सुप्रतिष्ठित, आनन्दराय और अंतिम जिन महावीर स्वामी, पूर्व-भव में नन्द राजा थे। ये सर्व राजों में, आदि देव का जीव तो चक्री था। और तेवीस महा-मण्डलेश्वर राजा थे। पीछे केतेक दिन राज्य करि, संसार तैं विरक्त भये। सो राज्य तज-तज, दीक्षा धरी। सो जिन पै दीक्षा धरी, ऐसे चौबीस-जिन के पूर्वभव के दीक्षा गुरु, तिन आचार्यन के नाम क्रमतैं कहिये है-वज्रनाभि चक्री ने, वज्रसेन आचार्य तैं दीक्षा लई। विमल राजा के गुरु अरिदमन नाम आचार्य, स्वयंप्रभु मुनि, विमल वाहन यती, श्रीमन्दिर गुरु, पिहिताश्रव यती, अरिंदय यती, युगमंधर ऋषीश्वर, सर्व जनानन्द ऋषि, उभयानंद योगी, वज्रदंत योगीश्वर, वज्रनाभि, सर्व गुप्त वीतराग,

त्रिगुप्त तपस्वी, चिंतारत्तक गुरु, विमल वाहन गुरु देव, धनरथ मुनि, संवर जती, वरधर्म ऋषि, सुनन्द गुरु, आनन्द योगी, वीत शोक आचार्य, दामर नाम मुनि और प्रोठल यती। ये चौबीस यतीश्वर, जगत पूज्य हैं। इन के पास, चौबीस जिन के जीव ने, पूर्वभव में दीक्षा धरी थी। सो ये सर्व यती, जगत् कर पूज्य हैं। इति चौबीस जिन के पूर्वभव के नाम, अरु पूर्व-भव में जिन के पास दीक्षा धारी, तिन गुरुन के नाम कहे॥ आगे मुनि होय, कौन—कौन, किस—किस स्वर्ग गये। अरु तहां तें चय, तीर्थंकर भये। तिन स्थान के नाम कहिये हैं— आदिनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थनाथ, ये च्यार-जिन तो, सर्वार्थ सिद्धि तें आये हैं। अरु अजितनाथ, अभिनंदन स्वामी, ये दोय; विजय विमान तें आए। और चन्द्रप्रभु अरु सुमतिनाथ ये दोय जिन, वैजयंत विमान तें आये। अरु नेमिनाथ अरहनाथ ये दोय जिन, जयंत विमान तें आये। अरु नमिनाथ अरु मल्लिनाथ ये दोय-जिन, अपराजित विमान तें आए। ये तो पंच अनुत्तरन के कहे। अरु पुष्पदंत, आरण नाम पन्द्रहवें स्वर्ग तें आए। अरु शीतलनाथ, अच्युत स्वर्ग तें आये। अरु श्रेयांस नाथ, अनन्त नाथ अरु महावीर, ये तीन जिन, बारहवें स्वर्ग तें आए। अरु विमलनाथ, पार्श्वनाथ, मुनिसुव्रत, संभवनाथ, सुपार्श्वनाथ, पद्मप्रभु ये छह जिन, ग्रैवेयक तें आये। अरु वासुपूज्य स्वामी, महाशुक्र नामा दशवें स्वर्ग तें आए। ऐसे चौबीस-जिन जहां तें आये, सो स्थान कहे॥ आगे चौबीस-जिन की, जन्मपुरी के नाम अनुक्रम तें कहिये है—अयोध्या पुरी, अयोध्या पुरी, श्रावस्तीपुरी,

अयोध्या पुरी, अयोध्या पुरी, कौशांबी पुरी, काशी पुरी, चन्द्र पुरी, किष्किंधा पुरी, भद्रशाल पुरी, सिंह पुरी, चम्पा पुरी, कंपिला, अयोध्या पुरी, रतन पुरी, हस्तिना पुरी, हस्तिना पुरी, हस्तिना पुरी, मिथिला पुरी, कुशाग्र पुर, मथुरा पुरी, शौर्य पुर, वाणारसी, और कुण्डलपर। इति जन्म नगरी॥ आगे जन्म के नक्षत्र, अनुक्रम तैं बताईये हैं-उत्तराषाढ़ा में वृषभ का जन्म, रोहणी, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, शतभिषा, उत्तरा-भाद्रपदा, रेवती, पुष्य, भरणी, कृतिका, रोहणी, अश्विनी, श्रवण, अश्विनी, चित्रा, विशाखा, और उत्तरा फाल्गुणी। इति जन्म नक्षत्र॥ आगे जिन वृक्षन के नीचे दीक्षा लई, तिनके नाम—वृषभदेव का दीक्षा वृक्ष, वट। औरन के क्रम से सप्तच्छद, शाल, सरल, प्रयंगु, प्रयंगु, सिरीष वृक्ष, नाग, सालिष, शाल, बिन्दुक, जयप्रिय, जंबु, पीपल, दधिपर्ण, नन्द, तिलक, आम्र, अशोक, चंपक, मौलश्री, मेषपर्ण, भव, अरु शाल। ये चौबीस—जिन के दीक्षा-वृक्ष कहे। इनके नीचे, दीक्षा धारी। आगे निर्वाण होने के नक्षत्र, कहिये हैं—तहां सुपार्श्वनाथ का निर्वाण नक्षत्र, अनुराधा। चन्द्रप्रभु का निर्वाण नक्षत्र ज्येष्ठा। वासुपूज्य का निर्वाण नक्षत्र, अश्विनी। विमलनाथ का निर्वाण नक्षत्र, भरणी। महावीर स्वामी का निर्वाण नक्षत्र, स्वाती है। ये पांच जिन के निर्वाण नक्षत्र कहे। औरन के निर्वाण नक्षत्र अरु जन्म नक्षत्र, एक ही जानना। ऐसे निर्वाण नक्षत्र कहे॥ इन चौबीस—जिन में तैं शान्तिनाथ, कुंथनाथ और अरहनाथ ये तीन जिन तौ षट्खंडनाथ चक्री भये। और सर्व तीर्थंकर महा—मण्डलेश्वर भये। तथा दीक्षा

धारि, निर्वाण गये। वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर ये पांच जिन तौ, कुमार अवस्था में, बाल-ब्रह्मचारी ही दिगम्बर भये। व्याह नाहीं किया। अरु राज्य भी नाहीं किया। पिता के जीवित, कुंवारे ही मुनि भये। और सर्व जिनराज, भोग्य-संपदा भोग, यतिपति भये। सो वृषभ का तप कल्याणक, विनीता पुरी विषैं। और नेमिनाथ का तप कल्याणक, द्वारका पुरी विषैं। और सर्व का तप कल्याणक, अपनी-अपनी जन्म-नगरी में भया। सो मल्लिनाथ अरु पार्श्वनाथ ये दोऊ जिन तौ तप लिये पीछे, तेले-तेले का नियम करते भये। और वासुपूज्य स्वामी, एकांतर उपवास धारते भये। और सर्व-जिन ने बेले-बेले पारणा किया। सो श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ, मल्लिनाथ ये तीन जिन तौ पूर्वान्ह समय दीक्षा धारते भये। और सर्व जिन अपरान्ह कहिये सन्ध्या समय, दीक्षा धारते भये। इति चौबीस जिन के निर्वाण-नक्षत्रादि का कथन॥ आगे चौबीस जिनके दीक्षा के वन कहिये हैं—ऋषभनाथ तौ सिद्धारथ वन विषैं, दिगम्बर भये। और महावीर ज्ञानवन विषैं, यती भये। और वासुपूज्य ने क्रीड़ोद्यान न वन विषैं, मुनि-पद धरा। और धर्मनाथ वप्रका नाम वन विषैं, यती भये। और पार्श्वनाथ ने मनोरमा नाम उद्यान विषैं, परिग्रह तजा। और मुनिसुव्रत जिन, नील गुफा के निकट, निर्ग्रन्थ भये। और सर्व जिन अपने-अपने नगर के निकट, आम्र-वन विषैं योगीश्वर भये। इति तप वन॥ आगे चौबीस-जिन के तप कल्याणक विषैं, गमन समय की पालकी, तिनके नाम कहिये है—तहां

वृषभदेव की पालकी का नाम सुदर्शना। आगे अनुक्रम तैं जानना—सिद्धार्था, कमलाभा, अर्थ-सिद्धा, अभयकरी, निर्वृत्तिकरी, मनोरमा, मनोहरा, सूर्य्यप्रभा, शुक्रप्रभा, विमलप्रभा, पुष्पप्रभा, देवदत्ता, सागरदत्ता, नागदत्ता, सिद्धार्थका, विजया, वैजयंति, जयंति, अपराजिता, उत्तर-कुरु, देव-कुरु, विमलाभा और चन्द्राभा। ये चौबीस-जिन के, तप समय की पालकी, इन्द्रों कृत कहीं। आगे चौबीस-जिन की, दीक्षा की तिथि, क्रमशः कहिये हैं—चैत्र वदी ९, माघ सुदी ९, मार्गशीर्ष सुदी १५, माघ सुदी १२, वैशाख सुदी ९, कार्त्तिक वदी १३, जेठ सुदी १२, पौष वदी १, मार्गशीर्ष सुदी १, माघ वदी १२, फाल्गुण वदी १३, फाल्गुण वदी १४, माघ सुदी ४, जेठ वदी १२, माघ सुदी १३, ज्येष्ठ वदी १३, वैशाख सुदी १, मार्गशीर्ष सुदी १०, मार्गशीर्ष सुदी ११, वैशाख वदी ९, अषाढ़ वदी १०, श्रावण वदी ४, पौष वदी ११, और मार्गशीर्ष वदी १०। ये चौबीस-जिन के तप-दिन जानना। आगे चौबीस-जिन के केवलज्ञान के दिन अनुक्रम तैं कहिये है—फाल्गुण वदी ११, पौष सुदी ११, कार्त्तिक वदी ४, पौष सुदी १४, चैत्र सुदी १४, चैत्र सुदी १५, फाल्गुण वदी ६, फाल्गुण वदी ७, कार्त्तिक वदी १४, पौष वदी १४, माघ वदी अमावस्या, माघ सुदी २, माघ सुदी ६, चैत्र वदी ३०, पौष सुदी १५, पौष सुदी १०, चैत्र सुदी ३, कार्त्तिक सुदी १२, पौष वदी २, वैशाख वदी ९, मार्गशीर्ष वदी ११, आसोज सुदी १, चैत्र वदी अमावास्या, और वैशाख सुदी १०। ये चौबीस-जिन के केवलज्ञान की तिथि कहीं॥ आगे चौबीस-जिन के

निर्वाण दिन, अनुक्रम तैं कहिये है—माघ वदी १४, चैत्र सुदी ५, चैत्र सुदी ६, वैशाख सुदी ६, चैत्र सुदी ११, फाल्गुण वदी ४, फाल्गुण वदी २, फाल्गुण वदी ७, भादौं वदी ८, आसोज सुदी ८, श्रावण सुदी पूर्णिमा, भाद्रपद सुदी १४, अषाढ़ वदी ८, चैत्र वदी अमावस्या, जेठ वदी ४, ज्येष्ठ वदी १४, वैशाख सुदी १, चैत्र वदी अमावस्या, फाल्गुण सुदी ५, फाल्गुण सुदी १२, वैशाख सुदी १४, अषाढ़ सुदी ८, श्रावण सुदी ७, और कार्त्तिक वदी अमावस्या। ये चौवीस-जिन के निर्वाण-दिन कहे॥ आगे गर्भ-दिन कहिये है। तप, ज्ञान, निर्वाण ये तीन कल्याणक तौ वीतराग दशा के कहे। आगे दोय कल्याणक, सराग—अवस्था के हैं। सो ये गर्भ-कल्याणक तौ परोक्ष—सराग उत्सव है। और जिनराज का जन्म का प्रत्यक्ष-सराग पुण्य अतिशय है। सो प्रथम जिनराज के गर्भ—कल्याणक के परोक्ष—उत्सव के दिन, क्रम तैं कहिये है—अषाढ़ वदी २, जेठ वदी अमावस्या, फाल्गुण वदो ८, वैशाख सुदी ६, श्रावण सुदी २, माघ वदी ६, भादव सुदी ६, चैत्र वदी ५, फाल्गुण वदी ६, चैत्र वदी ८, जेठ वदी ६, अषाढ़ वदी ६, ज्येष्ठ वदी १०, कार्त्तिक वदी १, वैशाख वदी १३, भाद्रपद सुदी ७, श्रावण वदी १०, फाल्गुन सुदी ३, चैत्र सुदी १, श्रावण वदी २, आसोज वदी २, कार्त्तिक सुदी ६, वैशाख वदी २, और अषाढ़ सुदी २। इति गर्भ-दिन॥ आगे जन्म-दिन क्रम तैं कहिये है—चैत्र वदी ६, माघ सुदी १०, माघ सुदी १२, कार्तिक सुदी १५, चैत्र सुदी ११, कार्तिक वदी १३, जेठ वदी १२, पोष वदी ११, मार्गशीर्ष सुदी १, माघ

वदी १२, फाल्गुण वदी ११, फाल्गुन वदी १४, माघ सुदी १४, जेठ वदी १२, माघ सुदी १३, जेठ वदी १४, वैशाख सुदी १, मार्गशीर्ष सुदी १४, मार्गशीर्ष सुदी ११, वैशाख सुदी १०, अषाढ़ वदी १०, श्रावण सुदी ६, पौष वदी ११, और चैत्र सुदी १३। ये चौबीस-जिन के जन्म-दिन कहे॥ आगे चौबीस-जिन के पारणा का अन्तर कहिये है—आदिनाथ स्वामी ने तो एक वर्ष पीछे पारणा किया। सो इक्षु-रस का भोजन किया। अरु मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ, इन दोय जिन का, तेले पारणा भया। सो गाय के दूध की खीर खाय, पारणा किया। और वासुपूज्य स्वामी ने, एकान्तर पारणा किया। सो गाय के दूध की खीर खाय, पारणा किया। और सर्व जिन-देवन का बेले पारणा भया। सो भी सब गाय के दूध की खीर खाय, पारणा किया। इति पारणा प्रमाण॥ आगे चौबीस-जिन के प्रथम पारणे की नगरी के नाम, अरु तिन नगरन के राजा—प्रथम दानेश्वर, तिनके नाम अनुक्रम तैं कहिये हैं—हस्तिनापुर विषैं, श्रेयांस राजा। अयोध्यापुरी विषैं, ब्रह्मदत्त नाम राजा। श्रावस्तीपुरी विषैं, सुरेंद्रदत्त राजा। विनीता नगरी विषैं, राजा इंद्रदत्त। विजयपुर विषैं, राजा पदम। मंगलापुर विषैं, राजा सोमदत्त। पाटली खण्ड विषैं, राजा महादत्त। पदमखण्डपुर विषैं, राजा सोमदेव। श्वेत नगरी विषैं, राजा पहुप। अरिष्टपुर विषैं, राजा पुनर्वसु। इष्टपुर विषैं, राजा सुनंद। सिद्धारथपुर विषैं, जयराजा। महापुर विषैं, राजा विशाख। ध्यानपुर विषैं, राजा धर्म-वर्धन। वर्धमानपुर विषैं, राजा सुमति। सोमनपुर विषैं, राजा धर्ममित्र। मन्दिरपुर विषैं,

राजा अपराजित। हस्तिनापुर विषैं, राजा नन्दषेण। चक्रपुर विषैं, राजा वृषभदत्त। मथुरापुर विषैं, राजा दत्त। राजगृहपुर विषैं, राजा संजय। द्वारापुरी विषैं, राजा वरदत्त। काम्यांकृतपुर विषैं, धन्य राजा। और कुंडलपुर विषैं, राजा वकुल। ये चौबीस-जिन के, प्रथम पारणा के पुर, अरु दानेश्वर राजा कहे। इन सर्व के घर पञ्चाश्चर्य भये। अरु ये चौबीस प्रथम दानेश्वर, महा भाग्य राजा, तिनके शरीर का वर्ण कहिये है— सो आदि के श्रेयांस राजा, अरु ब्रह्मदत्त राजा, ये दोय तौ श्याम शरीर धारी, महा सुन्दर भये। और सर्व बाईस जिनराज के दान देनेहारे भूपन का शरीर, ताये स्वर्ण समान जानना। इनमें से कोई तौ मोक्ष गये, कोई कल्पवासी होय कैं तथा चय कैं, मोक्ष जांयगे। ऐसा कथन बड़े हरिवंश पुराण के कर्त्ता, श्रीजिनसेनाचार्य ने कह्या है। कहीं—कहीं शास्त्र विषैं ऐसा भी कह्या है, जो प्रथम दानेश्वर मोक्ष ही जांय हैं। सो विशेष पाठान्तर भेद, यथावत् जो केवलज्ञान में भाष्या होय, सो प्रमाण है। इति प्रथम दानेश्वर राजान के नाम, अरु तहां प्रथम पारणा की पुरी कहीं॥ आगे चौबीस-जिन कूं केतेक—केतेक उपवास पीछे केवलज्ञान भया। सो कहिये है—तहां वृषभ देव, मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ इन तीन जिन कूं तेला व्यतीत भये, केवलज्ञान प्रकट्या। और वासुपूज्य को एक उपवास पूर्ण भये, केवलज्ञान सूर्य उत्पन्न भया। और सर्व जिन कूं बेला व्यतीत भये, केवलज्ञान भया। इति केवलज्ञान के पूर्व के उपवास॥ आगे चौबीस—जिन के केवलज्ञान उपजने के क्षेत्र कहिये है-

तहां वृषभदेव का केवल-कल्याणक तौ पुरी मिताल नाम नगरी के निकट, सकटामुख, नाम बन विषैं भया। और नेमिनाथ का गिरनार जी विषैं, और पार्श्वनाथ का काशी के निकट, और महावीर जी का रज्जुकूटा नदी के तट। और बाकी सर्व जिन के केवल-कल्याणक, मनोहर वन विषैं भये। सो वृषभनाथ, श्रेयांस–जिन, मल्लिनाथ, नेमनाथ, पार्श्वनाथ, इन पांच जिन कूं तो केवलज्ञान, प्रभात समय भया। और सर्व कूं, दिन के पिछले पहर में केवलज्ञान भया। इति केवलज्ञान के स्थान॥ आगे निर्वाण होने का काल कहैं हैं–तहां वृषभनाथ, अजितनाथ, श्रेयांसजिन, शीतलजिन, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, इन जिन कौं तौ दिन के प्रथम पहर में मोक्ष भयी। अरु संभवनाथ, पद्मनाथ, पुष्पदंत ये जिन, दिन के पिछले पहर में, मोक्ष गये। वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, शीतलनाथ, कुंथनाथ, मल्लिनाथ मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, इनकी मुक्ति रात्रि-समय भयी। और धर्मनाथ, अरहनाथ, नमिनाथ, महावीर इनकी मुक्ति, सूर्य्य के उदयकाल समय, प्रभात ही भयी। इति चौबीस-जिन के मुक्ति समय॥ आगे चौबीस-जिन के मोक्ष–गमन आसन कहिये है–तहां वृषभनाथ, वासुपूज्य, नमिनाथ, ये तीन जिन तौ पद्मासन से मोक्ष गये। और सर्व जिन, कायोत्सर्ग आसन तैं सिद्ध-लोक गये। इति मोक्ष–गमन के आसन॥ आगे चौबीस-जिन का समोशरण विघटना, अरु वाणी (दिव्यध्वनि) नहीं खिरना, ताका प्रमाण कहिये है–तहां आदि-जिन के, अरु-अंत जिन

के, इन दोय जिन के तौ मोक्ष जाने के जब चार दिन रहे, तब समोशरण विघट्या। अरु वाणी नहीं खिरी। और सर्व जिन के एक महिना पहिले, समोशरण विघट्या। अरु दिव्य-ध्वनि नहीं खिरी॥ आगे चौबीस-जिन के संग केते—केते यती मोक्ष भये, तिनका प्रमाण कहिये है—महावीर के संग, ३६ मुनि मोक्ष गये। और पार्श्वनाथ की लार, ५३६ मुनि मुक्ति पहुंचे। और नेमनाथ के संग, ५३६ ऋषीश्वर मोक्ष गये। और मल्लिनाथ के साथ, ५०० यती मोक्ष भये। और शांतिनाथ के संग, ९०० योगीश्वर मोक्ष गये। और धर्मनाथ की लार (संग), ८०१ तपोधन मोक्ष भये। विमलनाथ के लार, ६६१२ आचार्य मोक्ष भये। अनंतनाथ के संग, ५५०७ निर्ग्रंथ, निरंजन भये। और पद्मप्रभु के साथ, ३८०० दिगम्बर भये, अरु सिद्ध-लोक गये। और वृषभदेव के लार, १०००० गुरुनाथ अमूर्ति भये। और बाकी सर्व तीर्थंकरों के साथ, एक—एक हजार मुनि मोक्ष गये। इति॥ आगे बारह चक्रवर्ती के नाम—तहां प्रथम चक्रवर्ती भरत, सो आदिनाथ के समय भये। आगे दूसरा सगर नाम षट्-खण्डी, सो अजितनाथ के समय भया। और तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा सनत्कुमार चक्री, ये धर्मनाथ-जिन के मोक्ष भये पीछे, अरु शांति के पहिले, अन्तराल में भये। शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ ये तीन जिन, अपने—अपने समय में, आपही चक्री भये। और अरह के मोक्ष गये पीछे, अरु मल्लिनाथ के पहिले, इस अतंराल में, आठवां सुभूमि नाम चक्री भया। और मल्लिनाथ के पीछे, अरु मुनिसुव्रत के पहिले, अतंराल में, नववां महापद्म नाम चक्री भया।

अरु मुनिसुव्रत के पीछे, अरु नमिनाथ के पहिले, दशवें हरिषेण नाम चक्री भये। नमिनाथ के पीछे, अरु नेमनाथ के पहिले, ग्यारहवें जयसेन नाम चक्री भये। और नेमनाथ के पीछे, अरु पार्श्वनाथ के पहिले, बारहवें ब्रह्मदत्त नाम चक्री भये। इति चक्रवर्ती नाम ॥ आगे इन चक्रीन की गति—गमन कहिये है—तहां आठवां सुभूमि अरु बारहवां ब्रह्मदत्त ये दोय तौ, सप्तम नरक सिधारे। अरु तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा संनत्कुमार चक्री, ये दोय; तीसरे स्वर्ग गये। अरु बाकी आठ चक्री, आठ—कर्म नाश कर, अष्टम भूमि (मोक्ष) विषैं, सिद्ध पद पाय विराजे। इति चक्री गति ॥ आगे नव नारायण के नाम, तथा किनके समय भये, सो कहिये है—तहां पहिला त्रिपृष्ट नाम नारायण तौ, श्रेयांसनाथ के समय में भया ॥१॥ और दूसरा द्विपृष्ट नारायण, वासुपूज्य-जिन के समय में भया ॥२॥ तीसरा स्वयंभू नाम नारायण, विमलनाथ के समय में भया ॥ ३ ॥ और चौथा पुरुषोत्तम नारायण, अनन्तनाथ के समय भया ॥ ४ ॥ और पांचवा पुरुषसिंह नारायण, धर्मनाथ के समय भया ॥५॥ और छट्ठा पुण्डरीक नारायण, अरह के पीछे अरु मल्लिनाथ के पहिले, अन्तराल में भया ॥६॥ और मल्लि के पीछे, अरु मुनिसुव्रत के पहिले, इस अंतराल में, सातवां दत्त नाम नारायण भया ॥ ७ ॥ मुनिसुव्रत के पीछे, अरु नमि के पहिले, आठवां लक्ष्मण नाम नारायण भया ॥ ८ ॥ और नववें नारायण कृष्ण देव भये, सो नेमिनाथ के समय भये ॥ ९ ॥ ये नव नारायण के नाम कहे। सो इनमें पहिला त्रिपिष्ट,

दूसरा द्विपृष्ट, तीसरा स्वयंभू, चौथा पुरुषोत्तम, पांचवां पुरुषसिंह, छठा पुण्डरीक, ये षट् तो षट्वीं मघवी नाम पृथ्वी के धाम पधारे। और सातवां दत्त, आठवां और नववां, ये मेघा पृथ्वी में गये। ये नव ही नारायण, तीन खण्ड के नाथ, महा विभूति सहित, देव-विद्याधर-भूमिगोचरी-बड़े-बड़े राजान् करि वन्दनीक, प्रजा के प्रतिपालक हैं। इनके राज्य में अन्याय नाहीं। लोकन कों दारिद्र नाहीं। सर्व सुखी होय हैं। ये नारायण, परम्पराय ज्योतिस्वरूप होंयगे। इति नारायण नाम ॥ आगे बलभद्रन के नाम कहिये है-तहां प्रथम बलदेव अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दमित्र, रामचन्द्र, और पद्म। ये नव बलभद्र हैं। सो नारायण के बड़े भाई जानना। इति बलभद्र नाम ॥ आगे नारायण के प्रतिपक्षी (प्रति नारायण)-केशव के नाम कहिये है-तहां प्रथम अश्वग्रीव, तारक, मेरुक, मधु-कैटभ, निशुंभ, बलि, प्रह्लाद, रावण, और जरासिंधु। तिनमें आठ तौ विद्याधरन में भये। अरु जरासिंधु, भूमिगोचरी भये। इति प्रतिनारायण नाम ॥ आगे बलभद्र की गति-गमन कहिये है-तहां विजय, अचल, भद्र, सुभद्र, सुदर्शन, आनंद, नन्दमित्र, और रामचंद्र, ये आठ बलदेव तौ आठ कर्म नाशकरि, सिद्ध भये। और नववां पद्म बलदेव, सो दिगम्बर व्रत धारि, पंचम स्वर्ग विषैं, महा ऋद्धिधारी देव भया। तहां तैं चय, मोक्ष होंयगे। तथा कृष्ण महाराज तीर्थंकर का अवतार धारेंगे। और अनेक जीवन कौं धर्मोपदेश देय, सुमार्ग लगाय, आप परमधाम कौं पावेंगे। अब तांईं अवतार धारया, अब अवतार नाहीं धारेंगे। इति बलभद्र गति ॥ आगे

चौबीस-जिन की आयु का प्रमाण, अनुक्रम करि कहिये है—चौरासी लाख पूर्व, बहत्तरि लाख पूर्व, साठ लाख पूर्व, पचास लाख पूर्व, चालीस लाख पूर्व, तीस लाख पूर्व, बीस लाख पूर्व, दस लाख पूर्व, दोय लाख पूर्व, एक लाख पूर्व, चौरासी लाख वर्ष, बहत्तरि लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, तीस लाख वर्ष, दस लाख वर्ष, एक लाख वर्ष, पंचानवै हजार वर्ष, चौरासी हजार वर्ष, पचपन हजार वर्ष, तीस हजार वर्ष, दस हजार वर्ष, एक हजार वर्ष, सौ वर्ष, और बहत्तरि वर्ष। ये चौबीस-जिन, जगत—मंगल करैं। इति चौबीस-जिन की आयु ॥ आगे चक्रवर्तिन की आयु कहिये है-प्रथम की चौरासी लाख पूर्व, दूसरे की बहत्तरि लाख पूर्व, तीजे की पांच लाख वर्ष, चौथे की तीन लाख वर्ष, पांचवें की एक लाख वर्ष, छट्टे की पंचानवै हजार वर्ष, सातवें की चौरासी हजार वर्ष, आठवें की साठ हजार वर्ष, नौवें की तीस हजार वर्ष, दशवें की छब्बीस हजार वर्ष, ग्यारहवें की तीन हजार वर्ष, और बारहवें की सात सौ वर्ष। इति चक्री-आयु ॥ आगे नारायण की आयु कहिये है—प्रथम की चौरासी लाख वर्ष, दूसरे की बहत्तरि लाख वर्ष, तीसरे की साठ लाख वर्ष, चौथे की तीस लाख वर्ष, पांचवें की दश लाख वर्ष, छटवें की साठ हजार वर्ष, सातवें की तीस हजार वर्ष, आठवें की बारह हजार वर्ष, और नववें की एक हजार वर्ष। यह नारायण की आयु कही। इतनी ही नव प्रति-नारायण की आयु जानना। बलभद्र की कछू अधिक है, सो आगे कहैंगे। इति नारायण, प्रति—नारायण की आयु ॥

आगे बलभद्र की आयु कहिये है—तहां पहिले बलभद्र की आयु, सत्यासी लाख वर्ष। दूजे की, सत्तरि लाख वर्ष। तीसरे की, साठ लाख वर्ष। चौथे की, बत्तीस लाख वर्ष। पांचवें की, कछू अधिक दश लाख वर्ष। छठे की, पैंसठ हजार वर्ष। सातवें की, बत्तीस हजार वर्ष। आठवें की, सत्रह हजार वर्ष। और नववें, की बारह सौ वर्ष। ये नव बलभद्र की आयु कही। आगे चक्री व नारायण का उपजने का समय कहिये हे-तहां आदि-जिन से लेय, पन्द्रहवें धर्मनाथ पर्यंत, तिनमें वृषभ अजित इनके समय में तो दोय चक्री भये। अरु पचास लाख कोड़ि सागर काल का, बीचि अन्तर भया। तामें कोई पदवीधारी पुरुष नहीं भया। अरु श्रेयांस तें लगाय, धर्म–नाथ पर्यंत, पांच तीर्थंकरों के समय में, पांच नारायण भये। सो तीर्थंकरों के काल में ही सभा—नायक भये। अन्तराल में नांहीं भये। और धर्मनाथ के पीछे, तीसरे चौथे चक्री भये। ता पीछे शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, ये तीन तीर्थंकर ही चक्री भये। ता पीछे छठवां नारायण भया। ताके पीछे, आठवां चक्रवर्ती भया। ताके पीछे, मल्लि जिन भये। और मल्लि-जिन के पीछे, नौवां महापद्म चक्री भया। ता पीछे, सातवां नारायण भया। ता पीछे, मुनि-सुव्रत भये। ताके पीछे, दशवां चक्री हरिषेण भया। ताके पीछे, आठवां नारायण भया। ताके पीछे, नमि—जिन भये। अरु नमिनाथ के पीछे, ग्यारहवां चक्री भया। ताके पीछे, नेमिनाथ भये। तिनके समय में, नववें नारायण और बलभद्र, ये तिन छते ही सभा-नायक भये। और नेमिनाथ के पीछे, बारहवां चक्री भया। ताके पीछे, पार्श्वनाथ और महावीर भये। इस भांति त्रेसठ शला-

का पुरुष भये, तिनकी रचना कही। इति चक्री और नारायण के उपजने का समय कह्या। आगे तीर्थंकर की आयु की विगत कहिये है—तहां ऋषभदेव का कुमारकाल, बीस लाख पूर्व का। त्रेसठ लाख पूर्व, राज्य किया। तप, एक हजार वर्ष किया। और केवलज्ञान सहित उपदेश, हजार वर्ष घाटि, लाख पूर्व किया। ये सर्व चौरासी लाख पूर्व की विगत कही ॥ १ ॥ और अजितनाथ-जिन का कुमारकाल, अठारह लाख पूर्व। और एक पूर्वांग अधिक, तिरेपण लाख पूर्व राज्य में व्यतीते। संयम का काल, बारह वर्ष रहा। और एक पूर्वांग अरु बारह वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व; केवलज्ञान सहित, समोशरण सहित विहार किया। यह बहत्तरि लाख पूर्व का विस्तार कह्या ॥ २ ॥ और सम्भवनाथ का काल, साठ लाख पूर्व। तामें तैं कुमारकाल, पन्द्रह लाख पूर्व। अरु च्यारि पूर्वांग अधिक, चबालीस लाख पूर्व, राज्य किया। और चौदह वर्ष संयम किया। अरु च्यारि पूर्वांग अरु चौदह वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व केवल-ज्ञान सहित रहे। पीछे मोक्ष गये ॥ ३ ॥ आगे अभिनन्दन की आयु, पचास लाख पूर्व की है। तामें कुमार-काल, साढ़े बारह लाख पूर्व। अरु राज्य विषैं, साढ़े छत्तीस लाख पूर्व अरु आठ पूर्वांग। अठारह वर्ष, संयमकाल। और आठ पूर्वांग अरु अठारह वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व; केवलज्ञान सहित उपदेश करि, मोक्ष गये ॥ ४ ॥ आगे सुमतिनाथ की आयु, चालीस लाख पूर्व। तामें कुमारकाल, दश लाख पूर्व है। राज्यावस्था का काल, गुणतीस (२९) लाख पूर्व अरु बारह पूर्वाङ्ग। और संयमकाल, बीस वर्ष।

अरु बारह पूर्वांग, बीस वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व; केवलज्ञान सहित रहे। पीछे मोक्ष गये ॥ ५ ॥ और पद्मप्रभु की आयु, तीस लाख पूर्व। तामें तैं कुमार—काल, साढ़े सात लाख पूर्व। साढ़े इक्कीस लाख पूर्व अरु सोलह पूर्वांग, राज्य किया। संयम काल, छह महिना। अरु सोलह पूर्वांग अरु छह महिना घाटि, एक लाख पूर्व ताईं, केवलज्ञान सहित उपदेश देय, सिद्ध भये ॥ ६ ॥ अरु सुपार्श्व-जिन की आयु, बीस लाख पूर्व। तामें तैं कुमारकाल, पांच लाख पूर्व। अरु चौदह लाख पूर्व बीस पूर्वांग, राज्य किया। संयम का काल, नव वर्ष। अरु बीस पूर्वांग नव वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व, केवलज्ञान सहित विहार करि, सिद्ध भये ॥ ७ ॥ चन्द्रप्रभ का आयु समय, दश लाख पूर्व। तामें कुमार—काल, अढ़ाई लाख पूर्व। राज्यावस्था साढ़े छह लाख पूर्व अरु चौबीस पूर्वांग। संयमकाल तीन महिना। अरु तीन महिना चौबीस पूर्वांग घाटि, एक लाख पूर्व ताईं, समोशरण सहित केवलज्ञान पाय, विहार करि, मोक्ष गये ॥ ८ ॥ और पुष्पदन्त-जिन की आयु, दोय लाख पूर्व की है। तामें कुमारकाल, पचास हजार पूर्व। पचास हजार पूर्व अरु अट्ठाईस पूर्वांग, राज्य किया। और संयमकाल, च्यारि महिना। अट्ठाईस पूर्वांग च्यारि महिना घाटि, एक लाख पूर्व, केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गये ॥ ९ ॥ और शीतल जिन की आयु का प्रमाण, एक लाख पूर्व है। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार पूर्व। राज्यकाल, पचास हजार पूर्व। संयमकाल तीन मास। अरु तीन महिना घाटि पच्चीस हजार पूर्व, केवलज्ञान सहित

रहे ॥१०॥ और श्रेयांस जिन की आयु, चौरासी लाख वर्ष की है। तामें कुमारकाल, इक्कीस लाख वर्ष। राज्य पद, ब्यालीस लाख वर्ष। संयम का काल, दोय मास। दोय महिना घाटि इक्कीस लाख वर्ष, केवलज्ञान-काल है ॥ ११ ॥ और वासुपूज्य की आयु, बहत्तरि लाख वर्ष की है। तामें कुमारकाल, अट्ठारह लाख वर्ष है। राज्यावस्था में नहीं रहे, अरु ब्याह भी नहीं किया। अट्ठारह लाख वर्ष के भये, तब ही तप लिया। सो संयमकाल, एक मास रहे। और केवलज्ञान सहित एक मास घाटि चौवन लाख वर्ष रहके, शिव गये ॥१२॥ विमल–जिन की आयु, साठ लाख वर्ष की है। तामें कुमारकाल, पन्द्रह लाख वर्ष। राज्यावस्था, तीस लाख वर्ष। और संयमकाल, तीन महिना। और तीन महिना घाटि पन्द्रह लाख वर्ष, केवलज्ञान सहित रहे। पीछे निर्वाण गये ॥ १३ ॥ और अनंत–जिन की आयु, तीस लाख वर्ष है। तामें कुमारकाल, साढ़े सात लाख वर्ष। राज्यावस्था, पन्द्रह लाख वर्ष। संयमकाल, दोय मास। और केवलज्ञान विषैं दोय मास घाटि, साढ़े सात लाख वर्ष रहे ॥१४॥ और धर्म–जिन की आयु, दश लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, अढ़ाई लाख वर्ष। और राज्यावस्था, पांच लाख वर्ष। और संयमकाल एक मास। एक मास घाटि, अढ़ाई लाख वर्ष; विहार करि, मोक्ष गये ॥१५॥ और शांतिनाथ की आयु, एक लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। राज्यकाल, पचास हजार वर्ष। संयम-काल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि, पच्चीस हजार वर्ष; केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गये ॥ १६ ॥ और कुन्थनाथ की आयु, पनच्यानवै हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पौने

चौबीस हजार वर्ष। राज्यावस्था, साढ़े सैंतालीस हजार वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि, पौने चौबीस हजार वर्ष; केवलज्ञान सहित उपदेश देय, मोक्ष गये ॥ १७ ॥ और अरह जिन को आयु का प्रमाण, चौरासी हजार वर्ष है। तामें कुमारकाल, इकईस हजार वर्ष। राज्यावस्था, ब्यालीस हजार वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। अरु सोलह वर्ष घाटि, इक्कीस हजार वर्ष तांईं; केवलज्ञान सहित उपदेश करि, मोक्ष गये ॥ १८ ॥ और मल्लिनाथ की आयु, पचपन हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, सौ वर्ष। इनने राज्य नहीं किया। सौ वर्ष की अवस्था ही में, तप धार्या। संयमकाल, षट् दिन। और षट् दिन घाटि, चौवन हजार नव सौ वर्ष तांईं; केवलज्ञान सहित उपदेश देय, मोक्ष गये ॥ १६ ॥ और मुनिसुव्रत–जिन की आयु, तीस हजार वर्ष। तामें साढ़े सात हजार वर्ष, कुमारकाल। राज्यकाल, पन्द्रह हजार वर्ष। संयमकाल, ग्यारह महिना। ग्यारह महिना घाटि, साढ़े सात हजार वर्ष; केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गये ॥२०॥ और नमिनाथ की आयु, दश हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, अढ़ाई हजार वर्ष। राज्यकाल, पांच हजार वर्ष। संयमकाल, नौ वर्ष। और नव वर्ष घाटि, अढ़ाई हजार वर्ष, केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गये ॥ २१ ॥ और नेमिनाथ–जिन की आयु, एक हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, तीन सौ वर्ष। राज्य इन ने नहीं किया। तीन सौ वर्ष के होय कें, तप लिया। संयमकाल, छप्पन दिन। छप्पन दिन घाटि, सात सौ वर्ष; केवलज्ञान तैं धर्मोपदेश देय, सिद्ध भये ॥ २२ ॥ और पार्श्वनाथ–जिन

की आयु, सौ वर्ष की। तामें कुमारकाल, तीस वर्ष। इनने व्याह और राज्य नहीं किया। तीस वर्ष में ही, दीक्षा धरी। संयम-काल, च्यार महिना। अरु च्यार महिना घाटि, सत्तर वर्ष; केवल-ज्ञान सहित रह, भव्यन कूं सम्बोध करि, मोक्ष गये ॥ २३ ॥ महावीर-जिन की आयु, बहत्तरि वर्ष। तामें कुमारकाल, तीस वर्ष। इनने व्याह व राज्य नहीं किया। तीस वर्ष में तप धरा। संयम-काल, बारह वर्ष। बाकी वर्ष केवलज्ञान सहित रहकर, मोक्ष गये ॥ २४ ॥ यह सर्व जिन की आयु की विगत कही। तामें कोई की आयु के च्यारि विभाग, कोई की आयु के राज्यावस्था बिना, तीन विभाग कहे। आगे चौबीस-जिन के, च्यारि प्रकार संघ का प्रमाण कहिये है। तहां पहिले चौबीस-जिन के गणधर देवन का प्रमाण, अनुक्रम तैं कहिये है—८४, ९०, १०५, १०३, ११६, १११, ९५, ९३, ८८, ८१, ७७, ६६, ५५, ५०, ४३, ३६, ३५, ३०, २८, १८, १७, ११, १०, और ११। ये चौबीस-जिन के, चौदह सौ त्रेपण (१४५३) गणधर जानना। तिन में तैं एक-एक जिन के, मुख्य एक-एक गणधरन के नाम कहिये हैं—वृषभसेन, सिंहसेन, चारुदत्त, वज्र, चमर; वज्रबलि, चरबलि, दण्डिक, वैदर्भ, अनागार, कुंथ, सुधर्म, नंद-राज, जय, अरिष्ट, चक्रायु, स्वयंभू, कुंथ, विशाख, मल्लि, सोम, वरदत्त, स्वयंभू, और इन्द्रभूत। ये चौबीस मुख्य गणधर कहे। ये सर्व गणधर, सप्त ऋद्धि करि सहित हैं। सर्व जिन-श्रुत के पारगामी हैं। आगे एक-एक जिन के सङ्ग, केते-केते राजा वैरागी भये। तिनका प्रमाण कहिये हैं—महावीर के संग, तीन सौ राजा यती भये ॥ १ ॥ पार्श्वनाथ

के साथ, छह सौ छह ॥ २ ॥ मल्लिनाथ के साथ, छह सौ छह ॥ ३ ॥ वासुपूज्य की लार, छह सौ ॥ ४ ॥ आदिनाथ के साथ, च्यारि हजार राजा यती भये ॥ ५ ॥ और सर्व जिन के संग, एक-एक हजार राजाओं ने तप लिया ॥ आगे चौबीस-जिन के यतीश्वरन की संख्या कहिये है—तहां वृषभदेव के, सर्व मुनीश्वर, ८४ हजार हैं। अजित के, एक लाख हैं। सम्भव के, दोय लाख। अभिनन्दन के, तीन लाख। सुमतिनाथ के, तीन लाख बीस हजार। पद्मनाथ के, तीन लाख तीस हजार। सुपार्श्वनाथ के, तीन लाख। चन्द्रप्रभ के, सर्व मुनि, अढ़ाई लाख। पुष्पदन्त-जिन के, दोय लाख। शीतलनाथ के, एक लाख। श्रेयांसनाथ के, चौरासी हजार। वासुपूज्य के, बहत्तरि हजार। विमलनाथ के, अड़सठ हजार। अनन्तनाथ के, छयासठ हजार। धर्मनाथ के, चौंसठ हजार। शान्तिनाथ के, बासठ हजार। कुंथनाथ के, साठ हजार। अरहनाथ के, पचास हजार। मल्लिनाथ के, चालीस हजार। मुनिसुव्रत के, तीस हजार। नमिनाथ के, बीस हजार। नेमिनाथ के, अठारह हजार। पार्श्वनाथ के, सोलह हजार। महावीर के, चौदह हजार सर्व मुनीश्वर हैं। ये चौबीस—जिन के सर्व मुनि कहे। सो मुनि का संघ सात प्रकार है—चौदह पूर्व के पाठी, सूत्र अभ्यासी, अवधिज्ञानी, केवली, विक्रिया ऋद्धि के धारी, विपुलमती मनः पर्ययी, और वादित्र ऋद्धि के धारी। इन सात भेद रूप, मुनि संघ है। सो वृषभदेव के चौरासी हजार मुनि हैं। तिनमें चौदह पूर्व के पाठी, साढ़े सैंतालीस सौ हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य, इकतालीस सौ पचास। अवधि-

ज्ञानी, नौ हजार। केवलज्ञानी, बीस हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, तीस हजार छह सौ। विपुलमती मनः पर्ययज्ञानी, बारह हजार साढ़े सात सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, बारह हजार साढ़े सात सौ हैं। ये सर्व मिलि चौरासी हजार, आदि—देव के मुनि कहे ॥ १ ॥ और अजित के, चौदह पूर्व के पाठी, तीन हजार पांच सौ मुनि। आचाराङ्ग सूत्र के धारी शिष्य, इक्कीस हजार छह सौ। अवधिज्ञानी, नव हजार चार सौ। केवलज्ञानी, बीस हजार दो सौ पचास। विक्रिया ऋद्धि के धारी, बीस हजार च्यारि सौ पचास। विपुलमती मनः पर्यय धारी, बारह हजार च्यारि सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, बारह हजार च्यारि सौ। ये सर्व जाति के मिलि, अजित-जिन के एक लाख मुनि हैं॥२॥ संभव-जिन के, चौदह पूर्व के पाठी, साढ़े इक्कीस सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि, एक लाख उन्नीस हजार तीन सौ। और अवधिज्ञानी, नव हजार छह सौ। केवलज्ञानी, पन्दह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, गुणतीस हजार साढ़े आठ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञान धारी, बारह हजार हैं। और वादित्र ऋद्धि के धारी, बारह हजार एक सौ हैं। ये तीसरे-जिन का संघ सात प्रकार, दोय लाख कह्या ॥ ३ ॥ आगे चौथे अभिनंदन-जिन के मुनि, तीन लाख हैं। तिन में चौदह पूर्व के पाठी, पच्चीस सौ हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य, दोय लाख तीस हजार पचास हैं। अवधिज्ञानी, नौ हजार आठ सौ। केवलज्ञानी, सोलह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, गुन्नीस हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञान धारी, ग्यारह हजार साढ़े छह सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, ग्यारह हजार।

ये अभिनन्दन-जिन के, तीन लाख साधून में सात भेद कहे ॥ ४ ॥ आगे पांचवें सुमतिनाथ के, तीन लाख बीस हजार मुनि हैं। तामें चौदह पूर्व के पाठी, चौबीस सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि, दोय लाख चौंसठ हजार तीन सौ पचास। अवधिज्ञान के धारी, ग्यारह हजार। केवलज्ञान के धारी, तेरह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, अट्ठारह हजार च्यारि सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, दश हजार च्यारि सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, एक हजार च्यारि सौ पचास हैं। ये सर्व पांचवें–जिन के, सात जाति के मुनि, तीन लाख बीस हजार कहे ॥ ५ ॥ आगे छठे पद्मप्रभ-जिन के, तीन लाख तीस हजार मुनि कहे। तिन में चौदह पूर्व के ज्ञानी, तेईस सौ। सूत्र के अभ्यासी शिष्य-मुनि, दोय लाख गुणहत्तरि हजार। अवधिज्ञानी, दश हजार। केवलज्ञान धारी, बारह हजार आठ सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, सोलह हजार तीन सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, दश हजार छह सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, नौ हजार। ये छठे-जिन के, सात जाति के मुनि, सब मिलि तीन लाख तीस हजार कहे ॥६॥ आगे सुपार्श्वनाथ के संघ के, तीन लाख मुनि हैं। तामें चौदह पूर्व के धारी, दोय हजार तीस यती हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य–मुनि, दोय लाख चवालीस हजार नौ सौ बीस हैं। अवधि ज्ञानी, नव हजार। केवली, ग्यारह हजार तीन सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, पन्द्रह हजार डेढ़ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, नव हजार छह सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, आठ हजार। ये सब, सात जाति के मुनि मिलकर, तीन लाख, सातवें-जिन के हैं ॥ ७ ॥ और आठवें-जिन के, अढ़ाई लाख

मुनि हैं। तिन में चौदह पूर्व के पाठी, दोय हजार हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य–मुनि, दोय लाख दश हजार च्यारि सौ। अवधिज्ञान के धारी, आठ हजार। केवली, दश हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, च्यारि हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञान के धारी, आठ हजार। वादित्र ऋद्धि के धारी, सात हजार छह सौ। ये चन्द्रप्रभ–जिन के सात जाति के मुनि, अढ़ाई लाख कहे ॥ ८ ॥ आगे पुष्पदन्त–जिन के, दोय लाख मुनि हैं। तिन में चौदह पूर्व के धारी, पन्द्रह सौ। सूत्रपाठी शिष्य-मुनि, एक लाख पेंसठ हजार पांच सौ। अवधिज्ञान के धारी, आठ हजार च्यारि सौ। केवलज्ञानी, साढ़े सात हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, तीन हजार च्यारि सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पैंसठ सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, बहत्तरि सौ। ये नववें–जिन के, सात जाति के मुनि, सर्व मिलि, दोय लाख कहे ॥९॥ शीतलनाथ के संघ सम्बन्धी मुनि, एक लाख। ता विषै चौदह पूर्व के धारी, चौदह सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य मुनि, गुणसठि हजार दोय सौ। अवधिज्ञानी, बहत्तरि सौ। केवली, सात हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, बारह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पचहत्तर सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, सत्तावन सौ। ये सर्व मिलि, दशवें-जिन के, एक लाख मुनि कहे ॥१०॥ आगे श्रेयांस-जिन के, चौरासी हजार मुनि। तामें चौदह पूर्व के धारी, तेरह सौ। सूत्रपाठी शिष्य मुनि, अड़तालीस हजार दोय सौ। अवधिज्ञान के धारी, छह हजार। केवलज्ञानी, साढ़े छह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, ग्यारह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, चौवनसौ। बाकी वादित्र ऋद्धि के धारक

हैं। ये चौरासी हजार यती, ग्यारहवें–जिन के कहे ॥११॥ वासुपूज्य–जिन के संघ के मुनि, बहत्तरि हजार बुद्धि–सागर यती हैं। केतेक, चौदह पूर्व के धारी हैं। केतेक, सूत्र अभ्यासी शिष्य मुनि। केतेक, अवधि ज्ञान के धारी। छह हजार, केवली। विक्रिया ऋद्धि के धारी, दश हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, छह हजार। वादित्र ऋद्धि के धारी, ब्यालीस सौ हैं। ये सात जाति के संघ सहित, बहत्तरि हजार मुनि कहे ॥ १२ ॥ और अड़सठ हजार यती, विमलनाथ–जिन के कहे। तहां चौदह पूर्व के धारी, ग्यारह सौ। सूत्रपाठी शिष्य जाति के मुनि, अड़तीस हजार पांच सौ। अवधिज्ञान के धारी, अड़तालीस सौ। केवली, पचपन सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, नौ हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पचपन सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी मुनीश्वर, बत्तीस सौ। ये सर्व जाति के मुनि, अड़सठ हजार कहे ॥ १३ ॥ और अनन्तनाथ के संघ में, छयासठ हजार मुनि हैं। तामें चौदह पूर्व धारी, एक हजार। सूत्र अभ्यासी शिष्य–मुनि, गुणसठ हजार पांच सौ। अवधिज्ञानी, तियालीस सौ। केवलज्ञानी, पांच हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, आठ हजार। विपुलमती मनः, पर्यय ज्ञानी, पांच हजार हैं। वादित्र ऋद्धि के धारी, बत्तीस सौ। ये सात जाति के मुनि, छयासठ हजार कहे ॥ १४ ॥ और धर्म–जिन के यती, चौंसठ हजार हैं। तामें चौदह पूर्व के धारी, नौ सौ। शिष्य जाति के, चालीस हजार सात सौ। अवधिज्ञानी, छत्तीस सौ। केवली, पैंतालीस सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, सात हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, पैंतालीस सौ।

वादित्र ऋद्धि के धारी, अट्ठाईस सौ हैं। ये सर्व मिलि, चौंसठ हजार, धर्म-जिन का मुनि–संघ कह्या ॥ १५ ॥ और शांति–जिन के, बासठ हजार यती हैं। तिन में चौदह पूर्व के धारी, आठ सौ। शिष्य जाति के मुनि, इकतालीस हजार आठ सौ। अवधिज्ञानी, तीन हजार। केवलज्ञानी, च्यारि हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, छह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, च्यारि हजार। वादित्र ऋद्धि के धारी, चौवीस सौ। ये बासठ हजार, सोलवें तीर्थंकर के मुनीश्वर कहे ॥ १६ ॥ और कुन्थ के, साठ हजार यती हैं। चौदह पूर्व के धारी, सात सौ। शिष्य जाति के मुनि, तेतालीस हजार डेढ़ सौ। अवधिज्ञानी, अढ़ाई हजार। केवलज्ञानी, दोय हजार आठ सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, इक्यावन सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, सैंतीस सौ पचास। वादित्र ऋद्धि के धारी, दोय हजार। ये साठ हजार संघ, कुंथ–जिन का कह्या ॥ १७ ॥ और अरहनाथ का संघ, पचास हजार है। तामें चौदह पूर्व के धारी, छह सौ दश। शिष्य जाति के मुनि, पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस। अवधि–ज्ञानी, अट्ठाईस सौ। केवलज्ञानी, अट्ठाईस सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, तेतालीस सौ। विपुल-मती मनः पर्यय ज्ञानी, बीस सौ पचपन। वादित्र ऋद्धि के धारी, सोलह सौ हैं। ये सर्व जाति के, पचास हजार मुनि हैं ॥१८॥ अरु मल्लिनाथ के, चालीस हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्व के धारी, पांच सौ पचास। शिष्य जाति के, गुणतीस हजार। अवधिज्ञानी, बाईस सौ। केवली, साढ़े छब्बीस सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, चौदह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, बाईस

सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, बीस सौ। ये चालीस हजार संघ, मल्लि--जिन का कह्या ॥ १६ ॥ और मुनिसुव्रत के, तीस हजार यती हैं। तामें चौदह पूर्व के धारी, पांच सौ। शिष्य मुनि, इक्कीस हजार। अवधिज्ञानी, अठारह सौ। केवली, अठारह सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, बाईस सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पन्द्रह सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, बारह सौ। ये सात जाति मिलि, तीस हजार भये ॥ २० ॥ नमिनाथ के, बीस हजार यती। चौदह पूर्व के धारी, साढ़े च्यारि सौ। शिष्य जाति के यती, तेरह हजार छह सौ। अवधिज्ञानी, सोलह सौ। केवली, सोलह सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, पंद्रह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, साढ़े बारह सौ। और वादित्र ऋद्धि के धारी, एक हजार हैं। ये बीस हजार यती, इक्कीसवें--जिन के कहे ॥ २१ ॥ और नेमिनाथ के, अठारह हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्व धारी, च्यारि सौ। शिष्य जाति के मुनि, ग्यारह हजार आठ सौ। अवधिज्ञानी, पंद्रह सौ। केवली, पन्द्रह सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, ग्यारह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, नौ सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, आठ सौ। ये अठारह हजार यती, नेमि-जिन के कहे ॥ २२ ॥ पार्श्व-नाथ के, सोलह हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्व के धारी, साढ़े तीन सौ। शिष्य जाति के मुनि, दश हजार नौ सौ। अवधिज्ञानी, चौदह सौ। केवली, एक हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, एक हजार। विपुल मती मनः पर्यय ज्ञानी, साढ़े सात सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, छह सौ। ये सोलह हजार यती, पार्श्वनाथ-जिन के कहे ॥२३॥ और महावीर-जिन के,

चौदह हजार यती हैं। चौदह पूर्व के धारी, तीन सौ। शिष्य जाति के मुनि, नौ हजार नौ सौ। अवधिज्ञानी, तेरह सौ। केवली, सात सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, नौ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पांच सौ। वादित्र ऋद्धि धारी, च्यारि सौ। ये चौदह हजार मुनि, वर्द्धमान-जिन के कहे ॥२४॥ इति चौबीस–जिन के, मुनि–संघ, सात–सात प्रकार। आगे चौबीस–जिन के संघ की, आर्यिका का प्रमाण कहिये है—तहां आदि-देव के संघ की आर्यिका, तीन लाख पचास हजार। अजितनाथ की, तीन लाख बीस हजार। संभव, अभिनंदन, सुमति, इन तीनों की तीन–तीन लाख, तीस–तीस हजार। पद्मप्रभ की, च्यारि लाख बीस हजार। सुपार्श्व-नाथ की, तीन लाख तीस हजार। चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, ये तीन जिन की, तीन–तीन लाख अस्सी–अस्सी हजार। श्रेयांस की, एक लाख बीस हजार। वासुपूज्य की, एक लाख छह हजार। विमल–जिन की, एक लाख तीन हजार। अनंतनाथ की, एक लाख आठ हजार। धर्मनाथ की, बासठ हजार च्यारि सौ। शांति–जिन की, साठ हजार तीन सौ। कुंथ की, साठ हजार तीन सौ, अरह की, साठ हजार। मल्लिनाथ की, पचपन हजार। मुनिसुव्रत की, पचास हजार। नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्द्धमान, इन च्यारि–जिन की, यथा योग्य जानना। ये चौबीस–जिन के संघ की, आर्यिका का प्रमाण कह्या। आगे श्रावक–श्राविकाओं का प्रमाण कहिये है—तहां वृषभ-देव से चन्द्रप्रभ पर्यंत, आठ तीर्थंकरन के समय, तीन लाख श्रावक भये। अरु पुष्पदंत से लगाय, शांतिनाथ पर्यंत, दोय–दोय लाख श्रावक भये। और कुन्थ सूं लेय, महावीर पर्यंत, एक-एक

लाख श्रावक। ये तो श्रावक–संख्या कही॥ अब श्राविका का प्रमाण–तहां वृषभदेव तैं लगाय-महावीर पर्यन्त, यथायोग्य श्राविका जान लेना॥ ऐसे चौबीस–जिन का संघ, च्यारि प्रकार कह्या। आगे चौबीस–जिन के शिष्य, सिद्ध भये। तिनका प्रमाण अनुक्रम तैं कहिये हैं–तहां वृषभदेव के शिष्य, साठ हजार नौ सौ सिद्ध भये। अजित–जिन के, बहत्तरि हजार एक सौ। संभव–जिन के, एक लाख सत्तरि हजार एक सौ। अभिनंदन–जिन के, दोय लाख अस्सी हजार एक सौ। सुमतिनाथ के, तीन लाख एक हजार छह सौ। पद्मनाथ के, तीन लाख तेरह हजार छह सौ। सुपार्श्वनाथ के, दोय लाख पच्यासी हजार। चन्द्रप्रभ के, दोय लाख चौंतीस हजार। पुष्पदंत के, एक लाख गुन्यासी हजार छह सौ। शीतलनाथ के, अस्सी हजार छह सौ। श्रेयांस–जिन के, पैंसठ हजार छह सौ। वासुपूज्य के, चौवन हजार छह सौ। विमल–जिन के, इक्यावन हजार तीन सौ। अनंत–जिन के, इक्यावन हजार। धर्म-नाथ–जिन के, गुन्नास हजार सात सौ। शांतिनाथ के, अड़तालीस हजार च्यारि सौ। कुंथ-जिन के, छ्यालीस हजार आठ सौ। अरह–जिन के, तीस हजार दोय सौ। मल्लिनाथ–जिन के, अट्ठाईस हजार आठ। मुनिसुव्रत–जिन के, गुणतीस हजार दोय सौ। नमि–जिन के, नौ हजार छह सौ। नेमि–जिन के, आठ हजार। पार्श्व–जिन के, छह हजार दोय सौ। और महावीर के शिष्य, सात हजार दोय सौ, मोक्ष गये। ये चौबीस–जिन के शिष्य, मोक्ष भये। तिन का प्रमाण कह्या। सो वृषभदेव तैं शांति पर्यंत, सोलह तीर्थंकर, सिद्ध लोक पधारे।

तब तांई, तिन के शिष्य मोक्ष गये । भावार्थ—सोलह तीर्थंकरों कौं जब तैं केवलज्ञान
उपज्या। तब तैं लगाय, निर्वाण भया तब तांई, तिन के शिष्य मोक्ष गये । अरु शेष आठ
तीर्थंकरों के शिष्य, निर्वाण पीछे, महिना में, केई शिष्य दोय महिना में, केई च्यारि माम में,
केई वर्ष में, केई दोय वर्षादिक पीछे मोक्ष भये। ऐसे सब—जिन के शिष्यन की मोक्ष जानना।।
आगे चौबीस-जिन का, परस्पर अन्तर कहिये है-तहां वृषभदेव पीछे, पचास लाख कोडि
सागर काल व्यतीत भया, तब दूसरे अजितनाथ भये । अजितनाथ तैं, तीस लाख कोड़ि
सागर पीछे, तीसरे संभव—जिन भये । संभवनाथ के पीछे, दश लाख कोड़ि सागर के अंतर
तैं, चौथे अभिनंदन—जिन भये । अरु अभिनंदन तैं, नव लाख कोड़ि सागर पीछे, सुमतिनाथ
भये । अरु सुमति के पीछे, नव्बे हजार कोड़ि सागर अंतराल में, पद्मनाथ भये । पद्मनाथ
के पीछे, नव हजार कोड़ि सागर अंतर भये, सुपार्श्व भये । और सुपार्श्व के पीछे, नौ सौ
कोड़ि सागर अंतरकाल गये, चन्द्रप्रभ भये । चन्द्रप्रभ पीछे, नव्बे कोड़ि सागर अंतर गये,
पुष्पदंत हुए । पुष्पदंत के पीछे, नव कोड़ि सागर अंतर भये, शीतल—जिन भये । शीतल-
जिन के पीछे, अरु श्रेयांसनाथ के बीचि अंतर, छयासठि लाख बीस हजार वर्ष घाटि, एक-
कोड़ि सागर । और श्रेयांस—जिन के पीछे, चौवन सागर अंतर भये, वासुपूज्य—जिन भये ।
और वासुपूज्य पीछे, तेतीस सागर अंतर तैं, विमल—जिन भये । विमल पीछे, नौ सागर
अंतर तैं, अनंत—जिन भये । और अनंतनाथ पीछे, आधा पल्य काल व्यतीत भये, धर्मनाथ

भये। और धर्मनाथ पीछे, पौन पल्य घाट तीन सागर अंतर भये, शांतिनाथ भये। शांतिनाथ पीछे, आधा पल्य का अंतर भये, कुन्थनाथ भये। कुन्थनाथ पीछे, हजार कोड़ि वर्ष घाट, पाव पल्य अंतर भये, अरहनाथ भये। अरहनाथ पीछे, हजार कोड़ि वर्ष अंतर भये, मल्लिनाथ भये। मल्लिनाथ पीछे, चौवन लाख वर्ष अंतर भये, मुनिसुव्रत–जिन हुए। मुनिसुव्रत पीछे, छह लाख वर्ष अंतर भये, नमि–जिन हुए। नमिनाथ पीछे, पचास लाख वर्ष अन्तर भये, नेमिनाथ भये। नेमिनाथ पीछे, पौने चौरासी हजार वर्ष अन्तर भये, पार्श्वनाथ भये। अरु पार्श्वनाथ पीछे, अढ़ाई सौ वर्ष का अन्तर पड़े, वर्द्धमान–जिन भये। ऐसे चौबीस–जिन के, तेबीस अन्तराल कहे। सो महावीर मोक्ष पधारे, तब चौथे काल के तीन वर्ष साढ़े आठ महिना, बाकी थे। चौथा काल, ब्यालीस हजार वर्ष घाटि, एक कोड़ाकोड़ी सागर का है। तहां ब्यालीस हजार वर्ष में, इक्कीस हजार वर्ष का, पंचमकाल है। अरु इक्कीस हजार वर्ष का, छट्ठा काल है। सो पंचमकाल के अंत पर्यंत, महावीर का धर्म है। और छट्ठे काल में, धर्म का अभाव है। इति चौबीस–जिन अंतर॥ आगे धर्म का विरह–काल कहिये है–तहां वृषभदेव सूं लगाय, पुष्पदंत पर्यन्त तो धर्म अखण्ड चल्या। कबहूं मुनि, कबहूं श्रावक, कबहूं केवलज्ञानी भया करैं। तिनके प्रसाद तैं, धर्मोपदेश भया कर्या। अंतराल नाहीं पड़्या। और पुष्पदंत के पीछे, पाव पल्य तांई, धर्म का अन्तर भया। और शीतलनाथ के पीछे, आध पल्य तांईं, धर्म का विच्छेद भया। और श्रेयांस–जिन पीछे,

पौन पल्य तांईं, धर्म का विच्छेद भया। वासुपूज्य पीछे, एक पल्य तांईं, धर्म का विच्छेद हुआ। पीछे विमलनाथ–जिन भये। विमल–जिन पीछे, पौन पल्य; धर्म का अभाव भया। पीछे, अनंतनाथ भये। अनंतनाथ पीछे, आध पल्य धर्म का विच्छेद भया। और धर्मनाथ पीछे, पाव पल्य, धर्म का अभाव भया। ऐसे तीर्थंकरों के अंतराल में, च्यारि पल्य तांईं; मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि संघ का अभाव रह्या। जिन–धर्म मिट गया। जब तीर्थंकर प्रगटे, तब फेरि धर्म चल्या। ऐसा अन्तर भया। और प्रथम तैं आठ तीर्थंकरों के समय, निरंतर धर्म रह्या। और पहिले तीर्थंकर तैं लगाय, सात तीर्थंकर पर्यंत, तौ केवलज्ञान रूपी संपदा, निरंतर चली आई। केवलज्ञान का कबहुं अन्तर नहीं भया। और चन्द्रप्रभ पीछे, नब्बे केवली भये। बाकी काल में केवली नहीं रहे, मुनि ही रहे। पुष्पदंत के पीछे भी, नब्बे केवली भये। और शीतलनाथ के तीर्थ में, चौरासी केवली भये। और श्रेयांस पीछे, इन के तीर्थ में, बहत्तरि केवली भये। वासुपूज्य पीछे, इनके तीर्थ में, चवालीस केवली भये। और विमलनाथ पीछे, इन के तीर्थ में, चालीस केवली भये। और अनंतनाथ पीछे, छत्तीस केवली भये। धर्मनाथ पीछे, बत्तीस केवली भये। कुन्थनाथ पीछे, चौबीस केवली भये। अरहनाथ पीछे, सोलह केवली भये। मुनिसुव्रत पीछे, बारह केवली भये। नमि पीछे, आठ केवलो भये। नेमि पीछे, च्यारि केवली भये। पार्श्वनाथ पीछे, तीन केवली भये। और महावीर पीछे, तीन केवली भये। ऐसे चौबीस तीर्थंकरों पीछे, जेते–

जेते केवली भये, तिनकी संख्या कही । सो जहाँ लूं, दूसरे तीर्थंकर नहीं उपजे, तेते काल पहिले तीर्थंकर का वारा (तीर्थ) कहिये । जैसे प्रथम तीर्थंकर पीछे अजितनाथ उपजे, तब लों पचास लाख कोड़ि सागर, प्रथम-जिन का काल समझना । ऐसा सर्वत्र जानना । महावीर पीछे, बासठ वर्ष में, तीन केवली भये। तिनके नाम—गौतम गणधर-केवली, सुधर्माचार्य केवली, और तीसरे जम्बूस्वामी अन्त के केवली भये । यहां तें आगे केवली नाहीं । और इन जम्बूस्वामी पीछे; सौ वर्ष में; ग्यारह अङ्ग, चौदह पूर्व के पाठी आचार्य हुए । जिनके नाम सुनहु—विष्णु, नन्दमित्र, अपराजित, गोवर्धन, और भद्रबाहु । ये पांच आचार्य, महा बुद्धि सागर, सर्व श्रुत के पाठी भये। और इनके पीछे, एक सौ तियासी वर्ष में, ग्यारह आचार्य और होंयगे । सो ग्यारह अङ्ग अरु दश पूर्व के पाठी होंगे । तिनके नाम—विशाख, प्रोष्ठल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ धृतषेण, विजय, बुद्धिमान, गंगदेव, और धर्मसेन । इनके आगे, पूर्वन के पाठी नाहीं । इन आगे, दोय सौ बीस वर्ष में, पांच आचार्य, ग्यारह अङ्ग के पाठी होंयगे । तिनके नाम—निषध, जयपाल, पाण्डव, ध्रुवसेन, और कंस । इन तांई, ग्यारह अङ्ग का ज्ञान रहेगा । आगे इनके पीछे; सुभद्राचार्य, यशोभद्राचार्य, भद्रबाहु आचार्य, लोहाचार्य, ये च्यारि मुनि; एक सौ अट्ठारह वर्ष में, एक आचाराङ्ग के पाठी होंयगे । इन आगे, अङ्गन का ज्ञान नाहीं । आगे कहे, महावीर के गणधर ग्यारह, तिनकी आयु कहिये है—पहिले गणधर की आयु, बानवै वर्ष है । दूसरे की, चौरासी वर्ष की है । तीसरे

की आयु, अस्सी वर्ष। चौथे की, सौ वर्ष। पांचवें की, तियासी वर्ष। छटवें की, पिचासी वर्ष। सप्तम की, अठत्तर वर्ष। अष्टम की, ७२ वर्ष। नववें की, ६० वर्ष। दशवें की, ५० वर्ष। और ग्यारहवें की, ४० वर्ष। ये गणधरन की आयु कही। ऐसे चौबीस-जिन का संघ कह्या। आगे जब तीजे काल में, पल्य का अष्टम भाग बाकी रह्या, तब चौदह कुलकर भये। तिनके नाम—प्रतिश्रुत, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित, और नाभिराय। अब इन की आयु-कायादिक रचना कहिये है--तहां पहिला कुलकर प्रतिश्रुत, ताकी अट्ठारह सौ धनुष काय। इनके समय ज्योतिषी जाति के कल्पवृक्षन की ज्योति, कछू मन्द भई। सो सूर्य—चन्द्रमा दीखते भये। तिन कूं देख, प्रजा डरी। जो ये कहा है? तब कुलकर तें पूछी। हे प्रभो! ये कहा? अब-तक कभूं नहीं दीखे, सो ये हमारा कहा करैंगे, सो कहौ। तब कुलकर महा विवेकी, सर्व कूं सम्बोधे। कही, भय मति करौ। ये ज्योतिषी देवन के इन्द्र हैं। इनके विमान, अनादि—निधन हैं। अब तांई, कल्पवृक्षन की प्रभा तैं नहीं दीखते थे। सो अब वृक्षन की ज्योति मंद भई, तातैं दीखे। खेद-कारी नाहीं। ऐसे संबोध, प्रजा कों सुखी किया॥१॥ और दूसरे कुलकर की काय, १३०० धनुष। इनके काल में, ज्योतिषी जाति के कल्पवृक्षन की प्रभा, मंद भई। तब तारा—नक्षत्रन के विमान दीखे। तिनकूं देख, भोरी दुनियां डरी। तब जाय, कुलकर पै पूछी। तब कुलकर ने सर्व भेद बताय, सुखी किये। तातें सन्मति नाम भया॥ २॥ और तीसरे कुलकर की काय,

आठ सौ धनुष। याके समय, सिंहादिक जीव, क्रूर भये। तिन कूं देख, भोरे लोक डरते भये। तब कुलकर कूं पूछी। प्रभो, अब ताईं इन जीवन तैं रमै थे, सो नाना सुख होय था। अब ये भय करि, मारैं हैं। तब कुलकर, लोकन कूं भोरे-सरल परिणामी जानि, कही। तुम इनका विश्वास, मति करौ। लष्ट–मुष्ट तैं निवारौ। ऐसे कह, सुखी किये। सो इनका नाम, क्षेमङ्कर कह्या ॥ ३ ॥ और चौथे कुलकर के समय, शरीर की उतंगता, सात सौ पचत्तरि धनुष है। याके समय सिंहादिक जीव, क्रूर भये। तब कुलकर कही, तुम लाठी राखौ। आवै तब मारौ। विश्वास मति करौ। काल-दोष तैं, आगे विशेष क्रूर होंयगे। ऐसे उपाय बताय, सुखी किये। तातैं क्षेमंधर नाम भया ॥ ४ ॥ और पंचम कुलकर के समय, काय सात सौ पचास धनुष रही। कल्पवृक्ष घटि चले। कोऊ के कैसा कल्पवृक्ष नाहीं, कोऊ कैसा नाहीं। इसमें परस्पर खेद करते भये। तब कुलकर पै गये। सो कुलकर ने, अपनी-अपनी सीमा बताय दई। जो अपने-अपने क्षेत्र में होय, सो भोगौ। और दूसरे की सीमा का, ताकी आज्ञा के बिना, मति लावौ। आपस में याच लेव। जो फल जाके नहीं होंय, सो वापै लीनें। और वाकें जो फल नहीं होंय, सो वाकौं दीये। ऐसे उपाय कर, सीमा बांधी। तातैं सीमंकर नाम पाया ॥ ५ ॥ और छट्ठे कुलकर की काय, सात सौ पच्चीस धनुष है। इनके समय, कल्पवृक्ष विशेष घटि चले। तब परस्पर लोग खेद करि, कषाय रूप होने लगे। तब कुलकर ने, अपने-अपने कल्पवृक्ष के चिन्ह कर दिये। सो जो जाके चिन्ह का है, सो ही

भोगै। तातें इनका नाम, सीमंधर भया ॥६॥ और सातवें कुलकर की काय की ऊंचाई, सात सौ धनुष की थी। याने लोकन कूं, हस्ती—घोटकन की असवारी बताई। तातें इनका नाम, विमलवाहन भया ॥ ७ ॥ और आठवें कुलकर का शरीर, छह सौ पचत्तरि धनुष है। इनके समय, माता—पिता, बालक का मुख देख, मरण करते भये। पहिले माता—पिता, पुत्र का मुख नहीं देखैं थे। सो अष्टम कुलकर तैं, देखते भये ॥८॥ और नववें कुलकर का शरीर, छह सौ पचास धनुष भया। याके समय, माता—पिता, बालक भये पीछे केतेक काल, जीवते भये ॥ ६ ॥ और दशवें कुलकर का शरीर, छह सौ पचीस धनुष भया। याके समय, माता—पिता, बालकन कूं लेकर, चन्द्रमादि की समस्या करि रमावते भये ॥ १० ॥ और ग्यारहवें कुलकर का शरीर, छह सौ धनुष भया। याके समय में, परिवार सहित, लोक बहुत जीवते भये॥ ११ ॥ बारहवें कुलकर का शरीर, पांच सौ पचत्तरि धनुष है। अब लोग पुत्र सहित, सुखी होते भये ॥ १२ ॥ और तेरहवें कुलकर का शरीर, पांच सौ पचास धनुष ऊंचा था। ता समय बालक, जर सहित उपजते भये। ताहि देख, लोग डरे। तब कुलकर कूं, जर सहित बालक दिखाया। सो याने, जरा—छेदने की विधि बताई ॥ १३ ॥ और चौदहवें कुलकर, नाभिराय भये। सो इनके समय बालक, नाभि (नाल) सहित होने लगे। तब नाभि छेदवे की कला, इनने बताई। तातें नाभिराय भये। इनका शरीर, पांच सौ पचीस धनुष भया ॥ १४ ॥ ऐसे चौदह कुलकर, महा बुद्धिमान्, इनमें स्वयमेव ही अनेक

कला-चतुराई होय। महा सौम्यदृष्टी, मंद-कषायी होंय। ऐसे पल्य के आठवें भाग काल में, कुलकर चौदह भये। पीछे तीसरे काल के, तीन वर्ष साढ़े आठ महिना वाकी रहे, तब श्री आदिनाथ का निर्वाण—कल्याणक भया। और चौथे काल के, तीन वर्ष साढ़े आठ महिना वाकी रहे, तब अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी का, निर्वा—कल्याणक भया। और महावीर के मोक्ष गये पीछे, इक्कीस हजार वर्ष के पंचमकाल में, इक्कीस कलंकी होंयगे। इनके बीचि, इकईस उपकलंकी होंयगे। भावार्थ—इक्कीस हजार वर्ष का पंचमकाल है। तामें हजार वर्ष भये, एक कलंकी होंयगे। ता पीछे, पांच सौ वर्ष पीछे, एक उपकलंकी होंयगे। ता पीछे, पांच सौ वर्ष गये, एक कलंकी होंयगे। ऐसे हजार—हजार वर्ष गये कलंकी, हजार-हजार वर्ष गये उपकलंकी जानना। बहुत उपद्रवी, घने—क्षेत्र के धर्म—घातक होंय, सो कलं—की कहिये। अरु अल्प—क्षेत्र के धर्म—घातक होंय, सो उपकलंकी कहिये। सो कलंकी-उप-कलंकी सब ही, पापांधकार के उदय करवे कौं, रात्रि समान होंयगे। इनके राज्य में धर्म-रूपी सूर्य का प्रकाश, मिट जायगा। और पाप का अधिकार रहेगा। सो पाप-मुर्ति, धर्म के घातक फल तैं, अशुभ गति गमन करेंगे। ऐसे कुलकर व कलंकी कथन कह्या॥ आगे बारह चक्रवर्तीन की आयु कहिये हैं—तहां भरत चक्री की आयु, चौरासी लाख पूर्व की। तामें कुमारकाल, सतत्तर लाख पूर्व है। और महामण्डलेश्वर पद का राज्य, चालीस हजार वर्ष। पीछे चक्ररत्न उत्पन्न भया। पीछे दिग्विजय, साठ हजार वर्ष। राज्य, एक लाख वर्ष

घाटि, छह लाख पूर्व। संयमकाल, अन्तर्मुहूर्त। केवलज्ञान सहित किंचित् ऊन एक लाख पूर्व रह के, सिद्ध भये ॥ १ ॥ और दूसरे सगर चक्री की आयु, बहत्तरि लाख पूर्व। तामें इनका कुमारकालादि यथायोग्य जान लेना ॥ २ ॥ और तीसरा चक्री मघवा नाम। ताकी आयु, पांच लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद, पच्चीस हजार वर्ष। पीछे चक्र लाभ भये दिग्विजय, दश हजार वर्ष। राज्य, तीन लाख नव्बे हजार वर्ष। संयमकाल, पचास हजार वर्ष बाद, स्वर्गलोक गये ॥ ३ ॥ और चौथे चक्री, सनत्कुमार। ताकी आयु, तीन लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पचास हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद, पचास हजार वर्ष। पीछे चक्र लाभ तैं दिग्विजय, दश हजार वर्ष। राज्यावस्था, नव्बे हजार वर्ष। और संयमकाल, एक लाख वर्ष। पीछे स्वर्ग-गमन किया ॥ ४ ॥ और पंचम शान्तिनाथ-जिन, चक्री। तिनकी आयु, एक लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद, पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजय, आठ सौ वर्ष। चक्री पद, चौबीस हजार दोय सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। और सोलह वर्ष घाटि पच्चीस हजार वर्ष, समोशरण सहित विहार किया। पीछे सिद्ध भये ॥ ५ ॥ और छट्ठे कुंथनाथ-जिन, चक्री। तिनकी आयु, पंचाणवै हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पौने चौबीस हजार वर्ष। मण्डलीक राज्य पद, पौने चौबीस हजार वर्ष। दिग्विजय, छह सौ वर्ष। चक्री पद, तेबीस हजार डेढ़ सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। और केवल अवस्था, सोलह वर्ष घाटि पौने चौबीस

हजार वर्ष। पीछे मोक्ष गये ॥ ६ ॥ और सातवें अरहनाथ–जिन, चक्री । तिनकी आयु, चौरासी हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, इक्कीस हजार वर्ष। मण्डलीक राज्य पद, इक्कीस हजार वर्ष। दिग्विजय, च्यारि सौ वर्ष। चक्री पद, बीस हजार छह सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि, इक्कीस हजार वर्ष, केवलज्ञान सहित उपदेश दिया। पीछे लोक शिखर विराजे ॥ ७ ॥ और आठवां चक्री, सुभूमि। ताकी आयु, अड़सठ हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पांच हजार वर्ष। और दिग्विजय, पांच सौ वर्ष। चक्री पद, बासठ हजार पांच सौ वर्ष। अरु यह बाल्यावस्था में, परशुराम के भय तैं सन्यासीन के आश्रम विषैं गोप रहे। तातैं वैराग्य नहीं भया। राज्यावस्था में मरण किया। सो महातम नाम, सप्तम लोक–पाताल में पधारे ॥ ८ ॥ और नौवें, महा पद्म चक्री। ताकी आयु, तीस हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पांच सौ वर्ष। मण्डलीक पद, पांच सौ वर्ष। तीन सौ वर्ष, दिग्विजय। चक्री पद, अट्ठारह हजार सात सौ वर्ष। संयमकाल, दश हजार वर्ष। याही में मुनिपद अरु केवलपद पाय, पीछे सिद्ध भये ॥ ९ ॥ और दशवें, सुषेण चक्री। तिनकी आयु, छब्बीस हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, सवा तीन सौ वर्ष। दिग्विजय, डेढ़ सौ वर्ष। चक्री पद, पच्चीस हजार एक सौ पचत्तरि वर्ष। संयमकाल, साढ़े तीन सौ वर्ष। तामें दीक्षा अरु केवलज्ञान दोऊ आय गये। पीछे मोक्ष गये॥ १० ॥ ग्यारहवें जयसेन चक्री। तिनकी आयु, चौबीस सौ वर्ष। तामैं कुमार-काल, सौ वर्ष। दिग्विजय, सौ वर्ष। चक्री पद-राज्य, अट्ठारह सौ वर्ष।

संयम-काल, केवलज्ञान सहित च्यारि सौ वर्ष ॥११॥ और बारहवां, ब्रह्मदत्त चक्री। ताकी आयु, सात सौ वर्ष। ये चक्री नेमिनाथ के पीछे, अरु पार्श्वनाथ के पहिले, इस अंतराल में भये। सो इनका कुमारकाल, अट्ठावीस वर्ष। मण्डलीक पद, छप्पन वर्ष। दिग्विजय, सोलह वर्ष। चक्री पद का राज्य, छह सौ वर्ष। इन्हों ने दीक्षा नहीं लीनी। राज्यपद में मरण करि, सप्तमी माघवी–धरा पधारे ॥१२॥ यह बारह चक्री की, आयु की विगत कही। सो इन में, आठ चक्री तौ सिद्ध भये। दोय, स्वर्ग लोक गये। दोय, पाताल–धरा पधारे। आगे नव, अर्द्ध-चक्रीन का कथन कहिये है–प्रथम वासुदेव–त्रिपिष्ट की आयु, चौरासी लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजय काल, एक हजार वर्ष। अरु राज्यपद, तियासी लाख चुहत्तर हजार वर्ष ॥ १ ॥ और दूसरा वासुदेव–द्विपिष्ट। ताकी आयु, बहत्तरि लाख वर्ष। तामें कुमार-काल, पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद का राज्य, पचीस हजार वर्ष। दिग्विजय का काल, सौ वर्ष। अरु वासुदेव पद, इकत्तरि लाख गुणचास हजार नौ सौ वर्ष ॥ २ ॥ और तीसरा वासुदेव, स्वयम्भू। ताकी आयु, साठ लाख वर्ष। ताका कुमार-काल, पचीस सौ वर्ष। अरु मण्डलीक पद, पचीस सौ वर्ष। दिग्विजय, नव्बे वर्ष। अरु तीन खण्ड का राज्य, गुणसठि लाख चौरानवै हजार नव सौ दश वर्ष ॥ ३ ॥ अरु चौथा वासुदेव, पुरुषोत्तम। ताकी आयु, तीस लाख वर्ष। तामें कुमार-काल, सात सौ वर्ष। मण्ड-लीक राज्य–पद, तेरा सौ वर्ष। दिग्विजय, अस्सी वर्ष। और तीन खण्ड का राज्य, गुण-

तीस लाख सत्यानवै हजार नव सौ वीस वर्ष ॥ ४ ॥ पंचम वासुदेव, सुदर्शन । ताकी आयु, दश लाख वर्ष। तामें कुमार-काल, तीन सौ वर्ष। मण्डलीक पद, सौ वर्ष। दिग्विजय, सत्तरि वर्ष। और चक्री पद, नौ लाख निन्यावै हजार पांच सौ तीस वर्ष ॥ ५ ॥ और छठा, पुण्डरीक वासुदेव भया। ताकी आयु, पैसठ हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, अढ़ाई सौ वर्ष। मण्डलीक पद, अढ़ाई सौ वर्ष। दिग्विजय, साठ वर्ष। और तीन खण्ड का राज्य, चौंसठ हजार च्यारि सौ चालीस वर्ष ॥ ६ ॥ और सातवां, दत्त नाम नारायण। ताकी आयु, बत्तीस हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, दोय सौ वर्ष। मण्डलीक पद, पचास वर्ष। दिग्विजय, पचास वर्ष। और तीन खंड का राज्य, इकतीस हजार सात सौ वर्ष ॥७॥ और आठवां वासुदेव, लक्ष्मण। ताकी आयु, बारह हजार वर्ष। कुमार-काल, सौ वर्ष। दिग्विजय काल, चालीस वर्ष। अरु राज्य काल, ग्यारह हजार आठ सौ साठ वर्ष ॥ ८ ॥ और नववां वासुदेव, कृष्णदेव। ताकी आयु, एक हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, सोलह वर्ष। मण्डलीक पद, छप्पन वर्ष। दिग्विजय, आठ वर्ष। अरु वासुदेव पद का राज्य, नौ सौ वीस वर्ष ॥ ९ ॥ ये नव वासुदेव की आयु का विस्तार कह्या॥ आगे आठवें, नववें नारायण के पिता–दादादिक पुरुषन के नाम। इनके पुत्रन के नाम। इनके समय जो बड़े-बड़े महान् राजा भये, तिनके नाम कहिये हैं। आठवें नारायण की तीन पीढ़ी कहिये हैं– तहाँ आगे, अनेक राजान करि बन्दनीक, सूर्य समानि तेज का धारी, प्रजा का माता-पिता;

महा न्यायवान्, रघु राजा भया। तिन तैं रघुवंश प्रगट भया। ताके वंश में, बड़े-बड़े राजा भये। सो प्रजापालक, न्याय के प्रभाव तैं, तिनका यश प्रगट भया। पीछे सांसारीक सामग्री विनाशीक जानि, पुत्रन कूं पुर-देशन का राज्य सौंप, दीक्षा धरि-धरि, स्वर्ग-मोक्ष कूं गये। ऐसे अनेक राजा भये। तिनके पीछे, राजा अनिरन्य भये। सो न्याय के सूर्य, प्रजा-रूपी कमल कूं सूर्य समान आनन्दकारी, तिनकैं राजा दशरथ, यश की मूर्ति होते भये। सो ये, राजा अनिरन्य के पुत्र राजा दशरथ, महा प्रतापी भये। जिनके तेज के आगे, वैरी रूपी सरोवर, सूखते भये। महा न्याय का जहाज भया। पीछे दशरथ जी के च्यारि; महादेवी, परम-सती, देवीन के रूप कूं जीतनहारी, रानी होती भईं। तिन रानी के नाम—कौशल्या, सुमित्रा, कैकई, और सुप्रभा। ये च्यारि महा भागवन्ती रानी, इनके च्यारि पुत्र भये। सो कौशल्या के गर्भ तैं तौ, श्रीरामचन्द्र जी का अवतार भया। सो बलभद्र भये। सुमित्रा के गर्भ तैं, श्री लक्ष्मण कुमार अवतार पावते भये, सो ये नारायण भये। और कैकई के गर्भ तैं, भरत नाम कुमार भये। और सुप्रभा के गर्भ तैं शत्रुघ्न कुमार अवतरते भये। ये च्यारों पुत्र, न्याय के जहाज, पृथ्वी रूपी मन्दिर के स्तंभन कूं, च्यारि स्थंभ ही होते भये। और श्रीराम-चन्द्र के दोय-पुत्र भये। तिनके नाम लव, और अंकुश। इन दोय पुत्रन ने, सीता जी के गर्भ तैं अवतार पाया। ये रघुवंशी कहाये। इति रघुवंश॥ आगे इन राम-लक्ष्मण के समय में जो-जो रावणादि राजा भये। तिन की परंपराय (वंश) कहिये है—तहां भीम

नाम राक्षस ने मेघवाहन कूं, पूर्व–भव का पुत्र जानि, लंका, पाताल–लंका, राक्षस–विद्या, और नवरतन का हार दिया। पीछे, अनेक राजा भये। ता पीछे राक्षस नाम राजा भया। इनने राक्षसवंश चलाया। पीछे अनेक राजा भये। सो यह विद्याधरन का वंश, आकाश समान निर्मल, तामें महा प्रतापी राजा सुकेत भये। ता सुकेत के, तीन पुत्र भये। माली, सुमाली, और माल्यवान्। सो माली तौ, इन्द्र नाम विद्याधर से युद्ध में मार्या पर्या। और सुमाली के, रत्नश्रवा नाम पुत्र भया। सो वंश का उजागर, तानैं न्याय सहित राज्य किया। अरु रत्नश्रवा की पट्टरानी केकसीता के उदर तैं, तीन पुत्र भये। दशमुख, कुंभकर्ण, चंद्रनखा पुत्री, पीछे विभीषण पुत्र भया। ये तीन पुत्र और एक पुत्री, रत्नश्रवा के भये। सो ये तीनों भाई, देव समान रूप, गुण व पराक्रम के धारी भये। और रावण के दोय पुत्र इन्द्रजीत, मेघनाद; मंदोदरी के गर्भ तैं भये। और मंदोदरी का पिता राजा मय, महा सामंत, अनेक विद्याधरन का नाथ भया। और मेघप्रभा नाम विद्याधर, ताके पुत्र खरदूषण ने, रावण की बहिन चन्द्रनखा कौं, बलात्कार हरी। पीछे चन्द्रनखा कूं, खरदूषण ने परणीं। यह खरदूषण भी महा योद्धा है। अरु चन्द्रोदय राजा का पुत्र विराधित, सो रावण का महा सामंत है। और विजयार्द्ध पर रथनूपूर, इन्द्रलोक समान पुर है। सो ताका राजा, संश्रार है। ताके इन्द्र नाम पुत्र भया। सो महा बली भया। ताने अपने सेवक विद्याधरन कौं, देवन के नाम थापे। और अपना नाम इन्द्र धर्या। उस महाबली ने, रावण के दादा

माली कूं, युद्ध मैं मास्या। ता पीछे रावण महा प्रतापी, पराक्रमी भया। सो अपने दादा का बैर लेवे कूं, इंद्र सूं युद्ध किया। सो युद्ध में जीत्या। और ता इन्द्र कूं, जीवता ही पकड़ि ल्याया। पीछे कही, मेरे घर पानी भरौ, तौ छोडूं। तब इन्द्र नाम विद्याधर ने, मान तजि कही, भरूंगा। ऐसी कही; तब इन्द्र कूं, रावण ने तज्या। सो इन्द्र ने संसार तैं उदास होय, राज्य तजि, दीक्षा धरी। नाना तप किये। और जक्षपुर का वैश्रवा नाम राजा। ताके कौशकी पट्टरानी महा सती। ताके गर्भ तैं, वैश्रवण नामा पुत्र का अवतार भया। सो राजा इन्द्र का मुख्य सेवक। सो इन्द्र के संग, यतीश्वर भया। ऐसे इन्द्र–रावण का संबंध जानहु। ये राक्षसवंशी रावण है। राक्षस–देव नाहीं। रावण, मनुष्य है। आगे, विद्याधरों में बानरवंशी हैं। तिनकी कथा सुनौ–आगे श्रीकंठ नाम विद्याधर भये। तिनने समुद्र के टापू में बंदर–द्वीप बसाया। ता श्रीकण्ठ के कुल में, राजा अमरप्रभ भये। तिन नैं ध्वजा में बन्दर का चिन्ह कराया। इससे बन्दरवंशी प्रसिद्ध भये। पीछे अमरप्रभ के कुल में, कह-कन्द नामा राजा भये। सो कहकंद के, दोय पुत्र भये। सो एक का नाम सूरजरज, अरु दूसरे का ऋष्यरज। सूरजरज कौं, बालि अरु सुग्रीव, ये दोय पुत्र भये। अरु ऋष्यरज के, नल अरु नील भये। अरु सुग्रीव के, अङ्ग अरु अङ्गद, ये दोय पुत्र भये। ये सुग्रीव का वंश कह्या। और इस ही वंश विषैं, राजान का राजा, महा तेजस्वी, अनेक विद्याधरन का नाथ, राजा प्रहलाद भया। ताके पुत्र महा पुण्याधिकारी, पवन समान महा बलवान्, राजा पवनंजय

भये। तिन पवनंजय के, अञ्जना के गर्भ तैं, महा बड़भागी, चरमशरीरी, हनुमान पुत्र भये। सो कामदेव भये। ये बन्दर-वंशीन का कुल कह्या। ये मनुष्य, महा रूपवान राजा हैं। बंदर नाहीं हैं। इनका वंश, बन्दर है। ऐसा जानना। ऐसे बन्दर-वंश कह्या॥ इति आठवें नारायण के समय का कथन, सामान्य कह्या। इनका विशेष, श्रीपद्मपुराणजी तैं जानना। आगे नववें नारायण व बलभद्र के कुल की पट्टावली, तथा इनके समय भये महान् राजा पाण्डवादिक, तिनकी उत्पत्ति कहिये है—तहां मुनिसुव्रत स्वामी का कुल हरिवंश, तामें अनेक कुल—मंडन राजा भये। ता पीछे महाप्रतापी राजा यदु भये। इन तैं यदुवंश प्रगट्या। तिन के कुल में, राजा नरपति भये। तिनके दोय पुत्र भये। एक शूर, दूसरे सुवीर। सो शूर के, अन्धकवृष्टि नाम पुत्र भये। और सुवीर के, भोजकवृष्टि भये। सो अन्धकवृष्टि के दश पुत्र भये। तिन में बड़े पुत्र का नाम तो, समुद्रविजय है। अरु सब तैं छोटे का नाम, बसुदेव है। और भोजकवृष्टि के, तीन पुत्र भये। उग्रसेन, महासेन, और देवसेन। सो उग्रसेन के, कंस नाम पुत्र भया। अरु देवसेन के, देवकी नाम पुत्री भयी। और समुद्रविजय कैं, जगत—गुरु नेमिनाथ, अवतार लेते भये। सो तप लेय, मोक्ष गये। अरु बसुदेव के, पद्म नाम बलभद्र, नारायण कृष्णदेव, जरत्कुमार, और गजकुमार, ये च्यारि पुत्र भये। और कृष्ण महाराज के प्रद्युम्न, शम्भुकुमार और भानुकुमार ये तीन पुत्र भये। और अन्धकवृष्टि के, कुन्ती अरु माद्री ये दोय पुत्री भईं। ऐसे राजा यदु का वंश सामान्य कह्या।

इति यदुवंश ॥ आगे कौरव-पांडव वंश कहिये है-तहां कुरुवंशीन में, आगे शांतिक नाम राजा भये। तिनकी शिवकी नाम, महासती रानी भई। ता शिवकी के गर्भ तैं, पाराशर नाम महा-प्रतापी राजा भये। तिनके, गंगा नाम स्त्री होती भई। सो ये, राजा-गंगाधर की पुत्री है। इस गंगा के गांगेय पुत्र भया। सो ये गांगेय, महा न्यायी, बाल-ब्रह्मचारी भये। और पाराशर की दूसरी रानी, धीवर के घर पलती, गुणवती नाम राजकन्या, पाराशर ने व्याही। ता गुणवती धीवर-पुत्री, ताकैं व्यास नाम राजा अवतरे। सो ये महा गुणवान राजा भये। तिनके सुभद्रा नाम रानी भई। ताके गर्भ तैं, व्यास राजा के तीन पुत्र भये। धृतराष्ट्र, पाण्डवकुमार, और विदुर। सो धृतराष्ट्र के दुर्योधन, दुस्शासनादि सौ पुत्र भये। और पाण्डव ने, अन्धकवृष्टि जी को, कुन्ती और माद्री ये दोय पुत्री परणीं। सो कुन्ती के, च्यारि पुत्र भये। सो बड़े तौ कर्ण, सो इनको बालपने में संदूक में धरि, जल में वहाये थे। सो चन्द्रपुरी में, राजा सूर्य के यहां पले। ये गुप्त भये थे। तातें पर-घर पले। पीछे कुन्ती के, तीन पुत्र और भये। युधिष्ठिर, भीम, और अर्जुन। अरु माद्री के नकुल और सहदेव, ये दोय भये। अरु अर्जुन के, अभिमन्यु नाम पुत्र भया। ऐसे कौरव-पाण्डवन की उत्पत्ति कही। इति पाण्डव-वंश, सामान्य कथन॥ आगे द्रोणाचार्य की वंश-पट्टावली कहिये है। तहां वंश तौ भार्गव है। तामें वामदेव, महा विद्यातिलक भये। ताकैं, कापिष्ठल-पुत्र भया। तिनकैं, यशस्थामा पुत्र भया। ताकैं, अवर नाम पुत्र भया। ताकैं, सरासर नाम पुत्र भया। ताकैं, द्रावण नाम पुत्र भया। ताकैं, निद्रावण पुत्र भया।

ताकैं, द्रोणाचार्य भय। ताकैं, अश्वत्थामा पुत्र भया। इति द्रोणाचार्य कुल ॥ आगे जरासिंधु की पट्टावली कहिये है—हरिवंश के राजा वसु के कुल में, मगधदेश का राजा निहतशत्रु भया। तिनके, राजा सतिपति भये। तिनके, बृहद्रथराजा भये। तिनके, राजा जरासिंधु और अपराजित राजा भये। सो जरासिंधु, नववां प्रतिहर भया। ताकै, कालयमन पुत्र भया। यह जरासिंधु का वंश कह्या। इति नववें नारायण के समय के पुरुषन का कथन ॥ आगे सगर-चक्री का वंश कहिये है—तहां इक्ष्वाकु तो वंश है। आदि—जिन के पीछे, असंख्यात राजा भये। ता पीछें, राजा धरणीधर। तिनके, तिरयशजय भये। तिनके पुत्र, जितशत्रु और विजयसागर ये दोय भये। सो जितशत्रु के तो अजितनाथ भये। अरु दूसरे भाई, विजयसागर कैं, सगर—चक्री भये। तिनके, साठ हजार पुत्र भये। और भागीरथ जी भये। ऐसा जानना। ये सगर—वंश ॥ ऐसे महान् पुरुषों की परिपाटी कही। सो भव्यन कूं मंगलकारी होऊ ॥ आगे ग्यारह रुद्रन का कथन कहिये है—तहां प्रथम, भीम नामा रुद्र है। सो आदिनाथ के समय भये। ताकी आयु, तियासी लाख पूर्व की है। शरीर की ऊंचाई, पांच सौ धनुष है ॥ १ ॥ दूसरा, जयतिशत्रु नाम। सो अजितनाथ के समय भया। इनकी आयु, इकत्तरि लाख पूर्व। शरीर की ऊंचाई, साढ़े च्यारि सौ धनुष है ॥ २ ॥ और तीसरा, नववें तीर्थंकर के समय भया, सो रुद्र नामका रुद्र है। इनकी आयु, दोय लाख पूर्व की है। काय, सौ धनुष है ॥ ३ ॥ और चौथा रुद्र, विश्वानल है। सो दशवें तीर्थंकर के समय भया। आयु,

एक लाख पूर्व। काय की ऊंचाई, नव्वे धनुष ॥ ४ ॥ पांचवां रुद्र, सुप्रतिष्ठ है। सो श्रेयांस तीर्थंकर के समय भया। याकी आयु, चौरासी लाख वर्ष। काय उतंग ८० धनुष है ॥५॥ और छठवां रुद्र, वासुपूज्य–जिन के समय भया। ताका नाम, अचल रुद्र है। आयु ताकी, साठ लाख वर्ष है। काय, सत्तर धनुष की है ॥६॥ और सातवां रुद्र, पुण्डरीक नाम। सो विमलनाथ के समय भया। ताकी आयु, पचास लाख वर्ष है। और काय, साठ धनुष है॥७॥ और आठवां, अजितधर नाम रुद्र। सो अनंतनाथ के समय भया। ताकी आयु, चालीस लाख वर्ष है। काय, पचास धनुष है ॥ ८ ॥ और नववां रुद्र, जितनाभि है। सो धर्मनाथ के समय भया। ताकी आयु, बीस लाख वर्ष। काय, अट्ठाईस धनुष है ॥९॥ और दशवां रुद्र, पीठि नाम है। सो शांतिनाथ के समय भया। ताकी आयु, एक लाख वर्ष। काय, चौबीस धनुष की है। ॥१०॥ और ग्यारहवां रुद्र, सात्यकी है। सो अंत में, महावीर के समय भया। आयु ताकी, गुणत्तरि वर्ष है। काय, सात हाथ की है ॥ ११ ॥ ये सर्व रुद्र, ग्यारह अंग व दश पूर्व के पाठी होंय हैं। और जिनका क्रोध रूप, सहज–स्वभाव है। इन ग्यारहों का ही कुमार-काल, संयम काल, संयम छूटने का काल, असंयम–काल ही है। ये पहिले संयम धारें हैं। अनेक तप–बल तैं, इनकी ज्ञानशक्ति, ऋद्धिशक्ति बधै–प्रगटै है। तब पीछे भोगाभिलाषी, मानार्थी होय, संयम तजैं हैं। ऐसा सर्व रुद्रन का सहज–स्वभाव जानना। इति रुद्र कथन ॥ आगे नव नारद का स्वरूप कहिये है–ये नव नारद हैं, सो नारायण के समय

ही होंय। सो तिनकी आयु-काय, नारायण-बलभद्र प्रमाण जानना। सो तिनके नाम सुनहु-भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुमुख, नरक-मुख, और अधोमुख। इति नारद नाम॥ आगे चौबीस कामदेव के नाम कहिये हैं-बाहुबलि, अमिततेज, श्रीधर, दशभद्र, प्रसेनजित, चन्द्रवर्ण, अग्निमुक्त, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघवर्ण, शांतिनाथ, कुंथनाथ, अरहनाथ, विजयराज, श्रीचंद्र, नलराजा, हनूमान, बलिराजा, वासुदेव, प्रद्युम्न, नागकुमार, श्रीपाल, और जम्बूस्वामी। ये चौबीस कामदेव कहे। ऐसे तीर्थंकरादि का स्वरूप-कह्या। सो अंत के महावीर स्वामी के मोक्ष गये पीछे, जब ६०५ वर्ष गये। तब राजा वीरविक्रमादित्य भये। और भगवान् के मोक्ष गये पीछे, हजार वर्ष बाद कलंकी भया। सो या भाँति पंचमकाल की मर्यादा में २१ कलंकी, २१ उपकलंकी, ऐसे ४२ राजा धर्म-नाशक होंयगे। तहां अंत का कलंकी, पंचमकाल के अंत में, जलमथ नाम होयगा। ता समय में भी, च्यारि प्रकार के संघ के, च्यारि जीव रहेंगे। तिनके नाम-तहां इन्द्रराज नाम आचार्य के शिष्य, वीरांगद नाम यतीश्वर होंयगे॥१॥ और सर्वश्री नाम अर्जिका हो है॥२॥ और अग्निला नामा महाधर्मात्मा श्रावक हो है॥३॥ और पंगुसेना नाम श्राविका हो है॥४॥ ये मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि मनुष्य, अंतिम धर्मात्मा हैं। इन पीछे, धर्मी-जीवन का अभाव हो है। इन के समय, जलमथ नामा कलंकी, अपने मंत्रिन तैं पूछेगा। भो मंत्री! कोई मेरी आज्ञा रहित भी है, अक सर्व जीव मेरी आज्ञा मानैं हैं? तब मंत्री कहेंगे। हे नाथ! तुम्हारी आज्ञा सर्व जीव

मानैं हैं । एक वीतरागी मुनि, तुम्हारी आज्ञा में नहीं हैं। तब राजा कहेगा। मुनि कहा करैं हैं ?
कहां रहैं हैं ? तब मंत्री कहेगा । वन में रहैं हैं । तन तैं भी निष्प्रेम हैं । शत्रु–मित्र, तृण–
कंचन, उन्हें समान हैं । महा वीतराग सौम्यदृष्टी हैं । भोजन समय, श्रावकन के घर अनेक दोष
टाल, शुद्ध–प्राशुक आहार लेय, ध्यान में लीन रहैं हैं । सो यती, कोई की आज्ञा में नहीं
हैं । तब कलंकी कहेगा । हमारी बस्ती में जब भोजन लेंय, तब प्रथम ग्रास, हासल (कर)
का देंय । तब मुनि के भोजन में तैं, प्रथम ग्रास लेंयगे । तब यती, अंतराय करि, वन में जा-
य, सन्यास धरि, तीसरे दिन पर्याय छोड़, कार्तिक वदी अमावस्या के दिन, एक सागर की
आयु सहित, स्वर्ग में देव होंयगे । और तब ही ये बात सुनि करि बाकी आर्यिका, श्रावक,
श्राविका, ये तीन जीव, संन्यास धरि, ताही स्वर्ग में महा ऋद्धि धारी देव उपजेंगे । ता दिन
ही प्रथम–पहर, धर्म–नाश होयगा । और आर्यखण्ड में धर्म का अभाव होयगा । और ता
दिन के मध्य में, राज्य का नाश होयगा । और ताही दिन के अन्त समय, अग्नि नाश हो-
यगी । आर्यखण्ड में, अग्नि नाहीं मिलेगी । और वस्त्र नाश होंयगे । तब सर्व नग्न रहेंगे । और
अन्न नाश भये, सर्व जीव मांसाहारी होंयगे । मुनि कौं उपसर्ग जानि, असुरेन्द्र आय, कलंकी कों
वज्र से मारेगा । सो मरकर कुगति जायगा । पीछे सर्व अंध होंयगे। महाक्रोधी होंयगे। मरकर
नरक–पशू होंयगे । तहां ही के आय उपजैंगे । दोय शुभगति का आवागमन, आर्यखण्ड
तैं मिट जायगा । धर्म नाश तें, सर्व आर्यखण्ड के जीव, महा दुखी होंयगे । ऐसे अवस–

र्पिणी का पंचमकाल पूरा होय। ता पीछे छट्ठे काल के २१ हजार वर्ष, महा दुख तैं पूर्ण होंयगे। पीछे जब छट्ठे काल के, ४९ दिन बाकी रहेंगे। तब सात दिन, खोटी–वर्षा होयगी। तिनके नाम–अति तीव्र पवन की वर्षा होय। ता करि सर्व पर्वत, पातउवा (पत्ता) की नांईं उड़ेंगे ॥ १ ॥ बहुत शीत की वर्षा ॥ २ ॥ खारे जल की वर्षा ॥ ३ ॥ जहर की वर्षा ॥ ४ ॥ वज्राग्नि की वर्षा ॥ ५ ॥ बालू–रज की वर्षा ॥ ६ ॥ धूम की वर्षा, ताकरि अंधकार होयगा ॥ ७ ॥ इन सात वर्षान तैं, इस क्षेत्र में प्रलय होयगा। ऐसे सामान्य अवसर्पिणी का व्याख्यान किया ॥ आगे उत्सर्पिणी का काल लगेगा। तहां छट्ठे काल लगते ही, भली वर्षा होयगी। ताकरि पृथ्वी, रस रूप होयगी। आगे प्रलय में, केई जीव, विद्याधर–देवों ने, कर (हाथ में) लेय, गंगा–सिंधु नदी के तट, विजयार्द्ध की गुफा में जाय धरे थे। सो अब साता भये आवेंगे। तिन करि फेरि रचना होयगी। तहां उत्सर्पिणी का प्रथम काल लगेगा। तामें रीति, छट्ठे कैसी होयगी। परन्तु या छट्ठे काल में आयु–काय की वृद्धि, और ज्ञान की बधवारी होयगी। ऐसे छट्ठे काल केसे, २१ हजार वर्ष पूर्ण होंयगे। तब फिर पांचवां, अरु उत्सर्पिणी का दूसरा काल लगेगा। ताके, इक्कीस हजार वर्ष। तामें २० हजार वर्ष व्यतीत भये, जब एक हजार वर्ष बाकी रहेगा। तब उत्सर्पिणी काल के, चौदह कुलकर होंयगे। तिनके नाम–कनक, कनकप्रभ, कनकराज, कनकध्वज, और कनकपुञ्ज। ये पांच तो कनक (स्वर्ण) समान तन के धारी होंयगे। और नलिन, नलिनप्रभ, नलिनराज, नलिनपुञ्ज,

और शेष पद्मप्रभ,
और नलिनध्वज । ये पांच, कमल के समान तन के धारी हौंयगे । और शेष पद्मप्रभ,
पद्मराज, पद्मपुञ्ज, और पद्मध्वज । ये चौदह कुलकर, पांचवें काल के अंत में हौंयगे ।
फेरि, चौथा काल लगेगा । सो कोड़ा-कोड़ी सागर का । तामें, चौबीस तीर्थंकर हौंयगे ।
तिनके नाम—महापद्म, सुरदेव, सुपार्श्व, स्वयंप्रभ, सर्वात्मभूत, देवपुत्र, कुलपुत्र, उदंक, प्रोष्ठिल,
जयकीर्ति, सुव्रत, अरःनाथ, पुण्यमूर्त्ति, निःकषाय, विपुल, निर्मल, चित्रगुप्त, समाधिगुप्त,
स्वयंप्रभ, अनुवृत्तिक, जय, विमल, देवपाल, और अनंतवीर्य । ये चौबीस—जिन, उत्सर्पिणी के
चौथे काल में, धर्म—तीर्थ के कर्त्ता, मोह अंधकार के दूर करवे कौं सूर्य्य समान, हौंयगे ।
इति आगामी चौबीस जिन ॥ आगे आगामी बारह चक्रवर्ती के नाम कहिये हैं—भरत, दी-
र्घदत्त, जयदत्त, गूढ़दत्त, श्रीषेण, श्रीभूति, श्रीकांत, पद्म, महापद्म, चित्रवान्, विमलवाहन,
और अरिष्टसेन । आगे आगामी नव नारायण के नाम कहिये हैं—नंदी, नंदमित्र, नंदन,
नंदभूति, महाबल, अतिबल, भद्रबल, द्विपिष्ठ, और त्रिपिष्ट। ये नव नारायण हौंयगे॥ इनही
नारायण के बड़े भाई, आगामी, बलभद्र हौंयगे । तिनके नाम—चंद्र, महाचंद्र, चद्रधर, सिंह-
चंद्र, हरिश्चंद्र, श्रीचंद्र, पूर्णचंद्र, शुभचंद्र, और बालचन्द्र। ये नव बलभद्र, आगे हौंयगे ॥ आगे
नव प्रतिनारायण हौंयगे। तिनके नाम—श्रीकंठ, हरिकंठ, नीलकंठ अश्वकंठ, सुकंठ, शिष्यकंठ, अश्व-
ग्रीव, हयग्रीव, और मयूरग्रीव। ये नव प्रति नारायण हौंयगे। इति प्रतिनारायण नाम ॥ आगे आगामी
ग्यारह रुद्र हौंयगे। तिनके नाम-प्रमद, सम्मद, हर्ष, प्रकाम, कामद, भव, हर, मनोभव, मारु, काम, और

अंगज। ये ग्यारह रुद्र कहे॥ ऐसे उत्सर्पिणी में तीर्थंकर, चक्री, नारायण, बलभद्र, प्रति-नारायण, ये बड़े पुरुष होंयगे॥ आगे भरतक्षेत्र संबन्धी, अतीत चौबीस-जिन होगये। तिनके नाम कहिये हैं–निर्वाणनाथ, सागर, महासाधु, विमलप्रभ, श्रीधर, सुदत्तनाथ, अमलप्रभ, उद्धर, अंगिर, सन्मति, सिंधु, कुसुमांजलि, शिवगण, उत्साह, ज्ञानेश्वर, परमेश्वर, विमलेश्वर, यशोधर, कृष्णमति, ज्ञानमति, शुद्धमति, श्रीभद्र, अतिकांति, और शांति। ऐसे तीन काल संबंधी, तीन चौबीसी तिनके नाम लेय, अंत-मंगल कूँ उन्हें नमस्कार किया। ये भगवान्, भव्यन कूं मंगल करो। और इनके माता–पिता, आयु का प्रमाण, चिन्ह का वर्णन कह्या। इन के वारे जो महान् नर भये। कामदेव, चक्री, नारायण, वलभद्र, प्रति-नारायण, कुलकर, रुद्र, नारद, इन आदि ये महान् पुरुष, भव्य राशि, निकट संसारी, इनका भी नाम मंगलकारी है। क्योंकि ये सर्व मोक्षगामी, जिनधर्म के पारगामी हैं। इन की कथा, मंगल के अर्थ, यहां प्ररूपण करी। इति तीनकाल संबंधी तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका पुरुषन के नाम॥ आगे अंत मंगल कौं, भरतक्षेत्र संबंधी सिद्ध–क्षेत्रन के नाम कहिये हैं-कैसे हैं सिद्ध क्षेत्र, जहां तैं महाव्रत के धारी योगीश्वर, शुक्लध्यान–अग्नि करि, अष्ट कर्म रूप ईंधन जलाय, निरञ्जन होय, सिद्ध–क्षेत्र, लोक के अंत तहां जाय विराजे, जहां अनंत-सिद्ध विराजे हैं। तातें जहां तैं ये प्रभु मोक्ष गये, तहां जाय, तिन सिद्ध-क्षेत्रन की प्रत्यक्ष बंदना करवे की तौ मो मैं शक्ति नाहीं। तातें इस ग्रन्थ के पूर्ण करवे कूं, अंत मंगल के मिस करि, सर्व क्षेत्रन के नाम लेय, मंगला-

चरण कीजिये है-सो प्रथम ही, आदिनाथ का निर्वाणक्षेत्र, कैलाश पर्वत है। सो अष्टापद कौं नमस्कार होऊ ॥ १ ॥ और अजितनाथ आदि, बीस तीर्थंकरों का निर्वाणक्षेत्र, सम्मेद-शिखर है। ताकौं नमस्कार होऊ ॥ २ ॥ और वासुपूज्य–जिन का निर्वाणक्षेत्र, चंपापुरी का बन है। ताकूँ नमस्कार होऊ ॥ ३ ॥ और नेमिनाथ-जिन कूं आदि लेय, बहत्तरि कोड़ि मुनि का निर्वाण क्षेत्र, गिरनार शिखर, ताकौं नमस्कार होहु ॥ ४ ॥ और महावीर का निर्वाण क्षेत्र, पावापुर का पर्वत है। ताकूँ नमस्कार होऊ ॥ ५ ॥ और वरदत्त आदि साढ़े तीन कोड़ि मुनि, तारंगा शिखर तैं मोक्ष गये। तिस क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ ६ ॥ और लाड नरेन्द्र आदि पाँच कोड़ि मुनि का निर्वाणक्षेत्र, पावागिर है। ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ७ ॥ और तीन पाण्डवन कूं आदि लेय, अष्ट कोड़ि मुनि का निर्वाण क्षेत्र, शत्रुंजय क्षेत्र है। ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ८ ॥ और बलभद्रादि आठ कोड़ि मुनि के मोक्ष होने का क्षेत्र, गजपंथ शिखर, ताकौं नमस्कार होऊ ॥९॥ और रामचन्द्र, सुग्रीव, हनुमान, आदि ९९ कोड़ि यतीश्वरों का निर्वाण क्षेत्र, तुंगीगिर है। ता क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ १० ॥ और रावण के पुत्रादि साढ़े बारह कोड़ि मुनि का निर्वाण क्षेत्र, रेवानदी के तट पर सिद्धवर-कूट है। तिस क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ ११ ॥ इंद्रजीत, कुंभकर्ण रावण के भाई–पुत्र, तिनका निर्वाणक्षेत्र, चूलिगिर नाम शिखर है। ता क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ १२ ॥ और अचलापुर की ईशान दिशा में, मेढ़गिर नाम शिखर है। ताकौं मुक्तागिर भी कहै हैं। सो

यहां तैं, साढ़े तीन कोड़ि मुनि मुक्ति गये। सो ताकूं नमस्कार होऊ ॥ १३ ॥ और राजा दशरथ के पुत्रन कूं आदि लेय, एक कोड़ि मुनि का निर्वाणक्षेत्र, कोटिशिला है। ताकूं नमस्कार होऊ ॥ १४ ॥ इत्यादिक अढ़ाई द्वीप विषैं तिष्ठते सिद्धक्षेत्र, तिन कूं नमस्कार होऊ। ये सिद्धक्षेत्र, इस ग्रन्थ के अंत–समाप्ति विषैं, कवीश्वर कूं भव–भव मंगल करवे में, सहाय होऊ। तथा इस ग्रन्थ के अभ्यासी भव्य जीव तिन कूं, सिद्धक्षेत्र–यात्रा समान फल विषैं, सहाय होऊ। ऐसे सिद्धक्षेत्र कूं नमस्कार करि, अंत-मंगल किया। आगे सिद्ध–लोक समान, अकृत्रिम–चैत्यालय मंगलकारी हैं। तातें यहां ग्रन्थ के अंत में, आठ कोड़ि छप्पन लाख सत्यानवै हजार च्यारि सौ इक्यासी जिनमन्दिर, अनादि–निधन, अकृत्रिम हैं। तिन प्रत्येक में एक सौ आठ जिनबिम्ब हैं। तिन कूं नमस्कार होऊ। तिन में सात कोड़ि बहत्तर लाख, तौ पाताल–लोक में हैं। च्यारि सौ अट्ठावन, मध्यलोक में है। चौरासी लाख सनतानवै हजार तेवीस, ऊर्ध्व–लोक में हैं। ते सब, मंगल की राशि हैं। सो कैसे हैं जिन-मन्दिर, सो कहिये हैं–उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य, भेद करि तीन प्रकार हैं। सो उत्कुष्ट जिन-मन्दिर, लम्बे १०० योजन, चौड़े ५० योजन, और ऊंचे ७५ योजन हैं। और मध्य चैत्यालयों का प्रमाण-५० योजन लम्बे, २५ योजन चौड़े, और साढ़े सैंतीस योजन ऊंचे हैं। और जघन्य चैत्यालयों का प्रमाण–२५ योजन लम्बे, साढ़े बारह योजन चौड़े, और १८ ॥। योजन ऊंचे हैं। सो भद्रशाल बन विषैं, नंदनवन विषैं, नन्दीश्वर द्वीप विषैं, और कल्पवासीन

के विमानन विषैं तौ; उत्कृष्ट अवगाहना के धारक जिनमन्दिर हैं। तिन की नींव, भूमि में दोय कोस है। और सौमनस बन, रुचिकगिर पर्वत, कुण्डलगिर पर्वत, वक्षारगिर पर्वत, ईष्वाकार पर्वत, और मानुषोत्तर पर्वत, तथा कुलाचलन पै, मध्य अवगाहना के जिनमन्दिर हैं। और विजयार्द्ध, जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्ष, इन पर चैत्यालयन की अवगाहना–एक कोस लम्बाई, आध कोस चौड़ाई, और पौन कोस ऊंचाई है। और भवनवासी–व्यन्तर देवों के क्षेत्रों के अकृत्रिम चैत्यालयों की अवगाहना का प्रमाण, अन्य ग्रन्थ करि जानना॥ और उत्कृष्ट चैत्यालयन के सन्मुख के बड़े द्वार, १६ योजन ऊंचे, और आठ योजन चौड़े हैं। और उत्कृष्ट चैत्यालयन के दोऊ तरफ के, छोटे–द्वार, आठ योजन ऊंचे, और च्यारि योजन चौड़े हैं। और मध्य चैत्यालयन के सन्मुख के बड़े द्वार, ८ योजन ऊंचे व च्यारि योजन चौड़े हैं। और मध्य चैत्यालयन के दोऊ पार्श्वन के छोटे द्वार, ४ योजन ऊंचे व २ योजन चौड़े हैं॥ और जघन्यावगाहना के चैत्यालय, २५ योजन लम्बे, व १२॥ योजन चौड़े और १८॥। योजन ऊंचे हैं। तिनके सन्मुख के बड़े द्वार ४ योजन ऊंचे और दोय योजन चौड़े हैं। और जघन्य चैत्यालयन के छोटे द्वार, दोय योजन ऊंचे व एक योजन चौड़े हैं। ऐसे तीन भेद रूप, चैत्यालय जानना। इन चैत्यालयन के, तीन--तीन, रत्नमई कोट हैं। और एक–एक कोट के, च्यारि–च्यारि दरवाजे हैं। तहां प्रथम दरवाजे तैं, मन्दिर पर्यंत जावे कों, च्यारि गली हैं।

तहां चारों तरफ, ४ मानस्तंभ हैं। और दरवाजन पै, ६ रत्नस्तूप हैं। और तिन तीन कोट के बीचि, दोय अंतराल हैं। तिन अंतरालन में पहिले—दूसरे कोट के बीचि तौ बन है। और दूसरे—तीसरे कोट के बीचि में, ध्वजा—समूह है। और तीसरे कोट के अरु जिन मन्दिर के बीच, गर्भगृह हैं। जैसे लौकिक में जुदे—जुदे कोठे होंय, तैसे जुदे—जुदे गर्भगृह जानना। और तिन गर्भ-गृहन के बीच में, देवछंद नाम मंडप है। सो मण्डप, रत्नमई स्थंभन के ऊपर, कनक वर्ण है। सो मण्डप, ८ योजन लम्बा, २ योजन चौड़ा, और ४ योजन ऊंचा है। ताके मध्य विषैं, रत्न—कनक मय सिंहासन है। तिसपर विराजमान, श्रीजिन-बिम्ब हैं। सो जिन-बिम्ब कैसा है, मानो साक्षात् तीर्थंकर देव ही हैं। पांच सौ धनुष, रत्नमई अवगाहना है। तहां मस्तक के ऊपर नीलमई परणम्या जो श्याम वर्ण रत्न, सो सुन्दर केशन की आभा कूं धारै है। और महा उज्ज्वल, हीरा मई दांत शोभैं हैं। और मूंगा समान लाल, अधर—ओष्ठ शोभैं हैं। और नवीन कोंपल समान लाल, उत्तम शोभा सहित, कोमल, हस्त की हथेली, और पांव की पगथली, शोभायमान हैं। ऐसे श्री जिनेन्द्र के प्रतिबिम्ब हैं। सो मानौं अब ही बोलैं हैं। तथा अबही विहार करैंगे। मानौं देखैं हैं। मानौं ध्यान रूप हैं। मानौं वाणी खिरै है। मानौं चैतन्य ही हैं। १००८ चिन्ह सहित हैं। तिनपर ६४ जाति के व्यंतरदेव, रत्नमई आकार लिये खड़े हैं। पंक्तिबंध हस्त जोड़े खड़े हैं। सो मानों चमर ही ढोर रहे हैं। और तीन लोक के छत्र समान तीन छत्र, रत्नमई,

शीश पै शोभायमान हैं। ऐसे जिनबिम्ब एक–एक गर्भगृह में, एक–एक हैं। और १०८ गर्भगृह हैं। तिन में १०८ प्रतिबिम्ब विराजमान हैं। तिन कौं नमस्कार होऊ। ऐसे कहे जिनबिम्ब, तिनके निकट दोऊ पार्श्वन विषैं, श्री देवी, सरस्वती देवी, सर्वल्ह जक्ष देव, और सनत्कुमार देव। इन च्यारि के, रत्नमई आकार पाईये हैं। ये महा भक्त हैं। और जिन–बिम्बन के निकट, अष्ट मंगल–द्रव्य शोभै हैं। तिनके नाम–झारी, कलश, आरसी, ध्वजा, पंखा, चमर, छत्र, और ठौणा। सो एक जाति के, एक सौ आठ–एक सौ आठ जानना। जैसे झारी १०८, कलश १०८, ऐसे जानना। ऐसे गर्भगृह का सामान्य स्वरूप कह्या॥ आगे इस गृह–बाह्य जो रचना और है। सो कहिये है–पूर्व में कह्या जो देवछंद मण्डप, सो नाना प्रकार रत्नमई, स्वर्णमई–फूलमालान करि शोभायमान है। ता मण्डप के पूर्व दिशा कूं, जिन–मन्दिर है। ताके मध्य में, स्वर्ण–रूपा मई, ३२ हजार धूपघट हैं। और बड़े-द्वार के दोऊ पार्श्वन विषैं, २४ हजार धूप–घट हैं। और बड़े द्वारन के बाह्य, ८००० रत्नमई माला, शोभायमान हैं। और तिन मालान के बीचि, २४००० स्वर्णमई माला हैं। और तिन बड़े द्वारन के आगे–सन्मुख, छोटे मण्डप हैं। ता विषैं सोलह–सोलह हजार कनक मई धूप-घट, अरु कनक मई माला, अरु कनक कलश पाईये है। और तहां मुख्य मण्डप के मध्य, अनेक प्रकार रमणीक शब्द करनहारा, रत्नमई छोटा घंटा है। और सन्मुख-द्वार के दोऊ तरफ के छोटे द्वार, तिन पै सर्व रचना, मालादिक का विस्तार, बड़े द्वार तैं

आधा जानना। और सर्व मन्दिर के, तीन-तीन द्वार हैं। पीछे कूं द्वार नाहीं। और मन्दिर की पीछली भीति की तरफ, ८००० रत्नमई और २४००० स्वर्णमई माला हैं। और घंटा, धूपघड़े आदि अनेक रचना, पीछे कूं जानना। सो तहां घंटा कह्या, सो तो मंडप की छत्त तैं, लूंबता जानना। और धूपघट, धरती पै जानना। और माला, चौतरफ भीति, तिन तैं लटकती जाननी। ऐसे रचना सहित जिन-मन्दिर हैं। ताके आगे १०० योजन लम्बा, ५० योजन चौड़ा और १६ योजन ऊंचा, जिन-मन्दिर समान, एक मुख्य मण्डप है। सो अनेक रचना सहित जानना। ताही मुख्य मण्डप के आगे, एक चौकोर, प्रेक्षण मंडप है। ताका विस्तार १०० योजन लम्बा-चौड़ा, और कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचा है। और इस प्रेक्षण मंडप के आगे, दोय योजन ऊंचा, ८० योजन चौड़ा-लम्बा एक पीठि कहिये चबूतरा है। सो कनकमई जानना। तिस पीठिका के मध्य, चौकोर, मणिमई, ६४ योजन लम्बा, १६ योजन ऊंचा, एक मण्डप है। इसही मण्डप के आगे, एक मणिमई, स्तूप की पीठिका है। सो पीठिका, ४० योजन ऊंची है। तिस पीठिका के चौतरफ, १२ वेदी हैं। तिन एक-एक वेदी के च्यारि-च्यारि द्वार हैं। ता पीठिका के मध्य, तीन कटनी सहित ६४ योजन ऊंचा, अनेक-रत्नमई स्तूप है। ता स्तूप के ऊपरि, जिनबिम्ब बिराजमान हैं। सो ऐसे, ६ स्तूप हैं। तिन सब का ऐसा ही वर्णन जानना। और तिन स्तूपों के आगे, १००० योजन लम्बा-चौड़ा, एक स्वर्णमयी पीठि है। ताके चौगिरद, १२ वेदी हैं।

तीन कोट व च्यारि–च्यारि द्वारन करि सहित, कोट–वेदी जानना। तिस पीठि के ऊपर, एक सिद्धारथ नामा वृक्ष है। ताका स्कंध ४ योजन लम्बा, और चौड़ा १ योजन है। ताकी च्यारि बड़ी शाखायें, १२ योजन लम्बी हैं। और छोटी शाखा, अनेक हैं। और वृक्ष, ऊपर १२ योजन चौड़ा है। और अनेक पात, फूल, फलन करि सहित है। सो यह वृक्ष, रत्नमई जानना। यह एक सिद्धारथ नामा, बड़ा वृक्ष जानना। ताके परिवार में अनेक वृक्ष हैं। और ऐसी ही रचना सहित तथा ऐसा ही विस्तार धरैं, चैत्य–वृक्ष है। ऐसे सिद्धारथ व चैत्य ये दोय महा-वृक्ष हैं। सो सिद्धारथवृक्ष के मूल विषैं तिष्ठती, सिद्ध-प्रतिमा है। और चैत्यवृक्ष के मूलभाग विषैं तिष्ठती, समभूमि पै; तीन पीठिका, सिंहासन, छत्र, आदि अनेक प्रकार की रचना सहित, च्यारों दिशा विषैं, अरहंत प्रतिमा विराजमान हैं। तहां अर्हंत व सिद्ध प्रतिमा विषैं, विशेष एता जानना। जो सिद्ध प्रतिमा कैं चमर–छत्रादि की रचना नाहीं। और अरहन्त प्रतिमा कैं, चमर–छत्रादि की रचना होय है। और तिस पीठि के आगे एक पीठि है। तामैं नाना–प्रकार ध्वजा शोभै हैं। तिन ध्वजान के, स्वर्णमई दण्ड हैं। सो दंड, १६ योजन लम्बे हैं। और एक योजन चौड़े हैं। और तिन ध्वजान के, अनेक प्रकार वर्ण हैं। रत्नमई, वस्त्र हैं। तिन ध्वजान के ऊपर, तीन–तीन छत्र शोभैं हैं। तिन ध्वजान के आगे, जिन मन्दिर हैं। तिन जिनमन्दिरों के आगे, चौतरफ, च्यारि दिशान कौं, च्यारि द्रह (तालाब) हैं। सो द्रह १०० योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े, और दश योजन गहरे हैं। ये द्रह, कनकमई वेदीन

करि, भले शोभायमान हैं। तिनमें कमल फूल रहे हैं। ताके आगे, मार्ग रूप च्यारि बीथीं हैं। तिन बीथीन के दोऊ पार्श्वन विषैं, ५० योजन ऊंचे, २५ योजन चौड़े, रत्नमई, देवन के क्रीड़ा—मन्दिर हैं। तिन मन्दिरन के आगे, तोरण हैं। सो तोरण मणिमई स्थंभन परि, गोल, भीति रहित हो हैं। सो अनेक रचना सहित, रमणीक हैं। सो तोरण; मोती-माला, घंटा समूह करि शोभायमान हैं। सो तोरण ५० योजन ऊंचे, २५ योजन चौड़े हैं। तिन तोरणों के ऊपर भाग में, जिन-बिम्ब विराजमान हैं। तिन तोरण के आगे, स्फटिकमणि का प्रथम कोट है। तहां आभ्यन्तर कोट के द्वार के दोऊ पार्श्वन विषैं, रत्नमयी मन्दिर हैं। सो मन्दिर १०० योजन ऊंचे, ५० योजन चौड़े हैं। ऐसे प्रथम कोट पर्यंत वर्णन किया ॥ आगे पूर्व द्वार विषैं, जो मंडपादिकन का प्रमाण कह्या। तातैं आधा प्रमाण, दक्षिण व उत्तर द्वार का जानना। और कथन, तीनों तरफ का समान है। ऐसे कहि, अब पहिले-दूसरे कोट के अंतराल में, जो ध्वजा—समूह पाईये है। सो ध्वजान में दश जाति के चिन्ह हैं। सो कहिये हैं-सिंह, हस्ती, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्रमा, सूर्य, हंस, कमल, और चक्र। ऐसे दश चिन्ह सहित, ध्वजा समूह है। सो एक—एक चिन्ह की ध्वजा, १०८ हैं। जैसे सिंह जाति की ध्वजा, १०८ हैं। ऐसे सर्व जाति की ध्वजायें जानना। सो जिन—मन्दिर के एक तरफ की ध्वजायें, १०८० भई। और जिन-मन्दिर के चारों तरफ की ४३२० तो बड़ी ध्वजा जाननी। और इन बड़ी ध्वजान के साथ, एक सौ आठ-एक सौ आठ, छोटी ध्वजायें जाननी। ऐसे ध्वजा का बन कह्या ॥ और

तीसरे व दूसरे कोट के अन्तराल में जो रचना है। सो कहिये है-तहां च्यारों तरफ, च्यारि बन हैं। अशोकबन, सप्तच्छदवन, चंपकबन, और आम्रबन। ये च्यारि बन, तिनके फूल तो स्वर्णमई, अरु पत्ते वैडूर्य रत्न मई, हरित वर्ण हैं। तिनकी कोंपल, मरकतमणि मई हैं। तिन के फल महा-मनोग्य, रत्नमई हैं। ऐसे च्यारि ही बन, दश प्रकार के कल्पवृक्षन सहित, रमणीक हैं। तिन बनन विषैं, एक-एक चैत्य वृक्ष है। तिन के मूल भाग में, च्या-राँ दिशान में, पद्मासन श्री अर्हंत बिम्ब, चमर-छत्रादि प्रातिहार्य करि शोभित, विराजैं हैं। ऐसे एक-एक बन में, एक-एक चैत्य वृक्ष है। तिन के तीन-तीन कोट हैं। तिनकी तीन-तीन कटनी सहित, पीठिका हैं। इत्यादिक रचना सहित, रत्नमई चैत्यवृक्ष हैं। इन आदि बागबाड़ी, ध्वजापंक्ति, कलश, धूप-घट, मोतीमाला, आदि अनेक रचना सहित, अकृतिम जिन-मन्दिरों का, सामान्य स्वरूप कह्या। ताके निकट, सामायिक करवे के मन्दिर हैं। तहां भव्य सामायिक करैं हैं। और बंदना मण्डप हैं। तिस के पास स्नान करवे के स्थान हैं। जहां भव्यजन, पूजन करवे कूं स्नान करैं, सो अभिषेक मण्डप हैं। और तहां भक्त-जन के नृत्य करवे के स्थान, सो नृत्य मण्डप हैं। और तहां गान करवे के स्थान, सो जहां भव्य, भगवान् की गुणमाला का गान करैं, सो संगीत मण्डप हैं। और तहां नाना प्रकार की चित्राम-कलादि की अनेक रचना, महा शोभा सहित स्थान, तिनकौं देख; भव्य, अनुमोदना करैं। तिन कौं देखते, मन तृप्त न होय, सो अवलोकन

मण्डप हैं। और तहां केईक धर्मात्मा-जीवन के, धर्म-क्रीड़ा के स्थान हैं। और कैयेक स्थान ऐसे हैं जहां धर्मात्मा पुरुष, शास्त्रन का स्वाध्याय करैं। सो गुणग्रहण मण्डप हैं। और केई स्थान, अनेक पट्-चित्राम दिखावने के स्थान हैं। सो पट्शाला-स्थान हैं। ऐसे अनेक स्थान, अकृत्रिम चैत्यालयन के निकट पाईये। तहां धर्मात्मा, धर्म का साधन करैं हैं। ऐसे जिन मन्दिर अकृत्रिम, तीन लोक संबंधी हैं। तिन सर्व कौं, अंतिम मंगल निमित्त, हमारा मन—वचन—काय करि, बारम्बार नमस्कार होऊ। और सर्व कर्म रहित सिद्ध भगवान; अरु च्यारि घातिया कर्म रहित, अनंत चतुष्टय सहित, अर्हंत देव; अरु मुनि संघ विषैं अधिपति आचार्य; ग्रन्थाभ्यास विषैं आप प्रवृतैं, अरु औरन कूं प्रवृत्तावैं ऐसे उपाध्याय, और २८ मूलगुण सहित साधु; ऐसे कहे पंच परमेष्ठी, पंच परम गुरु, तिनकौं मन—वचन—काय शुद्ध करि, अंत मंगल के निमित्त, हमारा नमस्कार होऊ। ऐसे इस ग्रन्थ के पूर्ण होतें भया जो हर्ष, ताकरि अन्तिम मंगल निमित्त, अपने इष्टदेव कौं नमस्कार करि, पाप-मल धोय, निर्मल होने का कारण जानि, कवीश्वर ने कृत-कृत्यावस्था कूं प्राप्त होय, अपना भव सफल मान्या ॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, ग्रन्थ पूर्ण होते मंगल निमित्त, नमस्कार पूर्वक, अकृत्रिम चैत्यालय वर्णन, पंचपरमेष्ठी वर्णनो नाम, गुणतालीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥

आगे और जगत मंगलकारी, जिनराज के समोशरण हैं। ताका संक्षेप वर्णन कीजिये है-मंगल-मूर्ति, कल्याण का आकार समोशरण, भगवान् के विराजवे का स्थान, अनेक महिमा कौं लिये देवो-

एक पार्श्व के विषैं, आठ–आठ मंगल द्रव्य हैं। सो एक–एक मंगल द्रव्य, १०८ होय हैं। जैसे छत्र १०८, चमर १०८, ऐसे ही सर्व जानना। नौ निधि, नव जाति की हैं। सो एक-एक जाति की निधि, एक सौ आठ–एक सौ आठ हो हैं। ऐमी जाननी। सो एक–एक पार्श्व विषैं, एती रचना जाननी। और धूप–घट हैं। तिनमें सुगंध–द्रव्य, देवादि खेवैं हैं। तिनतें महा-सुगंध प्रगट होय रही है। और सर्व द्वारन पै, रत्नमई तोरण हैं। ते मोती-माला, कल्पवृक्षन के फूलन की माला, रत्न घंटा, इत्यादिक रचना सहित हैं। सो तोरण द्वार, कोटन तैं ऊंचे जानना। और तोरण तैं, कोटन के दरवाजे ऊंचे हैं। और समोशरण के एक तरफ के नौ द्वार हैं। तहां धूलिशाल तैं लगाय, तीन दरवाजेन पै तो, ज्योतिषी द्वारपाल हैं। और दोय द्वारन के ऊपर, यक्ष जाति के व्यंतर देव द्वारपाल हैं। और अगले दोय द्वारन पै द्वारपाल, नागकुमार–भवनवासी देव हैं। और दोय द्वारन के ऊपर द्वारपाल, कल्पवासी देव हैं। ऐसे च्यारों दिशा विषैं च्यारि जाति के देव, द्वारपाल हैं। सो सर्व महा भक्तिवान भये, हाथन में असि लिये हैं। केई स्वर्ण की छड़ी लिये हैं। केई गुर्ज लिये हैं। केई दण्ड लिये खड़े हैं। ऐसे दरवाजेन का स्वरूप कह्या। अब प्रथम भूमि की गली विषैं, मानस्थंभ है। ताका स्वरूप कहिये है। सो प्रथम गली के मध्य विषैं च्यारि-च्यारि द्वार सहित तीन कोट हैं। ते कोटन के द्वार, अनेक घंटा, ध्वजा, मालान करि शोभनीक हैं। तहां प्रथम–दूसरे कोट और दूसरे–तीसरे कोट के बीचि विषैं वन हैं। सो वन, अनेक शुभ

वृक्षन करि शोभायमान हैं। तहां कोयल, मयूर, आदि अनेक पक्षीन की ध्वनि होय रही है। तिस बन विषैं लोकपाल देवन के नगर हैं। तहां प्रथम बन की च्यारों दिशा विषैं, एक दिशा में इन्द्र—लोकपाल का भवन है। दूसरी तरफ, यम नामा लोकपाल का नगर है। तीसरी तरफ, वरुण नामा लोकपाल का नगर है। और चौथी तरफ, कुवेर नामा लोकपाल का नगर है। ऐसे प्रथम बन के अंतराल का कथन किया। और दूसरे-तीसरे कोट के, दूसरे अंतराल में, एक तरफ, अग्नि जाति के लोकपालन का नगर है। एक तरफ, नैऋत्य जाति के देवन का नगर है। एक तरफ, पवनकुमार देवन का नगर है। और एक तरफ, ईशान जाति के देवन का नगर है। ऐसे ये तीन कोटन के, दोय अंतरालन के नगर कहे। और तीसरे कोट के आभ्यंतर में, तीन कटनीदार उपरि—उपरि तीन पीठि हैं। सो प्रथम पीठि तो, पन्ना समान हरा है। तापै दूसरा पीठि, स्वर्ण मई है। तापै तीसरा पीठि, अनेक रत्नमई है। तिन की ऊंचाई, वृषभदेव के हाथ तैं आठ धनुष तो प्रथम पीठि की है। और ऊपर की दोय पीठि, च्यारि—च्यारि धनुष की हैं। और तीर्थंकरन के हीनक्रम की हैं। अब इन पीठिन की चौड़ाई कहिये हैं। सो नीचले दोय पीठिन की चौड़ाई तो अन्य ग्रन्थ तैं जानना। और ऊपर के तीसरे पीठि की चौड़ाई, वृषभ के १००० धनुष की है। और तीर्थंकरन के हीनक्रम की हैं। तहां तीसरे पीठि में मानस्थंभ है। सो मानस्थंभ नीचे से तो चौकार और ऊपर तैं गोल है। तहां नीचे तो वज्रमई है, मध्य में स्फटिक मई, और ऊपर पन्ना समान हरा है। ताकी, दोय

हजार धारा हैं। जैसे स्थंभ के पहलू होंय, तैसी धारा हैं। सो मानस्थंभ, घंटा, मोतीमाला, कलपवृक्षन के फूलन की माला, ध्वजा, इन आदि अनेक रचना सहित, शोभा कौं धरे है। तिस मानस्थंभ के उपरि भाग में, च्यारि दिशाओं में च्यारि अर्हंत बिम्ब हैं। सो अष्ट प्रातिहार्यन करि सहित हैं। अशोक वृक्ष, पुष्प वर्षा, दिव्यध्वनि, चमर, सिंहासन, भामण्डल, देवन के किये दुन्दुभी शब्द, और छत्र। ये अष्ट प्रातिहार्य हैं। तहां दिव्यध्वनि की तो आभासा है। मानूं अब ही दिव्यध्वनि खिरैगी। और सर्व प्रातिहार्य पाईये है। तिनके दर्शन किये, पाप नाश होय है। इस मानस्थंभ की प्रभा, आकाश विषैं योजन पर्यंत उद्योत करै है। तिसके देखते, आश्चर्य उपजै है। ताके अतिशय करि, इन्द्रादिक देवन का मान नहीं रहै। सर्व का मान जाय। सर्व नमस्कार करैं हैं। ऐसी महिमा धरै है। तातैं याका नाम, मानस्थंभ है। ऐसे सामान्य मानस्थंभ का स्वरूप कह्या। ऐसे ही च्यारों दिशान के मानस्थंभ का स्वरूप जानना। तिन मानस्थंभ के कोट में, च्यारों दिशा में, च्यारि-च्यारि बावड़ी हैं। तहां पूर्व दिशा के मानस्थंभ सम्बन्धी बावड़ीन के नाम-नंदा, नंदोत्तरा, नंदवती, और नंदघोषा। और दक्षिण के मानस्थंभ संबंधी बावड़ीन के नाम-विजया, वैजयंती, जयंती, और अपराजिता। और पश्चिम दिशा सम्बन्धी मानस्थंभ की बावड़ीन के नाम-अशोका, सुप्रतिबुद्धा, कुमुदा, और पुण्डरीकणी। आगे उत्तर दिशा सम्बन्धी मानस्थंभ की बावड़ीन के नाम-नंदा, महानंदा, सुप्रबुद्धा, और प्रभंकरी। ऐसे च्यारि दिशा सम्बन्धी, च्यारि मानस्थंभ की, सोलह

बावड़ीं जानना। इन एक—एक बावड़ी के बाह्य मुख पर दोय—दोय कुण्ड हैं। तहां के जल तैं भव्य जीव, पाद प्रक्षालन करैं हैं। और बावड़ी के जल तैं, प्रतिमाजी का अभिषेक होय है। ये सर्व बावड़ी हैं, सो स्वर्ण-रत्न मई हैं। रत्नमई पगथेन (पैंड़ीन) करि सहित, चौकोर हैं। निर्मल जल करि भरी, कमलन करि शोभायमान हैं। ऐसे मानस्थंभका सामान्य स्वरूप कह्या॥ आगे नाट्यशाला का संक्षेप स्वरूप कहिये है—तहां प्रथम गली के दोऊ पार्श्वन की, दोय नाट्यशाला हैं। सो तीन खण्ड की हैं। तहां एक—एक नाट्यशाला विषैं, ३२ अखाड़े हैं। एक—एक अखाड़े में ३२—३२ भवनवासिनी देवी नृत्य करैं हैं। और एक—एक नृत्यशाला के दोऊ पार्श्वन विषैं, दोय—दोय धूप घड़े हैं। और ये नृत्यशाला, रत्नमई अनेक शोभा सहित हैं। और ऐसी ही रचना सहित, चौथी गली विषैं, नृत्यशाला हैं। विशेष एता है। जो यहां कल्पवासिनी देवियां, नृत्य करैं हैं। और ऐसे ही छट्ठी गली विषैं, नाट्यशाला हैं। सो पांच खण्ड की हैं। यहां ज्योतिषी जाति की देवांगना नृत्य करैं हैं। ऐसे नाट्यशाला कहीं। सो यहां अपने-अपने नियोग प्रमाण, भक्ति की भरी देवीं, नृत्य करि, अपना भव सफल करैं हैं॥ आगे रत्न—स्तूप का स्वरूप कहिये है—तहां सप्तवीं गली विषैं एक-एक दिशा विषैं, नौ-नौ रत्न स्तूप हैं। सो ये रत्न राशि समान, उत्तंग शिखर कों धरैं हैं। तिनके बीच में, १०० तोरण हैं। और तिन स्तूपन के अग्रभाग पर, अर्हंत-प्रतिमा विराजमान हैं। सो तहां अष्ट-अष्ट मंगल द्रव्य व प्रातिहार्यन सहित हैं। छत्र,

चमर, सिंहासनादि अनेक अतिशय पाईये हैं। ऐसे स्तूप का संक्षेप कह्या। या प्रकार इन पृथ्वीन की रचना कही॥ और पंचम वेदी के आभ्यंतर—मध्य विषैं, तीन पीठि हैं। सो ऊपर—ऊपर गोल हैं। सो प्रथम पीठि, आठ धनुष ऊंचा है। सो वैडूर्य रत्नमई, हरा जानना। और दूसरा पीठि स्वर्णमई, ४ धनुष ऊंचा है। तीसरा पीठि, अनेक रत्नमई, च्यारि धनुष ऊंचा हैं। तहां प्रथम पीठि की, सोलह पगथ्यां है। और दोय पीठि की ८—८ पगथली हैं। तिन पीठि की चौड़ाई—वृषभ देव के समय, प्रथम पीठि, दोय कोस चौड़ाई सहित है। और जिनराज के हीनक्रम है। प्रथम पीठि विषैं च्यारों दिशा में च्यारि यक्षदेव, मस्तक पै धर्मचक्र धरैं, दोय हस्त जोड़े, विनय तैं खड़े हैं। ता धर्मचक्र के १००० आरा हैं। पंहिआ (चक्र) के आकार, गोल है। ताके तेज के आगे, अनेक सूर्य, मंद भासैं हैं। और तहां प्रथम पीठि पै, अष्ट मंगलद्रव्य हैं। और गणधरदेव, इन्द्र, चक्री आदि भक्तजन हैं; सो इस प्रथम पीठि पै चढ़ि, जिनदेव की पूजा—भक्ति करैं हैं। आगे नहीं चढ़ैं। पूजा करि, पीछे पायन, पगथेन की राह उतरैं हैं। सो अपनी सभा में आय तिष्ठैं हैं। और दूसरे पीठि में आठ ध्वजा हैं। तिन ध्वजान में चक्र, हस्ती, सिंह, माला, वृषभ, आकाश, गरुड़ और कमल इनके आकार हैं। अरु, यहां भी मंगल-द्रव्यादि अनेक रचना है। और तीसरे पीठि पै गंधकुटी है। सो चोकोर है। सो गंधकुटी वृषभदेव के समय की, ६०० धनुष चौड़ी है। इतनी ही ऊंची व लम्बी है। और—जिन के हीनक्रम की है। सो गंधकुटी, अनेक मोती-माला,

कल्पवृक्षन के फूलन की माला, रत्नमाला, अनेक जाति की ध्वजा, सुगंध-द्रव्यादि सहित शोभायमान है। तातें याका नाम गंधकुटी है। ताके मध्य, सिंहासन है। सो स्फटिक मणिमई, निर्मल है। अनेक रत्न जड़ित, शोभै है। अनेक घंटान करि शोभायमान है। ताके च्यारि पायेन की जायगा, च्यारि रत्नमई सिंहन के आकार हैं। सो बैठे सिंहाकार हैं। सो मानूं प्रत्यक्ष जीवित ही हैं। तथा मानों भगवान् की भक्ति करवे कों श्रावक-व्रत के धारी, सौम्य भावना सहित, धर्म-श्रवण कौं आये हैं। ऐसे सिंह बैठे हैं। तातें याकौं सिंहासन नाम दिया है। ता सिंहासन के मध्य, कमल है। ता कमल पर, अंतरीक्ष भगवान् विराजमान हैं। सो कमल, हजार पांखुड़ी का लाल वर्ण सहित है। ताकी कर्णिका पै, भगवान् विराजे हैं। तिन कूं बारम्बार हमारा नमस्कार होऊ। अब इस ही समोशरण के कोट, वेदी आदि रचना की ऊंचाई का प्रमाण कहिये है-सो समोशरण की पांच वेदी, च्यारि कोट, और गलीन की वेदी। सो इन की ऊंचाई तो अपने तीर्थंकर के शरीर की ऊंचाई तैं चौगुणी है। और क्रीड़ा-मन्दिर तथा जिन-मन्दिर तथा कोट-वेदी के द्वार के रतन-स्तूप, मानस्थंभ, ध्वजादण्ड, क्रीड़ा-पर्वत, नृत्यशाला, चैत्यवृक्ष, कल्पवृक्ष, सिद्धारथवृक्ष, अशोकवृक्ष, तथा बारह सभा, श्रीमंडप, एते स्थान अपने-अपने तीर्थंकरन के शरीर की ऊंचाई तैं, बारह गुणे ऊंचे हैं। और समोशरण का प्रमाण-वृषभदेव का बारह योजन प्रमाण है। औरन के यथा-योग्य घटता है। और जैसे अवसर्पिणी के जिनों का समोशरण-प्रमाण, घटता कह्या। तैसे

ही उत्सर्पिणी के जिनों का समोशरण–प्रमाण, बधता जानना। और विदेह क्षेत्रन में समोशरण का प्रमाण, वृषभ देव के समान, सदीव सर्व-जिन का जानना। ऐसे समोशरण का कथन किया। सो त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति, धर्मसंग्रह, समोशरण स्तोत्र, आदिपुराण, इत्यादिक ग्रन्थों के अनुसार वर्णन किया। और कोई आचार्य करि, सामान्य–विशेष रचना का कथन होय, सो केवलज्ञान-गम्य है। ऐसे सामान्य समोशरण की रचना कही। ऐसे समोशरण विषैं, श्री जिनेन्द्र विराजैं हैं। सो अष्ट प्रातिहार्य करि मण्डित हैं। सो तिन प्रातिहार्यन का विशेष कहिये है–सो तहां गंधकुटी के मध्य जाका मूल, अरु चौगिरद बड़े विस्तार धरैं; नाना-प्रकार रत्नमई शाखान व रत्नमई फल-फूल-पत्र सहित, अशोक वृक्ष है। ताके देखे, अनेक जाति का शोक जाता रहै है। तातें याका नाम अशोक वृक्ष है ॥ १ ॥ और देवन करि वर्षाई, सर्व समोशरण में अनेक वर्णमयी महा सुगंध सहित कल्पवृक्षन के फूलन की वर्षा, सो अद्भुत महिमाकारी, मानौं ज्योतिषी देवन के विमान ही आकाश तैं भगवान् के दर्शन कूं आये हैं। ऐसी प्रभा-सहित फूलन की वर्षा होनी। सो पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य है ॥२॥ और आकाश विषैं देवन करि बजाये १२॥ करोड़ जाति के अनेक सुन्दर वादित्रन के शब्द, सो दुंदुभी वादित्र हैं। उसी का नाम दुंदुभी प्रातिहार्य है ॥ ३ ॥ और जैसा जिनदेव के शरीर का वर्ण, ता समान शरीर की चौगिरद, गोलाकार, शरीर की प्रभा का मण्डल, सो प्रभामण्डल है। तामें भव्य जीव अपने-अपने अगले-पिछले

भव देखैं हैं। उसी का नाम प्रभामण्डल है॥ ४ ॥ तथा अनेक रत्न-मई सिंहासन शोभै है। तापै जिनदेव विराजैं हैं। सो सिंहासन प्रातिहार्य है ॥५॥ और एक दिन—रात्रि विषैं ४ बार छह-छह घड़ी पर्यंत, भगवान की वाणी खिरै। सो दिव्यध्वनि है। सो जैसे मेघ गर्जैं, तैसे शब्द करती, ओंठ नाहीं हिलैं, तालवा नाहीं हिलैं, सर्व शरीर तैं उत्पन्न भई, अक्षर रहित, भगवान् की वाणी खिरै। ताके निमित्त पाय, जो जीव जिस भाषा करि समझैं, जाका जैसा अभिप्राय होय, तथा जाकूं जैसा उपदेश योग्य होय, तिस जीव के श्रोत्र-इन्द्रिय द्वार तिष्ठे पुद्गल-स्कंध, तिस ही अर्थ कूं लिये, तैसे ही अक्षर रूप होय, परणमैं हैं। तिस करि सर्व जीव, जुदा-जुदा उपदेश धारण करैं हैं। ऐसे अतिशय सहित, भगवान् की वाणी का होना। सो दिव्यध्वनि प्रातिहार्य है ॥६॥ और तीन रत्नमई छत्र, भगवान के मस्तक पै फिरैं। सो छत्र प्रातिहार्य है ॥ ७ ॥ और देवन करि ढोरे गये ६४ रत्नमई चमर, गंगाधारा समान उज्ज्वल, सो चमर प्रातिहार्य सहित, भगवान् समोशरण मैं विराजैं हैं ॥ ८ ॥ सो भगवान् कैं है तो एक मुख, परन्तु च्यारों दिशा विषैं तिष्ठते जीव, तिनकूं च्यारों ही तरफ मुख दीखै। च्यारों ही दिशा के जीव ऐसा जानैं, जो भगवान् का मुख हमारे सन्मुख है। तथा उन्हें भगवान् के च्यारि मुख दीखैं हैं। और भगवान की मुद्रा, बिना यत्न ही नाशाग्र-दृष्टि धरैं, ध्यान-रूप, समता-रस मई होय है। तातैं भगवान् का दर्शन करनहारे भव्यन की; दर्शन करते ही, ध्यान मुद्रा का स्मरण होय, शांत दशा होय है। तातैं वीतराग-भाव वधै है। सो मुद्रा अतिशय सहित है। और कदाचित् शान्त

पुनीत समोशरण है। ताका दर्शन किये, नाम लिये, स्मरण किये, पाप नाश होय; पुण्य संचय होय। ऐसा जानि, ग्रन्थ के अंत मंगल कूं, अनेक शास्त्रन का रहस्य लेय, समोशरण का स्वरूप कहिये हैं--तहां प्रथम ही समोशरण की भूमि, समभूमि तैं ५००० धनुष, आकाश मे ऊंची है। ताके च्यारों दिशा विषैं; समभूमि तैं लगाय, समोशरण भूमि पर्यंत; बीस हजार पैंड़ीं, च्यारों दिशाओं में हैं। ते पैंड़ीं (सीढ़ी) स्वर्णमई हैं। सो पैंड़ीं, वृषभदेव के हाथ से, एक हाथ चौड़ीं, एक हाथ ऊंचीं, और एक कोस लम्बीं हैं। और अन्य-जिन की, क्रम तैं हीन हैं। सो हीन का प्रमाण कहिये हैं—वृषभदेव का जो प्रमाण है तामें २४ का भाग दीजिये, तामें तैं एक भाग घटावना। ऐसे नेमनाथ तक, एक भाग घटावना। और पार्श्व-नाथ व वीर के, तिस तैं आधा भाग घटावना। सो समभूमि तैं, २॥ कोस आकाश में जाइये। तहां वृषभदेव की बारह योजन, नील रत्नमई गोल—शिला है। सो तो समोशरण की समभूमि है। या पै सर्व रचना है। और-तीर्थंकरन के समोशरण का हीनक्रम है। सो नेमनाथ पर्यंत, आधा-आधा योजन, हीन है। और पार्श्वनाथ, वीर का पाव—पाव योजन घटता है। ऐसे महावीर का, १ योजन का समोशरण है। तिस शिला विषैं, शिवानन की सीध में ४ गली, च्यारों दिशा में हैं। ते गली, शिवानन (भगवान) की लम्बाई प्रमाण चौड़ीं हैं। जैसे वृषभ देव की एक कोस चौड़ीं, लम्बीं २३ कोस गलीं हैं। सो धूलशाल के दरवाजे तैं लगाय, गंधकुटी के द्वार पर्यंत, लंबाई जाननी। और इन गलीन के दोऊ तरफ, स्फटिकमणिमई

भीति हैं। इनकौं वेदी कहिये। इन दोऊ वेदीन के वीचि जो चौड़ाई, सो गली की चौड़ाई है। और उन वेदीन की चौड़ाई, वृषभदेव के हाथ तैं ७५० धनुष है, और-जिन की हीन है। तिन गलीन के बीचि, ४ अंतराल रूप भूमि हैं। तिन विषैं, ४ कोट व ५ वेदी हैं। अरु इन नव के अंतराल विषैं, ८ भूमि हैं। सो शिला के अंतभाग विषैं कोट है। ताके परे, चैत्य-प्रसाद नाम भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, खातिका की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, पुष्पवाड़ी की भूमि है। ताके परे, दूसरा कोट है। ताके परे, उपबन की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, ध्वजा-समूह की भूमि है। ताके परे, तीसरा कोट है। ताके परे, कल्पवृक्ष की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, मन्दिर की भूमि है। ताके परे, चौथा कोट है। ताके परे, सभा की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ऐसे तिन गलिन के अन्तराल रूप भूमि विषैं, रचना जाननी। और तिन गलिन विषैं, ४ कोट व ५ वेदीन के द्वार हैं। सो एक गली संबंधी, नव द्वार हैं। च्यारों गली संबंधी, ३६ दरवाजे हुए। और प्रथम कोट व प्रथम वेदी, ताके बीचि सो प्रथम भूमि है। तातैं प्रथम कोट व प्रथम वेदी, इन के बीचि गली, सो प्रथम भूमि कहिये। ऐसे ही अन्य द्वारन के बीचि द्वितीयादि भूमि जानना। तहां प्रथम भूमि की गली, ताके मध्य विषैं, तौ मानस्थभ है। सो च्यारि दिशा संबंधी, ४ मानस्थंभ हैं। एक-एक मानस्थंभ के च्यारों दिशान में, च्यारि-च्यारि वावड़ी हैं। और इस गली के दोऊ पार्श्वन विषैं, दोय

नाट्यशाला हैं। ऐसे ही चौथी गली विषैं, दोय नाट्यशाला हैं। और छट्ठी गली के दोऊ पार्श्वन विषैं, यातैं दूनी नाट्यशाला हैं। और सप्तमी भूमि में, च्यारि दिशा में, नौ–नौ रत्न–स्तूप हैं। और आठवीं भूमि विषैं, बारह सभा हैं। और जो गली, के पार्श्वन कीं लम्बाई सहित वेदी हैं। सो अनेक द्वारन सहित हैं। तिन द्वारन के रत्नमई कपाट हैं। कोऊ भव्य, इनके चौतरफ की रचना देखे चाहै है। तो इन गलीन के द्वारन होय, जाय–आवै है। या प्रकार, गलीन की सामान्य रचना कही। और जो इन सर्व के मध्यभाग में, तीन पीठि हैं। ताके ऊपर गंधकुटी है। तामें सिंहासन है। तापै कमल है। तापर श्री भगवान्, अंतरीक्ष च्यारि-अंगुल, विराजै हैं। सो अष्ट प्रातिहार्य सहित, च्यारि चतुष्टय लिये, विराजमान जानना। ऐसे इनकी सामान्यपने रचना कही। अब तिनके स्थान बताइये है। और इनका विशेष कहिये है–तहां ४ कोट कहे, तिन में पहिला कोट, समोशरण की अन्तभूमि विषैं है। सो पंच–वर्ण, रत्न–चूर्ण का है। तातैं याका नाम, धूलिशाल है। नाना प्रकार वर्ण सहित, इन्द्र धनुष समान विचित्र है। और दूसरा कोट, तपाये स्वर्ण समान लाल है। तीसरा कोट, स्वर्ण समान पीत है। और चौथा कोट, स्फटिकमणि समान श्वेत है। और पांचों ही वेदी, स्वर्ण समान पीत हैं। ये च्यारि कोट, पांच वेदी, नव ही के ऊपर, अनेक वर्ण की ध्वजा, अरु अनेक शोभा सहित महल, शोभायमान हैं। यहां वेदी अरु कोट विषैं, एता विशेष है। जो वेदी तौ नीचे तैं लेय ऊपर पर्यंत, समान चौड़ी हैं। अरु

कोट नीचे तैं चौड़ा, अरु ऊपर हीनक्रम है। अब इन के बीचि, आठ भूमि हैं। ताका विशेष कहिये है—तहां प्रथम भूमि विषैं, एक चैत्यालय है। अरु पांच अन्य मन्दिर हैं। इन के बीचि; बावड़ी, बन, वृक्ष, इत्यादि की अनेक रचना है। और दूसरी भूमि विषैं, खातिका है। सो रत्नमई पगथेन (पैंड़ीं) करि सहित है। निर्मल-जल करि भरी है। सो जल की ऊंडाई, जिन-देव के शरीर तैं चौथे भाग है। अरु वह खाई, कमलन करि पूरित, नाना प्रकार जलचर व हंसादिक जीवन करि शोभनीक है। और तीसरी भूमि विषैं, फुलवाड़ी है। जो नाना प्रकार वृक्ष, फूल, बेलि करि शोभायमान है। अरु चौथी भूमि विषैं, उपवन हैं। सो च्यारि दिशान विषैं, च्यारि उपबन हैं। तिन के नाम—अशोकबन, सप्तपर्णबन, चंपकबन, अरु आम्रबन। ये बन, नाना प्रकार उत्तम वृक्ष करि सहित हैं। और इन बन विषैं, नाना प्रकार के, देव-क्रीड़ान के मन्दिर हैं। तथा ये बन; नृत्यशाला, बावड़ी, क्रीड़ा-पर्वत, तिनकरि शोभनीक हैं। इत्यादिक और भली रचना जाननी। तहां अशोकबन विषैं, अशोक नाम चैत्यवृक्ष है। ताके चौतरफ, तीन कोटन के भीतर, तीन पीठि हैं। तापै, अशोकवृक्ष है। ताके मूलभाग विषैं, च्यारों दिशा में, च्यारि अर्हन्त प्रतिमा हैं। तिन प्रतिमा जी के आगे, एक—एक मानस्थंभ है। ऐसे और तीन बनन में-सप्तपर्ण चैत्यवृक्ष, सप्तपर्ण बन में है। चंपकबन में, चंपक चैत्यवृक्ष। आम्रबन में, आम्र चैत्य—वृक्ष। ऐसे बन की रचना जाननी। और इस बन की बावड़ीन के जल करि स्नान कीजिये, तो एक-

भव की अगली-पिछली दीखै। और बावड़ीन के जल में देखिये, तौ अपने सात-भव की, अगली-पिछली दीखै है। और पंचम-भूमि विषैं, ध्वजान का समूह है। तहां एक दिशा संबंधी ध्वजा कहिये हैं-सिंह, हाथी, वृषभ, मोर, माला, आकाश, गरुड़, चक्र, कमल, और हंस। इन दश जाति की ध्वजा हैं। सो एक-एक चिन्ह की, १०८ महा ध्वजा हैं। और इन एक-एक महा ध्वजा संबंधी, १०८ छोटी ध्वजा और जाननी। ऐसे एक दिशा संबंधी ध्वजा कहीं। च्यारों ही दिशा संबंधी मिलाईये, तौ ४७०८८० ध्वजा होंय। ते सर्व ध्वजा, रत्नमई दण्डन करि सहित हैं। ते दण्ड, वृषभदेव के ८८ अंगुल चौड़े हैं। और परस्पर ध्वजा का २५ धनुष अंतराल जानना। और छठी भूमि विषैं, कल्पवृक्षन के बन-तहां वासन, गृह, आभूषण, वस्त्र, भोग, पान (जो पीने योग्य वस्तु देवें, सो पान), ज्योतिष, माला, वादित्र, और दीपक। ये दश जाति के, बन हैं। सो च्यारि दिशा में, ४ ही बन हैं। तहां एक-एक दिशा में एक-एक बन में, च्यारि चैत्य वृक्ष हैं। तिनके नाम-मेरु, मंदार, पारजाति और संतानक। ये च्यारि कल्पवृक्ष, चैत्य वृक्ष हैं। इनका विस्तार-वर्णन, पीछे अशोक चैत्य वृक्ष का कथन करि आये हैं, तहाँ समान जानना। एता विशेष है, जो यहां, सिद्ध-प्रतिमा विराजमान हैं। और सर्व वापी, मन्दिर, क्रीड़ा-पर्वतादि सर्व रचना, यहां-वहां समान जानना। और सातवीं भूमि विषैं, रत्नमई मन्दिरन की पंक्ति, बन की अनेक शोभा सहित है। तहां देव-देवी, भगवान् का गुण-गान करैं हैं। और आठवीं भूमि में, १२

सभा हैं। तहां तिस पृथ्वी संबंधी च्यारि अंतराल, तिन में दोय-दोय तो गली की वेदी हैं। और दोय-दोय तिन के बीचि, स्फटिक मणिमई भीति हैं। इन च्यारों भीति के बीचि, तीन अंतराल हैं। सो ही तीन कोठे। ऐसे च्यारों दिशान के, १२ कोठे भये। अरु १६ भीति भईं। तहां रत्न-स्थंभ हैं। तिन पै धस्या श्रीमण्डप है। मोती की माला, रत्न घंटा, धूप-घटादि अनेक रचना सहित है। और जगह तैं, यहां रचना उत्कृष्ट है। तहां १२ सभा के, बारह कोठे हैं। तिन में अनुक्रम तैं-मुनिराज, कल्पवासी देवी, मनुष्यणीं, ज्तोतिषी देव की देवियां, व्यंतर देव की देवियां, भवनवासिनी देवी, भवनवासी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिषी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य, और बारहवीं सभा में तिर्यंच बैठैं हैं। ऐसे अष्टमी भूमि में १२ सभा कहीं। अब इन आठभूमिन की गली का विशेष कहिये है-तहां प्रथम ही धूलिशाल कोट है। ताके ४ दरवाजे हैं। तिनके क्रम तैं नाम कहिये हैं-पूर्व दिशा का विजय, दक्षिण दिशा का वैजयंत, पश्चिम दिशा का जयंत, और उत्तर दिशा का अपराजित। ऐसे नाम हैं। और च्यारि कोट व पाँच वेदीन के, छत्तीस द्वार, च्यारों दिशा संबंधी हैं। तामें धूलिशाल कोट के च्यारि दरवाजे तो स्वर्णमई हैं। और बीचि के, दोय कोट ४ वेदी, इन छह के २४ दरवाजे, रूपा मई हैं। और चौथा स्फटिक मणि का कोट अरु आभ्यंतर की वेदी के द्वार आठ, सो पन्ना समान हरे हैं। इन सर्व छत्तीस ही दरवाजेन के आभ्यंतर-बाह्य दोऊ तरफ, मंगल-द्रव्य अरु नवनिधि के समूह हैं। तहां एक द्वार के, दोय पार्श्व हैं। सो ही बाह्य-आभ्यंतर करि, ४ पार्श्व भये। सो एक-

मुद्रा नहीं होती, तो भक्तन का भला नहीं होता। तातैं पर-जीवन का भला करनहारी, विश्वास उपजावनहारी; ध्यान रूप, पद्मासन, कायोत्सर्ग मुद्रा ही है। सो ध्यान—मुद्रा के धारी भगवान्, तिनकी बाह्य संपदा तो समोशरण है। और आभ्यंतर संपदा, अनंत—चतुष्टयादि अनंत गुण हैं। ऐसे भगवान् कूं हमारा नमस्कार होऊ। और जो भव्य, भगवान् के दर्शन कूं, समोशरण में जांय हैं, सो देव—विद्याधर तो स्वेच्छा जांय हैं। और भूमि-गोचरी मनुष्य तथा तिर्यंच; पगथेन की राह, चढ़िकरि जांय हैं। सो केई जीव तो सीधे ही पगथेन चढ़ि, दर्शन कौं चले जांय हैं। और केई जीव पगथेन चढ़ि कैं, पीछे समभूमि पै जाय कैं, समोशरण की गली की राह होय, अनेक रचना देखते, दर्शन कौं जांय हैं। सो जे देव, विद्याधर, चक्री आदि भव्य हैं। सो प्रथम पीठि पर्यंत जांय हैं। अरु दर्शन करि, अपने कोठे में जाय तिष्ठैं हैं। पीछे केई जीव बाहिर आय, जिन—गुण—गानादि करैं हैं। सो समोशरण विषैं गये, ऐसा अतिशय होय है कि अंधे तौ नेत्र सूं देखैं, बहरे सुनैं, रोगी निरोग होंय। अनेक दुख सहित जीव, दुख तजि सुखी होय हैं। समोशरण में गये अनेक आरति, दुख, शोक, चिंता, भय, दूर होंय हैं। तहां सर्व—प्रकार सुखी होंय हैं। परस्पर जीवन कैं बैर—भाव नहीं रहै है। तहां सिंह—गाय, मोर—सर्प, मूसा—मार्जार, कुत्ता—बिल्ली, इत्यादिक जाति—विरोधी जीव, बैर—भाव तजि, मैत्री—भाव करैं हैं। और तहां स्थान तो संख्यात अंगुल प्रमाण है, परन्तु तहां जीव असंख्यात आवैं, तौ भी भीड़ नहीं होय। तहां क्षुधा, तृषा, नहीं लागै। राग—

द्वेष नहीं होय। क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं उपजैं। इन आदिक समोशरण में अनेक अतिशय होंय हैं। और समोशरण के बाह्य, १०० योजन पर्यंत, दुर्भिक्ष, ईति, भीति नहीं होय। याप्रकार भगवान् का अतिशय होय है। इन्द्र की आज्ञा तैं धनपति देव, समोशरण रचै है। ऐसे समोशरण में विराजमान श्री भगवान्, तिनका दर्शन जिनकूं प्रत्यक्ष होय, ते भव्य धन्य हैं। हम पुण्य–संपदा रहित, प्रत्यक्ष दर्शन कों असमर्थ हैं। तातें मन, वच, तन करि, जिनदेव कों परोक्ष नमस्कार करैं हैं। सो वे भगवान्, हमकूं इस ग्रन्थ के पूरण होतैं अंत-मंगल विषैं, सहाय होऊ। ऐसे समोशरण का वर्णन किया। आगे भगवान् के विहार–कर्म का स्वरूप कहिये है–तहां समोशरण विषैं विराजमान भगवान् के विहार का जब समय होय, तब इन्द्र-महाराज अवधि तैं जानि कैं, लौकिक समय साधवे कूं, ऐसी विनती करैं हैं। हे भगवन्! यह विहार–समय है, सो विहार करि, अनेक भव्य–जीवन कूं धर्मोपदेश देय कें, उनको सुमार्ग बताय, तिनका भला कीजिये। तब देवेन्द्र का प्रश्न पाय, भगवान का तौ विहार–कर्म होय। अरु पिछली समोशरण-रचना विघटि जाय। सो भगवान् जिस मार्ग विषैं विहार करैं। तिस मार्ग विषैं, दोऊ तरफ, नाना प्रकार षट् ऋतु के फल–फूल सहित, अनेक वृक्षन की सघन पंक्ति, होय जाय हैं। और दोऊ तरफ, चांवलन के खेत, महा रमणीक, हरित वर्ण होय जांय हैं। और नदी, बावड़ी, महल पंक्ति, पर्वतन की शोभा, मनोहर होय जाय है। और तिस मार्ग की सर्व भूमि, दर्पण समान निर्मल होय जाय है। तिस

के दोऊ तरफ, चांवलन के फूले वन की पंक्ति, अरु तिन चांवलन के निकट, दोऊ तरफ निर्मल जल की धारा धरैं, नदी समान नहर, चल्या करै है। और तिस मार्ग पै, आकाश तैं मेघकुमार जाति के देव, सुगंधित–जल के कण, मोती समान बारीक, वर्षावते जांय हैं। और पवनकुमार जाति के देव, मंद–सुगंध पवन, चलावते जांय हैं। एक योजन पर्यंत, सर्व-भूमि, कंटक रहित करते जांय हैं। तिस मार्ग विषैं, भगवान् तौ समोशरण की ऊंचाई प्रमाण, आकाश में गमन करें। तिनके पद-कमलन के नीचे, १५-१५ कमल के फूलन की पंक्ति; १५ पंक्ति देव रचि देंय। सो २२५ कमलन का समुदाय, एक जायगै झूमका रूप रहै। ताके मध्य के कमल पै, च्यारि अंगुल के अंतर पै पांव धरते, भगवान् आकाश विषैं, मनुष्य की नांईं डग भरते विहार करैं। यहां प्रश्न–जो भगवान् कैं तो इच्छा नाहीं। सो इच्छा-बिना डग कैसे भरी जाय ? ताका समाधान-जो भगवान् कैं, च्यारि अघातिया कर्म बैठे हैं। तिनके कारण पाय, वाणी खिरना, उठना, बैठना, चलना, डग भरना आदि क्रिया संभवै है। यामें इच्छा-बिना क्रिया होय है, यातैं दोष नाहीं। ऐसा जानना। ऐसे तौ भगवान् का विहार होय। और मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि–प्रकार संघ का विहार, भूमि विषैं होय है। कैसी है भूमि, सो बीथी (मार्ग) रूप है। सो बीथी के दोऊ तरफ तो कोट हैं। ताके मध्य, एक योजन लम्बी, आध योजन चौड़ी, रास्ता समान, देवन करि रची हुई, महा शोभायमान, रमणीक, निर्मल स्थान रूप, गली है। सो देव, विद्याधर, चारण–मुनि, और

सामान्य केवली तो, आकाश में गमन करैं हैं। सो नहीं तो भगवान् तैं अति नजदीक, नहीं अति दूर, यथा–योग्य स्थान पै गमन करै हैं। सो इन्द्र हैं ते तौ भगवान् के नजदीक, भक्ति सहित चले जाँय हैं। और सामान्य, चार प्रकार के देव हैं। सो दूर चले जाँय हैं। सो केई देव तौ, चमर ढोरते जाँय हैं। केई देव, जय–जय शब्द करते जांय हैं। केई देव, चोबदार की नांईं, हाथ में रत्न–छड़ी लिये, देवन कूं चले–चलो, चले–चलो, कहते जाँय हैं। देवों के समूह कों विनय तैं, सिलसिले तैं लगावते जाँय हैं। इत–उत करते जांय हैं। और केई देव, भगवान् की स्तुति करते जाँय हैं। केई देव बंदना-नमस्कार करते जाँय हैं। केई हर्ष के भरे, कौतूहल करते जाँय हैं। और ऐसे ही मनुष्य–तिर्यंच, भूमि विषैं, हर्षते चले जांय हैं। केई भव्य, भगवान् की तरफ देखते जांय हैं। इत्यादिक विहार-समय, अनेक शुभ कार्य होंय हैं। सो सर्व व्याख्यान, विशेषज्ञानी के गम्य है। हमारी शक्ति, सर्व कथा कहने की नाहीं। ऐसे विहार–कर्म का कथन किया। सो आगूं भगवान् जहां जाय विराजैंगे, तहां इन्द्रादिक देव, समोशरण की रचना, पूर्वोक्त रचैं हैं। ता विषैं, भगवान् विहार करि, जाय बिराजैं हैं। तिन भगवान् कूं, हमारा नमस्कार होऊ। ये जिनेन्द्रदेव, इस ग्रंथ के अंत–मंगल कूं करहु। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अंत-मंगल निमित्त, अर्हंत-देव कूं नमस्कार पूर्वक, समोशरण कथन, विहार–कर्म कथन वर्णनो नाम, चालीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥

आगे और भी अंत-मंगल के निमित्त, भगवान् के महाभक्त, स्तोत्रन के कर्त्ता आचार्य,

तिन कूं नमस्कार करिये है। तहां प्रथम श्री वादिराज नाम आचार्य, जिन-धर्म के उद्योत
करवे कूं सूर्य समान महा तेजस्वी, एकीभाव स्तोत्र के कर्त्ता, तिन कूं नमस्कार होऊ ।
वादिराज मुनि ने, जा कारण पाय एकीभाव स्तोत्र किया, सो कहिये है-इनने गृहस्थ अवस्था
में अनेक राज्य-भोगन के भोक्ता होय, कामदेव-समान रूप धरैं, संसार-भोगन तैं उदास
होय, राज्य-भार तजि, यती-व्रत धारया। सो महा वीतराग पद के धारी कौं, पूर्व कर्म उदय,
शरीर में कुष्ट रोग प्रगट्या। सो तन, जगह-जगह तैं, फूट निकस्या। महा दुर्गंध उपजी।
सो यह वीतरागी, तन तैं निष्प्रेम है। आगे ही सूं, शरीर कूं पुद्गल-सप्तधातु का पिण्ड
जानैं। सो आत्मा-रस रमता योगीश्वर, शरीर का उपचार, कछू नहीं वांच्छता भया। सो
विहार करते, एक नगर के बन में तिष्ठैं। सो जब बस्ती में आहार कूं जांय, सो नगर में
महा धर्मात्मा श्रावक, निर्विचिकित्सा गुण के धारी, यती कौं नवधा-भक्ति सहित, हर्ष सौं
दान देय, अपना भव सफल मानैं। ऐसे, बन में रहते, कई दिन भये। सो राजा का
मन्त्री, एक सेठ था। जो महा धर्मात्मा। प्रभात उठै बन में जाय, रोज वादिराज-
मुनि का दर्शन करि, धर्म सुनि, तव पीछे राजा के दरवार में जाय। सो कोऊ पापी, इस सेठ
के द्वेषी पुरुष ने, जाय राजा पै कही। भो राजन्! इस सेठ का गुरु, कोढी है। सो यह
प्रथम ही उस कोढ़ी के दर्शन कूं जाय, ताके मुख तैं धर्म सुनि, पीछे आपकी सेवा में आवे है।
याका गुरु महा कोढ़ी है। ताकी दुर्गंध आगे, कोई नहीं ठहरै। सो ये बात उचित

नाहीं। तब राजा कही, यह बात झूठ है। ये सेठ, हमारा ऐसा अविनय नहीं करै। तब चुगल ने कही, यामें असत्य होय, तौ जो गुनहगार की गति होय, सो मेरी करौ। तब राजा ने, दूसरे दिन सेठ सूं कही। हे सेठ! क्या तेरा गुरु कोढ़ी है? तब सेठ इसका उत्तर अविनय वचन जानि, राजा सूं कही। भो नाथ! कहनेहारे ने असत्य कही है। गुरु शुद्ध हैं। तब राजा नैं कही। जो शुद्ध हैं तो हम प्रभात दर्शन कौं चालेंगे। ऐसे राजा के वचन सुनि, सेठ चिंता कूं प्राप्त भया। जो मैं राजा पै असत्य बोल्या, सो तौ विनय तैं बोल्या। मेरे मुख तैं मैं, गुरु कौं कुष्ट है, ऐसा अयोग्य–वचन कैसे कहौं? ऐसी जानि असत्य कहा। अरु प्रभात, राजा दर्शन कूं जाय, गुरु का शरीर प्रत्यक्ष रोग सहित देखेगा, तौ यह पापिष्ठ, गुरु कौं उपद्रव करैगा। अरु मेरा, मरण भया ही है। परन्तु गुरु कौं उपसर्ग नहीं होय, तौ भला है। इत्यादिक प्रकार, सेठ महा चिंतावान् होय, पीछे बन में गुरु के पास गया। सो मुनीश्वर, ज्ञान-भण्डार कही। भो वत्स! तेरा मुख चिंतावान्-उदास क्यों? अरु तूं प्रभात आया था, सो अबार आवने का कारण कहा? तब सेठ ने, गुरु के पास, राजा के आवने की, सर्व कथा कही। अरु बिनती करी, कि यह राजा महा क्रूर स्वभावी है। सो मोकूं मारेगा, तो मारौ। परन्तु आप यहां तैं विहार करौ, तो भला है। नहीं तो उपसर्ग करेगा। मैं महा पापी, ताके निमित्त पाय, उपद्रव हो है। इत्यादिक, सेठ कूं महाभयवंत भया, अपनी आलोचना कूं लिये वचन बोलता देख, मुनीश्वर करुणा करि, धर्म-

की प्रभावना करवे कूं बोलते भये। भो वत्स ! भो आर्य ! भय मत करो। राजा दर्शन कूं आवै, तो आवने देओ। ऐसे गुरु के वचन सुनि, सेठ मन में हर्ष पावता भया। जो जगत का नाथ, मेरे गुरु ने, मोहि अभयदान दिया। सो अब भय नाहीं। तब भी सेठ ने विचारी, जो गुरु के तन मैं तौ, यह प्रत्यक्ष रोग है। अरु गुरु ने अभयदान दिया। सो यह वचन गुरु का, आश्चर्य उपजावै है। तथा सेठ विचारै है। यह वीतराग-गुरु की, अखंड आज्ञा है। सो मेरु चलायमान होय तो होय, परन्तु गुरु का वचन अन्यथा नाहीं होय। तातैं, गुरु कही, भय मति करो, सो अब मोहि, भय नाहीं। ऐसा दृढ़ निश्चय करि, सेठ भी अपने मन्दिर गया। तब यतीश्वर ने भगवान् की स्तुति करी। चौवीस काव्य में, स्तोत्र किया। सो मन-वचन-काय एकत्व शुभ रूप करि, जिनदेव के गुणानुवाद गाये। सो भक्ति के भाव तैं, अंत काव्य के पूरण होते, यती के तन का सर्व रोग, नाश भया। सूर्य के तेज समान, तन की दीप्ति प्रगट भई। सो यति ने बाँयें हाथ की छोटी अँगुली की एक नौंक, राजा कों प्रतीति के अर्थ, रोग सहित रहने दई। बाकी सर्व-तन, कंचन वर्ण भया। जब प्रभात, राजा दर्शन निमित्त, चतुरंग सेना मिलाय, महा दल सहित आया। अरु यती के तन का रोग, सब नगर जानै था। सो इस कौतुक कूं सुनि, सर्व नगर के लोग भी, कौतुक-हेतु आये। सो वन में मनुष्यन का समूह फैल गया। राजा तहां आया, जहां यतीश्वर विराजैं। सो बाहन तैं उतरि, मुनि के दर्शन कूं आगे गया। सो शरद ऋतु की पूर्णमासी के चन्द्रमा समान

निर्मल कान्ति धारैं, समता समुद्र, वीतरागी योगीश्वर कूं देख, मुनि के तन की दीप्ति कौं देख, विस्मय कूं प्राप्त भया। दूर तैं नमस्कार किया। राजा ने मुनि की, अनेक स्तुति करी। अरु जानैं, राजा पै चुगली करी थी, तापै राजा कोप करि, ताकौं दण्ड देवे का विचार करता भया। तब यतीन्द्र ने, राजा के मन का अभिप्राय जानि, आज्ञा करी। भो नृपेन्द्र! कोप मति करो। वानै असति नहीं कही थी। हमारा तन कुष्ट—रोग सहित था। परन्तु या सेठ ने, मेरे रोग का नाम, अविनय—भय तैं नहीं लिया। सो याके भय निवारण कूं, प्रभु की स्तुति के प्रसाद तैं, शरीर शुद्ध भया। बाकी यह शरीर, महा अशुचि, सप्त धातु का पिण्ड, ग्लानि का स्थान है। याके विषैं, यती निष्प्रिय है। परन्तु सेठ के धर्मानुराग सूं, यह कार्य किया है। अपने बायें-कर की अँगुली की नौंक, रोग सहित राखी थी, सो राजा कौं बताई। कही, भो नरेन्द्र! यह अँगुली समान, यह सर्व तन था। सो धर्म के प्रसाद करि, प्रभु की भक्ति के प्रसाद करि, यह तन, शुद्ध भया। तातैं तू कोप मति करै। वानै सत्य ही कही थी। ऐसे वचन मुनि के सुनि, राजा अचरज कूं प्राप्त भया। मिथ्या—बुद्धि गई। अरु शुद्ध-धर्म का धारी भया। बारम्बार, सर्वज्ञ का धर्म प्रशंस्या। सर्व लोग यह अतिशय देख, मिथ्या—भाव तजि, शुद्ध—धर्म के धारक भये। और श्री वादिराज मुनीन्द्र की स्तुति करते भये। अरु वादिराज—योगीश्वर का किया एकीभाव स्तोत्र कौं, घनै भव्य, मंगल के अर्थ सुनते भये, पढ़ते भये। ऐसा एकीभाव स्तोत्र, अरु इसके कर्त्ता श्री वादिराज मुनी-

तथा इस ग्रन्थ के पढ़नेहारेन कूं, श्वर जगत गुरु, इस ग्रन्थ के अंत में, इस ग्रन्थ के कर्त्ता कूं, तिन के मंगल करौ। ऐसे वादिराज नामा आचार्य कूं, नमस्कार करि, अन्त-मंगल विषैं, श्री भक्तामर-स्तोत्र के कर्ता गुणन का स्मरण किया। आगे इस ग्रन्थ के अंत-मंगल करतैं, जिनधर्म श्री मानतुङ्गाचार्य, तिनकूं नमस्कार करिये है। कैसे हैं श्री मानतुङ्गाचार्य, प्रत्यक्ष इन्द्र- प्रकाशवे कूं दिनकरि समानि हैं। अरु मिथ्या—सन्देह मयी शिखर, ताके भंजन कूं, श्रद्धान वज्र के समानि हैं। प्रत्यक्ष भगवंत देव के महाभक्त हैं। तथा कुवादीन की अतत्व तिनकौं रूपी प्रवाह रूप नदी, सो कुनय रूप तरंगनि सहित, सो ज्ञान रूपी जीर्ण वृक्ष कुला- उपाड़ती, अपनी स्वेच्छा वेग रूप बहती ऐसी तरंगणी, ताके रोकवे कूं, मानतुङ्ग गुरु, प्रगट- चल—शिखर समानि हैं। ऐसे गुरु कूं, नमस्कार होऊ। जिन नैं भक्तामर-स्तोत्र करि, जहां राजा यश पाया। तिन तैं भक्तामर—स्तोत्र कैसे भया, सो कहिये है। तहां उज्जैन नगरी, शची—समान सिंह, महा-प्रतापी, राज्य करै। ताके रत्नावली नाम स्त्री, सो महा सती, हे नाथ! रूपवती है। सो तिनकैं पुत्र नाहीं। सो राजा कूं चिन्ता भई। तब मन्त्री ने कही। परिवार धर्म—सेवन कीजे। ताके प्रसाद, सब सुख होय है। ऐसे करते, एक दिन राजा, सो बालक, सहित बन गया। सो एक सरोवर के तीर, मुंज के वृक्ष नीचे, एक बालक देख्या। बधता रानी कूं दिया। और ताका नाम, मुंजकुमार रखा। सो बालक अपने रूप-गुण सहित, पुत्र भया। पीछे केतेक दिन गये, रत्नावली रानी के गर्भ रह्या। सो नव मास पूर्ण भये,

भया ।. ताका नाम, सिंहलकुमार रखा। वह अनुक्रम तैं, तरुण भया । तब पिता ने, सिंहलकुमार के व्याह किये । सो शुभ्र राजों की पुत्रीं, तिन में एक मृगावती नामा रानी सहित, कुमार कैं दोय पुत्र—युगल भये । तिनमें बड़े का नाम शुभचन्द्र, अरु छोटे का नाम भर्तृहरि । ये दोय—पुत्र क्रम तैं, स्याने भये। अनेक विद्या—प्रवीण भये । एक दिन राजा सिंह, संसार तैं उदास भये। सो मुंज कूं राज्य, अरु सिंहल कूं युवराज पद देय, आप यती पद धारि, आत्म—कल्याण किया । अब राजा मुंज, राज्य करै । सो एक दिन, राजा बनक्रीड़ा कों गया था । सो आवते, एक मन्दिर के द्वार, एक तेली ने कुदार नाम विद्या साधी थी । सो ताने कही । हे राजन् ! मोकूं विद्या सधी है । सो मो समान, पृथ्वी में बली नाहीं । तब राजा ने कही । तू नीच कूली कूं, एती विद्या का बल कबहूं हो सक्ता नाही। तब तेली ने दोऊ हाथ तैं, जोर करि विद्या का कुदार, धरती में गाड़्या । और कही, जो कोई योद्धा होय, तौ काढ़ौ । तब राजा ने अपने सामंतन कूं कही, काढ़ौ । सो सर्व सामंत, बड़े-बड़े मल्ल, पचि—पचि हारे, कुदार नाहीं निकस्या । तब राजा सिंहल उठ्या । सो एक हाथ तैं कुदार निकास्या । पीछे सिंहल ने एक हाथ तैं, कुदार गाड़्या । अरु कही, याकौं काढ़ौ, तौ जानैं । तब तेली, विद्या—बल करि, हार्‌या । तथा राजा के मल्ल—सुभट पचिहारे, कुदार नाहीं निकस्या । एते में राजा—सिंहल के, दोऊ पुत्र आये । अरु पिता तैं कही । प्रभो ! हम कौं आज्ञा करो, तौ हम काढ़ैं । तब राजा, हँस करि कही । भो पुत्र हो ! यहां तिहारा काम ना-

हीं। तिहारी बराबरी के लड़का–बालकन में क्रीड़ा करो। तब कुमारों ने कही। हे नाथ! बिना हाथ लगाये काढ़ैं, तो आपके पुत्र जानहु। सो हठ करि, पिता तैं आज्ञा लेय, अपने मस्तक के केश लेय, कुदार में उरझाय कैं, झटक्या। सो खैंच कैं कुदार निकास्या। सो इन का पौरुष देख, राजा मुंज ने, मंत्री सूं कही। इन कूं मारो। इन बालकन छते, मेरा राज्य जमैं नाहीं। तब मंत्री ने, इन कुमारन कूं कही। तुम्हारा बाबा, तुम कौं मास्या चाहै है। तातैं तुम कोई दिन, यहा सूं भागो। तब दोऊ कुमारन नैं, अपने पिता सूं कही। भो नाथ! हम कूं राजा मुंज, मास्या चाहै है। सो हम कौं, कहा आज्ञा होय है? तब राजा सिंहल ने कही। तुम ताकौं मारो। जो आप को हनें, तो हनता कौं, आप भी हनिये। याका दोष नाहीं। यह राजनीति है। ऐसे वचन, पिता के सुनि, शुभचंद्र अरु भर्तृहरि इन दोऊ कुमारन नैं कही। हे नाथ! हमारैं तो वे आप की समान हैं। सो बाबा कौं, कैसे मारैं? सो संसार तैं उदास होय, विरक्त भये। अरु दोऊ भाई, तप धरते भये। सो शुभचन्द्र तो वन में जाय, धर्म-धुरंधर गुरु के पास, जिन-दीक्षा धरि, मुनि भये। और नाना तप करि, अनेक ऋद्धि पाई। और छोटे भाई भर्तहरि ने बन में जाय, तपसी के व्रत धारे। सो अनेक अज्ञान-तप करै। सो एक दिन बन में भूल्या। सो तृषावंत भया, नीर देखता, एक जायगा वन में, एक तापसी, पंचाग्नि आदि अनेक तप करै, तहां पहुंचा। सो भर्तृहरि ने तिस तापसी के पास जाय, नमस्कार किया। तब तापसी ने, भर्तृहरि सूं कही। तुम अपना नाम–कुल

कहौ। तब भर्तृहरि ने नाम—कुल कह्या। सो भर्तृहरि ने, याकी बड़ी सेवा करी। तब तापसी ने राजी होय, कलंक की तूम्बी भर दीनी। और कही। यातैं तांबा, कंचन होय है। और अनेक मंत्र, तंत्र आदि चमत्कारी—विद्या दई। ऐसे बारह वर्ष तांईं, भर्तृहरि जी ने, तापसी की सेवा करी। पीछे गुरु के पास तैं, सीख माँगी। पीछे भाई शुभचंद्र जी की खबर कौं चेला भेजे। सो चेलों ने, शुभचंद्र कों गंधमर्दन पर्वत पै, ध्यानारूढ़, नगन तन, वीतराग देखे। सो भर्तृहरि के चेला, दोय दिन उपवास करि, भूख तैं भागे। सो आय भर्तृहरि कूं कही। तुम्हारे भाई पै लंगोट नाहीं। भूख तैं क्षीण हैं। अरु तुम, राज भोगो हो। सो कछु भाई कौं देव। जातैं ताका दारिद्र जाय। तब भर्तृहरि ने, आधा कलंक का तूम्बा, भाई कों भेजा। सो शुभचन्द्र ने, पत्थर पै डाल दिया। तब चेला ने, भर्तृहरि सूं कही। वह भाग्यहीन है, कलंक डाल दिया। तब भर्तृहरि आप, शुभचंद्र जी पै जाय, पिता समान बड़े भाई कूं जानि, विनय तैं नमस्कार करि, कलंक की तूम्बी आगे धरी। तब शुभचंद्र जी ने कही, तूम्बी में कहा है? तब भर्तृहरि ने कही। भो प्रभो! तांबा तैं कंचन करे, यामें ऐसा गुण है। तब शुभचंद्र जी ने तूंबा उठाय, शिल पर धरि पटक्या। सो भर्तृहरि कही। भो भ्रात! यह अनेक राज्य—संपदा का द्रव्य, आपने डाल दिया, सो भली नहीं करी। हे भ्रात! बारह वर्ष गुरु की सेवा करी, तब मोकूं उन्हों ने दीनी थी। इस तरह भर्तृहरि कौं खेद—खिन्न देख, शुभचंद्रजी ने कही। भो वत्स! राज्य तजि, बन बसे। अब भी कलंक नहीं तज्या। यह

कलंक, मुनीश्वरों कूं कलंक समान है। तातें तजना योग्य है। अरु भो वत्स ! तेरे कलंक तैं, पाहन तौ कंचन नहीं भया। अरु तेरैं स्वर्ण की चाह होय, तौ देख! तब शुभचंद्र ने, अपने पांव-नीचे की रज लेय, एक बड़ी शिला पै डाली। सो सर्व शिला, कंचन की भई। सो भर्तृहरि यह अतिशय देख, बड़े भाई के पाँयन पड़े। अनेक स्तुति करि, जिन-दीक्षा याची। तब शुभचंद्र जी ने दीक्षा दई। अरु इनके संबोधवे कों, ज्ञानार्णव नाम ग्रन्थ बनाय, दीक्षा में दृढ़ किया। सो पीछे, दोऊ भाई, जिन-दीक्षा सहित, तप करते भये। अरु वहां, उज्जैन नगरी का राज्य, राजा मुंज करै। सो एक दिन राजा मुंज, मन में दगा विचारता भया। जो, सिंहल जोरावर है। यातैं मेरा राज्य नहीं रहेगा। तब मंत्री कूं कही। सिंहल कूं मारौ। तब मंत्री ने कही। दोष कहा, सो कहौ। निर्दोष कौं मारे, महा-पाप है। तब एक चेटी (दासी) सौं मिलि, ताकौं अंधा किया। तिस चेटी ने, सिंहल कों, तेल मर्दन करतें, ताके नेत्र फोड़े। तब राजा मुंज, यह सुनि, दुख करता भया। जो पुत्र तौ दीक्षा ले गये, भाई अंधा भया। अब, कुल-नाश भया। मैंने महा-पाप किया। इत्यादि प्रकार पछताता भया। सो एते, एक भोजक—याचक ने आय, राजा मुंज कूं बधाई दई। कही, भो राजन् ! तुम्हारे भाई सिंहल के पुत्र भया। तब राजा मुंज राजी होय, सिंहल के घर आया। सो द्वार पै एक श्लोक लिखा देख्या—

श्लोक—वर्षाणि पञ्चपञ्चाशत, सप्त मासान् दिनत्रयं।

भोजराजेन भोक्तव्या, सुखेन दक्षिण दिशा ॥ १ ॥

यह श्लोक देख, राजा मुंज ने पंडितन कूं बुलवाय, कही। श्लोक किसने लिख्या ? तब एक पण्डित ने कही। भो राजन् ! इस बालक के पुण्य का माहात्म्य–होनहार, मैंने लिख्या है। ये भोजराज, दक्षिण दिशा में ५५ वर्ष ७ महिना ३ दिन राज्य करेगा। ऐसी सुनि, सर्व राजी भये। बालक अनेक विद्यानिधान, क्रम करि बड़ा भया। तब राजा मुंज ने भोज-पुत्र का व्याह करि, राज्य दिया। सो राजा भोज, जगत् में अपने प्रताप करि, राज्य करै। इस भोज राजा के यहां, एक वररुचि नाम पण्डित रहै। सो ताकी पुत्री, वर-योग्य भई। सो पिता ने पुत्री सूं कही। तू कहै, ताहि परणाऊं। तब पुत्री ने कही। ऊंच-कुल की कन्या, अपने आप, वर नहीं याचै। जो भाग्य में होय, सो पावै। तथा व्यवहारनय करि, माता–पिता जाकूं परणावैं, सो प्रमाण है। ऐसे पुत्री के वचन सुनि, पिता महा–कोप करि, एक महा दरिद्र, मूर्ख पुरुष खोज, ताहि कन्या परणाई। तब कन्या ने कही, पूर्व-कर्म कौं कौन मैटै ? ऐसी जानि, वह समता धरती भई। पीछे वररुचि विचारी। जो राजा भोज पूंछेगा, तुम्हारा जामाता (दामाद) कैसा पण्डित है ? तो मोहि लज्जा उपजेगी। ऐसा जानि वररुचि, ता दामाद कूं बहुत पढ़ावै। परन्तु ताकौं, एक अक्षर भी नहीं आवै। बहुत काल में, आशीर्वाद पढ़ाया। सो राजा भोज की सभा में, अनेक पण्डित इकट्ठे भये। तहां वररुचि का दामाद जाय, राजा कों आशीष वचन देते, अशुद्ध बोल्या। तब राजा ने कही, मूर्ख है।

तब वररुचि ने अशुद्ध वचन कौं, अपनी पण्डिताई करि, शुभ करि, राजा कौं बताया। घर जाय जमाई कौं, मान-खण्डनेहारे वचन कहे। तब ये अपने कौं मूर्ख जानि, कालिकादेवी के मठ में, अधोमुख जाय पर्या। कही मोय विद्या–वर देहु, नहीं तौ मैं मरि हौं। तब सातवें दिन, देवी प्रसन्न भई। वांच्छित वर दिया। कही, तेरा नाम कवि–कालिदास हो। और वचन-सिद्ध वर दिया। सो देवी के प्रसाद तैं, अनेक विद्या–शब्द स्फुरे। ताकरि सर्व पण्डित जीते। तब सबने कही, विद्या कहां पाई? तब यानें कही, कालिका देवी के पास पाई। तब वररुचि, याके पाँयन पर्या। कही, मेरी कन्या धन्य है। याके वचन, सत्य हैं। अब ये कालिदास प्रगट भया। सो एक दिन राजा भोज की सभा में जाय, कालिका कूं आराधी। सो सर्व सभा, कालिका कौं देख, नमस्कार करि, कालिदास की प्रसंशा करती भई। ऐसे कालिदास प्रसिद्ध भया। अब एक वसुदत्त सेठ, याही उज्जैनी नगरी में रहै। सो महा–धर्मात्मा, ताके मनोहर नाम पुत्र था। सो एक दिन सेठ, पुत्र सहित, राजा भोज पै गया। तब राजा नें, सेठ तैं पूछी। तिहारा पुत्र कहा पढ़्या है? तब सेठ कही। भो नाथ! नाममाला ग्रन्थ, अर्थ सहित पढ़्या है। तब भोजराज कही। नाममाला का कर्त्ता कौन? तब सेठ कही। धनंजय नाम महा–पण्डित है। तब राजा कही, धनञ्जय तैं मिलाओ। सो राजा–भोज महा–पण्डित, गुणीजन का दास, सो धनंजय कूं बुलाया। आदर सहित राजा ने भले मनुष्य भेजे। तब कालिदास बोल्या। हे राजन्। धनञ्जय, कछू समझ-

ता नाहीं। जब धनंजय—कवि आया, तब राजा ने धनंजय कूं, ऊंचे आसन पर बैठक दई। और कही, तुम्हारा नाम बड़ा। सो कौन ग्रन्थ किये ? तब धनञ्जय कही। भो राजेन्द्र ! मेरे किये ग्रन्थ मैं, इन पण्डितों ने मेरा नाम लोप, अपना नाम धर्या है। तब भोजराज ने, पण्डितों को उलाहना दिया, कि तुम काहे के पण्डित हो ! तब सर्व पण्डितों ने कही। भो राजन् ! यह धनंजय कबका पण्डित है। याका गुरु तौ, मानतुङ्ग मुनि है। जो महामूर्ख है। यापै विद्या, कहां तैं आई ? याका गुरु अब भी बन में है। सो आय, हम तैं वाद करै। तब धनञ्जय कही। भो पण्डित हो ! गुरु का नाम तौ, उत्तम गुण—रूप है। सो वे वहीं विराजे रहैं। परन्तु तुम्हारे वाद की इच्छा होय, तो मोतैं वाद करौ। तब इन में परस्पर वाद होता भया। सो अनेक नय, दृष्टान्त, प्रश्नोत्तर करि, कालिदास आदि सर्व पण्डितों कूं, राजा भोज की सभा में, धनञ्जय ने जीत्या। सब वचन—वंद भये। तब कालिदास, कोप करि बोल्या। हे राजन् ! यह महा मूर्ख है। सो यातैं कहा वाद करैं। याका गुरु मानतुङ्ग है। सो ताकौं बुलाइये, तातैं वाद करैंगे। तब राजा ने, अपने भले मनुष्य, मानतुङ्ग नामा मुनीश्वर के ल्यायवे कौं भेजे। तिननैं, मुनीश्वर सूं कही। हे नाथ ! राजा भोज ने नमस्कार कह्या है। अरु आप कूं बुलाये हैं। तब यती कही। हमारा, राजगृह में प्रयोजन नाहीं। ऐसी कही, और नहीं गये। तब कालिदास कही। भो राजन् ! वह मानतुङ्ग, मान का शिखर है। महा—मानी है। सो भलीतरह नहीं आवेगा। तब राजा भोज, कोप

सुधरवे की साई (ब्याना) समान, आशा भई। ताकरि परम–सुख भया। इस ग्रन्थ विषैं; अनेक ज्ञान तरंग उपजीं, ताका कथन पाईये है। तातैं याके अध्ययन किये, सुदृष्टि होय। अरु ज्ञान–तरङ्गन का रहस्य जानैं। तो तत्वज्ञान पाय, परम सुखी होय। मोक्ष–मार्ग का ज्ञाता होय। पाप–पुण्य के शुभाशुभ का भी वेत्ता होय। उच्च पद पाय, परंपराय जन्म-मरण मैटै। ऐसा जानि इस ग्रन्थ के अभ्यास विषैं प्रवर्तना योग्य है। ऐसे इस ग्रन्थ की बालबोध वचनिका रूप टीका, अपनी आलोचना कूं लिये, आदि–अन्त इष्ट देव-गुरु कों नमस्कार करि, पूर्ण करी।

जे वसु गुण सहता, वसु कर्म रहता, सिद्ध कहंता, सो देवा।
चतु घात निवारे, चउगुण धारे, तन थिति कारे तिस सेवा॥
ताकी सो वानी धर्म कहानी, शिव दरशानी, मैं ध्याऊं।
ते नगन शरीरा, सब जग पी-हरा, तप धर धीरा, गुण गाऊं॥ १॥
ये देव धरम गुरु, तिष्ठौ मो उर, हे शिव-सुख कर, जगंनाथा।
मैं इनको दासा, और न आशा, है यह प्यासा, रत्न तथा॥
यह टेक हमारी है गुणकारी, तुम थुति प्यारी, पाप हरा।
सो मोकूं दीजे ढील न कीजे, लेय धरीजे, मोक्ष-धरा॥ २॥

यह सुदृष्ट तरङ्ग है, ताको यह विस्तार।

ता नाहीं। जब धनंजय–कवि आया, तब राजा ने धनंजय कूं, ऊंचे आसन पर बैठक दई। और कही, तुम्हारा नाम बड़ा। सो कौन ग्रन्थ किये ? तब धनञ्जय कही। भो राजेन्द्र ! मेरे किये ग्रन्थ मैं, इन पण्डितों ने मेरा नाम लोप, अपना नाम धर्‍या है। तब भोजराज ने, पण्डितों को उलाहना दिया, कि तुम काहे के पण्डित हो ! तब सर्व पण्डितों ने कही। भो राजन् ! यह धनंजय कबका पण्डित है। याका गुरु तौ, मानतुङ्ग मुनि है। जो महामूर्ख है। यापै विद्या, कहां तैं आई ? याका गुरु अब भी वन में है। सो आय, हम तैं वाद करै। तब धनञ्जय कही। भो पण्डित हो ! गुरु का नाम तौ, उत्तम गुण–रूप है। सो वे वहीं विराजै रहैं। परन्तु तुम्हारे वाद की इच्छा होय, तो मोतैं वाद करौ। तब इन में परस्पर वाद होता भया। सो अनेक नय, दृष्टान्त, प्रश्नोत्तर करि, कालिदास आदि सर्व पण्डितों कूं, राजा भोज की सभा में, धनञ्जय ने जीत्या। सब वचन–बंद भये। तब कालिदास, कोप करि बोल्या। हे राजन् ! यह महा मूर्ख है। सो यातैं कहा वाद करैं। याका गुरु मानतुङ्ग है। सो ताकौं बुलाइये, तातैं वाद करैंगे। तब राजा ने, अपने भले मनुष्य, मानतुङ्ग नामा मुनीश्वर के ल्यायवे कौं भेजे। तिननें, मुनीश्वर सूं कही। हे नाथ ! राजा भोज ने नमस्कार कह्या है। अरु आप कूं बुलाये हैं। तब यती कही। हमारा, राजगृह में प्रयोजन नाहीं। ऐसी कही, और नहीं गये। तब कालिदास कही। भो राजन् ! वह मानतुङ्ग, मान का शिखर है। महा–मानी है। सो भलीतरह नहीं आवेगा। तब राजा भोज, कोप

सागर सम जो यह तिरै, सम्यक टेक सुधार ॥ ३ ॥
गुरु आज्ञा-नौका चढ़ै, शङ्का सकल निवार ।
ते सुदृष्टि तरंग के, उतरैं पैले पार ॥ ४ ॥
शीतल-जिन के जन्म थलि, ग्रन्थ समापति कीन ।
विघ्न मिटे मंगल थये, भये पाप सब हीन ॥ ५ ॥
टेक गई अघ कारनी, रही टेक मुनि दाय ।
सो यह भव-भव टेक हम, मिलै टेक वृष दाय ॥ ६ ॥
संवत् अष्टादश शतक, फिर ऊपर अड़तीस ।
सावन सुदि एकादशी, अर्धनिशि पूरण कीन ॥ ७ ॥

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, कवि आलोचनादि वर्णनो नाम, ब्यालीसवाँ पर्व सम्पूर्ण ॥ ४२ ॥

इति श्री पण्डित टेकचन्द्र जी कृत, सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ तथा ताकी बालबोधनी टीका सम्पूर्णम् ।

शुभं—भूयात् ।

—*—

करि कही। यती कौं, पकड़ि ल्यावो। ऐसी सुनि, राजा के सेवक गये, सो यती कूं उठाय ल्याये। और राजा के पास धरया। सो यती, मौन सहित, पंच परमेष्ठी का ध्यान करते, तिष्ठते भये। तब राजा, कोप करि कही, याकौं बंदीगृह में धरौ। तब राजा की आज्ञा पाय, किंकरों ने यती कौं भौंहरे में दिया। सो अड़तालीस कोठों के भीतर मूँदे। और सब कोठों के जुदे-जुदे ताले दिये। राजा की तिन पै मुहुर करी। अरु यती के पाँवन में बेड़ी, अरु हाथ में हथकड़ी, गले में जेल (सांकल) डाली। इत्यादिक दृढ़ बंधन किये। तापै, अनेक विश्वासी सुभट राखे। ऐसे महा संकट के स्थान में, मुनीश्वर कूं नाख्या। सो वीतरागी यती, समता सहित रहे। तहां तीन-दिन भये। तब यतीश्वर ने विचारी। कि यामें जिनधर्म की न्यूनता दिखैगी। पापीजन, धर्मी-पुरुषन कूं पीड़ेंगे। ऐसी जानि, आदिनाथ स्वामी की स्तुति, महा भक्ति-भावन सहित करी। ४८ काव्य किये। तिन में अनेक मंत्र, अतिशय सहित गर्भित करि, भक्तामर नाम दिया। सो मंत्र समान, उत्तम काव्य किया। तिस में आदिनाथ भगवान के गुण कहे। सो प्रभु की स्तुति के प्रसाद करि, सर्व कोठों के ताले अकस्मात् टूटि गये। यती के तन-बंधन झड़ सये। यती निर्बंधन होय आये। सो तिनकौं देख, सेवक डरे। तब यती कौं, बहुत बंधन में दिये। सो फेरि, बंधन टूटि गये। तब राजा भोज पै जाय, सेवक ने कही। भो नाथ! यती, बाहर निकसि आये हैं। तीन बार बंधन में दिये, तीनों बार, बंधन आपै-आप टूटे हैं। ऐसा आश्चर्य न देखा, न सुन्या।

तब राजा भोज ने, कालिदास आदि सर्व पण्डितों कौं कही। जो यह अतिशय, यती का भया। तब सब ने कही। भो राजा! यह यती, महा जादूगर है। सो मंत्र–तंत्र करि, निकस्या है। बंधन तोड़े हैं। तब राजा ने दृढ़ बंधन करि, पुनः कोठरी में बंद करि, चौकी राखी। जब यती ने भक्तामर–स्तुति का पाठ किया। सो सर्व बंधन टूटे। निर्बंधन होय, यती भोजराज की सभा में आये। तब राजा यती कौं देख, कांपता भया। और कालिदास कूं बुलाय कही। यती का तेज मेरे बूते सह्या नहीं जाय है। ताका यत्न करो। तब कालिदास कही। राजन् डरो मति। और उसने कालिकादेवी कूं आराधी। जब देवी आयी। सो महाविकराल रूप बनाय, ताने कही। भो कालिदास! क्यों आराधी, सो कहो। एते ही में चक्रेश्वरी देवी आय, यती कौं नमस्कार किया। अरु कालिका कूं देख, चक्रेश्वरी ने कही। रे महापापिनी! तैंने मूर्खन के संग करि, अपना आत्मा, पाप–लिप्त करि, परभव बिगाड़्या। अब तोकौं स्थान–भ्रष्ट करि हौं। द्वीप तैं निकास हौं। तैंने यती कौं उपसर्ग किये। ऐसे चक्रेश्वरी के वचन कालिका सुनि, पाप–फल तैं कंपायमान होय, चक्रेश्वरी के पाँयन पड़ी। कही, भो माता! मो–अपराध क्षमा करि। मोह आज्ञा करौ, सो करौं। ऐसे नाना प्रकार चक्रेश्वरी की स्तुति करि, पीछे कालिका, मानतुङ्ग गुरु के पांयन पड़ी। गुरु की अनेक बिनती करती भई। अरु कही, भो यती! मोकौं आज्ञा करौ, सो करूं। तब यती कही। भो देवी! पूर्व–भव में पुण्य किया, ताके फल देवी भई। बड़ी शक्ति पाई।

अब तूं ही हिंसा की कर्त्ता भई, सो भला नाहीं । अब हिंसा तजि, दया-
विवेक पाया । अब तूं ही हिंसा की कर्त्ता भई, सो भला नाहीं । तब कालिका ने, मुनि कूं नमस्कार
धर्म का सेवन करौ । ऐसी आज्ञा, गुरु नै करी । तब कालिका ने, मुनि कूं नमस्कार
करि कही ! भो प्रभो ! आज तैं, मन–वचन–काय करि, हिंसा का त्याग किया । आपकी
आज्ञा, मोकों कल्याण के अर्थ है, सो मैंने अङ्गीकार करी । भो यतीनाथ ! मो अपराध क्षमा
करौ । ऐसे कालिका देवी कौं सेवा करती देख; राजा भोज आय, मुनि के पांयन पड़ता
भया । दीन होय, गद्गद् वाणी करि कहता भया । भो दयानिधान ! रक्ष ! रक्ष! मो अ–
पराध क्षमा करौ । भो दयामूर्ति ! मेरा प्रायश्चित्त कहो । अरु भव–भ्रमण मिटै, सो उपदेश
देहु । तब गुरु ने कही । भो भोजराज ! आदिनाथ का धर्म सेये, कल्याण हो यगा । तब राजा-
भोज, मानतुङ्ग मुनी पै, श्रावक के व्रत लेता भया । यह अतिशय देखकर, जे पण्डित, वाद
कौं आये थे । सो मान तजि, मिथ्याभाव छांड़ि, श्रावक–व्रत धारते भये । तब कालिदास आय,
मानतुङ्ग मुनि के पाँयन पड़्या । कही, हे नाथ ! मेरा अपराध क्षमा करो । अरु मोहि श्राव-
क–व्रत देहु । तब गुरु ने दया करि, कालिदास कौं श्रावक-व्रत दिये । पीछे राजा भोज ने, गुरु पै
नमस्कार करि, कही । भो गुरुदेव ! एक संदेह मोहि है । सो कहूं हूं । भो गुरुदेव ! आप के सर्व
वंधन टूटे । सो मंत्र कौन है, सो कहौ । ये मंत्र हमकौं दया करि देहु । तब गुरु कही । भक्तामर
महा मंत्र, अनेक विघ्न का नाशक है । ताका स्मरण, पठन, ध्यान, सुखकारी है । ऐसा
अतिशय देख; अनेक, मिथ्या–भाव तजते भये । सो श्री मानतुङ्ग आचार्य ने प्रथम तो भक्तामर-

स्तवन, राजा भोज कौं पढ़ाया। ता पीछे, सर्व जगत के भव्य–जीव, ताकौं पठन करते भये। सो भक्तामर के कर्त्ता, विघ्न के हर्ता, मंगल के कर्त्ता, श्री मानतुङ्ग गुरु, मोकौं इस ग्रन्थ के पूरण होतें, अंत–मंगल में सहाय करौ। ऐसे महा अतिशय के धारक, पंचमकाल में साधु भये। तिन कूं मैंने, ग्रन्थ के अन्त–मंगल निमित्त स्मरण किया॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अंत–मंगल निमित्त, एकीभाव के कर्त्ता श्री वादिराज मुनीश्वर, तिनके गुणों का स्मरण तथा भक्तामर के कर्त्ता श्री मानतुंग नामा गुरु, तिनके गुणन का चिंतवन, तथा स्तोत्रन के कारण वर्णनो नाम, इकतालीसवां पर्व सम्पूर्ण॥ ४१॥

ऐसे इस ग्रन्थ के पूर्ण होते, अंत–मंगल के निमित्त, कल्याण के अर्थ; इष्टदेव, पंच परम गुरु, सिद्ध क्षेत्र, समोशरण विषैं विराजते भगवान्, अकृत्रिम जिन–भवन, इन आदिक सर्व का स्मरण, ध्यान करि; तिन कूं नमस्कार किया। ताकरि हमने अपना मनुष्य–जन्म पाना, सफल मान्या। काहे तैं, सो कहिये है। जो यह ग्रंथ, सागर समान गंभीर, नय–तरंगन करि भर्या, नहीं दृष्टि परै है सामान्य–ज्ञान में अर्थरूपी–मर्याद कहिये पार जाकी। ऐसे अगाध गुण–निधि का पार पाना, हम से ज्ञान–दरिद्रीन कूं, महा दुर्लभ। सो इष्ट देव–गुरु के प्रसाद, तिनकी भक्ति के अतिशय करि, ग्रंथ पूरण भया। सो यह आश्चर्य ऐसा भया, जैसे कोई भुजा रहित पुरुष, अंत के स्वयंभूरमण समुद्र कौं तिरके पार होय, लोकन कूं विस्मय उपजावै। ऐसा ये कार्य जानना। तथा कोई धन रहित दरिद्री पुरुष ने ब्याह रच्या। अरु बड़ी जायगा सगाई का

संबंध करि, हजारों मनुष्य नेवते देय परदेश तैं बुलाये। सो इसकी क्रिया देख, जो धनवान थे; सो हाँसि करते भये। जो देखो, घर विषैं तो एक दिन कौं अन्न नाहीं। अरु व्याह, ऐसा भारी रच्या है। सो कैसे बनैगा? अरु यह पुरुष भी, अपनी अज्ञान—चेष्टा देख, चिंतावान भया। मैंने अपना पुण्य—बल नाहीं विचार्या, अरु कारज दीर्घ रच्या। यह कैसे पूर्ण होयगा! ऐसे यह पुरुष चिंता करता, रात्रि कौं तिष्ठे था। सो याके पुण्य तैं, कोई देवता आय, चिंतामणि देय गया। सो या पुरुष ने चिंतामणि के प्रभाव तैं, प्रभात भला-व्याह किया। वांच्छित सबन कौं भोजन—ज्यौंनार देय, जगत कौं आश्चर्य उपजाय, यश पाया। तैसे ही मैं ज्ञान-धन रहित, ग्रन्थ रूपी बड़ी शादी रची थी। ताके पूर्ण होने की बड़ी चिन्ता थी। जो यह कार्य कैसे सिद्ध होयगा? सो कोई पूर्व—पुण्य तैं, इष्ट देव ने, ज्ञान अंश मई चिंतामणि दिया। ताके प्रसाद करि, निर्विघ्न कार्य की सिद्धता पाई। सो इस बात का हमकों महा-अद्भुत सुख भया॥ तथा जैसे कोई बालक—बुद्धि—पुरुष, शक्ति रहित काष्ठ की खड्ग बांधि, प्रबल बैरी का गढ़ जीतिवे कौं संग्राम करि, जीति पाय; गढ़ लेय, जगत कौं आश्चर्य उपजाय, यश पावता भया। तैसे ही मैं ज्ञान-बल रहित, तुच्छ अक्षर-ज्ञान तैं, ऐसा महान् ग्रन्थ पूर्ण किया। सो ये भी आश्चर्य है। इन आदिक अनेक आश्चर्य सहित, इस ग्रन्थ के पूर्ण होते हर्ष भया। ग्रन्थकर्त्ता अपना जन्म, कृत—कृत्य मानता भया। जो या तन तैं, शुभ कार्य करना था, सो किया। ऐसे अपना भव धन्य, मान्या। परभव

विवेक पाया। अब तूं ही हिंसा की कर्त्ता भई, सो भला नाहीं। अब हिंसा तजि, दया-धर्म का सेवन करौ। ऐसी आज्ञा, गुरु नै करी। तब कालिका ने, मुनि कूं नमस्कार करि कही ! भो प्रभो ! आज तैं, मन-वचन-काय करि, हिंसा का त्याग किया। आपकी आज्ञा, मोकों कल्याण के अर्थ है, सो मैंने अङ्गीकार करी। भो यतीनाथ ! मो अपराध क्षमा करौ। ऐसे कालिका देवी कौं सेवा करती देख; राजा भोज आय, मुनि के पांयन पड़ता भया। दीन होय, गद्गद वाणी करि कहता भया। भो दयानिधान ! रक्ष ! रक्ष! मो अ-पराध क्षमा करौ। भो दयामूर्ति ! मेरा प्रायश्चित्त कहो। अरु भव-भ्रमण मिटै, सो उपदेश देहु। तब गुरु ने कही। भो भोजराज ! आदिनाथ का धर्म सेये, कल्याण हो यगा। तब राजा-भोज, मानतुङ्ग मुनी पै, श्रावक के व्रत लेता भया। यह अतिशय देखकर, जे पण्डित, वाद कौं आये थे। सो मान तजि, मिथ्याभाव छांड़ि, श्रावक-व्रत धारते भये। तब कालिदास आय, मानतुङ्ग मुनि के पाँयन पड़्या। कही, हे नाथ ! मेरा अपराध क्षमा करो। अरु मोहि श्राव-क-व्रत देहु। तब गुरु ने दया करि, कालिदास कौं श्रावक-व्रत दिये। पीछे राजा भोज ने, गुरु पै नमस्कार करि, कही। भो गुरुदेव! एक संदेह मोहि है। सो कहूं हूं। भो गुरुदेव ! आप के सर्व बंधन टूटे। सो मंत्र कौन है, सो कहौ। ये मंत्र हमकौं दया करि देहु। तब गुरु कही। भक्तामर महा मंत्र, अनेक विघ्न का नाशक है। ताका स्मरण, पठन, ध्यान, सुखकारी है। ऐसा अतिशय देख; अनेक, मिथ्या-भाव तजते भये। सो श्री मानतुङ्ग आचार्य ने प्रथम तो भक्तामर-

जानना। यह अभयदान है॥ ४ ॥ ए च्यारि प्रकार दान हैं, सो शुभ दान हैं। ए दान, सम्यग्दृष्टीन करि उपादेय हैं। इति दान में ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे पात्र विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां समुच्चय सुपात्र-कुपात्रके भेदका जानना, सो तौ ज्ञेय है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक सुपात्र है, एक अशुभपात्र है। तहां अशुभके भेद दोय हैं। एक अपात्र एक कुपात्र। तहां कुपात्रके तीन भेद हैं। जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट। तहां बाह्य अट्ठाईस मूलगुण धारी होय और अन्तरंग सम्यक् रहित होय, सो उत्कृष्ट कुपात्र है। और बाह्य श्रावकव्रतका धारी, ग्यारह प्रतिमा विषैं प्रवर्तता, शुभाचारी, धर्मध्यानी, जिन आज्ञा प्रमाण श्रावक क्रिया सहित किन्तु सम्यक् रहित, सो मध्यम कुपात्र है। और व्यवहार सम्यक् देव-गुरु-धर्मकी दिढ़ प्रतीत सहित होय, किन्तु भेद-ज्ञान रहित, अनन्तानुबन्धी की चार और दर्शन मोह की तीन ऐसी सब सात प्रकृति के क्षयोपशम रहित, निश्चय सम्यक् जाकैं नाहीं, सो जघन्य कुपात्र है। यह आप षट्द्रव्य, नवपदार्थ, पंचास्तिकाय के नाम और कौं कहै। धर्म वांच्छा सहित, पाप क्रियातैं विमुख, निश्चय-भाव भेद-ज्ञान करि आपा-पर के गुण-भेद तैं विमुख, सम्यक् रहित, अविरत गृहस्थ, सो जघन्य कुपात्र है। ए तीन भेद कुपात्र हैं। सो औरन कूं मोक्ष—राह बतावैं, किंतु आप मोक्ष—राह नहीं लागैं हैं। इन्हें मोक्ष—मार्ग का सुख नाहीं। जैसे राजा का सूपकार (रसोइया) अनेक प्रकार सुन्दर व्यंजन-रसोई करि, राजाकौं जिमावै, राजी करै। किंतु आप वाके किए भोजन का स्वाद नहीं जानैं। तथा जैसे अनेक व्यंजन-भोजन महामिष्ट स्वाद रूप हैं तिनमें सर्व जगह हँडिया में धातु का चमचा फिरै, परन्तु व्यंजन-भोजन के स्वाद

कूं नहीं पावै। तैसे ही अनेक तत्वज्ञान का रहस्य मुखतैं बतावैं, मोक्ष होने के उपाय बताय औरनकूं तत्व–रसका स्वाद कराय, मोक्ष–मार्ग बताय, सुखी करैं। परन्तु आप तत्त्वरस-स्वाद नहीं पावै, सो कुपात्र है। तातैं कुपात्र तजवे योग्य–हेय है। इति कुपात्र भेद तीन। आगे अपात्र भेद तीन कहै हैं। जे जिन आज्ञा रहित लिंग के धारी, परिग्रह सहित, आपकूं यतीपद–गुरु संज्ञा मानैं हैं। नाना प्रकार तप–संयम–ध्यान करैं हैं। राग–द्वेष पीड़ित उरके धारी, क्रोध–मान–माया–लोभ करि मंडित, मंत्र–तन्त्र–जंत्र, औषधि, रसायन धातुमारणा, ज्योतिष, वैद्यक, नाड़ी इत्यादिक चेष्टा करि आजीविका करने हारे होंय, अनेक भेष–स्वांग के धारी, सो उत्कृष्ट अपात्र हैं। सो औरन कूं तौ ए कुमार्ग उपदेशैं हैं, अरु आप शुभ मार्ग रहित हैं। जैसे कोई ठग, राजा का भेष धरि, औरन पै अमल चलावै, अरु कहै जो मैं राजा हौं। जो मेरी सेवा करैगा, सो अनेक रिद्धि पाय, सुखी होयगा। तब ऐसा जानि, भोरे–गरीब जीव ठग कौं राजा जानि, ताकी सेवा करैं हैं। सो ए भोरे जीव ही ठगावै हैं। क्यों, जो ए ऊपरि तैं राजा भया है। अरु अन्तरंग मैं भांड है। सो उल्टा कछू भीख मांगेगा, देवे कौं समर्थ नाहीं। यामैं राजा का एक भी चिन्ह नाहीं। आपही भूखा है। औरन कूं सुखी करवे कूं असमर्थ है। तैसे ही ए अपात्र, आप धर्म–वासना रहित है। तथा और कूं धर्मफल बतायवे कूं असमर्थ है। सो ए उत्कृष्ट अपात्र हैं। तातें तजवे योग्य–हेय हैं। और जे गृहस्थ, कुटुम्बादि सहित, जिन आज्ञा रहित, हिंसा–मई तप–संयम के धारक, कन्दमूल के भक्षक कूं आचार्य, सत्य धर्म-दयामई तातैं रहित, कुधर्म–हिंसा मार्गी, आपकूं व्रती, तपी, जपी, संयमी, धर्मात्मा मानने हारे, सो मध्यम

अपात्र हैं और जिन आज्ञा रहित गृहस्थाचार के धारी, नाम-पूजा-दानादि-अंगी आपकों जानन हारे, अभक्ष के खाने हारे, हिंसा-धर्म के लोभी, दया रहित गृहस्थी, आपकूं धर्मी जानें, सो जघन्य अपात्र हैं। ए अपात्र के तीन भेद हैं। इति अपात्र। आगे सुपात्र नव भेद कहैं हैं। तहां सुपात्र के प्रथम तीन भेद हैं। उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। तहां उत्कृष्ट पात्र के तीन भेद हैं। उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। तहां तीर्थंकर राज अवस्था तजि दिगम्बर भये, जबतैं केवल ज्ञान नहीं होय, तब लौं छद्मस्थ दशा में हैं। तेते इनकों आहर देना, सो ये उत्कृष्ट के उत्कृष्ट पात्र हैं। और जिनकूं चारित्र के बलि करि अनेक ऋद्धि उपजी होय। अवधि मनपर्यय ज्ञानादि अनेक उत्तम ऋद्धिधारी यतीश्वर, सो उत्कृष्ट के मध्यम पात्र हैं। और अष्टविंशति (अट्ठाईस) मूलगुण, तेरह प्रकार चारित्र का प्रतिपालक, वीतराग, सम्यक् सूर्य के धारी यतीश्वर, सो उत्कृष्ट पात्र के जघन्य पात्र हैं। ए तीन भेद उत्कृष्ट पात्र के कहे। इति उत्कृष्ट पात्र भेद तीन। आगे मध्यम पात्र के तीन भेद कहिए हैं। तहां ग्यारहवीं, दशवीं प्रतिमा का धारी त्यागी श्रावक, सो मध्यम सुपात्र का उत्कृष्ट भेद है। और पंचमी, छठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी प्रतिमा के धारी श्रावक सो मध्यम सुपात्र के मध्यम पात्र हैं। और प्रथम तैं लगाय चौथी प्रतिमा पर्यंत सम्यग्दृष्टी श्रावक, सो मध्यम सुपात्र के जघन्य पात्र जानना। ये मध्यम पात्र के तीन भेद कहे। इति मध्यम सुपात्र भेद तीन। आगे सुपात्र जघन्य पात्र के तीन भेद कहिए हैं। तहां क्षायिक सम्यक् सहित अव्रत गृहस्थ, सो जघन्य सुपात्र का उत्कृष्ट पात्र हैं। और उपशम सम्यग्दृष्टी का धारी, व्रत रहित असंयमी

गृहस्थ, सो जघन्य सुपात्र का मध्यम पात्र भेद है। और क्षायोपशम सम्यक् सहित अव्रती गृहस्थ, सो जघन्य सुपात्र का जघन्य भेद है। ए तीन भेद जघन्य सुपात्र के हैं। ऐसे नव भेद सुपात्र कहे। आगे कहे जो ऊपरि तीन भेद, अपात्र के, तिनकूं उत्कृष्ट पात्र जानि, विनय-भक्ति करि, गुरु जानि दान देना, तो अपात्र दान है। याका फल ऐसा है। जैसे जल के स्थान के मेवे के पेड़, गुलाब के पेड़ विषै जल और डारिए, तो उस पेड़ का नाश, फल व शोभा का नाश और जल डारया सो वृथा गया, क्योंकि आगे धरती जल तैं पूर्ण थी ही, तामैं और जल डारया, सो पेड़ गलि गया। सर्व करी मिहनत वृथा गई। ऐसा ही अपात्र-दान है। दिया धन नाश, फल नाश, सुख नाश। ताके योगतैं निगोद-नरकादिक दुख प्रगट-फल होय है। तातैं अपात्र का दान हेय है। और कुपात्रकूं गुरु जानि, भक्ति सहित दान का फल, कुभोग भूमि का मनुष्य होय। इहां प्रश्न-जो कुपात्र दान का फल हीन कह्या, सो हमकों सुपात्र का भेद कैसे मिलै? देने वाला तो बाह्य चारित्र की तथा मूल गुणन की शुद्धता देखि, दान दिया चाहै। और लाखों-हजारों मुनियों में सम्यक् धारी यतीनाथ तो थोरे, अरु सम्यक् रहित, शुद्ध मूल गुण धारी गुरु बहुत, सो देने वारा शुद्ध मूलगुण देखि पीछे ऐसा विचारे, जो ए कुपात्र हैं वा सुपात्र है? तो अविनय होय, पाप लागै। तातैं केवली के जानने योग्य बात, श्रावक कैसे जानैं? सुपात्र-कुपात्र की बात तो केवल ज्ञान-गम्य है। सो या दान देने वारे के नफा नहीं भासै है। कोई से दाता कैं भला फल होय तौ होय, नहीं यामैं तो दान का अभाव होयगा, यह सन्देह है। ताका समाधान-भो भव्य, यह बात तूने कही, सो सत्य है।

परन्तु हे भव्यात्मा, जैसे काहू राजा का राज बैरी ने छीन लिया है सो वह बाहरे जाय, फौज-बंधी करि, युद्ध करै। राज का तखत ताके हाथ नाहीं, परन्तु राज-भ्रष्ट भी राजा ही बाजे है। युद्ध कर रह्या है। सो बैरी कौ जीत कभी राज पावैहीगा, तासूं राजा ही कहिए हैं। तैसे जे मुनि सम्यक् सहित चारित्र के धारक थे सो कोई कर्म की जोरावरी तैं मोह की प्रबलता करि, सम्यक् राजपद छूटि गया होय, तौ भी वह यती अपनी चारित्र सैन्या जोड़ि कें, मोह राजा तैं युद्ध कर रहे हैं। सो कबहूं मोहकौं जीति, सम्यक् राज लेंयगे। तातैं ऐसे मुनि, जिनकौं सम्यक् कभूं होय, कभूं जाय, ऐसे निमित्त जिनकें बनि रह्या होय, तिन्हें कुपात्र ही जानना। और कोई जीव कर्म योगतैं चारित्र मोह की मंदता तैं चारित्र तौ धार्‌या होय। अरु कै तौ अभव्य होय, तथा दूरानदूर भव्य होय—अभव्य राशिसा होय। ऐसे मिथ्यादृष्टी के धारी मुनि, सो कुपात्रन में जानना। सो ऐसे मुनि करोड़ों में भी एक—दोय नहीं होय हैं, कठिन तैं होंय। सो ए कुपात्र हैं। तथा जे मुनीश्वर चारित्र-मूलगुण धारैं हैं। परन्तु अन्तरंग कषायन के योगतैं तिनके मूलगुण दूषित हैं। सो मुनि अपनी मायाचारी करि, अपने दोष बाह्य प्रगट नहीं करै हैं। बाह्य, शुद्ध मूलगुण से दीखैं हैं। अन्तरंग-ज्ञानी के जाननै में दोष सहित हैं। ऐसे कषाय भार करि सहित, मूलगुण के धारी, सो मुनि कुपात्रन में हैं। सो ऐसे भी मायावी—मुनीश्वर बहुत थोरे ही हैं। कोई करोड़ों-अरबों में एक होय, तौ होय। नाहीं होय, तौ नाहीं। ए मुनि कुपात्र हैं। सो कोई दाता के अशुभ कर्मतैं ऐसे मुनि के दान का निमित्त मिलै, तौ कुभोगभूमिका फल होय। नहीं मुनि—दान का फल भोरे मिथ्यादृष्टी जीवन

कें तथा पशून कें, सुभोग भूमि का फल होय है। और सम्यग्दृष्टी हैं, तिनकूं दान का फल स्वर्ग–मोक्ष ही जानना। ऐसा तेरे का प्रश्न उत्तर जानि। सुपात्रन के दान देने की बुद्धि सदीव राखना, अनुमोदना करनी। ए सब उत्तम फल दाता जानना। कुपात्र का निमित्त कदाचित अशुभ उदय तैं बनै तौ बनै, नहीं तो सदीव सुपात्रन का निमित्त जानना। जैसे देशांतर के फिरन हारे व्योपारी, द्वीपान्तर जाय, अनेक कष्ट खाय, बहुत धन कमाय ल्याय, सुखी होने हारे, ताका निमित्त तौ बहुत है। और देशांतर में लुट जानैं हारे, जहाज डूबनैं हारे, ऐसा निमित्त कबहू कुकर्म तैं होता है। कमा लाने वारे बहुत हैं। तैसे कुपात्रन का निमित्त अल्प हैं। और सुपात्र के निमित्त की दीर्घता हैं। ऐसे राह लुटने की नांई कदाचित् कुपात्र–दान का निमित्त मिले, तो कुभोग भूमि का फल जानना। तहां कुभोग भूमि में आकार-शरीर का, नीचे तो मनुष्य का सा होय है और मुख तिनकें पशुअन के आकार हैं। सो कोई का मुख सिंह कैसा है। किसी का हस्ती सा मुख है। कोई का सूअर कैसा मुख है। कोई के मुख घोड़े कैसे हैं। केई का मुख मोर सा है। केईन के कान लम्बे हैं। केईन के ऊंट समान मुख हैं। इत्यादिक आकार जानना। और धरती रंधन जो बिल तिनमें रहैं हैं। केई वृक्षन के स्थल–कोटरन में रहे हैं। और तहां की भूमि की मिट्टी अमृत समान, तिसका भोजन है। एक पल्य की आयु, अरु एक कोस का शरीर होय है। ऐसा कुपात्र दान का फल है। और सुपात्र दान का फल स्वर्ग–मोक्ष है। तथा तीन पल्य, दोय पल्य, एक पल्य आयु के धारी, भोगभूमियां होय हैं। ऐसे कहे अपात्र–कुपात्र तौ विवेकीन

कौं हेय हैं। और कहे नव प्रकार सुपात्र भेद, सो उपादेय हैं। यथायोग्य पूजिवे–प्रशंसवे योग्य हैं। इति पात्र में ज्ञेय–हेय–उपादेय कथन। आगे पूजा विषैं ज्ञेय–हेय–उपादेय कहिए है। तहां सुपूजा-कुपूजा का समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक सुज्ञेय है, एक कुज्ञेय है। तहां वीतराग होय, जाकैं अपने सेवकनतैं राग नाहीं, कि जो यह मेरा भक्तिवंत है, निश दिन–मोकौं आराधै है, सो यातें प्रसन्न होय, याकूं सुखी करौं। ऐसे विचार का नाम तौ राग-भाव है। और जो आपकौं नहीं पूजे, अपना विनय नहीं करै, निंदा करै, आप की प्रशंसा नहीं करै तौ तातें द्वेष भाव करै, ताके मारवे कौं ताकौं रोग करै। इत्यादिक दुख देने का उपाय करै, सो द्वेष-भाव जानना। ऐसे राग-द्वेष जाकैं नहीं होय सो वीतराग, समता-सुख-समुद्र का वासी, परम पवित्र देव, ताकी सेवा-पूजा-वन्दना है, सो सुपूजा है। और लोक-अलोक जानने हारा, इस तीन लोक में जेते जीव-अजीव पदार्थ समय-समय जैसे-जैसे परणमें हैं, आगे अनंत काल में जैसे परणमैंगे, और अतीतकाल में ऐसे परणमे आये ऐसे तीन-काल तीन-लोक के विषैं अनंते जीव जैसे भाव–विकल्प रूप परणमैं हैं। सब के घट–घट की जानैं। ऐसा अन्तर्यामी, सर्वज्ञ भगवान्, अनंत गुण भण्डार, ताकी पूजा है सो सुपूजा है। ऐसे वीतराग सर्वज्ञ कौं बारंबार नमस्कार होऊ। इति सुदेव पूजा। आगे सुधर्म पूजा कहिए है। तहां सर्वज्ञ-वीतराग का वचन सोई शुभ धर्म है। सर्वज्ञपने तैं कछू छिपा नाहीं। और वीतराग भावन तैं जैसा भासै, जैसा का तैसा कहै। और की और नहीं कहै। सो ऐसे भगवान के वचन प्रमाण हैं। इनके भासै वचन ही का नाम शुद्ध मार्ग रूप, भला धर्म है। सो ही धर्म

यथार्थ सत्य है। या धर्म में कहे जो पदार्थ, सो प्रमाण हैं। ये ही धर्म पूज्यवे योग्य, उपादेय है। और इस ही धर्म-प्रमाण जो दीक्षा के धरन हारे, दिगम्बर, वीतराग, इन्द्रियन सुखनतैं विमुख, आत्मरस के स्वादी, तपसी, नगन तन धारो, षट्काय के रक्षक, बिनकारण जगतबन्धु, मोक्ष अभिलाषी, और के हित वांच्छक सो ऐसे गुरु पूज्य हैं, उपादेय हैं। ऐसे कहे जे देव-धर्म-गुरु इनकी पूजा है, सो सुपूजा है। सम्यग्दृष्टीन करि उपादेय है। इति सुपूजा॥ आगे कुपूजा कहिये है। तहां ऊपरि कहि आये देव-धर्म-गुरु का स्वरूप तिसतैं विपरीत जो अपनी सेवा-पूजा-प्रशंसा करै, जासूं संतुष्ट होय ताकूं कहै तोकूं धन दैं हौं। और जो आपकी सेवा-चाकरी-सुश्रूआ नहीं करै, तौ अपनी भक्ति तैं विमुख, आपका निंदक जानैं, ताकौं डरावै। कहै, याकौं रोगी करौं। याका धन-पुत्र हरौं, याकौं बहुत दुखी करूंगा। ऐसे किसी तैं राग, किसी तैं द्वेष करनै हारा देव, सो सरागी-संसारी है, हेय है। इनकी पूजा सो कुपूजा है। और देव तो कहावै, अरु गई वस्तु कूं खोजता फिरै, नहीं मिलै तौ शोक करै, ऐसे अज्ञानी देव, मोही-देवन की पूजा है, सो कुपूजा है। तथा और के मारवे निमित्त अवधि धारि, विकराल रूप वनाय, सुभट सा दीखै। जाकी छवि देखि, जीवन कौं भय होय। ऐसे भयानीक देवकी पूजा है सो कुपूजा है। और जिन सराग देवों की छवि देखै, भगत-जगत के जीव, तिनकूं काम-चेष्टा होय, सरागता बढ़ै। स्त्री-संगम आदि अनेक इन्द्रिय-भोग याद आवैं। ऐसे विकारी देवन की पूजा है, सो कुपूजा है। और इन्ही कुदेव-सरागीन के उपदेशे शास्त्र, चमत्कार रूप फाँसी कूं धरै, हिंसा-आरंभ के प्ररूपण हारे शास्त्र, तिनकूं सुनै इन्द्रिय-भोग की अभिलाषा

रूपी अग्नि प्रगट होय। श्रोतानि का चित्त स्त्रीन के भोग—रूप होय, ऐसे विकार भाव का उपजावन हारा कथन जिन शास्त्रन में होय, तिन शास्त्रन की पूजा सो कुपूजा है। और क्रोध-मान-माया-लोभ सहित परिग्रही, गृहस्थ समान पापारंभ-कुशील-असंयम के धारी, अपनी महिमा-बड़ाई-सत्कार-पूजा के वांछक, अनेक भेष धरन हारे, जंत्र—तंत्र का चमत्कार भोरे जीवन कूं बताय, अपना गुरुपद मनावते होय, तथा ज्योतिष—वैद्यकादि विद्याकरि राजानकूं रिझावे की अभिलाषाधारी, याचनाव्रत कौं लिए, विषयाभिलाषी, मोही, घर तजे पीछै भी लौकिक गृहस्थन की नाईं नाता—सगाई की बुद्धि राखते होंय, इत्यादि कुआचार सहित जो होंय और आपकौं गुरु मनाय पुजावैं, सो ऐसे गुरु की पूजा करनी सो कुपूजा है। और भूमि—पूजा, और एकेंद्रिय घास—वृक्षन की पूजा करनी, सो कुपूजा है। अग्नि—पूजा, जल का पूजन, अन्न की पूजा, ए कुपूजा जानना। इहां प्रश्न—जो इनका पूजन क्यों निषेधा? इनमैं तो देवत्व—भाव प्रगटपनै दीखै है। देखो अन्न अरु जल है, सो तो सर्व जगत—जीवन की रक्षा का आधार है। इन बिन प्राण रहैं नाहीं। तातैं सर्व का रक्षक देव जानि पूजना योग्य दीखै है। और अग्नि है सो याका तेज—प्रताप प्रत्यक्ष दीखै है। इस अग्नि करि अनेक कार्य की सिद्धि होय है। अन्नादिक का पचावना इस ही तैं होय है और भी अनेक अलौकिक कार्य अग्नि तैं होते दीखैं हैं। तातैं यामैं भी देवत्व—भाव भासै है। और वनस्पती है सो वृक्षादिक तौ सर्व जीवन को रक्षा-सुखकौं, छाया करैं हैं। और धरती है सो प्रत्यक्ष धीरजता लिए सर्व जगत का भार सहै है। कोई तौ धरती को खोदैं हैं। कोई

यापै अग्नि प्रजालैं हैं। कोई यापै कूड़ा डारै हैं। केई मल–मूत्रादि डारैं हैं। इत्यादिक जगत–जीव उपद्रव करैं हैं। परन्तु धरती काहू तैं द्वेष नहीं करै है। ऐसी वीतराग दशा धरै है। तातैं प्रत्यक्ष देवता है। ऐसा जानि पूजिए है। ताका समाधान–भो भोरे सरल परणामी, सुनि। हे भव्य, चित्त देय के धारन करना। जो पदार्थ जगत में पूज्य है–बड़ा है–श्रेष्ठ है। ताका अविनय कोई करै भी, तो कदाचित् भी नहीं होय है। या लौकिक प्रवृत्ति अनादि-कालकी, तीन लोक में चली आवै है। जो पूज्य हैं, ताका अविनय जो करै, सो ताकूं महा-पापी कहैं हैं। तातैं हे भाई, तू देखि। अन्न अरु वनस्पती का तौ सर्व भक्षण करैं हैं। और जल कौं पीवैं हैं, डालै हैं, हाथ–पांवन तैं मर्दन करै हैं। कोई अन्न पीसे है। कोई वनस्पती छेदन करैं हैं। इत्यादिक क्रिया होतैं, विनय सधता नाहीं। तौ पूज्य-पद कैसे संभवै? और अग्निकौं जलाइए, बुझाइए, पीटिए, मलिए, दाबिए, हाथ– पांव के नीचे मसलिए, इत्यादिक अविनय होय है। और सर्व तैं हीन मनुष्य होय, सो भी इनका अविनय रूप परणामैं है। तातैं इनमें देवत्व–भाव नाहीं। ये कर्म–योगतैं एकेन्द्रिय भये हैं। सो पूर्वला पाप का फल भोगवै हैं। महा अविनय-अनादर के स्थान भए हैं। तातैं हे भव्य, ऐसा जानि। अविनय का स्थान जो वस्तु होय, सो पूज्य नाहीं। तातैं इनकी पूजा है, सो कुपूजा है। इत्यादिक ऊपर कहे जे स्थान, सो सम्यक्भाव में हेय कहे हैं। इति कुपूजा। ऐसे सुपूजा–कुपूजा में ज्ञेय–हेय–उपादेय कथन। इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये, व्रत, दान, पात्र, पूजा, धर्म-अंगन में ज्ञेय–हेय–उपादेय वर्णनो नाम, चतुर्दश अधिकार सम्पूर्णम् ॥ १४ ॥

आगे तीर्थ विषैं ज्ञेय–हेय–उपादेय कहिए है। तहां सुतीर्थ–कुतीर्थ का समुच्चय जानना सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक सुतीर्थ है, एक कुतीर्थ है। तहां अढ़ाई द्वीप प्रमाण पैंतालीस लाख योजन क्षेत्र, लोक के शिखर, सिद्ध लोक, सो शुद्ध तीर्थ हैं। तथा सिद्ध आत्मा के असंख्यात प्रदेशन करि रोक्या हुवा सिद्ध क्षेत्र, सो पूजवे योग्य है। सो हो शुद्ध तीर्थ है। तथा जहां तैं यतीश्वर शुद्धोपयोग करि, अष्टकर्म का क्षय करि, सिद्ध पद पाया, सो सुतीर्थ है। जैसे सम्मेद शिखरजी, गिरनारजी, आदि बीस तीर्थंकरनकों आदि अनेक मुनि जहां तें सिद्ध भये, तातैं सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्र तीर्थ है। और नेमिनाथजी तीर्थंकर आदि बहत्तर कोड़ि सात सौ यती कर्मनाश, जहां सिद्ध भये, तातैं गिरनारजी सिद्ध क्षेत्र तीर्थ है। और शत्रुंजयजो जहाँ तैं तीन पांडव आदि, आठ कोड़ि यतीश्वर मोक्ष गए। तातैं तीर्थ है। और अष्टापद जो कैलाश पर्वत, जहां तैं आदि—देव वृषभनाथ आदि लेयकैं अनेक ऋषिनाथ निर्वाण गये। तातैं कैलाश तीर्थस्थान है। और चम्पापुरी तैं वासुपूज्य बारहवें तीर्थंकर आदि अनेक तपनाथ कर्म हरि मोक्ष गए। तातैं उत्तम तीर्थ है। और पावापुरी तैं अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी आदि अनेक योगीश्वर मोक्ष गए। तातैं शुभ तीर्थ है। और तारवर (तारंगा) जी तैं साढ़े तीन कोड़ि यती वैकुंठ कूं गये, तातैं भला तीर्थ है। तथा पावागिरवर तैं रामचन्द्र के पुत्रादि पंच कोड़ि तपसी जामन–मरण तैं रहित भए। तातैं शुद्ध तीर्थ है। और गजपंथाजी तैं वलभद्र आदि आठकोड़ि गुरु ने अमूर्तीक पद पाया, तातैं गजपंथाजी उत्कृष्ट तीर्थ है। और तुंगीगिरजी तैं रामचन्द्र, हनुमान, सुग्रीव आदि निन्यानवैं

कोड़ि ऋषिराज भव-समुद्र पार भए। तातैं तुंगीगिर उत्तम तीर्थ है। तथा श्री सोनागिरजी तैं साढ़े पाँच कोड़ि गुरु सिद्ध भए, तातैं पूज्य तीर्थ है। और रेवा नदी के तटन तैं रावण के पुत्र आदि साढ़े पांच कोड़ि यती निर्वाण गये, तातैं जगत-पूज्य तीर्थ है। तथा रेवा नदी के तट, सिद्धवरकूट नाम पर्वत है। ताकी पश्चिम दिशा तैं दोय चक्री, दश कामदेव, आदि साढ़े तीन कोड़ि मुनि सिद्ध लोक गए, तातैं उज्ज्वलतीर्थ है। और बड़वानी नग्र की दक्षिण दिशा में चूलगिर नाम पर्वत है। तहां तैं इन्द्रजीत-रावण का पुत्र, कुम्भकरण—रावण का भाई, इन आदि अनेक ऋषीश्वर मोक्ष भए, तातैं भला तीर्थ है। और अचलापुर की ईशान दिशा विषैं मेढ़िगिर नाम पर्वत है। तहां तैं साढ़े तीन कोड़ि मुनि निरंजन भए, तातैं यह मंगलीक-तीर्थ, पूज्य है। तथा कोटि शिला तैं पांचसौ कलिंग देश के राजा, अरु दशरथजी के केतेक पुत्रन कौं आदि एक कोड़ि मुनि सिद्ध भए, तातैं उत्तम तीर्थ है। तथा पंच मेरु तैं अनेक चारण मुनि सिद्ध भये, तातैं तीर्थ है। तथा इस ही अढ़ाई द्वीप में अनेक अतिशय तीर्थ हैं। तथा नन्दीश्वर द्वीप आदि अनेक तीन लोक क्षेत्र विषैं, अकृत्रिम जिन मंदिर हैं, सो तीर्थ हैं। तथा और तप—ज्ञान—निर्वाण—कल्याणादि अनेक स्थान हैं जो सर्व पूजवे योग्य हैं, शुद्ध तीर्थ हैं। ऐसे कहे जे सकल तीर्थ सो सम्यग्दृष्टीन करि पूजवे योग्य तीर्थ हैं। तथा राग—द्वेष—क्रोधादि कषाय रहित शुद्ध पद, दयामयी भाव, निर्मल भाव, सो उत्कृष्ट निकट तीर्थ हैं। इन तीर्थन की वीतरागी मुनीश्वर भी वन्दना हेतु यात्रा करैं, तौ सरागी सम्यग्दृष्टी गृहस्थी हैं सो उन्हें ऐसे तीर्थन की वन्दना करि अपने लाग्या जो अनादि पाप—

मैल, ताकौं तीर्थ—जल करि धोय, शुद्ध—पवित्र होना, योग्य ही है। ए कहे तीर्थ जिनके किए पाप नाश होय, कषाय मंद होय, सुबुद्धि प्रकाश होय। तातैं ए कहे तीर्थ सो यती—श्रावकन करि पूजवे योग्य हैं। तातैं उपादेय हैं। इति सुतीर्थ ॥ आगे कुतीर्थ का लक्षण कहिए हैं। तहां केतेक भोरे—प्राणी जे पुण्य—उदय रहित हैं ते औरन कूं अनेक राज—भोग भोगते देख, लोभाचारी, विषय पोखवे कूं, वांछित सुखकूं उद्यम करता, काहू अज्ञान गुरु कौं पूछ्या। वानै याकूं मूर्ख जानि बहकाया। जो तू महा दीर्घ जल के समूह में प्रवेश करि, जल पातन (मरन) करै, तौ यह बड़ा तीर्थ है। और केतेक भोरे प्राणी धन, राज, स्त्री, तन सम्बन्धी अनेक वांछित भोग के अभिलाषी होंय। काहू कौतुकी पुरुषकूं पूछ्या, जो वांछित सुख ए कैसे मिलै? तब तिस निर्दयी नै कौतुक हेतु, याकौं मूरख जानिकै कही। जो जलती अग्नि मैं निःशंक होय प्रवेश करै, अपना तन भस्म करै, तौ या उत्तम तीर्थ के फलतैं तोकूं वांछित भोग मिलैं। सो तू अग्नि—तीर्थ भला जानि। ऐसी जानि, बाल-बुद्धि, लोभी, अग्नि ही में प्रवेश करि, तीर्थ मानते भये। सो हे सुबुद्धि, अग्नि प्रवेश तीर्थ, सुबुद्धीन के करवे का नाहीं है। सो कुतीर्थ हेय जानना। और केई भोरे जीव, ज्ञान—धन रहित, सुन्दर स्त्रीन के भोग की इच्छा धारेने, काहु कूं पूछी। जो सुन्दर स्त्री—भोग कैसे मिलै? तब याकूं ज्ञान-हीन जानि, काहू निर्दयी नै कौतुक निमित्त करि बहका दिया। कही हे भाई, जो शस्त्रधारा—तीर्थ बड़ा है। सो तूं शस्त्र के मुख निशंक होय, मरण करै, तौ तोकूं जोगणी देवी है सो अपना भरतार करै। तहाँ देवांगना के भोग भोगना, मनुष्यन की कहा बात है। तातैं तूं शस्त्र धारा तीर्थ तैं मरि।

सो यह भोगार्थी भोरा जीव ऐसी ही मानि, धारा–तीर्थ स्वीकार किया। सो हे भव्य, यह धारा–तीर्थ हास्य वचन तैं चल्या है, तातैं हेय है। यह शस्त्र तैं आप मरै, सो महा संक्लेश–भाव होय। और कूं आप रण मैं मारै, सो महा रौद्र–भाव होय। सो परघात करने हारे पाप-भार सूं देव लोक कैसे होय? परन्तु जैसे अज्ञान–पतंग, दीप कूं महा सुन्दर जानि, विषय–भोग के लोभ तैं, दीपक में पड़ि, भस्म होय है। क्योंकि ए पतंग ज्ञान रहित है। तातैं अपना पुण्य तौ नहीं समझै है, अरु बड़े भोग चाहै है। तातैं मरणकौं पाय, हीन ही गति में उपजै है। तैसे ही ए भोगाभिलाषी शस्त्र के मरण कूं तीर्थ की कल्पना करि, शस्त्र धारारूपी दीपक में पतग की नाईं भस्म होय हैं। सौ रौद्र–भावन तैं मरि, अशुभ गति जाय हैं। देव सुख तौ शील पालना, तप–जप–संयम करना, दान देना, प्रभु सेवा–पूजा करना, दया–भाव राखना, समता पालनी, इत्यादिक पुण्य-भावन तैं होंय। तातैं हे सुबुद्धि, ए तीर्थ नाहीं। शस्त्र–धारा कुतीर्थ है। तातैं विवेक में तजवे योग्य है। हे भाई, जो शस्त्र धारा का मरण, तीर्थ होता। तो जगत–जीव शस्त्र तैं डरते नाहीं, सब ही शस्त्र तैं मरते। यह तौ महा सुगम है। निकट ही है। कछू धन लागता नाहीं। परन्तु तूं विचार। जो लोग खेद खाय, लाखौं धन खरचि, हजारौं कोस तीर्थन कूं जाय हैं, अरु शस्त्र तैं डरै हैं। तातैं ए कुतीर्थ जानना। और यहां कोई कुबुद्धि कहै जो यह धारा तीर्थ हर जगह के करने का नाहीं। महा सुरिमा के करने का है। तो भो भव्य, सुनि। बड़े-बड़े महान वंश के उपजे सूरमा-राजा, आगे राज–सम्पदा छोड़ि, युद्ध–शस्त्रघात छोड़ि, समता धारि, तप लेय, वन में तिष्ठ, समता भाव धर,

नाना प्रकार तप करते, शुभ मान्या। भली देवादि गति गए, सुखी भए। जो शस्त्र—घास तैं भला होता तो महा सामंत कुल के, तप काहे को लेते ? तातैं धारा—तीर्थ तजिवे योग्य, हेय है। अरु केई भोरे जीव, नदीन के जल तैं पाप उतरता माने हैं। जो उन नदी के जल में स्नान करै पाप—मैल धुवै है। सो यह कहने वारा भोरा है। शिथिल श्रद्धानी है। धर्म—गांठ रहित है। इस ही बात पै दृढ़ खड़ा नहीं रहै है। याही कौं कहिए हैं। जो इस शूद्र से मिट्टी का कलश लेय कैं, इस नदी के जल में दश—पाँच बार अच्छी रीति तैं धोय लेय। जिससे ये शूद्र का मिट्टी का कलश, पवित्र होय। ता पीछे इस कलश तैं जल पीया करो। यातैं सपरो (स्नान) करो। तो यह कहे, ये शूद्र का बर्तन मिट्टी का है, हम यातैं जल कैसे पीवैं? कैसे सपरैं ? यह मलीन है। याही भ्रम—बुद्धि की ग्लानि नहीं जाय। तो याकौं कहिए। हे विवेकी, तू देखि। यह मिट्टी का बासन है। ताकौं अग्नि में जाल्या है। ऐसे शुद्ध कलश, ताकूं नदी में दश—पांच बेर धोय शुद्ध किया। ताकू तौ तूं पवित्र मानता नाहीं। तौ हे सुबुद्धि देखि। ए शरीर महा मलीन, सप्त—धातु रूप अपवित्र, अरु पाप—मैल तैं मलीन आत्मा, सो इस नदी के जल तैं सपरे (स्नान करैं) तो कैसे पवित्र होय है? तू ही तौ इस जल तैं धोये पीछे, बासन की घिन नहीं तजै है। तौ और कोई विवेकी पर-भव सुख का लोभी, आत्मा शुद्ध होता कैसे मानै ? तातैं तेरे ही एकांत बुद्धि का हठ है। भो भव्य, जिनका हृदय कठिन—दया भाव रहित है ते अनगाले जलका समूह नदी का स्नान, तीर्थ कहै हैं। नदी है सो तन का मैलि दूर करवे योग्य है। अरु आत्मा कैं पाप—मैल लाग्या है ताके मैटवे को समर्थ नाहीं। तातैं ऐसा

जानना जो पाप-मैल दूर करवे कूं दान, पूजा, भगवान का सुमरणादि, धर्म अंग ए उत्तम तीर्थ-समता भाव के कारण, समर्थ हैं। नदी तीर्थ हेय है। और ज्ञान चक्षु रहित प्राणी समुद्र कों तीर्थ कहैं हैं। ऐसा उपदेश करैं हैं, अरु आप श्रद्धैं हैं। जो जेती नीद, तीर्थ रूप हैं सो सर्व यामैं आय मिली हैं। अरु बहुत जलका समूह है। तातें सर्वतैं बड़ा तीर्थ, समुद्र है। या विषैं स्नान किए, पाप कटते मानैं हैं। सो आचार्य कहैं हैं। हमकूं बड़ा आश्चर्य यह है। जो जाके जल तैं स्पर्श भए तन फाटै, जाके योग तैं केतेक तो जल में पैठते (घुसते) डरैं हैं। उसे केतेक भोरे आत्माराम तीर्थ मानैं हैं। सो जाका जल, तन के लगते खेद करै, तो स्नान किए सुख कैसे होय? तातैं हेय है। और केतेक सामान्य बुद्धि के पात्र ऐसा समझैं हैं। तथा औरन कों उपदेश करैं हैं। कि धरती माता बड़ी धैर्य की धरनहारी है। याकौं जगत के जीव अनेक प्रकार खोदैं-फोड़ैं हैं। यापै कोई बूरा डारै हैं। तौ भी धरती खेद नाहीं मानैं है। और इह धरती तैं उपज्या अरु इस ही धरती में मिलना है। तातैं जीवत ही धरती में गड़ना, शरीर सहित धरती में प्रवेश करना, सो धरा तीर्थ है। या समान और तीर्थ नाहीं। ऐसा समझ जीवताही धरती में गड़ि, प्राण नाशै है। और याकौं धरा-तीर्थ मानैं हैं। और यो भोरा जीव ऐसा नहीं समझै है जो धरती तीर्थ होती तो यामैं मल-मूत्र कैसे करते? खोदन-जालनादि अविनय भी नहीं करते? तातैं हे भव्य, ऐसा जानना। जो सर्व ही धरती, तीर्थ नाहीं। सिद्ध क्षेत्र की धरा तौ तीर्थ है और अन्य धरती-तीर्थ हेय है। इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये तीर्थ परीक्षा विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय

विचार पंच-दश पूर्ण सम्पूर्ण ॥ १५ ॥

आगे परस्पर काल गमावना रूप जो चरचा, तामें ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये है—

गाथा—पुराणदा अघखय कारिय, चरचोपादेय परमफलदायी ॥
पावमई शुभहारी, सा चरचा तु हेय जिण मग्गो ॥४१॥

अर्थ—जा चरचा तें पुण्य होय, पाप का नाश होय। सो चरचा तो उपादेय है। और जातें पाप कर्म उपजें और अगले किया पुण्य कर्म ताका अभाव होय, ऐसी चरचा हेय है। ऐसा जिन देव नें कह्या है। भावार्थ—चरचा नाम परस्पर वार्तालाप (बतलावने) का है। सो बतलावना है सो विवेकी जीवन कौं, ज्ञेय—हेय—उपादेय करि बतलावना योग्य है। सो ही कहिए है। शुभाशुभ चरचा का समुच्चय भेद, सो तो ज्ञेय है। ताके ही दोय भेद हैं। एक शुभ चरचा है। और एक अशुभ चरचा है। सो जहां तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र, कामदेव, देव, इंद्र, इत्यादिक महान् पुरुषन की उत्पत्ति राज—सम्पदा, भोग, सुख, इनका वैराग्य, इनके स्वर्ग-मोक्ष होने का कथन सो प्रथमानुयोग, ताकी चरचा परस्पर करना। सो पाप कौं नाशै अरु पुण्य-फल देय। ऐसी चरचा धर्मात्मा सम्यग्दृष्टीन कौं उपादेय है। और तीन लोक की रचना जो अधोलोक सात राजू, तहां भवनवासी-व्यंतर देव, पुण्य का फल भोगते, सुख-समुद्र में मगन भए, काल गवांवैं हैं। ताके नीचे सात नरक हैं। तहां जीव बड़े पापन का फल भोगते, महा दुख-समुद्र में डूब रहे हैं। विलाप करते, काल व्यतीत करैं हैं। और मध्य लोक विषैं असंख्याते द्वीप-समुद्र हैं। तिनमें पैंतालीस लाख योजन तो मनुष्य लोक हैं। और बाकी के सर्व द्वीपन में

तिर्यक् लोक है। और अढ़ाई द्वीप में मेरु-कुलाचलादिक की चरचा सो उपादेय है। और उर्ध्व-लोक विषैं सोलह स्वर्ग हैं। अहमिन्द्र, सर्वार्थसिद्धि आदि के देव, पुण्य फल-सुख भोगते सुखी हैं। तिनके ऊपरि सिद्ध लोक, तहां अनंते सिद्ध-भगवत विराजैं हैं। ऐसे इन तीन लोक की चरचा परस्पर करनी, सो करणानुयोग चरचा सम्यग्दृष्टीन करि उपादेय-करवे योग्य है। और जहाँ मुनि-श्रावक के समिति, गुप्ति आदि ग्यारह प्रतिमादि आचार की चरचा करना, सो चरणानुयोग की चरचा उपादेय है। और जहाँ जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ए षट् द्रव्य हैं। जीव तत्त्व, अजीवतत्त्व, आश्रवतत्त्व, बंधतत्त्व, संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व और मोक्षतत्त्व। इनमें पुण्य और पाप मिलाये नव पदार्थ। ऐसे षट् द्रव्य, सप्ततत्त्व, नव पदार्थ, आदि की चरचा परस्पर करना सो उपादेय है। याका नाम द्रव्यानुयोग चरचा है। तथा जीव कर्मतैं कैसे बंध्या है? कैसे छूटै? इत्यादिक चरचा उपादेय है। तथा अनेक तीर्थों की चरचा, दान, पूजा, शील, संयम, तप, व्रत, दया भाव, जीवन की रक्षा इत्यादिक केवली भाषित चरचा, सो उत्तम चरचा है। तातैं पाप का नाश और पुण्य कर्म का संचय होय है। तातैं उपादेय है। इति शुभ चरचा। आगे कुचरचा-हेय का स्वरूप कहिए है। जहां परस्पर चरचा तैं पाप का बंध होय, आगे का किया पुण्य सो क्षीण होय, ऐसी चरचा हेय है। भावार्थ—कुदेव, कुगुरु और कुधर्म इनकी पूजा-भक्ति की चरचा। इन कुदेवादिक के अतिशय-चमत्कार की चरचा, प्रसंशा रूपवान, सो हेय है। अपने-पराये राजान के युद्ध की बात, हारे-जीते की, निंदा-प्रशंसा की चरचा, तथा चोर

की चतुराई की चरचा, मंत्र, जत्र, तंत्र, टोणा, चौमणा, ज्योतिष, वैद्यकादि के चमत्कार की चरचा, मल्ल युद्ध, हस्ति-घोटकादि की लड़ाई की चरचा, ए कुचरचा हेय हैं। तथा स्त्रीन के रूप-लावण्य की वार्ता करनी। तथा स्त्रीन के अनेक शुभाशुभ चरित्र, कला, गीत, गान, गालि, नृत्य, भोग, चेष्टादि की चरचा, सो हेय है। तथा अनेक प्रकार भोजन, व्यंजन, रस-पान, भोगोपभोग में अच्छे-बुरे की चरचा, सो हेय है। और कूं पीड़ा उपजायवे की, परायाधन नाश करावे की, पराए मान खंडन की परस्पर चरचा सो हेय है। अनेक देशन में, किसी को भला किसी को बुरा कहने की चरचा। परस्पर युद्ध होय, द्वेष वंधे, ताकी चरचा। तथा स्वचक्र-परचक्रादि सप्त ईति-भीति की चरचा, सो हेय है। और तन रोगादिक उपजवे की, क्षय होयवे की इन आदि अनेक विकथा रूप चरचा, अशुभ बंध को करन हारी, सो हेय हैं। इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये चरचा विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय वर्णना नाम, सोलहवां अधिकार सम्पूर्णम् ॥ १६ ॥

आगे अनुमोदना अधिकार में ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये है। तहां शुभाशुभ कार्यन की अनुमोदना के समुच्चय भाव का जानना, सो तो ज्ञेय है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक शुभ अनुमोदना है। एक अशुभ अनुमोदना है। भावार्थ—जहां लौकिक कार्यन में, पुत्र-पुत्री के शादी-ब्याह में, मंदिर-महल के आरम्भ में, युद्ध विषैं, अपने मन की अनुमोदना हेय है। तथा भले रूप में, भले भोजन में, कूप से पानी के काढ़िवे में, वापी-तालाब के खुदावै में, इत्यादिक भूमि खोदने के आरंभ में अनुमोदना, पाप-बंध करै है, तातें हेय है। तथा काहू

नै काहू पै शस्त्र चलाया, लकड़ी का प्रहार किया, यह देखि, अनुमोदना करनी हेय है। तथा काहू का धन लुटता देखि–सुनि, तथा तन पीड़ा देखि, तथा काहू के हाथ–कान–नाकादि अंग–उपांग छेदते देखि, अनुमोदना करना हेय है। तथा कोई के कुतप व कुज्ञान की दीर्घता देख, अनुमोदना करनी हेय है। और कोई कुदेव–कुगुरुन के बड़े आरंभी-बड़ा द्रव्य लागत के मन्दिर–मठस्थान देखि अनुमोदना करना, अशुभफलदायक जानि, हेय है। और तीर, गोली, नाली, तोप, बन्दूक, कमान, छुरी, कटारी, शमशेर, बरछी इत्यादि अनेक शस्त्र, जीव-घात के कारण देखि, इनकी अनुमोदना करनी हेय है। और कोई भला बाणावणी (धनुर्धारि) अनेक शस्त्र कला में प्रवीण, तीर-गोला–गोली का चलावने हारा पुरुष की अनुमोदना, हेय है। तथा नदी–सरोवरन की पालो (बांध) फोड़िकें तथा फूटी देखि कें तथा नगर वन में अग्नि लगी देखि, तथा नगर–मुल्क कौं लुटता देखि–सुनिकैं अनुमोदना, अशुभ फल देन–हारा है। तातें हेय है। और कुतीर्थन के स्थान तथा तिनके कर्ता देखि, तिनकी अनुमोदना करनी, हेय है। और कृष्यारंभ, पशु संग्रह, खेटकादि जीवघात विषैं हर्ष करना, हेय है। और अनेक मिथ्यात कारणन में तथा बहु पापारंभ–परिग्रह के विकल्पन में हर्ष–अनुमोदना, ये जानि तजना, सो गुणकारी है। इति पाप अनुमोदना हेय। आगे शुभ अनुमोदना उपादेय कहिए है। जहां मुनीश्वर ध्यानाग्नि तें कर्मनाशि निरंजन भए, तिनकी बन्दना में हर्ष करना, उपादेय है। तथा कोई भव्य आत्मा, गुरु का उपदेश पाय, संसार–दशा तें उदास होय, तप करता होय, तामें अनुमोदना, उपादेय है। तथा कोई जिन–दीक्षा–धारी मुनीश्वर, शुक्ल ध्यान

करि, च्यारि घातिया कर्म नाश के केवलज्ञान पाया, तिनकी बन्दना में हर्ष—अनुमोदना, उपादेय है। और जिन कालन में निर्वाण, केवल ज्ञान, तप कल्याणक हुए तिन कालन की पूजा—वंदना विषैं अनुमोदना उपादेय है। और जहां कोई भव्यात्मा धर्मी जीव कों सम्यक प्रकार—बारह प्रकार तप करता देखि तथा अनेक तीर्थ सिद्ध क्षेत्रन की वन्दना करते देखि, तथा अकृत्रिम अरु कृत्रिम जिन चैत्यालयों की बन्दना करता देखि, इन कार्यन में भव्यात्मा कूं प्रवर्ते देखि, तिनकी अनुमोदना करना उपादेय है। तथा तीर्थंकर के पंच ही कल्याणकन के समय देखि—सुनि हर्ष भाव, उपादेय है। तथा अष्टान्हिका के दिन में इन्द्रादि देव नंदीश्वर द्वीप विषैं जाय पूजा—उत्सव करैं, तिस काल में बन्दना करना, हर्ष सहित—तामैं अनुमोदना उपादेय है। और श्री दशलक्षण पर्व आदि में पूजा, संयम, तप जे भव्य करैं, तिनकी अनुमोदना उपादेय है। तथा जिन मंदिर कराय तिनकी प्रतिष्ठा का उत्सव करि हर्ष मानना तथा और भव्य ने किया होय तो ताकी उत्तम भावना देखि हर्ष अनुमोदना करना, उपादेय है। और जहां निरन्तराय करि मुनि का दान आपकें तथा परकें भया जानि, अनुमोदना करना उपादेय है। तथा कोई भव्यात्मा कूं जिन वाणी का अभ्यास करता देखि तथा सुनि हर्ष करना, उपादेय है। तथा कोई धर्मात्मा कूं दीन जीवन कूं दया भाव सहित दान देता देखि हर्ष करना, उपादेय है। तथा काहू भव्यात्मा पुरुष की करी जिन मंदिर की अनेक शोभा—रचना देखि, अनुमोदना करना उपादेय है। तथा जिन मंदिर के उपकरण, छत्र, चमर, सिंहासन, भामण्डल, घंटा, चांदोवा तथा पूजा के उपकरण थाल, रकेबी, झारी, प्यालादि देखि हर्ष करना, उपादेय है। तथा उत्कृष्ट अक्षर, पत्र, बंधना,

लौकिक मोक्ष, सो ता मोक्ष कौं ऐसी मानै हैं। कि जो आत्मा मोक्ष जाय, सो तहाँ महा सुखी रहै। पीछे शुद्धात्मा की इच्छा होय तो संसार विषैं पीछे आवै। सो ऐसी मोक्ष संसार समान है। काहे तैं? जो जनम-मरण तौ संसार का स्वभाव है। अरु मोक्ष विषैं जामन-मरण नाहीं है। तातैं जे अल्पज्ञानी मोक्ष जीवकौं जन्म लेना फेरि मानैं हैं। सो मोक्ष हेय है। शुद्ध जो मोक्ष है तहाँ गया जीव फेरि अवतार लेता नाहीं। जैसे पृथ्वी की खानि विषैं तैं अग्नि आदि के निमित्त पाय करि यतन पूर्वक काढ्या जो सुवर्ण, सो मिट्टी तैं भिन्न भये पीछे मिट्टी में मिलाईए, तौ मिलता नाहीं। तैसे ही शुद्ध जीव, कर्म-मल दूरि कर मोक्ष भए पीछे, तन रूपी मिट्टी मैं मिलता नाहीं। तातैं मोक्ष भए पीछे जिस मोक्ष तैं पीछा जन्म होय, सो मोक्ष विवेकीन के तजवे योग्य हेय है। अरु केतेक भोरे पंडित हैं ते मोक्ष जीवकौं रागद्वेष सहित मानैं हैं। ऐसा कहै हैं जो मोक्ष में भगवान्, सर्व संसारी जीवन पै लेखा लेय है। सो जाने अपनी भक्ति नहीं करी, तिनकूं नरक-कुंड में डारै है। और जाकूं अपना भक्त जानै है ताकौं अपने पास मोक्ष में राजी होय राखै है। सो भो भव्य हो, ऐसा राग भाव अरु द्वेष भाव मोक्ष में नाहीं। जहां राग-द्वेष होय सो संसार स्थान जानना। तातैं रागद्वेष सहित जो मोक्ष होय, सो हेय है। और केतेक संसारी चतुर नर ऐसा मानैं हैं। जो मोक्ष विषैं पंचेन्द्रिय महा सुख है। या कहैं हैं जो मोक्ष विषैं भगवान् कूं इन्द्रिय जनित बड़ा सुख है। ऐसा सुख और कहूं नाहीं। उत्कृष्ट भोजन, अमृतमई भोगने योग्य रस, ताकूं भोगवै है। और अनेक सुख नासिका इन्द्रिय कूं सुखदाई ताहि सूंघै है। और नाना प्रकार के नृत्य-गीत-वादित्र भगवान्

के मुख आगे मोक्ष में अनेक अप्सरा चरित्र सहित करें हैं। तिनकों भगवान देखि महासुख भोगवें हैं। इन आदि अनेक अप्सरान कों भोग सहित अनेक इन्द्रिय जनित सुखकूं भोगवै है। सो हे धर्मात्मा जीव, तूं चित्त देय सुनि। अरु मन में विचारि। जहां इन्द्रिय सुख है, सो मोक्ष नाहीं, संसार ही जानना। और मोक्ष है तहां इन्द्रिय जनित सुख नाहीं। मोक्ष सुख तो इन्द्रियन तें अतीत है। अतीन्द्रिय सुख का भोगता शुद्धात्मा है। इंद्रिय सुख आकुलता रूप है और मोक्ष आकुलता रहित है। तातें जिस मोक्ष में इन्द्रिय सुख होय, सो मोक्ष हेय है। और केनेक ज्ञान-चक्षु-हीन ऐसा कहे हैं। जो मोक्ष विषैं भगवान सदीव बैठे पुस्तक के पत्र देखा करें हैं। तहां ससारी जीवन के आयुष का प्रमाण लिख्या है। सो जाका आयुष्य के दिन पूरण हांय, तब भगवान् के सेवक सदीव पास ही रह्या करें हैं तिन यमन (सेवकन) कूं खिदाय (भेज), ताका जीव भगवान् अपने पास मँगाय लेंय। पीछे सुख-दुख देय हैं। या जीव का लेखा लेय हैं। जो तैं संसार में जायकें कहा किया, सो वाको पूंछे हैं। सो वानै पाप किए होंय तो तहां भगवान् के लोक में नरक कुंड है तहां नाखि, दुखी करें हैं। और वानै पुण्य किए होंय, तौ भगवान के लोक में नाना प्रकार रतन मई महल हैं सो ताकों धन-धान्य तें भरे महल-मंदिर देय, सुखी करें हैं। जैसा जाका शुभाशुभ कर्तव्य होय तैसा ही सुख-दुख भगवान् देय हैं। ऐसे रात्रि-दिन भगवान निरन्तर लेखा देखा करें हैं। ऐसा विकल्प सदीव मोक्ष में भगवान् कौं बतावें हैं, केते पंडित विवेकी भूले ऐसा कहे हैं। तिनकों कहिए है। भो मोक्षाभिलाषी हो, मोक्ष विषैं ऐसा विकल्प नाहीं। जहाँ विकल्प है ते संसारी स्थान

जानना। मोक्ष तौ निर्विकल्प है, निराकुल है। तातैं जाकी मोक्ष विषैं इतना विकल्प होय, सो मोक्ष हेय है। और केतेक जीव ऐसे ही—शरीर सहित, मोक्ष मैं जाना मानैं हैं। ऐसी कहैं हैं कि जापै भगवान् कृपा करि राजी होंय। ता मनुष्य कूं अपना भक्त जान, यह सप्त धातु के भरे शरीर सहित हो, अपने पास मोक्ष मैं बुलाय, सुखी करै हैं। जो कोई नगर भर के लोक भगवान की भक्ति करैं तौ भगवान् संतुष्ट होय, सर्व नगर के लोकनकौं ही अपने पास मोक्ष मैं बुलाय लेय हैं। केतेक जीव ऐसा मानै हैं, तिनकौ कहिए है। भो सुज्ञानी जीव, तू समझि। यह अपवित्र शरीर, महा मलीन, सप्तधातु व मल-मूत्र का भरया, मूर्तीक, जड़ शरीर, सो तौ मोक्ष मैं जाना नाहीं। अरु जहां इस मूर्तीक शरीर का आना-जाना होय, सो संसार अवस्था ही है। मोक्ष विषैं मूर्तीक शरीर है नाहीं। मोक्ष मैं अमूर्तीक शरीर है। तातैं जाकी मोक्ष मैं मूर्तीक शरीर जाना हो, सो मोक्ष हेय है। अरु केतेक ज्ञान-इन्द्री, मोक्ष मैं शून्य भाव मानै हैं। वे जीव ऐसा कहैं हैं। जो जेते सुख हैं। सो तो सर्व संसार मैं हैं। स्त्री सम्बन्धी भोग सुख। नाना प्रकार षट् रस, मेवादि, मोदकादि, जिव्हा इन्द्रिय के सुख। तथा नाना प्रकार सुगंध, नासिका इन्द्रिय के सुख। और नाना प्रकार रतन-कनक के आभूषण-वस्त्र, स्त्रीन के रूप, नृत्य-शोभादि अनेक चक्षु इन्द्रिय के सुख। और अनेक प्रकार मिष्ट-सुर सहित अनेक संगीतादि राग की वीणा, बाँसुरी, पखावज, तंदूरादि अनेक सचित्त-अचित्त मिश्र स्वरन के मनोज्ञ राग शब्द, सो कर्ण इन्द्रिय के सुख। ए पंच ही इन्द्रिय सम्बन्धी जेते सुख हैं सो संसार मैं ही हैं। ए सुख मोक्ष मैं नाहीं, वहाँ तो शून्य है। नहीं कछू सुख, नहीं कछु दुख। शून्य

रूप है। नहीं बोलना, नहीं चालना, नहीं गावना, नहीं खावना, केवल एक शून्यता। ऐसी मोक्ष केई जीव मानै हैं। ताको कहिए है। भो मोक्ष के वांछक, सुनि। अरु विचार देखि। सुख रहित शून्यता तौ मूर्ख कैं होय। तथा सोते के होय। तथा वायु-सन्निपात रोग वारे कैं होय। तथा सुख रहित शून्यता दीन-दरिद्री कैं होय। तथा जाके इष्ट का वियोग होय, शोक करि भरया होय, अज्ञान-मोह तैं जड़ समान होय गया होय, तथा काष्ठ-पाषाण की मूर्ती, चेतना भाव रहित कैं होय, इत्यादिक स्थानकन मैं शून्यता होय। और परमात्मा, शुद्ध, निराकार, चेतन-मूर्ती, ज्ञान भण्डार कैं मोक्ष मैं शून्यता नाहीं। महासुख-सागर मैं मगन हैं। जेते सुख संसार मैं है तिनतैं अनतगुणे सुख मोक्ष में हैं। तातैं जाकी मोक्ष मैं शून्यता भाव होय, सो मोक्ष हेय है। इति हेय मोक्ष।

आगे उपादेय मोक्ष कहिए है। भो सुख के अर्थी, तूं चित्त लगाय सुनि। जो आत्मा जामन-मरण के महा दुखन तैं भय खाय, दिगम्बर पद धारि, नाना तप करि, कर्म बंधन छेद, मोक्ष कौं प्राप्त भया। सो अब जन्म-मरण तैं रहित होय, भव-बंधन तैं छूटा, मोक्ष के ध्रुव स्थान विषैं तिष्ठ्या। सो आवागमण का महा दुख मिटाय, सुखी भया। और मोक्ष विषैं राग-द्वेष का अभाव होतैं, महा सुख होय है। ए राग-द्वेष हैं सो ही महा दुख हैं। सो मोक्ष में ए राग-द्वेष नाहीं। मोक्ष जीव अनंत सुख का धारी है। जे संसारीक इन्द्रिय जनित सुख हैं सो सर्व विनाशीक हैं। क्षणभंगुर व पराधीन हैं। सो इन्द्र, चक्री, कामदेव, नारायण, बलभद्र और अहमिन्द्रादिक ए सर्व देव-मनुष्यन कैं अनंत काल का सुख है। तिस सुख तैं भी

अनंत गुणा अतीन्द्रिय सुख, मोक्ष का सुख है। तातैं मोक्ष सुख, इन्द्रिय रहित है। तातैं ही
उपादेय है। अर मोक्ष जीव, विकल्प रहित, एकै काल सर्व जगत के पदार्थन का स्वरूप जानै
है। और विकल्प है सो जो हीन ज्ञानी व हीन शक्ति होय, तिन कौं होय है। तातैं अनंतज्ञान-शक्ति
का धारी परमात्मा कैं विकल्प नाहीं। और सर्व द्रव्य-कर्म-अरिन का नाशिकरि, तज्या है
औदारिकादि पुद्गलीक स्कंधमई शरीर जानैं, सो सिद्ध पद का धारी सिद्ध जीव, सो अमूर्तीक
है। निरजन दशा धरे, सुख का पिंड है। और केवल-ज्ञान केवल-दर्शन करि, सर्व लोकालोक का
वेत्ता है। ए सर्वज्ञ, वीतराग, घट—घट के अन्तर्यामी, भवसागर के तारक हैं। और चैतन्य,
सदीव आनंद मूर्ती, जड़त्व भाव जो शून्यता दशा तातैं रहित हैं। ऐसे जामन-मरण रहित,
राग-द्वेष वर्जित, अतीन्द्रिय सुख का भोगी, विकल्प रहित, निराकार, पुद्गलीक शरीर तैं
रहित, सर्वज्ञ पद धारी, ज्ञान मूर्ती, चेतन, चमत्कार लिए, ऐसे गुण का धारी मोक्ष जीव है।
सो ऐसी मोक्ष उपादेय है। इस मोक्ष का नाम लिये, सुमरण किये, पूजा किये, श्रद्धान किये,
आशा किये, महा-पुण्य फल होय। तातैं परभव मैं उत्तम पद पाय, परंपराय मोक्ष का वासी
होय। तातैं सम्यग्ज्ञान सम्पदा के धारक भव्यात्मा कौं, ऐसी मोक्ष उपादेय है। इति श्री
सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, मोक्ष तत्त्व विषैं, ज्ञेय-हेय-उपादेय वर्णनो नाम, अष्टा दश
पर्व सम्पूर्णम् ॥ १८ ॥

आगे ज्ञान विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए हैं—

गाथा—णेय हेयोदेओ, [illegible] वसु भेय जिण उत्तं ॥

जाण कुणाणाय हेयं, उवादेयं पण सुद्ध णाणांतु ॥ ४२ ॥

अर्थ—ज्ञेय-हेय-उपादेय करि ज्ञान के आठ भेद हैं। तिन में तीन कुज्ञान तो हेय हैं अरु पंच सुज्ञान उपादेय हैं, ऐसा जिन देव ने कह्या है। भावार्थ—सुज्ञान-कुज्ञान का समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। और ताही के दोय भेद हैं। एक ज्ञान, हेय है। एक ज्ञान, उपादेय है। तहाँ कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, कुअवधि ज्ञान ए हेय ज्ञान हैं। सो ही कहिए हैं। जहाँ हिंसा-ज्ञान की चतुराई होना। जहाँ जीव पकड़ने कूं जाल बनायवे का ज्ञान, अरु ता ज्ञान तैं फंदा करना, फाँसी, पींजरा, छुरी, कटारी, बरछी, तलवार, बन्दूक इन आदि अनेक हिंसा के कारण शस्त्र बनावना, सो कुज्ञान है। तथा चित्राम, शिल्पकला, भंड कला, युद्ध कला, चौर कला, इनकूं आदि, पर के ठगवे की अनेक चतुराई की युक्ति का उपजना, सो कुज्ञान है। तथा और जीवन कौं अनेक दुख देने की कला, चोर व कुमारगी जीवन कौं दंड देवे की कला—चतुराई, जो इसकूं ऐसे मारिए तो बहुत दुखी होय, इत्यादि ए कुज्ञान है। और कौतुक—हाँसी अनेक भाव करि, परकौं खुशी करिए। तथा नाना प्रकार के स्वांग धारि, लोकन कूं आश्चर्य का उपजावना। चोरी व परदारा-सेवन में प्रीति भाव, इत्यादि ज्ञान की चेष्टा लौकिक में प्रवर्तिती है, सो कुमति-ज्ञान है। इति कुमति ज्ञान। आगे कुश्रुत ज्ञान कूं कहिए है। तहाँ युद्ध शास्त्रन का ज्ञान, नाना प्रकार रसिक—प्रिय शृंगार शास्त्र आदि कामोत्पत्ति के कारण रसशास्त्र, संगीत शास्त्रादिक, कुश्रुत ज्ञान हैं। और हिंसा के कारण जिन में परजीव घात का उपदेश, सो कुश्रुत है। तथा जिनमें कुदेव-कुगुरुन के पोषवे कूं अनेक द्रव्य चढ़ावे का कथन। तथा ए देव ऐसा

मक्ष लेय है, तब तृप्त होय है। इत्यादिक कथन जिन शास्त्रन मैं होय सो कुश्रुत है। तथा
कुगुरु पोषवे कूं ऐसा भोजन, ऐसे वस्त्र, धन, मंदिर, देव, गुरु की सेवा कीजे। तथा दासी,
दास, स्त्री, गुरुन की सेवा कौं दीजे, तौ अप्सरान का भोगी होय, ऐसा फल पावै। तथा गज,
घोटक, रथ, पालकी, गुरुन कूं दीजिए तौ देव-विमान का फल पावै। इत्यादिक कथन, जिन
शास्त्रन मैं होय, सो कुश्रुत है। इन कुश्रुत शास्त्रन का जाके ज्ञान होय, सो कुश्रुत ज्ञान
है। सो सुदृष्टीन करि हेय है। इति कुश्रुत ज्ञान। आगे विभंग ज्ञान का कथन करिये है।
तहाँ आत्म हित कूं कारण सम्यग्दर्शन, सो ऐसे सम्यक बिना, मिथ्या भाव सहित, इस भव-
परभव की वार्ता जानना तथा दूरवर्ती पदार्थन कौं जाने, सो विभंगज्ञान है। तथा याही का
नाम कुअवधि भी है। ऐसे कहे जो सामान्य अर्थ सहित कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ए
तीन कुज्ञान, सो सम्यग्दृष्टीन तैं हेय हैं। ऐसे तीन कुज्ञान कहे। आगे पाँच सुज्ञान कहिए
हैं प्रथम नाम—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान। तहाँ
मति ज्ञान कहिए है—सो मति ज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेद हैं सो सुनो। प्रथम भेद चार-अवग्रह,
ईहा, अवाय और धारणा। इनका अर्थ-जहाँ पदार्थ का दूरतैं सामान्यावलोकन होय, जैसे काहू
ने दूर तैं एक स्थंभ देखा, परन्तु भेदाभेद नाहीं किया, सामान्यसा भाव जो कछू है, देखा।
ऐसे भाव का जानना, सो अवग्रह कहिए। और उसही देखे स्थंभ मैं भेदाभेद करना। जो
यह स्थंभ है या मनुष्य है? ऐसे विकल्प का नाम ईहा भेद है। पीछे वाही स्थंभ कौं जान्या।
जो मनुष्य तौ नाहीं, स्थंभ है। ऐसे विचार का नाम अवाय कहिए। और आगे बहुत दिन

पहले स्थंभ देखे थे। तिनका सुमरण किया। जो आगे स्थंभ देख्या, तैसा ही यह है। सो स्थंभ है। निश्चयतें ऐसे दृढ़ भाव विचारना, सो धारणा है। ऐसे अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा इन च्यारि भेदन करि पदार्थ जानिए। सो मति ज्ञान भेद हैं। अरु ए ही च्यारि भेद, पंचेन्द्रिय और मन इन षट् तें परस्पर लगाय गुणिए, तौ चौबीस भेद होय हैं। जैसे स्पर्श इन्द्रिय तैं कोई वस्तु-पदार्थ स्पर्श्या। तब सामान्य भाव जान्या, जो कछू है। विशेष भेद नहीं किया। सो स्पर्श इन्द्रिय तैं अवग्रह भया। फेरि विचारी, जो ए पदार्थ पांव तैं स्पर्श्या सो कहा है? कठोर २ है, गोल है। सो कै तौ कोई रतन हैं या कंकड़ है। इस विचार का नाम स्पर्श इन्द्रिय का ईहा भेद है। फेरि याही को विचारिये कि जो यह गोल है, साफ हैं, सो रतन है। इस विचार का नाम स्पर्शन इंद्री का अवाय भेद है। और तहाँ आगे कबहूँ पाँव नीचे रतन आया था। ताकी यादि करि जानी, जो आगे पाँव नीचे रतन आया था तैसा ही ए भी है, सो रतन ही है। ऐसा निश्चय करना, सो स्पर्शन इन्द्रिय की धारणा है। ऐसे कहे स्पर्शन इन्द्रिय तैं च्यारि भेद। सो ऐसे ही रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन, इन छहों तैं लगाय चौबीस भेद हैं। और इन चौबीस में स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र ए च्यारि भेद मिलाये अठाईस होंय। इन अठाईस भेदन कौं बहु, बहुविध आदि बारह भेदन तैं गुणिए, तौ तीन सौ छत्तीस भेद मतिज्ञान के होंय। इन मतिज्ञान के भेदन की पल्टन का एक विधान और तरह है। सो बतावैं हैं। अवग्रहादि च्यारि भेदनकूं पंचेन्द्रिय और मनतैं गुणें, चौबीस भेद होंय। इन चौबीस कौं बहु आदि बारह भेदन तैं गुणें, दोय सौ अट्ठासी होय हैं।

सो ए तो अर्थावग्रह के हैं। और स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र इन च्यारि इन्द्रिय तैं बहु आदि बारह भेदन कौं गुणौं, अड़तालीस भेद भए, सो ए व्यंजनावग्रह के हैं। दोऊ मिल तीनसौछत्तीस भेद रूप मतिज्ञान होय है। इहां सामान्य भाव कह्या। विशेष श्रीगोमट्टसारजी तैं जानना। इति मतिज्ञान भेद। आगे श्रुतज्ञान का सामान्य भेद कहिये है—श्रुतज्ञान के अनेक भेद हैं। तहां मूल भेद दोय। अंग द्वादश, अरु प्रकीर्णक भेद चौदह। तहां द्वादशांग के भेद दोय। ग्यारह अंग, अरु बारहवें अंग के पंच भेद तहां चौदह पूर्व का कथन है। तिनही अंग-पूर्वन मैं गर्भित, योग च्यारि—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। इन योगन मैं कथन—जहां तीर्थंकर, चक्री, प्रतिचक्री, इन्द्र, देव इत्यादि महान पुरुषन की कथा जामैं होय, सो प्रथमानुयोग है। और तीन लोक की रचना का जामैं कथन होय, सो करणानुयोग है। और मुनि-श्रावकन के आचार का जामैं कथन, सो चरणानुयोग है। और षट् द्रव्य, नव पदार्थ, सप्त तत्व, पंचास्तिकाय का कथन जहां होय, सो द्रव्यानुयोग है। तहां षट् द्रव्य के गुण—पर्याय का कथन, सो तिन द्रव्यन करि संसार रचना—च्यारि गति बनी है ऐसा कथन। और द्रव्य में षट्गुण हानि—वृद्धिरूप परिणमण सो तथा द्रव्य का अपने-अपने व्यय, ध्रौव्य, उत्पाद सहित तीन भेद रूप प्रवर्तना कथन, सो ए सर्व श्रुतज्ञान के भेद हैं। तहां उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का सामान्य कथन कहिए है—जो वस्तु बिनसै सो तो व्यय कहिए। और नवीन वस्तु की पर्याय का उपजन सो उत्पाद है। और वस्तु का सदीव शाश्वत रहना, सो ध्रुव है। जैसे कर का कनक का चूड़ा तुड़ाय, कुण्डल करवाना। सो इसी ही मैं तीन

भेद सधैं, सो बताइए हैं। तहां द्रव्य भाव तौ सुवर्ण, सो शाश्वत है, सो ध्रुव कहिये। चूड़ा की पर्याय टूटी, सो ताकूं व्यय कहिए। और कुन्डल बन्या, सो ताकी पर्याय न्यूतन उत्पन्न भई, ताकूं उत्पाद कहिए। ऐसे ए तीन भेद जानना। तैसे ही आत्मा तौ द्रव्य और मनुष्य पर्याय छोड़ि, देव भया। सो मनुष्य पर्याय का तौ व्यय भया और देव पर्याय का उत्पाद भया। जीवत्व भाव दोऊ मैं शाश्वत है। सो ध्रुव है। ऐसे नय भेद तैं व्यय, ध्रुव, उत्पाद अनेक पदार्थन में साधना। ऐसे अनेक नयका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञान उपादेय है। और श्रुतज्ञान तैं और भी ज्ञाता, ज्ञान, व ज्ञेय का स्वरूप जानिये है। तातैं उपादेय है। तहां ज्ञाता तौ आत्मा है। ज्ञाता का गुण, ज्ञान है। और ज्ञान के जानपने में आवे, सो ज्ञेय है। ज्ञान, सर्व ज्ञेय का जाननहारा है। ऐसा ज्ञाता, ज्ञान व ज्ञेय का स्वरूप श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं उपादेय है। और भी श्रुतज्ञान के स्वरूप में ध्याता, ध्येय, व ध्यान का स्वरूप कहिए है। तहां ध्याता तौ आत्मा है। और जा वस्तु कूं ध्यावै, सो ध्येय है। और ध्यावते, ध्याता के भाव का विकल्प, सो ध्यान है। जैसे धर्मी आत्मा तौ ध्याता है। पंचपरमेष्ठी ध्येय है, ताकों ए ध्याता ध्यावै है। और पंचपरमेष्ठी के गुणन का सुमरण सो ध्यान है। तथा और दृष्टान्त करि कहिए है। जहां कोई पापी आत्मा तौ ध्याता है। और पर-स्त्री भलेरूप सहित देखि ताके मिलाप की चाह ध्येय है। और उस स्त्री के रूपादिक गुण ताका विचार, सो आर्तध्यान है। ऐसे अनेक जगह ध्याता-ध्येय-ध्यान का स्वरूप सधै है। सो ऐसा भाव श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं उपादेय है। और भी कर्ता-कर्म-क्रिया का स्वरूप श्रुतज्ञान तैं कहिए है। कर्ता तौ आत्मा है। और

जो वस्तु यानै बनाय तैयार करी, सो कर्म है। अरु उस वस्तु के करते, भई जो मन-वचन-काय की हल-चल, सो क्रिया है। जैसे कोई धर्मात्मा जीव, अष्ट द्रव्य मिलाय भगवान का पूजन करै है। सो तो कर्त्ता है। और ताके फलतैं देवगति, देवायु, सुभग, आदेय, सौभाग्य, सातावेदनी आदि अनेक बंध किये जो शुभकर्म, सो इसका कर्म है। और पूजा विषैं भले भाव का राखना, विनय तैं काय का राखना, विनयतैं वचन का बोलना, विधि सहित हाथ जोरै हर्षतैं खड़ा रहना, इत्यादिक भक्ति-भाव रूप प्रवृत्ति, सो क्रिया है। तथा और तरह कहिए हैं। जैसे कोई जड़िया तो कर्ता है। और नाना प्रकार रतन जड़ि करि, तैयार किया जो मुकुट तथा हार, सो कर्म है। और इनके करते, भई जो मन-तन की प्रवृत्ति, सो क्रिया है। ऐसे अनेक पदार्थन पै लगावना। इस विधान सहित नय-प्रमाण कथन, श्रुतज्ञान तैं पाईए है। तातैं उपादेय है। और भी श्रुतज्ञान तैं पल्य-सागर का कथन कहिए है। तहां पल्य भेद तीन। जघन्य, मध्यम, अरु उत्कृष्ट। तहां जघन्य का स्वरूप कहिये है—ए जघन्य पल्य ऐसे हैं जैसे मानी-मनेसा के प्रमाण बांधवे कूं रत्ती होय हैं। रत्ती तैं मासा, मासा तैं रुपैया, रुपैया तैं सेर, सेर तैं मनादिक। जैसे रत्ती तैं मनेसा का प्रमाण किया, तैसे जघन्य पल्यतैं सागर की उत्पत्ति होय है। सो ही कहिए है—एक बड़ा योजन का प्रमाण सहित, गोल गड्ढा कीजिये, तेताही चौड़ा, तेताही ऊंडा (गहरा) तामैं। भोग भूमिकी बकरीका तुरंतका भया बच्चा, ताके रोम का अग्रभाग का बारीक खंड लीजिये। तिन रोम—खंडन तैं वह कूप [illegible] कूट करि, कूटि-कूटि, धरती बरोबर भरिये। ता पीछे सौ वर्ष जांय, तब एक रोम काढ़िए।

फेरि सौ वर्ष गये, एक रोम काढ़िए। ऐसे करते सर्व कूप खाली होय। ताकूं जेता काल लागै सो जघन्य व्यवहार पल्य कहिए है। और जघन्य पल्य में जेता रोम आवे, तितने कूप कूं उस ही कूप प्रमाण करि, वैसे ही रोमों तैं भरिए-दृढ़ करिए। असंख्यात वर्ष जांय, तब एक-एक रोम काढ़तैं एक कूप, दोय कूप रितावतैं, सर्व खाली होंय। सर्व कूपन के रोम खाली होंय। ताकौं जेता काल लागे, सो मध्य पल्य कहिए। और इस मध्य पल्य के जेते रोम भए, तेते ही कूप उस ही विस्तार प्रमाण बनाए। वैसे ही रोमन तैं सबको दृढ़ भरिए। पीछैं असंख्यात लाख कोटि वर्ष गए, एक रोम काढ़िए। फेरि एता ही काल गए, एक रोम काढ़िए। ऐसे करते-करते सर्व कूपन के रोम खाली होंय। ताकौं जेता काल लागै, सो उत्कृष्ट पल्य है। याही उत्कृष्ट पल्य तैं देव, नारकी, भोग-भूमिन की उत्कृष्ट आयु-कर्म है। और मध्यम पल्य तैं द्वीप-समुद्रन की गिनती होय है। सो पचीस कोड़ा-कोड़ी मध्यम पल्य प्रमाण हैं। और दश कोड़ा-कोड़ी पल्य का एक सागर होय है। मध्य पल्य दश कोड़ा-कोड़ी का, मध्य सागर होय है। उत्कृष्ट दश कोड़ा-कोड़ी पल्य गये, उत्कृष्ट सागर होय। ऐसे सामान्य करि पल्य-का कथन किया। विशेष श्री त्रिलोकसार जी आदि ग्रंथ तैं देखि लेना। ऐसे पल्य-सागर का भाव श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञान उपादेय है। और भी श्रुतज्ञान तैं कृतघ्नी, विश्वासघाती का स्वरूप जान्या जाय है। सो कहिए है—जो पराया किया उपकार कौं भूलै, सो कृतघ्नी है। सो कृतघ्नी के भेद, तीन हैं। घर, पर और धर्म। इन तीन का उपकार अन्य जीव पै होय है। सो जैसे माता-पिता ने बालक

अवस्था में महा यतन किये । शीतकाल में तथा उष्णकाल में अनेक सहाय करि, माह के
वशीभूत होय, अनेक यतन करि पाल, रक्षा करी । तरुण किया । सो बड़ा भया, तब माता–
पिता का उपकार भूलि, उनतैं द्वेष–भाव करि जुदा होना, अविनय करना, कटुक वचन बोलना,
दुख देना, माता–पिता तैं ईर्षा करनी, सो ए घर–कृतघ्नी कहिए । तथा और अन्य घर में बड़े थे ।
तिनने भी बालपने में अनेक तरह रक्षा करी । ऐसा विचार करें जो ए बड़ा होय, तब हमारी आज्ञा
मानैगा, हमारी सेवा करेगा, हमको बड़ा मानैगा । ऐसी आशा करि कुटुम्ब के लोगन नैं
प्रति–पालना करी थी । सो बड़ा भए, उलटा कुटुम्ब कौं दुखी करना । सो घर-कृतघ्नी है,
ऐसा जानना । और कोई जो परजन बड़े मनुष्य बस्ती के और जाति के, तिननैं कोई भूखा
देखि अन्न दिया, नागा देखि वस्त्र दिया, वेरुजगार देखि रुजगार लगाय दिया, निर्धन देखि
धन दिया, स्थान रहित देखि रहवे कौं मंदिर-स्थान दिया, इत्यादिक दुखन में सहाय किया ।
और रोगी कौं पीड़ावान देखि, अनेक औषधि देय अच्छा किया । ऐसे अनेक दुःख में सहाय
करि, सुखी किया । अरु पीछे कर्म योग तैं आप शक्तिवान भया, तब उन उपकारी का उपकार
भूलि, द्वेष करै । सो पर—कृतघ्नी कहिए । और जाकूं महा अज्ञान में प्रवर्तता देखि, पाप
करता देखि, पर भव नरक पड़ता देखि, कोई धर्मात्मा दयाभाव करि अज्ञानता छुड़ाय,
ज्ञान करावता भया । और पाप–मार्गतैं बचाय, धर्म का पंथ बतावता भया । नरकादि खोटी
गति तैं बचाय शुभगति बतावता भया । लोकनिंद्य—अनाचार छुड़ाय, सुआचार बतावता
भया । जानी यह जीव सुखी होय तो भला है, ताके निमित्त शुभ पंथ लगाया । अरु पीछे

आपकैं कछू सामान्य भाव–ज्ञान भया, शास्त्र रहस्य पाया। तब उसके उपकार कौं भूलि, द्वेष–भाव करना, सो धर्म कृतघ्नी है। ऐसे तीन भेद कृतघ्नी के कहे हैं। सो महा पाप के स्थान हैं। तातें हेय हैं। आगे विश्वासघाती का स्वरूप कहिये है। तहां परकौं विश्वास उपजावना। कहना जो मैं तेरी सहाय करूंगा। धन द्योंगा। तेरा दुख–दारिद्र हरूंगा। तू कछू उपाय मति करै। ऐसे अनेक मिष्ट वचन बोलि, विश्वास उपजाय, पीछे काम पड़े नट जाय। दगा दे जाय। कहै मोतैं तौ अबार नहीं होय। ऐसे कहि ताके कार्य का घात करै। ऐसी कहै सो विश्वासघाती कहिए। जैसे यहां एक कल्पना करि, लौकिक दृष्टान्त बनाय, विश्वास–घात का लक्षण कहिए है। जैसे एक किसान ने अषाढ़ महीना में नाना प्रकार खेद खाय, हल चलाय कैं, खेत शुद्ध कर राखे थे। सो जब भला मेघ वर्षे पीछे, सर्व खेती बार घरन तैं बीजकी मोटि (गठरी) बांधि, बनकौं चाले। तब एक किसान कौं देखि, एक दुष्ट–मनुष्य की खोपड़ी राह में पड़ी थी, सो हँसती भई। तब किसान कूं आश्चर्य भया। जो ए निर्जीव–खोपड़ी हाड़ की क्यों हँसी! तब इस किसान नें कही। हे खोपड़ी, तूं क्यों हँसे है? तब खोपड़ी ने कही, तोकौं देखि हँसौ हौं। मैं देवता हौं, सो तेरे पै राजी भई। सो अब खेत मैं बीज बोवे मति जाय। मैं तेरे खेत में बिना बोया ही बहुत अन्न करूंगी। तब या किसान नैं जानी, यह देवी है। सो या मोपै राजी भई। तब किसान याके वचन का विश्वास करि, घरि गया। और अन्य किसान अपने खेतन में बीज बोय, घर आये। पीछे दस–बीस दिन गए। अपने-अपने खेत देखवे कूँ सब किसान चाले। सो अन्न उगा देखि, राजी भए। तब यानें भी

विचारी, जो मेरे खेत में भी अन्न भया होगा । सो ए भी देखवे कों चल्या । सो राह में खोपड़ी फिर हँसी । तब किसान ने कही, क्यों हँसे है? तब कही तोकों देखि हँसे हूँ । तू कहां जाय है ? तब किसान नैं कही । औरन के खेत हरे-भरे शोभा देय हैं । सो मैं अपने खेत की शोभा देखवे कों जाऊं हों । तब खोपड़ी कहे है । रे भाई, मैं तेरे पै तुष्टी हों । औरन तैं बहुत अन्न तेरे खेत में करूंगी, संतोष राखि । तब किसान, खोपड़ी के वचन का विश्वास करि घरि गया । जब महीना एक–डेढ़ भया, तब सर्व किसान अपने—अपने खेतन तैं फल ले-ले, अपने-अपने पुत्रन के निमित्त घर आये । तब किसान के बालक औरन पै अनेक फल देखि, रुदन करते भए । अरु फल मांगते भये । तब किसान नैं विचारी, जो औरन के फल आये, सो मेरे खेतमें भी फल आये हों हैं । ऐसी जानि वन कूं, खेत के फल लेने को चाला । तब राह में खोपड़ी हँसी । तब किसान ने कही तू कहा हँसै है ? औरन के खेतन में फल भए और सर्व के बालक खाँएँ हैं । और मेरे बालक फल बिना, रुदिन करैं हैं । तब किसान के वचन सुनकर खोपड़ी हँसके कहती भई । भो सुबुद्धि, धीरज राखि । सोचि मति करैं । मेरे वचन का कछू तौ विश्वास राखि । तेरे खेत में एते फल–अन्न होयगा । जो तेरे बूतौ गाड़ानितैं ढोवा भी नहीं जायगा । परन्तु विश्वास राखि, सोच मति करै । ऐसे कही, तब फिर पीछा घर आया । जानी देव के वचन हैं, सो अन्यथा नहीं हो हैं । ऐसा विश्वास धरि, घर तिष्ठ्या । पीछे महीना दोय–एक भये । और लोक अन्नकूट उड़ाय, गाड़े भरि–भरि अपने घर लाये । तब या किसान नैं विचारी, जो

मेरा खेत देखौं तौ सही। तब और हीं राह होयकैं, किसान खेत पैं गया। सो देखै तौ घास ऊंगा है। कोरे मिट्टी के ढीमा पड़े हैं। ऐसा खेत देखि किसान की छाती टूटि गई। महा दुखी भया। रुदन करता भया। जो वर्ष दिन की रोटी गई। अब कहा करैं? तब खोपड़ी याकों रोवता देख हँसी। तब किसान नैं कही, कहा हँसै है? मैं तेरे वचन का विश्वास करि खेत में बीज नहीं डारया। अब और तौ बहुत अन्न लाये, अरु मेरे खेत मैं कछू नाहीं। तैंने मुझे विश्वास देय, बुरा किया। तब यह दुष्ट की खोपड़ी, महा हास्य करि, कहती भई। भो भाई किसान, तू सुनि। हमनैं जीवतैं बहुतनका विश्वास देय, बुरा किया था। और मुए पीछे तो एक तेरा ही बुरा किया है। सो जे दुष्ट, खोपड़ी समान विश्वासघाती, महापाप मूर्ति जीव, सो विश्वासघाती हैं। ए कहे जो कृतघ्नी व विश्वासघाती, ते बड़े पापी हैं। इनका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं पाईए है। सो श्रुतज्ञान उपादेय है। और च्यारि गति के जीवन की आगति-जागति श्रुतज्ञान तैं जानिए है। सो कहिए है। तहां निज स्थान तजि, जा स्थान में उपजै, सो जागति कहिये। और अन्य स्थान तजि, निज स्थान में आवै, सो आगति कहिए। तहां प्रथम देवगति में आगति कहिए है। सो एती जायगा के, देवगति में आय उपजैं, सो कहिये हैं। मिथ्यादृष्टी भोगभूमियां-मनुष्य तिर्यञ्च, कर्म भूमियां-मनुष्य, तिर्यञ्च, सैनी तथा असैनी ए तौ सब भुवनत्रिक में शुभभाव-फलतैं उपजैं हैं। और सम्यग्दृष्टी भोग भूमियां-मनुष्य-तिर्यञ्च ए सर्व पहले-दूजे स्वर्ग पर्यन्त उपजै हैं। और कर्म भूमि के मनुष्य, स्त्री, तिर्यञ्च सोलह स्वर्ग पर्यन्त उपजैं हैं। और सम्यग्दृष्टी तथा मिथ्यादृष्टी मनुष्य, मुनि लिंग धारि

ग्रैवेयक लौं जाय हैं। और नव अनुत्तर अरु पंचपंचोत्तर इन चौदह विमानन में सम्यग्दृष्टी मुनि ही जाय हैं। इति देवगति में आगति। आगे देव की जागति कहिए है—च्यारि प्रकार के देव मरि कहां जाय उपजे हैं, सो जागति है। तहां भवनवासी, व्यंतर,ज्योतिषी देव, पहले-दूजे स्वर्गवासी देव ए मरि करि पृथ्वी कायिक, अपकायक, वनस्पती, सैनी-पंचेन्द्रिय—तिर्यञ्च, और मनुष्य इन पंच जगह में जाय उपजैं हैं। और तीसरे स्वर्ग तैं लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यन्त के देव चयकें, मनुष्य तिर्यञ्च सैनी-पंचेन्द्रिय में उपजैं हैं। और तेरह स्वर्ग तैं लगाय नव ग्रैवेयक पर्यन्त के देव चय करि, सम्यग्दृष्टी तथा मिथ्यादृष्टी मनुष्य ही उपजैं हैं। और नवग्रैवेयक तैं ऊपरले देव चयकें, सम्यग्दृष्टी मनुष्य ही उपजैं हैं। इति देव जागति। आगे नारकी की आगति–जागति कहिये है—तहां नारकी जीव मरि एती जगह में उपजैं सो कहिए है—प्रथम तैं लगाय छठी नारकी पर्यन्त के जीव निकस, मनुष्य-तिर्यञ्च कर्मभूमि के ही होंय हैं। और सातमी नारकी का निकस्या, पंचेन्द्रिय–सैनी–तिर्यञ्च ही होय है। और विशेष यह है जो पहली-दूजी-तीजी नारक का निकस्या कोई जीव सम्यग्दृष्टी, तीर्थंकर भी होय है। चौथी नारक का निकस्या, तीर्थंकर नहीं होय है, चरम शरीरी होय तौ होय। और पंचम नारकी का निकस्या, चरम शरीर नहीं होय, महाव्रत धरै तौ धरै। और छठे नारक का निकस्या, संयमी नहीं होय है। और विशेष एता। जो नारकी, असैनी में नहीं उपजै हैं। इति नारकी जागति। आगे नारक में आगति कहिये है। नारकी में एती जगह के जाय हैं, सो कहिये हैं—प्रथम नरक में तौ सम्यग्दृष्टी-मिथ्यादृष्टी मनुष्य, तिर्यञ्च–पंचेन्द्रिय-सैनी ए जाय हैं। और मनुष्य, पंचेन्द्रिय–सैनी-तिर्यञ्च, अरु जल का उपज्या सर्प ए दूसरी नारक पर्यन्त जाय

हैं। और मनुष्य, तिर्यञ्च, अजगर तथा काला फणधारी सर्प ए चौथे नरक पर्यन्त उपजे हैं। और मनुष्य, तिर्यञ्च, नाहर ए पंचम नरक पर्यंत उपजे हैं। और मनुष्य, तिर्यञ्च, स्त्री छठे नरक पर्यन्त उपजे हैं। और मनुष्य अरु तिर्यञ्च सातमें नरक पर्यन्त उपजें हैं। ऐसे नारक में आगति जानना। इति नरक में आगति। आगे मनुष्य में आगति कहिए है। मनुष्य में एती जगह के आवें, सो कहिए है। तहां सातमी नारकी के निकसे और अग्निकाय, वायुकाय, भोग भूमि के मनुष्य-तिर्यञ्च, इन बिना सर्व जगह के जीव आय, मनुष्य गति में उपजे हैं। इति मनुष्य में आगति। आगे मनुष्य की जागति कहिए है। तहां मनुष्य कहां-कहां जाय उपजें, सो कहिये हैं। सो मनुष्य भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष, सोलह ही स्वर्ग में व सर्व अहमिन्द्र देवन में उपजें। और सातों ही नारकी में उपजें। और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पती, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय—सैनी, असैनी, तिर्यञ्च इन सर्व स्थानन में मनुष्य उपजें हैं। और भोगभूमियां मनुष्य-तिर्यञ्च, कर्मभूमियां मनुष्य और मोक्ष आदि सर्व स्थानक में मनुष्य उपजें हैं। ऐसा तीन लोक में अरु च्यारि गति में कोई स्थान शुभ-अशुभ रह्या नाहीं, जहाँ मनुष्य नाहीं जाय। सो मनुष्य कूं सर्व स्थान आगार (घर) है। इति मनुष्य जागति। आगे तिर्यञ्च की जागति कहिये है। तहाँ एकेन्द्रिय, पंचस्थावर, विकलत्रय, ये मरकर देव, नारकी, भोग भूमियां-मनुष्य-तिर्यञ्च इन विषैं नाहीं उपजें हैं। इन बिना कर्मभूमि के मनुष्य-तिर्यञ्च सम्बन्धी सर्व स्थानकन में उपजें हैं। विशेष एता जो पंचा स्थावरन में के अग्निकाय-वायुकाय के जीव, मनुष्य में नहीं होय हैं। और असेनीं तिर्यञ्चा मर करि मन विकल्प बिना शुभ-भाव तैं भवनत्रिक में

उपजैं हैं। और विकल्प बिना अशुभ भाव तैं मरि, प्रथम नारकी पर्यन्त उपजैं हैं। और भोग भूमि बिना, कर्म भूमिके मनुष्य-तिर्यञ्चन मैं सर्व स्थानकन मैं उपजैं हैं। और सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, भवनत्रिक तें लगाय सोलहवें स्वर्ग पर्यन्त तो देव मैं उपजैं हैं। और सातों ही नरकों विषैं उपजैं हैं। और कर्म भूमि के मनुष्य, तिर्यञ्च, एकेन्द्रियादि पंच स्थावरन मैं, विकलत्रय, सैनी, असैनी विषैं उपजैं हैं। तथा भोग भूमि के मनुष्य-तिर्यञ्च विषैं उपजैं हैं। ऐसी तिर्यञ्च की जागति कही। इति तिर्यञ्च की जागति। आगे तिर्यञ्च गति मैं आगति कहिये है। तहां पंच स्थावर विकलत्रय इन मैं सर्व देव, व सात ही नारकी के और भोग भूमियां बिना कर्म-भूमि सम्बन्धी सर्व मनुष्य-तिर्यञ्च उपजैं हैं। विशेष एता जो अग्नि—वायु बिना तीन स्थावरन मैं भवनत्रिकके तथा पहले-दूजे स्वर्ग के देव आय उपजैं हैं। और सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च मैं, भवनत्रिकतें लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यन्त के देव और भोग भूमि बिना, सात ही नारकी के जीव आय उपजैं हैं और कर्म भूमि के एकेन्द्रिय आदि विकलत्रय पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व जीव, एकेन्द्रिय आदि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च विषैं आय उपजैं हैं। इति च्यारि गति सम्बन्धी आगति-जागति कथन। ऐसे च्यारि गति दण्डकन का कथन श्रुत ज्ञानतैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञान उपादेय है। और इस ही श्रुतज्ञानतैं निमित्त—उपादान का स्वरूप जानिए है। सोही कहिए है। प्रथम नाम—निमित्त और उपादान। अब इनका विशेष कहिये है। जो द्रव्य की शक्ति, द्रव्य ही तैं उपजै, सो तो उपादान कहिए। और पदार्थ के मिलाप तैं शक्ति प्रगटै,

सो निमित्त कहिए।[जैसे जीव विषैं, शुभाशुभ रूप होय राग-द्वेष परिणमणकी शक्ति, सो तौ जीवका "उपादान" है। और जिन पदार्थन के निमित्त पाय रागद्वेष रूप भया, सो वह पर पदार्थ "निमित्त" है। सो इस निमित्त-उपादान तैं ही शुभाशुभ कर्मबन्ध आत्मा कैं होय हैं। सोही कहिए है। जैसे जीवका उपादान भी भला होय। और पूजा, दान, शील, संयम, तप, जिनशास्त्रन का स्वाध्याय तथा सुनना, तथा मुनि-श्रावकादि धर्मी जीवन का संग इत्यादिक शुभ ही निमित्त होंय, तौ दीर्घ स्थिति लिए शुभ भावकर्म उपजें। ताके फल, आत्मा भव-भव सुखी होय। और जहां आत्मा का उपादान खोटा होय। और क्रोध, मान, माया, लोभ, चोरी, जुआ, पर स्त्री, हाँसि, कौतुक, दुराचारी, सुरापायी जीवन का सम्बन्ध, आदि पापकारी निमित्त होंय, तौ आत्मा कैं दीर्घ पाप भावकर्म, बड़ी स्थिति लिए उपजैं। ताकरि भव–भव में दुखी होय। और कहीं उपादान तौ आत्मा का शुभ है। अरु निमित्त अशुभ होय, तौ पापबन्ध नहीं होय। शुभ उपादान तैं पुण्य का ही बन्ध होय है। जैसे कोई मुनि तथा श्रावक महा धर्मात्मा, धर्म ध्यान सहित बनादिक स्थानकन में तिष्ठै। तहां आय, कोई पापी उपसर्ग करै। पाण्डवन की तथा वारिषेणजी की नाईं निमित्त खोटा होय। तथा सेठ सुदर्शन की नाईं निमित्त खोटा होय। तौ फल भला ही उपजे है। और, जहां उपादान तौ खोटा, अशुभ, दगावाजी रूप होय, क्रोध-मानादिक कषाय रूप होय। अरु निमित्त भला होय। पूजा, दान, शास्त्र सुनना-पढ़ना, तप, संयमादिक अनेक भले निमित्त

होंय, तौ भी उपादान अशुभ के योग तैं पापबन्ध ही होय है। जैसे कोई चोर पराया धन हरवें कूं धर्मात्मा का स्वांग बनाय अनेक धर्म सेवन पूजा–पाठ, तपादिक करै है। परन्तु अशुभ उपादान के योग तैं पापही का वन्ध करै है। तैसे ही इस जीव के अनेक भावन की प्रवृत्ति होय है। जैसे कहीं तौ जैसा निमित्त, तैसा ही उपादान भाव होय है। तहां तौ उत्कृष्ट शुभ-अशुभ का बन्ध और कहीं निमित्त तौ और ही और उपादान और ही, तहां फल उपादान प्रमाण होय है। तातैं विवेकी हैं, तिनकौं पर भव सुखके निमित्त तौ भले निमित्त मिलावने। और उपादान सदीव भला ही राखना योग्य है। भले निमित्त तैं शुभ उपादान वारे जीवन कैं बड़ा शुभ फल उपजै है और भले निमित्त तैं परम्पराय उपादान भी शुभ हो जाय है। और खोटे निमित्त तैं उपादान भी खोटा ही होय है। सो जगत मैं प्रसिद्ध देखिये है। भले कुल के जीव खोटे निमित्तान तैं चोर, जुआरी, कुआचारादि कुलक्षण सहित, खोटे होते देखिये है। और हीन कुल के उपजे जीव, भली संगति तैं ऊंचे होय, सुखी देखिये है। तातैं विवेकी जीवकूं निमित्त भले राखनेका उपाय सदीव राखना योग्य है। निमित्त तैं उपादान की शुद्धता होय है। जैसे अग्नि के निमित्त सुवर्ण के उपादान की शुद्धता होय है। और ताम्बा आदि कुधातन के निमित्त तैं, सुवर्णके उपादान की मलिनता होय है। ऐसे जानि, निमित्त भला ही मिलावना योग्य है। जहां-तहां निमित्त की मुख्यता है। सोही दिखाईये है। देखो आदिनाथ स्वामी, उत्कृष्ट भले उपादान के धारक, तिनके

अशुभ निमित्त तैं, तियासी लाख पूर्व, कषायन में जाते भए। दीक्षा रूप भाव नहीं भये। तब इन्द्र महाराज ने अवधि तैं विचारी, जो तीर्थंकर भगवान् का सर्व आयु-कर्म पंचेन्द्रिय भोगन में व्यतीत भया। अरु भगवान् कैं विरक्ति नहीं भई। सो कोई निमित्त विचारिए। तब इन्द्र नै एक नीलांजना नाम अप्सरा का आयु कर्म बहुत ही अल्प जानि, इसकों आज्ञा करी। सो ये देवी ने इन्द्र की आज्ञा लेय, भगवान् के आगे अद्भुत नृत्य-गान आरम्भ्या। सो याके नृत्य कों देखि, सर्व सभा के देव-मनुष्य आश्चर्य कूं पावते भए। जो ऐसा नृत्य इन्द्रकों भी दुर्लभ है। ऐसे नृत्य करते समय उसका आयु पूरण भया। जिससे आत्मा तौ परगति गया। अरु शरीर, दर्पण की छाया के प्रतिबिम्बवत् अदृश्य होय गया। सो नृत्य का उत्सव भंग नहीं होने कूं, इन्द्र नै तत्क्षण वैसी ही देवांगना रचि दई, सो नृत्य की ताल-राग-चाल भंग नहीं होनैं पायी। यह चरित्र सर्व सभा के जीव-मनुष्यादि थे, तिन काहूनैं नहीं जान्या। सब नै जान्या वही देवी नचै है। अरु इस चरित्र कों भगवान् ने अवधि तैं जान्या, जो वह देवी नृत्य करती, काय तजि अन्य लोक गई। यह इन्द्रनै नई रचिदई है। अहो, संसार चपल व विनाशीक है। इत्यादिक प्रकार वैराग्य उपाय, दीक्षा धरि, ध्यानाग्नि मैं कर्मनाश, सिद्ध भये। सो यहां भी देखो, निमित्त ही की महंतता आई। तातें सत्पुरुषन कूं अपने कल्याण कूं, कुसंग हेय करि, शुभ निमित्त करना सुखकारी है। जैसे बनै तैसे ही, भला निमित्त गुणकारी है। ऐसे एतौ जीव कूं जीवका निमित्त कह्या। अब पुद्गल का पुद्गल तैं निमित्त-

उपादान कहिये है। तहां हल्दी तौ स्वभाव तैं ही पीत है। याकौ घसिकैं जल मैं घोलिए, तौ भी पीत ही जल होय। सो ऐसे पीत जल मैं साजी डारिए, तौ साजी के निमित्त तैं सर्व जल लाल होय है। सो लाल होयने की उपादान शक्ति तौ हल्दी की ही है। परन्तु निमित्त साजी का मिलै लाल होय है। और स्फटिक मणि निर्मल है सो ताके नीचे जैसा डांक दीजिये, तैसाही मणि भासै। लाल डाक दिये, मणि लाल भासै। पीत डांक दिये, मणि पीत होय। श्याम डांक दिये, मणि श्याम होय। सो मणि, स्वभाव तैं तौ महा निर्मल-श्वेत है। परन्तु जैसे डांक का निमित्त मिलै है, तैसाही भासै है। सो लाल, पीत, श्याम होने की उपादान शक्ति तौ उस स्फटिक मणि की है। अरु निमित्त नीचले डांक का है। सो यहां भी निमित्त की प्रधानता आई। और जैसे लोहा धातु, नीच धातु है। परन्तु जब ऊंच जो पारस पाषाण का निमित्त मिलै, तब कंचन होय है। सो सुवर्ण होनेकी उपादान शक्ति तौ लोहा ही मैं है, और धातन मैं नाहीं। परन्तु जब पारस का निमित्त मिलै तौ सुवर्ण होय है। सो हे भव्य, जीव तैं जीव कूं, पुद्गल तैं पुद्गल कूं, जहां-तहां निमित्त ही की महंतता है। तातैं विवेकीन कूं भला निमित्त मिलावना ही योग्य है। विशेष एता है जो अपने परणामण की विशुद्धता तैं अधिक विशुद्धता का निमित्त होय तो अपना उपादान, निमित्त प्रमाण करना और अपने भावन की विशुद्धता तैं निमित्त सामान्य है, तौ अपना उपादान, निमित्त प्रमाण नहीं करना। इत्यादिक विचार है सो सम्यग्दर्शन कूं अपनी बुद्धि करि विचारना

योग्य है। ऐसा श्रुतज्ञान तैं निमित्त-उपादान का स्वरूप जानिए है । तातें श्रुतज्ञान उपादेय है । इति निमित्त-उपादान । आगे श्रुत ज्ञान तैं और भी सुवाणिज्य-कुवाणिज्य का स्वरूप जानिए है। सो ही कहिये है—

गाथा—हिंसावाणिज्ज हेयं, तिल धातु आदि भूमि जल खण्डो ।
अप्पारंभो सुह कज्जो, विणहिंसा णिच्च मादेओ ॥

अर्थ—हिंसा कारी वाणिज्य तजवे योग्य है। तिल, लोह कूं आदि धातुका व्यापार, तजने योग्य है। और जामैं अल्प आरम्भ होय सो शुभ वाणिज्य करना। जामैं हिंसा नाहीं, ऐसा वाणिज्य उपादेय है। भावार्थ—जे सम्यग्दृष्टी धर्मात्मा हैं । सो वाणिज्य करने मैं ऐसे ज्ञेय-हेय-उपादेय विचारैं हैं। सो दिखाईए है। तहां शुभ-अशुभ वाणिज्य का समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक शुभ वाणिज्य है, एक अशुभ वाणिज्य है। तहां जो हिंसा, झूठ, चोरी दोष रहित होय, सो शुभ वाणिज्य है। हीरा, मोती इत्यादिक जवाहिरात सीधा लेना और सीधा ही देना । संचय करि बहु दिन नहीं राखना, यह निर्दोष वाणिज्य, उपादेय है। चांदी, सुवर्ण, टके, रुपये, असर्फी लेना, तैसे ही देना । तथा जरकस, तास, गोटा, मुकेशादि सीधे लेना तैसे ही देना, ए निर्दोष वाणिज्य, उपादेय है । तथा पराया गहणा राखि व्याजका वाणिज्य, सो शुभ वाणिज्य है । ए कहे जो व्यापार, सो अग्नि-जल के आरम्भ रहित तो शुभ वाणिज्य हैं । और जिन मैं जलका तथा अग्निका

आरम्भ होय, तो ये आरम्भी हिंसा सहित वाणिज्य हेय हैं। और सूजी आजीविका, वचन आजीविका, दृष्टि आजीविका, और कष्टी आजीविका। ए च्यारि आजीविका के भेद हैं। तहां चिकन काढ़ना, कसीदा करना, वस्त्र सीवनादि, दरजी का काम जे सूजी तैं कमावैं, सो सूजी आजीविका है। सो निर्दोष है. उपादेय है। और लेने-देने वारे के बीचि विषैं दूत होय व्यापार करादेना, अपने वचन ज्ञान के बल करि आजीविका पैदा करै। जैसे लौकिक में दलाली करने हारे, सो हिंसादि दोष रहित, शुभवाणिज्य है। सो उपादेय है। याका नाम वचन आजीविका है। और जे अनेक रतन, अशर्फी, रुपैया परख देना। परखाई लेनेकी आजीविका करनी। सो दृष्टि आजीविका है। और अपने तनतें कष्ट करि, पराया कार्य कर देना। जैसे लौकिक में हिम्माली आदि शीश गांठि भारि धरि आजीविका करैं, सो कष्टी आजीविका है। ए कही जो च्यारि प्रकार आजीविका, सो सामान्य पुण्य तैं लगाय विशेष पुण्य पर्यन्त अरु नीच कुली तैं लगाय ऊंच कुली पर्यन्त, सामान्य ज्ञानी तैं लगाय विशेष ज्ञानी पर्यंत जे धर्मात्मा जीव, चोरी झूठ हिंसा आरंभ तैं भयभीति ते सन्तोषी गृहस्थ, इन च्यारि प्रकार शुभ वाणिज्य करि आजीविका करैं, सो उपादेय है। इत्यादिक किसब (व्यापार) जल, अग्नि आदिक बड़े आरम्भ रहित हैं। चोरी, झूठ, हिंसा रहित हैं। तातें निर्दोष हैं। और ए ही झूठ, चोरी आदि सहित होंय, तो ए ही पाप करता होंय, सो हेय होंय। जैसे हीरा, मोती, रतन का व्यापार करन हारा, द्रव्य लगाय, लोभ निमित्त, धरती खुदाय कढ़ावै। तौ पापबंध

करता, आरंभी व्यापार होय। चांदी सुवर्ण का वाणिज्य करन हारा, बहु आरम्भ–अग्नी तपावना, जलाना, फूंकना, धोंकनादि आरम्भ सहित होय, तौ अयोग्य है, हेय है। तथा सूजीवारा पराया वस्त्रादि चोरै, तो सूजी आजीविका भी सदोष होय। दलाली वाला बहुत भूठ बोलि, लेने-दैने वारे का बहुत माल-धन ठिगावै, तौ वचन अजीविका मैं भी दोष लागै, पाप होय। दृष्टि आजीविका वारा अपने लोभ कूं भला-बुरा परखै, तौ चोरी के दोष सहित होय। और कष्टी आजीविका वारा भी लोभाचारी होय, पराये गठिया का माल लेय, तौ चोर के दोष सहित होय। तातैं दोष सहित तौ सर्व ही हेय हैं। परन्तु दीर्घ तृष्णा रहित, पाप तैं डरनैहारे भव्यन कूं, रतन-सुवर्णादिक, सूजी आजीविका, दृष्टी आजीविका, वचन आजीविका, कष्टी आजीविका ए कहे जो किसब सो सुखकारी हैं। आप-परकौं हितकारी हैं। तातैं धर्मात्मा जीवन करि उपादेय हैं। यह लौकिक व्यापार कहे। अब निश्चय शुभाशुभ व्यापार कहिये है। तहां राग द्वेष क्रोध मान माया लोभादि कषायभाव, मिथ्यातभाव, निशदिन आर्तरौद्र परणतिका रहना, शोक चिंता भाव, आदि भावनका व्यापार सो हेय है। और सम्यक सहित आत्मीक भाव, पर वस्तु के त्यागका भाव, तप-संयमादि भावन की सदीव परणति, सो ए शुभ व्यापार है, निश्चय उपादेय है। ऐसे विवेकी जीवन कूं अनेक नयन करि व्यापार भेद जानना योग्य है। इति शुभ वाणिज्य। आगे अशुभ वाणिज्य कहिए है। जहां अग्नि–जल का बहुत आरंभ होय। बहुत अग्नि जलावनी-बुझावनी होय, बहुत जल मथन करना होय, नाखना होय, गाले-

अनगाले का बिचार रहित होय। जहां झूठ, चोरी, दीर्घ माया करना इत्यादिक खोटी वृत्ति
का वाणिज्य होय, सो हेय है। और बहुत जीवन की उत्पत्ति-मृत्यु का आरंभ जा किसब
में होय, सो अशुभ-हेय है। जहां बहुत अन्न का संग्रह, भंडसाल करि बहुत दिन राखना।
तथा सन, चाम, केश, हाड़ादि इन विषैं जीवन की उत्पत्ति बहुत होय है। तहां सर्दी का
निमित्त पाय हिंसा बधै, निर्दय भाव होय। तातें हेय है। और शहद, विष, फांसी का रस्सा,
छुरी-कटारादि शस्त्र, कुसी, कुदाली, फावड़ा इत्यादिक वाणिज्य, हिंसा के कारण हैं। तातें
अशुभ हैं। और जहां लोहा, ताम्बा, जस्ता, सोना, चांदी, हीरादिक को खान खुदावना।
तथा धरती खोदना-खुदावना के किसब, सो अशुभ हैं। और खेती जोतना-जुतावना सो
हिंसा सहित, तजने योग्य हैं। और साजी, फिटकरी, नील, आल, फूल, कंद, मूल, इत्या-
दिक ए हिंसा के कारण हैं। तातें अयोग्य हैं। और भी इनकौं आदि जे पापकारी वाणि-
ज्य होंय, सो हेय हैं। जे धर्मात्मा जीव हैं सो दया के निमित्त, ये वाणिज्य नहीं करे हैं।
अपना धर्म निर्दोष राखने कों, सर्व दोष तजें हैं॥ और येते किसब वारन तैं वाणिज्य नहीं करैं,
तब दया-धर्म निर्दोष है, सो ही कहिए है। तहां चांडाल, कसाई, चमार, राह के मारन हारे
भीलादिक चोर इनकौं कर्ज नहीं देय। और देय, तौ इनके स्पर्श तैं तथा इनके विश्वास तैं
अलपकाल में क्षय होय। तन-धनादि विनाश पावैं। परभव कौं पाप-बंध होय। तातें इनका
वाणिज्य हेय है। और धोबी, लुहार, छीपी, कुम्हार, तीर-तुपकादि (बन्दूक) शस्त्रन के करन- ४०१

हारे इत्यादिक हिंसा के अनुमोदन हारे हैं, सो इनका वाणिज्य हेय कह्या है। ऐसे कहे जे किमव तिन सबकूं सम्यग्दृष्टी, धर्मात्मा, दयाधर्म पालक, जिनाज्ञा का प्रतिपालक, करुणा-निधान, उज्वल धर्मका दास, इन किसवन में चौगुणे होने होंहि, तौ भी नहीं करै। आप धर्मात्मा, परभव सुख का लोभी, इम लोक निंदा कौं बचाय, यश का इच्छुक, लोभ के वशीभूत होय कैं कुवाणिज्यन का विश्वास अपने घर में नहीं आवने देय है। ऐसा वाणिज्य भेद, श्रुत ज्ञान तैं जान्या। तातैं श्रुत ज्ञान उपादेय है। इति कुवाणिज्य। ऐसे वाणिज्य में ज्ञेय हेय उपादेय कही॥ आगे इसही श्रुत ज्ञान का जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट करि तीन प्रकार स्वरूप कहिये है। तहां सर्व ज्ञान तैं छोटा, सो तौ जघन्य जानना और सर्व द्वादशांग प्रकीर्णादि श्रुत ज्ञान सो उत्कृष्ट जानना। और मध्य के अनेक भेद जानना। ऐसे तीन भेद रूप है सो याका स्वरूप आगे कहेंगे। मूल श्रुतज्ञान है, ताके दोय भेद हैं। एक तो अक्षरात्मक, एक अनक्षरात्मक। तहां अक्षर, छंद, पद, काव्य, गाथा, फांकी आदि शब्द तैं उत्पन्न भया, सो अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान है। और भाव ही तैं उपजे, अक्षर रूप नाहीं, सो अनक्षर श्रुत ज्ञान है। सो एकेन्द्रियादिक पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व ही जीवन के होय। परन्तु इस अनक्षरात्मक ज्ञान तैं कछु व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं। जीव के भाव-विचार की, सो ही जीव जानै। तथा केवली जानैं। तातैं इसकी मुख्यता नहीं लई। और दूसरा अक्षरात्मक ज्ञान है। तातैं कर्म-धर्म-कार्यन की प्रवृत्ति होय है। जातैं लौकिक में लेने-देने रूप खाता-रोजनामचादि सर्व व्यवहार

कार्य होय हैं। और धर्म-शास्त्र का पठन-पाठन प्रवृत्ति सो भी अक्षरात्मक ज्ञान तैं होय है। ताकै बीस भेद हैं। सो ही कहिए है। उक्तञ्च श्री गोमट्टसार जी सिद्धान्त—

गाथा—पज्जायक्खर पदसंघादं पडिवत्ति आणिजोगं च।
दुगवार पाहुडंच य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥ ४५ ॥

अर्थ—पर्यायज्ञान, अक्षर ज्ञान, पदज्ञान, संघातज्ञान, प्रतिपत्तिकज्ञान, अनुयोग ज्ञान, प्राभृतक-प्राभृतकज्ञान, प्राभृतक ज्ञान, वस्तुज्ञान और पूर्वज्ञान ए दशभेद भये। सो इन दशन के संग समास लगाय लेना, जैसे पर्याय, पर्यायसमास, ऐसे सर्वजगह लगाय बीस भेद होय हैं। सो ए बीस भेद अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के जानना। अब श्रुतज्ञान काहे कौं कहिये है। ताका स्वरूप कहैं हैं। सा अक्षर बिषैं जो अर्थ होय ताकूं जानने रूप जो भाव, सो श्रुतज्ञान कहिये। ता श्रुतज्ञान के ए बीस भेद हैं। तातें इस ज्ञान की घातनहारी वरणी सो भी बीस भेदरूप परणमि, बीस ही भेद रूप श्रुतज्ञान कूं घातैं हैं। तातें श्रुतज्ञानावरणी के भी बीस भेद जानना। अब इन बीसन का सामान्य अर्थ कहिये है। प्रथम पर्यायज्ञान, जघन्य भेद है। सो अक्षर के अनंतवें भाग ज्ञान है। इस ज्ञान का आवरण इस ज्ञान कूं घात सक्ता नाहीं, ऐसा ही अनादि स्वभाव, केवलज्ञान में भास्या है। जो कदाचित् इस ज्ञान कौं भी आवरण घातै, तौ ज्ञान का अभाव होय। और ज्ञान-गुण के अभाव तैं, गुणी ए आत्मा का अभाव होय। और आत्मा का अभाव भए, संसार च्यारि गति का अभाव होय। सो संसार का अभाव

तो कबहूं होता नाहीं। तातैं आत्मा के सद्भावतैं ज्ञानका सद्भाव है। सो सर्व श्रुतज्ञान केवलज्ञानादि सर्व ज्ञानकौं, आवरण घातै। परन्तु इस अक्षर के अनंतवें भाग ज्ञान कौं नहीं घातै है। तातैं यह ज्ञान निरावर्ण सदीव रहै है। सो यह जघन्य ज्ञान कौन समय होय है सो कहिए है। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के उपजने के पहले समय, पर्यायनाम जघन्यज्ञान होय है। सो सूक्ष्म निगोदिया अपने योग्य एक अन्तरमुहूर्त के बटवारे मैं छह हजार बारह क्षुद्रभव, तिनमैं जन्मता-मरता, अत्यन्त संक्लेशिता रूप भ्रमण करता, अन्त के क्षुद्र भव विषैं वक्रता लिए जो विग्रह गति करि जन्म धर्या होय, ता वक्र गति के पहले समय मैं जघन्य ज्ञान होय है। तिसही जीवकैं ता समय स्पर्शन इन्द्रिय का जघन्य मतिज्ञान है। तिस ही जीव कैं ता समय जघन्य अचक्षु दर्शन होय है। इहां बहुत क्षुद्र भवके धरते-धरते बधी जो संक्लेशता, तिन दुखरूप परणामन तैं निमित्तपाय, तीव्र अनुभाग लिए ज्ञानावरणादि कर्मन का उदय होते, महादुखरूप क्षुद्र भवों का अन्त क्षुद्र भवका प्रथम समय विषैं, पर्याय ज्ञान के अनंतवें भाग जघन्यज्ञान कह्या है। यह ज्ञान अविनाशी है। याका कबहू नाश नाहीं। ऐसा नियम जानना। पीछे द्वितीयादि समयन मैं ज्ञान बधता होय है। सो इस जघन्य ज्ञान विषैं अनंत भाग वृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि, अनंत गुणवृद्धि, यह षट् स्थानरूप महानवृद्धि संभवते, अनंत अविभाग प्रतिच्छेद लिए अंश हैं। इहां प्रश्न—जो जघन्य ज्ञान मैं अनंतभाग कैसे संभवैं?

ताका समाधान-जो अनंत के अनंत ही भेद हैं। तहां चौदहाधारा के कथन में द्विरूपवर्गधारा विषैं कथन किया है जो अनंतानंत वर्गस्थान गए पीछे, सर्व जीव राशिका प्रमाण होय है। और जीवराशि तैं अनंतगुणी राशि, पुद्गल है। और पुद्गल राशि तैं अनंत गुणी राशि, तीन काल के समय हैं। और सर्वकाल समय राशि तैं सर्व आकाश प्रदेश राशि, अनंत गुणी है। और सर्व आकाश प्रदेश राशि तैं अनंतानंत वर्ग राशि गए, सूक्ष्म निगोदिया जीव के जघन्य ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदन का प्रमाण होय है। ऐसा आगम में कह्या है। तातैं यामैं अनंतभागवृद्धि संभवै है। ऐसा यह पर्याय ज्ञान प्रथम भेद जानना ॥ १ ॥ अब यातैं अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद बधैं, तब पर्याय समास का प्रथम भेद होय। तातैं अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद बधैं, तब पर्यायसमास का दूसरा भेद होय। ऐसे ही अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद बधैं। एक--एक स्थान बधैं, सो तीन स्थान, पांच आदि असंख्यात लोक प्रमाण षट् स्थान पतित वृद्धि होय, तब तांई पर्याय समास के भेद होय हैं। सो वृद्धि का अनुक्रम ऐसा है जो अनंत का प्रमाण मैं तो जीवराशि जानना। असंख्यात के प्रमाण में असंख्यात लोक प्रमाण जानना। और संख्यात वृद्धि में उत्कृष्ट संख्यात है। ऐसी अधिकता-हीनता करि षट् गुण हानि-वृद्धि जानना। ऐसे षट् स्थान पतितन की हानि-वृद्धि होते असंख्यात लोक की अन्त की हानि-वृद्धि पूरी होते, एक भेद घाट पर्यन्त, सर्व ये पर्यायसमास ज्ञान के भेद जानना ॥ २ ॥ आगे अक्षर ज्ञान कहिए है। सो वह पर्याय समास के अन्त भेद में एक

भेद और मिलाईए, तब अक्षर ज्ञान है। सो यह अर्थाक्षर नाम ज्ञान है। सो सर्व श्रुतज्ञान के संख्यातवें भाग, यह अक्षर ज्ञान है ॥ ३ ॥ और याके आगे एक-एक अक्षर ज्ञान की बधवारी होतैं, एक अक्षर घाटि पद-अक्षर पर्यंत ज्ञान बधै, वहां लौं अक्षरसमास ज्ञान कहिए।४। आगे या अक्षर समास ज्ञान के अन्त भेद मैं एक अक्षर और मिलाए, पद ज्ञान होय है ॥ ५ ॥ आगे पद ज्ञान का प्रमाण कहिये है। सो यह तीन प्रकार है। अर्थ पद, प्रमाणपद और मध्यम पद, ये तीन भेद हैं। तहां ऐसा कहना जो "अग्न्यानयः"। याके दोय पद हैं, अग्नि और आनय। याका अर्थ ऐसा जो अग्नि आनि देओ। इत्यादिक अर्थ जिन अक्षरन तैं निपजै, सो अर्थ पद कहिए। और कहिए जो "नमः श्री वर्द्धमानाय"। याका अर्थ यह जो श्री वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार होहु। यह आठ अक्षरन का पद भया। सो याका नाम प्रमाण पद है। और सोलासौ चौंतीस कोड़ि, तियासी लाख, सात हजार, आठसौ अठयासी, अपुनरुक्त अक्षरन का एक पद होय। सो यह मध्यम पद है।।५।। इस पद के ऊपर एक-एक अक्षर ज्ञान बधता-बधता एक पद जितने अक्षर बधैं, तब पद ज्ञान दूना होय है। यातें एक-एक अक्षर और बढ़्या सो बधते-बधते एक पद अक्षर बधैं, तब ज्ञान तीन गुणा होय। ऐसे ही अनुक्रम कौं लिए एक-एक अक्षर बढ़ते पद होंय, तब चौगुणा पद ज्ञान, पचगुणा, षट् गुणा, ऐसेही संख्यात हजार पद ज्ञान जितने अक्षरन मैं, एक अक्षर ज्ञान घटाय, तहां तांई पद समास के भेद जानना ॥ ६ ॥ या राशि विषैं एक अक्षर और

मिलाए संघात ज्ञान होय है॥ ७ ॥ सो इस ज्ञानतैं च्यार गति मैं तैं एक गति निरूपण सम्पूर्ण करैं, सो संघात नाम श्रुति ज्ञान है। बहुरि इस संघात ज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर का अनुक्रम लिए बढ़ते-बढ़ते पद होंय। अनेक पदन का समूह संघात, याही अनुक्रम करि एक संघात, दोय संघात, तीन, च्यारि, आदि संघात, हजार संघात होंय। तहां अन्त का संघात विषैं एक अक्षर घाटि पर्यन्त, संघात समास के भेद हैं। ऐसे संघात समास जानना॥ ८ ॥ अब इस उत्कृष्ट संघात समास विषैं एक अक्षर ज्ञान और बढ़ाईए, तब प्रतिपत्तिक नाम श्रुत-ज्ञान हो है। या प्रतिपत्तिक श्रुत ज्ञान का धारी, च्यारि गति का स्वरूप यथावत् व्याख्यान करै। सो प्रतिपत्तिक श्रुत ज्ञान कहिए॥ ९ ॥ इस प्रतिपत्तिक ज्ञानतैं एक-एक अक्षर बधता पद हाय है। पदतैं बधतैं-बधतैं संख्यात हजार पद बधे संघात होय, संख्यात हजार संघात बधतैं एक प्रतिपत्तिक होय। और संख्यात हजार प्रतिपत्तिक ज्ञान के अन्त भेद मैं एक अक्षर घटि होय, तहां तांई प्रतिपत्तिक समास नाम ज्ञान हो है॥ १० ॥ आगे इस प्रतिपत्तिक समास के अन्त भेद मैं एक अक्षर और मिलाईये, तब अनुयोग नाम श्रुत ज्ञान होय है। सो इस तैं चौदह मार्गणा का स्वरूप भले प्रकार कह्या जाय है। यह अनुयोग नाम ज्ञान है ॥ ११ ॥ आगे इस अनुयोग के एक-एक अक्षर ज्ञान बधतैं, पूर्ववत् अनुक्रमतैं पद ज्ञान, पदतैं संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग सो च्यारि आदि अनुयोग विषैं, अन्त भेद मैं एक अक्षर घटि तांई, अनुयोग समास श्रुत ज्ञान होय है॥ १२ ॥ ऐसे अनुयोग समास के अन्त भेद विषैं एक

अक्षर और मिलाए, प्राभृतक-प्राभृतक ज्ञान होय है ॥१३॥ इस प्राभृतक-प्राभृतक के ऊपरि एक एक अक्षर बधतैं-बधतैं पूर्ववत् अनुक्रमतैं पद संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभृतक-प्राभृतक, ऐसे अनुक्रमतैं चौईस प्राभृतक-प्राभृतक होंय। तहां अन्त भेद मैं एक अक्षर घटता रहै, तहां तांई प्राभृतक-प्राभृतक समास ज्ञान होय है ॥ १४ ॥ आगे इस प्राभृतक-प्राभृतक समास विषैं एक अक्षर और मिलाईए, तब प्राभृतक ज्ञान होय है ॥ १५ ॥ भावार्थ—एक प्राभृतक के चौईस प्राभृतक-प्राभृतक अधिकार होय हैं। और इस प्राभृतक ऊपरि एक-एक अक्षर की बधवारी लिए, पद संघातादि अनुक्रमतैं बधवारी लिए, चौबीस प्राभृतक होंय। तहां अन्त के भेद मैं एक अक्षर घटता रहै, तहां तांई प्राभृतक समास के भेद जानना ॥ १६ ॥ आगे इस प्राभृतक समास मैं एक अक्षर ज्ञान और मिलाए वस्तुनाम श्रुत ज्ञान होय है ॥ १७ ॥ आगे इस वस्तु ज्ञान पै एक अक्षर बधतैं-बधतैं पद संघातादि सर्व अनुक्रम पूर्ववत् करि वृद्धि होते, दश आदि वृद्धि होते, अन्त भेद मैं एक अक्षर घटै, तब तांई वस्तु समास श्रुत ज्ञान है ॥ ८ ॥ आगे इस बस्तु समास मैं एक अक्षर और बधाईए, तब पूर्व नाम श्रुत ज्ञान होय है ॥ १६ ॥ इस ही पूर्व मैं चौदह भेद हैं। तिनका स्वरूप आगे कहि आए हैं। तातें इहां नहीं कह्या है। और पूर्व ज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर ज्ञान बधतैं-बधतैं पूर्व अनुक्रमतैं पद संघातादि अनुक्रमतैं एक अक्षर घाटि श्रुत ज्ञान पर्यन्त, पूर्व समास है ॥ २० ॥ ऐसे बीस भेद श्रुत ज्ञान के कहे। विशेष इनका श्री गोमट्टसार जी के श्रुत-

ज्ञानाधिकारतैं जानना। ऐसे यह श्रुतज्ञान कह्या। सो यह श्रुतज्ञान, केवलज्ञान की सी महिमा कौं धरै है। केवलज्ञान तौ प्रत्यक्ष है। अरु श्रुतज्ञान परोक्ष है। परन्तु केवलज्ञान समान, लोकालोक तीनकाल सम्बन्धी सकल-तत्व-प्रकाशी है। इहां प्रश्न–जो केवलज्ञान तौ अनन्त है। सो अनन्त पदार्थन में अनन्त अर्थ रूप होय प्रवर्तै है। और श्रुतज्ञान संख्यात अक्षर मई है। सो केवलज्ञान की बरोबर कैसे सम्भवै? ताका समाधान–जो हे भाई, तेरी बात प्रमाण है। परन्तु तू चित्त देय सुनि। या प्रश्न का उत्तर धारण किए सम्यक् हो है। हे भव्य, केवलज्ञान तैं कछू छिपा नाहीं। मूर्ती-अमूर्ती पदार्थ सर्व प्रकाशै। ऐसा केवलज्ञान लोकालोक तीनकाल का प्रकाशनहारा है। सो जे-जे पदार्थ केवलज्ञान में भास्या, सो सर्व रहस्य केवली के मुखतैं खिर्या, सो ही गणधर देव नै प्रगट करि उपदेश दिया। सो मूर्ती-अमूर्ती द्रव्यन का स्वरूप, तीनलोक तीनकाल सम्बन्धी रचना, श्रुतज्ञान के द्वारा सर्व कही। ताकौं भव्य सुनि-सुनि रहस्य पाय, मोक्ष–मार्ग पावते भए। तातैं श्रुतज्ञान कूं केवलज्ञान समान कह्या। और भी देखो, हे भव्य हो, सुनो। जो केवलज्ञान जाकैं होय, सो केवली कहावै है। जाकैं सर्व श्रुतज्ञान होय, ते यतीनाथ श्रुत–केवली कहावैं हैं। तातैं भी केवलज्ञान समान कह्या। ऐसा जानना। इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, सामान्य श्रुतज्ञान वर्णनो नाम, उगणीसवां पर्व सम्पूर्ण भया॥ १९॥

आगे अवधिज्ञान का स्वरूप कहिये है—

गाथा—देसा पम्मा सव्वा, तिय भेयावत्रिणाण जिण भणियं।
जाणय मुत्ती दव्वं, तीताणागत वत्तमाणाय ॥ ४६ ॥

अर्थ—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ए तीन भेद अवधिज्ञान, जिनदेव नैं कह्या है। सो यह ज्ञान अतीत, अनागत और वर्तमान, तीनकाल सम्बन्धी मूर्ती द्रव्य कौं जानैं है। भावार्थ—अवधिज्ञान मूर्ती पदार्थों कौं जानै है। सो अतीतकाल मैं मूर्तीक पदार्थ जैसे-जैसे परणमैं। स्पर्श के विषय रूप, रसना के विषय रूप, नासिका के विषय रूप, नेत्र के विषय रूप, कर्ण के विषय रूप, स्थूल-सूक्ष्म रूप, जे-जे पुद्गल स्कन्ध परणमैं। सो-सो अपने-अपने विषय-प्रमाण सर्वकूं अवधिज्ञानी जानै है। और आगामी काल मैं मूर्ती पदार्थ जैसे परणमैंगे, सो तिन सवकूं अवधिज्ञान जानै है। और वर्तमान काल सम्बन्धी जो पदार्थ, तीन लोक मैं जैसे-जैसे परणमते हैं। तिन सबकूं अपने विषय-प्रमाण क्षेत्र-काल की, अवधिज्ञानी जानै हैं। ऐसे अतीत-अनागत-वर्तमान काल सम्बन्धी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपने विषय—योग्य दूरवर्ती तथा नजदीकवर्ती सर्व पदार्थन कूं, अवधिज्ञानी जानैं। सो अवधिज्ञान तीन प्रकार है। सो ही कहिए है। देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। तहां देशावधि के षट् भेद हैं। तिनकूं कहिए है। अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित अरु अनवस्थित। ए षट् भेद हैं। अब इनका सामान्य लक्षण कहिये है। जो अवधिज्ञान जिस पर्याय मैं भई, तामैं आयु पर्यन्त रहै, अथवा ए जीव परगति जाय, तब भी याकी सङ्ग परगति मैं

जाय, सो अनुगामी कहिये ॥ १ ॥ और जो अवधिज्ञान, भले निमित्त पाय, जा पर्याय व जा स्थान मैं भया, सो ताही पर्याय व ता स्थान पर्यन्त रहै। परन्तु अन्य गति व अन्य स्थान मैं सङ्ग नहीं जाय, सो अननुगामी कहिए ॥ २ ॥ और जा अवधिज्ञान तैं जबतैं शुभ निमित्त भया, तबतैं पर्याय पर्यन्त अपनी स्थिती-प्रमाण काल तांई समय—समय विशुद्धता सहित, ज्ञान के अंश बृद्धि ही भया करैं, सो वर्द्धमान अवधिज्ञान जानना॥ ३ ॥ जो अवधि, महा विशुद्धता के प्रभावतैं भला निमित्त पाय, जिस जीवकैं जा समय भई, तबही तैं अवधि-ज्ञानके अंश घटते जांय। सो पर्याय पर्यन्त घट्या ही करैं। अपने काल-थिति की मर्याद मैं घट चुकैं, सो हीयमान अवधि जानना ॥ ४ ॥ और जो अवधि जबतैं भई, तबतैं जैसी की तैसी रहै। अपने काल—प्रमाण जेती थिति या ज्ञान की रहै, तेते अंश घटै-बढ़ै नाहीं। जा समय उपजी थी, तेते ही अंश रहैं। सो अवस्थित अवधिज्ञान कहिये ॥ ५ ॥ और जो अवधिज्ञान जबतैं भया, तबतैं कबहू तौ घटै, कबहू बढ़ै। ऐसे चपल रह्या करै। सो अनव-स्थित अवधिज्ञान कहिए ॥ ६ ॥ ऐसे इस देशावधि के पट् भेद हैं। तहां अनुगामी के तीन भेद हैं। एक स्वस्थान अनुगामी, एक परस्थान अनुगामी, एक उभय अनुगामी। तहां जो अपने क्षेत्र में ही यावज्जीवन अपने साथ जावे, अथवा भवान्तर में जावे, उसे स्वक्षेत्र अनुगामी कहैं हैं। जो पर—क्षेत्र में यावज्जीवन अथवा भवान्तर में अपने साथ जावे, उसे पर—क्षेत्र-अनुगामी कहते हैं। तथा जो स्वक्षेत्र व परक्षेत्र में यावज्जीवन व भवान्तर में साथ जावे

उसे उभयानुगामी कहते हैं। अननुगामी भी तीन प्रकार है-स्वक्षेत्राननुगामी, परक्षेत्राननुगामी और उभयाननुगामी। तहां जो स्वक्षेत्र में भी आयुपर्यन्त अथवा भवान्तर में साथ न जावे, उसे स्वक्षेत्राननुगामी कहते हैं। जो परक्षेत्र में और भवान्तर मैं साथ न जावे उसे परक्षेत्राननुगामी कहते हैं। तथा जो स्वक्षेत्र में आयु पर्यन्त अथवा भवान्तर में और परक्षेत्र में साथ न जावे, उसे उभयाननुगामी कहते हैं। ए तीन भेद अननुगामी के कहे। अब आगे क्षेत्र-काल अपेक्षा, अवधिज्ञान की अधिकता तथा हीनता रूप कथन करै हैं, सो सुनो। जो जीव अवधि तैं क्षेत्र-अपेक्षा जितने क्षेत्र की जानै है सो काल-अपेक्षा थोरे काल की जानै है। ऐसे और भेद कहिए हैं—तहां जघन्य अवधि का धारी, क्षेत्र-अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र की जानैं, सोही जीव काल-अपेक्षा, आंवलि के असंख्यातवें भाग काल की जानैं, सो भी असंख्यात समय जानना। और अंगुल के संख्यातवें भाग क्षेत्र की जानैं, सोही जीव काल-अपेक्षा, आंवली के संख्यातवें भाग काल की जानैं। ए प्रथम भेद है॥ १ ॥ और दूसरे भेद मैं अंगुल-मात्र क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल-अपेक्षा, किञ्चित् नून आँवली—मात्र काल की जानैं॥ २॥ और तीसरे भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, सात-आठ अंगुल के क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल-अपेक्षा, सात—आठ आँवली काल की जानै ॥ ३ ॥ और चौथे भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, एक हाथ क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल-अपेक्षा, अन्तर-मुहूर्त—काल की जानै है॥ ४ ॥ और पञ्चम भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, जो जीव

एक कोस क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल-अपेक्षा, अन्तर मुहूर्त—काल की जानै ॥ ५ ॥ और छठे भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, एक योजन क्षेत्र की जानै, सोही जीव काल-अपेक्षा, किञ्चित् नून मुहूर्त्त—काल की जानै ॥ ६ ॥ और सातवें भेद में क्षेत्र-अपेक्षा, पचीस योजन की जानै। सो ही जीव काल-अपेक्षा, किञ्चित् नून एक दिन—काल की जानैं ॥ ७ ॥ और आठवें भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा जो जीव भरत क्षेत्र प्रमाण, क्षेत्र की जानैं। सोही जीव काल-अपेक्षा, पञ्च दिन—काल की अगली-पिछली जानै है ॥ ८ ॥ और जे जीव क्षेत्र-अपेक्षा, जम्बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र की जानै, सोही काल-अपेक्षा, किञ्चित नून एक मास की जानै है ॥ ९ ॥ और दशवें भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, अढ़ाई द्वीप क्षेत्र की जानैं, सोही जीव काल-अपेक्षा, एक वर्ष—काल की जानै है ॥ १० ॥ और ग्यारहवें भेद में क्षेत्र—अपेक्षा, कुण्डलगिर ग्यारहवें द्वीप पर्यन्त क्षेत्र की जानैं. सोही जीव काल-अपेक्षा, कछू घाटि आठ-सात वर्ष की जानै ॥ ११ ॥ और बारहवें भेद में क्षेत्र-अपेक्षा, संख्यात द्वीप-समुद्र-क्षेत्र की जानैं, सोही जीव संख्यात वर्ष—काल की जानै है ॥ १२ ॥ और तेरहवें भेद मैं क्षेत्र-अपेक्षा, असंख्यात योजन की जानैं, सो ही जीव काल-अपेक्षा, असङ्ख्यात वर्ष—काल की अगली-पिछली जानै है ॥ १३ ॥ और चौदहवें भेद मैं तेरहवेंते असङ्ख्यात गुणी क्षेत्र की जानैं, सोही जीव काल-अपेक्षा, तेरहवेंते असङ्ख्यात गुणे काल की अगली-पिछली जानै है ॥ १४ ॥ ऐसे चौदहवें तैं पन्द्रहवां ॥ १५ ॥ पन्द्रहवें तैं सोलहवां ॥ १६ ॥ सोलहवें तैं सत्तरहवाँ ॥ १७ ॥ सत्तरहवें तैं अठारहवां ॥ १८ ॥ अठारहवें ते उगणीसवां ॥१९॥

ए परस्पर क्षेत्र-काल अपेक्षा असङ्ख्यात-असङ्ख्यात गुणे बधते जानना। ऐसे करते अन्त के भेद मैं देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र, लोक प्रमाण है। और काल-अपेक्षा, एक समय घाटि एक पल्य काल की अगली-पिछली जानै है। ऐसे त्रिकाल सम्बन्धी क्षेत्र-काल का विषय-प्रमाण, जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट पर्यन्त, देशावधि का विषय कह्या है। सो अपने विषय-योग्य, क्षेत्र-काल मैं प्रवर्त्तते पुद्गल स्कन्धन की तथा सन्सारी जीवन की पर्याय पलटणि रूप क्रिया कूं जानै है। इस तीन सौ तेतालीस राजू लोक क्षेत्र मैं जीव-अजीव पर्याय जैसे-जैसे भई, आगे होयगी और हैं। सो तीन काल सम्बन्धी अपने विषय-प्रमाण क्षेत्र-काल की जानै, सो देशावधि कहिये। इति देशावधि। आगे परमावधि का संक्षेप कहिए है-परमावधिवाला यती, देशावधितैं असङ्ख्यात गुणी क्षेत्र-काल की जानै है। सो क्षेत्र-अपेक्षा तौ ऐसे-ऐसे असङ्ख्याते लोक-क्षेत्र की जानैं है। और काल की अपेक्षा, सागर की अगली-पिछली जानै है। इति परमावधि। आगे सर्वावधिका संक्षेप कथन कहिए है-सो परमावधितैं असङ्ख्यात गुणी क्षेत्र-काल की सर्वावधिधारक यति जानैं। इति सर्वावधि। ऐसे अवधिज्ञान के तीन भेद कहे। सो यह अवधि, दोय प्रकार है। एक भवप्रत्यय और एक गुण प्रत्यय। तहां गति-स्वभावतैं जन्म धरते अवधि होय, सो भवप्रत्यय कहिए। सो देव-नारकी कैं तथा तीर्थङ्कर कैं होय, सो भवप्रत्यय है। और जहां तप-संयमतैं तथा भगवान के दर्शनतैं, स्तुतितैं, परणामण की विशुद्धतातैं अवधिज्ञान होय, सो गुणप्रत्यय है। ऐसे सामान्य अवधिज्ञान का स्वरूप जानना।

इति अवधिज्ञान संक्षेप सम्पूर्णम् । आगे मनःपर्ययज्ञान का सामान्य भाव कहिए है—

गाथा—मण पज्जयणाणावरणी, खयोपसमञ्जस्स होइ सो जीवो ।

मण पज्जयक्खु पावई, दो भेयो होइ उज्जु विउलमई ॥ ४७ ॥

अर्थ—मनःपर्ययज्ञानावरणी ताका क्षयोपशम जा जीव कैं होय, सो मनःपर्यय ज्ञान पावै। सो ज्ञान ऋजुमति, विपुलमति भेदकरि दोय प्रकार है। भावार्थ—जिस जीव कै मनः पर्यय ज्ञानावरणी का क्षयोपशम होय है। ताके दोय प्रकार ऋजुमति और विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान होय है। सो इनका विषय कहिए है। तहां कुटिलता रहित—सरल मन, सरल वचन और सरल काय करि किये जो कार्य, नाना प्रकार विकल्प, तीन काल सम्बन्धी, तिनकूं जानै। सो ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान है। इति ऋजुमति मनःपर्यय। आगे विपुलमति मनःपर्यय का संक्षेप कहिए है। तहां सैनी के मन सरल, वचन सरल, काय सरल करि किए जो विकल्प, तिन सबकों जानै। और कुटिल मन, वचन कुटिल अरु काय कुटिलता करि किए जो विकल्प रूप कार्य, तिन सबकूं जानैं, सो विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान है। इति विपुलमति। तहां ऋजुमति तौ प्रतिपत्ति है सो होय भी, अरु जाता भी रहै। भये पीछे तें जाता रहै, सो प्रतिपत्ति कहिए। भावार्थ—जिस यतीश्वर कै ऋजुमति ज्ञान होय। अरु वह मुनीश्वर पर्याय छोड़ि, देवलोक में असंयमी उपजे, तौ यह ज्ञान पर-पर्याय में नाहीं जाय। उस मुनि की पर्याय ही में रह्या। देव भये जाता रहै, रहै नाहीं। तातें ऋजुमति, प्रतिपत्ति है। और जा

यतीश्वर कें विपुलमति ज्ञान होय, सो जाता नाहीं। इस ज्ञान सहित केवलज्ञान होय, सो ता केवलज्ञान में मिलिजाय है। तातें यह विपुलमति ज्ञान विशुद्ध है। चरमशरीरिन कें होय। ए ज्ञान भए, संसार-भ्रमण नाहीं होय है। ऐसा जानना। तहां मनःपर्ययज्ञानी का विषय, काल-अपेक्षा उत्कृष्ट असंख्यात काल समय की जानें। और क्षेत्र-अपेक्षा, पैंतालीस लाख योजन-अढ़ाई द्वीप क्षेत्र की जानें। विशेष एता जो मनुष्य लोक तौ गोल है। अरु मनःपर्यय ज्ञान का विषय चौकोर है। तातें मनुष्य लोक वारे च्यारूं कोण्यां में तिष्ठते देव तथा तिर्यञ्च, तिनके मन-विकल्प की भी जानें। ऐसे उत्कृष्ट मनःपर्यय ज्ञान का विषय कह्या। इति मनःपर्यय ज्ञान का संक्षेप वर्णन। आगे केवलज्ञान संक्षेप वर्णन—

गाथा—तिकाले तियलोये, खट दव्वं जहा य पण्णत्ती।
जाणय केवलणाणय, जुगपद्देकंकालम्हि विण खेदो ॥ ४८ ॥

अर्थ—तीन-काल और तीन-लोक विषें द्रव्य जैसे-जैसे परणमें, तिनकों केवलज्ञानी निरखेद ऐके काल सबकूं युगपत जानें है। भावार्थ—सर्व ज्ञानावरणी कर्म के क्षय उत्पन्न भया जो केवलज्ञान, सो क्षायिक ज्ञान है। सो याके होतें, अनन्त अलोकाकाश ताके मध्य-भाग तिष्ठता असंख्यात प्रदेशरूप लोकाकाश, ताविषें तीन लोक रचना षट् द्रव्य करि बनी है। ता विषें त्रसनाड़ी है। ता विषें देवादि च्यारि गति, अनन्तकाल की ध्रुव बनी हैं। तिन में संसारी जीव, अथिर पर्याय धारी उपजे हैं। और यह लोक, षट् द्रव्यन करि भर्या है।

४१७

सो ए षट् द्रव्य जैसे-जैसे परणमैं, तिन सर्व कूं केवलज्ञानी जानैं हैं। सो कहिए है। जीव-द्रव्य अनन्त है। सो अनन्ते जीव, समय—समय जैसे—जैसे राग-द्वेष भाव, क्रोध-मान-माया-लोभ भाव, हास्य-भय-शोकादि कषायन के अंश सहित ज्यौं—ज्यौं परणम्या, ताकूं केवलज्ञानी युगपत जानै हैं। एक—एक जीवने अनंतकाल संसार—भ्रमण करतैं, एक—एक पर्याय, च्यारि गति सम्बन्धी अनन्त—अनन्त धरी हैं। सो केवलज्ञानी जानैं है। इस जीव ने देव पर्याय अनन्तवार पाई, सो देवगति मैं नाना भोग-भोगते भया जो शुभाशुभ भावन का परणमण, ताकूं केवली जानै हैं। अनन्तबार इस जीवनैं पाप-भावन तैं नर्क-पर्याय के दुख देखे, तिन मैं भए जो संक्लेश भाव, तिनकूं केवलज्ञान जानै है। पशु पर्याय—एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यंत, अनंतबार पाई। तिनमैं भए जो राग—द्वेष भाव, तिनकूं केवलज्ञान जानै है। संसार भ्रमतैं अनंतबार भया जो मनुष्य, तिन पर्यायन में भये जो शुभाशुभ भाव, तिन सबकौं केवलज्ञानी जानैं हैं। और च्यारि गति मैं भ्रमतैं परणम्या जो पुद्गल स्कन्ध, पर्यायन रूप अनेक रूप, तिन सबकौं केवलज्ञान जानैं है। और अवार वर्तमानकाल मैं च्यारि प्रकार देव, सर्व मनुष्य, पशु और नारकी च्यारि गति के जीव, सुख—दुख रूप प्रवर्तैं हैं। तिन सबकूं केवली जानैं हैं। और पुद्गल स्कन्ध जे—जे स्पर्श-रस-गंध-वर्ण होय परणम्या, ते—ते सर्व केवली जानैं हैं। और आगामी अनंतकाल विषैं एक-एक जीव अनंत देव पर्याय और धारेगा। ऐसे अनंते जीवन सम्बन्धी अनागत-अनन्त पर्यायन में समय—समय क्रोध-मानादि कषाय, राग-द्वेष भाव

रूप अनन्त जीव ज्यौं—ज्यौं परणमेगें, ते केवलज्ञान सर्व पहले ही जानै हैं। अनागत-अनंत पर्यायन मैं अनन्त-काल की देवन की पर्यायरूप पुद्गल-स्कन्ध, सो केवलज्ञान पहले ही जानैं है। ऐसे अतीत; अनागत और वर्तमान इन काल सम्बन्धी देवन के भाव-विकल्प सो, अरु इन देव पर्याय रूप परणम्या जो समय—समय अनन्त पुद्गल परमाणु सर्व कूं केवलज्ञानी युगपत—एक समय जानैं हैं। और ऐसे ही एक—एक जीव अतीत—अनागत काल विषैं अनन्तानन्ती मनुष्य-पर्याय नीच-ऊंच कुल, तहां नीच-कुल भीलादिक का, और अनन्ती पर्याय ऊंच-कुल क्षत्री-वैश्यादिक का, तिन मैं भये जो समय-समय इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग, पीड़ा—चिन्तवन, निदानबंधादि आर्तभाव, तथा च्यारि भेद रौद्र भाव। इनके निमित्त पाय जो क्रोध-मानादिक राग-द्वेष भावन रूप परणमन, तिन सर्व कूं केवलज्ञानी जानैं हैं। और इन अनन्त मनुष्य पर्यायन मैं परणम्या जो जा-जा रूप-स्पर्श-रस-गंधादिक पुद्गल पर्याय स्कन्ध रूप परमाणु का परणमण, तिन सबकौं केवली जानै हैं। और वर्तमान मैं जो सर्व संख्याते मनुष्य ऊंच-नीच कुल तिन मैं, जैसे-जैसे समय-समय क्रोधादिक कषाय राग-द्वेष भाव का पलटन, तिन सबकूं केवलज्ञानी जानैं हैं। और वर्तमान इनही मनुष्य पर्याय रूप परणम्या जो पुद्गल स्कन्ध, तिन सबकूं केवलज्ञानी जानै है। और अनन्त-अनागत काल विषैं अनन्ती-अनन्ती मनुष्य पर्याय एक-एक और धारैगा, तिनमैं होयगें जो-जो रागादिक भाव-विकल्प, ते-ते सर्व केवलज्ञानी जानैं हैं। और अनागत काल मैं

होयगी जो मनुष्य पर्याय, तिन रूप परणमैंगे जे पुद्गल स्कन्ध, तिन सबकूं केवलज्ञानी जानै हैं। ऐसे कहे जो अतीत-अनागत-वर्तमानकाल सम्बन्धी मनुष्य पर्यायन में अनेक भावन के परणमण, तिन सबकौं केवलज्ञानी युगपत जानैं है। और ऐसे ही एक-एक जीव अनन्त-अनन्त पर्याय नारकी धरि आया। अबार धरै है। आगामी और धारैगा। ऐसे तीन काल सम्बन्धी नारक पर्यायन में भये जो भाव-विकल्प, तिस सर्वकौं केवलज्ञानी जानैं हैं। और ऐसे अतीत-अनागत-वर्तमान काल विषैं एक-एक जीव, अनन्त तिर्यञ्च पर्याय जो एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति, इतरनिगोद, नित्यनिगोद, इनके सूक्ष्म-बादर रूप पर्याय, प्रत्येक वनस्पती, सप्रतिष्ठित, अप्रष्ठित इत्यादिक तथा अनेक भेद मई पशु पर्याय और श्वास के अठारहवें भाग आयु के धारी अलब्ध्यपर्याप्त जीव, सैनी-असैनी, एक अन्तर्मुहूर्त में छयासठि हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण रूप पर्याय, तिन सर्व पर्यायन कौं एक-एक जीव अनन्त २ बार धरि आया, तिनमैं भये जो भाव-विकल्प, तिन सर्वकौं केवलज्ञानी जानैं हैं। और इन पर्याय रूप परणम्या जो अनन्तकाल तांई पुद्गल स्कंध, तिनकौं केवलज्ञानी जानैं हैं। ऐसे च्यारि गति के जीवन के परणाम और ज्ञाना-वरणादिक कर्मरूप भये जो अनन्ते जीवन के भावन का निमित्त पाय पुद्गल कर्म, तिनकौं केवल-ज्ञानी जानैं हैं। और पुद्गल अनेक रूप भए हीरा, माणिक, मोती, पन्ना, पारस, मिट्टी, खाक, पाषाण, सप्त धात्वादिक अनेक रूप परणमैं जो पुद्गल स्कंध, तिन सब कूं

केवलज्ञानी जानैं हैं। और तीन काल सम्बन्धी धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, आकाशद्रव्य इन अमूर्तीक द्रव्यन का षट्-गुणी हानि-वृद्धि कौं लिये परणमण, तिन परणमणअंशन कूं केवलज्ञानी जानैं हैं। ऐसे अलोक में तिष्ठता लोक, ता लोक में तिष्ठते षट् द्रव्य के परणमण तीन काल सम्बन्धी, तिन सर्व कूं केवलज्ञान जानै हैं। इस केवलज्ञान के होते ही अनन्त चतुष्टय, संग ही प्रगट होय हैं। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख अरु अनन्त वीर्य। तहां ज्ञानावरणी कर्म के क्षय तैं, अनन्त केवलज्ञान होय। सर्व दर्शनावरणी का नाश भए, केवलदर्शन होय। मोहकर्म के क्षय होतैं, क्षायिक सम्यक् तथा यथाख्यात चारित्र रूप-निराकुल भाव रूप, अनन्त सुख होय। अन्तराय कर्म के सर्व अभाव तैं अनन्तवीर्य होय। तिनमैं केवलज्ञान-केवलदर्शन होते, तीनलोक व तीनकाल सम्बन्धी पदार्थन का जानपना होय। और अनन्तवीर्य होतैं, अनन्त पदार्थ देखने की अनन्तशक्ति प्रगट होय है। जो अनन्तशक्ति नहीं होती, तौ अनंतपदार्थ के देखनें तैं खेद होता और मोह कर्म का क्षय होता नाहीं, पर पदार्थ मैं रागद्वेष होता, यथावत् सुखी नहीं होता। तातैं केवलज्ञान-दर्शन तैं तो मूर्ती-अमूर्ती पदार्थ जानै। और अनन्तवीर्य तैं सर्व पदार्थ के देखते, खेद नहीं भया। ऐसे अनन्त चतुष्टय सहित, केवलज्ञान का धारी सयोग केवली, अतीन्द्रिय सुख भोगता, तिष्ठै है। ऐसा सुख, संसार दशा में जो तीन काल सम्बन्धी अनन्ते अहमिन्द्र, देव, इन्द्र, सामानिक च्यारि प्रकार देव, अनन्ते चक्री, षट्खंडी, कामदेव, अनन्ते नारायण, प्रतिनारायण,

बलभद्र, अनन्ते ही मण्डलेश्वर, राजादिक अनेक और अतिशय सहित पुण्य के धारी पुरुष विद्याधरादिक इन सबनका इन्द्रिय-सुख तीन काल सम्बन्धी इकट्ठा कीजे, तौहू केवलज्ञान के अनन्तवें भाग नहीं होय, ऐसा सुख केवलज्ञान भए हो है। संसारी सुख तो ऐसा है। जैसे कोई पुर का राजा, काहू बैरी की बंदी पड़या है। सो राज-धन-सम्पदा बहुत है। सो रुका है तौ भी खान-पान वस्त्र-आभूषण तो वांच्छित पहिरै है। और भोजन रस-मय करै है। सो इन्द्रिय-सुख मैं कमी नाहीं। परन्तु बन्दी मैं पड़ा है। सो महादुखी ही रहै है। और जो रुके नाहीं, स्वेच्छा-सुखसूं राज करै हैं, ते महासुखी हैं। तैसे ही देवादिक—संसारी जीव, मोह राजा की बन्दी में हैं। सो शुभ कर्म उदय तैं, इन्द्रिय जनित सुख तो है। परन्तु निर्बन्धन सुख नाहीं। और केवलज्ञानी का सुख स्वेच्छाचारी राजा की नांई, निर्बन्ध सुख है। तातैं केवली का सुख अपार है। ऐसे केवलज्ञान सहित भगवान् कौं हमारा नमस्कार होऊ। इति केवलज्ञान का संक्षेप कथन। इति श्री सुदृष्टितरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञान वर्णनो नाम. बीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ २० ॥

आगे कहै हैं जो इस मनुष्य आयु के दिन सोई भई मोतिन की माला, ताकौं भोरा जीव वृथा खोवै है। ताहि दृष्टान्त देय दिखावै हैं—

गाथा—मुत्तादामं तग कज्जय, भंजय मूढ़ा णाण रहिया जे।
इम अखफलं सुह लुहदो, भंजय णरो आयु दिण मुत्त फलं॥ ४६ ॥

अर्थ—मोतीन की माला, धागा के निमित्त कोई मूढ़-अज्ञानी मनुष्य तोड़ि डारै। तैसेही इन्द्रिय-सुख का लोभी मनुष्य, आयुरूपी मोतीन की माल तजै है। भावार्थ—जैसे कोई मूर्ख, जीरण-गल्या वस्त्र फाटा देखि, ताके सीवने कौं तागा ढूंढै था। सो नहीं मिल्या, तब मनोहर मोतीन की माला थी। सो ताहि देख विचारी, जो इस वस्त्र सीवने कौं, तागा मेरी मोती की माल में है। तब तागा निमित्त, मूरख ने मोती की माला तोड़ि कैं, तागा लेय, जीरण वस्त्र सीया। सो मोती, तागा विना विखर गये। सो इसकी मूरखता तो देखो, कि जीर्ण वस्त्र के निमित्त मोती की माला वृथा करी। सो यह महामूर्ख जानना। तैसेही भोरे-संसारी जीव, इन्द्रियन के विनाशीक-आकुलता सहित सुख रूपी पुराणा वस्त्र, तामैं भी जारि-जारि फाटि रह्या, गल्या, जाके राखै लज्जा आवै। नाख (फैंक) देने योग्य मलीन, ताकौं बहुत दिन थिरीभूत राखवे कूं, अरु तिसतैं अपनी शोभा जानि कैं, आप ज्ञान की मूढ़ता तैं ऐसे ग्लानि-कारी इन्द्रिय-सुख रूप कपड़ा, ताके सीवने कौं, अपने मनुष्य आयुरूपी मोतिन का हार तोड़ि, ताके दिन-घड़ी रूप तागा काटि, विषय-सुख-कषायरूप वस्त्र कौं शाश्वता राखवे कौं सीवता भया। अरु मनुष्यायु रूपी मोतीन का हार, शोभा में नहीं समझा। सो आयुष के समय तेई भए मोती, तिनकौं वृथा खोवता भया। सो इस भूल की कहा कहिए। अब मनुष्य आयु बार-बार कहां है। विषयभोग तौ गति-गति में आवै हैं। आगे बहु भोगे हैं। तातें जो मनुष्य आयुरूपी मोतीन का हार तोड़ि, तिसके दिन रूपी तागा लेय कैं, विषय-कषाय रूपी वस्त्र

सींव राखि, सुख मानैं। ताके ज्ञान की कहांताई हीनता कहिये। जैसे कोई ज्ञान-दरिद्री भोरा जीव, सुख के निमित्त भ्रमण करते, मनुष्य पर्याय रूपी चिन्तामणि-मन वांच्छित सुख का देने हारा रतन पाया। ताकौं अल्पज्ञानी-भोरा जीव, विषय-कषायरूपी कोरे चने के लिये बेचै। तथा कोई जीव सुख के निमित्त. अनेक देशान्तर भ्रमता-भ्रमता कल्पवृक्ष पावै। ताके पास बालबुद्धि, हलाहल-जहर जांचै। तैसे मनुष्य पर्याय, शिव-सुख की दाता, ताकूं पाय हीन-ज्ञानी विषयभोग-कालकूट-हलाहल-जहर जांच हर्ष मानै। ऐसेही मनुष्य आयुरूपी हार तोड़ि-तोड़ि, ताका डोरा लेय विषय-कषाय मई वस्त्र का सींवना जानना। आगे अपनी भूल करि आप बंध्या है, सो ही दृष्टान्त द्वारा बतावैं हैं—

गाथा—सुक शालणी कप मुट्ठई, मुकरम्हि भमं एत्ति जह साणो।
इम चेदण भमभूलइ, अप्पं बंधइ रायदोसादो ॥ ५० ॥

अर्थ—जैसे नलनी का सुवा (तोता), कपि की मूठी, कांच के महल में दूसरा स्वान नाहीं। तैसे ही आत्मा भ्रम भूला, रागद्वेष तैं आप ही बंध्या है। भावार्थ—नलनी का सूवा (तोता), नलनी पै वैठि कैं आपही उलट्या है। सो पंजन तैं नलनी कौ दिढ़ि पकड़े है। सो ऊर्ध्व पांव, अधोकूं शरीर होय भूलै। काहू नैं पकर्‌या नाहीं, बांध्या नाहीं। आपही ऐसा समझै है जो मैं इस नलनी कौं तजौंगा, तौ मेरे लगेगी। तथा उसे भ्रम भया, जो मोकौं काहू नै पकड़ि, उल्टा बांधि दिया है। ऐसे भ्रमतैं आप महादुखी भया बंध्या। भ्रमजाय, तौ काहू नै

पकस्या नाहीं, सहज ही नलनी तजै, नभ में उड़जाय और सुखी होय । तैसे आप अपनी भूलतैं परवस्तु मैं राग-द्वेष करि, कोऊ कौ भला मानै है, काहू कौं बुरा मानै है। ए मेरी है, ए मेरी नाहीं। ऐसे भ्रम करि आपही बंध्या है। भ्रम गए, सहजही सुखी होय है । और सुनो, जैसे बन्दर कौं पकड़नेवारे ने एक तुच्छ मुख का कलश बन में धस्या, ताके भीतर चने धरे । सो छोटे मुख के कलश मैं तैं चने लेने कौ बंदर ने लोभ के मारे दोऊ हाथ डारै। सो दोऊ मूठि भर काढ़े था। दोऊ मुट्ठी छोटे मुख तैं निकसती नाहीं। तब बंदर ने जानी, जो मेरे हाथ काहू नै पकरे हैं। ऐसे भ्रम होतें आप बन मैं उस घट मैं बंध्या पड़ा है। आपको बंध्या मानै है। सो याको काहू ने पकड़या नाहीं, एही भ्रम बुद्धि के प्रसादतैं चने का लोभी होय, आपही बँधि रह्या है। आप कदाचित मुट्ठी-चने का ममत्व तजिकैं, चने नाखै। तो सहजही स्वच्छंद होय, बन मैं विहार करै, सुखी होय। तैसेही आत्मा, परद्रव्यन तैं राग-द्वेष भाव करि, मोह के वशि, विषयभोग रूपी चने के लोभतैं, संसार-बन मैं पड़ा, कर्मबंध का करता होय, महादुख पावै है। विषयभोगरूपी चने तैं ममत्व भाव तजै, तो सहजही सुख-संतोष के प्रसाद तैं सुखी होय। और जैसे कांच के महल-मन्दिर मैं स्वांन जाय पड़ा, सो चारों तरफ स्वांन ही स्वांन देखि, ऐसा भ्रम करता भया। जो ए बहुत स्वांन मेरे मारवे कौं आए हैं। ऐसा जांनि आप उन तैं युद्ध करने कूं गया। सो यह जैसे बोलै, तैसेही कांच के स्वांन बोलैं । ए युद्ध करै, तैसेही कांच के स्वांन युद्ध करैं। सो ए स्वांन महा भयवंत भया। जो मैं तो एकला,

अरु यहां स्वांन बहुतहैं सो मोहि मारैंगे। ऐसे भ्रमतैं बड़ा दुखी है। सो कांच के मन्दिरमैं कोई दूसरा स्वांन नाहीं। एही स्वांन अपना प्रतिबिम्ब कांचमैं देखि, भ्रमतैं दुखी होय है। तैसेही ये आत्मा भी भ्रम-भाव करि, परवस्तु कौं देखि रागद्वेष भाव करि, कर्मबंध का करता होय, दुख उपजावै है। ऐसे ये मूढ़ जीव, नलनी का तोता, घट मैं मूठी तैं बंध्या चने का लोभी बंदर, और कांच के मंदिर में धस्या स्वांन, अपनी भूलि तैं दुखी होय हैं। काहू कों दोष नाहीं। तैसेही इनकी नाईं मोही-मिथ्या रस भींजत जीव, परवस्तु कूं अपनाय-रागीद्वेषी होय, संसार दुख का भोगी होय है। और जे सम्यग्दृष्टी-सांची दृष्टी वारे हैं, तिनकैं भ्रम नाहीं। ए तवत्त्वज्ञानी, सांची दृढ़ सरधा का धारक है। याके श्रद्धान में परवस्तु में ममत्त्व नाहीं। तातें अपने पदस्थ योग्य कर्म बन्ध नाहीं करै है। और मिथ्यारस भींजे ते कर्मबंध करि जन्म-मरण बेलि, बधावै हैं। अनेक तन धरि-धरि तजि, अशुद्ध भावी जीव दुखी होय हैं। और शुद्धोपयोगी भ्रम रहित हैं, ते कर्मबंध रहित हैं, ऐसा जानना। आगे कहै हैं। जो शुद्धात्मा कैं एते दोष नाहीं—

गाथा—तसकर पय णिप वहणी, दुभखो लोय पाव गद पंचो।
दुठणरपसु यम णिंदो, ए तीयदहभय रहय सुद्धादा ॥ ५१ ॥

अर्थ—तसकर कहिये चोर, पय कहिए जल, णिप कहिए राजा, वहणी कहिए अग्नि, दुभखो कहिये दुर्भिक्ष, लोय कहिए लोक, पाव कहिए पाप, गद कहिए रोग, पंचो कहिए पञ्च,

दुठणरपशु कहिए दुष्ट नर-पशु, यम कहिए काल, णिंदो कहिए निंदा, एतीयदहभयरहयसुद्धादा कहिए इन तेरह भय करि रहित शुद्धात्मा होय है। भावार्थ—शुद्धात्मा कौं चोर का भय नाहीं। सो चोर के अनेक भेद हैं। एक धर्म-चोर, एक कर्म-चोर। सो ही कहिए है-जो धर्म स्थान जो देहरे (देवालय), तिन देहरेन की वस्तु चोरना, भगवान के छत्र, चमर, प्रतिबिम्ब, सिंहासन, भामण्डल, थारा, रकेबी, झारी, झालरि, मजीरा, घंटा, जाजम, चाँदनी, परदादि उपकर्ण वस्तुनकौं चोरै, सो धर्म-चोर कहिए। तथा शास्त्र-चोर, सो शास्त्रजी के वन्धन, पूठा का चोरना, सो धर्म-चोर है। तथा कपटाई करि, छल तैं धर्म सेवन करै, सो धर्म-चोर है। धर्म स्थान तैं कोऊ गृहस्थ की वस्तु चोरना, सो धर्म-चोर है। तथा कषाय के वशीभूत-प्रमादी होय, धर्म वासना रहित अपना हिरदै करकै, पीछे रुचि रहित किञ्चित् कोई धर्म अङ्ग का साधन, लोक के देखने कौं करै है। सो धर्म-चोर है। तथा धर्म की सेवा करि, धर्म का सेवक बाजि (कहलाकर), पुजाया-लोकमान्य भया। पीछे कोई पापकर्म के योगतैं धर्म रहित होय, उल्टा धर्म का द्वेषी होय। सो धर्म-चोर है। एतो धर्म-चोर के भेद कहे। और कर्म-चोर हैं सो इनके भी अनेक भेद हैं। मुख्य ये हैं-एक तन-चोर, एक धन-चोर और वचन-चोर। तहां जे कोई पराए बेटा-बेटी, पर-स्त्री की चोरी कर, परस्थान में जाय बेचना। तथा हस्ती, घोटक, गाय, महिषादिक पशुन की चोरी का करना। सो तो तन-चोर कहिए। और पराए घर विषैं ओड़ादेय (फोड़कर) चुराना। मन्दिरन पै छल-बल करि चढ़ि चोरना।

पराए धरे धन कौं आप जानि ले आवना, सो ए सर्व भेद धन-चोर के हैं। पराया दिया-धरा माल राखि लेना। जानता ही भोले राखना। इन आदिक अपने छल करि पराया धन चोरै, सो धन-चोर कहिए। और पर के छिपे गुप्त वचन होंय, ताकी कोई रहसि जानि, ताकौं प्रगट करना, सो वचन-चोर है। तथा मुखतैं असत्य का बोलना, सो वचन-चोर है। इत्यादिक ए कर्म-चोर हैं। ऐसे जे धर्म-चोर और कर्म-चोर, सो कर्म-चोरतैं अनन्तगुणा पाप धर्म-चोर का है। ऐसे कहे जो अनेक भेद चोर, सो ऐसे चोरन का भय, सन्सारी परिगृहीनकूं है। और अनन्तगुणों का धारी, अतीन्द्रिय सुख-धन के धारी परमात्माकूं, चोर का भय नाहीं ॥ १ ॥ और थोरी-दीर्घ मेघ की वर्षा का भय, तथा नदी-सरोवर-समुद्र-कूप-वापी आदि जल का भय, सन्सारीक तन-धारी जीवनकूं होय है। और शुद्धात्मा, अमूर्तीक, अनन्तसुख के धनीकौं, जल का भय भी नाहीं ॥ २ ॥ और राज भय-सो राज का भय चोरनकूं, परस्त्री-लम्पटनकूं होय, और अन्यायमार्गीनकूं, असत्य वचनीकूं, इन आदिक पाखण्डीनकूं राज का भय होय है। और निर्जरण, कर्म रहित, परमेश्वर, शुद्धात्माकूं, राज-भय नाहीं ॥ ३ ॥ और अग्नि का भय है सो काष्ठ, वस्त्र, तृण, सुवर्ण, चांदी, रतनादि, मनुष्य-पशून के पुद्गलीक शरीर इन आदिक धनधान्यादिक सर्व वस्तु पुद्गल-स्कन्ध है। तिनकूं अग्नि का भय है। तथा इन पुद्गल-स्कन्धन मैं जिस जीव का ममत्व भाव होय, तिस रागी कूं अग्नि का भय है। और अमूर्तीक, ज्ञानपिण्ड, शुद्धात्माकौं अग्नि का भय नाहीं ॥ ४ ॥ और अन्न ही है सहकारी जाका, ऐसा जो

पुद्गल शरीर का धारी, परिगृही, वहु-कुटुम्बी, मोही, संसारी-जीव, दुर्भिक्ष होते कुटुम्ब रक्षा तथा अपने तन की रक्षा का करनहारा, ताकूं काल का भय होहै। क्यों ? यह मोही परिगृही तन-धारी, सो याकों दुर्भिक्ष का भय होय है। और पुद्गल शरीर रहित और कुटुम्बादि जन रहित, वीतराग, मोह रहित, शुद्धात्मा कों दुर्भिक्ष का भय नाहीं ॥ ५ ॥ और लौकिक का भय है। सो जे तस्कर होय, द्यूत के रमणहारे होंय, पल (मांस) भक्षी होय, मदिरा पायी होय, वेश्या घर गमनी होय, पर-जीवन का घाती होय, तथा परस्त्री भोगनहारे कों इन सप्तव्यसन सहित, पापाचारी, अयोग्य पन्थ के चलनहारे जीवन कों लौकिक का भय होय। तथा क्रोधी, मानी, दगावाज, महा लोभाचारी, पाखण्डी, ठग, अनाचारी, विश्वासघाती, स्वामी-द्रोही, मित्र-द्रोही, इन आदि अनेक कुमार्गीनकूं, लोक का भय होय है। और जगत-पूज्य, सर्व-वल्लभ कों, लोकालोक-ज्ञाता सर्वज्ञ कों, वीतराग, अमूर्तिक देव कों, लोक का भय नाहीं ॥६॥ और सरागी, वहु कुटुम्बी, वहु आरम्भी, संसारी, रागद्वेष सहित, पापाचारी कूं पापका भय है। तिनकूं पाप दुखी करै है। और वीतरागी, जगत का पीर हर, पाप-पुण्य संसार-मार्ग तातें रहित, कर्म-कालिमां वर्जित, शुद्धात्मा कूं पाप का भय नाहीं। इनकूं पाप, भय नाहीं उपजावै है॥ ७ ॥ और रोग-भय ताकों होय जो शरीर आसरै रहनहारे संसारी जीव, मोही, तन स्थिति सदीव चाहनैहारा, पुद्गल धनधारी जीव, तिनकों रोग का भय होय। और पुद्गलीक काय रहित, अमूर्ती, शुद्ध जीव कों रोग-

भय नाहीं ॥ ८ ॥ और पंच-भय है सो अन्याय पंथधारी, पंच-मर्याद लोपनहारे कौं. पंचन का भय होय है । और जगतनाथ, लोक-पूज्यपदधारी कूं, जगत-मर्यादा का बतावनहारा तथा लोक-मर्यादा का चलावनहारा भगवान कूं, पञ्च-भय नाहीं ॥ ९ ॥ और दुष्ट मनुष्य का भय है। सो पर-जीवन तैं कोई जीव द्वेष राखे, ताकौं दुष्ट जीव का भय होय। और जगतनाथ, निर्दोष, वीतराग, जगतपूज्य, शुद्धात्मा कौं, दुष्ट मनुष्यन का भय नाहीं ॥ १० ॥ और दुष्ट पशून का भय है सो इन दुष्ट जीव पशु-हस्ती, सिंह, चीता, सुअर, स्वान, मार्जार, बन्दर, सर्प, बिच्छू आदिक दुष्ट जीव हैं। सो हस्ती आदि तौ दन्ती हैं। सिंहादिक नखी, विषी जो सर्पादिक, ए दन्ती-नखी-विषी इन सर्व दुष्ट-पशून का भय संसारी, सरागी, पुद्गल तन के धारी जीवन कौं, पाप उदय तैं होय है। और संसार दुख रहित, षट् काय का पीरहर, अमूर्ती भगवान् कूं, दुष्ट-पशून का भय नाहीं। इस भगवान् के नाम लेते ही, सुमरण करते ही, दुष्ट-पशु आदि के अनेक विघ्न नाश होंय। ऐसा जानना ॥ ११ ॥ और यम-भय है। सो देव, मनुष्य, नारक, पशु, पुद्गल तन के धारी, संसारी, कर्म बंध सहित, तिन जीवन कौं यम का भय है। और अष्टकर्म-शरीर रहित, अमूर्ती, जन्म-मरण रहित, शुद्धात्मा कूं यम का भय नाहीं ॥ १२ ॥ और निन्दा-भय है सो कुमार्गी, निर्लज्ज, अनेक दोष भरे, अमार्गी जीव, तिनकौं जगत् निन्दा का दुख होय। और जगत पूज्य, स्तुतियोग्य, जाके गुण गाए कल्याण होय, निर्दोष, शुद्ध परमात्मा कूं, निन्दा-भय नाहीं ॥ १३ ॥ ऐसे कहे जो

तेरह प्रकार भय, सो संसार विषैं ही हैं, शुद्धात्मा विषैं नाहीं। ऐसे भय रहित भगवान कूं बारम्बार नमस्कार होहु। ऐसे सामान्य शुद्धात्मा का भाव जानना। आगे कहे हैं जो धर्मके प्रसाद, अचेतन-आकाश द्रव्य भी भक्ति करै है। तो इन्द्र, चक्री आदिक चेतन भक्ति करैं, तो क्या आश्चर्य है। ऐसा कथन कहिये है—

गाथा—आदा धम्म पसायो, णभ अचेय णगधार कय भत्ती।
तो सुरणर खग पूजय, को विसमय धम्म सेय सिव कज्जे ॥ ५२ ॥

अर्थ—आदा धम्म पसायो कहिए, भो आत्मा! धर्म के प्रसाद तैं। णभ अचेय कहिए, आकाश अचेतन है सो भी। णगधार कय भत्ती कहिए, रतन की धारा भक्ति करि करै। तो सुरणरखग पूजय कहिए, देव मनुष्य विद्याधर पूजें तो। को विसमय कहिए, कहा विस्मय है। धम्म सेय सिव कज्जे कहिए, मोक्ष-अर्थ धर्म सेवन करि। भावार्थ—भगवान की भक्ति आदि धर्म का फल ऐसा-जो ताके प्रसाद तैं अचेतन आकाश तैं भी रतन की धारा की वर्षा होय कैं, धर्मात्मा जीवन की महिमा प्रगट करै है। सो मानूं धर्मात्मा जीवन की सेवा ही करै है। इहां प्रश्न-आकाश तो जड़ है। सो भक्ति कैसें करै? रतनधारि तो देव करैं हैं। सो यहां आकाश की भक्ति कैसे भई? ताका समाधान-सो आकाश जड़ तो है। या के भक्ति-भाव कैसे होय, या वात तो प्रमाण है। सर्व जानैं हैं, चेतना नाहीं। परन्तु धर्म का महातम ऐसा है जो आकाश में तिष्टते पुद्गल-द्रव्य-स्कन्ध, सो रतनादिक रूप परणमि-

कैं, ताकी वर्षा होनै लगै है। तातैं हे भव्य, जीवन कूँ अतिशय बताने के निमित्त ऐसा कह्या है। जो आकाश भी धर्म-प्रसाद तैं, रतन-धारा वर्षाय, धर्मात्मा जीवन की सेवा करै, तौ चेतन द्रव्य जो देव, चक्री, खग, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, कामदेव, महामण्डलेश्वरादि राजा ए, और भवनपति, ज्योतिषपति, व्यन्तरदेव, कल्पवासी, कल्पातीतादि देव ए चेतन पदार्थ धर्मप्रसाद तैं, धर्मात्मा जीवन की, तथा धर्म की सेवा करैं, तौ अचरज कहा है। करैं ही करैं। ऐसा जानि भव्य जीवन कौं, धर्म की तथा धर्मी पुरुषन की सेवा-भक्ति करना योग्य है। इति। आगे कहै हैं जो ऐसे २ पुण्याधिकारी, पदस्थवान, पुरुषन के भोग-इन्द्रिय सुख हैं सो विनाशीक हैं। ऐसा दिखावैं हैं—

गाथा—रायधरा महरायो, अधमंडय मण्डेय महामण्डो।
अधचक्की महचक्की, खगसुर देवाण सयल सुह अथिरो॥ ५३॥

अर्थ—राजा, महाराजा, अर्ध मण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, अर्ध चक्री, सकल चक्री, खगेश्वर, देव, इन्द्र इन सर्व के सुख अथिर हैं। भावार्थ—जाके घर में कोटि ग्राम होय, सो राजा है। सो इस राजा के वांच्छित भोग॥ १॥ और जाकी ऐसे-ऐसे पांच सौ राजा सेवा करैं-चाकर होंय, सो अधिराज कहिये। ताके सुख देखते ही विनशै हैं॥२॥ और एक हजार राजा जाकी चाकरी करैं, सो महाराजा है। ताकी विभूति॥ ३॥ अरु दोय हजार राजा जाकी आज्ञा मानैं, सो अर्धमण्डलेश्वर कहिये। तिनकी सम्पदा॥ ४॥ और

चार हजार राजा जाके चरण-कमल की सेवा करें, सो मण्डलेश्वरनाथ कहिये। इनके भोग ॥ ५ ॥ आठ हजार राजा जाकी आज्ञा मानैं, सो महामण्डलेश्वर कहिये। ताकी सम्पदा ॥ ६ ॥ और जाकी सोलह हजार आर्यखण्ड के राजा सेवा करें, सो तीन खण्ड का अधिपति कहिए। ताके भोग ॥ ७ ॥ और बत्तीस हजार देश आर्यखण्ड के, तिनके बत्तीस हजार राजा जिसकी सेवा करें, सो चक्रवर्ती-षट्खण्डनाथ है। ताके पुण्य का महात्म कछु कहने में नहीं आवै। छयानवे हजार तौ देवांगना समानि, महासुन्दर, विनयवान् रानी हैं। नवनिधि व चौदह रतन, इनके दीए अनेक वांच्छित भोग। जाकी हजारों देव आज्ञा मानैं। चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ, इत्यादि का नाथ, मनुष्यन का इन्द्र। ताकी ए ऋद्धि ॥ ८ ॥ और महा मान शिखर पै चढ्या, महा अतिशय सहित पुण्य का धारी, इत्यादिक पदस्थ का धारी पुरुष, अपनी सम्पदा कूं स्थिरी भूत जानि, सदीव सुखसागर में मगन रह्या चाहै था, सो इनकी सम्पदा देखतें-देखतें नाश कूं प्राप्त होय गई। जैसे बिजली अल्प उद्योत करि नाश कूं प्राप्त होय है, तैसे ही महा-चपल सम्पदा विनश गई। तथा और विद्याधर महा अतिशयवान् पुण्य के धारी, देवन समानि वांच्छित भोगन के निवासी। और च्यारि प्रकार के देव, अद्भुत रस के भोगी महा पराक्रमी। तथा देवन का नाथ जो इन्द्र, जाकी मन-अगोचर लक्ष्मी। असंख्यात देवीनिकी सराग चेष्टा करि मोहित होय रह्या है चित्त जाका। अनेक मन, वचन, काय के चाहे-इन्द्रिय भोग तिनका भोगी

देवेन्द्र। ऐसे कहे जो देव-मनुष्यन की सर्वोत्कृष्ट सुख-सम्पदा, सो सर्व विनाशीक, स्वप्न-सम भ्रम उपजावनहारी जानना। भो भव्य हो ! देखो। ऐसी महान् सुख-सम्पदा तौ थिर रही नाहीं, तो तेरी तुच्छ पुण्य करि उपारजी, अल्प सम्पदा-पराधीन, सो ए कैसे स्थिर रहेगी ? तातैं ऐसी जानि के तुच्छ स्थिति धारो, चपला-विनाशीक सम्पदा तैं ममत्व छोड़िकर, मोक्ष के सुख अविनाशीक तिनके निमित्त, धर्म का सेवन करना योग्य है। इति। आगे ऐसा बतावैं हैं। जो माता-पितादि सर्व जन अपने-अपने स्वार्थ के बंधन तैं बन्धे हैं—

गाथा—जणक पितामह जणणी, तिय सुत मित्तादि बन्ध पुत्तीए।
सामी भिक्खिक दासो, ए सहु णिज्ज काज बंध बंधाणी ॥५४॥

अर्थ—जणक कहिए, पिता। पितामह कहिये, पिता का पिता। जणणी कहिये, माता। तिय कहिए, स्त्री। सुत कहिये, पुत्र। मित्तादि कहिए, मित्र। बंध कहिए, भाई। पुत्तीए कहिए, पुत्री। स्वामी कहिये, सरदार। भिक्खिक कहिए, मँगता। दासो कहिए, चाकर। ए सहु कहिए, ये सर्व ही। णिज्ज काज बन्ध बन्धाणी कहिए, अपने-अपने कार्य रूपी बन्धन करि बंधे हैं। भावार्थ—जातैं आप उपज्या सो अपना पिता है। सो पिता, पुत्र की बालापने में सेवा करै है। नानाप्रकार खान-पान शीत-उष्ण तैं रक्षा करै है। सो ऐसा विचारै है जो ए मेरा पुत्र है। यातैं मेरा नाम चलेगा। मेरी वृद्धपने में सेवा करेगा। इत्यादि स्वार्थ के बन्धन में

बन्ध्या, मोह-वश होय, नेह उपजाय, पुत्र की रक्षा करै है। और पीछे पुत्र कुपूत होय, अविनयवान् होय, तौ तातैं स्वारथ नहीं सधता जानि, मोह तजै। घर तैं निकास देय, मारि डालै, जुदा करै। बटाऊ (साभीदार) हूतैं, बुरा लागै। और पिता का पिता, पोते तैं मोह करै है। सो यह जानकर कि ए हमारे पुत्र का पुत्र है। सो मेरा नांती है। यह बड़ा होयगा, तब मेरी वृद्ध-अवस्था में सेवा करेगा। ऐसा स्वारथ के बन्धन तैं बन्ध्या, नांती जानि, बाबा रक्षा करै। और माता ने नव-मास उदर में रक्षा करा, जनम भए पीछे मोह के वश ये पुत्र की रक्षा करै है। सो भरी-राति में शीतकाल समय मल-मूत्र करै, तब आप तौ शीत-आले (गीले) में रहे, अरु पुत्र को सूखे में राखै है। सो ऐसा विचारै है जो बड़ा होय कमाय, मोकूं खुवाय सुखी करेगा। मेरी आज्ञा मानेगा। ऐसे स्वारथ के बंधन तैं बंधी माता, पुत्र की रक्षा करै है। और पति, नाना कष्ट पाय द्रव्य पैदा करै, सो लायकै स्त्री कूं देय। नानाप्रकार पंचेन्द्री जनित भोग-सामग्री मिलाय, स्त्रीकूं सुखी करै है। तातैं स्त्री ऐसा जानै है सो मेरे मनवांच्छित भोग का देनेहारा, एक भरतार है। ऐसै स्वारथ तैं बंधी स्त्री, भरतार की सेवा करै है। और कदाचित् भरतार मन्द-कुमाऊ होय, हीन-भागी होय, दरिद्री होय, अपने सुख का कारण नाहीं होय, तौ अपने स्वारथ रहित भरतार कौं तजै है। और पुत्र अपने-योग्य खान-पान, असवारी, वस्त्र के दाता माता-पिताकूं जानकै, पुत्र, माता-पिता की सेवा करै है। और ऐसा जानै है ये माता-पिता हमारा जतन करैं हैं।

ऐसे स्वारथ तैं बन्ध्या पुत्र, माता–पिता की सेवा करै है, आज्ञा मानै है। कदाचित् अपना स्वारथ सधता न जानै, तो माता–पिता कूं तजै है। और मित्र है, सो स्नेह करै है। और ऐसा विचार करै है। जो ये धनवान् है। हुकुमवान है। राज–पञ्चन में इसका बड़ा चलन है। तातैं यातैं द्रव्य का सहाय, काम पड़ै होय है। तथा खान–पान भली वस्तु–वस्त्रादि मिलै है तथा प्रयोजन पड़े, कष्ट में सहाय करै है। ऐसे स्वारथ के बन्धन तैं बन्ध्या मित्र, स्नेह करै है। कदाचित् अपना पुण्य घटै, हुकम मिटै, धन घटै। तो मित्र अपना प्रयोजन सधता न जानि, मित्रता तजै है। तातैं मित्र भी, स्वारथ के बन्धन तैं बन्ध्या, स्नेह करै है। और बन्धु जो भाई हैं, सो अपना मनोरथ सधै, तबलूं सनेह-रूप रहैं। प्रयोजन सधता नहीं जानि, जुदा होंय। पुत्री है सो अपना प्रयोजन सधै, तबलूं माता–पितान की सेवा करै, उपकार मानै। और स्वामी की आज्ञा–प्रमाण सेवक चलै। जबलौं अनेक कारज घर के सुधरे, तबलूं स्वामी कहै, मेरा भला-सेवक है। और जब आज्ञा न मानै, तौ दूर करै, चाकरी से छुड़ाय देय। तातैं स्वामी भी अपने स्वारथ के बन्धन तैं बन्ध्या, सेवा करावै है। और भिक्षुक जो जाचक-मङ्गता, ताकी याचना भङ्ग न होय, जबलौं अन्न-वस्त्र-धन पावै, तबलौं जश गावै। याचना भङ्ग भये, यश न गावै, निन्दा करै। तातैं याचक भी स्वारथ के बन्धन तैं बन्ध्या है। और सेवक है सो स्वामी के घरतैं अनेक अन्न, धन, ग्राम, हस्ती, घोटकादि सुख-सामग्री पावै है। तेते काल

सेवक भलीभांति स्वामी की सेवा करै है। और अपना प्रयोजन जब नहीं सधै, तब सेवा-चाकरी तजै। तातैं सेवक भी अपने स्वारथ के बन्धन तैं बन्ध्या है। इत्यादि कहे जे नाते, ते सब अपने २ स्वारथ के जानना। बिना स्वारथ संसार-प्रयोजनवारे, जीव तैं स्नेह करते नाहीं। ऐसा ही अनादि-स्वभाव जगत का जानना। और धर्मरस के पीवनहारे, त्यागी, ज्ञानी, जग तैं उदासीन, समता-भावी, दयाभण्डार, परमार्थ-मार्ग के वेत्ता, धर्मस्नेही, ये जीव जातैं स्नेह करैं, जाकी रक्षा करैं, सो स्वारथ रहित। तातैं धरमी पुरुषन कौं, कोई इन्द्रिय जनित स्वारथ न चाहिये। इनका स्वारथ, परमार्थ-निमित्त है। ऐसा संसार का स्वभाव ही स्वारथ मई जानि, विवेकी हैं तिनकौं अपने स्वारथ साधवे कौं, परमार्थ-मार्ग चलना योग्य है, जातैं परम्पराय मोक्ष होय है। आगे जिन-जिन पदार्थन का चपलता रूप सहज ही स्वभाव है, सो मिटता नाहीं। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—स्वांण पुच्छ अहि गमणो, दुठ चित्तो सहल वक णहपायो।
पीपल दल करि कण्णो, सठ मण अख सुह णाह ध्रुव भावो ॥ ५५ ॥

याका अर्थ—स्वांण पुच्छ कहिये, कुत्ते की पूंछ। अहि गमणो कहिये, सांप की चाल। दुठ चित्तो कहिये, दुष्ट जीव का चित्त। सहल वक कहिये, सहज ही वांका है। णहपायो कहिये, इनके मिटावे का उपाय नाहीं। पीपल दल कहिये, पीपल का पात (पत्ता)। करि कण्णो कहिए, हाथी का कान। सठ मण कहिये, मूरख का मन। अख सुह कहिये, इन्द्रियों के

सुख। णाह ध्रुव भावो कहिये, ए ध्रुव भाव नाहीं। भावार्थ—कुत्ते की पूंछ, सहज ही बांको होय। ताके सीधी करवे कौं, कोऊ उपाय नाहीं। याका सहज ही स्वभाव वैसा है। और सर्प की चाल, स्वभाव ही तैं बांकी है। याभी कोऊ उपाय तैं सीधी होती नाहीं। तैसे ही दुष्ट-जीव-पापाचारीन का चित्त भी, सहज ही बांका-कुटिल है। दगाबाज़ी कर मखा है। याका भी सहज-स्वभाव है। या दुष्ट की बहुत सेवा करो, तथा याका विनय करो, याते नमो, तथा याकौं बहुत धन देऊ, इत्यादिक अनेक उपाय करो, परन्तु कोई भी उपाय तैं इस अनाचारी का चित्त, सीधा नाहीं होय। यातें भो भव्य! तू सर्व जगह प्रमाद—रूप रहियो। परन्तु दुष्ट-जीव के संग होतैं, गाफिल—प्रमाद रूप मत होईयो। भो भव्य! काले सर्प तैं क्रीड़ा करते प्रमाद रूप रहै, तो मरण पावै। सो एकही भव दुखी होय। परन्तु तूं या दुष्ट के स्नेह-सङ्ग पाय, गाफिल रहेगा, प्रमाद के वशीभूत होयगा, तो तेरा भव—भव बिगड़ जायगा। महा—दुर्गति में पड़ेगा। यहां प्रश्न-जो तुमने कह्या, दुष्ट के स्नेह तैं भव—भव दुख उपजै, सो सङ्ग कीए ही दुष्ट कैसे भव बिगाड़ेगा? ताका समाधान-जो हे भव्य, तूं सुनि। याका उत्तर समझैं—श्रद्धान कीजे, तेरा बहुत भला होयगा। और ज्ञान बधवारी होयगी। भले—बुरे जीवन की परीक्षा का ज्ञान प्रगटैगा। तातैं भो धर्मी! चित्त लगाय के सुनना। आप काहू तैं द्वेष करै, तो दूसरा भी आपतैं द्वेष करै। सो यह सब संसारी जीवन की रीति है। परन्तु भो भ्रात! दुष्ट ताका नाम है, जो बिना—दोष परतैं द्वेष करै। याही

परीक्षाकरि तू दुष्ट कूं जानलेना। आपतो कोई प्रकार तें द्वेष-भाव नाहीं करै। और जे दुष्ट हैं ते पराया धन, हुकुम, वस्त्र, आभूषण, हस्ती, घोटक, रथ, पालकी आदि असवारी देख, विना प्रयोजन-सहज ही द्वेष-भाव करैं। लोक में काहू का बड़ा यश, गुणी-जीवन के मुख तैं सुनि, यह पापी वृथा ही द्वेष करै। तथा कोई को सुमारग लगता देखि, धर्म-सेवन करता देखि, द्वेष करै। कहै, ए बड़ा धर्मात्मा भया। हमारे आगे याके बड़े, अनेक पाप करते देखे थे। इत्यादिक परकों सुखी देख, आप निरंतर दुख करै। परकों रोग, शोक, चोट लागी देख, परकूं दुखी-दरिद्री देखि, आप राजी होय। सो दुष्ट जानना। सो या दुष्ट, जगत-निंद्य के सगतैं, भला-जीव निन्द्य होय, अपयश पावै, अनादर होय। ता अनादर तैं, आत्मा दुखी होय है। तातैं दुष्ट का संग मनै कीया है। और जो तू कही, परभव में दुष्ट दुखदायी कैसे होय? सो भी तू चित्त देय सुनि। जब दुष्ट जनतैं प्रीति होय। तब वह पापाचारी, पाप-कार्यन में रंजायमान करावै है। यह विना कारण-सहज स्वभाव, धर्म तें द्वेषभाव करनहारा, दुराचारी, धर्म-भावना रहित, अनेक अभक्षादि भोजन करनहारा, याकौ कोई धरम-नाम भला लगता नाहीं। सो पुन्य तैं छुटाय, पाप-पंथ का प्रेरक होय है। जैसे बनै तैसे, अनेक जुगति देय कैं, हाँसि-कौतुकनमें, इन्द्रिय-जनित भोगन में लगाय, धर्म तैं भृष्ट करि, पाप-कार्यन में तन, मन, धन, वचन तैं अनेक प्रकार सहायक होय है। पाप करावै, स्नेही कूं दुर्बुद्धि

करि पापबन्ध कराय, परभव बिगाड़ै। तातैं अनेक दुख ए जीव पावै। ऐसा
जानना। तातैं भो भव्य, तूं याका संग-स्नेह, नरक-पशून के दुख का दाता ही जानना।
तातैं या दुष्ट-जीव का निमित्त सब प्रकार दुख-दाई जानि, तजना सुखदाई है। और कदाचित्
भो धर्मात्मा! तूं सरल बुद्धि है सो दया-भाव करि कभी ऐसा विचारैगा, जो मैं कोई नय-
दृष्टान्त करि, याकों धर्म-विषैं लगाय, याका भला करूंगा। सो परोपकारी भव्य, तूं ऐसा
भ्रम तज देय। याका सुलटण महा असाध्य-नहीं होने जैसी वार्ता जानि। जो कुत्ते की
पूंछ की कुटिलाई मिटै-सूधी होय, तो इस दुष्ट की दुष्टता छूटि-धर्म रूप होय। तथा सर्प की
चाल वक्रता तजि, सरल होय, तो इस कुबुद्धि कौं धर्म-रुचि होय। तातैं जैसे नाग की चाल
अरु स्वान की पूंछ, इनकी वक्रता अनादि की, कोई उपाय तैं नहीं मिटै। तैसे ही दुष्ट-
स्वभाव, सहज ही अनाचार-रूप होय है। याके धर्म कदाचित् भी नहीं होय। तातैं ऐसा
जानि, दुष्ट का संग-स्नेह तजना योग्य है। और तन-धनादि सामग्री विनाशीक है।
सो इनतैं ममत्व-भाव तजना योग्य है। जैसे पीपल का पत्ता, चंचल है। तथा गज-कर्ण,
चपल है। तथा मूरख का मन, चपल है। तैसे ही हे भव्य, तूं ये जगत के इन्द्रिय-जनित
सुख, चंचल जानना। ए पीपल-पात, गज-कर्ण, मूरख का मन, सहज ही चपल है। तैसे
ही इन्द्रिय-जनित सुखन कूं सहज ही विनाशीक जानि, इन तैं ममत्व-भाव तजि, धर्म
विषैं लगना जोग्य है। तूं विवेकी धर्मार्थी है, तातैं तोकूं धर्म का उपदेश कहैं हैं। सो तूं

सुनि। जो धर्मार्थी हैं, तिनका चित्त तो धर्म के उपदेश सुनिनें में लगे है। और मूरख, धर्म वासना रहित प्राणी हैं, तिनका चित्त धर्मोपदेश तें चंचल होय है, स्थिरी-भूत रहता नाहीं। यह अज्ञान, धर्म के स्वरूप में समझता नाहीं। इस दुरात्मा का उपयोग, विकथा, लड़ाई, राज-कथा, धन-कथा, पर की निन्दा करना, इत्यादि पाप स्थानकन में तो निःप्रमाद होय, भले-प्रकार मन-वचन-काय की एकता सहित, या कुबुद्धि का चित्त लागे है। और धर्म-पन्थ-विसरे जीव कों, धर्मोपदेश दीजिये। तब ये धर्म-दरिद्री और विकल्प विचारें, धर्मोपदेश नाहीं धारें। तथा धर्म सुनतें निद्रा आवै, सो शयन करें--ऊंघें। और कदाचित् जागे, तो दूसरे मनुष्यन तें, जो पासि तिष्ट्या होय, तातें वार्त्ता करने लगें। सो आप तो पापी है ही। परन्तु समीप तिष्ट्या जो जीव, ताकों वार्ता लगाय, वाका धर्म घाति करि, वाका परभव बिगाड़े। तो ऐसे जीव, धर्म सन्मुख कैसे होंय ? तातें कुटिल-चित्त धारी, मायाचारी, दुष्ट—जीवन कूं, धर्मोपदेश लागता नाहीं। तातें जे जीव विवेकी हैं तिनकों धर्मोपदेश में प्रमाद करि, चित्त चंचल राखना, योग्य नाहीं। आगे जिन—आज्ञा रहित जे अतत्त्व-श्रद्धानी महा-पण्डित भी होंय, तो ताके मुख का उपदेश सुनना जोग्य नाहीं। ऐसा कहे हैं—

गाथा—अहिसिरणग उक्कट्ठो, गह्ये पाणांत होय एमाये।
इव मिछि मुह उपदेसो, सधा कुगय देय भवमयणं ॥ ५६ ॥

याका अर्थ—'अहिसिरणग' कहिये, सर्प के शीस पै मणि रत्न है सो। 'उक्कट्ठो' कहिये, उत्कृष्ट है। 'गह्ये पाणांतहोय' कहिए, ता रतन कों ग्रहे प्राणन का नाश होय है। 'एेमाए' कहिये, निश्चय तैं। 'इवमिछिमुह उवदेसो' कहिये, तैसेही मिथ्यादृष्टी जीवन के मुख का उपदेश जानना। 'सधा कुगय देय भवमयणं' कहिये, इनका श्रद्धान कीए कुगति के अनेक जनम-मरण देय है। भावार्थ—नाग के मस्तक पर मणि है, सो महा उत्कृष्ट है। अनेक गुण सहित है। सो ताका लोभ कीये, कोई उस रतन को लीया चाहै। तो लोभ भी नहीं सधै, अरु मरण को पावै। क्यों, जो रतन तो बहुत अच्छा है परन्तु महा विष-हलाहल भख्या, चपल-बुद्धि, महा क्रोध-कषाय का धारी भुजंग, काल-रूप, ताके पासि है। सो विष का भख्या सर्प, ताके शिर तैं मणि-रतन का लेना, सो ही मरण का कारण जान। सो हे भव्य ! तैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्म ताका सेवनहारा, जिन-भाषित-धर्म तैं विमुख, महा क्रोध-मानादि कषायरूपी जहर तैं भख्या मिथ्यादृष्टी, सो ही भया सर्प, ताके पास भली-विद्या रतन है। परन्तु कदाचित् याके मुख तैं उपदेशरूपी रतन को ग्रह्या चाहै, तथा भला जानि श्रद्धान करै, तो कुगति जे नरक-पशू-गति, सो तिन के जनम-मरण के तीव्र दुख कूं प्राप्त होय है। यहां प्रश्न-जो तुमने कह्या सो सत्य, इसकी मिथ्या-दृष्टि तो हम भी जानैं हैं। परन्तु हमकूं शास्त्र वांचने का ज्ञान नाहीं। अरु जिनवाणी सुनवे की बड़ी अभिलापा है। तातें यद्यपि इस मिथ्यादृष्टी कूं शास्त्र का विशेष ज्ञान नाहीं है। परन्तु अनेक संस्कृत, प्राकृत, छंद, काव्य, गाथा की वाचनकला

में प्रवीण है। वाचनकला भली है, अच्छे स्वर तें कहै है। अर्थ भी सर्व खोल देय है। कंठ अच्छा है। सो हम याके पास जिन आम्नाय के शास्त्र वचाय, ताके अर्थ का ग्रहण करि, धर्म-ध्यान में काल गमाय, पुण्य का संचय करेंगे। या में कहा दोष है? ताका समाधान-जो हे धर्मानुरागी, तू भी सुनि। ए मिथ्यात्व-मूरति, क्रोध-मान-माया-लोभ का पोषणहारा, दश वचन जिन-वचन अनुसारि कहेगा, तो तिनमें भी दोय वचन मिथ्यात्व पोषक कह जायगा। सो तुम कूं विशेषज्ञान तो है नाहीं। जो ताका निर्धार करोगे। सो सामान्य ज्ञान के जोगतें, तुम मिथ्या कूं भला जानि, श्रद्धान करोगे। अरु मिथ्यावचन श्रद्धान भये तुम्हारा धर्म-रतन शुद्ध-श्रद्धान, ताका अभाव होयगा। संसार-भ्रमण होयगा। च्यारि गति के दुख, जनम-मरण के भोगवोगे। तातैं मिथ्याती के मुख का उपदेश योग्य नाहीं। और जो जिन-भाषित तत्त्वन का वेत्ता होय। सुदेव-वीतराग, गुरु-नगन-वीतराग, धर्म-दयामई ऐसे देव-गुरु-धर्म का दृढ़ श्रद्धान होय। अरु जाकों वाचनकला अल्प होय, तथा ज्ञान जाकें सामान्य भी होय, तो ताके मुख का धर्मोपदेश तो सुखदाई है। परन्तु मिथ्यादृष्टी अतत्व-श्रद्धानी का धर्मोपदेश भला नाहीं। जैसे कोई दोय पुरुष परदेश-ग्रामान्तर गए। सो तिन में एक तो शुभाचारी है व एक कु-आचारी-भोरा है। सो दोऊ ही रसोई नहीं बना जानैं। जब भोजन की भूख लागी। तब परस्पर बतलावते भए। जो हे भाई! भूख लागी, कहा कीजिये? पैसे तो बहुत हैं पर रसोई करना नहीं आवे। तब वह भोरा-जीव, जो आचार में नहीं समझै था। सो बोल्या।

हे भाई! भूख लागी है तो इस भठियारी के घर, तुरन्त का कीया मनवांच्छित स्वाद का
देनेहारा भोजन ताजा है। सो या माँगे दाम देय, भोजन करो। तब दूसरे आचारी ने कह्या।
भो भाई, भठियारी के घर का भोजन भला है, अनेक रसमय स्वाद सहित है तो कहा
भया। परन्तु आचार रहित है। तातें अयोग्य है। और जाति के सुनैं तो जाति तैं निषेधैं।
पाँति तैं उठाय देंय। अभक्ष्य के योग तैं परभव में नरकादि दुख होंय। तातैं हम तो अपने
हाथ तैं, अथवा अपना जाति-भाई होयगा, ताके हाथ की कच्ची-पक्की-नीरस खाय, चारि
दिन परदेश के काटि नाखैंगे। और मरण कबूल है, परन्तु भठियारी की रोटी नहीं
खांयगे। ऐसा भठियारी का भला-भोजन तजि, अपने जाति-भाई की करी कच्ची-पक्की,
रूखी-सूखी, अङ्गीकार करि, अपना धर्म राख्या। और जे अज्ञानी आचार रहित होंय, भूख
मेटवे कूं स्वाद-लम्पटी होंय, ते भठियारी की रोटी खाय हैं। परन्तु आगे कूं जाति में गये,
याका अनाचार सुन्या जायगा, तव जाति से निकास्या जायगा। पर-भव दुर्गति में पड़ेगा।
तैसे ही भठियारी के भोजन सदृश, मिथ्याती का उपदेश जानि, सम्यग्दृष्टी-दृढ़ श्रद्धानी कूं,
तजना जोग्य है। और कोई भोरे ऐसा कहैं—जो शास्त्र तो जिन आम्नाय के हैं। सो कोई
ही होऊ, वचवाय के अर्थ समझ लेंयगे। ते भोरे, श्रद्धान रहित, शिथिल परणामी, नामचार-
धर्मी, जिन—धर्म का सेवन करि परभव सुख चाहैं हैं। सो ये शिथिल परणामी, अवार
भठियारी की सी रोटी खाय, सुखी हुए हैं। परन्तु परभव में तो जिन आज्ञा-

प्रमाण दृढ़ श्रद्धान का फल होय है। सो या कूं परभव में तो कुगति-दुख होंयगे। तातैं हे भव्य, तूं धर्मफल का लोभी है। अरु मोक्ष मारग का अभिलाषी है तो मिथ्यादृष्टी के मुख का उपदेश तोकूं श्रोत्र द्वारे भला, सुर व भला—कण्ठ के जोग तैं अच्छा भी लगता होय, तो भी सर्प की मणिवत्, भठियारी के भोजनवत्, तजना जोग्य है। ऐसा जानना। और केतेक भोरे—संसारी चतुर जीव, ऐसा श्रद्धान करैं हैं। जो मिथ्याती है तो वह है, अपने कूं कहा ? अपने कूं तो वचवाय लेना। और एक-दोय वचन कोई मिथ्यात रूप खोटे कह गया होय, तो वह जाने। वह बलवान् है। सो जिन भाषित अनेक वचनों में कोई दोय वचन अतत्वरूप सरधे गये, तो कहा होय है ? ताका समाधान—जो हे भव्य, ऐसा विचार तो महादुखदायी जानना। जैसे भला षट्‌रस सहित पुष्टि का करणहारा भोजन बनाया, और कदाचित् ऐसे उत्कृष्ट भोजन में थोड़ासा हलाहल-विष डाल दिया होय, तो उस ही भले भोजन कों खाए, मरण होय। तैसे ही जिन-वचन स्वर्ग--मोक्ष फल के दाता हैं। तिनके सुनैं जीव का कल्याण होय, समभाव बँधै। ऐसे वचन कों उपदेश में, कोई पापी आत्मा, कषायरूपी हलाहल—जहर नाखि कैं कथन करै। तो श्रोतान कों दुखदाता होय। ऐसा जानि, मिथ्याती बहुत-ज्ञानी होय, और आप भोरा होय, तो अपने मुख तैं पंच-परमेष्ठी के नाम का जाप करना, परन्तु मिथ्याती के मुख तैं उपदेश नहीं धारना। आगे सर्प हू तैं दुष्ट-जीवन कों विशेष बतावैं हैं—

गाथा—खल अहि कूर सुहावो, तिणमहि खल अति कूरता होई ॥
अहिमन्तर उवचारो, दुठ उवचारोयलोयतियदुलहो ॥ ५७ ॥

याका अर्थ—खल कहिये, दुष्ट। अहि कहिए, सर्प। कूरसुहावो कहिए, इनका क्रूर स्वभाव है। तिणमहि खल अति कूरता होई कहिये, तिन में खल की क्रूरता बड़ी है। अहिमन्तर उवचारो कहिए, सर्प का उपचार तो मंत्र है। दुठ उवचारोयलोयतिय दुलहो कहिये, दुष्ट का उपचार तीन-लोक में दुर्लभ है। भावार्थ---जो दुष्ट हैं सो पर कौं धर्म-कर्म कार्यन में निराकुल-सुखी देख, विना प्रयोजन दुखी होय हैं। ऐसा जो दुष्ट, सो पर कौं दुखी देखि आप हर्ष मानता होय। सो एक तौ यह। और दूसरा सर्प। ए दोऊ महा क्रूर स्वभावी हैं। परन्तु इनमें दुष्ट-जन की क्रूरता विशेष जानना। काहे तैं, सो कहिये हैं--जो महा विष का भरया काल--रूप सर्प, ताके खाये नाहीं बचै। कर्मजोग तैं बचै, नाहीं तो मरै ही है। ऐसे भयानक सर्प की पूंछ तैं पाँव लागै, तो यह सर्प काटै। सो याका विष दूर करवे का अनेक मन्त्रादिक इलाज है। परन्तु बिना ही कारण, द्वेष रूपी विषका भरया दुष्टात्मा, याकी क्रूरता मैटै कौं, कोई तीन लोक विषैं उपाय दीखता नाहीं। तातैं भो भव्य! सर्पकी क्रूरता तैं, इस दुष्ट की क्रूरता अधिक जानना। तातैं अपने विवेक-बल तैं ऐसे दुष्टन को परख कैं, इनके सङ्ग तैं वचना बहुत सुखकारी है। जो कुसंगति तैं बचि, सत्संग मिलाय, अपना भला करना है, सो मनुष्य पर्याय के विवेक का, ये ही उत्तम

फल है। आगे सज्जन-दुर्जन का स्वभाव बताईये है—

गाथा—मत्तक जौंक पणंगा, दुठादि चतुक होय दुखदायो।
ईख दंड कणक सुअगरा, सयणादि चतुक होय सुहगेयो ॥ ५८॥

याका अर्थ—मत्तक कहिए, माखी। जौंक कहिये, जल-जौंक। पणंगा कहिये, सर्प। दुठादि चतुक होय दुख दायो कहिये, दुष्टजन को आदि लेय च्यारों दुखदाई हैं। ईख दण्ड कहिये, सांटा (गन्ना)। कणक कहिये, सोना। सुअगरा कहिये, शुभ अगर-चंदन। सयणादि चतुक होय सुहगेयो कहिए, सज्जन पुरुष को आदि च्यारों सुखदाई जानना। भावार्थ—माखी, जोंक, सर्प अरु दुष्ट-नर ए च्यारि परजीवन कौं दुखदाई कहे। सो ही कहिये हैं—जो माखी, पराये भोजन-जल में पतन होय; मरण करि पीछे अन्न-जल लेने वाले कूं दुखी करै। सो देखो, इस माखी की दुष्टता। जो पहिले तो आप मरि, पीछे और कूं दुखी करै। और जल की जौंक का ऐसा ही सहज स्वभाव है। जो दूध का भरा आँचल पर लगावैं तो दूध कूं तजि, लोहू कूं अङ्गीकार करै है। सर्प का ऐसा स्वभाव है जो ताकौं दुग्ध पिवाइये, तो जहर होय। सो प्यावनेवाला बहुत दिन पर्यन्त सर्प को दुग्ध प्याय पुष्ट करै। परन्तु कदाचित् प्यावनेहारा गाफिल रहेगा, तो ताही कूं खायगा। और ऐसे ही दुष्ट-प्राणी पै अनेक उपकार करि, ताकी रचा करि, पालि, पुष्ट करो। परन्तु यह दुष्ट-जन, सर्व उपकार भूलि कैं उल्टा उपकार-करता तैं द्वेष-भाव ही करै है। यह अपने स्वभाव ताकौं न तजै।

जैसे माखी आप मरकर, परकौं खेद उपजावै। ऐसे ही दुष्ट-जन आप मरकर, औरकौं दुख उपजावैं। सो ही कहिये है--जैसे कोऊ दुष्ट-अज्ञानी, काहू तैं कषाय-भाव करि विचारता भया, जो याके घर में धन बहुत है। सो मैं याके शिर कूप-बावड़ी-नदी विषैं, डूबि मरौं। तथा विष-खाय मरौं, तथा छुरी-कटारी खाय मरौं, तौ राज्य याका सर्व-धन खोंसि लेय-लूटि लेय। पंच याकौं, जाति तैं निकासैं। तब याका जगत् में मानभंग होय, महा-दुखी होय। सो देखो, माखी-समान दुष्ट का ज्ञान, जो आप मर करके पर कौं दुखी कीया चाहै। सो दुष्ट तो माखी समान जानि। और कोई दुष्ट जौंक के समानि चित्तके धारी होय हैं। जैसे जौंक, गुण जो दुग्ध, ताहि तजि, औगुण जो लोहू, ताकूं ग्रहै है। तैसे कोई दुष्टन पै, चाहै जेता उपकार करौ। वह सर्व कूं भूलि, पीछे औगुण ही ग्रहण करि, उल्टा द्वेष-भाव ही स्वीकार करै है। जैसे श्वान कूं, कोई चाहै जैसा उपकार करौ। भोजन देय, अनेक आभूषण पहिरावो। तथा पालकी में बैठावो। चाहै-जैसा लाड़ करौ। परन्तु यह अज्ञानी श्वान, जब हाथ तैं छूटेगा, तब घूरे में ही जाय और कुत्तेन में जाय तिष्ठैगा। और भले आभूषण, पालकी के गुण नाहीं विचारै है। तैसे दुष्ट भी कभी किए उपकार रूपी आभूषण, तिन सबको भूलि आप सरीखे दुष्ट-नीच पुरुषन का संग करि, दुख ही उपजावैगा। तथा सर्प कूं बहुत काल ताईं दूध प्याय, पुष्ट करि, अनेक प्रकार प्रतिपालना करौ। परन्तु इस सर्प की रक्षा करन-हारा कदाचित् प्रमाद सहित होय, सर्प कूं अपना पाल्या जानि, वातैं गाफिल रहेगा, तो यह

पापी विष का भख्या सर्प, याकौं खायगा। पालनहारे का मारनहारा होयगा। याकैं ऐसा विचार नाहीं, जो याने तौ मोहि दुग्ध प्याय पाल्या है। यह पापी अपना स्वभाव नाहीं तजै। तैसे ही दुष्ट जीव पर अनेक उपकार करौ। परन्तु जाका नाम दुष्ट है, सो अपना स्वभाव नाहीं तजेगा। यह उपकारी का द्वेषी ही होयगा। ऐसे कहे जो माखी, जौंक, सर्प, दुष्ट-जन, ये चारि सब कूं दुखदाई जानना। और सांठे (गन्ने) कूं जेता पेलोगे, ज्यों २ चिमीटोगे, तो भी त्यों २ मिष्टता ही देयगा। और कनक कूं जेता अग्नि तपाओगे-जारोगे, तेता ही नरम होय, निरमल-निर्दोष होयगा। तैसे भला शिष्य-विद्यार्थी, लौकीक गुरु जो विद्या पढ़ायवेवारा, ताकी मार खाय, उपकार मानै। ऐसा विचारै, जो यह शिक्षा-दायक गुरु, मो पै ऐसा उपकार करै है। जो अपने परणाम संक्लेश करि, मोकौं उत्तम धन जो विद्या, देय है। तातैं यह धन्य है। ऐसा जानि लौकीक गुरु तैं भला-शिष्य, प्रसन्न ही होय है। सो ये शिष्य, कनक समानि जानना। और अगर-चन्दन ताकौं जेता छेदो, तेती ही सुगन्ध देय है। जेता घिसो, तोड़ो, जालो, पर चन्दन उत्तम है सो त्यों-त्यों भली सुगंधि देय है। तैसे ही सज्जन पुरुषन कौं भी कोई पापी दुर्वचनादि से उपद्रव करै, दुख देय, तो धर्मातमा-पुरुष द्वेष नाहीं करैं। जैसे राजा श्रेणिक का पुत्र-वारिषेण, महा धर्मातमा, सज्जन-स्वभावी, सो ए राजपुत्र पर्व के दिन उपवास करि, रात्रि-समय मसान-भूमि में, सर्व जीवन तैं क्षमाभाव किए, कायोत्सर्ग-मेरु की नाईं, धीर-चित्त किए, धर्मध्यान रूप तिष्ठै है

था। सो चोर नै भयतैं चोरी का हार, इनके पासि डारि गया। सो चोर तो भाग गया। अरु पीछे कुतवाल आया। सो हार देख्या व राजपुत्र देख्या। सो याने जानी, ये ही चोर है। सो बिना समझै, कुतवाल ने राजा तैं कही। हे नाथ! वारिषेण ने चोरी करी। तब राजा श्रेणिक भी न्याय मारग के वश, कछु न विचारता भया। राजा नै मारने की आज्ञा दई। तब कुतवाल मसान में जाय, वारिषेण पै मारिवे कूं खड्ग चलाया। तब कुमार के पुण्य-प्रभाव तैं शस्त्र था, सो फूल-माला भई। देवों ने आय सहाय किया। जब ये अतिशय ऐसा हुआ। तब सुनि कैं राजा श्रेणिक, पुत्र पै गया। क्षमा कराय कही, पुत्र घर चालो। तब वारिषेण ने कही, हमारा सबतैं क्षमा भाव है। हमारे प्रतिज्ञा थी कि उपद्रव मिटै, दीक्षा का शरण है। सो अब उपसर्ग गया, तब दीक्षा लई। कोई राजा तैं व कुतवाल तैं सुबुद्धि-कुमार ने द्वेष-भाव नाहीं कीया। सो सज्जन पुरुषन का सहज ही ऐसा स्वभाव है जो परकी अज्ञान चेष्टा नहीं देखैं, अपने सज्जन भाव ही की रक्षा करैं। तातैं ईख-दण्ड, कनक, अगर-चंदन और सज्जन-पुरुष ये च्यार पदार्थ सब जीवन कूं सुखदाई हैं। ऐसा जानना। तातैं जे विवेकी हैं तिनकूं क्रूरता तजि, सज्जनता अङ्गीकार करना जोग्य है। इति श्रीसुदृष्टि-तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हेय-उपादेय स्वरूप वर्णनो नाम, इकईसवां पर्व सम्पूर्ण भया॥ २१ ॥

आगे ऐसा कहैं हैं जो मूरख को धर्मोपदेश कार्यकारी नाहीं—

गाथा—अन्धपैदीपणकज्जो, वधरोरागस्स हीजतियसंगो।

पतिगतनारिसिंगारो, जोसठयासेयधम्म विणकज्जो ॥ ५६ ॥

अर्थ—अन्धे पै दीपक है, सो कार्यकारी नाहीं। बहरे पर राग (गाना), कार्यकारी नाहीं। अरु हीजरे (नपुंसक) कों स्त्री का संग वृथा है। पति रहित स्त्री कूं, शृङ्गार कार्यकारी नाहीं। तैसे ही मूरखन कूं धर्म की कथा, कार्यकारी नहीं। भावार्थ—अन्धे पै पञ्चवरन रतन के प्रकाश कार्यकारी नाहीं। तथा अनेक रङ्ग-विरङ्ग, स्वर्ण व रतनन के चित्राम शुभाकार, अन्धे पै वृथा हैं। तथा अनेक दीपकन की माला जो दीपमाला, सो भी प्रकाश अन्धै पै वृथा है। तैसे ही अज्ञानी-मूरख पै, धर्मोपदेश-धर्म कथा वृथा है। और बहरै पै अनेक सुस्वर कंठ सहित, मधुर स्वरको लीए अनेक राग का गावना। सुन्दर वीणा, बांसुरी बाजादि अनेक वादित्रन के सुर। ये सब गाना-बजावना बहरे पै वृथा है। तैसे ही मूरख के पासि धर्म-कथा वृथा है। और नपुन्सक के पास, सुन्दर स्त्री का मिलाप वृथा है। तैसे ही मूर्ख पै, धर्म-कथा करना वृथा है। और पति बिना जो विधवा स्त्री, सो शृंगार करि कौन कौं दिखावे? भरतार तौ है नाहीं। और पर-पुरुष कैं अपना सिंगार दिखावे, तौ कुशील का दोष लागै। तातैं स्त्री का सिंगार भरतार के आश्रय ही, उसे शोभायमान करै है। भरतार बिना विधवा-स्त्री का अनेक शृंगार वृथा है। तैसे हो मूरख-पासि धर्म-कथा वृथा है। कैसा है मूरख, जो ज्ञान-नेत्र रहित, अन्ध समानि है। ये जिन वचन, परभव सुख देनेहारे, तिनके सुनने कूं बधरे समानि, कुकथा का अभिलाषी, क्रोधाग्नि करि भस्म भया है हृदय जाका, अरु

तूने प्रश्न कीया, सो प्रमाण है। जो उपदेश है सो भोरे कूं ही है। परन्तु मूरख- भोरे दोय प्रकार हैं। एक स्वभाव ही तैं, उपज्या तब तैं कछू समझता नाहीं। ऐसा भोरा, पुण्य-पाप में समझता नाहीं। काहू के धर्म-भाव तैं द्वेष नाहीं। आगे कबहूँ धर्म का उपदेश मिल्या नाहीं। ऐसे भोरे जीवन कूं तौ क्रोध-मानादि कषाय भी दीर्घ अंश सहित नाहीं। अनादि सहज (स्वभाव) की मूर्खता लिए है। ऐसे भोरे जीव, सरल भाव सहित कौं तो जिन-आज्ञा में धर्मोपदेश कह्या है। ऐसा भोरा, उपदेश जोग्य है। और ये जीव धर्मोपदेश स्वीकार करि, अपना भला भी करैं हैं। तातैं ये उपदेश-योग्य हैं। और एक मूरख जानता-पूछता ही क्रोध, मान, माया, लोभ के वशीभूत होय; धर्म का भला उपदेश नाहीं अङ्गीकार करै है। ऐसे कूं धर्मोपदेश नाहीं। काहे तैं, सो कहिये है। जो कोई धर्मी जीव तैं प्रथम तो स्नेह था। सो वाके निमित्त पाय, धर्म का सेवन विषैं लगा रह्या-धर्म सेवन कीया कस्या। और जब उस धर्मात्मा तैं कोई कारण पाय स्नेह टूटि गया, तब यानैं उस धर्मात्मा तैं द्वेष-भाव के जोग तैं, व्यसनासक्त होय-धर्म सेवन तजि दिया। और मूरख का संग पाय, कुमार्गी भया। अब याकूं धर्मोपदेश कठिन होय गया। अब याके कठोर हृदय विषैं, कोमल वचन परै नाहीं। तब और कोई पापीजन, कोई धर्मात्मा का द्वेषी था, सो यापै जाय अनेक सेवा-चाकरी-खुशामद करि, ताकौं मित्र समानि करि, पीछे वातैं कही। जो ये धर्मात्मा है सो हमारा द्वेषी है। तातैं तुम हमारे हितू हो, कृपा करो हो, सो या धर्मी तैं स्नेह-सत्कार तजो। हम तो आप के सेवक हैं।

मान-कषाय के जोग तें औरकूं नाहीं देखे है, और कदाचित् देखे तो तुच्छ देखे है। जैसे महा अन्ध तौ कोई पदार्थ देखता नाहीं। और अलप अन्ध होय है सो परके बड़े पदार्थन कौं, छोटे देखै। तैसे ही मूरख जानना। तथा महा-मायावी, बांस की जड़ की लाठो समानि है गांठ-गठीला, कुल हृदय जाका। तथा हिरण समानि चंचल, वक्रचित्त का धारी, तथा नाग-गमन समानि हृदय का धारी, दुराचारी, मूर्खता सहित, ऐसा मायावी, दगा-वाज होय। तथा महालोभी, मार्जार (बिल्ली) समानि, आमिष (मांस) भक्षी तथा विषमरे (छिपकली) समानि आमिष लोभ-धारक तथा मधुमाखी समानि लोभ का धारी, ऐसे क्रोधी-मानी-मायावी व लोभी, शान्ति-रस-भाव जो समता-भाव ताकरि रहित, सप्त व्यसनी और अनेक दोषन सहित ताका निवास, इत्यादि औगुणन का धारी, भले गुण रहित, सतपुरुषन की निन्दा करनहारा, सत्संगीन की सभा में अनादर जोग्य, ऐसा महा मूरख, ताके पासि धर्म-कथा करना वृथा है। तातें महा पण्डित विवेकीजन, जो सम्यग्दृष्टी के धारी हैं सो मूरखन कूं धर्म का उपदेश नाहीं देय हैं। यहां प्रश्न—जो तुमने यहां कह्या कि मूरखन कूं उपदेश देना जोग्य नाहीं। सो संसार में पण्डित तो थोड़े दीखें हैं। और भोरे-मूरख जीव बहुत देखिए है। सो उपदेश बिना, मूर्ख का भला कैसे होय ? और समझे को, कहा उपदेश है ? वह तो सब जानै। अरु उपदेश तो असमझ-मूर्ख-भोरे ही कूं है, सो जोग्य है। यहां भोरे कूं उपदेश मनै कैसे कीया ? ताका समाधान-भो भव्य, जो

इत्यादिक कपट वचन कहे। तब वा मूरख नैं वा मूर्ख के कहे तैं, शुद्ध-धर्मात्मा तैं द्वेष-भाव करि, आप भी हठी भया। अरु कुमारग सेवन करता भया। जब उस धर्मात्मा कौं देखै, तब ही द्वेष-भाव रूप भाव होजांय। सो इनका सत्संग छूटिगया। तथा जो संग भया, ताकरि हृदय कठोर भया। अनाचार भला लागनै लागा। तातैं यह भी जानता-पूंछता पापी-मूरख के कहे तैं, शुद्ध धर्म छोड़ कुमारग लागा। उल्टा धर्म तैं तथा धर्मी-जीवन तैं द्वेष-भाव करि, पाप-रूप प्रवृत्त्यां। ऐसी कहने लगा, जो हमारा होना है सो होय है। ऐसी जाति का भोरा-मूर्ख होय सो अपने हिताहित में तो नाहीं समझै और कषाय तीव्र होंय, ऐसे कूं धर्मोपदेश नाहीं है। वाही की काल-स्थिति पकि जाय, संसार निकट रहि जाय, तब सहज ही कषाय मंद होय जाय। सत्संग में आय, अपनी भूलि मानि, अपनी-अज्ञानता को निंद्य, प्रायश्चित्त लेय, शुद्ध होय. धर्म सेवन करै तो करै। बाकी ऐसा मूरख, उपदेश तैं नाहीं सुलटै है। तातैं ऐसे क्रोधी कौं धर्मोपदेश मनै कीया है। और आप मानी है, सो धर्म स्थान में जाय कैं, देव-गुरु-धर्म कौं नमस्कार करता, चित्त में लज्जा उपजावै। और कोऊ धर्मात्मा, समता-भाव सहित, ताकौं देखि, ताकूं सामान्य जानि, विनय-भाव नाहीं करै। तौ आप कौं विशेष पुण्यात्मा जानि, धर्मात्मा जीवन के अविनय रूप प्रवृत्तैं। ऐसे दीरघ मानी-मूरख कूं, धर्मोपदेश नहीं होय। तथा आप कैं तो काहू तैं मान-भाव नाहीं। आप तौ सुजीव है। परन्तु कोई महापापी मान का निमित्त पाय कैं, सुधर्म तैं तथा धर्मी जीवन तैं, द्वेष-भाव करै। परके कहैं, धर्म का तथा

धर्मी-जीवन का अविनय करै। ऐसे भोरे-मूरखन कूं धर्मोपदेश नाहीं। कोई मायावी-दगाबाजी, जीव, जो जानते ही भोरे जीवन कौं बहकावेकौं तथा ठगवै कौं, देव-धर्म-गुरु का स्वरूप और ही रूप कहै है। नय-जुगति (युक्ति) देय कैं, कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का अतिशय प्रगटावता, लोगन को ठगै। ऐसे मायावी तथा अनेक उपाय करि अपना महन्तपना दिखाय, तिन भोरे जीवन कूं अपने पांयन नमावै। कोई जुगति तैं, उनका धर्म लिया चाहे। ऐसे दगावाज प्राणी को धर्मोपदेश नाहीं। और केई महालोभी, मायाचारी, मनोवांच्छित इन्द्रिय-जनित सुख की इच्छा के धारनेहारे, गज-घोटिक-पालकी-रथादि की असवारी के वांच्छन हारे, जिनका पुण्य तो कम-हीन पुन्यी, कमावे-पैदा करवेकी तो जिन्हें शक्ति नाहीं और भोगोपभोग की दीर्घ तृष्णा। सो अपने ज्ञान के वल तैं भोरे जीवन कूं, अपने वड़त्व-भाव का चमत्कार वताय, अपना त्यागी-निष्प्रहपना वताय, पराए घोटक-रथादि असवारी का लोभी। पराये धन का इच्छुक-लोभी, इन कौं सुधर्म का उपदेश नाहीं। क्योंकि ऐसे भोगी, पाखण्डी, माया के जोग तैं इन्द्रिय-भोग के भोगनहारे, इनकौं धर्म रुचै नाहीं। और सुधर्म रुचै, तो याके भोग-भाव, लोभादि सर्व ही अवश्य ही छूटि जांय। सो यो महा-कषायी, भोगी, मानी, इन्द्रिय सुख भोग्या चाहे। सो ऐसे जानते-पूछते धर्म-रहित मूरख कौं धर्मोपदेश मनै है। और भोरे-सरल मूरखन कौं धर्मोपदेश लागै। ऐसा जानना। ये तेरे प्रश्न का उत्तर है। या भांति मूरख दोय भेद कहे। जैसे रोगी जीव दोय प्रकार हैं। सो महारोगी, और असाध्य वेदना के

धारी। एक देशान्तरी वैद्य आया सो वानै दोऊ रोगी देखै। सो उनकी नाड़ी-परीक्षा करि, सब
शुभाशुभ जानि कही, ये रोगी तो इलाज जोग्य है। अरु ये रोगी असाध्य है, याका इलाज
नाहीं। तब काहू ने कह्या, जो याका इलाज काहे तैं नाहीं ? तब वैद्य ने कही। एक रोगी
का आयु-कर्म बड़ा है। और एक का आयु-कर्म अल्प है, सो मरेगा। याका जतन नाहीं।
याके ऊपर जितने जतन करौ, सब वृथा जांय, जतन लागै नाहीं। तैसे ही, जाका परभव
भला होय, ऐसे सहज का भोरा-मूरख तो उपदेश के जोग्य है। याकौं धर्मोपदेश लागै भी
है। और जिसकी परभव में बुरी-गति होय। वह जानता भी कषाय-जोग तैं, सुधर्म तैं
विमुख होय। ऐसे जीवन कूं धर्म का उपदेश, सुहावता नाहीं। तातैं धर्मोपदेश लागता
नाहीं। यहां बहुरि प्रश्न-जो तुमने कह्या कि धर्म का उपदेश, कोई कौं तो है, कोई कूं नाहीं।
सो भगवान् का उपदेश तौ सर्व कूं चाहिये। और कोऊ कूं होय, कोऊ कूं नाहीं, तो
इसमैं वीतरागता कहां रही ? सरागता आवेगी। ताका समाधान-जो हे भव्य, तूने कही
सो सत्य है। परन्तु अब तूं चित्त देय सुनि। जैसे जगत विषैं वैद्य दोय प्रकार होय हैं।
एक तौ भोरा अरु मानी वैद्य होय है। एक परमार्थी, सरल परिणामी अरु विशेष ज्ञानी।
ये दोय जाति के वैद्य हैं। सो कोई भोरा-वैद्य शास्त्र-ज्ञान तैं रहित, नाड़ी-परीक्षा, दृष्टि
परीक्षा, मूत्र-परीक्षा, पसेव-परीक्षा, शकुन-परीक्षा, इन आदिक जे वैद्य के गुण, तिन रहित
मूरख वैद्य होय। सो तो लोभ के वशि तथा मान-बड़ाई के अर्थ, अपनी महन्तता भोरे

जीवन को बतायवे कौं, अजान वैद्य औषधि देय जतन करै। सो केतेक रोगी, दीर्घायु के धारी, सो तो कोई अपने पुण्य तैं बचै हैं। रोग कुछ दिन दुख देय, आखिर जाता रहै। सो वह भोरे-रोगी ने जानी, या वैद्य ने मोहि भला किया है। सो इस वैद्य का जश कीया, धन दीया। और जो अल्प आयु का धारी रोगी था सो जतन करते, औषधि देय तैं ही मर गया। सो इस रोगी के घर-वारे इस वैद्य की बहुत निन्दा करैं। जगह-जगह में वैद्य की निन्दा करते भये। सो जीवना-मरना तो कर्म के आधीन है। वैद्य का कछु सहारा नाहीं। परन्तु या वैद्य की इतनी अज्ञानता है। जो बिना-विचार, परीक्षा-रहित इलाज करै है। तातैं वृथा जगत में निन्दा करावे। सो तो ये मूरख-वैद्य कहावैं हैं। और जे विवेकी वैद्य हैं। सो अनेक वैद्यक शास्त्रों के ज्ञान सहित, नाड़ी-परीक्षा, मूत्र-परीक्षा, दृष्टि-परीक्षा, पसेव-परीक्षा, शकुन-परीक्षा के ज्ञान सहित होंय। सो नाड़ी-परीक्षा तो हस्त की, पांव की, शीशकी, छाती की नसें देख, शुभाशुभ रोग का कहना, सो नाड़ी-परीक्षा है। और मूत्र का वर्ण, स्पर्श, गन्ध, छींटादि लक्षण देख, शरीर के रागन का शुभाशुभ जानना, सो मूत्र-परीक्षा है। और रोगी के नेत्र व शरीर की दशा देखि, दृष्टि ही तैं रोगी का शुभाशुभ जानना, सो दृष्टि-परीक्षा कहिए और रोगी के शरीर के पसीना की गन्ध सूंघि करि, रोग कूं जाने, सो पसेव परीक्षा है। और कोई रोगी के समाचार लेय, वैद्य पै आवै। ताके मुख सूं समाचार सुनि तथा वाके मुख की सूरत देखि, रोगी का शुभाशुभ जाने, सो शकुन-परीक्षा कहिए तथा दूत-परीक्षा कहिए। ऐसे

वैद्य के गुण सहित, भला वैद्य होय। सो इतने गुण तैं, रोगी के शुभाशुभ जानै। सो सुवैद्य, जब रोगी का जीवना जानैं, ताका आयु-कर्म बड़ा जानैं, तो जतन करै। और भला होता न जानैं। आयु अल्प जानैं। तो इलाज करै नाहीं। मान-बड़ाई की इच्छा है नाहीं, कोऊ तैं धन लेय नाहीं। परमार्थ कौं, जतन बताय रोग खोवे, ताका यश ही होय। सर्व लोक पूजैं-प्रसंशैं। ऐसे गुण का धारी सर्व का उपकार करै। अरु काहू तैं, कछू चाहै नाहीं। सो यह वैद्य धन्य है। ऐसा निष्पृह गुणी होय, तो पूजा पावै है। तैसे ही भोरा, तुच्छ-ज्ञानी, ज्ञानरहित, सरागी, हस्ती-घोटक आदि असवारी के इच्छुक, अपनी महन्तता प्रगट करवे की इच्छा जिनकैं, ऐसे रागी-द्वेषी देव तो सर्व कूं खोटा-अतत्व उपदेश देय, अपना पूज्यपद तो कराय दें। पीछे सुननेहारा नर्क जावो, चाहे स्वर्ग जावो। चाहे वह जीव उपदेश जोग्य होऊ, चाहे मति होऊ। सर्व कूं एकसा उपदेश देंय। शिष्य का बुरा-भला नाहीं विचारैं। सो तो भोरा देव-गुरु कहिए। और अन्तर्यामी, सर्व-लोक की जाननहारा, केवलज्ञान-धारी प्रभु, शुद्ध-देव वीतराग का उपदेश ताही कौं है, जाकौं उपदेश लागै। अरु जाकौं न लागै, ताकूं उपदेश मनै है। वृथा उपदेश देते नाहीं। देने योग्य कूं देय हैं। जैसे पारस-पाषाण है सो कुधातु जो लोहा, ताकौं अपने स्पर्श तैं कंचन करै है। कांसा, पीतल, तांबादि अनेक धातु हैं। ते धातु पारस लगाय, कंचन न होंय हैं। जे होने योग्य होय, सो होंय हैं। तैसे ही सर्वज्ञ—भगवान् का उपदेश, भव्य होय, निकट संसारी होय, तिनकौं तो होय है। ऐसे

भव्य, निकट संसारी, भोरे-मूरख कूं, धर्म रुचै भी है। ताका लाभ भी होय है। तातैं ऐसे भोरे कूं उपदेश है। और जे अभव्य, तथा अभव्य समान जे दूरानदूर भव्य जीव, तिनकूं कभी भी सुधर्म का लाभ नहीं होय। तिनकूं केवली का उपदेश नाहीं। ऐसे तेरे प्रश्न का उत्तर जानना। तातैं जे भव्य जीव विवेकी हैं। सो जो वस्तु शुद्ध होती जानैं, तौ ताका इलाज भी करै हैं। और जो वस्तु शुद्ध नहीं होती होय, ताका इलाज वृथा है। तातैं जे हठग्राही, क्रोधादि कषाय-मैल करि लिप्त, जानते-पूछते ही धर्म तैं विमुख प्रवर्तैं, तिनकौं उपदेश नाहीं कह्या। जब इनका होतव्य भला होयगा, तब स्वयमेव ही धर्म-सन्मुख होंयगे। ऐसा जानना। आगे ऐसा कहैं हैं जो ये सर्व किसब (व्यापार) दया रहित हैं---

गाथा---पसु रक्खो किस खेटय, णिप वैदो छीय रजक रथवाहो।
वणरक्खो पल भक्खो, एसहु किप्पाय वज्जुयो आदा ॥ ५६ ॥

अर्थ---पसु रक्खो कहिये, तिर्यंच का पालनहारा। किस कहिए, खेती करनेहारा। खेटय कहिए, शिकारी। णिप कहिए, राजा। वैदो कहिए, वैद्य। छीय कहिए, छीपा। रजक कहिए, धोबी। रथवाहो कहिए, रथ--गाड़ी हांकनेहारा। वणरक्खो कहिए, माली। पलभक्खो कहिए, मांस खाने हारा। ए सहु किप्पाय वज्जुयो आदा कहिए, ये सब दया रहित आतमा जानना। भावार्थ--नाहर, सुअर, रोज, सांभर, चीता, रीछ, सीगोस, खरगोश, श्वान, मारजार, मगर, चिडूल, तीतर, बाज, बुलबुल, विसंभरादिक तथा गैया, भैंसा, भैंसी, बकरी, भेड़, बैल, हस्ती, घोटकादि इन

पशून कों पालनहारे जीवन का हृदय, दयारहित सहजही कठोर होय है। तथा सर्प, न्यौला, गोहरा, चूहे, तोतादिक जीवन के रक्षक-जीव कठोर होंय हैं। इनकों पर-जीवन पै लाठी, पथरा, लात, मूंकी मारते तथा जीवरहित कार्य करते दया नाहीं होय। ये पशुपालक सहज ही दया-भाव रहित हैं। तातैं जैनी दया-भाव का धारी, षट् काय जीवन का रक्षक, पशून का संग्रह नाहीं करै। यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि पशुन कौं नाहीं पालिये। सो जगह-जगह जैनी धर्मात्मा हैं सो अनेक पशु—जीवन की रक्षा करते देखिए है। कोई तो धन खर्च, घास अन्न लेय, पशुन कूं खुवावते देखिये हैं। बंदी में पड़े जे पशु ते महादुखी देखि, केई धर्मात्मा धन देय, छुड़ाय कैं सुखी करैं। कोई श्वान कों भूखे देखि, रोटी डारते देखिये है। इत्यादिक विधि तैं पशून की रक्षा करैं हैं। जा पशु पै चाल्या नाहीं जाय, ताकूं ठाम ही पै तिण—जल देय पौषैं हैं। कोई पशु का पाँव टूटि गया होय, सो ताकौं तृण-जल करि पोखि, ताकी रक्षा करिये है। सो क्या उनकौं जोग्य नाहीं? ताका समाधान-जीव पालन दोय प्रकार है। एक तो शिकारादिक-पाप निमित्त पालिये। सो तो धर्मात्मा कूं जोग्य नाहीं। यातैं पाप उपजे है। और एक पालन, दयासहित है। सो लूला पशु, अंधा, बूढ़ा, दुर्बल, रोगी इत्यादिक पशून कूं निष्प्रयोजन, करुणा हेतु, तिनकी रक्षा कौं, यथायोग्य उन माफिक प्राशुक घास, रोटी, गाल्या जल देय, निरबंध राखि, सब जीवन पर दयाभाव करि सब ही की रक्षा करना योग्य है। और जे कसाई हैं सो अपने प्रयोजन पोखवे कूं, असवारी कूं,

नाहीं करैं। और रथवाहक जो गाड़ी-रथ के हांकनेहारे कूं, बैल कूं मारते, दया नहीं आवे। तातैं यह किसव में दया नाहीं। वन रक्षक जो माली, बाग की रक्षा का करन-हारा, सदैव खेतीहारे की नाईं हिंसा—आरम्भ रूप है तातैं माली के किसव वारे पै भी दया नाहीं पलै। और मांस-भक्षी जो आमिष का खानेहारा, महाग्लांनि उपजावनहारा, ऐसे मांसाहारी पै दया नाहीं पलै। ऐसे कहे जे सर्व किसव के करनेहारे, इन पै करुणा नाहीं पलै। इनसे, सहज ही ऐसा कठोर स्वभावी जीव होय है। तातैं दयावान् हैं तिन कौं कहे जो दया रहित किसव, तिनमें फँसना योग्य नाहीं। तिन किसव वारों में भी वाणिज्य के निमित्त, लोभ करि फँसना योग्य नाहीं, ऐसा जानना। आगे ऐसा कहैं हैं कि कृपणादिक का धन ये कृपण नहीं भोगवैं हैं—

गाथा—संचय पिपील धाणो, माखिक संचय मधुमुखलद्यो।
किप्पण संचय लच्छी, ए ण भुञ्जय अएणभुंजयती॥ ६०॥

अर्थ—संचय पिपील धाणो कहिये, चींटी का धान्य संचयना। माखिक संचय मधु मुख लद्यो कहिए, माखी अपनी लार जो शहद ताकूं संचै है। किप्पण संचय लच्छी कहिए, सूम का जोड़्या धन। ए ण भुञ्जय अएणभुञ्जयती कहिए, ताकौं ये नाहीं भोगवैं हैं, और ही भोगैं हैं। भावार्थ—वन की रहने हारी चींटी का समूह है। सो तिननें बड़ा खेद खाय-खाय एक-एक अन्न का कण मुख में वन तैं ल्याय-ल्याय इकट्ठा कर्या। सो आप कौं

तो भोगने की शक्ति नाहीं, सो भोग सकी नाहीं। अरु वृथा मोह के मारे, लोभ करि, अन्न का संग्रह कस्था। सो बहुत दिन इकट्ठा करते पांच-च्यारि सेर इकट्ठा भया। तब कोई पापी, अन्याई, निर्दई, अन्न के भूखे, लोभी, निर्धन; भीलादिकने आय चींटीन का घर जानि, तिननैं बिल की धरा (भूमि) खोदि, अन्न लिया। सो हे भव्य हो, देखो। इन चींटीन का लोभ-स्वभाव जगत में प्रगट, सब जानैं थे। जो चींटी अन्न जोड़ि इकट्ठा करैं हैं। ता संचय के निमित्त तैं कोई दुष्ट प्राणी, पराये माल के खानेहारे ने, घर कौं फोड़या। सो घर का नाश भया और घर के त्तय तैं, चींटीन के तन का नाश भया, अन्न गया। सो ये प्रगट देखो। येते दुख, अन्न संचयतैं भये। जो आप खाय लेतीं, तो दुख नाहीं होता। तातैं जे विवेकी हैं तिन कौं अपने कुमाये धन कौं, अपने हाथ तैं भोग लेना योग्य है। और माखीन का समूह, वनस्पति का रस अपने मुख में ल्याय उदर में खाया। पीछे अज्ञानता करि, मोह के मारे, लोभ धारि, मुख की राह होय उदर का खाया रस हुलक करि, पीछे काढ़या। आप भूखी रह उसे संचय कीया। सो चोरन के भय तैं आकाश विषैं जाय, एकान्त जगह छत्त बान्धा। अपने ज्ञान प्रमाण, बहु यत्न तैं, बड़ा विषम स्थान देखि, छत्ता करि, तामैं जुदा घर बनाय, सर्व माखीन नैं अपना-अपना रस, भेला (इकट्ठा) किया। जब बहुत दिनन में सर्व के घर, रस तैं भरि गये। इकट्ठा बहुत भया। तब कोई पापीजन-लोभी के नजर छत्ता आया। याने जानीं, यामैं बहुत मधु है। सो लेने का उपाय किया। सो

जायगा महा विषम, उतङ्ग देखि, दाव नहीं देख्या। तब लोभी ने नीचे आग जलाई। बहुत धूम करी। सो धूम के निमित्त पाय, दुखी होय, सब माखी उड़ गई। तब याने छत्ता बांस से तोड़ि लिया। माखी थान भ्रष्ट भई। दुखी होय, दशोंदिशा में भ्रमती भई। सो देखो, इननैं लोभ करि भूखी ही रह कें, पेट का उगला काढ़ि, इकट्ठा करि जोड़्या था, ताके योग तें दुखी भयीं। जोड़्या रस गया। जो खाय लेतीं, तो खेद नहीं होता। सो देखो, माखी ने तो लोभ कीया, जो उलाक को संच्या। परन्तु जग में ऐसे-ऐसे लोभी-दरिद्री पड़े हैं। सो माखी का उलाक भी नहीं देखि सकें। सर्व लीया। तो ऐसा लोभी, मनुष्यन का उलाक कैसे छोड़े? ऐसे लोभी-बुद्धि कों धिक्कार होऊ। तातें जो लोभी, धन पाय कें, धर्म में लगाय, नाहीं भोगवेगा, सो माखीन की नाईं दुख पावैगा। जो सूम जन हैं सो भी चींटी की नाईं माल जोड़ि २ खेद खाय तो इकट्ठा कीया। सो मूरख नै नाहीं तो आप खाया, नाहीं और कूं दीया, नाहीं धर्म में लगाया, नाहीं कुटुम्ब कूं खुवाया। आप भूखा रह, तुच्छ खाय, मोटा वस्त्र पहिर, दीन वृत्ति धारि, माल जोड़्या। बहुत भय भये, धरती में धर्या। जब आप मुवा, तो धरती का धरती में रह्या। तथा जीवित रह्या, तो याकौं धनवान जानि राजा ने कोई दोष लगाय, लूटि लिया। या लोभी ने पूर्व पुण्य तें पाया था। सो यानैं धर्म-कर्म का फल कछू नाहीं पाया। तातें भो भव्य हो, पापी का धन, धर्म में नाहीं लागै, वृथा ही जाय। सो ये चींटी, माखी, सूम, इनका पैदा कीया धन ए नाहीं भोगवैं हैं, और ही भोगवैं हैं। तातैं विवेकी हैं तिनकौं पाया धन तैं धर्म

उपार्जना योग्य है। अब येते जीव दया-रहित हैं, सो ही कहिये हैं–

गाथा—सवर खटी चिंयालो, मदवेचा मदपाणकर घूतो ।
तसयर सठ कुलहीणो, दुठचित्तो यरहय करणाये॥ ६१ ॥

अर्थ—सवर कहिए, भील। चिंयालो कहिये, चाण्डाल। खटी कहिये, खटीक। मदवेचा कहिए, कलार। मदपाणकर कहिये, मद पीनेवाला। घूतो कहिए, जुवारी। तसयर कहिये, चोर। सठ कहिये, अज्ञान। कुलहीणो कहिए, कुलहीन। दुठचित्तोय कहिये, दुष्ट परणामी। रहय करणाये कहिए, ये सर्व दया करि रहित हैं। भावार्थ—बनचर-बन का रहनेहारा पशु, ता समानि अज्ञान, नाहर समानि हिंसक, ऐसा जो भील का हृदय, सो सहजही दयारहित-कठोर होय है। यातैं दया नहीं बनै। तथा मृत पशून का चरम उतारैं, घर ल्यावैं, धोवैं, पकावैं, रंगै, बेचै सो खटीक। याका भी चित्त महा अनाचार रूप, वज्रपरणामी; यातैं दया नाहीं पलै। और जाकैं सदीव जीवन की हिंसा करि, जीवन का मांस बेचवे का किसब है, सो चाण्डाल है। सो ये भी महा निर्दई है। यातैं भी दया-भाव नहीं पलै। और मद वेचा कहिए कलाल, दारू का बेचनहारा। अनेक जीवन की घाति करि, मद करै। अनेक क्रिमि, पानी में किलबिला उठैं। उनकों उछलती देखै, तब उस जल कूं यंत्र में डालि, दारू करते, ताकों दया नहीं होय। तातैं ये भी दया नहीं पालैं। और मद का पीवनहारा, बेसुध-दया रहित है। और चोर, जे पर धनका हरनहारा, महा निर्दई, तातैं भी दया नाहीं बनै। और जो शुभाशुभ विचार रहित, जन्म का अज्ञानी,

खादि--अखादि के ज्ञान रहित, पुण्य--पाप भावना रहित, भोरे जीव, यातें भी दया नहीं पलै। काहे तैं जो दया तो, पुण्य--पाप में समझै, ज्ञानवान् होय, तातें सधै है। सो ये ज्ञान रहित है, यातें दया नाहीं बनै। और कुलहीन होय, तातें भी दया नाहीं बनै। जो ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय इन तीन कुल के उपजे, ऊंच कुली हैं, इनतें दया बनै है। और आगे कह आए भील, चाण्डालादिक नीच-कुल के जीव, तिनतें दया-भाव नहीं बनै। और जाका चित्त नरम होय, सज्जन-स्वभावी होय, सर्व के भले का वांच्छिक होय, इत्यादि उत्तम गुण जाकें होंय। तातें दयाभाव पलै है। और जे दुष्ट परणामी, बहुत का बुरा वांच्छनेहारे जीवन तैं, दया नहीं पलै। तातें ऊपर के कहे किसब तिन सबतें दया. भाव नहीं बनै। ते मनुष्य दया रहित हैं। सो विवेकीन कौं. इनका सङ्ग करना जोग्य नाहीं। तथा दया रहित हैं, तिनके साथ लेन--देन, विश्वास भी जोग्य नाहीं। इनके सङ्ग तैं, वणिज तैं, विश्वास तैं, कुबुद्धि होय। अपने परणाम निरदई होंय। हिंसा कैसा दोष लागै। यातें नरकादिक दुख होय। यहां प्रश्न-जो तुमनैं कही कि ऊंच कुलीन तैं दया होय, नीच कुलीन तैं नहीं सधै। सो संसार में तो देखिये है जो घने ऊंच कुलीन हिंसक, जीव घातक, अनाचार रूप भावादि सहित, निरदई, हैं। और केई नीच कुली, अपने जोग्य ज्ञान-प्रमाण सुमार्गी--दयावान् दीखैं हैं। यहां नियम तो नाहीं भया। ताका समाधान—हे भव्य, तैंने कही सो प्रमाण है। परन्तु जैसे कोई रतन की खानि है। तामें रतन निकसैं हैं। ताके सङ्ग अनेक अन्य पाषाण भी निकसैं

हैं। परन्तु खानि रतन की ही कहिये। और कोई हीन पुण्य तैं पाषाणादि निकसै, तो
निकसौ। नियम नाहीं है। तैसे ही ऊंच कुलीन में दयावान् ही उपजैं हैं। और कोई पूर्व
जाका बिगड़ना होय, ऐसे पापाचारी जीव ऊंच कुल में हीन-पुण्यी निरदई होंय, तो नियम
नाहीं। रतन खानि में पाषाणवत् जानना। और जैसे पाषाण की खानि में खोदते, कोई
रतन निकसै तो निकसौ, परन्तु बहुतता करि खान, पाषाण की है। तैसे नीच कुलीन में
पूर्व-पुण्य के जोग तैं, कोई धर्मात्मा-दयावान् होय, तो नियम नाहीं। जैसे पाषाण खानितैं
रतन उपजना जानना। किन्तु बहुतता, हीन-कुलन में दया-रहित की ही है, ऐसा जानना।
तातैं नीच-कुलन में दयावान् भी होय हैं। और ऊंच-कुल में निरदई भी होय हैं। यामें
नियम नाहीं। संसार की अनेक दशा हैं। तातैं विवेकीन कूं, दया-रहित जीवन का निमित्त
छोड़ि, दया-भाव रहना योग्य है। आगे कहैं हैं जो सन्तोषी आत्मा, अपने निर्धनपने तथा दरिद्र
आए में, ऐसी भावना भावै है। सो कहिए है—

गाथा—दालय तव य पसायो, मम सिद्धो भवय अमुत्त सहु लोय।
मम सहु लोय पसन्ती, लोए आदाय णाहि मम जोई ॥ ६२ ॥

अर्थ—दालय तव य पसायो कहिए, दारिद्र तेरे प्रसादतैं। मम सिद्धो भवय अमुत्त सहु लोय
कहिये, मैं सिद्ध समानि सर्व लोक में अमूर्ति समाया। मम सहु लोय पसन्ती कहिए, मैं तो सर्व
लोककूं देखूं हूं। लोए आदाय णाहि मम जोई कहिये, लोक के आत्मा मोकौं कोई भी नहीं

देखैं हैं। भावार्थ—जे धर्मात्मा समतारस के पीवनहारे, सो दारिद्र के उदयतैं ऐसा विचार करि, खेद-मिटाय सुखी होय हैं। भो दारिद्र, तूने बड़ा उपकार किया। जो तेरे प्रसादतैं मैं सिद्ध-समानि अमूर्ति भया, संसार में रहों हों। सो मैं तो सर्व जगत--जीवनकौं शुभाशुभ चरित्र करते, निरखेद देखूं हौं। मोकों जगत के जीव, कोऊ नहीं देखैं हैं। जैसे अमूर्ति सिद्ध तो सर्व लोक-जीवन कौं देखैं हैं। और लोक के जीव, सिद्धन कूं कोऊ ही नहीं देखैं। सो ऐसी दशा सिद्ध-समानि, हमारी भी भई। सो ये तेरा उपकार है। अब मैं सन्तोष के सहाय तैं, निराकुल-सुखी भया, तिष्ठू हूं। ऐसे दारिद्र को आशीष वचन कहैं हैं, सो जानना ॥ ६२॥

आगे ऐसा कहै हैं जो धर्म सेवतैं जीवन की अभिलाषा च्यार प्रकार है—

गाथा—धम्मो चतुपयारो, चातुरता लोय रञ्ज लोभाए।
पम्मथ्थो सिव मग्गो, सेसा संसार सायणो मगणो॥ ६३॥

अर्थ—धम्मो चतुपयारो कहिए, धर्म सेवन च्यार प्रकार का है। चातुरता कहिये, चतुरताई कूँ। लोय रंज कहिए, लोक के राजी करवे कौं। लोभाए कहिये, लोभ कूं। पम्मथ्थो सिव-मग्गो कहिये, परन्तु परमार्थीक धर्म मोक्षमारग है। सेसा संसार सायणो मगणो कहिये, बाकी जो धर्म हैं सो संसार-सागर में डुबोनेवाले हैं। भावार्थ-धर्म सेवन जगत-जीव करैं हैं। तिनके अभिप्राय च्यारि प्रकार जुदे २ हैं। कोई जीव तो चतुराई के अभिलाषी हैं। जो लोक हमको ऐसा कहैं कि ये काव्य, छंद, गाथा, पाठ, पद, बिन्ती जानैं हैं। भला चतुर है। यह जैसी सभा

में जाय, तैसी ही बात कर जाने है। धर्म की भी भली २ बात, कथा, चर्चा, पद, बीनती पाठ जानै है। हम कूं लोक धरमी कहैं, चतुर विवेकी कहैं, ऐसी अभिलाषा सहित धर्म का साधन करना। सो चतुरता के हेतु, धर्म का सेवन करै है। इनकैं मोक्ष वांच्छा नाहीं। और केतेक जीव, परके रंजायवे कौं, धर्मात्मा कहायवे कूं, धर्म का साधन करैं हैं। जैसैं और जीव राजी हौंय, तैसें करैं। सो परके रंजायवे कौं, भले-स्वर तैं, मधुर-कण्ठ तैं काव्य, गाथा, कवित्त, पद, बिन्ती, महाराग धरि, तालबंध गाय औरकौं खुशी करवे कौं, नाना गान-पाठादि करैं। जो ये सर्व, सभाजन राजी हौंय, हमकौं भले कहैं। ऐसा जीव, लोक रंजायवे का अभिलाषी है। सो ऐसा जीव जेते तप, संयम, ध्यान, पठन करै है सो सर्व लोकन के रञ्जायवे कूं करै है। केतेक जीवन का ऐसा अभिप्राय है। और आत्मा के कल्याण का स्थान जो मोक्ष, सो ये मोक्ष-भावना रहित हैं। केतेक संसार में धर्म-क्रिया करनेहारे मनुष्य, ऐसे भी जानना। और कोई लोभ-अभिलाषी, धर्म का साधन लोभ कूं करैं हैं। पंचेन्द्रिय सुख की सामग्री धर्म-सेवन के जोगतैं मिलती जानि, धर्म-सेवन करैं हैं। सो लोभी, बारीक वस्त्र तथा, दुशाला रेशमी-रोमी, आदि अनेक भारी वस्त्र के स्पर्श की है इच्छा जिसकैं, सो स्पर्शन-इन्द्रिय पोषवे कूं, धर्म का सेवन करि, भोरे-जीवन कूं अपना धर्मीपना बताय, उनका धन खरचाय, बड़े-भारी मोलके वस्त्र अपने-तन पै राखे। दश-दिन पहिरकरि, पीछे अपना जश करावने कूं, याचकन कूं दे डारे।

अपना यश अपने आगे कान तैं सुनि, राजी होय। ऐसा भोरा प्राणी, जो पराया धन खरचाय अपना जश गावै। अपने चतुराई के जोगतैं, लोकन का भारी धन खरचाय, भारी वस्त्र पहरि लेना, सो स्पर्शन-इन्द्रिय पोषने के निमित्त, धर्म का साधन करै है। और केतेक रसना इन्द्रिय पोषवे कूं धर्म-सेवन करैं। जानैं-हम भला तप करेंगे, तो भक्तजन भला भोजन देंयगे। सो औरन कूं अपना धर्मात्मापना बतायवे कौं धर्म का अंग-जप, तप आदिक प्रगट करि, नानाप्रकार षट्रस भोजन के लोभ कौं धर्म का सेवन करैं हैं। सो केतेक जीव ऐसे रसना-इन्द्रिय पोषने कूं धर्म सेवनेहारे हैं। और केतेक नाना सुगंध की इच्छा के लोभी, केशन में तेल-फुलेल-इतरादि सुगंध मंगाय लगावना। तन पै व वस्त्र में लगाय, खुशी रहना। सो सुगंध (घ्राण) इन्द्रिय के पोषने कौं धर्म-सेवन करैं हैं। केई प्राणी ऐसे ही हैं। और चक्षु इन्द्रिय के लोभी, चक्षु के विषय पोषवे कौं, नृत्य करैं हैं। तथा औरन पै नृत्य कराय देखवे के इच्छुक, भले रूपवान् पुरुष-स्त्रीन का रूप देखवै कौं, धर्म का सेवन करैं हैं। तथा अन्य भोरे जीवन कूं ठगि, तिनका धन लगाय अनेक चित्रामादि रचना। कांचके मंदिर करवाय, तिन मैं रहके, देखि-देखि हर्ष-सहित तिष्ठवे की है अभिलाषा जिनकौं, सो केई ऐसे चक्षु इन्द्रिय के भोग कूँ, धर्म का सेवन करैं हैं। और केईक श्रोत्र इन्द्रिय के भोगी; अनेक राग, आप करि जानैं है। तथा औरके मुखतैं अनेक राग, वादित्र सुनवै की है इच्छा जिनकैं। इत्यादिक कान-इन्द्रिय पोषवे कूं धर्म

का सेवन करैं हैं। ऐसे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र इन पांच इन्द्रिय पोषवे कौं, धर्म-सेवन करैं हैं। और केतेक धन इकट्ठा करवे कूं, धन के लोभी धर्म-सेवन करैं हैं; बनै जैसे धन पैदा करना। सो आप तो अनेक उपवास करैं। तपस्वी का रूप धरि, औरन पै द्रव्य की आज्ञा करि, तिनका धन लेय आप सञ्चय करैं। नानाप्रकार बड़े विधानादि पूजा करनी। करनेहारे पै धन लेना। ऐसा ही उपदेश देना, जातैं भोरे जीवन के घर का धन, अपने घर में आवै। और लोभ के पोषवे कौं, धनवान् का आदर करना। अरु निरधन धर्मात्मा-पुरुष का निरादर। इत्यादिक लोभ के अनेक भेद हैं। सो केतेक जीव ऐसे हैं जो लोभ के निमित्त, धर्म का सेवन करैं हैं। और केतेक धर्मात्मा, सम्यकदृष्टी, जगत--उदासी, परमारथ जो मोक्ष, सो ऐसे परम अर्थ के निमित्त धर्म--सेवन करैं हैं। सो अनेक नय विचार, समता वधावना, धर्मात्मा जीवन तैं स्नेह करना, वांच्छा-रहित तप करना, इत्यादि कार्य करैं हैं। यहां प्रश्न—जो यहां कह्या कि वांच्छा-रहित तप करैं। सो वांछा-रहित तप कैसे होय ? तप करैं हैं सो सुख की वांच्छा कूं करैं हैं। वांच्छा बिना तो फल-रहित तप भया। याकी महिमा कहा भयी ? ताका समाधान—जो धर्मात्मा, दृढ़ सम्यक् के धारी हैं, ते इन्द्रिय-जनित सुख के निमित्त, तप नाहीं करैं हैं। मोक्षाभिलाषीन कैं तप है, सो मोक्ष निमित्त है। सो स्वर्गादिक इन्द्रिय-जनित सुख तौ सहज ही होय है। जो तप मोक्ष करै, तातैं स्वर्ग तो बिना—वांच्छा के होय। जैसे खेती का करनहारा. धरती में अन्न बोवे है सो वाका अभिप्राय ऐसा नाहीं, जो मेरे खेत में घास होउ।

वाका मन तो अन्न वांच्छै हैं। परन्तु जानें अन्न बोया, ताके घास तो बिना-वांच्छा के होय। तातैं जाने तपरूपी अन्न का बीज धर्म—धरा में बोया है। सो मोक्ष की अभिलाषा के निमित्त है। सो स्वर्गादि, घास की नाईं सहज ही होय। यहां फेरि प्रश्न-जो मोक्ष की वांच्छा तैं तप किया, सो भी वांच्छा भई। निरवांच्छापना तो नहीं रह्या। यामें भी वांच्छा भई। ताका समाधान-जैसे कोई पुरुष धन कुमावै। सो एक पुरुष तो ऐसा विचार करै। जो धन बहुत कुमाइये तो व्याह कीजै, घर बढ़ै, बेटा--बेटी होय, गृहस्थपना भला लागै। बिना स्त्री, घर बढ़ता नाहीं। ऐसा जानि धन कुमावै है। अरु कोई पुरुष धन कुमावै है, सो ऐसा विचारै है। जो बहुतसा धन होय तो वेश्याकूं देय, वांच्छित भोग भोगिए। जो व्याह कस्या चाहै है सो तो गृहस्थपने का घर बांधि, सुखी भया चाहै है। सो यो विचारा तो दोष रहित है। क्यों ? जो गृहस्थी ताका ही नाम है। जो घर बांधि, स्त्री परणि, बेटी-बेटा आदि कुटुम्बतैं सदैव सुखी होय। और दूसरा वेश्यावारे का विचार, अज्ञानता सहित है। जो धन का धन खोवना, अरु वेश्या के किञ्चित् सुख भोग, पाप कमावना। सो ए जीव भोरा है। तैसे जो जीव तप करि, मोक्ष चाहै है। सो तो ध्रुव (नित्य) सुख का अभिलाषी मोक्ष-स्त्री परणि, सिद्ध-पद में घर बांधि, अनन्तकाल सुखी भया चाहै है। सो ऐसे तो योग्य ही है। याकौं वांच्छा नहीं कहिए। ये घर बांधि ध्रुव रहना है। और जे तपरूपी धनतैं, वेश्या समानि चञ्चल, देवादिक के सुख चाहें, ते विवेकी नाहीं, ऐसा जानना। तामैं भी ये विशेष, कि जो परभव के इन्द्रिय

जनित वांच्छित सुख के निमित्त धर्म सेवें, सो धरमी। और इसी भव सम्बन्धी धन, पुत्र, स्त्री, रोग नाशादिककूं धर्म सेवैं, सो पापी हैं। ऐसा जानना। तातैं सम्यग्दृष्टी का तप इन्द्रिय-सुख अपेक्षा निरवांच्छी है। और जिन-आज्ञा प्रमाण देव-धर्म का सेवना, मोक्ष-मार्ग के निमित्त धर्म का सेवना, दया पूर्वक यत्नतैं तप, संयम, पूजा, दानादिक धर्म के अङ्गन का सेवना, सो पारमार्थिक धर्म-सेवन है। ऐसे च्यारि ही प्रकार भिन्न २ धर्म सेवनेवाले जीवन का अभिप्राय जानना। तिनमें पारमार्थिक धर्म-सेवन है, सो तो मोक्ष-मार्ग है। और वाकी के धर्म-सेवन के भाव हैं सो अल्प-सुख देयकैं, संसार-समुद्र में नाखैं (डालैं) हैं। तातैं ऐसे भले-बुरे धर्म की परीक्षा करि, धर्म-सेवन करना। सो कषाय सहित इन्द्रिय-सुख की वांच्छा करनेहारे ऐसे कुगतिदाई कुधर्म भाव तजि, परमार्थिक धर्म-सेवन करना योग्य है। आगे शास्त्र, छंद, काव्य, गीत के जोड़नेहारे कवीश्वरन का जो अभिप्राय है, सो ही कहिये है—

गाथा——धम्मी धम्म फल हेतव, जाचिक उदराय अधम्म लोभादी।
परजणाय भंडय, एालजय हासि जोड वकताए॥ ६४॥

अर्थ——धर्मी तो धर्म-फल हेतु, जाचिक उदर भरवेके हेतु, अधर्मी लोभ के हेतु, भांड़ परके रंजायवे के हेतु, निर्लज्ज हाँसी-कौतुक के हेतु, जोड़ के वक्ता होय हैं। भावार्थ--जोड़-कला का ज्ञान अनेक जीवन कैं होय। श्रुतज्ञानावरणी के क्षयोपमश करि, अनेक भले--भले पण्डित होय हैं। सो अनेक शास्त्र जोड़ैं हैं। कोई अनेक छन्द, काव्य, गाथा जोड़ैं हैं।

कोई पद-बिन्ती जोड़ैं हैं। केई गीत, किस्सा, कहानी जोड़ैं हैं। इत्यादिक अनेक जोड़-कला के ज्ञान सहित प्राणी पाइये हैं। परन्तु इन जोड़-कला करवे में परणति-अभिलाषा जुदी २ हैं। अरु जुदी २ अभिलाषा होने, तिन जोड़-कला के ज्ञान का फल भी, जुदा--जुदा पावैं हैं। जोड़-कला करते, अतरङ्ग जैसी अभिलाषा होय है, तैसा ही फल होय है। सोही कहिए है। कोई धर्मात्मा जीवन कौं तो श्रुतज्ञान की अभिलाषा है। सो तो शास्त्र के छन्द, गाथा, काव्य, पद, बिन्ती जोड़ैं हैं। सो धर्म के फल की इच्छाकूं लिये, परभव स्वर्ग--मोक्षादि सुख की वांच्छा सहित हैं। अन्तरङ्ग के श्रद्धान कौं लिये, जोड़ कला करैं हैं। सो इस ज्ञान का फल धर्म, मोंकूं ही उपजौ, ऐसी वांच्छा लिये शास्त्रादि जोड़ैं हैं। कोई तो ऐसे हैं, सो इन्हें धर्मात्मा जानना। और केई जाचिक-जीवन कैं श्रुतज्ञान की विशेष बढ़ती है। सो ए जाचिक छन्द, काव्य, गीत, इनकी जोड़—कला करैं। सो इनका अन्तरङ्ग उदर भरवे का है। जो हम कोई राजादि बड़े पुरुष का यश करैं तो ग्राम, गज, घोटिक, धन मिलै। ताकरि सर्व कुटुम्ब की प्रतिपालना होय। फलाना राजा, यश का लोभी, यश चाहै है। अरु चित्त का उदार है। ऐसे पुरुष का यश करैं, तो बहुत दिन की आजीविका मिलै। सो जांचकि, उस राजा के राजी करवें कौं अनेक छंद, गीत, कवित्त, काव्य, श्लोक बनावै। सो अपनी बुद्धि के जोगतैं जोड़-कला करै। तामैं दीरघ अर्थ, छंद महा सरल, अक्षर महा ललित, व्यञ्जनों का सुन्दर मिलाप इत्यादिक अन्तरङ्ग अभिप्राय सहित, ज्ञान तैं जोड़—कला करै। सो

जाचिक जानना। अर केई जीव भला ज्ञान पाय, बुद्धि का प्रकाश पाय, जोड़-कवित्त करैं। छंद व गीत बनावैं। सो जोड़-कला करतें उनकें ऐसे अन्तरङ्ग का अभिप्राय होय। जो हममे बड़ा ज्ञान है सो कोई ग्रन्थादि, काव्य, छन्द, बनाइये तो जग में पण्डितपना प्रगट होय, जश होय। ऐसा जानि केई तो जश के लोभ कौं, जोड़-कला करैं। केई अज्ञानी, इन्द्रिय-सुख भोगवे कौं जोड़-कला करैं हैं, ते पापी जानना। और केई भाँड़न में तीक्ष्ण श्रुतज्ञान होय है। सो भाँड़ भी, जोड़-कला करैं हैं। सो ऐसी अनोखी नकलें जोड़ैं। ऐसी बात बनाय ठाड़ी करैं। कि ताकी जोड़-कला देखि, अनेक मनुष्य राजी होंय, हँसें, प्रसन्न होंय। भांड़ की तारीफ करैं। ऐसी नकलें अपनी बुद्धि तैं, ज्ञान के जोग तैं जोड़ि के, औरन कौं प्रसन्न करैं। सो परके रञ्जायवे कौं गीत, काव्य, गाथा, छन्द, कथादिक जोड़ैं, सो भांड़ कहिये। भाँड़ का अभिप्राय जोड़-कला करते, परके रञ्जायवे रूप होय है। और केई निर्लज्जी जीवन कौं भी ज्ञान की बढ़वारी होय है। सो ए निर्लज्ज पुरुष, जोड़-कला करैं। सो याकी जोड़-कला हाँसि-कौतुक के निमित्त है। जैसे काहू जीवन नैं होरी के भंडउवा जोरे। तथा काहू निर्लज्ज स्त्री ने बड़ा ज्ञान पाय, पापनी नैं गावे के निमित्त गाली-गीत, बनाये, ताका गावना। सो श्रोता ताकी जोड़ि-कला सुनि कैं, विकारी-जीव लज्जा रहित हाँसि-कौतुक रूप प्रवृत्तैं। ऐसी जोड़-कला के ज्ञान-धारी जीव होंय, सो निर्लज्ज कहिए। ऐसे पञ्च प्रकार जोड़-कला करने के मुखिया हैं। तिनमें जे सुबुद्धि पुरुष हैं सो बुद्धिपाय,

धर्म-फल के इच्छुक होय, धर्म मई, दया सहित, पुण्य-दायक जोड़-कला करैं हैं। सो तो धर्म-मूर्ति सत्-पुरुषन के प्रसंशवे योग्य हैं और बाकी के च्यारि जाति के कवीश्वर हैं सो पाप-बंध करनहारे हैं। ऐसे श्रुतज्ञान सहित खोटे कवीश्वर हौंय हैं, सो तजिवे योग्य हैं। आचार्य कहैं हैं कि संसार भ्रमतैं, अनन्ते-भव अज्ञानता के होय हैं। तव एक भव, विशेष श्रुतज्ञान सहित, विवेक-चतुराई सहित, ज्ञान का मिले है। सो ऐसा उत्तम ज्ञान कों पाय-कें, यह जीव कुकाव्य करि, वृथा खोवैं हैं। ये सर्व जाति जोड़-कला है। सो तो हीन ज्ञानीन तैं नाहीं होय है। जे जीव विशेष ज्ञानी हौंय, महा चतुर हौंय, अनेक नय-विवेक के ज्ञाता हौंय, तीक्ष्ण ज्ञानधारी हौंय, तिनतैं जोड़ि--कला होय। सो ऐसे तीक्ष्ण ज्ञान का धारी उत्तम-बुद्धि भूलै, तौ यह बड़ा आश्चर्य है। अहो भव्य, तुच्छसा इन्द्रिय-सुख अरु अज्ञानी-जीवन के मुख की प्रशंसा के निमित्त, ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान, वृथा करै है। सो हम कहा उलाहिना देहिं? तैंने वैसी करी, जैसे कोई बंदर कूं रतन--कंचन के आभूषण पहराय, मोती की माला ताके उरमें डारि, मस्तक पै रतन-जड़ित मुकुट धारि, अनेक वस्त्र पहराहि, शोभायमान किया और अनेक मेवा ल्याय, ताके आगे खायवे कूं धरै। ऐसे में कोई बन का बन्दर ने नीम की निवोरी दिखाई। कही, ये बन का भोजन लेऊ। अरु सैन तैं, कहता भया। जो हे मित्र, आप बन्दी में कहा बैठे हो? ऐसे यह बन्दर, अज्ञानी बन्दर के स्नेह तैं अरु निवोरी के लोभ तैं, अपने शिरका रतन-मुकुट फैंकि, मोतीन की माला व वस्त्र डारि, उत्तम भोजन-मेवा तजि कैं,

बन में जाय। सो इस बन्दर की भूल कहां ताईं कहिए ? तैसे, बन्दर की नाईं भूले जो पण्डित, ताकों कहा कहिए। ये विनाशीक-भोग के अर्थि तथा लोक-प्रसंशा कूं अपना भला ज्ञान, मलीन करैं हैं। ये जोड़ि-कला करिवे का उत्तम ज्ञान पाय, ताके भेद को नहीं जानता, पापको उपावै। सो इस बात का बड़ा आश्चर्य है। इस भूल की कहा कहिये? जैसे एक कटईया, लकड़ी काटवै कौं बन में गया। वानै एक चिन्तामणि रतन पाया। ताकूं याने उठाय लिया। ताकों देखि विचारा, कि कोऊ रंगदार पाषाण की गोली है। अच्छी दीखे है। याकूं घर ले चलुं। यातैं लड़का खेला करेगा। ऐसी जानि या मूरख नैं परख्या बिना, चिन्तामणि रत्न को लेय कैं, अपनी फटी लँगोटी ताकी गांठि बांध्या। फेरि बन में लकड़ी काटने लगा। सो काठ के भार को बाँधि, अपने शीश पै धरि, बन कौं तजि, घर को आवै है। सिर पै भार है। सो धिकार इस अज्ञानता कौं। जो चिन्तामणि तो पूंछली तैं बंध्या है, सो तो पासि है। और शीश पै काठ-भार है। ऐसे ही सर्व भार तैं राह दुखी भया, घर आया। शाम को गुदरी में काठ-भार बैंचने गया। सो भूखा ही, दरिद्री भया खड़ा है। चिन्तामणि पास है, परन्तु भेद पाये बिना, दुखी होय रह्या है। पीछे दोई पैसा कों भार बैंच, घर आया। तब पैसा स्त्री के हाथ दये। कही, इनका अन्न ल्याव। आठ कौड़ी का तेल ल्याव। ताके उद्योत में रोटी करि लेना। सो पहर भर रात्रि गई तक, सब घर के मनुष्य भूखे मरे, अरु चिन्तामणि पासि है। परन्तु बिना भेद पाये, सुख नाहीं।

प्रगट करि, लोक-पूज्य होता भया। चिन्तामणि के प्रभाव तैं काठ ढोना गया। परम सुखी भया। तैसेही इस आत्मा का ज्ञान, यापैही है। परन्तु भेद पाये बिना, अज्ञानी भया फिरै है। कठेरे की नाईं दरिद्री होय रह्या है। जब गुरु-प्रसाद तैं ज्ञान-चिन्तामणि का भेद पावै, तो जगत–दुख जाय, सुखी होय, पूज्य-पद पावै, उपकारी की सेवा करै। तातैं विवेकी हैं ते भला ज्ञान पाय; धर्म में लगाय, धर्म--सेवन, पूजा, भक्ति, जीवाजीवतत्त्व विचारादि करि, भली जोड़ि--कला करहु। इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, काव्य-परीक्षा वर्णनो नाम, बाईसवां अधिकार सम्पूर्ण भया ॥ २२ ॥

आगे पंचम काल की महिमा कहिये है—

गाथा—जहि थति अरि हितदूरउ, तीथथाणेय रजय विणखेदो।
रंजय तहां न सुसंगो, ए कलुबल गेयतज्ञ समभावो ॥ ६५ ॥

अर्थ—जहि थति अरि कहिये, जहाँ रहिये है तहां बैरी पाईये है। हितदूरउ कहिये, हितू हैं, सो दूर हैं। तीथथाणेय कहिये, तीर्थ स्थान। रजय विणखेदो कहिये, रञ्जक बिना खेद है। रंजय तहां न सुसंगो कहिये, रञ्जत हैं तहां सुसंग नाहीं है। ए कलुबल कहिये, ये कलयुग का बल है। गेयतज्ञ समभावो कहिए, पण्डित हैं ते यह देख समताभाव राखैं हैं। भावार्थ—जे तत्त्वज्ञानी धर्मात्मा हैं, सो जगत की बिटम्बना देखि, ऐसा विचारैं हैं। जो देखो, पंचम काल की महिमा। कि जहां सदीव रहिये, जा क्षेत्र में बहुत दिन का वास, ऐसे

क्षेत्र में तो अदेखा--बैरी जन बहुत हैं। सो कोई धर्म--कर्म, खान-पान, देख सकता नाहीं। और अपने स्नेही हैं, सर्व प्रकार सुख के कारण हैं, तिन तैं बड़ा अन्तर है। वह सज्जन हैं, सो दूर ही देश में बसैं हैं। और जो तीरथ समान उत्तम स्थान हैं, जहां रहैं सदीव पुण्य का बंध कीजे। सत्सङ्गी जीव, पूजा, शास्त्र, ध्यान, चरचा का सदीव निमित्त, सो जहां रहने कूँ सदा मन चाहै। ऐसे उज्ज्वल स्थान पै, रुजगार की ठीकता नाहीं। सो खान--पान की थिरता बिना, रह्या जाता नाहीं। और जहां भला रुजगार है। खान--पान की चिन्ता नाहीं। ऐसे क्षेत्र में सत्सङ्ग नाहीं। जहां अपना परभव सुधारिए, सो पुण्य के निमित्त ध्यानाध्ययन, पूजादिक निमित्त नाहीं। ये पंचमकाल की जोरावरी है। ऐसे खोटे-काल में भली-वस्तु का मिलाप थोरा है। पापकारी, कुआचारी, अशुभ वस्तुन का निमित्त बहुत है। सो इसका यह सहज-स्वभाव है। शुभनिमित्त अल्प, अशुभ का निमित्त बहुत, ऐसी इस काल की सहज प्रवृत्ति है। ताके मेटवे कूँ, कोई उपाय नाहीं। होनहार कोई मेटता नाहीं। जा--जा समय सुख--दुख होवना है, सो हो है। ऐसा जानि, धर्मात्मा विवेकी तिनकौं समताभाव राखि, धर्म--ध्यान का आश्रय लेना योग्य है॥ ६५॥ आगे कहैं हैं कि शुभभावना बिना, करनी का फल शुभ नाहीं। ताकौं दृष्टान्त देय बतावैं हैं—

गाथा—सुक--पठती बक--झाणो, खर-भसमी पसु-णगण तरु-कट्ठो।
उरण सिर कच मुड़ई, भावो सुधी विणा ण सीझंत्ती॥ ६६॥

अर्थ—सुक-पठती कहिए, तोते का पढ़ना। बक-झाणो कहिए, बक का ध्यान। खर-भसमी कहिए, गधे का राख लगावना। पशु-णगण कहिए, पशु का नगन रहना। तरु-कट्ठो कहिए, वृत्तन का कष्ट सहना। उरण सिर कच मुड़ई कहिए, भेड़ के बाल का मूँड़ना। भावो सुधी विणा ए सीझन्ती कहिए, ये सब शुभभाव बिना मोक्ष न होंय। भावार्थ-जीव का भला तथा बुरा, इस ही के परणामन तैं होय है। तातैं शुद्ध-भाव बिना, जीव चाहै जैसा कष्ट करो, भला होता नाहीं। जैसे तोता रात्रि--दिन राम--राम किया करै है। परन्तु याकें राम-नाम तैं कछु प्रीति नाहीं। ऐसा विचार नाहीं, जो राम-नाम ल्यौं हों, त्यों मेरा कल्याण होयगा तथा ये राम-नाम उत्कृष्ट है। याका नाम जो लेय, सो सुखी होय है। ऐसा भेद--भाव नाहीं। जैसे पढ़ावनेहारा पढ़ावै है, उसी ही प्रकार पढ़ै है। यातैं याके भावन की शुद्धता नाहीं। अरु शुद्धता बिना, सूवे का पढ़ना--पढ़ावना वृथा ही जानना, फल-दाता नाहीं। और बगुला, पानी विषैं एक-चित्त करि, काय की ध्यानाकार ऐसी मुद्रा बनावै है। जैसे भला तपस्वी ध्यान करै। ऐसी ही नासादृष्टि करि, बगुला भी ध्यान करै है। परन्तु परणाम तो भले नाहीं। मच्छीन के घात-रूप हैं। सो भाव--प्रमाण, खोटा ही फल मिलेगा। ध्यान के आकार, भली-मुद्रा सहित, काया करी है सो भाव-शुद्ध बिना, भला-फल होता नाहीं। तातैं शुद्ध-भाव बिना, बगुले का ध्यान वृथा है। अर विभूति जो राख लगाये भला होय, तो गरधव (गधा) सदीव ही विभूति विषैं, लोट्या ही करै है। परन्तु गरधव के ऐसा विचार नाहीं, जो

राख लगाये. मेरा भला होयगा। यह सहज ही, ज्ञान रहित है। तातें राख तनके लिपेटे पुण्य होता नाहीं। अपने भोरेपन तैं, तन की शोभा मिटाना है। बाकी शुद्ध-भाव बिना, राख लगाए मोक्ष होती नाहीं। जो भाव-शुद्ध बिना मोक्ष होय, तो गरधव कौं भी होय। और नगन-तन तैं मोक्ष होय, तो सर्व पशु नगन ही रहैं हैं। तातें शुद्ध-भाव बिना नगन रहना, पशु के कष्ट समान है। और बड़ा कष्ट पाये, मोक्ष होय, तो वृक्षन कों होय। वृक्ष, शीत-काल में तो च्यारि महीना, शीत सहैं हैं। और उष्ण-काल में, च्यारि महीना, सूर्य की आताप सहैं हैं। अर चारि महीना वर्षा-काल में, सर्व पानी तनपैं सहैं हैं। ऐसे तीनों ऋतु के बड़े कष्ट, शुद्ध-भाव बिना तरु सहैं हैं। परन्तु कष्ट के खाये, शुद्ध-भाव बिना भला होय, तो इन वृक्षन का होता, ऐसा जानना। और शुद्ध-भाव बिना, मूड़ मुड़ाये भला होय, तो भेड़ का होय। भेड़ कूँ बरस-दिन में कई वार मूँड़िए। सो भाव-शुद्ध बिना, मूड़--मुड़ावना कहिये केश-लोंचन करना, भेड़ के मूड़ने समानि है, ऐसा जानना। सो भावन की शुद्धता बिना, शास्त्रादि का पढ़ना, सूवे समानि है। शुद्धभाव बिना ध्यान, बगुले समानि है। शुद्ध-भाव बिना विभूति लगावना, गरधव समानि है। शुद्ध-भाव बिना नगन रहना. पशु समानि है। और शुद्ध-भाव बिना तीनों ऋतु के तन पै कष्ट सहना, वृक्ष समानि है। और शुद्ध-भाव बिना शीश मुड़ावना, भेड़ समानिहै। तातें हे भव्य, मोक्ष का कारण एक शुद्ध-भाव है। सो जे विवेकी हैं, ते रागद्वेष मिटाय

अपने हितकौं, परभव सुधारवे कौं, भावन की शुद्धता करौ। यहां प्रश्न——जो तुमने कह्या कि शुद्ध-भाव बिना, तप-संयम, पठन--पाठनादि धर्म का फल अल्प होय है, तथा नहीं होय है। शुद्ध-भाव बिना जो स्वाध्याय--शास्त्रोपदेश करना, शास्त्र सुनना, ध्यान करना, सामायिक करना, इत्यादिक धर्म के अङ्ग के सेवनेहारे हैं। सो धर्म-सेवन करते, शुद्ध-भाव सहित तो कोई दीखता नाहीं। आरत, रौद्र-ध्यान बहुत के होय है। शुभ-भाव वारे, अल्प हैं। और जेते जीव, अवार धर्म-अंग सेवन करैं हैं। तिनकैं शुभभाव अल्प भासै है। सो इनको धर्म-सेवन का फल शुभ होयगा, वा नहीं होयगा ? ताका समाधान-भो भव्य, तूँ ने प्रश्न महामनोग्य किया। सत्पुरुषन कूं सुख पहुँचावनहारा, अनेक जीवन का संशय मेटनेहारा, ऐसे भाव सहित तेरा प्रश्न है। सो अब चित्त देय के उत्तर सुन। इस उत्तर का धारण किये धर्म के अङ्गन तैं विशेष प्रीति उपजैगी। धर्म के सेवनेहारे जीवन के अभिप्राय के दोय भेद हैं। एक तो धर्म-फल के हेतु सेवैं हैं। एक लोभी, कषाय के पोषनैं कूं, धर्म-सेवन करैं हैं। सो जे भव्यात्मा, धर्म कूं बड़ा जान, धर्म-फल का लोभी भया, दान-पूजा-तप-ध्यान-शीलादिक करैं हैं। सो परभव के कल्याण कूं शुभभाव लिए करैं हैं। पीछे कर्म के जोग तैं कारण पाय, भाव-चंचल भी होंय, अरति उपजावैं, तो याका शुभ-फल जाता नाहीं। जैसे कोऊ भव्यात्मा, सामायिक करवे कूं पद्मासन या कायोत्सर्ग काय का आसन करि, चित्त भला करि, सामायिक करै है। सो सामायिक कौं बैठा, तब अभिप्राय तो अच्छा था। अरु मन--वचन--

काय की प्रवृत्ति भी अच्छी थी। पीछे कोई कर्म-जोगतैं रागभावन की प्रबलता करि, परणाम और ही विकल्प-कषाय रूप होने लगे। मन-चंचल होय रह्या। परन्तु काय, सामायिक रूप है। परणति, कर्म की जोरावरी तैं याकै हाथ नाहीं। अभिप्राय याका ये ही है जो मैं सामायिक करौं हों। सो ऐसे धर्मात्मा का सामायिक का फल जाता नाहीं। जैसे कोई सामायिक करनेहारा भव्य जीव, सामायिक समय, घर के अनेक कार्य तजि कैं, धर्म-बुद्धि का प्रेर्या, घर तैं धर्म स्थान में जाय, तनकी शुद्धता करि, अल्प परिग्रह राखि, कायोत्सर्ग तथा पद्मासन ध्यान धरि, पंचपरमेष्ठी के गुणन का विचार करि, अपने किये पाप यादकरि, तिनकी आलोचना बार २ करि, अपनी निन्दा करि, सर्व-जीवन तैं समता-भाव करि, ऐसा विचार करता भया। जो धन्य हैं वे मुनीश्वर तथा उत्तम प्रतिमाधारी श्रावक, जो सर्व आरम्भ-पाप तैं निर्वृत्त होय, सुख भोगवैं हैं। ऐसी दशा मोरी कब होवेगी? ऐसे तप की भावना भावता, सामायिक करै। एते ही में एक चिंताकारी बात यादि होती भई। कि जो एक हजार दीनार की थैली, वा दुकानवारे कूं भूलि आया। सो याके याद होते, मन तो चंचल होय, आरति के जाल मैं पड्या। सामायिक में चित्त नाहीं लागै। तब यह धर्मात्मा विचारै. जो मेरे दोय-घरी की मर्यादा है। सामायिक कौं बैठा हौं। सो अब कैसे उठ्या जाय? मेरे भाग्य की है तो मिलेगी ही, कहां जायगी? अरु मेरे भाग्य में नहीं होय, तो अब ताईं, प्रगट-चौड़ी जगह में से, कैसे बची होयगी? और अब मैं कदाचित् लोभ के

जोग तैं उठौं हौं, तौ प्रतिज्ञा मेरी भंग होय। प्रतिज्ञा के भंग होते, मेरा परभव बिगड़ै है। काया-धर्म, नाश होय है। तातैं जो होनहार है, सो होयगी। मैं दोय घड़ी तो नाहीं उठौं हौं। प्रतिज्ञा पूरण भये, जो होनहार है, सो हो जा है। ऐसा विचार, तन कौं स्थिरीभूत किए, तिष्ठ्या है। जो-जो सामायिक की क्रिया-बंदना, आलोचना, सामायिक इत्यादिक पाठ पढ़ै है। परन्तु मन-चंचल भया, सो सामायिक मैं नहीं लागै है। तो भी ये धर्मात्मा का, धर्मफल जाता नाहीं। और कदाचित् दीनारों के लोभ तैं, सामायिक छोड़ि उठ खड़ा होता, तौ पाप-बंध होता। धर्म-क्रिया का अभाव होता। तातैं ये धर्मात्मा, अपनी प्रतिज्ञा तजि, उठै नाहीं। तौ परणति चंचल भले ही होऊ। या धर्मात्मा का अभिप्राय भला है। अभिप्राय शुभ, थिरीभूत नहीं होता, तो सामायिक तजि करि जाता। तातैं अभिप्राय शुद्ध रहते, तत्त्वश्रद्धान दृढ़ता कौं लिए है। सो ऐसा धर्मात्मा उत्तम धर्मी ही है। ऐसेही श्रद्धान की दृढ़ता, अरु परणति का आरति भाव, सर्व धर्म-अंगन में लगाय लेना। सो ऐसे धर्मी का तौ विकल्प होतें भी, धर्म जाता नाहीं, ऐसा जानना। और एक लोभ के निमित्त, धर्म-स्वांग धरि तप, संयम, ध्यान, जिनवानी का पाठ इत्यादिक धर्म-अंग करै। और अभिप्राय चोरी का है। जैसे रुद्रदत्त चोर था, सो लोभ कों देहरे (मन्दिर) जी का माल चोरवे कौं, धर्मात्मा-ब्रह्मचारी का भेष धरि, नाना तप, संजम, भले पाठ करता, सेठ के घर आय, धर्मात्मा होय, जिन-मन्दिर में रह्या। सो जिन-मन्दिर के चँवर, छत्र, कलशादि चोरे। खोटे अभिप्राय तैं धर्म-सेवन करै था, सो तिनका फल तो

नहीं लगा। अरु खोटे अभिप्राय के जोग तैं मरि, नरक गया। तातैं ऐसे धर्म-सेवन मैं तोकौं दोय भेद कहे, सो जानना। जाका धर्म-सेवन में अभिप्राय, धर्म-रूप है। ताकैं तो पुण्य-फल होय है। और जिसके धर्म-सेवन में अभिप्राय खोटा होय। ताकैं पापबंध होय है। तातैं शुद्ध-भावन के अभिप्राय बिना, जो धर्म-सेवन है। सो ऊपर कहे तोता, बगुलादिक तिन समानि जानना। शुद्ध-भावन बिना धर्म-साधन, लौकिक के दिखावे कूं करैं हैं। ते जीव, धर्म के अभिलाषी नाहीं। इनका धर्म-सेवन का कष्ट, वृथा ही जानना। जैसे कोई सेठ का मन्दिर बनै है। तहां अनेक मजूर लगे हैं। तिनकूं मजूरी करते देख के, एक अज्ञानी खप्त (पागल) पुरुष आया, सो आप भी बिना कहे, अपनी-इच्छा तैं ही, मजूरी करता भया। सो औरन तैं यह खपत, बहुत भार उठावै। मजूर उठावैं पांच सेर का पाषाण, तो ये खप्त उठावै दश-पंसेरी का पत्थर। मजूर ल्यावैं एक पत्थर, तो ये खप्त ल्यावै दश-पत्थर। सो याकी मजूरी देख कैं, अजान-पुरुष ऐसा विचारैं, जो यह मजूरी बहुत करै है। सो याका रोज भी बहुत होयगा। ऐसे सब दिन मजूरी करी। सांझ को मजूर छूटे। तब जिनके नाम मड़े थे, तिन सब मजूरन को दिन मिल्या। सो अपने घर जाय, सुखी भये। जब इस खपत ने भी मजूरी मांगी। तब दरोगा ने कागद में याका नाम देख्या, सो नाहीं निकस्या। तब याकूं पूंछै, तूं कब लागा था? तब यानै कही, मेरी मन आई तब ही लागा। तब याकौं पूंछी, तोकौं कोऊ ने लगाया था? तब या खपत ने कही, हमकौं कौन लगावै, हम ही

अपने मन तैं लागे थे। तब सबनै जानी, ये मजूर नाहीं, कोई खपत (पागल) है। तब धक्के दिवाय, कढ़ा दिया। मंजूरी नहीं मिली, धक्के मिले। सबनै जानी, दीवाना है। मिहनत वृथा गई। क्यों गई ? सो कहिये है। ये दिवाना काहू का चाकर तो भया नाहीं। अपनी इच्छा-रूप रह्या। बंध-रूप नाहीं। इस दिवाने कैं एता विचार नाहीं। जो मैं फलाने का चाकर हौं, यापै कहिकर काम करों। जो धनी की आज्ञा मानता नाहीं, अपनी इच्छा रूप है, तातें मंजूरी नहीं मिली। खेद वृथा गया। तैसेही यह जीव, एक शुद्ध-धर्म की परीक्षा करि, जाकौं कल्याणकारी जानैं, ताकी आज्ञा-प्रमाण धर्म का सेवन करै। तथा धर्म के अंग दान, पूजा, तपादिक करै, तो धर्म का फल भी लागै। और धर्म-स्वांग तो बहुत धारैं, परन्तु कोई आज्ञा रूप नाहीं। स्वेच्छा-स्वच्छंद होय, धर्म-अङ्ग का सेवन करै। अनेक कष्ट करै, सो वृथा जाय। जैसे खपती की मजूरी वृथा भई, तैसे जानना। ऐसे धर्म-अंग सेवनहारे जीवन के, दोय भेद कहे। सो हे भव्य, तूं जानि। जो धर्म की आज्ञा सहित धर्म-अङ्गन का सेवन करैं हैं। और निमित्त के दोष तैं, उनके परणाम चंचल भी होंय, तो उनका धर्म-फल जाता नाहीं। और कोई जीव सर्वज्ञदेव की आज्ञा रहित भया, क्रोध-मान-माया- लोभ के जोग तैं छल-बल कूं लिए, पाखंड सहित, धर्म-सेवन लोक-दिखावन कौं करै, तिनका फल भी वृथा होय। ऐसे जानना। यह तेरे प्रश्न का उत्तर है। तातें भावन की शुद्धता सहित धर्म-सेवन ही, मोक्ष-मार्ग जानि। शुद्ध-भाव बिना खेद ही है, सो

भी वृथा जानना। आगे और कहैं हैं, जो शुद्ध-भाव बिना धर्म-अङ्ग वृथा है—

गाथा—मखि पतङ्ग दहकाया, तसयर चित्तोय णमण तण होई ॥
सुरतरु देवहु दाणो, भावो सुधी विना ण सीझंती ॥ ६७ ॥

अर्थ—मखि पतङ्ग दहकाया कहिए, माखी व पतङ्ग काया दहैं हैं। तसयर कहिये, चोर। चित्तोय कहिये, चीता। णमण तण होई कहिये, इनके तन में बहुत नमन है। सुरतरु देवहु दाणो कहिए, कल्पवृक्ष मनवांच्छित दान देय। भावो सुधी विना ण सीझंती कहिये, परंतु भाव की शुद्धता बिना मोक्ष-मारग नाहीं। भावार्थ--भावन की शुद्धता बिना, मोक्ष नाहीं होय है। नाना तप-संयमादि के खेद, सर्व वृथा जानना। सो भाव-शुद्ध बिना केतेक तौ भोरे जीव, मोक्ष के निमित्त अपना भला तन, अग्नि में भस्म करैं हैं। सो ऐसे अग्निमें जलने के कष्ट तैं मोक्ष होती, तो शुद्ध-भाव बिना माखी व पतङ्ग कौं होय। माखी व पतङ्ग, दीपक में निशङ्क होय, तनको दाहैं हैं। सो अज्ञान, संक्लेश भावन तैं मरि, खोटी-गति ही विषैं उपजैं हैं। तातैं शुद्ध-भाव बिना, काय का जलाना वृथा है। और काय तैं अत्यन्त नमैं-विनय किये, शुद्ध-भाव बिना मोक्ष होती, तो चोर पराए-घर में चोरी कूं जाय, तब अपना तन--शीश नवावता जाय है। सो यह मायावी, दगादार, महा-खोटे अन्तरङ्ग का धारी ये चोर। तथा चीता पशु है सो अन्य जीवन कौं मारै है, तब पहले अपनी काय कूं बहुत नमाय करि, पीछे चोट करै। सो काय नमाए—विनय किए, शुद्ध-भाव बिना मोक्ष होय, तो चोर तथा चीते

कौं होय । तातें धर्म-अभिलाषी पुरुषन कौं भाव ही शुद्ध करना. स्वर्ग-मोक्षकारी है। और शुद्ध-भाव बिना, दान दिए मोक्ष होय, तो कलपवृक्ष कौं होय। जो वांच्छित फल देय है। तातें तस्कर, चीता, माखी, पतङ्ग, कलपवृक्ष ज्ञान-रहित हैं, खोटे-भाव सहित हैं। इन कूं परभव सुख नाहीं। तातें ऐसा निश्चय करना, कि परभव के हित का कारण, भाव की शुद्धता है। तातें धर्मार्थी जीवनकूं भाव की शुद्धता करना योग्य है। आगे सुसङ्ग-कुसङ्ग के वांच्छिक जीवन कूं बतावे हैं—

गाथा—वायसस्सांण अणाणी, हीण सङ्गोय रञ्जई मूढ़ो ।
हंस चतुर णर णाणी, ऊंच सङ्गोय वंछिका गेयं ॥ ६८ ॥

अर्थ—वायस कहिए, कौवा। स्सांण कहिए, कुत्ता। अणाणी कहिये, अज्ञानी। हीण सङ्गोय कहिये, नीच सङ्ग विषैं। रञ्जय मूढ़ो कहिये, मूरख राचैं हैं। हंस चतुर णर णाणी, ऊंच सङ्गोय वाञ्छिका गेयं कहिये, हंस, चतुर मनुष्य व ज्ञानी पुरुषन कौं ऊंच-सङ्ग ही सुहावै। भावार्थ—काक कौं चाहे जेते ही रतनमई आभूषण पहराय कें शृंगारो। चाहे जैसा भोजन देय पोखौ। चाहे जैसा खेद खाय, पढ़ावो। कनक के पिंजरे में राखो। इत्यादिक याका लाड़ चाहे जैसा करो। परन्तु जब या काक हाथ-पिञ्जरे तें छूटै, तब ही ये अज्ञानी, नीच जहां स्थान होयगा तहां ही जायगा। तथा आप समानि काक बैठे होंयगे, तहां जाय तिष्ठैगा। और कुत्ते कूं, चाहे जैसा भला-भोजन करावौ। अनेक भले आभूषण याके तन में पहरावो। पालकी व

रथ की असवारी में धरो। नाना बिछौना, गादी, जाजमै पै राखो। इत्यादिक अनेक भले निमित्त मिलाय कैं राखौ। परन्तु जब यह डोर तैं छूटेगा, तब ग्राम--श्वानन विषैं जाय रमनै लगेगा, तथा घूरा पै जाय तिष्ठैगा। ऐसा ही याका सहज-स्वभाव है। और अज्ञानी कौं चाहे जेता समझावो--पढ़ावो, परन्तु याकी अज्ञानता नाहीं जाय। याका सहज-स्वभाव ऐसा ही जानना। सो अज्ञान, ताके अनेक भेद हैं। तहां एक अज्ञान तौ ऐसा है। जो और कला धर्म--कर्म की सब जानै है। अनेक भेद--भाव समझै है। परन्तु शास्त्र-बांचने के ज्ञान से रहित है। कोई पूर्व--कर्म जोगतैं श्रुतज्ञानावरण के उदय तैं संस्कृत, प्राकृत, देश-भाषादिक शास्त्रन के बांचने का ज्ञान नाहीं। तातैं याकौं अज्ञान कहिये। और एक अज्ञान ऐसा है जो ताकौं शास्त्र-बांचने का ज्ञान तौ है। परन्तु योग्य--अयोग्य, भली--बुरी, पुण्य--पाप, हित--अन-हित, इत्यादिक शुभाशुभ विचारतैं, हृदय जाका रहित होय। जैसे तोता कौं पढ़ाय पण्डित किया। सो तोता कौं जैसे काव्य-छन्द पढ़ावो सो पढ़ै। ताका पढ़ना देखि और जन राजी होंय। ऐसा पढ़ाय तैयार किया। परन्तु याके मुख आगे अँगुली करो, तो काट खाय। तथा पिंजरे तैं खोल देव, तो मूरख उड़ जाय। कछू विचारै नाहीं। जो मैं इस रतन--पींजरे में, भले भोजन--जल खावता सुखी हौं। मोकौं इननै पढ़ाया है। सो ये अज्ञान, सर्व भूलि, पींजरा छोड़, जाता रहे। सो कोई ऐसा ही मूरख, अनेक शास्त्र संस्कृत--प्राकृतादि तो बाँचि जानै, परन्तु कषाय-सहित, महामानी, पाप का भय नाहीं, पुण्य--फल की चाह नाहीं, ऐसा

हित--अनहित रूप भाव नहीं समझै। काम, क्रोध, लोभ, बहुत होय जाकें। सो पढ्या-अज्ञान कहिये। और एक शुभाशुभ विचार रहित होय, अरु अक्षर--ज्ञान तैं भी रहित होय, ताकों भी अज्ञान कहिये। और एक बालक अज्ञान होय। सो सुख--दुःख के स्थान-भेद नहीं समझै। ज्यों बालक कों, वाके माता--पिता कहैं हैं। पुत्र! भोजन खायकें, पालने झूलो-सोवो। अरु घाम में मति जाओ, यहां शीतल जल पीवो। लड़कों में मति जाओ, वह मारेंगे। ऐसी हितकारी-सुखदायक शिक्षा, अपने बालक कों कहैं हैं। ताके भेद नहीं समझा जो बालक-अज्ञान, सो माता--पिता के वचन उल्लङ्घकें, छिपकें, बड़ी घाम में ही भागकें, बालकन में खेलवे जाय है। तहां शीश में रज (धूल) भरे। घाम तनपै सहै। प्यास लागी. सो सहै है। भूख लागी है। औरन के मुख की गारी सहै है। कोई शिर में मारे, सो भी सहै है। इत्यादि खेद के स्थानन में तो जाय। अरु सुख-स्थान अपना घर, तहाँ नहीं रहै। ऐसा अज्ञान ये बालक है। और एक अज्ञान ग्वाल है। जो सदीव ढोर चरावे। बन ही में रहै, या मैं भी शुभाशुभ का ज्ञान नाहीं। इस गोपाल को शाल का जोड़ा दीजिये। तो ये अज्ञानी नितंब-वल्लभ, शाल के मोल-गुण कूं नहीं जानता-संता, बैठे है तहां शाल कूं, पूंद नीचे देय बैठे। इसको विशेष-विवेक नहीं होय। सदीव पशून की संगति में रहै। सो तैसी ही बुद्धि धारे हैं। इस गंवार कूं बन में तृषा (प्यास) लागै, तब नदी में जाय, पशु की नाईं मुख ही तैं जल पीवै. हाथ तें नहीं पीवे। खड़ा ही नीतादिक बाधा

करै। याकें शुभाशुभ की खबरि नाहीं। तातें ग्वाल भी अज्ञान है। इत्यादिक कहे मूरखन के भेद, सो इन सर्व कूं नीच-संग ही भला लागे है। और ऊंच-संग में जातें-बैठतें-बोलतें, लज्जा उपजै है। जैसे कोई भले-आदमी का पुत्र, होरी के दिन में, अपना मुख श्याम बनाय, नीच-संग के मनुष्यन में खुशी भया, रमै था—स्वछंद खेले था। सो तहां कोई भला-आदमी आय निकसै; तो लज्जा खाय, छिपि जाय है। उस कारे-मुख सहित, भले-संग में लज्जा उपजे। तैसे इस अज्ञान कौं सुसंग में लज्जा उपजै है। और अपने समानि, अज्ञान के धरनहारे जीव होंय, तिन में ये अज्ञानी प्रसन्न रहै है। तातें ये काक, श्वान, अज्ञान इन कूं नीच-स्थान ही प्रिय है। सो इनका ये सहज-स्वभाव जानना। और एतेन कूं ऊँच-संग भला लागे है। सो ही कहिये है। एक तो हंस, महासमुद्र का रहनेहारा, मोती चुगनेहारा, उज्जवल बुद्धि, निर्मल नीर का पीवनहारा, ऐसे भले-स्थान का रहनेहारा, सुबुद्धि, महासुन्दर तनका धारी, हंस कूं ऊँच-स्थान ही अच्छा लागे है। जहां बड़ा दरयाव होय, बड़े जलका विस्तार घणा-जल होय, हंस तहां सुखी होय। और जे चतुर-नर हैं सो भी तहां राजी होय हैं, जहां अनेक-कला के धारी, विवेकी, चतुर, राजकुमारादि, उज्ज्वल-बुद्धि, आप समानि धर्म—कर्म—कला में समझते होंय। अनेक शुभ-विवेक वार्ता होती होय। नाना नय-जुगतिन की रहसि-सहित प्रश्न-उत्तर होते होंय। अनेक धर्म-कथा-चरचा, शास्त्राभ्यास कौं लिये, होती होय। जहां की चतुराई में, तिनकूं भला लागे। कुसंग तें अरति

होय, सो चतुर कहिए। और जे धर्मात्मा हैं तिन कूं धर्म-स्थान सो ही ऊंच-स्थान, प्यारा लागै है। सो जहां प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग की कथा, पाप-हरनी पुण्य-करनी बात होती होय, सो स्थान धर्मात्मा कूं भला लागै। तथा जहां अनेक-मतान्तर की रहसि कूं लिये, तत्त्वभेदन का निरधार होता होय, जिनतैं मोक्षमार्ग जान्या जाय, संसार-भ्रमण छूटे, परभव सुख होय, लागे-पाप नाश होंय इत्यादिक ऊंच-स्थानक में रंजायमान होय, सो ज्ञानी कहिये। ऐसे कहे जे सुसंगी हंस, चतुर-नर, ज्ञानी-पुरुष, इनकौं ऊंच-संग प्रिय लागै है। इनका ये ही सहज-स्वभाव है। सो हे भव्य हो, जे नीच हैं तिनकौं नीच-संग प्रिय है। ऊंचन कौं ऊंच-संग प्रिय है। ऐसी परीक्षा करि, नीच-ऊंच की पहिचान करना। जिस मे तेरे भले की होय, तिस संगति में रंजना-मगन होना योग्य है ॥ ६८ ॥ आगे हितून के परखिवे कूं नव स्थान, दृष्टान्त पूर्वक बतावैं हैं—

गाथा—णिपभय खेद दरिदये, भोयण सतयार अज्ञपणणामो।
जरासक्ति अखफहीयो, इ थल हित हेम पाख कसटीये ॥ ६९ ॥

अर्थ—णिपभय कहिए, राजा का भय। खेद कहिए, रोग। दरिदये कहिये, दारिद्र। भोयण कहिये, भोजन। सतयार कहिये, सत्कार। अज्ञपणणामो कहिये, आरजी परणाम। जरा कहिये, वृद्धपना। असक्ति कहिये, हीन शक्ति। अखफहीयो कहिये, इन्द्रियन के बल घटैं। इ थल हित हेम पाख कसटीये कहिये, ये स्थान हित रूपी कनक (सोना) के परखवे

कौं कसौटी हैं। भावार्थ—संसार में अपने हितकारी जीव तेई भये स्वर्ण, तिनके परखवे कौं ये कहे स्थान, सो कसौटी समानि हैं। सोई बताइये हैं। जहां एक तो भूप-भय होय। जब राजा का कोप अपने ऊपरि होय, तब अपनी सहाय कूं अपनी चाकरी करै। सो भला चाकर जानना। जो ऐसे समय में पासि रहै, विनय करै, सेवा करै, सो सांचा चाकर है। अरु कुटुम्बादि, मन्त्री, जे भूप के कोप में सहाय करें, सो सांचा हितू जानना ॥ १ ॥ और नाना-प्रकार तन-विषैं कुष्टादि-रोग की वेदना भई होय। ता समय मल--मूत्रादि की समेटणा करै, सो ही भला-सेवक, सोही कुटुम्ब, सोही मित्रादि जानना ॥ २ ॥ और जब पाप-उदय तैं दरिद्र आवे, धन की हीनता होय। ता समय में भूख-प्यास सहकैं जो सेवा करै, सो भला सेवक कहिए। जो इस दरिद्र-दशा में सङ्ग रहै, विनय तैं पूर्ववत् रहै, सोही कुटुम्ब, सोही मित्रादिक जानना ॥ ३ ॥ और भोजन देते यथायोग्य आदर तैं, विनय सहित, अन्तरङ्ग के स्नेह तैं भोजन देय, सो सांचा हितू, सोही कुटुम्ब, सोही मित्र सांचा है। सोही सेवक भला है ॥ ४ ॥ और आवते, जावते, बोलते यथायोग्य अन्तरङ्ग-मोह सहित, सत्कार करै। आव-आदरै, सोई सांचा मित्रादिक—सज्जन, जानना ॥ ५ ॥ और सरल-भाव तैं, कुटिलाई तजिकैं, विनय तैं सेवा करै, सो भला सेवक है। सोही मित्र, कुटुम्बादि जानना ॥ ६ ॥ और शरीर में कुमावे की शक्ति घटै। कुटुम्बादिक सर्व की, रक्षा करवे की शक्ति घटै। तन अतिही पराधीन होय। बचन बोलतैं मुखतैं नीर चलै। अङ्ग-उपाङ्ग कम्पन लागैं। इत्यादिक अवस्था,

जरा आये होय, तरुणपना जाय। तव कोई विनय सहित सेवा करै, सो तो सेवक। और या दशा में आदर सहित सेवा-चाकरी करै, आज्ञा मानै। सोही भला पुत्र, भाई, स्त्री आदिक कुटुम्वी, मित्र, जानना ॥ ७ ॥ और उदयतैं, उठतैं, वैठतैं, मल—मूत्र खेपनेतैं शरीर की शक्ति घट गई होय, ता समय अशक्त भये पीछे, सेवा—चाकरी करै, सोही मित्र, कुटुम्बादि जानना ॥ ८ ॥ और जा समय, पचेंद्रिय शिथिल होंय। तथा एक—दोय इन्द्रिय की प्रवृत्ति जाती रहै। नेत्रनतैं नहीं सूझै, नहीं दीखै। तथा काननतैं नहीं सुनै। इस समय में जो कोई, विनय सहित, आज्ञा प्रमाण सेवा करै, सोही मित्र, सोही सेवक, सोही स्त्री-पुत्रादि, सांचे जानना ॥ ९ ॥ ऐसे कहे जे सेवक, मित्र, पुत्र, स्त्री, भाई, माता—पितादि स्नेही, सोही भये कञ्चन, तिन सवके परखिवे कौं ये नव स्थान कसौटी समानि हैं। जैसे कसौटीपै घिसे, भले—वुरे कञ्चन की परीक्षा होय, तैसेही इन नव स्थानकन में मित्र, सज्जन, कुटुम्वादिक की परीक्षा होय है। बाकी भले विषैं तो अनेक चाकरी करैं हैं। कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री आदि आज्ञा मानैं ही मानैं। क्योंकि येतौ सर्व का रक्षक है। परन्तु उक्त नव स्थानकन का अवसर आय पड़े, तव चाकरी करै, सोही सांचा नाता जानना ॥ ६९ ॥ आगे ऊपर कहे जे कसौटी समानि सर्व स्थान, इनपै कौन २ कौं परखिये, सो कहैं हैं---

गाथा—ए णव ठाण कसौटी, पीय तीय मित्तादि पुत्त सजणाणी।
संजय तव धम्म कणका, घसि परवणय पमाण सुदिट्ठी ॥ ७० ॥

अर्थ—ये उक्त नव स्थान, कसौटी समानि हैं। अरु पिया, स्त्री, मित्रादि, पुत्र और अनेक सज्जन और संजय कहिये संयम, तव कहिए तप, धम्म कहिये धर्म, ये सब कहिये ये सर्व ही, स्वर्ण समानि हैं। घसि पखणय पमाण सुदिट्ठी कहिये, नय-प्रमाण इन कूं घसि कें शुद्ध-दृष्टी होय, सो परखै। भावार्थ—ऊपरि गाथा में कहे नव भय—राज भय, रोग भय, दरिद्र भय, भोजन नहीं भये, असत्कार भये, सरल भाव भये, वृद्ध भये, तन अशक्त भये, इन्द्रिय बलहीन भये, ये नव स्थान कसौटी समानि जानना। सो इन कारण पड़ैं, तब धर्म—कर्म सम्बन्धी जो पदार्थ, तेई भये कनक, तिनकौं परखिये। स्त्री तो भरतार कूं, इन कारण में परखै। और भरतार, स्त्री कौं इन कारण में परखै। और मित्र, मित्र कूं इन कारण में परखै। और भाई, भाई कौं इन कारण पै परखै। और पुत्र, पिता कौं इन कारण में परखै। और पिता, पुत्र कौं इन कारण में परखै। और सेवक, स्वामी कूं और स्वामी, सेवक कूं इन कारणन में परखै। और चित्त की धीरजता, धर्म कार्यन में, तप करतैं, संयम की रक्षा करतैं, इन कारण पै परखिये। इत्यादिक कहे जे धर्म-कर्म सम्बन्धी कार्य सर्व-अंग, इन नव अवसरन में दृढ़ रहै। सो साँचा धर्म—कर्म अङ्ग जानना। बाकी पुण्य-उदय में अपने-अपने स्वार्थ पूरवे में तो, सब ही सहाय करैं। व धर्म-सेवन करैं। परन्तु ऊपर कहे अङ्गन में—सहाय में दृढ़ रहै, सो धन्य कहिये ॥ ७० ॥ आगे एक दुःख कौं अपनी-अपनी कल्पना करि, अनेक उपचार बतावैं, सो कहिये हैं—

गाथा—वैद्यो कथयत रोगो, भूतो चयटक गहण मंत्तीए ।
पूव्वो पाज्जय णांणय, एक गद जथादिट्ठि भासन्ती ॥ ७१ ॥

अर्थ—इस जीव कौं कोई पाप उदय करि, एक रोग होय। ताकौं जगत के चतुर जीव, अपनी दृष्टि माफिक उस दुख का कथन करैं। सो कोई वैद्य कौं पूछिए, जो हमैं खेद (रोग) काहे तैं है, सो कहो। तो कोऊ ज्वर, वाय, खांसी, स्वांसादि रोग बतावै। और कोऊ मंत्रवादी–चेटकी कूं पूछिये। जो हम दुखी हैं, सो क्यों हैं? तब कहै, तुमकौं ऊपरला फेर है। जोरावरी भूत-प्रेत की झपट में आयें हो। सो हम मंत्र, जंत्र, तंत्र, गंडा कर देंयगे, सो सब रफै होय, साता होय जायगी। और निमित्तज्ञानी कूं पूछिये, जो हम कूँ खेद क्यों है? तब कहै, तुमकौं शनीचर-मंगलादि ग्रहों की क्रूरता है। सो इनका कीया खेद है। तातें इनकी पूजा करौ। दान देऊ। फलाने नक्षत्र में, साता होयगी। और कोऊ धर्मात्मा, संसार-भ्रमण का जाननहारा, पुण्य–पाप का समझनेहारा, तत्त्वज्ञानी, सम्यग्दृष्टी कूं पूछिये, जो हमकौं खेद है सो क्यों? तब समता-रस-रंगीला कहै। भो भव्य, कोऊ पूरव उपार्जित पाप का अशुभ-फल प्रगट भया है। इस भव में ताने दुख कीया है। तातें तुम विवेकी हो, पाप का फल ऐसा दुखदायक जानि, पाप मति करौ। तातें परभव में फेरि दुख नहीं होयवे कूं, धर्म-सेवन करौ, परभव सुख पावोगे। धर्मात्मा ऐसी कहै। ऐसे एक दुख होय, ताके दूर करवे के अर्थि, जो कोई कूं पूछिये, सो अपनी २ जैसी-जाकी दृष्टि होय. जा वस्तु के अतिशय में

जाका चित्त रंजायमान होय, सो ही इस जीव कूं सहायकारी भासै है । सो जैसा जाका ज्ञान था । तैसा ही इन्होंने इलाज बताया । सो विवेकी इन सर्व के वचन सुनि, धर्मात्मा का वचन सत्य जानि, श्रद्धान करि, पाप का फल दुख जानि, पाप तजि, धर्म के सेवन में जतन करैं हैं ॥ ७१ ॥ आगे ऐसा कहैं हैं जो पहलैं घर कौं तजि, कुटुम्ब कौं तजि, भेष धरि, फेरि घर-मित्र चाहै, ताकों कहा कहिए । सो बतावैं हैं—

गाथा—मिंदयतजि कुटइछये, दाणो तजि देण मूठ जाचंती ॥
बंधू तजि इछमित्तो, तव गय को होय सांगधर आदा ॥ ७२ ॥

अर्थ—मिंदयतजि कुटइछये कहिये, मंदिर छांड़ि टपरिया (झोंपड़ी) चाहै । दाणो तजि देण मूठ जाचंती कहिये, दान का देना तजि उलटा भीख मांगै । बंधू तजि इछमित्तो कहिये, कुटुम्ब तजि फेरि मित्र चाहै । तव गय को होय सांगधर आदा कहिये, तेरी कौन गति होयगी ? हे स्वांग धरनहारे आत्मा । भावार्थ—केतेक भोरे, शुभ विचार रहित, इन्द्रिय-सुख के लोभी, प्रमादी, तिननैं गृह की अनेक क्लेशता देखि, उदास होय, घर कूं तजि, भेष धार्या । पीछे भेष का निर्वाह करना विषम जानि, जांचने लागे। फिर इन्हें टपरिया, छप्पर, मिंदर बनाते देखि, औरतैं स्नेह करते देखि, इत्यादिक विपरीत-भेष देखि कैं, गुरु हैं सो दया करि शिक्षा-सहित हितोपदेश करते भए । भो भव्य, तेरे पुण्य तैं, तेरे पुण्य-प्रमाण मन्दिर में रहै था । तिसको तजि, जोग धार्या । सो तू अब मन्दिर बनवाया चाहै । तथा घास की कुटी, व

छप्पर बनवाने के निमित्त, आश्रय देखता फिरै है। सो हे भाई, तू पहिले क्यों भूल्या ? हे भव्य ! अपने घर में तब तो तूं औरन कूं स्थान देय, सहाय करै था। अब घर तजि, टपरिया बनवाने कूं, दीन भया फिरै है। तातें घर तजना, योग्य नाहीं था। और अब तज्या ही है। तौ बन-विहार करना योग्य है। गुफा, मसान (मरघट), वृक्ष की कोटर में तिष्ठना जोग्य है। अरु ऐसी शक्ति तेरी नहीं थी, तो घर तजना योग्य नहीं था। और देखि, हे भव्य ! घर विषैं था, तो अपनी शक्ति-प्रमाण दीन-दुखी कौं दान देय, दयाभाव करि पोखे था। अब तूं घर-विषैं दान देना तजि, उल्टा घरि-घरि दीन भया, भीख जांचता फिरै है ! सो भी तो कूं योग्य नाहीं। तो कूं अजांचीक रहना योग्य है। और सुनि, हे भाई ! घर के पिता, माता, पुत्र, स्त्री, भाई, सज्जन, मित्रादि, स्नेही, मोह के करनहारे, तिन कूं तजि; अब भेषि धरि, अन्य गृहस्थन कौं संबोधन देय, खुशामदि करि, विनय करि, तिनतैं नेह बधाय, मोह के बंधन में फेरि बंध्या चाहै है। अर वह तो-तैं मोह करते नाहीं। तातैं मोह बधावना था, तौ तोकौं घर तजना योग्य नाहीं था। अरु अब घर तज्या है, तो निरमोही रहना योग्य है। तातें हे अजान-भोरे, तैं घर तजि मन्दिर बनाये। तुम दान देना तजि, उल्टे याचना कूं आये। तथा तुम घर के कुटुम्बी-मोही तजि, औरन तैं स्नेह करते फिरो हो। सो हे भोरे, ऐसे तेरे भांड़-बहुरूपिया कैसे नाना स्वांग देख, हमकौं बड़ा आश्चर्य आवै है। सो तेरी कौनसी गति होयगी, सो हम नहीं जानैं, अन्तर्यामी जानैं। ऐसी शिक्षा

उत्तम जीवन कों गुरु देते भए। सो विवेकी हैं तिनकौं, तजे पीछे ग्रहण करना योग्य नाहीं। अरु कभू तजै, कभू अंगीकार करैं; सो ताका तप लेना, बालक का सा चरित्र है। तथा नट के समानि स्वांग धरना जानना। ऐसा जानि, विवेकी जो धर्म-कार्य करैं, सो प्रथम ही विचार कैं करना योग्य है॥ ७२॥ आगे ऐसा कहैं हैं जो कौन वस्तु तजि, किस वस्तु कौं राखिये, सो ही बतावैं हैं——

गाथा——पुरतज्जे धण कज्जय, सहधणतज्जेय काजकुलरक्खो।
कुल तज्जय तणकज्जय, पुरधणकुलकाय तज्यधम्मकज्जाय॥ ७३॥

अर्थ—पुरतज्जे धण कज्जय कहिये, पुर तौ धन के निमित्त छाँड़िये है। सहधण तज्जेय काज कुलरक्खो कहिए, सो धन, कुल की रक्षा के निमित्त तजिये है। कुलतज्जय तण कज्जय कहिये, कुल को तन के वास्ते तजिये है। पुरधणकुलकाय तज्यधम्मकज्जाय कहिये; पुर, धन, कुल, काय ये सब धर्म के निमित्त तजिये है। भावार्थ—जगत—जीव, कुटुम्ब-मोह तैं तथा मानादि कषाय पोषवे कौं तथा परम्पराय आपकौं सुख होयवे कौं, इत्यादिक कर्म-कार्यन के निमित्त सहायकारी-सुखकारी धन जानि, ताके पैदा करवे कौं यह विवेकी, अपनी बुद्धि के बलतैं अरु पुण्य के सहाय तैं, घर तजिकैं द्वीपान्तर, समुद्र, बन इन आदिक विषम-स्थान कानन (बन) मैं प्रवेश करि, बहुत कष्ट खाय, क्षुधा-तृषा-शीत-उष्ण अनेक कष्ट सहके, धन पैदा करै है। तब धन के निमित्त, घर तजिये। ये बात प्रसिद्ध है

जो देशान्तर जाय, धन कुमाय लावै है, तब धन होय है। और ऐसे कष्ट करि कुमाया धन, सो कुटुम्ब की रत्ता कौं खरचिये-खुवाइये है। कोई ऐसा कार्य बनजाय, जो धन गये कुटुम्ब बचै, तो कुटुम्ब कौं राखिये, धनदीजिये। सो कुल-कुटुम्ब की रत्ता के निमित्त, धन तजिए। और कोई काम-समय ऐसा आवै है। जो अपने तन की रत्ता के निमित्त कुल-कुटुम्ब कौं तजिये है। और कदाचित् अपने धर्म कूं प्रयोजन आय पड़ै; तो कुल, पुर, धन, सर्व ही धर्म की रत्ता कौं तजिये। तनादिक तजै धर्म रहै, तौ तनादिक सर्व कौं तजि कैं, अपने धर्म की रत्ता कीजिये। यहां प्रश्न ? जो तुमने कह्या। काय तजि कैं भी धर्म राखिए; सो काय गई तब धर्म कहां रह्या ? अभी लौकीक में भी ऐसा कहैं हैं कि काया राखै धर्म रहै है। तौ काय गये, धर्म रहो कैसे कहो हो ? ताका समाधान-हे भव्यात्मा, तैंने कही सो सत्य है। तेरा प्रश्न हमारे उपदेश तैं मिलता ही है। और लौकीक में कहैं हैं, सो भी प्रमाण है। ए भी सत्य है। परन्तु याका भोरे जीव, भेद नाहीं जानैं हैं। लौकीक में काया राखै धर्म कहैं हैं, सो सत्य है। याका स्वरूप आगे कहैंगे। अरु लौकीक में भोरे या कहैं, जो अपनी-काया राखैं धर्म है, सो ऐसा नाहीं। काया राखै धर्म कैसे रहै। सो ही कहिये है। सो हे भव्य, तू चित्त देय सुनि। तूने प्रश्न भला कीया। घने जीवका संशय मेटनेहारा, तथा तेरा संशय मेटनेहारा प्रश्न है। सो तू उत्तर कूं चित्त देय, सावधानी तैं सुनि। तोकूं हम पूछैं हैं। जो एक शूरमा है, ताकौं कोई बड़े योद्धा नैं आय ललकार्या। कही वह शूरमा कहां, जाका मैं नाम सुन्या करौं

हौं । वह महायोद्धा होय, शूरमा होय, तो मोतैं आय युद्ध करै । वाके हस्त में बड़ा शस्त्र है। देख्या, सो ही मारया । सो अब इस शूरमा कौं कहा योग्य है ? इसका धर्म कैसे रहै ? इस बैरी के सन्मुख आय, युद्ध में अपनी काय शस्त्रन तैं खंड २ करि मरै, तो धर्म रहै ? तथा भाग कैं अपना तन राखै. तो धर्म रहै ? सो कहौ । तब वाने कही, भागि जाय तो निंदा होय। शूरमा तो मरै, तब ही धर्म रहै। तब तोकूं कहिये है। हे भव्य, यहां काया अपनी राखै. धर्म रहै । ऐसा कहना झूठा भया । अपनी काया राखै, धर्म रहै । तो शूरमा मरता नाहीं । तातैं जे विवेकी हैं सो धर्म राखवे कौं, काय भी तजि, धर्म राखैं हैं । ऐसा जानना । ऐसे धर्म कूं पुर, धन, कुल, काय सब ही तजैं हैं और धर्म राखैं हैं । अब सुनि, तैंने कही जो काया राखै धर्म है। सो श्रेष्ठ धर्म है । यो भी जिनेन्द्रदेव का उपदेश है, जो काया राखै धर्म है। परन्तु ज्ञान-अंध प्राणी, इसके भेदकूं पावैं नाहीं हैं । धर्म तो काया राखे ही है, सो तुम सुनौ । अब यामैं भेद-भाव है। सो अन्तर भेद कहिये है। काया के भेद षट् हैं। सो इन षट्काय की रक्षा. सो ही धर्म । सो कहैं हैं । पृथ्वी काय ॥ १ ॥ अप काय ॥ २ ॥ तेज काय ॥ ३॥ वायु काय ॥४॥ वनस्पति काय ॥ ५ ॥ त्रसकाय ॥ ६ ॥ ये षट् काय हैं । इन कौं राखै, सो धर्म है । पृथ्वी जो भूमि. ताहि बिना-प्रयोजन खोदै नाहीं, जालै नाहीं, पीटै नाहीं. इत्यादिक पृथ्वीकायकी रक्षा करि. दयाभाव करि, हिंसा नाहीं करै । सो पृथ्वी कायकी रक्षा है । और अपकाय जो जल, सो जल कूं बिना-प्रयोजन जारे नाहीं, नाखै नाहीं, तथा प्रयोजन होय तहां जतन तैं

घी-तैल की नाईं जल कूं वर्त्तें। बिना-प्रयोजन डारे नाहीं। ऐसें जल-काय की रक्षा करे। और अग्निकाय तैं बिना-प्रयोजन तो आरंभ नहीं करिये। भुजाईये नाहीं, जालिए नाहीं, जहां अग्निका प्रयोजन भी होय, तौ घटाय कैं कीजिये। ऐसे अग्नि-काय कौं राखैं। बिना-प्रयोजन पंखादि वस्त्र हिलावना, झटकनादि क्रिया करि, पवनकायकौं नहीं सताइये। सो पवन काय की रक्षा है। वनस्पति के प्रत्येक, साधारण, दूभ, घास, पत्ता, बेलि, छोटे वृक्ष, बड़े वृक्ष, गुल्म, कन्द, मूल, इत्यादिक हरी-नीली कूं बिना-प्रयोजन खेद नाहीं करै। काटैं नाहीं, छेदे नाहीं, छीलै नाहीं, पीलै नाहीं, हाथ-पांव तैं मर्दन नाहीं करै, इत्यादि विधि से वनस्पति काय की रक्षा करै। और बेन्द्रिय जौंक, इल्ली, नारु आदिक कैंचुवा ए बेइन्द्रिय हैं। इनकी काया राखै। और तेइन्द्रिय-खटमल, चींटी, तिरूला, कुंथुवादि जीव तेन्द्रिय हैं। इनकी काया राखै। और चौइन्द्रिय-माखी, मच्छर, टीड़ी, भ्रमर (भौंरा), डांस, इत्यादिक चौइन्द्रिय जीव, इनके तन की रक्षा करै, इनकौ घातै नाहीं। और पचेन्द्रिय-हस्ती, घोटक, कुत्ता, बिल्ली, मनुष्य, देव, नारकी ए पंचेन्द्रिय हैं इन पै समताभाव राखि, इनके रक्षा रूप भाव राखि, दया करै। ऐसे त्रस जीव च्यारि प्रकार हैं। तिन कौं पीड़ै-सतावै नाहीं, सो त्रसकाय की रक्षा है। ऐसे पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पती, त्रस, ये षट्काय हैं। इन की काया की रक्षा करै, सतावै नाहीं, मारै नाहीं। मन-वचन-काय करि, इन षट्भेद काया है तिन की रक्षा, सो ही धर्म है। सो श्रावक तो एकदेश रक्षा करैं। मुनि सर्व प्रकार करैं। इन षट् कौ राखैं हैं।

सो ही मोक्षमारग-धर्म है। ऐसे इन षट् काया कौं राखै, धर्म कह्या। सो काया राखै धर्म जानना। आगे ऐसा कहिये है, जो जहां ऐती वस्तु नहीं होय, तो तिस देश-नगर कूं तजिए—

गाथा—जहि पुर णह सतकारो, णह-बंधव णह-मित्त जिणगेहो।
विद्या धम्म ण सुसंगो, सह पुरदेसोय हेय बुध आदा ॥ ७४ ॥

अर्थ—जहि पुर णसह सतकारो कहिये, जिस पुर में सत्कार नहीं होय। णह-बंधव णह-मित्त जिण गेहो कहिये, जहां बांधव नहीं होंय, मित्र नहीं होंय, जिन मन्दिर नहीं होंय। विद्या धम्म ण सुसंगो कहिये, विद्यावान् नहीं होंय, धर्म नहीं होय, सत्सङ्ग नहीं होय। सह पुर देसोय हेय बुध आदा कहिये, सो पुर-देश बुद्धिमान आतमा के तजवे योग्य है। भावार्थ-जे विवेकी हैं ते ऐसे अशुभ देशादि होंय, तहां नहीं रहैं। सो ही कहिये है। जहां जिस पुर-स्थान में अपना आदर-सत्कार नहीं होय, तहां विवेकी नहीं रहैं। रहैं, तो अनादर पावैं हैं। और अनादर तैं, परणति संक्लेश रूप होय है, पाप बंध होय है। तातैं रहना ही भला नाहीं। और जहां अपने भाई-बन्धु-कुटुम्बी-सहकारी सज्जन नहीं होंय, तहां नहीं रहना। और जहां जिन-मन्दिर नहीं होंय, धर्म-प्रवृत्ति नहीं होय, तो ऐसे धर्म-रहित क्षेत्र विषैं, धर्म का लोभी धर्मात्मा सुजीव नहीं रहै। और जा देश-पुर में विद्यावान्-पण्डित नहीं होंय, तिस क्षेत्र में नहीं रहिये। अगर रहै, तो अपना ज्ञान नष्ट होय। अज्ञानी जीवन के संग तैं, आप अज्ञानी होय। जैसे गोपाल, पशून के सदीव सङ्ग तैं, आप भी पशु समानि, अज्ञानी रहै है। और जीव का

भला करनहारे शुद्ध-धर्म की प्रवृत्ती-क्रिया जहां नाहीं होय, ता क्षेत्र में नाहीं रहै। कुधर्मीन में रहै, तो सुधर्म का अभाव होय। तातैं धर्म-रहित क्षेत्र में नहीं रहिये। और जहां खोटे-संग के मनुष्य सप्त-व्यसनी होंय। चोर, ज्वारी, अनाचारी जीव होंय। अरु सत्संगति के सुआचारी नहीं होंय, तहां नहीं रहिये। और ऊपर कहे कारण जहां होंय, तहां बुद्धि-बल का धारी धर्मात्मा, ऊंच-संग का वांच्छिक, ऐसे स्थान में नहीं रहे। और जो रहै, तो अपने भले गुण-धर्म का अभाव होय। ऐसा जानना। आगे इन स्थान में लज्जा करिये नाहीं, ऐसा बतावैं हैं---

गाथा—हार विहारे जूझे, णित गीतेय द्यूत वादाए।
भोगो वाजय पठती, यह दह थलेय लज्ज नहिं बुद्धा॥ ७५॥

अर्थ—भोजन में, विवहार में, युद्ध में, नृत्य करने में, गीत गाने में, जुआ खेलने में, वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) करने में, पंचेन्द्रिय भोगन में, वादित्र बजावने में, पढ़ने में, इन दश स्थानन में, विवेकीन कों लज्जा करना योग्य नाहीं है। भावार्थ—जहां भोजन जीमतें लज्जा करै, तो भूखा रहै, खेद पावै, लोक-हाँसि होय, भोरापना प्रगट होय। जैसे धर्म-परीक्षा में मूरखन की कथा कही। तहां एक मूरख ससुरार जाय, भोजन में लज्जा करि, रात्रि कों कोरे चांवल खाय, मुख फड़ाया। लोक-हाँसि भई, अज्ञानता प्रकट भई। तातैं भोजन में लज्जा करै, तो इस मूरख ज्यों खेद-हाँसी पावै। तातैं यहां लज्जा नहीं करना॥ १॥ और

व्यवहार विषैं लज्जा करै, तो व्योपार नहीं बनै । तातैं व्योपार में लज्जा नहीं करनी ॥ २ ॥
और बैरी तैं युद्ध करतैं लज्जा करै, तौ युद्ध हारै, मार्या जाय ॥ ३ ॥ और नृत्य में लज्जा करै,
तो नृत्य-कला यथावत् नाहीं बनै, समय वृथा जाय । तातैं नृत्य-समय में लज्जा नहीं बनै
॥ ४ ॥ ज्वारी कौं द्यूत-रमते लज्जा नहीं होय । तहां लज्जा करै, तो धन हारे । तातैं द्यूत
में लज्जा नहीं करनी ॥ ५ ॥ और वाद समय, परवादी (प्रतिवादी) सूं धर्म-कर्म का वाद
करतैं लज्जा करै, तो वाद हारै । तातैं वाद-समय लज्जा नहीं करनी ॥ ६ ॥ और पंचेन्द्रिय-
भोगन समय में लज्जा करै, तो इन्द्रिय-सुख नाहीं होय । तातैं पंचेन्द्रिय-भोग समय, लज्जा
नहीं करनी ॥ ७ ॥ और वादित्रों के बजावे में लज्जा करै, तौ वादित्र-कला सम्पूर्ण नहीं बनै।
तातैं वादित्र-समय लज्जा नहीं करनी ॥ ८ ॥ और गावने में लज्जा करै, तो गावना नहीं
बनै। तातैं गावने में लज्जा नहीं करना ॥ ९ ॥ और शुभ-ज्ञान के बढ़ावे कौं, परभव-सुख
पायवे कौं, शास्त्राभ्यास करने-पढ़ने विषैं, लज्जा नहीं करनी । पढ़ने में लज्जा करै, तो ज्ञान
की वृद्धि नहीं होय । यातैं शास्त्राभ्यास-पढ़ने में लज्जा नहीं करनी। चरचान में, प्रश्न करिवे
में, तत्व विचार में, उपदेश करतैं, इत्यादिक विद्याभ्यास के ध्यान में, स्वाध्याय में लज्जा करै, तो
आप ही अज्ञानी रहै। अपना विगाड़ होय । तातैं विद्या के स्वाध्याय करवै में, लज्जा नहीं
करनी ॥ १० ॥ ऐसे भोजन, व्यापार, युद्ध, नृत्य, गीत, द्यूत, वाद, भोग, वादित्र, पठन इन
कहे दश भेदन विषैं, चतुरन को लज्जा जोग्य नाहीं । इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये,

अनेक नय सूचक, उपदेश-कथन वर्णनो नाम, तेईसवां पर्व संपूर्ण भया॥ २३ ॥

आगे ऐसा बतावैं हैं कि जो पक्ष, सबल होय तो निर्बल का भी कार्य सिद्ध होय---

गाथा---गिरि-सिर तरु-फल पकऊ, काको भक्षंति पक्षबल दीणो ।
णभूतव्यं सिंहो, पक्षीणो जय गज-घटा सूरो ॥ ७६ ॥

अर्थ---गिर-सिर तरु-फल पकऊ कहिये, पर्वत के शिखर पर एक वृक्ष के फल पके हैं। काको भक्षंति पक्ष बल दीणो कहिये, ताकौं काक तो पंखन के बलतें, दीन है तौ भी खाय है। पक्षीणो कहिये, परन्तु पंखा नहीं तातें । णभूतव्यं सिंहो कहिये, ताकूं सिंह नहीं भोग सकै है । जय गज-घटा सूरो कहिये, यद्यपि ये गजन के समूह कूं जीतवे कूं शूर है । भावार्थ--पक्षन का बल होय, तौ समान्य बल-धारी का भी कार्य सिद्ध होय। और पक्षन का बल नहीं होय, तो बड़े बलवान् का भी कार्य सिद्ध नाहीं होय है । सो ही बतावैं हैं । जैसे कोई एक पर्वत के उत्तंग शिखर पर, एक वृक्ष है। ताकै भले-फल, मिष्ट लागें हैं । सो ताकूं खायवे कूं कोऊ समर्थ नाहीं । ऊंचा बहुत है। सो ता फल कों काक तौ अपने पंखन के बल तैं भोग सकै । और तिस फल के भोगवे कौं, सिंह की सामर्थ नाहीं । क्यों? जो सिंह के पांखन का बल नाहीं । बड़े २ हाथिन का समूह कौं तौ सिंह जीतै, ऐसा बलवान् है । परन्तु उत्तंग पर्वत के शीश पर, वृक्षन के फल खायवे कौं समर्थ नाहीं । काहे तैं, कि पांख नाहीं । सो देखो, पांखन के बल तो काक भी बड़ा फल खावै । अरु पंख बिना, सिंह के हाथ भला-फल

नहीं आवै। तातैं सर्व तैं बड़ा बल, पंखन का जानना। तातैं विवेकी हैं ते पक्षबल नहीं तोड़ैं हैं। जैसे कोई बड़ा राजा है। ताके धन-खजाना बड़ा है। आप महा बलवान् होय। बड़ा गढ़ होय। ऐसा होय, परन्तु अपनी पक्ष के योद्धान का अपमान करि, तिन बड़े सामंतन का सहाय-पक्ष तोड़ै, तो आप राज्य-भ्रष्ट होय। और योद्धान का पक्ष होय, हजारों राजा जाकी पक्ष होंय। तो जीत पावै, सुखी होय। तातैं विवेकी होंय, तिनकौं तन तैं, धन तैं, राज तैं, विनय तैं, जैसे बैने तैसे, पक्ष-बल राखना योग्य है। तिन में उत्कृष्ट-पक्ष, धर्म का है। ताका ही सहाय राखना योग्य है। आगे हित है, सो बड़ा बल है। ऐसा बतावैं हैं----

गाथा----एह बल रघु-हरि दोऊ, दहमुह-जय सीय लेय लङ्काए।

दहसिर बंधु विरोधय, तण-कुल-खय राय-खोय अपसाओ ॥ ७७ ॥

अर्थ---एह बल रघु-हरि दोऊ कहिये, परस्पर स्नेह के बल तैं राम-लक्ष्मण दोऊ। दहमुह-जय कहिये, दशमुख कौं जीत कैं। सीय लेय लंकाए कहिये, सीता कौं लेय लंका से आये। दहसिर बन्धु विरोधय कहिये, दशशीश ने बंधु के विरोध तैं। तण-कुल-खय राय-खोय अपसायो कहिये; तन, कुल अरु राज्य का क्षय करि, अपयश पाया। भावार्थ---परस्पर बन्धुन के स्नेह होय, सोही बड़ी सैन्य है। स्नेह ही बड़ा बल है। सो ही बड़ा खजाना है। सो ही बड़ा पुण्य का उदय है। सो ही बड़ा यश है। और परस्पर बन्धुन में विरोध का होना, सो ही बड़े पाप का उदय है। सो ही अपयश है। सो ही हार है। जैसे राम-लक्ष्मण

दोऊ भाईन ने, परस्पर स्नेह रूपी सैन्या तैं, अपने बन्धु-स्नेह के बल तैं, रावण तीन खण्ड का स्वामी, महा मानी, बड़ा जोधा, च्यारि हजार अक्षोहणी दल का ईश, तिस कौं युद्ध विषैं जीत्या । ताकों मार, अपनी स्त्री महासती, ताहि लई । पीछे इन्द्र की विभूति समानि संपदा सौं भरी, देवलोक की शोभा सहित ऐसी लंका-पुरी, ताका राज्य पाय, इन्द्र की नांईं लंका में प्रवेश करते भये । सीता सहित लंका का राज्य पाय, सुखी भये । सो यह दोऊ भाईन के परस्पर स्नेह रूपी सैन्य-बल का माहात्म्य जानना । और परस्पर बन्धु-विरोध तैं, रावण का क्षय भया । रावण ने भोरापनें तैं, भाई विभीषण से द्वेष-भाव करि, देश तैं काढ़्या । सो भाई-विरोध तैं, विभीषण रामचन्द्र पै गये । सो राम महा-सज्जन, आये के रक्षक, विभीषण कूं स्नेह देय राखा । विभीषण के जातैं, रावण निष्पक्षी भया । युद्ध में मार्या गया । सो तन नाश भया, कुल नाश भया । अरु राज्य भ्रष्ट होय, अपयश पाय, कुगति गये । सो ये बन्धु-विरोध के अन्याय का फल है । तातैं विवेकी हैं तिन कूं, जश कूं व सुख कूं, बन्धून विषैं स्नेह-भाव राखने का उपाय राखना जोग्य है । और जिन जीवन कैं, रावण की नाईं तीव्र कषाय उदय आवै, तब बन्धु-विरोध होय, ऐसा जानना । आगे न्याय-मार्ग की महंतता बताइये है और अन्याय का फल कहिये है--

गाथा--जुगभट रघु-हरि न्यायो, दहसिर-जय सैण सहित जस पायो ।
दहमुख ठांण अणायो, कुलबलतण-णास अयस दुगताई ॥ ७८ ॥

अर्थ——रघु-हरि दोऊ ही भटों ने, न्याय के प्रसाद तैं, दसशीश कूं सैन्या सहित जीत, यश पाया। अरु दसमुख, अन्याय करि; कुल फौज, निज तन, इनका नाश करि, अपयश पाय, दुर्गति गये। भावार्थ--राम लक्ष्मण ये दोऊ महा सुभट, सर्व राजनीति के वेत्ता; आप दोऊ भाई, रावण के जीतवे कौं, लंका चालने कौं उद्यमी भये। तब सुग्रीवादि, बंदर-वंशीन के राजा, सर्व आय कहते भये। हे स्वामी! वह महा योद्धा है। तीन-खंड के सामंतन के जीतवे का, उस एकले में बल है। ऐसा रावण, महा पराक्रमी, चक्र का धारक, तीन-खण्ड नाथ, ताके संग अनेक विद्या के नाथ बड़े राजा, अनेक देव जाके आज्ञाकारी, और हजारों देव जाके तनकी रक्षा करैं हैं। ऐसा जो रावण, ताके जीतवे कौं, इन्द्र भी सामर्थवान् नहीं है। ऐसे त्रिखंडी नाथ के जीतवै कौं उद्यमी भये हो, सो तुह्मारा उद्यम कैसे पूर्ण होयगा? और कदाचित् ये बातैं रावण ने सुनी, तो तुह्मारा तन सहज ही संकट में पड़ेगा। सो तुम विवेकी हो, विचार देखो। तुम तो दो भाई हो, अरु रावण पृथ्वीनाथ है। कैसे जीत पावोगे? तातैं विचार कैं उद्यम करना योग्य है। इत्यादिक रावण के पराक्रम की बात, सर्व विद्याधरों ने कही। तब इन विद्याधरों के वचन सुनि कैं, दोऊ भाई निशंक होय, कहते भये। भो विद्याधीश हो, तुमने रावण के बल—पराक्रम—पुण्य की महिमा, हमारे आगे कही। तुमकों रावण ऐसा ही भासै है। जैसे अनेक बिना सींग के भेड़न का समूह, तामैं एक शृंग का धारी मीढ़ा होय है, सो सर्व भेड़न कौं बली ही दीखै है। वह अज्ञान-भेड़न का समूह,

ऐसा नहीं जानैं है, जो यह फलानी भेड़ का बच्चा है। सो जेते हम हैं, तैसा ही ये है। हमसे ही याके माता–पिता हैं। परन्तु याके शृंग देखि, सर्व भेड़ उस मीढ़ा तैं भय खाय, डरैं हैं। सो मीढ़ा, सर्व भेड़न के समूह कौं बली भासै है। सो सर्व भेड़--बकरी उस मीढ़ा के दास होय, उसकी आज्ञा मानैं हैं। और वह मीढ़ा उन सब बकरी--भेड़न का नाथ होय, अनेक भेड़ अपनी आज्ञा रूप देख, तिन सहित वह मीढ़ा, महा मानी भया, स्वच्छंद होय, बन बिषैं बांका २ फिरै है। सो जब तांई नाहर का शब्द बन में नहीं भया, तब तांई वह मीढ़ा फूल्या--फूल्या बन में फिरै है। और जब सिंह की गर्जना का शब्द भया, तब ताकूं सुनि कैं, मीढ़ादि सर्व भेड़--बकरी, भय कर कंपायमान होय, खान–पान की सुधि भूलि जाँय हैं। जीवन का संदेह करैं। ऐसे ही तुम जानों। जब तांई रामबली के धनुष की टंकार नहीं भई, तब तांई रावण रूपी मीढ़ा, नभचर रूपी भेड़न में मानी भया है। और जब हमारा सिंह समानि शब्द भया, तब रावण-मीढ़ा कूं, सैन्या रूपी भेड़न सहित, जीवना कठिन जानौ। अहो! खगाधीश हो, चोर का पराक्रम कहा? रावण चोर है। और अन्याय पथ का धारी है। जो राजा होय, अन्याय करै। तो ताका पराक्रम, नष्ट होय। तुम मति डरो। और तुह्मारा चित्त, भय रूप भया होय। तो तुम जाय, अपने घर–कुटुम्ब में तिष्ठो ।। हम तो न्याय पै युद्ध करैं है। सो सांचे होंयगे, तो दोऊ भाई जीतेंगे। ऐसी कहि, रावण तैं युद्ध कीया। सो अपनी न्याय रूपी सैन्या के बल करि दोऊ भाई, रावण

कूं मारि, सर्व सैन्या सहित, जीत्या। ताकरि पृथ्वी-मण्डल में यश प्रगट होय, पवन की नाईं भ्रमता भया। सो यौ तो सत्य--मार्ग की महिमा जानौ। और रावण अर्द्धचक्रवर्ती, महा बलवान्, बड़ी सैन्य का धारी था। सो भी अन्याय के जोग तैं, युद्ध हारा। अन्याय के योग तैं, दोय पुरुषन तैं भंग पाय, मार्या पर्या। सो ए अन्याय का फल है। सो न्याय का फल रामचन्द्र कूं, अरु अन्याय का फल रावण कूं मिल्या। ऐसा जानि, अन्याय मार्ग तजि, न्याय मार्ग रूप परणमन करना योग्य है॥ ७८॥ आगे अनेक संकटन विषैं; पूर्व पुण्य, जीव कूं सहाय है। ऐसा कहैं हैं---

गाथा---रण वण अरि जल ज्वाला, सायर सखरेय सैण पम्मत्ते।
मग गज हय असवारो, एको संणाय पुव्व पुण्णाए॥७९॥

अर्थ---रण कहिये, युद्ध में। वण कहिये, वन में। अरि कहिये, वैरी तैं। जल कहिये, नीर तैं। ज्वाला कहिये, अगनि तैं। सायर, कहिये समुद्र तैं। सखरेय कहिये, पर्वत तैं। सैण कहिये, सोवने में। पम्मत्ते कहिये, प्रमाद समय। मग कहिये, मार्ग (राह) जाते। गज-हय असवारो कहिये, हाथी-घोड़ा की असवारी समय। एको संणाय पुव्व पुण्णाए कहिये, इन कहे ऊपरले स्थानकन में एक पूरव भव का कीया पुण्य ही सहाय जानना। भावार्थ---जब प्राणी युद्ध कों जाय है। तब शरीर पै रक्षा कूं, बखतर, टोप, पाखर, झिलमिल (वस्त्र विशेष), पेटी, ढाल, अनेक वस्तु अपने तन की रक्षा कूं राखै है। और ऐसा विचारता

जाय है। जो पराये तीर-गोली आवेगी, तौ बखतर-टोपादिक तैं रक्षा होयगी। और मेरे पास सुभट-सैन्या बहुत है, सो मैं जीतंगा। ऐसा विचार करै है, सो सब वृथा है। रण तैं जीवित आवना, जीति आवना, सो सर्व फल एक पूर्वले पुण्य का है। पूरव पुण्य नाहीं होय, तो मरण ही होय है, ऐसा जानना। और कोई दीरघ अटवी (बन) में भूलकर आगया होय, तो तहां अनेक सिंह, सुअरादि दुष्ट-जीवन तैं बचना। तथा चोरादि के भय तैं बचि, सुख तैं घर आवना। सो भी पूरव-पुण्य का ही सहाय जानना। और कोई दीरघ बैरी के दाव में आजाय, तहां भी पूरव-पुण्य सहाय है। और कोई नदी-सरोवर के दीरघ-जल में जाय पड़ै, तौ वहां भी पूर्व-पुण्य सहाय जानना। और दीर्घ-अग्नि बीच में पड़ जाय, तहां भी पूरव पुण्य सहाय है। और कदाचित् समुद्र में जाते, तामैं जाय पड़ै। तो वहां भी पूरव-पुण्य सहाय है। और अनेक भय के स्थान, ऐसे भारी पर्वतन के समूह में जाय पड़ै। तहां पुण्य ही सहायक होय है। सो कैसे हैं पर्वत, उत्तङ्ग शिखर कों धरैं, बड़ी २ गुफान करि पोले, अत्यन्त भय के उपजावनहारे, सिंहादि क्रूर-जीवन करि भरे; ऐसे पर्वतन में, बचावन-हारा एक पुण्य ही है। और जब जीव, निद्रा के उदय तैं निद्रा के वशि होय, तब मृत्यु की नांई आशंका उपजै है। बेसुध होय, पराक्रम रहित होय है। ऐसी अवस्था में बैरी, चोर, अग्नि, सर्पादिक जीवन तैं बचावनहारा पुण्य ही है। और प्रमाद-दशा में अनेक कार्य करै है। सो अनेक स्थानन में, प्रमाद तैं चलै है। प्रमाद तैं बोलतैं, प्रमाद तैं खावतैं,

प्रमाद तैं भागतैं, इत्यादिक प्रमाद दशान में पुण्य सहाय करै है। और अनेक संकटन में, अनेक रोग के संकटन में, बैरी के संकट मैं, सिंहादिक जीवन के संकट में, अग्नि-जलादि अनेक संकटन में पुण्य सहाय करै है। और जब जीव, हस्ती की असवारी करि भ्रमै है तब, तथा घोटक—असवारी करि भ्रमैं तब; इनकी असवारी का निमित्त, काल-समान भयदाई है। सो इन गज-घोटक (घोड़ा) की असवारी में, पुण्य ही सहाय है। ऐसे ऊपर कहे जे सर्व स्थान, तिन में काल का प्रवेश है। ये सब स्थान, दुख के कारण हैं। सो इन में निर्विघ्न राखनहारा, पुण्य ही जानना। तातैं विवेकी जीव हैं, तिनकौं भव-भव सुख के निमित्त, पुण्य-उपार्जन करना योग्य है। हे भव्यात्मा, तूं महा संकट पाय के, धन भी उपाया चाहै है। सो संकट-खेद किये तौ धन का उपार्जना दुर्लभ है। और तूं संकट सेवन करके, धर्म का सेवन करै। तो धर्म के प्रसाद तैं, धन होना सुगम है। देखि, कष्ट तैं धन होय, तौ नीच-कुली हिम्मालादि, शीश-भारादिक ढोवन कार्य बहुत करैं हैं। सो तिनका उदर भी कठिनता तैं भरै है। तातैं तूं धन का अर्थी है, तौ तुझे धर्म का ही सेवन करना योग्य है ॥ ७९ ॥ आगे ऐती वस्तु काहू के कार्यकारी नहीं, ऐसा बतावैं हैं---

गाथा——सर-जल-गत तरु-छाया, सुत-गुण-गत धण-दाण पुस्स-गंधाऊ।
कण्णा तव गत साधउ, इव धम्म-गत-णर णेण-गय-काया ॥ ८० ॥

अर्थ---सर जल गत कहिये, सरोवर तौ नीर रहित। तरु छाया गत कहिये, वृक्ष छाया

रहित। सुत गुण-गत कहिये, पुत्र गुण रहित। धन दाण-गत कहिये, धन दान रहित। पुस्स गंधाऊ कहिये, फूल सुवास रहित। कंणा तव गत साधऊ कहिये, दयाभाव रहित साधु। इव धम्म गत णर कहिये, ऐसा ही धर्म-रहित मनुष्य। णेण गय काया कहिये, जैसे नेत्र रहित शरीर। भावार्थ-सरोवर की शोभा जल है। और सरोवर का विस्तार तौ बड़ा होय। पक्की-सुन्दर पारि होय। ऐसे सरोवर में जल नहीं होय। तौ जल रहित सरोवर वृथा है। और वृक्ष की शोभा, छाया तैं है। और वृक्ष बड़ा होय। दूर तैं दीखै, ऐसा है। अरु छाया रहित है। तो वृथा है। और पुत्र की शोभा सुपूत है। सुपूत-पुत्र सब कूं सुखकारी है। और पुत्र तौ है। परन्तु अनेक दोष सहित होय, अविनयी होय, व्यसनी होय, ऐसे अपयशकारी, अवगुण करि सहित होय, गुण-रहित पुत्र होय, तौ वह पुत्र वृथा है। और धन है, सो दान तैं सफल होय है। धन तौ बहुत है किन्तु दान रहित है, तौ धन वृथा है। और फूल है सो सुगन्ध तैं भला लागै है। और फूल दीखने का तो भला है, परन्तु सुगंध रहित है। तौ वह फूल वृथा है। और साधु है सो दयाभाव सहित, महा तपस्वी होय, सो पूज्य है। और साधु है अरु दयाभाव रहित है। तप भावना रहित, दीन होय। तौ ऐसा साधु वृथा है। और शरीर है, सो नेत्रन तैं सफल है। और जो शरीर तौ है, किन्तु नेत्र रहित है। सो काया वृथा है। तैसे ही मनुष्य पर्याय, धर्म तैं सफल है। और जैसे ऊपर कहे-सर, जल बिना वृथा है। तरु, छाया रहित वृथा है। इत्यादिक कहे ए वृथा-स्थान, तैसे ही धर्म-

बिना, मनुष्य-पर्याय वृथा जानना। तातें विवेकी हैं, तिनकों पाई पर्याय कौं, धर्म विषैं लगाय, सफल करना जोग्य है॥ आगे ये वस्तु पर-उपकार कौं बनी हैं, सो बताईये है---

गाथा---सरता-पय पुख-गंधउ, तरु-साया-फल ईख-मधुराई।
सज्जण तणधन वाचउ, इ पर-उवकार कारणं सव्वे॥ ८१॥

अर्थ---सरता-पय कहिये, नदी का नीर। पुख-गंधउ कहिये, फूल की सुवास। तरु साया फल कहिये, वृक्ष की छाया व फल। ईख मधुराई कहिये, ईख जो सांठे का मिष्टपना। सज्जण तण धण वाचऊ कहिये, सज्जन का तन-शरीर, धन, वचन। इ पर-उपकार कारणं सव्वे कहिये, ये कही जो वस्तु सो सब पर-उपकार के निमित्त बनी हैं। भावार्थ-नदी का जल, नदी नहीं पीवै। परोपकार निमित्त, अन्य जीवन के पोषवे कौं, सुखी करवे कौं, जल का प्रवाह सहज ही बह्या करै है। और फूल की खुशबू, फूल नहीं सूंघै है। परन्तु और जीवन के सुखी करवै कूं, फूल खुसबू कौं धारैं हैं। और वृक्षन की सघन-शीतल छाया में, वृक्ष नहीं बैठैं हैं। और जीवन के खुशी करवे के अर्थ, परोपकार कूं, सघन-छाया कूं वृक्ष धारैं हैं। और वृक्ष के मनोहर-मिष्ट फल, वृक्ष नहीं खांय हैं। परन्तु पर के उपकार के निमित्त, अन्य जीवन कौं पोषवे कूं, सुखी करवे कूं, वृक्ष फल धारण करैं हैं। ये औरन के पत्थर भी खाय, मिष्ट-फल देंय, ऐसे उपकारी हैं। और सांठे हैं सो आपनो मिष्ट रस, आप नहीं भोगैं हैं। परन्तु पर के उपकार कूं, पर के पोखवे कूं, सुखी करवे कूं, रस का धारण करैं हैं। ऊपर कही

वस्तून के गुण, सो सब पर-उपकार के कारण हैं। तैसे ही सज्जन-धर्मात्मा-दयावान् पुरुष हैं, तिनका शरीर-पुरुषारथ, पर-जीवन की रत्ता कौं, पर-उपकार के निमित्त, बन्या है। और जीवन कूं, सज्जन नाहीं सतावैं हैं। और सज्जन-पुरुषन का वचन भी, पर-उपकार के निमित्त है। जैसें परजीव का भला होय, पर-जीव सुखी होंय, ऐसा वचन बोलैं हैं। और सज्जन का धन, पाप-हिंसा में नहीं लागै। जहां अनेक जीवन कूं पुण्य उपजै, धर्मात्मा जीवन कूं अनुमोदना करि पुण्य उपजावै तथा अनेक जीवन की जहां रत्ता होय, इत्यादिक धर्म स्थानकन में सज्जन का धन लागै। ऐसे ऊपर कहे जे-जे स्थान, सो सर्व पर-उपकार कौं बने हैं, ऐसा जानना ॥ ८१ ॥ आगे इन षट् स्थानन में लज्जा नहीं करनी, ऐसा कहिये है---

गाथा---जिण-पूजा मुणि-दांणउ, पत्ताखाणाय झांण आलोय।
गुरुय णिज अघ जंपय, इह षड थाणेय लज्ज नहिं बुद्धा ॥ ८२ ॥

अर्थ---जिण पूजा मुणि दांणउ कहिये, जिन पूजा अरु मुनि दान में। पत्ताखाणाय झाण आलोए कहिये, त्याग में, ध्यान में, आलोचना में। गुरुय णिज अघ जंपय कहिये, गुरु के समीप अपने दोष कहने में। इह षड् थाणेय लज्ज नहिं बुद्धा कहिये, इन षड् स्थानकन में लज्जा नहीं करनी। भावार्थ---जिन-पूजा में लज्जा करै, तौ पूजा का फल नाहीं पावै। तातैं अन्तर्जामी, सर्वज्ञ, वीतराग भगवान् की पूजा निशंक होय, अष्टद्रव्य तैं करनी। ज्यों

उत्तम फल होय ॥ १ ॥ और यतीश्वर के दान देने विषैं लज्जा करै, तो दान के फल का अभाव होय, तातैं जगत गुरु, दयाभण्डार, नगन तन धारी, वीत रागी, समता समुद्र के वासी गुरुन कूं दान दीजिये; तब निशंक होय, दीजिये। तब उत्कृष्ट पुण्य-फल होय। ऐसे मुनीश्वर कौं कोई मिथ्यादृष्टी, भक्ति-भाव तैं दान देय, तौ ये उत्कृष्ट भोग-भूमि में तीन पल्य की आयु सहित, तीन कोस के तन सहित, उत्तम मनुष्य होय। और जो सम्यग्दृष्टी ऐसे गुरु कौं दान देय, तौ कल्पवासी-देव होय। तातैं मुनि के दान में लज्जा नहीं करनी ॥ २ ॥ और प्रत्याख्यान जो कोई वस्तु का त्याग करना तथा कोई नियम-आखड़ी करनी होय, तौ निशंक होय करिये। सर्व में प्रगट कर दीजै, यामैं लज्जा नहीं करिये। लज्जा करै, तो त्याग का अभाव होय। तथा कारण पाय, नियम भंग होय। तातैं निशंक होय त्याग प्रगट करने में लज्जा नाहीं करिये ॥ ३ ॥ और लज्जा सहित ध्यान करे, तौ चित्त स्थिरीभूत नहीं रहै। फल-हीन होय। तातैं निशंक होय ध्यान करै, तौ उत्कृट-फल होय। यातैं ध्यान में लज्जा नहीं करिए ॥ ४ ॥ और अपने किए पापन कौं यादि करि; आलोचना करतैं; लज्जा नहीं करिये। कदाचित् ऐसा विचारै; जो मैं ऐसा बड़ा आदमी होय, अपनी निन्दा कैसे करौं? तौ पाप कटै नाहीं। तातैं निशंक होय, अपनी अज्ञानता, प्रमाद-बुद्धि की, बारंबार आलोचना किये; पाप का नाश होय। ऐसा जानि आलोचना करते; लज्जा नहीं करनी ॥ ५ ॥ और गुरु की पासि जाय; अपने दोष प्रकाशिये—कहिये, तो दोष जाय।

और गुरु पै अपने दोष प्रकाश तैं लज्जा करै, तो दोष नाहीं जाय। जैसे सद्वैद्य के पास रोगी अपना रोग प्रकाश तैं लज्जा करै, भय करै, तो रोग नहीं जाय, आप दुखी रहै। वैद्य पै रोग प्रगट करै; तो वैद्य औषध देय, सुखी करै। तातैं निशंक होय; गुरु पै अपना दोष कहिए, लज्जा नहीं करिये, तौ दोष जाय ॥ ६ ॥ ऐसे कहे ऊपर षट् स्थान; तिनमें लज्जा नाहीं करिये। ऐसा जानना ॥ आगे साहस तैं सर्व संकट मिटैं हैं; ऐसा कहैं हैं---

गाथा—रोगे रण संणासे, संकट मरणेय झांण तव धम्मे।
दालदये जल गहणं, साहसे सफलं होय सहु धीरा ॥ ८३ ॥

अर्थ—रोग में, रण में, सन्यास समय में, अनेक संकटन में, मरण समय, ध्यान समय, तप मैं, धर्म सेवन में, दारिद्र में, दीरघ जल के तिरवे में, इन सर्व जगह में, साहस तैं सब कार्य सफल हो हैं। भावार्थ—पाप कर्म के उदय करि आए नाना प्रकार वात, पित्त, ज्वर, कफ, खांसी, स्वासादिक अनेक रोग, तिनकरि बधी जो बेदना, सो काहू तैं मिटती नाहीं। रोये-चिन्ता कीए; भरम खोवना है। सुखदाता नाहीं। तातैं विवेकी हैं ते ऐसा विचारैं, जो मैंने पूर्व पाप-कर्म उपार्ज्या है; सो अब बिलाप कीए कहा होय? ये कैसे जाय है? तातैं राजी होय, मोकौं भोगना है। ऐसा साहस विचारै; तब सर्व-रोग सहज ही जाय। बेदना मन्द होय जाय है। तातैं रोग-दुख में साहस चाहिये। और युद्ध विषै; अरि (शत्रु) कौं प्रबल जानि, संग्राम (युद्ध) विषम देखि करि, कायर-भाव करै। कंपायमान् होय, धीरजता

तांई भोगन में ही रंज्यायमान रह्या। सो हे भव्यात्मा ! तुच्छ पुण्य, तुच्छ पुरुषारथ, अल्प स्थिति सहित महां चपल मनुष्य के सुख, तिन मैं तूं कैसे तृप्त होयगा ? तातें हे निकट संसारी ! समता भाव धरि, भोगन तैं उदास होऊ। या मनुष्य पर्याय की अल्प स्थिति और रही है। ता मैं अब तोकूं मोक्ष होवे कूं, धर्म का ही साधन करना योग्य है। फेरि ऐसा अवसर कठिन है। और हे सुबुद्धि ! इन्द्रियन के सुख तौ तैंने अनेक बार भोगे। तिनकूं फेरि भोगने में कहा प्रीति करै है ? और जो नवीन सुख; जो कबहूं नाहीं भोगे होंय; ऐसे सुख कूं भोगवै, तौ नवीन सुख होय। तातें मोक्ष का सुख तैंने कबहुं नहीं भोग्या है। सो याके भोगवे कूं, धर्म का साधन करना योग्य है। येही विवेक का फल है। ऐसा जानना। आगे दीरघ दुःख नरक–पशून के तिनतैं नहीं डर्‌या, तौ तप के तुच्छ दुखतैं कहा डरै है ? ऐसा बतावै हैं—

गाथा—असुहं फल णक तिरियो, भुंजे दुह अणेय मूढ़ आदाए।
तो तव लव दुह आदा, कंपय किं सेय धम्म सिव कज्ज़े॥ ९०॥

अर्थ—असुहं फल णक तिरियो कहिये, अशुभ के फल नरक–तिर्यंच गति के। भुंजे दुह अणेय मूढ़ आदाए कहिये, मेरे आत्मा ने अनेक दुख भोगै। तो तव लव दुह आदा कहिये, तो तप के अल्प दुखन तैं आत्मा। कंपय किं कहिये, कहा कंपै है ? सेय धम्म सिव कज्ज़े कहिये, मोक्ष होवे कूं धर्म का सेवन करि। भावार्थ—भो आत्माराम ! तूं ने अशुभ के

फल करि, नरक में छेदन-भेदन आदि पञ्च प्रकार दुख अनेक वार सहे। सो कर्म के बसि पराधीन होय, महा दुःखन कूं सहज ही भोग लये। और तिर्यंचन के दुख अनेक प्रकार। भूख, तृषा, शीत, उष्ण, दंश-मंसादि वहुत वेदना, पराधीन पशु काय की भोगी। सो भी सहज भोग लई। सो तहां तू डस्या नाहीं। तौ हे भोरे प्राणी! तप विषैं नर्क-पशू तैं अधिक दुख नाहीं। वहुत ही अल्प दुख है। तातें हे भव्यात्मा! तूं तप-दुख तैं मति डर। तप विषैं तो स्वाधीन खेद है। सो सुख समान है। और पराधीन दुख के भोगतें विकल्प होय, तिनकरि तो पाप बंध होय है। तातैं परम्पराय आगामी काल में भी दुख-फल ही होय है। और स्वाधीन तप का खेद सहते, परणामन में सन्तोषी-धर्मात्मा कैं विकल्प नाहीं होय है, तातें पुण्य का बंध होय। ताकरि आगामी काल में भी सुख-फल होय। तातें नर्क-पशून के दुख तैंने पराधीन होय सहे, तहां तो डस्या नाहीं। तौ तिन तैं वहुत थोरे तप के खेद तैं, तूं मति डरै। समता सहित तप का खेद सह। अङ्गीकार कर। ज्यों तेरे समभावना सूं किए नाना प्रकार तप, तिनकरि कर्म का नाश होय, मोक्ष होय। तातें तोकूं धर्म-साधन ही सुखकारी है। ऐसा जानि बारम्बार जिन-भाषित धर्म का, समता करि सेवना योग्य है॥ आगे माया-कषाय का फल, और कषाय तैं अधिक बतावैं हैं—

गाथा—मायागभ असुहो, णिगोयदा अणि कसाय णकदायो।
मायाजुत सयल कसायो, इक बे ते चवाक्ष तण देई॥ ६१॥

अर्थ—मायागभ असुहो कहिये; माया गर्भित जे पाप हैं। णिगोयदा कहिये; वे निगोद के दाता हैं। अणि कसाय एक दायो कहिये, और कषाय नरक की दाता हैं। मायाजुत सयल कसायो कहिये, माया सहित सकल जो सर्व कषाय। इक बे ते चवात्त तण देई कहिये, एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय इनके तन देंय। भावार्थ—सर्व कषायन में माया का फल बहुत ही पाप कौं उपजावै है। जे जीव निगोद में उपजि महा दुखी होंय, सो माया कषाय का फल है। और अन्य जो क्रोध, मान, लोभ, इन कषायन तैं नर्क होय है, निगोद नहीं होय। और इन तीन ही कषायन में जो माया कषाय आन मिलै, तो माया के जोग तैं क्रोध, मान, लोभ इन तीन में एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय होय, ऐसे फल कौं उपजावै। तातें सर्व कषायन में माया कषाय, दीरघ निखध्य व पापकारी है। तातैं विवेकी पुरुषन कूं परभव सुख के निमित्त, माया शीघ्र ही तजना योग्य है। यहां प्रश्न—जो क्रोध, मान, लोभ इनका फल नरक कह्या। और माया का फल विकलत्रय आदि निगोद कह्या। सो इनमें अन्तर कहा? अरु माया कूं निखध्य कह्या। सो दुख तो नरक में बड़ा दीखै, निगोदिया का दुख तौ भासता नाहीं। तातैं जाका फल बहुत दुखकारी होय, ताकौं निखध्य कहिये। तौ दुख तो निगोद मैं अल्प भासै है। अरु नरक में बहुत भासै है। अरु यहां माया कषाय कौं निखध्य विशेष किया, सो काहे कौं? ताका समाधान-भो भव्यात्मा! तू ने प्रश्न भला किया। अब याका उत्तर तूं चित्त देय सुनि। नरक—दुख तौ वाह्य, विशेष—

विकराल भासै है। परन्तु पांचों इन्द्रिय साबूत–पूर्ण हैं। अरु इन्द्रिय–ज्ञान सबका खुलासा है। तातैं दुख थोड़ा है। आप कौं कोई नारकी मारै, तब तौ दुख होय है। पीछे आप कोई नारकी कौं मारै, तब आप खुशी होय। आप पै दुख आए, ताकौं मेटवे का उपाय करै है। वैरी कूं तथा स्नेही कूं जानै है। अवधि आदि मति–श्रुति–ज्ञान की प्रबलता पाईये है। तातैं इस नरक में सुख का निमित्त है। पांचों इन्द्रियन का क्षयोपशम है। पर के मारवे कूं, तन का पराक्रम होय है। बड़ा आयु कर्म है। तातैं यहां नरक विषैं, जीव अल्प दुखी है। और एकेन्द्रिय के, चारि इन्द्रिय नाहीं। कर्म के उदय आया दुख, ताकूं मेटवे की शक्ति नाहीं। महां दीन, अल्प समय मैं मरण पावै। और अल्प शीत के दुख तैं मरण पावे। महां अशक्त, ज्ञान रहित, तातें एकेन्द्रिय महा दुख का स्थान है। तथा जेसे कोई चोर कौं पाँव बांधि, उल्टा टांगि दिया। पीछे च्यारों तरफ तैं अनेक बांसन, कोरडान (कोड़ा) की मार दीजिये, सो महा दुखी है। सो ऐसा दुख तो नारकीन कौं है। और एक चोर का मुख विषैं वस्त्र भरि, ऊपरि तैं सूजीकर मुख सीं दीजिये। मल-मूत्र के द्वार सब बंद कर दीजिये। सो महा दुखी भया। पीछे नाक मैं वस्त्र भरि सूजी तैं सीं दिया। कान में वस्त्र भरि कान सीं दिया। नेत्र सीं दिये। पीछे सब तन कौं बांधि, गठिया सी बनाय कैं, एक खाल की मसक में डारि, मसक ऊपर तैं सीं दई। सो गोला सा बनाय कें ऊपर दस–बीस मन की एक शिला धर दई। सो अब इसके दुख की केवली जानैं। और कौं तो बाह्य दुख दीखै। परन्तु याके गूढ़

दुख की औरन कौं तो ठीक नाहीं। सो ऐसा दुख, निगोद एकेन्द्रिय के जानना। तातैं नारकीन के दुख तैं असंख्यात गुणा, निगोद एकेन्द्रिय के दुख जानना। ऐसे ही वेन्द्रिय के भी तीन इन्द्रिय नाहीं। तातें ताकूं भी। तथा ते इन्द्रिय के दो इन्द्रिय नाहीं। सो भी महा दुखी। चौइन्द्रिय के एकेन्द्रिय नाहीं। सो भी महा दुखी। ऐसे विकलत्रय के महा दुख, सो भी नारकीन तैं असंख्यात गुणा दुखी है। तातें इन विकलत्रय जीवन में, महा पाप के उदय तें आवै है। ताकरि महा दुखी जानना। सो ये जीव माया कषाय के जोग तैं, इस भवसागर में पड़े हैं। तातैं माया ही में दीरघपना जानना। हे भाई! और तीन कषायन के रस तो जानि लीजिये है। परन्तु माया नाहीं जानी जाय। जो जानिये, ताका उपचार भी कीजिये। जानने में नहीं आवै, ताका इलाज कहा बनै? सो क्रोधादि तो जानिए है। और कोई क्रोध करै तो ताका उपचार यह कि जो कोई क्रोधी मारता आवै, ताके पास दीनता पकरि रहै, तो मारै नाहीं। और कोई पापी—मानी आपकौं मारने आवै तो ताके पासि अपना मान तजि, वाका विनय करै। वाकी स्तुति करै, तो मानी मारै नाहीं। और कोई लोभी आप कौं मारै तो वाकौं बहुत धन देय, तो लोभी मारै नाहीं। ऐसे क्रोध, मान, लोभ इन तीन कषायन का तो उपचार है। याका उपचार किये शान्त हो जाय। परन्तु यह दगाबाज ऊपर तैं नमन करै। मुख देखे, दीन वचन बोलै। सेवक होय, पुत्र सम होय। पीछे दाव लगै, दगा करै। याका उपचार विवेकीन तैं भी नहीं बनै। तातैं महा मूढ़ है। इस कषाय का फल दीरघ पापकारी है।

ता पाप के फल तैं जीव, नरकन के दुखन तैं वड़ा, दुख, निगोद आदि का पावै है। ऐसा जानि माया कषाय कूं तजना। तथा इन पापाचारी—मायावी जीवन कौं अपने बल तैं पहिचान, तिनका संग तजना भला है। ऐसा जानना। आगे धर्म का फल इन्द्रिय—जनित इन्द्रिय—सुख है। यातैं नरकादि खोटी गति नहीं होय है। नरक दाता और ही कार्य हैं। सो बतावें हैं—

गाथा—धम्म तरु फल अख सुहयो, सो फल दुगय देय णह कवऊ।
धम्म कालय अघ करऊ, कुगय फल देय सोय कीयाय ॥ ६२ ॥

अर्थ—धम्म तरु फल कहिये, धर्म वृष का फल। अख सुहयो कहिये, इन्द्रियन के सुख। सो फल दुगय देय णह कवऊ कहिये, सो फल दुरगति कवहूं नहीं देय। धम्म कालय अघ करऊ कहिये, धर्म काल में पाप करै तो। कुगय फल देय सोय कीयाय कहिये, सो क्रिया कुगति का फल देय है। भावार्थ—यहां कोई ऐसा जानैं, कि जो इन्द्रियन का सुख है सो धर्मघात करके जीवन कौं दुर्गति करै है। सो हे भाई! तूं चित्त देय सुनि। इन्द्रियन के सुख हैं सो तौ पुण्य का फल है। सो पुण्य फल तैं देव, इन्द्र, चक्री, कामदेवादिक का सुख है सो हजारों स्त्रीन के संग नानाप्रकार पंचेन्द्रिय मन—वांच्छित सुख—भोग भोगवैं हैं। अनेक रथ, हाथी, घोटक, पैदल, आदि अधिक सैन्या सहित, निरखेद भये, अपनी शुभ परणति का फल ताहि भोगवैं हैं। सो ये पुण्य का फल है। सो पुण्य का फल इंद्रिय सुख है। सो ही पुण्य का घात कैसे करै? जे फल हैं सो अपने वृक्ष का नाश नहीं करैं। तातैं इन्द्रिय सुख, धर्म घात करते

नाहीं। इन्द्रिय सुखन तैं दुर्गति होती नाहीं, ऐसा जानना। यहां प्रश्न ? जो जगह-जगह शास्त्रन में ऐसा सुनिये है कि जो फलाना राजादि पुरुष, इन्द्रिय–सुख में मगन होय, नर्कादिक गये। तहां जे महान–बुद्धि चक्रधर राजा थे, सो जगत के भोगन तैं उदास होय, इन्द्रिय-जनित-सुख दुर्गति-दाई जानि, सर्व राज्य-भोग-सम्पदा तजि, दीक्षा धरते भये। तातैं इन्द्रिय जनित सुख पापकारी नहीं होता, तौ काहे कूं तजते ? और यहां ऐसा कह्या जो इन्द्रिय-सुख धर्म का घात नहीं करै है। इन्द्रिय-सुख तैं नरकादि खोटी गति भी नहीं होय है। सो ये बात कैसे बनै ? ताका समाधान-जो हे भव्यात्मा! तेरा प्रश्न प्रमाण है। परन्तु अब चित्त देय सुनि। जो वस्तु जातैं उपजे है, सो ताका नाश नहीं करै। सो देखि, इन्द्रादिक पद, चक्रीपद है, सो वांच्छित इन्द्रिय भोग के सुख का सागर है। जो इन्द्रिय जनित सुख तैं दुर्गति होती, तौ इन्द्रन कौं होय। तथा देवन कूं तथा भोग–भूमियान कूं, परभव दुर्गति होय। तातैं ऐसा जानना। जो खोटी गति होय है, सो इन्द्रिय सुख का फल नाहीं। जातैं इस जीव कूं खोटी गति होय है, सो तोकौं बताइये है। जे जीव धर्म–काल विषैं. धर्म कूं भूलि करि, विषय-कषाय में रंजायमान होय कैं, धर्म का घात करैं। तिस धर्मघात के पाप तैं नरकादि खोटी गति होय है। तातैं नरकादि दुख, धर्मघात का फल जानना। तातैं विवेकी हैं तिनकूं धर्म सेवन के काल में धर्म घाति करि, पाप-विकल्प में काल गमावना, योग्य नाहीं। तातैं धर्मात्मा गृहस्थ हैं सो तिन्हें प्रथम प्रभात धर्म-काल विषैं, भले प्रकार निर्मल भावना सहित धर्म–

कार्य करि, पुण्य का संचय करना योग्य है। पीछे अपने पूर्व-पुण्य का फल इन्द्रिय जनित सुख, ताहि भोग्या करौ। ऐसे सदीव धर्म-काल में धर्म का सेवन करना। और अन्य-काल में कर्म-कार्य करना। ऐसे करि पुण्य का संग्रह करे। ताके फल, फेरि भी परभव में देवादिक के इन्द्रिय-जनित सुख-भोग पावै है। और जे जीव धर्म कों भूलि करि, धर्म-काल विषें इन्द्रिय जनित भोगन में रक्त होय, सुख मानैं, सो मानौ। परन्तु पूर्वले पुण्य का फल भोगि चुकैगा, तो पीछे धर्म-फल बिना, नर्कादि गति होयगी, ताके दुख कूं भोगवैगा। जैसे कोई एक भला व्यापारी, अनेक व्यापार करि, अपनी बुद्धि के बल करि, बहुत धन कमाया। सो दूसरे दिन सुख तैं भोगवै है। अरु जब दुकान पै कमाई का समय आया, तब अनेक सुख भोगे थे तिनकूं तजि, दुकान पै जाय अनेक व्यापार-कला करि धन कुमावै। तौ दूसरे दिन, सुख तैं भोग्या करै। ऐसे भोग के काल में भोग-सुख करै, परन्तु अपनी कुमाई का समय आवै तब अनेक काम छाँड़ि, जाय कुमावै। कुमाई का काल नहीं चूकै। सो तो सदैव कुमावै-खावै, सुखी रहै॥ और जे जीव एक बार व्योपार करि धन कुमाया। सो धन लेय, नाना प्रकार सुख करता भया। अरु फेरि कुमाई का काल आया, तब भी नांच-नृत्य, खान-पान, भोगही में रत भया धन उड़ाया कख्या, कुमाई कूं नहीं गया। कुमाई का काल, वृथा गमा दिया। और आगे कमाया था, सो धन खाय लिया। सो जीव कुमाई बिना रंक होय, भीख मांगेगा, दुखी होयगा, ऐसा जानना। तथा कोऊ एक पुरुष कैं एक बाग है। तामें नाना प्रकार के मेवा

तजि भागै। तौ लज्जा आवै। युद्ध हारि जाय। कुल कूं दाग लागै। तातैं रण में साहस चाहिये, जाकरि जय होय। और काहू धर्मात्मा ने, अपना आयु-कर्म निकट जानि कैं, इस धरमी जीव नैं; परभव सुधारवे कौं; अनशन का धारण किया होय। खान—पान तजि कुटुम्ब व शरीर तैं मोह तजि, आप तुच्छ-परिग्रह कूं राखि, धर्म-ध्यान रूप तिष्ठ्या है। किन्तु काय तैं; आत्मा छूटतैं ढील होय है। सो ज्यों—ज्यों दिन—घड़ी निकसैं हैं; त्यों २ यह सन्यास धारनहारा; ऐसा विचारै। जो अब आत्मा तन तैं शीघ्र छूटै, तौ भला है। अब मेरा साहस रहता नाहीं। इत्यादिक अस्थिरता—भाव विचारै; तौ व्रत तैं डिगना परै। तातैं व्रत की रक्षा के निमित्त ऐसा विचारै; कि मैंने इस काय का ममत्व त्यागा। धर्मध्यान मई, निराकुल होय तिष्ठूं हूं। अब यह तन जब जाय; तब जावो; मेरे कछु खेद नाहीं। ऐसा साहस, सन्यास में भले-फल का दाता है। तातैं सन्यास में साहस चाहिये। और मरण-समय महा-वेदना में, मोह के वशि करि, आकुलता करै। तो मरण तौ टलता नाहीं। परन्तु कायरता तैं मरण बिगड़ जाय; कुगति होय। तातैं मरण-समय धीरजता-सहित; मोह-रहित-परणाम करि, मरण करै। तो परभव सुधरै। तातैं मरण-समय साहस चाहिये। और कर्म के उदय तैं; जीव पै अनेक प्रकार संकट आय पड़ैं हैं। तिनमें धीरजता होय; तो बड़ा संकट, सुगम भासै। धीरजता बिना; दुख में बड़ा-खेद होय। तातैं दुख—संकट में साहस चाहिये। और ध्यान करते, चित्त की एकाग्रता सहित, धर्म—ध्यान का विचार

करता, पुण्य का संचय करै है। ता समय कोई पापी जन आय; धर्मध्यान तैं डिगाया चाहै। ताके निमित्त अनेक कुचेष्टा करै । सो वाके उपसर्ग तैं चंचल-भाव होय, तौ धर्म का फल; हीन होय। धीरजता राखै, तौ पूजा पावै। जैसे वह सेठ; चौदश की रात्रि; स्मशान-भूमि में, प्रोषध सहित, ध्यान धरि; तिष्ठै था। पीछे दोय देव; धर्म की परीक्षा कौं आये। तब सम्यग्दृष्टी देव ने कही; ये सेठ गृहस्थ है। हमारा धर्मी है। सो आज चौदश कूं उपासा; ध्यान रूप है। ताहि डिगावौ, तौ जानैं। तब इस ज्योतिषी-मिथ्यादृष्टी देव ने; सर्व रात्रि अनेक उपसर्ग किये, सो नाहीं डिग्या। तब धीरजता देखि, देव ने सेठ की पूजा करी। तातैं ध्यान में साहस चाहिये। और अनेक तप करते; कबहूं तन तैं मोह उपज आवै। विषय-कषाय की इच्छा होय आवै। तब तप तैं दीरघ खेद जानि, विमुख-चित्त करै। तौ तप का फल, नष्ट होय। तातैं तप मैं खेद होय तैं, तप का लोभी साहस राखै; तौ तप का उत्कृष्ट-फल होय। और अपने सुधर्म का घात करनहारे अनेक पापी-जन, आप कौं धर्म्म तैं चलाया चाहैं। तौ पापी-जन के उपद्रव किये में; अपना धर्म-रतन राखवै कूं; साहस राखना योग्य है। और पुण्य के उदय में तौ सब कोई धर्म में; धीरज राखैं हैं। परन्तु जब पाप का उदय प्रकट होय है। तब दरिद्रता में धीरज परणाम राखना, ये महा-विवेकी का बल है। तातैं दरिद्रता में धीरज-साहस योग्य है। और जब कोई कर्म के जोगतैं; कोई दीरघ-जलमें जाय पड़ना होय; अरु कोई उपाय नाहीं दीखै। तब एक साहस ही सहाय जानना। ऐसे कहे जे ऊपर अनेक

तातें सत्संगी तेरा अपमान करैं हैं। सो तेरे उत्कृष्ट-सुख का कारण है। और सत्संग के अपमान तैं कदाचित् मान के योग तैं बुरा मान्या, तौ तेरा परभव बिगड़ जायगा। तेरा औगुण नहीं जायगा। तातें तूं अपना विवेक प्रगट करि, जस चाहै है। तौ सत्संग के पुरुष जो तेरा अपमान करैं हैं, सो परमार्थ के अर्थ जानना। हे भव्यात्मा, जब लौं तोकूं कुसंग का आदर प्रिय लागै है। तबलौं तेरा दोष मिटता नाहीं, अरु सत्संग का अपमान भला लागता नाहीं। तातें तोकूं कुसंग का सत्कार स्नेह—भाव तजना योग्य है। जैसे जुर सहित रोगी कूं दुग्ध अच्छा भी लागै है। परन्तु जुर के जोगतैं तजना योग्य है। और कटुक-कड़वी औषधि तथा लंघन उपादेय-गुणकारी है। तैसे ही सत्संग के पुरुष तोमैं औगुण जानि, तोसूं स्नेह नहीं करै हैं। वर्तमान काल में तोकूं मान-बुद्धि के जोग तैं, बुरा भी लागै। परन्तु तूं विवेकी है। सो कड़वी औषधि की नाईं तथा लंघन की नाईं, सुखकारी जानना। और सुनि। हे भव्य, कुसङ्ग का सत्कार जुर के माँहि दुग्ध समानि है। सो किञ्चित् सुखदेय; पीछें दीरघ-दुख कूं करै है। तैसे ही कुसंग के अज्ञानी, व्यसनी, अपराधी जीव तेरा सत्कार करैं हैं। ताका सुख किंचित् कौतुक-परणति की खुशी प्रमाण है। पीछे तिनका फल विषम—दुखकारी है, जहां कोई सहायी नाहीं, ऐसे नरक के दुख ताहि भोगनैं पड़ैं हैं। ऐसा कुसंग का फल, पीछे परभव में लागै है। तातैं जैसे स्याना रोगी दूध तजै, तैसे कुसंग तजना योग्य है॥ ८५॥ आगे षट् भेद म्लेच्छता के बतावैं हैं—

अशुभ कारण हैं; तिन में साहस ही जोग्य है। ऐसा जानना ॥ ८३ ॥ आगे ये तीन स्थान विवेकी जीव के; हाँसि के कारण हैं; ऐसा दिखावैं हैं---

गाथा——अगय पठत आयाणो, विविधा सिंगार काय विधवायो।
जग निन्दो खुसचित्तो, ए तीए थाणेय हाँसि मग गेयो ॥ ८४ ॥

अर्थ——अगय पठत आयाणो कहिये, अजान होय कें आगे बोलै। विविधा सिंगार काय विधवायो कहिये, विधवा-स्त्री नाना-शृङ्गार शरीर पै करैं। जग निन्दो खुस-चित्तो कहिये, जगत निन्द होय कें, सदा खुशी रहे। ए तीए थाणेय हाँसि मग गेयो कहिये, ये तीनों स्थान हाँसि के कारण जानना। भावार्थ—आपकों जो पाठ आवता नाहीं; सो और कोई पढ़ता होय; ताके आगे २ आप बोलै—पढ़ै; सौ भोरा—अज्ञानी जीव; विवेकीन करि निन्दा पावै। सो जीव; हाँसि का स्थान है। यहां प्रश्न-जो अज्ञान-जीवन का भोरापना देखि, विवेकी जीव कों बता देना जोग्य है। परन्तु हाँसि का करना; जोग नाहीं। ताका समाधान-जो अज्ञानी दोय प्रकार के हैं। एक तौ भोरा; अजान; सरल-परणामी अज्ञान। सो आप कौं ऐसा मानैं; जो मैं कछु समझता नाहीं। मोकौं कोई धरम का मारग बताय, मेरा परभव सुधारै, तौ वा पुरुष का उपकार भव-भव नहीं भूलूं। ऐसा धर्मार्थी होय, सो तो भली सीख मानैं। रुचि तैं अंगीकार करै। ऐसे भोरे-अज्ञानी जीव की हाँसि तौ विवेकी नाहीं करैं। ऐसे कूं तौ भूलै पै बताय, ताकौं सुमारग लगाय, ताका भला करैं। और

गाथा—मण तण घर पुर देसा, खंडादि खंडमलेच्छ भेयाए।
नहिं सु आचरण धम्मो, सो अणाज्ञथल भासियो सुत्त ॥ ८६ ॥

अर्थ—मण कहिये, मन। तण कहिये, शरीर। घर कहिये, मन्दिर। पुर कहिये, नगर। देसा कहिये, देश। खंडादि खंडमलेच्छभेयाए कहिये; खंड को आदि लेय म्लेच्छताई के षट् भेद जानना। नहिं सु आचरण धम्मो कहिये, तहां पर शुभ आचरण नाहीं, शुभ धर्म्म नाहीं। सो अणाज्ञथल भासियो सुत्त कहिये, सो अनार्य-क्षेत्र सूत्र विषैं कह्या है। भावार्थ—भो भव्य ! म्लेच्छपने के षट् भेद हैं। सो ही कहिये हैं। सो जहां शुभ आचार नाहीं, सुधर्म की प्रवृति जहां न होय। तिस स्थान कौं म्लेच्छ कहिये। सो ता स्थान के षट् भेद हैं। मन म्लेच्छ, तन म्लेच्छ, घर म्लेच्छ, पुर म्लेच्छ, देश म्लेच्छ और खंड म्लेच्छ। ये छह भेद हैं। सो ही अर्थ सहित बताईये है। जहां जाके मन में शुभ-आचार नहीं होय। सुधर्म की जाके मन में प्रवृत्ति नहीं होय। सो मन, म्लेच्छ समानि है। याकूं मन-म्लेच्छ कहिये। और जा शरीर तैं सुआचार अरु धर्म-सेवन नहीं बनै। सो तन, म्लेच्छ समानि है। याका नाम, तन-म्लेच्छ है। और जाके घर में सुआचार सहित धर्म नाहीं। सो घर, म्लेच्छ समानि है। याका नाम, घर-म्लेच्छ है। और जा पुर विषैं सुआचार अरु धर्म-प्रवृत्ति नहीं होय। सो वह पुर, म्लेच्छ के पुर समानि है। याका नाम, पुर-म्लेच्छ है। और जा देश में शुभ आचार सहित धर्म-प्रवृत्ति नहीं। सो देश, म्लेच्छन के देश समान है। याका नाम, देश-म्लेच्छ है। और जा खंड में

शुभाचार सहित धर्म नाहीं। सो खंड-म्लेच्छ है। ऐसे म्लेच्छ-पने के षट् भेद कहे। सो इनमें जहां२ धर्म प्रवृत्ति नाहीं, सो म्लेच्छ जानना। इनकों सुधर्म का उपदेश शुभ (अच्छा) लागता नाहीं। धर्म में रुचि होती नाहीं। ये कुआचारी, अभक्ष-भक्षणहारे हैं। सो कुगति-गामी जानना॥

आगे मूढ़ता के सात भेद बतावें हैं—

गाथा----जाय लोय धम्म मूढ़य, मूढ़ो मण काय वयण विवहारो।
जथारीय विपरीयो, मिच्छाइट्ठीय होय सय जीवो॥ ८७॥

अर्थ---जाय कहिए, जाति मूढ़। लोय कहिए, लोक मूढ़। धम्म मूढ़य कहिये, धर्म मूढ़। मूढ़ो मण कहिये, मन मूढ़। काय कहिए, तन मूढ़। वयण कहिए, वचन मूढ़। विवहारो कहिये, व्यवहार मूढ़। जथारीय विपरीयो कहिए, इन आदि यथायोग्य, विपरीत क्रिया के धारी। मिच्छाइट्ठीय होय सय जीवो कहिये, ये सब जीव मिथ्यादृष्टी जानना। भावार्थ--मूढ़ता नाम, मूरखता का है। जो भली-बुरी के भेद को नहीं जानै। योग्य-अयोग्य खाद्य-अखाद्य के भेद रहित हठग्राही होय। ताकों मूढ़ कहिये। तहां कोई पाप-क्रिया, परभव दुखकरण-हारी, कोई जीव करै था। ताकौं देख काहू धर्मात्मा ने दया--भाव करि मनै किया। कही हे भव्य, ये कार्य परभव दुख देनेहारा है। तूं मति कर, दुखी होयगा। ऐसी कही। ताकौं सुनि वह मूढ़-अज्ञानी कहता भया। हे भाई, ये क्रिया तो हमारी जाति में करनी कही है। निंद्य नाहीं। जो बुरी होती तौ हमारे बड़े, जाति में काहे कौं करते? तातैं जो अपने बड़े

आगे सूं करते आये, जाति में सब करैं, ताकौं कैसे तजैं ? ऐसा हठी, महा ढीठ, कठोर परणामी, पाप क्रिया कौं नहीं छोड़ै। सो जाति-मूढ़ कहिये ॥ १ ॥ और लोक-मूढ़ ताकौं कहिये; जो लौकिक अनेक खोटी पद्धति, अज्ञानता रूप, पाप रूप, क्रोध-मान-माया-लोभ रूप; चौरी, जुवा, परस्त्री गमनादिक, अनेक पापरूप क्रिया, कोई अज्ञानी जीव करै है। सो ऐसी अयोग्य क्रिया करता देखि, कोऊ धर्मातमा ने प्रार्थना करि, मनै किया। जो हे भाई, ये कुकारज, महा-दुखदायक, लोकनिंद्य मति करै। तोकूं दोऊ-भव दुःख करेंगे। ऐसे हित-वचन कहे। तब वह अज्ञान, दरिद्री, मूर्ख, बोलता भया। हे भाई, हम हो इस कारज कौं नहीं करैं। ऐसी क्रिया के करता तो लोक में बहुत हैं। तुम किस–किस कूं मनै करोगे ? संसार में सर्व लोग करै हैं। इस भांति जो अज्ञान–लोकन की देखा-देखी खोटा-कार्य करै, आप ज्ञानअंध कछू विचारे नाहीं, हठग्राही पाप-क्रिया करै है। सो लोक-मूढ़ कहिये ॥ २ ॥ और धर्म–मूढ़ ताकूं कहिये है। जो, तहां आगे कोई कुल विषैं तथा लोक विषैं, अज्ञानता करि तथा बिना विचारे, तथा बिना परखै; खोटा धर्म, हिंसा सहित सेवते आये। ता विषैं प्रत्यक्ष जीव हिंसा है। ऐसे मार्ग के उपदेशदाता कौं महा-क्रोध-मान-माया-लोभ की तीव्रता है। पंचेन्द्रिय भोगन के पोखनहारे, तप-संयम रहित देव होंय, तिनकूं मानैं। ते जीव भोरे धर्म-मूढ़ता लेय हैं। कैसा है वह देव, जाकी छवि देखे महा-भय उपजे। ऐसी विकराल मुद्रा का धारी होय। निरदई-मांसाहारी होय। ऐसे देव कूं प्रभु मान पूजैं, देव मानैं हैं। और बड़े-

क्रोध का धारी, अनेक शस्त्रन के धारनहारे, बहु परिग्रही, भयानक आकार धारैं, क्रूर वचन के धारी, जाका विनय नहीं करैं तो मारैं, महा-मानी, और भोरे जीवन सूं अपनी सेवा करावनहारा, और नय-जुगति देय पराया-धन खावनहारा, मायावी, लोभी, अभक्ष्य भोजन के करता, तिनकौं गुरु मानै। और हिंसा किए धर्म का उत्तम फल होय, भोग-भोगवे तैं पुण्य होय, ऐसा कथन जहां पाईये, ऐसे शास्त्र तैं धर्म मानैं। ऐसे कुदेव, कुधर्म, कुगुरु के सेवनहारे भोरे जीव, धर्मार्थी, धरम जानि, कुमारग-हिंसा रूप, कुआचार रूप प्रवृत्तते भये। ते जीव मोक्ष-मारग जानिते-संते, धर्मफल के लोभी, लोकारूढ़-धर्म सेवते भये। तिनकौं कोई सांची-दृष्टिवारा धर्मात्मा देखि, दया करि कहता भया। भो धर्मार्थी हो, तुम धर्म के अर्थ, पाप का सेवन मति करो। यह जीवघातक-मांसाहारी, देव नाहीं है। भगवान् का ये चिन्ह नाहीं है। परिग्रह धारी, शस्त्रधारी, कषायी, गुरु नाहीं। हिंसामयी, धर्म नाहीं। हे भव्य, तूं विचारि कैं देखि कैं, देव-धरम-गुरु का सेवन करना, ज्यों तेरा भला होय। ऐसे धर्मात्मा के वचन सुनि, यह अज्ञानी ज्ञान-दरिद्री शुभाशुभ-विचार रहित, बिना समझै ही हठग्राही, ऐसा कहता भया। हमारे बड़े-बूढ़े आगे तैं येही धर्म सेवते आये हैं। और हमारे धर्म में ऐसेही देव-धरम-गुरु होय हैं। आगे तैं हमारे कुल में ऐसाही धर्म सेवते आये हैं, सो हम भी सेवन करैं हैं। ऐसा कहि कैं हठग्राही, कुल-धर्म पाप-पंथ नहीं तजै। सो धर्म-मूढ़ता कहिये ॥ ३ ॥ और मन-मूढ़ता ताकों कहिये, जाका मन सदा ही चंचल रहै। थिरी

नाहीं होय। महा लोभ करि, मोहित होय। जाका मन सदीव ऐसा विचार करै, जो मोकौं
घना धन कैसे मिलै? कोई देवता की सेवा करौं, तो मोकौं मांगै सो देवे। सो अवार के
समय तो शीतला प्रत्यक्ष देखिए है। ताकौं पूजैं तौ धन मिलै। सो ऐसा विचारकर धन का
लोभी, अनेक देवन की पूजा करै। तथा ऐसा विचारै, जो हमैं पड़्या-गिर्या माल मिल जाय,
तौ भला है। ताके निमित्त धरती के गड़े पाखान उपाड़ि २ धन देखता फिरै। ऐसी अवस्था
सहित, ये अज्ञानी, धर्मपंथ का भूल्या प्राणी, सदीव मन की मूरखता नहीं तजै। ऐसे भरम-
बुद्धि कूं कहिये। जो तूं मन की थिरता राख। कुदेवादिक मति पूजो, इससे पाप होयगा।
धन मिलैगा नाहीं। तो ताकौं सुनि, अज्ञानी कहता भया। जो पाप कैसे हो है? यह देव
है, राजी भये धन देना, इनकैं सुगम है। अनेकन कौं वाञ्छित देय है। ऐसा जानि अपने
मन विषैं, कुदेव-कुधरम-कुगुरु इनके पूजिवै की मूरखता नाहीं छोड़ै। सदीव मन कूं आर्त्त-रौद्र
रूप राखै, सो मन-मूढ़ता कहिये ॥ ४ ॥ और जाकी काय तैं, शुद्ध देव-धरम-गुरु की सेवा
नाहीं बनै। विनय-भक्ति तिनकी नहीं बनै। कुदेवादिक की नमनता याने वहुत करी होय।
और वाही तैं जाका शरीर महा-भयानीक होय। नेत्र क्रूरता लिए, लाल होंय। तन
पै भस्मी, शिर पै सिन्दूर की बिन्दी होय। और कंठ-शीश-भुजा में अनेक ताबीज होंय।
अरु हस्त में अनेक लोह ताके चूड़ा होंय। ऐसे धर्म-ध्यान रहित, शांति मुद्रा-सौम्य भाव
रहित होय। महा भयानीक, विपरीत तन का धारी; तामैं धर्म मानता होय। ताकौं कोई

कहै, तोकौं धर्म का फल चाहिये है तो शान्ति-मुद्रा राखौ। भयानीक आकार रहना तजौ। तो ताकूं सुनि, मूढ़-आत्मा ऐसी कही। जो हम अंतरंग में तो शान्त ही हैं। बाह्य लोक-दिखावे कूं, अपना-आप छिपाय रहवे कूं, बाह्य भयानीक-स्वांग राखैं। ऐसी नय-जुगति देय। परन्तु काय की क्रूरता नहीं तजै। सो तन-मूढ़ता कहिये। तथा शरीर की चाल मदोन्मत्त, ईर्या-समति रहित होय। और जीव, ताकौं देखि भय-खाय दुखी होते हौंय। बिना प्रयोजन अपने हाथ-पाँवन तैं, जीवन कौं दुख देता होय। ऐसी विकट काय का धारी, दया-रहित मुद्रा का धारी, शरीर कौं उद्धत् राखता होय। सो काय-मूढ़ता कहिये ॥५॥ जहां जिन-आज्ञा रहित, पापकारी, पर-जीवन कूं भयकारी, शोककारी, वचन बोलना। अपनी इच्छा-प्रमाण स्वेच्छाचारी-वचन, पापकारी बोलना। सो वचन-मूढ़ता है। याकौं कोई कहै, तुम ऐसे कषाय-वचन मत कहौ। तथा देव कूं गाली, गुरु कूं गाली, तथा गृहस्थन कौं गाली, कठिन ऐसे अयोग्य वचन मति कहो। तो वह मूरख कहै, हम इसी तरह देवकी स्तुति करैं हैं। गृहस्थीन कौं ऐसेही दबाय देय हैं। ऐसे कहै। परन्तु क्रोधादि-कषाय पोषवे के पापकारी-वचन नहीं तजै। सो वचन-मूढ़ता है। और जा वचन तैं पराया-तन क्षय होय। धन-क्षयकारी, मान-क्षयकारी, ऐसे बिना विचारे वचन का बोलना जाके सुनैं सर्व सभा-जन दुख पावैं, सो वचन-मूढ़ता है। तथा जा वचन कौं सुनि सर्व-कुटुम्ब दुख पावै, सो कुटुम्ब-विरुद्ध कहिये, ऐसे वचन। तथा राज्य-सभा विरुद्ध वचन, जाके सुनै राजसभा दुख पावै।

इत्यादि वचन का बोलना, सो वचन-मूढ़ता है ॥ ६ ॥ और व्यवहार-मूढ़ ताकौं कहिए। जहां अयोग्य-हिंसाकारी व्यापार कूं ऐसा मानना, जो ये किसब हमारे आगे तैं चल्या आया है। हमारे बड़े, पीढ़ियों तैं यही किसब करते आये हैं। सो बुरा है तो भला है। अरु भला है तो भला है। कुल का किसब कैसे छोड़ैं? ऐसा जानि, महा हठग्राही, पाप कारी-हिंसामई किसब नहीं तजैं। सो विवहार-मूढ़ता है ॥ ७ ॥ ऐसी कही जे सात जाति की मूढ़ता, ताकौं अपनी २ हठ बुद्धिकरि, यथायोग्य विपरीत भावना सहित धारि, अङ्गीकार करना। ऐसे श्रद्धान का धारण जिनकैं होय, सो मिथ्यादृष्टी जानना। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, जाति-व्यवहारादि कथन वर्णनो नाम, चौबीसवाँ पर्व सम्पूर्ण ॥ २४ ॥ आगे हितोपदेश दिखाइये है। तहां मिथ्याज्ञान अरु सम्यग्ज्ञान के प्रकाश कौं दृष्टान्त करि दिखाइये है—

गाथा—उपल वहणि मिछिणांणो, कय उदोय फुणस्याम उर जायो॥
हाटक सम सम्यणांणो, तव वहणी जुइ विमल तण होई ॥ ८८ ॥

अर्थ—उपल वहणि मिछिणांणो कहिये, काष्ठ-छाणैं की अग्नि समान मिथ्याज्ञान है सो। कय उदोय फुणस्याम उर जायो कहिये, उद्योत करि फेरि श्याम शरीर को धरै है। हाटक सम सम्यणांणो कहिये, सम्यक्ज्ञान स्वर्ण समानि है। तव वहणी जुइ विमल तण होई कहिये, तप रूपी अगनि तैं विशेष प्रभा धरै है। भावार्थ—आत्म स्वभाव अरु पर-जड़भाव इनके जुदे २ जानवै कौं, अनुभवन करवै कौं, अतत्त्व श्रद्धानी मिथ्यादृष्टि का ज्ञान असमर्थ है।

इस मिथ्याज्ञान का प्रथम तौ किंचित् प्रकाश होय। ताके फल तैं एक भव देवादि के सुख पावै। पीछे उस देवादि-भव में भोगाभिलाषी चित्त होय, आर्त्त-रौद्र परणति करि, संक्लेशता के फल तैं, एकेन्द्रिय आदि होय, संसार-भ्रमण करै। तथा मिथ्यात-कर्म के योग तैं कदाचित् मनुष्य में उपजै, तौ नीच-कुल में धनवान्-हुकुमवान् होय। राज्य-संपदा का धारी, तीव्र क्रोध-मान-माया-लोभ-का धारी, संक्लेशी होय। इत्यादिक सामान्य सुख का धारी होय। पीछे अनेक पाप करि, अनेक हिंसा-दोष उपाय, नरकादि-दुख कौं प्राप्त होय। ऐसा होय तब मिथ्याज्ञान का प्रकाश, मंद होय। बहुत-काल मिथ्यात्व का फल रहता नाहीं। जैसे अरणे (छाणे) की अग्नि, प्रथम तौ तेज-प्रकाश करै है। पीछे प्रभा-रहित होय, श्यामता धारि, भस्मी होय। तैसेही मिथ्याज्ञान जानना। ये मिथ्याज्ञान है सो अंधे के ज्ञान समानि है। जैसे अंधा चलै, तब उनमान (अनुमान) तैं चलै। परन्तु यथावत्, मार्ग का शुभाशुभ नहीं भासै। तैसे ही मिथ्याज्ञान तैं शुद्ध यथार्थ-मार्ग नहीं भासै। यहां प्रश्न-जो मिथ्याज्ञानी धर्मात्मा हैं। तिनकूं यथावत् पुण्य-पाप का मार्ग नाही भासै, तौ नौ-ग्रीवादिक कैसे जांय ? देवादि गति में भी जांय हैं, सो शुभाशुभ-मारग जानै बिना, पाप का तजन व पुण्य का ग्रहण, तप-संयम-चारित्र का सेवन कैसे संभवै ? ताकौं पुण्य-पाप का मारग तौ भासै है। भले प्रकार मिथ्याज्ञान कूं अंधे के ज्ञान समानि कैसे कह्या ? ताका समाधान-जो पुण्य--पाप तौ संसार-बन के मारग हैं, यथार्थ शुद्ध-मोक्ष का मारग

नाहीं। मिथ्याज्ञान तैं मोक्ष-मारग नहीं सूझै है। तातैं मोक्ष-पंथ के जानवे कूं, अन्ध समानि जानना। और सम्यक्ज्ञान है, सो स्वर्ण समानि है। जैसे स्वर्ण कूं ज्यों २ अग्नि पै तपाईये, त्यों २ ताकी प्रभा, बढ़वारी कौं प्राप्त होय है। और कंचन (सोना) शुद्ध होता जाय है। तैसेही सम्यक्ज्ञान रूप स्वर्ण है सो ताकौं ज्यों २ तप रूपी अग्नि कर तपाया जाय, त्यों २ परम विशुद्धता कौं प्राप्त होय है। सो यह सम्यक्ज्ञान, ज्यों २ निर्मल होय, त्यों २ बढ़ै। सो बढ़ता-बढ़ता केवलज्ञान पर्यंत, सम्यक्ज्ञानावधि पूर्ण होय है। सो केवल-ज्ञान भये, ज्ञान की मर्यादा पूरण होय है। सासता (सदा) रहै है। ये सम्यक्ज्ञान, भये पीछे मिथ्याज्ञान की नाईं, जाता नाहीं। सदीव अनंतकाल ताईं रहै है। ये ज्ञान, मोक्ष ही करै है। तातैं मिथ्याज्ञानी, अङ्ग-पूर्वन का पाठी भी होय, तौ संसार का ही कारण है। और सम्यक्ज्ञान का अंश भी प्रकट होय, तौ बढ़वारी कौं प्राप्त होय, केवलज्ञान ही करै है। तातैं मिथ्याज्ञान, हेय कह्या है। और सम्यक्ज्ञान, उपादेय कह्या है। तातैं विवेकी पुरुष हैं तिनकूं, मिथ्याज्ञान तजि कैं, मोक्ष का करनहारा, सिद्ध पद का देनेहारा, कर्म्मन का नाश करनहारा, ऐसा सम्यक्ज्ञान जैसे बनै तैसे, प्राप्त करना योग्य है ॥ ८८ ॥

आगे इन्द्रिय सुख तैं आतमा तृप्त नहीं भया, सो ही दिखाइये है—

गाथा—हरि हल सुर खग चक्री, पुण फल सुह भुंजेय ण धपे।
तव लव सुह णर आदा, धपो किं धम्मसेय सिवकज्जे ॥ ८९ ॥

अर्थ—हरि कहिये, नारायण। हल कहिये, वलभद्र। सुर कहिये, देव। खग कहिये, विद्याधर। चक्री कहिये, षट्खण्डी चक्री। पुण फल सुह भुंजेय ण धपे कहिये, पुण्य का फल सुख भोग्या, तौ भी नहीं तृप्त हुआ (धाप्या)। तब लव सुह णर आदा कहिये, तो हे आत्मा, मनुष्यन के अल्प सुख तैं। धपो किं कहिये, कैसे तृप्त होयगा? धम्मसेय सिव कज्जे कहिये, तातैं धर्म का सेवन मोक्ष के निमित्त करौ। भावार्थ—ये जीव तीन खंड का स्वामी, सोलह हजार स्त्रीन के संग भोग-भोगनहारा भया। तहां भोगन तैं तृप्त नहीं भया। तथा हरि कहिये जो देवनाथ-इन्द्र, सो तानैं अनेक देवाङ्गना सहित अनेक वांच्छित भोग भोगे, तौ भी तृप्त नहीं भया। तथा अनेक देवीन सहित सुख भोगनहारे देवपद के अनेक सुख भोगे, परन्तु तृप्त नहीं भया। अनेक गीत-नृत्य-वादित्रादि के अद्भुत लक्ष्मी सहित, कौतूहल करि अनुपम भोग में रम्या, तहां भी ये आत्मा तृप्त नहीं भया। तथा और भी, देव समानि संपदा के धारी ऐसे विद्याधर, तिनके सुख भोगनहारे, अनेक प्रकार अढ़ाई द्वीप में स्वेच्छा फिरि क्रीड़ा करते, दीरघ सुख भोगे। तौ भी आत्मा विद्याधरन के सुख तैं भी तृप्त नहीं भया। और षट्खंड का पति, छ्यानवै हजार देवाङ्गना समानि रूप-गुण की धरनहारी स्त्री तिन सहित, मन-वांच्छित देवेन्द्र की नाईं सुख-समूह, दीरघ-काल ताइ, नये-नये भोगे। तौ भी आत्मा तृप्त नहीं भया। और भी अनेक मनोग्य वांच्छित अद्भुत सुख भोगे। संसार में कोई ऐसा सुख नाहीं बच्या, जो आत्मा ने अनेक बार, पुण्य के उदय तैं न भोग्या; सर्व भोग्या। चिरकाल

होय हैं। अरु महा-सुन्दर सघन-छाया महा-शोभायमान तामें पांच सौ रुपया साल का मेवा होय, ताहि बेंचि, तामें कुटुम्ब कौं पालै। ऐसे साल की साल, पांच सौ रुपया का मेवा बेंचि, सुखी रहै। अनेक मेवा आप भोगवै। बाग की भली रक्षा किया करै। ऐसे बहुत दिन बीत गये। बाग की रक्षा करै, दुष्ट पशून तैं बचावै। बन कौं निर्विघ्न राखै। ताके फलन करि अपने कुटुम्ब का पालन करै। आप आनंद सूं रह्या करै। ऐसे बाग तैं, जाकौं देख तैं सुख होय। सो एक वार काष्ठ काटनहारे आये, इस बाग बारे कौं कही। तेरा बाग मोल दे। तब यानै पांच सौ रुपया में बाग बेच्या। सो वह बाग काटकैं लकड़हारे ले जांय हैं। सो देखो याकी मूर्खता, जो साल की साल पांच सौ रुपया देनेहारे बाग कूं काष्ठ काटनहारे कूं देय है। सो ये रुपैया एक बार के होय जांय हैं। पीछे आप दुखी होय है। बाग की शोभा जाय है। मिष्ट फल जांय हैं। बाग का नाम जाय है। और आप कुटुम्बी सहित दुखी होय है। ये रुपया बरस-एक में खा लेवे है। तथा उस बन की रक्षा छाँड़ि, कोई विषय-कषाय नृत्य-गीतादि में लागि जाय है। सो बाग के बिगड़नै तैं बड़ा दुखी होय है। एकबार ही नृत्य-गीत के सुख हो हैं। परन्तु जिस बाग के पीछे, सर्व कूं रोटी थी। सोच नहीं रहै था, सर्व गीत-नाच अच्छे लागैं थे। सो उजाड़्या। तो सर्व कुटुम्बी सहित दुखी भया। जैसे बाग रहै सुखी रहेगा, तैसे ही धर्म रूपी बाग के फलन करि सदीव सुखी रहै है। ऐसे धर्म-बाग की रक्षा कूं भूलि, बिषय-कषाय में मगन होय रहैगा, तो धर्म रूपी बाग के बिनाश

तैं आप दुखी होयगा। एक बार का ही विषय–सुख होयगा। और पहले सदीव बाग की रक्षा करि, पीछे विषय–सुख भोगेगा। तो ताके फल तैं सुखी रहैगा। तातें हे भव्य, तूं ऐसा जानि। जो आत्मा कूं नरकादि खोटी गति होय है। सो ये धर्म–घात का फल जानना। जे जीव धर्म-काल में धर्म घाति करि, पाप का सेवन करि, विषय–भोगन में रत होवेगा। सो नर्कादि कुगति के दुख भोगवेगा। और जो धर्म–काल में धर्म का सेवन सहित, धर्मकी रक्षा करेगा। पीछे अपने विषय–भोग भोग्या करैगा। अपने पुण्य–प्रमाण मिले जो भोग, सो संतोष करि भोगैगा, तो खोटी गति न होयगी। ऐसा जानना। और तैंने कही, आगे बड़े २ राजा इन्द्रिय-जनित सुखनकूं पापरूप जानि, तिनकूं तजि, उदास होय, दिगम्बर होय, दीक्षा धारी। सो हे भाई, सुनि। इन राजाननैं दीक्षा धरी। अरु इन्द्रिय जनित भोग तजे। सो नरकादिक के भय, दीक्षा नहीं धरी है। नरकादिक के दुखन का अभाव तो गृहस्थ अवस्था के धर्म सेवन करि होय। घरही विषैं अपने कुटुम्बमें तिष्ठतें, धर्म का सेवन करि, सुखतैं पर्याय छांड़िते, तौ देवादि शुभ गति पावते। परन्तु हे भाई, घर विषैं, कर्म का नाश करि मोक्षस्थान चाहै। सो घर में मोक्ष नाहीं होय। तातें भव्यात्मा, जे निकट संसारी हैं। तिनने मोक्ष होवे कूं, सर्व कर्मनाश करि शुद्ध भाव होवे कूं, राग–द्वेष तजवे कूं, केवलज्ञान प्रगट करवे कूं, जनम–मरण के दुख दूरि करवे कूं, सिद्ध पद के ध्रुव पाववै कूं, दीक्षा धारी है। ऐसा भाव जानना। जिन्हें नरकादिक खोटी गति होय है सो धर्म को

छाँड़ि धर्म-काल में पाप का सेवन करै हैं। ते दुखी ही होय हैं । और धर्मात्मा गृहस्थन कौं इन्द्रिय-सुख भोगतैं पाप होता नाहीं और मोक्ष सुख, अविनाशी-अतीन्द्रिय-भोग सुख, मोक्ष बिना होता नहीं। तातें जे मोक्ष-सुख के वांच्छक होंय, ते तौ दीक्षा ही धारें हैं। और जिन भव्यन कूं मोक्ष वांच्छा तौ है, पर दीक्षा धरवे कूं समर्थ नाहीं। ऐसे धर्मात्मा गृहस्थ हैं, सो घर ही विषैं मुनि का दान, जिन देव की पूजा, शास्त्रन का श्रवण-पठन, संयम, शक्ति प्रमाण तप, इत्यादिक धर्म का सेवन कर ताके फल देवपद, भोग भूमि फल, चक्रीपद, इत्यादिक पावैं। सो इन देवादिक पदन में निशदिन अद्भुत इन्द्रिय जनित सुख-भोग, आयु पर्यंत भोगवैं हैं। तातें हे भव्यात्मा, इन्द्रिय जनित सुख तैं पाप होता, दुर्गति होती, तौ गृहस्थ-धर्मात्मा का परभव कैसे सुधरता ? अरु धर्मी-श्रावक, धर्म-रस के स्वादी, घर के सुख कैसे भोगते ? तातें अनेक नयन करि विचारिये है तौ पाप एक धर्म-घात का नाम है। भोगन में पाप नाहीं। तातें विवेकी धर्मात्मा हैं तिनकौं एक धर्म-काल में धर्म-सेवन ही योग्य है। आगे मुनीश्वरों के मोक्ष कौं कारण, श्रावक का घर है। ऐसा कहैं हैं—

गाथा—जीय सुहचय मोक्खो, मोक्खोत्तयण रयण मुण साहो।
मुणणर तण आहारो, भोयण सावय गेह कर होई॥ ६३॥

अर्थ—जीय सुह चय मोक्खो कहिये, जीव सुख कौं चाहै सो सुख मोक्ष विषै है। मोक्खोत्तयण रयण मुण साहो कहिये, सो मोक्ष रत्नत्रय से होय है अरु रत्नत्रय

मुनि पद तैं होय है। मुणणरतण आहारो कहिये, मुनि पद मनुष्य शरीर तैं होय है अरु शरीर भोजन तैं रहै है। भोयण सावय गेहकर होई कहिये, सो भोजन श्रावक के घर करि होय है। भावार्थ—ये सर्व च्यारि गति संसारी जीवन की आशा, एक सुख है। सो सुख सर्व चाहैं हैं। अरु आया सुख का वियोग भये, जीव दुखी होय है। तातैं ऐसा जानिये है। कि विनाश रहित अविनाशी सुख कौं जीव चाहैं हैं। सुख तैं एक छिनक भी अन्तर नहीं चाहैं हैं, ऐसा सर्व जीवन का अभिप्राय है। सो हे भव्य जीव हो! संसार में देव-मनुष्यन के सुख हैं। सो तो विनाशीक हैं। कोई पुण्य जोग तैं होय हैं। पीछे अपनी स्थिति—मरजाद पूर्ण भये पर्यन्त रहैं हैं। पूरण भए पीछे सुख नाश होय है।सुख नाश भये, बड़ा दुखी होय है। जैसे विद्युत (बिजली) पात, अल्प उद्योत का चमत्कार करि, पीछे अन्धकार करै है। तैसे ही इन्द्रिय—सुख तो तुच्छ सा चमत्कार, सुख की वासना सी बताय, पीछे दुख ही उपजावै है। तातैं ऐसा विनाशीक सुख होने तैं, न होना भला है। यह जीव तो निरंतर अविनाशी सुख कूं चाहै है। तातैं हे सुख के अर्थी जीव हो! तुम्हारी वांच्छा प्रमाण सुख का स्थान सिद्ध पद है। तहां ध्रुव-अविनाशी सुख है। सो सुख, सर्व कर्म के नाश तैं पाईये है। तातैं तुम कौं सदीव अविनाशी सुख की अभिलाषा है तो जैसे बनै तैसे सर्व कर्मन का नाश करो, ज्यों मोक्ष होय। सर्व सुख का स्थान मोक्ष है। सो सुख का आश्रय जो मोक्ष है, सो रत्नत्रय के आधीन है। सो सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन रत्नत्रय, मोक्ष का आश्रय हैं। रत्नत्रय

बिना, मोक्ष नाहीं। और रत्नत्रय हैं सो मुनिपद के आश्रय हैं। मुनिपद, बिना रत्नत्रय के होता नाहीं। और मुनिपद है सो नर तन बिना होता नाहीं। तातैं मुनिपद का आश्रय, नर का शरीर है। और मनुष्य शरीर की स्थिरता, भोजन बिना रहती नाहीं। तातैं मनुष्य के तन का आश्रय भोजन है। और मुनीश्वर का भोजन, धर्मी श्रावक सुआचारी बिना होता नाहीं। तातें जे उत्तम श्रावक के मन्दिर हैं सो ही मुनि के तन का आश्रय जानना। तातैं ऐसा जानना। कि जो मोक्ष मारग है, सो श्रावक के घर तिनकै आधीन है। मुनिपद बिना, मोक्ष नाहीं। और श्रावक धर्मात्मा के घर बिना, मुनि के शरीर का सहकारी भोजन होता नाहीं। तातें जो शुभ श्रावकन का घर भोजन देने कौं नहीं होय। तो मुनि का धर्म नाहीं होय। अरु मुनि धर्म नहीं होय, तौ मोक्ष मारग भी नहीं सधै। तातें ऐसा जानना, जो मोक्ष मारग का आश्रय श्रावक का घर ही है। ऐसा जान धर्मात्मा श्रावकन कूं शुभ आचार रूप प्रवर्तना योग्य है। आगे बुद्धि, धन व तन पाये का फल कहै हैं—

गाथा—बुधिफल तत्त्व विचारइ, तण फल तव तीथ झाण चारत्तो।
धण फल पूजा दाणउ, वच फल परपीय जंतु रख सत्तो ॥ ६४ ॥

अर्थ—बुधिफल तत्त्व विचारइ कहिये, बुद्धि का फल-तत्वन का विचारना है। तण फल तव तीथ झाण चारत्तो कहिये, तन का फल-तप, तीरथ, ध्यान और चारित्र है। धण फल पूजा दाणउ कहिये, धन का फल-दान पूजा है। वच फल परपीय जंतु रख सत्तो कहिये, वचन का फल-परकौं प्रिय दयामई सत्य बोलना है। भावार्थ—जे सुबुद्धि कूं पाय, धर्म

मारग भूलि कैं विषयन में प्रवृत्ति करि, पाप करि, शीश अशुभ भार लिया। सो तो बुद्धि भई ही निष्फल भई। और जिन भव्य जीवन नैं बुद्धि पाय करि, तत्त्वन का विचार करि, पाप कर्मका क्षय व पुण्य का संचय करि, मोक्ष होने का उपाय विचार किया। सो ही बुद्धि पाये का उत्कृष्ट फल है। और मनुष्य शरीर पाय कैं अनेक पापकारी स्थानन में प्रवृत्ता, पर पीड़ा करी, परधन हृया, परस्त्री रम्या, पाप स्थानन में तीरथ जानि भ्रमण किया। इत्यादि कार्य-पापाचार करि अशुभ कर्म का बंध किया, सो तो तन पाया जैसा नहीं पाया। शरीर विरथा गया। जो शरीर पाय निर्हिंसक, आरंभ रहित, दयाभाव सहित, अंतरंग तप षट्, वाह्य तप षट्, ऐसे बारह तप कूं करै, सो तन–फल है। तथा जहां तैं कर्म नाश कर जतीश्वर मोक्ष गये, सो स्थान शुद्ध तीर्थ है। सो जा शरीर तैं तिस स्थान की बंदना–पूजा करनी, सो शरीर सफल है। और जिस शरीर तैं विकराल भेष धरि, पाप–पाखंड धरि, औरन कूं भय उपजाया। सो शरीर विरथा है। और जा शरीर तैं कायोत्सर्ग–मुद्रा तथा पद्मासन–मुद्रा धरि, समता भाव धरि और जीवन कूं विश्वास उपजाय सुखी किये। धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान रूप भाव सहित ध्यान किया, सो काय सफल है। और पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति ये तेरह प्रकार चारित्र, तथा बारह व्रत जा शरीर तैं बन्या होय, सो तन पाया सफल है। और जा धन करि पापारंभ क्रिया करि, परभव कूं दुख उपजाया होय, सो धन वृथा है। तथा जा धन तैं अन्य जीवन कूं मोल लेय मारे होंय, जा धन तैं पर-जीव बन्दी

में किये होंय, परस्त्री सेवन किया होय, तथा वेश्या—गमन में दिया होय, नाच कराय, गान कराय, इत्यादि विकार—भावन में धन दिया होय, सो धन वृथा है। तथा द्यूत रमने में धन दिया, तथा द्यूत रमनेके कारण-चौपड़ि, गंजफा, शतरंज, इन आदि द्यूत कार्य के उपकरन तिनकौं बहुत मोल देय लेना, बहुत धन देय चाँदी—स्वर्णादि के बनवावना, महा अनुरागि सहित धन लगाय द्यूत की शोभा करनी, सो धन विरथा है। और जा धन तैं मुनि-बीतराग कूं दान दिया होय, जिन भगवान् की पूजा की होय, सो धन पाया सफल है। और मुख पाय, वचन तैं अनेक जीवन के मान खण्डन किये होंय। पर जीवन कूं कटु बचन कहि दुख उपजाया होय। तथा, विरथा—बे प्रयोजन वचन, अनर्थ दण्ड के उपजावनहारे ऐसे वचन इत्यादिक पापबंध करनहारा बचन बोलना, सो बचन पाया जैसा नहीं पाया, वृथा वचन है। और जिन वचनों कूं अन्य जीव सुनि, साता पावैं। जिन वचनों की प्रतीति करि और जीवन कौं स्थिरता होय, सुख पावैं। ते वचन दया सहित, हिंसा पाप रहित, सत्य, इत्यादिक जिन देव की आज्ञा—प्रमाण हित—मित वचन का बोलना, सो वचन पाया सफल है। ऐसा जानि कैं विवेकी हैं तिनकौं बुद्धि पाय कैं तो जीवाजीवादिक तत्त्वन का विचार करि, बुद्धि सफल करना जोग्य है। और तन पाय, तप तीरथ ध्यान करि, तन सफल करना भला है। और धन पाय दान—पूजादि करि पुण्य उपजावना अच्छा है। और वचन पाय, हित मित सत्य बोलना। और भी इन आदि सुकार्यन में विषैं शुभ रूप रह कैं, भव सफल करना योग्य है।

ऐसा जानना। आगे ऐते निमित्त, काल—मृत्यु समान जानि, तिनमें सावधान रहना ऐसा बतावैं हैं——

गाथा——दुठणारी सठ मित्तऊ, गूढ़ जाणंत मंत्र जे भत्तो।
अहथित घर विसपाणो, एसहु णमत्ताय द्वार जम्म गेयो ॥ ६५ ॥

अर्थ——दुठणारी कहिये, दुष्ट स्त्री। सठ मित्तऊ कहिये, मूर्ख मित्र। गूढ़ जाणंत मंत जे भत्तो कहिये, गूढ़ बात कौं जो सेवक जानता होय। अहथित घर कहिये, घर में सर्पका बास। विषपाणो कहिये, विषका भोजन। ए सहु णमत्ताय कहिये, ये सब निमित्त। द्वार जम्म गेयो कहिये, काल (मृत्यु) समानि जानना। भावार्थ—इस जीव के पाप कर्म का उदय आवै, तब ऐसा निमित्त मिलै। जो घर विषैं महादुष्ट स्वभाववाली, कलह कारिणी, विनय—लज्जारहित, तीक्ष्ण—कटुक वचन भाषणी, क्रोधादि कषायन सहित, कामाग्नि जिसकैं तीव्र होय। इन कूं आदि लेकर अनेक अनाचार, औगुण करि भरी स्त्री मिलै। सो मरण समान दुख सदीव जानना। तथा आप तो महाविवेकी होय, नाना नय-जुगति का जाननेहारा होय। चतुर, अनेक कला का धारी, धर्म—कर्म कार्य में प्रवीण होय और जिनमें सदीव रहना, ऐसे मित्र जो आपके पास निरंतर रहैं, सो मूरख होंय। तौ आप तौ विचारै कछु भला कार्य, अरु मूरख—मित्र ज्ञान हीन, वह विचारै निंद्यकार्य। अरु समझते नाहीं, कहिये कछू अरु वह मन्दज्ञानी करै कछू। सो ऐसे मूरख के निमित्त तैं, विवेकी कौं

मरण समान निमित्त है। और कोई अपनी गूढ़ बारता है, जो काहू कौं कहने की नाहीं। उस बात कूं कोई जानै, तौ आप कूं दुख होय। और राज-पंच कदाचित् सुनि पावैं, तौ दण्ड देंय। ऐसी बारता गूढ़ थी, सो पहिले कोई चाकर कूं अपना जानि, मित्र जानि, कही होय। तो वह चाकर-मित्र काल पाय, जिनका प्रयोजन नहीं सधै, द्वेष रूप होंय। तब ये ही मित्र, काल समानि हैं। तातैं विवेकी होंय सो स्नेह के वश, सेवक कौं तथा मित्र कौं अपने घरकी छिपी गूढ़ बारता नहीं जनावैं हैं। और जनावैं तो कबहूँ, काल समानि दुखदाता जानना। और जा घर विषैं सर्प होय, ताही घर विषैं निशदिन रहना होय। तौ कभूं न कभूं मरण होय। तातैं विवेकी, जा घरमें सर्प होय, तहां नहीं रहै। और हलाहल विषका खावना। सो मरण का कारण है। इत्यादिक कहे जे खोटे निमित्त, सो कबहूं न कबहूं मरण करैं। तातैं विवेकीन का इतनी जगह सावधानी ही जीतव्य जानना। आगे येती जगह मुनीश्वर नहीं रहैं। अरु रहें तो अपना संयम नष्ट होय। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—जहि मुणि थति णह भूपो, णीरो तण धाण अलप तँह होई।
णह धम्मी जण धम्मो, स पुर देसोय तज्जये जोई ॥ ६६ ॥

अर्थ—जहि मुणि थति णह भूपो कहिये, वहां मुनि की स्थिति नाहीं, जहां राजा नहीं होय। नीरो तण धाण अलप तँह होई कहिये, जल घास अन्न जहां थोरा होय। णह धम्मी जण धम्मो कहिये, धरमी जन अरु धर्म जहां नहीं होय। स पुर देसोय तज्जये जोई कहिये,

सो पुर–देश योगीश्वर तजैं हैं। भावार्थ–इतनी जायगा मुनीश्वर नहीं रहैं। एकतो जा देश में तथा पुर में आगे मुनि का वास नहीं होय। जा देश-पुरके बनमें मुनि रहते होंय, तहां रहैं। तथा मुनि-थिति करने जोग्य जो स्थान नहीं होय, तो ता क्षेत्र में योगीश्वर नहीं रहैं। रहैं तो संयम जाय। और जा देश–नगर का कोई राजा नहीं होय, तौ ता क्षेत्र में मुनीश्वर नाहीं रहैं। क्योंकि राजा रहित क्षेत्रन में प्रजा दुखी होय है। जीवन की दशा अन्यायी होय, जीव तहां अनाचारी होंय, निर्दयी होंय, इत्यादिक अनेक विपरीतता होय। सो यती का धर्म, तहां सधै नाहीं। न्याय–राज्य बिना दुष्ट प्राणी, दीर्घ शक्ति के धारी होंय, सो दीन जीवन कूं पीड़ा देंय। सो दीन जीवन कूं दुख होता देखि, दया–भण्डार का हृदय कोमल, सो अशक्तिवानों का दुख देखा जाता नाहीं। राजा होय तौ, हीन शक्ति के धारी जीवन कूं, बड़ी शक्ति का धारी पीड़ित नहीं करि सकै। और कदाचित् दीनन कौं शक्तिवान् सतावैं–दुख देंय, तौ राजा दण्ड देय। और राजा नहीं होय, तो प्रजा दुखी होय। सो प्रजा का खेद दया-सागर देखि, दुखी-चित्त होंय। तातैं राज्य रहित क्षेत्र विषैं, जतीश्वर नाहीं रहैं। और जिस देश मैं नदी, सरोवर, कूप, बावड़ीन का नीर कठिनता तैं मिलता होय। तहां यतीश्वर का धर्म पलै नाहीं। ऐसे क्षेत्र में नाहीं रहैं। और जहां तिर्यंचन के तनका आधार जो तिण, सो घास की बाहुल्यता होय, तो पशू साता पावैं, सुखी रहैं। और जहां घास की उत्पत्ति अल्प होय, ताकरि घास के खानेहारे तिर्यंच पीड़ा पावैं। ऐसे क्षेत्रन में करुणासागर नहीं रहैं। और

जिस क्षेत्र में अन्न की उत्पत्ति थोरी होय, तहां के जीव सदीव अन्न की चिंता सहित रहते होंय। तो ऐसे क्षेत्र में मुनीश्वर का धर्म, निरावाध नहीं सधै। तातैं ऐसे क्षेत्र में दया—भंडार जगत—गुरु यतीश्वर नहीं रहैं। और जिस देश—पुर विषैं सुआचारी धर्मात्मा जीव नहीं रहते होंय, तो यती के भोजन का अभाव होय। पापाचारी, अभक्ष्य के खानेहारे, दयारहित जीवन करि भख्या ऐसा कुक्षेत्र, तहां जती का धर्म नहीं सधै। तातैं ऐसे धर्मी जीवन रहित क्षेत्र में, नहीं रहैं। और जहां जिन धर्म की प्रवृत्ति नहीं होय। जहां जिन चैत्यालय में जैन शास्त्राभ्यास नहीं होय। तो ऐसे कुक्षेत्र में मुनीश्वर नहीं रहैं। इत्यादिक कहे जे आकुलता के कारण खोटे स्थान, तहां जगत पीर—हर नहीं रहैं। और कदाचित् रहैं तो संयम तैं नष्ट होंय। ऐसा जानना। आगे इन जीवनका विश्वास नहीं करिये, सो बताईये है——

गाथा——णख संगा पसु णदियो, विसदंती सस्त्रणग तीय मदपायो।
कितघण स्वामी दोहो, गभ खल चित्तोय णाहि विसयासो॥ ६७॥

अर्थ——णख संगा पसु कहिये, नख सींग के पशू। णदियो कहिये, नदी। विस कहिये, जहर। तथा दंती कहिये, दंतवारे तिर्यंच। सस्त्रणग कहिये, जाके हाथमें नग्न शस्त्र होय। तीय कहिये, घरकी स्त्री। मदपायो कहिये, दारु का मतवाला। कितघण कहिये, कृतघ्नी। स्वामी दोहो कहिये, स्वामी द्रोही। गभ खल चित्तोय णाहि विसयासो कहिये, गूढ़ मन का धारी, दुष्ट परणामी, इन सबका विश्वास नाहीं करिये। भावार्थ——जे जीव नख तैं परजीवन का घात करनहारे ऐसे

रीछ, सिंह, श्वान, मार्जार इत्यादिक दुष्ट तिर्यंच, ऐसे नखी जीवन का विश्वास करना जोग्य नाहीं। और जे जीव सींगन तैं परजीवन कूं मारैं। ऐसे भैंसा, वृषभ (बैल), मीढ़ा, मृगादिक, ये तीक्ष्ण सींग के धारी तिर्यंचों का विश्वास करना जोग्य नाहीं। और आप बहुत ही बलवान् जल का तैरनेहारा होय, तौ भी सावन—भादवा की वर्षान करि चढ़या जो बे—मरजाद जल, ऐसी भयानीक नदी बहती होय, ताका विश्वास करना योग्य नाहीं। और महा हलाहल जाके खाये मरण होय। देखे ही प्राण जांय ऐसे विषका, कौतुक मात्र भी विश्वास करि खावना योग्य नाहीं। तथा विषके धरनहारे क्रूर सर्प—विच्छू आदिक विष-वाले जीव, तिन विषीन का विश्वास नहीं करिये। और जे जीव दांतन तैं परजीवन का घात करैं काटैं—मारैं, ऐसे मगर, चीता, ल्याली, स्यार और ये सिंह, श्वान दांत—दाढ़ तैं भी मारैं। तातें सिंह, श्वान, सूस, गैंड़ा, हाथी, इत्यादि जे दंती हैं। सो इन दन्ती तिर्यंचन का विश्वास करना योग्य नाहीं। और जाके हस्त में नगन शस्त्र होय, ताका विश्वास नहीं करिये। और स्त्री का ज्ञान महा शिथिल होय है। ताका चित्त महा चंचल होय। ताके उर विषैं कोई बात ठहरे नाहीं, विषयन की अभिलाखनी, कार्य—अकार्य में नाहीं समझै। इत्यादिक अज्ञान चेष्टा की धरनहारी जो स्त्री पर्याय, महालोभ की धरनहारी, ऐसी स्त्री अपनें घरकी भी होय, तौ भी ताका विश्वास नाहीं कीजिये। अरु मदिरा—पायी मदके अमल मे बेसुध भया। ताकों भले—बुरे का भेद कछु नाहीं। जाका ज्ञान सर्व भ्रममयी होय

गया है। जाकैं अपनी परणति अपने वश नाहीं। पराधीन, अज्ञान चेष्टा का धारणहारा, ऐसा मदोन्मत्त, खस समानि बेसुध, ताका विश्वास नाहीं करिये। और जे जीव पराये किये उपकार कौं भूलें, सो कृतघ्नी कहिये। काहू ने भूखे कूं भोजन दिया। नंग्गे कूं वस्त्र दिया। रोग बिषैं मरते कौं अनेक यतन—औषधि करि बचाया। तुच्छ पदस्थ तैं, बड़े पदस्थ का धारी कीया। आदर रहित कूं आदर सहित कीया। निरधन कूं धनवान् किया। इत्यादिक उपकार जापै किए होंय, तौ भी तिन सब कूं भूलि जो दुर्बुद्धि उल्टा द्वेष करै। अरु ऐसा कहै, तुमने कहा किया ? हमारे भाग्य तैं भया। तथा हमारी बुद्धि के योग तैं हम सुखी भये व हमने पाया है। ऐसे कहनहारा, पराए किये उपकारन का उगलनहारा कहिये तजनेहारा—भूलनेहारा, ऐसे कृतघ्नी—पापाचारी का विश्वास नहीं करिये। क्योंकि जानै अनेक उपकार किए, तिसका ही नहीं भया। तो ऐसा कुबुद्धि जीव और के अल्प उपकार कौं कहा मानेगा ! ऐसा जानि यातैं डरि, इस कृतघ्नी का विश्वास नहीं करिये। और एक स्वामीद्रोही, सो जिस स्वामी के प्रसाद अनेक सुखपाये, धन पाया, छोटे तैं बड़े होय गये। समय पाय उसही स्वामी का द्वेषी होय बुरा चाहे, ताकूं दुखदाई होय। ऐसे स्वामी-द्रोही, अपजस की मूर्ति, मृतक समानि, महालोभी, ताका विश्वास नहीं करना भला है। और जो अपने चित्त की बारता औरन कौं नहीं जनावै। महागूढ़ हृदय का धारी। मनमें और, वचन में और, काय में और ऐसी कुटिल परणति का धारी। तीव्र माया कषाय के उदय

का भोगनहारा, दगावाज, ताका विश्वास नहीं करना। ये स्वामीद्रोही है। काहू का मित्र नहीं है। तातें इस स्वामीद्रोही का विश्वास नहीं करना। और एक दुष्ट है सो पराया सुख कूं देखि, आप दुखी होय। पर जीवन कूं दुखी देख आप सुखी होनेहारा, रौद्र परणामी, दुष्ट है। सो ऐसे दुष्ट का विश्वास नहीं करना। यातैं नखी, सींगी, नदी, विषी, दंती, नगन शस्त्रधारी, मदोन्मत्त, कृतघ्नी, स्वामीद्रोही, दुष्ट स्वभावी इन दश जाति के जीवन का विश्वास न करना सुखकारी है। इति सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अनेक जुगति उपदेश वर्णनो नाम, पच्चीसवीं संधि पूर्ण भयी ॥ २५ ॥ आगे मुखमें मीठा, पीठ तैं द्वेष करनहारा ऐसा मित्र, तजवे जोग्य है। सो दृष्टान्त सहित बतावैं हैं—

गाथा—पूठय काजय हंता, पतखो पीय वयण सिरणावो।
सय सठ मायापिंडऊ, जय विसकुंभोय वदन पय जेहो ॥ ६८ ॥

अर्थ—पूठय काजय हंता कहिये, जो पीछे तौ कार्य का घात करै। पतखो पीय वयण सिरणावो कहिये, प्रत्यक्ष मीठा बोलै, मस्तक नवावै। सय सठ माया पिंडऊ कहिये, सो मूरख दगावाजी का पिण्ड जानना। जय विस कुंभोय वदन पय जेहो कहिये, जैसे मुख पै दूध लग्या विष तैं भख्या कलश होवै। भावार्थ—जो कोई ऐसा दुर्बुद्धि-कुटिल अपना मित्र होय, तो ताकौं पहिचान कैं तजना भला है। कैसा है वह मित्र, पीठ पीछे तौ अपनी निन्दा करै, हाँसि करै। सदीव ऐसा छल देखा करै जाकरि मान खण्ड करै, तथा धन नाश करावै। मारनेकूं, दुखी करवे

कूं छल देखा करै। इत्यादिक दुष्टता राखै। अरु प्रत्यक्ष मिलै तब मुंह पै हाथ जोड़ि, बारम्बार बहुत शीश नवाय, विनय करै, मिष्ट वचन बोलै, मुख–प्रसन्न करि बातैं करै। स्नेह जनावै, सेवक होय रहै। धरती तैं हस्त लगाय सलाम करै। पुत्र सा होय रहै। किन्तु अन्तरङ्ग की दुष्टता नहीं तजै। ऐसे दुष्ट चित्तका धारी पाखण्डी, मायावी मित्र कूं तजना ही सुखकारी है। कैसा है यह मित्र, जैसे विषका भर्या कलश होय, ताके ऊपर थोरा दूध भर्या होय। सर्व अनजान जीवन कूं, सर्व कलश दूध का भर्या भासै। सो कोई याकौं दूध का भर्या जानि, ऊपर के दूध कूं खायगा तौ प्राण तजैगा। तातैं वह दूध भी जहर समानि है। तातैं या सर्व ही विष का भर्या जानि, तजना भला है। तैसेही अन्तरंग दोष करि भर्या, मुख मीठा, ऐसा मित्र, विषके कलशसमानि जानि तजना योग्य है। आगे एती सभा विषैं सभा विरोध वचन न बोलै। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा——धम्मसभा णिप पंचय, जाय लोयोय बंधुवगणाणी।
इणविरुद्ध वच करई, सच्चर सठ लोयणिद दुहलेहो ॥ ६६ ॥

अर्थ——धम्म सभा कहिये, धर्म सभा। णिप कहिये, राज्य सभा। पंचय कहिये, पंच सभा। जाय कहिये, जाति सभा। लोयोय कहिये, लोक सभा। बन्धु वगणाणी कहिये बन्धुवर्गों में। इणविरुद्ध वच करई कहिये, इन विरुद्ध वचन का बोलना। सच्चर सठ कहिये सो जीव मूरख। लोयनिंद दुह लेहो कहिये, लोक निन्दा अरु दुख पावै। भावार्थ--

विवेकी होंय सो एती जायगा में सभा विरुद्ध वचन नहीं बोलैं। और ऐती सभान में सभा विरोधी बोलै, ताकूं मूर्ख कहिये। सो ही बताईये है। एक तो मोक्ष मारग सूचक धर्म तथा धर्म के कारण जिन धर्म कौं सेवनहारे धर्मात्मा जीव। तिन धर्मात्मा जीवन की सभा विषैं सर्व धर्मात्मा जीव, धर्म को बढ़ावे कौं, प्रभावना होवे कौं, पुण्य बढ़वे कूं नाना चरचा करते होवें। तिस अवसर में सर्व सभाके धर्मात्मा पुरुषों ने ऐसा कह्या, जो यहां कछू द्रव्य लगावना। तथा तन तैं यहां कछू खेद खावना, ज्यों पुण्य होय। ऐसा प्रवन्ध विचार्‍या। सो सब कौं परस्पर बूझ चले कि जो धर्मवृद्धि कूं यह उपाय विचार्‍या है, सो इस प्रबन्ध में सर्व प्राणीन कूं रहना योग्य है। सो ऐसा सुनि कें कोई कहै, जो हम काहू के प्रबन्ध में नहीं, अपनी इच्छा होय तैसे धर्म साधन करेंगे, जाकौं प्रबन्ध में रहना हो सो रहो, हम नहीं हैं। ऐसी धर्मात्मा-सभाके खंडवे कौं मद सहित वचन बोलै, सो महामूरख कहिये। ये धर्म सभा विरोधी वचन, महा पाप-फल का दाता, धर्म घातक वचन है। सो धर्मात्मा विवेकी ऐसा नहीं बोलै। धर्मात्मा होय, सो धर्म प्रबन्ध रूप वचन सुनि कैं; हर्ष सहित सर्व कूं ऐसा कहै, जो तुम धन्य हो। भली विचारी। हम आज्ञा प्रमाण सर्व के वचन प्रबन्ध में शामिल हैं। सर्व ने करी, सो हम कूं प्रमाण है। ऐसा वचन सभामें बोलना, उत्तम धर्म-फल का दाता, धर्म सभा सुहावता होय है। सो ऐसी बोलनेहारा पुरुष प्रसंशा योग्य है। और जो पापात्मा होय, सो धर्म सभा विरोधी वचन बोलै है, सो ये पाप बन्ध

का कारण है। तातें पाप तैं भय खाय, धर्मात्मा धर्म-सभा विरोधी वचन नहीं बोलैं हैं ॥१॥ और राजान की सभा विषैं वचन बोलिये सो सत्य व विनय सहित, अपने-पराए पदस्थ प्रमाण, राजा आदि सर्व सभा कूं सुहावता वचन बोलना, सो विवेकी का धर्म है। और कदाचित् राजा के अविनय सहित तथा सभा कूं अप्रिय, सभा विरुद्ध वचन बोलै, तो मरणादि दुख कूं प्राप्त होय। तातें राज्य-सभा विरुद्ध वचन नहीं बोलिये ॥ २ ॥ और पञ्चन में जहां सर्व पञ्च भले-मनुष्य न्याति के तथा परन्याति के मिल, मनसूबा तथा न्याय करैं हैं। तथा कोई प्रबन्ध करते होंय। तहां कोई परस्पर पूंछैं हैं। भाई हो, सर्व पंचन का यह प्रबन्ध है। सो इस मनसूबे में कायम हो अक नाहीं ? फलाना जी, पंच तुम पै ऐसा दोष लगावैं हैं। सो ऐसा दंड विचारैं हैं। सो तुमको कबूल हैं कि नहीं ? तब विवेकी पुरुष तौ ऐसा कहै। कि भाई ! हम बड़े हैं, तथा धनवान हैं। तथा राजपंचन में बड़ा हमारा पदस्थ है तो कहा भया। ये हम कूं दोष है। सो सर्व पंच मिल ठहरावें, सो हमको प्रमाण है। पञ्चन की आज्ञा हमारे शिर पर है। इत्यादिक पंचन की बड़ाई व अपनी लघुता रूप वचन बोलै, सो विवेकी है। सो वचन बोलना, पंचन में प्रसंशा योग्य है। यश दायक है। और कोई भोरा, मन्द ज्ञान करि, अपयश कर्म के उदय, ऐसा कहै। कि जो हम को दोष लगावैं हैं। ऐसे-ऐसे दोष वारे तो हम पंचन में घने बतावेंगे। हमारे ऊपर कोई दोष लगावैगा तौ हमभी पंचन तथा कहनेवारे कूं राजी करौंगा। सर्व पंचन में

लाय ऐसी विपत्ति डारोंगा, सो सर्व घर-धन से जायगा। एक-दोय की आबरू ले मरूङ्गा। मोकों दोष लगावनहारा तथा दण्ड देनेहारा कौन है? घनी करोगे तो पंच अपनी पंचायती लेवेंगे। मेरे कछु पंचन तैं अटका नाहीं। इत्यादि पंचन में सभा-विरोध वचन बोलै, सो जीव अपयश की मूर्ति, पञ्चन करि निन्दा पावै है। ताकौं महा मूरख कहिये। तातैं पञ्चन में सभा-विरोध वचन नहीं बोलिये ॥ ३ ॥ और जहां अपनी जाति इकट्ठी होय, कोई जाति का प्रवंध बांध्या होय। तहां कोई जाति में प्रवृत्ति नाहीं है। तथा कोई जाति का खान-पान मनै है। तथा कोई अभक्ष खान-पान मनै है। तथा कोई रीति का वस्त्र-आभूषण राखना मना है। तथा कोई व्यापार—वणिज, बांकी पाग बांधना, फैंटा का बांधना, शस्त्र का बांधना, इत्यादिक मलिन-क्रिया खोटा—चलन मनै है। सो काहू तैं कोई एक बात अयोग्य बन गई। ताकौं जाति के सर्व पञ्चोंने बुलाय कैं कही। हे भाई, तुमने अज्ञानता करि यह जाति-विरोधी कार्य किया है। सो सर्व जाति तेरे पै दण्ड माँगै है। तैंने पञ्चन की मर्यादा उल्लंघन करी है। तातैं ये दण्ड देहु। तब जे विवेकी, जाति मर्याद का जाननेहारा होय। सो तो जाति के वचन सुनि कैं, आप हस्त जोरि बिन्ती करै। जो अयोग्य आचार मोतैं बन्या तो सही है। अब जो सर्व जाति की आज्ञा होय, सो ही मोकों प्रमाण है। अब आगे तैं ऐसा आचार-क्रिया नहीं करूङ्गा। ऐसा वचन सर्व जाति कौं सुखदाई बोलना, सो तो यश पावने का कार्य है। और कोई मूरख होय सो ऐसे कहे, जो हम

काहू की चोरी थोड़ी ही करी है। जाति दण्ड देय, सो जाति कोई राजा थोरी ही हैं। ऐसी सीख और कोऊ कौं देय तो देय। हम तौ जैसी हमारी इच्छा होयगी, तैसा खान–पान, आभूषण–वस्त्र करेंगे। किसका मुँह है सो हम कौं मनै करेगा। इत्यादिक जाति विरोधी वचन बोलना, सो मूर्खता है। निन्दा पावै है। तातैं जाति सभा में सभा विरोध वचन नहीं बोलना ॥ ४ ॥ और लौकिक विषैं भला कार्य प्रगट होय, ताकौं निन्दिये नाहीं। और लौकिक विषैं जो कार्य निंदनीक होय, ताकूं अङ्गीकार नहीं करिये, सो ताकौं विवेकी कहिये। जैसे चोरी, जुआ, परस्त्री, व्यभिचार, वेश्यागमन, पर जीवघात, मदमांसादि खाना, इत्यादिक सप्त व्यसन कारज ये लौकीक कर निन्द्य हैं। सो इनकौं करै, अरु ऐसा कहै कि जो हमारी इच्छा होयगी सो करेंगे। हमारा कोई कहा करेगा ! ऐसा वचन कहै, ताकूं मूर्ख कहिये। निन्दा पावै है। तातैं लोक–निद्य कारज नहीं करिये ॥५॥ और अपने कुटुम्ब, माता, पिता, पुत्र, भाई, स्त्री इत्यादिक सज्जन स्नेही बन्धुओं के समूह कौं सुख उपजावै ऐसा वचन बोलै, सो तो विवेकी है। और बन्धु विरोध बोलना, जो ये सर्व कुटुम्ब मोकौं हन्या चाहै है। मैं जानूं हूं, मोहि देखि नाहीं सकैं हैं। मेरे सर्व द्वेषी हैं। सो मेरो दाव लगैगा तो मैं भी सर्व का घात करूंगा। तथा मेरे इन पै कहा अटक्या ? मेरे पास धन होयगा तो आपही आय मेरे पाँयन परैंगे। इत्यादिक जिन कूं सुनि सर्व कुटुम्ब कूं दुख होय। जिन करि सर्व कुटुम्ब का मान खण्डन होय, ऐसे कुटुम्ब दुखदायक वचन बोलना सो मूर्खता है। तातैं

कुटुम्ब विरोधी बचन नहीं कहिये । ऐसे धर्म सभा, राज सभा, पञ्च सभा, जाति सभा, लौकिक सभा, बन्धु सभा, इतने स्थान कहे तिनकौं दुखदाई, सभा विरोध बचन बोलै तौ इस सभा विषैं पञ्च-निंद्य होय, लोक निंद्य होय, बन्धु वर्ग करि निंद्य होय, ये तीन निंदा लेय पीछे जीवना वृथा है। ऐसा पुरुष जीवता ही सर्व कूं मृतक समान भासै है। ताकरि तो यह भव बिगड़ जाय है। और राज सभा विरुद्ध तैं तन का घात, धन का घात होय, आंगोपांग छेदन होय, इत्यादिक होय। और धर्म सभा विरोध तैं पाप बन्ध होय, ताकरि नरकादि दुर्गति के दुख पावै। तातैं धर्मात्मा, विवेकी, दोऊ भव के सुख-यश का अभिलाषी होय, तिनकौ ऐसा वचन हित-मित सर्व कूं हितकारी बोलना। ऐसा जानि विरुद्ध बचन का त्याग करना जोग्य है। आगे शास्त्राभ्यास करिकैं येते गुण नहीं भये, तो वह शास्त्र के अभ्यास का शब्द, काक के शब्द समान है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—सुत सुणि पथण णयोगा, णधम्मो णय सांतरसपाणो।
तऊपथण किंहकाजउ, वायसइव धुणि थांणि उयलायो ॥ १०० ॥

अर्थ—सुतसुणि कहिये, शास्त्र सुनि। पथण कहिये, पठन करि। णयोगा कहिये, नहीं वैराग्य। ण धम्मो कहिये, नहीं धर्म। णयसांतरसपाणो कहिये, नहीं शान्ति रस का पान। तऊ पथण किंह काजउ कहिये, सो पठना किह काज है? वायस इव कहिये, काककी नाईं। धुणिथांणि कहिये, धुनि करि। उयलायो कहिये, उकलाया। भावार्थ—यह जिनेन्द्र देव करि

कह्या जो दयामई धर्म सहित शास्त्रन का कथन, तिनका रहस्य पाय, अनेक धर्मधारी जीवन ने अपना कल्याण किया। सो ऐसे शास्त्रन का अभ्यास करके तथा सुनि कैं भी जाका हृदय वैराग्य कूं नही प्राप्त भया। तो ऐसे शास्त्रके पढ़ने तैं तथा सुनिवे तैं, कहा कार्य सिद्ध भया? और जिन जीवन नै दयामई रस कर भरे ऐसे शास्त्र, तिनका अभ्यास करके भी पाप कार्यन तैं भय खाय, धर्म रूप नहीं आचरण किया, परणति विषैं धर्म की अभिलाषा रूप नहीं भया। तो ऐसे आगम के अभ्यास का खेद वृथा ही गया। और आप समान सर्व षट्कायक जीव हैं ऐसे भेद का बतावनहारा शास्त्र, तिनका अभ्यास करि, सुनि कैं भी सर्व आकुलता रहित, शान्त रस करि भरया, समता समुद्र, ताका अर्थ रूपी अमृत कूं पीय, संतोष कूं नहीं पाया। तौ ऐसे शास्त्रन के अभ्यास करि भया जो खेद, सो विरथा ही गया। और कर्म नाश मोक्ष विषैं धरनहारा, पर वस्तु तैं खेद छुड़ाय निरबन्ध करन-हारा, ऐसे शास्त्र तिनके अभ्यास करके भी आत्मीक रस पाय निराकुल दशा नहीं करी, तो शास्त्रन के अभ्यास का खेद करि, किछू सिद्ध नहीं भया। भो भव्य, शास्त्रन का अभ्यास करि, नाना प्रकार पठन-पाठन करि, अनेक शास्त्र गुरुन के मुख तैं सुनि, तिन करि अक्षर ज्ञान तो बहुत किया, बांचना भले प्रकार सीखा, अनेक छन्द, काव्य, गाथा, संस्कृत, प्राकृत करि, देश भाषा करि उपदेश देना भी सीखा, इत्यादिक चतुराई तो तैंने सीखी। किन्तु वैराग्य भाव न बढ़ाया। पाप तज, धर्म दयामई नहीं सुहाया। और क्रोध-मानादि

कषाय बुझाय, शान्ति-सुधा—रस नहीं पिया। तौ शास्त्र का पठन-पाठन वृथा ही गया। सम्यग्दृष्टी के मूल अनुभव का फल स्वभाव-परभाव का निरधार ये सर्व ऊपर कहे जो गुण, सो सर्व आत्म—कल्याण के कारण हैं। सो शास्त्राभ्यास तैं होय हैं। शास्त्रन का अभ्यास करि अनेक जीव मोक्ष मारग जानि, समता भाव धरि, मोक्ष कूं पहुंचैं हैं। ऐसे शास्त्रन का अभ्यास करि, अनेक खेद खाय पठन करि, ऊपर कहे गुण ताकूं प्राप्त नहीं भया, तो सर्व खेद विरथा ही गया। जो शास्त्राभ्यास तें वैराग्य नहीं भया, धर्म अच्छा नहीं लाग्या, नहीं शान्त भाव भये, तो तेरा शास्त्राभ्यास का शब्द ऐसा भया, जैसा दीरघ शब्द करि काक उकलावै है। तैसे इन गुण बिना शास्त्रके बांचने का शोर, काक शब्दवत् जानना। आगे मरण हू तैं अधिक, निद्रा को बतावैं हैं——

गाथा——णिंदा मीच समाणो, मीचोय गभवांत होई इकवारऊ।
णिंदो छिंण छिंण घादय, णाण आदाय देयगय असुहो ॥ १०१ ॥

अर्थ——णिंदा मीच समाणो कहिये, निद्रा तौ मौति समानि है। मीचोय गभवान्त होइ इकवारऊ कहिये, मौत एक भव में एक बार होय। णिन्दो छिंण छिंण घादय कहिये, निद्रा छिन-छिन घात करै है। णाण आदाय कहिये, इस प्रकार आत्मा के ज्ञान कूं घात कर। देय गय असुहो कहिये, अशुभगति देय है। भावार्थ-यह संसारी जीव तौ मोह के वशीभूत भये, निद्रा कर्म के उदय भया जो आत्मा के ज्ञान दर्शन का घात, ताके निमित्त पाय, आत्मा जड़ समानि

होय, ता निद्रा को प्राप्त भये जीव, साता—आनन्द भया मानैं हैं। सो हे भव्य, ये निद्रा मृतक समानि चेष्टा लिये जाननी। तथा इसे मृतक हू तैं अधिक दुख-दायक जानना। सो ही बताईये है। जो मृत्यु है सो तो एक शरीर के उदय विषैं एक वार, आयु के अन्त उदय होय, आत्मा के दर्शन-ज्ञान कूं घातै है। और निद्रा है सो आत्मा का मुख्य गुण ज्ञान-दर्शन ताकौं छिन-छिन में घातै है। और ये निद्रा भले गुण का घाति करि, अशुभ कर्म का बन्ध करि, खोटी गति देय है। तातैं निद्रा कूं मृत्यु तैं हू दीरघ दुख-दाता जानना। ताही तैं जोगीश्वर, निद्रा का प्रवेश अपने स्वभाव में नहीं होने देंय हैं। ऐसा जानना। आगे दुष्ट जीवन का स्वभाव दृष्टान्त देकर बतावैं हैं—

गाथा---दुज्जण जोंक समभावो, इगओयण इग रुधर गह लेई।
सथण लगो वा पोसउ, णिजणिजपकत्य णाहि को जहई॥ १०२॥

अर्थ---दुज्जण कहिये, दुर्जन। जौंक कहिये, जौंक। सम भावो कहिये, ये एकसे हैं। इग ओयण कहिये, एक तो औगुण। इग रुधर गह लेई कहिये, एक रुधिर गहलेय। सथण लगो कहिये, थन तैं लागै। वा पोषऊ कहिये, भावै पोषै। णिज णिज पकत्य कहिये, निज २ प्रकृति। णाहि को जहई कहिये, कोई तजता नाहीं। भावार्थ---संसारी जीवन के अनेक स्वभाव होंय हैं। तिन में केतेक ऐसे हैं जो परकौं दुख दाई, दुष्ट स्वभावी, पर दुख सुखिया, पर सुख दुखिया, अन्य जीवन कूं दुखी, दरिद्री, रोगी, शोकी, भयवान्, मान भङ्गी

इत्यादिक असाता सहित देख महा सुखी होंय । और कोई सुखिया को अच्छी तरह खावता पहिरता, अच्छे भोग भोगता, नाचता, गावता, हँसता, रोग रहित, धनवान् इत्यादिक प्रकार सुखी देखै तौ दुखी होय। ऐसे पापाचारी, दुष्ट अङ्गी, रौद्र परिणामी को दुरजन स्वभावी जानना। सो ये दुर्जन स्वभावो अनेक दोषन तैं भरया है। याका सहज स्वभाव ही दुराचार है। याकों शुभ करवे का कोई उपाय नाहीं। याकों शुभ भी करो तो दोष ही अङ्गीकार करैं। इस दुष्ट का स्वभाव जोंक समान है। जौंक अरु दुर्जन, इन दोऊन का एक स्वभाव है। दुर्जन अवगुण का ही ग्रहण करे है। यह याका सहज स्वभाव ही है। और जोंक है, सो लोहू काही ग्रहण करै। इस जोंक का भी यही स्वभाव है। देखो इस जोंक को दूध के भरे आंचल तैं लगावो, तो दूध तज कें स्तन का लोहू पीवै। और इस दुर्जन कों चाहे जेता पोषौ, ताके ऊपर चाहे जेता उपकार करौ, परन्तु इसका जब प्रयोजन नाहीं साध्या, तब ही सर्व गुण भूलि करि, औगुण ही अङ्गीकार करै। यह अवगुणग्राही, इसका अनादि स्वभाव ही जानना। ऐसे जोंक अरु दुर्जन इनकी प्रकृति-स्वभाव है। सो अपने स्वभाव कूं कोई तजता नाहीं। कोई जतन तैं स्वभाव, काहू का पलटता नहीं। सो ऐसा जानि इस दुष्ट जन का संग हेय करना भला है। आगे अपने भावन की उपराजनातैं ही रोग की दीरघता होय है ताही कौं बतावै हैं—

गाथा---कच कच गद विण संखो, पुव्वो पाजेय जंतु तण होई।

उदय काल अणठो, भोगे ण ठयण और को पायो॥ १०३॥

अर्थ—कच कच कहिये, रोम-रोम । गद विण संखो कहिये, अगणित रोग हैं। पुव्वो पाजेय जन्तुतण होई कहिये, अगले भवके उपारजे, जीव के शरीर में होंय हैं। उदय काल अणठो कहिये, उदय आये अनिष्ट हैं। भोगे ण ठयण और को पायो कहिये, भोगे ही जांय और कोई उपाय नाहीं। भावार्थ—इन संसारी जीवन के तन विषैं देखिये, तौ एक २ बालके ऊपर अनेक २ रोगन की उत्पत्ति है! रोम–रोम, रोगन तैं भरया है। सो इस जीव ने पूरव भव में जैसे उपारजे हैं तैसे ही शरीर में रोग हैं। सो तिष्ठै हैं, सत्ता में बैठे हैं। सो वर्तमान काल तौ कोई ही रोग दुखदाई नाहीं। परन्तु जब अवाधा काल पूरण होय उदय आवैंगे, तब महाभयानीक दुख कूं करेंगे। तब अनिष्ट लागैगा। दीरघ वेदना प्रगट होयगी। तिनके आगे, आत्मा दुख भोगता--भोगता शिथिल होयगा। अनेक कष्ट उपजेंगे। तिनके दूर करबे कूं कोई की सामर्थ्य नाहीं। मंत्र, तंत्र, जंत्र, देव साधन, ज्योतिष, वैद्यक इत्यादिक सर्व उपाय विरथा होय हैं। तातें पूरव पाप-परणामन का बन्ध, ताकौं भोगे ही जाय है। और कोई मेटने का उपाय नाहीं। ऐसा जानि विवेकी धर्मात्मा पुरुषन कूं उदय आई असाता में समता सहित दृढ़ रहना योग्य है। आगे और दुख मेटने का तथा रोग के मेटने का तौ उपाय है। परन्तु काल का उपाय नाहीं। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—खुधा अण तिषणीरो, आमय कुठादि होउ उवचारो।
अन्तक एह उवचारो, हरिसुर कम्पय दीण लख होई॥ १०४॥

अर्थ—क्षुधा अण कहिये, क्षुधा कूं अन्न। तिषणीरो कहिये, तृषा कूं नीर। आमय कुष्ठादि दोऊ उपचारो कहिये, कोढ़ कों आदि लेय सब रोगां का भी उपचार है। अंतक एह उपचारो कहिये, परन्तु काल का उपचार नाहीं। हरिसुर कम्पय दीण लख होई कहिये, इन्द्र देव भी उसे देख, दीन होय कंपायमान होंय। भावार्थ—इस संसार में अनेक वेदना-दुख का का इलाज है। परन्तु काल का जतन नाहीं। सो ही बताईये है। बड़ा रोग भूख है, ताका इलाज तो अन्न का भोजन है। ताकरि क्षुधा रोग उपशान्त हो जाय है। और तृषा रोग की औषधि जल है। सो तृषा, जल तें उपशान्त हो जाय है। और कुष्ट रोग, वायु, पित्त, ज्वर, क्षय, खांसी, स्वांस इत्यादिक रोगन के जतन कूं अनेक औषधि कही हैं। तिन करि रोग उपशान्त होय है। परन्तु एक काल रोग का उपचार नाहीं। ए काल कोई भी जतन तें मिटता नाहीं। इन्द्र, देवादि ऐसे भी, काल का आगमन देखि, कंपायमान होंय हैं। ताका नाम सुनतें, बड़े २ योधा, दीनता कूं धारें हैं। तातें हे भव्य, इस काल तें बड़े-बड़े नहीं बचे, तीन लोक में कोई ऐसा स्थान नाहीं, जहां काल तैं बचैं। सर्व स्थानकन में जहां जाय, तहां मारै। तातें हे धर्मी, तू काल तैं बच्या चाहै है तो मोक्ष के पहुंचने का उपाय करि। तातें तन का धरना-मरना सहज ही मिटै। मोक्ष में काल नाहीं। और मोक्ष बिना सर्व लोक स्थान में, सर्व संसारी तनधारी जीव, काल का भोजन है। आगे इष्ट वियोग कहां है, कहां नाहीं है। ऐसा बतावें हैं—

गाथा—इठ व्योगा णठ जोगा, इठजोगा णठ वयोग कव होई।
ये भवचर ववहारऊ, सिद्धो विवरीय रहइ इण संगो ॥ १०५ ॥

अर्थ—इठ व्योगा णठ जोगा कहिये, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग। इठ जोगा णठ वयोग कव होई कहिये, कबहुं इष्ट का संयोग, अनिष्ट का वियोग। ये भवचर ववहारऊ कहिये, ये संसारी जीवन का व्यवहार ही है। सिद्धो विवरीय रहई इण संगो कहिये, सिद्ध इन सब तैं विपरीत–रहित हैं। भावार्थ—जे संसारी तनधारी जीव हैं। तिनकौं कबहुं इष्ट का वियोग, कबहुं अनिष्ट का संयोग होय है। तिन करि आत्मा दुखी होय, विकल्प–आरति करि पाप का ही बन्ध करै है। और कबहुं इष्ट का संयोग होय है, अनिष्ट का वियोग होय है। तब जीव पुण्य के उदय में हर्ष मानै है। सो ऐसा दुख–सुख संसारी जीवों का विवहार ही जानना। और ये कहे इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगादिक दुख-सुख सो सिद्धन में नाहीं। सिद्धन कौं इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगादिक के कारण नाहीं। तातैं कारण के अभाव तैं संसारी सुख–दुख भी नाहीं। तातैं सिद्ध भगवान् सदा सुखी जानना। आगे काल आगे कोऊ शरण नाहीं, एक धर्म शरण है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—जम्मण मण जग लगऊ, सुर णर णारय तिरीय किंह भाजय।
सहु अंतक मुह कवलय, एको संणाय धम्म अणिणाहो ॥ १०६ ॥

अर्थ—जम्मण मण जग लगऊ कहिये, जन्म–मरण जग कौं लागा है। सुर कहिये,

देव। णर कहिये, मनुष्य। णारय कहिये, नारकी। तिरीय कहिये, तिर्यंच। किंह भाजय कहिये, कहां भागैं। सहु कहिये, सर्वही। अंतक मुह कवलय कहिये, ये सब अंत में काल के मुख का ग्रास हैं। एको संणाय धम्म कहिये, एक धर्म का शरण है। अणिणाहो कहिये, और नाहीं। भावार्थ—शरीर—इन्द्रिय नाम—कर्म के उदय तैं नवीन पर्याय का उपजना, सो तो जन्म कहिये, और उत्पत्ति भई थी जो पर्याय सो अपनी थी, मर्याद पर्यंत रही। पीछे आयु के पूरण होते पर्याय तैं छूट कैं अन्य गति जाना, सो मरण कहिये। इसकी आयु-स्थिति का प्रमाण है। सो समय तैं लगाय घड़ी, पहर, दिन, वर्ष, पल्य, सागर, सो ही बताईये है। तहां जघन्य युगता असंख्यात समय जाय, तब एक आंवली कहिये। और असंख्यात आवली काल व्यतीत भये, तब एक श्वासोच्छ्वास काल होय है। ऐसे श्वासोच्छ्वासन तैं संसारी जीवन की स्थिति है। सो ये संसारी जीव इस शरीर में इतने श्वासोच्छ्वास रहेगा। सो काय का आयु-कर्म जानना। सो यह पर्यायधारी संसारी जीव, जब अपनी स्थिति प्रमाण श्वासोच्छ्वास भोग चुकै है, तब मरजाद पूर्ण होते, आत्मा पुद्गलीक शरीर के संग कूं तजै है। ताका नाम विवहार नय करि लौकिक में मरना कहैं हैं। ऐसे ये जन्म—मरण, इन जगवासी तन-धारनहारे जीवन कूं सदैव लागा है। नाना प्रकार भोगन के भोगनहारे, अनेक ऋद्धि के धारी, सागरों पर्यंत जीवनहारे, ऐसे जो देव हैं। तथा नानाप्रकार दुख—सुख करि मिश्रित जीवनहारे, जो मनुष्य पर्याय धारी। और अनेक मन—अगोचर दीरघ—दुखन का सागर

ऐसी नरक गति है। और अल्प-सुख, दीरघ-दुख का स्थान तिर्यंच गति है। ऐसे चारि गति के जीव समुच्चय अनंत हैं। सो ये जन्म-मरण के दुख से भागकर कहां जांय ? सर्व जायगा काल मारै है। तातें ये सर्व च्यारि गति वासी जीवन के तन आकार हैं, सो सर्व काल के ग्रास हैं। भावार्थ-कोई जीव कूं अब, कोई कूं चारि दिन पीछे, काल सर्व कूं खायगा। बचवे का कोई उपायं नाहीं। केवल एक धर्म शरण है, और नाहीं। तातें विवेकी जन जन्म-मेरण के दुखन तैं डर्या होय ते भव्यात्मा, धर्म का सेवन करि, सिद्ध में चालो। ये पुद्गलीक तन छोड़ि, अमूर्तीक पद धारो। तहां सदीव सुखी रहोगे। वहां काल का आगमन नाहीं। यहां के शुद्ध अमूर्तीक आत्मा, काल के भय करि रहित हैं। तातें जे च्यारि गति के मरण तैं भागि, काल तैं बच्या चाहो, तो धर्म का शरण लेहु, और शरण नाहीं। आगे अग्नि भेद तीन प्रकार हैं। सो ये अग्नि काहे-काहे कूं जालै। ऐसा बतावै हैं—

गाथा—सोगोणल जे दभ्कय, दभ्कय जे आतिभ्काण वहणीए।
उपला अयणी दभ्कय, इव त्रय ज्वालाय काय मण दाहू ॥ १०७ ॥

अर्थ—सोगोणल जे दभ्कय कहिये, सो शोक अगनि तैं जलै। दभ्कय जे आतिभ्काण वहणीए कहिये, जे आर्त्तध्यान रूप अग्नि तैं जल्या। उपला अयणी दभ्कय कहिये, जो काष्ठ-छांणैं (कंडा-उपला) की अग्नि तैं जला। इव त्रय ज्वालाय काय मण दाहू कहिये, इन तीन अग्नि कर काय-मन जालै है। भावार्थ-शोक अगनि के बहुत भेद हैं। तहां आसाता

कर्म के उदय तैं इष्ट वस्तु का वियोग भया। ताके निमित्त पाय, कर्म के उदय करि भई जो मन की भस्म करनहारी शोक रूपी अग्नि, सो ताकरि दग्धायमान जो जीव, सो सदीव चिंतावान भया, अशुभ कर्म का बंध करता, दुखी होय। तन दुर्बल होय। तातैं इस शोक को अग्नि कहिये। जैसे अग्नि का दग्ध्या पुरुष कूं दुख के आगे अन्न नहीं भावै, निद्रा नहीं आवै। सुख के निमित्त नृत्यादि मिलैं, तो भी दाह के दुख तैं सुखी नहीं होय। तैसेही शोक-अग्नि करि जाका हृदय जल्या होय, ताकौं शोक तैं अन्न नहीं भावै, निद्रा नहीं आवै। अनेक गीत, नृत्य, वादित्रन के सुखतैं अरुचि होय, सुख न होय। इस शोक के तीव्र उदय मे बुद्धि नष्ट होय। उक्ति–जुक्ति नहीं उपजे है। भला ज्ञान का अभाव होय। पढ़्या ज्ञानादिक यादि नहीं आवै। अनेक रोगन की उत्पत्ति होय। इत्यादि दुख, शोक अगनि करि जल्या, ताकैं प्रगटैं हैं। और जाके शोक अग्नि उर में होय, ताके बाह्य चिन्ह एते होंय, सो कहिये हैं। चित्त तो ताका विभ्रम रूप, भ्रमता होय। गाल पै हस्त देय कैं बैठना। अश्रुपात होना। दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेना। रुदन करना। ये सबही कारण दुख के बढ़ावनहारे हैं। ताहीतैं विवेकी समता दृष्टि के धारी धर्मात्मा, इष्ट वियोग में शोक नहीं करैं। ये तो शोक अग्नि है ॥१॥ अब आर्त ध्यान रूप अग्नि है। सो याकौं, कारण रूपी पवन जब मिलै है। तब प्रज्वलित होय, दाह उपजावै है। सोही कहिये है। जो भली वस्तु गई, ताके विचार तैं आर्त्त अग्नि बढ़ै है। तथा खोटी वस्तु के मिलाप की चिंता, ताके निमित्त तैं आर्त्त अग्नि बढ़ै। तथा रोग पीड़ा

काहू की देख ऐसा विचार उपज्या, जो मेरे रोग न होय तो भला है। तथा मेरो रोग कैसे जाय ? ताकी आर्त्त अग्नि प्रज्वलै है। और कार्य किये पहिले, आगामी फल की आरति। इत्यादिक अनेक प्रकार आरति सो ही भई अगनि, सो इस अगनि करि जल्या पुरुष कूं, बड़ा दुख होय। सो इस आरति कौं कैसे जानिये। सो कहिये है। एकान्त बैठना, आरति वाले कूं मनुष्यन की भीड़ अच्छी नाहीं लागै है। तातैं इकला, एकान्त स्थान में बैठे। और की बात नहीं सुहावै। शोर होय—बहुत जन बतलावते होंय, सो नहीं सुहावै। चित्त उदास रहै। खान—पान की अभिलाषा नहीं होय। भोगन में रक्त—भाव नहीं होय। पुरुषारथ की अति मन्दता होय। आलस भाव, शरीर में प्रमाद होय। इत्यादिक ये आर्त्त भाव हैं। सो सर्व पापबन्ध के कारण हैं। तातैं इसे आरति अग्नि का दुख विशेष है। यह दूसरी आरति अग्नि है॥ २॥ और तीसरी छैंणा-लकड़ी की अग्नि है। सो इस अग्नि कूं सर्व संसारी जानैं। और याके जालनैं तैं सर्व जीव दुख खाय हैं॥३॥ ऐसे ये तीन अग्नि हैं। तिन में शोक अग्नि अरु आर्त्त अग्नि, इन दोय अग्नि को मोही जीव, ज्ञान की मन्दता तैं नहीं जानैं हैं। और ये दो अग्नि जो दाह-दुख करैं हैं। ताकौं भी अज्ञानता की विशेषता से नहीं जानैं हैं। और जे जिन देव की आज्ञा प्रमाण चलनेहारे, तत्त्वश्रद्धानी, शुभाशुभ भाव—विकल्प के रहस्य जाननेहारे, समदृष्टी, ज्ञानी है आत्म-काया न्यारी-न्यारी। तिन मिथ्या परणतिजारी, सदीव अनुप्रेक्षा के चिन्तवनहारे, जगत दशा तैं उदासी, अल्पकाल में जे जीव

शिव जासी, जे अनुभव रस के भोगी हैं, ते इन दोऊ अग्नि के भेद-भाव जानैं हैं। सो काष्ठ-लकड़ी की जो उपल अग्नि है। सो तो ऊपर तैं तन कों जारे है और ये दोऊ शोक व आर्त्त अग्नि हैं। सो अन्तरङ्ग में आत्मा के प्रदेश में दाह उपजाय, मन कों सदीव दाह करैं। और काष्ठ आदि की अग्नि का जल्या तो एक भव में दुख पावे। परन्तु शोक व आर्त्त अग्नि का जल्या, भव-भव विषैं दुख पावै। तातैं जे विवेकी हैं तिन्हें समता-रूपी शीतल-जल लेय करि, शोकादि अग्नि कों बुझावना योग्य है। इन दोऊ अग्नि के जले, भवान्तर में दुख पावें। ऐसा जानि शोक-आरति तजना सुखकारी जानना। आगे विद्यादिक अनेक भले गुण हैं, तिनकों इन्द्रिय-सुख रूपी ठग हैं, सो ठगैं। सो बतावैं हैं—

गाथा—बोधय तव चारत्तो, संजम झाणोय साम्म पएणामो।
ए सहु गुण जग पूज्यौ, अख सुह वंचय तसयरा बुधे॥ १०८ ॥

अर्थ—बोधय कहिये, ज्ञान। तव कहिये, तप। चारत्तो कहिये, चारित्र। संजम कहिये, संयम। झाणोय कहिये, ध्यान। साम्म पएणामो कहिये, शान्त परणाम। एसहु गुण कहिये, ये सब गुण। जग पूज्यो कहिये, जगत पूज्य हैं। अख सुह वंचय तसयरा बुधे कहिये, इन्द्रिय सुख है सो इनके ठगने को चोर समानि जानि, पण्डितजन चेतो। भावार्थ—नाना प्रकार शास्त्रन का अभ्यास, सो ही भया वांछित सुख का दाता, मोक्ष मारग दिखावे कूं दीपक समान, चिंतामन रतन। सो सहज ही स्वर्गादिक सुख का देनेहारा

ऐसा जो विद्याभ्यास, जगत पूज्य गुण, ताके ठगवे कौं इन्द्रिय जनित सुख की अभिलाषा, चोर समानि है। भावार्थ—ऐसे ज्ञान गुण के धारी ज्ञानी भी, कदाचित् इन्द्रिय सुखन की आरति में आपड़ैं। तो वह आरति, धर्मशास्त्रन का ज्ञान ठगलेय, लूटि लेय है। तातें जिन-देव भाषित विद्या का भाषी, शुभाशुभ पंथ का वेत्ता, इन्द्रिय जनित सुखन में धर्म छांड़ि नहीं जाय है। और अनेक प्रकार दुर्धर तप के धारी तपस्वी, अनेक ऋद्धि संयुक्त, औरन-कूं पुण्य-संपदा के दाता, जगत पूज्य, गुण भण्डार, ऐसे तपस्वी भी कदाचित् इन्द्रिय-सुखन की लालच करि, भोगन की अभिलाषा करैं, तो तपादिक अनेक गुण, सो इन्द्रिय चोर लूटि लेंय हैं। तातैं जो सांचे तपस्वी वीतराग दशा के धारी हैं, सो इन्द्रिय जनित भोग तैं राग—भाव नहीं करैं। अपने तप-धन की रक्षा करैं। और चारित्र जो पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, तीन गुप्ति ये तेरह जाति चारित्र, मोक्ष रूपी द्वीप कूं पहुंचावने कूं जहाज समानि, त्रिभुवन के जीवन करि बन्दनीक। ऐसे चारित्र रतन के ठिगवे कूं, जो इन्द्रिय सुखन की भावना है सो लुटेरे समानि है। जो ऐसे चारित्र का धारी यतीश्वर भी, कदाचित् अपने धर्म तें विछुड़ कैं भोगन विषैं आवै, तो ताका चारित्र रतन चुराया जाय है। तातैं जेते चारित्र-धारी तपोधनी हैं ते इन्द्रिय भोगन तैं राग भाव तजैं हैं। और पंचेन्द्रिय तथा मन का जीतनहारा, षट् काय जीवन का रक्षक संयमी, इन्द्रिय संयमी, प्राण संयम का धारी, जोगी, जगत बंदनीक भी भोग विषैं अभिलाषा करै, तो अपना संयम-रतन ठिगावै। तातैं जे संयम

के लोभी हैं, ते अपने गुण की रक्षा के हेतु, भोगन की इच्छा नहीं करैं। और स्वर्गादिक का दाता धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान करि, मोक्ष का अविनाशी सुख पावैं। सो ऐसे धर्म-शुक्लध्यान के धारक यतीश्वर भी कबहू इन्द्रिय-जनित-सुख के प्रेम में पड़ि जाँय, तौ अपना ध्यान-धन गुमावैं। सो ध्यानी, समतारस का भोगी, इन्द्रिय-सुख की चाह नहीं करै। और सहज सुधारस का स्वादी, अनेक तत्व विचार के जोर करि कषायन का मद तोड़ करि, मोह को निर्बल पाड़ि, आप समता—सागर में प्रवेश करि, निराकुल तिष्ठनेहारा, ऐसा जतीश्वर कदाचित्, इन्द्रिय सुख के द्वार, सराग चित्त करि निकसे, तौ इन्द्रिय चोर ताका समता-धन छिनाय लेय कैं, भिखारी सा करि डालैं। तातैं जे समता-रस के स्वादी, निराकुल भोग के वांच्छक हैं। ते इन्द्रिय भोगन के मारग भी चित्त कूं नहीं चलावैं। ऐसे कहे जे ज्ञान, तप, चारित्र, संयम, शुभ ध्यान, समभाव ये सर्व गुण जगत पूज्य हैं। सो इन गुण-रतन ठगवे कूं इन्द्रिय सुख, चोर रूप हैं। तातैं जो अपने धर्म गुण को बचायवे की चाहि होय तौ इन्द्रिय भोग कूं, धर्म के काल में नहीं सेवना योग्य है। आगे इष्ट वियोग के दोय भेद हैं, सो बतावै हैं—

गाथा—जुगभे यंठ वियोगो, इकासो इग होय एाय आसो।
थिति खय विणासउ, आसय जे भिण गमण उ अण ठांणाय ॥ १०६ ॥

अर्थ—जुगभे यंठ वियोगो कहिये, इष्ट वियोग के दोय भेद हैं। इकासो कहिये, एक

आशा सहित। इग होय एाय आसो कहिये, एक बिन आस। थिति खय कहिये, स्थिति के क्षय भये। विणासउ कहिये, सो बिन आस। आसयजे कहिये, आस सहित जो। भिणगमणउ अण ठांणय कहिये, और स्थान जाने कूं भिन्न होय गमन करै। भावार्थ——संसार विषैं इष्ट वस्तु चेतन-अचेतन इनका वियोग होय है। ताके दोय भेद हैं। सो ही कहिये हैं। चेतन इष्ट जे माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, हाथी, घोटकादिक चेतन पदार्थ। इनके वियोग के दोय भेद हैं। एक तौ आशा सहित वियोग है। और एक आशा रहित वियोग है। तहां जिस चेतन पदार्थ की आयु-स्थिति पूरण होय करि, जो आत्म पर्याय छोड़ि परलोक कों गया, सो अब यातैं वियोग भया, सो अब फेरि मिलने की आशा नाहीं। ये तो आशा रहित वियोग है। और कोई अपना इष्ट, एक स्थान तैं भिन्न होय, विदा मांगि परदेश कूं गमन किया, सो ये आशा सहित वियोग है। यातें मिलने की आशा है। ऐसे वियोग के दोय भेद हैं। सो मोह सहित जीवन कैं आशा सहित वियोग में तो अल्प दुख होय है। और आशा रहित वियोग में बड़ा दुख होय है। और अचेतन पदार्थ रतन, आभूषण, वस्त्र, मंदिरादिक काहू कों माँगे दिये होंय। तथा कर्ज के निमित्त काहू कों धन दिया होय। इत्यादिक बातन करि धनका वियोग होय, सो आशा सहित वियोग है। या धनके आवे की अभिलाषा है, ताकी अल्प चिंता है। और जो धन-अचेतन वस्तु चोरी गई होय, अग्नि में जली होय। काहू गिरासियादि जोरावर ने खोसि (छीन) लई होय, इत्यादिक स्थान में गई, ताके आवे की आशा नाहीं। सो निराशा

वियोग है। याका विशेष दुख होय है। ऐसी जगत-जीवन की रीति है। और जे विवेकी, सम्यग्दृष्टी, पुण्य-पाप दशा के जाननहारे हैं। तिनकैं दोऊ ही दशा के वियोग में दुख नाहीं है। सदीव समतारस का भोगनहारा धर्मात्मा, सो भले प्रकार जानै है कि जो इष्ट अरु अनिष्ट दोऊ ही वस्तु विनाशीक हैं। कर्म के आधीन हैं। अपनी स्थिति के प्रमाण रहैं हैं। जो भली वस्तु, अपने पुण्य के उदय मिलै, सो भी अपनी स्थिति-प्रमाण रस देय, विनस जाय है। स्थिति की पूरी भये देव-इन्द्र की राखी भी नाहीं रहै। और अनिष्ट वस्तु का मिलाप, पाप के उदय तैं होय। सो ये काहू की घेरी, जाती नाहीं। अपनी स्थिति पूरण किये जाय। सो जे भोरे, मोही, परवस्तु कौं अपनी करि दृढ़ राखनेहारा जीव तौ इष्टके वियोग में महा दुखी होय है। और सांची दृष्टी के धारी, परकौं पर जानन-हारे, तिनकौं खेद-भाव नाहीं होय। आगे जैसी परणति विषय-कषाय में सांची होय लागै है, तैसे ही धर्म विषैं लागै, तौ कहा फल होय ? सो बतावैं हैं—

गाथा—जे मण विसय कसायो, जेहो लगाय धम्म कज्जाए।
तउ लव काल णरंजण, इंदो अहमिंद सयल मगलाहो ॥ ११० ॥

अर्थ—जे मण विसय कसायो कहिये, जो मन विषय-कषाय में लगै। जेहो लगाय धम्म कज्जाए कहिये, तैसे धरम कारज में लगावै। तउ लव काल णरंजण कहिये, तौ थोरे ही काल में निरंजन होय। इंदो अहमिंद सयल मगलाहो कहिये, इन्द्र अरु अहमिंद्र सम्पूर्ण

के सुख सहज ही राह में प्राप्त होंय। भावार्थ—जीवन की संसार विषैं अनेक परणति है। सो अनादि काल का भूल्या ये जीव, धर्म के स्वाद कूं नहीं जानै। अनंतकाल का विषय-कषाय मोहित जीव, गति—गति में भ्रमणनेहारा प्राणी, इन्द्रिय-सुख कूं बहुत चाहै है। परन्तु जगवासी जीव का चित्त, जैसे विषय—कषाय में रंजायमान होय, एकाग्र लागै है। तैसा ही यदि धर्म विषैं एक चित्त होय लागै, तौ अल्पकाल में ही सिद्ध-निरंजन पद पावै। तहां अनंतकाल सुखी रहै। और इन्द्रपद, अहमिन्द्र पद जो नव ग्रीवक, नव अनुत्तर, पंच पञ्चोत्तर इन कल्पातीत देवन के सुख तौ सहजही राह में आय, प्राप्त होंय हैं। तातैं विवेकी जीवन कों विषय—कषाय तजि, धर्म विषैं लागना योग्य है। आगे ऐसा कहैं हैं जो कृपण अपने तन कों ठगै है—

गाथा—किप्पण णिज तण वंचय, वंचय सुयपणण जणक तीए मित्तोय।
तण दे तण णह दाणो, धम्म रहीयो मित्य काय सम जीवो ॥ १११ ॥

अर्थ—किप्पण णिज तण वञ्चय कहिये, सूम अपने शरीर कों ठगै है। वंचय सुयपणण कहिये, अपनी जननी कौं ठगै। जणक कहिये, पिता। तीए कहिए स्त्री। मित्तो कहिये, मित्र। इनकों ठिगै है। तणदे तणणह दाणो कहिये, तन देय परंतु तृण का दान नहीं देय। धम्म रहीयो मित्य काय सम जीवो कहिये, धर्म करि रहित जीव मृतक के शरीर समानि है। भावार्थ—ज़े जीव महा कृपण मन के धारी सूम हैं। सो अपने तन कौं आदि लेय सर्व

कुटुम्ब कौं ठगैं हैं। सो ही बताईये है। अपने तन निमित्त अल्प-भोजन रस-रहित खाय, पेट में भूखा रहै। लोभी उदर-भर भोजन नहीं करै, भूख सहै। शीत-काल में तन पै मोटा वस्त्र सो भी अल्प, सातै सम्पूरण तन नहीं ढकै, शीत की वेदना सहै। घास, लकड़ी जलाकर तातैं तन तपाय, शीतकाल पूरण करै, बहुत कष्ट सहकैं दिन वितावै। दाम-दाम जोड़ि साता मानै। ऐसे तन कूं कष्ट देय। जा तन तैं भार वहि-वहि, मजूरी कराय धन कुमाया, ताही तन कौं नहीं पोषै। पेट भर भोजन नहीं देय। ऐसा लोभी अपने तन कूं ठगनेहारा कहिये। और पुत्र है सो भूख का मार्या रुदन करै। और के बालक अच्छा खाय-पहरैं; तिनकौं देखि याकै पुत्र यापै अच्छा खान-पान माँगैं-तरसैं, परन्तु ये लोभी दया रहित भोजन नहीं देय, तब पट-भूषण कहां से पावैं। ऐसे ये सूम, पुत्र कूं ठगनेहारा कहिये। और या सूम की माता ने, नव मास पेट में राखा था। ऐसी माता, पुत्र पै भला भोजन-वस्त्र मांगै। कहै हे पुत्र, अपने घर में धन अटूट है। अरु तूं हम कौं पेट भर अन्न भी नहीं देय। सो हे पुत्र, हम ऐसा किसकूं कहैं? हमकौं भूख रहै है, शीत वेदना रहै है, अग्नि तैं ताप, दिन-रात काटैं, सो तोहि दया नाहीं आवै है? ऐसे वचन माता के सुनि कैं सूम अगल-बगल हो जाय। सुनी-अनसुनी करै। परन्तु दाम एक भी नहीं देय। सो माता का ठगनहारा कहिये। और इस सूम का पिता, सो ताने बड़े २ कष्ट सहकैं, द्वीप-सागरन-उद्यान-नगर-देशन में गमन करि-करि अनेक भूख-प्यास सहकैं, पापारम्भ ठानि अनेक

द्रव्य उपार्ज्या। जब जानी कि मेरो पुत्र नाहीं, सो धन–घर सोहता नाहीं। तब पुत्र बिना, धन–सम्पदा वृथा जानता भया। तब पुत्र के निमित्त अनेक कुदेव–कुभेष पूजे। अनेक मंत्र, तंत्र, यंत्र, करि–करि पापारम्भ बांध्या। और–और व्याह किये। अनेक स्त्री परन्या। तब कोई कर्म जोग तैं एक पुत्र भया। तब पिता बहुत सुख किया। याचकिन कूं मन-वांच्छित दान दिये। पुत्र जन्म का बड़ा उत्सव किया। पीछे अनेक भले-भोजन लाय पुत्र कूं दिया। अनेक पट–भूषण देय, लाड़िला राखा। ऐसे जतन करि बढ़ाया, तरुण किया। आप केतेक दिन में वृद्ध भया। तन की शक्ति घटी। पुत्र बालक था सो अब तरुण भया। तब पुत्र का व्याह करि, घर का धनी कर्या। सर्व घरका धन–धान्य पुत्र ने पाया। अब पिता का तन, दीन भया। इन्द्रिय बल घट्या। तब पुत्र पै भला भोजन मांगै, सो नहीं देय। वस्त्र मांगै, नहीं देय। देय तो तुच्छ देय या बहकाय देय। सो अपयश की मूर्ति, लोभी पुत्र, पिता का ठगनेहारा कहिये। और अपनी स्त्री, भला भोजन–वस्त्र–आभूषण मांगै। कहै हे पति, औरन के घर की स्त्री देखो, भला खाय–पहरैं हैं! अरु तुम्हारे घर में बड़ा धन है अरु हमारा यह हवाल है। जो अन्न, तन कौं तो देय। ऐसे दीन वचन स्त्री कहै। परन्तु यह लोभी स्त्री कूं भी न देय। सो स्त्री का ठगनेहारा कहिये। और अपने मित्रन की मजलस में जाय, सो उनका धन तो आप खाय आवै। अरु अपना धन मित्रन कूं नहीं खुवावै। सो मित्रन का ठगनेहारा कहिये। ऐसा

कृपण, अशुभ परणति का धारी, दयाभाव रहित है। ये कठिन उर का धारी सूम, सो मरै, अपना तन का घात करै, परन्तु दान के निमित्त घास का तिनका नहीं देय। ऐसा सूम, निर्लज्ज, दुर्भागी, निंदा का पात्र, धर्म भावना रहित, जीवत ही मृतक समानि जानना। भावार्थ—ऐसे इस जीव का जीवना विरथा है। ये सूम जैसा जोया तैसा न जोया। आगे भिक्षुक है सो मांगने के मिस करि, मानूं घर–घर उपदेश ही देय है। ऐसा बताईये है—

गाथा——भिक्षक घय घय वोधय, भो सत पुंसाह देह धण दाणं।
विण दीए मम जोवो, लहुवण वारवार जाचंती ॥ ११२ ॥

अर्थ——भिक्षक घय घय वोधय कहिये, मँगता घर–घर उपदेश देय है। भो सतपुंसाह कहिये, भो सत्पुरुष हो। देय धण दाणं कहिये, धन कौ दान में देओ। विण दीए मम जोवो कहिये, बिना दिये मोकों देखो। लहुवण कहिये, मैं तनक सा होय। वारवार कहिये, घड़ी-घड़ी। जाचंती कहिये, मांगों हौं। भावार्थ—ए रंक जो भिक्षा मांगनहारे–मंगता, घर–घर विषैं भूख के मारे याचते फिरैं हैं। सो आचारज कहैं हैं। ए रंक आप जाँचैं नाहीं हैं। मानूं कृपण, कठोर चित्त के धारी, दया रहित जीवन कूं अपनी दशा दिखाय, उपदेश ही देय हैं। तिनके निमित्त ए भिक्षा मांगनेहारे घर–घर में ऐसा कहते फिरैं हैं। हे धर्मात्मा पुरुष हो! तुम्हारे पास धन है सो ताकौं दान में लगाओ, दान कूं करौ। नहीं तौ पीछे हमारी सी नाईं पछतावोगे। बिना दान दिये, हम को देखो। हमने पूरव भव में धन पाया, परन्तु दान नहीं

दिया। सो अब या भव में पेट भर भोजन नाहीं। तन पै ढांकने कूं वस्त्र नाहीं। महा अपमानित भये, दारिद्र के जोग करि दीन होय, रंक भये घर–घर अन्न के दाना याचैं हैं, तौ-भी उदर नाहीं भरै है। सो हे सत्पुरुष हो, हमने या बात सत्य मानी। जो लौकिक में ऐसी कहैं हैं कि जो दिया सो पावै, बिना दिये हाथ नहीं आवै। सो अब हमने निश्चय जानी, प्रतीति आई कि जो हमने पूरव–भव में नहीं दिया, तातैं लाचार–असहाय होय बारम्बार कहिये घड़ी–घड़ी याचैं हैं। तथा वार–वार कहिये घर–घर के वारने नगर में मांगते फिरैं हैं। तथा बार–बार कहिये हमारा बाल–बाल अशीष देय भिक्षा माँगैं है। तथा बार–बार कहिये अपने घर तैं बाहिर याचैं हैं। तथा वार २ कहिये बायर–वायर करि पुकारैं, शोर करि याचैं हैं। तौ भी उदर नहीं भरै है। तथा वार–वार कहिये, नीर–नीर प्यावो, मारे प्यास के प्राण जांय हैं। सो पानी पियावो, पानी पियावो। ऐसे दीन भये तृषा के दुख तैं पुकारैं हैं। सो पाप के उदय, कोई जल भी नहीं देय। ऐसे हम बिना दिये, कहां तैं पावैं ? महा दुखी भये फिरैं हैं। तातैं हे भव्य हो, बिना दान दिये, हमारी सी नाईं दुख पावोगे। अरु हमारी नाईं, पीछे पछतावोगे। तातैं अब कछु दान देने की शक्ति होय, तो दान करतैं मति चूकौ। ऐसे ये रंक हैं सो भिखारी का भेष करि, मानो उपदेश ही देय हैं। या भांति भिखारी का दृष्टांत देय, दान का मार्ग बताया। तातैं जो विवेकी हैं सो अवसर पाय, तिन कूं दान देना योग्य है ॥ ११२ ॥ आगे सर्वज्ञ-केवली तैं लगाय सम्यग्दृष्टी

के अरु मिथ्यादृष्टी के वचन–उपदेश विषैं, अन्तर बतावै हैं––

गाथा––जिण गण मुण वच सावय, अतसय जुय वयण होय समदिट्ठी।
मिच्छो वच विण अतसय, इम णिप्प रंकेय वयण भेयाय ॥ ११३ ॥

अर्थ––जिण कहिये, केवली। गण कहिये, गणधर। मुण कहिये, मुनीश्वर। सावय कहिये, श्रावक। वच कहिये, इनके वचन। अतसय जुय वयण कहिये, अतिशय सहित वचन। होय समदिट्ठी कहिये, ये सम्यग्दृष्टी हैं। मिच्छो वच कहिये, परन्तु मिथ्यादृष्टि के वचन। विण अतसय कहिये, बिना अतिशय हैं। इम कहिये, जैसे। णिप्प कहिये, राजा। रंकेय कहिये, रङ्क के। वयण भेयाय कहिये, वचन का भेद है। भावार्थ–––जे वचन अतिशय सहित होंय, सो वचन तो सत्यपणे कूं लिए हैं। तातें तिन वचन का धारण किये तो तत्वज्ञानी होय है। और जे वचन अतिशय रहित होंय, तिन वचनों तैं तत्वज्ञानी नहीं होय। सोही कहिये है। जो केवलज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् के वचन की धुनि सुनतैं ही श्रवण पवित्र होंय, पाप का नाश होय। तत्वज्ञान के भेद कौं दिखावै है। ऐसे भगवान् अन्तरजामी के वचन, अतिशय सहित हैं। और इनहीं भगवान् के वचन-प्रमाण अर्थ कौं लिए, च्यारि ज्ञान के धारी गणधर देव के वचन प्रमाण हैं। ये वचन अतिशय सहित हैं। तातें सत्य हैं। और इनहीं गणधर देव के वचन–प्रमाण अर्थ सहित प्ररूपे जो आचार्य, उपाध्याय, साधु, मुनिराज इन योगीश्वरों के वचन हैं, सो अतिशय सहित हैं। तातें प्रमाण हैं। और इन ही आचार्यन

के अर्थ कूं लिये, इन के प्रमाण कूं लेय भाषे, पंचम गुणस्थान धारी श्रावक तिनके वचन, अतिशय सहित हैं। तातैं प्रमाण हैं। और इनहीं केवली, गणधर, आचार्य इन के भाषे अर्थ, तिन ही प्रमाण अर्थ का धारण करणहारे चतुर्थ गुणस्थान के धारी सम्यग्दृष्टी जीवन के वचन, देव—गुरु के कहे अर्थ—प्रमाण हैं। तातैं अतिशय सहित हैं। ऐसे जिन वचन, गणधर वचन, आचार्य मुनि के वचन, श्रावक सम्यक् धारी के वचन, असंयमी यती के वचन, ये सर्व सम्यग्दर्शन के धारी हैं। सो इन सर्व के वचन यथायोग्य अतिशय सहित हैं। सो ही कहिये हैं। केवली तीर्थंकर के वचन, अनक्षर मेघ-ध्वनि समानि हैं। तिस के सम्बन्ध से देव, मनुष्य, तिर्यंच ये तीन गति के जीव इनके श्रवण निकट तिष्ठते पुद्गल स्कन्ध, सो अक्षर रूप सहज ही परणमैं हैं। ताकरि ये सर्व उन्हें अपनी भाषारूप समझ लेय हैं। ऐसा अतिशय तो भगवान् के वचन विषैं है। और गणधर देव के वचन, अक्षर रूप हैं। सो तिनका विश्वास तीन लोक के जीवन को होय। तिन के श्रवण किये, पाप का नाश होय। ऐसे इन गणधर देव के वचन का सहज स्वभाव ही है। ऐसा अतिशय गणधर देव के वचन का है। मुनीश्वरों के वचन राग-द्वेष रहित, सरल, मिष्ट, सर्व जीवन कूं सुखकारी हैं। तातैं इनकी भी प्रतीति कर, सर्व जीव—धर्म-सन्मुख होंय। ऐसा अतिशय, मुनि के वचन का जानना। और श्रावक-व्रती अरु असंयत सम्यग्दृष्टी, ये भी केवली के वचन-प्रमाण अर्थ कूं लिये उपदेश करैं हैं। तातैं इन तत्त्वज्ञानी

के वचन भी सर्व धर्मी जीवन कूं, प्रतीति उपजावैं हैं। तातैं ये भी, अतिशय सहित हैं। और मिथ्यादृष्टी के वचन जिन-भाषित-अर्थ रहित हैं। तातें असत्य हैं। अतत्व के प्ररूपणहारे, राग द्वेष-सहित हैं। तातें अतिशय रहित हैं। अप्रमाण हैं। ऐसा जानना। जैसे राजा का वचन जो निकसै, सो सर्व कौं प्रमाण है। सत्य है। सर्व अङ्गीकार करैं हैं। और भूप का वचन उल्लंघन किये दण्ड पावै, दुखी होय। भूप की आज्ञा मानै, सुखी होय। तैसे सर्वज्ञ भगवान्, जगत का राजा। ताके वचन प्रमाण चाले, सुखी होय। जिन-वचन उल्लंघन किए, पाप वन्ध होय। दुख उपजे। तातें राजा का वचन अतिशय सहित है। और रंक का वचन अतिशय रहित है। रंक काहू के ऊपर कोप करै, तो कछु होता नाहीं। तथा कोई पर राजी होय, तो कार्यकारी नाहीं। रंक कहै, तेरा घर लूट लेहौं। तो यातैं घर लुटता नाहीं। और रंक कहै कि राजपद दे देहौं। तो राज्य मिलता नाहीं। तातैं रंक का शुभाशुभ वचन बोलना, वृथा है। रंक के वचन में अतिशय नाहीं। तैसेही अतिशय रहित मिथ्यादृष्टी के वचन, असत्य, अप्रमाण, रंक के वचन समानि निरर्थक, पापकारी, अतत्वश्रद्धान सहित हैं। तातें मिथ्या-दृष्टी, मिथ्या श्रद्धानी के वचन अप्रमाण पापकारी जानि, ग्रहण नहीं करिये। ये भले फल रहित, सुखकारी नाहीं। जैसे कोऊ राजा की सेवा करि ताकौं राजी करिये। तो राजी भये कबहूं दारिद्र खोवै। धन देय, ग्राम देय, सुखी करै। तातैं राजा की सेवा तो, शुभ फलदायक है। और कोई रंक की अनेक प्रकार सेवा करि, रंक कूं रिझाय, राजी करै। तो

सेवा का फल विरथा जानना। वह रङ्क आपही दरिद्री-भूखा है, दुखी है। तो और कौं कहा सुखी करैगा? तैसे ही तीन लोक के राजा इन्द्र, चक्री, धरणेन्द्र हैं। सो इन राजान के राजा भगवान की जो सेवा करैं, तौ सुखी होंय। तिन के वचन प्रमाण करि चालै, तौ देव सुख, इन्द्र सुख, चक्री सुख, खगपति सुख, मण्डलेश्वर राजा आदि अनेक पद के सुख निश्चय ही पावै है। और मिथ्या श्रद्धानी के वचन प्रमाण चालै, तौ सुख नाहीं। ऐसा जानि मिथ्या वचन, शुभ भावना रहित, इनका विश्वास नहीं करना। ये अतिशय रहित हैं। सम्यक् सहित श्रद्धावान के वचन सुखकारी हैं। ये अतिशय सहित वचन जानना। इति सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हितोपदेश कथन वर्णनो नाम, छव्वीसवां पर्व सम्पूर्ण॥ २६॥

आगे षट् लेश्या कथन बताईये है——

गाथा--किएहं णील कपोतय, असुह लेस्साह जीय पएणामो।
पीता पम्मा सुक्का, ये सुह लेस्साय होय खड भेया॥ ११४॥

अर्थ--कृष्ण, नील, कापोत ये तीन अशुभ लेश्या हैं। पीत, पद्म शुक्ल ये तीन शुभ लेश्या हैं। भावार्थ——ऐसे जीव के अशुभ–शुभ परणाम पर षट् भेद लेश्या के हैं। योग अरु कषाय के मिलाप तैं शुभाशुभ जीव की परणति का होना सो लेश्या है। सो इनका स्वरूप कहिये है। जहां बड़ा क्रोधी होय। बैर नहीं तजै। पर के बुरा करवे का सहज स्वभाव होय। महा दुष्ट परणामी होय। स्वामी–द्रोही होय। माता–पितादि गुरुजन की आज्ञा तैं विमुख होय।

अविनयी होय। और देव–गुरु–धर्म की आज्ञा तैं प्रतिकूल होय। राजविरोध क्रिया का करनहारा होय। जुआ, आमिष (मांस), मदिरा, वेश्या घर गमनी, जीव घाती, चोर, परस्त्री लम्पटी, इत्यादि सप्त व्यसन कर रंजायमान, पापाचारी, अनेक दोपन की मूर्ति, ऐसे अशुभ भाव जाके होंय। सो इन लक्षण सहित जे जीव-भाव, सो कृष्ण लेश्या है। तथा स्वेच्छाचारी, स्वच्छन्द होय। तथा धर्म–क्रिया विषैं प्रमादी होय । मन्द बुद्धि, आलसी, शिथिल शब्दी होय। पर के किए गुण का लोपनहारा, कृतघ्नी होय। विशेप ज्ञान कला चतुराई करि रहित होय। पंचेन्द्रिय विषय का लोलुपी होय । महा मानी होय। अत्यंत गूढ़ चित्त का धारी होय। मायावी होय, जाके चित्त की और नहीं पावै । इत्यादिक चिन्ह कृष्ण लेश्या के जानना। इति कृष्ण लेश्या॥१॥ आगे नील लेश्या–बहुरि जाकैं बहुत निद्रा होय। पर के ठगवे की कला–चतुराई में प्रवीण होय तथा और सीखवे की वांछा होय। और अत्यन्त लोभ के उदय सहित, धन-धान्यादिक इकट्ठे करिवे कौं, अनेक आरम्भ करता होय। और काम चेष्टा करि बहुत ही विकल होय। इत्यादिक लक्षण जाके होंय, सो नील लेश्या है। इति नील लेश्या ॥२॥ आगे कापोत–तहां औरन कौं दोप लगावै का सहज–स्वभाव होय। अनेक नय–जुगति देय, पर की निन्दा करनहारा होय। जो हँसि–हँसि पराया बुरा करै। पराई निन्दा करै। चुगली करै। ऊपर तैं विनयवान् होय, अन्तरङ्ग में पराया बुरा चाहै। बुरा करवे का उपायी होय। पर कौं भला खाता–पीता–पहरता देखि,

आप खेद पावै। पर कौं सुखी देख, नहीं सुहावै। पर के दुख करवे कौं, अनेक उपाय करता होय। सदीव जाका चित्त शोक रूप रहता होय। जाके निरन्तर भय रहता होय। और पर का अपमान करि, सुख मानता होय। अपने मुख तैं अपनी बहुत प्रसंशा करता होय। और आप जैसा पापी, चोर, असत् मारगी और कौं जानि, कोई का विश्वास नहीं करै। आपकी बड़ाई करै—खुशामद करै, ताकौं राजी होय धन देवे। अपने—पराये हेतु कौं, नहीं समझै। युद्ध विषैं मरण की जाकी इच्छा होय। इत्यादिक चिन्ह जाके होंय, सो कापोत लेश्यी जानना। इति कापोत लेश्या ॥ ३ ॥ आगे पीत लेश्या—तहां कार्य—अकार्य कौं समझै। खाद्य—अखाद्य कौं भी जानैं। भोगवे व नहीं भोगवे योग्य वस्तु कौं जानै। षट् द्रव्य गुण—पर्याय का जाननहारा होय। सर्व पदार्थन में समता होय। पूजा, जप, तप, दान विषैं प्रीतिवान होय। दया धर्म चलावे का अधिकारी होय। मन—वचन—काय करि कोमल होय। इत्यादिक लक्षण सहित होय, सो पीत लेश्यी जीव है। इति पीत लेश्या ॥४॥ आगे पद्म लेश्या—तहां भद्र परिणामी होय। त्यागी होय। भले कार्य रूप भाव होंय। महाव्रत— अणुव्रत का वांच्छक होय। सिद्ध क्षेत्र, तीर्थ बन्दना का अभिलाषी होय। पंच—परमेष्ठी की पूजा विषै उत्सववन्त होय। कष्ट—उपद्रव भये, धीर बुद्धि होय। देव—गुरु आदि का भक्त होय। इत्यादिक शुभ चेष्टा सहित जाके लक्षण होंय, सो पद्म लेश्यी है। इति पद्म लेश्या ॥५॥ आगे शुक्ल लेश्या-तहां पक्षपात करि काहू कूं बुरा नहीं कहै। सर्व जीवन पै

दया करि, मैत्री भाव राखै। और इष्ट–अनिष्ट में बहुत राग–द्वेष नाहीं करै। और कुटुंबादिक तैं अल्प राग करै। धर्मी जीवन विषैं, प्रीतिवान् होय। इत्यादिक लक्षण सहित होय, सो शुक्ल लेश्यी है। इति शुक्ल लेश्या ॥६॥ आगे लेश्यान के भाव का स्वरूप कहैं हैं। तहां लेश्या, द्रव्य और भाव करि, दोय भेद रूप हैं। तहां जैसा शरीर का वर्ण होय, सो तो द्रव्य लेश्या है। और जीव के जैसे भाव होंय, सो भाव लेश्या है। सो तिन भाव-लेश्या का दृष्टांत दिखाय, भावन की लेश्या प्रगट करें हैं। तहां एक वन में लकड़ी के काटनहारे, पट् पुरुष आये। सो तिन सबन के पास कुठार हैं। सो एक आम के वृक्ष के नीचे घनी छाया देख बैठ गये। तब एक पुरुष बोल्या कि भाई, भूँख लागी है। तब तिनमें एक कृष्ण लेश्यी जीव बोला कि भाई, जो अपने पै कुठार हैं सो इस आम पै जो फल लगे हैं सो लग जाओ। मारे कुठारन के आम कूं पींड़ तैं काटो, सो सर्व के पेट भरैं। ये तौ कृष्ण लेश्यी है ॥ १ ॥ दूसरा बोल्या, जो पींड़ तैं काहे कूं काटो, वृथा वृक्ष का खोज मिट जायगा। तातैं आधा, एक तरफ तैं बड़ी शाखा काटौ, सो सर्व खांयगे। अपन–लायक बहुत हैं। ये नील लेश्यी है॥२॥ पीछे तीसरा बोल्या, जो आधा गिराये सूं वृथा वृक्ष की शोभा जायगी। तातैं एक छोटी शाखा काट लेऊ। सो अपन कौं बहुत हैं। ऐसा कापोत लेश्यी है ॥ ३ ॥ और तब एक बोल्या, जो शाखा काहे कौं काटो। झूमके–झूमके तोड़ो, सो खाय लेय हैं। ये पीत लेश्यी है ॥ ४ ॥ तब पंचम पुरुष बोल्यो, जो झूमकेन में कच्चे–पक्के

सब ही हैं। तातें पके आम तोड़ लेउ और अपनी क्षुधा मैटो। ये पद्म लेश्यी जानना ॥ ५ ॥ तब षष्टम पुरुष वोल्या। हे भाई हो, इस वृक्ष कूं काहे कौं सतावो हो। भूमि विषैं अपने खाने योग्य तो वहुत पड़े हैं। सो पके २ खाय, अपनी भूख मिटावो। ये शुक्ल लेश्यी है ॥ ६ ॥ ऐसे षट् प्रकार भाव–भेद जानना। इन परणामन करि, अपने तथा पर के परणामन की परीक्षा करि, लेश्या के अन्तरङ्ग भाव जानना। सो अशुभ भावन के वेग कूं पहिचान, तजना योग्य है। ऐसे भेद ज्ञानी, जड़-भाव तजि, चैतन्य के विकल्प जानि, अशुभता तजि, शुभभाव रूप रहना विचारैं हैं। इति षट् लेश्या। आगे नव भेद योनि कथन-

गाथा—संवत्त सीत सचितो, मिस्सो सेताए जोणि णव भेयो।
संखय कुम्मो वंसय, तीए गम्भो समुच्छ उववादो ॥ ११५ ॥

अर्थ—संवत्त कहिये, संवृत। सीत कहिये, शीत। सचितो कहिये, सचित्त। मिस्सो कहिये, मिश्र। सेताए कहिये, इन तीनन की प्रतिपक्षी। जोणि णव भेयो कहिये, इस प्रकार योनि के नव भेद हैं। (भावार्थ–योनि के नव भेद हैं सो कहिये हैं। सचित्त, अचित्त, मिश्र, ये तीन। शीत, उष्ण, मिश्र ये तीन। संवृत याका प्रतिपक्षी विवृत, इन दोऊन का मिलाप सो मिश्र। ये तीन ऐसे नवभेद योनि के हैं।) और संखय कहिये, शंखा योनि। कुम्मो कहिये, कूर्म योनि। वंसय कहिये, वंशा योनि। तीए गम्भो कहिये, ये तीन भेद गरभज के हैं। समुच्छ कहिये, और सम्मूर्छन योनि। उववादो कहिये, तथा उपपाद योनि। ऐसे योनि भेद

कहे। सो प्रथम गर्भज के तीन भेद कहिये हैं—शंखा योनि, वंशा योनि, कूर्म योनि, ये तीन गर्भज के और नव भेद ऊपर कहे और सम्मूर्च्छन, उपपाद। सो इन सबका स्वरूप सामान्य सा कहिये है। तहां तीन भेद गरभज के हैं। सो तिन योनि में कौन २ उपजैं, सो कहिये हैं। तहां जा स्त्री की शंखावर्त नाम शंख के आकार योनि होय, तामें पुरुष का वीर्य नहीं ठहरे। सो स्त्री, जग में वंध्या कहावै ॥ १ ॥ और वंशपत्र योनि जा स्त्री की होय, तामें सामान्य पुरुष उपजैं। पदवी धारक, तीर्थंकरादि, महान पुरुष नहीं उपजैं॥ २ ॥ और कूर्मोन्नत योनि, जो कछुवा के आकार जा स्त्री की योनि होय, तामें तीर्थंकरादि महान पुरुष उपजैं हैं। सामान्य पुरुष इस योनि में नाही उपजैं ॥ ३ ॥ ये तीन भेद गर्भज के हैं। तहां माता का श्रोणित व पिता का वीर्य, ये दोऊ मिल गर्भ सूं उपजे, सो गर्भज कहिये। और माता—पिता के निमित्त बिना जाकी उत्पत्ति होय, सो सम्मूर्च्छन कहिये। सो वादर सम्मूर्च्छन जीवन की उत्पत्ति तो पृथ्वी आदि के आश्रय तें होय और सूक्ष्म जीवन की उत्पत्ति, बिना सहाय आकाश में होय। सो ये सूक्ष्म सम्मूर्च्छन जन्म जानना। और देवन की उत्पाद—शय्या रतनमई, कोमल, सुगन्धित शय्या, तामें देवन का जन्म होय। और नारकीन के उपजने के स्थान महा दुर्गंधित, घिनावने, अनिष्ट, ऊंट के मुखाकार, नर्कक्षिति के लूमते घटाकारवत् स्पर्श कूं धरैं, सो नारकी के उपजने का स्थान है। ऐसे देव, नारकी का उपपाद जन्म हे। ये तीन भेद जन्म—गर्भज, सम्मूर्छन, उपपाद के कहे। अब नव भेद योनि का भाव कहिये

है। तहां अन्य जीव करि ग्रहै जे योनि स्थान, जैसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य उपजने की योनि, सो सचित्त योनि है ॥ १ ॥ और अन्य जीवन करि नहीं ग्रहै, ऐसे पुद्गल स्कन्ध की योनि जैसे देव-नारकीन की, सो अचित्त योनि है ॥ २ ॥ और केईक योनि स्थान सचित्त-अचित्त मिले स्कंध की हैं, सो मिश्र योनि स्थान हैं ॥ ३ ॥ और उपजने के पुद्गल स्कंध शीत होंय। जैसे सातें व छठें नरक के नारकी की शीत योनि है ॥ ४ ॥ और उपजने के योनि स्थान के पुद्गल स्कंध उष्ण होंय। जैसे तीजे वा चौथे नरक पर्यंत, नारकीन के उपजने के उष्ण योनि स्थान हैं ॥ ५ ॥ अरु उपजने के स्थान शीत—उष्ण दोऊ स्कन्ध रूप होंय, सो मिश्र योनि स्थान हैं ॥६॥ और जीव उपजने का योनि स्थान प्रगट नहीं दीखै, सो संवृत योनि स्थान है ॥७॥ और उपजने के योनि स्थान प्रगट दीखें, सो विवृत योनि स्थान है ॥ ८ ॥ और जीव उपजने के योनि स्थान के पुद्गल स्कंध कछु प्रगट होंय कछु अप्रगट होंय, सो मिश्र योनि स्थान है ॥ ९ ॥ ऐसे सामान्य भेद नव कहे, विशेष चौरासी लाख हैं। इति योनि स्थान ॥ आगे इन योनिन तैं उपजे जीव, तिनके कौन २ के शरीर में निगोद नाहीं, सो कहिये हैं—

गाथा—केवलकायमहारो, सुरणारय तण भोमि जल तेऊ।
वाय वसु इव ठांणय, रहि नहिं णिगोय जिण भणियं ॥ ११६ ॥

अर्थ—केवली के शरीर में, आहारक शरीर में, देवन के शरीर में, नारकीन के शरीर में, पृथ्वी काय, अप काय, तेज काय और वायु काय, इन आठ स्थानन में निगोद नाहीं।

ऐसा जानना। आगे इन आठ जाति के जीवन तैं शौच नहीं पलै, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—रोगी लोलु दलद्दो, वुधहीणो कुसंग होय मद पाणो।
परवस आलस सहितो, ए वसु आदाय सोच णह पालय॥ ११७॥

अर्थ—रोगी, इन्द्रियन का लोलुपी, दरिद्री, बुद्धि हीन, कुसंगी, मद पायी, पराधीन और आलसी इन आठ जाति के जीवन तैं शौच नाहीं पलै। भावार्थ—रोगी तो अति वेदना के आगे खाद्य-अखाद्य, योग्य-अयोग्य नाहीं विचारै। अपवित्र-पवित्र नहीं विचारै। मारे वेदना के जो मिलै सो ही खाय। मूढ़ वैद्य जैसा भक्ष्य-अभक्ष्य कहै, सो खाय। तातैं शौच नाहीं बनै॥ १॥ और जो इन्द्रियन का लोलुपी होय। सो खाद्य-अखाद्य, योग्य-अयोग्य नहीं विचारै। जैसे बनै तैसे अपने विषय का पोषण करै। अपने कुल योग्य खान-पान का विचार नाहीं। तातैं तिन लोलुपी तैं शौच नाहीं पलै॥ २॥ और जे पूर्व पाप के उदय करि भये जो दरिद्री, सो मारे दरिद्र के केवल उदर पूरण ही कस्या चाहैं। सो योग्य-अयोग्य नाहीं विचारैं। जैसे बनैं, तैसे-उदर भस्या चाहैं। ताके तृष्णा अधिक। सो तृष्णा-तौ पुण्य तैं पूरी जाय। अरु पुण्य, आगे उपार्ज्या नाहीं। तातैं पुण्य रहित जीव, जैसे-तैसे पेट भरैं। सो इस दरिद्री से शौच नाहीं पलै॥ ३॥ और बुद्धि रहित होय, ताकैं योग्य-अयोग्य के विचार का विवेक नाहीं। ज्ञान की मंदता के योग करि, पशू समानि खान-पानादि करै। रात्रि-दिवस का भेद नाहीं। भक्ष्य-अभक्ष्य का ज्ञान नाहीं। तातैं बुद्धि-

रूपी संपदा करि रहित हीन-बुद्धि जीव तैं, शौच नाहीं पलै॥ ४ ॥ और कुसङ्ग के धारन-हारे, सप्तव्यसनी जीवन के स्नेही, तिन की संगति तैं, स्नेह के बंधान करि तिन में तिन जैसा ही खान-पान करैं। हीन कुली, हीन ज्ञानी, सप्तव्यसनी, जैसा अनाचार रूप खान-पान करैं। तैसाही तिनकी संगति में आपकों करना पड़ै। तातैं कुसंगीन तैं शौच नाहीं पलै ॥ ५ ॥ और मदिरापायी कूं सुध-बुद्धि नाहीं। खान-पान के योग्य-अयोग्य खाद्य-अखाद्य का ज्ञान नाहीं। जैसे खपत-बेसुध होय, तैसेही मदिरापायी बेसुध है। तातैं मदिरापायी तैं शौच नाहीं पलै ॥ ६ ॥ और पराधीन होय, सो पराई मर्जी सौं चाल्या चाहै। आप दयावान् संयमी होय, अरु संयमी का सेवक होय। तौ आप के तो संयम पालवे का काल है। और यदि स्वामी संयमी न होय, तो जा समय सरदार ने कही, यह आरंभ करो। सो नहीं करै तौ आज्ञा भंग भये, चाकरी बनै नाहीं। तातैं असंयम रूप आरंभ ही कार्य, संयम के काल में करना पड़ै। इत्यादिक पराधीनता तैं शौच नाहीं पलै ॥ ७ ॥ और जे आलसी-प्रमादी होंय, सो जैसा मिलै तैसा भक्षण करैं। प्रमाद के वशीभूत खाद्याखाद्य योग्यायोग्य नहीं विचारैं। तातैं जे आलसी-प्रमादी होंय, तिनसौं शौच नाहीं पलै ॥ ८ ॥ ऐसे और ग्रन्थ के अनुसार कह्या है। जो इन आठ जाति के जीवन तैं शौच नाहीं सधै। तातैं इनकौं धर्म-लाभ नहीं होय। और शुभाचार इनके हृदय में तिष्ठता नाहीं। ऐसा जानि विवेकी जीवन कौं, इन आठ जाति के निमित्तन तैं रहित होय, सुआचार रूप रहना योग्य

है। आगे निमित्त ज्ञान के आठ भेद हैं सो कहिये हैं—

गाथा—अंग भोम अंतरखऊ, विंजण सुर छिएय लक्खणो सुपणऊ।
इव वसु भेयव भणियं, णिमित्त णाणाय देव सर्वज्ञो॥ ११८॥

अर्थ—अंग कहिये, शरीर। भोम कहिये, पृथ्वी। अंतरखऊ कहिये, अंतरीक्ष। विंजण कहिये, व्यंजन निमित्त। सुर कहिये, शब्द। छिएय कहिये, छिन। लक्खणो कहिये, लक्षण। सुपणऊ कहिये, स्वप्न। इव वसु भेयव कहिये, ये आठ भेद। भणियं कहिये, कहे हैं। णिमित्त णाणाय कहिये, निमित्त ज्ञान के। देव सर्वज्ञो कहिये, सर्वज्ञ देव नैं। भावार्थ—निमित्त ज्ञान के आठ भेद हैं सो ही कहिये हैं। मनुष्य–पशु के तन के आंगोपांग देख, ताके शुभ–अशुभ बताय देना। जो याके एक नेत्र नाहीं, तो ऐसा फल। दोऊ नेत्र नाहीं, ताका ऐसा फल। मूके, लूले, टूटे, कूबरे, बावने का फल कहै। जाके तन का रस खट्टा तथा मिष्ट व कडुवा होय, इत्यादिक जैसा तन का रस होय, सो फल कहै। तथा तन का रुद्र, श्याम व लाल वर्ण होय, ताका फल कहै इत्यादिक शरीर के लक्षण देखि शुभ–अशुभ का फल सुख–दुख कहै। सो अंग–निमित्त–ज्ञान है॥ १॥ और भूमि विषैं जहां–जहां जो वस्तु होय, सो जानैं। जो इस जगह रतन–खानि है। यहां कंचन–खानि है। यहां विभूति है। इहां एते खोदो, अस्त्र समूह है, ताकौं जानैं। तथा इहां जल है। इहां पाखान है। इहां धन है। इत्यादिक भूमि में जहां–जहां शुभ–अशुभ चिन्ह होंय, तिनकौं जानें, सो

भूमि निमित्त ज्ञानी कहिये ॥ २ ॥ और आकाश के विषैं वादर पटल, घन, गाज, बिजली चमकना, चन्द्रमा, सूरज, नक्षत्रादिक इत्यादिक तैं आकाश का शुभाशुभ चिन्ह देखि, सुख-दुख बतावै। सो अंतरीक्ष-निमित्त-ज्ञानी है ॥ ३ ॥ और जहां मनुष्य का शब्द सुनि शुभ-अशुभ कहैं। तहां चाण्डाल, कृषक, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादिक मनुष्यन के शब्द सुनि, सुख-दुख कहैं। तथा पशून के शब्द तीतुर, मोर, काक, सारस, श्वान, गृद्ध, स्यार, मार्जार, व्याघ्री इत्यादिक पशून के शब्द सुनि, शुभ-अशुभ फल बतावैं। सो सुर-निमित्त-ज्ञान है ॥ ४ ॥ और व्यंजन जो शरीर में तिल-मसा देखि, सुख-दुख कहैं। मुख पै तिल, कर में तथा उरमें मसा। पीठ में, नासिका, कान, गाल, अंगुरी इत्यादि हाथ-पाँव अंग में तिल-मसा देखि, शुभ-अशुभ कहैं। सो व्यंजन-निमित्त-ज्ञान है ॥ ५ ॥ और लक्षण जो शुभ चिह्न श्रीवृष, स्वस्तिक, भृङ्गार, कलश, वज्र, मछली इत्यादि शुभ तथा केई अशुभ चिह्न इत्यादिक शुभ-अशुभ चिह्न शरीर में देखि, सुख-दुख कहैं। सो लक्षण निमित्त ज्ञान है ॥ ६ ॥ और छिन निमित्त ज्ञान-सो कोई वस्त्रादि वस्तु कूं मूसादि जीवन कर काटी देखि, ताकरि शुभाशुभ फल कहै। सो छिन निमित्त ज्ञान कहिये ॥ ७ ॥ और स्वप्न-जो शुभाशुभ स्वप्न कौं जानि, ताका सुख-दुख कहै। सो स्वप्न निमित्त ज्ञान है ॥ ८ ॥ ऐसे निमित्त ज्ञान आठ प्रकार कह्या। इहां सामान्य कह्या। विशेष अन्य ग्रन्थन तैं जानना। आगे ज्ञान के आठ अंग बताईये है—

गाथा—विंजन अर्थ समग्गह, सब्दार्थोभय कालधेणोय ।
उपभ्काण विणय समधय, वहुमाण गुवादि वसु अंगय ॥ ११६ ॥

अर्थ—विंजन कहिये, व्यंजनोर्जित ॥ १ ॥ अर्थ समग्गह कहिये, अर्थ समग्रह ॥ २ ॥ सब्दार्थोभय कहिये, शब्दार्थ उभय पूर्ण ॥३॥ काल धेणोय कहिये, यथा काल अध्ययन करना ॥४॥ उपभ्काण कहिये, उपध्यान समर्धित ॥ ५ ॥ विणय समधय कहिये, विनय समर्धित ॥६॥ वहुमाण कहिये, बहु मान समर्धित अंग ॥७॥ गुवादि कहिये, गुरुवादि निन्हव अङ्ग ॥ ८ ॥ वसु अङ्गय कहिये, ये ज्ञान के आठ अंग हैं। भावार्थ—जो बिना अर्थ विचारै ही पाठ का पढ़ना। तहां गाथा, काव्य, छन्द, श्लोक, पद, बिन्ती, सामायिकादि पाठ का पढ़ना। सो याका नाम व्यंजनोर्जित अङ्ग है। १। और जो शास्त्र तो नाहीं, परन्तु अपने उर विषैं, एकान्त बैठा, शास्त्रन का अर्थ विचार करै, सो ये भी ज्ञान का अङ्ग है। याका नाम अर्थ समग्रह अङ्ग है। २। और जहां शास्त्र, काव्य, गाथा, छन्द अर्थ सहित पढ़ै। पाठ भी पढ़ै, अरु अर्थ का भी विचार करै। सो ये भी ज्ञानी का अङ्ग है। याका नाम शब्दार्थोभय पूरण अङ्ग है। ३। और जहां जिस काल में जैसा शास्त्र चाहिये, तैसा ही काव्य वखान करै। जैसे प्रभातकाल कौ कौन शास्त्र वांचिए। मध्याह्न में कौन शास्त्र वांचिये। शाम कौं कौन का अभ्यास कीजिये। रात्रि कौं कौन का अभ्यास कीजिये। तथा बाल्य अवस्था में कौन शास्त्र का अभ्यास कीजिये। तरुणावस्था में कौन

इन आदि काल में शास्त्र का अभ्यास करैं। वृद्धावस्था में कौन शास्त्र का अभ्यास करैं। इन आदि काल में
जैसा शास्त्र चाहिये, तैसा ही विचार कैं काल—योग्य शास्त्र का अभ्यास करैं। तैसा ही
उपदेश देय। सो ये भी ज्ञान का अंग है। याका नाम कालाध्ययन ध्रुव प्रभाव नाम अंग है
। ४ । और शास्त्राभ्यास निरप्रमाद होने के निमित्त उपवास—एकासन करना, रस तजना,
अल्प भोजन करना। ऐसा विचारना जो मेरे शास्त्राभ्यास में प्रमाद नहीं होय, ताके निमित्त
तप करना। सो ये भी ज्ञान का अंग है। याका नाम उपध्यान समर्धित अंग है। ५।
और जहां शास्त्र का विनय करना। बांचना, सो विशेष उत्तम विनय से बांचना।
सुनना सो भी एकचित्त करि, विनय तैं सुनना। उपदेश देना, सो पर—जीवन के कल्याण-
हेतु विनय तैं देना। शास्त्र धरना—उठावना, सो भी विनय तैं। इत्यादिक शास्त्र का विनय
करना, सो ये भी ज्ञान का अङ्ग है। याका नाम विनय समर्धित अङ्ग है। ६। और जाके
पास आपने ज्ञानाभ्यास किया होय, जातैं आपको ज्ञान की प्राप्ति भई होय, ताकी बहुत
सेवा-चाकरी करना। ताकी बारम्बार प्रशंसा करना, बारम्बार ताका उपकार स्मरण करना।
ताका उपकार जन्मान्तर नहीं भूलना। सदीव धर्म-पिता जानना। इत्यादिक ज्ञान-दान देने-
वारे का विनय करना, सो भी ज्ञान का अङ्ग है। याका नाम बहुमान समर्धित अङ्ग है। ७।
और आपने जा गुरु के पासि शास्त्राभ्यास किया होय, ता गुरु को नहीं छिपाईये। भावार्थ-
जा गुरु के पास तैं आपने ज्ञान-धन पाया होय, ऐसा जो गुरु। सो कर्म योग तैं-पीछे

गाथा—विंजन अर्थ समग्गह, सब्दार्थोभय कालधेणोय ।
उपझाण विणय समधय, वहुमाण गुवादि वसु अंगय ॥ ११६ ॥

अर्थ—विंजन कहिये, व्यंजनोर्जित ॥ १ ॥ अर्थ समग्गह कहिये, अर्थ समग्रह ॥ २ ॥ सब्दार्थोभय कहिये, शब्दार्थ उभय पूर्ण ॥३॥ काल धेणोय कहिये, यथा काल अध्ययन करना ॥४॥ उपझाण कहिये, उपध्यान समर्धित ॥ ५ ॥ विणय समधय कहिये, विनय समर्धित ॥६॥ वहुमाण कहिये, वहु मान समर्धित अंग ॥७॥ गुवादि कहिये, गुरुवादि निन्हव अङ्ग ॥ ८ ॥ वसु अङ्गय कहिये, ये ज्ञान के आठ अंग हैं। भावार्थ—जो बिना अर्थ विचारै ही पाठ का पढ़ना। तहां गाथा, काव्य, छन्द, श्लोक, पद, बिन्ती, सामायिकादि पाठ का पढ़ना। सो याका नाम व्यंजनोर्जित अङ्ग है। १। और जो शास्त्र तो नाहीं, परन्तु अपने उर विषैं, एकान्त बैठा, शास्त्रन का अर्थ विचार करै, सो ये भी ज्ञान का अङ्ग है। याका नाम अर्थ समग्रह अङ्ग है। २। और जहां शास्त्र, काव्य, गाथा, छन्द अर्थ सहित पढ़ै। पाठ भी पढ़ै, अरु अर्थ का भी विचार करै। सो ये भी ज्ञानी का अङ्ग है। याका नाम शब्दार्थोभय पूरण अङ्ग है। ३। और जहां जिस काल में जैसा शास्त्र चाहिये, तैसा ही काव्य वखान करै। जैसे प्रभातकाल कौं कौन शास्त्र वांचिए। मध्याह्न में कौन शास्त्र वांचिये। शाम कौं कौन का अभ्यास कीजिये। रात्रि कौं कौन का अभ्यास कीजिये। तथा बाल्य अवस्था में कौन शास्त्र का अभ्यास कीजिये। तरुणावस्था में कौन

मुनिजन कौं ध्यान करवे के कारण, दश स्थान बतावैं हैं। इतनी जायगा परणामन की विशुद्धता विशेष बढ़ै, ध्यान की एकाग्रता विशेष होय, सो ही बताईये है। ध्यान कौं कदाचित् एकान्त क्षेत्र नहीं होय, बहुत जीवन के शब्द का कोलाहल होय, अनेक जीवन का आवना-जाना होय, तो ऐसे स्थान में परणति चंचल होय। तातैं ध्यान कौं एकान्त स्थान चाहिये। एकान्त बिना ध्यान की सिद्धी नाहीं होय। १। और अशुद्ध क्षेत्र होय तो ध्यान लागै नाहीं, तातैं रमणीक-निर्मल क्षेत्र चाहिये, तब ध्यान की शुद्धता होय। २। और जहां काठ की व चित्राम की पुतरी नहीं होंय। रंगमहल, रमणीक बिछौने इत्यादिक सराग क्षेत्र नहीं होय। महा उदास, वैराग्य बढ़ने का कारण, राग रहित क्षेत्र चाहिये, तातैं ध्यान की सिद्धि होय। ३। तथा महा पर्वतन की गुफा होय। ४। तथा उतङ्ग, मनोहर, उदार पर्वतन के शिखर होंय। ५। तथा निरमल जल करि सहित बड़े सरोवर तथा बहती गहन बड़ी नदी, तिनके तट ध्यान योग्य हैं। ६। तथा जीर्ण उद्यान, अरु महा भयानीक, मोही जीवन कूं भय उपजावनहारी, विकट, वृक्ष रहित अटवी, ध्यान योग्य क्षेत्र है। ७। तथा दीरघ सघन वृक्षन करि भरया बन होय, सो ध्यान योग्य क्षेत्र है। ८। और जहां अति शीत नहीं होय, ते क्षेत्र ध्यान योग्य हैं। ९। तथा जहां बहु उष्ण नहीं होय, सो क्षेत्र ध्यान योग्य है। १०। ऐसे दश क्षेत्रन में ज्ञान-वैराग्य के बढ़ाने रूप भाव होंय। धीरजता होय, क्षमा भाव होय। इत्यादिक, भाव सहित ध्यान सिद्धि के क्षेत्र जानना। आगे परणामों की

विशुद्धता कूं कारण, आलोचना भाव है। सो आलोचना के अतिचार दश हैं। तहां प्रथम नाम कहिये--आकम्पन । १ । अनमापित । २ । दिष्ट । ३ । वादर । ४ । सूक्ष्म । ५ । शब्दांकुल । ६ । छिनि । ७ । बहु । ८ । अविक्त । ९ । तत् सेवत । १० । ऐसे ये दश अतिचार हैं। तिनका सामान्य स्वरूप कहिये है—जहां कोई मुनीश्वर कौं अपने संयम में दोष लाग्या दीखै। तब वह यतीश्वर पाप का भय खाय, गुरुन पै पाप दूर करने कूं दण्ड-प्रायश्चित्त जांचता भया। सो दण्ड जांचता कबहूं ऐसा विचार करै, जो आचार्य दीर्घ दण्ड नाहीं बतावैं तो भला है। ऐसा भय करना, सो आकम्पन दोष है। १ । और कोई यती कौं दोष लाग्या होय तौ अपने गुरु पै जाय, अपने प्रमाद की निन्दा करै। आलोचना सहित अपना लाग्या दोष प्रगट करि, गुरु पै दण्ड जांचता ऐसा विचार करै, जो मेरा तन निर्बल व रोग पीड़ित है, सो दीरघ दण्ड सहवे की मोरी शक्ति नाहीं। तातैं आचार्य मोकौं अल्प दण्ड बतावैं तौ भला है। ऐसे विचार का नाम अनमापित दोष है । २ । और यती आप कौं कोई दोष लाग्या जानैं तौ विचारैं। जो मेरा दोष फलाने नैं देखा है, तौ अपना दोष गुरु पै कहैं, अपनी निन्दा—आलोचना करैं। और जो अपना दोष काहू ने नहीं देखा होय, तौ गुरु पै नाहीं कहैं। ताका नाम दिष्ट दोष है । ३ । और यतीश्वर कौं कोई सूक्ष्म दोष लागा होय, तौ गुरु पै नाहीं कहैं। और कोई वादर—बड़ा दोष लागा होय, तो मान के निमित्त और के दिखावने

कौं आचार्य पै कहैं, आलोचना करैं, सो वादर दोष है । ४ । और जहां मुनीश्वर कौं कोई वादर दोष लाग्या होय, तौ आचार्य के पासि नहीं कहैं । और सूक्ष्म दोष लगा होय, तौ मान—बड़ाई लोक—प्रशंसा कौं गुरु पै जाय प्रकाशैं । अपनी आलोचना करैं । सो सूक्ष्म दोष कहिये । ५ । और कोई मुनि कौं दोष लागा होय, तौ गुरु पै कहैं तौ सही, परन्तु मान-बड़ाई के अर्थ, दोष छिपाय कैं कहैं । सो अपना नाम तौ नहीं लेंय । अरु गुरु पै कहैं । भो गुरो, ऐसा दोष काहू मुनि पै लागा होय तौ ताका कहा दंड ? सो कहो । ऐसे आलोचना सहित पूछना । अरु निंदा के भय तैं अपना नाम प्रगट नहीं करना, याका नाम छिनि दोष है । ६ । और कोई मुनि कौं दोष लागा होय, सो गुरु पै एकान्त तौ नहीं कहैं । अरु जब आचार्य बहुत मुनि-श्रावकन सहित तिष्ठे हौंय, तब मान का लोभी, अपनी प्रशंसा करावने का, अभिलाषी, गुरु कौं कहै । तथा अनेक स्वाध्याय का शब्द होय रह्या होय तथा आचार्य उपदेश करते हौंय तथा और शिष्यन का प्रश्न होय रह्या होय इत्यादिक समय देखि, भरी सभा में प्रश्न—उत्तर के शोर में अपना दोष गुरु पै कहै, आलोचना करै । सो गुरु ने कछू सुन्या, कछू नाहीं । ऐसा अवसर देखि कहना, सो याका नाम शब्दाकुल दोष है । ७ । और कोई मुनि कौं दोष लाग्या होय, सो गुरु पै जाय अपना दोष कहै । आलोचना करै । तब गुरु याके पाप नाशने कूं प्रायश्चित्त देंय । सो गुरु का दिया प्रायश्चित्त मुनि विचारी, जो गुरु ने प्रायश्चित्त भारी बताया । तब ऐसी जानि और

ही आचार्य पै जाय, आलोचना सहित अपना दोष कहै। तब उनने भी दंड दिया, ताकौं भी भारी दंड जानि और आचार्य के संघ में जाय आलोचना करि, अपना दोष कहै। ऐसे ही जब तांईं कोई आचार्य अल्प दंड नहीं बतावैं, तब लूं अनेक आचार्यन पै जाय–जाय, आलोचना करि, अपना दोष कहै। याका नाम बहु दोष है। ८। और कोई मुनि कौं दोष लागै, सो पाप के भय तैं अपना दोष प्रकाशैं तौ सही। परन्तु मान–बड़ाई–लज्जा के योग तैं आचार्य कूं नाहीं कहैं। मेरा अपयश–निंदा होयगी, ताके भय तैं गुरु पै नहीं कहैं। अरु कोई आप तैं छोटे पदस्थधारी तथा आप के समानि हौंय, तिस मुनि कौं कहैं। ताके पास अपना दोष आलोचना सहित प्रगट करैं। सो याका नाम अविक्त दोष है। ६। और कोई मुनि कौं दोष लगा होय, सो मान–बड़ाई अपयश–निंदा के भय तैं गुरु पै नाहीं कहैं। और जब कोई आप जैसा दोष और मुनि कौं लागै, सो आचार्य कौं वाकौं प्रायश्चित्त देते देखि, आचार्य कौं आप कहै। भो नाथ, इन मुनीश्वर सा दोष मोकौं भी लागा है। सो जैसा दंड या मुनि कौं दिया, तैसा ही मोकौं देव। ऐसी आलोचना सहित कहना, सो याका नाम तत्सेवत दोष है। १०। ऐसे आलोचना के दश दोष हैं। सो जो अंतरंग के धर्मात्मा हैं तिनकौं अपने धर्म कौं सुधार राखना उत्कृष्ट है। इति आलोचना के दश दोष ॥ अब आचार्य कोई शिष्य के कल्याण होने कूं दीक्षा देंय, तो ये दश काल टालि दीक्षा देय हैं। इन कालन में दीक्षा नाहीं देंय। सो बताइये है। तहां प्रथम नाम-ग्रहोपराग

कहिये, जाकौं कोई अशुभ ग्रह होय, तो दीक्षा नहीं देंय। १। सूर्य ग्रहण होय। २। चन्द्र का ग्रहण होय। ३। इन्द्र धनुष चढ़या होय। ४। जाकौं उल्टा ग्रह आया होय। ५। तथा आकाश बादलन करि आच्छादित होय रह्या होय। ६। तथा जिस जीव कौं महिना खोटा होय। ७। तथा अधिक मास होय। ८। तथा संक्रांति दिन होय। ६। क्षय तिथि होय। १०। इन दश अवसरन में भला ज्ञाता, निमित्त ज्ञान के वेत्ता आचार्य, शिष्य कौं दीक्षा नहीं देंय। और कदाचित् कोई ज्ञान की मंदता के जोग तैं इन दश कालन में दीक्षा देंय, तौ आचार्यन की परम्परा का लोप होय, निंदा पावैं। जिन आज्ञा का उल्लंघन करनहारा जानि, सर्व आचार्यन के संघ तैं बाहरे होंय, संघ तैं निकसैं, अपमान पावैं। तातैं ये दश काल टालैं हैं। और जिन दिनों में दीक्षा होय, सो बताईये है। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ योग, शुभ मुहूर्त, शुभ ग्रह इत्यादिक शुभ काल में दीक्षा होय है। और दीक्षा कौन २ गुण सहित कौं होय है। सो ही बताईये है। बुद्धिमान् होय। विशुद्ध कुल होय। गोत्र शुद्ध होय। शरीर के आंगोपांग शुद्ध होंय। तहां कांणा, अंधा, लूला, ठूंठा, बावना, कूबड़ा, रोगी, वधिर इत्यादिक दोष रहित होय, सुन्दर मूरत होय। मंद कषायी होय। जाकैं पंचेन्द्रिय-भोगन तैं अरुचि होय। मोक्षाभिलाषी होय। शुभ चेष्टा सहित प्रकृति होय। शुभाचारी होय। हाँसि—कौतूहल रहित, नेत्रन करि चमत्कारक होय। महा वैराग्य दशा करि पूरित होय। इत्यादिक गुण सहित जो शिष्य होय, तिनकौं दीक्षा होय। ऐसे मुख्य गुण हैं सो कहे।

बाकी इनमें सामान्य-विशेष योग्य-अयोग्य सम्हाल कैं-विचार कैं आचार्य करैं हैं। ऐसा जानना। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, षट् लेश्या, योनि भेद, निगोद रहित स्थान, निमित्त ज्ञानादिक कथन वर्णनो नाम, सत्ताईसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ २७ ॥

आगे दश करण का निमित्त पाय, कर्मन की अवस्था कहिये है। प्रथम नाम-बंध, उदय, सत्ता, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उपशान्त, निधत्ति, निकांचित और उदीरणा ये दश हैं। अब इनका अर्थ-तहां प्रथम बंध करण कहिये है। सो जीव, अपने शुभाशुभ परणामन तैं कर्मन का बंध करै है। सो बंध च्यारि प्रकार है। प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, स्थिति बंध और अनुभाग बंध। तहां प्रथम प्रकृति बंध का स्वरूप कहिये है। सो नाना जीव, नाना काल अपेक्षा एक सौ बीस प्रकृति, बंध योग्य हैं। सो ही कहिये है। ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ९, वेदनीय २, मोहनीय २६, आयु ४, गोत्र २, अंतराय ५, ये सात कर्म की प्रकृति ५३, भईं। अब नाम कर्म की-वर्ण चतुष्क ४, संस्थान ६, संहनन ६, गति ४, गत्यानुपूर्वी ४, शरीर ५, जाति ५, आंगोपांग ३, चाल २, अगुरु लघु अष्टक ८, दश दुक की २०, ऐसे नाम कर्म की सड़सठ। सर्व मिलि अष्ट कर्म की एक सौ बीस प्रकृति बंध योग्य हैं। सो मनुष्य गति में तौ सर्व का बंध है। तातैं मनुष्य विषैं, एक सौ बीस बंध योग्य हैं। और तिर्यंच गति में पंचेन्द्रिय के बंध योग्य एक सौ सत्तरा है। आहारक दुक की दोय और तीर्थंकर एक, इन तीन बिना जानना। और बेन्द्रिय तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, इन विकलत्रय में बंध योग्य प्रकृति एक सौ नौ हैं। वैक्रियक अष्टक की आठ,

आहारक दुक की दोय और तीर्थंकर एक, इन ग्यारह बिना विकलत्रय में एक सौ नव का
बंध है। और पंच स्थावर में बंध योग्य विकलत्रयवत् एक सौ नव प्रकृति हैं। विशेष एता
जो अग्नि व वायु कायक इन दोय थावरन कैं ऊंच गोत्र व मनुष्यायु इन दोय बिना, एक सौ
सात प्रकृति का बंध है। और देवन के वैक्रियक अष्टक की आठ, विकलत्रय की तीन,
आहारक दुक की दोय, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त—इन षोडश बिना, समुच्चय एक सौ
च्यारि का बंध है। और तहां विशेष एता जो दूजे तैं ऊपरि, तीसरे स्वर्ग तैं लगाय बारहवें
स्वर्ग पर्यंत के देवन कैं, एकेन्द्रिय जाति, थावर नाम और आतप, इन तीन बिना एक सौ एक
का बन्ध है। और बारहवें स्वर्ग तैं ऊपरि के देवन कैं, विकलत्रय की तीन और उद्योत इन
च्यारि बिना, सत्यानवे का बन्ध है। ऐसे देव का बंध कह्या। और नारकीन के एक सौ बीस
में, वैक्रियक अष्टक की आठ, विकलत्रय तीन, स्थावर, एकेन्द्रिय, साधारण, अपर्याप्त, सूक्ष्म,
आहारक दुक की दोय, आतप इन उन्नीस बिना, समुच्चय एक सौ एक का बंध है। विशेष
एता जो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध, तीसरे नरक तांई है, आगे नाहीं। तातैं तीजी पृथ्वी
तैं नीचे, एक सौ प्रकृति का बंध है। और सातवें नरक में मनुष्यायु बिना निन्यानवै
का बंध है। ऐसे च्यारि गति विषैं यथायोग्य सामान्य बन्ध कह्या। और विशेष एता जो
एक जीव कैं, एकै काल अपेक्षा, तीन गति में तो गुणसठ प्रकृतिन का बन्ध है। और तिर्यंच
गति विषैं एकै काल, तीर्थंकर प्रकृति बिना, अट्ठावन प्रकृतिन का बंध है। इहां प्रश्न-जो तीर्थंकर

प्रकृति का बन्ध तौ मनुष्य में ही कह्या। परन्तु यहां देव-नारकी में भी कह्या, सो कैसे बनै ? ताका समाधान। जो हे भव्य, प्रश्न तुम्हारा प्रमाण है। प्रथम तौ तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध मनुष्य ही कैं होय है। या बात प्रमाण है। परन्तु मनुष्य गति का किया बन्ध देव-नारकी में जाय है। तातैं तहां बन्ध, और गति तैं जानना। यहां फेरि प्रश्न–जो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करन-हारा सम्यग्दृष्टी, देव गति में जाय। सो देव में तौ तीर्थंकर का बन्ध करै है, सो सम्भवै। परन्तु तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करनहारा जीव, नरक में कैसे जाय ? ताका समाधान–कोऊ जीव नैं मिथ्या-दशा में प्रथम नरकायु का बन्ध किया था, पीछे उस निकट भव्यात्मा संसारी जीव कैं सम्यक् भया। सो तीर्थंकर व केवली के निकट निमित्त पाय, षोडस भावना भाय तथा इन में तैं एक–दोय आदि कोई भावना भाय, परणामन की विशुद्धता तैं तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर, पीछे आयु बन्ध के योग तैं जीव नरक जाय। तहां तीर्थंकर बन्ध लिये जाय। ताकी अपेक्षा बन्ध कह्या है। सो प्रथम नरक में जानेहारा जीव तौ, सम्यक् सहित भी जाय है। और दूजे व तीजे का जानेहारा जीव, मम्यक् कूं तज कैं जाय है। सो अन्त-मुंहूर्त मिथ्यात रहै। कारमान तैं जाय, पर्याप्ति पूरण करै। जहां तांईं पर्याप्ति पूरन नाहीं करै, तहां तांईं तौ मिथ्यात्व है। पर्याप्ति पूरण किये, तीर्थंकर बन्ध वारे कैं सम्यक् होय है। तब तैं तीर्थंकर बन्ध जानना। ऐसे च्यारि गति में बन्ध कह्या। सो ये तो प्रकृति बन्ध है। और इन एक–एक प्रकृति की साथि, अनन्त-अनन्त परमाणु स्कन्ध रूप होंय। सो समय प्रबद्ध

की गैलि केती परमाणु बन्धी तिन की संख्या, सो प्रदेश बन्ध है। और बन्धी जो कर्मप्रकृति, तिनमें मोह कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण है। और नाम व गोत्र की बीस कोड़ा कोड़ी सागर स्थिति है। और आयु कर्म की तेतीस सागर स्थिति है। और ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी, अन्तराय इन च्यारि कर्मन की तीस-तीस कोड़ा कोड़ी सागर की स्थिति है। और वेदनी की जघन्य स्थिति द्वादश मुहूर्त की है। और नाम व गोत्र इन दोय कर्मन की जघन्य स्थिति आठ-आठ मुहूर्त की है। बाकी औरन की जघन्य स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त की है। ऐसे यथायोग्य स्थिति का बन्ध होना, सो स्थिति बन्ध है। और बन्ध-कर्म विषैं, उदय भये जैसा रस देवे की शक्ति, जो ये कर्म उदय भये एता रस प्रगट करेगा। सो अनुभाग बन्ध है। ऐसे कहे जो च्यारि प्रकार बन्ध, सो बन्ध है। सो प्रकृति व प्रदेश बन्ध तो, योगन तैं होय है। और स्थिति व अनुभाग बन्ध, कषायन तैं होय है। ऐसे तौ ये बन्ध-करण जानना। इति बन्ध करण ॥ १ ॥ आगे उदय करण कहिये है। तहां उदय भी च्यारि प्रकार है। प्रकृति उदय, प्रदेश उदय, स्थिति उदय और अनुभाग उदय। तहां प्रथम ही प्रकृति उदय कहिये है। सो नाना जीव, नाना काल अपेक्षा, उदय योग्य प्रकृति एक सौ बाईस हैं। तहां ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की नव, वेदनीय की दोय, मोहनी की अट्ठाईस, आयु कर्म की च्यारि, गोत्र की दोय, अन्तराय कर्म की पाञ्च। ऐसे सात की पचवन। नाम कर्म की-वर्ण चतुष्क की च्यारि, संहनन षट्, संस्थान षट्, गति च्यारि, गत्यानुपूर्वी च्यारि,

शरीर पाञ्च, जाति पांच, अंगोपांग तीन, चाल दोय, अगुरु अष्टक की आठ और दश दुक की बीस, ऐसे नाम कर्म की सड़सठ। सर्व मिलि एक सौ बाईस, उदय योग्य प्रकृति जानना। तामैं तिर्यंच सम्बन्धी बारह—तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु, जाति च्यारि, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप और उद्योत ये प्रकृति तिर्यंच द्वादश हैं। और वैक्रियक अष्टक, इन बीस बिना मनुष्य योग्य एक सौ दोय हैं। अब देव योग्य, उदय की प्रकृति कहिये हैं। ज्ञानावरण की पाञ्च, दर्शनावरण की छह, वेदनी की दोय, मोहनी की नपुन्सक बिना सत्ताईस, आयु, गोत्र ऊंच, अन्तराय की पांच, ऐसे सात कर्म की सैंतालीस। वर्ण चतुष्क की च्यारि, (संहनन नाहीं) संस्थान एक समचतुर, गति, गत्यानुपूर्वी, शरीर की तीन, अंगोपांग, चाल, जाति, अगुरुलघु, उच्छ्वास, उपघात, परघात, निर्माण, दश दुक की बारह, सर्व मिलि नाम कर्म की तीस, ऐसे देव योग्य उदय प्रकृति सतत्तरि हैं। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा, समुच्चय कथन जानना। और नारकी कैं उदय योग्य प्रकृति छिहत्तरि हैं। सो देव के उदय की प्रकृतिन में तौ दोय वेद घटाय दीजे। अरु नपुन्सक वेद मिलाईये। और यथायोग्य प्रकृति पलट देनी। शुभ की जायगा, अशुभ प्रकृति करनी। ऐसे नरक में उदय योग्य प्रकृति छिहत्तरि हैं। और तिर्यंच के उदय योग्य प्रकृति एक सौ सात हैं। एक सौ बाईस में तैं वैक्रियक अष्टक की आठ, मनुष्य गति आदि तीन, आहारक दुक की दोय, तीर्थंकर, ऊंच गोत्र, इन पन्द्रह बिना एक सौ सात प्रकृति का तिर्यंचन के उदय

है। विशेष तहां एता, जो पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उदय योग्य प्रकृति निन्यानवैं हैं। तिनके नाम—ज्ञानावरणी की पांच, दर्शनावरणी नव, वेदनी दो, मोहनी की अट्ठाईस, आयु, गोत्र नीच, अंतराय पांच, ये सात कर्म की इक्यावन। वर्ण की च्यारि, संहनन षट्, संस्थान षट्, गति, गत्यानुपूर्वी, शरीर तीन, जाति, अंगोपाङ्ग, चाल दोय, और तीर्थंकर व आतप इन दोय बिना अगुरु अष्टक की छह, और दश दुक की मैं तैं सूक्ष्म, साधारण, स्थावर, इन तीन बिना सत्तरा, ऐसे नाम की अड़तालीस, सर्व मिलि निन्यानवैं हैं। अब एकेन्द्रिय के उदय योग्य प्रकृति अस्सी हैं। ताकी विधि—ज्ञानावरण की पाञ्च, दर्शनावरण नव, वेदनी दोय, मोहनी चौबीस, आयु, नीच गोत्र, अन्तराय पाञ्च, ये सात कर्म की सैंतालीस। आगे नाम की—तहां वर्ण की च्यारि, (संहनन नाहीं) संस्थान, गति, गत्यानुपूर्वी, शरीर तीन, एकेन्द्रिय जाति, (अंगोपांग तथा चाल नाहीं) तीर्थंकर बिना अगुरु अष्टक की सात, दश दुक की पन्द्रह, ऐसे नाम कर्म की तेंतीस, सर्व मिलि एकेन्द्रिय के उदय योग्य प्रकृति अस्सी। अब विकलत्रय के उदय योग्य प्रकृति कहिये हैं। सो एकेन्द्रिय के उदय योग्य मैं तैं सूक्ष्म, साधारण, स्थावर, आतप, ये च्यारि तौ काढ़िए, । अरु संहनन, अंगोपांग, चाल, स्वर, त्रस, ये पांच मिलाईये, तब विकलत्रय के उदय योग्य प्रकृति इक्यासी। ऐसे कहे जो सामान्य भाव, च्यारि गति सम्बन्धी उदय, सो प्रकृति उदय कहिये। और समय-समय ये प्रकृति उदय आवैं, तब तिन प्रकृतिन के संग जेती—जेती प्रमाण, कर्म उदय आय खिरैं, सो प्रदेश उदय है। सो ही संक्षेप दिखाइये है। तहां

एकली अणु का नाम तो वर्ग है। अनन्त वर्ग का समूह सो वर्गणा है। और असंख्यात लोक प्रमाण वर्गणा स्कन्ध मिलाईये, तब एक स्पर्धक होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण स्पर्धक मिलाईये, तब एक गुण—हानि होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण गुण—हानि कौं मिलाईये, तब एक नाना—गुण—हानि होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण नाना—गुण-हानि को मिलाईये, तब एक अन्योन्याभ्यस्त राशि होय। ऐसी असंख्यात लोक प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि स्कन्ध मिलाईये, तब एक प्रकृति होय। ऐसे उदय योग्य प्रकृति, तिन के साथ जेते प्रदेश उदय आय खिरैं, सो प्रदेश उदय है। और जिस प्रकृति की जेती जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति थी, तिन में तैं जो समय घाटि उदय आवै, सो स्थिति उदय है। और जिस प्रकृति के उदय होते जो शुभाशुभ रस का प्रगट होना, सो अनुभाग उदय कहिये। ऐसे ये सामान्य करि च्यारि प्रकार उदय कह्या ॥२॥ अब सत्व करण कहिये है। तहां ऊपरि कहि आए जो बन्ध, सो कर्म बन्धे पीछे जेते काल उदय होय नहीं खिरैं। आत्मा के प्रदेश तैं, एक क्षेत्र कर्म रहैं। सो सत्व करण है। सो सत्व करण भी चारि प्रकार है। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग। तहां प्रथम ही प्रकृति सत्व कहिये है। सो सत्व योग्य प्रकृति, एक सौ अड़तालीस हैं। सो नाना जीव, नाना काल अपेक्षा हैं। और एक जीव कैं एकै काल तीन आयु बिना, भुज्यमान आयु सहित एक सौ पैंतालीस का सत्त्व है। और भुज्यमान वारे के तीर्थंकर बिना, एकसौ चबालीस का सत्त्व है। और कोई के तीन

आयु, आहारक चतुष्क व तीर्थंकर बिना एक सौ चालीस का सत्त्व है। और किसी के आहारक चतुष्क, तीर्थंकर और बध्यमान आयु सहित एक सौ छयालीस का सत्त्व है । और एक सौ अड़तालीस में तें बद्धयमान वारे के तीर्थंकर और दोय आयु इन तीन बिना, एक सौ पैंतालीस का सत्व है। और किसी के आहारक चतुष्क, तीन आयु, इन सात बिना एक सौ इकतालीस का सत्व है। और आहारक चतुष्क व दोय आयु, इन षट् बिना कोई बद्धयमान आयु वारे कैं एक सौ व्यालीस का सत्व है। ऐसे अनेक प्रकार नाना जीव कैं सत्व पाईये। ताका सामान्य कथन कह्या। सो याका नाम सत्व करण है ॥ ३ ॥ और जैसे कच्चे आमों कौं पाल-पत्ता देय, सिताब (जल्दी) पकाईये। तैसे ही जिस कर्म की स्थिति बहुत होय, ताकौं बलात्कार तप-संयमादि करि, ताकी स्थिति घटाय उदय काल में लावना, सो उदीरणा है। भावार्थ—जो कर्म की बहुत स्थिति कूं घटाय, थोड़ी करि, खेरना। सो उदीरणा करण है॥ ४॥ और जिन कर्मन की बहुत स्थिति थी सो तिनके निषेक, नीचले थोरी—स्थिति वारेन में मिलाय, उदय में ल्यावना, सो अपकर्षण है॥ ५ ॥ और जिन कर्मन की स्थिति थोरी थी, तिनके निषेक नीचले तें लेय, ऊपरले बड़ी-स्थिति के निषेकन में मिलावना, सो उत्कर्षण हैं। भावार्थ—जा कर्म की स्थिति थोरी थी ताकी बड़ी करना, सो उत्कर्षण है ॥ ६ ॥ और आगे शुभ भावन तें पुण्य प्रकृति बांधी थीं, ताके निषेक पाप परणामन तें पाप प्रकृति रूप करना। तथा आगे अशुभ भावन तें पाप प्रकृति बांधी, ताकौं शुभ भावना के फलतैं पलटाय

पुण्य प्रकृति रूप करना, सो संक्रमण है ॥ ७ ॥ और कर्म उदयावली वांभि है । सो उदयावली में कर्म कोई उपाय तैं नहीं आवैं, सो उपशांत करण कहिये ॥ ८ ॥ और जिन कर्मन के परमाणु संक्रमण नहीं होंय। तथा उदयावली में नहीं आवैं । सो याका नाम निधत्ति करण है ॥९॥ और जा कर्म के परमाणु उत्कर्षण जो कर्म स्थिति का वढ़ावना, अपकर्षण जो कर्म स्थिति का घटावना, संक्रमण जो कर्म कौ और रूप करना, सो जामें तीनों ही नहीं होय उदयावली में नहीं आवै । जिस अंशन करि बन्ध्या है, तिन ही अंशन करि उदय आवै । सो निकांचित नाम करण है ॥ १० ॥ य दश करण हैं । इनकौ जानैं, कर्म की अवस्था भले प्रकार जानी जाय है । ऐसा जानना । इति दश करण । विशेष इनका श्रीगोम्मटसारजी तैं जानना । ऐसा करण का स्वरूप, मिथ्यात गये जानिये है। सो मिथ्यात का स्वरूप कहिये है। मिथ्यात के दोय भेद हैं । सादि मिथ्यात और अनादि मिथ्यात । सो जीव कैं अनादिकाल संसार भ्रमण करतैं, कबहूं भी सम्यकत्व का लाभ नहीं भया होय, सो तो अनादि मिथ्यादृष्टी है ॥१॥ और जे जीव सम्यक्त्व कूं पाय, पीछे पाप भाव—अतत्व की वांच्छा तैं मिथ्यात में आया होय, सो सादि मिथ्याती कहिये ॥२॥ इनके होतैं कर्म का स्वरूप नहीं पावै । इति मिथ्यात । आगे भाव भेद तीन बताईये है । शुद्ध भाव, शुभ भाव और अशुभ भाव । इनका अर्थ—तहां राग-द्वेष का अभाव, शत्रु-मित्र, कंचन—तिण, रतन—पाषान इनमें राग—द्वेष नहीं होय, सो शुद्ध भाव कहिये ॥१॥ और दान, पूजा, शील, जप, तप, संयम, ध्यान, शास्त्राभ्यास, इत्यादिक क्रिया

रूप शुभ भावन की प्रवृत्ति, सो शुभ भाव हैं ॥२॥ और जीव हिंसा भाव, असत्य भाषण भाव, परद्रव्य हरण भाव, पर–स्त्री लम्पट भाव, पुण्य उपरान्त परिग्रह के इकट्ठे करवे रूप भाव, सप्त व्यसन भाव, पाखंड भाव, हाँसि–कौतुकादि भण्ड भाव, रुद्र भाव, आरत भाव, क्रोध मान माया लोभ भाव इत्यादिक पाप बन्ध के कारण, सो अशुभ भाव हैं ॥ ३ ॥ ये तीन, भाव के भेद हैं। तिन में शुद्ध भाव तौ भव्य ही कैं होय हैं। और शुभ, अशुभ ये दोय भाव, भव्य तथा अभव्य दोऊन के होय हैं। तहां भव्य के भी तीन भेद हैं। निकट भव्य, दूर भव्य और दूरानदूर भव्य। तहां जे जीव थोड़े काल विषैं मोक्ष जांय, सो निकट भव्य हैं। १। और जे जीव बहुत काल में मोक्ष होंय। तथा कबहू न कबहू अनन्त काल में होंयगे, ऐसी केवल–ज्ञान में भासी है। सो दूर भव्य हैं। मोक्ष होवे योग्य हैं, तातें इन को दूर भव्य जानना। २। और जे जीव भव्य हैं, केवलज्ञान में भासे हैं। सो भव्य राशि हैं। परन्तु मोक्ष होने की सामग्री जो सम्यग्दर्शनादि जिनकै कबहू प्रगट नाहीं होय। सदीव संसार वासी, अभव्य समानि, कबहू मोक्ष नहीं जांय, सो दूरानदूर भव्य हैं। ३। यहां प्रश्न–जो भव्य कह्या अरु मोक्ष कबहू नहीं होय, सो कैसे बनै ? ताका समाधान–हे भव्य, तू चित्त देय सुनि। अभव्य राशि तौ बहुत ही अल्प है। सो देखि। सर्व जीव राशि तैं अनन्तवें भाग तो सिद्ध राशि का प्रमाण है। और सिद्ध राशि तैं अनंतवें भाग, अभव्य राशि है। सो भी जघन्य जुगता अनन्त है। सो ये अभव्य तो जव कहिये तुच्छ राशि जानना। और भव्य राशि बहुत है।

सो सुनि, ज्यों तेरा भ्रम जाय। एक महा छोटा खस–खस दाने प्रमाण निगोद स्कन्ध में, असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर हैं। तहां एक–एक शरीर में अक्षय अनन्त जीव हैं। इनका अन्त नाहीं। इस शरीर में तैं निकसि-निकसि अनन्तकाल तांईं, अनन्त जीव मोक्ष होवे करैं, तौ भी केवली कूं पूछिये, तब ही उस शरीर तैं निकसे तिनतैं अनन्त गुणे जीव, भव्य राशि और कहैं। ऐसे ही इस संसार तैं अनन्त काल तांईं जीव मोक्ष होवो करैं, तौ भी सिद्ध राशि तैं अनन्त भव्य जीव जब पूछौ, तब ही केवली बतावैं। तातैं सदीव मोक्ष जातैं भी, जब केवली कूं पूछिये तब ही अभव्यन तैं अनन्त गुणे भव्य, एक शरीर में जानना। और कदाचित् मोक्ष जाते-जाते, भव्य राशि मोक्ष जा चुकै, तो मोक्ष का पीछे अभाव होय। मोक्ष बन्द होय। सो मोक्ष मारग कबहू बन्द होता नाहीं, शाश्वत् है। छह महिना आठ समय में, छह सौ आठ जीव, निरन्तर मोक्ष जांय। सो ये अनुक्रम कबहूं बन्द होता नाहीं। सो ऐसा जानना कि जो अनन्ते जीव, भव्य–राशि में ऐसे हैं, सो कबहूं मोक्ष होते नाहीं। जब केवली कूं पूछौ, तब ही अभव्य राशि तैं अनन्त गुणे भव्य बतावैं। तामें दूरानदूर भव्य राशि भी, अभव्यन तैं अनन्त गुणी जानना। सो ये दूरानदूर भव्य, अभव्य समानि हैं। इति। आगे तीन भेद आंगुल के कहिये हैं। सो प्रथम ही नाम–उच्छेद आंगुल। १। आत्म आंगुल। २। प्रमाण आंगुल। ३। इनका अर्थ–तहां प्रथम ही उच्छेद आंगुल कौं बतावैं हैं। ताके निमित्त, उगुणीस भेद गिणती कहिये। अवसनासन। १। सनासन। २। तटरेणु

। ३ । त्रसरेणु । ४ । रथरेणु । ५ । उत्तम भोग भूमि के बाल का अग्रभाग । ६ । मध्य भोग-
भूमि के बाल का अग्रभाग । ७ । जघन्य भोग भूमि के बाल का अग्रभाग ।८।कर्म भूमि के
बाल का अग्रभाग । ६ । लीख । १० । सरसौं । ११ । जव नाम अन्न । १२ । आंगुल । १३ ।
ये तेरह स्थान हैं । सो अवसनासन स्कन्ध तें लगाय, आंगुल पर्यंत तेरह स्थान, आठ-आठ
गुणा अधिक जानना । भावार्थ—जैसे अवसनासन स्कन्ध है सो अनन्त पुद्गल परमाणून का
स्कन्ध होय है । और आठ अवसनासन का, एक सनासन स्कन्ध होय है । और आठ
सनासन मिलाये, तब एक तटरेणु होय है । और आठ तटरेणु मिलाये, तब एक त्रसरेणु होय
है । ऐसे आठ-आठ गुणा आंगुल पर्यंत जानना । और इस आठ जव प्रमाण उच्छेद आंगुल तें
पांच सौ गुणा प्रमाण—आंगुल है । १४ । और चौबीस आंगुल का एक हाथ होय है । १५ ।
और च्यारि हाथ का एक धनुष होय है ।१६। और दो हजार धनुष का एक कोस होय है ।१७।
और च्यारि कोस का एक योजन होय है ।१८। और असंख्यात योजन का एक राजू होय है
। १६ । और उगणीस (१६) भेदन में से तेरहमा भेद, आठ जव प्रमाण उच्छेद आंगुल है
।१। और जिस काल में जैसा शरीर होय तैसा ही आंगुल, सो आत्म आंगुल जानना ।२। और
अवसर्पिणी का प्रथम चक्रवर्ती, पांच सौ धनुष के शरीर वारा, ताका आंगुल सो ये प्रमाणां-
गुल है । सो ये उच्छेद आंगुल तैं पांच सौ गुणा मोटा, प्रमाण-आंगुल जानना ।३। इति । आगे
अक्षर के तीन भेद हैं, सो कहिये हैं । प्रथम नाम—निवृत्ति अक्षर । १ । लब्धि अक्षर । २ ।

स्थापना अक्षर । ३ । अब इन का अर्थ—तहां ओंठ, ताल्वादि स्थान तैं उत्पत्ति होय जो शब्द रूप अक्षर, सो निवृत्ति अक्षर है। १ । और ज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम तैं भई जो पदार्थ जानने की भावेन्द्रिय द्वारा अक्षर शक्ति, सो लब्धि अक्षर है ।२। और जो अपने—अपने देश भाषा रूप अक्षरन का आकार बनाय के, तिन तैं कर्म—धर्म का कार्य करना, शास्त्र पढ़ना—समझना । इत्यादिक सो स्थापना अक्षर है। ३ । ऐसे तीन भेद अक्षर जानना । इति। आगे पर्याप्ति के तीन भेद—पर्याप्ति। १ । अपर्याप्ति, तिसका ही नाम निर्वृत्य पर्याप्ति।२। लब्धि अपर्याप्ति । ३ । इनका अर्थ—जहां पर्याप्ति नाम कर्म के उदय सहित जीव पर्याप्ति पूरण करै, सो पर्याप्ति है ।१। और पर्याप्ति प्रकृति के उदय सहित जीव जेते काल शरीर पर्याप्ति पूरण नहीं किया होय, सो निर्वृत्य पर्याप्ति जीव है । २ । और अपर्याप्ति के उदय सहित जीव शरीर पूर्ण करतैं पहले मरण करै है, सो लब्धि अपर्याप्ति है । ३ । ऐसे तीन भेद पर्याप्ति के जानना । इति । आगे चक्षु दर्शन के दोय भेद हैं। एक शक्ति चक्षु दर्शन । १ । एक व्यक्त चक्षु दर्शन । २ । इनका सामान्य अर्थ—अपर्याप्ति प्रकृति के उदय सहित ऐसे लब्धि अपर्याप्त, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय के शक्ति चक्षु दर्शन है। इनके चक्षु दर्शन का क्षयोपशम तो है, परन्तु अपर्याप्ति कर्म उदय तैं, अपर्याप्त दशा में ही मरैं हैं। तातैं प्रगट नहीं होने पावै। तातैं शक्ति चक्षु दर्शन कहिये ।१। और पर्याप्त चौइन्द्रिय सो ये व्यक्त चक्षु दर्शनी हैं ।२। इति। आगे उपशम सम्यक् के दोय भेद बताईये हैं—प्रथमोपशम सम्यक् । १ । द्वितीयोपशम

सम्यक् । २ । इनका सामान्य अर्थ—तहां अनादि काल संसार भ्रमण करते कबहूं मिथ्यात छुटि, सम्यक् होय । आगे कबहूं नहीं भया था, अब ही अनन्त काल में सम्यक् भाव जिस जीव कैं होय, सो प्रथमोपशम सम्यक् है । १। और श्रेणी चढ़ते अप्रमत्त गुणस्थान विषैं क्षयोपशम सम्यक् तैं उपशमसम्यक् होय, सो द्वितीयोपशमसम्यक् कहिये । २ । इति । आगे योग स्थान के तीन भेद बतावैं हैं——प्रथम उत्पाद योग स्थान । १ । एकांत वृद्धि योग स्थान। २ । परणाम योगस्थान । ३ । इनका सामान्य अर्थ—तहां जो उपजने के प्रथम समय में ही जो योग स्थान होय, सो उत्पाद योग स्थान है। याका जघन्य व उत्कृष्ट काल एक ही समय है ।१। और उपजने के द्वितीय समय तैं लगाय, पर्याप्ति पूरण होने के एक समय घाटि पर्यन्त, एक—एक समय बढ़ाईये। तातैं एकान्त वृद्धियोग स्थान हो है। याका भी जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय है । २ । और पर्याप्ति पूर्ण हो चुकी तब तैं लगाय, आयु पर्यन्त होय, सो परणाम योग स्थान है । ३ । यहां प्रश्न—जो परणाम योग स्थान तौ पर्याप्त जीव कैं सम्भवै है और अपर्याप्ति कर्म के उदय वारे कैं कैसे सम्भवै ? ताका समाधान—जो इस लब्धि अपर्याप्त जीव का आयु, श्वास के अठारहवें भाग है। ताके तीन भाग कीजिये, सो दोय भाग बिना एक भाग अन्त का है, सो याका परणाम योग स्थान जानना। ये तीन योग स्थान कहे। इनका विशेष श्रीगोम्मटसारजी के जीव कांड तैं जानना । इति । आगे धर्म सें अरुचि होवे के तीन कारण बताईये हैं। एक तौ जो जीव, जन्म का ही अज्ञान है। ताकों

अज्ञानता के योग करि धर्म्म तैं अरुचि रहै है।१। और कोई जीव कैं कषाय के दोष तैं धर्म तैं अरुचि होय है। २। और कोऊ के धर्म सेवन करते ही, पाप के उदय तैं अरुचि होय। ३। अब इनके दृष्टान्त दिखाइये है। तहां जैसे कोई जीव जन्म रोगी तथा जन्म दरिद्री, इन दोऊ ही नैं कबहू घृत-मिश्री का भोजन नहीं किया। इन के स्वाद कूं कबहू नहीं पाया। तैसे ही कोई पापात्मा, अनादि ज्ञान—दरिद्री, मिथ्या रोग पूरित, सहज ही अज्ञानता करि पाप—पुण्य के भेद कूं नहीं जानैं। तातैं धर्म तैं अरुचि होय है। १। दूसरा जो कोई जीव कषाय करि तथा जाकैं कोई खोटी आयु का बन्ध होय गया होय, ताकरि कोई तैं लड़—पड़ा। सो वाके ऊपरि अपघात करवे कूं कूप, नदी, बावड़ी में कूदि मरै। तथा कोई पै जहर खाय व छुरी कटारी करि, मरै। तैसे ही पाप कर्म के उदय करि, धर्म सेवन करता भी, काहू तैं द्वेष—भाव करि धर्म तैं अरुचि करै है। २। और कोई अच्छी तरह खाता—पीता जीव कैं, पाप कर्म के उदय तैं पेट में रस बढ़ चल्या। ताके योग तैं खान-पान तैं अरुचि होय चली। ज्यों-ज्यों पेट में रस बढ़ने लगा, त्यों-त्यों रोग बढ़्या। त्यों-त्यों अन्न तैं अरुचि होय चली। तैसे ही अच्छा-भला धर्म सेवन करता ही जीव, पाप उदय तैं तथा कोई खोटी गति के बन्ध तैं तथा आयु के बन्ध योग तैं, शनैः-शनैः धर्म तैं अरुचि करै है। दीरघ आरति के योग तैं भोगासक्त भया, ताके दोष करि धर्म तैं अरुचि करै है। ३। ये तीन भेद भाव तैं धर्म तैं अरुचि करि, पाप बन्ध करि, आतमा अपना परभव

बिगाड़ै है। ऐसा जानना। इति। आगे तीन शल्य के भेद कहिये हैं—माया शल्य ।१। मिथ्या शल्य ।२। अग्र सोच (निदान) शल्य।३। इन का अर्थ—तहां माया की परणति आप तज्या चाहै है। धर्म सेवन करै। परन्तु अपने हृदय तैं माया नाहीं जाय। कबहूं न कबहूं माया की वासना प्रगट हो ही जाय, सो माया शल्य कहिये।१। और जहां धर्म सेवन करतैं मिथ्यात आप तज्या चाहै, कुदेवादिक की सेवा का भी त्याग करै, परन्तु कारण पाय कबहूं न कबहूं अतत्व भाव उपजै है। मिथ्या भाव तैं अतत्व उपजै तथा जिन भाषित में संशय होय, सो मिथ्या शल्य है।२। और जहां धर्म सेवन निरवांच्छित होय कैं सेवतैं ही, चित्त मैं कबहूं न कबहूं धर्म सेवन तैं पहिले ही, सेवन के फल की वांच्छा होय, कि धर्म का मोकौं क्या फल होयगा? तथा नहीं होयगा। तथा ऐसा फल उपजियो। इत्यादिक भाव—विकल्प, सो अग्रसोच (निदान) शल्य है।३। इति। आगे निक्षेप च्यारि का स्वरूप कहिये है। प्रथम नाम—नाम।१। स्थापना।२। द्रव्य।३। भाव।४। अब इनका अर्थ—तहां कोई वस्तु का कछू नाम कहना, सो नाम निक्षेप है।१। और कोई वस्तु का आकार करना, सो स्थापना निक्षेप है।२। और कोई वस्तु-पदार्थ होवे कौं कोई वस्तु होय, सो द्रव्य निक्षेप है।३। और वस्तु प्रत्यक्ष होय, सो भाव निक्षेप कहिये है।४। यहां इनका दृष्टान्त करि कहिये हैं। जैसे वृषभ आदि तीर्थकरों के नाम लेय, सुमरन करि पुण्य का बंध करना, सो नाम निक्षेप है।१। और चौवीस तीर्थकरों के शरीर के आकार, वर्ण, लक्षण, रूप सहित

कायोत्सर्ग तथा पद्मासन प्रतिमा, रतन की, स्वर्ण की, चांदी की, धातु की, मनोग्य उत्तम पाषाण की स्थापना करि, पूजा-स्तुति करि, पुण्य उपार्जन करना, सो स्थापना निक्षेप है। २। और तीर्थंकर का जीव परगति में ही है। अरु षट् मास पहिले नगर की रतन मई रचना, पंचाश्चर्य करि पुण्य उपावना। तथा जो तीर्थंकर भये हैं। तिन के गर्भ-कल्याणादि अतिशय का, उछाह करि स्तुति करि पुण्य का बांधना, सो द्रव्य निक्षेप है। तीर्थंकर भये नहीं हैं परन्तु वह गर्भ में तिष्ठती आत्मा, तीर्थंकर होने योग्य है। काल पाय तीर्थंकर पद पावेंगे। सो द्रव्य तीर्थंकर कहिये। सो इनकी सेवा-पूजा किये, पुण्य बन्ध होय है। सो द्रव्य निक्षेप है। ३। और जहां समोशरण सहित, गन्ध कुटी विषैं सिंहासन युक्त कमल, तिसतैं अन्तरीक्ष चार अंगुल विराजमान भगवान्, घातिया कर्म नाश करि, अनन्त चतुष्टय सहित विराजमान, दिव्य ध्वनि करि उपदेश देते तिष्ठैं, सो भाव निक्षेप है। इन की पूजा-स्तुति कूं करि पुण्य उपावना, सो भाव निक्षेप है। ४। ऐसे च्यार निक्षेप तीर्थंकर के हैं। यहां एक दृष्टान्त और भी कहिये है। काहू का नाम सिंह कहना, सो नाम सिंह है। और काष्ठ, पाषाण, चित्राम का नाहर का आकार बनाया, सो स्थापना सिंह है। और नाहर की पर्याय में उपजवे कूं सन्मुख भया जो जीव, सो तौ अंतराल में है, सो द्रव्य नाहर है। और साक्षात् कूदता, फांदता, बोलता सिंह, सो भाव सिंह है। इत्यादिक भेद सब जगह चेतन-अचेतन पदार्थन पै लगावना। इन च्यारों के मारे पाप

होय व इन पै दया भाव किये पुण्य होय । मिट्टी के स्थापना—नाहर के फोड़े—मारै का दोष लागै है । यहां निक्षेपन का स्वरूप सामान्य कह्या। विशेष विवेकी-सम्यग्दृष्टी अपने ज्ञान के महात्म्य करि, सर्व स्थान पै यथायोग्य लगाय लेना । इति। आगे अलौकिक मान के च्यारि भेद हैं। सो बताईये है । प्रथम नाम-द्रव्य मान । १ । क्षेत्र मान । २ । काल मान । ३ । और भाव मान। ४ । अब इनका अर्थ—सो इन च्यारों मान विषैं, जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट ये तीन—तीन भेद हैं । तहां मान नाम प्रमाण का है । सो जो एक पुद्गल परमाणु, है, सो जघन्य द्रव्य मान है। यातैं छोटा द्रव्य और नाहीं। और महास्कंध तीन लोक के प्रमाण, सो उत्कृष्ट द्रव्य मान जानना । या महास्कंध तैं बड़ा और पुद्गल स्कंध नाहीं । तातैं महास्कंध, उत्कृष्ट द्रव्यमान जानना। और पुद्गल परमाणु से ऊपर, महास्कन्ध से एक पुद्गल परमाणु-कम जो बीच के भेद हैं, सो मध्यम द्रव्य मान है।१। और एक प्रदेश आकाश का क्षेत्र, सो जघन्य क्षेत्र मान है। यातैं छोटा क्षेत्र नहीं। और तीन लोक क्षेत्र प्रमाण क्षेत्र, सो लोकाकाश की अपेक्षा उत्कृष्ट क्षेत्र मान है । और अनन्त अलोकाकाश क्षेत्र है, सो उत्कृष्ट क्षेत्र मान है। या अलोकाकाश तैं उत्कृष्ट क्षेत्र नाहीं । और एक प्रदेश के ऊपर तैं एक—एक प्रदेश बढ़ता उत्कृष्ट पर्यन्त, मध्य के भेद हैं। ये क्षेत्र मान के तीन भेद हैं । २ । और एक समय तैं छोटा काल—भेद नाहीं। तातैं एक समय तौ जघन्य काल मान है । और अतीत, अनागत, वर्त्तमान ये तीन काल के जेते समयन का प्रमाण, सो उत्कृष्ट काल मान है । और दूसरे

समय तैं एक–एक समय काल बढ़ता, सो उत्कृष्ट तैं एक समय घाटि पर्यन्त, मध्य के भेद हैं। ऐसे काल–मान के तीन भेद कहे।३। और सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जीव, एक अन्तर्मुहूर्त में छ्यासट हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण करै। सो तिन में छह हजार ग्यारह जन्म–मरण निगोदिया सम्बन्धी करि चुक्या होय। अरु बारहवें जन्म धर तैं, प्रथम समय में अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान रहै है। सो जघन्य ज्ञान है। सो ही जघन्य भाव–मान जानना। यातैं अल्प भाव-मान नाहीं। और इस जघन्य भाव तैं एक–एक ज्ञान अंश बढ़ते, एक अंश घाटि केवलज्ञान पर्यन्त, मध्य भाव मान के भेद हैं। और सर्व तीन काल की जाननहारा अंतरजामी सर्वज्ञ कें केवल ज्ञान है, सो उत्कृष्ट भाव मान है। ये तीन भेद भाव मान के जानना।४। ऐसे सामान्य च्यारि भेद मान के जानना। इति। आगे अर्जिका जी के च्यारि गुण कहिये हैं। प्रथम नाम--लज्जा।१। विनय।२। वैराग्य।३। शुभाचार।४। इनका अर्थ—प्रथम अर्जिका जी का रहने का स्थान बतावैं हैं। सो जहां अर्जिका जी के रहने का स्थान होय। सो नगर तैं अति दूर नहीं होय। बहुत नजदीक भी नहीं होय। ऐसा यथायोग्य कोई मध्य स्थान होय, तहां तिष्ठै। और जब आहार कौं नगर में जाय तौ अकेली नहीं जाय, कोई बड़ी अर्जिका जी के साथ जाय। सो भी मौन सहित, विनय तैं, अङ्ग सङ्कोचती, नीची दृष्टि किये, ईर्य्या समिति सहित, नगर में भोजन कौं जाय। तन को छिपाये रहे, अंगोपांग प्रगट नहीं दिखावे। एक पट तैं सर्व तन कौं आच्छादित राखती,

लज्जा सहित प्रवृत्ते, सो लज्जा गुण कहिये।१। और अर्जिका जी आचार्य के दर्शन कौं जांय, तौ पांच हाथ अन्तर तैं विनय सहित नमस्कार करैं हैं। और उपाध्याय जी के दर्शन कौं जांय, तब षट् हाथ तैं नमस्कार करैं हैं। और साधु जी के दर्शन कौं अर्जिका जी जांय, तब सात हाथ के अन्तर तैं नमस्कार करैं। सो अर्जिका जी इन गुरौं को नमस्कार करैं, तब पंचांग नमस्कार करैं। और अर्जिका जी कों गुरुन पै कोई प्रश्न करना होय, तौ अकेली जाय, नहीं करै। एक बड़ी अर्जिका कूं अपना प्रश्न कहै, जो इस प्रश्न का उत्तर गुरु के मुख तैं सुन्या चाहौं हौं ऐसा कहि, बड़ी अर्जिका जी कौं अगवानी करि, प्रश्न करावै। और भी इनकौं आदि देव, गुरु, धर्म, विषै योग्य विनय सहित रहै, सो विनय गुण है। २। और निरन्तर वैराग्य बढ़ावने के अर्थ, अनेक तप करना। यत्न तैं संयम—ध्यान करना। निरन्तर संसार की अनित्यता का विचार करना। भोगन को भुजंग समानि जानना। तन कौं सप्त धातु मई जान, ताके धारण तैं चित्त की उदासीनता, इत्यादिक भावन सहित विरक्त भाव रहना, सो वैराग्य गुण है। ३। और परम्पराय जिन आज्ञा प्रमाण कही है जो अर्जिका के आचार की प्रवृत्ति, ताही प्रमाण क्रिया करनी, सो शुभ आचार गुण है। ४। इन च्यारि गुण सहित होय, सो सतीन में परम शिरोमणि, धर्म्म मूर्ति अर्जिका जानना। इति आर्यिका गुण। आगे दत्ति भेद च्यारि कहिये है। तहां नाम—पात्रदत्ति। १। समदत्ति। २। करुणादत्ति। ३। सर्वदत्ति। ४। अब इनका अर्थ—तहां मुनिराज कों नवधा

भक्ति करि दान देना, तथा आर्यिका जी कूं भोजन–वस्त्र भक्ति सहित दान देना। तथा त्यागी, अवलि, खलिक, प्रतिमाधारी, तिन कौं भोजन–वस्त्र देना तथा संघ में मुनि–श्रावकन कौं कमण्डलु–पीछी देना। इत्यादिक चारि प्रकार संघ में महा विनय सहित भक्ति-भाव करि दान देना, सो पात्रदत्ति है। १। और आप समानि धर्म श्रद्धा का धारक गृहस्थ, धर्मात्मा, ज्ञानी, वैराग्यवान, संतोषी, सम्यग्दृष्टी, शुद्ध देव–गुरु–धर्म की श्रद्धा को समझनेहारा, उत्तम शुभ कर्मी, ताकौं यथायोग्य भक्ति–अनुराग करि, विनय पूर्वक भोजन–वस्त्रादि देना। तिन की स्थिरता करनी, साता करनी, सो समदत्ति है। प्रयोजन पाय इनकौं दान दीजिये तथा उनका आप लीजिये। तातैं इनका लेना–देना, सो समदत्ति है। २। और जहां दीन, दरिद्री, अंधा, भूखा, बालक, वृद्ध, अशक्त, रोगी, असहाय, इत्यादिक कौं देखि अनुकंपा करि, दया-भाव सहित दान का देना, सो करुणादत्ति है।३। और जहां सर्व परिग्रह–आरम्भ का त्याग करि, मुनीश्वर का पद धरना, सो सर्वदत्ति है। अब कछु देने का नाम नहीं, जो देना था सो सर्व दिया। सर्व संसार में तिष्ठते जो–जो त्रस–स्थावर जीव, तिन सब में समता भाव करि, सब कौं अभय दान देना, सो ये सर्वदत्ति जानना। ४। ऐसे दत्ति चारि। इति दत्ति। आगे कुलकर तैं लगाय भरत चक्रवर्ती पर्यन्त जीवन में, चूक भये दण्ड होय। ताके भेद च्यारि हैं। सो बताईये हैं––तहां तीजे काल के व्यतीत भये, पल्य का अष्टम भाग काल, बाकी रह्या। तब ज्ञान का सामान्य–विशेष भया। कोई जीव विशेष ज्ञानी, कोई जीव सामान्य ज्ञानी।

ताके याग तैं कुलकर भये। सो और जीवन में ज्ञान अल्प और कुलकरन में ज्ञान विशेष भया। सो प्रथम कुलकर तैं लगाय पञ्चम कुलकर पर्यन्त कोई चूक भये,जीव कौं ऐसा दण्ड होय जो "हा"। याका अर्थ यो, जो "हाय–हाय ! (ये कार्य मति करौ)"।१। ऐसे ही पंचम तैं लगाय दशवें पर्यन्त ऐसा दण्ड जो "हा मा"। याका अर्थ यह, जो "हाय–हाय ! यह कार्य मति करो"।२। और वृषभ देव पर्यन्त पंचम कुलकरों के वारे ऐसा दण्ड भया, जो "हा मा धिक्" याका अर्थ–"हाय हाय ! यह कार्य मति करौ, तौ कौं धिक्कार है"।३। पीछे काल–दोष तैं जीवन के कषाय वढ़ी। तव राज–दण्ड भी दीरघ भया। सो चूक भये भरत चक्रवर्ती के समय वारे जीव, वक्र-कषाई भये। अपराध बड़े करने लगे। सामान्य दंड का उल्लंघन करने लगे। तव छेदन–भेदन, वध–बन्धनादि दंड भये।४। ऐसे दंड भेद च्यारि कहे। सो जीवन की जैसी–जैसी कषाय भई, तैसा २ दंड विधान चल्या। सो अब भी देखिये है। जो दीरघ चूक तैं, दीरघ दण्ड पावैं। अल्प चूक तैं, थोरा दण्ड पावैं। और चूक रहित व गुण सहित जीवन की, पूजा होती देखिये है। तातें ऐसा जान, विवेकी पुरुषन कूं चूक (अपराध) भाव छांड़ि, गुण करना योग्य है। इति दण्ड भेद। इति श्रीसुदृष्टि-तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, दश करणादि भेद वर्णनो नाम, अट्ठाईसवां पर्व सम्पूर्णं ॥ २८ ॥

आगे श्रावककी क्रिया पच्चीस हैं। इन–इन भावन तैं जीव, कर्म का आश्रव करै है, सो ही बताईये है। प्रथम सम्यक्त्व की क्रिया कहिये है––तहां अठारह दोष रहित शुद्ध

देव की पूजा, शुद्ध गुरु की पूजा, शुद्ध धर्म की पूजा, जिन बिम्ब की पूजा, सिद्ध क्षेत्र पूजा। धर्मात्मा पुरुषन के गुणन में अनुराग भाव, वात्सल्य भाव। दीन, दुखित, रोगी, दुखी–दरिद्री, इत्यादिक क्लेशवान् जीवन कौं देख, दया भाव करै। समता भाव बढ़ावै। इत्यादिक समभावना सहित जीव, शुभ कर्म का आश्रव करै है। याका नाम सम्यक् क्रिया है। ये तौ शुभ आश्रव है।१। आगे मिथ्यात प्रवर्द्धिनी क्रिया कहिये है–तहां कुदेव पूजा, कुगुरु पूजा, कुतीर्थ पूजा, हिंसा सहित कुतप तिनके करवे की भावना, औरन के हिंसा तप की प्रसंशा, कुदान करवे की अभिलाषा, कुव्रतन में काय की प्रवृत्ति, सर्व में विनय, सुदेव–सुगुरु, कुदेव–कुगुरु, इनकौं एक से जानना, इत्यादिक भावन तैं अशुभ कर्म का आश्रव होय है। याका नाम मिथ्यात प्रवर्द्धिनी क्रिया है। ये अशुभ कर्म कों उपजावै है।२। और असंयम प्रवर्द्धिनी क्रिया कहिये है–तहां मन में अनेक विकल्प धन–धान्य की चाह करना। भोग–उपभोग में अभिलाषा रूप रहना, इन्द्रियन के पोखवे की वांच्छा, इत्यादि असंयम के विकल्प रूप मन का वेग, सो मन असंयम है। पंचेन्द्रिय अपने विषय कौ चाहती। सो रसना इन्द्रिय, षट् रस के भोग में लुब्ध। स्पर्श इन्द्रिय, अपने अष्ट विषयन में लुब्ध। घ्राणेन्द्रिय, सुगन्ध इच्छुक। नेत्र इन्द्रिय, पंच वर्ण विषैं लुब्ध। श्रोत्र इन्द्रिय, सुस्वर शब्द-वादित्रन में लुब्ध। इत्यादिक इन्द्रिय, असंयम रूप। ऐसे मन व इन्द्रिय आत्मा के वश नहीं रहैं। और त्रस–स्थावर के षट् कायन की दया नहीं पालै। ऐसे बारह असंयम रूप भावन के विकल्प तैं,

अशुभ कर्म का आश्रव जीव करै है। याका नाम असंयम प्रवद्र्धिनी क्रिया है। ३। आगे प्रमादनी चौथी क्रिया कहिये है--तहां जो जीव प्रथम तौ आप संयम, व्रत, आखड़ी (प्रतिज्ञा) कौं धारतें, तप के फल का वांच्छिक होय। तपस्वी नाम बाजै। पीछे काल पाय, तप के कष्ट तैं भय खाय, जल की इच्छा, अन्न की इच्छा, स्त्री की इच्छा। शीत-उष्ण नहीं सह्या जाय सो और असंयमी जीव कौं खावते-पीवते, स्त्री संग करते, शीत-उष्ण में अनेक तन के जतन करते सुखी देखि, विचारी। जो मैं तो संयम तैं दुखी होय रह्या हों और ये असंयमी सुखी है, अच्छा खाय है-पीवै है। ऐसे भाव करि आप संयमी होय कर, पीछे प्रमाद योग तैं, पाप उदय करि, असंयम कूं भला जान, संयम तैं विचल्या चाहै। सो प्रमादनी नाम की क्रिया है। ऐसे भाव तैं अशुभ कर्म का आश्रव होय है।४। आगे ईर्यापथ क्रिया कहिये है। सो याकरि दोय भेद आश्रव होय है। जो जीव अन्तरङ्ग में सर्व जीव पै दया भाव करि, गमन करतें नीची दृष्टि करि देखता चालै। धीरा चालै। छोटा-बड़ा जीव नजर में आवे, सो राह में बचाय लेय, ऐसे दया भाव सहित जतन तैं भूमि शोधता गमन करै, तौ चलता जीव कैं ही पुण्य का आश्रव होय। और गमन करते, ईर्या तजि, प्रमाद तैं उतावला चालै। राह में आप समान आत्मा अनेक, छोटी कायधारी, पशु चींटा-चींटीं हैं। तिनकी रक्षा रहित, प्रमाद तैं गमन करता आत्मा, अशुभ कर्म का आश्रव करै। याका नाम पंचम भेद ईर्य्यापथ क्रिया है। ५। आगे प्रादोषकी क्रिया कहिये है-जहां ये जीव धर्म भाव तजि, क्रोध के वशीभूत होय, अनेक पाप करै।

जाकौं क्रोध का उदय होय, तब जीव घात करै, दया तजै। क्रोधी जीव देव, गुरु, माता आदि गुरुजन का अविनय करै। शस्त्र घात तैं, आप तन हतै। क्रोधी, अग्नि तैं ग्राम, बन, घर जालै। क्रोधी नर, पुत्र, स्त्री, भाई आदि का घात करै। इत्यादिक पाप, क्रोध भाव तैं करै। तहां कोधी भी अशुभ कर्मन का आश्रव करै है। याका नाम प्रादोषकी क्रिया है। ६। अब कायिक क्रिया कहिये है—तहां जानैं शरीर पाय, चोरी करी। जीव घात किया। परस्त्री सेवन किया। मद्य—मांस भक्षण किया। अपने कुल निंद्य, अपने धर्म निंद्य, खान—पान निंद्य किया करी। द्यूत रम्या। युद्ध किया। पर जीवन कूं भय उपजाये। इत्यादिक ता शरीर तैं बहुत अपराध किये। ताके फल तैं शरीर की नाक छेदन कराई, पांव छेदन कराये, इत्यादिक अंग—उपांग छेदन सहित रहे। तौभी परघात का तौ उद्यम किया करै। ऐसे बहुत पाप—अकार्य करि, भाव बिगाड़ि, अशुभ कर्म का आश्रव किया। और शुभ कर्म तौ, शरीर कौं धारि, कबहू नहीं कस्या, अपराध कीये। सो सातमी कायिक क्रिया है। ७। आगे अधकरणी क्रिया कहिये है—तहां जाकौं हिंसा के उपकरण, बहुत वल्लभ (प्यारे) लागैं। तीर, तलवार, तुपक, तोप, सेल, बरछी, कटारी, छुरी इत्यादिक अचेतन, हिंसा के उपकरण हैं। सो ये जा कूं बहुत अनुराग उपजावैं। तिनके निमित्त श्रृङ्गारवे कौं अनेक द्रव्य लगाय आभूषण करावै। तथा चीता, बाज, श्वान, सिंह, सुअर, मार्जार, चोर, ऐंठा देनेहारे, घर फोड़नेहारे, ठग, फांसी करनहारे इत्यादिक ये चेतन, हिंसा के उपकरण जाकौं प्यारे लागैं।

इनकौं भला भोजन देय। बड़े भारी वस्त्र देय। इत्यादिक चेतन—अचेतन हिंसा के-पाप के सहाई उपकरण, तिन कौं देखि हरष भाव करना, सो अशुभ आश्रव के करनहारे भाव जानना। याका नाम आठवीं अघकरणी क्रिया है। ८। आगे परितापकी क्रिया कहिये है। तहां अपनी इच्छा करि जान-पूँछ करि ऐसी क्रिया करै, जाकरि पर जीवन कूं पीड़ा होय। जैसे काहू ने कौतुक हेतु, हस्ती का युद्ध कराया। मीढ़ेन का युद्ध कराया। क्रूर जीव नाहर का युद्ध किया, सर्प—नेवले की युद्ध क्रिया, घोटक युद्ध, महिष युद्ध, ऊँट युद्ध, नर युद्ध इत्यादिक युद्ध क्रिया अन्य जीवन की करावनी। तिन तैं कोई के शिर फूटें। केई के पद भङ्ग भये। इत्यादिक अन्य जीवन कूं बलात्कार दुखी करि, आप हर्ष पावना। सो परितापकी क्रिया, अशुभ आश्रव की करनहारी है। तथा नदी, कूप, बावड़ी, सरोवर विषैं, कौतुक-हर्ष के हेतु कूदना। ताकरि अनेक दीन जीव जलचर, तिनका घात करना, दुखी करना। जान-पूंछ काहू के लात, मूकी, लाठी, शस्त्र मार, दुखी किये। इत्यादिक क्रिया करि अशुभ कर्मन का आश्रव करना। याका नाम नववीं परितापकी क्रिया है। ९। आगे प्राणपातकी क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपने तन तैं परजीवन के तन का नाश करै। जैसे खेटक (शिकार) करनेवाले की क्रिया। तथा चांडालादिक दया रहित, पर जीवन का घात करनहारे तिनकी क्रिया। तथा चोर व फँसियारा अपने हाथ तैं पर जीवन का घात करैं, सो क्रिया। इत्यादिक पर जीव घातवे की क्रिया हैं। सो सर्व पाप का आश्रव करैं हैं।

याका नाम प्राणपातकी दशवीं क्रिया है।१०। आगे दर्शन क्रिया कहिये है—जहां पराया भला रूप देखवे की इच्छा, कोई स्त्री-पुरुष का अच्छा रूप सुनै, तौ ताके देखवे की अभिलाषा होवे की क्रिया। पुरुष कौं अनेक पट—आभूषण पहराय, स्त्री का रूप—आकार बनाय, देखवे के परणास। कोई देव, देवी, मनुष्यनी के रूप का बखान सुनि कैं, तैसे रूप देखवे कूं चित्त का विह्वल होना। तथा अनेक प्रकार षट्रस भोगवे की अभिलाषा। रसना के रंजावनेहारे भोजन तैं सुखी, रसना कूं अरति उपजावनेहारे भोजन—रस मिलै दुखी, ऐसे भावन तैं जीव अशुभ कर्म का आश्रव करै। याका नाम ग्यारहवीं दर्शन क्रिया है। ११। आगे स्पर्शन की क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपने काय के स्पर्शने कूं कोमल शय्या के निमित्त, सचित्त फूल—बोंड़ी तिनकी शय्या रचना करै। तामें शयन करि—लोट, आनन्द मनावै। पाप का भय नाहीं, दया का विचार नाहीं, हिंसा का तरस नाहीं, अपनी इन्द्रिय पोषी जाय सो करना। तथा योग्य-अयोग्य कुल नहीं विचारै। भावै स्पर्शवे योग्य होऊ, भावै नीच अस्पर्शवे योग्य होऊ, जाका तन सुन्दर होय कोमल होय, सौ स्पर्शन इन्द्रिय का भोगनेहारा ताकौं स्पर्शै है। नीच—ऊंच नहीं विचारै। सो बारहवीं स्पर्शन क्रिया है। १२। आगे प्रत्यायिनी क्रिया कहिये है। जहां पाप करवे के कारण नाना प्रकार शस्त्र, तीर, गोली, छुरी, कटारी, तरवार , जाल, पींजरा, फाँसी, फंदा, चेप, कुप इत्यादिक हिंसा के कारण शस्त्र तिनकी अत्यन्त चतुराई बनावने की जानैं होय। सो ऐसे अद्भुत शस्त्र बनावै, तैसे और कोई तैं नही बनैं। ऐसे अपूरव

सो महा अशुभ कर्म का आस्रव करै ।
दुख के कारण शस्त्रादि करवे की कला–चतुराई, सो महा अशुभ कर्म का आस्रव करै । याका नाम प्रत्यायिनी क्रिया है ।१३। आगे समन्तानुपातनी क्रिया कहिये है । जो गृहस्थ के मन्दिर प्रसूत के स्थान हैं। ये भोगी जीवन के स्पर्श करवे के हैं। जहां सराग क्रीड़ा सदीव होय। सो ऐसे स्थान त्यागीन के रहवे के नाहीं। ये सराग स्थान त्यागीन कौं योग्य नाहीं, अयोग्य हैं, भय के कारण हैं । तातैं जो यती आदि संयमी, इन गृहस्थन के घर में आवैं, तौ महा सावधान, प्रमाद रहित, वीतराग दशा सहित, भोजन निमित्त आवैं । सो जेते काल सराग नहीं होंय, दोष टालि भोजन लेंय । सो जातैं तथा आवतैं, संयमी अपने तन के श्लेषमादि मल–मूत्र, प्रमाद के योग तैं कदाचित् गृहस्थी के घर विषैं नाखैं । तौ ऐसे प्रमाद–भावन तैं अशुभ आस्रव करैं । याका नाम समन्तानुपातनी क्रिया है । १४ । आगे अनाभोग क्रिया कहिये है । जहां बिना देखे वस्तु कौं धरती पै धरना, विना देखे धरती तैं उठाना । सो यती तौ कमण्डलु, पीछी, तन इत्यादिक धरैं सो विना शोधे धरती, विना पीछी तैं पूछैं धरैं, तौ अशुभ आश्रव करैं हैं । और श्रावक भी अनेक वस्तु धरना–उठवना विना देखे, प्रमाद सहित करैं, तौ अशुभ आश्रव करैं । याका नाम अनाभोग क्रिया है । १५ । आगे स्वहस्त क्रिया कहिये है । तहां जे दुराचारी, दुष्ट स्वभाव का धरनहारा, महा पापी, अपने हाथ ऐसे पाप का कार्य करै । जो ऐसा निषिद्ध खोटा कार्य और तैं नहीं बन । ऐसी काय का धारी महा पाप आस्रव करै । यह ऐसा पापी है कि यदि याके कहे कोऊ पाप कार्य न करै ।

तथा कोई करता पाप कार्य तैं डरै। तो यह निर्दयी ऐसा प्रेरक होय कहै। जो हे भाई, यो पाप हमारे शिर है। तू मत डरै। ये पाप का कार्य निशङ्क होय करि। ऐसे भाव का धारी बड़े पाप का आस्रव करै। याका नाम स्वहस्त क्रिया है।१६। आगे निसर्ग क्रिया कहिये है। तहां जा दुरात्मा कौं भला कार्य तो सिखाये ही नहीं आवै। शुभ कार्यन विषैं मूढ़ता, भली बात बोलना न आवै। और अनेक कुकार्य, बिना सिखाये ही अपनी बुद्धि तैं उपावै। अनेक युक्ति, पाप कार्य करवे की उपजैं। आप करै, औरन कूं कुकार्य उपदेशै। ऐसे जीव अपने भाव तैं पाप कर्म का आस्रव करैं। याका नाम निसर्ग क्रिया है। १७। आगे विदारण क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपना अवगुण लोकन में आप प्रगट कहै। जो मैं बड़ा चोर हूं। मो सा और नाहीं। अनेक संकट में, महा गूढ़ स्थान में, धन धस्या होय, तहां तैं ल्याऊं। तथा कहै, जो मो सा ज्वारी और नाहीं। तथा कहै, हम पर स्त्री सेवनहारे हैं। तथा कहै, मैं बड़ा पाखण्डी हूं। मो सा पाखण्डी और नाहीं। बड़ा झूठा हों। तथा मैं बड़ा दगाबाज़ हों। इत्यादिक अपने अवगुण की प्रसंशा, अपने मुख तैं करै। ऐसा जीव अपने भावन की वक्रता करि, अशुभ कर्म का आस्रव करै। सो याका नाम, विदारण क्रिया है।१८। आगे जिन आज्ञा उल्लंघन क्रिया कहिये है। जो जीव विषय-कषायन में उद्यमी, पंचेन्द्रिय पोषवे कूं अनेक उद्यम करै। कदाचित् तन की शक्ति नहीं भई होय, तो बुद्धि बल करि मन तैं बड़ा उपाय करै। परन्तु जैसे बने तैसे, विषय पोषण करि, सुख मानै। और जिनके

सेवन तैं पुत्र व धन होता जानै, ऐसे कुदेव तथा जिनतैं रसायन होती जानै तथा वैद्यादिक
कला के धारी, जन्त्र—मन्त्रादि चमत्कार बतावनहारे—गुरु, इनकी सेवा में सावधान । तिनकी
आज्ञा प्रमाण तौ करै । और जिन भाषित धर्म सेवन में शिथिल, स्वर्ग—मोक्षदाता तप, व्रत,
पूजा करवै में प्रमादी । कायर ऐसा कहै, जो मेरे तन में शक्ति नाहीं । अशक्ति जानि, आलस
सहित, शुद्ध धर्म की क्रिया करै । सो भी अपनी इच्छा रूप करै, जिन आज्ञा प्रमाण नाहीं करै ।
ऐसे भावन का धारी अशुभ आस्रव करै । याका नाम जिन आज्ञा उल्लंघन क्रिया है ।१६।
आगे बीसवीं अनादर (अनाकांक्षा) क्रिया कहिये है । जो जीव शास्त्रोक्त तप, संयम, पूजा,
दान, चारित्र, ध्यान, पाठादि धर्म क्रिया करै, सो सर्व अनादर सहित करै । यह
अभागी, धर्म भावना रहित पापाचारी, आर्त्त—रौद्र के विकलपन करि भरया है हृदय जाका ।
ताकैं चोर—ज्वारीन का तौ आदर, आप जैसे पापी, पाखण्डी, सप्त व्यसनी, चोरन के सहाई,
तिनका आदर करै । और महा लोभी, पर स्त्री इच्छुक, धन के लोभ कौं व पर स्त्री वश करवै
कौं अनेक मन्त्र—तन्त्रन का साधन करै, तप करै, जप करै, सो महा आदर सूं करै । अरु
कल्याणकारी धर्म क्रिया आदर बिना करै । ऐसी परणति का धारी, अशुभ कर्म
का आस्रव करै । याका नाम अनादर क्रिया है । २० । आगे आरम्भ क्रिया कहिये है । तहां
अपनी शक्ति तौ आरंभ करवै की नाहीं । तब और के किये पापारंभ, तिनकौं देख हर्ष
करना । जैसे किसी के किये मन्दिर, गढ़, कोट, कूप, बावड़ी, सरोवर बनते देखि—महा आरंभ ६३७

देख, आप अनुमोदना करनी। तथा पर के व्याह में बड़ा आरंभ देखि, प्रसंशा करनी। इत्यादिक भावन तैं, अशुभ कर्म का आस्रव करै है। याका नाम आरंभ क्रिया है। २१। आगे परग्राहणी क्रिया कहिये है। तहां जे जीव लोभ के भरे, योग्य-अयोग्य नहीं गिनैं। ये लेने योग्य है, ये नहीं लेने योग्य है। ऐसा भेद, तीव्र लोभ के उदय नहीं विचारै। पर वस्तु अपने हाथ आवै, सो सब लेय। देव-धर्म का माल जो धर्म निमित्त का और भगनी-पुत्री का, भानजे का, इत्यादिक ये लौकिक निंद्य पर-द्रव्य है। सो जो महा लोभ सहित जीव होय है सो लोभी धर्म-अर्थ का भी द्रव्य, विषय में लगावै। बहिन-भानजे का धन लेय। इत्यादिक लोभी के हाथ आवै, सो तजै नाहीं। ऐसे पर माल ग्रहण रूप भावन का धारी, अशुभ कर्म का आश्रव करै। याका नाम परग्राहणी क्रिया है। २२। आगे माया नाम क्रिया कहिये है। तहां जे जीव पर जीवन के ठगवे कौं महा चतुर, अनेक युक्ति देय, अनेक विद्या कर पराया धन हरैं। अनेक कलान करि, अपने विषय-कषाय पोषण करैं। इत्यादि पाप कार्यन में तौ प्रवीण होय हैं। और जे जिन भाषित, शुद्ध धर्म की क्रिया, तिनमैं मूरख समानि भोरा। जिन पूजा नहीं जानै, जो कैसे करैं व कैसे पढ़ैं हैं। भगवान् की स्तुति, नहीं करि जानैं। प्रभु का दर्शन, नहीं करि जानैं। जिनकी दया महा पुण्यकारी होय, ऐसे षट् काय जीव तिनके नाम-भेद नही जानैं। संसार-भ्रमण के जो स्थान च्यारि गति, ताका स्वरूप नहीं जानैं। आप जीव है सो आप कूं जीवत्व भाव नहीं जानैं। इत्यादिक कल्याणकारी धर्म सम्बन्धी बात-

क्रिया तौ नहीं जानै। ऐसे भाव का धारी जो पाप में चतुर, धर्म में मूढ़। सो पाप आस्रव करि, परभव बिगाड़ै है। याका नाम तेईसवीं माया क्रिया है।२३। आगे मिथ्या दर्शन क्रिया कहिये है। जो जीव आप मिथ्यात्व रूप क्रिया करै। औरन कूं उपदेश देय। जेसे आप तौ धन का लोभी, तथा मान—बड़ाई के अर्थ, मिथ्या देव—गुरु की सेवा करै। जो मोकूं धन देय, मोकूं पुत्र हाथी घोटक देय, इत्यादिक वस्तु के लोभ कौं मिथ्या—मारग सेवन करै। तथा और भोरे अज्ञानी जीवन कूं उपदेश देय, कुदेवादिक के अतिशय कौं कहै। कि ये देव प्रत्यक्ष वांच्छित देय है। हमने इनकी सेवा करी, सो हमें ऐसी वांच्छित वस्तु देय हमारी वांच्छा पूरी करी। इत्यादिक अतिशय जानि, देवादिक कूं आप सेवना, औरन कूं उपदेशना। सो ऐसे भावन तैं जीव, संसार दुख देनहारे पापकर्म, ताका आस्रव करैं हैं। याका नाम चौबीसवीं मिथ्या दर्शन क्रिया है। २४। आगे अप्रत्याख्यान क्रिया कहिये है। सो जे जीव अज्ञानता के योग तैं तथा परणामन की क्रूरता तैं, सर्व ही पाप कार्य करैं, कोई पाप का त्याग नाहीं। ते मूर्ख केई तो ऐसा कहैं, जो हम तौ भोरे हैं। हमकौं पाप नाहीं लागै। जो समझै हैं, ताकौं पाप भी लागै है। सो हम तौ कछू समझते नाहीं, जो पाप कहा होय है, अरु पुण्य कहा होय है? और केई जीव कहैं हैं कि जो हे भाई, पाप—पुण्य तो है ही नाहीं। तातैं भय काहे का? निशंक होय भोग सुख करना। केई प्राणी कहैं हैं। अरे, देख लेहैं जब मरेंगे तब, हाल तौ अपनी इच्छा होय सो करौ। मरतीबार धर्म सेय लेहैं। केई कहैं हैं,

कि जो तुम चाहौ सो करौ, पाप होय तौ याका फल हम कूं लागै। इन क्रियान तैं नर्क होय, तौ हमें होऊ। हे भाई, यहां ही वांच्छित नहीं मिलै, तौ नर्क है। और यहां ही सुख मिलै, तौ स्वर्ग है। तातें सुख तैं रहौ। हालही, छते सुख काहे कौं तजौ हौ? इत्यादि स्वेच्छाचारी होय, सर्व पाप करैं। योग्य–अयोग्य कछू विचार नाहीं। कोई पाप का त्याग नाहीं करैं। ऐसे भावन के धारी अशुभ आस्रव करैं। याका नाम पचीसवीं अप्रत्याख्यान क्रिया है। २५। इति पचीस क्रिया आस्रव की कहीं। आगे राजा श्रेणिक ने श्री गौतम स्वामी तैं प्रश्न किये थे तथा तीर्थंकर की माता तैं, देवाङ्गना ने प्रश्न किये थे तथा और अनेक शास्त्रन में धर्मी जीवन के प्रश्न प्रमाण, यहां पुण्य–पाप का फल प्रगट जानवे कूं, शिष्यन की प्रश्नमाला लिखिये है। तहां शिष्य, गुरु के पास विनय सहित होय, पुण्य–पाप के फल प्रगट जानवे कूं प्रश्नमाला की जो पंकति सो पूछै है। हे गुरुदेव जी! यह जीव अंधा कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही, जिन जीवन ने अन्य भव विषैं अन्य जीवन के नेत्र दुखाये होंय। पर के नेत्र फोड़े होंय। पर की आंख दुखती देख, सुखी भया होय। पर कौं अन्धा भया जान, अनुमोदना करी होय। अन्धे जीवन की हाँसि करि बहकाया होय। अन्धेन का धन, वस्त्र, छल–बल करि हरया होय। इत्यादिक पापन तैं जीव अन्धे होंय तथा नेत्र रहित तेइन्द्रिय आदि अंधे जीव उपजैं हैं। १। बहुरि शिष्य पूछै है। भो प्रभो! जीव बधरे कौन पाप तैं होंय? सो दया करि कहौ। तब मुनि कही, जे जीव अपने कानन तैं विकथा सुनि, हर्ष पाया

होय। सत्य वचन सुनि ताकूं असत्य कहा होय। झूठा वचन सुनि—जानि, ताहि सत्य करि, मान्या होय। तथा अपराधी चुगलन के मुख तैं असत्य—पापकारी वचन सुनि कैं, पर जीवन पर, दोष लगाय घर लूट्या होय। दण्ड कर दिया होय। घर, स्त्री, गज, घोटकादि खोंस लिये होंय। औरन के कान द्वेष—भाव करि छेदन किये होंय। तथा औरन कूं बधरे जानि कुवचन बोले होंय। तथा पर कूं बधरे जानि, ताकी हाँसि—कौतुक करि हर्ष मान्या होय। पराये दीनता के वचन न्याय रूप सुनि कैं, अनसुने किये होंय। तथा दीन आय—आय याचना रूप वचन कहैं तिन कूं सुनि, मान के जोर तैं जवाब नहीं दिया होय। तथा अन्य जीवन नैं आप कूं भला मनुष्य जानि विनय-वचन कहे, नमस्कारादि किया। तिनकौं, मानी होय, पीछे प्रति-उत्तर नमस्कारादि नाहीं कर्या। सुन्या—अनसुन्या किया होय। इत्यादि पापन तैं वधिरा होय है। तथा कान रहित चौइन्द्रिय होय है। २। पीछे और प्रश्न शिष्य करता भया। हे यतीनाथ! लूला कौन पाप तैं होय? तब यती कही। हे वत्स! जाने परभव में अपने हाथ तैं पर के पाँव तोड़े होंय। तथा दीन पशून कूं लाठी—लोठी मारि, दया रहित चित्त करि तिनके पाँव तोड़े होंय। तथा शस्त्र तैं दीन पशून के पाँव तोड़े होंय। पर कौं लूला—पग रहित जान, ताका वस्त्र बासनादि ले भागा होय। तथा पर के पाँव छेदतें आप खुशी भया होय तथा इस कौतुक कूं देख हर्षाया होय। तथा पर कौं लँगड़े जानि बहकाये होंय, ताकी हँसी करी होय। इत्यादि पाप तैं लँगड़ा होय।

तथा पाँव रहित, हलन–चलन रहित एकेन्द्रिय होय ।३। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ ! मुख रहित तथा मुख सहित मूंका, कौन पाप तें होय ? तब गुरु कही। हे वत्स सुबुद्धि ! चित्त देय सुनि। जिन जीवन नें पर के मुख मूंदि, तिन्हें शस्त्र मारे होंय। तथा मुख में वस्त्र घालि, वचन बन्द करि, दुखी किया होय। तथा पर कौं भले वचन बोलते देखि, ताकौं मनै किया होय। तथा मुख पाय कें असत्य बोलि कें, अन्य जीवन का बुरा किया होय। तथा रसना इन्द्रिय का लोलुपी बहुत रह्या, ताके निमित्त अनेक जीवन की हिंसा करी होय। तथा अभक्ष्य वस्तु ता रसना तें बहुत भली लागी होय। तथा मुख करि अन्य जीवन कौं कोप करि, श्वानादिक की नाईं काटे होंय। तथा और कूं मूंका देखि, तिनकी हाँसि करि, बहकाये होंय। तथा अन्य जीवन कूं प्रच्छन्न वचन, जामें वह नहीं समझे ऐसे वचन बोलि, दुर्वचन कहि कें हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पापन तें मूंका होय है। ४। तब फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ, यह जीव निर्धन कौन पाप तें होय ? तब गुरु कही। भो वत्स ! जिननें पर भव में अन्य जीवन का धन चोर करि, उन्हें निर्धन किया होय। तथा पर कौं झूठा दोष लगाय, आपने जबरी तें ताका धन लूट, अन्य कौं निर्धन किया होय। तथा पर कौं भय देय, दुख देय, ताका धन छीन लिया होय। तथा धन जोड़वे कौं अनेक स्वाङ्ग धरि, पराया धन ठगा होय। ऐसे अपराधी जीव, निर्धन होय हैं। तथा परकौं धनवान् न देख सक्या होय। पर के घर में धन देखि, आप दुखी भया होय। तथा परकौं धनवान् देखि

ताके धन खोवने कूं अनेक चुगली, राज-पंचन में करि, ताका धन नाश कराय, निरधन किया होय। तथा अन्य कूं धन की पैदायश कोई कार्य में जानि, ताके कार्य का घात किया होय। इत्यादिक पाप-भावन तैं प्राणी, भवांतर में निर्धन होय। तथा निर्धन होने के अनेक भेद हैं। जिननैं पराया-धन अग्नि में जलता देखि, हर्ष पाया होय। तथा आपने पराये-धन कौं अग्नि लगाय, निरधन किया होय। तौ तिस पाप तैं अपना धन अग्नि में जल, आप निर्धन होय। तथा पर-धन, जल में डूबता देखि—सुनि, हर्ष पाया होय। तथा अपनी दगाबाजी तैं नदी—सरोवर में पराया धन डुबोय, पर कौं निरधन किया होय। तिस पाप तैं भवान्तर में आपका धन, नदी—सरोवर में डूबै, जहाज डूबै, नाव डूबै। ऐसे आप निरधन होय। तथा औरन के घर—नगर लुटे सुनि—देखि, आप सुखी भया होय। तौ आप भी ताकै फल तैं फौजनि सूं लुटि, निर्धन होय। तथा पर का धन, आपने जबरई लूट्या होय। तथा पर का धन चोरन तैं लुटता देखि तथा सुनि, आप हर्ष मान्या होय। ताकै पाप तैं भवान्तर में आप का धन चोरन तैं लुटि, आप निर्धन होय। इत्यादिक निर्धन होने के अनेक भेद हैं। जा—जा परणामन तैं पर कौं निर्धन वांछ्या होय, तथा जा—जा प्रकार पर कूं निरधन भये देखि, आप खुशी भया होय। तिस ही निमित्त पाय, आप निर्धन होय। ५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। भो गुरु-नाथ! यह जीव धनवान् कौन पुण्य तैं होय? तब गणधर नै कही। हे भव्यात्मा, जिन

जीवन नैं निरधन पुरुष की दया करि, तिनकौं दान देय, धनवान् करि, सुखी किये हौंय। तथा निर्धन जीव देखि, तिनकी दया करि धनवान् होना वांच्छा होय। तथा पर जीवन कूं धन की प्राप्ति भई सुनि, आप सुखी भया होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, आप धनवान् होय। ६। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। भो गुरु देव, यह जीव, पुत्र रहित कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जो जीव परभव में पर के पुत्र नहीं देख सक्या होय। पर जीवन कूं पुत्र की प्राप्ति भई सुनि, आपनैं दुख पाया होय। पर के पुत्र का मरण सुनि, आप सुखी भया होय। तथा पर-पुत्र देखि, हरया चाह्या होय। इत्यादिक पापन तैं जीव, पुत्र रहित होय। ७। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ ! यह जीव कौन पुण्य तें पुत्र सहित होय है ? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन नैं भवांतर में पर जीवन कों, पुत्र सहित देखि सुख मान्या होय। तथा पर कौं पुत्र की प्राप्ति सुनि, हर्ष पाया होय। तथा पर कौं पुत्र रहित आर्तध्यानी-दुखी, पुत्र का अभिलाषी देखि, ताकी दया भाव करि, ताकौं पुत्र होना वांच्छा होय। इत्यादिक पुण्य तैं पुत्र सहित होय। ८। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ ! यह जीव कूं कुपूत पुत्र का संयोग, कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स, जिननैं पर पुत्र कूं बहकायवे में सहाय दी होय, उसे पाप कार्यन में लगाय, अनेक कुबुद्धि सिखाय, माता-पिता का अविनयी किया होय। ताकौं अनेक कुमारग लगाय, माता-पिता तैं युद्ध कराया होय। पुत्र के पास माता-पिता की निंदा करी होय। तथा

पर का सुपूत पुत्र देखि, ताकौं नहीं सुहाये होंय। तथा पर के पुत्र चोर, ज्वारी, कुशील आदि विशेष व्यसनी देख, आप हर्षवन्त भये होंय। पर कूं अनाचारी देखि, सुख पाया होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं, कुपूत पुत्र का संयोग होय है। ९। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे जगतपति ! सुपूत पुत्र का लाभ कौन पुण्य तैं होय ? तब गणधर ने कही। जिन जीवन ने पराये कुपूत—कुमारगी पुत्रन कौं अनेक शिक्षा देय, सुमारग लगाये होंय। अनेक नय—युक्ति करि, तिनकूं सुबुद्धि उपजाय, माता—पितान की आज्ञा में किये होंय। पर के सुपूत पुत्र देख, आप कूं सुख उपज्या होय। पर के सुपूत—पुत्रन के शुभ लक्षण देखि, तिनकी प्रसंशा करी होय। पुत्र कूं माता—पिता सूं विनयवान् देखि, आप हर्ष पाया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, सुपूत पुत्र का लाभ होय है। १०। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ, खोटी स्त्री, कौन पाप तैं पावै, सो कहौ। तब गुरु कही। हे वत्स, जे जीव पर के घर में खोटी स्त्री-कलहकारणी देखि, सुखी भये होंय। तथा पर स्त्री—भर्तार में माया करि, कलह कराया होय। परस्पर द्वेष पाड़ि, आप हरषाया होय। पर के घर में सती, विनयवती, भली स्त्री देखि, आप कौं नहीं सुहाई होय। पर की भली स्त्रीन कौं देखि, तिनकी निंदा करी होय। इत्यादिक पापन तैं परभव में खोटी स्त्री पावै। ११। फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ ! भली स्त्री कौन पुण्य तैं पावै ? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा ! जानै पर-स्त्रीन के अवगुण छुड़ाय, उन्हें गुणवती करी होय। तथा पर-स्त्रीन के शीलादिक गुण,

भरतार के विनय रूप देखि, जाकौं सुख भया होय। तथा पर-स्त्रीन के शील–गुण की रक्षा करी होय। तथा शीलवान् सती स्त्रीन की प्रसंशा करी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं शुभस्त्री पावै।१२। तब फेरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे नाथ, ये जीव संसार में अपमानी कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे भव्य, जिनने परभव में अनेक जीवन का मान खण्ड्या होय। तथा माता–पिता-गुरुजन का मान नहीं राखा होय। तथा देव–गुरु–धर्म का अविनय किया होय। तथा पर-जीवन कूं अल्प पुण्यी जानि, तिनका अनादर करि, पर जीवन कूं दुख उपजाया होय। तथा अपनी महिमा अपने मुख तैं करि, पर कौं निन्दे होंय। तथा आप कूं महन्त जानि, दीन जीवन कूं पीड़ा उपजाई होय। इत्यादिक पाप भावन तैं, पर-भव मैं अपमानी होय। १३। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरुदेव जी, जीव जग में कीर्तिवान् कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन ने अपने मुख तैं परभव में तीर्थंकर, चक्री, कामदेवादिक महा पुरुषन के गुण की कीर्त्ति करी होय। पर की कीर्त्ति सुनि, आप सुख पाया होय। पराये दोष देख, आपने दाबे होंय। तथा देव–गुरु–धर्म की महिमा, अपने मुख तैं करी होय। तथा माता–पितादि गुरुजन की विनय सहित, सेवा–चाकरी करी होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं कीर्त्तिवन्त होय है। १४। तब फेरि शिष्य मस्तक नमाय पूछता भया। भो त्रयज्ञानी ! इस जीव का सर्व कुटुम्ब दुख–दायक कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे शिष्य, जिननैं पर के कुटुम्ब में परस्पर साता देखि, आपने

दुख मान्या होय। पर के कुटुम्ब में कलह देखि, सुख पाया होय। तथा पर के घर में परस्पर भ्रातृ–स्नेह देखि, अपनी दगावाजी तैं झूठे वचन बनाय, इत के उत–उत के इत कहि, परस्पर द्वेष कराय, हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं सर्व कुटुम्बी-जन दुख-दायक होय हैं। १५। तब फेरि शिष्य पूछी। हे जगत पूज्य ! सर्व कुटुम्ब, सुखदायक कौन पुण्य तैं होय है। तब गुरु कही। हे वत्स, हे आर्य, जाने और के कुटुम्ब में परस्पर द्वेष देखि, अपनी बुद्धि के बल करि, तिन का परस्पर स्नेह कराय, सुखी किये होंय। पर के कुटुम्ब विषैं परस्पर स्नेह देखि, सब कूं साता देखि, आपनैं हित पाया होय, आप सुखी भया होय। पर के कुटुम्ब सुखी करवे कूं, बहुत धन दिया होय। तन का कष्ट तथा बुद्धि के प्रकाश करि, पर के कुटुम्ब में साता करी होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, सर्व कुटुम्ब सुखदायक पावैं। १६। बहुरि शिष्य पूछी। हे संघनाथ, शरीर विषैं रोग का समूह कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जाने परभव में कोऊ कौं औषधि दान देते मनैं किया होय। पर के शरीर में रोग देखि, सुखी भया होय। पर शरीर रोग रहित देखि, आप दुख पाया होय। तथा पर जीवन कूं, रोग वांछा होय। औरन के शरीर में रोग देखि, बहुत ग्लानि करी होय। तथा रोगी जीव देखि, तिन पै दया भाव नहीं किया होय। तथा अन्य जीवन के तन विषैं रोग बढ़वे कौं, दगावाजी तैं, अनेक वस्तु खुवा दई होय। तथा कबहूं, औषधि दान नहीं दिया होय। तथा पराये तन में रोग देखि, तिनकी हाँसि करि उन्हें

बहकाये होंय, तिनकी निन्दा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं रोगी-तन होय। १७। आगे शिष्य फेरि प्रश्न किया। भो प्रभो! ये जीव, निरोग शरीर कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स! जिन जीवन ने पूरव भव में सुपात्रन के तन में रोग की बाधा देखि, भोजन समय प्राशुक औषधि देय, साता उपजाई होय। तथा दीन—दुखितन के तन में रोग देखि, करुणा भाव करि, रोग नाशने कूं औषधदान दिये होंय। तथा परके शरीर में रोग देख, अनुकंपा करी होय। तथा पर का निरोग शरीर देखि, सुखी भया होय। तथा पराये शरीर में रोग देख, ग्लानि नहीं करी होय। तिनकी दया करि, साता वांच्छी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, रोग रहित शरीर होय है।१८। फेरि शिष्य पूछी। हे गुरु नाथ! क्रूर परणामी, दुरजन—स्वभाव, जीवन में कौन कर्म के उदय तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, जे जीव दुराचारी, नरकन के निवास तैं बहुत काल दुख भोगि, निकसैं होंय। सो नरक का आया प्राणी, पूरव पाप तैं, महा क्रोधी, दुराचारी, क्रूर परणामी होय। तथा पूर्व भव में मनुष्यायु का बन्ध करि, पीछे कुसंग का निमित्त पाय, महा क्रूर हिंसा मई वर्त्या होय। सो जीव पूर्वली वासना सहित, दुराचारी होय, क्रोधी होय। तथा जाका परभव बुरा होय। इत्यादिक कर्म चेष्टा तैं, क्रूर परणामी होय है। १९। तब फेरि शिष्य पूछी। हे गुरो। सज्जन भाव सहित जीव, कौन पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही। हे वत्स, जो जीव देवगति आदि शुभ गति तैं आया होय। सो जो पूरव-भव की भली चेष्टा थी सो

इत्यादिक खावने विषैं अंतराय किया होय । तिनकूं भली वस्तु द्वेष–भाव करि, खावने नहीं
दई होय । औरन कौं सूखी–रूखी, कोरी–रस रहित खावता देखि, आप खुशी भया होय ।
औरन कौं सुख तैं खान–पान करते देख, नहीं सुहाया होय । औरन कूं भूखे–प्यासे देख,
तिनकी हाँसि करी होय, दुर्वचन कहि दुखी किये हौंय । आप रसना इन्द्रिय का लोलुपी
होय, नाना प्रकार भोग वस्तु भोगी होय । अपने विषय–पोषने कौं नानाप्रकार छल–बल
दगाबाजी करि रसनादिक के विषय भोग, सुख मान्या होय । तथा पर का भोजन, श्वान-
मार्जारादि पशू ले गये देख, आप सुखी भया होय । इत्यादिक पापन तैं छती (उपस्थित)
वस्तु, भोग में नहीं आवै । और कदाचित् लोभ का मार्या, दुग्धादि भली वस्तु खाय ही,
तौ रोग वधै, दुखी होय । तातैं अन्तराय कर्म के उदय, भली वस्तु नहीं पचै है । ३५ ।
और शिष्य प्रश्न किया । हे सुखमूर्ति ! जाके घर में सुन्दर स्त्री, वस्त्र, आभूषण, घोटक,
रतनादिक भली वस्तु उपभोग योग्य पाईये और भोग नहीं सकै । सो यह कौन पाप का फल है,
सो कहौ । तब गुरु कही । जिन जीवन कौं परभव विषैं, पराये हस्ती, घोटक, स्त्री, वाह-
नादि उपभोग योग्य पदार्थ सुंदर देख कैं, आप कौं नहीं सुहाये हौंय । तिनके भले
पदार्थ देख, छल–बल करि, लूट लिये हौंय । भय देय, जोरावरी खोंस लेय, आप भोगे
हौंय । पराये भले पदार्थ उपभोग योग्य देख, जाकौं नहीं सुहाये हौंय । पराये घर में भली
वस्तु, रतन, हस्ती आदि देख, भय बताया होय कि जो ये भली वस्तु राज में छिना देहौं ।

बहकाये होंय, तिनकी निन्दा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं रोगी-तन होय। १७। आगे शिष्य फेरि प्रश्न किया। भो प्रभो! ये जीव, निरोग शरीर कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स! जिन जीवन ने पूरव भव में सुपात्रन के तन में रोग की बाधा देखि, भोजन समय प्राशुक औषधि देय, साता उपजाई होय। तथा दीन—दुखितन के तन में रोग देखि, करुणा भाव करि, रोग नाशने कूं औषधदान दिये होंय। तथा परके शरीर में रोग देख, अनुकंपा करी होय। तथा पर का निरोग शरीर देखि, सुखी भया होय। तथा पराये शरीर में रोग देख, ग्लानि नहीं करी होय। तिनकी दया करि, साता वांछी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, रोग रहित शरीर होय है।१८। फेरि शिष्य पूछी। हे गुरु नाथ! क्रूर परणामी, दुरजन—स्वभाव, जीवन में कौन कर्म के उदय तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, जे जीव दुराचारी, नरकन के निवास तैं बहुत काल दुख भोगि, निकसै होंय। सो नरक का आया प्राणी, पूरव पाप तैं, महा क्रोधी, दुराचारी, क्रूर परणामी होय। तथा पूर्व भव में मनुष्यायु का बन्ध करि, पीछे कुसंग का निमित्त पाय, महा क्रूर हिंसा मई वर्त्या होय। सो जीव पूर्वली वासना सहित, दुराचारी होय, क्रोधी होय। तथा जाका परभव बुरा होय। इत्यादिक कर्म चेष्टा तैं, क्रूर परणामी होय है। १९। तब फेरि शिष्य पूछी। हे गुरो। सज्जन भाव सहित जीव, कौन पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही। हे वत्स, जो जीव देवगति आदि शुभ गति तैं आया होय। सो जो पूरव-भव की भली चेष्टा थी सो

ताही कूं लिये, दया—भाव के फल तैं महान् पुरुषन की संगति पाय, तामें भले उपदेश सुनि सज्जन स्वभावी होय। तथा पर-जीवन की सज्जनता देखि, हर्ष पाया होय। बड़े गुरुजन की सेवा-चाकरी-सुश्रूषा करी होय। इत्यादि पुण्य तैं सज्जन स्वभावी होय। २०। तब फेरि शिष्य पूछी। हे गुरो, ये जीव समता भावी कौन पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही। हे धर्मार्थी, सुनि। जे भव्य जीव, परभव में मुनि—श्रावकन की शांत मुद्रा देखि, हर्ष होंय। तथा जिनेन्द्र देव की शांत मुद्रा देखि, पद्मासन कायोत्सर्ग मुद्रा देखि, जिनने अनुमोदना करी होय। तथा परजीवन के क्रूर वचन सुनि कैं, समता धर, तिन पर क्रोध—भाव नहीं किये होंय। औरन की क्रूरता देखि, आपने तिन पै दया करी होय। तथा संसार की विटंबना देखि, संसार तैं उदास भये होंय। तथा धन—तनादि संपदा—सामग्री चंचल देखि, राग—द्वेषादि भाव दुखदाता जानि, क्रोध—मानादि तजि, मन्द कषाय रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं समता भाव प्रगट होय है। २१। तब फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे जगत गुरु! यह जीव धर्मात्मा कौन पुण्य तैं होय? तब दयालु भाव सहित गुरु ने कही। हे भव्यात्मा, हे भद्र परणामी, जिन जीवन नैं परभव में महा समता भाव राखे होंय। धर्मात्मा जीवन कौं धर्म सेवन करते देख अनुमोदना करि, पुण्य उपाया हो। तथा अनेक जीवन पै दया भाव किये होंय। तथा धर्म उत्सव देखि, हर्ष पाया होय। तथा धर्म के अनेक भेद हैं। सो जिस जाति के धर्म अङ्ग देखि, आप कौं अनुमोदना उपजी होय। तिस ही जाति के धर्म अङ्ग का लाभ,

परभव में जीव कौं होय है। सो ही कहिये है–जिस जीव ने परभव विषैं और धर्मात्मा जीवन कौं तप करते देखि, हर्ष किया होय। तपस्वी पुरुषन की सेवा–चाकरी करी होय। तप कौं उत्कृष्ट सुखदाता जानि, ताके करवे की अभिलाषा करी होय। इत्यादिक तप–अङ्ग की अनुमोदना के फल तैं भवांतर में, तप धर्म का लाभ पावै। बहुरि जिनने औरन कौं भगवान् की पूजा व स्तुति करते देखि, अनुमोदना करी होय। तथा भगवान् के भक्त जन देखि, तिन में प्रीति–भाव करि तिनकी सेवा–चाकरी करि होय। आप कौं भगवान् की पूजा करवे का अभिलाष, बहुत रह्या होय। इत्यादिक पूजा की अनुमोदना चाहि-रूप भाव-पटल तैं भवांतर में प्रभु की पूजा के भाव होंय। पूजा धर्म-अङ्ग पावै। और जिन जीवन नें परभव में अन्य जीवन कूं नियम-आखड़ी करते देख, तथा घृत-दुग्धादि रसन कौं त्याग करते देख, तथा ताम्बूल वस्त्रादि परिग्रह के प्रमाण करते देखि, तथा दया भाव सहित प्रवृत्ति देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा अन्य कूं संयमी देखि, संयम की अभिलाषा की होय। इत्यादिक संयम की अनुमोदना के फल तैं, भवांतर में संयम-संपदा पावै। और जिननैं परभव में और जीवन कौं सिद्ध क्षेत्र यात्रा कूं गमन करते देख तथा सिद्ध क्षेत्र बन्दना के निमित्त संघ जाते देखि, ताकी अनुमोदना करी होय। तथा सिद्ध क्षेत्र यात्रा करवे की अभिलाषा रही होय। तथा सिद्ध क्षेत्र यात्रा करवे वारौं की सहायता करि, साता उपजाय सुखी किये होंय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं, भवांतर में सिद्ध क्षेत्र यात्रा का बहुत लाभ होय। और परभव में

आचार्यन कौं उपदेश देता देख, तिन धर्मी पुरुषन का उपदेश सुनि, तिनके ज्ञान की शान्ति-भावन की, प्रसंशा करी होय। धर्म के उपदेश दाता की भक्ति करि, आनन्द मान्या होय। इत्यादिक भावन तैं धर्मोपदेश देने का उत्तम ज्ञान पाय, अपना तथा पर जीवन का कल्याण करै है। ऐसे धर्म अंगन के अनेक भेद हैं। सो जा-जा धर्म-अंग का सहाय किया होय, अनुमोदना करी होय, ताही धर्म-अंग का लाभ होय। धर्म का फल उपजावै। २२। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ, यह जीव बलवान् कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्य, जिन जीवन नैं परभव विषैं दीन-जीवन की दया करि, रक्षा करी होय। तथा अशक्त जीवन कौं देखि, तिन पै दया भाव करि, तिनके दुख मैट, सुखी करवे कौं अनेक उपाय करि, रक्षा करी होय। निर्बल जीवन कौं भले भोजन-पान देय, दया भाव करि सुखी किये होंय। नंगेन कूं को वस्त्र, रोगीन कौं औषधि देय, पुष्ट किये होंय। औरन कौं अनेक साता उपजाय, रक्षा करी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, जीव भवान्तर विषैं बलवान् होय। २३। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ, हे यति पति, यह जीव निर्बल कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन ने पर जीवन का खान-पान बन्द करि, निर्बल करि डारे होंय। तथा दीन जीव बल रहित देख, तिन की हाँसि करि, तिनकौं लज्जावान् किये होंय। तथा बल रहित जीवन कौं मारे होंय, बांधे होंय, लटकाए होंय। आपकौं बलवान् जानि, अपने बल-मद आगे औरन कौं बल रहित जानि, अनेक भय उपजाय, दुखी किये होंय।

तथा अपने बल मद के आगे, सिंह-हस्ती की नाईं, मदोन्मत्त वर्त्या होय । अन्य जीवन का बल देख, आपने द्वेष-भाव किया होय । इत्यादिक पापभावन तैं बल रहित होय है ।२४। फेरि शिष्य पूछी । हे नाथ ! यह जीव भयवान् कायर-चित्त का धारी, कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही । हे भव्यात्मा, सुनि । जिन जीवन नैं पर-जीवन कौं अनेक भय उपजाये हाँय । प्राण नाश का भय देय, कंपायमान करे हाँय । धन नाश का भय दिया होय । घर लूटवे का भय दिया होय । तथा ताकी आबरू-खंडवे का भय दिया होय । तथा घर के मनुष्य पकड़वे का भय दिया होय । तथा राजपंच का भय बताय, भयवंत किये हाँय । तथा चोर, सिंह, हस्ती इन आदि पशून का भय देय, दुखी किये हाँय । तथा रण तैं भागते भयवन्त दीन जीव, तिन की हाँसि करी होय । तथा औरन कौं भयवन्त-कायर देख, आप हर्षवन्त भया होय । इत्यादिक दया रहित भावन तैं कायर होय है । २५ । बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया । हे गुरो, यह जीव शूरवीर-निर्भय कौन पुन्य तैं होय ? तब गुरु कही । हे वत्स, जिन जीवन नैं परभव में दीन-जीवन कौं अभयदान दिया होय । करुणा करि, परजीवन की रक्षा करी होय । तथा किसी जीव ने काहू दीन-दुखी जीव कौं भय बताय, दुखी किया होय। ताकौं देख आप दया भाव करि, अपने भुजबल तैं दीन कौं दुष्ट तैं बचाय, सुखी करि, भय रहित किया होय । तथा त्रस-स्थावर जीवन पै दया-भाव राखे हाँय । तथा अनेक जीवन कूं राज, पंच, दुष्ट, सिंहादि जीव तिनके उपद्रव तैं बचाय, निर्भय किये हाँय । तथा

भयवन्त जीवन के, दया भाव करि स्थिर–भाव किये होंय। तथा भय रहित सुखी जीवन कूं देख, आपकूं सुख भया होय। इत्यादिक शुभ भावन के फल तैं, निशंक चित्त का धारी शूरवीर होय है। २६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी ! यह जीव उदारचित्त सहित दातार कौन पुन्य तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, जिन जीवननैं, पर जीवन कौं सुपात्र दान देते देख, अनुमोदना करी होय। तथा दीन दुखित–भुखित देख, तिन जीवन की तानैं दया करी होय। तथा दान देने की बहुत अभिलाषा करी होय। तथा धर्म निमित्त धन देते, सुख पाया होय। इत्यादिक शुभ भाव तैं उदार चित्त सहित दाता होय है। २७। बहुरि फेरि शिष्य कही। हे यति पति, यह जीव सूंम किस कर्म के उदय करि होय, सो कहो। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में कोई जीव कूं दान देते, मनैं किया होय। औरन कौं धन खर्चते देख, आपने दुख मान्या होय। पर भव में नाना कष्ट पाय, धन जोड़ि कर, आप नहीं खाया, नहीं औरन कूं खुवाया, अरु और धन जोड़वे की अभिलाषा रही होय। अत्यंत तीव्र तृष्णा के भावन में मरण किया होय। तथा औरन के दान की निंदा करी होय। इत्यादिक पाप–भावन तैं सूमता सहित लोभी होय। २८। फेरि शिष्य पूछी। यह जीव पण्डित कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन नैं पर-भव में विद्या का दान दिया होय। औरन कूं पण्डित–विद्यावान् जीव देख, तिनकी सेवा–चाकरी करी होय। अज्ञानी जीवन की संगति तैं, जिन के अरुचि रही होय। जो धर्म शास्त्रन के वेत्ता हैं, ति-

नकी स्तुति करी होय। तथा धर्म शास्त्रन कौं आप लिखे, तथा घर–धन खरच के लिखाय, धर्मात्मा–जीवन के पठन–पाठन कौं दिये होंय। तिन शास्त्रन के उपकरण जो पूठा–बंधना उत्तम कराये होंय। तथा शास्त्राभ्यास करवे की, बहुत अभिलाषा रही होय। तथा अन्य विद्या अभिलाषी, भव्य जीवन कौं, धर्म शास्त्र का ज्ञान कराया होय। इत्यादिक पुण्य–भावन तैं पण्डित होय।२९। और फिर शिष्य पूछी। हे नाथ! हे तपोधन ! यह जीव मूरख कौन पाप तैं उपजै है ? तब गुरु कही। जिन जीवन नै पण्डितन की हाँसि करी होय। तथा धर्म शास्त्र के सुनवे में तथा पढ़वे में अरुचि भाव किये होंय। तथा धर्म शास्त्र चुराये होंय। तथा तिनके बंधन–पूठे चुराये होंय। तथा धर्मार्थी पण्डितन तैं द्वेष–भाव किये होंय। इत्यादिक पापन तैं मूरख होय। ३०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पराधीन कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे भव्य, जिन जीवन नै परभव में पर जीवन कौं बंदी में राखे होंय। तथा अन्य जीवन कूं तुच्छ धन देय, अपने वशीभूत राखे होंय। तथा कर्जादिक के आवने करि, निरधन जीवन कूं रोके होंय। तिनकौं तुच्छ–अल्प अन्न–जल देय, अपने वश राखे होंय। तथा बलात्कार–जोरावरी करि, पर-जीवन कौं अपने आधीन राखे होंय। तथा पराधीन जीवन की हाँसि करी होय। तथा पशून कौं राखि, तृण–जलदेने में प्रमादी रह्या होय। इत्यादिक पापन तैं पराधीन होय। ३१। बहुरि शिष्य पूछी। हे प्रभो, यह जीव स्वाधीन कौन पुण्य तें होय। तब गुरु कही। जिन जीवन नें परभव में अन्य कौं

खान–पान देय, कुटुम्ब सहित तिन की स्थिरता करी होय। तथा दीन जीवन कौं खान–पान देय, साताकारी वचन कहि, तिनकौं निराकुल किये होंय। तथा पराधीन जीव देखि, ताकौं अनुकम्पा उपजी होय। पर जीवन कूं स्वाधीन–सुखी देख, आप साता पाई होय। इत्यादिक पुण्य तैं स्वाधीन होय है।३२। बहुरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो, यह जीव कुरूप किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही भो भव्यात्मा, जिन जीवन कौं परभव में पराये रूप की महिमा नहीं सुहाई होय। तथा कोई पाप-उदय तैं जो रूप रहित भया होय, तिन जीवन के तन की ग्लानि करी होय, सो जीव कुरूप होय। तथा कुरूप मनुष्य देखि, ताकी हाँसि करी होय। तथा पराया भला रूप देख ताकौं दोष लगाया होय। तथा पराये भले रूप कूं विभूति–धूल–कर्दमादि लगाय, विपरीत करि डारया होय। इत्यादिक भावन तैं कुरूप होय।३३। बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञानमूर्ति ! ये जीव रूपवान् कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन नें परभव मैं पर जीवन का रूप देख, निरविकार चित्त किये देख, सुख मान्या होय। तथा पर-जीवन कूं रूप के योग तैं अनादर पाया देख तिनकी दया करि, रूपवान् होना वांच्छया होय। धर्म का सेवन करि, रूपवान् होना वांच्छया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं रूपवान् होय है।३४। तब फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे धर्ममूर्ति, यह जीव पुण्य के उदय करि अनेक भोग्य वस्तु मिली तिनकौं भी नहीं भोग सकै, सो यह कौन पाप का फल है ? तब गुरु कही। जिन जीवन नें परभव में अन्य जीवन कौं अन्न, जल, मेवा, पान, मिठाई

इत्यादिक खावने विषैं अंतराय किया होय। तिनकूं भली वस्तु द्वेष-भाव करि, खावने नहीं दई होय। औरन कौं सूखी-रूखी, कोरी-रस रहित खावता देखि, आप खुशी भया होय। औरन कौं सुख तैं खान-पान करते देख, नहीं सुहाया होय। औरन कूं भूखे-प्यासे देख, तिनकी हाँसि करी होय, दुर्वचन कहि दुखी किये हौंय। आप रसना इन्द्रिय का लोलुपी होय, नाना प्रकार भोग वस्तु भोगी होय। अपने विषय-पोषने कौं नानाप्रकार छल-बल दगाबाजी करि रसनादिक के विषय भोग, सुख मान्या होय। तथा पर का भोजन, श्वान-मार्जारादि पशू ले गये देख, आप सुखी भया होय। इत्यादिक पापन तैं छती (उपस्थित) वस्तु, भोग में नहीं आवै। और कदाचित् लोभ का मार्या, दुग्धादि भली वस्तु खाय ही, तौ रोग वधै, दुखी होय। तातैं अन्तराय कर्म के उदय, भली वस्तु नहीं पचै है। ३५। और शिष्य प्रश्न किया। हे सुखमूर्ति! जाके घर में सुन्दर स्त्री, वस्त्र, आभूषण, घोटक, रतनादिक भली वस्तु उपभोगयोग्य पाईये और भोग नहीं सकै। सो यह कौन पाप का फल है, सो कहौ। तब गुरु कही। जिन जीवन कौं परभव विषैं, पराये हस्ती, घोटक, स्त्री, वाहनादि उपभोग योग्य पदार्थ सुंदर देख कैं, आप कौं नहीं सुहाये हौंय। तिनके भले पदार्थ देख, छल-बल करि, लूट लिये हौंय। भय देय, जोरावरी खोंस लेय, आप भोगे हौंय। पराये भले पदार्थ उपभोग योग्य देख, जाकौं नहीं सुहाये हौंय। पराये घर में भली वस्तु, रतन, हस्ती आदि देख, भय बताया होय कि जो ये भली वस्तु राज में छिना देहौं।

कहै कि ये वस्तु राजा देखेगा, तौ खोंसेगा। इत्यादिक पाप तैं, अच्छी वस्तु नहीं भोग सकै है ।३६। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरो, ये जीव तीव्र क्रोध का धारी किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स, जा जीव नें परभव में क्रोधी जीवन कूं क्रोध करते देखि, भले जानें होंय। तथा पर जीवन तैं युद्ध करवे का जाका स्वभाव, परभव में बहुत रह्या होय। तथा पर कूं युद्ध करते देखि, सुख मान्या होय। तथा परभव में आप सिंह, सुअर, श्वान, सर्प, भीलादि की पर्याय धारि, पर जीव अनेक पीड़े होंय। तथा समता भाव के धारी धर्मात्मा तिनकौं देखि, तिनके समभावन की निंदा करी होय। शान्त परणाम जीवन की हांसि करी होय। इत्यादिक पापन तैं महा क्रोधी होय। ३७। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो, यह जीव आप तौ मान चाहै, अरु मान नहीं रहै। सो ये किस पाप का फल है, सो कहौ। तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, जिन जीवन नैं पर जीवन का मान नहीं राखा होय। तथा अपने तन, धन, यौवन, राज, हुकुम, बल इत्यादिक के गर्व करि, अन्य जीवन का अनादर किया होय। तथा आप कौं भला मनुष्य जानि और जीवन नैं शीश नमाये, सो तिनकौं शीश नमाते देखि, अपने मान-भाव तैं पर कौं तुच्छ जानि, पीछा शीश नहीं नमाया होय। तथा गुरुजन की आज्ञा तैं प्रतिकूल होय स्वच्छंद वर्त्त, बड़ेन की आज्ञा खण्डी होय। तथा दीन जीवन कों जोरावरी भय देय, अपने पाँयन नमाये होंय। तिनके मान खण्ड किये होंय। तथा कहीं किसी का मान खंड भया सुनि, आप सुख पाया होय। इत्यादिक क्रूर भावन तैं अप-

मानी होय, मान चाहै अरु ना रहै। ३८। बहुरि शिष्य ने प्रश्न किया। भो दयासागर! यह जीव अपना मान नहीं कराया चाहै, अरु बिना चाहै ही और जीव आय-आय मस्तक नमावैं, आज्ञा मानैं, सेवा करैं। सो ऐसी महिमा कौन पुण्य तैं होय, सो कहो। तब गुरु कही। हे भव्य, सुनि। जिन जीवन नैं परभव विषैं, महा भक्ति करि शुभ भावन तैं देव-धर्म-गुरु की सेवा-पूजा, विनय सहित मस्तक नमाय करी होय। ताके फल तैं ताकी सेवा देव करैं, ऐसा इन्द्र होय। तथा मनुष्यन का इन्द्र चक्री होय, तथा अर्ध चक्री होय, तथा अनेक राजान करि बन्दनीक महामण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर राजा होय। इत्यादिक पद के धारी पृथ्वीपति होंय। तिनकौं बड़े-बड़े महंत राजा, स्वयमेव ही भक्ति सहित, शीश नमावैं हैं। तथा जिन जीवन नैं परभव में गुरु-जन जो माता-पिता, तिनकी सेवा करवे कौं बारम्बार शीश नमाय, विनय तैं चाकरी करी होय। ताके पुण्य तैं सर्व कुटुम्ब के आज्ञाकारी रहैं, सर्व में आदर पावै। तथा जिसने परभव में अन्य जन, अपनी वय तैं बड़े पुरुष तिनका विनय करि, मान राख, साता उपजाई होय, आदर किया होय। सो जीव बड़े-बड़े वय के धारी पुरुषन के बंदवे-सराहवे योग्य हैं। आप तैं बड़ी-बड़ी उमर करि सहित जीव आय-आय शीश नमावैं, मान राखैं, ऐसा होय। तथा जो विवेकी, संसार रचना का जाननहारा, धर्म शास्त्र का पाया है रहस्य जानैं, यथायोग्य विधि वेत्ता, सो जिसने बल, कुल, धन, बुद्धि, वय इत्यादिक करि जे छोटे, तिन सब का यथायोग्य विनय करि, सत्कार करि, साता

उपजाई होय। तिन सब का मान राखा होय। सो जीव जगत में प्रसंशा पाय, सर्व करि पूज्य होय। ताकौं जगत–जीव स्वयमेव ही आय–आय शीश नमावैं, याका मान राखैं, ऐसा पदधारी होय। तथा जानैं कोऊ ही जीव का मान खण्डन नहीं किया होय। पर जीवन कूं अनेक आदर करि सुखी किये होंय। इत्यादिक शुभ भावन के फल तैं ऐसा पद पावै, जो आप तौ अपना मान नहीं चाहै, अरु अन्य जीव अपनी इच्छा तैं यातैं स्नेह करि आय–आय शीश नमाय, आदर करैं। ऐसा जानना। ३६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु नाथ जी ! यह जीव दगावाज–मायावी कौन पाप तैं होय, सो कहो। तब गुरु कही। हे वत्स, दगावाज के अनेक भेद हैं। सो जिस जीव नैं परभव में पराये भले तप कौं देख, दोष लगाय, ताकी निंदा करी होय। तौ वह पाप के फल तैं भवांतर में जब कबहूँ मनुष्य होय तप धारण करै, तौ मान के अर्थ करै। अंतरंग में धर्म–चाह नहीं रहै। लोगन में पुजावे कौं, दगावाजी भाव करि तपस्वी होय। ताके तप में दगा होय। प्रच्छन्न भोजन लेय, अरु औरन कौं तप–अनशन बतावै। इत्यादिक तप पावै, तौ दगा सहित तपस्वी होय। और जिन जीवन ने पराये भले दान में दोष लगाय, दगा करि निंदा करी होय। सो जीव इस पाप तैं भवांतर में जब कबहूँ मनुष्य होय दान देय, तौ दगा सहित दान का देनेहारा होय। आप दान देय, सो लोगन कौं तौ बहुत द्रव्य बतावै, अरु आप थोड़ा ही धन दान देय। लोक जानैं, याका दान दगावाजी लिये है। सो निंदा पावै। वस्त्र देय, तौ

जीर्ण तौ देय, कहै बड़े—बड़े मोल के नूतन वस्त्र दिये। इत्यादिक पाप भावन तैं, दान में दगा करनेहारा होय। और जिन जीवन नैं परभव में पराये भले धर्म, पूजा, सामायिक, ध्यान, अध्ययनादि अनेक धर्म अङ्ग हैं तिनकूं देख, शुद्ध धर्म अङ्गन कौं दोष लगाया होय, ताकै पाप फल तैं भवान्तर में कवहूं मनुष्य उपजैं तौ ऐसे होंय, कि धर्म का सेवन करैं तौ भाव रहित करैं। प्रभु की पूजा करैं, तौ भाव रहित करैं। अल्प धन लगावैं, लोगन कौं कहैं हमने बड़ा धन लगाया है। और घर में धन होतैं भी, धर्म कार्य में धन का काम पड़ै तौ अपनी दगावाजी—चतुराई तैं, अपना निरधनपना बताय, घर का दुख बतावैं। धर्म में धन नहीं खरचैं। ता पाप—फल तैं, धन रहित, धर्म विषैं दगावाज होंय। और जाने परभव में पराये ध्यान कौं दोप लगाय, हाँसि करी होय। सो ताके पाप तैं भवान्तर में दोष सहित, ध्यान का धारी होय। बगुला की नांईं कुध्यानी होय। धर्म—अंग सेवन करै, सो दगा सहित करै। तथा परभव में दगा सहित धर्म के सेवनेहारे तिनके पाखंड देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जीव धर्म—दगावाजी करनेहारा होय। और जिन जीवन ने परभव में अन्य जीवन कौं कुटम्ब तैं दगावाजी करते देख, सुख पाया होय। ते जीव भवान्तर में कुटुम्ब तैं, दगावाजी करनेहारे उपजें। और जिननैं परभव में दगावाजी सहित आजीविका पूरी करते देख, तिनकी माया की प्रसंशा करी होय, सुख पाया होय। सो जीव भवान्तर में अपनी

आजीविका दगावाजी तैं पूरी करैं, ऐसे होय। और दगावाजी के अनेक भेद हैं। सो परभव में जैसा दगा, भला लागा होय। तैसा ही दगावाज उपजै है। इत्यादिक भले धर्म कार्यन कौं जैसी दगावाजी के कार्य जानें होंय। तैसी ही जाति का धर्म—दगावाज उपजै है। तथा जैसे कर्म कार्यन कौं दोष दिये होंय, तिस जाति का कर्म कार्यन में दगावाज उपजै है।४०। बहुरि फेरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो, यह जीव चोर कौन पाप तैं होय? तव गुरु कही। परभव में चोरन को भले जानें होंय। तथा चोरन तैं व्यापार करि, तिनका बड़ा नफा खाय, चोरन तैं हित किया होय। तथा चोरन का सहकारी होय, पराये धन हराये होंय। अपने मन में पराये धन चुरावे की अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जीव, चोर उपजै है। ४१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह हिंसा का करनहारा जीव, कौन कर्म तैं होय? तब गुरु कही। जिननें परभव में हिंसा भली जानी होय। तथा हिंसक जीवन कूं हिंसा करते देख, तिनकी अनुमोदना करी होय। तथा परभव में हिंसा करवे की अनेक कला-चतुराई सीखी होय। तथा परभव में आपने अनेक हिंसा के उपकरण बनाये होंय। तथा तीर, तुपक, जाली, फन्दा, चेप, गुलेल, सेल्ह, बर्छा आदि अनेक शस्त्र राखि, आप सुख पाया होय। तथा शस्त्रन के उज्ज्वल करवे की, तीक्ष्ण करवे की चतुराई परभव में करी होय। तथा परभव में शस्त्र बेंचे होंय, बनाये होंय। इत्यादिक पाप तैं परभव में शस्त्र तैं मरै तथा आप हिंसक होय। ४२। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे जगत गुरो, यह जीव क्रिया रहित अनाचारी किस पाप तैं होय?

जाकौं खान—पान की सुधि नाहीं, विकल भाव सहित सदीव रहै। सो कौन पाप का फल है ? तब गुरु कही। जिनने परभव मैं शुभ आचारी जीवन की निंदा करी होय। तथा भला आचार देख जाकौं नहीं सुहाया होय। तथा आचार करवे में प्रमादी रह्या होय। तथा परभव में पराई जूंठी खाय, सुख मान्या होय। तथा आगे परभव, पशु पर्याय में—श्वानादि की पर्याय में अशुभ भक्षण करे होंय। तथा सिंह की पर्याय में तथा और पशून की पर्याय में जहां खाद्य—अखाद्य का भेद नाहीं जान्या, तहां विचार रहित वरत्या होय। तथा औरन कों अभक्ष्य वस्तु खावते देख, आप सुखी भया होय। तथा अनाचारी जीवन में विशेष रह्या होय। तथा अनाचारी जीवन की प्रसंशा करी होय। तथा और का अनाचार देख, आपकौं अनाचार करवे की अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पापन तैं पशु होय तौ श्वान, वायस, गर्दभ आदि अशुभ भक्षक की पर्याय धरै। तथा मनुष्य होय तो भीलादि नीच कुली होय। कदाचित् ऊंच कुली होय, तौ शूद्र समान अनाचारी होय। ४३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव शुभ आचारी कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिनकूं परभव में अनाचार-प्रक्रिया देख कैं ग्लानि उपजी होय। तथा भला आचार सहित, दयामई प्रवृत्ति देख, हर्ष मान्या होय। तथा परभव में भले सुआचारी क्रियावंत पुरुषन की संगति रही तथा भली लागी होय। तथा अभक्ष भक्षण तैं अरुचि भाव रहे होंय। और जिनकूं कुशब्द भले नहीं लागे होंय। और सप्त व्यसनादि अनाचार देख, तिन कूं कुफल-

दायक जानि, तजे होंय। और पराये दान, पूजा, शील, संयम, तप, व्रत, दयामई आचार देख, तिनकी अनुमोदना करी होय। तथा परभव में आप कूं शुभाचार भले लागे होंय। तथा भले आचार करवे की आप कूं इच्छा भई होय। इत्यादिक शुभ परणामन तैं शुभाचारी होय।४४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, संसार में भाई समान वल्लभ नाहीं। सो ऐसे भाई–भाई में परस्पर द्वेष कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। भो भव्य! सुनि। जिनने परभव विषैं एक माता के गर्भ में निकसे दोऊ भाईन का युगल, तथा हस्ती, घोटक, भैंसा, श्वान, मींढ़े, तीतुरि, लाल, मुनैयां, मुर्गा, मोर, तथा मनुष्य इत्यादिक दुपद, चौपद, भूचर, नभचर, पशु–मनुष्यन के युगल तिनकौं कौतुक के हेतु तथा द्वेष भाव करि तिनकूं परस्पर लड़ाये होंय। तथा कोई दो भाइयों को परस्पर लड़ते देख, सुख मान्या होय तथा कोई दोय भाईन में स्नेह देख, नहीं सुहाया होय। तथा अपनी चतुराई करि, बीच में माया–दगावाजी करि, दोय भाईन कौं परस्पर लड़ाय दिये होंय। तथा कोऊ कौं खोटी सलाह देय, परस्पर दोय भाईन में द्वेष पाड़ि दिया होय। तथा कोई की, भायन में दोष करावे की वांच्छा सहित पर्याय छूटी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भाई–भाई, शत्रु समानि होंय। ४५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरु, भाई–भाई में परस्पर स्नेह कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिसने परभव में और के दोय भाईन में स्नेह देख, सुख मान्या होय। तथा दोयन कौं लड़ते देख, आपने सज्जनता करि समझाय, दोयन की राड़ि (लड़ाई) मिटाय, स्नेह करा दिया होय।

इत्यादिक भले भाव तैं, भाईन मैं परस्पर स्नेह पावै। ४६। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे ज्ञानवान्, माता–पुत्र में द्वेष कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जो परभव में पर के माता-पुत्र तिनमें स्नेह नहीं देख सक्या होय। पर के माता–पुत्रन कौं लड़ाय, सुख मान्या होय। माता–पुत्र लड़ते देख, खुशी भया होय। इत्यादिक द्वेष भावन तैं माता–पुत्र में द्वेष होय। ४७। बहुरि शिष्य पूछी। हे करुणानिधान! माता–पितान कैं पुत्र का वियोग किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जिसने परभव में पशु-पखेरून के बच्चन कूं पकड़ि, माता–पिता तैं उनका वियोग किया होय। तथा जो पराया पुत्र, चोरी तैं तथा जोरी तैं पकड़ लेगया होय। तथा काहू का पुत्र भला देख, ताकौं शस्त्र तैं तथा विषादि तैं मार, वियोग कस्या होय। तथा किसी के पुत्र का वियोग देख, आप खुशी भया होय। तथा किसी का पुत्र–वियोग, वांच्छया होय। इत्यादिक पापन तैं माता–पितान कैं, पुत्र वियोग होय। ४८। बहुरि शिष्य कही। हे दयानिधान ! पुत्र का वियोग न होय, सो कौन पुण्य तैं ? सो कहो। तब गुरु कही। जानैं परभव में पर के पुत्र का वियोग सुनि कैं दयाभाव करि, वाकूं पुत्र का मिलाप वांच्छया होय। तथा काहू का गया पुत्र बहुत दिन विषैं मिलाप भया सुनि–देख, आप सुखी भया होय। तथा किसी का पुत्र कोई दुष्ट बन्दी में लेगया सुनि, ताकौं धन देय तथा जोरी तैं छुड़ाय, जाका पुत्र वाकौं दिवाया होय। तथा कोई पशू का पुत्र बिछुड़या देख, ताकी दयाकरि, तलाश करि लाय, ताके पुत्र का संयोग कराय दिया होय।

तथा कोई कौं ही, पुत्र का वियोग नहीं वांच्छया होय । इत्यादिक पुण्य—भावन तैं पुत्र न बिछुड़े का लाभ होय । ४९ । बहुरि शिष्य पूछी । हे जगत गुरो ! पिता, पुत्र के निमित्त अनेक कष्ट पाय, पुत्र की उत्पत्ति कौं चाहै । सो ऐसे पिता—पुत्र में परस्पर द्वेष कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही । जिननैं परभव में पराये पिता—पुत्र में द्वेष कराया होय । तथा तिनकौं लड़ते देख, आप सुखी भया होय । तथा और के पिता—पुत्र में स्नेह देख, आपकूं नहीं सुहाया होय । तथा और के पुत्र—पिता में द्वेष कराय दिया होय । तथा कोई के पुत्र—पिता में द्वेष चाहया होय । इत्यादिक अशुभ भावन तैं पिता—पुत्र में द्वेष होय । ५० । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो ! पिता—पुत्र में स्नेह कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही । जिननैं पर भव में और के पिता—पुत्र में स्नेह देख, सुख पाया होय । पराये पुत्र—पिता मैं द्वेष भाव देख, अपनी बुद्धि के बल करि दोऊन कौं समझाय, स्नेह कराय दिया होय । औरन के पिता—पुत्रन में स्नेह चाहया होय । इत्यादिक शुभ भावन तैं पिता—पुत्र में स्नेह होय । ५१ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो, गर्भ में पुण्याधिकारी का अवतार भया कैसे जानिये ? तब गुरु कही । जाके गर्भ में आवते, माता—पिता प्रसन्न चित्त रहैं । कुटुम्ब में मङ्गल होय । माता का चित्त भगवान् की पूजा रूप होय । ताकैं दान की अभिलाषा होय । दिन—दिन कुटुम्ब तैं जाकी प्रीति बधै । माता—पिता का चित्त उदार होय । माता—पिता, कुटुम्ब जन के तथा परजन के सत्कार रूप प्रवर्तैं । माता के

चित्त में उज्ज्वल, भली वस्तु, आचार सहित उपजी ताके खावने की अभिलाषा होय। तथा माता–पिता कूं दीरघ धन का लाभ होय। माता–पिता कोई दीन–दुखी–दरिद्री कौं देखें, तो तिनका चित्त दया रूप होय। इत्यादिक शुभ लक्षण सहित, शुभ जीव का अवतार जानना। ५२। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, पापात्मा का अवतार कैसे जान्या जाय? तब गुरु कही। जाके गर्भ में आवते, माता–पिता कौं दुख–संकट होंय। अभक्ष्य वस्तु खावने पर मन चलै। माता–पिता का चित्त क्रूर होय। चित्त उद्वेग रहै। कुटुम्ब में क्लेश बधै। माता–पिता के मन में सूमता प्रगटै। क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायन की तीव्रता बधै। माता–पिता का चित्त, दुराचार मई होय। घर–धन नाश होय। तथा माता–पिता की मृत्यु होय। इत्यादिक चिन्ह गर्भ में आवते होंय, तब पापाचारी जीव का अवतार जानना। ५३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, अनेक भोग योग्य वस्तु, अन्न, मेवादि षट् रस का भोगी, सुगंधादि भली वस्तु का भोगनेहारा जीव, किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिननैं परभव में दीन–दुखी जीवन कूं देख, दयाभाव करि दान दिये होंय। तथा परभव में मुनि–श्रावक कौं भक्ति सहित दान दिये होंय। औरन कूं दान देते, भले जाने होंय। और जीवन कौं भला अन्न, मेवा, मिठाई खावते देख, अनेक सुगंधादि सहित सुखी देख, आपने हर्ष पाया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं वांछित भोग योग्य, षट् रस मेवादि भली वस्तु का भोगी होय। ५४। बहुरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो, यह जीव अनेक उपभोग

योग्य वस्तु विस्तर, आभूषण, मन्दिर, हस्ती, घोटक, रथादि वाहन, पालकी आदि बहुत पदार्थ का भोगी, किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जानैं परभव में मुनिन कौं वस्तिका का दान दिया होय। तथा श्रावकन कौं तथा आर्यिका कौं वस्त्र दान दिये होंय। तथा जिन देव कूं छत्र, चमर, सिंहासन आदि उपकरण कराय के पुण्य पाया होय। तथा पर जीवन कूं वस्त्र-भूषण पहरे देख, आप हर्ष मान्या होय। तथा जिननैं सर्व जीवन कूं सर्व प्रकार सुख वांछ्या होय। इत्यादिक शुभ भाव सहित होय तौ अनेक उपभोगन का भोगनहारा होय ।५५।

बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, ये जीव बावने शरीर का धारी कौन कर्म तैं उपजै है? तब गुरु कही। जानै परभव में पर कूं छोटे शरीर का धारक देख, तिनकी हाँसि-निंदा करी होय। तथा आप बड़े तन का धारक होय, अभिमान किया होय। पर का बावना शरीर देखि, आप हर्ष पाय भला जान्या होय। अपने बड़े तन तैं अन्य छोटे शरीर वालों कौं पीड़ा पहुँचाई होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं, छोटे शरीर का धारी बावना होय है।५६।

बहुरि शिष्य पूछी। हे मुनिनाथ, इस जीव कूं कूबड़ा शरीर किस पाप भावन तैं होय? तब गुरु कही। हे दयालु चित्त के धारनहारे वत्स! तूं चित्त देय सुनि। जिन जीवन नैं परभव में पर जीवन कौं लाठी, लात, मूकी मारि ताके हाड़ तोड़, तिनकूं दुखी करि, आप सुख पाया होय। तथा पराये शरीर कूँ गांठ—गठीला रोग—सहित देख, आप सुखी भया होय। तथा औरन का शरीर आंका—बांका, कुरूप देख, हाँसि करी होय। अपने भले तन का भारी

गर्व कर, औरन कों बहकाए हौंय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं कूबड़ा शरीर होय है। ५७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, ये जीव, देव किस पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में सम्यक् धारा होय। तथा पंच परमेष्ठी की पूजा, बंदना, स्तुति करी होय। तथा तप, शील, संयम पाले हौंय। तथा दीन जीवन की रक्षा रूप भाव करि, करुणा भाव धारे हौंय। तथा मुनि, श्रावकादिक च्यारि संघ का, वैय्यावृत कस्या होय। तथा भले भाव सहित जिनवाणी सुनी होय। इत्यादिक धर्म का सेवन कस्या होय। तथा औरन कों धर्म सेवते देख, अनुमोदना करी होय। तथा नंदीश्वर द्वीप, कुण्डलगिरि, रुचिकगिरि आदिक क्षेत्रन के जिन मन्दिर बंदना की अभिलाषा राखी होय। इत्यादिक धर्म भावन तैं देव होय है। । ५८। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, मनुष्य किस भाव तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में सरल भाव राखे हौंय। कोई जीवन तैं, द्वेष—भाव नहीं किये हौंय। मंद कषाय धरैं, धर्म भाव सहित, आर्जव परिणामी रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं मनुष्य होय। ५९। बहुरि शिष्य पूछी। हे करुणानिधान, यह जीव नरक किस पाप तैं पावै ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में अनेक पर—जीव सताये हौंय। दीरघ क्रोध धास्या होय। जाका हृदय महा दगाबाजी तैं भस्या होय। जानैं मद्य—मांसादि अभक्ष्य भक्षण करे हौंय। धर्म भाव रहित, पाप सहित वरत्या होय। तथा धर्म तैं द्वेष भाव करि, पाप कार्यन की रक्षा करी होय। तथा पर जीवन के मारवे—बांधवे की विशेष इच्छा रही होय। इत्यादिक भावन तैं नरक में उपजै

है। ६०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव जी! यह जीव पशु में, किस पाप तैं उपजै ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में पर वस्तु की आरति करी होय। कर्म के वश अनेक खान—पान की आरति, धन जोड़वे की आरति, शरीर पुष्ट करवे की आरति करी होय। इत्यादिक भाव, जानैं अशुभ राखै होय। तथा अक्रिया सहित खान—पान करे होंय। तथा खाद्य—अखाद्य वस्तु का विचार नहीं कस्या होय। प्रमाद सहित, धर्म भावना रहित वरत्या होय। इत्यादिक अज्ञानता सहित अनेक आर्त्तध्यान तैं तिर्यंच होय।६१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी, यह जीव कुभोग भूमि का मनुष्य, जाका मुख तौ अनेक पशून के आकार, अरु नीचले अंगोपांग सर्व मनुष्यन केसे महा सुंदर सुघड़ होंय, सो ऐसा शरीर कौन कर्म के उदय तैं पावै ? तब गुरु कही। जा जीव नैं पूर्व भव में मिथ्यादृष्टी मुनि कौं दान दिया होय तथा कुमुनीनकौं भक्ति करि दान दिया होय। तथा शुभ मुनिन कौं कपटाई सहित दान दिया होय। तथा मुनीश्वरों को दान देते, चित्त लोभ रूप रह्या होय, तथा मानी चित्त रह्या होय, तथा मान की इच्छा रही होय। तथा मुनीश्वर कौं दोष—सहित भोजन दिया होय। तथा नवधा भक्ति में अभिमान राख्या होय। तथा दाता के सात गुण * हैं, तिनमें कोई हीन होय। इत्यादिक भावन तैं कुभोग-भूमियां मनुष्य होय है। ६२। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, सुभोग भूमि विषैं, तीन पल्य की आयु

* भक्तिकं तौष्टिकं श्राद्धं, सविज्ञानमलोलुप। सात्विकं क्षमकं सन्तः, दातारं सप्तधाविदुः॥ १ भक्ति, २ तुष्टि, ३ श्रद्धा, ४ ज्ञान, ५ अलोलुप (अलोल्य) ६ सत्व, ७ क्षमा, ये सात दातार के गुण हैं।

सहित, देव समान दश प्रकार कल्पवृक्षन के दिये सुख तिनका भोगता, किस पुण्य तें होय, सो कहौ। तब गुरु कही। जानें परभव विषैं नवधा भक्ति सहित (१ प्रतिगृह, २ उच्च स्थान, ३ अंघ्रि प्रक्षालन, ४ अर्चा, ५ आनति, ६ मन शुद्धि, ७ वचन शुद्धि, ८ काय शुद्धि, ९ अन्न शुद्धि ये नवधा भक्ति हैं।) दान दिया होय। तथा और भव्यन कूं मुनि–दान देते देख, अनुमोदना करी होय। तथा मुनीश्वरों कों दान देवे की अभिलाषा रही होय। तथा मुनिदान समय, देवन के पंचाश्चर्य होते देख, तथा सुनि कें, मुनि के दान की महिमा–बड़ाई करी होय। तथा मुनि दान देनेहारे दाता की स्तुति करी होय। इत्यादि शुभ भावन तें उत्कृष्ट भोग-भूमियां होय है। ६३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो ! कुक्षेत्र का वास किस पाप कर्म तें होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन नें परभव विषैं, पर जीवन कूं झूठा दोष लगाय, सुक्षेत्रन तें निकासि उद्यान में राखा होय। तथा म्लेच्छन के भोग भले लागे होंय। तथा कोई पै कोप करि, ताहि पकड़, निर्जन–भयावने स्थान मे राखा होय। तथा कुक्षेत्र में वास करनेहारे, अनाचारी जीवन की प्रसंशा करी होय। तथा पशु पालक होय, उद्यान में रह के, हर्ष पाया होय। इत्यादिक कुचेष्टा तें, कुक्षेत्र का वास पावै। ६४। बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञान नेत्रे, सुक्षेत्र का वासी जीव किस पुण्य तें होय, सो कहो। तब गुरु कही। जाने परभव में कुक्षेत्रवासी जीवन की दया करि सुक्षेत्र में बसाये होंय। तथा दीन–दुखित जीवन कूं उद्यान में से ल्याय, सुख में राखे होंय, तिनकों साता उपजाई होय। तथा आपने राज्य भोग छोड़,

तप लेय, बन में रहवे का उद्यम किया होय। तथा बनवासी मुनीश्वरों की धीरजता देखि, प्रसंशा करी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, सुक्षेत्र का वास पावै। ६५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ, यह जीव अल्प आहार में संतोषी किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिननैं परभव में मुनीश्वरों कों अल्प दान एक-दोय ग्रास देय, अपना भव सफल मान्या होय। और दीन-भूखे जीवन कूं वांच्छित भोजन देय, तृप्त किये होंय। तथा परभव में अनेक वांच्छित भोग थे तिनकौं छाँड़ि, उदास होय, अल्प भोजन राखा होय। अनेक सुभग रस का त्याग किया होय। इत्यादिक समता भाव के फल तैं अल्प भोजन में तृप्त होय है। ६६। बहुरि शिष्य पूछी। हे पूज्य, ये जीव बहुत भोजन करवे की इच्छा राखै, अरु मिलै नहीं। सो यह कौन कर्म का उदय है, सो कहो। तब गुरु कही। जिननैं परभव में अन्य जीवन कौं तरसाय, भोजन दिया होय। तथा परभव में मनुष्य, श्वान, मार्जारादि की पर्याय में पराया भोजन, ले भाज्या होय। तथा धर्मात्मा जीवन का अल्प भोजन देख, हाँसि करी होय। तथा पशु-हस्ती, घोटक, बैल, महिष आदि अनेक जीवन का बहुत भोजन देख, सुख मान्या होय। तथा परभव में रात्रि-दिन मुख तैं भोजन करता भी, तृप्त नहीं भया होय। इत्यादिक अशुभ-भावन तैं बहुत भोजन करता, तृप्त नहीं होय है। ६७। बहुरि शिष्य पूंछी। हे गुरु देव जी! यह जीव चतुराई-कलारहित मूर्ख, हृदय शून्य, लौकीक ज्ञान रहित, किस पाप तैं उपजै? तब गुरु कही। जाने परभव में पराई कला-चतुराई देख द्वेष-भाव तैं, दोष लगाय हाँसि

करी होय। अरु अपने दोष छिपावे कूं अनेक माया-चतुराई करि, अपना दोष छिपाया होय। भांड-कला देख, हरष पाया होय। पराया गावना, खावना, हाव-भाव, नृत्य, वादित्रादि कला देख, तातैं द्वेष भाव किया होय। पराई चतुराई प्यारी नहीं लागी होय। तथा परभव में याके रिझावे कूं, काहू ने अनेक कला-चतुराई करि राजी किया, ताकी रीझ (इनाम) पचाय गया होय। इत्यादिक पापन तैं मूढ़, लौकिक ज्ञान-चतुराई रहित होय है। ६८। बहुरि शिष्य पूंछी। हे ज्ञानमूर्ति, यह जीव लौकिक कला-चतुराई सहित कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में औरन की गान, नृत्य, वादित्र, चित्रकला, शिल्प–कलादि अनेक चतुराई देख, हरष पाय, तिन कूं उदार चित्त सहित अनेक रीझ दई होय। पराई चतुराई, विवेक, भला ज्ञान देख, भला लाग्या होय। तिनकी प्रसंशा करी होय, कही कि याकी ज्ञान-कला, शास्त्र प्रमाण है। गुणी जन का आदर किया होय। इत्यादिक अपनी सज्जनता प्रगट करि, औरन के सुखी करवे के निमित्त, भला ज्ञान खर्च किया होय। सो जीव लौकिक कला–चतुराई में प्रवीण होय। ६९। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो! यह जीव बहु भार का बहनेहारा मनुष्य–पशु, किस पाप तैं होय है? तब गुरु कही, जिन नैं पर-जीवन पै बहुत भार लादा होय। तथा बेगारि पकड़, तापै बराजोरि भार धरया होय। तथा पशून पै बहुत भार देय चलाये होंय। तथा अल्प भार का नाम लेय, बहुत भार बांध–धरा होय। तथा अपने लोभ कौं, पर जीवन पै भार लादि, कुटुम्ब की रक्षा करी

होय। तथा पर पै दीरघ भार लदा देख, हर्ष पाया होय। इत्यादिक भावन के अशुभ फल तैं बहुत भार का बहनेहारा होय है। तिर्यंच में वृषभ, महिष, ऊंट, गर्धवादि बहुत भार बहनेहारा होय। मनुष्यन में बहुत भार बहनेहारा हिम्माल व बेगारी होय। ७०। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, यह जीव रंक—दरिद्री किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में अपनी अन्याय बुद्धि तैं, जोरी करि अनेक जीवन कौं दुखी करि, धन खोंसि निर्धन—दरिद्री करे होंय। तथा पर जीवन कों लुटे—खुसे देख, हर्ष मान्या होय। तथा कोई रंक का जोड़्या अल्प धन, सो परभव में चोर्या होय। तथा कोई दीन—दुखी जीवन कूं दुर्वचन कहि पीड़े होंय। तथा दीन—दरिद्री जीवन कौं देख, तिनकौं झूठा चोरी का दोष लगाया होय। तथा दीन—दरिद्री जीव देख, तिनकी हाँसि करी होय। इत्यादिक परभव में पाप भाव करे होंय, जिन तैं ये जीव रंक—दरिद्री होय है। ७१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी! यह जीव कुकाव्य—कला का धारी चतुर, कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन कूं कुकथा भली लागी होय। तथा कहानी—किस्से भले जानि-सुनि, हरष पाया होय। तथा लौकिक चतुराई के शास्त्र, धर्म जानि, दान दिये होंय। तथा उदर पूरण के कारण ऐसे ज्योतिष, वैद्यक, सुभाषित-सभा चातुरी के शास्त्र, तथा शिल्प कलादिक चतुराई के शास्त्र, धर्म जानि दान दिये होंय। तथा धर्म के अर्थ औरन कौं लौकिक विद्या, कला—चतुराई सिखाई होय। तथा अपवित्र शरीर तैं धर्म शास्त्रन का अभ्यास कर्या होय। तथा अनेक

आरंभ, अन्याय—पाप करि धन उपाय, वह धन शास्त्रन की लिखाई निमित्त दिया होय। तथा आप उत्तम धर्म सेवता, कुकवीन के ज्ञान की प्रसंशा करी होय। व आप कौं सीखवे की वांच्छा रही होय। इत्यादिक भावन तैं जीव भवान्तर में कुकवि होय है । ७२ । बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, सुकवि, धर्म शास्त्रन के छंद—काव्य—कला का जोड़नेहारा, सुबुद्धि का धारी, किस पुण्य तें होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में गणधरादि कवि-नाथ, गाथा—छंद—काव्य के करता आचार्य, तिनकी काव्य—कला शास्त्रन में देख—सुनि, तिनका रहस्य जानि, कविनाथ जो गणधरादि तिनकी महिमा करी होय। तथा सुकाव्य धर्म शास्त्रन के करता तिनकौं देख अंतरंग में प्रसन्न होय, तिन तैं वात्सल्य भाव जनाये, होंय। तथा धर्म की जोड़—कला करते सुकविन की सेवा—सहाय करि, साता उपजाई होय। तथा सुकविन के किये छंद, गाथा, श्लोक तिनकौं वांचि, धर्म का रहस्य जानि, हरषायमान होय, कविन की प्रसंशा करी होय। तथा धर्म शास्त्रन की जोड़—कला करते कवीश्वर की, कछु सहाय करी होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं विशेष ज्ञान का धारी सुकवि होय। ७३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव दीरघ आयु का धारी, जन्मान्तर पर्यंत सुखी, कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में पर जीवन कूं मरते बचाय, फिर तिनकौं अनेक भोजन कराय, वस्त्रादि देय, मिष्ट वचन भाषण करि साता उपजाई होय। तथा अनेक जीवन कों बंदी तैं छुड़ाय, सुखी करे होंय। पर जीवन कूं सुखी करवे की सदीव अभिलाषा

रही होय। औरन कौं अल्पायु मरते देख, संसार तैं उदास होय, दयाभाव सहित जाका चित्त भया होय। दीन जीवन की रक्षा, विशेष चाही होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, दीरघ आयुधारी, जीवन पर्यन्त सुखी रहै। ७४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव दीरघ आयु पाय, दुखी किस पाप तैं रहै है? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में पर-जीवन का घात किया होय। अनेक जल गाहन, तरु छेदन, भूमि खोदन, अग्नि जालन इत्यादिक क्रिया के आरंभ तैं अनेक जीव त्रस-स्थावरन का घात किया होय। अनेक छोटी काय के धारी दीन-जीवन कौं सताये हौंय। और कौं दुखी या रोगी रोवते देख, खुशी भये हौंय। पर कौं सुखी देख, ताका बुरा करना वांच्छया होय, इत्यादिक पाप-भावना तैं दीरघ आयु पाय दुखी होय। ७५। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी, ये जीव सदीव शोक रूप कौन पाप तैं हौंय? तब गुरु कही। जे जीव परभव में पर जीवन कूं शोक सहित देख, सुखी भया होय। तथा पर कौं द्वेष भाव तैं भय देय, शोक उपजाया होय। तथा असत्य वचन तैं हाँसि करि कही, फलानी जगह तेरा धन राह में लूट्या गया। ऐसा कहि शोक उपजाया होय। तथा पर के शोक में ताकी हाँसि करी होय। तथा पराये मंगलाचार में उपद्रव कर्या होय। इत्यादिक पापन तैं शोकवन्त रहै। ७६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव सदीव शोक रहित सुखी, किस पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में तीर्थंकर के पंच कल्याणक उत्सव देख, हर्ष-अनुमोदना करी होय तथा जिन पूजा, जिन

प्रतिष्ठा, सिद्ध क्षेत्र यात्रा कूं संघ जावता इत्यादिक उत्सव देख, बहुत हर्ष किया होय। धर्म उत्सव करनेहारे जीव की बड़ी प्रसंशा करी होय। अनेक जीवन के शोक जानैं धन तैं, मन तैं, तन तैं अनेक उपाय करि मिटाय, सुखी करे हाेंय। तथा और जीवन कौं शोकवंत देख, करुणा भाव करि, तिनकौं सुख वांच्छया होय। पर कौं सुखी–मङ्गलाचार रूप देख, सुख पाया होय। इत्यादिक शुभ भावना तें शोक रहित, सदैव सुख रूप होय।७७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव, यह जीव अनेक जीवन करि पूज्य, बहुतन का ईश्वर, कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जाने परभव में अनेक धर्मात्मा जीवन की वैय्यावृत करि, साता उपजाई होय। तथा देव–गुरु–धर्म कूं उत्कृष्ट जानि पूजे हाेंय। तथा औरन कौं धर्मात्मा जीवन की सेवा करते देख, तिनकी अनुमोदना करि, तिनकौं भले जाने हाेंय। तथा परभव में जाने अनेक जीव असहाई-दीन की दया करि अन्न देय, धन देय तथा वस्त्रादि तैं सुखी किये हाेंय। तथा जाकैं च्यारि प्रकार संघ की सेवा करवे की अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं बहुत जीवन का नाथ होय।७८। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, यह जीव कौन पाप तैं बहुत जीवन का दास होय। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं पर भव में अन्य जीवन कौं भय देय, तिन तैं बेगारि कराई होय। तथा सेवक राखि, चाकरी कराय, कछू दिया नाहीं होय। तथा सेवकन कौं रुजगार हेतु भेले राखे हाेंय। तथा पर जीवन कौं अपराधी देख, सुख पाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं

बहुत का दास होय । ७६ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो, यह नपुन्सक लिङ्गी काहे तैं होय ? तब गुरु कही । जानै परभव में पुरुष कौं नारी का आकार बनाय, सुख पाया होय । तथा कोई नर, स्त्री का रूप बनाय लोकन कौं मोह उपजावै था सो ता रूप देख, आप हरष मान्या होय । तथा नपुन्सक जीवन कूं नाचता-गावता कौतुक-हाँसि करते देख, तिनकी चेष्टा आपकौं प्यारी लागी होय । तथा अन्य जीवन कूं नपुन्सक, जोरी तैं कर डाख्या होय । तथा नपुन्सक का संग भला लागा होय । तथा नपुन्सक मनुष्य कैसी चेष्टा करवे की, आपके अभिलाषा भई होय । तथा पर स्त्री व पर पुरुषन के बीचि आप दूत होय, तिनका शील खंडन कराया होय । तथा एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय ये नपुन्सक वेदी हैं तिनकी हिंसा करते, करुणा नहीं भई, निरदई रह्या होय । इत्यादिक पाप चेष्टा तैं जीव नपुन्सक होय । तथा स्थावर, विकलत्रय होय । ८० । बहुरि शिष्य पूछी । हे ज्ञान सरोवर गुरो ! यह जीव की स्त्री पर्याय, कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही । जिसने परभव में स्त्रीन का संग भला जानि, तिन मैं स्त्री कैसी चेष्टा करि, सुख माना होय । तथा अपनी चेष्टा औरन कौं स्त्री की सी बताय, औरन कौं वशीभूत किये हौंय । तथा स्त्रीन में मोहित बहुत रह्या होय । तथा परभव में आप पुरुष था, सो नारी का रूप बनाय, औरन कौं मोह उपजाया होय । इत्यादि कुचेष्टा तैं स्त्री पर्याय होय । ८१ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो, यह जीव एकेन्द्रिय स्थावर किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही । जो परभव में बीतराग देव-धर्म-

गुरु की निन्दा करि, द्वेष भाव करि, सुखी भया होय। तथा देव–गुरु–धर्म की व धर्मात्मा जीवन की, कुसंग के दुर्बुद्धि जीवन का निमित्त पाय, निन्दा करी होय। ते जीव साधारण वनस्पति व निगोदिया होंय। तथा जानैं परभव में वृक्ष छेदे होंय। तथा अनेक वनस्पति खोदी, छेदी, छीली होंय। तथा बहुत भूमि खोदी होय। तथा जल डाल्या होय। तथा अग्नि प्रजाली-बुझाई जिससे पवनकाय के जीव घाते होंय। इत्यादिक पंच स्थावरन की दया रहित प्रवृत्या होय। तथा औरन कौं पञ्च स्थावर घात करते देख, अनुमोदना करी होय। इत्यादिक पाप तैं एकेन्द्रिय स्थावर काय होय। ८२। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव विकलत्रय में कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जे जीव विकलत्रय आदि त्रस जीवन की घात करते, निर्दय रूप रहे होंय। तथा तिली, गेहूं आदि अन्न की भण्डशाला (बंडा–खत्ती धरि) करि बहुत दिन राखि, अनेक त्रस जीवन का समूह उपजाय कैं, क्षय किया होय। तहां दया नहीं उपजी होय। तथा त्रस जीवन सहित अनेक मेवा, फल, फूल पकवानादि अनेक रसना इन्द्रिय के वशीभूत होय, भक्षण किये होंय और दया नहीं उपजी होय। तथा नर–पशून का मूत्र इकट्ठा करि, त्रस जीवन की उत्पत्ति–क्षय होते, दया नहीं उपजी होय। इत्यादिक बिकलत्रय की दया रहित वर्ते होंय, सो जीव विकलत्रय में होंय। ८३। बहुरि शिष्य पूछी। गुरु जी, यह जीव विकलांगी, अंगोपांग रहित कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव विषैं पर–जीवन के हाथ, पांव, कान, नाक,

शीश, अंगुली आदि अङ्ग—उपाङ्ग छेदन किये होंय। तथा कोई के अङ्ग—उपांग छेदते देख, हरप पाया होय। तथा दीन—पशून के अङ्ग—उपांग शस्त्रन तैं छेदन किये होंय। तथा पाहन, लाठी, लात, मूकी तैं पराधीन नर—पशुन के अङ्गोपांग तोड़ि डारे होंय। तथा अङ्गोपांग रहित जीव देख तिनकी हाँसि करि, हरष मान्या होय। इत्यादिक पापन तैं विकल अङ्गी, अङ्गोपांग रहित होय है। ८४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, अष्ट अङ्ग सहित सम्पूरण, कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिननैं परभव विषैं, अन्य जीवन के अङ्ग-उपांग की रक्षा करी होय। तथा कोई के हाथ-पांवादिक अङ्ग-उपांग कटते राखे होंय, दया भाव करि धन देय बचाये होंय। तथा औरन के अङ्ग-उपांग में दुख देख, आप दया करि औषधि देय, ताकौं साता करी होय। तथा अङ्गोपांग रहित काऊ कौं देख, अनुकंपा करी होय। तथा औरन के अङ्गोपांग शुद्ध-पुष्ट देख, सुख मान्या होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं अष्ट अंग शुद्ध पावै। ८५। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव नीच कुली किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन ने परभव में ऊँच कुली पुरुषों की निंदा करी होय। तथा अपने मुख तैं अपनी प्रसंशा करी होय। तथा पराये भले गुणन का आच्छादन किया होय। तथा अपने औगुण आच्छादन किये होंय तथा। पराये दोष प्रगट करे होंय। तथा नीच कुलीन के खान-पान विषैं रंजायमान होय, अनुमोदना करी होय। तथा अपने अभिमान करि, औरन का अनादर किया होय। तथा नीच संग में बहुत रह्या होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं नीच

कुली होय । ८६ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरु देव, ऊँच कुली कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं सत्पुरुषन के गुण की प्रसंशा करी होय । तथा अपने औगुण गुरुन पै प्रगट प्रकाशै होंय। तथा पराये औगुण देख आच्छादन करे होंय । तथा चारि प्रकार के संघ की सेवा करी होय । तथा दुराचार तैं डरया होय । अनेक दीन-जीवन कूं अनेक भोजन-पान-वस्त्र देय, सुखी करि, मिष्ट वचन तैं साता उपजाई होय। तथा अपने भावन तैं कोऊ का भी अनादर नहीं करया होय । तथा आप दीन समानि आपकौं जानि, अभिमान रहित रह्या होय।इत्यादिक शुभ भावन तैं ऊँच कुली होय। ८७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु, यह जीव नीच कुल में उपजै। तिनकौं दीरघ धन, हुकुम, लोक में मान, पुरुषारथ होय, सो कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही । जिन जीवन नैं परभव में अनेक अज्ञान तप करे, कबहूँ अन्न का त्याग करि, साग-भाजी भोजन करी होय। तथा बनफल-पत्ता का भोजन करया होय । तथा सर्व त्याग, दूध लिया होय। मही पिया होय । घासि घोट के पिया होय । अग्नि में तन तपाया होय। ऊर्ध्व पांव—अधो शीश, भूल्या होय । भूमि गड़या। पर्वत पतन किया । जल पतन, इत्यादिक बाल तपस्वी होय, अनेक कष्ट, धर्म के निमित्त सहे होंय । तथा अज्ञान तपस्वीन कौं, भले धर्मात्मा जानि, विनय सहित, सरल भावन तैं तिनकी पूजा करी होय । धर्म के निमित्त याचकन कौं दान दिया होय। तथा लौकिक कार्यन में धर्म जानि, धर्म फल कौं धन खर्चा होय । तथा अपनी अज्ञानता तैं अन्य भोरे जीवन कूं धर्मी जान पूजे होंय ।

तथा आप ज्ञान रहित होय, मंद कषायी रह्या होय। इत्यादिक भावना सहित नीच कुल में उपजि, धनवान्–हुकुमवान् होय। सो तिर्यंच गति का बंध किये पीछे ऐसे भाव हौंय, तौ शुभ भावना के फल तैं कोई राजा का हस्ती–घोटकादि पशू होय। ताके पीछे अनेक जीव पलैं। भले वस्त्र-आभूषण, भले भोजन का भोगनहारा आप सुखी होय। तथा पहिले मनुष्यायु का बंध किया होय, तौ नीच कुल में उपजे। सो हुकुम का धारी होय। तथा पहिले देवायु का बंध किया होय तौ भवनत्रिक में अल्प ऋद्धि का धारी, हीन देव होय। इत्यादिक भावन तैं ऐसे हौंय। ८८। बहुरि शिष्य पूछी। ये जीव ऊँच कुली होय दीन दशा धारै, धन रहित होय। सो किस पाप का फल है? सो कहिये। तब गुरु कही। जिसनैं परभव में शुभ भावन तैं ऊँच गोत्र का बंध करि पीछे विपरीत कषाय रूप भाव भये, सो मान के वश होय, मोह के जोर तैं मदोन्मत्त होय, पर जीवन का मान खंड कर, हर्ष पाया होय। आप गुरु जन की आज्ञा रहित रह्या होय। तथा दीन जीवन पै द्वेष-भाव करि तिनकूं कुवचन करि पीड़ा उपजाई होय। पर का धन छल-बल करि नाश कराय, सुख पाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं ऊँच कुली होय, परन्तु धन-धान्यादि रहित, दीन दशा का धारक होय। ८९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी, यह जीव बहुत देशान्तर भ्रम आजीविका पूर्ण करै। ऐसा किस कर्म तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में दीन कौं दान दिये हौंय, सो अनेक जगह भ्रमाय-भ्रमाय दिया होय। तथा दान के दाम अन्य ग्राम में बताय, दीन कौं भटकाय दान

दिया होय। तथा और दीनन पै अनेक सेवा-चाकरी कराय, बहुत दिन तक भटकाय, पीछे दया करि दान दिया होय। तथा अनेक ग्राम-देश भ्रमाय, सेवा-चाकरी कराय, पीछे धर्म जानि दान दिया होय। तथा कासीदन कौं अनेक देश भ्रमाय, ताकी चाकरी नहीं दई होय। तथा कसर करि दई होय। तथा धर्म निमित्त पर कौं ग्राम, धन, वस्त्र देय तिनतैं अनेक चाकरी कराय, बहुत देश-नगरन कौं कासीद (हलकारे) की नाईं भ्रमाय, तिनपै खेद कराया होय। तथा धर्मात्मा पुरुषन कूं आधीन राख, अनेक देश-ग्राम अपने संग भरमाय, तिनकी स्थिरता कौं आजीविका बताई होय। तथा देशान्तर की आजीविका करनेहारे जीव की हाँसि करी होय। आप मद करि एक जागि तिष्ठा, धन पैदा करता, मत्सर भाव करि अन्य कौं बहकाये होंय। इत्यादिक अशुभ भावना सहित, भवान्तर में मनुष्य होय, तौ देशान्तर भ्रमण करि आजीविका पूरण करणहारा होय। ९०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव एक स्थान पै तिष्ठा, आजीविका कौं अनेक धन पैदा करता, कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिसने परभव में अनेक धर्मात्मा जीवन की स्थिरता कौं खान-पान धन—दानादि देय निराकुल, धर्म सेवन कराया होय। तथा अनेक पशु तथा दीन मनुष्य इनकौं अशक्त देख, दुखी देख, तिनकी दया करि तिनके स्थान बैठे ही असहाय जानि, तिनके खान-पान की खबर लेय, साता उपजाई होय। तथा निर्धन धर्मात्मा जीवन कौं निराकुल धर्म सेवन करते देख, समता सहित देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा औरन कौं सुख तैं धन पैदा करते देख, खुशी भया होय। इत्या-

दिक शुभ भावन तैं एक स्थान में धन पैदा करि सुखी होय। ६१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव दगावाजी सहित आजीविका पैदा करनेहारा किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं परभव में दान में कपटाई करी होय। दीन जीवन कूं कपटाई सहित दान दिये होंय। गुरुजन जो मुनि, तिनकौं भक्ति-भाव रहित दान दिया होय। दुखित-भुखितन कौं दया रहित दान दिया होय। तथा माया तैं उदर भरनेहारे चोर, फांसी, गिरी, ठग तिनकी कला-चतुराई देख, तिनके ज्ञान की प्रसंशा करी होय। तथा पराया धन धस्या ही जानता, मुकरि गया होय। औरन के भले किसब (व्यवसाय) कौं दोष लगाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं दगावाजी सहित अजीविका करनेहारा होय। ६२। बहुरि शिष्य पूछी। हे दयालु गुरुनाथ जी ! सरल भाव सहित सत्यवादी होय आजीविका पूर्ण करै, सो किस पुण्य तैं करै ? सो कहो। तब गुरु जी कही। जिननैं परभव में सरल भाव तैं धर्म-राग करि धर्मात्मा जीवन कूं अन्न-पान विनय सहित देय, साता करी होय। तथा दगावाजी रहित, दया सहित, दीन जीवन कूं खान-पान देय रक्षा करी होय। औरन कौं निर्दोष आजीविका उपजावते देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा परभव में सत्य वचन व सरल भाव सहित आजीविका नहीं मिलै भी, अनेक भूख सही, संकट सहे। परन्तु कपटाई सहित उदर पोषण नहीं किया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, न्याय सहित सरलता तैं आजीविका पैदा होय है। ६३। बहुरि शिष्य पूछी। यह जीव नर व पशु होय, घर-घर बिकता फिरै।

सो कौन पाप-कर्म का फल है ? तब गुरु कही। परभव में जा जीव नैं बल करि, छल करि, पराये पुत्र-पुत्री बैंचे होंय। तथा पराये पशु छल-बल करि हर के, घर-घर वैंचे होंय। तथा पराये पुत्रादि मनुष्य तथा हस्ती, घोटक, महिष, वृषभ, आदि जीव कोऊ के प्रबल शत्रु ने अन्याय भाव तैं लूटि, पकड़ल्याय, घर-घर बैंचे होंय, तिनकौं देख सुखी भया होय। तथा बीच में दलाली खाय, पराये मनुष्य-पशु बिकाये होंय। इत्यादिक भावन तैं आप घर-घर विषैं बिकै है। ६४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, एक बार ही बहुत जीव-समुदाय मरण कौं प्राप्त होय। सो कौन कर्म के उदय तैं होय ? सो कहिये। तब गुरु कही। परभव में जिन बहुत जीवन नैं एक ही बार पाप उपाया होय। जैसे कोई, मनुष्य कूं तथा पशु कूं मारै है। तहां कौतुक के हेतु अनेक जीव देख, सुखी होय, पाप भार उपाया होय। तथा कोई नरनारी कूं अग्नि में जलते देख, अनेक जीव सुखी भये होंय, अनुमोदना करी होय। तथा युद्ध विषैं अनेक जीवन का मरण सुनि तथा देख, अनेक जीव राजी होय, हर्ष पाया होय। तथा अनेक जीवनि नें मिलि वीतराग देव-गुरु-धर्म की निंदा-हाँसि करी होय। इत्यादि पाप भावन तैं समुदाय सहित अनेक जीव मरण पावैं हैं। ६५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो! यह जीवन के समुदाय कूं सुख किस पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं तीर्थंकर के गर्भ उत्सव, तथा देवन के किये जन्मोत्सव, तप उत्सव, ज्ञान उत्सव, निर्वाण उत्सव इन पांच कल्याण के बड़े उत्सव, अनेक देव सहित, इन्द्र-शची कौं करते देख तथा सुनि,

जिन जीवन नैं इकट्ठे होय, अनुमोदना करी होय। तथा इन्द्र महाराज इंद्राणी सहित अनेक देव लेय, नन्दीश्वर जी के उत्सव कौं जाते देख तथा सुनि, परम सुख कूं पाय, अनेक जीवन के समुदाय ने अनुमोदना करि पुण्य बांध्या होय। तथा बड़ा संघ सिद्ध क्षेत्र की यात्रा कौं जाता देख, ताका जय-जयकार उत्सव देख, अनेक जीवन नैं अनुमोदना करि, पुण्य बन्ध किया होय। तथा च्यार प्रकार सङ्घ की वीतरागता देख, अनेक जीवों ने सुख पाया होय। तथा समोशरण की महिमा देख, तथा बड़ी पूजा—विधान—प्रतिष्ठा तिनके उत्सव देख तथा शास्त्रन तैं सुनि, अनेक जीवन कौं अनुमोदना उपजी होय। इत्यादिक शुभ कार्यन में अनुमोदना करि, बहुत जीवन नैं समुच्चय पुण्य बन्ध किया होय। तिनकूं समुदाय ही सुख होय है। ६६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, बहुत जीव एक बार ही तप लेय, स्वर्ग—मोक्ष कौं सङ्ग ही जांय। सो किस पुण्य का उदय है सो कहो? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में तीर्थंकरों को, देवोपुनीत राज्य—सम्पदा छाँड़ि तप लेते देख, तथा चक्रवर्ती षट् खंड की विभूति तृणवत् तजि दीक्षा लेंय, तिस उत्सव कौं देख, तथा बलभद्र, कामदेव, मण्डलेश्वरादि महा राजान् कौं दीक्षा लेते देख, हर्ष करि अनुमोदना करी होय। तथा एक—एक राजान् की सङ्गति करि अनेक राजा व तिनकी रानी, राज्य-संपदा छांड़ि, दीक्षा लेंय। ऐसे हजारों जीवन की दीक्षा देख तथा शास्त्रन तैं सुनि, बहुत भव्य जीवन नैं एक बार ही तप की अभिलाषा सहित अनुमोदना करि, समुदाय सहित पुण्य का बन्ध करि, वैराग्य भाव किये होंय। इत्यादिक समुदाय

पुण्य तैं, समुदाय तप अङ्गीकार कर स्वर्ग–मोक्ष होय है। ९७। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, बहुत जीवन कैं एक ही बार रोग होय। सो किस कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव में वीतरागी यतीश्वर का, जो अपने शरीर ही तैं निष्प्रयोजन हैं तिनका शरीर मलीन देख तथा तप तैं क्षीण देख तथा मुनीश्वर के शरीर में दीरघ रोग देख, बहुत जीवन ने एक ही बार ग्लानि करी होय तथा निन्दा करि अनादर किया होय। तो उन बहुत जीवन के एक साथ ही रोग होय तथा कोई आर्यिका के तन में रोग देख तथा धर्मात्मा श्रावक, श्राविका, अविरत सम्यकदृष्टी इनके शरीर रोग तैं क्षीण व अशुचि देख, बहुत जीवन नैं एक ही बार ग्लानि करी होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं बहुत जीवन कैं एक ही बार रोग होय है। ९८। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी! इस जीव कूं पर स्त्री तथा पर पुरुष कूं देख काम विकार होय, मोह उपजै। सो किस कर्म का फल है ? तब गुरु कही। जो जीव पर भव की स्त्री होय। तथा पर भव में जिनको परस्पर व्यभिचार का बन्ध भया होय। तथा परभव की हाँसी, खिलवती, नाच, गीत की सुहवति–संग का जीव होय। इत्यादिक परभव के विकार सम्बन्ध तैं भवान्तर में ताकौं देख काम–विकार होय है। ९९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! पर जीव कौं देख, बिना कारण द्वेष-भाव होय। सो कौन कारण ? तब गुरु कही। जाकौं देख द्वेष भाव होय, सो पर भव का बैरी होय। आपने वाकौं परभव में दुखी किया होय। तथा वानैं आपकौं काहू तैं युद्ध कराय, हर्ष मान्या होय। तथा आपने वाकौं भिड़ाय, सुख

मान्या होय। इत्यादिक पूर्व द्वेष जातैं होय, ताकौं देखे भवान्तर में द्वेषभाव होय। १००। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी, पर जीव देव, मनुष्य, पशु ताकौं देख हर्ष होय। सो कौन सम्बन्ध है? तब गुरु कही। कोई परभव का पुत्र का जीव होय। तथा भाई का जीव, तथा माता का जीव, तथा बहिन का जीव, तथा पिता का जीव इत्यादिक परभव का कोऊ कुटुम्बी जीव होय। तथा परभव का कोई मित्र होय। तथा अपना कोई परभव में उपकार करनहारा होय। तथा आपने वाके ऊपर कोई उपकार परभव में किया होय। इत्यादिक सम्बन्ध वातैं कोऊ पूरव भव का होय, ताकी सूरत देख मोह उपजे है। १०१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, अपने दुख में बिना प्रयोजन कोई आय सहाय करै। सो कहा सम्बन्ध? सो कहिये। तब गुरु कही। परभव में आपने वाके ऊपर कोई उपकार किया होय। जो भूखे कूं अन्न-भोजन दिया होय, सो आय आपकौं बड़े सङ्कट में भोजन का सहाय करै। जानैं तृषावंत कौं जल प्याय, साता करी होय। सो आपकौं दीर्घ पर्वत, बन, उद्यान में तथा युद्ध में जहां जल नहीं होय, तृषा—सङ्कट में प्राण जांय, ऐसे दुःखन में जल प्याय सुखी करै। तथा जानै नग्न रहते कौं वस्त्र देय, साता करी होय। सो भवान्तर में ल्याय, अनेक वस्त्र नजर करै। तथा आपने काहू कौं अभयदान देय दुख तैं मरतैं बचाया होय, तो वह हस्ती, सर्पादि दुष्ट जीवन करि प्राण जावतैं, आय सहाय करै, मरते कौं बचावै है। तथा महा संग्राम विषैं आय सहाय करै। इत्यादिक जाके ऊपर जाने जैसा उपकार किया होय, तैसा ही आपकौं

दूसरा भी आय सहाय करै है। तथा नये सिरेतैं उपकार करवे की अभिलाषा होय है।१०२। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु नाथ ! जाका धन, रोग निमित्त बहुत लागै। परन्तु सुख नहीं होय। सो कौन पाप का फल है ? तब गुरु कही। जानै परभव विषै, अनेक भोरे जीवन कौं बहकाया होय। अर तिनकौं रोग नाश करि पुष्ट करवे का लोभ देय, तिनका धन छल–बल करि आप लिया होय। तथा रोग नाश का लोभ देय, ताका बहुत धन खराब कराया होय। तथा अल्प मोल की वस्तु देय, बहुत धन छलि करि, लिया होय। तथा अन्य कौं दुखित–रोगी देख, तिनका धन औषध निमित्त विरथा लागता देख, आपने हर्ष मान्या होय। तथा पर कौं रोग नाश करवे निमित्त, कुदेवादिक के निमित्त पूजा बताय, ताका धन क्षय किया होय। तथा कोई रोगी कौं ग्रह-नक्षत्र का भय देय, तिनका धन ग्रह-दान में क्षय कराया होय। इत्यादिक कुभावन तैं भवान्तर में मनुष्य होय, ताका धन रोग निमित्त जाय है। १०३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, इस जीव का भला धन, कुव्यसन विषैं लागै। सो किस पाप का फल है ? सो कहो। तब गुरु कही। जानैं परभव में पराया धन कुव्यसन विषैं शिक्षा देय, लगवाया होय। तथा पराया धन कुव्यसन में लागता–उजड़ता देख, आप सुखी भया होय। द्यूत रमाय, पराया धन हरा होय। अभक्ष्य भक्षण कराय, परधन खोया होय। तथा आपनें चोरी करि, पराया धन हरा होय। मदिरा प्याय, धन ठगा होय। तथा वेश्या के नाच–गान व पर स्त्री आदि भोगन में, पर धन नाश होता देख, आप खुशी भया

होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भवान्तर में कुव्यसन में धन नाश होय है। १०४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव गर्भ में ही कौन पाप तैं नाश हो जाय? तब गुरु कही। जिन नैं पर जीवन कौं परभव में गर्भ में ही मारे होंय। अनेक वनवासी पशु तिनकूं आप निर्दयी होय, गर्भ में ही हते होंय। तथा आप दाई का स्वांग धारि, अनेक त्रियों के बालक गर्भ में ही मारि डारे होंय। तथा औषध देय तथा जंत्र-मंत्र करि गर्भ का निपातन किया होय। तथा पर के बालक गर्भ विषैं मरे सुनि, आप सुखी भया होय। तथा कोई तैं द्वेष भाव करि ताका बालक किसी कौं कहि के, गर्भ में ही नाश कराया होय। इत्यादिक पापन तैं जीव भवान्तर में गर्भ में ही मौत पावै है।१०५। बहुरि शिष्य कही। हे गुरो! इस जीव कौं भली सीख बुरी क्यों लागै? सो कहो। तब गुरु कही। जानैं पर कौं अनेक खोटी सीख देय, पर का बुरा करि, आप सुख पाया होय। तथा पर कौं खोटी सीख देय, कुमारग चलाया होय। तथा गुरु जन जो माता-पितादिक, तिनके हितकारी शिक्षा वचन सुनि, जाकौं नहीं सुहाये होंय। जिननैं उल्टे गुरु जन कौं अविनय वचन कहे होंय। औरन कौं अविनय सहित चलते देख, आप राजी भया होय। शिक्षा के देनेहारे गुरु जन, तिनकी हांसि करी होय। स्वेच्छाचारी पशु पर्याय, तामैं तैं चय कैं मनुष्य भया होय। तथा पापाचारी, अविनयी, कुसंगी जीव तिनके वचन भले लागे होंय। इत्यादिक पाप भावन तैं, भली सीख वचन नहीं सुहावैं हैं।१०६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! इस जीव कौं अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान की प्राप्ति कौन शुद्ध

परणति तैं होय ? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, सुनि । जिननैं परभव में तपस्वी मुनि अवधि-मनःपर्यय ज्ञान धारी, तिनके ज्ञान का महात्म्य देख, हर्ष पाया होय। तथा ऐसे दीरघ ज्ञान के धारी तपस्वी, तिनकी सेवा-चाकरी करि, अपना भव सफल मान्या होय । तथा ऐसे अवधि-मनःपर्ययादि ज्ञान का अतिशय देख, तिनकी बहुत महिमा करी होय, बारं-बार स्तुति करी होय, तिन तापसी ज्ञान-भंडार यतीन की वैयाव्रत करवे की अभिलाषा रही होय, तथा मुनि पद धारि अवधि मनःपर्यय ज्ञान उपायवे की वांच्छा रही होय। तथा केवली के वचन सुनि, सत्य जानि हर्ष पाया होय। तथा केवलज्ञानी के अतिशय, देव-इन्द्रन करि बन्दनीक जानि, आपकूं केवली के गुण तैं बहुत अनुराग भया होय। तथा केवलज्ञानी के वचन प्रमाण तीन लोक, तीन काल, जीव-अजीवादि द्रव्य, तिनके प्रमाण का स्वरूप, परोक्ष तौ जान्या होय अरु ताके प्रत्यक्ष जानवे का परम अभिलाषी भया, वीतराग भावन की इच्छा सहित प्रवृर्तका होय। इत्यादिक शुद्ध भावना तैं अवधि-मनःपर्यय-केवल ज्ञान की महिमा-प्रसंशा भक्तिभाव सहित कर, तिन उत्तम ज्ञान की प्राप्ति कौं दीक्षा का उद्यमी भया होय। इत्यादिक शुद्ध भावना सहित जीवन कूं भवान्तर में अवधि, मनःपर्यय, केवल ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति होय है। १०७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी ! इस जीव का धन, धर्म कार्यन विषैं लागै। सो किस पुण्य का फल है ? सो कहो। तब गुरु कही। जिन जीवन ने परभव में औरन कौं धर्म विषैं धन खर्च करते देख, अनुमोदना करि हर्ष उपाया

होय। तथा आपने चोरी दगाबाजी रहित, न्याय मारग सहित, धन उपारज्या होय। औरन कौं तीर्थ स्थान में धन लगावते देख तथा जिन मन्दिर के करायवे में द्रव्य लगावते देख तथा पूजा—प्रतिष्ठा विषैं धन लगावते देख, आपने विशेष अनुमोदना करी होय। तथा आपने परभव में अनेक प्रभावना अङ्गन में द्रव्य लगाया होय। तथा औरन कौं इन स्थानकन में धन लगावते देख, भले जानें होंय। ऐसे पुण्य परणामन तैं इस जीव का धन शुभ कार्य में लागै है। १०८। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव व्रत लेय भङ्ग करि डारै। सो किस कर्म का फल है ? तब गुरु कही। जानैं परभव में पर जीवन के व्रत भङ्ग किये होंय। तथा पराये शुद्ध व्रत कौं दोष लगाया होय। तथा अन्य अज्ञानी जीवन कौं व्रत लेय भङ्ग करते देख अनुमोदना करी होय। तथा कोई धर्मात्मा जीवन का व्रत, कोऊ दुष्ट भङ्ग करै है। सो तामैं सहाय होय, पराया व्रत भङ्ग कराया होय। तथा बाल्यावस्था में अनेक बार कौतुक मात्र आखड़ी लेय-लेय कैं भङ्ग करी होय। इत्यादिक अशुभ कर्म तैं भवान्तर में शिथिलांगी व्रत करनेहारा होय। १०९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पशु पर्याय में उपजि कसाई के हस्त तैं मरै। सो कौन पाप का फल है ? तब गुरु कही। जिसने परभव में कसाई का किसब (व्यवसाय) किया होय। तथा जिननैं परभव में अन्य जीवों कौं विश्वास देय, अनेक भले खान—पान तैं पोष, तिनका घात किया होय। तथा पर—जीवन कौं छल—बल करि हते होंय। तथा पर—जीवन कौं मोल लेय, मारे होंय। तथा पर—जीवन के अण्डा मोल

लेय मारे, तथा अण्डे बैंचे होंय। तथा पर–जीवन कौं पालि पीछे लोभ के अर्थ, कसाईन कौं बैंचे होंय। तथा बिना अपराध बन-जीवन कौं अपने हाथ तैं हते होंय। तथा कसाई के घर का आमिष मोल लाय, भक्षण कखा होय। तथा पर–जीवन कौं कसाई के हाथ तैं मरते देख, सुख मान्या होय। तथा पर–जीवन का आमिष बहुत खाया होय। इत्यादिक पापन तैं जीव की कसाई के हाथ तैं मौति होय। ११०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पाप परणामी, पाप क्रिया सहित कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जानैं परभव में पापी, चोर, ज्वारीन का संग बहुत किया होय। तथा पर–जीवन का घात किया होय। तथा पापी जीवन कौं कुबुद्धि–पाप रूप क्रिया करते देख, अनुमोदना करी होय। तथा हिंसा सहित पाखंडी जीवन के कल्पित देव–गुरु मांस-भक्षी, तिनकी सेवा–पूजा करी होय। तथा धर्मात्मा जीवन की निन्दा करि, अविनय करि, सुख मान्या होय। तथा शुद्ध देव–गुरु–धर्म की निन्दा करि, विपरीत भाव रह्या होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं पापी, पाप-क्रिया का करनहारा होय है। १११। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव भली-उत्तम मनुष्य पर्याय पाय, खपत कैसे पाप तैं होय? तब गुरु कही। जानै परभव में अन्य जीवन कौं मंत्र-यंत्र करि खपत (पागल) करे होंय। तथा अनेक जड़ी-बूटी खुवाय के, जीवन कूं खपत करै होंय। तथा केई जीव पाप के उदय तैं खपत होय गये, तिनकी हाँसि करी होय। तथा केई खपत की अज्ञान चेष्टा देख, तिनकौं चोरी आदि झूठा दोष लगाया होय। तथा कोई हौल-

दिल (पागल) कूं स्वच्छंद प्रवृत्तता देख, ताकौं मार्या होय । तथा मदिरादि अमल पीय, अपनी अज्ञान चेष्टा करि, सुख मान्या होय। तथा कोई मदिरा पीवनेहारा, तिनकी अज्ञान-चेष्टा देख, आप सुख मान्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं जीव भवान्तर में खपत होय है। ११२। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव कुशीलवान् किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं परभव में वेश्या का संग बहुत किया होय। तथा वेश्या, नृत्यकारिणी तथा कुशीली स्त्री, निपुन्सक-पुरुषाकार तिनके संग बहुत अज्ञान चेष्टा देख, तथा उन समान आप कुचेष्टा करि, हरष मान्या होय। तिन मैं गोठी कर, रम्या होय। और जीवन कौं कुशील करते देख, अनुमोदना करी होय। तथा श्वानादिक पशु पर्याय में कुशील-रूप बरत्या होय। तथा औरन के बीच में दूत होय, कुशील में सहाय दी होय। तथा दिन विषैं कुशील के वीर्य का उपज्या होय। इत्यादिक पाप भाव तैं कुशीली ही होय। ११३। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, ये जीव शीलवान किस पुण्य-कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं परभव में शीलवान् पुरुष-स्त्री जीवन की प्रसंशा करी होय। तथा शीलवान् पुरुष के शील राखवे कौं सहाय करी होय। पूर्वं संयमी पुरुषन की संगति करी होय। तथा कुशीलन की संगति तैं मन उदास रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं शीलवान् होय। ११४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव जनमते ही मरण कौं प्राप्त किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं औरन कौं जनमते ही मारे होंय। तथा अल्प आयु के धारी जनमते ही मरते देख,

हरष पाया होय। तथा द्वेष भाव तैं कोई कौं जनमते देख, हस्त तैं मास्या होय। तथा सम्मूर्च्छन एकेन्द्रियादि त्रस जीवन के घात के उपाय करि, तिनकी हिंसा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जन्म समय ही आप मरण पावै। ११५। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव बन्दी होय, परवश पर के किये दुख कौं सहै। सो किस पाप का फल है? सो कहो। तब गुरु कही। जिननैं बिना अपराध, धन के लोभ कौं पर जीव जोरावरी पकड़ि कैं बन्दीगृह में राखे होंय। तथा पर भव में दुपद, चौपद, नभचर, जलचर, उरपद इत्यादिक पशून कौं बलात्कार, पींजरा—फंदा आदि बंधन में राखे होंय। तथा पर जीवन कौं द्वेष-भाव करि, चुगली खाय, पराये मान खण्डन कौं, धन नाश कौं झूठा दण्ड लगाय, बन्दी में दिवाये होंय। तथा पर कौं बन्दीगृह में देख, अनुमोदना करि खुशी भया होय। इत्यादिक पाप तैं, जीव नृपादिक का बन्दी होय। ११६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव अकस्मात् शस्त्र तैं, फांसी तैं, गोला तैं, सिंहादि दुष्ट पशून तैं, अग्नि तैं, जल तैं, बिष तैं, इत्यादिक कारणन तैं मृत्यु पावै। सो किस पाप के फल तैं पावै? सो कहो। तब गुरु कही। जानैं पर भव में पर जीवन कूं दोष लगाय, विष देय मारे होंय। तथा विष तैं मूए देख, हर्ष पाया होय। सो जीव इस पाप तैं, विष तैं अकस्मात् मृत्यु पावै। और जानैं पर जीवन कौं फांसी तैं मारे होंय। तथा फांसी तैं मूये सुनि, अनुमोदना करि हर्ष पाया होय। ते जीव चोरन का निमित्त पाय, फांसी तैं मरैं। और जिननें पर जीवन कौं

तीर, गोली, बर्छी, कटारी, छुरी, तलवारादि शस्त्र तैं मारे होंय। तथा मुये सुनि, अनुमोदना करी होय। ते जीव अकस्मात् शस्त्र तैं मौति पावैं। और जिन जीवन नैं परभव में सिंहादि जीवन कौं शस्त्र तैं हते होंय। तथा औरन तैं मारे सुनि, सुख पाया होय। ते जीव सिंहादि दुष्ट जीवन तैं अकस्मात् मृत्यु पावैं। और जिननें पर जीवन कूं अग्नि में जाले होंय। तथा अग्नि में जले सुनि, हरष पाया होय। सो जीव अकस्मात् अग्नि में जलैं। और पर-जीवन कौं जिनने जल में डुबोय मारे होंय। तथा जल में डूबे सुनि, सुख पाया होय। ते जीव अकस्मात् जल में डूबि मरैं। इत्यादिक जे पाप क्रिया, ताही निमित्त पाय अकस्मात् मरण होय। ११७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पर का खानाज़ाद गुलाम, किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जानैं परभव में बलात्कार पर-जीवन कौं गुलाम किये होंय। तथा धन लोभ देय तथा भूखे कौं खान-पान वस्त्रादिक का लोभ लगाय, तथा पराया मनुष्य बिकते देख मोल देय इत्यादिक कारण तैं पर जीवन कौं गुलाम किये होंय। तथा अन्य जीव कोई का गुलाम भया होय। तथा अपने बीचि-दूत होय, किसी कौं किसी का गुलाम कराय, दलाली खाय, हर्ष पाया होय। इत्यादिक पापन तैं जीव भवान्तर में आय, अन्य घर बिक गुलाम होय। ११८। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, यह जीव लोक-निंद्य कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जाने जगत्पूज्य जो वीतराग देव-धर्म-गुरु की निन्दा करी होय। तथा और कोई देव-धर्म-गुरु के निन्दक जानि,

तिन में प्रीति भाव किया होय। तथा तीन जगत्पूज्य, प्रसंशा योग्य ऐसे वीतरागादि उत्तम गुण, तिनकी निन्दा करी होय। तथा धर्मात्मा पुरुषन की निन्दा करी होय। तथा लोक-निन्द्य पुरुषन के संग कौं पाय, अनेक निन्द्य-कार्य किये हौंय। अयोग्य खान—पान करे हौंय। इत्यादिक पापन तैं, जीव लोक—निन्द्य पद पावै। ११६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, इस जीव कौं पुत्र, स्त्री, माता, पिता, भरतार आदि इष्ट वस्तु का वियोग किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जानैं पर-पुत्र हरे हौंय। तथा पराये पुत्र हरे जान, जानै अनुमोदना करी होय। तथा पराई स्त्री कौं, ताके भर्तार तैं वियोग कराया होय। तथा पर स्त्री—पुरुष का वियोग सुनि, हरष पाया होय। ताकैं स्त्री का वियोग होय। तथा पर का कुटुम्ब—माता—पितादिक तैं वियोग कराया होय। तथा पर का कुटुम्ब तैं वियोग सुनि, महा हर्षवान् भया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भवान्तर में जीव कूं कुटुम्बादिक का वियोग होय है। १२०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, इस जीव कौं धन का वियोग किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जानै पर भव में पर का धन हरया होय। तथा चोर तैं, जल तैं, अग्नि तैं, राज्य तैं, फौज तैं, इत्यादिक निमित्त पाय, पर का धन नाश भया सुनि, अनुमोदना करी होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं भवान्तर में आप कैं धन का वियोग होय है। १२१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी! इस जीव के घर में अग्नि किस पाप तैं लगै है? तब गुरु

कही। जानें पर जीवन के घर में आग लगाई होय। तथा पराया घर जलते देख, हरष पाया होय। इत्यादिक पापन तैं, घर में अग्नि लगै है।१२२। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, इस जीव कैं कण्ठ विषैं नरैल समान मेद किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जानै पर भव में पर जीवन कौं लाठी, सोठी, मूंकी मार ताका कंठ सुजाय दिया होय। तथा जानैं पर के मुख आगे भार बांध, दुखी कस्या होय। तथा पर के कंठ में मेद देख, ताकी हाँसि करि बहकाय, हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भवान्तर में आप के कंठ में नरैल तैं दीर्घ मेद हो है।१२३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव सर्व कौं वल्लभ किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जानैं परभव में सर्व संसारी जीवन तैं स्नेह भाव कस्या होय। तथा देव, गुरु, धर्म जाकौं महा वल्लभ लागे होंय। तथा जाकौं परभव में च्यारि प्रकार के संघ के धर्मात्मा जीव, महा वल्लभ लागे होंय। तथा गुनी जन तैं, स्नेह जनाया होय। तथा दीन-दरिद्री दुखित-भुखित, सोच जलधि में पड़े महा दुखी जीव तिनकों देख, दया भाव करि तिनकौं स्नेह सहित विश्वास उपजाय, सुखी किये होंय। इत्यादिक शुभ भावन तैं जीव भवान्तर में सब कूं सुखदाई परम वल्लभ होय।१२४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुनाथ जी! इस जीव के घर, सदीव मंगल रहै। सो किस पुण्य तैं होय? सो कहो। तब गुरु कही। जो परभव में तीर्थंकर के पंच कल्याणक देख तथा सुनि करि, हर्षवंत भये होंय। तथा जिन पूजा, जिन प्रतिष्ठादि मंगलाचार उत्सव देख, अनु-

मोदना करी होय। तथा पुण्योदय तैं काऊ के घर मंगलाचार गाजते–बाजते देख, हर्षित भया होय। तथा कोई के घर शोक, चिंता, भय देख, तिनकी दया करी होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं सदीव घर में मङ्गल होय है। १२५। ऐसे एक सौ पचीस प्रश्न शिष्य नैं गुरु तैं स्व-पर कल्याण के अर्थ किये। सो ये प्रश्न हैं, इन में के केतेक प्रश्न तो त्रैलोक्यनाथ की माता तैं देवाङ्गना ने करे हैं। तिन के उत्तर तीर्थंकर की माता ने दिये हैं। और केतेक प्रश्न, राजा श्रेणिक महा धर्ममूर्ति बुधिवान् तानैं गौतम स्वामी गणधर तैं करे। तिन के उत्तर श्री गौतम स्वामी ने करे हैं। सो इन कौं इकट्ठे करि, यहां भव्य जीवन के कल्याण हित, समुच्चय वखान किये। तिन के भेद जानि, पाप पंथ तजि, सुपंथ लागि, अनेक जीवन नैं पुण्य बंध किया। और इन कौं सुनि अनेक भव्य, पुण्य उपारजैंगे। तातें विवेकी इस प्रश्न माला कौं बांचि, निकट संसारी इनका रहस्य पाय, अपना कल्याण करें। इस प्रश्न-माला के धारण किये, भव्य जीव भव–भव में सुखी होंय। कैसी है ये प्रश्नमाला, गुरु के वचन रूपी महा शुभ सुगंधित फूल तिनकी बनाई है। सो इस माला कौं निकट भव्य, मोक्ष-रमणी का दूलह, हर्षाय कैं अपने हृदय विषैं पहरि, सुखी होऊ। कवीश्वर कहैं हैं, इस माला कूं मैं अपने हृदय में फेरि, अपना भव सफल जानि कृत–कृत्य भया। और भी जे अमर-पद के लोभी इस प्रश्नमाला कों अपने कंठ में पहिरेंगे। ते भव्यात्मा कल्याण के वांच्छी, सुबुद्धि, युग भव में तथा भव–भव में शोभा पावेंगे। ऐसी जानि इस प्रश्नमाला कूं धारण

करहु। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रंथ मध्ये, अनेक ग्रंथानुसारेण, प्रश्नमाला कर्मविपाक वर्णनो नाम, गुणतीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ २९ ॥

आगे हिंसा विषैं पुण्य का प्रभाव बतावें हैं—

गाथा—पय वहणी थल पदमो, जल मथ घी धाण होय तुख खंडय ॥
रवि हिम ससि तप करई, तव हिंसा पुण्य देय भो आदा ॥ १२० ॥

अर्थ—पय वहणी कहिये, जल विषैं अगनि। थल पदमो कहिये, पृथ्वी में कमल। जल मथ घी कहिये, पानी के बिलोये घृत। घाण होय तुख खंडय कहिये, भुस के कूटे अन्न। रवि हिम कहिये, सूर्य्य के ऊगते शीत। ससि तप करई कहिये, चन्द्रमा तपति करै। तव हिंसा पुण्य देय कहिये, तो हिंसा पुण्य देय। भो आदा कहिये, हे आत्मा। भावार्थ—जल विषैं अगनि कबहूँ नहीं होय। और कबहूँ नहीं होय। तैसे ही जीव हिंसा विषैं पुण्य का फल कबहूँ नहीं होय। और कठोर भूमि विषैं कमल कदाचित् न होय। तैसे ही हिंसा में धर्म—फल नहीं। और जल बिलोए घृत कबहुं न होय। तैसे ही प्राणी घात में पुण्य नाहीं। और तुष के कूटे अन्न नहीं निकसै। तैसे ही जीव घात तैं पुण्य नाहीं होय। और सूरज के उदय होते शीत नहीं होय। तैसे ही जीव घात किये धर्म नाहीं। और चन्द्रमा के उदय होते, आताप नाहीं होय। तैसे ही हिंसा विषैं पुण्य कदाचित् नाहीं। ऐसे कहे जो ऊपर एते नहीं होने योग्य स्थान। तैसे ही जीव घात में हिंसा होय है, अरु धर्म कबहुं नहीं होय। सो हे भव्यात्मा, तूं भी परभव

सुधारवे के निमित्त, ऐसा श्रद्धान दृढ़ करि। कि जो जीव घात विषैं कोई प्रकार पुण्य नाहीं। ऐसा श्रद्धान तो कूं भव-भव विषैं सुखकारी होयगा। ऐसा जानि, अपने समान सर्व जीव कूं जानि, तिनकी दया भाव सहित रहना योग्य है। आगे फुनि हिंसा विषैं पुण्य का अभाव बतावैं हैं--

गाथा—अह मुह अमि सुत वंझय, गणका सुत जनक सिध अवतारो।
सठ सुचि सूम उदारऊ, तव जीव हिंसोय देय पुण आदा ॥ १२१ ॥

अर्थ—अह मुह अमि कहिये, सर्प के मुख में अमृत। सुत वंझय कहिये, वंध्या के सुत। गणका सुत जनक कहिये, वेश्या के पुत्र का पिता। सिध अवतारो कहिये, मोक्ष भये पीछे जीव का अवतार। सठ सुचि कहिये, मूर्ख के शौच। सूम उदारऊ कहिये, सूम का मन उदार। तव जीव हिंसोय देय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तव जीव हिंसा में पुण्य होय। भावार्थ—महा भयानीक काल रूप सर्प के मुख में अमृत होय, तो जीव हिंसा में पुण्य-फल होय। और बांझ के पुत्र होता नाहीं। सो बांझ के पुत्र होय, तो प्राणी वध में पुण्य होय। और वेश्या के पुत्र के पिता होता नाहीं, तैसे ही जंतु-बध में हिंसा होय, तहां धर्म नाहीं। और शुद्ध जीव कर्म नाश सिद्ध होय, तिस मोक्ष जीव का संसार में अवतार नाहीं। तैसे ही जीव हिंसा में पुण्य नाहीं। और मूर्ख के शौच नाहीं होय, तैसे ही हिंसा में पुण्य का फल नहीं होय। और सूम शरीर देय, परन्तु दान कूं एक दाम नहीं देय। सो या सूम का चित्त उदार होय, तौ हिंसा में पुण्य-

फल होय। ऐसे ऊपर कहे कारण, सो कबहूँ नहीं होय। तैसे ही धर्मात्मा तूं ऐसा जानि। जहां जीव घात होय, तहां पुण्य फल नहीं होय। तातैं ऐसा जानि, जीव घात तजि, दया सहित रहना योग्य है। आगे और भी हिंसा का निषेध बतावैं हैं—

गाथा——पच्छिम रवि सिल तरई, भू पलट वहण सीत तण धरऊ।
मेर चलय अंध देखय, तव हिंसा देय पुण आदा ॥ १२२ ॥

अर्थ—पच्छिम रवि कहिये, सूर्य पश्चिम दिशा से उदय होय। सिल तरई कहिये, शिला तैरे। भू पलटय कहिये, पृथ्वी उलट-पलट होय। वहण सीत तण धरई कहिये, अग्नि शीतल तन धरै। मेर चलय कहिये, मेरु चलै। अंध देखय कहिये, नेत्र रहित देखै। तव हिंसा फल देय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तौ हिंसा का फल पुण्य होय। भावार्थ—पश्चिम दिशा में सूर्य कबहुँ नाहीं ऊगे। तैसे ही हिंसा में धर्म का फल कबहुँ नहीं होय। और पाषाण की शिला जल विषैं तैरे, तो हिंसा में धर्म होय। और पृथ्वी पल्टै, तौ हिंसा में धर्म होय। सो पृथ्वी कबहुँ पलटती नाहीं, अनादि ध्रुव है। तैसे ही हिंसा में पुण्य फल नाहीं। और अग्नि शीत अंग धरै, तौ हिंसा में धर्म फल होय। और सुमेरु पर्वत अनादि अचल है, सो ये मेरु हालै तो हिंसा में धर्म फल होय। और जन्म के अंधे कों कछु नहीं दीखे। तैसे ही जीव घात में पुण्य का फल कबहुँ नहीं होय। ऐसे ये कहे नहीं योग्य स्थान, तैसे ही हिंसा विषैं धर्म कदाचित् नाहीं। ऐसा जानि हिंसा धर्म तजि, दया सहित धर्म का अंगीकार करना योग्य

है। आगे फुनि हिंसा निषेध—

गाथा—पंग चढ़य गिरि सिहरे, वधरो रंजाय राग सुह पाई।
कातर रण जय पावय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२३ ॥

अर्थ—पंग चढ़य गिरि सिहरे कहिये, पैर रहित पुरुष, पर्वत के शीश पर चढ़ै। वधरो रंजाय राग सुह पाई कहिये, बहरा राग के सुख कौं पावै। कातर रण जय पावय कहिये, कायर युद्ध में विजय पावै। तव हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मन्! तौ हिंसा में पुन्य फल होय। भावार्थ—पांव रहित पुरुष कौं, पर के सहाय बिना अल्प भी नहीं चल्या जाय। सो ऐसा पंगल पुरुष, उत्तंग पहाड़ के शिखर पर भागि के चढ़ै, तो जीव घात में पुण्य होय। और बहरा पुरुष कान तैं कछू सुनता नाहीं। सो बहरा पुरुष राग के सुन्दर शब्द सुनि राजी होय, तौ हिंसा में पुण्य होय। और जे कायर नर होंय, सो युद्ध तैं डरैं। सो कायर पुरुष बैरी की सैना भगाय, जीति पावै, तौ हिंसा विषैं धर्म का लाभ पावै। और ऊपर कहे जे कारण सो कदाचित् नहीं होंय। सो होंय तौ हिंसा में धर्म फल होय। तातैं हे धर्म फल के लोभी, सर्व जीव आप समान जानि, सब की रक्षा के निमित्त उपाय करना, सो भव-भव में सुखकारी है। आगे फुनि हिंसा निषेध—

गाथा—जम उर करुणा धारय, काको मुह सौच मित्य तण जीवो।
दुठ जण पर सुह इच्छय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२४ ॥

अर्थ—जम उर करुणा धारय कहिये, काल के हृदय करुणा होय। काको मुह सौच कहिये, काक का मुख पवित्र होय। मित्य तण जीवो कहिये, मृतक जोवै। दुठ जण पर सुह इच्छय कहिये, दुष्ट पुरुष पर के सुख कौं वांच्छै। तव हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तो हिंसा के करबे में पुण्य होय। भावार्थ—यम जो काल, सो जड़ दया रहित है। सो काल कौं दया आवै, संसारी जीव नहीं मारै, तो हिंसा में पुण्य फल होय। और काक का मुख तौ सदा अपवित्र ही है। सो कदाचित् काक का मुख शौच रूप होय, तो हिंसा में पुण्य फल होय। और आयु कर्म पूरण होय जे आत्मा पर्याय तज मरा, सो कबहुँ जीवता नाहीं। सो मृतक जीवै, तौ हिंसा में पुण्य होय। और जे दुष्टस्वभावी, पर दुख रंजन, पर कौं सुखी देख महा दुखी होंय। सो ऐसा क्रूर स्वभावी दुर्जन प्राणी, पर जीव कौं साता देख सुखी होय, तौ हिंसा में पुण्य होय। ऐसे ऊपर कहे कारण सो कबहु नहीं होंय, सो ये होंय तो जीव घात में धर्म होय। तातैं धर्म लोभी कूं धर्म के निमित्त, दया भाव करना योग्य है। आगे बहुरि हिंसा का निषेध करिये है—

गाथा—विस पय जीवय जीवो, णागो गमणाय सरल तण होई।
स्वाण पुच्छ सुध होवय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२५ ॥

अर्थ—विस पय जीवय जीवो कहिये, जहर खाय कैं जीव जीवै। णागो गयणाय सरल तण होई कहिये, सर्प सीधा होय चालै। स्वाण पुच्छ सुध होवय कहिये, कुत्ते की पूंछ सीधी

होय। तव हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मा ! तो हिंसा में पुण्य होय। भावार्थ--हलाहल जहर खाय कोई जीवता नाहीं। ऐसा विकट विष खाये जीवै, तौ हिंसा में धर्म-फल होय। और काल नाग, सहज ही वक्र चाल चालै। सो कबहुं सांप सूधा होय गमन करै, तौ हिंसा में शुभ फल होय। और श्वान की पूंछ का सहज स्वभाव ही वक्र है। सो कदाचित् श्वान की पूंछ सूधी होय, तौ हिंसा में धर्म होय। ऐसे ऊपर कहे नहीं होने योग्य पदार्थ हौंय, तौ हिंसा में धर्म होय। तातैं हिंसा तजि, दया का पथ समझने में अपनी रक्षा जाननी। आगे और भी ऐसा कहैं हैं जो जीव--घात में पुण्य नाहीं--

गाथा---रज पीलय णेह पावइ, रजनी रवि विहोंति णभ णपाये।
काय धरा णह खपई, तव हिंसा सुह देय णेमाए॥ १२६॥

अर्थ---रज पीलय णेह पावइ कहिये, रज के पेलैं तैं तेल होय। रजनी रवि कहिये, रात्रि में सूर्य्य होय। विहोंति णभ णपाए कहिये, बालिश्त तैं आकाश नपै। काय धरा णह खपई कहिये, काय के धारी मरैं नाहीं। तव हिंसा सुह देय णेमाए कहिये, तो निश्चय तैं हिंसा में पुण्य होय। भावार्थ---रज जो बालू-रेत ताकौं घाणी में पेलैं तैं तेल निकसै, तौ हिंसा में धर्म-फल होय। अरु रात्रि कौं सूर्य्य का उद्योत होय, तौ हिंसा में पुण्य होय। और अंगुल-बालिश्त करि आकाश नापना होय, तौ हिंसा में धर्म-फल होय। और शरीर-अवतार का धारी, सदीव शाश्वत रहै, तौ हिंसा में पुण्य होय। ऐसे ऊपर कहे जे नहीं होने

योग्य कार्य, सो ये होंय तौ हिंसा विषैं पुण्य होय। ऐसा जानि धर्म के इच्छुक धर्मी जीव हैं तिनकौं, दया-भाव का मार्ग जानना योग्य है। आगे हिंसा में धर्म नाहीं, ऐसा और भी बतावे हैं—

गाथा—खल पीलय सनेहो, सायर लंघाय पाल मज्जादो।
एक सुह तैं सुर अघ दय, तव हिंसा फल देय सुह आदा ॥ १२७ ॥

अर्थ—खल पीलय सनेहो कहिये, खली के पेलै तैल निकसै। सायर लंघाय पाल मज्जादो कहिये, समुद्र अपनी पार की मर्यादा लंघै। एक सुह तैं कहिये, शुभ कार्य किये नरक होय। सुर अघ दय कहिये, स्वर्ग स्थान पाप फल तैं होय। तव हिंसा फल देय सुह आदा कहिये, हे आत्मा तौ हिंसा का फल शुभ होय। भावार्थ—जैसे मूरख खली कौं पेल तेल काढ़या चाहे, सो कबहूँ नाहीं निकसै। जो खली पेले तेल निकसै, तौ हिंसा में पुण्य होय। और समुद्र अपनी मर्यादा कौ उलंघे, तौ हिंसा में धर्म का फल होय। और पाप के करनहारे कुगति जांय सो कदाचित् पाप करनहारे देव होंय, तौं हिंसा में पुण्य होय। और पुण्य के करनहारे स्वर्ग-मोक्ष जांय हैं। सो यदि धर्म किये नरक होय, तौ हिंसा में धर्म लाभ होय। ऐसे ऊपर कहे स्थान, ते नहीं होने योग्य हैं। तैसे ही हिंसा में शुभ नाहीं है। तातैं तूं अपना कल्याण चाहै है। तो समता भाव करि सुखी होयगा। आगे फेरि हिंसा में धर्म का अभाव बतावैं हैं—

गाथा—जड़ दव्वो जुय णाणऊ, चेदण दव्वोय होय विण णाणो।

कलहो कय जस होई, तव हिंसा पुण देय णेमाए ॥ १२८ ॥

अर्थ—जड़ दव्वो जुय णाणऊ कहिये, अचेतन द्रव्य ज्ञान सहित होय। चेदण दव्वोय होय विण णाणो कहिये, चेतन द्रव्य ज्ञान रहित होय। कलहो कय जस होई कहिये, कलह करते यश होय। तव हिंसा पुण देय णेमाए कहिये, तौ हिंसा पुण्य का फल देय। भावार्थ—जीव बिना, पांच द्रव्य हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश। ये पांच द्रव्य अनादि तैं जड़त्व भाव कौं लिये हैं। इनके गुण भी जड़ हैं, और पर्याय भी जड़ हैं। सो ये अजीव द्रव्यन में ज्ञान का अभाव है। सो इनमें ज्ञान होय, तौ हिंसा में धर्म—फल होय। और चेतन, गुण सहित देखने-जाननेहारा, दर्शन—ज्ञान का समूह, सो याका ज्ञान कर्म—योग तैं घटै, तौ अक्षर के अनंतवें भाग रहै, परन्तु ज्ञान का अभाव कबहूँ नहीं होय। अरु कदाचित् जीव ज्ञान रहित होय, तो हिंसा में धर्म फल होय,। तथा अपयश का कारण कलह है। सो कलह—युद्ध किये यश होय, तौ हिंसा के किये पुण्य का फल होय। ऐसे ऊपर कहे कार्य होंय, तो हिंसा में धर्म का फल होय। तातैं धर्म इच्छुक! धर्म के निमित्त, दया धर्म का अध्ययन करहु। और भी अत्र करुणा का स्वरूप कहैं हैं, और दया का फल कहिये हैं—

गाथा—दीरघ थिति भू जसयो, गद रह तण भोय इच्छ सहु होई ॥
सुर चक्की सुह सह लय, ये करुणा फल होय णेमाए ॥ १२९ ॥

अर्थ—दीरघ थिति कहिये, बड़ी आयु। भू जसयो कहिये, धरती पै यश। गद रह तण

कहिये, रोग रहित शरीर। भोय इच्छ सहु होई कहिये, मनवांच्छित भोग। सुर चक्की कहिये, देव चक्रवर्ती। सुह सह लय कहिये, इनके सुख सहज ही होंय। ये करुणा फल होय ऐमाए कहिये, ये दया का फल निश्चय से जानना। भावार्थ—इस जीव की भव–भव में रक्षा करनहारी, दया है। सो दया भाव जिनके सदीव रहै है, तिनकी आयु तो सागरों पर्यंत बड़ी हो है। और जे दया भाव रहित होय हैं, ते जीव अलपायु पाय मरण करैं हैं। और दया के फल तैं जगत में सहज ही यश होय है। और जो जीव पर–भव में पराया यश नहीं देख सक्या। तथा जिसने महा निर्दय भाव करि पराया यश हत्या है। ते जीव, दया रहित भावन के फल तैं, दया तैं प्रगट भया जो यश, सो ऐसा यश चाहैं, तौ लाखों दाम खर्चैं भी यश मिलै नाहीं। यश के निमित्त प्राण देय मरैं, तौ भी दया बिन यश नहीं मिलै। दीन होय बोलैं, सब तैं नम्रीभूत होय मस्तक नमावैं, तौ भी यश नहीं मिलै। काहे तैं, जो पर भव विषैं पराया मान राखा होय, प्राण राखे होंय, इत्यादिक मन–वचन–काय करि सर्व कौं साता करी होय, ते जीव सहज ही जगत में यश पावैं। तातैं यश है सो दया भाव का फल है। और निरोग शरीर पावना, आयु पर्यन्त सुखी रहना, सो दया भाव का फल है और मन वांच्छित सुख का मिलना, सो दया भाव का फल है। जो मन में कल्पना करी सो ही वस्तु देवादिक की नांईं तुरंत मिलै, सो दया भाव का फल है। और दया बिना ये जीव तृण जो घास, सो भी पेट भर नहीं भोगवै है। सदीव अन्न व तन करि बहुत दुखी होय, सो दया रहित भाव

का माहात्म्य है। और देवन के नाना प्रकार भोग, असंख्यात द्वीप-समुद्रन में गमन, नंदीश्वर, कुण्डलगिरि, रुचिकगिरि इन द्वीपन में भगवान के मन्दिर हैं तिनकी यात्रा का करना, ये शुभ फल उपावना। और असंख्यात देव-देवी आज्ञा मानैं, अनेक देवांगना के समूह तिनका आयु पर्यन्त सुख, सो दया भाव का फल है। और चक्री के चौदह रत्न, नव निधि, छियानवै हजार स्त्रियां, षट् खण्ड का राज्य इत्यादिक सुख सो भी दया भाव का फल है। और ऊपर कहे जे भले फल, दीर्घ आयु, जगत यश, निरोग तन, वांच्छित भोग, देव सुख, चक्री सुख ये सर्व दया भाव का फल जानना। आगे और भी दया भाव का फल कहिये हैं—

गाथा—सुर तरु चिन्ता रयणो, काम धेयोय पास पासाणऊ।
चित्ता लता सुसंगो, ये सहु किप्पाय भाव फल आदा ॥ १३० ॥

अर्थ—सुर तरु कहिये, कल्पवृक्ष। चिंता रयणो कहिये, चिन्तामणि रतन। काम धेयोय कहिये, कामधेनु। पास पासाणऊ कहिये, पारस पाषाण। चित्ता लता कहिये, चित्राबेलि। सुसंगो कहिये, सत्संग। ये सहु किप्पाय भाव फल आदा कहिये, हे आत्मा ये सब दया भाव का फल है। भावार्थ—दश प्रकार कल्पवृक्ष कर दिये जो उत्तम भोग, सो दया भाव का फल है। और मन-चिंते भोग सुख का देनेहारा चिन्तामणि रत्न का मिलना, सो कृपा भाव का फल है। और वांच्छित सुख की देनहारी कामधेनु गाय का मिलना, यह भी दया भाव का माहात्म्य है। और कुधातु कों सुवर्ण करनहारा जो पारस-पाषाण सम्पदा-सागर

ताका मिलना, सो भी दया भाव का फल है। और अल्प वस्तु को अटूट करनेहारी चित्रा-बेलि नामक बनस्पति ताका पावना, ये भी दया भाव का फल है। और पाप के उदय, निर्दयी-भावन के फल करि, अनन्तकाल कुसंग विषैं गमन होता आया। सो ताके सम्वन्ध तैं, त्रस-स्थावरन की अनेक पर्याय धरि दुख विषैं डूबा। सो अदया का फल है। जब जीव का संसार निकट होय, तब याकों सत्संग का मिलाप होय है। सो सत्संग का मिलना भी दया भाव का फल है। ऐसे ऊपर कहे सुर तरु, चिन्तामणि, कामधेनु, पारस, चित्राबेलि, सत्संग ये तीन जगत में उत्कृष्ट वस्तु हैं। सो दया भाव के फल तैं मिलैं हैं। ऐसा जानि विवेकी पुरुषन कों पर-जीवन की रक्षा रूप भाव राखना योग्य है। आगे और भी दया भाव का फल बतावैं हैं—

गाथा—सहु हित कय पज्जाओ, आदे सहु थाण सुंद तण होई।
इंद अहमिन्द णगंदउ, किप्पा भावोय होय फल येहो ॥ १३१ ॥

अर्थ—सहु हित कय पज्जाओ कहिये, सर्व कों हितकारी पर्याय। आदे सहु थाण कहिये, सर्व स्थान विषैं आदर। सुंद तण होई कहिये, सुंदर शरीर होय। इंद कहिये, इंद्र पद। अहमिन्द कहिये, अहमिन्द्र पद। णगंदउ कहिये, नागेन्द्र पद। किप्पा भावोय होय फल येहो कहिये, दया भाव का फल ऐसा होय है। भावार्थ—जिनका मुख देखतें ही सर्व जीवन कूं सुख उपजै, विश्वास उपजै, मोह उपजै, ऐसी सुंदर काया पावनी, सो दया भाव का फल है। दया-भाव बिना महा कुरूप, भयानीक, रौद्र आकार, सर्व कों अरति उपजावै ऐसा शरीर पावैं है।

और जिन जीवन का जगह-जगह आव-आदर होय, जिनकूं देख सर्व प्राणी प्रीति भाव करैं, ऐसा आदेय कर्म के उदयवारा सर्व कों वल्लभ होय। सो दया भाव का फल जानना। और जाका शरीर महा सुंदर, कामदेव के शरीर की शोभा कूं जीतै, देवन के मन कों मोह उपजावै, अद्भुत शोभाकारी शरीर, सो दया भाव का फल है। और ग्लानि उपजावनहारा, विकट, असुहावना, कुरूप इत्यादिक अशुभ कर्म के उदय का शरीर पावना, सो निर्दई भाव का फल है। और देवन का नाथ, असंख्याते देव-देवी जिसकी आज्ञा मानैं, आय-आय महा-भक्ति करि अपना शीश नमावैं, सर्व देव जाकी स्तुति करैं, ऐसा इन्द्र पद का पावना, सो भी दया भाव का फल है। तथा कल्पातीत जो देव हैं, जिनकी महिमा वचन-अगोचर है। जितना सुख सर्व कल्पवासी सोलहों स्वर्गों के इन्द्र-देवन का है, तिन तैं अधिक कल्पातीत जो अहिमिन्द्र तिनका है। यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि कल्पवासी देव-इन्द्रन तैं अहमिन्द्रन कैं सुख अधिक है। सो कल्पवासी देव-इंद्रन कैं तो अनेक देवांगना हैं। तिन सहित सुख भोगैं हैं। और अनेक देव आय-आय शीश नमावैं हैं। असंख्याते देवों के नाथ हैं। पंचेन्द्री सम्बन्धी सुख, मान पोषवै सम्बन्धी सुख, सो सर्व इन्द्रन कैं प्रत्यक्ष दीखैं हैं। परन्तु अहिमिन्द्रों के देवांगना नाहीं, कोऊ आज्ञाकारी सेवक-देव नाहीं। तौ इनकैं कल्पवासी इन्द्रन तैं अधिक सुख कैसे सम्भवै ? ताका समाधान—भो भव्य! तुम चित्त देय सुनो। सुख के दोय भेद हैं। एक तो संक्लेशता सहित सुख, एक निराकुलता

सहित सुख। सो संक्लेश सुख तैं, निराकुल सुख अधिक है। जैसे एक पुरुष अपनी रत्नों की पोट अपने शीश पै धरै, अपने घर कौं, राह में चल्या जाय है। अरु भले मोदक खावता जाय है। ताकरि सुखी है। और एक पुरुष अपने मन्दिर में तिष्ठता, शीतल जल पीवता, भला मोदक खाय के सुखी है। इन दोऊन में तूं विचार, जो विशेष सुखी कौन है? जाके शीश मोट है अरु मोदक खावता राह चलता जाय है, ताका सुख तो आकुलता सहित है। और शीश भार रहित, एक स्थान तिष्ठता मोदक खाय, सो सुख निराकुल है। सो कल्पवासी का सुख तो शीश गठियावारे का सा है। अरु अहमिन्द्रन का सुख, एक स्थान तिष्ठनेहारे समान है। ऐसा जानना। और सुनौं, जो व्रती पुरुष हैं, सो तो मंद कषायन करि सुखी हैं। और इन्द्र–चक्री ये सुखी हैं सो संक्लेश–सुखी हैं। ताही तैं देव, इन्द्र, चक्री आदि बड़े २ पदधारी, व्रती पुरुषन कौं पूजैं हैं, सुश्रूषा करैं हैं। अरु ऐसी याचना करैं हैं। जो हे गुरो! तुम्हारी भक्ति के फल तैं, हमारे भी आप कैसा निराकुल–स्वाधीन सुख होय। अरु हमारे शान्ति भाव प्रकटै। ऐसी प्रार्थना करैं हैं। सो यहां भी निराकुल सुख की महिमा आई। तैसे ही इन्द्र–देवन का सुख तो साकुल है। और कल्पातीतन का सुख निराकुल है, मन्द कषाय रूप है। तातैं कल्पातीतन तैं कल्पवासीन का सुख अधिक जानना। तथा जैसे एक पांवरा–खुजली के रोग वाला पुरुष, ताने एक टटरे का टूंक पाया। सो तिस टटरे के टूंक तैं अपना तन खुजाय, सुखी भया। सो

टटेरे में कहा सुख है? परन्तु याके तन में खुजली का रोग है। सो टटेरे तैं खुजाया, तब खाजि का दुख मिटने तैं कछु सुखी भया। और कोई पुरुष खाज रहित सुखी है। सो ये भी सुखी है। सो इन दोऊन में खुजली रोग बारे तैं, उस निरोगी कैं बड़ा सुख है। तातें हे भव्य! देवांगना के सुख की वांच्छा सो ही भया खुजली का रोग, सो जब देवांगना का निमित्त पावै, तब किञ्चित् सुखी होय है। सो ये खुजली वाले रोगी समानि है। जब कामरूपी खुजली चलै, तब देवाङ्गना रूप टटेरा तैं खुजाय सुखी होय। सो कल्पवासी देव-इन्द्रन का सुख, देवाङ्गना का जैसा जानना। अरु अहमिन्द्रन का सुख है सो खुजली रहित, निरोगी पुरुष जैसा है। इन कल्पातीतन कैं, काम रूप खुजली रोग नाहीं। तातैं ये परम सुखी हैं। कल्पवासीन कैं काम रोग है। अरु कल्पातीतन का रोग रहित सुख है। ऐसे तेरे प्रश्न का उत्तर जानना। सो ऐसा जो अहमिन्द्र पद है, सो उत्तम दया का फल है। और भवनवासी देवन का नाथ नागेन्द्र ताका पद, सो भी करुणा का फल है। तातैं हे भव्योत्तम! ये ऊपर कहे उत्कृष्ट पद, सो इन सर्व के सुख, सर्व दया भाव का फल है। ऐसा जानि विवेकी पुरुषन कौं सर्व हितकारिणी जो दया, ताकौं धारणा योग्य है। आगे और भी दया भाव की महिमा कहिये है—

गाथा—तण वीजय बहु दासऊ, भय रहियो सोक तीत चतुयायो।
तणांत लव चिर सुहियो, ए किप्पा फल होय सुह आदा ॥ १३२ ॥

अर्थ---तण वीजय कहिये, तन का वीर्य । बहु दासऊ कहिये, बहुत दास । भय रहियो कहिये, भय रहित । सोक तीत कहिये, शोक रहित । चतुयायो कहिये, चतुर । तणांत लव कहिये, तनके अन्त लूं । चिर सुहियो कहिये, बहुत काल तक सुखी । एकिप्पा फल होय सुह आदा कहिये, हे आत्मा ! ये दया भाव का फल है। भावार्थ--शरीर विषैं, बड़ा वीर्य होय । सो जैसे चक्री में षट्-खण्ड के मनुष्यन तें अधिक पराक्रम होय है । ऐसा बल पावना । तथा तीन खण्ड के मनुष्यन में जेता बल होय, तेता पराक्रम एक वासुदेव में होय, जैसा जोर पावना । तथा कोड़ि योद्धान का बल एक पुरुष में होय, ऐसा कोटी भट का बल पावना । लाख जोधान कों एकला जीतै, सो लख भट है । ऐसा बल पावना । सहस योद्धा जीतै, सौ सहस्र भट का बल पावना । शत भट कौं जीतै, सो शत भट होना । ऐसे कहे जो पराक्रम, सो सब दया का फल है । जिन जीवन नैं हिंसा करि पर-जीव घाते हैं । ते जीव भवांतर में एकेन्द्रिय-विकलत्रय में हीन--शक्ति धारी उपजैं हैं । और कदाचित् तिर्यच-पंचेन्द्रिय उपजैं, तथा मनुष्य उपजैं तो दीन, रोगी, शक्ति रहित, दरिद्री, हीन भागी होंय । सो ये भी पर जीवन कौं दीन जानि, तिनकी घात का फल जानना । और अनेक सेवक, बड़े-बड़े सामन्त, महा बल के धारी योधा, पराक्रम धारी पै आय--आय हस्त जोड़ नमस्कार करैं । ऐसे बली, मानी राजा हजारौं जाकी सेवा करैं, आज्ञा याचैं, विनय करैं, सो ऐसा पद पावना भी दया भाव

का फल है। और पर जीवन की सेवा आय-आय करना, हस्त जोड़ आज्ञा माननी, सो हिंसा भाव का फल है। और जिननैं परभव में तीर, गोली, गिलोल, लाठी, मूकी, शस्त्रादिक तैं पर जीवन कूं भय उपजाया होय। ताके पाप फल तैं भवान्तर में आय मनुष्य-पशु में उपजै, तहां भयानीक रहै। सदीव ताका हृदय, भय तैं कम्पायमान होय। सो भय के सात भेद हैं। इस भव का भय, पर भव का भय, मरण का भय, रोग का भय, अनरक्षा भय, गुप्त भय और अकस्मात् भय। ये नाम हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप बताइये हैं। तहां इस पर्याय में मोकों कछु दुःख नहीं होय। ऐसा विचार राखना, सो इस भव का भय है।१। और पर भव में मोकौं तिर्यच गति के दुःख नहीं होंय, नरक के दुख नहीं होंय तो भला है। ऐसे विचार का नाम, परलोक का भय है।२। मरण समय महा वेदना होती सुनिये है। सो मरण समय मोकों वेदना नहीं होय, तो भला है। ऐसे विचार का नाम, मरण भय है।३। और जहां औरन की अनेक रोग-वेदना देख, भयवन्त होना। जो ये रोग के बड़े दुःख हैं, मोकों कोई बड़ा रोग नहीं होय, तो भला है। ऐसे भय रूप रहना, सो रोग का भय है।४। और जहां यह कहना कि जो मेरे कोई सहायक नाहीं। सहाय विना सुख कैसे होय ? मैं अशक्त हों। ऐसे भय रूप होय विचार करना, सो अनरक्षा भय है।५। और यहां मोकों तथा वहां मोकों, कोई भय नहीं होय। मैं इस घर में बैठा हों, सो घर नहीं गिर पड़ै। तथा इस घर में कोई सर्पादि दुष्ट जीव मोकों खाय नहीं। तथा कोई बैरी मोकों मारै नहीं।

इत्यादिक भय रूप भाव रहना, सो गुप्त भय है। ६। और मोकों कोई अचानक—अकस्मात् भय नहीं होय, तो भला है। ऐसे भावन में भय राखना, सो अकस्मात् भय है।७। ऐसे कहे जे सप्त भय, सो जीवन कूं दुख उपजावैं हैं। सो ऐसे भय का होना, सो निर्दय भावन तैं पर कौं भय उपजाया, ता पाप का फल है। और इन ही सप्त भय तैं रहित, निर्भय भाव, निशंक होय रहना, सो दया भाव का फल है। और जिननैं पर भव में मन, वचन, काय करि पर-जीवन कौं शोक कस्या होय, तिस पाप के फल तैं भवान्तर में सदीव शोक रूप रहैं। और सदीव शोक रहित, सदा सुखी मङ्गलाचार रूप रहना, सो दया भाव का फल है। और जानैं पर कौं बुद्धि सीखवे में, ज्ञानाभ्यास में, घात करी होय। द्वेष भाव तैं पराई बुद्धि, घात करी होय। सो बुद्धि रहित मूर्ख उपजै। और अनेक बुद्धि का प्रकाश पावना, अनेक कला पावनी, धर्म—कर्म सम्बन्धी अनेक चतुराई का पावना, इत्यादिक गुण होना, सो पर—जीवन की दया का फल है। और कोई जीव माता के गर्भ में आया, सो नव मास तो उदर में दुखी भया। फेरि जन्म धस्या। सो जन्म तैं ही माता—पिता का मरण भया। तब असहाय होय, महा दुख तैं आयु के वशाय जीय, तरुण भया। सो भी ऐसे ही अन्न रहित, पट रहित, धन रहित, मान रहित इत्यादिक महा दुख तैं पर्याय पूरी करि, पर भव गया। सो ये निर्दयी भावन का फल है। और जब तैं माता के गर्भ में आये, तब ही तैं सदीव घर में पूरण मंगलाचार होना। और जन्म भया तब तैं ही, अनेक

दान, पूजा, गीत होते भये। अनेक सुख पूर्वक तरुण अवस्था कौं प्राप्त होय, महा सम्पदा के धनी हुए, सो दया भाव का फल है। सो ऐसा जानि अपने सुख कौं, पर जीवन की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी दया भाव की महिमा बतावैं हैं—

गाथा—झहियो आरय झांणउ, तणांगोपांगाय सहु णीको।
सउ बन्धव एोह करयो, कोमल चित्तोय होय किप्पाए॥ १३३॥

अर्थ—झहियो आरय झांणउ कहिये, आर्त्तध्यान करि रहित होय। तणांगोपांगाय सहु णीको कहिये, तन के अंगोपांग सकल शुद्ध होंय। सउ बन्धव एोह करयो कहिये, सकल बांधवन विषैं प्रीति होय। कोमल चित्तोय कहिये, कोमल चित्त का होना। होय किप्पाए कहिये, ये सब दया भाव तैं होय। भावार्थ—जीव कूं नहीं सुहावती जो वस्तु, तिनके मिलाप कर भई जो आरति, तथा भली वस्तु के जाने की आरति, खोटी वस्तु के मिलाप की आरति, रोग होने की तथा भय के मेटने की आरति, तथा आगे मैं ऐसा करूंगा इत्यादिक भावन के विचार कर अपने उर में खेद का करना, सो निर्दय भाव का फल है। और इन च्यारि भेद आर्त्त-भाव रहित निराकुल सुख रूप भाव रहना, यह दया का फल है। और जिननैं अंगोपांग सहित सुघड़ शरीर पाया होय, सो दया का फल है। तिन अंगोपांग के नाम हस्त दोय, पांव दोय, छाती, पीठ, मस्तक और नितम्ब ये अष्ट अङ्ग हैं। सो इनका शुभ—शास्त्रों प्रमाण आकार पावना, सो करुणा भाव का फल है। और केई नेत्र रहित, केई जिह्वा रहित, केई श्रोत्र

रहित इत्यादिक उपांग रहित होना। तथा पांव रहित, हाथ रहित होना। अंगुली, नासि-कादि अंगोपांग करि हीन होना। महा विकट शरीर का आकार, भयानीक पांव, कुरूप होना, महा कुघाट शरीर पावना, ये सब निर्दय परणाम का फल है। और सर्व कुटुम्ब माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री इत्यादिक सर्व बांधव सुखकारी मिलना, सो दया भाव का फल है। पुत्र भला, ताकूं पिता खोटा। भला पिता कूं, पुत्र खोटा। भली माता के पुत्र-पुत्री दोऊ खोटे। पुत्र-पुत्री कों माता खोटी। परस्पर भाई खोटे। भली स्त्री कूं भर्तार खोटा। भले भर्तार कूं, स्त्री खोटी। इत्यादिक परस्पर कुटुम्ब विषैं विरोध भाव। केई महा क्रोधी, केई मानी, केई दगाबाज, केई लोभी, केई कुव्यसनी, केई चोर, केई ज्वारी, केई पाखंडी और केई परस्पर बांधव द्वेष सहित विरोधी मिलैं, सो हिंसा भाव किये, तिन का फल है। और जिन जीवन के दीरघ पुन्य का फल उदय होय, सो कोमल चित्त पावैं। ताकैं कोई तैं द्वेष भाव नाहीं। कोई कूं दुख नहीं वांच्छैं। सर्व का हित वांच्छनहारा ऐसा कोमल चित्त पावना, सो दया भाव का फल है। और जाकौं पर जीव बहुत दुखी देख, दया नहीं उपजे। ऐसा कठोर चित्त पावना, सो निर्दय भाव का फल है। ऐसे ऊपर कहे शुभ लक्षण, आरति रहित शुभ भाव, शुद्ध अंगोपांग, कुटुम्ब मोही, कोमल चित्त ये सब शुद्ध सामग्री पावना, सो दया-भाव का फल है। आगे करुणा भाव की महिमा और भी कहिये है—

गाथा—कम्म हणी शिव कएणी, तणी भव णीर वोर पड कायो।

जणणी इव जीय रखय, किप्पा इव जोय होय शिव आदा ॥ १३४ ॥

अर्थ—कम्म हणी कहिये, कर्म नाश करनी । शिव कएणी कहिये, मोक्ष कारणी । तणी भव णीर कहिये, संसार-जल कों जहाज । वीर पड कायो कहिये, पट् काय कों भाई सम । जणणी इव जीय रखय कहिये, माता समान जीव की रक्षा करनहारी । किप्पा इव जोय होय शिव आदा कहिये, दयाभाव कों ऐसा जानै तो यह आत्मा मोक्ष होय । भावार्थ—धर्म के अनेक अंग हैं । तप, जप, संयम, व्रत, ध्यान, नग्न रहना, बड़े—बड़े तप करना । पक्ष, मास, वर्ष के अनशन करना। महाव्रत, समिति, गुप्ति पालना । इन्द्रियन का जीतना । भूख-प्यास सहना। पञ्चाग्नि तपना । शीश पै केशन का बधावना । चर्मादिक तैं शरीर ढाँकना । वस्त्र का त्याग करना । ऊर्ध्व पांव, अधो शीश भूलना । भूमि विषैं गड़ि मरना । जीवत ही अग्नि में जरना। पर्वत पात करना । जल प्रवाह लेना । कंद, मूल, वनस्पति खावना । अन्न तज, दूध-मठा पीवना । इत्यादिक अनेक कष्ट मारग हैं । सो यह जीव, धर्म के निमित्त अनेक कष्ट खाय है । सो ये कहे जो कष्ट, सो दया भाव विना मोक्ष मारग नहीं करैं । सर्व वृथा ही जांय हैं । तातैं जेते धर्म अंग हैं, तिनमें यह जीव—दया सर्व का मूल है । कैसी है यह दया, सर्व कर्मन की काटनहारी है । दया भाव विना, निर्दयी जीवों के कर्म कटै नाहीं । फेरि यह दया कैसी है, या बिना सिद्ध पद नहीं होय । कैसा है सिद्ध पद, जन्म-मरण रहित है। निराकार, निरंजन-कर्म अंजन रहित है। फेरि कैसा है मोक्ष पद; देव, इन्द्र, चक्री, धरणेन्द्रादि महान

पुरुषों करि पूजवे योग्य है। सो ऐसे सिद्ध पद कों यह दया भाव ही देय है। दया रहित प्राणीन कों ऐसा सिद्ध पद होता नाहीं। बहुरि कैसी है दया, संसार-समुद्र के दुख–जल, ताहि पारि करवै कौं, जहाज समान है। दया नाव बिना, संसार–सागर तिख्या नहीं जाय है। हिंसा-धर्म है सो पाहन–जहाज समानि है। सो ये आप भी डूबै है और पाहन-नाव का आश्रय लेनेहारा भी डूबै है। तातैं हिंसा तजि, दया भाव राखना भला है। बहुरि ये दया भावना कैसी है। षट् कायक जीवन की रक्षा करवे कौं भाई समान है। कैसे हैं षट् कायक, सो कहिये हैं। पृथ्वी कायिक तौ, मिट्टी–पाषाणादिक के जीव हैं। अप-कायिक, जल के जीव हैं। तेज कायिक, अग्नि के जीव हैं। वायु कायिक, पवन के जीव हैं। बनस्पति कायिक, हरी–पीली बेलि, घास, वृक्ष। इन आदि अनेक तन के धारी पञ्च स्थावर हैं। और त्रस जो बेइन्द्रिय–इल्ली (लट), जोंक, नारुवा, कैंचुवा आदि बेइन्द्रिय हैं। तेइन्द्रिय–चींटी, चींटा, खटमल, कुंथुवा, इन आदि अनेक तन के धारी तेइन्द्रिय हैं। और चौइन्द्रिय मैं मक्खी, मच्छर, भ्रमर, टिड्डी, इन आदि चउ इन्द्रिय हैं। पंचेन्द्रिय में देव, मनुष्य तिर्यंच, नारक ये सर्व त्रस हैं। सो ऐसे कहे जो त्रस–स्थावर षट् कायिक जीव, सो इनकी रक्षा करवै कौं दया भाव, भाई समानि है। और इन षट् कायिक जीवन की रक्षा करवे कौं दया, माता समानि है। जैसे माता, पुत्र की रक्षा करै है। ऐसे ही दया, सब जीवों की रक्षा करै है। तातैं हे भव्यात्मा, ये दया सर्व गुण भण्डार जानि, याका साधन करि। याके

उत्कृष्ट सेवन को जानैं, तो कूं मोक्ष होयगी। यहां प्रश्न—जो दया के उत्कृष्ट जानैं ही मोक्ष कैसे होय ? दया पालैगा तो मोक्ष होयगी। ताका समाधान—जो हे भव्य, जो तैंने कही सो सत्य है। परन्तु जाकौं उत्कृष्ट जानैं, तो ताका सेवन भी करै। तातैं प्रथम पक्का श्रद्धान करावना, कि दया तैं मोक्ष होय है। जैसे लौकिक में भी ऐसी प्रवृत्ति देखिये है। जो जाकौं बड़ा मानैं, तो ताके वचन की भी प्रतीति करै है। जो फलाना बड़ा आदमी है, उदार है, ताकी सेवा किये अनेक जीव धनवान् होय सुखी भये। सो मोकौं भी याकी सेवा मिलै, तौ मोकौं भी धन मिलै। मैं भी सुखी होऊं। ऐसे पुरुष की सेवा बिना, चाकरी बिना, दरिद्रता जाती नाहीं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान होय है। तब पीछे यह धन का इच्छुक, सुख के निमित्त, उस ऊंच पुरुष की सेवा करवे कौं, वाके पास जाय, मान तजि, नमस्कार करि, बारम्बार शीश नमावै, विनय करै है। ताकी आज्ञा प्रमाण करै। निश-दिन सेवा विषैं सावधान रहै। अनेक भूख—प्यासादिक कष्ट सह करि भी रहै। कष्ट सहै, परन्तु उसकी आज्ञा भंग नहीं करै। जब वह बड़ा पुरुष, याकी सेवा बहुत प्रीति सहित जानैं, तब वह उत्कृष्ट पुरुष याकौं धन देय सुखी करै है। और कदाचित् सेवा करनेहारे कौं बड़े पुरुष का उत्कृष्टपना भासै ही नाहीं, बड़ा ही नहीं जानै, तौ सेवा कैसे करै ? अरु सेवा नहीं करै, तौ याका दुख—दरिद्र कैसे मिटै ? तातैं प्रथम ताके बड़प्पन कौं जानै, तौ पीछे श्रद्धान होय। जो ये बड़ा पुरुष है, याकी सेवा किये सुखी होऊंगा, तब सेवा करै। ऐसी प्रतीति लौकिक में प्रत्यक्ष देखिये है।

सो पहिले जानपना होय। पीछे श्रद्धान होय। ता पीछे ताकी सेवा करी जाय। तैसे ही
दया-भाव की उत्कृष्टता पहिले जानै, तौ पीछे ताका दृढ़ श्रद्धान करै। पीछे दया कौं
उत्कृष्ट जानि, ताकी रक्षा करै-सेवा करै। दया धर्म की पूजा करै-विनय करै। जब याके
ऐसा सांचा दृढ़ श्रद्धान प्रगटैगा। तब इस निकट संसारी भव्य के ऐसे परणाम होंयगे, जो
सुख का समूह तौ मोक्ष स्थान है। अरु मोक्ष है, सो दया-भाव तैं होय है। सो मैं महा
गृहारम्भ विषैं पड़या हों। तहां पर-जीवन की रक्षा होती नाहीं। मोकों मोक्ष के सुख
कैसे होंय? तातैं सर्व प्रकार दया-मारग सद्गुरु जानैं हैं। वह गुरु दया का भण्डार वाजैं हैं।
तातैं मैं गुरु के पास जाय, विनती करौं। तौ दया के समूह मोपै कृपा करके, मेरा मनोरथ
पूरा करैंगे। ऐसा विचार करि, ये भव्यात्मा, मोक्षाभिलाषी, श्री गुरु पै जाय, नमस्कार करि,
तीन प्रदक्षिणा देय, महा विनय सहित हस्त जोड़ खड़ा होय, अपने अन्तरंग का अभिप्राय
कहता भया। हे नाथ! हे प्रभु! हे दीन दयालु! मैंने सांसारिक सुख बहुत भोगे। परन्तु
हे नाथ! मेरी वांच्छा पूर्ण नहीं भई। जैसे कोई अन्तरंग ज्वर का रोगी, सदीव क्षीण तन होय।
सो तन पुष्ट करवे की बड़ी इच्छा जाकैं, सो तन स्थूल करवे कौं अनेक पुष्ट-गरिष्ट भोजन
करै। परन्तु पुष्ट होता नाहीं, दिन-प्रति क्षीण होता जाय है। याकी इच्छा पूरती नाहीं।
तातैं दुख ही बधै है। तैसे ही हे नाथ! मैंने सुखी होयवे कूं अनेक भोग-सामग्री पाय-पाय
भोगी। परन्तु सम्पूर्ण सुखी नहीं भया। सो मेरे सर्व सुखी होयवे की इच्छा बनी रहै है।

मेरैं इच्छा नाम रोग का महा दुख, मिटता नाहीं। तातैं भो जगत गुरु ! जैसे मोकों सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति होय, सो ही उपदेश करो। जाके धारण किये, मैं सुखी होऊं। अब मोकों यह इन्द्रिय जनित सुख है सो महा भय उपजावै है, प्रिय नाहीं। तातें अब आज्ञा करो, सो ही करूं। तब योगीश्वर ने जानी, जो ये जीव मोक्ष सुख कौं बड़ा-सर्वोत्कृष्ट जानै है, ताही के योग करि याके दृढ़ श्रद्धान प्रगट्या है। ऐसा विचार, आचार्य दया भाव करि कहते भये। भो भव्य ! तैंने भली विचारी। यह सांसारिक भोग, अज्ञानी जीवन कौं अपने सुख की आभासा सी दिखाय, मोह उपजावैं हैं। बाकी ये सर्व—इन्द्रिय भोग, रोग करि पूरित हैं। गुण रहित हैं। जैसे शरीर बाह्य में मोही जीवन कौं सुख की आभास सी बताय, मोहित करै है। बाकी सुख रहित है। सप्त धातु मई, श्रोणित, पक्क रुधिर, अस्थि, रोम, तिन—करि स्थान—स्थान पूरित है। ऊपर चरम तैं लिपटा है। विनाशीक है। इत्यादिक अनेक अवगुण करि भरा है। तातें हे भव्य ! ऐसा विचार, जो ये शरीर विनश्वर है। सो याके आसरे जो इन्द्रिय जनित सुख, सो ये कैसे स्थिरीभूत रहेंगे ? और हे भव्य, देख। शरीर तो ऐसा है, अरु तूं इस शरीर मे बैठा है। बहुत काल का, या तन के मोह करि, इसमें बंध्या है। तातें, तूं विषयन तैं उदासीन भया है। सो हे भव्यात्मा, ऐसा ही तूं इस शरीर तैं भी उदास होऊ। ज्यों तेरी अभिलाषा पूर्ण होय। क्योंकि ये शरीर विनाशीक है। तातैं अब जेते याकी स्थिति है तेते तूं यातैं दीक्षा अङ्गीकार कर, उत्कृष्ट दया धर्म पाल। और मोक्ष

जा। क्योंकि जो त्रस–स्थावर की सर्व प्रकार दया, इस गृहस्थावस्था में तौ पलै नाहीं। काहे तें, जो इस परिग्रह के संयोग तैं उत्कृष्ट दया पलती नाहीं। लंगोट मात्र परिग्रह होय, तौ भी सम्पूर्ण दया नहीं बनै, तो इस बहुत परिग्रह में कैसे पलै? तातें हे भव्यात्मा, सर्व प्रकार त्रस–स्थावर जीवन की दया, महाव्रत भये पले। तातें अब तूं भले प्रकार महाव्रत अङ्गीकार कर। समता भाव धारि, शुभ भाव धारि। त्रस–स्थावर जीवन की रक्षा के निमित्त सर्व जीवन तैं क्षमा भाव करि कैं, सर्व कूं अभय दान देय। तब तूं सर्व दया का धारी भया। जातैं अब तेरे नूतन कर्म का बन्ध होयगा नाहीं। और आगे तैं ने अज्ञानावस्था में इन्द्रिय और शरीर के पोषवे कूं हिंसा करि कर्म कों बाँधे थे, सो याही शरीर तैं नाना प्रकार तप करकै, पिछले कर्मन का नाश करि। सर्व कर्म का नाश भये, तूं मोक्ष–सुख पावैगा। सो वह मोक्ष-सुख अविनाशी है, अखण्ड है, अनंत है। ये सुख भये पीछे जाता नाहीं। हे भव्य, यहां तेरी अभिलाषा पूरी होयगी। ऐसे आचार्य ने कह्या। तब शिष्य, गुरु की आज्ञा सुनि, महा विनय तैं उल्लास करि, ऐसा विचारता भया। जो आज का दिन धन्य है। आजि मोकों गुरु ने ऐसा इलाज बताया, जा करि मेरे पूरव किये पाप का नाश होयगा। और अनन्त सुख का स्थान, सर्व कर्म रहित निरंजन पद, केवलज्ञान सहित सिद्ध पद की प्राप्ति होयगी। सो अब तौ श्री गुरु के प्रसाद करि, मैं मोक्ष को पाऊंगा। सो ये उप-कार गुरुन का है। ये गुरु वांच्छित सुख देने कूं कल्पवृक्ष समान हैं। परन्तु कल्पवृक्ष तो एक

स्थान ही स्थिरीभूत रहै। यापै कोई चल करि आवै, तौ फल पावै। घर बैठे देने नाहीं जाय है। और तामें भी यह भोजन-भूषणादि इन्द्रिय जनित सुख देय, सो भी शाश्वत नाहीं। किञ्चित् काल सुखसा दिखाय विनश जांय। और श्री गुरु कल्पवृक्ष हैं। सो भव्य जीवन कूं घर बैठे ही वांच्छित सुख देवे कूं, आप देश विहार करि, सब की आशा पूरैं हैं। तातैं श्री गुरु धन्य हैं। जिनकी क्रिया करि संसारी जीव मोक्ष पावैं। ऐसे नाना प्रकार गुरु की महिमा करि, पीछे शिष्य गुरु के बताये नाना प्रकार तप तिनकौं करि, सर्व कर्म नाश के, मोक्ष—रानी का भर्त्तार होय है। तातैं प्रथम जानना होय, पीछे जानी वस्तु का पक्का श्रद्धान होय। सो श्रद्धान होय, तो कष्ट पाय कें भी अपने भले का कार्य करै ही करै। ऐसे तेरे प्रश्न का समाधान जानना। तातैं हे भव्य, पहिले तो भली-बुरी वस्तु का जानपना होय। भले प्रकार जाने पीछे, ताका दृढ़ श्रद्धान होय और भली-बुरी का निरधार करै है। और कोई बाल-बुद्धि पदार्थ कौं जानैं। परन्तु तामें ताका ग्रहण-त्याग नहीं करि जानै। ऐसे मिथ्यादृष्टी, मोहित, भोरे जीव, संसार में बहुत हैं। इनके ज्ञान के जानपने का, इनकौं कछु नफा नाहीं। इन मिथ्याज्ञानीन का जानपना, निज-पर जीवन के ठगवे कौं प्रगट होय हैं। और सम्यक्त्व सहित जानपना है सो तामें पहिले श्रद्धान करि, पीछे तिनका त्याग-ग्रहण होय है। सो जो अपने भले योग्य, हितकारी, परभव में सुखकारी होय सो ताका तो ग्रहण करै। और जो पदार्थ आपकौं इस भव-परभव में दुखकारी होंय, पाप बंध करता होंय, परंपराय जातैं

दुख होता जानैं, तिन पदार्थन का त्याग करै। ऐसा त्याग-ग्रहण करि सम्यक्दृष्टी जीव नैं ऐसा विचास्या। जा सर्व धर्म-अंगन में एक दया भाव है, सो मुख्य धर्म है। काहे तें जो तप, संयम, दान, पूजादि हैं सो तो धर्म के अंग हैं। और जीव-दया है, सो ये मूल धर्म है। इस जीव दया के पालवे के निमित्त, धर्म है। सो हिंसा के कारण राज्य, गृहारम्भ छाँड़ि अपने तन सम्बन्धी भोगन तें ममत्व भाव छोड़ कें, पीछे मोह तजि, नग्न काय होय, सर्व पट्-कायिक जीवन के सुख देवे कौं, आप यती का पद धास्या। तहां सर्व प्रकार जीवन की रक्षा करि, जगत्पूज्य सिद्ध पद ताकौं पाय, मोक्ष स्थान विषैं, अखण्ड सुखी होता भया। तातैं यह बात सिद्ध भई, कि जो दया ही धर्म है। दया विना कोई धर्म कहै, सो वृथा है। और लौकिक में भी बाल—गोपाल दया ही कौं धर्म कहे हैं। तथा और देखो, इस दया की पट् मत विषैं प्रसिद्धि है। व सर्व जीव यश गावैं हैं। देखो जो अज्ञान-रंक भूखा होय, सो भी ऐसा कहै है। कि जो हम भूखे हैं सो कोई दया धर्म का धारी होय, सो हमारी दया कर हमारा दुख मैटो। सो देखो, रंक भी ऐसा जानैं हैं। और दया कौं ही धर्म कहैं हैं। तौ जे विवेकी हैं सो तौ दया में धर्म कहैं ही। तातैं ऐसा जानना, जो ये दया सो ही धर्म है। तातैं जगह—जगह जिनेश्वर देव ने भी ऐसा ही कह्या है। कि दया धर्म है। सो अब ऐसा विचार कैं, धर्म एक दया ही का निश्चय करना। अब ऐते भी कोई प्राणी, जीव घात में ही धर्म मानैं, तो याका चित्त ही महा कठोर है। याका परभव बिगड़ना है व दुखी होना है। याकौं

परभव में दुखदायक पर्याय उपजैगी। दीन, दरिद्री, अन्धा, असहाय, हीन होना है। तथा नारकी व पशु होना है। इन स्थान में महा दुखी होयगा। इसका किया ये ही भोगवेगा। इसके श्रद्धान की यही जाने। परन्तु हमने तौ ऐसा ठीक किया, कि जो धर्म एक दया-भाव है। तातें जिनकौं परम सुख की इच्छा होय। सो धर्मात्मा, सर्व जीवन तैं क्षमा भाव करि, षट् काय जीवन कौं अभय दान देश्रो। बहुत कहवे करि कहा। ऐसा अवसर फिर मिलना कठिन है। इति श्री सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हिंसा निषेध, दया का माहात्म वर्णनो नाम, तीसवां पर्व सम्पूर्णम्।

आगे राज लक्षणों का स्वरूप कहिये है। जाकरि प्रजा सुखी होय, राजा का तेज-प्रताप बधै, लक्ष्मी बधै, यश होय, सुखी रहै, पर भव सुधरै। ऐसे गुण श्री आदि पुराण जी अनुसार कहिये है—

गाथा—षट् गुण चव विद्याए, पण बल अणि होय सुभग गुण सेसा।
सउ णिप जस लछि पावइ, फुण तव लेय होय सिव णाहो ॥ १३५ ॥

अर्थ—षट् गुण चव विद्याए कहिये, छह गुण अरु च्यारि विद्या। पण बल अणि होय सुभग गुण सेसा कहिये, पञ्च बल और अनेक गुण होंय। सउ णिप जस लछि पावइ कहिये, सो राजा यश-सम्पदा पावै। फुण तव लेय होय सिव णाहो कहिये, फिर तप लेय मोक्ष लक्ष्मी का भरतार होय। भावार्थ—ऐसे षट् गुण, च्यारि विद्या, अरु पंच-बल ये राजान के गुण हैं। सो जिनमें ये गुण होंय, सो भला प्रजापति है। सो ही प्रथम षट् गुण कहिये हैं। प्रथम नाम-संधि, विग्रह, यान, आसन, संस्थान, और आश्रय। ये षट् भेद हैं। अब इनका विशेष कहिये

है। तहां कोई आप तैं अधिक बलवान राजा, बड़ी फौज का धारी होय। तथा आगे कहेंगे राजाओं के पांच गुण, सो आप तैं पर-राजा के पास बहुत होंय। आप तैं पंच बल भी तिस राजा के पास बलवान् होंय। जातैं युद्ध किये जीतिये नाहीं। ऐसा बलवान बैरी होय। तौ ताकौं ग्राम, देश, धरती देय राजी कीजिये। हस्ती-घोटकादि दीजिये। अपने घर का उत्तम रतन-धन दीजिये। ताकी विनय कीजिये। ताकी सेवा-चाकरी कीजिये। जैसे बनै तैसे, प्रबल बैरी कूं राजी कीजिये। तासों स्नेह होय, सो ही कीजिये। ताका नाम संधि नामा गुण है। सो जो विवेकी राजा-मंत्री, भली बुद्धि कौं धरैं हैं। सो इस संधि गुण कौं अवसर पाय प्रगट करि, अपना राज्य राख, सुखी होंय हैं। और ये संधि गुण जामें नहीं होय, तौ अपने तैं विशेष जोरावर राजा तैं युद्ध करि, रावण की नाँई मरण पावै। कुल का, तन का, धन का क्षय होय। राज्य जाय, दुखी होय। जातैं विवेकी राजा हैं ते कोई ऐसे ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, जान के इस संधि गुण के बल करि, बैरी कौं उपशान्त करैं हैं। आप तैं जोरावर राजा तैं शीश नमावते, उसकी सेवा करते, अपना मान-खंड नहीं मानैं। बलवान्-सेवा, अपनी रक्षा का कारण जानि, संधि करैं हैं। ये विवेकी राजा का धर्म है। इति प्रथम संधि गुण॥ १॥ आगे विग्रह गुण कहिये है। तहां और कोई राजा प्रबल-बैरी, धीठ-बुद्धि होय। धन देते, देश देते, चाकरी कबूल करते, हस्ती-घोटकादि देते, इत्यादिक विनय करते जो वैरी उपशान्त नहीं होय, तो पीछे युद्ध करै। युद्ध में शंका नाहीं करे। निःशंक होय

वैरी तैं युद्ध करै। अपना पुरुषार्थ-पराक्रम प्रगट करै। सो विग्रह नाम गुण है॥२॥ आगे यान गुण है सो कहिये है। जे महान् वंश के उपजे राजकुमार, तिनकों यान गुण में प्रवीणपना चाहिये। सो ही बताईये हैं। हस्ती की असवारी, गज का जीतना, गज क्रीड़ादि में गज को चलावना, अपने वश हस्ती करना। इन आदि गज-असवारी में सावधान रहना। और घोटक चढ़ना, दौड़ावना, दुष्ट अश्व को वशीभूत करना इत्यादिक घोड़े की असवारी में सावधान होय। तथा रथ के चलावे में सावधान होय। रोज को असवारी जानैं, सिंह की असवारी जानैं। करहा सांड की असवारी करना जानैं। महिष की असवारी, वृषभ की असवारी, गैंडा की असवारी, इत्यादिक असवारिन में प्रवीणता, सो यान गुण है। सो ये गुण, राज–पुत्रन में अवश्य चाहिये। ये गुण नहीं होंय, तो युद्ध हारैं। और अन्य राज-पुत्रन में जांय, तौ लज्जा पावैं। तातैं यान गुण चाहिये। इति यान गुण॥ ३॥ आगे आसन गुण कहिये है। राजान में आसन गुण चाहिये। तहां वैठवे की दृढ़ आसन चाहिये। जहां तिष्ठै, तहां एकासन दृढ़ होय वैठे, चला–चल आसन नहीं राखे। कबहूँ कहीं, कबहूँ कहीं, ऐसे चंचल भाव नहीं होय। एक स्थान दृढ़ होय तिष्ठै। तथा देशान्तर गमन करते जहां मुकाम करे, तहां अपने तन की सावधानी करै। जहां जल, तृण, अन्न की प्रचुरता होय, तहां मुकाम करै। तथा सैन्या के लोकन की रक्षा करै। जहां डेरा होय, तहां अपने तन के मोही सेवक-सुभट, तिनके डेरा अपने चौं-तरफ राखि, अपने तन की रक्षा देख, मुकाम करे। इत्यादि सावधानी राखनी। सो आसन गुण कहिये।

ये आसन गुण है ॥ ४ ॥ आगे संस्था गुण कहिये, है—संस्था गुण ताकों कहिये जो अपने मुख तैं वचन बोलना, सो फेरि अन्यथा (झूठ) नहीं होय । वचन की दृढ़ना राखनी । जो वचन बोल्या, सो ताकी मर्यादा निवाहनी । तन गये भी जो वचन कह्या, ताकों नहीं उल्लंघिये । जैसे दशरथ राजा ने अपनी रानी कैकई को वर दिया । सो समय पाय वानै पुत्र—भरत कूं राज्य याच्या । सो अयोध्या का राज्य भरत कूं देय, वचन राख्या । तैसे ही राजान कौं अपने वचन की दृढ़ता राखनी, सो संस्था गुण है । ये वचन-दृढ़ का गुण राजा में नहीं होय, तौ ताकी प्रजा दुख पावै । अन्याय विस्तरै । राजा का वचन प्रतीति रहित भये, अपयशादि दोष प्रगटै । तातैं वचन सत्य बोलना, सो संस्था गुण है । इति संस्था गुण ॥५॥ आगे आश्रय गुण कहिये है—सो राजान में आश्रय गुण चाहिये । कोई भयवंत होय, जोरा-वर का सताया, अपने आश्रय आवै । तो आप ताकूं अपने शरण राखै । संतोष उपजावै । तथा आप पै भय आये, आप तैं प्रबल होय ताके आश्रय जाय, सुखी होना । सो अपने तैं बड़े के शरण जावे सें, अपना मान खंड नहीं मानना, और अन्य कूं अपने आश्रय राखने में काहू का भय नहीं करना । ये आश्रय नाम गुण है । ये गुण नहीं होय, तो महिमा नहीं पावै । तातैं आश्रय गुण राजान में चाहिये । इति आश्रय गुण ॥६॥ ऐसे राजों के षट् गुण जानना । आगे राजो के सीखवे योग्य च्यारि विद्या हैं, तिन का कथन कहिये है । प्रथम नाम-आन्वीक्षकी विद्या, त्रई विद्या, वार्ता विद्या और दण्डनी विद्या, ये च्यारि हैं । अब इनका सामान्य

स्वरूप कहिये है। जैसे जौंहरी अपनी बुद्धि के योग तैं, भले-बुरे रत्न कूं जानैं। तैसे ही विवेकी राजा, प्रथम तो अपने-पराये बल—पराक्रम कौं जानै। ऐसा विचारै, फलाने राजा का पराक्रम ऐसा, उस राजा की सैन्या इतनी, भुजबल ऐसा, ताके एता मुल्क, ऐसा खजाना है। ऐसे-ऐसे सामन्त राजा ताके सेवक हैं। ऐसे बुद्धिमान् मंत्री हैं। और मेरे शरीर का जोर एता है, मेरा एता मुल्क है, एता खजाना है। एते सामंत—सेवक हैं। ऐसे मंत्री हैं। इत्यादिक भेद जाने, सो विवेकी राजा है। और जो अपने-पराये पराक्रम विषैं नहीं समझै, तो आप तैं बड़े बलवान् राजा तैं द्वेष करि, अपना राज्य खोय, दुखी होवै। अपने सेवक, मित्र, प्रजा के लोग इनके स्वभाव कूं जानैं। जो ए बुरा है, ये भला है। ये दुष्ट अंगी है, ये सज्जन अंगी है। ये गुण—लोभी है। ये सत्यवादी है। ये झूठा है। ये सुस्वभाव का धरनहारा है। ये पराया बुरा करनहारा, चुगल है। ये पर के भले का करनहारा है। यह यश का लोभी है। ये धन का लोभी है। ये चोर स्वभावी है। यह क्रोधी है। ये मानी है। यह दगाबाज—मायावी है। यह सरल स्वभावी है। यह चित्त का उदार है। यह सूम है। यातैं मोकौं सुख है। यातैं मोकौं निन्दा आवै है। यातैं मेरा यश होय हैं। यह पर कौं पीड़ै है। ये पर का रक्षक है। इत्यादिक विवेक-विद्या, राज पुत्रन कौं सीखना सुखकारी है। याका नाम आन्वीक्षकी विद्या है। इस विद्या का ज्ञान होय, तौ अपने ज्ञान-बल तैं, कठोर चित्ती है तिनकौं कोमल करै। यहां प्रश्न-जो कठोर स्वभावी है तिनकौं कोमल स्वभावी कैसे करै ? ताका तो स्वभाव ही कठोर

है, सो वस्तु का स्वभाव कैसे मिटै है ? ताका समाधान-जैसे पृथ्वी-काय स्वर्ण, चांदी, तांबा, पीतल, लोहादि अनेक धातु करि, अनेक वर्तन बनैं है। सो ये सर्व ही धातु कठोर हैं। सो भला कारीगर, इन धातून की कठोरता जानि, प्रथम तौ अग्नि मैं तपावै है। पीछे घन तैं, हथौड़े तैं कूटै है। बहुरि तपावै है। ऐसे करते, कछू नरम पड़ै है। तब छोटी हथौड़ी तैं अल्प पीटै है। ऐसे सख्त, महा-कठोर धातु भी विवेकी के हाथ पड़ै है, तब नर्म होय है। तैसे ही दुष्ट मनुष्य है, सो महा कठोर है। तिनकौं विवेकी राजा, अपनी न्याय बुद्धि के बल करि उनकौं, उन योग्य कठोर दण्ड ही देय है। तब दुष्ट प्राणी भी, राजा के दीरघ भय करि, अपनी कठोरता तजि, कोमलता रूप होय हैं। पीछे तिनकौं भला निमित्त मिलै, तौ वे भी अपना भला करैं हैं। ऐसे यह आनीषकी विद्या है। सो महान् वंश मैं उपजे जो विवेकी राजा, तिनके सीखवे योग्य है॥ १ ॥ आगे दूसरी त्रई विद्या। सो विवेकी राजा शास्त्रन के वेत्ता, जान्या है इस भव-परभव सुधरने का भेद जिननैं, सो महान् बुद्धि, धर्मशास्त्र के वेत्ता, पाप-पुण्य के फल कौं जानि, आप पाप तजि, अनेक धर्म अङ्ग दान-पूजादि तिन रूप परणमैं। और जिन क्रियान तैं पाप बंधै, हिंसा होय, दुराचार प्रगटै, ऐसी क्रिया अपने मुल्क में नहीं होने देंय। अनेक पाप क्रिया, अज्ञानी जीवन के करवे की, जिनकौं करि भोरे जीव अपना भव बिगाड़ैं। कुक्रिया करैं, जीव हिंसा होय। इत्यादिक पाप प्रवृत्ति कौं जानि, विवेकी राजा आप तजै, और पर के कल्याण कौं पाप करते तिनकौं मने करै। अपनी

प्रजा पाप रूप प्रवर्तैं, ताकौं दंड देय, धर्म में लगावै। जो प्रजा धर्मात्मा दयाभाव सहित शुद्ध प्रवृत्ति की धारी होय, ताकी रक्षा सहित शुश्रूषा करै। जैसे प्रजा धर्म रूप प्रवर्तैं, सो ही कार्य करै। पृथ्वी में शुभाचार बधावै। धर्म क्रिया, भला आचार, आप करै। औरन कौं उपदेश देय पूजा, दान, शील, संयम, तप, व्रत, इत्यादिक धर्म को बधावै। पाप कौं मैटे। निरंतर धर्म सेवन का सोच राखै। संसार-भोग विनश्वर जानि, विषयन में रत नहीं होय। आगे महान् राजा भरत-चक्री आदि बड़े-बड़े पुरुष, राज्य संपदा छोड़, जिनेश्वरी दीक्षा धरि, तप करि, मोक्ष गये। तिनके गुणन की कीर्त्ति करता, वैराग्य भावना का अभिलाषी, प्रजा की रक्षा करता, ऐसे भावन सहित राज्य करै। सो त्रई नाम दूसरी विद्या है ॥ २ ॥ आगे तीसरी वार्त्ता विद्या है। तहां नीति शास्त्रन तैं जानी है राजान की परंपराय जानें। सो यश का अर्थी राजा, अपनी प्रजा कूं पालवे की, सुखी राखवे की है वांछा जाकैं। ऐसा सुबुद्धि राजा, प्रजा के न्याय-अन्याय, सुख-दुख, जानिवे कौं फैलाये हैं देश-नगर में हलकारे (गुप्तचर) रूपी नेत्र जानैं। जैसे नेत्रन से सब देखा जाय, तैसे बड़े राजों के नेत्र, हलकारे (दूत) हैं। सो तिन सूं दूर-दूर की बात जानी जाय है। सो विवेकी राजा दसों दिशा हलकारे भेज, पृथ्वी की खबर राखै। स्व-चक्र-पर चक्र की हीनता-अधिकता जानैं। तिन हलकारेन तैं योग्य-अयोग्य सब जानै। सो अपनी प्रजा कौं दुखदाई-चोर, चुगल, पाखंडी, अदेखा, दुराचारी, दीन जीवन कौं सतावनहारा, इत्यादिक दुष्ट जीवन कौं जानि,

अपने मुलक-देश तैं निकास देय। और जे धर्मात्मा, सज्जन, दयावान्, संतोषी, संयमी, न्यायी इत्यादिक गुण सहित साधु जन होंय, तिनकी सेवा-चाकरी, रक्षा करै। इत्यादिक हलकारान तैं प्रजा की कथा जानैं। ऐसी विवेक बढ़ावनहारी यह विद्या, जिस राजा के हृदय में बसै, ताका यश होय। प्रजा सदीव सुखी रहै। यह तीसरी वार्ता विद्या है॥ ३॥ आगे चौथी दण्डनी विद्या है। सो यातैं विवेकी राजा, अपनी न्याय बुद्धि करि, अपनी बस्ती में चोर, चुगल, जो अपनी आज्ञा के प्रतिकूल होय, सप्त व्यसन का उपदेशक होय, तिनकौं दंड देय, दुखी करि, लोकन कों बतलावै। कि जो कोई न्याय तजि, अन्याय चलैगा। सो ऐसा दुखी होय, दंड पावैगा। और बस्ती में जो भले मनुष्य न्यायवान् होंय, तिनकी रक्षा करै। ये दण्डनी नाम चौथी विद्या है॥ ४॥ ऐसी च्यारि विद्या कही। सो महान् कुल के उपजे, दोऊ पक्ष जिनके पवित्र होंय, ऐसे राजकुमारन कों सीखना मंगलकारी है। ये सब विद्या, जिस भूपतिके हृदय में तिष्ठैं, सो राजा यश पावै। परंपराय शुभ गति भोग, मोक्ष पावै। इति च्यारि राज्य विद्या। आगे राजा के पंच बल कहिये हैं। प्रथम नाम-भाग्य बल, दैव बल, मंत्र बल, शरीर बल और सामंत बल। अब इन पंच बलन का सामान्य अर्थ कहिये है। जानैं पूर्व—भव में विशेष पुण्य किया होय, सो पुण्य के उदयवाला जीव राज्य पावै। तौ ताकै पुण्य के आगे, अन्य राजा सहज ही भय खाय, आय—आय शीश नमावैं, सेवा करैं, आज्ञा याचैं, अपने मुकुट नमावैं, ताकौं अपना प्रभु मानैं। जैसे तीन खंड का राजा वासुदेव, तथा

पट्खण्ड का राजा चक्रवर्ती है। सो इनका राज्य, पुण्य के उदय का है। क्योंकि जो इनकी दृष्टि महा सौम्य है। वचन महा मिष्ट हैं। तिनकी मूर्ति महा विश्वास उपजावनहारी, सुन्दर, मन कौं मोह उपजावै। महा सज्जन, तिनके वचन सुनतैं पर जीवन कूं समता होय, स्थिरता बंधै। आप तौ ऐसे और इनका वाह्य प्रताप ऐसा कि तिन के भय सूं देव-विद्याधर कंपायमान होंय। कोई आज्ञा भंग नहीं करि सकै। विना भय बताये ही बड़े-बड़े पृथ्वीपति आय-आय मुकुट नमावैं। ऐसा उनके पुण्य का तेज है। जैसे सूरज, मूल में तो तिसकी प्रभा शीतल है परन्तु औरन कौं तेजकारी होय है। तैसे ही सूर्य की नांईं तेज धारै। सो राजाओं का भाग्य बल है ॥१॥ और कर्म जाका भला करै, ताकौं कौन बिगाड़ि सकै? जाकौं कर्म भला दिखावै, ताकी बुराई काहू तैं नहीं होय। जैसे रावण तीन खण्ड का नाथ, सर्व विद्याधरन का नाथ, महा-न्यायी, महा बलवान्, अरु जिसके विभीषण-कुम्भकरण से भाई, अरु इन्द्रजीत-मेघनाद से पुत्र जाके। ऐसा रावण जानैं इन्द्र-विद्याधर कौं जीत्या। अरु जीवता पकड़ लाया। ऐसा राक्षसन का पालनहारा, तीन खण्ड का अधिपति। ऐसे बली कौं राम-लक्ष्मण दोई भाईन ने युद्ध में जीत्या। ये कर्म का बल है। जाकौं कर्म जितावै, सो जीतै। जाका कर्म भला करै, ताका भला होय। सो दैव बल है। तथा जैसे मैना सुन्दरी ने कही। सुख-दुख कर्म करै सो होय। तब ताके पिता ने द्वेष-भावतैं कर्म-परीक्षा करवे कूं, अपनी पुत्री श्रीपाल जी कूं, कोढ़ी जानि परनाई। पीछे शुभ कर्म तैं श्रीपाल जी का कुष्ट गया। राज्य पाया।

मैना सुन्दरी आठ हजार रानीन में पट्टरानी होय, सुखी भई। तब ताके पिता ने देख, कर्म-कर्तव्य सांचा जाना। सो यह दैव बल है ॥ २ ॥ और जानें नाना प्रकार की विद्या का साधन करि, अनेक विद्यान कौं अपने आधीन करी। तिन विद्यान के प्रसाद करि अनेक मानी राजा जीति, अपनी आज्ञा मनवावै। सो मंत्र बल जानना ॥ ३ ॥ और अपने शरीर का भुजबल बड़ा होय। कोटि भट, लक्ष भट, सहस्र भट, इत्यादिक अनेक हस्ती-सिंह कूं जीतने का पराक्रम होना। तथा अनेक सैन्या कूं आप एकला ही जीतै, ऐसा शरीर-बल पावना। सो शरीर बल है ॥ ४ ॥ और जाकी आज्ञा विषैं अनेक बड़े-बड़े सामन्त-राजा होंय। सर्व सैन्या के सुभट अपनी आज्ञा प्रमाण होंय। बहुत सामन्तन का नाथ होय। सो सामन्त बल है ॥ ५ ॥ ये राजा के पांच बल हैं। सो विवेकी राजा कौं इनकी रक्षा करनी योग्य है। इति राजा के पांच बल। ऐसे राजा के षट् गुण, च्यारि राज्य विद्या, पांच बल। ये सर्व राजा की सम्पदा है। जिनकी ऐसी संपदा होय ते राजा सदीव सुख के भोगता होय, यश पावैं। तप लेय, देव इन्द्र अहमिन्द्र निर्वाण एते पद पावै हैं। ये शुभ राज लक्षण कहे। आगे पुण्याधिकारी पुरुषन के सीखवेकी विद्या हैं, तिनके नाम-लक्षण कहिये है। तहां प्रथम नाम-प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, शिक्षा कल्प, व्याकरण, छंद, अलंकार, ज्योतिष, निरुक्त, आतिहाँसि, पुराण, मीमांसा और न्याय, ये चौदह विद्या हैं। अब इनका विशेष कहिये है। तहां सामान्य बुद्धिन कौं धर्म विषैं लगावने कूं अनेक

महान् पुरुष तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, कामदेवादि पुरुषन की कथा, पुन्य-पाप का फल, नरक-स्वर्ग का सुख-दुख कथन, इत्यादिक हितोपदेश देवे की कला, सो प्रथमानुयोग नाम विद्या है ॥ १ ॥ अधो लोक, मध्य लोक, ऊर्ध्व लोक, इन तीन लोकन की सर्व रचना, लोक का जो आकार, तामैं च्यारि गति रचना का कथन, इत्यादिक तीन लोक के कथन-उपदेश करवे की कला, सो करणानुयोग विद्या है ॥ २ ॥ और जहां मुनि—श्रावक के आचार विषैं प्रवीणता, इनके खान-पान की विधि जानना। मुनि कौं पड़गाहवे की विधि व नवधा भक्ति की विधि समझना। त्यागी—प्रतिमाधारी श्रावक कूं भोजन निमित्त ल्यायवे की विधि, तिनकूं भोजन देवे की विधि, इत्यादिक यती-श्रावक के उपदेश करवे की कला, सो चरणानुयोग विद्या है ॥ ३ ॥ और जहां पट् द्रव्य, इनके गुण-पर्याय का समझना। जीव के राग-द्वेष भाव जैसे होंय, सो जानना। और पुद्गल के स्कंध ज्ञानावरणादि कर्म रूप कैसे होंय ? और जीव, कर्मन तैं कैसे बँधै, कर्मन तैं कैसे खुलै (छूटै) ? इत्यादिक कर्म का बंध होना, उदय होना, सत्त्व रहना, इत्यादिक द्रव्यानुयोग के उपदेश देवे का कला, सो द्रव्यानुयोग विद्या है॥४॥ और शिष्यन के कल्याण होने के निमित्त, यथायोग्य उपदेश देने का ज्ञान। जो बालक कौं उपदेश ऐसे दीजिये, तरुण कौं उपदेश ऐसे, वृद्ध को उपदेश ऐसे, विशेष ज्ञानी कौं ऐसे सामान्य-ज्ञानी कौं ऐसे, ऊंच-कुली कूं उपदेश, नीच-कुली कूं उपदेश, चंचल बुद्धि कूं ऐसे, बालक-तरुण स्त्री कूं, वृद्ध स्त्री कूं, पति सहित स्त्री कूं, विधवा स्त्री कौं ऐसे। इत्यादिक यथा योग्य

उपदेश देवे की कला। जैसे शिष्यजन का भला होता जाने, तैसे तिनके पर-भव सुधारवे कौं उपदेश देना, सो शिक्षा-कल्प विद्या है ॥ ५ ॥ और अनेक प्रकार के शब्द की स्पष्टता, विभक्ति सहित, पद सहित, लिंग के साधन, धातून के साधन सहित, शुद्ध शब्द का बोलना। अनेक गद्य, काव्य, छंदन का विभक्ति अर्थ सहित, पदच्छेदन सहित, भले प्रकार अर्थ करना। इत्यादिक संस्कृत का विशेष ज्ञान बधावना, सो व्याकरण विद्या है ॥ ६ ॥ और जहां अनेक जाति के छंद, गाथा, आर्या, श्लोक, काव्य, इत्यादि बहुत प्रकार छंद की चाल जानना, पर कौं उपदेश देना-सिखावना, सो छंद विद्या है ॥ ७ ॥ और जहां नाना प्रकार अलंकार, जैसे स्त्री का मुख चंद्रमा के समान, तथा यह नरेन्द्र अपने प्रताप के आगे सूर्य कूं जीतै है। इत्यादिक अलंकार कला का सीखना-जानना-उपदेश देना, सो अलंकार विद्या है ॥ ८ ॥ और जहां चन्द्रमा, सूर्य्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, इत्यादि इनके गमनागमन क्रिया तैं शुभाशुभ फल का सीखना-जानना, उपदेशना, सो ज्योतिष विद्या है ॥ ९ ॥ और जहां नाना प्रकार की युक्ति का ज्ञान, अनेक युक्ति उपजावना। बहु प्रकार दृष्टांतादि कला का सीखना-उपदेश देना, सो निरुक्त विद्या है ॥ १० ॥ और जहां अनेक चतुरता सहित सभा रंजित बोलवे की कला, जैसा अवसर देखे तैसे शब्द बोलवे की कला, जैसा मनुष्य देखै तैसा बोलवे का ज्ञान, इत्यादिक सभा व समय पहिचान, अपना-पराया पदस्थ पहिचान बोलना, इत्यादिक चतुराई सहित, सर्व सभा रंजन, मिष्ट, विनयकारी, आनंदकारी वचन

बोलवे की कला, सो अति-हाँसि-कला नाम विद्या है ॥ ११ ॥ और जहां धर्म कथा के अनेक पुराण वांचना, कंठ पाठ जानना-पढ़ना-उपदेशना, सो पुराण विद्या है ॥ १२॥ और जहां अनेक मीमांसादि मतांतर के शास्त्रन का पढ़ना, रहस्य जानना। अनेक मतान्तर के वाद जीतवे की कला, नास्तिकमती, एकान्तमती, विनयवादी इन आदि अनेक मतन का रहस्य जानना, सीखना, औरन कों उपदेश देना, सो मीमांसा विद्या है ॥ १३ ॥ और अनेक-प्रकार तर्क-युक्ति उपजाय, प्रश्न करना। न्याय करि पर-वादी की असत्य युक्ति का खण्डना। अपना न्याय वचन स्थापना। पर-वादी अनेक असत्य युक्ति देय, ताका रहस्य जानि, ताका खंडना। इत्यादिक न्याय पूर्वक नय-युक्ति का सीखना, औरन कों उपदेश देना, सो न्याय विद्या है ॥ १४ ॥ ऐसे ये चौदह विद्या, शास्त्रोक्त कहीं हैं। सो ज्ञान बढ़ावे के पात्र पुरुषन कौं, सदीव इनका अभ्यास करना योग्य है। इति शास्त्रोक्त चौदह विद्या कहीं। आगे लौकिक चौदह विद्या कहिये हैं। तहां प्रथम नाम-ब्रह्म, चातुरी, बाल, बाहन, देशना, बाहु, जल, रसायन, गान, संगीत, व्याकरण, वेद, ज्योतिष और वैद्यक। ये चौदह लौकिक विद्या हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। तहां आत्मा चैतन्य है, ज्ञान रूप है, शुद्ध है, अशुद्ध है, इत्यादिक आत्माका का स्वरूप जानिये, सो आत्म विद्या, सो ही ब्रह्म विद्या है ॥ १ ॥ जहां नाना प्रकार बातन का करना। राज्य सभा, पंच सभा, जैसी सभा होय तैसी बात करना। पर कौं रंजावना। चित्रकला, शिल्पकलादि अनेक लौकिक चतुराई सीखना, सो

चातुरी विद्या है ॥ २ ॥ और बाल्यावस्था ही तैं अनेक प्रकार विद्याओं का सीखना, सो बाल विद्या है ॥ ३ ॥ और जहां हस्ती, घोटक, रथादिक की असवारी जानना-सीखना, सो बाहन विद्या है ॥ ४ ॥ धर्मोपदेश देवे की कला, सो देशना विद्याहै ॥५॥ और जहां दण्ड पेलनादि पर-मल्ल जीतवे की चतुराई, नाना कला का कूदना-फाँदना, नेजम झाड़ना, मोगरी फेरना इत्यादि कला सीखना, सो बाहु विद्या है ॥ ६ ॥ और जल विषैं नाव चलावना, जहाज चलावना, भुजबल तैं तेरने की कला सीखना, सो जल विद्या है ॥७॥ बहुरि कुधातु कूँ, सुधातु करना। जैसे तांबे कूँ स्वर्ण करना, रांग की चांदी करना। पारा-हरतालादि शुद्ध करि, रसायन पैदा करनी। इत्यादिक कला सीखना, सो रसायन विद्या है ॥ ८ ॥ और जहां अनेक स्वर सहित, काल-मर्याद रूप, मिष्ट स्वर सहित, ताल कूं लिये गावना, सो गान विद्या है ॥ ९ ॥ और अनेक प्रकार वादित्र कला, नृत्य कला, इनके हाव-भाव, गति, ललितता, चाल, ताल, इत्यादिक में शास्त्रोक्त समझना, सो संगीत विद्या है ॥ १० ॥ और अक्षर का सुस्पष्ट स्वर, व्यंजन, विभक्ति सहित समझना, सो व्याकरण विद्या है ॥ ११ ॥ और अनेक शास्त्रन का सीखना, सो वेद विद्या है ॥ १२ ॥ और पंच प्रकार ज्योतिषी देवन की चाल करि शुभाशुभ जानना, सो ज्योतिष विद्या है ॥ १३ ॥ और अनेक प्रकार शरीर के रोग जानवे की बहुत परीक्षा का जानना। हाथ की नस, मस्तक की नस, पांवन की नस, हृदय की नसों का परखना। सो याही नसों को परखाई का नाम नाड़ी परीक्षा है। सो

नाड़ी परीक्षा जानै। मूत्र परीक्षा, जो मूत्र कूं देखि रोग जानै। दृष्टि परीक्षा, सो दृष्टि देख कें रोग जानैं। पसीना कूं देख-सूंघि रोग जानै, सो स्वेद परीक्षा है। इत्यादिक चिन्हन तैं रोग जानि, ताके नाश करवे की कला, सो वैद्यक विद्या है ॥ १४ ॥ ये चौदह कर्म-विद्या हैं। और ऊपर कहीं चौदह, वे धर्म विद्या हैं। तिन सब का स्वरूप विवेकी, राज—पुत्रन आदि सर्व कुलीन कूं सीखना योग्य है। और जिस राजपुत्र कूँ इन विद्यान का ज्ञान होय, सो प्रजा कूं सुखी करै, आप यश पावै। ऐसे जानि इन विद्या रूपी गुणन का संग्रह करना योग्य है। इति लौकिक विद्या। आगे राजान का इन्द्र जो षट्खण्डी चक्रवर्ती, ताके पुण्य का माहात्म्य पाय, चौदह रत्न व चौदह निधि हो हैं। तिनके नाम व गुण कहिये हैं। तहां प्रथम रत्न नाम-सुदर्शन चक्र, चंड वेग दण्ड, चमर, चूड़ामणि, काकिणी, छत्र, असि, सेनापति, बुद्धिसागर पुरोहित, शिल्पी, गृहपति, विजयगरि हस्ती, घोटक और स्त्री ये चौदह रत्न हैं। एक-एक रत्न की हजार-हजार देव सेवा करें हैं। अब इन रत्नन तैं कहा-कहा कार्य होय, सो कहिये हैं। तहां चक्री, जिस पै आज्ञा करै चाहे। तापै चक्र के रक्षक देव जाय, चक्री की आज्ञा कहैं। यह चक्र रत्न का कार्य है ॥ १ ॥ और विजयार्द्ध पर्वत की गुफा के कपाट सेनापति तोड़ै है, सो गदा रत्न है तासैं तोड़ै है। सो ये गदा का कार्य है ॥ २ ॥ और जहां राह में नदी—सरोवर का बड़ा गहन जल आवै है। तब चरम रत्न, जल में विछाय दीजिये। सो ताके प्रसाद करि, सर्व जल धरती समानि होय।

तापै तैं चक्री का सर्व कटक पार होय है। ये चमर रत्न का गुण है ॥ ३ ॥ और विजयार्द्ध की गुफा, पचास योजन लम्बी है। तामें महा अंधकार है, सो चक्री कैसे धसै है। तहां चूड़ामणि रत्न के उद्योत करि, सूर्य–प्रकाश की नाईं उद्योत में, गुफा पार हो है। ये चूड़ामणि रत्न का गुण है ॥ ४॥ और काकिणी रत्न तैं चक्री अपना नाम लिखै है। वृषभाचल पर्वत पै, जब ठाम नहीं मिलै है। तब इस काकिणी रत्न तैं, और चक्री का नाम मेटि, अपना नाम लिखै है। और याके प्रकाश तैं भी बारह योजन गुफा में प्रकाश होय है। ये काकिणी रत्न का गुण है॥ ५ ॥ और चक्री के कटक पर मेघ बरसै, तौ छत्र रत्न के विस्तार करि जल की बाधा मेटै, सब सैन्या छाया लेय है। ये छत्र रत्न का गुण है॥ ६ ॥ और जाके तेज तैं बैरी डरैं, सर्व शत्रु जातैं जीतिए, ऐसा असि रत्न का गुण है॥ ७ ॥ ये सात रत्न तो अचेतन कहे। और सर्व आर्य–म्लेच्छ खण्ड के राजान कूं जीति, सर्व कूं लाय चक्री के चरणन में नमाय सेवा करावै, ए सेनापति का गुण है ॥ ८ ॥ और पुरोहित ऐसी सलाह देय जातैं प्रजा सुखी होय, बैरी वश होय, ये पुरोहित रत्न का गुण है ॥ ९ ॥ और चक्री की आज्ञा तैं तत्क्षण, मनवाञ्छित, अनेक शोभा सहित, बहुत खण्ड के सुन्दर महल बनावै, सो ये शिल्पी रत्न है ॥ १० ॥ और चक्री के घर का सर्व कारबार, आरम्भ कार्य की सावधानी राखै, सो ये गुण गृहपति रत्न का है॥ ११ ॥ और चक्री के मन कूं सुखकारी असवारी का देनहारा, ऐरावत इन्द्र के हस्ती समान त्रिजयगिरि नाम सुन्दर हस्ती रत्न है ॥ १२ ॥ और

वांच्छित असवारी देनेहारा, पवन समान वेग तैं चलनहारा, चंचल, सुन्दर अश्व है ॥ १३ ॥ और महा सती, शची समान रूप की धरनहारी, महा सुन्दर, चक्री के मन कौं हरनहारी, आज्ञाकारिणी, महा बलवान्, रत्न चूर्ण करै ऐसी, स्त्री रत्न है ॥ १४ ॥ ये सात चेतन रत्न हैं। सब मिलि चौदह होय हैं। ये जहां—जहां उपजैं, सो स्थान बताईये हैं। चक्र, छत्र, असि, दंड ये चार तौ आयुधशाला में उपजैं हैं। और चरम काकिणी, चूड़ामणि, ये तीन श्रीगृह में उपजैं हैं। हस्ती, घोटक, स्त्री, ये तीन विजयार्द्ध पर्वत पे उपजैं हैं। और सिलावट, पुरोहित, सेनापति, गृहपति, ये च्यारि निज-निज नगरी में उपजैं हैं।। ऐसे चौदह रत्नों का सामान्य स्वरूप कह्या। विशेष अन्य पुराणन तैं जानना। इति चौदह रत्न ॥ आगे नव निधि के नाम व लक्षण कहिये हैं। काल, महाकाल, नैसर्प्प, पाण्डक, पदम, माणव, पिंगल, शंख और सर्व रत्न ये नवनिधि हैं। ये कहा-कहा कार्य करैं हैं, सो ही कहिये हैं। काल निधि तो वांच्छित पुस्तक देय है॥ १ ॥ और महा काल वांच्छित असि देय है ॥ २॥ और वांच्छित भोजन देय, सो नैसर्प्प निधि है ॥ ३ ॥ और वांच्छित षट्रस देय, सो पाण्डक निधि है ॥४॥ और वाँच्छित वस्तु देय, सो पदम निधि है॥५॥ और वांच्छित नीति शास्त्र व शस्त्र देय, सो माणव निधि है ॥ ६ ॥ और वांच्छित आभूषण देय, सो पिंगल निधि है ॥ ७ ॥ और अनेक बाजे देय, सो, शंख निधि है ॥ ८ ॥ और वांच्छित सर्व रतन देय, सो सर्व रत्न निधि है ॥ ९ ॥ ये सर्व मिलि नव निधि जानना। सो इन निधिन के आकार व प्रमाण कहिये है। ये सर्व निधि

गाड़ी के आकार हैं। लम्बी-चौकोर जानना। आठ पहियान सहित हैं। सो एक–एक निधि, बारह-बारह योजन लम्बी है। नव–नव योजन चौड़ी है। आठ-आठ योजन ऊंची है। और एक-एक निधि के हजार–हजार देव रक्षक हैं। इन निधिन पैं चक्री की आज्ञा है। ये निधि, चक्री के पुण्य-प्रमाण हैं। ऐसे चौदह रत्न, नव निधि ये पुण्य का फल है, बिना पुण्य नाहीं। इति निधि। आगे चक्री की सेना षट् प्रकार है, सो कहैं हैं। तहां प्रथम नाम-हस्ती चौरासी लाख, रथ-सैन्या चौरासी लाख, घोड़ा अठारह कोड़ि, सर्व दोऊ श्रेणी के विद्याधरन की सैन्या, भरतक्षेत्र संबंधी देवन की सैन्या, और पयादेन की सैन्या। ये षट् प्रकार की सैन्या है। सामान्य राजा कैं तो च्यारि जाति की सैन्या होय, देव-विद्याधर की सैन्या नहीं होय। अरु चक्रधारी के षट् प्रकार की सैन्या जानना। ऐसी विभूति सहित श्री आदिनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती, सोलहवें कुलकर, पहले चक्री, सो महा विवेक के सागर होते भये। सो इनके काल विषैं भोग भूमि के बिछुरे, प्रजा के लोग भोरे जीव, कर्म–भूमि की रचना में नहीं समझैं। अरु कल्पवृक्षन का अभाव भया, जीवन के क्षुधा बधी। तब भोरे जीव, उदर पूरण की विधि बिना, दुखी होने लगे। विशेष ज्ञान-चतुराई, कर्म-भूमि-संबंधी-आरंभ नहीं जानैं। तिनके दुख निवारवे कूं भरत चक्री हैं सो प्रजा कों कर्म-भूमि की रचना का ज्ञान होवे कूं, प्रजा कूं सुखी होने के निमित्त, षट् कर्म का उपदेश देते भये। तिनके नाम व स्वरूप कहिये हैं। इज्या, वार्ता, दान, स्वाध्याय, तप और संयम। ये षट् कर्म हैं। अब इनकी प्रवर्ति कहिये है। तहां भगवान्, सर्वज्ञ

जगतनाथ कौं तरन-तारन जानि, पापहरन मोक्षकरन जानि कैं, विवेकी भक्ति के वशीभूत होय, आपकौं पाप सहित जानि, कर्म सहित जन्म-मरण करि दुखिया जानि, आप दीन होय, विनय सहित, अपने पाप हरवे कूँ, भगवान् का पूजन करना। तिनके सन्मुख खड़ा होय, उत्कृष्ट अष्ट द्रव्य मिलाय, अपनी काय पवित्र करि, मंत्र सहित प्रभु के चरण आगे धरै। जैसे लौकिक में निज उत्कृष्ट वस्तु लेय, राजान के सन्मुख जाय, चरण पास धरैं। पीछे राजा की स्तुति करैं। तैसे ही भगवान् की पूजा—स्तुति किये, पाप क्षय होय। सो तिस पूजा के च्यारि भेद हैं। तिनका नाम—एक तौ प्रतिदिन अष्ट द्रव्य तैं भगवान् की पूजा करना, सो नित्यमह है। १। और चतुरमुख पूजा—ये महा पूजा-विधान सो मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वरादि बड़े राजान तैं बनैं है। २। और कल्पवृक्ष पूजा-सो तामैं उत्तम नेवज, नेत्र कूं सुखकारी, जाकौं देख देव भी अनुमोदना करैं, ऐसे उत्तम द्रव्य तैं पूजा करनी और ता समय जेते दिन लौं पूजा—विधान आरंभ रहै। तेते दिन सर्व कौं किमिच्छक कहिये मन वांच्छित दान, याचकन की इच्छा—प्रमाण कल्पवृक्ष की नांई दान देना, सो कल्पवृक्ष पूजा है। सो ये पूजा चक्रवर्ती तैं बनै है। ३। और अष्टान्हिक पूजा—याका नाम ही इन्द्र-पूजा है। सो या पूजा इन्द्र तैं बनै है। ४। ऐसे च्यारि प्रकार प्रभु की पूजा का, भरतेश्वर अपने निकटवर्ती राजान कौं तथा प्रजा कूं उपदेश देते भये। याका नाम इज्या क्रिया है। इति इज्या। आगे वार्ता क्रिया कहिये है। और वार्ता कहिये, दगावाजी सहित आजीविका का विचार त्याग

करि, न्याय सहित आजीविका पूरी करनी, सो वार्ता है। ताके अनेक भेद हैं। मुख्य-असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और पशु पालन ये षट् भेद हैं। तहां असि कहिये खड्ग, सो शस्त्र बांध, न्याय पूर्वक, दया सहित, दीन जीवन की रक्षा करता, दुष्ट जीवन कों दंड देता, प्रजा-पालन करै। सो शस्त्र सहित आजीविका करनी, सो असि वार्ता कहिये ॥ १ ॥ मसि कहिये स्याही, तातैं धर्म-कर्म के अक्षर लिखने का व्यवहार करना, पाप रहित-न्यायसहित लिखने करि, आजीविका पूर्ण करना। सो मसि वार्ता है ॥ २ ॥ और कृषि कहिये, खेती करना। अपनी बुद्धि के बल करि, धरती विषैं अनेक प्रकार बीज बोय, बहुत प्रकार अन्न, मेवा, अनेक रस निपजाय, धन का उपजावना, सो कृषि वार्ता है ॥३॥ और अनेक न्याय सहित वाणिज्य-व्योपार, हिंसा-पाप रहित व्यापार करना। तामें बहुत आंरभ, बहु हिंसा, असत्य, चोरी, इत्यादिक दोष रहित, भला यश सहित, धन को उपजावने के निमित्त व्यापार करना। सो वाणिज्य वार्ता है ॥४॥ और जहां अनेक महल-मन्दिर बनावने की कला प्रगट करि आजीविका करनी, सो शिल्प वार्ता है॥५॥ और पशु पालन कहिये, अनेक पशून की रक्षा करि, तिनके पालवे की विद्या। पशून की पीड़ा पहिचानना, पशु परीक्षा करनी, तिनके शुभाशुभ चिन्ह, वय का समझना, तिनके खान-पान में समझना, तिनके अनेक रोग समझ, ताकी औषधि का जानना। सो पशु पालन वार्ता है ॥ ६ ॥ ऐसे षट् कर्म-भेद, वार्ता-आजीविका की विधि, आदि-चक्री नैं प्रजा के सुखी होवे कूं, भोग भूमि के बिछुरे भोरे जीव तिनकौं बताई।

ता प्रमाण सर्व प्रजा के लोग, अपने तन की तथा कुटुम्ब की रक्षा करते भये। ये षट् भेद वार्ता कर्म के हैं ॥ २ ॥ ये दोय कर्म तो इस भव के यश-सुख कौं उपदेशे। और च्यारि कर्म पर—भव के कल्याण कौं, स्वर्ग-मोक्ष की राह बतावैं कों उपदेशे। सो कहिये हैं। दोय तो ऊपर कहे। और तीसरा कर्म जो दान, सो च्यारि प्रकार है। भेषज, अन्न, शास्त्र और अभय। सो औषधि दान तैं तो पर—भव में निरोग शरीर पावै है। और अन्न दान करि, पर—भव में सदा अन्न भोजन करि, सुखी रहै। औरन कूं पालनहारा होय। आयु पर्यंत सुखी रहै। और शास्त्र दान तैं भवान्तर में ज्ञानवान् महा पण्डित होय। और अभय दान करि, दीरघ आयु का धारी इन्द्र-अहमिन्द्र होय। तथा निर्भय जो मोक्ष स्थान, ताहि पावै। तातैं च्यार दान दीजिये। सो दुखित-भुखित दीनन कौं तौ करुणा करि, संतोष सहित, पुचकार करि देना। और पात्रन कूं भक्ति करि देना। इस दान करि जीव पर—भव में बहुत सुखी होय। सो ऐसा दान-कर्म का उपदेश किया ॥ ३ ॥ और चौथा स्वाध्याय-सो जिनवाणी का पाठ, अनेक धर्म-शास्त्रन का अध्ययन करना, सो ऐसा स्वाध्याय नाम कर्म उपदेश्या ॥ ४ ॥ और बारह प्रकार तप-सो अन्तरंग-बाह्य करि, दया भावन सहित, समता भाव की विधि लिये करना, सो तप कर्म है ॥ ५ ॥ तहां पंचेन्द्रिय तथा मन कौं वशीभूत करना, षट् काय की दया करनी। सो द्विविधि संयम बारह प्रकार है। सो उपदेश्या ॥ ६ ॥ ऐसे षट्—कर्म भरत चक्री प्रजा

का पिता, सो सब के युग—भव के सुख का अभिलाषी, कर्म-धर्म के मारग कों दीपक समान जो भला उपदेश, सो षट्—कर्म रूप उपदेश देय, लोकन कों सुखी करै। इति भरत चक्री के उपदेशित षट् कर्म। पीछे भरतनाथ भरत चक्रवर्ती कों सोलह स्वप्ने आये। तिन का फल चक्री ने श्री आदिनाथ जिन से पूछा। तब भगवान् ने कही। हे राजन्, इनका फल चौथे काल में नाहीं। आगे पंचम काल में, इन स्वप्नन का फल प्रगट होयगा। सो कहिये है। प्रथम नाम-प्रथम तौ तेवीस सिंह देखे। दूसरे स्वप्न में एकाला सिंह, ताके पीछे मृगन का समूह गमन करते देखा। तीसरे स्वप्न में हस्ती का भार धरैं, तुरंग देखा। चौथे स्वप्न में काकन करि, हंस पीड़ित देखा। पांचवें स्वप्न में बकरे कूं सूखे पत्र चरते देखा। छट्ठे स्वप्न में बंदर कों हस्ती के कंध पर चढ्या देखा। सातवें स्वप्न में भूत नाचते देखे। आठवें स्वप्न में एक सरोवर ताका मध्य तो सूखा और तीर में अगाध जल देखा। नववें स्वप्न में रत्न राशि रज (धूलि) करि मंडित, कांति रहित देखी। दशवें स्वप्न में श्वान कूं पूजा का द्रव्य खाते देखा। ग्यारहवें स्वप्न में तरुण वृषभ दहँकता देखा। बारहवें स्वप्न में चन्द्रमा कों शाखा सहित देखा। तेरहवें स्वप्न में दोय वृषभ इकट्ठे होय, गमन करते देखे। चौदहवें स्वप्न में सूर्य विमान कों मेघ पटल से आच्छादित देख्या। पन्द्रहवें स्वप्न में छाया रहित सूखा एक वृक्ष देखा। सोलहवें स्वप्न में जीर्ण पत्रन का समूह देखा। ये सोलह स्वप्न भये। अब इनका अर्थ कहिये है। तहां तेवीस सिंह देखे, तिनका फल ये, जो तेईस तीर्थं-

करन के समय में तौ खोटी चेष्टा के धारी, परिग्रह सहित, जिन धर्म विषैं मुनि नहीं होंयगे ।१। और एक सिंह तरन-तारन, ताके पीछे मृगन के समूह गमन करते देखे। तिनका फल ये है। जो अंतिम चौबीसवें जिन-महावीर, तिनके निर्वाण भये पीछे, यती मृग की नाईं दीन, नग्न परीषह सहवे कौं असमर्थ, सो परिग्रह का धारन कर, यति बाजैंगे। जिन-लिंग तज, कुलिङ्ग धरेंगे। २। और हाथी के भार सहित तुरंग (घोड़ा) देखा। ताका फल ये है। जो पंचम काल में साधु, तप के भार करि दुखी होंयगे। तप धारवे कौं असमर्थ होंयगे। ३। और बकरे कूं सूखे पत्र खाते देखा। तिसका ये फल है। जो ऊंचे कुल के मनुष्य शुभाचार तैं भ्रष्ट होय, खोटा आचार आदरेंगे। ४। और बंदर कौं हाथी के कंधे पै चढ्या देखा। ताका फल ऐसा, जो आदि तैं चला आया जो क्षत्रीन का वंश, तिसकी व्युच्छित्ति (नाश) होयगी। और हीन कुल के धारी अकुलीन, पृथ्वी पर राज्य करेंगे।५। और वायसन के समूह करि, हंस पीड़ित देखा। ताका फल ऐसा। जो पंचम-काल में अज्ञानी भोरे जीव, धर्म के अर्थ मुनि धर्म तजि कैं, अनाचारी-हिंसक जीवन की सेवा करेंगे। और असंयमी कषाई जीवन करि, धर्मात्मा जीव पीड़े जांयगे। पापी जीवन करि, धर्मी जीवन का अपमान होयगा। ६। और भूत नाचते देखे। तिनका फल ऐसा। जो पंचम काल में अज्ञानी जीव, भगवान् जानि धर्म के अर्थ भूतादि व्यन्तर-देवन की पूजा करेंगे। ७। और सरोवर मध्य में सूखा, तीर में अगाध जल देखा। ताका फल ऐसा। जो उत्तम तीर्थ-स्थानकन में धर्म का अभाव रहेगा।

हीन स्थानन में धर्म रहेगा। ८। और रत्न राशि धूलि करि लिप्त देखी। ताका फल ऐसा। जो पंचम काल में शुक्लध्यानी नहीं होंयगे। धर्मध्यानी केईक रहेंगे।९। और जिन पूजा का द्रव्य, श्वान खाते देखा। ताका फल ऐसा। जो पंचम काल में पात्र की नांईं, अव्रती तथा कुपात्र व अपात्र ये आदर पावेंगे। १०। और तरुण वृषभ शब्द करते देखा। ताका फल ऐसा जानना। जो पंचम काल के जीव, तरुण समय में तो धर्म–ध्यान के आदरने विषैं उद्यम करेंगे। परन्तु वृद्ध भये, धर्म में शिथिल होय, अरुचि करेंगे। ११। और चन्द्रमा के शाखा देखीं। ताका फल ऐसा। जो पंचम काल में अवधि, मनःपर्यय ज्ञान के धारी मुनि होंयगे। १२। और दो वृषभ साथ ही गमन करते देखे। ताका फल ऐसा। जो पंचम-काल के मुनि, संघ में रहेंगे। एका–विहारी नहीं होंयगे। १३। और सूर्य मेघ पटल करि आच्छादित देखा। ताका फल ऐसा। जो पंचम काल के मुनीन कों, केवल–ज्ञान नहीं होयगा। १४। और सूखा वृक्ष, छाया रहित देखा। ताका फल ऐसा। जो पंचम काल के स्त्री-पुरुष शील व्रत धारि, पीछे कुशील सेवेंगे। १५। और सूखे पत्रन का समूह देखा। ताका फल ऐसा। जो अन्न आदि औषधि हैं तिनका रस जायगा, सर्व औषधि नीरस होयगीं। १६। ऐसे भगवान् वृषभदेव ने कही, कि भो चक्रेश्वर! इनके फल अब नाहीं। आगे पंचम काल के उतार में दिखेंगे। इति भरत चक्रवर्ती के स्वप्न–फल समाप्त। आगे पंचम काल में भोरे जीव, अपनी बुद्धि तें कल्पना करि, अनेक प्रकार भगवान् कूं

स्थाप्य कैं पूजेंगे, बहु विधि तैं भगवान् के भेद कहेंगे। तातैं शुद्ध भगवान् के जानवे कौं, भगवान् के गुण कहिये हैं। जिन में ये गुण होंय, सो शुद्ध भगवान हैं। जिनमें ये गुण नाहीं होय, सो शुद्ध देव नाहीं। ये अतिशय जामें होंय, सो शुद्ध तरन-तारन जानना। सो प्रथम अतिशय तीन हैं। वचन अतिशय, आत्म अतिशय और भाग्य अतिशय। इनका अर्थ—जाकी वाणी मेघ समान अनक्षरी, अनुक्रम रहित खिरै। सो अपनी-अपनी भाषा में सर्व बारह सभा के जीव समझैं। सर्व का संदेह जाय, संशय रहै नाहीं। जाकौं सुनि, भव्य का कल्याण होय। पाप नाश होय, पुण्य-फल उपजै। सो वचन अतिशय है॥ १॥ और कर्म के क्षय तैं प्रगट्या जो अनंत चतुष्टय-अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य। सो ये आत्म अतिशय है॥ २॥ और गर्भ के पहिले, रत्नों की वर्षा का होना, नगर सब रत्नमई होना, इन्द्रादिक देव सेवा करैं। केवलज्ञान-स्वभाव प्रगट भये, समोशरण—विभूति का प्रगट होना। इत्यादिक महिमा, सो भाग्य अतिशय है॥ ३॥ ऐसे तीन अतिशय जिनमें होंय, सो भगवान् हैं। इति तीन अतिशय। आगे भगवान् की माता कौं गर्भ के पहिले, सोलह स्वप्न आये हैं। तिनके नाम व लक्षण कहिये हैं। प्रथम नाम-ऐरावत हस्ती, श्वेत वृषभ, सिंह, पुष्पमाला, लक्ष्मी कलश स्नान करती देखी, पूर्ण चन्द्रमा, सूर्य, कनक कलश, मच्छ युगल, सरोवर, सागर, सिंहासन, स्वर्ग विमान, धरणेन्द्र विमान, रत्न राशि और निर्धूम अग्नि। ये सोलह स्वप्न भगवान की माता ने देखे हैं। अब इनका

सामान्य फल कहिये है। प्रथम ऐरावत हस्ती देखा। ताका फल ऐसा, जो पुत्र महान् पुण्य का धारी, सर्व तैं ऊंचा होयगा ॥ १ ॥ और श्वेत वृषभ देखा। ताका फल ऐसा, जो पुत्र धर्म का धारी, जगत्-पूज्य होयगा ॥२॥ और सिंह देखा। ताका फल ऐसा, जो पुत्र अनंत बल का धारी होयगा ॥ ३ ॥ और पुष्पमाला देखी। ताका फल ऐसा, जो पृथ्वी में धर्म को प्रगट करनहारा होयगा ॥ ४ ॥ और लक्ष्मी को कलश स्नान करती देखी। ताका फल ऐसा, जो पुत्र का सुमेरु पर्वत पै स्नान होयगा ॥ ५ ॥ और पूर्ण चन्द्रमा देखा। ताका फल ऐसा, जो तीन लोक के जीवन कों आनन्दकारी होयगा ॥ ६ ॥ और सूर्य देखा, ताका फल ऐसा, जो महा प्रतापी होयगा ॥ ७॥ और कनक (स्वर्ण) कलश देखा, ताका फल ऐसा। जो अनेक निधि का भोगता होय ॥ ८॥ ता पीछे मच्छ-युगल देखा। ताका फल ऐसा जो अनेक सुख का भोक्ता होयगा ॥ ९ ॥ और सरोवर देखा। ताका फल ऐसा, एक हजार आठ लक्षण का धारी होयगा ॥ १० ॥ पीछे कल्लोल करते समुद्र देखा। ताका फल ऐसा, जो केवल-ज्ञान का धारी होयगा ॥ ११ ॥ और पीछे सिंहासन देखा। ताका फल ऐसा, जो बड़े राज्य का भोगता होयगा ॥ १२ ॥ और पीछे स्वर्ग-विमान देखा। ताका फल ऐसा, जो स्वर्ग तैं चय कैं अवतार लेयगा ॥ १३ ॥ और पीछे पाताल तैं निकसता धरणेन्द्र का विमान देखा। ताका फल ऐसा, जो जन्म तैं ही ताकैं अवधिज्ञान होयगा ॥ १४ ॥ और पीछे रत्न राशि देखी, ताका फल ऐसा, जो गुणन का निधान होयगा ॥ १५ ॥ और निर्धूम अग्नि देखी। ताका फल ऐसा, जो

अष्ट कर्मन का जारनहारा होयगा ॥१६॥ ऐसे भगवान् के अवतार होने के पहिले के सोलह स्वप्नों का फल जानना। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, राजान के गुण, तथा चौदह विद्या, तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्न, इत्यादि कथन वर्णनो नाम, इकतीसवां पर्व संपूर्ण॥३१॥

आगे भगवान् वृषभदेव ने जन्म पीछे तेरासी लाख पूर्व राज्य किया। तामैं भगवान् दीर्घ पुण्य का फल दशधा भोग भोगि कैं सुखी भये। तिनके नाम-प्रथम मन वांछित रत्न, ज्योतिषी देवन की प्रभा कौं जीतनेहारे, अनेक वरन के, तिनके सुख-भोग ॥१॥ और नव निधि कौं आदि लेय, परम सम्पदा के भोग॥२॥ और महासती, शची के रूप कौं जीतनहारी, आज्ञानुसारी, विनय सहित, अनेक मन-मोहन चेष्टा की धारनहारी, सुन्दर रानी का भोग ॥३॥ और अनेक संपदा करि भरे नगर-देश, तिनके राज्य का भोग ॥४॥ और देव, विद्याधर, भूमि गोचरी राजान सहित, अनेक महान् पुरुषन करि बंदनीक, हस्ती घोटक पयादे इन षट् प्रकार सेन्या के ईश्वर, ताके भोग ॥५॥ और महान् सुगंधता सहित, अनेक रत्न मई कोमल शैय्या के भोग ॥६॥ और रत्न मई सिंहासन, तख्त, बैठने के स्थान महा उदार, उत्तम मन्दिरन के भोग ॥७॥ और अनेक रत्न मई, स्वर्ण, चांदी आदि अनेक मनोहर धातु के अनेक आकार के बासन के भोग ॥८॥ और नाना प्रकार षट्रस मई अनेक भोजन-व्यंजन, जिह्वा रंजित वस्तु के खावने के भोग ॥९॥ और देव, देवी, मनुष्य, स्त्रीन के गाये-बजाये अनेक सुन्दर स्वर सहित संगीत, गान, नृत्यादिक, अनेक राग-रंग के

भोग ॥१०॥ ऐसे दश प्रकार के भोग, देवाधिदेव वृषभ नाथ-जिन ने राज्यावस्था में भोगे। सो अतिशय पुण्य का फल जानना। इति दश जाति भोग॥ आगे सहज षट्–गुण पुण्यवान् के परखवे कौं बताईये हैं। एक तो आप, सर्व जगत के देव-मनुष्यन करि पूजनीक पद के धारी, सर्व तैं बड़े होंय। अरु अपने बड़प्पन का मान नहीं करैं, ये महा पुण्य का फल है। हीन पुण्यी, अलपसा भी लोक में आदर-सत्कार पावै, तो मान करै। पुण्यवान् बड़ा भी सत्कार पावै, तौ भी मान नहीं करै॥ १ ॥ और हीन पुण्यी, अलपसा सत्य बोलै तो मान करै। कहै, हम जैसा सत्यवादी और नाहीं। और पुण्यवान् का सहज ही सत्य बोलवे का स्वभाव होय है। तातैं पुण्यवान् सत्य बोल, मान नाहीं करै। ये पुण्यवान् का दूसरा भेद है ॥ २ ॥ हीन कुली, तुच्छ पुण्यी, अलपसा पुरुषार्थ पाय, मान करै। दीन-जीवन कौं पीड़े, भय बतावै। कहै, हम से बलवान्-पुरुषार्थी और नाहीं। ऐसा कहि, अभिमान करै। और जे महान् पुण्यी हैं ते बड़ा भी बल-पराक्रम धार, मान नाहीं करैं। और दीन जीवन की रक्षा करैं। ये तीसरा पुण्यवान् का चिन्ह है ॥३॥ और हीन पुण्यी, महा रौद्र–परणामी, अंतरंग मे तो महा निर्दय भाव, अरु बाह्य लोक दिखावे कौं दान देय, दया करि मान करै। कहै हम दयावान् हैं। और जे दीरघ-भागी हैं वे सहज ही कोमल चित्त के धारी, महा दया भाव करि भी, मान नहीं करैं। ये चौथा पुण्य का फल है ॥ ४ ॥ और अलप पुण्य का धारी, अलप दान देय कैं कहै, हम से दाता और नाहीं। ऐसा मान करै। और दीरघ पुण्यी,

सहज ही चित्त का उदार, दयावान्, बड़ा दान करै भी, मान नहीं करै। ये पुण्य का पांचवां चिन्ह है ॥ ५ ॥ और हीन पुण्यी, अल्प सा ही विरक्त होय मान करै। कहै हम त्यागी हैं, हमें कछु भी वांच्छा नाहीं। और जे बड़भागी-महान् पुण्यी हैं। ते अनेक भोग–सम्पदा पाय, तासैं उदास रहैं। मान नहीं करैं। ये पुण्य का छट्ठा चिन्ह है ॥ ६ ॥ जो इन षट् बातन में मान नहीं करै, सो ये पुण्य का फल है। इति षट् गुण। सो ये भगवान् विषैं पाईये है। भगवान्, राज्य अवस्था में इन्द्र के ल्याये अनेक आभूषण--रत्न मई आभूषणन कौं अलंकृत करि, भूषणन कौं शोभा देते भये। सो आचार्य कहैं हैं कि जो अपने आश्रय आवे, ताकौं यशवंत करै, भला दिखावै। भगवान् के तन का आश्रय आभूषणन ने लिया, सो आभूषण भले शोभते भये। तिन सर्व आभूषणन में मुख्य हार है। सो हार के अनेक भेद हैं। सो ही कहिये हैं। हार के तीन भेद हैं, एकावली जिष्टी हार, रत्नावली जिष्टी हार, और अपवृत्तक। ये तीन भेद, हार के हैं। तहां जिष्टी के पांच भेद हैं। सीरख, उपसीरख, अवघाट, प्रकांडक और तरल-प्रबंध। ये पांच जिष्टी हार के भेद हैं। सो जिष्टी नाम लड़ी का है। हार में जेती लड़ी होंय, तिन कौं जिष्टी कहिये। सो लड़ के पांच भेद हैं। तहां जिस हार में केवल मोती ही मोतीन की लड़ी होंय, सो एकावली जिष्टी हार कहिये ॥ १ ॥ और जाके मध्य में तो मणि होय और दोय तरफ मोती होंय, सो रत्नावली नामा जिष्टी हार है॥ २ ॥ और जामें दोय मोती एक मणि, ऐसे जो लड़ी पोई होय। केई में तीन मोती, एक मणि। तीन–तीन मोतीन

के अन्तर में एक–एक मणि होय। तथा च्यारि–च्यारि मोती और एक मणि पोई गयी होय। तथा पांच–पांच मोती और एक मणि ऐसे पोई गई होय, सो इनका नाम अपवृत्तक है। यहां मणि के दोय भेद हैं। एक मणि, और दूसरा माणिक्य। तहां जामें छिद्र होय, सूत में पोई जाय, सो तो मणि कहिये। और जो छिद्र रहित होय, स्वर्ण में जड़या जाय, सो माणिक है। सो जा लड़ी में एक मोती, एक मणि और एक माणिक्य होय, सो भी अपवृत्तक नाम हार है ॥३॥ और जहां जा लड़ी के सर्व मोती तो बराबर के होंय, अरु मध्य में एक बड़ा मोती होय। ताकों सीरख नाम लड़ी का हार कहिये ॥ १ ॥ और जामें मध्य में तीन बड़े और अन्य बराबर के मोती होंय, सो उपसीरख कहिये है ॥२॥ और जाके मध्य में पांच बड़े मोती होंय, सो प्रकाण्डक नामा जिष्टी हार कहिये है ॥३॥ और जाके मध्य का मोती तो बड़ा होय। और दो तरफ के मोती क्रम तें छोटे-छोटे होंय, सो अवघाटक नाम जिष्टी कहिये ॥ ४ ॥ और जामें सर्व मोती समान होंय, सो तरल-प्रबंध नाम जिष्टी है ॥ ५ ॥ ये पांच जाति की लड़ी, हारन में होय हैं। सो तिन हारन के ग्यारह भेद हैं। सो ही बताईये हैं। तिनके नाम-अर्ध मानव, मानव, अर्ध गुच्छ, निपत्रमालिका, गुच्छ, रम्यकलाप, अर्ध, देवछंद, हार, विजयछंद, और इन्द्रछंद। ये ग्यारह प्रकार के हार हैं। सो इनके पहिरने हारेन के पदस्थ कहिये हैं। तहां दश लड़ी का हार, सो तो अर्ध मानव हार है। १। और बीस लड़ी का हार, सो मानव नाम हार है। २। और चौबीस लड़ी का हार, सो अर्ध गुच्छ हार है। ३। और सत्ताईस लड़ी का हार, सो निपत्रमालिका हार है। ४।

और बत्तीस लड़ी का, गुच्छ नाम हार है। ५। और चौवन लड़ी का, रम्यकलाप नाम हार है।६। और चौंसठ लड़ी का, अर्ध हार है।७। और इक्यासी लड़ी का, देव छंद नाम हार है।८। और एक सौ आठ लड़ी का हार, सो हार नामा हार है।९। और जो पांच सौ च्यारि लड़ी का होय, सो विजय छंद नामा हार है।१०। और एक हजार आठ लड़ी का होय, सो इन्द्र छंद नामा हार है।११। ये ग्यारह भेद कहे। सो इनमें पहिले कहे जो नव भेद, सो इन हारन कों महा मण्डलेश्वर राजा तांई पदवारे पहिरैं हैं। और दशवां विजय छंद हार कों नारायण-प्रतिनारायण पद के धारी पहिरैं हैं। और जो इन्द्र छंद नामा हार है सो देव, इन्द्र, चक्री पहरैं। ये भगवान् के निकटवर्ती सेवक हैं, सो ये पहिरैं। तथा इन देव-इन्द्रन के नाथ तीर्थंकर पहिरैं। एक हजार आठ लड़ी का हार, देवोपुनीत है। ताहि पहिरैं जिन देव ऐसे सोहते भये, मानों सर्व ज्योतिषी देव मिलि कैं, भगवान् की भक्ति करवे कौं, निकट ही आये हों। ऐसे भगवान् बहुत काल पर्यंत राज्य करि, ता पीछे तप लेय, केवल-ज्ञान पाय, समोशरण सहित विहार कर्म करि, धर्मोपदेश देते भये। तिसकूं सुनि बारह सभा के धर्मार्थी जीव, धर्म-मारग लागते भये। सो तिन बारह सभा के नाम कहिये हैं। प्रथम सभा में कल्पवासी देव, दूसरी में ज्योतिषी देव, तीसरी में व्यन्तर, चौथी में भवनवासी देव, पांचवीं में कल्पवासी देवियां, छठी में ज्योतिषी देवांगना, सातवीं में व्यंतर देवों की देवियां, आठवीं मे भवनवासी देवियां, नववीं सभा में मुनि, दसवीं में अर्यिका व सर्व स्त्री, ग्यारहवीं में मनुष्य,

बारहवीं में सर्व जाति के सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच। इन बारह सभा सहित, भगवान् मोक्ष-मारग प्रगट करते, जगत्-जीवन के पुण्य के प्रेरे, उन के कल्याण के अर्थि, विहार करते भये। सो अनुक्रम तैं कैलाश पर्वत पर आये। जब भगवान के निर्वाण होने में चौदह दिन बाकी रहे, तब भरत चक्री आदि आठ मुख्य महान् राजा, तिनकूं शुभ स्वप्न भये। तिनके नाम व चिन्ह बताइये हैं। जिस दिन भगवान ने योग निरोधे, उस दिन की रात्रि विषै भरतेश्वर चक्री कूं ऐसा स्वप्न हुआ। कि मानो सुमेरु पर्वत ऊंचा होय, सिद्ध क्षेत्र तैं जाय लग्या है ॥ १ ॥ और भरत जी के पुत्र अर्ककीर्ति, ताकूं ऐसा स्वप्न भया। कि स्वर्ग लोक के शिखर तैं एक महान् औषधी का वृक्ष आया था, वह जगत्-जीवन के जन्म-मरण का दुख खोय कैं, अब लोक के शिखर जायवे कौं उद्यमी भया है ॥ २ ॥ और भरत चक्री का गृहपति-रतन, तिस कूं ऐसा स्वप्न भया, कि ऊर्द्ध लोक तैं एक कल्पवृक्ष आया था, वह जीवन कौं मन-वांछित फल देय कैं, पीछा स्वर्ग लोक के शिखर जायगा ॥ ३ ॥ और चक्री का मुख्य मंत्री, ताकौं ऐसा स्वप्न आया। कि लोकन के भाग्य तैं एक रतन दीप आया था, सो जिनकूं रतन लेवे की इच्छा थी तिनकूं अनेक रतन देय कैं, पीछे ऊर्द्ध लोक कौं गमन करेगा ॥ ४ ॥ और भरत जी के सेनापति कौं ऐसा स्वप्न आया। कि एक अनंतवीर्य का धारी मृगराज, अद्भुत पराक्रमी, सो कैलाश पर्वत रूपी वज्र का पींजरा ताकौं छेद करि, ऊर्द्ध विषैं उछलवे कौं उद्यमी भया है ॥ ५ ॥ और जयकुमार जी का पुत्र अनंतवीर्य, ताकौं ऐसा स्वप्न आया।

कि एक अद्भुत् चंद्रमा, अनंत कला का धारी, जगत विषैं उद्योत करि, तारानि सहित, ऊर्द्ध-लोक कौं जायवे कौं उद्यमी भया है ॥६॥ और भरत चक्री की पटरानी सुभद्रा ताकूं, ऐसा स्वप्न आया। कि वृषभदेव की रानी यशस्वती अरु सुनंदा ये दोऊ, तथा इन्द्र की पटरानी शची ए तीनों मिलकर बैठी, सोच करती हैं ॥ ७ ॥ और काशी देश का राजा चित्रांगदत्त कौं ऐसा स्वप्न आया। जो अद्भुत तेज का धारी सूर्य, पृथ्वी विषैं उद्योत करि, ऊर्द्ध लोक कौं गया चाहै है ॥८॥ ऐसे आदिनाथ स्वामी के निर्वाण सूचक आठ स्वप्ने, आठ पुरुषन कौं आये। जिन स्वप्नों का स्मरण-पाठ किये, भव्यन का कल्याण हो है। ये श्री आदि देव, पृथ्वी के आदि-नायक भये। इनतैं ही धर्म की मर्यादा चली है। तातैं ये भगवान् सर्व जगत् के नायक हैं। सो नायक के तीन भेद हैं। सो ही बताईये हैं। तिन के नाम-देश नायक, घर नायक और मन नायक। अब इनका अर्थ-जो देश नायक तौ राजा है। सो देश का राजा धर्मी होय, तौ देश के जीवन कूं धर्म-राह लगाय, धर्मी करै। और देश में जो धर्मी, दान, पूजा, शील, संयम, तप के धरनहारे, तिनकी रक्षा करै। और जे अपने देश में पापी, अन्यायी, चोर, दुराचारी, जीव होंय, तिन कूं दंड देय। सो तौ देश नायक धर्मात्मा कहिये। और जो देश-नायक पापी होय, तौ पाप कौं अपने देश में विस्तारै। चोर, चुगल, अन्याय पथ के चलनेहारे जीव तिन की रक्षा करै। अरु ता देश में साधु पुरुष, भले मारग के चलनहारे, तिनकूं पीड़ा होय। तातैं जैसा देश नायक होय, तैसा ही देश में चलन प्रगटै। ये तौ देश नायक जानना ॥१॥ और जो देशनायक पापार्थी

होय, पाप बन्ध करै। ताकी तो सो ही जानैं। परन्तु देश में घर बहुत होय हैं। सो जा घर विषै
सर्व कुटुम्ब का रक्षक, जो सर्व कौं अन्न-वस्त्र देय सब की रक्षा करै, सो घर नायक कहावै। सो
घर नायक धर्मात्मा होय, तौ सर्व घर कौं धर्म रूप चलावै, सब का भला करै। और घर नायक
पापी होय तौ ताके घर-जन भी पाप रूप प्रवृत्तैं। ए घर नायक कह्या ॥ २ ॥ और घर
नायक कदाचित् पापी होय, तौ होऊ। ताका फल वही भोगवेगा। परन्तु मन नायक आत्मा
है। सो जाका आत्मा भली गति का जानेहारा होय, सो अपने मन कौं सदैव धर्म रूप
राखै। और जाका आत्मा पापी होय, सो अपने मन कौं आर्त-रौद्र रूप राखै। पाप बन्ध
करि पर भव बिगाड़ै है ॥ ३ ॥ ऐसे ये नायक के तीन भेद कहे। सो देश नायक, घर नायक,
तौ अपने पुण्य के प्रमाण रहना योग्य है। और मन नायक सदीव है, सो अपने मन कौं सदा-
काल धर्म रूप राखना उचित है। इति नायक के तीन भेद। आगे अणुव्रती श्रावक के तीन
भेद हैं। पाक्षिक, साधक और नैष्ठिक। अब इनका विशेष दिखाईये है। जे धर्मात्मा
पुरुष राजादिक, बड़े बल के धारी, धर्म की रक्षा तथा धर्मी जीवन की रक्षा के
करनहारे, जिन के राज्य में धर्मात्मा जीवन कूं कोई पीड़ित नहीं करि सकै। महा
धर्मात्मा, धर्म के पक्षी, इन्हें पाक्षिक श्रावक कहिये। जैसे तीर्थंकर, चक्री, अर्द्ध चक्री,
कामदेव, प्रति चक्री, बलभद्र, महा मण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर, इत्यादिक महान् राजा, पृथ्वी नाथ,
दया मूर्ति, न्याय मार्गी, जिनके भय तैं कोई क्रूर जीव, धर्म कूं-धर्मी जीवन कूं सता नहीं सकैं।

मुनि-श्रावकन कों कोई दुष्ट पीड़ा नहीं करि सकैं। चैत्यालयन का बन में कोई अविनय नहीं करि सकै। ऐसा जिन का भय का कोई कुवादी भूठा नय-दृष्टान्त देय, सत्य धर्म तैं भूठे धर्म की प्रवृर्ति चाहै, तौ अपने ज्ञान के प्रकाश तैं, बुद्धिके बल तैं, न्याय मार्ग करि, सर्व जगत जीवन के कल्याण कूं कुधर्म उखाड़ि, सुधर्म प्रवृत्ति राखै, सो पाक्षिक श्रावक है। इनके राज्य में पाप नहीं बधै ॥१॥ दूसरा साधक—जे धर्मात्मा श्रावक, जिनकों धर्म साधन करते बहुत काल भया। सो इन्द्रिय-भोगन तैं विरक्त होय, तन के जीतव्य तैं निष्प्रह भया, अपना आयु-कर्म नजदीक जान कैं, ए मोक्षाभिलाषी, पर-भव सुधारवे कौं, सर्व जीवन तैं क्षमा—भाव करि, अरु घर, धन, धान्य, कुटुम्बादि स्व-पर जन तैं मोह—ममता भाव तजि, अपनी काय तैं ममत्व छोड़ि, च्यारि प्रकार का आहार त्याग, पञ्च परमेष्ठी का स्मरण करता, तत्वन का विचार करता, धर्म—ध्यान सहित सन्यास लेय, तिष्ठया याति ऋषि होय। सो साधक जाति का श्रावक है ॥ २ ॥ और तीसरा भेद नैष्ठिक, ताके ग्यारह भेद हैं, सो बताईये है ॥ प्रथम नाम—

गाथा—दंसण वय सामायो, पोसय सचित्त रयण भख त्यागो।
बंभारंभ हेय परिग्गह, अणमत्त उदिट्ठ त्याज सागारो ॥ १३६ ॥

अर्थ—दंसण वय सामायो कहिये, दर्शन व्रत सामायिक। पोसय सचित्त रयण भख त्यागो कहिये, प्रोषध सचित्त व रात्रि भोजन त्याग। बंभारंभ हेय परिग्गह कहिये ब्रह्मचर्य्या, आरंभ त्याग, परिग्रह त्याग। अणमत्त उदिट्ठ त्याज सागारो कहिये अनुमति त्याग, उद्दिष्ट त्याग

ये ग्यारह भेद नैष्ठिक श्रावक के हैं। भावार्थ—ये ग्यारह प्रकार प्रतिज्ञा, पञ्चम गुणस्थान धारी नैष्ठिक श्रावक की हैं। तहां जाके सम्यक्त्व को पच्चीस दोष नाहीं लागैं और सप्त व्यसन का त्याग व पंच उदम्बर, तीन मकार, इन आठ का त्याग, सो अष्ट मूल-गुण हैं। सो इनके अतिचार रहित शुद्ध व्रत, सो प्रथम दर्शन-प्रतिज्ञा है। अब इनके अतिचार कौं बताईये हैं। सो प्रथम सम्यक्त्व के अतिचार कहिये हैं। सम्यक्त्व के आठ दोष, मद दोष आठ, अनायतन षट् और मूढ़ता तीन। इन पच्चीस के होते सम्यक्त्व मलिन हो है। सो इनका स्वरूप ऊपर कह आये हैं। और द्यूत, मांस भक्षण, सुरा पान, वेश्या गमन, शिकार (जीव वध करना), चोरी (बिना दिया धन लेना) और पर स्त्री सेवन, ये सात व्यसन हैं। सो जामें आत्मा के भाव बहुत एकाग्र होय मगन होना, सो व्यसन है। ताके सात भेद कहे। इनमें द्यूत, मांस, सुरापान, चोरी और शिकार, इन पांच व्यसन का पाप तौ लोभ कषाय तैं होय है। और वेश्या, परदारा, इन दो व्यसन का पाप काम—कषाय तैं होय है। ये व्यसन, कषायन तैं होंय हैं। सो कषाय बताईये हैं। हे भव्य! लोभ और काम ये दोऊ कषाय, सर्व पापन का बीज जानना। जगत में जेते पाप हैं ते इन दोई कषायन तैं होंय हैं, ऐसा समझ लेना। इन लोभ अरु काम के वशि जीव, पिता पुत्र कौं मारै। पुत्र, पिता कौं मारै। भाई, भाई कौं मारै। तातैं सर्व दुख, संकट और अपयश का मूल ये कषाय हैं। देखो, काम के माहात्म्य तैं रावण मरा, और लोभ तैं भरत चक्रवर्ती का मान भंग भया।

इत्यादि अनेक स्थानन पै लगाय लेना। सो जेते पाप हैं तेते सर्व काम और लोभ तैं होय हैं। तातैं इन काम अरु लोभ तैं उपजे सात व्यसन, सो ये भी महा पाप का मूल हैं, ऐसा जानना। और वड़ फल, पीपल फल, उदम्बर फल, कठूम्बर फल और पाकर फल, ये तो पंच उदम्बर हैं। मद्य, मांस, मदिरा ये तीन मकार हैं। ये आठ हैं, सो इन के अतिचार सप्त-व्यसन में गर्भित हैं। सो जान लेना। तिनका आगे कथन करेंगे। अब प्रथम ही द्यूत व्यसन के अतिचार कहिये हैं। तहां चोपड़ का खेल है, जो असत्य का मन्दिर, कुफ़र का बोलनेहारा, द्यूत खेल है। और सतरंज है सो ता विषैं ऐसे पाप वचन, मन का विकल्प रहै है जो राजा मारौं, हाथी मारौं, घोड़ा मारौं, ऊट मारौं, वजीर मारौं, पयादा मारौं। इत्यादिक मन-वचन-काय करि पंचेन्द्रिय के घात रूप भाव-चेष्टा करनहारा, सतरंज जुआ है। और नरद का खेल है, सो दीरघ द्यूत का कारण है। और गंजफा का खेल है सो ता विषैं राज्य के राज्य हारिये है। महा दगावाजी के या खेल तैं कुभावना रहै है, ये भी द्यूत है। और मूठी जो आप दाव लगाय खेले, सो प्रत्यक्ष निंदा का कारण द्यूत है। और परस्पर होड़ लगाय के रमना, सो द्यूत है। और मूठी भर के ऊंना-पूरा मांगना, सो द्यूत है। और कौड़ी नभ में वगाय(फैंक), उल्टी-सूधी नाखि, हारि-जीत करना, सो भी द्यूत है। और नव कंकरीन तैं चिरभरि (बग्घा) खेलना भी द्यूत है। और षोडस कांकरीन तैं राजा-रानी खेलना, सो द्यूत है। और होड़ लगाय मुट्ठी तैं नारियल फोड़ना, और हाथ तैं लाठी-लकड़ी

तोड़ना, सो भी द्यूत है। और पैद (होड़) वदि कैं पाषाणादि भार उठाना, सो भी द्यूत है। और भीती उछलना, सो भी द्यूत है। और कुंआ, बावड़ी, दीवालादि पैद लगाय कें कूदना, सो जुआ है। और होड़ लगाय मार्ग चलना-भागना, सो भी द्यूत है। और कौं खेलते देखना, सो भी द्यूत सम पाप है। और द्यूत कार्यन तैं व्यापार करना, सो द्यूत सा पाप है। और ज्वारी पै तैं जीति लेना, सो द्यूत सम पाप है। और द्यूतकार की वस्तु सस्ती देख, लेना। इन आदि क्रियान में द्यूत समान पाप उपजै है। और ज्वारी की वस्तु गहना राखि, बहुत व्याज लेना। और भी जे द्यूत समान पाप की करनहारी क्रिया, सो विवेकीन कों तजना योग्य है। द्यूतकारन का संग ही सर्व प्रकार पापकारी है। विष व शस्त्र तैं घात भली, सर्प के मुख में हस्त देना भला, परन्तु द्यूत-संगति भली नाहीं। कैसी है द्यूत संगति, जातैं प्रतीति जाय, धन जाय, लोक विषैं अनादर होय, बड़प्पन नाश होय, अगला किया पुण्य नाश होय। तातैं हे भव्य ! ये द्यूत-संग भला नाहीं, तजना ही योग्य है। इस द्यूत के रमने तैं लोक, चोर-ज्वारी कहैं। तातैं ये द्यूत, सर्वथा अपयश की मूर्ति-खानि ही जान, इसका निवारना भला है। ये द्यूत, सर्व पापन का गुरु है। याके फल, आत्मा नरक दुख कौं पावै, घने कहने करि कहा। तब यहां कोई विवेकी-द्यूतकार प्रश्न करता भया। जो द्यूत कार्य और तौ हमने भी बुरे जानै, परन्तु चौपड़ कूं जुआ में कही, सो इस में कहा पाप है? ताका समाधान-जो हे भव्य ! एक तौ चौपड़, झूठ वचनन की खानि है।

और कुफर-लज्जा रहित वचन यामैं बहुत होंय हैं। मुख तैं मार ही मार शब्द निकसै। चित्त, दगा रूप रहै। चोर समान प्रवृत्तै। तातैं इन आदिक बड़े पाप, या चौपड़ में हैं। तातैं तजने योग्य कही है। तब द्यूतकार फेरि प्रश्न करता भया। जो चौपड़ हमने बुरी जानी। परन्तु सतरंज में पाप कहा है, सो कहो। तामैं मौन सहित, वचन रहित, नेत्रन तैं देखना हो है। सो पाप कैसे है? ताका समाधान-जो हे भ्रात! सतरंज विषैं चौपड़ तैं विशेष पाप है। सो तैं सुनि। या विषैं परणति अरु वचन तौ रौद्र—भाव रूप रहैं हैं। ऐसे भाव रहैं हैं, जो बादशाह तैं वजीर जीतौं। हस्ती तैं, घोटक मारौं। इत्यादिक पंचेन्द्रिय घातक भाव रहैं हैं। तिनही के मारवे का विकल्प रहै है। सो ऐसे भावन मैं तौ नरक जाय। तातैं विवेकीन कौं सतरंज तजना ही योग्य है। तब फेरि भी द्यूतकार ने प्रश्न किया। जो सतरंज पापकारी है, सो हमें भासी। परन्तु गंजफा में कहा पाप? सो कहो। ताका समाधान-जो हे भाई! तू विचार। जो कोई दोय कौड़ी हारै, तौ लोक कहैं, यह बड़ा ज्वारी है। और वाकों भी चिन्ता होय, जो मैं हास्या हों। ताके भी योग तैं जगत में अपयश पावै। तो हे भाई! जो गंजफा के खेल में राज्य के राज्य हारै, ताकी चिंता अरु पाप की कहा कहनी! और जहां अशर्फी हास्या, रुपया हास्या, तरवार हास्या, बगीचे हास्या, स्त्री हास्या, गुलाम हास्या, सिर का ताज हास्या, इत्यादिक सर्व घर का सरजाम स्त्री—वाहनादि धन हारे। ताके दुख की-पाप की कथा, कहां—तांईं कहिये! तातैं कुगति दुख तैं डरि, गंजफा भी तजना योग्य है। तब द्यूतकार ने कही। गंजफा

भी पाप रूप है, सो हमने जान्या। परन्तु अल्प से धन से मूठि-दाव विषैं खेलना, यामैं कहा पाप ? सो कहो ? ताका समाधान-जो हे भव्य ! मूठी का खेल है सो लौकिक में लुच्चेन का है। सो प्रथम तौ जो देखै, सो लुच्चा कहै। चोर-ज्वारी कहै। और हारै, तौ चोरी करने का उपाई होय। तातैं हे भव्य ! ऐसे भावन में बड़ा पाप होय। यामें ऐता पाप लेके, अपयश लेके खेलिये, सो बड़ाई कहा? सो विचार देखो। इस भव निंदा, अरु पर-भव दुर्गति के दुख होंय। तातैं तजना ही योग्य है। तब द्यूतकार बोल्या। जो जुवा तौ पाप-मई जान, मैंने तजा। परन्तु ब्याज के निमित्त द्यूतवारेन कूं कर्ज देना, यामैं पाप कहा ? ताका समाधान-जो हे भव्यात्मा ! द्यूत का धन ही महा पापकारी है। जैसा पाप, द्यूत रमने में होय। तैसा ही पाप, ताके धन लेने में होय है। तातैं मन, वचन, काय करि तजना योग्य है। तब द्यूतकार का चित्त द्यूत में पाप जानि, शंका कौं प्राप्त भया—डरया। तब फेरि प्रश्न किया। जो जुआ में तौ पाप है, सो हमने तजा। परन्तु जीते पै लेंय, तामैं तौ पाप नाहीं है ? ताका समाधान-जो हे भाई ! आप को देनेहारा होय, ताकी तौ जीत चाहै। आपकौं नहीं देय, ताकी हार चाहै। ऐसे पर की हार-जीत रूप परणाम राखै। सो अल्प लोभ के योग के निमित्त तैं, पराया बुरा चाहै। सो पापी ही जानना। तातैं जीते पै द्रव्य लेना, योग्य नाहीं। तब द्यूतकार कही, द्यूत की जीत का माल भी नहीं लेंय। परन्तु हमारे घर विषैं ठाम बहुत है, सो रात्रि कौं बैठने कौं जगह देय, भाड़ा प्रमाण, जीते पै द्रव्य लेंय, तौ कहा दोष ? सो कहो। ताका समाधान-हे भाई, द्यूतकार कौं घर ल्याय जुवा खिलावै। सो तो प्रत्यक्ष पाप है। तिनका

सहाई होय जुवा रमावै, सो द्यूत कैसा पाप पावै है। हे भव्य, जाका संग किये ही पाप लागै। तौ घर ल्याये, मंगल कहां तैं होय? तातैं घर ल्याय, सहाय करि द्यूत रमावना, योग्य नाहीं। तब द्यूतकार ने कही, घर ल्याये भी पाप है, सो जान्या। सो नहीं ल्यावै। परन्तु हमारी देखने की अभिलाषा रह्या करै है, सो देखने में पाप कहा? ताका समाधान-हे भाई! देखने में पाप बहुत है। खेलनहारे का तौ घर-धन लागै है। सो तो व्यसनी होय, लज्जा छोड़ि, जग-निन्दा अंगीकार करि, द्यूत खेलना शुरू किया। सो तो लोभ के योग तैं, ताकौं तौ अर्थ-पाप लागै है। और देखनेहारे का आवना-जावना तो कछु भी नाहीं। अरु वृथा ही-बिना प्रयोजन, पाप विषैं काल लगावै। सो याकौं अनर्थदण्ड-पाप होय है। सो अर्थ-पाप तैं अनर्थ-पाप का फल, विशेष दुखदाई जानना। ऐसा जानि, द्यूत देखना भी तजना योग्य है। तातैं द्यूत देखना, द्यूत खेलना, द्यूत का ब्याज लेना इत्यादिक द्यूत के सर्व कार्य, पाप के दाता हैं। हे भव्य! ये द्यूत, सर्व पाप का राजा है। निन्दा-अपयश का समूह है। याकै रमैं, निरादर होय है। द्यूत, कोई प्रकार भला नाहीं। आगे पाण्डव-युधिष्ठिर ने द्यूत-क्रीड़ा करी। ताके फल राज्य गया। वनवास रहे। दुख पाया। अपयश बधा। औरों ने भी जगत विषैं प्रगट देखा, जो द्यूतकार की महिमा नहीं, निन्दा ही हो है। तातैं हे भव्य हो, तुम अपने विवेक तैं विचार देखो। जो द्यूत खेले तैं यश होय, पुण्य होय, तौ करौ। नहीं तो तत्त्क्षण ही तजौ, बहुत कहने करि कहा। ऐसा जानि, धर्मात्मा सम्यग्दृष्टी श्रावकन कौं ये

द्यूत-व्यसन, अतिचार सहित तजना योग्य है। इति द्यूत व्यसन।

आगे आमिष व्यसन कहिये है—हे भव्य, ये आमिष है सो जीव-हिंसा तें तो उपजे है। फिर मृतक-जीवन का कलेवर है। महा ग्लानि का पिंड है। जिसके देखते ही चित्त मुरझाय जाय। और सात धातून का निषिद्ध मैल है। ताकौं खानेहारे किस तरह खांय हैं? हे भव्यो, देखो। जो कान का मैल, नाक व मुख का मैल लग जाय। तो जल लेय, मिट्टी तें धोय, शुद्ध करें। तौ भी घिन नहीं जाय है। सो ये तो मृतक पशु का मल-आमिष खांय हैं। ऐसी मलिन वस्तु, ऊंच-बुद्धि नहीं लेय हैं। जो आमिष खानेहारे हिंसक जीव हैं। सो बताइये हैं-सिंह, स्याल, मार्जार, सुअर, श्वान, चीता, काक, चील्ह, बाज, बिसमरा, सर्प, सीगोस इत्यादिक दुष्ट जीव हैं, ते मांस खांय हैं। मनुष्य होय, ऐसी मलीन वस्तु छीवने योग्य भी नाहीं। सो कैसे खांय हैं? और कदाचित् मनुष्य होय, मांस खांय हैं। तो भील, चांडाल, कसाई, कोली, चमार इत्यादिक नीच कुल के उपजे, अस्पर्श-शूद्र ही मांस खांय हैं। तिनमें भी केतेक उज्ज्वल-बुद्धि, पाप तें डरनेहारे, कोमल परणामी शूद्र भी, प्रभु कौं भजें हैं। तिलक-छापे करैं हैं। ते आमिष नहीं खांय हैं। अशुचि-बुद्धि निर्दयी खांय हैं। सो भी कहा जानैं, ऐसी दुर्गंधित-वस्तु कैसे खांय हैं? कैसा है आमिष पिंड, ग्लानिकारी है। जिसकी बिना गंध लिये, देखै ही चित्त दुखी होय, सो खांय कैसे? सो ताकी तेही जानैं। परन्तु ऐसा अशुचि मांस-पिंड खावना, नीच-कुली का प्रगट चिन्ह है। और जे ऊंच-

कुल के उपजे क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य, ये उत्तम वंश के हैं। सो इन वंशों के उपजे भव्यात्मा, उज्ज्वल आचारी हैं। सो आमिष कौं छीवैं भी नाहीं हैं। जो दयावान पुरुष हैं सो तौ ऐसी वस्तु देखते ही, भागें हैं। तथा जे भव्यात्मा आमिष त्यागी हैं, सो अपने व्रत की रक्षा कौं ऐती वस्तु नहीं खांय हैं, जिनके खाये मांस का दोष लागै। त्रस जीवन के कलेवर का नाम मांस है। तातैं जा वस्तु में त्रस जीव उपजैं, तथा जो त्रस का कलेवर होय, सो वस्तु आमिष त्यागी नहीं खांय हैं। सो जहां-जहां त्रस उपजैं तथा त्रस का कलेवर है, तेते स्थान बताईये हैं। सो अनगाल्या जल में, दुहे पीछे दोय घड़ी उपरांत के कच्चे दूध विषैं और मर्यादा पूर्ण हुए आटे विषैं, इनमें त्रस जीवन की उत्पत्ति है। सो आमिष त्यागी, ये तीन वस्तु नहीं खांय। और चर्म का तेल-घृत-जल इन आदि और रस जाति वस्तु, त्रस जीव की उत्पत्ति का स्थान है। तथा रात्रि का पीसा आटा, अन बीन्धा अन्न, फफूंड़ी वस्तु, रात्रि की पकायी हल्वाई के घर की बनी वस्तु, दूकानदार की दूकान—बिकता आटा, हींग, मधु, इत्यादिक वस्तु, आमिष त्यागी नहीं खांय। और ओला, घोरबरा, निशि भोजन, बैंगन, बहु बीजा, संधाणा, बड़ फल, पीपल फल, उदंबर फल, कठूम्बर फल, पाकर फल, कंद मूल, मिट्टी, बिष, आमिष, मधु, मक्खन, मदिरा, तुच्छ फल, अचार, चलित रस और अजान फल। ये बाईस अभक्ष आदि वस्तु आमिष त्यागी नहीं खाँय। और रात्रि बसी काँजी और गुड़-दही मिलाय कें व द्विदल दाल, दही तैं मिलाय नहीं खांय। साधारण फल-फूल-बौंड़ी ये वस्तु आमिष त्यागी नहीं खांय।

और भी जे अभक्ष, इस विवेकी के ज्ञान में आवैं, सो अपने व्रत की रक्षा के निमित्त, अतिचार जानि, नाहीं खाय। ये आमिष व्यसन, महा पाप का स्थान जानना। और भी देखो। मांस-भक्षी कौं संसार निंदै है। और केतेक महा जिभ्या लोलुपी, जिनके कुल में मांस नहीं लेंय। सो जीव, मांस की नकल की तरकारी बनाय खावैं हैं। तिनकौं भी आमिष खाये का सा दोष लागै है। मांस-भक्षी कौं नरक में ताका तन काटि, ताही कौं खुवावैं हैं। तातैं आमिष कौं विवेकी नहीं तौ खांय, नहीं खाते देख अनुमोदना करैं, नहीं अपने व्रत कौं अतीचार लगावैं। सो आमिष-त्याग व्रत जानना। इति आमिष व्यसन ॥ २ ॥

आगे सुरापान व्यसन लिखिये है। जो मन–वचन–काय करि सुरापान में रत होय, ताकौं मदिरा व्यसन कहिये है। सो जे विवेक के धारी व यश के लोभी हैं ते या व्यसन कौं तजैं हैं। और जे लज्जा रहित, अज्ञानी, नीच कुली पुरुष हो हैं, ते सुरापान को लेंय हैं। ये व्यसनी महा मूरख, दाम कूं खोय निंदा उपार्जें हैं। इस मदिरापान के करनहारे जीव, महा-कठोर परणामी होय हैं। अनेक वस्तु मिलाय, तिन सर्व कौं कूटि, एक जल–कुंड में डालि सड़ावैं हैं। ता विषैं कुछ दिन में कीटि पड़ि चलैं हैं। जल में दुर्गंध चलै, तब उस जल कूं सर्व जीवों सहित यंत्र में डालि, अग्नि पे चढ़ाय, ताका अर्क काढ़ैं। ऐसी जो मदिरा, ताकौं विवेकी, उत्तम आचारी, शुभ कुली नहीं खांय हैं। जाके पिये बुद्धि जाय, वचन प्रतीति जाय, लोक जो देखें सो धिक्कारें। जो ऐसा जानि कैं भी मदिरा नहीं तजैं, तिन की समभ्कि कौं

विवेकी निंदैं हैं। मद्यपायी, पाप के योग तैं नरक जाय है। तहां ताका मुख चीरि, ताती-ताती धातु गालि, ताकौं पियावैं हैं। यहाँ प्रश्न—नरक में धातु कहां है ? ताका समाधान—वहां धातु तो नाहीं, परन्तु जीवन के पाप करि, तहां के पुद्गल परमाणु गलि, धातु तैं ही असंख्यात गुणी अधिक उष्णता रूप, धातु के आकार होय हैं। सो धातु पिवाय कैं ते नारकी, मद्यपायी कौं पाप यादि करावैं हैं। कि जो पर-भव में तैंने सुरापान किया, सो ताका फल इस लोक में ऐसा होय है। और इस मदिरापायी कैं बुद्धि का अभाव होय है। मद्यपायी के वचन की प्रतीति नाहीं। मद्यपायी कैं पुरुषार्थ का अभाव होय है। यह पग—पग पै मूर्च्छा खाय पड़ै है। मद्यपायी का किया धर्म, विफल होय है। शीश तैं पगड़ी पड़ै। वस्त्र फटैं। मर्याद रहित, मुख आवै सो बकै। माता, स्त्री, भगिनी, पुत्री का ज्ञान नाहीं, सर्व कौं एकसा देखै। खाद्य—अखाद्य का ज्ञान-रहित होय। इत्यादिक पाप व निंदा का स्थान मदिरा, ताका त्याग करना योग्य है। और जिनतैं अपने व्रत कौं अतीचार लागै, सो भी तजना योग्य है। सो दारू के अतीचार कहिये है—भांग, तमाखू, गांजा, ककड़, चरस, पाकादिक विषय—पोषण के निमित्त वस्तु का खावना। सो दारू का सा दोष है। और खम्मीर राखी वस्तु, जौ की जलेबी, अनगाले जल का मही, और जे बहुत दिन की रस—वस्तु होय, सो खाये तैं मदिरा समान दोष कं उपजावै है। और अर्क, गुलाब जल, ये मदिरा सम हिंसा उपजावैं हैं। और सिंगिया बिष, सौंठिया बिष, हल्दिया बिष, सोमला खार, इत्यादिक बिष जाति, मदिरा सम दोष उपजावै है। और कोई

कूं मदिरा पीयवे की इच्छा होय, तो इहां मद्य कूं देख लेवे। पीछे कछू बड़ाई होय, तो पीवना। हे भव्य, कोई नेत्र रहित अंध होय है। परन्तु मद्यपायी है, सो नेत्र सहित अंध है। मद्यपायी कूं सर्व ऐसा कहैं हैं कि यह ख़ब्त (पागल) है। मद्यपायी की करी धर्म-क्रिया, विफल होय है। कै तौ मद पीवनेहारा ख़ब्त कहावै, कै वायु—सन्निपात रोग सहित बोलनेहारा ख़ब्त कहावै। तथा हौल-दिल होय गया होय, सो ख़प्त कहावै। ये तीनों एकसे हैं। इनकों दिवाने कहिये, बेसुध कहिये। इत्यादिक मद्य लेने में जगत निंदा होय, घर धन जाय, सो प्रसिद्ध है। और देखो, जो दारू पीय कैं कोई ने यश पाया होय, तौ बताओ। देखो, यादव-सुतौं ने धोखे तैं मद पीया, सौ सर्व कुल सहित द्वारका का नाश भया। तातैं हे भाई! तेरे घर में धन—दाम बहुत होय, तो जल में डारि दे। परन्तु व्यसन विषैं मत लगावो। हे भव्य, दारू तैं दावानल भली है। अग्नि-प्रवेश भला है। तन विषैं पीड़ा भई भली है। इत्यादिक दुखन तैं एक-एक भव विषैं दुख होय है और दारू तैं अनेक भवों में दुख होय है। तातैं दारू तैं, हलाहल विष भला है, परन्तु दारू व्यसन भला नाहीं। तातैं अनेक प्रकार पापकारी जानि, धर्मार्थी श्रावक कौं अपने व्रत की रक्षा कौं, अतिचार सहित दारू व्यसन का त्याग करना योग्य है। इति दारू व्यसन॥ २ ॥

आगे वेश्या व्यसन कहिये है। कैसी है यह वेश्या, जाके चित्त करि मोह्या गया है कामी पुरुषन का मन, सो ताकैं सदीव धर्म का अभाव है। जो पर के पास का दाम लेय, व्यभिचार क्रिया रूप प्रवृत्ते, सो ताकूं वेश्या कहिये। याकी संगति तैं, चित्त विकल होय है।

या वेश्या के काहू तैं स्नेह नाहीं, एक द्रव्य तैं स्नेह है। जो कोई महा नीच-कुली होय, अरु ताके पास धन होय, तो वेश्या तातैं संगम करै। ग्लानि नाहीं करै। जाका तन विरूप होय, बुद्धि-हीन होय, रूप-हीन होय, अरु तापै द्रव्य होय, तो वेश्या ताका आदर करै, तातैं स्नेह करै। और महा बुद्धिमान् होय, कामदेव—समान रूप का धारी होय, पराये मन का मोहनेहारा होय, ऊंच कुली—बड़े वंश का होय। इत्यादिक गुण सहित, शुभ-लक्षणी होय, अरु कदाचित् धन रहित होय, तो वेश्या के घर जाय आदर नहीं पावै। धन रहित पुरुष तैं वेश्या स्नेह नाहीं करै। याकें धन मित्र है, और नाहीं। तातैं वेश्या का नाम धन—मित्रा भी कहिये है। कैसी है यह वेश्या, जो याका तन भूमि के मार्ग समान है। जैसे मार्ग पै नीच— ऊंच सर्व ही चलैं हैं, तैसे ही वेश्या का तन है। याके तन पर भी नीच—ऊंच सभी जांय। यह वेश्या, महा लोभ की खानि है। धन के निमित्त अपना तन बेंचै है। महा निर्लज्ज है। और निर्लज्ज पुरुषों के भोग का स्थान है। जूंठी पातल समान है। जैसे काहू ने जूठी पातल फैंकी। ताके ऊपर अनेक श्वान चाटवे कूं आवैं हैं। तैसे ही काहू की भोग-नाखी वेश्या रूपी जूंठी पातल, ताके ऊपर अनेक व्यसनी—श्वान आवैं हैं। जगत निंद्य है। तातैं वेश्या के सर्व चिन्ह पापकारी जानि, बुद्धिमान कूं तजना योग्य है! और ये वेश्या, शील वृक्ष के छेदवे कूं कुठार समान है। याका संग किये, धर्म साधन किया था ताका फल,

नाश होय है। तातें विवेकी-धर्मात्मा पुरुषन कौं, वेश्या-संगति तजना योग्य है। और जिन-जिन कार्यन में वेश्या संग किये का सा दोष होय, सो भी कार्य, व्रत के रक्षक धर्मी-पुरुष तजें हैं। सो ही बताईये है। जाके वेश्या-व्यसन का त्याग होय, सो एती जायगा नाहीं जाय। अरु कदाचित् जाय, तौ अपने व्रत कौं अतिचार लागे। जहां वेश्या का स्थान होय, तहां नहीं जावै। और जहां वेश्या-कंचनी का नृत्य, गान, वादित्र होय, तहां नहीं जाय। और वेश्या तैं वाणिज्य नाहीं करै। और वेश्या के मुहल्ले जाय बसना नाहीं। और वेश्या तैं हाँसि, कौतुक, वचनालाप नहीं करै। इत्यादिक कहे जो कार्य, सो व्यसन समान पाप उपजावैं हैं। और वेश्या के तन कौं नहीं निरखै। और वेश्या के हाव-भाव नहीं देखै। ताके गान, रूप, वादित्र, नृत्यादिक नाहीं सुनै-देखै। आगे तिनकी प्रसंशा-अनुमोदना नाहीं करै। बार-बार वेश्या के गुणन की कथा नाहीं करै। ताकी कथा औरन तैं सुनि, हर्ष नाहीं करै। वेश्या का सत्कार नाहीं करै। ताके संगी-कुटुम्बीन तैं हित-भाव नाहीं करै। इत्यादिक वेश्या-सेवन के दोष हैं। सो सर्व का त्याग करतैं ही, अपने व्रत की रक्षा हो है। हे भव्य, वेश्या के संग विषैं गुण नाहीं। याके संग तैं लोकन में अपयश-निंदा होय है। वेश्या का संग, चोरटे-पराये धन के हरनहारे करैं हैं। तथा जे लुच्चे, जुवारी आदि निर्लज्ज पुरुष हैं ते वेश्या के घर जांय हैं। तथा कुलहीन पुरुष ही वेश्या का संग करैं हैं। तथा जाके आगे-पीछे कोई कुटुम्ब नाहीं, सो वेश्या-गमन करै है। देखो, आगे चारुदत्त सेठ-पुत्र

ने वेश्या का संग किया था। सो वेश्या ने ताका सर्व घर-धन लेय, पीछे उसे दुर्गंध भरी छारछोवी (पाखाना) मैं डाल दिया। सो नरक समान दुःख, इहां ही भोगता भया। जगत-बिछौना समान, वेश्या जानना। याका तन, सर्व जन नीच-ऊंच स्पर्शैं हैं। वेश्या के संग तैं, शील का अभाव होय है। ताका फल, दुर्गति होय है। ये वेश्या महा दगावाजी की मूर्ति है। अरु ऐसे ही महा निर्लज्ज, दगावाजी की खानि, दुर्बुद्धि पुरुष ताका संग करैं हैं। अहो भव्य, सिंह की गुफा मैं जाना तो भला है, परन्तु वेश्या का संग भला नाहीं। तातैं हे भव्य, घनी कहने करि कहा, वेश्या का संग तजना ही भला है। इस वेश्या-व्यसनी कौं चोर, लुच्चे, वेश्या के गमनी भला कहैं हैं। तब यह मूर्ख अपनी प्रसंशा सुनि, प्रफुल्लित होय है। और जब विवेकी, ऊंच कुली, पंडितन में जाय है तब उसे अधोमुख होना पड़े है। अपने भले कुल में, कलंक चढ़ावे है। या वेश्या के संग तैं सर्वप्रकार कुकीर्ति की बेलि, जगत-मंडप में पसरै है। जिनने वेश्या का संग किया, ते प्राणी अपना पाया भव, हारते भये। वेश्या के संग तैं, खाद्य-अखाद्य का विवेक नाहीं रहै है। अभक्ष्य भोजन करै। लज्जा रहित वचन कहै। वेश्या का संग करनहारा जीव, देव-गुरु—धर्म की आज्ञा ऐसे लोपै है जैसे मदोन्मत्त हस्ती, अंकुश कों लोपै। वेश्या—व्यसनी, माता—पितादि गुरुजन की आज्ञा तैं प्रतिकूल होय है। कोई तो नेत्र-रहित अंध होय है। परन्तु वेश्या—व्यसनी उकर अन्ध है। इत्यादिक अनेक दोष सहित वेश्या—व्यसन है। सो विवेकी—धर्मात्मान कूं अपने व्रत की रक्षा कूं, अति-

चार सहित वेश्या–व्यसन तजना योग्य है। इति वेश्या व्यसन ॥ ४ ॥ आगे पारधी व्यसन लिखिये है–यह व्यसन, निर्दय चित्त के धारी जीवों का है। जे नीच–कुल के उपजे, तिनतैं ऐसा अन्याय बनै है। ऊंच कुली, दयावान्, शुभाचारी, सत्–पुरुषन तैं, पर–जीव–घात नाहीं बनै है। यह बड़ा आश्चर्य है कि लोक में तौ पराये परणाम खुशी करवे कौं, भला खान–पान दीजिये है। भूखे पशून कौं घास डालि, सुखी कीजिये है। आये का सत्कार कीजिये है। कोई अपने घर मंगता–रंक आवै, तो ताकी दया करि, दीनन कौं भोजन-दान दीजिये है। परतैं मिष्ट वचन बोलि, ताका यथा-योग्य विनय करि, ताकौं साता कीजिये है। इत्यादिक क्रिया करि, जैसे बनै तैसे, यश के निमित्त, तथा पुण्य के निमित्त, भला–भला कार्य करि और–जीवन कौं सुखी करैं हैं। सो जगत में जिनकी ऐसी उज्ज्वल प्रवृत्ति, दया सहित देखिये है। वे ही सुबुद्धि जीव, जानि–पूछि कैं पर–जीव दीन–पशु तिन के तन विषैं शस्त्र मारि, तिनकौं हतैं। सो ये बड़ा आश्चर्य है। ऐसे सुज्ञानी जीवन के भाव ऐसे कठोर कैसे हो जाँय हैं ? सो उन पशून के ही पाप का उदय है कि जो सज्जन सदाव्रत देय, शीत में वस्त्र देय, दीनन की रक्षा करैं। वे ही पुरुष जब पशून कैं शस्त्र–तीर–गोली मारैं हैं तब तिनकौं दया नहीं आवै। ऐसे बड़े आदमी, बुद्धिवान, दयावान, धर्म निमित्त धन के लगावनहारे, ते पर–प्राण का घात कैसे करैं हैं ? तातैं ऐसा जानना, जाकैं पर–प्राण–पीड़ितैं, दया नाहीं होय, सो दया रहित भावन का धारी, शिकारी कहिये। अपने पुत्र पालवे कौं, पराये पुत्र हतैं, उसे

पारधी कहिये। ते जीव पाप के अधिकारी होय, नरक के पात्र होय हैं। अपनी जिभ्या—इंद्रिय पोपवे कौं तथा अपनी भूख मिटावने कौं, पराये पुत्र दीन—पशून कौं हतैं हैं, ते दया रहित पारधी जानना। कैसे हैं बन-जीव, महा दीन हैं। महा भयवान हैं। कोई तैं तिनका द्वेष नाहीं। बन का घास—तृण चुग कैं, अपने तनकी रक्षा करैं हैं। ऐसे दीन-निर्दोष पशून कौं जो शस्त्र मारै, सो महा कठोर चित्त का धारी निर्दई है। बन के पशु भोरे, अज्ञान, असहाय, तिनकूं केई पापाचारी छल—बल करि मारैं हैं। सो बड़ा पाप—भार बांधैं हैं। सो ये पाप कब कटैगा? केई ज्ञान रहित, दया रहित, नीच-कुली ऐसा कहैं हैं, कि यह हमारा धर्म है। केई कहैं हैं, कि यह हमारा किसब (व्यापार) है। सो ऐसे जीव कषाई हैं। जे जीव हतैं, ते चांडाल हैं। उनके घर में, धर्म का अभाव है। जीव-घात करनेहारे प्राणी, खटीक समानि हैं। तिन जीव—घाती जीवन का मुख देखे, पाप लागै है। जे भले कुल के उपजे हैं, ते पर-जीवन कौं नहीं घातैं हैं। जो पर-जीव घातैं, सो हीन-कुली समझना। पर-जीवन के प्राण राखैं, सो ऊंच कुली हैं। भीलादिक बनचर हैं, सो बनचर जीवन कौं मारैं हैं। उत्तम प्राणी, पर-घात नाहीं करैं। जे दयावान हैं, वे ऐसा विचारैं। कि हाय, बिना दोष पर-जीव कैसे घातैं हैं? ये विचारे दीन, बन के प्राणी, काहू के घर जाय सतावते नाहीं। काहू पै कछू मांगते नाहीं। काहू का खेत नाहीं खून्दते। किसी का फल नहीं खावते। बन के तृण, बन—फल, घास, पत्र तो ये खांय हैं। नदी-तालाबन का जल पीवते हैं। नहीं

मिलै, तो क्षुधा सहित भूखे ही पड़ि रहैं हैं। नहीं काहू तैं लड़ैं, नहीं काहू पै कोप करैं। ऐसे दीन पशून कौं जे मारैं, ते शठ अपना पर-भव बिगाड़ैं हैं। सर्व जीवन मैं पापी तौ सिंह है। ऐसे पापी सिंह कौं मारिकैं अपनी शूरता मानैं, सो याहू तैं पापी हैं। और केई, बन के सुअरन कौं मारैं हैं, और कहैं हैं कि हम शूर हैं। ते शूर नाहीं, पारधी हैं। हिरन, खरगोश, स्याल इनकौं मारैं, ते श्वान हैं। और भवांतर मैं श्वान ही उपजैं हैं। और चिड़िया, कबूतर, मोर, तीतर, बाज, मछली, मगर इन आदि पक्षी, तथा जलचर जीवन कौं मारैं, सो खेटकी हैं। ये पर–जीवन के हतनहारे, निर्दय परणामी, निश्चय तैं नरकादि गति के पात्र जानहु। तातैं जे विवेकी–दयावान, जीव–घात नाहीं करैं, उत्तम परणाम के धारी हैं। ते भव्य, येते काम और भी नाहीं करैं। सो कहिये हैं। जे दयावान होंय सो तीर, गोली, गिलोल, कृपाण, बंदूक, कटार, छुरी, तलवार इत्यादिक शस्त्र नहीं राखैं। शस्त्र तैं मारूँगा, ऐसा वचन नाहीं कहैं। और फंदा, फाँसी, पींजरा ये नाहीं बनावैं, नाहीं राखैं। बड़, थूहरि, आक के दूध तैं चेंप बनाय, पंखी नाहीं पकड़ैं। लाठी व लात तैं नाहीं मारै। जाल नाहीं बनावैं, नाहीं राखैं, नाहीं बेचैं। इत्यादिक हिन्साकारी वस्तून का व्यापार नाहीं करैं। और जे तीर, बंदूक, तोप, बरछी, छुरी, आदि पर-जीव घातक शस्त्र बनावैं, तिनतैं दयावान लेन–देन नाहीं करैं। खुसी, कुदाली, खुरपी, हँसिया इनके बनानेवालों तैं भी लेन–देन नाहीं करैं। और भूमि के खोदनेहारे, ताल–नदी–बावड़ी–कूप इनमें जल काढ़ने व फोड़ने-

हारेन तैं भी लेन–देन नाहीं करैं। और जामैं बहुत जल बिलोलना पड़ै, बहुत नीर ढोलना पड़ै, बहुत अग्नि जलाना पड़ै, तथा जो नील–आल का काम करैं, उनके साथ भी लेन-देन नाहीं करैं। इत्यादिक सब खेटक–हिन्सा का दोष करैं हैं। इनका पैसा घर में आये, खेटक का सा दोष उपजावै। और अन्न, तिल, जीरा, धना, सौंठि, हल्दी इन आदि काष्ठादिक किरानों तथा रेशम, सन, चाम, हाड़, केश, सींग, शहद इनकी भड़शाला (दूकान) नाहीं करैं। तथा शीशा, शोरा इत्यादिक हिन्सक व्यापार नहीं करैं। इनमें खेटक समान दोष जानि, दयामूर्ति ऐसा व्यापार नाहीं करैं। और काष्ठ–पाषाण–चित्राम की पुतली तथा देव–मनुष्य–पशु की स्थापना का आकार बिगाड़ै, तो खेटक समान दोष होय। और सतरंज मैं नाम–निक्षेप के धारी जीव-हस्ती, घोटक, मनुष्य, राजादिक ताके हारे–जीते, खेटक समान दोष होय। तातैं धर्मात्मा सतरंज तैं नाहीं खेलैं। और बन मैं, घर मैं अग्नि लगाये, खेटक समान दोष है। तथा पर-जीव कौं भयकारी मार–मार शब्द नाहीं कहैं। और वृक्ष, बेल, घास, झाड़ी नहीं छेदैं। वस्त्र, धूप विषैं नाहीं नाखैं। चौपट राह में खट-मलन की खाट नाहीं झाड़ैं। पर-जीवन कूं शोक नहीं करावैं और मर्याद तैं अधिक भार, जीवन पै नाहीं लादैं। भाड़ा किया होय, तो वाहन पै छिपाय कैं अधिक भार नहीं धरैं। इत्यादिक कहे कार्य, धर्मात्मा–दयावान् अपने व्रत का लोभी, अपने व्रत की रक्षा कौं, ये पाप नहीं करै। और जुआं, लीख दयावान् नहीं मारैं। सर्व जीव आप समान जानि,

सर्व की रक्षा करैं। और जे दया रहित, दुर्गति–गामी अज्ञानी जीव, पर कौं शस्त्र मारते दया नहीं करैं। अरु अपने तन में तनिक सा कांटा लगै, तौ कायर होय दुख मानैं। सो ये कठोर बुद्धि, पर कैं शस्त्र कैसे मारैं हैं ? आप तनक सा भय सुनै तो छिपता फिरै, भय करि कंपायमान होय। अरु पापी जन दीन–पशून पै, नग्न शस्त्र चलावतैं नहीं कंपैं हैं। सो ताकें खेटक–व्यसन कहिये। देखो, जब आप रण में जाय, तौ अपने तन की रक्षा कौं बखतर पहिनै। शिर पै टोप धरै। आगे उरस्थल में आड़ी ढाल धरै। तो भी पापी–कायर चित्त का धारी, डरता–डरता जाय है। ताकूं दीन पशून के तन में निशंक होय तीर, गोली, तलवार मारते पीड़ा नहीं उपजे। निशंक वन में फिरते, दीन जीवन कूं दगा करि, जाल में पकड़ि, शस्त्र मारते दया नहीं आवै। सो जीव दुर्गति–गामी पारधी जानना। ऐसे प्राणीन कौं, तीन लोक में सुख नाहीं। ये खेटक का व्यसन, पाप है। ये पाप, भव-भव में खेटक करै। महा दुख उपजावै। तातैं विवेकी–धर्मात्मा, आप समान सर्व जीवन कूं जान, सर्व जीवन की रक्षा करैं। सो खेटक व्यसन का त्यागी कहिये। इति खेटक व्यसन ॥५॥

आगे चोरी व्यसन कहिये है। जे जीव बिना दिया, पर का पदार्थ नहीं लेंय, सो चोरी व्यसन का त्यागी है। कैसी है चोरी, सो कहिये है। एक तौ महा दगाबाजी का समूह हैं। अदत्ता दान कौं लेय, सो चोर है। सो जे चोर हैं सो पर-धन हरवे कौं, अनेक चतुराई करि पराया घर फोड़ना, पराये खीसे में से धन काढ़ि लेना, पराये धरे धन कौं छिपाय कैं उठाय

लावना, तथा पराया धन उठाय कहीं का कहीं धर देना, आदि कार्य करैं हैं। ये सर्व चोरी व्यसन है। इस चोरी करनेहारे का परणाम महा कठोर–निर्दय होय है। पराया धन चोरै है, सो महा पापी है। संसार में जीवन कौं, ये धन अपने प्राणन तैं भी प्यारा है। ये जीव अपने दस प्राण (५ इन्द्रिय, ३ बल, आयु और श्वासोच्छ्वास) कूं धारि सुखी रहैं हैं। तैसे ही यह जीव, धन तैं सुखी रहे है। तातैं ये धन, जीव का ग्यारहवां प्राण है। जो इस धन कौं हरैं, ते महा पापी जानना। जे पराये धन हरवे कौं अनेक छल–बल करैं हैं। कोई तौ पर–धन हरवे कौं, राह चलते जीवन कूं डरवाय, धन हरैं। कोई जवरी तैं नगर, घरन पे धाड़ा मारि करि, घर–धन लूटि ले जांय। सो तो जोरावरी के चोर हैं। और केई दगावाजी सहित, अनेक भेष वदल, फांसी तैं मारि, धन हरैं। ते चोर हैं। कोई पराया धन, लेखा करने में भूलि करि राखैं। ते चोर हैं। कोई पराया धन धरया हुआ नहीं देंय, जानि–पूंछ, मुकरि (मेंट) जांय। सो भी चोर हैं। कोई पराया धन कर्ज खाय रहे, नहीं देय। सो चोर है। ऐसे कहे जो ये सो सर्व चोरन के चिन्ह हैं। और कोई ऐसे हैं जो आप तौ चोरी नहीं करैं, परन्तु चोरन कौं चोरी करवे में सहायक होय हैं। चोरी करावे कौं, तिनकौं चोरी के उपकरण देंय। मार्ग वतावैं। सो भी चोर समान हैं। और जे चोरन की पक्ष करि, चोरन की लाँच खाय, चोरन कौं चाकर राख, चोरी कराय धन वांट लेंय। सो भी चोर समानि फल का धारी है। और चोरन कौं चोरी पे कर्ज देय, चोरन तैं वाणिज्य–व्यापार

राखना, ये भी चोरी सा ही फल प्रगट करै है। तातैं जे विवेकी हैं ते अपने व्रत कौं निर्दोष राखैं। सो एती बात नहीं करैं, जिनका कथन ऊपरि कहि आये। और इम अदत्ता दान के अतिचार हैं सो भी न लगावैं, सो ही कहिये हैं। कोई भली चोर-कला का धारी होय, तो ताकी अनुमोदना नहीं करै। और तराजू तैं तौलिये ताके सेर-पंसेरी आदि वांट तथा कुड़ा-पाई छोटी—बड़ी रक्खै। सो लेने के तो बड़े, अरु देने के सेर-पंसेरी, कुड़ा-पाई छोटी, ऐसे राखै। सो चोर है। ऐसे ही भली वस्तु विषैं-बड़े मोल की वस्तु विषैं, अल्प मोल की वस्तु मिलावना। सो चोरी समान है। सो विवेकी ऊंच-कुली, ऐसी चोरी नहीं करैं। जे हीन-कुली हैं, ते चोरी करैं हैं। जैसे—भील, मीणा, गौंड़, ये मनुष्य चोरी करैं हैं। तथा धन हास्या ज्वारी, चोरी करै। तथा जीभ-लोलुपी चोरी करै। तथा जो खान—पान वस्त्र-आभूषण तौ भलै चाहै, अरु कुमाय नहीं जानै। ऐसा कुपूत पुरुष, चोरी करै। वेश्या व्यसनी होंय, ते चोरी करैं। मांसाहारी, चोरी करै। तथा पर-स्त्री—लंपटी, चोरी करै। इत्यादिक कुबुद्धि के धारी जीव, चोरी करि अपना पाया भव वृथा कर, अपना किया धर्म कौं विनाशैं हैं। तथा अपने स्वामी का बुरा चाहनेहारा, स्वामी-द्रोही चोरी करै। तथा मित्र तैं कपटाई करनेहारा मित्र-द्रोही, चोरी करै। तथा पर के किये उपकार कौं भूलनेहारा कृतघ्नी होय, सो चोरी करै। तथा धर्म भावना रहित पुरुष, चोरी करै। इत्यादिक जीव चोरी करैं। सो चोरी के अनेक भेद हैं। एक तो धर्म चोर, एक कर्म चोर। सो जो पापी जीव, धर्म स्थान में चोरी करै, सो तौ

धर्म-चोर कहिये। और जे माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, इन तैं धन चुराय राखैं, सो घर-चोर हैं। तथा पराये घरन का हरनहारा होय, सो घर-चोर है। ताकरि राज्य-पंच का किया दण्ड पावै। और बालक, पुत्र, तथा स्त्री तैं छिपाय खाय, भली वस्तु छिपाय कैं खाय, सो पुत्र-स्त्री-चोर है। ये सर्व चोरी समान दोष करैं हैं। ता चोरी के दोय भेद हैं। एक चोरी, दूसरा चरपट। जो छल कर, छिप करि, परधन हरै। सो चोर है। और गिरासियादि जोरी तैं डराय, प्रगट पराया धन हरैं। सो चरपट कहिये। सो ये चोरी-चरपट, भेद भी पाप जानि, तजना योग्य है। ये चोरन की चतुराई, सब ही दुखदाई, ताहि तजना जिन-गाई, मैं भी धर्म-हित भव्य जीवन कूं सुनाई। तातैं तजौ समझ सब भाई, याके किये हानि दाई, जस हानि गुरु सुनाई। पर-भव दुर्गति होय, सकल पाप थान जोय, ऐसो लक्ष्य तजो सोय, मानो सीख भव्य होय। इत्यादिक, चोरी सर्व पाप का मुकुट जानि, तजना योग्य है। इस चोरी ही के चिंतवन किये, पाप-बंध होय है। तातैं अपने पर-भव सुधारबे कूं, संतोष भाव भजि कैं, बहुत तृष्णा का कारण जो चोरी, ताहि निवारो। ये सीख सुपूत कौं है। जो कहे का उपकार मानै। और जिनकौं चोरी भली लागै। सो सुनि करि, भले उपदेश सूं द्वेष-भाव करैं। चोरी व्यसन का त्याग सुनि, चोर हैं ते धर्म सभा तजैं। परन्तु चोरी नहीं तजैं। सो ऐसा प्राणी धर्म-सीख काहे कौं मानै है? ये सीख सपूत कौं है। तातैं श्रावकन कूं, अतिचार सहित, चोरी व्यसन तजना योग्य है। इति चोरी व्यसन ॥ ६ ॥

आगे परदारा व्यसन कहिये है। जहां पर-स्त्रीन के रूप, हाव-भाव कौं देख, भोगवे की इच्छा, सो परदारा व्यसन है। या व्यसनी की दृष्टि तौ भगनी, पुत्री, माता कौं भी रूपवान देख, विकार रूप ही प्रवृत्ते है। और जे धर्मात्मा हैं, सो पर-स्त्रीन कूं भगनी, माता, पुत्री समान देखैं है। ऐसा भिन्न भेद इनकी दृष्टि में जानना। ये जीव उस ही दृष्टि (आंख) तैं भगनी-पुत्री कौं देखैं हैं। अरु उसही दृष्टि तैं, अपनी स्त्री कूं देखैं हैं। सो धर्मात्मा तो यथावत जानैं हैं। अरु व्यसनी, विकार दृष्टि करि जानै है। सो यह जीवन की दृष्टि का ही भेद जानना। कैसी है या व्यसनी की दृष्टि। दोऊ भव दुख-अपयश की करनहारी है। इस व्यसनी कौं पर-स्त्री गमन तैं पकड़िये, तो जाति तैं निषेधैं हैं। और राजा है सो ताका तन छेदन करि, घर लूटै है। और खर-रोहण करि, देश तैं निषेधे है। तातैं हे भाई, कहा जानैं नरक-फल परभव में कब लागे? हाल ही में जीव कौं नर्क समान दुख देखने पड़ैं हैं। लोक में निंदा होय है। नाक-कान-हस्त-पांव अंगादि छिदैं हैं। सो ये फल तौ खराबी के, यहां ही प्रत्यक्ष देखना होय है। तातैं धर्मी-जन, अपने हित कौं, पर-स्त्री, धर्मरूपी कल्पवृक्ष के छेदवे कूं करोत समान जानना। और ये पर-स्त्री, यश रूपी पर्वत के नाशवे कूं वज्र समान है। देखो रावण सा महा-बली, तीन खण्ड का स्वामी, यश का तिलक, जाके यश-सौभाग्य की देव भी महिमा करें। ऐसा दीरघ पुण्यी, सो भी पर-स्त्री के दोष तैं, अपयश पाय, हीन-गति का बासी भया। राज्य गया, कुल क्षय भया, पर-गति बिगड़ी। तातैं हे भाई, नाग के

मुख हस्त देना, विष भोजन करना, ये तो भला है। परन्तु पर-स्त्री-संग, भला नाहीं। छुरी, कटारी, बर्छी की धारन पै कूदना भला। इन तैं एक भव दुख होय। अरु पर-स्त्री संगति तैं, भव-भव में दुख होय। तातैं विवेकीन कौं पर-स्त्रीन का त्यागना भला है। अरु जिन बातन में पर-स्त्री संग का दोष लागै, ऐसे अतिचार भी तजना योग्य है। सो अतिचार कहिये हैं। पर-स्त्रीन तैं सराग भाव सहित हँसि बोलना। कौतुक सहित तिनके तन तैं लिपटना। पर-स्त्रीन के पट्-आभूषण देख कहै, जो तुम कौं यह भला लागै है, ये भला नहीं सोहै है। पर-स्त्रीन के अंग-उपांग चाल की सराहना करना। ये सर्व पर-स्त्री व्यसन समान दोष करैं हैं। और विकार चित्त करि पर-स्त्रीन का काम-काज करै। ताकौं भले-भले पट्-आभूषण लाय देय। राग सहित मुख तैं वचन बोलै। ताकूं पर-स्त्री का व्यसनी कहिये। और जहां नारी, स्वेच्छा भईं कौतुक करतीं होंय, गाली-गीत गावती होंय। तहां आप जाय, सुनि करि हर्ष कौं प्राप्त होय। चित्त देय सुनै, तिनकी प्रशंसा करै, सो पर-स्त्री का व्यसनी है। और पर-स्त्रीन के समूह में जाय, तहां बैठ के तिन स्त्रीन की सुहावती बात कहै। तिनकौं अनेक कौतुक कथा कहिके हँसावै-सुखी करै। सो पर-स्त्री का व्यसनी कहिये। और जे पनघट-घाट, जहां अनेक स्त्री-समूह जल कौं जांय। तथा और जगह जहां अनेक स्त्रीन के गमन का स्थान होय। ऐसे स्थान पै जाय तिष्ठना, सो पर-स्त्री का व्यसनी है। तथा पर-स्त्रीन की चाल-काय सराहना। पट्-आभूषण-रूप देख हर्ष करना। सो पर-स्त्री का व्यसनी है। और

अपने घर में चेटी (दासी) राखना। तथा विधवा स्त्री कों मोह के वश करि, घर में राखना। तातैं भोगन की अभिलाषा पूर्ण करनी। सो पर-स्त्री का व्यसनी है। और बालक-नर कों नारी बनाय देखना। तथा सुन्दर स्त्रीन कूं, नर-भेष बनाय, देख सुखी होय, स्पर्श करि सुखी होय। सो पर-स्त्री का व्यसनी है। और विधवा तथा पर-स्त्री जाका भर्तार जीवता होय, तिनतैं एकांत विषैं बतलावना। तिनतैं ऐसा कहना, जो आज-कल तो हम पै कोप है, तातैं नहीं बोलो हो। सो हम पै ऐसी कहा चूक परी है, सो कहो। हम तो आप के आज्ञाकारी हैं। इत्यादिक राग सहित वचन भाषण करै, सो व्यसन का लोभी है। अरु पर-स्त्री तैं अबोला रहै, रूठना करै। फेरि तिसके बोलने कों, औरन तैं प्रार्थना करै। कहै जो हमकों-वाकों बुलाय देव। इत्यादिक भावन का धारी, इस व्यसन का धारी है। और जे अपने तन में नाना प्रकार वस्त्र-आभूषण पहरि, पर-स्त्रीन कों दिखाया चाहैं। अपना भला रूप-यौवन, तन की ललाई-पुष्टता, पर-स्त्रीन कों दिखाया चाहैं, सो पर-स्त्री व्यसन मोही हैं। इत्यादिक कहे जो पर-स्त्रीन के व्यसन के दोष, तिन सहित सब कों त्याग, अपना व्रत निर्दोष राखै, सो पर-स्त्री व्यसन का त्यागी कहिये। इति पर-दारा व्यसन ॥७॥ ये कहे जो सात व्यसन, सो सर्व पाप के मूल हैं। जेते जगत के पाप हैं, तेते सर्व इन व्यसनन में गर्भित हैं। सो जिनके उदर विषैं, इन व्यसनन की वासना है। सो धर्म-विमुख प्राणी, अपने भव का विगाड़नहारा है। हे भव्य ! ये सात व्यसन, सात नरक के दूत हैं। ये व्यसन, जीव कों

किञ्चित् सुख की छाया सी बताय, लोभ देय, नर्क विषैं धरैं हैं। जे प्राणी इन व्यसनन में फँसैं हैं, तिनने अपना भव वृथा किया, धर्म छोड़ि दिया। और जे जीव इन कूं परख, व्यसन जानि, इन विषैं रंजायमान होय प्रवर्तें, इन कौं सेवन करैं। सो जीव पाप के निशान हैं। तिस व्यसनी का चलन ही अशुभ होय, धर्म-क्रिया हीन होय, परणति खोटी होय, जिन आज्ञा रहित होय, अभिमानी होय, सुबुद्धि—जीवन करि निन्द्य होय। दरिद्री अन्न करि दुखी होय। इत्यादिक युग-भव दुख का सहनहारा, ये व्यसनी है। सो विवेकी जीवन करि तजिवे योग्य है। या व्यसनी का संग भला नाहीं। अहो भव्य हो! दीन होय रहना भला है। तातैं समता सधै, कोई जीवन कौं पीड़ा नहीं होय। ऐसा उपदेश सुनि, जो जीव व्यसन का सेवनेहारा, अञ्जन चोर की नाईं निकट संसारी होय। तो ऐसे निकट—भव्य जीव तो, व्यसन कौं बुरे जानैं। अपनी निन्दा करते, अत्यन्त अलोचना करते, उपदेशी का उपकार मानैं। स्तुति करि, व्यसन-भाव तजैं हैं। अपना भव सफल जानि, धर्म विषैं लागैं। सत्संग की महिमा करैं। कहैं सत्संग धन्य है जो मोकों व्यसन के पाप का भेद बताय, संबोधित किया। जैसे काहू कौं कूप पड़ते राखै। तैसे सत्संग ने मोकों-नरक पड़ते कौं, बचाया। तथा जैसे कुधातु जो लोहा, ताकौं पारस (पत्थर) लाग, कंचन करै। तैसे ही मोसे पापी-व्यसनी लोहे समान कूं, पाप तैं छुड़ाय, धर्मी किया। इत्यादिक भव्य—व्यसनी तो अपना भला जानि, सत्संग की स्तुति करै। और जे पापी—व्यसनी दीर्घ—संसारी हैं। ते व्यसन की

निन्दा सुनि, आप बुरा मानैं । सत्संग कूं तजें । परन्तु सप्त व्यसन कूं नहीं तजैं । ऐसे पापी—व्यसनी कौं, धर्मोपदेश नाहीं लागै । ये सात व्यसन ही धर्म के घातक हैं। ऐसा जानि उत्तम श्रावक, जिन आज्ञा प्रमाण व्रत के धारी कूं, अपने व्रत की रक्षा—निमित्त, ये सात ही व्यसन, अतिचार सहित तजना योग्य है। इन सप्त व्यसन के अतिचार में, आठ मूल-गुण के अतिचार, बाईस अभक्ष्य आदि आगये, सो जानना। इत्यादिक सर्व दोष रहित सम्यग्दर्शन व अष्ट मूल गुण होंय। और ये सात व्यसन व बाईस अभक्ष्य का त्याग, सो प्रथम दर्शन प्रतिमा जानना ॥१॥ इति श्रीसुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, सागार धर्म—एकादश प्रतिमा विषैं, प्रथम दर्शन प्रतिमा के बाईस अभक्ष्य, अतिचार सहित सात व्यसन त्याग, अष्ट मूल गुण सहित कथन वर्णनो नाम, बत्तीसवां सर्ग सम्पूर्ण ॥३२॥

आगे दूसरी व्रत प्रतिमा का संक्षेप लिखिये है। दूसरी व्रत प्रतिमा है। ता व्रत के बारह भेद हैं। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और च्यारि शिक्षा व्रत। ये सब मिल बारह भये। तहां प्रथम नाम—अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्य्याणुव्रत, ब्रह्मचर्य्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत। ये पांच अणुव्रत हैं। अब इनका सामान्य अर्थ। जहां एक—देश पांच पापन का त्याग, सो अणुव्रत हैं। अणु नाम थोरे का है। सो ये त्रस हिंसा का तो सर्व प्रकार त्यागी है। बाकी बारह में, ग्यारह तैं असंयम है। परन्तु महा दयालु है। कोई यहां ऐसा जानेगा, जो त्रस रक्षक है तौ स्थावर घात करता होयगा। मन—इन्द्रिय वश नहीं होय, सो मन—

इन्द्रिय करि महा विकल रहता होयगा ? सो हे भव्य, ये अणुव्रती श्रावक, संसारीक इन्द्रिय-भोगन तैं महा उदास है। पांच-पापन तैं महा भय—भीत है। सो इन्द्रिय—मन कौं सदीव रोकता, धर्म ध्यान मई प्रवर्तै है। ये भोग-भाव, ताहि काले नाग समानि भासैं हैं। ताका इनमें मन रंजै नाहीं। और स्थावर की हिंसा का त्यागी तौ नाहीं, परन्तु पंच स्थावर के आरंभ में दया—भाव सहित आरंभ करै। जहां अल्प हिंसा होय, तामें भये पाप की आलोचना रूप रहै है। तातैं ए अणुव्रती, मन—इन्द्रिय वश करिवे का तौ उपाई है। और स्थावर की रक्षा—रूप भावना का भोगी है। तातैं ये व्रती श्रावक, महा दया धर्म का धारी है। गृह—आरम्भ-परिग्रह के योग तैं, सर्व प्रकार स्थावर की हिंसा बचती नाहीं। तातैं तिस श्रावक कूं, अणु-व्रती कह्या है। अपने हाथ तैं त्रस हिंसा का आरम्भ नहीं करै। सो याका नाम अहिंसा-णुव्रत है। याके पांच अतिचार हैं। सोही कहिये हैं—अपने हाथ तैं कोई त्रस जीव कूं नहीं बांधै। जैसे हस्ती, घोटक, गाय, बैल, भैंस, बकरी, मनुष्य, इत्यादि त्रस जीव के हाथ-पांव, बंधन तैं नहीं बांधै। गले में फंदा डाल कोई कौं नहीं बांधै। तथा बालक कूं भी क्रीड़ा—मात्र नहीं बांधै। याका नाम बंध अतिचार तजन है।१। और बेइन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय इन आदि त्रस जीवन कौं; कोड़ा, लाठी आदि शस्त्रन तैं नहीं मारै। सो ये वध दोष त्याग है।२। और मर्यादा के उपरांत; पशु पै, मनुष्यन पै भार नहीं लादै। सो याका नाम अतिभारारोपण दोष त्याग है।३। और त्रस जीवन के अंगो-

पाङ्ग अपने हाथ तैं नहीं छेदै। सो ये छेदन दोष निवारण है।४। और कोई त्रस का, अन्न–जल–घासादि खान–पान नहीं रोकै। जैसे कोई के सिर अपना कर्ज आवै था। सो ताकौं ऐसा नहीं कहै, जो हमारा कर्ज देव, नहीं तो अन्न–जल खायगा तौ तोकौं ऐसी आण (कौल) है। ऐसा वचन, व्रती श्रावक नहीं कहै। तथा गाय, बैल, हस्ती, घोटक के खान–पान कूं बंद नहीं करै। याका नाम अन्न-पान-निरोध दोष तजन है।५। ऐसे पांच अतिचार नहीं लगावै। सो शुद्ध व्रत अहिंसाणुव्रत है। इति अहिंसाणुव्रत ॥ १ ॥ आगे सत्याणुव्रत का अतिचार सहित स्वरूप कहिये है। तहां ऐसी स्थूल झूठ नहीं बोलै, जातैं लोक निन्दा होय, दूसरों कौं बुरा लागै। कोई दगावाजी सहित वचन, कठोर वचन, मर्म छेदन वचन, पर-दोष प्रगट करन वचन, कलहकारी वचन, द्रोह वचन, गाली वचन, पाप-बंधकारी वचन, पर-घर धन मन तन-हरन वचन, पर-निन्दा वचन, क्रोध वचन, लोभ वचन, राग-द्वेष वचन, अविचार वचन, इत्यादिक असत्य वचन के भेद हैं। इन सर्व का त्यागना, सो सत्याणुव्रत है। सो याके भी पांच अतिचार हैं। सो दिखाईये हैं। प्रथम नाम–मिथ्या उपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेख क्रिया, न्यासापहार, और साकार मंत्र भेद। इनका अर्थ–तहां झूठा उपदेश देना, झूठा मार्ग बतावना, तथा बालकन तैं असत्य भाषण करि, क्रीड़ा करनी। इत्यादिक असत्य वचन बोलना। सो मिथ्योपदेश है।१। और जहां पराई एकांत की बात कोई बतलावते होंय, ताकौं कोई अनुमान तैं जानि, अन्य लोकन में प्रकाश करै। सो रहोभ्याख्यान अतिचार है।२। और जहां

झूठा खत, हुण्डी, चिट्ठी लिखना। झूठा लेखा माड़ना। इत्यादिक ये कूट-लेख-क्रिया दोष है।३। और पराये गहने आदि धरे माल कौं राखि, जानि—पूंछि मुकरि (मेंट) जाना, सत्यघोप पुरोहित की नांईं। सो न्यासापहार नाम अतिचार है।४। और कोई के शरीर के चिन्ह तैं, नेत्र के चिन्ह तैं, मुख के चिन्ह तैं, ताकी अक्रिया देख, ताके मरम की बात कौं जानि, पीछे द्वेष—भाव करि, पराई छिपी बात कूं सब में प्रगट करना। सो साकार-मंत्र-भेद दोष है।५। ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो सत्याणुव्रत कहिये है ॥ २ ॥ आगे अचौर्य्याणुव्रत का स्वरूप कहिये है। तहां पराया धन बिना दिया लेय, सो अदत्तादान है। ये चोरी जानना। जो पराये पुत्र, स्त्री, दासी, दास, हस्ती, घोटक, गाय, बैल, बकरी, इत्यादिक चेतन वस्तु। अरु रत्न, स्वर्ण, चांदी, वस्त्र, अन्न, धन ये अजीव वस्तु। ऐसे इन चेतन—अचेतन द्रव्य कौं चोरना, सो चोरी है। सो या चोरी के पांच अतिचार हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम—स्तेय प्रयोग, स्तेय वस्तु आदान, राज्य-विरुद्ध क्रिया, मानोनमान, पर-रूपक व्यवहार। ये पांच अतिचार हैं। इन का अर्थ—तहां चोरी का उपदेश देना, चोर कूं राह बतावना, पराया घर—मन्दिर फोड़वे कूं कुसिया, कुदारी देय, चोरी का मनसूबा बतावना। इत्यादिक चोरी के प्रयोग बतावना, सो स्तेय प्रयोग नाम दोष है।१। और चोरी की वस्तु कूं सस्ती जानि, बड़ा नफा देख, मोल लेना। सो याका नाम तदाहरतदान दोष है। याही का नाम स्तेय वस्तु आदान दोष है।२। और राजा की मर्यादा लोपना, राजा की आज्ञा टालना,

सो राज्य–विरुद्ध नाम दोष है ।३। और जहां लेने के तोलादि तो बड़े होंय, और पर कौं देने के पाई, कुड़ा, तोला, सेर, पंसेरी सो छोटी–हीन राखै। सो याका नाम हीनाधिक मानोन्मान नाम अतिचार है ।४। और बड़े मोल की वस्तु में, थोड़े मोल की वस्तु कों मिलाय के बेचना। सो प्रतिरूपक व्यवहार नाम दोष है ।५। ऐसे इन पांच अतिचार रहित होय, सो अचौर्य्य नाम अणुव्रत है। इति अचौर्य्याणुव्रत ॥ ३ ॥ आगे ब्रह्मचर्य्याणुव्रत कहैं हैं। जाकैं छोटी पर-स्त्री, पुत्री; बराबर की स्त्री, बहिन; व बड़ी स्त्री, माता समान है। ऐसी दृष्टि तौं पर-स्त्रींन पै रहै। और अपनी परणी स्त्री में संतोषी, तीव्र राग रहित, समता भाव सहित, संतान उत्पत्ति निमित्त स्व–स्त्री तैं रति समय संगम करै। बाकी च्यारि प्रकार चेतन–अचेतन स्त्री विषैं राग–द्वेष का अभाव, विकार दृष्टि करि नहीं देखै। तथा पर-स्त्रीन में काम चेष्टा रूप विकार वचन, हाँसि वचन, परस्पर प्रेम बधावनेहारे निर्लज्ज वचन, कुशील–राग करि भरी दृष्टि करि देखना, पर-स्त्रीन तैं गोष्टी, चर्चा–वार्ता करनी, इत्यादिक पर-स्त्री संबंधी दोष हैं। कैसी है पर–स्त्री की दृष्टि ? विषनाग समान राग–जहर करि भरी। यौवन करि मदोन्मत्त, विकराल स्वरूप की धरनहारी। शीलवान् पुरुषों कों भयकारी। महा विष नागनी। बालक, वृद्ध, देव, पशु, सर्व तीन गति के जीवन कूं डसनहारी। बड़ों की आज्ञा रूपी मंत्र-मर्याद की लोपनहारी। ऐसी पर–स्त्री का त्याग, सो ब्रह्मचर्य्याणुव्रत है। सो याके पांच अतिचार हैं। सोही कहिये हैं। प्रथम नाम–पर-विवाह-करण, इत्वरिका-गमन, परगृहीतागृहीत

गमन, अनंग क्रीड़ा, काम तीव्राभिनिवेश। ये पांच हैं। इन का अर्थ-तहां पराया विवाह करावना। बीचि में पड़ि, सगाई करावना। बीच में फिरि, लड़का—लड़कीन के नाता मिलाय, राख मिलाय, व्याह के नेग-चार करावना। इत्यादिक व्याह के कार्य करावना, सो पर-विवाह करण नाम दोष है॥ १॥ और दासी कूं घर में राखना, तातैं स्त्री—व्यवहार की चेष्टा करनी। सो इत्वरिका-गमन नाम अतिचार है॥२॥ और पर-कर-गृहीत जे स्त्री, जिनका भर्तार जीवता होय। तथा पर-कर नहीं गृहीत जो विधवा स्त्री—भर्तार रहित। तथा कुवांरी विवाह रहित। इनतैं विकार चेष्टा करि, तिनके घर गमनागमन करना। सो परगृहीतागृहीत-गमन नाम दोष है॥ ३॥ और जहां स्त्री का भोग योग्य योनि स्थान तजि, वाह्य अंगन तैं क्रीड़ा करनी। जैसे श्वानादि पशु भोग—योग—स्थान तजि, ऊपर-ऊपर क्रीड़ा करैं। तथा हाथ—पांव अंगन तैं क्रिया करि, वीर्य का गिराना। इत्यादिक ये अनंग क्रीड़ा दोष है॥४॥ और जहां, जा भोजन तैं, तथा जिन वचनन तैं, तथा जिस क्रिया तैं, तीव्र काम की बधवारी होय। सो कामतीव्राभिनिवेश दोष है॥५॥ ऐसे ये पांच अतिचार रहित होय, सो ब्रह्मचर्य्याणुव्रत है। इति ब्रह्मचर्य्याणुव्रत॥४॥ आगे परिग्रह परिमाणाणुव्रत कहिये है-तहां दस प्रकार परिग्रह, तिनका प्रमाण करै। सो तिन दस के नाम-क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, चौपद, दोपद, आसन, शयन, कुप्य, और भाण्ड। ये दस भेद परिग्रह के हैं। सो तहां चौतरफ क्षेत्र का प्रमाण करना। जो येते क्षेत्रन में, कर्म सम्बन्धी क्रिया करनी। या तैं अधिक क्षेत्रन में कर्म-सम्बन्धी कार्य करने के ममत्व का त्याग।

सो क्षेत्र परिमाण है। तथा एते क्षेत्र विषैं हल जोति खेनी करना, अधिक क्षेत्र नहीं जोतना। ऐसा परिमाण करना। सो क्षेत्र परिग्रह परिमाण है॥१॥ और जहां दुकान, मन्दिर, नगर का परिमाण जो एते मन्दिर राखे। सो वास्तु परिग्रह परिमाण है॥२॥ और स्वर्ण, चांदी, रत्न इत्यादिक का प्रमाण करना, जो एता धन राखना, सो धन परिग्रह का परिमाण है॥३॥ और तहां तन्दुल, गेहूं, जव, ज्वार, मोंठ, मूंग, उड़द, चना, कोदों, बटरा, मसूर, तूअर इत्यादिक अन्न की संख्या का परिमाण, जो एते अन्न राखे, सो येते तौल प्रमाण। सो धान्य परिग्रह का परिमाण है॥ ४ ॥ और दासी-दास-सेवक, दो पद के धारी जीव एते राखना, सो दुपद परिग्रह का परिमाण है॥ ५ ॥ और हस्ती, घोटक, ऊँट, गाय, भैंस, बकरी, ये चौपद हैं। सो इनका परिमाण करना, जो एते चौपद अपने आधीन राखूंगा। सो चौपद परिग्रह परिमाण है॥६॥ और रथ, गाड़ी, गाड़ा, सिंहासन, पालकी, म्याना, इत्यादिक आसन हैं। सो इनका परिमाण राखना। सो आसन परिग्रह परिमाण है॥ ७ ॥ और पलंग, खाट, बिछौना, तकिया इनका परिमाण कर लेना। सो शयन परिग्रह परिमाण है॥८॥ और सूत, रेशम, घास, रोम, इत्यादिक के कोमल-कठोर वस्त्र तिनका प्रमाण। सो कुप्य नाम परिग्रह परिमाण है। तथा केशर, कपूर, अगर, चन्दन, इतर, इनकी खुसबू का परिमाण, एती खुसबू राखी। सो याका नाम कुप्य परिग्रह परिमाण है॥ ९ ॥ और धातु-मात्र के बासन-चांदी, स्वर्ण, कांसा, पीतल, तांबा, लोहा, जस्ता, सीसा, रांगा, इत्यादिक पृथ्वी काय धातु-पात्रन का परिमाण राखना। जो एते थाल,

रकेबी, चरुवा, बेला, भरत्याई, सर्व की गिन्ती-तौल का परिमाण रखना। सो भाण्ड नाम परिग्रह परिमाण है ॥१०॥ इन दस जाति परिग्रह के परिमाण का नाम तौ, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार जी के अनुसार कहा। और तत्त्वार्थ सूत्र जी विषैं-क्षेत्र, वास्तु, स्वर्ण, हिरण्य, धन, धान्य, दासी, दास, भाण्ड, कुप्य। ये दस हैं। सो नाम भेद है। अर्थ भेद केवली-गम्य है। तथा विशेष ज्ञानीन के गम्य है। इन दश जाति परिग्रह का परिमाण करना। सो परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। अति बाहन, अति संग्रह, विस्मय, अति लोभ, और अति भारारोपण। ये पांच हैं। इनका सामान्य अर्थ—गाड़ा, गाड़ी, रथ, हस्ती, घोड़ा इत्यादिक असवारी जाति के जैसे दस हजार घोड़ा, दस रथ, इत्यादिक परिमाण राखे थे। सो वर्तमान काल में आप के पास परिमाण तैं थोड़ा है। सो ताके पूर्ण करवे कौं अनेक उपाय करते, ऐसा विचारै। जो मेरे तो दस का प्रमाण है। सो पांच तौ हैं, अरु पांच और ल्यौं। तौ मेरे व्रत कूं दोष नाहीं। ऐसा विचारकर पूरण कर्या चाहै है। सो बहुत बाहन नाम दोष है। तथा अपने परिमाण तैं बहुत इकट्ठे करवे की इच्छा होय। तथा अपने प्रमाण तैं बहुत वाहन हौंय। तौ कहै, ये मेरे नाहीं, मेरे पुत्र के हैं, तथा स्त्री के हैं, तथा भाई के हैं। इत्यादिक अपने मन तैं कल्पना करि, तिनकौं इकट्ठे करै। सो अति बाहन नाम दोष है ॥ १ ॥ और अपनी मर्याद उल्लंघि तथा सन्तोष छोड़, अत्यन्त लोभ के योग तैं, अपने जेते अन्न की मर्यादा राखी थी; ताही प्रमाण अनेक जाति का

अन्न संग्रह करि, भड़शाला में बहुत दिन राखै। तिनमें अनेक जीव पड़ चलैं। सो तिनकौं देख कैं, निर्दय-भावना करि, ऐसा विचारै। जो मेरे एते अन्न की मर्यादा है। कोई मर्यादा कूं उल्लंघि करि, थोड़े ही राख्या है। अरु जीव पड़े, सो पड़ैं ही, पड़ैं। अन्न है। ऐसी कहां सधै? व्यापार है। नहीं करिये, तौ बने नाहीं। ऐसा विचार करि, कठोर भाव राख, दया नाहीं करै। सो बहुत संग्रह नाम दोष है ॥ २ ॥ और कठार-खाने की दुकान सम्बन्धी किराना-धना, जीरा, हल्दी आदि अनेक वस्तु लेनी-बेचनी। तिन में सामान्य-विशेष लाभादि नहीं जान, परणामन में खेद करना, संक्लेशता रखनी। तथा पहिले तौ लाभ जानि, वस्तु ल्यावना। पीछे लाभ नहीं भासै, तब बहु तृष्णा करि बेचना। तथा अपनी मर्यादा तैं अधिक आई जान, ताके फेरवे कौं विसंवाद करना। सो विस्मय नाम दोष है ॥ ३ ॥ और जहां वाणिज्य के निमित्त, अनेक वस्तु संग्रह करना, लेना। पीछे बैंचना, तब अल्प मोल की वस्तु में मिलाय बैंचना। सो अति लोभ नाम दोष है ॥ ४ ॥ और तहां वृषभ, भैंस, खर, हिम्माल, इनके ऊपर, मर्यादा के उपरान्त भार का धरना। जैसे भाड़ा तो तिनके भार की मर्याद-प्रमाण मनुष्य तैं किया। अरु पीछे राजा के कर के भय तैं चुराय, ताके ऊपर बड़ा भार धरना। तथा नफा के लोभ तैं पर-जीवन पै मर्याद कौं उल्लंघि, भार का धरना। सो अति-भारारोपण दोष है ॥५॥ ऐसे कहे जो पांच अतिचार बचावै, तौ परिग्रह प्रमाण का वृत, शुद्ध होय है। इति पांच अणुवृत के, पच्चीस अतिचार कथन ॥ आगे तीन गुणव्रत के नाम व

अतिचार कहिये है। प्रथम नाम—दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थ दण्ड त्याग व्रत। इनका अर्थ—तहां पूर्व दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, दक्षिण दिशा, और पूर्व-दक्षिण के बीचि आग्नेय कोंण विदिशा है। और दक्षिण—पश्चिम के बीच में नैऋत्य विदिशा है। पश्चिम-उत्तर के बीचि में वायव्य कोंण है। उत्तर—पूर्व के बीचिमें ईशान कोंण है। ये च्यारि विदिशा हैं। तथा उर्ध्व दिशा, और अधो दिशा। ऐसी इन दसों दिशाओं का परिमाण करना। तथा दिशा—विदिशा विषैं ऐसी प्रतिज्ञा करनी। जो फलानी दिशा—विदिशा कूं, फलानी नदी तांईं, तथा फलाने पर्वत तांईं, फलाने देश तांईं, फलाने नगर तांईं, एती मर्याद में कर्म—कार्य करूंगा। एती ही दूर तांईं पत्र लिखूंगा। एतो ही दूर का पत्र आय, तौ बांचूंगा। ऐती ही मर्याद में वस्तु भेजूंगा। ऐती ही मर्याद तैं मँगाऊंगा। इस मर्याद को उल्लंघ कैं पत्र नहीं लिखूंगा। और उर्ध्व दिशा में एते उंचे पर्वत तांईं चढ़ूंगा। और अधो दिशा में एती नीची धरा ताईं, पाताल में, नदी—कुएं में जाऊंगा। ऐसे दसों दिशा का प्रमाण करै। सो दिग्व्रत है। याके पांच अतिचार सो ही कहिये हैं। अधोतिक्रम, उर्ध्व अतिक्रम, तिर्यग्गमन अतिक्रम, क्षेत्र परिमाण उल्लंघन और अंतर स्मरण। अब इनका अर्थ—अपनी मर्यादा कूं उल्लंघि कैं धरती, कूप, बावड़ी, नदी, इत्यादिक पृथ्वी में उतरना। सो अधो दिशातिक्रम नाम अतिचार है ॥१॥ और जहां पर्वत-शिखरन पै, अपनी मर्याद उल्लंघ के चढ़ना, सो उर्ध्व दिशातिक्रम अतिचार है ॥२॥ और मर्याद उल्लंघि कैं, विदिशा में गमन करना।

सो तिर्यग्गमन अतिक्रम अतिचार है ॥ ३ ॥ जिन क्षेत्रन में मर्यादा की थी। सो तिसकौं उल्लंघि, अधिक क्षेत्र में कर्म-कार्य करना। सो क्षेत्र उलंघन अतिचार है ॥ ४ ॥ और जहां दिशा में सीमा की थी। ताकूं अंतरंग में भूलकर विचारना, जो मेरे कौनसी दिशा की मर्यादा थी ? ऐसे करि मर्यादा का भूलना। सो अंतर-स्मरण नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे अतिचार रहित, दिग्व्रत का पालना। सो दिग्व्रत है ॥ १ ॥ आगे दूसरा देशव्रत कहिये है। तहां आगे कह्या दिग्व्रत-परिमाण, ताही में घटाय के मर्यादा करना। जो पहिले दिग्व्रत किया। सा आयु पर्यंत है। और तिस व्रत में घटाय, रोज–रोज की मर्यादा करनी। तथा वर्ष, षट् मास, चतुर्मास, एक माम, पन्द्रह दिन, पहर, घड़ी का नियम करना। जो एते काल, एते दिन, एते मास तांई, एते भोग–उपभोग राखे। भोग वस्तु में एते अन्न, एते मेवा, खावने; अधिक नाहीं। ऊपर-भोग में एते वस्त्र, गाड़ी, रथ, घोड़ा, हस्ती, महल, बिछौना, स्त्री, एते–एते राखे। सो भोगना, अधिक नाहीं। एते क्षेत्र में कोस, दस–पांच धनुष, जाऊंगा। ये क्षेत्र में, एते काल तांई रहूंगा। इत्यादिक नियम रूप मर्याद, सो देशव्रत है। याही के पांच अतिचार हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम–आसन–शयन, पर-पेक्षण, शब्द, रूप और पुद्गल-क्षेपण। ये पांच हैं। इनका अर्थ–जहां जेते स्थान का परिमाण करि, जेते काल पर्यंत दृढ़ होय तिष्ठना, शयन करना, बैठना। इतनी मर्याद में ऐसे रहना। ऐसे मर्याद करि, फेरि ताके काल–क्षेत्र कौं उलंघि कैं क्रिया करनी, सो आसन–

शयन अतिचार है ॥ १ ॥ और जेते क्षेत्र में, काल की मर्यादा करी। तामें तिष्ठ्या ही और के पास संज्ञा, उपदेश देय कार्य करावना। सो पर-प्रेक्षण अतिचार है ॥ २ ॥ और आप अपनी सीमा-मर्यादा में बैठा ही, और कों बुलाय कार्य करावे। तथा अन्य कूं दूर बैठे तें बतावे। तथा अन्य कोई कार्यवारे ने आय कही। कि फलाने जी कहां हैं? तब अपने स्थान में तिष्ठ्या ही, खखार करि, तथा खाँसि करि, अपना अस्तित्व बतावे। जो हम यहां हैं। ताका नाम शब्द दोष है ॥ ३ ॥ और आप तो अपने स्थान में तिष्ठे है। और कोई प्रयोजनहारा आवे। अरु कहे, फलाना कहां है? तब वाका शब्द सुनि, प्रयोजनी जान, गोख-तें, खिड़की तें, अपना मुख काढ़ि, ताकों बतावे। ताकों संज्ञा करि, कार्य सिद्ध करे। सो रूप नाम अतिचार है ॥ ४ ॥ और अपने परिमाण क्षेत्र में तिष्ठता, कोई कार्य काहू तें जानि, बातें बोल्या तो नाहीं। परन्तु कंकर, वस्त्रादि पुद्गल-स्कंध डार, अपना कार्य सिद्ध करना। सो पुद्गल-क्षेपण नाम दोष है ॥५॥ ऐसे पांच अतिचार माहीं लागें। सो शुद्ध देशव्रत है। इति देशव्रत ॥ २ ॥ आगे अनर्थ दण्ड त्याग व्रत का कथन करिये है-तहां बिना प्रयोजन पाप कार्य करना। सो अनर्थ दण्ड है। ताके पांच भेद हैं। प्रथम-पापोपदेश, हिंसा का उप-करण राखना (हिंसादान), अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमाद-चर्य्या। इनका अर्थ-जहां पाप का उपदेश, पर कों देना। जो आओ, बैठो। कहा करो हो। चोपड़, सतरंज, गंजफा, मूठ आदि द्यूत खेलो। ज्यों दिन कटे। ऐसा उपदेश देना, सो अनर्थ दण्ड है। तथा चोरी

करवे का मनसूबा करना। चोरन की चतुराई की प्रसंशा करनी । चोरी का उपदेश देना । कुशील सेवन की कथा करनी । कुशील सेवन के कारण धातु आदि कामोद्दीपन औषधि की कथा करनी। ये सब अनर्थ दण्ड है। तथा वेश्या–कंचनी के रूप की कथा। तिनके नाच, गान, नृत्य, इनकी कथा। सो अनर्थ दंड है। तथा जातैं परिग्रह बधै, ताका उपदेश देना । मोह बधै, क्रोध बधै, मान–माया–लोभ बधै, मत्सर बधै। इत्यादिक दोष बधैं, ऐसा उपदेश देना । तथा भूमि खोदने का उपदेश देना। बहुत अग्नि जलावने का उपदेश, तथा पराये घर-नगर-वन में अग्नि लगायवे का उपदेश देना । ये अनर्थ दण्ड है। और भूमि–खुदाय खेती करने का उपदेश देना। तथा नदी, तालाब, बावड़ी, कूप का जल बहावने, फोड़ने का उपदेश देना। वस्त्र धुलवाने का उपदेश । कूप, तालाब बावड़ी, महल, मन्दिर, बनावने का उपदेश देना । परस्पर औरन के युद्ध करायवे का उपदेश । ये सर्व अनर्थ दण्ड हैं। तथा नदी, तालाब, बावड़ी में कूदने–सपरने (स्नान) का उपदेश । तथा बहुत वृक्ष, बनस्पति छेदने का उपदेश । बन कटायवे का उपदेश । बाग कटायवे का उपदेश । घास कटायवे का उपदेश । अन्न, तिल, शहद, सन, हाड़ का संग्रह–भण्ड़शाल करने का उपदेश । ये सर्व अनर्थ दण्ड है । तथा धर्म-घात का उपदेश देना। जो हे भाई, धर्म तौ तब याद आवै, जब पेट-भर रोटी मिलै। तातैं बड़ा धर्म येही है।जैसे दोय पैसा पैदा होंय, सो करौ। धर्म-सेवन में कहा खावगे ? ऐसा धर्म-घातक उपदेश, सो अनर्थ दण्ड है। तथा कोई तीर्थ-यात्रा कों

जाता होय। ताकौं ऐसा उपदेश देना। जो हे भाई, अभी तो कुमाई के दिन हैं। तोकों दोय-च्यारि महिना परदेश में लगैं। पांच-पचास रुपया खर्च पड़ैं। ऐसे तीर्थ में कहा पाय है? तातैं घर ही तीर्थ है। तेरे भाव अच्छे राख। इत्यादिक उपदेश देना। सो अनर्थ दण्ड है। तथा तू सर्व दिन धर्म-सेवन, पढ़ना-सीखना, जप, तप, इत्यादिक धर्म-विषैं लगावै है, घर का सोच नाहीं। सो खायगा कहा? आगे घर का काम कैसे चलेगा? तातैं कुमाई में लागो। इत्यादिक धर्म-घातक उपदेश देना। सो अनर्थ दण्ड है। सो याका नाम पापोपदेश है ॥ १ ॥ और हिंसा का उपदेश देय, हिंसा के उपकरण करावना। चक्की, ऊखली, मूसली, छुरी, कटारी, बर्छी, तलवार, तुबक, कुल्हाड़ी, कुदारी, कुसिया, हँसिया, इन आदि कों बनवायकर, मांगे देना। इत्यादिक पाप कार्य करना, करावना, अनुमोदना। सो हिंसा दान नाम, अनर्थ दण्ड है ॥२॥ और जहां खोटे पापकारी व्यापार का उपदेश देना। आप दीर्घ हिंसा सहित व्यापार का करना, तथा परकौं ताका उपदेश देना। तथा पर कौं पाप-व्यापार—वाणिज्य का उपाय बतावै। कहै कि शीशा, शोरा, शहद, नील, अदरख, इनका वणिज करने में, बड़ा नफा है। सन, साजी, लूंण [नमक], चर्म इनके व्यापार में विशेष नफा है। इत्यादिक पाप—व्यापार का उपदेश देना। सो अपध्यान नाम अनर्थ-दण्ड है ॥ ३ ॥ और जहां स्वेच्छा—अर्थ कल्पना करि, कामी जीवन कों विकार—भाव करिवे कूं, कवीश्वरों नें बनाये जो शृङ्गार शास्त्र, संगीत शास्त्र, जो राग-मालादि रसिक प्रिय

सुन्दर शृङ्गार इत्यादिक शास्त्र, जिनकौं सुनि भोरे मोही जीव, अपने भाव काम-चेष्टा रूप करि, पर-स्त्री आदि भोगने की अभिलाषा करि, पाप बन्ध करैं। तथा जिन शास्त्रन में पर-स्त्री सेवने में पाप नहीं कह्या। तथा विधवा-स्त्री कों घर में रख, उससे काम सेवन में पाप नहीं कह्या होय। इत्यादिक कामी जीवन कूं मोह उपजायवे कूं. रंजायवे कूं, अपने २ विकार भाव पोषिवे कूं, जे शास्त्रन का कथन करना। सो अनर्थ दण्ड है। तथा लोभी कवीश्वरों ने अभक्ष्य भोजन में पाप न कह्या। मद्य-मांस के खावने के अभिलाषी जीव, तिनके राजी करवे कूं बनाये जो कल्पित—अपनी मति अनुसार शास्त्र। तिनमें हिंसा का पाप नहीं कह्या। मद्य, मांस, मधु, खावने का पाप नहीं कह्या होय। सो शास्त्र अनर्थ दण्ड है। और जिनमें नाहर, सुअर, हिरण मारने का पाप नहीं कह्या। बनस्पती छेदवे में पाप नहीं कह्या। अनगाले जल पीवने, सपरने में पाप नहीं कह्या। ऐसे जो कषाई जीवन के बनाये कल्पित शास्त्र, परम्पराय योगीश्वरों की आम्नाय रहित कल्पित शास्त्र करे, सो अनर्थ दण्ड है। और जिनमें जादू करना, वशी करना, पर-मोहन, ऐसे कल्पित मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, स्तम्भन इत्यादिक चमत्कार बतावने का कथन करि, भोरे जीवन कूं आश्चर्य उपजावना। ऐसे कल्पित स्वेच्छा शास्त्रन का जोड़ना, सो दुःश्रुति नाम अनर्थ दण्ड है॥ ४॥ और प्रमाद सहित, ईर्य्या भाव रहित, शीघ्र-शीघ्र चलना। त्रस जीवन की विराधना सहित, अदया भाव करि चलना। बिना प्रयोजन पृथ्वी, अप, तेज, वायु, बनस्पती आदि का छेदना। इसी का नाम प्रमाद—चर्य्या अनर्थ दण्ड

है ॥ ५ ॥ ऐसे इन पांच भेद मई अनर्थ दण्ड है। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। प्रथम नाम—कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, अति प्रसाधन और असमीक्ष्याधिकरण। इनका अर्थ—तहां काम चेष्टा सहित, काय का स्फुरावना। नेत्र की चेष्टा, विकार रूप करनी। मुख, विकार रूप करना। काम पोषक, शील भंजन, भयानीक, राग भरे वचन कहना। भय बतावना। पर कौं लोभ बतावना। काय मोड़ना, आदि अनेक कुचेष्टायें लिये, काम-विकार सहित बोलना। सो कन्दर्प नाम अतिचार है॥ १ ॥ और जहां कौतुक लिये मदोन्मत्त भया, हाँसि सहित भण्ड-वचन बोलना। गालि काढ़िने मई हाँसि वचन, शील-खण्ड पाप रूप वचन, काम—चेष्टा—विकार मई आलस का लेना, दीर्घ ऊछ्वास का करना। अपने शरीर के गूढ़ चिन्ह प्रगट करि, अन्य कौं दिखावना। सो कौत्कुच्य नाम अनर्थ दण्ड दोष है ॥ २॥ और जहां प्रयोजन रहित वृथा वचन भाण्डवत् बोलना। सो धर्म—कर्म रहित बिना प्रयोजन ही खस की नाईं वचन बोलना। सो मौखर्य नाम दोष है ॥ ३ ॥ और जहां हिताहित-ज्ञान रहित, अविचार सहित, मूर्ख वचन भाखना। ताकौं सुनि, बे प्रयोजन बहुत जीव द्वेष-भाव करैं। मूरख कहैं, निन्दा पावै। इत्यादिक द्वेष उपजावनहारा, बिना प्रयोजन वचन बोलना। सो असमीक्ष्याधिकरण दोष है॥ ४ ॥ और जहां संसार विषैं अनेक भोग वस्तु, अनेक उपभोग योग्य वस्तु, नाना प्रकार इन्द्रिय सुख। देव, इन्द्र, चक्री, कामदेव, भोगभूमियां, इत्यादिक पुण्याधिकारी जीवन के भोग योग्य वस्तु, तिनके भोगने की अभिलाषा करनी। सो पुण्य

तौ हीन, जो उदर पूरणा ही होती नाहीं। और इन्द्रिय सुख भोगवे की इच्छा—देव—इन्द्र कीसी राखना। तथा पराया राज्य—भोग देख, पुण्य—रहित ऐसा विचारै। जो ये राज्य नहीं करि जानै। अरु राज्य—लक्ष्मी नहीं भोग जानै। अरु ये हस्ती, घोड़ा, पालकी पै नहीं चढ़ जानै। प्रजा नहीं पाल जानै। जो ऐसी राज्य—लक्ष्मी मोकों मिलै, तौ मैं ऐसे राज्य करौं। ऐसे हस्ती, घोटक, रथ, पालकी पर चढ़ौं। ऐसे राज्य—लक्ष्मी भोगूं। इत्यादिक पुण्य रहित होय, अर्थ रहित विचार, सो भोगोपभोग (अति प्रसाधन) नाम दोष है॥ ५ ॥ इति तीसरा अनर्थ दण्ड त्याग गुणव्रत ॥ ३ ॥ इति श्री सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावक धर्म प्ररूपण रूप, एकादश प्रतिमा विषैं, दूसरी व्रत प्रतिमा के बारह व्रतन में, तीन गुण—व्रत अतिचार सहित कथन वर्णनो नाम, तेतीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ ३३ ॥

आगे च्यारि शिक्षाव्रत कहिये है। प्रथम नाम-सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, और अतिथि संविभाग। इनका अर्थ-सामायिक के दोय भेद हैं। एक द्रव्य—सामायिक, और दूसरा भाव—सामायिक। तहां सामायिक करते विनय सहित, समता लिये, शांत मुद्रा धार, कायोत्सर्ग तथा पद्मासन तिष्ठ, शुद्ध सामायिक—पाठ करै है। अरु परणति सामायिक तैं छूटि, अन्त गई होय। प्रमादवशात् अन्य ही विकल्प में लागै। सो द्रव्य—सामायिक है। और जो सामायिक करनेहारा भव्य, शुद्धासन करि पाठ करै। सो अर्थ विषैं चित्त राखि, सामायिक करै। सो भाव—सामायिक है। यहां प्रश्न-जो

सामायिक प्रतिमा तो तीसरी है। अरु यहां दूसरी-प्रतिमा विषैं व्याख्यान किया। सो क्यों ? ताका समाधान-जो सामायिक प्रतिज्ञा का अतिचार रहित धारी तो तीसरी प्रतिमा में है। परन्तु यहां शिक्षाव्रत में कथन किया, सो साधन रूप कथन है। जैसे रण विषैं लड़ने-युद्ध-करनहारे पुरुष, सुभट हैं। सो तीर, गोली, तलवार राखैं हैं। जो युद्ध में काम पड़े, तो सुभट अपना पौरुष प्रगट करि, तीर-गोली चलावैं। और वैरीन कों जीतैं हैं। सो तो सुभट शूर ही हैं। और उन सुभटों के बालक हैं, सो तिनका भी अभिप्राय अपने बड़ों की नाईं, युद्ध करि, रण में शस्त्र चलाय, वैरी जीति, यश प्रगट करने रूप है। सो वह भी अपने बड़ों से शस्त्र-विद्या सीखैं हैं। सो ते बालक भी तीर-गोली राख, चलावैं हैं। सो इन बालकन कों, सीखनेहारा कहिये। इन तें हाल, युद्ध नहीं जीत्या जाय। ये सुभट नाहीं। जब शस्त्र-विद्या सीख चुकेंगे, तब ही सुभट कहावेंगे। हाल शस्त्र राख, तीर-गोली कों मिट्टी के तोसदान में चलावना सीखैं हैं। तैसे ही शिक्षाव्रत वाला, सामायिक करना सीखे है। सामायिक नामा प्रतिमाधारी नाहीं। यहां कोई अतिचार भी लागै। तथा कोई समयान्तर, काल भी उल्लंघन होय, तो होय। कोई अतिचार भी यहां होय। तातैं यहां शिक्षाव्रत ऐसा कह्या है। ये शिक्षाव्रत वाला, अतिचार रूप वैरी कों, नहीं जीति सकै है। तीसरी प्रतिमा विषैं, निर्दोष व्रती होय है। ऐसा जानना। इति सामायिक शिक्षाव्रत ॥ १ ॥ आगे प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहिये है। जहां सोलह-सोलह पहर का अनशन होय। सर्व

काल धर्मध्यान में, अपनी मर्याद सहित एक स्थान में व्यतीत करै। सो प्रोपधोपवास शिक्षा-व्रत है। इनके अतिचारन का कथन, आगे इन की प्रतिमा विषैं करेंगे। तहां तें जानना। इति प्रोषधोपवास ॥ २ ॥ आगे भोगोपभोग शिक्षाव्रत कहिये है। जहां एक बार भोगवे में आये ही, जो वस्तु अयोग्य हो जाय। सो वस्तु, भोग कहावे। और जो बार–बार भोगवे में आवे। सो वस्तु उपभोग कहावै है। तहां भोग वस्तु के दोय भेद हैं। एक तो भोग-योग्य वस्तु है। दूसरी भोग-अयोग्य वस्तु है। जहां अन्न, मेवा, पकवान, इत्यादिक निर्दोष वस्तु। सो तो भोग वस्तु हैं। तथा मिष्ट, तिक्त, कटुक, खारा, दुग्ध, घृतादिक षट्रस। ये भोग-योग्य वस्तु हैं। तथा चन्दन, केशर, कपूर, गंधादि अन्तर्जाति सर्व वस्तु। खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय, इत्यादिक ये सब भोग-योग्य वस्तु जानना। और कन्द-मूल आदि बाईस अभक्ष्य, अभोग-योग्य वस्तु हैं, सो ये सर्व तजवे योग्य जानना। ऐसे भोग वस्तु दोय रूप कहीं। और स्त्री, वस्त्र, आभूषण, चांदी, स्वर्ण, रत्न, माणिक, मोती, हीरादि रत्न जाति और देश, नगर, मन्दिर, हस्ती–घोटकादि चौपद, तथा दोपद–दासी, दास, सेवक। ऐसे ये चेतन-अचेतन करि दोय भेद रूप उपभोग वस्तु हैं। सो इन भोगोपभोग का प्रमाण राख लेना। सो भोगोपभोग शिक्षाव्रत है। सो याके पांच अतिचार कहिये हैं। प्रथम नाम–सचित्त, सचित्तसंबंध, सम्मिश्र, भिपव और दुःपक्काहार। इनका अर्थ–तहां सचित्त वस्तु का भोगना, सो सचित्त नाम अतिचार है ॥ १ ॥ तहां सचित्त वस्तु तैं ढांकी जो वस्तु तथा सचित्त

वस्तु ऊपर धरी होय। इत्यादिक वस्तु कों सचित्त का संयोग भया होय। सो सचित्त-संयोग है॥ २॥ और सचित्ताचित्त वस्तु का मिलाप सहित भोजन लेना। सो सम्मिश्र अतिचार है॥ ३॥ और तहां अनेक प्रकार बलकारी—पुष्टकारी रस का खावना। सो भिषव नाम अतिचार है॥ ४॥ और जो भोजन, लिये पीछे दुःख कर पचे, ग्लानि करै, डकार करै। सो ऐसे गरिष्ट भोजन का करना। सो दुःपक्काहार अतिचार है॥ ५॥ ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो शुद्ध भोगोपभोग नाम शिक्षाव्रत है। सो ये व्रत के धारी जो उत्तम फल के लोभी हैं। सो इन दोषों कों टालि, व्रत निर्दोष राखैं हैं। इति तीसरा भोगोपभोग शिक्षाव्रत ॥३॥ आगे अतिथिसंविभाग नाम शिक्षाव्रत कहिये है। तहां तिथि नाम परिग्रह का है। सो जो परिग्रह रहित होय, सो अतिथि है। तथा तिथि नाम वांच्छा का है। सो जाके वांच्छा नहीं होय, सो अतिथि है। "मूर्च्छा परिग्रहः।" ऐसा तत्त्वार्थ सूत्र का वचन है। सो अतिथि के दोय भेद हैं। एक अतिथि तो ऐसा है। कि पाप के उदय करि नहीं है अन्न-धन-वस्त्र जाके पास। उदर-पूरण कों पर—घर फिरै है। याचै है। तो भी ताके उदर—मात्र की वांच्छा पूर्ण नहीं हो है। ऐसा महा दीन, दरिद्री, अनेक रोगन करि दुखिया, वृद्ध, बालक, अन्धा, लूला इत्यादिक ये असहाय, जिनके पास एक वक्त का अन्न नहीं। कोई दया करि देय, तब पेट भरैं, सुखी होंय। याका नाम वांच्छा सहित अतिथि है। यह अशरण है, दया करवे योग्य है। याका नाम वांच्छा सहित अतिथि है। अरु वांच्छा है, सो याचना करावे है। ऐसी याचना का धारी, वांच्छा

सहित रंक, ताकौं असहाय जानि, दया भाव करि दान का देना। सो करुणा सहित अतिथि का दान है। और बीतरागी, तपसी, ज्ञानी, ध्यानी, यमी, दमी, शांति रस का भोगी, नम्न-दिगम्बर, याचना रहित, जगत् पिता, सर्व का गुरु, त्रिलोक पूज्य, सर्व जीव का पीड़ा-हर, दया सागर, षट् कायक जीवन कूं अभय-दान का दाता, योगीश्वर, मोक्षाभिलाषी, परीषह सहवे कूं साहसी, तन-ममत्व रहित, इत्यादिक कहे गुण सहित जे मुनीश्वर, सो उत्तम पात्र हैं। सो इन पात्रन कूं महा भक्ति-भाव सहित, नवधा भक्ति करि दान देनेहारा दाता, ताके सात गुण हैं। सो ही कहिये हैं—

गाथा—सध्धा भत्ती सत्तय, विणाणमलुब्ध होय क्षम भावो।
जम्मं गुण सुह तज्यो, इव सत्तय गुण ज्ञेय आदाए ॥ १३७ ॥

अर्थ— सध्धा कहिये, श्रद्धा। भत्ती कहिये, भक्ति। सत्तय कहिये शक्ति। विणाणं कहिये विज्ञान। अलुब्ध कहिये, अलुब्धता। होय क्षम भावो कहिये, क्षमा भाव होय। जम्मं गुण सुह तज्यो कहिये, अंत का शुभ-गुण, त्याग है। इव सत्तय गुण कहिये, ये सात गुण। ज्ञेय आदाए कहिये, दाता के हैं। भावार्थ—श्रद्धा, भक्ति, शक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, और त्याग। ये सात हैं। जहां दाता के ऐसा श्रद्धान होय। जो परलोक है। च्यारि गति हैं। पाप-फल तैं नरक-पशु होय है। पुण्य-फल तैं सुर-नर के सुख होय हैं। अरु मुनि का दान, स्वर्ग-मोक्ष का दाता है। जिनका निकट संसार रहा होय, तिन-

के घर यतीश्वर का दान होय है। ऐसी श्रद्धा का अस्तित्व सहित दान देना। सो श्रद्धा गुण है ॥ १ ॥ और जो मुनिराज भोजन कों अपने घर में आये। तिनके गुण सूं प्रीति-भाव करना। सो भक्ति गुण है ॥ २ ॥ और जगत के गुरु कों, प्रमाद रहित, विनय सहित, भोजन देवै की शक्ति होना। सो शक्ति गुण है ॥ ३ ॥ और मुनिराज के भोजन विषैं प्रवीणता। सो यथा-योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जानि, भोजन देय। विवेकी-दाता ऐसा विचारै। जो ये मुनि वृद्ध हैं, तो इनके योग्य पुष्टता रहित भोजन देय। अरु गरिष्ट देय तौ वृद्ध-मुनि कौं खेद करै। तातैं वृद्ध की वय (उमर) प्रमाण देय। तथा मुनिराज तरुण हैं तो ता माफिक देय। तथा ये मुनि, रोग सहित हैं। सो फलाना रोग है। वैसी ही दवा सहित, भोजन देय। तथा इन यती का तन, वायु सहित है। तथा पित्त सहित है। तथा कफ़ सहित है। इत्यादिक तौ द्रव्य कौं विचारै। और ऐसा जानै, जो यह ऋतु उष्ण है। तथा शीत है। तथा मध्यम है। इन मुनि की ऐसी प्रकृति है। इन्हें ऐसा भोजन रुचै, ऐसा नहीं रुचै। ऐसा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार करि, मुनीश्वर कों भोजन देने में प्रवीणता। सारी दान की विधि जानैं। सो विज्ञान गुण है ॥ ४ ॥ और मुनि के दान देने योग्य वस्तून में लोलुपी नहीं होना। जैसे घर विषैं एक-दोय भोजन, आपने रुचिकर बनवाये होंय। सी वस्तु अल्प होय। तो ऐसा नहीं विचारै, जो भोजन की फलानी वस्तु अल्प भई है, हमने अपने वास्ते कराई है। सो मुनीश्वर कौं देहौं, तो मोकों नाहीं बचि है। तातैं वह वस्तु नहीं द्यो। और भोजन बहुत

है, सो दै हों। ऐसा विचार नहीं करै। सो अलुब्ध गुण है ॥ ५ ॥ और मुनि कौं भोजन देते, मान मत्सर क्रोध लोभ क्रूरता सर्व तजि, समता भाव सहित, सर्व जीवन तैं स्नेह भाव सहित, क्षमा-भाव धारि, भोजन देना। सो क्षमा गुण है ॥ ६ ॥ और उदारता सहित, लोभ भाव रहित, भक्ति करि भख्या, मुनि कौं भोजन देय। सो त्याग गुण है ॥७॥ ऐसे कहे जो दातार के सप्त गुण, सो इन गुण सहित जो यती कूं दान देय, सो उत्तम फल पावै। सो जो इन सात गुण का धारी दाता, यतीश्वर कौं दान देय, सो नवधा भक्ति करि दान देय है—

गाथा—पितगहणं उच्चथाणं, पदधोणमर्चएव होहु पणणामो।
मन वय तण त्रण सुद्धा, एषण सुध्यय भक्त णव सुहदा ॥ १३८ ॥

अर्थ—पितगहणं कहिये, प्रतिग्रहण। उचथाणं कहि, ऊंच स्थान। पदधोणं कहिये, पद धोवना। अर्च एव कहिये, अर्चन करना। होहु पणणामो कहिये, प्रणाम करना। मण वय तण त्रण सुद्धा कहिये, मन, वचन, काय इन तीनों की शुद्धता। एषण सुध्यय कहिये, एषणा शुद्धि। भक्त णव सुहदा कहिये, ये नवधा भक्ति सुखदाता हैं। भावार्थ—प्रतिग्रहण, ऊंच स्थान, अंघ्रि-प्रक्षालन, अर्चन, प्रणाम, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, और एषणा शुद्धि। ये नव भक्ति हैं। तहां श्रावक, मुनि-भोजन समय, उज्वज्ल वस्त्र धारण करि, प्राशुक जल की झारी सहित अपने मन्दिर (घर) के द्वारे, विधि सहित खड़ा होय, मुनि आए, उनको पड़गाहना। सो प्रतिग्रहण नाम भक्ति है ॥ १ ॥ जब योगीश्वर ईर्य्या समिति करता, दातार की घर-भूमि

पवित्र करता, दाता के घर विषैं प्रवेश करि भोजनशाला में जाय। तहां ऊंचे आसन पै विनय सहित स्थापना। सो ऊंचस्थान नाम भक्ति है॥ २॥ तहां मुनिराज के दोऊ चरण-कमल कौं, श्रावक अपने दोऊ हाथन तैं स्पर्श करि, अपने हस्त सफल करता, प्राशुक अल्प-जल तैं पद धोवना। सो पद धोवन नाम (अन्घ्रि प्रक्षालन) भक्ति है॥ ३॥ और पीछे अष्ट द्रव्य तैं, जगत्गुरु की पूजा करनी। सो अर्चन भक्ति है॥ ४॥ और पीछे विनय सहित नमस्कार करना। सो प्रणाम भक्ति है॥ ५॥ और मन को, भक्ति सहित, विनय रूप करि, मुनीश्वर में मन लगावना। उत्साह सहित, प्रमाद रहित, विकल्प तजि, एकाग्र होय मुनि के दान में मन राखना। सो मन शुद्धि भक्ति है॥ ६॥ और जहां मुनीश्वर के भोजन समय, घर-जन तैं वचन बोलना-कोई कारण पाय के सलाह करनी होय, तौ परम्पराय विचार कैं बोलै। सो वचन शुद्धि है॥ ७॥ और मुनि कौं भोजन देते समय, दाता अपनी काय कौं शुद्ध राखै। और क्रियान तैं छुड़ाय, भोजन देने में एकाग्र करि शुद्ध राखना। सो काय शुद्धि भक्ति है॥ ८॥ और शुद्ध भोजन, अधा-कर्म रहित, सो शुद्ध भोजन है। सो अधा-कर्म कहा? सो कहिये है। अधा-कर्म चार प्रकार है-आरम्भ, उपद्रव्य, विद्रावण और परतापन। इनका अर्थ—जो प्राणी के प्राण घात तैं निपजै। सो आरम्भ दोष है।१। और अन्य जीवन कौं मन, वचन, काय विषैं दुखी करि, भोजन बनावना। सो उपद्रव्य दोष है।२। और अन्य जीवन के अङ्गोपाङ्ग छेदन करि, भोजन निपज्या होय। सो विद्रावण दोष है

। ३ । और पर-जीवन कौं सन्ताप-क्लेश उपजाय, भोजन निपज्या होय। सो परतापन दोष है। ४। इन च्यारि दोषों सहित भोजन देय। सो अधा-कर्म दोष है। ऐसे च्यारि भेद अधा-कर्म रहित भोजन देना। सो एषणा शुद्धि भक्ति है ॥ ६ ॥ ये नवधा भक्ति कहीं। सो दाता के सात गुण, नवधा भक्ति। इन गुण सहित मुनीश्वर कौं भोजन देना। सो पात्र दान है। सो श्रावक के घर में, जो श्रावक ने अपने निमित्त किया होय। तामें तैं भोजन देना। सो अतिथि संविभाग व्रत है। सो यति अतिथि हैं। वे भक्ति सहित, दान देने योग्य हैं। भक्ति सहित पात्रन कौं दान दिये, महत्-फल का लाभ होय है। सो इन पात्रन कूं अन्नदान, औषधिदान, शास्त्र-दान, और अभयदान दीजिये। यहां प्रश्न—जो तुमने मुनि कौं च्यारि ही दान देने योग्य कहे। सो अभय-दान कैसे सम्भवै ? अभय-दान तौ दया मई भावन तैं दिया जाय है। सो दया एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, इन आदि दीन-दुखी जीवन की कीजिये। तिनकौं अभयदान सम्भवै है। अरु जगत गुरु, त्रिलोक पूज्य की दया कैसे सम्भवै ? तातैं इनकौं अभय-दान कैसे कह्या ? ताका समाधान—जैसे कोई राजा के प्रबल बैरी थे। सो कोईक छल करि, राजाकौं अकेला पाय, ताकौं पकड़ि कैं मारने का उद्यम किया। तब ऐसे समय विषैं, इस राजा का सेवक-महा योद्धा, आय गया। सो वानै अपने नाथ कौं दुःख जान, वैरीन तैं युद्ध किया। अपने पुरुषार्थ तैं अरिन कौं जीति, अपना नाथ-राजा, ताकौं बचाय लाया। पीछे राजा कौं सुखी कर, नमस्कार किया। विनती करी। कि भो नाथ ! मैं आपका सेवक हों। ऐसे ही अपने नाथ-

वीतरागी जो गुरु, तन तैं निष्प्रिय, शत्रु–मित्र में समभावी, ऐसे गुरुनाथ कौं पापीजन, कोई प्रबल द्वेष-भाव तैं उपसर्ग करैं। ता समय महा घोर उपसर्ग में कोई महा धर्मात्मा, यतीनाथ का सेवक आय, अपने बल तैं पापीजन कौं दण्ड देय, मुनीश्वर का उपसर्ग टालि, पीछे जाय यतीश्वर कौं नमस्कार करि, स्तुति करि, विनती करै। सो यह मुनि कौं अभयदान भया। ऐसे कहने में कछू दोष नाहीं। तातैं मुनि कौं च्यारों ही दान सम्भवै। यामैं कछु दोष नाहीं। और एता विशेष है कि जो दीन कौं अभयदान देने में तौ करुणा--भाव होय है। और मुनि कौं अभयदान देने में भक्ति-भाव होय है। इन च्यारि दानन में अभयदान उत्कृष्ट है। अरु याका फल भी औरन तैं उत्कृष्ट है। जैसे राजा की और अनेक सेवा करने तैं, राजा कौं मरते राखै। सो उत्कृष्ट सेवा है। मरण समय सहाय करि, बैरी तैं बचाय करि राखै। सो उत्कृष्ट सेवक है। और यों ही उत्कृष्ट सेवा का, उत्कृष्ट फल है। तैसे ही मुनि कौं तीन दान तैं, उपसर्ग तैं बचायवे का महान् पुण्य है। तातैं च्यारौं दान यती कौं कहे हैं। इस नय प्रमाण करि समझ लेना। कोई नय, शास्त्र बड़ा दान है। सो शास्त्रदान के दान तैं, जिनवाणी का अभ्यास करि, केवलज्ञान पावैं हैं। इस नय तैं शास्त्रदान, बड़ा है। कोई नय तैं अन्नदान बड़ा है। और जहां रोग की बधवारी भये, यती-श्रावकन कौं ध्यान में स्थिरता नहीं होय। रोग गये ध्यान—ध्येय की प्राप्ति होय है। इस नय तैं औषधिदान बड़ा है।

और जो छुधा दिन-प्रति खेद करै, तब शिथिल होय। भोजन विना तन चीण होय। धर्मध्यान नहीं सधै। तातैं तन की स्थिरता तैं, भाव की स्थिरता होय है। और भाव की स्थिरता तैं, कर्म नाशि, केवली होय, सिद्ध पद पाय है। इस नय तैं आहरदान बड़ा है। ऐसे अपनी-अपनी जगह, नय-प्रमाण सर्व ही उत्कृष्ट हैं। यह आत्मा अन्नदान तैं, सदीव सुखी होय है। और अनेक जीवन का पोषणहारा होय है। और औषधिदान तैं, शरीर रोग रहित होय। औरन के रोग नाशवे की कला का धारी होय। और शास्त्रदान तैं अंग-पूर्व आदि श्रुत-ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति होय। आप भवान्तर में औरन कूं ज्ञानदाता होय। और अभयदान तैं भवान्तर में कोटी-भटादि महा योद्धा होय है। दयावान होय। तथा अनुक्रम तैं, अनंतकाल सुख का स्थान, स्थिरीभूत, लोक शिखर पै, सिद्ध होय। ऐसा जानि, च्यारि ही दान देना योग्य है। अरु यहां मुख्यता कथन, अतिथि संविभाग व्रत का है। तातैं अपने भोजन में अतिथि का संविभाग करना, सो अतिथि संविभाग व्रत है। याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। प्रथम नाम-सचित्त निक्षेप, सचित्तापिधान, पर व्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम। इनका अर्थ-जहां भोजन की वस्तु, सचित्त वस्तु पै धरी होय। सो सचित्त निक्षेप नाम अतिचार है॥ १॥ और जहां भोजन की वस्तु, सचित्त वस्तु से ढांकी होय। सो सचित्तापिधान नाम दोष है॥२॥ और जहां भोजन समय मुनीश्वर कों आए जानि, औरकों कहै। जो मोकूं काम है। तुम मुनिकों आहार देय लेना।

ऐसा कहिकैं, अन्य से अपना भोजन—दान करावना। सो पर—व्यपदेश नाम अतिचार है ॥ ३ ॥ और जहां और अन्य दातार का दान नहीं देख सकैं। तथा अपने भाव, मत्सर सहित राख दान देवे। सो मात्सर्य दोष है ॥ ४ ॥ और जहां भोजन का काल उलंघि जाय। आप अपने घर—धंधे में लग गया। सो प्रयोजन के वशीभूत होय, मुनीश्वर के भोजन का काल उलंघि दिया। पीछे सुचिताई में याद आई। तब द्वार—पेक्षण क्रिया करी। सो कालातिक्रम नाम अतिचार है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार रहित होय। सो शुद्ध अतिथि संविभाग नाम व्रत है।॥ ४ ॥ ऐसे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और च्यारि शिक्षाव्रत। ये बारह अणुव्रत (देश व्रत) भये। एक—एक व्रत के, पांच—पांच अतिचार। सर्व मिलकर साठ भये। सो ये व्रत प्रतिमाधारी सम्यग्दृष्टी, सो ताके सम्यक्त्व कौं पांच अतिचार नहीं होंय। सो ही कहिये हैं। शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टि संस्तव। इनका अर्थ— जिनवाणी में कहे जे धर्म—अंग, तिनके सेवने में शंका राखना। सो शंका नाम अतिचार है ॥ १ ॥ और जहां धर्म सेवन में इस—भव संबंधी वांच्छा तथा परभव संबंधी वांच्छा करनी। सो कांक्षा दोष है ॥ २ ॥ और जहां धर्मात्मा मुनि—श्रावकादिक निर्मल दृष्टि के धारी पुरुषन के तन में रोग देख, तन मैल तैं लिप्त देख, मुख वासना देख, इत्यादिक रोग देख ग्लानि करनी। सो विचिकित्सा दोष है ॥ ३ ॥ और जहां मिथ्यादृष्टी जीवन के गुण देख, बारंबार याद कर, प्रसंशा करनी। ते गुण भले जानना। सो अन्यदृष्टि प्रसंशा नाम दोष

है ॥ ४ ॥ और मिथ्यादृष्टी की अपने वचन तैं स्तुति करनी, सो संस्तव नाम दोप है ॥५॥ ऐसे पांच अतिचार रहित, सम्यग्दर्शन सहित जो व्रत का धारी, कोमल चित्त सहित, दया भण्डार, संसार तैं उदासीन, पाप तैं भय-भीत होय, च्यारि गति वास दुखदाई जान, तन धरने व मरने तैं दुखी भया है मन जाका, सो मोक्षाभिलापी, अजर—अमर पद का लोभी, धर्मात्मा! जो अपने मन—वचन—तन तैं क्रिया करै। सो सर्व जीव आप समानि जानि, ये त्रस-हिंसा का त्यागी श्रावक, यत्न तैं करै। कैसा है धर्मी श्रावक ? निरंतर समता सहित काल कौं व्यतीत करवे की है इच्छा जाकैं। निराकुल परणति सहित, शांति रस का अभिलाषी। षट् काय जीवन कूं अभयदान देने की है अभिलाषा जाकैं। ऐसा धर्मात्मा श्रावक भव्य, तन—धन तैं उदास होय, सल्लेखना व्रत धारै। सो कैसे धारै ? सो कहिये हैं। तहां प्रथम तौ सर्व जीवन तैं समता-भाव करै। पीछे अपने तन, धन, राज्य-लक्ष्मी, इन्द्रिय-सुख, कुटुम्बी, सज्जन तिन सर्व तैं मोह—ममता भाव तज, सन्यास धारै। सो कब धारै? सो समय कहिये हैं। कै तो यह धर्मात्मा अपना आयु-कर्म नजदीक आया जानै, तब सन्यास धारै। तथा शरीर में कोई तीव्र रोग जानै तब। तथा शरीर पै कोई दुष्ट पशू सिंह—सर्पादिक का उपद्रव जानै। तब सल्लेखना करै। तथा कोई कारण पाय, राजादिक का तीव्र कोप जानै। इत्यादिक दीर्घ उपद्रव जानै, तौ सल्लेखना करै। सो ता समय यह श्रावक ऐसा विचारै, जो इस उपद्रव तैं बच्या तौ अन्न—जल ग्रहण करूंगा। नहीं तौ अन्न—जलादिक का त्याग है।

ऐसी प्रतिज्ञा का धरना, सो तो सागार सन्यास है। और अपने बचनेका उपाय कछू नहीं भासै, तौ अनागार सन्यास करै। और उपसर्ग तौ नाहीं, परन्तु अनन्त संसार—भोग तैं उदासीन, काय धरने तैं आकुलित होय कैं, मुनिपद धरवे कूं असमर्थ, नहीं पाया है यती-पद धरवे का द्रव्य—क्षेत्र—काल—भाव जानै। सो भव्यात्मा, अपने तन तैं निष्प्रिय होय, काय तजवे का उपाय शनैः—शनैः करै है। सो ही कहिये है। प्रथम तौ जातैं अपने परणामन की विशुद्धता वधै, संक्लेश भाव नहीं होंय, ऐसा तप करै। एकांतरे करै, पीछे एक—एक उपवास साधै। पीछे दोय—दोय उपवास साधै। तीन, च्यारि, पांचादि उपवास का साधन करै। पीछे पारना के दिन अल्प आहार लेय-ऊनोदरी साधै। ऐसे केतक दिन करि, पीछे रस—त्याग साधै। पीछे केतक दिन गये, नर्म भोजन साधै। पीछे पतला दलिया साधै। पीछे भात का पानी साधै। पीछे अन्न तजि, दूध साधै। पीछे दूध तजि, दही। पीछे दही तजि, मही। फिर मही तज, जल राखै। ऐसे करते—करते अनुक्रम तैं, जब काय तजवे का समय नजदीक जानैं। तब अपने सज्जन—कुटुम्बी जन बुलाय, उन तैं मोह घटावे के निमित्त हितोपदेश देय, महा हित—मित वचन कहि, उन्हें संतोषित करै। पीछे यह सम्यग्दृष्टि का धारी, जगत तैं उदासी आत्मा, शरीर कौं भिन्न अवलोकनहारा, सर्व जीवन कौं सुख चाहता ऐसा विचारै। जो सर्व जीव साता पावैं। कोई भी प्राणी, दुखी मत होऊ। कोऊ रोग—पीड़ा, दुख—दरिद्र, अन्न—तन करि दुखी मत होऊ। मेरे सर्व जीवन तैं क्षमा-भाव है।

और सर्व जीव मोक्ष-मार्ग पावने का भाव करौ। अब मैंने मन—वचन—काय करि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, आदि त्रस—स्थावर जीव, सो सर्व कूं अभयदान दिया। सर्व जीव मेरे पै दया भाव करि, अभयदान देओ। ऐसे सर्व जीवन तैं क्षमाय, पीछे अपनी आलोचना करै। कि जो मैंने अपनी अज्ञानता करि, मोह फाँसि में फँसि, राग-द्वेष करि, पर वस्तु में ममत्व अपनाय—अपनाय, पाप—फंद विषैं आत्मा उलझाया। मनुष्य पर्याय पाय, वृथा दुख बधाया। हाय! हाय! अज्ञान चेष्टा का करनहारा, भ्रम-बुद्धि मोसा और कोई नाहीं। देखो, जो आगे महान् बुद्धिमान् भये। तिनने मनुष्य पर्याय पाय, धर्म साधन किया। पीछे संसार-भोगन तैं उदास होय, राज्य-संपदा व इन्द्रिय-जनित-सुख काले नाग के समान जानि, तजे। तन तैं ममत्व निवार, दिगम्बर होय, नग्न मुद्रा धारि, मोह फाँस छेद, वन विहारी भये। बाईस परीषह सहके, कर्म रूपी ईंधन कौं ध्यान रूपी अग्नि में भस्म करि, सिद्ध-लोक विषैं जाय तिष्ठे। अविनाशी भये। काय धरने तैं रहे। निरंजन भये। ते ही धन्य हैं! और मैंने तो कल्पवृक्ष समान मन-वांछित सुख को देनेहारी मनुष्य पर्याय पाय, हलाहल विष समान विषय चाहे। सुकृत कछू नहीं बन्या, अरु मरने के दिन आय पहुँचे। इत्यादिक आलोचना करि, कषायन का मद तोड़, मंद कषायी होय कैं। पीछे ये पवित्र बुद्धि का धारी, महा विनय सहित, नम्र भावन तैं, परमेष्ठी कौं नमस्कार करि, बारंबार तिन पंच गुरुन की स्तुति पढ़ता, परणति विशुद्ध राख कैं। यह सर्व नय का वेत्ता, श्रावकन की लौकिक पर-

पराय-मर्यादा का जाननहारा, अपूर्व-गुण का धारी, मोह तैं रहित होय, व्यवहार पोपवे कौं, अपने तनके प्रयोजन धारी—कुटुम्बी—मोही जन तैं, यथा-योग्य विनय तैं, मिष्ट क्षमा-वचन कहै। शभ अक्षर उचारता, न्याय वचन—धर्म रस के भींजे, संसार तैं उदास, मर्यादा प्रमाण वचन कहै। भो कुटुम्बी जनो! अब तांईं तुम्हारे—हमारे पर्याय के संबंध करि, एक क्षेत्र विषैं येते दिन रहना भया। तातें परस्पर मोह के बंधान करि, एकत्व भया। सो अब हम इस पर्याय तैं भिन्न होंयगे। सो तुम कछु मोह-भाव तैं, आर्त्त—भाव नहीं करना। जाकरि अशुभ कर्म का बंध होय, परभव में दुख उपजे। सो ऐसा भाव नहीं करना। तुम सर्व ही जिनधर्म के वेत्ता, संसार-कला विनाशीक जाननेहारे हो। भो पुत्र! तू इस पर्याय संबंधी पुत्र है। दोऊ भले कुल का धारी, धर्मात्मा, सज्जन अंग का धारी है। सो जैसे हमने इस भव में पर्याय पाय कैं, न्याय करि, धन उपारज्या। कुटुम्ब की रक्षा करी। यथायोग्य सज्जन का विनय किया। जिनधर्म विषैं दृढ़ प्रतीति होय प्रवृत्ते। तैसे तूं भी करियो। सो न्याय तैं धन, यश, पुण्य उपजवाना। मोह नहीं बधावना। और हे इस भव के माता, पिता, स्त्री, भ्रातृ, मित्र हो! हमारे इस पर्याय का नाता है। और तो ये जीव अनंत-पर्याय में कई बार पुत्र तैं पिता, पिता तैं पुत्र; माता तैं पुत्री, पुत्री तैं माता; स्त्री तैं भगनी, भगनी तैं स्त्री; भाई तैं पिता, पिता तैं भाई; मित्र तैं बैरी, बैरी तैं मित्र; इत्यादिक अनेक नाते भये। जिस पर्याय में यह जीव मिल्या, तैसा ही नाता पाल्या। अरु ताही रूप प्रवृत्त्या। सो अब इस पर्याय के संबंधी, तुम

कुटुम्बी भये हो। सो तुम सब ही सज्जन अंगी हो। सुकृत्य के इच्छुक हो। सो तुमने मेरे ऊपर उपकार करि, इस पर्याय का यत्न करि, याकौं बधाय पुष्ट करी। सो मैं अज्ञान रस भीना, अविनय चेष्टा कों धारि, तुम्हारी सेवा–बंदगी इस काय तैं कछू नहीं करी। अरु और भी इस पर्याय तैं कछु शुभ कार्य नहीं बना। हे कुटुम्बी प्रीतम हो! मैं मंद बुद्धि, इस पर्याय कूं पाय, कुसंग-योग तैं कुमार्ग चल्या। अरु सुपात्रन कूं भक्ति सहित दान नहीं दिया। दीन–दुखित कूं करुणा करि, दान नहीं दिया। और छल–बल करि, पराये धन, प्रपंच करि हरे। और शरीर पाय शीलव्रत नहीं पाल्या। पशुवत् कुशील–सेवन किया। सुदेव–सुधर्म–सुगुरु की सेवा नहीं करी। अरु पाखंडी कुदेव–कुधर्म–कुगुरु कूं शुभ–अतिशय सहित जानि, पूजे। संतन की संगति तजकर, निंदा करी। अरु पापाचारी-कुमार्गीन की प्रसंशा करी। पर कौं दोष लगाये, अपने दोष ढांके। शुभाचार तज्या, कुआचार सेवन किया। निशि-भोजनादि कुकार्य रूप प्रवृत्त, पाप बंध किया। खाद्याखाद्य नहीं विचार्या। उत्तम मार्ग तज्या। हीन मार्ग विषैं गमन किया। अनेक दीन मनुष्य–पशून कूं, द्वेष-भाव करि पीड़े–दुखी किये। मत्सर-भाव करि सताये। सामान्य प्राण के धारी अनेक जीव, दया रहित भावन तैं हते। इत्यादिक तिहारे कुल योग्य नाहीं, ऐसी हीन–क्रिया करि, मो मंद-बुद्धि ने पाप-बंध करि, अशुभ का भार अपने सिर लिया। अकार्य सहित प्रवृत्त्य, अपयश रूप वासना फैलाई। ऐसे अज्ञानी जीव की, तुमने अनेक बरदासि कर (सह कर), अपनी सज्जनता

प्रगट करी। मो तैं मोह बुद्धि करि, तुमने अपने पास राखा। इत्यादिक भो सज्जन हो ! तुम्हारी प्रीति, तुमने विशेष जनाई। परन्तु अहो सज्जन, अंगी हो ! अहो कुटुम्बी लोगो ! अब मेरा आयु-कर्म पूर्ण होने आया। सो तुम मो पै, समता-भाव राखो। मैं महा अज्ञान, मोतैं तुम्हारी सेवा कछु बनी नाहीं। अरु हमारे—तुम्हारे वियोग होने का समय-आय लग्या। सो तुम कछु चिंता—आर्त्त नहीं करना। ये जीव ऐसे ही अनंते नाते करता, अनंत काल का जन्म—मरण करता आया। जो पर्याय पाई, सो ही काल ने हरी। परन्तु मेरी अज्ञानता नहीं छूटी। जैसे कोई अन्याय व चोरी करनेहारे कूं, राजा अनेक दंड देय। पीछे और सामान्य दंड तैं नहीं मानै, तो मारि डारै। ऐसा कठिन दण्ड देखकर भी, यह जीव अमार्ग—चोरी नहीं तजै। तो राजा कहा करै। तैसे ही राग—द्वेषादि प्रवृत्ति तैं अनेक पाप-कार्य किये। ताका फल; बहुत प्रकार राग, द्वेष, चिन्ता, शोक, भय, इत्यादिक भोगे। तो भी यह जीव पाप नहीं तजै। राग-द्वेष रूप अपराध कौं करता ही गया। तब काल रूपी राजा ने बड़ा दोषी जान, मारि डाख्या। तौ भी रागादिक कुमार्ग, मेरा नहीं छूटा। ऐसे अनंतकाल मोकों भ्रमण करते होय गये। जगत में गया, वहां भी रागादिक-कुमार्ग चल्या। तहां काल-राजा ने मारया। सो अब भी इस पर्याय में मैंने अनेक—अनेक रागद्वेष भाव करि, पाप किये। सो तातें काल रूपी राजा के वश भया। सो मोकों काल—राजा, अब मारने का उपायी है। सो मारेगा। तातें तुम मोह तजो। इत्यादिक अनेक समता

करि, अनेक वैराग्य भावना सहित, यह सन्यासी–धर्मात्मा, अपने चित्त कौं निर्मल करिकैं, शुभ भावना भाय, व्यवहार नय तैं कुटुम्बी-जन कौं अनेक संबोधन रूप हितकारी–धर्म सूचक वचन बारंबार कहि, मोह फंद छुड़ावै। हे जन हो ! तुम इस पर्याय के स्नेही हो। सो तुम सब, चित्त देय सुनो। कि जो तुमने इस पर्याय तैं मोह बधाय करि, अब तांईं मेरी योग्य–अयोग्य क्रिया में नजर नहीं करी। अरु स्नेह बुद्धि करि, अब तांईं मेरे तन की रक्षा करी। तुमने सज्जनतता प्रगट करि, इस तन की प्रतिपालना करी। जैसे स्नेह बुद्धि के धारी बड़ी बुद्धि वारे करैं, सो जो तुम्हारे करवे की थी, सो तुमने करी। परन्तु हे प्रीतम हो ! इस तनकी स्थिति पूर्ण होने आई। सो अब ना-इलाज है। काहू की राखी रहेगी नाहीं। तातैं इस शरीर तें, अब तिहारा वियोग होयगा। तातैं तुम सब ही विवेकी हो। सो मोह भाव करि, शोक-चिंता नहीं करो। अनादि तैं जगत की ऐसी ही परिपाटी चली आई है। सो अनेक भवन में, अनेक नातान का संयोग भया, अरु छूटा। सो अब भी तुम तैं कुटुंब का संबंध भया था, सो ये भी छूटेगा। तातैं अब तांईं इस तन तैं, तुम्हारी वचन-काय करि, तुम योग्य विनय-क्रिया नहीं भई होय। तथा अविनय भया होय। तो तुम अपनी सरल-बुद्धि करि, क्षमा-भाव करो। इत्यादिक शुभ शब्दन करि सबकौं समाधान लाय, साता उपजाय, लौकीक मोह छुड़ाय, पीछे यह भव्यात्मा च्यारि प्रकार आहार तजन करता भया। सो इन आहारन के नाम-तहां जाके खाये पेट भरै। सो खाद्य आहार है॥१॥ और जे लौंग, सुपारी आदि स्वाद के

निमित्त खाईये, सो स्वाद आहार है ॥२॥ और तहां जाकों अंगुली से चांटिये, सो लेय आहार है ॥३॥ और तहां जाकौं पानी की नांईं पीजिये, सो पेय आहार है॥४॥ ऐसे खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय, इन च्यारि प्रकार आहार कौं तजन करि, डाभ के विस्तर कौं निर्जीव भूमि शोधि, तापै विछावै। तापै तिष्ठ करि, साधर्मी जन तें चर्चा करता, तत्त्व विचार करता, द्वादशानुप्रेक्षा विचारता। वीतराग देव का स्मरण, वीतराग गुरु, दया धर्म, इत्यादिक पंच-परमेष्ठी के गुणन का चिन्तवन, इत्यादिक धर्म-ध्यान भावना सहित, काय तें भिन्न होय। इस भांति सन्यासी काय तज कैं, महा ऋद्धि धारी कल्पवासी देव होय है। ऐसे सल्लेखना व्रत जानना। और याही व्रत के पंच अतिचार हैं। सो नाम कहिये हैं। जीवित संशय, मरण संशय, मित्रानुराग, सुखानुवंध, और निदान। इनका अर्थ—तहां संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारना, जो मैं वहुत जीऊं नाहीं, तो भला है। ऐसा विचारै। सो जीवित संशय अतिचार है ॥ १ ॥ जहां संन्यास लिये पीछे ऐसा विचार करना, जो मैं मरूंगा अक नाहीं? अव पर्याय रही, भली नाहीं। ऐसी भावना का नाम मरण संशय है ॥२॥ और संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारना, जो फलाना हमारा वाल-मित्र है। तातें मिलाप होय तौ भला है। ऐसे विचार का नाम मित्रानुराग अतीचार है॥३॥ तथा अगले भोगे भोगन कूं यादि करै। सो याका नाम सुखानुवंध अतिचार है ॥ ४ ॥ और संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारै, जो इस व्रत का मोकौं ऐसा भला फल उपजियो। सो याका नाम निदान-वंध अतिचार है ॥५॥ ऐसे ये पांच अतिचार

नहीं लागैं, सो शुद्ध सल्लेखना व्रत है। या प्रकार शरीर कौं व्रत सहित तजिये है। सो शरीर तजे के तीन भेद हैं। च्युत, चाव्यक और त्यक्त। इनका अर्थ—तहां कदली घात बिना, संन्यास बिना, अपनी संपूर्ण आयु-सर्व भोग कैं, उदय—मरन करै, सो जो शरीर आत्मा ने तज्या, सो च्युत शरीर है ॥ १ ॥ अब कदली घात का स्वरूप कहिये है। सो बिष तैं मरै। मरै। शस्त्र तैं, जल तैं, अग्नि तैं पर्वतादिक तैं गिरि मरै। रोग की तीव्र बेदना तैं, इत्यादिक कारणन तैं, मरै सो कदली घात मरण है। सो इस कदली घात सहित, संन्यास रहित, जा शरीर कौं आत्मा ने तज्या, सो चाव्यक शरीर है ॥ २ ॥ और तीसरे त्यक्त के तीन भेद हैं। याकौं आत्मा चाह करि, अपनी इच्छा सहित तजै है। तातैं याका नाम त्यक्त कह्या है। सो ये त्यक्त शरीर, महा उत्तम मुनि तथा श्रावक का होय है। ताके तीन भेद हैं। उनके नाम—भक्त प्रतिज्ञा, ईगणी और प्रायोगमन। इनका अर्थ—तहां भोजन का त्याग करै, सो जघन्य तौ अन्तर्मुहूर्त काल भोजन कौं तजै। अरु उत्कृष्ट बारह वर्ष लूं अनशन करै। मध्यम के अन्तर्मुहूर्त तैं लगाय, एक-एक समय अधिक, उत्कृष्ट बारह वर्ष पर्यंत के अनेक भेद हैं। सो ऐसे भोजन का प्रमाण सहित— अनशन करि शरीर तजै, सो भक्त प्रतिज्ञा संन्यास सहित शरीर है ॥ १ ॥ और जा शरीर तज तैं, सन्यास करनेहारे के शरीर में, तप के योग तैं कदाचित् खेद होय। तौ अपने शरीर का वैय्यावृत आपही अपने हाथ तैं करै। और शिष्यादिक तैं नहीं करावै।

भक्त प्रतिज्ञा वाला संन्यासी, शरीर में खेद भये, अपने हाथ तैं अपने पांव, पीठ, शीश, आदि अङ्गोपांग दाब लेय था और शिष्यादिक तैं भी अंगोपांग दबावै था। अरु जो पर-तैं वैय्यावृत नहीं करावै, अपने हाथ तैं अपना वैय्यावृत करै। सो ईगणी सन्यास सहित शरीर है ॥ २ ॥ और नहीं तो आप करै, नहीं और पै संन्यास में वैय्यावृत करावै। संन्यास लिये पीछे जो–जो उपद्रव–खेद -दुख शरीर पै आवैं, सो समता सहित एकासन सहै। शरीर कौं चलाचल नहीं करै। संन्यास धर तैं जैसा आसन सूं, जा भांति बैठा था, ताही तरह जीवन लूं रहै। हालै–चालै नाहीं। सो प्रायोगमन संन्यास सहित त्यक्त शरीर है ॥ ३ ॥ ऐसे इन आदि संन्यास के अनेक भेद हैं। सो जो भव्यात्मा, जन्मन-मरण करि डर्‌या होय। तिस निकट संसारी कौं ऐसे संन्यास सहित काय तजवे कौं मिलै है। और जे दीर्घ संसारी, मोही, धर्म–बासना रहित हैं। तिन जीवन कूं ऐसा मरण नाहीं होय। ऐसा जानना। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावक की एकादश प्रतिमा विषैं, सम्यक् सहित बारह व्रत कूं लिये, सल्लेखना व्रत मिलाय इन चौदह के पांच–पांच अतिचार सहित, दूसरी व्रत प्रतिमा कथन वर्णनो नाम, चौंतीसवां पर्व संपूर्णम् ॥ ३४ ॥

आगे तीसरी सामायिक प्रतिमा का स्वरूप कहिये है—

गथा—सहु चर किप्पा भावो, तव संजय वरत भाव बधवाए।
आरदि रुद्द विहीणो, सामायो तस भासयो सुत्त ॥ १३६ ॥

हीं। ऐसे मन-चंचल रहै। अरु काय कूं, भूले की नांईं झुलाया करै। सो दोलायत अतिचार है॥ ५॥ और हाथ की अँगुली कूं अंकुशाकार करि, मस्तक में लगाय नमस्कार करै। सो अंकुश दोष है॥ ६॥ और सामायिक करते कटि पै हाथ लगाय, काय कौं संकोच, कछुवा के आकार करै। सो कच्छप दोष है॥ ७॥ सामायिक करते कटि कौं हिलावे, मछली की नांईं चंचल राखे। सो मछोव्रत दोष है॥ ८॥ और जहां सामायिक करते, भया जो सूर्य का घाम, ताके सहवे कूं असमर्थ होय, परणति संक्लेश रूप करै। सो मन दुष्ट नाम अतिचार है॥ ९॥ और सामायिक करते, काय कौं हाथ तैं दाबि, दृढ़ बंधनसा करै। सो बंधन अतिचार है॥ १०॥ और सामायिक करते कोई देव, मनुष्य, सिंह, सर्पादि जीवन के भय सहित कायोत्सर्ग करै। सो भय दोष है॥ ११॥ और सामायिक करते, अपने तौ स्थिरता नाहीं, अरु धर्म—फल की इच्छा भी नाहीं। परन्तु गुरु के भय से, तथा संघ के भय से, सामायिक क्रिया करै। सो परमार्थ रहित करै। सो विभ्य दोष है॥१२॥ और तहां च्यारि प्रकार संघ के खुशी करवे कौं, तथा अपनी महिमा पर के मुख तैं सुनिवे कौं, शोभा के हेतु सामायिक करै। सो गौरव-वृद्धि दोष है॥ १३॥ और अपना माहात्म्य करायवे कौं, इन्द्र के सुखन की इच्छा सहित, मान—बड़ाई के हेतु सामायिक करै। सो गौरव दोष है॥ १४॥ और, जो गुरु के पास सामायिक करूंगा, तो कोई मेरा प्रमाद देख, औगुन काढ़ेंगे। ऐसा जानि, एकांत मैं गुरु तैं छिपकर, सामायिक करै।

सो वचन दोष है ॥ २ ॥ और जहां सामायिक करते शुद्धासन तजि, आसन चंचल किया करै। सो काय अतिचार है ॥ ३ ॥ और जहां सामायिक करते पाठ भूलि–भूलि जाय, कि जो मैंने यह पाठ पढ़्या, अक नाहीं ? मैं कहा पढ़ों हौं ? ऐसा भ्रम–भाव रहै । सो विस्मरण दोष है ॥ ४ ॥ और सामायिक करतें वचन–काय प्रमाद सहित राखै। अनादर भाव तैं सामायिक करै। सो अनादर दोष है ॥ ५ ॥ जो इन पांच दोषों कौं टालै, सो ही याका नाम शुद्ध सामायिक व्रत है ॥ और इस सामायिक व्रत के बत्तीस अतिचार हैं । तिनकौं व्रतधारी धर्मी टाले है। सो ही कहिये है। प्रथम नाम–अनादर, ततध्व, प्रतिष्ठा, प्रतिपीड़ित, दोलायत, अंकुश, कच्छप, मछोव्रत, मन दुष्ट, बंधन, भय, विभ्य, गौरव–वृद्धि, गौरव, न्यति, प्रतिनीति, प्रदुष्ट, शब्द, ताड़ित, हीलित, त्रिबलित, संकुचित, दृष्टि, अदृष्टि, करमोचन, लब्धि, आलब्धि, हीन, उद्धत दो चूलि, मूक, दादुर और चूलित ये बत्तीस हैं । इनका अर्थ–तहां सामायिक करते नमस्कारादि क्रिया करै, सो प्रमाद सहित, विनय रहित करै । सो अनादर दोष है ॥ १ ॥ और सामायिक करते, विद्या के मद सहित, उद्धत होय, अशुद्ध क्रिया करै । सो ततध्व दोष है ॥ २ ॥ और जहां प्रतिमा जी के बहुत ही नजदीक-सन्मुख होय, सामायिक करै । सो प्रतिष्ठा दोष है ॥ ३ ॥ और जहां दोऊ हाथ तैं जंघा दाबि कैं नमस्कार करै। सो प्रतिपीड़ित दोष है ॥ ४ ॥ और सामायिक करै, सो पाठ विसर्जन होय जाय । तथा शुद्ध ही पढ़ै, तौ चित्त संशय रूप होय, कि यह पाठ पढ़्या, अक नाहीं ? पढ़्या तौ

मोकौं यादि नाहीं। ऐसे मन-चंचल रहै। अरु काय कूं, भूले की नांई झुलाया करै। सो दोलायत अतिचार है ॥ ५ ॥ और हाथ की अँगुली कूं अंकुशाकार करि, मस्तक मे लगाय नमस्कार करै। सो अंकुश दोष है ॥ ६ ॥ और सामायिक करते कटि पै हाथ लगाय, काय कौं संकोच, कछुवा के आकार करै। सो कच्छप दोष है ॥ ७ ॥ सामायिक करते कटि कौं हिलावे, मछली की नांईं चंचल राखे। सो मछोव्रत दोष है ॥ ८ ॥ और जहां सामायिक करते, भया जो सूर्य का घाम, ताके सहवे कूं असमर्थ होय, परणति संक्लेश रूप करै। सो मन दुष्ट नाम अतिचार है ॥ ९ ॥ और सामायिक करते, काय कौं हाथ तैं दाबि, दृढ़ बंधनसा करै। सो बंधन अतिचार है ॥ १० ॥ और सामायिक करते कोई देव, मनुष्य, सिंह, सर्पादि जीवन के भय सहित कायोत्सर्ग करै। सो भय दोष है ॥ ११ ॥ और सामायिक करते, आपने तो स्थिरता नाहीं, अरु धर्म—फल की इच्छा भी नाहीं। परन्तु गुरु के भय से, तथा संघ के भय से, सामायिक क्रिया करै। सो परमार्थ रहित करै। सो विभ्य दोष है ॥१२॥ और तहां च्यारि प्रकार संघ के खुशी करवे कौं, तथा अपनी महिमा पर के मुख तैं सुनिवे कौं, शोभा के हेतु सामायिक करै। सो गौरव-वृद्धि दोष है ॥ १३ ॥ और अपना माहात्म्य करायवे कौं, इन्द्र के सुखन की इच्छा सहित, मान—बड़ाई के हेतु सामायिक करै। सो गौरव दोष है ॥ १४ ॥ और, जो गुरु के पास सामायिक करूंगा, तो कोई मेरा प्रमाद देख, औगुन काढ़ेंगे। ऐसा जानि, एकांत मैं गुरु तैं छिपकर, सामायिक करै।

सो न्यति दोष है ॥ १५ ॥ और जहां सामायिक करते गुरु की आज्ञा रहित, गुरु तैं प्रतिकूल होय, अपनी इच्छा रूप, गुरु के कहे बिना ही, गुरु की आज्ञा बिना ही, सामायिक करै। सो प्रतिनीति दोष है ॥ १६ ॥ और सामायिक करते, अन्य जीवन तैं द्वेष-भाव राखै। तथा युद्ध करवे का, तथा कलह करवे का अभिप्राय राखै। सो प्रदुष्ट दोष है ॥ १७ ॥ और जहां गुरु करि ताड़ित। जो गुरु ने अविनयी जानि, तथा प्रमादी जानि, धर्म—भावना रहित जानि, संघ तैं काढ़ि दिया होय। सो गुरु के भय तैं, तथा संघ के भय तैं, सामायिक करै। सो ताड़ित दोष है ॥ १८ ॥ और सामायिक करते, मौन तजि बोलि उठै। सो शब्द दोष है ॥ १९ ॥ और तहां सामायिक करते, गुरु की अविनय रूप भाव हो जांय, गुरु के मान—खण्डन रूप परणति हो जाय, माया रूप भाव होंय। सो हीलित दोष है ॥२०॥ और सामायिक करते ऊंचा होय, त्रिबलीभंग करै, तथा ललाट पर त्रिबली करै। सो त्रिबलित दोष है ॥ २१ ॥ और जहां सामायिक करते, सिर कूं हस्त तैं छीय करि, काय कौं संकोच करि, गठिया समान होय, करै। सो संकुचित दोष है ॥ २२ ॥ और गुरु के देखते तथा अन्य कोई के देखते सामायिक करै, तब तौ महा विनय सहित खड़ा होय करै। काय की शुद्ध—भली क्रिया सहित सामायिक करै। अरु कोई नहीं देखता होय, तो प्रमाद सहित स्वेच्छाचारी होय करै। चहुँ दिशा अवलोकन रूप काय—मन चंचल राखै। इस भांति सामायिक करै। सो दृष्टि दोष है ॥ २३ ॥ और सामायिक करते अपने गुरु तैं अपरिच्छिन्न

होय, तथा संघ में और वृद्ध मुनि, बड़े-बड़े गुरुजन तैं दृष्टि चुराय, अपने तन की शोभा निरखै। सो काय-रूप देख राजी होय। मन-तन चलित-चंचल राखै। सो अदृष्टि दोष है ॥ २४ ॥ और जहां च्यारि संघ तथा अन्य जन राजी करवे कौं सामायिक करै। सो करमोचन दोष है॥ २५ ॥ और तहां सामायिक करते, आप कूं पीछी आदि पदार्थ की प्राप्ति वांच्छै। जो मेरे पास पीछी-शास्त्रादि उपकरण नाहीं, सो मिलैं तौ भला है। ऐसी जानि सामायिक करै। सो लब्धि दोष है ॥ २६ ॥ और श्रावक के षट् कर्म रूप उपकरणन की प्राप्ति जानै, तो सामायिक करै। सो आलब्धि दोष है ॥ २७ ॥ और जहां काल की मर्यादा टालि, सामायिक करै। अरु ग्रन्थन के अर्थ विचार रहित भाव राखै। सो हीन दोष है॥२८॥ और तहां सिताब-सिताब (शीघ्र-शीघ्र) क्रिया करि, अल्प काल में सामायिक पूर्ण करै। तथा धीरे-धीरे प्रमाद सहित क्रिया करि, बहुत काल में पूर्ण करै। अरु पाठ पढ़ै, सो भूलि-भूलि जाय, फेरि पढ़ै। फेरि पढ़ै, सो फेरि भूलै। ऐसी सामायिक करै। सो उद्धत् दो चूलि दोष है॥ २९ ॥ और जहां सामायिक करते, मूके की नांईं हूं-हूं शब्द बोलै, और अंगुली-नेत्रादि तैं संज्ञा बतावै। सो मूक दोष है ॥ ३० ॥ और तहां सामायिक करते, शोर करि पाठ पढ़ै। जैसे मैंड़क शोर करै, तैसे पाठ करते शब्द बोलै, सो बहुत शोर करै। सो दादुर दोष है ॥ ३१ ॥ और सामायिक करते एकासन तैं ही, एक क्षेत्र तिष्ठता, सर्व देव-गुरु की स्तुति करते नमस्कार करै। अरु पाठ पढ़ै, सो महा मिष्ट स्वर तैं, राग सहित, पर का मन रंजायवेहारा स्वर तैं पढ़ै। सो

चूलित दोष है ॥३२॥ ऐसे कहे बत्तीस दोष, तिनकौं टालि सामायिक करै। सो शुद्ध सामायिक धारी श्रावक है॥ इति बत्तीस दोष॥ आगे बाईस दोष, सामायिक करते कायोत्सर्ग करै, तब टालै। सो कहिये हैं। तहां प्रथम नाम—घोटक, लता, स्थंभ, कूट्या, माला, बधू, लंबोतर, तन-दृष्टि, वायस, खलिन, जुग, कपिथ, सिर-कंपित, मूक, अँगुली, भ्रू-विकार, सुरापान, दिशावलोकन, ग्रीवा, परणमन, निष्ठीवन, और अङ्गमरच्च। इनका अर्थ—तहां घोड़े की नांईं खड़ा होय सामायिक करै। सो घोटक दोष है॥ १॥ सामायिक करते शरीर कों बेलि की नांईं आंका—बांका करै। सो लता दोष है॥ २॥ और सामायिक करते शरीर कों स्थंभ तथा भीति का सहारा देय खड़ा होय सामायिक करै। तथा शास्त्रन के अर्थ चिन्तवन करि रहित, शून्य चित्त करि, स्थम्भ की नांईं खड़ा होय, सामायिक करै। सो स्थम्भ दोष है॥ ३॥ समायिक करते महल, गुफा, गृह, कुटी, मंडपादिक वांच्छै। सो कूट्या दोष है॥ ४॥ और सायायिक करते ऊंचा सिंहासन, पाटा या चौको पर खड़ा होय, सामायिक करै। सो माला दोष है॥ ५॥ जैसे कोई भली स्त्री, लज्जा सहित, अंग छिपाय खड़ी होय, तैसे वस्त्र तैं व कर तैं अंग ढांकि खड़ा होय। सो बधू दोष है॥ ६॥ और सामायिक करते व्युत्सर्ग समय लम्बे हाथ करि अर्द्ध नमस्कार करै। सो लम्बोतर दोष है॥ ७॥ और सामायिक करते अपने शरीर कों निरखै। सो भला, कोमल, सुन्दर, शुभाकार देख खुशी होय। अरु मलिन, क्षीण, शोभा रहित देखे, तथा श्याम कर्कश देखै, तो मन में बेराजी होय। सो तन-दृष्टि दोष है॥ ८॥ और

जहां सामायिक करते काक की नांईं नेत्र चंचल राख, चारों दिशा अवलोकन करै। सो वायस दोष है॥ ९॥ और सामायिक करते घोटक की नांईं दांत चबाया करै। मुख–तन कठोर राखै। सो खलिन दोष है॥ १०॥ और सामायिक करते वृषभ की नांईं नार (ग्रीवा) कूं ऊंची–नीची करै। सो जुग दोष है॥ ११॥ और सामायिक करते मूंकी बाँधि सामायिक कूं खड़ा होय। सो कपिथ दोष है॥ १२॥ और सामायिक करते शीश धुनै–हिलावै। सो सिर-कंपित दोष है॥ १३॥ और सामायिक करते, मुख, नाक, नेत्र, वांके (टेढ़े) करता जाय, सो मूक दोष है॥ १४॥ और सामायिक करते हाथ–पाँव की अंगुली हिलावै। सो अँगुली दोष है॥ १५॥ और सामायिक करते नेत्र वक्र करै, भौंह धनुषाकार चढ़ावै, दृष्टि बांकी करै सो भ्रू विकार दोष है॥ १६॥ और समायिक करते मतवाले की नांईं झूमै। सो सुरापान दोष है॥ १७॥ और सामायिक करते नीचा–ऊंचादि दशों दिशा, इत–उत देखा करै। सो दिशा अवलोकन दोष है॥ १८॥ और तहां सामायिक करते ग्रीवा (गर्दन) कों इत-उत हिलाय, बांकी-नीची–ऊंची करै। सो ग्रीवा दोष है॥ १९॥ और सामायिक करते ध्यान तजि और ही क्रिया करन लागै। सो परणमन दोष है॥ २०॥ और सामायिक करते, मुख तैं थूकै। नाक तैं नाक-मैल काढ़ै। तथा तन के अंगोपांग मर्दन करि मैल उतारै। तथा मुख में जीभ कूं हिलावै, फेरया करै। दांतन कूं होंठ तांईं चलावै। तथा पद्मासन तिष्ठता, पांव की पगथली छीया करै–मसलै। सो निष्ठोवन दोष है॥२१॥ और सामायिक करते नीति करने

का स्थान, मल करने का स्थान छीवै। सो अंगमरच्च दोष है ॥ २२ ॥ ऐसे सामायिक के पांच अतिचार, तथा बत्तीस और बाइस, एते अंतराय टालि कैं, धर्म फल का लोभी, सामायिक प्रतिमा का धारी, अपने व्रत की रच्चा करता, सामायिक करै। सो सामायिक कौन स्थान में करै, सो स्थान बताईये है। जहां सूना महल होय। घर-मन्दिर सूने हौंय। तथा बिना धनी के, ममत्व रहित, जामें कोई का ममत्व नाहीं होय, ऐसे मंडप हौंय। तथा सिंहादिक के ममत्व रहित, गुफा होय। तहां सामायिक करै। तथा वन, श्मशान भूमि, वृच्च की कोटरन में, जिन मन्दिर, इत्यादि एकान्त स्थान, शुद्ध देख। जहां अति शीत नहीं होय, अति गर्मी नहीं होय। जहां दंश-मसकादि नहीं हौंय। जहां कोलाहल शब्द नहीं होय। जहां काहू का युद्ध नहीं होय। जहां परस्पर काहू के कटुक शब्द नाहीं हौंय। इन आदिक शुद्ध गुफा। सो जीव रहित, वैराग्य भावना के बधावने कूं कारण, निर्जन स्थान होय। तहां तिष्ठ कैं मन-वचन-काय करि एकाग्र, शुद्ध होय। सर्व जीवन तैं दया भाव करि, कोमल भावन सहित, सामायिक करै। सो शुद्ध सामायिक प्रतिमा का धारी, उत्तम श्रावक जानना। सो सामायिक समय, लँगोट मात्र आदि अल्प-परिग्रह का धारी होय तिष्ठै। चित्त की वृत्ति निर्मल, मुनि समान राख, अपने तन तैं ममत्त्व भाव तजि, वैराग्य भाव का समूह मोच्च-मार्ग के विहार करवे की इच्छा का धारक, ऐसा साधर्मी श्रावक। नहीं चाहै है च्यारि गति के शुभाशुभ शरीरन का वास। तथा अपने पदस्थ तैं ऊपर के स्थान चढ़वे की है इच्छा जाकैं।

ऐसा जगत–सुख तैं उदासी, श्रावक–धर्म का धारी, तीसरी सामायिक प्रतिमा धारी है ॥ ३ ॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, एकादश प्रतिमा के कथन विषैं, तीसरी प्रतिमा कथन वर्णनो नाम, पैंतीसवां पर्व संपूर्ण ॥३५॥

तहां आगे चौथी प्रोषध प्रतिमा, ताकौं कहिये है। सो सर्व पापारंभ का त्याग करि, शरीर–भोगन की इच्छा निवार, उदासीन भाव धारण करि, धर्मध्यान का अभिलाषी होय, खान-पान का तजन करै। सो प्रोषधोपवास है। एक मास विषैं दो आठैं (अष्टमी), दोय चतुर्दशी, ये च्यारि उपवास करैं। सो तेरस के दिन प्रभात उठ, भगवान् का पूजन करै। पीछैं शास्त्र श्रवण–पठन करै, दोय पहर धर्म-ध्यान सेय, मुनि-श्रावक कूं दान देय, आप भोजन करै। सो निष्प्रमाद होय रहने कौं अल्प भोजन करि, पीछे षोड़स पहर खान–पान का सेवना तजै। सो दोय पहर तो तेरस के दिन के, च्यारि पहर तेरस की रात्रि के, आठ पहर चौदश की दिन–रात्रि के, दोय पहर पूर्णिमा के। ऐसे सोलह पहर जागरन, पूजा, ध्यान, स्वाध्याय, चर्चा, शुभ अनुप्रेक्षा का चिंतवन, इत्यादिक धर्म-ध्यान विषैं पूर्ण करै। पीछे पूर्णिमा के दिन दोय पहर कूं घर जाय, द्वार-पेक्षण भावना भाय, मुनि–श्रावक कूं दान देय, दुखित–भुखित कूं संतोषित करि, पीछे आप पारणा करै। सो एक बार भोजन करै। ऐसे ही मास–मास के च्यारि उपवास, आयु पर्यन्त, प्रमाद रहित होय करै। अरु नीचली प्रतिमा में जो क्रिया कही, सो सर्व ऊपरली

में गर्भित जानना। नीचे दूसरी प्रतिमा में प्रोषध कह्या। सो वहां शिक्षा-मात्र, साधन रूप कह्या था। अरु यहां चौथी प्रतिमा में प्रोषध का स्वामित्व-भाव है। सो यहां अतिचार रहित, आयु पर्यंत वृत का धारना है। तातैं यहां प्रोषध प्रतिमा कही। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। अप्रत्यवेक्षित, अप्रमार्जित, उत्सर्गदान, संस्तरोपक्रमण, अनादर-अनुस्मृत्य। अब इनका अर्थ—जहां प्रोषध कौं बैठैं, सो बिना भूमि शोधै—झाड़ै ही प्रोषध कौं तिष्ठै। सो अप्रत्यवेक्षित अतिचार है॥ १ ॥ और जहां वृत धारी प्रोषध करते भूमि शोधै तो सही, परन्तु कोमल पीछी तैं तथा कोमल वस्त्र तैं नहीं झाड़ै, मोटे वस्त्र तैं तथा कठोर पीछी तैं झाड़ै। सो याका नाम अप्रमार्जित अतिचार है ॥२॥ और भूमि विषैं, बिना शोध ही मल—मूत्र का क्षेपना। सो याका नाम उत्सर्गदान है॥ ३ ॥ और प्रोषधधारी जिस स्थान पै बैठे—आसन करै, बिछौना बिछावै, सो भूमि शोधै—झाड़ै नाहीं। सो याका नाम संस्तरोपक्रमण है ॥४॥ और जहां उत्साह बिना, धर्म भावना रहित, प्रमाद सहित, परमार्थ-शून्य, लौकिक यश का लोभी, और के दिखायवे कौं, अनादर भाव सहित, प्रोषध क्रिया करै। सो याका नाम अनादर-अनुस्मृत्य है॥ ५ ॥ ये पांच अतिचार प्रोषधोपवास व्रत के हैं। इन रहित, शुद्ध भावना सहित, वैरागी—व्रती अपने व्रत की प्रतिपालना करे। सो प्रोषध प्रतिमा का धारी उत्तम श्रावक कहिये है॥ इति प्रोषधोपवास नाम चौथी प्रतिमा ॥४॥

आगे सचित्त त्याग पांचवीं प्रतिमा कहिये है। यह पांचवीं प्रतिमा का धारी श्रावक सचित्त

वस्तु का त्यागी होय है। सो यह सचित्त जल नहीं वर्तै है । हाथ—पाँव—शीशादि अंगो,-पांग, कच्चे जल तैं नहीं धोवै है। अपने हस्त तैं नदी, सरोवर, कूप, बावड़ी का जल नहीं भरै। कच्चे जल तैं स्नान नहीं करै। और बनस्पती कूं छीले नाहीं, काटै नाहीं। भोगी जीवन के भोगवे योग्य, ऐसी फूल—मालादि, तथा महा सुगंधित अनेक जाति के फूल, सो ये व्रती अपने हाथ तैं छीवै नाहीं, पहिरे नाहीं, सूंघे नाहीं। और अनेक जाति का सचित्त मेवा-दाख, अनार, केला, आमफल, जामुन, नारंगी, जंभीरी, नीबू, सेव, सीताफल, बेर, बिही, (अमरूद), कमरख, खिरनी, खजूर, आंडू, मौलशिरी, तेंदू, पीलू, अखरोट, अंगूर इत्या-दिक भोगी जीवन के भोग योग्य, सचित्त वस्तु का त्यागी नहीं खाय, नहीं छीवैं, नहीं तोड़ै। और ककड़ी, खरबूजा, तरबूजा, इत्यादिक नहीं खाय। और अनेक व्यंजन, अयोग्य वस्तु, तरकारी जाति, पत्ता, फल—फूल, बौंड़ी, जड़ जाति, कंद जाति, बक्कल जाति, कोंपल जाति, औषध जाति, चमत्कार गुण कों लिये प्रत्यक्ष रोग नाशनहारी—इत्यादिक हरी बनस्पति, ये सर्व, विषयी जीवन के भोग्य योग्य वस्तु, सो सचित्त त्यागी धर्मात्मा श्रावक नहीं खाय है। ऐसे अनेक भली वस्तु भोगियों कों वल्लभ, जिनके भोगवे कूं; भोगी अनेक कष्ट पाय, तिनके निमित्त मन, वचन, काय अरु धन लगाय, तिनके मिलाप कूं अनेक उपाय करि, भोगवैं हैं। तिन भोगन तैं बड़े-बड़े सुभट सुख मानैं हैं। ऐसी वस्तु कूं सचित्त का त्यागी, धर्मात्मा श्रा-वक, तन—भोगन तैं उदासी, आत्मिक सुख का भोगी, ये सचित्त वस्तु कूं नहीं खाय है। इस

सचित्त त्यागी कूं, जगत–भोग, इन्द्रिय जनित सुख, वल्लभ नाहीं लागैं। यह श्रावक, घर में हो यती सरीखे भाव धरै है। विरक्त भावना सहित, काल-क्षेपण करै। सो पंचम प्रतिमा का धारी, सचित्त त्यागी है ॥ ५ ॥ आगे छठी प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। इस प्रतिमा का धारी, रात्रि भुक्ति त्यागी धर्मात्मा, दिन कूं कुशील-सेवन नहीं करै। रात्रि का भोजन त्याग, यहां भया है। तातैं रात्रि भुक्ति त्यागी कहिये हैं। यहां प्रश्न–जो रात्रि भोजन का त्याग यहां किया, सो नीचली प्रतिमा वारे, रात्रि में खावते होंयगे? अरु दिन का कुशील यहां तज्या, सो नीचली प्रतिमा में, दिन कूं कुशील सेवते होंयगे? ताका समाधान–हे भाई, तेरा प्रश्न भला है। परन्तु तूं चित्त देय सुनि। अब भी जगत में ऐसी प्रवृत्ति देखिये है। जो हीन-ज्ञानी, अरु हीन-पुण्यी, भोरे हैं। ते कहैं तो बहुत। मुख तैं बाचाल-क्रिया तो विशेष करैं। अरु तिनतैं बनैं कछु भी नाहीं। सो तो असत्यभाषी हैं; पाखण्डी हैं। पर का ठगनेहारा, अपने यश का लोभी, बाल-बुद्धि है। और जे महा ज्ञानी पण्डित हैं, दीर्घ पुण्यी हैं, सज्जन स्वभावी हैं। सो कार्य तो बड़ा–महत करैं, अरु अपने मुख तैं अलप प्रगट करैं। ते धर्मात्मा धीर-बुद्धि हैं। तैसे ही पराये दिखायवे कूं, पर के रंजायवे कौं, भोरे जीवन का मान हरवे कूं, अपने पद-नमावे कौं, ते पाखण्डी अपने कुज्ञान की प्रबलता तैं अनेक धर्म-सेवन के स्वांग धरि। जप, तप, कथा तो वचन-आडंबर तैं बहुत करैं। अरु इन परमार्थ-शून्य प्राणीन तैं, बनै कछू भी नाहीं। सो जीव

तो धर्मात्मा नाहीं। अरु धर्मार्थी भी नाहीं। और जे जगत-यश तैं उदासी, जिननें तोड़ी ममता फांसी, ते अल्प काल में शिव जासी। स्वर्ग–संपदा होय जिन दासी। मिथ्यादृष्टी तिन नाशी। वह भव्य सुख-राशी। ऐसे निकट संसारी, धर्म का सेवन तो बड़ा करैं। अरु अपनी महिमा नहीं चाहैं। सो धर्मात्मा हैं। तातैं तुम विचारौ–देखो। जे जीव अल्प से भी धर्म-सेवन कौं उत्कृष्ट जानि, पाप तैं भय खाय हैं। ते जीव ही विषय–कषाय कौं तजि, शुभाचार रूप परणमैं हैं। केई घर–स्त्री का त्याग करैं। केई दिन का भी भोजन तजि, उपवास करैं। केई जन्म पर्यन्त, स्त्री-विषय का त्याग करैं। केई भव्यात्मा, रात्रि-जल का भी त्याग करैं हैं। इत्यादिक प्रवृत्ति भोरे जीव, धर्मानुराग तैं करें हैं। तो जे समता-रस के चखैया, जिनका दर्शन-मोह गया, तब सम्यक् घर भया। भेद-ज्ञान तब लया। तब ऐसा भाव भया, विषय-भोग विषमयी। गुणस्थान चौथा लया। पर सेती भिन्न भया। विषय–राग तब गया। समता-भाव परणया। बाह्य विषयी सा रह्या। बाकी अंतरंग भेद भया। ऐसे जिन-आज्ञा-प्रमाण, तत्त्व के वेत्ता भव्य, अव्रती होय हैं। सो विषयन तैं विरक्त रहैं हैं। येही रात्रि-भोजन नहीं करैं। दिन में कुशील नहीं सेवैं। तो हे भव्य! जे पंचम गुणस्थान धारी, व्रती श्रावक हैं। सो प्रथम, द्वितीय, तीसरी, चौथी प्रतिमा, पांचवीं प्रतिमा का कथन, इनका त्याग, इन प्रतिमाओं की क्रिया-प्रवृत्ति, इनके धारी धर्मी-श्रावक तिनकी वैराग्य दृष्टि का रस, सो तो नीके कथन करि आये हैं। सो नीके सुन्या ही है। सो अब तूं विचार देखि। जो

नीची प्रतिमा विषैं स्त्री का भोग, अरु रात्रि, भोजन कहां रह्या ? ये छट्टम प्रतिमा धारी श्रावक-महा उदासीन वृत्ति का धारी, बैराग्यी, बड़भागी, इनकौं इतना विषय-रस नाहीं, जो दिन में स्त्री का भोग होय। ये महा धर्मात्मा हैं। इन्हें रात्रि काल विषैं स्व-स्त्री का ही नाम-मात्र संतोष है। तृष्णा रूप नाहीं। ऐसा जानना। ये धर्मी, दिवस विषैं ही, एक दिन में एक बार ही, अल्प रस भोजन करनहारा, ताके रात्रि-भोजन कहां पाईये ? परन्तु जिनदेव की ऐसी आज्ञा है। जो यहां पांचवीं प्रतिमा तांई, कोई प्रकार अतिचार लागै था। इस भय तैं नीचली प्रतिमा में नाहीं कह्या। अरु इस छठी प्रतिमा विषैं, रात्रि-भोजन का, अरु दिन विषैं कुशील का अतिचार भी नाहीं लागै। तातैं व्रत प्रगट किया। ऐसा जानना। सो रात्रि का पिसा, पोया, रात्रि का बींधा, रांध्या, शोध्या, बांट्या, घिस्या, छाण्या, धोया इत्यादिक रात्रि का आरंभ्या ऐसा भोजन होय। सो छटवीं प्रतिमा का धारी नहीं खाय। और रात्रि का आरंभ्या-भोजन खाय, तो रात्रि-भोजन का दोष लागै। तातैं इनमें जो कोई अतिचार सूक्ष्म, पहले नीचली प्रतिमा में लागें थे, सो छठी प्रतिमा में यहां नाहीं लागें हैं। और दिन में अपनी स्त्री कौं देख, विकार भाव होय जाय थे। कभी-कभी सरागता सहित वचन होय जांय थे। काय तैं कोई विकार चेष्टा होय थी। सो अब यहां छठी प्रतिमा में मन, वचन, काय करि; दोष नाहीं लागै। तातैं यहां छठी प्रतिमा विषैं रात्रि-भोजन, अरु दिन कूं कुशील का त्याग कह्या है। तातैं याका नाम, रात्रि भुक्ति त्याग कह्या ॥६॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये,

एकादश प्रतिमा विषैं, छट्ठी प्रतिमा का कथन वर्णनो नाम, छत्तीसवां पर्व सम्पूर्णं ॥ ३६ ॥

आगे सातवीं ब्रह्मचर्य्य प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। याका नाम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। सो छठीं तांई तो, स्व-स्त्री का त्याग नहीं है। तो भी महा संतोषी, परन्तु पदस्थ-योग तैं अपनी परणी स्त्री कूं, स्त्री-भाव करि जानै है। जो ये मेरी स्त्री है। अरु सातवीं प्रतिमाधारी के, स्व-पर स्त्री दोऊन का त्याग है। सो पर-स्त्री का त्यागी तो पूर्व में था ही। स्व-स्त्री का त्याग, सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा विषैं है। अब यहां स्व-स्त्री, पर-स्त्री दोऊन का त्यागी भया। अपनी स्त्री कौं भी विकार-क्रिया तैं नहीं देखै। इस प्रतिमा विषैं, महा शील-व्रत का धारी, ब्राह्मण--ब्रह्मचर्य व्रती भया। अब यहां चेतन--अचेतन स्त्री का त्याग भया। तातैं इस प्रतिमाधारी कों, ब्रह्मचारी कह्या है। सो यहां ब्रह्म शब्द के च्यारि भेद हैं। सो ही कहिये हैं—

गाथा—वंभ सुभावो आदा, त्याज वंभोय जोय पय हारो।

किय्या वंभाचारो, भत्तो कित्तेय वंभ कुल होई ॥ १४० ॥

याका अर्थ—वंभ सुभावो आदा कहिये, आत्मा का स्वभाव ही ब्रह्म है। त्याज वंभोय जोय पय हारो कहिये, त्याग ब्रह्म सो याके निज-स्त्री का त्याग। किय्या वंभाचारो कहिये, आचार व्रत का धारी सो क्रिया ब्रह्म है। भत्तो कित्तेय वंभ कुल होई कहिये, भरत करि किये सो कुल-ब्रह्म हैं। भावार्थ—स्वभाव ब्रह्म, त्याग ब्रह्म, क्रिया ब्रह्म, और कुल ब्रह्म। ये च्यारि हैं। इनका विशेष अर्थ— तहां स्वभाव ब्रह्म तो आत्मा का नाम है। सो ताके दोय भेद हैं। एक ब्रह्म,

दूसरा पर-ब्रह्म। तहां कर्म-मल सहित, जन्म—मरण का धारी, च्यारि गति वासी जीव, सो ब्रह्म है। राग-द्वेष का धारी, इष्ट वस्तु मिले सुखी होय, अनिष्ट वस्तु मिले दुखी होय, सो तो ब्रह्म जानना। भूख-तृषा नाम रोग जाकैं उपजता होय, सो ब्रह्म है ॥ १ ॥ और जन्म-जरा-मृत्यु रहित होय, अमूर्ति, सर्व दुख—दोष रहित, केवल-ज्ञान का धारी, अतंर्यामी होय । सो पर-ब्रह्म है। ऐसे स्वभाव-ब्रह्म के दोय भेद जानना ॥२॥ यहां ब्रह्म नाम आत्मा का जानना ॥ १ ॥ और दूसरा ब्रह्म, सातवीं प्रतिमा धारी ब्रह्मचारी, स्व-पर-स्त्री का त्यागी, ताका कथन ऊपरि करि आये। सो याका पद अनुक्रम तैं, प्रथम प्रतिमा तैं लगाय; सातवीं प्रतिमा पर्यंत, ज्यों-ज्यों त्याग बध्या; त्यों—त्यों प्रतिमा चढ़ी । तातैं याका नाम त्याग-ब्रह्म है ॥ २ ॥ और तीसरा क्रिया—ब्रह्मचारी, ताके जानवे कों उपासकाध्ययन के सातवें अंग ताके अनुसार, बड़े आदि-पुराण जी विषैं दश अधिकार कहे। ताके अनुसार कारण पाय, यहां भी लिखिये है—

गाथा—सिसि विद्याय कुलावधि, वएणोत्तम पात सेय विवहारो ।
अवधा अदंड मणनीयो, पज्ञा सम्मधाण दह भेयो ॥ १४१ ॥

अर्थ—सिसि विद्याय कहिये, बाल विद्या। कुलावधि कहिये, कुलावधि। वएणोत्तम कहिये, वर्णोत्तम। पात कहिये, पात्रत्व। सेय कहिये, श्रेष्ठ पद। विवहारो कहिये, व्यवहार सत्ता। अवधा कहिये, अवध्यता। अदंड कहिये, अदण्डता। मणनीयो कहिये माननीयता। पज्ञा सम्मधाण कहिये, प्रजा संबंधांतर। दह भेयो कहिये, ये दश भेद हैं। भावार्थ—बाल विद्या, कुलावधि,

वर्णोत्तम, पात्रत्व; श्रेष्ठता, व्यवहारता, अवध्यता, अदंडता, माननीयता, और प्रजा संबंधान्तर। ये दश हैं। जो जीव इन दश क्रियान करि सहित होय। सो क्रिया-ब्रह्म है। सो ही विशेष-कर कहिये है। तहां बालावस्था तैं ही विद्या का अध्ययन करि, पण्डित होय। तो शुभाशुभ मार्ग जानै, खाद्याखाद्य जानै, पाप—पुण्य का भेद जानै। केई अज्ञानी—कुवादी, आप कौं शुद्ध धर्म तैं डिगाय; विषयी, मोही, हिंसक धर्म विषैं लगाया चाहैं, तो नहीं लागै। पाखण्डीन के ठगवे में नहीं आवै। तातैं तीन कुल का उपज्या, भव्य का बालक होय, सो विद्याभ्यास करै। अरु विद्या नहीं पढ़या होय, तो आप कुधर्म—सुधर्म की परीक्षा नहीं करि सकै। तब अपना भला-धर्म तजि, कुधर्म सेवन में लागै। परभव बिगाड़ै। अरु अज्ञान भया, खाद्याखाद्य न समझ कैं, अभक्ष्य का भक्षण करि, अपनी बुद्धि नष्ट करै। विद्या बिना, जगत में निन्दा पावै। दीन कहावै। दीनता के योग तैं याचना करै। तब याचकता के योग तैं, अपने उत्तम-कुल कूं कलंक लगावै। तातैं ऐसा जानना; जो सर्व सुख की दाता, अनेक गुण मंडित, एक विद्या है। ऐसी विद्या का अध्ययन, बाल्यावस्था विषैं ही करना। बालावस्था गये, जिह्वा कठिन होय। कषाय—अंश विशेष होंय। तिस दोष तैं, विद्या-दाता का विनय नहीं सधै। बाल्यावस्था मन्द—कषाय सहित होय है। तातैं बालपने में ही विद्या का अभ्यास करना। ता विद्या करि, पाप तजि, पुण्य ग्रहण करै। सो परोपकारी होय है। अपना—पराया भला करै। याका नाम बाल—विद्या अधिकार है ॥ १ ॥ और दूसरे; ब्राह्मण,

कुल का उत्तम है। सर्व विषैं बड़ा है। और ब्राह्मण का आचार भी सर्व तैं उज्ज्वल, दया सहित, उत्तम है। अरु एक दिन में, एक बार, एक स्थान बैठा, भोजन करै है। सो भी जहां अन्धकार नहीं होय, उद्योतकारी स्थान होय, तहां भोजन करै। अरु अन्धकार—गृह में भोजन करै, तो रात्रि—भोजन दोष पावै। तातें रात्रि रहित, अन्धकार रहित, उत्तम स्थान में, निर्दोष आहार करै। इन आदिक अनेक शुभाचार होंय। अरु कदाचित् ऐसा उत्तम आचार नहीं होय, तो क्रिया—भ्रष्ट भया। कन्द—मूलादि अभक्ष भोजन, रात्रि भोजन, अनगाल्या पानी, खान—पान करि। दया रहित, कुभावना सहित होय। सो उत्कृष्ट कुलाचार तैं भृष्ट होय। तातें उत्तम आचार सहित ब्राह्मण कूं, ये कार्य तजना चाहिये। याका नाम कुलावधि नाम अधिकार है॥ २॥ और सर्व कुलन तैं, ब्राह्मण कुल की अधिकता है। तो याका उत्कृष्ट चलन ही चाहिये। महा दयावान्, पर-जीवन की रक्षा—रूप भाव होंय। अरु निर्दयी होय। तौ शिकारी समान हिन्सा करि, पापाचारी होय के, निन्दा पावै। तातें शुभाचारी, सर्व झूंठ का त्यागी होय। जो झूंठ भाषै, तो ब्रह्म की मर्यादा जाय। तातैं ब्राह्मण सत्यवादी चाहिये। और सर्व—चोरी का त्यागी होय। जो चोरी करै, तो राज्य—पंच—दण्ड पावै। अपयश होय। तातैं ब्राह्मण चोर—कला—दोष तैं रहित चाहिये। और पर-स्त्री का त्यागी होय। जो पर—स्त्री लम्पटी होय। तो राजा ताका शिर, नाक, कान, पांव, हस्त, छेदन करै। पंच, जाति तैं निकासैं। तौ ऊंच कुल कूं दोष लागै। तातैं ब्राह्मण शीलवान् चाहिये।

और ब्राह्मण, सर्व आरम्भ व बहुत परिग्रह का त्यागी होय। निर्लोभी होय। इत्यादिक गुणवान् होय, तो शोभा पावै। और अनाचारी भया, महा आरम्भ करै। महा लोभी होय, दया रहित सा दीखै। तो उत्तम कुल कौं दोष लगावै। तातैं ब्राह्मण बहुत आरम्भ व बहुत परिग्रह का त्यागी चाहिये। और ब्राह्मण, अपने से ही हीन आचारी, ऐसे हीन देव, हीन गुरु कौं नाहीं सेवै। जैसा आप दयावान् है, शीलवान्, समता भावी है, तातैं भी अधिक वीतराग देव–गुरु होय, ताकौं सेवै। और जैसा आप पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिग्रह के योग तैं; क्रोधी, मानी, दगावाज, लोभी है। ऐसा ही क्रोध, मान, आदि दोषों तैं भर्या जो देव–गुरु; ताकूं नहीं सेवै। जाकौं सेवै, सो परीक्षा करि सेवै। अपने जैसे रागी–द्वेषी; पर–स्त्री, धन, वाहनादि परिग्रह भारी; देव–गुरु कौं नहीं सेवै। सर्व दोष रहित, वीतराग, सर्वज्ञ; आरम्भ-परिग्रह, स्त्री, धन, घर रहित देव–गुरु की सेवा करै। हीन देव–गुरु कौं नहीं सेवै। यह तो वर्णोत्तम नाम तीसरा अधिकार है॥ ३॥ और ब्राह्मण में गुण की अधिकता है। तातैं याकूं पात्रत्व भाव है। ये पात्र है, तातैं आदर तैं दान देवे योग्य है। अरु बड़े पुरुषन करि, माननीय है। तातैं विवेकी ब्राह्मण कूं, गुण बधावना योग्य है। ये शील, सन्तोष, दया, क्षमा, निर्लोभादि उत्तम गुण करि तो पूज्य है। अरु इन गुण बिना, महा-पुरुषन करि, मानवे योग्य नहीं होय। बड़े–बड़े राजा, गुणी जन तैं अनादर पावैं। पण्डितन सभा में जाय, लज्जा पावैं। तातैं ब्राह्मण कौं दान, पूजा, जप, तप, संयम, शील, दया,

सन्तोषादि अनेक–अनेक गुणन का संग्रह करना योग्य हैं। याका नाम, पात्रत्व नाम चौथा अधिकार है ॥ ४ ॥ और जहां श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, तिनकौं मिथ्या श्रद्धान तजि कैं, सर्वज्ञ देव-केवली भाषित पदार्थन का श्रद्धान करना योग्य है। कोई सामान्य ज्ञान के धारनहारे मानी जीवन ने, अपना मान पोषवे कौं, भोरे जीवन के बहकावे कौं, अपनी इच्छा करि, कल्पित शास्त्र बनाये। तिनमें तीन लोक का स्वरूप अयथार्थ कह्या। ता तीन लोक का प्रमाण, तुच्छ कह्या। सो कोई तो भोरे भव्य, ऐसा मानैं। जो लोक की रक्षा, निरन्तर भगवान् करैं। नहीं तो कोई चोर, या सर्व लोक कौं चुराय, वस्त्र में समेट लेय जाय। तातैं भगवान् सदीव रक्षा करैं हैं। और कोई कहैं हैं। जो काहू कर्त्ता ने लोक बनाया है। सो कबहूं काल पाय, क्षय भी होयगा। ऐसे कल्पित विकल्प करि, लोक-स्वरूप कहें हैं। सो असत्य है। ताके भेद कौं जानैं। और सर्वज्ञ केवली करि कह्या लोकाकाश रूप–अनादि, अकृत्रिम, अविनाशी, ध्रुव, पुरुषाकार सो सत्य है। ताके भेद कूं जानैं। शुद्ध केवली के भाषे लोक का श्रद्धान् करै। मिथ्या–कल्पित लोक के स्वरूप का श्रद्धान् तजै। और भी जीव-अजीव का श्रद्धान् सहित, शुद्ध सम्यग्ज्ञान का धारी, ब्राह्मण चाहिये। और जो आप के भी यथार्थ दर्शन-ज्ञान नहीं होय। तो औरन कूं मिथ्या उपदेश देय, औरन का बुरा करै। अपने उत्तम कुल कूं दोष लगावै। तातैं ब्राह्मण कूं यथार्थ श्रद्धान् आप कूं चाहिये, तो औरन कूं भी सत्य–उपदेश देय, औरन का भला करै। तब ब्राह्मण–कुल की

श्रेष्ठता रहै। याका श्रेष्ठता नाम, पांचवां अधिकार है ॥ ५ ॥ और जो ब्राह्मण आप पण्डित होय। दया-धर्म का धारी होय। अन्य शिष्यजन कों कल्याण के अर्थ, मोक्ष-लक्ष्मी का वांच्छनहारा होय। अनेक प्रायश्चित्त शास्त्रन का वेत्ता होय। श्रावकन के व्यवहार की परिपाटी का जाननहारा होय। जहां कोई श्रावक कों प्रमाद-वशात्, संयम में दोष लगा होय, तो दया-भाव करि, ताके मेंटवे कूं, शिष्यन के पाप नाशवे कूं, यथा-योग्य प्रायश्चित्त वताय, शुद्ध करै। ऐसा ब्राह्मण चाहिये। और कदाचित् आप ही अशुद्ध होय, क्रोध-मान-माया-लोभ-पाखण्ड करि भस्या होय। तथा अज्ञानी होय। तो औरन कों धर्म-मारग कैसे बतावै ? जैसे कोई ठग सूं उद्यान में शुद्ध-राह पूछै। तो ठग, शुद्ध राह कैसे बतावै ? तथा कोई अंधे सैं उद्यान की राह पूछे। तौ वह उद्यान की राह कैसे बतावै ? तैसे ही कषाय सहित सो तौ ठग समान, सो शुद्ध मार्ग नहीं वतावै। वह अज्ञान, अंधे समान है। सो आपही कौं सुमार्ग नहीं सूझै। तौ और कौं कैसे बतावै ? तातैं ब्राह्मण के ये दोऊ दोष कहे। सो कषाय अरु अज्ञानता तैं रहित, सज्जन स्वभावी, दयामूर्ति, महा पण्डित, अनेक प्रायश्चित्त शास्त्रन का ज्ञाता ब्राह्मण चाहिये। अरु जो ब्राह्मण, आप प्रायश्चित्त शास्त्र तो नहीं जानै। आप कौं दोष लागै, तब आप कूं औरन पै, दीन होय, प्रायश्चित्त याचना पड़ै। तातैं आपा-पर के सुधारवे कूं, अनेक नय का वेत्ता, गृहस्थन की क्रिया-व्यवहार जानैं। सो व्यवहार नाम छट्ठा अधिकार है ॥ ६ ॥ और ब्राह्मण, उत्तम गुण-संपदा का धारी, उत्कृष्ट-पूजनीक

गुण सहित, धीर बुद्धि, पूजा—जप—तप—संयम सहित, अनेक गुण पालक, सत्पुरुष ब्राह्मण, राजान करि अवध्य है। जैसे चोर, चकार, चमचोरादि सप्त व्यसन के धारी जीव, वधवे योग्य हैं। तैसे अनेक गुण का धारी ब्राह्मण, वधवे योग्य नाहीं। पूजवे योग्य है। और जो गुणी, पूजन योग्य, दीर्घ ज्ञानी कूं हनै, तो महा पाप होय। ज्यों—ज्यों दीर्घ ज्ञानी का घात होय, त्यों—त्यों विशेष पाप जानना। जैसे एकेन्द्रिय के घात तैं, दो-इन्द्रिय के घात का पाप बहुत है। ते-इन्द्रिय का दो-इन्द्रिय तैं बड़ा है। ते-इन्द्रिय के घात तैं चौ-इन्द्रिय के घात का पाप विशेष है। ऐसे ज्यों—ज्यों ज्ञान बध्या, त्यों—त्यों इन्द्रिय वधी। सो इन्द्रिय के बधवे तैं, ज्ञान बध्या। तातैं ज्यों—ज्यों ज्ञान बधता होय, ताके घात का बड़ा—बड़ा पाप है। पशु तैं पापाचारी चोर, ज्वारी, पर-स्त्री सेवी, इत्यादिक अशुभ-कर्मी मनुष्य के घात का पाप विशेष है। सो इन तैं भला मनुष्य, व्यसनादि दोष रहित होय, ताके घात का पाप विशेष है। और ऐसे सामान्य मनुष्यन तैं, जपी, तपी, संयमी, दानी, दयावान्, निर्दोष, इनकैं विशेष ज्ञान है। सो इनके मारने का विशेष पाप है। तातैं ऐसा जानना, जो ब्राह्मण संयम, जप, तप, व्रत का धारी है। तातैं याकी घात का पाप विशेष है। विवेकी राजा, ऐसा दीर्घ पाप नहीं करै। तातैं राजा तैं, ब्राह्मण बध रहित है। पूजवे योग्य है। मारवे योग्य नाहीं। और यह धर्म का माहात्म्य है। कि धर्मी कों, कोई पीड़ै नाहीं। और कदाचित् ब्राह्मण, दया रहित होय। लोभ—क्रोध—मान—मायादि व्यसन का धारी होय।

तो दीनता पावै। गुण बिना महत्वता जाती रहै। सामान्य मनुष्य की नांईं राजा करि, दण्ड कों प्राप्त होय है। हर कोई, पीड़ै। दुर्वचन कहै। और ब्राह्मण का पद होते, सुमार्ग का लोप होय। ऊंच-कुली कुमार्ग में लागें, तौ दीनता पावैं। अपयश पावैं। धर्म—आचार मिटै। सुमार्ग—दया धर्म तैं रहित भये, पूज्य पद मिटै। राजा तैं अनादर पावै। तातैं विवेकी उत्तम ब्राह्मण कौं उत्तम—दया धर्म, संतोष, जप, तप, इन आदिक अनेक गुणों की रक्षा करनी, त्रस—स्थावर सर्व जीवन का भला चाहना, यह उत्तम गुण है। सर्व के भले में अपना भला है। तातैं ब्राह्मण कूं धर्म-रक्षा करनी। याका नाम सातवां अवध्य गुण है ॥ ७ ॥ और धर्म विषैं स्थिरी-भूत है आतमा जाका, ऐसा ब्राह्मण; सर्व करि अदंड है। काहू तैं दण्डवे योग्य नाहीं। और कोई धर्म—बुद्धि कूं, धर्म-सेवन में दोष लाग्या होय। तौ ताकों शुद्ध करवे कूं यह धर्मात्मा ब्राह्मण, ता कूं दण्ड देय, शुद्ध करै। परन्तु आप दण्ड-योग्य नाहीं। आप अपनी शांत-दशा दया-भाव सहित, शास्त्रन का अभ्यास करै। ताके अर्थ प्रगट करि, आप धर्मात्मा भया और धर्मी-जीवन कूं उपदेश देय, सुमार्ग लगावै। और जे धर्मात्मा होंय। सो धर्मी—जीव का दिया उपदेश, तथा अतिचार लाग्या ताका प्रायश्चित्त, अंगीकार करैं। तातैं धर्मात्मा—पुरुष, राजा करि दण्डवे योग्य नाहीं। और कदाचित् ऐसे धर्मी-जीव में, कोई कर्म—योग तैं दोष पड़ गया होय। तौ धर्मात्मा—राजा, यथा-योग्य दण्ड देय, फेरि ताकूं धर्म—विषैं दृढ़ करै। ऐसा दण्ड नहीं देय, जातैं याकौं धर्म तैं अरुचि होय। धर्म-सेवन

में आकुलता बधै। घर-धन नहीं लूटै। तन-घात नहीं करै। ऐसा दण्ड देय, जातैं याकौं धर्म में प्रीति उपजे। और जिन-धर्म का अतिशय देख, दया-धर्म का सेवन करै। यह धर्मात्मा ब्राह्मण, सर्व लौकिक दोष तैं रहित, उत्तम आचारवान्, दया-धर्म का धारी, राजाओं करि अदंड है। और पापीजन की नांईं, धर्मात्मा कूं भी दण्ड योग्य जानै। तो दण्डनेहारा राजा, प्रजा का पालनहारा, अन्याय के योग तैं अपयश पाय, थोड़े ही दिनों में राज्य-भ्रष्ट होय। याकी अनीति देख, धर्मात्मा पुरुष तौ देश तज देंय। तब देश धर्मी-जन रहित भया। तामें पाप-कार्यन की बधवारी होय। पाप के बधतैं, देश-ग्राम धीरे-धीरे अनुक्रम करि नाश कूं प्राप्त होंय। तातैं धर्मात्मा-ब्राह्मण, अदण्ड है। यह अदंड नाम आठवां अधिकार है॥८॥ बहुरि धर्मी-जीवन कौं सर्व पूजैं। यथा-योग्य सर्व मानैं। सो यह बात सत्य ही है। जो धर्मात्मा, गुणन करि अधिक होय। सो धर्मी-जीवन करि, मानवे योग्य होय ही होय। और कदाचित् विप्र विषैं, गुणन की अधिकता नहीं होय। तो पूज्य-पद मिटै। अनादर पाय। पद भ्रष्ट होय। रंक-दशा धारै। तातैं विवेकी ब्राह्मण, समतादिक गुणन का जतन करि, अपने विषैं धारै। सो यह ज्ञान, चारित्र और तप, उत्कृष्ट ऋद्धि है। सो जे गुणवान् हैं, सो गुण-विभूति का यत्न करो। यह गुण-संपदा जप-तप पूज्य हैं। तिन कौं भूल कर भी विवेकी नहीं विसारैं। याका नाम माननीयता नववां अधिकार है॥ ९ ॥ और यह धर्मात्मा ब्राह्मण का, प्रजा-संबन्धांतर गुण है। सो विवेकी अपना उत्कृष्ट गुण छाँड़ि, जगत-जीव-अज्ञान की नांईं नहीं

होय। सो प्रजा-संबंधांतर गुण कौं राखै। भावार्थ—जो जैसे गुण अन्य प्रजा में नहीं पाईये, ऐसे गुण आप मैं धारण करै। प्रजा के गुण तैं अधिक गुण-संपदा का धारी होय। तब प्रजा करि, पूज्य होय। प्रजा-जैसे, अज्ञान चेष्टा रूप गुण, आप में नहीं धारै। सो प्रजा से अन्तर जानना। और प्रजा समान गुण, अज्ञान—विषयी की चेष्टा आप में धारै। तो अपना पूज्य-पद खोवै। महंतता नहीं रहै। प्रजा समान आप भी होय। तो जैसे निर्मल स्वर्ण में, कुधातु के सम्बंध करि मलिनता होय। और जैसे निर्मल स्फटिक मणि, डांक के संयोग तैं अपना स्वच्छ गुण तजि, श्याम—हरित—रक्तादि अनेक वर्ण कौं प्राप्त होय। तैसे ही यह धर्मात्मा जीव, ब्रह्मचारी, उत्कृष्ट गुणों का धारी, आचारवान्, सौम्यमूर्ति, संसारी—अज्ञानी जीवन की संगति तैं, आप भी अज्ञानी—जीवन की नाई, इस प्रजा में एकमेक होय। क्रोध—मान—माया—लोभ रूप प्रवृत्ति तैं, अपना पद लोप करै। सर्व गुणन का अभाव होय। तातैं विवेकी धर्मात्मा ब्राह्मण, अपने गुणन तैं और अज्ञानी—गुण रहित जीवन कौं, गुण—खान करै। आप अज्ञानी की संगति तैं, अज्ञानी नहीं होय। जैसे पारस—पाषाण अपने गुण तैं लोह—कुधातु कौं कंचन करै, परन्तु आप लोह नहीं होय। तैसे उत्तम ब्रह्मचारी, अपना शील, संतोष, तप, संयम, व्रत, दया सहित गुण, जगत में प्रगट करि, और—जीवन कौं आप समान गुणवान करै। जो भोरे, अज्ञानी, अशुभाचारी, दया रहित, पाप-कलंक सहित जीव, तिनकौं धर्मोपदेश देय, तिनके दोष मेटि, शुद्ध-निर्दोष करै। यह गृहस्थाचार्य, तीन कुल का

उपज्या, ब्रह्म-पद के धारी विषैं, यह प्रज्ञा-संबंधांतर गुण है। ताके योग तैं औरन कों गुण-रूप करै। और कदाचित् यह गुण नहीं होय, तो अज्ञानी के संग तैं, आप अज्ञानी होय। गुण रहित होय। तब अपना पूज्य-पद नहीं रहै। तातैं प्रज्ञा के गुणों तैं मिलै नाहीं, अलग रहै। याका नाम प्रज्ञा-सम्बन्धांतर दशवां अधिकार है ॥ १० ॥ ऐसे ये बाल-विद्या तैं लगाय, प्रज्ञा-संबन्धान्तर, दश अधिकार कहे। ताकी जुदी-जुदी क्रियान का कथन कह्या। सो जो इन दश क्रिया रूप प्रवृत्तै। सो क्रिया-ब्रह्म जानना। तीन कुल का उपज्या धर्मी जीव, इन क्रियाओं सहित शीलादिक गुण पालै। सो क्रिया-ब्रह्म है। इति क्रिया-ब्रह्म के दश भेद। आगे ब्राह्मण, शील गुण की प्रतिपालना करै। सो ब्रह्मचारी कहावै। सो शीलाधिकार लिखिये है—

गाथा—सिव मिंद जाण द्वारय, भव सायर पार तार तंणीए।
अघ तम हर रवि जे हो, मोख मग्गोय बंभ भावाए ॥ १४२ ॥

अर्थ—सिव मिंद जाण द्वारय कहिये, मोक्ष-महल के जाने कूं द्वार। भव सायर पार तार तंणीए कहिये, संसार-सागर के तरवे कूं नाव समान। अघ तम हर रवि जे हो कहिये, पाप-रूप अंधकार के नाशवे कूं सूर्य समान। मोख मग्गोय बंभ भावाए कहिये, मोक्ष-मार्ग रूप एक ब्रह्म-भाव ही है। भावार्थ—यह ब्रह्मचर्य भाव है, सो मोक्ष-महल में जाने का एक ही ये मार्ग है। इस शील बिना, मोक्ष कों जावे का और कोई द्वार नाहीं। कैसा है शील-भाव, संसार-समुद्र के

तिरवे कौं जहाज समान है। कैसा है भव—समुद्र, महा गंभीर, राग-द्वेष रूप जो जल, ताकरि भरया है। तामें विकार रूप अनेक तरंगें उठैं हैं। और वेद-भाव, रति, अरति, क्रोध, मान, माया, लोभादि ये कषाय हैं। सो ही भये मगरादि जलचर क्रूर जीव। तिनके केलि (क्रीड़ा) करने का स्थान, ये भव-सागर जानना। ऐसे विकट भव-सागर तारवे कूं, ये शील व्रत नाव समान है। कैसा है शील, पाप अंधकार करि चारि-गति के जीवन कूं, मोक्ष-मार्ग नहीं सूझै। ऐसा अंधकार नाशवे कूं, यह ब्रह्मचर्य—भाव, सूर्य समान है। तातें मोक्ष का मार्ग, एक शील ही है। भावार्थ—इस शील गुण विना, अनेक धर्म-अङ्गन का साधन, कार्यकारी नाहीं। तातें मोक्षाभिलाषी जीवन कूं, मोक्ष के कारण रूप शील की ही रक्षा करनी चाहिये। आगे और भी शील गुण की महिमा कहिये है—

गाथा—सोपाणो सिव गेहो, सिव तिय लावण दूत सम जोई।
धम्मा भूसण भणयं, सिव दीयो जाण वंभ गुण गेयो ॥ १४३ ॥

अर्थ—सोपाणो सिव गेहो कहिये, ये ब्रह्म-भाव मोक्ष-मंदिर के चढ़वे कों सीढ़ी समान है। सिव तिय लावण दूत सम जोई कहिये, मोक्ष रूपी स्त्री के ल्यावे कों चतुर-दूती समान है। धम्मा भूसण भणयं कहिये, ये धर्म का आभूषण है। सिव दीयो जाण वम्भ गुण गेयो कहिये, शिव द्वीप के पहुंचावे कों ब्रह्मचर्य वाहन-समान है। भावार्थ—जैसे मन्दिर पै जांय, सो सीढ़ीन पर से जांय हैं। सो मोक्ष-महल, अद्भुत सुख का स्थान है। सो लोक के शिखर

पर है। मध्य लोक तैं, सात राजू ऊंचा है। तहां चढ़वे कूं, शीलव्रत सीढ़ी-समान है। इस शील रूप पैढ़ीन की राह चढ़नेहारा भव्य, सहज ही में मोक्ष-महल में पहुंचै है। और जैसे दूती, पर-स्त्रीन कूं शीघ्र ही मिलावैं। तैसे मोक्ष रूपी स्त्री के मिलावे कूँ, ब्रह्म दूती-समान जानना। और जैसे आभूषण करि, तन शोभा पावै। तैसे धर्म के जेते अङ्ग हैं। दान, पूजा, जप, तप, त्याग, चारित्र, इन आदि जे-जे धर्म अङ्ग हैं। तिनके भले दिखावे कूं-शोभायमान करवे कूं, शील गुण है सो आभूषण-समान है। और जैसे कोई-देशांतर जावे कूं रथ, गाड़ी, सुखपालादि असवारी, सुख तैं परदेश लेय जाय हैं। तैसे ही शिव-द्वीप के पहुंचावे कूं, शील-गुण है सो यान कहिये असवारी-समान है। तातैं इस शील-गुण की रक्षा करनी योग्य है। आगे शील गुण की और महिमा कहिये है—

गाथा—मोख तरु दिठि मूलो, खग देव णरय पूज्य असुरायो।
तिभवण चर जस करई, हरई भव दुक्ख वंभ वाताये ॥ १४४ ॥

अर्थ—मोख तरु दिठि मूलो कहिये, ये ब्रह्म-भाव मोक्ष-वृक्ष की जड़ है। खग देव णरय पूज्य असुरायो कहिये, विद्याधर, देव, मनुष्य और असुरन करि पूज्य है। तिभवण चर जस करई कहिये, तीन लोक के जीव ताका यश गावैं। हरई भव दुक्ख वम्भ वाताये कहिये, संसार के दुःख कूं ब्रह्मचर्य्य मैटै है। भावार्थ--यह शील व्रत है सो मोक्ष रूपी वृक्ष की ज़ड़ है। जैसे वृक्ष की जड़ नहीं होय, तो वृक्ष नहीं ठहरै। अल्प-काल में क्षय होय। तैसे

ही शील-भाव रूपी जड़ नहीं होय, तो मोक्ष-रूपी कल्प-वृक्ष नहीं रहै । बिनसि जाय। बहुरि यह शील-भाव कैसा है ? विद्याधर, राजा; ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी, कल्पवासी ये च्यारि प्रकार के देव, चक्री, अर्ध-चक्री, कामदेव, बलभद्र, मण्डलेश्वरादि महान् ऋद्धि के धारी बड़े-बड़े राजा, इन सर्व देव-मनुष्यन करि पूजनीय है। और शीलभाव कैसा है? जाका यश तीन लोक के प्राणी गावैं हैं। बहुरि शीलभाव कैसा है जन्म-मरण दुःख का नाश करनहारा है। इत्यादिक अनेक गुण सहित, यह शील व्रत है। ताकी रक्षा करना योग्य है। आगे शील का माहात्म्य और बताइये है—

गाथा—सिंह ण वाधा करई, चंपय पद णाग दाग णह होई ।
वण वारण मिग जायो, यह फल सीलोय होय णियमेण ॥ १४५ ॥

अर्थ—सिंह ण वाधा करई कहिये, ब्रह्मचारी कौं सिंह बाधा नहीं करै। चंपय पद णाग दाग णह होई कहिये, पांव के नीचे नाग आवै तो भी नहीं काटै। वण वारण मिग जायो कहिये, बन का हाथी मृग समान हो जाय। यह फल सीलोय होय णियमेण कहिये, ऐसा फल नियम से शील व्रत का होय है। भावार्थ—जहां भयानीक आकार, तीक्ष्ण हैं नख अरु दांत जाके, काल-पुत्र समान बिकराल, भयानीक रूप ऐसा नाहर, उद्यान में शीलवान कौं नहीं सतावै। और काल समान बिकराल, फण का धारी, विष का समूह, जाके मुख तैं निकसै है अग्निवत् हलाहल विष-ज्वाला, मणिधारी, ऐसा भयानीक नाग,

शीलवान् पुरुषन के पांव नीचे दबि जाय, तो इल्ली समान दीन होय जाय। शील के माहात्म्य करि, पीड़ा नहीं करै। और महा उद्यान में बन का मदोन्मत्त हस्ती, स्वेच्छारूप वर्तता, अपनी लीला करि बड़े—बड़े वृक्ष तोड़ता, नदी—सरोवर का जल बिलोलता, काल समान भयानीक, वर्षा-काल के मेघ समान गर्जता, दीर्घ शब्द करता, अजंनगिरि समान ऊंचा, मेघ-घटा समान श्याम वर्ण का धारी हस्ती तैं, गहन बन में भेंट हो जाय। तौ ऐसा भयानीक गयंद, शील के माहात्म्य करि ब्रम्हचारी कूं बाधा नहीं करै। मृग के समान सरल हो जाय। इत्यादिक फल प्रगट करनहारा, उत्तम शील गुण है। तातैं ऐसे शीलगुण की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी शील गुण का माहात्म्य कहिये है—

गाथा—सुर सुह कर सिव करऊ, वहणी णिज पतण होय दुह सामो।
सुर-तरु दहदा सुह दय, गहणो वण साय वंभ वय करई ॥ १४६ ॥

अर्थ—सुर सुह कर कहिये, स्वर्ग का सुख करनहारा। सिव करऊ कहिये, मोक्ष करनहारा। वहणी णिज पतण होय दुह सामो कहिये, शीलवान् का अग्नि में पड़ना होय तो यह दुःख भी शांत होय। सुर-तरु दहदा सुह दय कहिये, दश प्रकार कल्पवृक्ष के सुख का दाता है। गहणो वण साय वंभ वय करई कहिये, ब्रह्मचर्य व्रत सघन बन में सहाय करै। भावार्थ—यह ब्रह्मचर्य व्रत कैसा है? याके फल तैं नाना प्रकार, पंचेन्द्रिय, देवोपुनीत, अद्भुत, अमर-पर्याय के सुख होय हैं। और शीलवान् जीव कूं कर्म-रहित जो मोक्ष; ताके अखंड, अविनाशी, अचल,

अतीन्द्रिय-सुख होय हैं। और शीलवान् के चौ-तरफ अग्नि ज्वाला जल रही होय, तौ भी ताहि बाधा नहीं होय। तथा शीलवान् पुरुष कौं, कोई पापी अग्नि-ज्वाला विषैं गिरावै। तौ ताव अग्नि, जल होय। जैसे सीता के शील-माहात्म्य करि, अग्नि जल भई। तैसे ही शीलवान कूं अग्नि का भय नहीं होय। और दश प्रकार के कल्पवृक्ष का दिया वांच्छित सुख, सो शील के माहात्म्य तैं सहज ही होय। और शीलवान् पुरुष अटवी में जाय पड़ै, तो बाधा नहीं होय। कैसा है बन ? महा उद्यान, बड़े-बड़े सघन वृक्ष का समूह, तहां महा भयानीक सिंहन के धड़ूके (गुफाएं) हैं। तहां मेघ की नाईं, हस्तीन की गर्जना होय। तहां सिंहन की गर्जना के शब्द सुनि, मदोन्मत्त हस्तीन के समूह स्वेच्छाचारी भये, बन के वृक्ष उखाड़ते, लीला करते फिरैं। सो सिंह के शब्द सुनकर, हस्ती अपने छावान् (बच्चों) सहित, भागते फिरैं हैं। उतर गया है मद जिनका, सो भयवान् भये भागते दीखैं हैं। और जा बन में बड़े-बड़े पर्वत, सो गुफान करि पोले होय रहे हैं। तिन गुफान तैं निकसे जो बड़े दीर्घ तन के धारी अजगर सर्प, सो दीर्घ उच्छ्वास लेते गुफा तैं निकसते देखिये है। इत्यादिक भय तैं भरा जो भयानीक बन, सो ऐसे बन विषैं शीलवान् आय पड़ै। तो शील के माहाम्य करि, निःखेद होय निकसै। ऐसे अतिशय सहित जो ये शीलगुण, ताकी रक्षा करनी विवेकीन कों योग्य है। आगे और भी शीलगुण का माहात्म्य बतावैं हैं—

गाथा—सिसरो अवंभ भंजई, वंभ वतोय वज्र छिण एको।

काम भुयंगय मंत्तो, वसि करई वंभ एय गरुडाये ॥ १४७ ॥

अर्थ—सिसरो अवंभ भंजई कहिये, अब्रह्म रूपी पर्वत के फोड़वे कौं, वंभ वतोय वज्ज छिण एको कहिये, ब्रह्मचर्य एक वज्र के समान है। काम भुयंगय मंत्तो कहिये, काम रूपी सर्प के वश करवे कों ब्रह्मचर्य एक मंत्र समान है। वसि करई वंभ एय गुरुडाये कहिये, तथा ताके वश करवे कूं ब्रह्मचर्य एक गरुड़ ममान है। भावार्थ—कुशील रूपी उत्तंग पर्वत के चूरण करवे कूं, शीलभाव वज्र समान है। एक छिन में कुशील रूपी पर्वतन कूं फोड़ै है। और कैसा है शीलभाव ? कुशीलभाव रूपी जो सर्प, ताके वश करवे कूं मंत्र समान है। तथा ताके वशी करवे कूं शील भाव गरुड़ समान है। ऐसे शीलव्रत की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी शील व्रत की महिमा बताइये है—

गाथा—मदणो मद गय थंभउ, अंकस सिर दाग लाग वस करई।
मण कपि वस कर फंदई, वंभो वय एय गेय णियमेण ॥ १४८ ॥

अर्थ—मदणो मद गय थंभउ कहिये, मदन रूपी मदोन्मत्त हस्ती ताके जीतवे कूं। अंकस सिर दाग लाग वस करई कहिये, शिर में अंकुश के दाग लगाय वश करवे समान। मण कपि वस कर फंदई कहिये, मन रूपी बन्दर के वश करवे कौं फंद समान। वंभो वय एय गेय णियमेण कहिये, एक ही ब्रह्मचर्य व्रत नियम से जानना। भावार्थ—काम रूपी मदोन्मत्त हस्ती, महा बलवान्, सो ताके जीतवे कूं इन्द्र, देव, चक्री, कामदेव, नारायण, बलभद्र, कोटीभटादि महा-

पुरुष, बड़े-बड़े बैरीन के जीतवे कूं बलवान्, इनको आदि बड़े-बड़े सामंत, ते भी इस काम रूपी हस्ती के वशी करवे कूं असमर्थ भये। ऐसे काम रूपी हस्ती के वशी करवे कूं, ये शील भाव है सो अंकुश के दाग समान है। और कैसा है शीलभाव? सो मन रूपी बंदर के बांधवे कूं, लोहे की सांकल समान है। इनकों आदि अनेक गुण सहित, शीलभाव जानना। आगे और भी शीलव्रत की महिमा कहिये है--

गाथा--कुगय वार कपाटो, अवंभ तरु छेद तीच्छ कुठहारो।
सिव गछ्छत सुह सुकणो, इंदी मिग जाल वंभ वाताए ॥ १४६ ॥

अर्थ--कुगय वार कपाटो कहिये, ये ब्रह्मभाव कुगति-द्वार कों कपाट समान है। अवंभ तरु छेद तीच्छ कुठहारो कहिये, कुशील रूपी वृक्ष के छेदवे कूं तीक्ष्ण कुठार है। सिव गछ्छत सुह सुकणो कहिये, मोक्ष चलवे कूं शुभ शकुन है। इन्दी मिग जाल वंभ वाताए कहिये, इन्द्रिय रूपी मृग के पकड़वे कूं ये ब्रह्मचर्य, जाल समान है। भावार्थ-यह ब्रह्मचर्य व्रत है, सो कुगति जो नरक-तिर्यंच गति, तिनमें नहीं जाने देयवे कूं, कपाट समान है। और कैसा है शीलव्रत, जो कुशील रूपी बिकट वृक्ष, सो आर्त्त-रौद्र भाव रूप कांटेन सहति, आकुल भाव रूपी छाया का धारी, अपयश रूपी फूल करि फूल्या, नरक-तिर्यंच गति हैं फल जाके ऐसा कुशील वृक्ष, ताके छेदवे कूं शीलभाव तीक्ष्ण कुठार समान है। बहुरि कैसा है शीलभाव, जैसे कोई बड़े लाभ निमित्त द्वीपांतर जाते, भले शकुन होंय। तो जाते ही कार्य सिद्ध होय।

तैसे ही मोक्ष रूपी द्वीप के गमन करनेहारे यतीश्वर तथा और भव्य श्रावक, तिनकौं शुद्ध शील व्रत का मिलाप, भले शकुन समान है। बहुरि कैसा है शीलभाव? जैसे काहू का तैय्यार भया धान्य का खेत है। ताकौं उद्यान में मृग उजाड़ैं हैं, खाय जांय हैं। तिन मृगों कों, स्याना खेत का लोभी किसान, जाल तैं पकड़ कैं, अपना खेत बचावै है। तैसे ही अनेक गुणन का उपजावनहारा संयम रूपी खेत, ताकों इन्द्रियरूपी मृग बिगाड़ैं हैं। सो अपने संयम–खेत की रक्षा का करनहारा धर्मात्मा पुरुष, सो इन्द्रिय रूपी मृग तिनकूँ, शील रूपी जाल तैं पकड़ि, अपने वश करि, अपने संयम खेत को बचावै। इत्यादिक अनेक गुणों का भण्डार, यह शीलव्रत है। तातैं याकी रक्षा किये, स्वर्ग-संपदा दासी होय। मोक्ष–संपदा घर विषैं आवै। सो विवेकी हो! इस शील की रक्षा करो। इति शील–महिमा। आगे कुशील का स्वरूप कहिये है—

गाथा—धम्म तरु भंज गयंदो, मिच्छा रयणीय मांहि मिग्गांको।
आपद धन गह भरई, ये सऊ दोसाय जणणि अवंभो॥ १५०॥

अर्थ—धम्म तरु भंज गयंदो कहिये, धर्म रूपी वृक्ष के छेदवे कूं हस्ती। मिच्छा रयणीय मांहि मिग्गांको कहिये, मिथ्यात्व रूपी रात्रि के करवे कूं, ताका नाथ चन्द्रमा समानि। आपद धण गह भरई कहिये, आपदा रूपी धन तैं, घर कौं भरनहारा। ए सऊ दोसाय जणणि अवम्भो कहिये, इन सब दोषों की जननी अब्रह्म है। भावार्थ—धर्म रूपी वृक्ष, यश रूपी

सुगंधित फूलों करि फूल्या, स्वर्ग—मोक्ष हैं फल जाके ऐसा धर्मवृक्ष, ताकों तोड़—विध्वंश करवे कौं कुशील भावना, मतंग हस्ती समान है। और सम्यक्ज्ञान रूपी दिन, सर्व पदार्थन का जनावनहारा, ताके हरवे कूं अरु मिथ्यात्व रूपी रात्रि के प्रकाश करवे कूं, कुशीलभावना रजनीपति—चन्द्रमा समान है। और आपदा कहिये नाना प्रकार दुःख, दारिद्र, रोग, भय, जेई भई संपदा; तिन तैं घर भरनहारा, कुशील है। भावार्थ—जाके कुशील है, ताके घर तैं आपदा कबहूं नहीं छूटैं। इत्यादिक अनेक दोषों के जन्म देवे कूं समर्थ, कुशील भावना माता समान है। ऐसा जानि, कुशील भावना तजना भला है। आगे और भी कुशील का स्वभाव कहै हैं—

गाथा—वंभ हणण तिय कुटिला, कुगय गमण कर हरय सिव मग्गो।
एहो भाव अवंभो, हेयो कीय भव्व वंभ पादेयो ॥ १५१ ॥

अर्थ—वंभ हंणण तिय कुटिला कहिये, ब्रह्मचर्य नाशवे कूं कुटिला स्त्री। कुगय गमण-कर कहिये, कुगति में गमन करै। हरय सिव मग्गो कहिये, मोक्ष मार्ग कौं हरै। एहो भाव अवंभो कहिये, ऐसा कुशील भाव है। हेयो कीय भव्व कहिये, ये भव्य जीव के हेय है। वंभ पादेयो कहिये, ब्रह्मचर्य भाव उपादेय है। भावार्थ—जैसे कुटिला स्त्री है, सो अनेक हाव—भाव करि, पर—पुरुष का मन मोह कर, ताका शील हरै है। तैसे ही कुशील भाव है, सो ब्रह्मचर्य के हरवे कूं कुटिला—स्त्री समान है। फेर कुशील भाव कैसा है? कुगति जो नरक-तिर्यंच गति, ताके मार्ग कूं बतावै है। और कैसा है कुशील? जो मोक्ष—मार्ग सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्र, इन

कूं हरै है। तातैं हे भव्य हो ! यह कुशील भाव है, सो याकौं तजौ। अरु शीलभाव कूं अंगीकार करहु। ऐसे कहे जो शीलभाव अरु कुशीलभाव, तिनका स्वभाव अपनी बुद्धि के बल करि पहिचान, समता रस के स्वादी होय, इस जगत विडम्बना रूप विकार भाव सहित जो कुशीलभाव, तिनका तजन करि, मोक्ष रूपी स्त्री के सम्बन्ध तैं उत्पन्न, जो निराकुल, अद्भुत, अतीन्द्रिय सुख, ताही कौं तुम शीलभाव के प्रसाद भोग करि, सुखी होऊ। यह कहे जो कुशीलभेद, तिन कूं तजि, ऊपर कहे शील गुण कौं धारै। सो क्रिया-ब्रह्म जानना। इति कुशील निषेध, शील की महिमा कही। आगे च्यार भेद क्रिया-ब्रह्म के हैं। तिनकी क्रिया लिखिये है—

गाथा—सिर लिङ्गन उर लिङ्गो, कटि लिंगो उरय लिंग चव भेयो।
धारय सो दुज सुद्धो, वंभचारोय धार समभावो ॥ १५२ ॥

अर्थ—सिर लिंगन कहिये, सिर का चिन्ह। उर लिंगो कहिये, उर (छाती) का चिन्ह। कटि लिंगो कहिये, कमर का चिन्ह। उरय लिंग कहिये, जंघा का चिन्ह। चव भेयो कहिये, ये चार प्रकार क्रिया-ब्रह्म है। धार समभावो कहिये, समता भावों को धारण करै। वंभचारोय कहिये, वही ब्रह्मचारी है। धारय सो दुज सुद्धो कहिये, वही शुद्ध द्विज है। भावार्थ-भले तीन कुल के उपजे धर्मात्मा-गृहस्थ के बालक, जेते काल गृहस्थाचार्य के पास विद्या का अभ्यास करैं। तेते समय गुरु की आज्ञा-प्रमाण ब्रह्मचर्य-व्रत पालैं। अरु च्यारि चिन्ह सहित रहैं। सो सिर लिंग ताकौं कहिये। जो नग्न शीश रहै। सो चोटी

में गांठ राखै। सो सिर लिंग है ॥ १ ॥ और उर लिंग ताकौं कहिये, जो गले विषैं रत्नत्रय का प्रसिद्ध चिन्ह, जिन–धर्म का निशान, पक्का जैनी अपना जिन–धर्म प्रगट करवे के निमित्त, गले में तीन वाड़ (लर) सूत की-उर विषैं जनेऊ डालै। सो उर का चिन्ह है ॥ २ ॥ और डाभ की तथा मूंज की रस्सी का, कमर की करधनी की जायगा, ताका बंधन राखै। सो कटि का चिन्ह है ॥ ३ ॥ और उरु नाम जंघा का है। सो जांघ पर उज्ज्वल धोती राखै। सो उरु का चिन्ह है ॥ ४ ॥ इन च्यारि गुण सहित जो क्रिया होय। सो क्रिया–ब्रह्म है। और उर का चिन्ह जनेऊ है। ताके नव गुण हैं। इन नव गुण सहित जो भव्य होय, सो जनेऊ राखै। अरु इन गुण बिना जनेऊ राखै, तो परंपराय तैं, धर्म का लोप होय। ताकौं पाप–बंध का करनहारा कहिये। सो वे नव गुण कैसे, सो ही कहिये है–विज्ञानता, क्षमावान्, अदत्त त्याग, अष्ट मूल गुणधारक, लोभ रहित, शुभाचारी, समिति धर, शीलवान् और त्याग गुण। भावार्थ–विज्ञानता जो नाना प्रकार विशेष–गुणन की सावधानी राखना। क्षमावान होय, तपस्वी होय। दया सहित, आप समान सब जीवन का जाननहारा होय। उदार चित्त होय। सर्वज्ञ भाषित शास्त्रन का धारी पण्डित होय। यथा योग्य देव-गुरु–धर्मव, आप सम, आप तैं लघु, इत्यादिक सर्व की विनय में समझता होय। आपका हृदय विनयवान् होय। इन आदिक विशेष ज्ञानवान होय। सो विज्ञान लक्षण है ॥ १ ॥ और दूसरा क्षमागुण-सो शांत स्वभाव होय। क्रोधी नहीं होय। सर्व जीवन के मंगल का इच्छुक होय। अदेख-

सका नहीं होय। क्रोध, मान, माया, लोभ, पाखण्ड का त्यागी होय। कषायी नहीं होय। इत्यादिक गुणी, सो क्षमा गुण है ॥ २ ॥ और अदत्त का त्यागी होय। राह पड़या द्रव्य कों नहीं छीवै। बिना दिया, किसी का गड़या, धरया, भूल्या धन लेय नाहीं। इत्यादिक चोरी का त्यागी होय। सो तीसरा अदत्त—त्याग गुण है ॥३॥ और मूल गुण का धारी होय। ऊमर, कठूमर, पाकर फल, बड़ फल, पीपल फल, ये पांच उदंबर। मद्य, मांस, मदिरा, ये तीन मकार। सब मिल आठ भये। सो इन आठन का त्याग, सो अष्ट मूल गुण हैं। सो इन गुणन का धारी होय। रात्रि—भोजन का त्यागी होय। इत्यादिक अभक्ष्य कंद—मूल का त्यागी होय। सो चौथा अष्ट मूल गुणधारक गुण है ॥४॥ और निर्लोभता—सो परिग्रह तृष्णा का त्यागी होय। संतोषी होय। अहंकार, ममकार जो मैं ऐसा, मोसा कोई दूसरा नाहीं, सो अहंकार है। और यह मेरी, वह मेरी; तन, धन, पुत्र, स्त्री, घर मेरा। ऐसा कहना सो ममकार है। जो ऐसे भावन का त्यागी होय। सो निर्लोभता पंचम गुण है ॥५॥ और शुभाचारी होय। जो पूजा जप, तप, संयम सूं रहना। अयोग्य खान-पान का त्याग। और भला भोजन देख के लेना। इत्यादिक शुभ-क्रिया करि रहना। सो शुभाचार है। अनछना जल पीवै नाहीं। ऐसे जल तैं सपरे (स्नान करै) नाहीं। नदी, सरोवर, बावरी, कूप में कूदके स्नान करै नाहीं। इत्यादिक भले गुण धारै। सो शुभाचार नाम छट्टा गुण है ॥ ६ ॥ और सांतवां समिति गुण—सो धरती पै चलै तो नीची दृष्टि करि, देखता चालै। अपनी दृष्टि में छोटे—मोटे जीव आवैं। तिन कूं दया-

भाव करि बचावता चालै। उर्द्ध—मुख करि, नाहीं चालै। शीघ्र—शीघ्र नाहीं चालै। राह चलते इत—उत नहीं देखै। भागै नांहीं। भाषा बोलै, सो विचार के बोलै। भोजन के समय, बोलै नाहीं, लड़ै नाहीं, काहू कों गाली नहीं काढ़ै। इत्यादिक शुद्धता सहित, देख के भोजन लेय। वस्तु कहीं से लेय, सो देख कर लेय। घींस के नहीं लेय। वस्तु कहीं धरै, तो देख के धरै। धरती बिना देखे, नहीं धरै। मल—मूत्र अपने तन का डारै। सो जीव रहित—स्थान में देख-शोध डारै। इत्यादिक शुद्धता सहित रहना। सो सातवां समिति गुण है॥७॥ और आठवां शील गुण-सो पर—स्त्री विषैं विकार बुद्धि का त्यागी होय। निज—स्त्री के संभोग विषैं, संतोषी होय। अल्प निद्रा का करनहारा होय। अल्प निद्रा होय, तो प्रमादी नहीं होय। दीर्घ निद्रा करै, तो अपने गुणन कूं कलंकित करै। और अल्प आहारी होय। बहुत भोजन करै, तो शील कौं दूषण होय। काष्ठ—पाषाणादि की स्त्री देख, विकार रूप चित्त नहीं करै। इत्यादिक शीलभाव राखै। सो आठवां शील गुण है॥८॥ और त्याग नववां गुण है। सो कुटुम्ब, परिग्रह, और शरीर में मोह का त्यागी होय। अनरंजन भाव होय। मंद मोह कौं लिये, सरल चित्त का धारी होय। चिन्ता, शोक, भय करि रहित होय। बड़ा दानी होय। इत्यादिक गुण, सो त्याग गुण है॥ ६॥ ऐसे कहे नव गुण सहित जो होय। सो तिस भव्यात्मा कौं, यज्ञोपवीत फल-दाई होय। इन गुण बिना यज्ञोपवीत राखै, तो परभव कौं दूषित करै। प्रायश्चित का धारक, सत्पुरुष, ब्रह्मचर्य का धारी; तिन करि निंद्य होय। दुख पावै। जैसे मंत्र का जाननहारा, सर्प

राखै। तो निर्दोष है। और विना मंत्र जाने, सर्प राखै। तौ दुखी होय। ऐसे कहे गुण-प्रमाण यज्ञोपवीत राखै, तौ शुभ उपजावै। नाहीं, दुख उपजावै। ऐसा जानि गुण सहित, यज्ञोपवीत राखै। सो क्रिया-व्रह्म है। आगे इन ही श्रावकन के भोजन समय, सात अंतराय होय हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम-जहां कौंड़ी आदि निर्जीव हाड़ देखै, मांस पिंड देखै, रौद्र धार देखै, भोजन करते थाल में जीव पतन होय, पंचेन्द्रिय का मल देखै, कच्चा पक्का सूखा चमड़ा देखै व स्पर्शै और तजी वस्तु भोजन में आवै। ऐसे सात अंतराय हैं। सो इनका निमित्त मिलै, तो दयावान् कोमलचित्त का धारी श्रावक, भोजन तजे। ता दिन अनशन करै। जव से अंतराय भया, तव तैं अन्न-जल नहीं लेय। ऐसा जानना। आगे ये क्रिया-व्रह्म के पालने योग्य, सत्तरह नियम हैं। सो कहिये हैं—

गाथा——भोयण षड रस पाणो, लेय पुखोय गीत तंवोलो।
.णित अवंभ सणाणो, आभूसण पट्ट पम्माणो ॥ १५३ ॥

अर्थ—भोयण कहिये, भोजन। षड रस कहिये, षट् रस। पाणो कहिये, पान करवे योग्य जलादिक। लेय कहिये, लेप करने योग्य वस्तु। पुखोय कहिये, पुष्प। गीत कहिये, राग। तंवोलो कहिये, नागर पान। णित कहिये, नृत्य। अवंभ कहिये, कुशील। सणाणो कहिये, स्नान। आभूसण कहिये, गहना। पट्ट कहिये, वस्त्र। पम्माणो कहिये, इनका प्रमाण करना। इनका भावार्थ आगे कहेंगे।

गाथा—वाहण सज्जा आसण, सचित्त संज्ञाय सत्त दस णियमो ।
धम्मी सावय धारय, जाम दिण पक्ख मास वस्सादि ॥ १५४ ॥

अर्थ—वाहण कहिये, असवारी । सज्जा कहिये, शैय्या, सोने का स्थान । आसण कहिये, बैठवे का स्थान । सचित्त कहिये, जीव सहित सो सचित्त । संज्ञाय कहिये, वस्तु । सत्त दस णियमो कहिये, ये सत्तरह नियम हैं । जाम दिण पक्ख मास वस्सादि कहिये, पहर-दिन-पक्ष-मास–वर्षादि तक । धम्मी सावय धारय कहिये, धर्मी श्रावक धारण करै । भावार्थ–भोजन, रस, पान, लेपन, फूल, ताम्बूल, गीत, नृत्य, अब्रह्म, स्नान, आभूषण, वस्त्र, वाहन, शैय्या, आसण, सचित्त, और वस्तु । इन सत्रह का नियम करै । इनका अर्थ-तहां गेहूँ, चना, चांवल, मूंग, मोंठ, यव, ज्वार, आदि अन्न का प्रमाण । जो मैं एते अन्न खाऊंगा, बाकी अन्न तजे । ऐसे अन्न-भोजन की संख्या राखना । सो भोजन प्रमाण है ॥१॥ और आज षट्रस विषैं ऐते रस खाऊंगा, सो अगार है । बाकी के तजे । ऐसे षट् रसन में तैं, जो एक–दो–तीन–च्यारि आदि रस का प्रमाण करना । सो रस नियम है ॥ २ ॥ और पान करवे योग्य जो जल, मही, दूध, ईख–रस, आदि वस्तुन का प्रमाण करना । जो ऐती वस्तु पान योग्य राखी, सो अगार है । सो खाऊंगा । बाकी त्यागीं । ऐसा प्रमाण करना, सो पान प्रमाण है ॥ ३ ॥ और ऐती सुगंधी अगर, चंदन, अगरजा, तेल, फुलेल, इतरादि इनका प्रमाण करना । जो ऐती खुशबोय राखी, बाकी तजी । तिनकी प्रतिज्ञा करनी, सो लेप नियम है ॥ ४ ॥ और अनेक जाति के

फूलन में तैं, फूलन की संख्या राखनी। जो आज ऐते फूल राखे, सो सूंघना। ढांकने, पहरने इत्यादिक का प्रमाण करना, सो फूल नियम है॥ ५ ॥ और जो आज ऐते ताम्बूल राखे। सो खावना, सो ताम्बूल नियम है॥ ६ ॥ और आज ऐती राग सुननी। षट् राग, छत्तीस रागनी, अरु तिनकी अनेक भार्ज्या हैं, तिनमें तैं प्रमाण करै। सो राग सुनै, बाकी नाहीं सुनै। सो राग नियम है ॥७॥ और अनेक जाति के नृत्य हैं। पातरा नृत्य, वेश्या-नृत्य, देवांगना नृत्य, घर-स्त्रीन का नृत्य, भाण्ड नृत्य, भवैया नृत्य, नर कों नारी बनाय नृत्य, नारी नर-रूप धर नृत्य करै, इत्यादिक अनेक हैं। तिनमें तैं प्रमाण करना। जो येते नृत्य आज देखने, बाकी का त्याग है। सो नृत्य नियम है॥ ८ ॥ और पर-स्त्री का सर्वथा त्याग तो पहिले ही था, अरु स्व-स्त्री में संतोष सहित प्रमाण करना। जो आज एती बार कुशील-सेवन का प्रमाण है। बाकी का त्याग है। ऐसा प्रमाण, सो कुशील नियम है॥ ९ ॥ आज एती बार स्नान करूंगा, बाकी तज्या। सो स्नान नियम है॥ १० ॥ और आज ऐते आभूषण राखे, सो पहरने, बाकी का त्याग। ऐसा प्रमाण करना, सो आभूषण नियम है॥ ११ ॥ और ऐते वस्त्र राखे। एते सूत के, एते रेशमी, एते रोमी। इत्यादिक वस्त्र का प्रमाण करना, सो वस्त्र नियम है॥ १२ ॥ और हाथी, रथ, घोड़ा, ऊँट, बैल, रोज, महिष, अंबाड़ी, मियाना, पालकी, नालकी, तखतरवां, गाड़ी इत्यादिक अनेक असवारी के भेद हैं। तिन में ते ऐते राखीं, बाकी तजीं। ऐसे अनेक पुण्य-प्रमाण में भी

संतोष करि, असवारी की संख्या राखना । सो बाहन नियम है ॥ १३ ॥ और सोवने का स्थान, महल, पलंग, बिछौना, तकिया, पिछौरा, रजाई, इत्यादिक का प्रमाण करना । सो शैय्या नियम है ॥ १४ ॥ बहुरि एती जायगा बैठना, एती जगह जाना । ऐसा प्रमाण करना, सो आसन प्रमाण है ॥ १५ ॥ आज एती सचित्त वस्तु खावना, बाकी का त्याग । सो सचित्त नियम है ॥ १६ ॥ और आज एती वस्तु राखी सो लेना, बाकी का त्याग है । ऐसी प्रतिज्ञा करनी, सो वस्तु नियम है ॥ १७ ॥ ऐसे ये सत्रह नियम कहे । सो धर्मात्मा अव्रती श्रावक पर्यंत कूं करना योग्य है ॥ इनका प्रमाण होते, इस जगत तैं उदासी, धर्मात्मा श्रावक का चित्त, विषय–भोगन तैं विरक्त रहै है । तातैं प्रमाद नहीं बधने पावै । इनके विचार तैं, स्यात–स्यात (घड़ी–घड़ी) में धर्म की यादगारी रहै है । अनर्थ–दण्ड पाप छूटै है । सो जे धर्मात्मा ब्रह्मचर्य व्रत का धारी इन कूं विचारैं, यादि करै, सो क्रिया-ब्रह्म है ॥ इति सत्रह नियम ॥ आगे क्रिया-ब्रह्म धर्मात्मा श्रावक, ताके इक्कीस गुण कहिये है । तहां प्रथम नाम–प्रथम लज्जावान् होय । अगर निर्लज्ज होय तो देव, गुरु, धर्म की मर्यादा लोप देय । कुल-धर्म तजि, कुधर्म का सेवन करै । बड़े गुरुजन की अविनय रूप प्रवृत्ति करै । माता-पिता कूं खेदकारी होय । एते दोष भये धर्म का अभाव होय । तातैं धर्म का स्वभाव लज्जा है । तातैं धर्मी, लज्जा गुण का धारी है ॥ १ ॥ और अदया, सर्व पाप का बीज है । तातैं दयावंत होय, निर्दयी नहीं होय ॥ २ ॥ और तीव्र कषायी होय, तौ लोक में निंदा

पावै। धर्म-कल्पवृक्ष विनशि जाय। तातें शांत स्वभावी होय, क्रोधादि कषाय जाकें नहीं होय ॥ ३ ॥ और केवली सर्वज्ञ-भाषित धर्म का श्रद्धान सहित, जिनधर्म का उपदेशक होय। स्वेच्छाचारी, मिथ्या-धर्म का उपदेशक नहीं होय ॥ ४ ॥ और पर-दोषन का ढांकनहारा होय। अपने औगुण का प्रगट करनहारा होय ॥ ५ ॥ और परोपकारी होय। पर-द्वेषी नहीं होय ॥ ६ ॥ और सौम्य-मूर्ति होय। जाके देखे प्रीति उपजै। भयानीक आकार नहीं होय ॥ ७ ॥ और गुण-ग्राही होय। औगुण-ग्राही नहीं होय ॥ ८ ॥ मार्दव धर्म का धारी, यथायोग्य विनय कूं लिये होय ॥ ९ ॥ और सर्व जीवन कूं, आप समान मानै। सर्व तैं मैत्री-भाव लिये होय। द्वेषभावरूप काहू तैं नहीं होय ॥ १० ॥ न्यायपक्ष का धारी होय। अन्याय पक्ष का पोखता नहीं होय ॥ ११ ॥ मिष्ट-मधुर स्वर का भाषणहारा होय। कठोर वचनी नहीं होय ॥ १२ ॥ गंभीर स्वभाव सहित, दीर्घ विचारी होय। बालकवत् सामान्य विचारी नहीं होय ॥ १३ ॥ विशेष-ज्ञानी होय। कोई कुवादीन की खोटी नय-युक्ति तैं, सत्यधर्म तैं नहीं डिगै। आप अनेक सद्युक्ति, सद्दृष्टान्त, सच्चे शास्त्र-न्याय तैं बताय; कुवादीन का खण्डनहारा, भला ज्ञानी होय ॥ १४ ॥ सर्व कौं सुखी देख, सुख पावनहारा। सज्जन स्वभावी होय। दुर्जन-अदेखा नहीं होय ॥ १५ ॥ दया धर्म-अंग का धारी, दान-पूजादि गुण सहित, धर्मात्मा होय। पापी नहीं होय ॥ १६ ॥ भली बुद्धि का धारी होय। कुबुद्धि धारी नहीं होय ॥ १७ ॥ योग्यायोग्य का जाननहारा होय,

मूर्ख नहीं होय ॥ १८ ॥ दीनता, उद्धत्ता रहित, मध्यम-स्वभावी होय ॥ १९ ॥ सहज ही विनयवान् होय, अविनयी नहीं होय ॥ २० ॥ पापारंभ क्रियातैं रहित, शुभाचारी होय ॥२१॥ ऐसे कहे गुण सहित होय, सो क्रिया-ब्रह्म जानना। इति इक्कीस क्रिया-ब्रह्म के गुण ॥ आगे क्रिया-ब्रह्म के भेद, पर-मत में भी कहे हैं, सो कहिये हैं। जो ये गुण होंय, सो क्रिया-ब्रह्म है। ताकी क्रिया कहैं हैं। सो ही कहिये है–"उक्तंच मार्कण्डेय जी कृत, सुमति-शास्त्र"–जे उत्तम ब्राह्मण होंय, सो एती क्रिया करैं। सो बताईये है। जहां अनछान्या पानी पीवै, तो मदिरा समान दोष होय। अनगाले जल में स्नान करै, तो काय अशुचि होय। अनगाले जल में रसोई करै, तो सात भव जलचर-जीव होय। तातें उत्तम द्विज कों अनगाल्ये जल तैं क्रिया करना मना हैं। ऐसा जानना। आगे व्यास वचन–महाभारत के सातवें खण्ड में कह्या है। ब्राह्मण कूं शीलव्रत ही शृङ्गार है। शील बिना पूजा, जप, तप, सर्व नष्टकारी हैं। फलदाता नाहीं। तातें उत्तम गुण का लोभी, शील सहित रहै है। और ब्राह्मण, दया पाल करि गमन करै है। आप समान सर्व जीवन कों जानि, तिन की रक्षा करवे निमित्त, नीची दृष्टि किये चलै। जो कीड़ी, कुंथुवादि अपनी दृष्टी में आवैं, तो बचावता, धरती देखता, या बिधि सूं गमन करै। बिना देखै, पांव नहीं धरै। और भोगी–जीवन के सोवने का स्थान जो पलंग, तापै नहीं सोवै। भूमि पै सोवै। और जातैं रागभाव बधै, काम बधै, ऐसा वस्त्र नहीं राखै। राग रहित, वैराग्य कों कारण, ऐसा वस्त्र पहिरै। और शरीर

कूं चंदन, अगरजा, तैल, फुलेल, इतरादिक सुगंधित वस्तु नहीं लगावै । ताम्बूल–पान नहीं खाय। और संसार के मोही, प्रमादी, कुशीलवान् जीव, तिनकी सी नाईं निशंक होय, निद्रा नहीं करै। कामी पुरुष की नाईं, विषयन में मोहित नहीं होय। और भोगाभिलाषी कामी पुरुष, तिनके मुख सूं स्त्रीन की कथा, राग-भाव सहित नहीं सुनै । अपने मुख तैं काम कथा, स्त्रीन के गुण, रूप, भोग की कथा, नहीं कहै। और क्रोध, मान, माया, लोभ तजिवे का उपदेश, औरन कूं देय। अपने तन पै शृङ्गार नहीं करै। हस्ती, घोटक, पालकी, रथादि वाहन पै नहीं चढ़ै। दया के हेतु, पांव–प्यादा धरती शोधता चलै। दंत नहीं धोवै। इत्यादिक अपना ब्रह्मपद जो ब्रह्मचर्य, ताकी रक्षा करता, भली-क्रिया करै। प्रभात व शाम दो वखत, संध्या नहीं चूकै। इन क्रियान सहित होय। सो ब्रह्म, सत्पुरुष करि सुश्रूषा योग्य होय है। ये लक्षण क्रिया-ब्रह्म के कहे। और इन क्रिया रहित होय, सो क्रिया-ब्रह्म नाहीं। जो कुशील भाव, क्रोध, मान, माया, लोभ कूं लिये अहंकार–ममकार सहित होय। सो शीलवान करि सुश्रूषा नहीं पावै। दोष सहित है। ये गुण जामें नहीं होंय, सो कुल-ब्राह्मण है, क्रिया-ब्रह्म नाहीं। ऐसा जानना। इति व्यास वचन॥ आगे मार्कण्डेय कृत सुमति शास्त्र, तामैं ऐसा कह्या है। कि जो दिन के प्रथम पहर में भोजन करै, सो देव-भोजन है। दूसरे पहर में भोजन करै, सो ऋषीश्वर का भोजन है। और तीसरे पहर में भोजन करै, सो पितृन का भोजन करै। और चौथे पहर में भोजन करै, सो दैत्यन का भोजन करै। तातें दिन का

अष्टम भाग, च्यारि घड़ी बाकी रहै। जब सूर्य की कांति मंद होय। तब तैं उत्तम आचारी, ब्रह्मचर्य का धारी, भोजन नहीं करै। अरु कदाचित् करै, तो अपने ब्रह्मचर्य पद कूं दूषित करै। ऐसा जानना। आगे शिव-पुराण में कह्या है। जो उत्तम ब्रह्मव्रती एती वस्तु नहीं खाय। बैंगन, गाजर, मूली, आदी, सूरण, मधु, मद्य, मांस, इत्यादि अभक्ष्य वस्तु नहीं खावै। ब्रह्मव्रत धारी उत्तम जीव नहीं खाय। और कदाचित् लोभ धारि के खाय, तो जो बारह वर्ष दान-पूजा-जप-तप किये, तिनका फल मिटि जाय। तातें ब्रह्म भक्त, येती वस्तु नहीं खांय। आगे और पुराणन में भी कह्या है। जो कृष्ण महाराज, युधिष्ठिर जी सूं कहैं हैं। भो युधिष्ठिर ! मेरा भक्त होय के ब्रह्मव्रती कंद-मूल खाय। तो दया, पूजा, दान, इन्द्रिय-मन का जीतना, ये सर्व क्रिया विफल होय। तातें मेरे भक्त कौं, कन्द-मूल तजना योग्य है। और काश्यप मुनि के वचन हैं। जो ब्रह्मभक्त पूजा करै, तौ तब सुफल है। जब कंद-मूल नहीं खाय। याके खाये से सर्व क्रिया नष्ट होय। और शिवपुराण में कह्या है। जो दया समान दूसरा तीर्थ नाहीं। दया भाव है, सो ही एक भला तीर्थ है। दया बिना तीर्थफल नाहीं। ऐसे कहे जो अनेक धर्म अङ्ग, सो इनकूं पालै। वही उत्तम धर्म का धारी क्रियाब्रह्म है। इति क्रिया-ब्रह्म। आगे कुलब्रह्म के दशभेद अन्यमत संबंधी कहे हैं। सो ही बताईये है—

काव्य—सुरो मुनीश्वरो विप्रो, वैश्यः क्षत्रिय शूद्रको।
विजातिपशुमातंग,—म्लेच्छाश्च दश जातयः॥

अर्थ—देव जाति, मुनि जाति, विप्र जाति, वैश्य जाति, क्षत्रिय जाति, शूद्र जाति, विजाति, पशु जाति, म्लेच्छ जाति, मातंग जाति, ये दश भेद व्यास भाषित, मत्स्य पुराण अनुसार हैं। इनका अर्थ—जहां तत्त्वज्ञान विषैं प्रवीण होय। अपने आत्म कल्याण का अर्थी होय। निर्हिंसक क्रिया का करनहारा होय। बहु आरंभ—परिग्रह का त्यागी, संतोषी होय। त्रिकाल संध्या की क्रिया में सावधान होय। आपा—पर के ज्ञान का धारी होय। आत्म—तत्त्ववेत्ता होय। इत्यादिक गुण सहित होय, सो देव जाति का ब्राह्मण है ॥१॥ और जो उत्तम, तीन कुल का भोजन करनहारा होय। नगर का वास तजि, वन का निवासी होय। तीनकाल आत्मध्यान में प्रवर्तनहारा होय। इत्यादिक गुणसहित होय. सो ऋषीश्वर जाति का ब्राह्मण है ॥ २ ॥ और अनेक प्राशुक सुगंध द्रव्य मिलाय, अग्नि में खेवै—होमै। अग्नि कबहूं बुझने नहीं देय। होम-क्रिया में सावधान होय। दया रूप धर्म जानता होय। देव-गुरु पूजा में विनयवान् होय। अपने भोजन में तें अतिथि कों देय, ऐसे अतिथि व्रत का धारी होय। गृहस्थ के षट् कर्म—क्रिया में सावधान होय। ऐसे गुणसहित जो होय, सो विप्र जाति का ब्राह्मण है ॥ ३॥ और जे हस्ती, घोटक, रथादिक की असवारी विषैं प्रवीण होय। युद्ध करवैं की जाकैं चाह होय। युद्ध की अनेक-कला तीर, गोली, खड्ग, पटा, सेल्ह, धूप, बांकि, खंजर, छुरी, कटारी इत्यादिक शस्त्र-कला में सावधान होय। लड़ने में मरने कूं, नहीं डरता होय। मन का शूरवीर होय। बड़े आरंभ, राज्य-संपदा का भोगी होय। जो इन गुण सहित होय। सो क्षत्रिय जाति का ब्राह्मण

है ॥ ४ ॥ और ब्राह्मण के कुल में तो उपज्या होय, अरु खेती करता होय । गाय, महिष,
वृषभादि पशून के पालवे की कला में प्रवीण होय । आचार रहित खान–पान का करन-
हारा होय । इन लक्षण महित होय, सो शूद्र जाति का ब्राह्मण है ॥ ५ ॥ और ब्राह्मण के
कुल में उपज्या होय, अरु इन वाणिज्य–व्यापार की चतुराई जानता होय । वस्त्र परीक्षा,
सोना–चांदी की परीक्षा जानता होय। रुपया, मुहुर, रत्न की परीक्षा जानता होय । अन्ना-
दिक लेन–देन में सावधान होय । अनेक लेखे करवे की जो कला, व्याज फैलाना आदि
ज्ञान सहित आजीविका करता होय। सो वैश्य जाति का ब्राह्मण है ॥ ६ ॥ और ब्राह्मण-कुल
में तो अवतार लिया होय, अरु पराई निंदा करनहारा होय। पर-दोष का देखनहारा होय।
अनेक पर-स्त्री का भोगनहारा, पशु समान कुशीलवान् होय। पंचेन्द्रिय-विषय में लोलुपी होय ।
अपना यश, अपने मुख तैं करता होय । अपनी संतोष-वृत्ति कूं तज, द्रव्य के लोभ कूं
अनेक स्वांग धरि, छल–बल करि, धन पैदा करता होय । अनेक गावना, बजावना, नृत्य
करनादि कलाकर, आजीविका करता होय । अनेक यंत्र, मंत्र, तंत्रादि के चमत्कार लोगन
कूं दिखाय, अपने कुटुम्ब का पालन करता होय । इन लक्षण सहित होय । ताकूं विजाति
ब्राह्मण कहिये ॥ ७ ॥ और ब्राह्मण के कुल में तो अवतार लिया होय, अरु खावे योग्य
वस्तु अरु ऊंच कुली मनुष्य के नहीं खावे योग्य वस्तु विषैं, विचार रहित होय । क्रोध-
वचन, गाली वचन, श्राप वचन, कुफर जो भण्ड वचन, इत्यादिक दुर्वचन; पर पीड़ाकारी,

पापमई, बोलने का स्वभाव होय। भली-क्रिया रहित होय। महा प्रमादी, बहुत सोवने का स्वभाव होय। इत्यादिक लक्षण जामें हाँय, सो पशु जाति का ब्राह्मण है ॥८॥ और ब्राह्मण कुल में तो अवतार धस्या होय; अरु नदी, तालाब, बावड़ीन की क्रीड़ा-तैरना—कूदना, ताकूं भला लागता होय। मद्य—मांस भक्षण करता होय। बहुत हिंसा करनहारा होय। दयाधर्म-शुभाचार रहित होय। इत्यादिक लक्षण जामें हाँय। सो म्लेच्छ जाति का ब्राह्मण है ॥ ९ ॥ और महा हिंसा का करनहारा होय। मनुष्य—पशू के मारवे कूं निर्दयी होय। भली—भली द्विज योग्य क्रिया, तिनकरि रहित होय। हिताहित विचार करि, रहित होय। पूजा, दान, जप, तप, आदि धर्म-क्रिया करि, शून्य होय। पाप परणति सहित होय। इन आदि लक्षण सहित, सो मातंग जाति का ब्राह्मण है ॥ १० ॥ ऐसे ब्राह्मण के दश भेद कहे। सो आचार के योग तैं कहे। परन्तु ब्राह्मण के कुल में उपज्या है, सो जिस कुल में उपज्या होय, सो ही नाम कहना। सो क्रिया चाहे जैसी करो। ब्राह्मण में उपज्या, ताकौं ब्राह्मण कहना। सो कुल-ब्रह्म है। या प्रकार स्वभाव-ब्रह्म, क्रिया-ब्रह्म, त्याग-ब्रह्म, कुल-ब्रह्म ये च्यारि ब्रह्म के भेद कहे। सो सातवीं प्रतिमा धारी, च्यारि कुलका उपज्या धर्मात्मा श्रावक, सर्व स्त्री का त्यागी, सौम्य मूर्ति, ये सातवीं प्रतिमा धारै। सो ये त्याग-ब्रह्म जानना॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावक भेद रूप एकादश प्रतिमा विषैं, सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा के भेद, शील महिमा, भोजन के सात अंतराय, सत्रह नियम, श्रावक के इक्कीस गुण, अन्य-मत संबंधी केतीक, सीख सहित

क्रिया-ब्रह्म भेद, दश-भेद कुलब्रह्म, कथन वर्णनो नाम, सैंतीसवां पर्व संपूर्णम् ॥ ३७ ॥

आगे अष्टमी प्रतिमा का कथन लिखिये है। तहां अष्टमी प्रतिमा, आरंभ-त्याग है। सो कोई भव्य, जब अष्टमी प्रतिमा धारै। तब पापारंभ तैं उदास होय, वह मोक्षाभिलाषी ऐसा विचारै। जो इस मंसार में, गृहारंभ के पाप तैं, मोह के वशीभूत भया यह आत्मा, नरक-दुख में अपनी आत्मा डुबोवै है। और जिनतैं मोह बुद्धि करि, पाप-भार शिर पै धरै है। सो पाप फल आये, इन मोहीन का नाम भी नहीं दीखैगा। द्रव्य खाय-खाय, सर्व अपने-अपने मारग लागैंगे। अरु तिन पापन का फल, मोकौं ही भोगना पड़ेगा। जैसे एक चोर के घर में आप, माता, पिता, स्त्री, पुत्र ये पांच आदमी थे। ये पांचों कौं ही पाप-फल तैं भूखों मरते, अन्न विना तीन दिन भये। तब पुत्र ने रुदिन करि कह्या। हे पिता ! अब हम सब घर-जन, अन्न बिना मरैं हैं। भोजन विना तीन दिवस भये, सो दुखी हैं। तातैं अन्न लाय देव। तब चोर ने कही। हे पुत्र ! बहुत फिरौं हों, परन्तु पाप-उदय तैं, कछू मिलता नाहीं। अब तुम धीरज धरो, मैं और जाऊं हूं। सो ये चोर, कुटुम्ब के मोह तैं चोरी कौं गया। एक घर में खीर होय थी। सो इस चोर ने अपनी चतुरता तैं, खीर का बासन चुरा लिया। सो ल्याय, घर में आया। कुटुम्ब के आगे धरी। सो पांच थालियों में, पांचों ने परोसी। तब सब ने कही, भोजन तो भला ल्याया। परन्तु मिष्टान्न होता, तौ भला था। तब चोर-कला-वारै ने कही। तुमने कहा है, तौ मैं मिष्टान्न भी ल्याऊं

हूँ। तब यह चोर तौ मिष्टान्न कौं गया। सो बड़ी बार (देर) लागी। सो इनको थिरता नहीं रही। सो अपनी–अपनी थाली की खीर, भूख के मारे खाय गये। बाकी जो चोर गया था, सो ताका थाल ढांक रख्या। सो एते में एक मिजवान आया। सो चोरी वारे का खीर का थाल, मिजवान के आगे धस्या। सो मिजवान ने खाया। तब वह चोर किसी का मिष्टान्न चुरा के आया, सो देखे तो खीर नहीं। घर वारों कों पूछी, तब उन्होंने कही मिजवान आया, ताने खाई। ये चोर तीन दिंन का भूखा, दुखी है। एते में खीर अरु मिष्टान्न की खोज करते, कोतवाल चोर कूँ हेरते आये। सो कोतवाल ने, इस चोर कूं पकड़या। सो घर-जन अरु मिजवान खीर खावनहारे, सर्व भाग गये। या चोर की मुसकैं बँधीं। सो नाना प्रकार की मार चोर ने भोगी, महा दुखी भया। तैसे ही कुटुम्ब के निमित्त पापारंभ करौं हौं। सो चोर की नांईं मोकूं दुख भोगना पड़ेगा। ये कुटुम्ब, दुख के आये सर्व जाते रहेंगे। ऐसे ये शिव–सुख का अभिलाषी, संसार–भोगन तैं उदास, ऐसा विचारै। कुटुम्ब तैं अरु गृहारंभ तैं ममत्व छांड़ि, पीछे घर में अपने पुत्रादिक कूं विवेकी देख, जो यह घर-भार चलायवे कूं समर्थ, ताहि बुलाय कैं, प्रथम तो ताकौं हित–मित हितोपदेश देय, संतोषित करै। पीछे अपने चित्त का रहस्य बताय, ताकौं कहै। हे भव्य ! अबलौं तो घर-भार हमने चलाया। अब तोकौं सपूत, सज्जन–अंगी, विवेकी, विनयवान् देख, बड़ा हर्ष भया। हमारी गृह-पालन की चिन्ता गई। सो हे धर्मी ! अब तुम इस कुटुम्ब की

रत्ता करौ। न्याय पूर्वक धनोपार्जन करौ। धर्म सेवन कर, पर-भव सुधारो। ऐसा कहि, पीछे सर्व जाति, कुटुम्ब, पंचन कूं बुलवाय, विनय सहित हित-मित वचन कहै। कि हे पंच हो! अब तांईं हमने, कुटुम्ब के संग तैं आरंभ किया। अब हमारा मनोरथ, परभव सुख के निमित्त, आरंभ रहित धर्म-सेवन का है। तुम सर्व भाईयन के सहाय तैं, यह भव सुधर्या। तुम्हारा दिया धन-यश पाया। अब इस गृह का भार, इस पुत्र कौं सौंप्या है। सो अब तुम, याकी प्रतिपालना करो। जैसे सर्व भाई, मोतैं धर्म स्नेह करि, मेरी प्रतिपालना करी। तैसे ही याकी करौ। जैसे प्रयोजन पाय, मोसे आज्ञा करौ थे। तैसे इस पर करोगे। जैसे मो-भूले कूं त्तमा भाव करि शित्ता देय थे, तैसे याकूं शित्ता देय, प्रवीण करोगे। तातैं अब मैं तुम सर्व भाईयन तैं, ऐसी विन्ती करौं हौं। जो अब तांईं आरंभ-प्रारंभ विषैं, मोपै कृपा करि, मोकौं यादि करकैं, मेरा नाम लेय, नेवता-बुलावा भेजो थे। सो अब पंचायती व विवाहादिक के आरंभ विषैं, याकौं याद करि, याके नाम न्योता-बुलावा भेजोगे। अब मैं गृह आरम्भ तैं, तुम सर्व भाईयन की सात्ती तैं न्यारा हौं। इत्यादिक सर्व पंचन तैं, शुभ-वचन कहै। तब सर्व पंच, इन की धीरता देख बहुत प्रसंशा कर, इनका कह्या करैं। तिस ही दिन तैं आप, पापारम्भ का त्यागी भया। पापारम्भ तैं न्यारा होय, घर विषैं तिष्ठता धर्म-साधन करै। घर ही में स्तुति करना, पूजा, दान, ध्यान, संयम करता; काल गुमावै। भोजन समय घर-जन बुलावैं, तब भोजन कौं जाय। अरु अपने पदस्थ-प्रमाण, परि-

ग्रह अल्प राखै। सो आरम्भ त्यागी, आठवीं प्रतिमा का धारी है। इति आठवीं प्रतिमा ॥ ८ ॥ आगे नववीं प्रतिमा का स्वरूप कहिये हैं। अब नववीं परिग्रह-त्याग प्रतिमा विषैं, सर्व परिग्रह-आरम्भ के ममत्व का त्यागी होय। आगे अष्टम प्रतिमा में, अल्प परिग्रह का त्यागी नहीं था। सामान्य परिग्रह था। सो अब सर्व परिग्रह त्याग कर, एकान्त स्थान विषैं, धर्मध्यान सेवन करै। प्रथम दिन कोई नेवता दे जाय, ताके घर भोजन करै। अपना घर तथा पराया घर, एकसा देखै। पाद्य पछेवरी राखै, न्यौता जीमें। सो महा सौम्य मूर्ति धारी, दयाधर्म पालक है। ऐसे गुण, नववीं प्रतिमा धारक के जानना। इति नववीं परिग्रह त्याग प्रतिमा ॥ ९ ॥ आगे दशवीं प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। अब अनुमति जो उपदेश, सो दशवीं प्रतिमा का धारी, पापारम्भ के उपदेश का त्यागी है। सो भोजन-मात्र भी कह के नहीं करै। यह न्यौता नहीं मानै। भोजन समय कोई बुलाय ले जाय, तो भोजन करै। न्यौता नहीं जाय। बिना न्यौता जीमैं, सो अनुमति त्यागी है। इति दशवीं प्रतिमा ॥१०॥ आगे ग्यारहवीं प्रतिमा के धारी श्रावक, तिनके दोय भेद हैं। एक छुल्लक, दूसरा ऐलक। तहां कटि-बंधन अरु लँगोट-मात्र परिग्रह राखनेहारा, बनो-विहारी, उदंड (अनुद्दिष्ट) आहार करै। अरु धरती बिछायवे कूं, आसमान ओढ़वे कूं, महा दयालु, मुनि समान चित्त का धारी; नग्न बिना, इक्कीस परीषह का जीतनहारा, निर्मल आचारी, कमण्डल पीछी का राखनहारा, यती समान व्रत का धारी, मुनि पद का अभिलाषी, इस धर्मात्मा कूं कोई सूक्ष्म जाति का अंश लिये, शङ्का-

रूप परणति है। सूक्ष्म अंश काम विकार के मन, वचन, काय में, कोई जाति के भंगा लिये हैं। जो केवली गम्य हैं। आप कौं भासै हैं, तातैं ये नगन-मुद्रा नहीं धारै। ये सूक्ष्म काम विकार गये, यती पद लेवे के योग्य होयगा। ऐसा श्रावक, सो ऐलक श्रावक है। सो यह ऐलक श्रावक का पद, तीन कुल के उपजे भव्यात्मा कूं होय है। शूद्र कौं नाहीं होय है ॥१॥ और छुल्लक पद है सो नीच कुल, तथा ऊंच कुल दोऊ जाति कूं होय है। सो छुल्लक के पास, कछू कपड़ा-मात्र परिग्रह होय। एक दुपट्टा, एक शिर पै फैंटा राखै। सो नहीं तौ बहुत बारीक-मुलायम, तातैं सराग भाव होंय। अरु नहीं बहुत दृढ़, तिन में जीव पड़ैं। मलीन भये रंक सा दीखैं, ऐसे भी नाहीं। मध्यम भाव धरैं, राग रहित, ऐसे वस्त्र राखै। सो जे शूद्र जाति के छुल्लक होंय। सो शूद्र के दोय भेद हैं। एक स्पर्श शूद्र, दूसरा अस्पर्श-शूद्र। तहां धोबी, नाई, बढ़ई, दर्जी, इत्यादिक जिनके छूये लोक में ग्लानि नाहीं, सो स्पर्श शूद्र हैं ॥ १ ॥ और जहां भंगी, चाण्डाल, चमार, कोली इन आदिक जिन कूं छूये लौकिक में ग्लानि होय, स्नान किये शुद्ध होंय। सो अस्पर्श शूद्र हैं ॥२॥ सो इन दोऊन में तैं, स्पर्श-शूद्र कौं तो छुल्लक व्रत होय, और अस्पर्श शूद्र कूं व्रत नाहीं होय। सम्यग्दर्शनादिक गुण, होय हैं। सो तहां तीन ऊंच कुल का छुल्लक श्रावक तौ भोजन कौं जाय, सो गृहस्थ के चौके में ही भोजन करै। और शूद्र जाति का छुल्लक है, सो गृहस्थ के भोजन-स्थान में नहीं जाय। क्योंकि याका कुल, हीन है। तातैं ये धर्मात्मा, संसार से उदासीन, व्रत का धारी,

धर्म-मर्यादा का जाननहारा, पुण्य-फल का लोभी, परभव के सुधारवे की है अभिलाषा जाकैं, परम्पराय मोक्ष का इच्छुक, जन्म-मरण तैं भयभीत भया है चित्त जाका, ऐसा सौम्य स्वभावी, धर्म मूर्ति, मार्दव-धर्म का साधनेहारा, यह नीच कुली श्रावक; अपना नीच कुल प्रगट करवे कूं, एक लोहे का पात्र भोजन करवे कूं, अपने पास राखै। जब कोई धर्मात्मा श्रावक, इस छुल्लक कौं भोजन निमित्त अपने घर ल्यावै। तब यह शूद्र कुली धर्मात्मा, याके संग तहां तांई जाय, जहां तांई काहू का अटक नहीं होय। पीछे चौक में खड़ा होय रहै। तब श्रावक इनकूं उत्तम जानि, आगे बुलावै। तब यह धर्मी चौक में ही तिष्ठै, अरु लोह का पात्र दिखावै। तब लोह के पात्र कूं देख कैं दाता जानै, जो यह शूद्र जाति है। तातैं यह धर्मात्मा, ऊंचे नहीं आया। तब दाता श्रावक, इस छुल्लक कूं, भले आदर तैं, विनय सहित, अनुमोदना करता, हर्ष सहित भोजन देय। सो उस बाखर (घर)में च्यार, दो, एक घर श्रावकन के होंय, तौ थोड़ा-थोड़ा सर्व घर तैं भोजन लेय। नाहीं होंय, तौ दोय घर का, एक घर का भोजन करै। अपना कुल छिपावै नाहीं। यह उत्तम व्रत का धारी श्रावक है। ऐसे ऊंच कुल तथा स्पर्श नीच कुल दोय ही कुल, में यह श्रावक पद होय है॥ २॥ और ऐलक पद ऊंच कुली कूं ही होय है। यह उत्कृष्ट श्रावक पद है। ऐसे सातवीं प्रतिमा तैं लगाय, ग्यारहवीं पर्यन्त भेद कहे। सो ये त्याग-ब्रह्म के भेद जानना। जैसा-जैसा त्याग, जिस-जिस स्थान पै भया, सो-सो नाम पाया। सो श्रावक के उत्कृष्ट त्याग की हद, ऐलक लँगोट-

मात्र परिग्रह धारी की है। याके आगे श्रावक-भेद नाहीं। इस के पीछे, मुनि का ही पद है। तातैं सातवीं प्रतिमा तैं लगाय, ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यन्त श्रावक कों, ब्रह्मचर्य पदवी है। पीछे लँगोटी-परिग्रह परिहार भये, यती का पद होय है॥ तातैं भरत-क्षेत्र का इन्द्र, भरत-नाथ; आदिनाथ का बड़ा पुत्र, भरत चक्री; महा धर्मात्मा, ताने परम्पराय धर्म-मर्याद चलायवे कूं स्थापे ऐसे ब्रह्म भेद, सो कुल-ब्रह्म कहिये। या अवसर्पिणीकाल के आदि, नव कोड़ा-कोड़ी सागर काल पर्यन्त तौ भोग-भूमि वर्ती। तहां वर्ण भेद-नाहीं, सर्व एक से। पीछे चौदहवें कुलकर नाभिराजा भए। तिनके कुल-मण्डन, श्री आदिनाथ पुत्र भये। सो इनने सर्व कर्म-भूमि का उपदेश दिया। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तीन वर्ण स्थाप, संसारी-मार्ग बताया। अरु इनके पुत्र भरत ने, धर्म की प्रवृत्ति चलावे कूं, ब्राह्मण-कुल थाप्या। सो च्यारि वर्ण जानना। अब काल-दोष तैं, सर्व कुलन का आचार, हीन भया। तातैं ब्रह्म-क्रिया, दया-विना भई। जीव अनेक क्रिया रूप भये। परन्तु कुल-भेद नहीं गया। अनेक प्रकार आचार होय, तौ भी कुल-ब्रह्म कह्या। सो जग में प्रगट ही है।१। और कुल तौ कैसा ही होय, अरु क्रिया-आचार जाका दया सहित, उत्तम शीलादिक गुण सहित होय। सो क्रिया-ब्रह्म कहिये।२। और स्त्री आदि परिग्रह का त्यागी होय, सो त्याग-ब्रह्म कहिये।३। और चैतन्य गुण सहित, अमूर्ति, जीव पदार्थ, सो स्वभाव-ब्रह्म है।४। ये च्यारि भेद, ब्रह्म के कहे। सो विवेकी उत्तम पुरुषन कूं, सब का रहस्य धारण करना योग्य है। इति श्री सुदृष्टि तरं-

गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अष्टमी प्रतिमा तैं लगाय, ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यन्त, कथन वर्णनो नाम, अड़तीसवाँ पर्व सम्पूर्णम् ॥ ३८ ॥

ऐसे यह श्रावक-धर्म कह्या। और मुनि धर्म के अष्टाविंशति (२८) मूल गुण हैं। ताका स्वरूप ऊपर कह आये। सो यह मुनि-श्रावक का धर्म, परम्पराय मोक्ष-फल प्रगट करै है। याका तुरन्त फल तो देव–लोक की विभूति सहित, नाना-प्रकार इन्द्रिय-जनित भोग हैं। जाकों जेता काल संसार में रहना होय, सो जीव श्रावक-धर्म तैं मनुष्य-देवन के सुख पावै। पीछे भव-स्थिति पूर्ण भये, मुनि-धर्म का साधन कर, मोक्षपद पावै है। तातें जो कोई भव्य कूं, इन्द्रिय-सुख का लोभ होय। सो इस श्रावक-धर्म का साधन करौ। और जे भव्य, निकट संसारी, अतीन्द्रिय सुख चाहैं। सो मुनि-धर्म आदरौ। ऐसा यह मुनि-श्रावक का धर्म, भव्य-जीवन कूं सदा-काल, मंगलकारी होऊ। यह सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ है। सो या विषैं प्रथम तो गेय-हेय-उपादेय का कथन है। सो विवेकी अपना हित जानि, हेय-गेय-उपादेय करौ। और केताक कथन या विषैं, विवेक की वृद्धि के निमित्त उपदेश रूप है। ताके रहस्य कौं जानि, धर्मात्मा अपना कल्याण करौ। अब यहां इस ग्रन्थ का करता, जैन-शास्त्र के अर्थ कूं अगाधि जानि, अपनी बुद्धि सामान्यता रूप, जानता भया। जो यह जिन-वचन का अर्थ तौ, अपार है। याके सम्पूर्ण व्याख्यान करवे कौं, गणधर-देव भी समर्थ नाहीं। तो हमसे किंचित् बुद्धि-धन के धारीन तैं, सर्व अर्थ कैसे कह्या जाय? ऐसा जानि,

इस ग्रन्थ के पूरण करवे की है अभिलाषा जाकैं। सो अन्त में मंगल होने के निमित्त, महान् पुरुषन के नाम; जिनके कुल-सुमरण होवे करि, मंगल होय है। सो ऐसे तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका पुरुषन के नाम, पुण्य के कारण हैं। तातैं यहां प्रथम चौबीस तीर्थंकर, तिनके नाम कहिये हैं—ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मनाथ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर स्वामी। ये चौबीस तीर्थंकर-जिन, अवसर्पिणी काल के तीर्थ हैं॥ आगे चौबीस-जिन के पिता के नाम—नाभिराजा, जितशत्रु, जयतार, सुवीर, मेघ, धरण, सुप्रतिष्ठित, महासेन, सुग्रीव, दृढ़रथ, विमल, वासुदेव, जयति धर्म, सिद्धसेन, भानु, विश्वसेन, सूर्य, सुन्दरसेन, कुंभ, यशोमति, विजयरथ, समुद्रविजय, अश्वसेन, और सिद्धारथ राजा। ये चौबीस, प्रजा के प्रतिपालक, महान राजेन्द्र भये। सो तीर्थंकर रूपी दिनकर (सूर्य) के उदय करवे कौं, उदयाचल पर्वत समान जानना। इति जिन पिता॥ अब जिन माता का नाम—मरुदेवी, विजयादेवी, श्रीषेणादेवी, सिद्धार्थादेवी, मंगलादेवी, सुसीमादेवी, पृथ्वीदेवी, सुलक्षणादेवी, रामादेवी, सुनन्दादेवी, विमलादेवी, जयादेवी, रामादेवी, सूर्यादेवी, सुव्रतादेवी, एलादेवी, श्रीमतीदेवी, सुमित्रादेवी, सरस्वतीदेवी, वामादेवी, विमलादेवी, शिवादेवी, वामादेवी और त्रिशलादेवी, ये चौबीस महादेवी, परम—पवित्र जगत-गुरु की माता सो

जगत की माता, परम सती, भगवान् रूपी सूर्य के जन्म देवे कूं पूरव दिशा समान, तिनके नाम भव्यन कों मंगल करो। ये माता, जगतपति भगवान् रूपी रत्न के उप-जायवे कूं, रतन-खानि हैं। ये चौवीस जिन की माता के नाम की माला कही ॥ आगे चौवीस जिनकी काय की ऊंचाई कहिये हैं-पांच सौ धनुष, साढ़े चार सौ, चार सौ, साढ़े तीन सौ, तीन सौ, ढाई सौ, दोय सौ, डेढ़ सौ, एक सौ, नव्वे, अस्सी, सत्तरि, साठ, पचास, पैंतालीस, चालीस, पैंतीस, तीस, पचीस, बीस, पन्दह धनुष, दश धनुष, नव हाथ और सात हाथ। ये चौवीस जिन के शरीर की उंचाई अनुक्रम तें कही ॥ अब चौवीस-जिन के प्रतिबिंब पहिचानवे कों चिन्ह कहिये हैं-आदि नाथ का बैल का चिन्ह। और जिनों का अनुक्रम तें कहिये हैं-हस्ती, घोटक, कपि(बन्दर), कोक(चकवा), लाल कमल, सांथिया, चन्द्रमा, मगर, कल्प वृक्ष, गेंडा, महिष, सूकर, सेही, वज्रदंड, हिरण, बकरा, मछली, स्वर्ण कलश, कछुवा, कनक कमल, शङ्ख, सर्प और सिंह। ये चौवीस जिन के चिन्ह कहे। सो एक हजार आठ चिन्ह, सर्व शरीर-अंगोपांग में यथा-योग्य स्थान पर होय हैं। अरु ये चिन्ह जो प्रतिबिम्ब के सिंहासन में लिखिये हैं। सो भगवान् के दाहने चरण विषें जानना। जैसे आदि देव के चरण में वृषभ का चिन्ह है। तैसे ही सर्व जिन के पांवन में जानना। इति जिन-चिन्ह ॥ आगे चौवीस जिन के शरीर का वर्ण कहिये है-तहां चन्द्रप्रभु अरु पुष्पदंत ये दोय जिन, शुक्ल वर्ण भये। अरु मुनिसुव्रत स्वामी, अंजन-गिरि समान

श्याम वर्ण हैं। और नेमिनाथ जिन, मोर कंठ समान हरित तन धारी हैं। और पद्मप्रभु, रक्त-कमल समान तन धारी हैं। और बारहवें वासुपूज्य जिन, केसू के फूल समान तन धारी है। और सातवें सुपार्श्वनाथ जिन की काय, वैडूर्य मणि समान, हरित वर्ण है। और पार्श्वनाथ-जिन की काय, सजल मेघ घटा समान, श्याम वर्ण है। और बाकी षोड़स जिन के शरीर, ताये स्वर्ण समान वर्ण के हैं। ये चौबीस-जिन के तन का वर्ण कह्या॥ अब आगे ये जिन, पूर्व-भव में जो मनुष्य थे। सो वह नाम कहिये हैं। वृषभदेव पूरव-भव में वज्रनाभि चक्रवर्ती थे। और शेष-जिन के पूर्व-भव के नाम, क्रम करि कहिये हैं-विमल राजा, विमल वाहन, महाबल भूप, अतिबल, अपराजित, नंदसेन राजा, पद्म, महापद्म, पद्म गुल्म, नील गुल्म, पद्मोत्तर, पद्मासन, पद्म, दशरथ, मेघरथ, सिंह रथ, धनपति, वैश्रवण, श्रीधर्म, सिद्धारथ, सुप्रतिष्ठित, आनन्दराय और अंतिम जिन महावीर स्वामी, पूर्व-भव में नन्द राजा थे। ये सर्व राजों में, आदि देव का जीव तो चक्री था। और तेवीस महा—मण्डलेश्वर राजा थे। पीछे केतेक दिन राज्य करि, संसार तैं विरक्त भये। सो राज्य तज—तज, दीक्षा धरी। सो जिन पै दीक्षा धरी, ऐसे चौबीस-जिन के पूर्वभव के दीक्षा गुरु, तिन आचार्यन के नाम क्रमतैं कहिये है-वज्रनाभि चक्री ने, वज्रसेन आचार्य तैं दीक्षा लई। विमल राजा के गुरु अरिंदमन नाम आचार्य, स्वयंप्रभु मुनि, विमल वाहन यती, श्रीमन्दिर गुरु, पिहिताश्रव यती, अरिंदय यती, युगमंधर ऋषीश्वर, सर्व जनानन्द ऋषि, उभयानंद योगी, वज्रदंत योगीश्वर, वज्रनाभि, सर्व गुप्त वीतराग,

त्रिगुप्त तपस्वी, चिंतारक्षक गुरु, विमल वाहन गुरु देव, धनरथ मुनि, संवर जती, वरधर्म ऋषि, सुनन्द गुरु, आनन्द योगी, वीत शोक आचार्य, दामर नाम मुनि और प्रोष्ठल यती। ये चौबीस यतीश्वर, जगत पूज्य हैं। इन के पास, चौबीस जिन के जीव ने, पूर्वभव में दीक्षा धरी थी। सो ये सर्व यती, जगत् कर पूज्य हैं। इति चौबीस जिन के पूर्वभव के नाम, अरु पूर्वभव में जिन के पास दीक्षा धारी, तिन गुरुन के नाम कहे॥ आगे मुनि होय, कौन–कौन, किस–किस स्वर्ग गये। अरु तहां तैं चय, तीर्थंकर भये। तिम स्थान के नाम कहिये हैं–आदिनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थनाथ, ये च्यार-जिन तौ, सर्वार्थ सिद्धि तैं आये हैं। अरु अजितनाथ, अभिनंदन स्वामी, ये दोय; विजय विमान तैं आए। और चन्द्रप्रभु अरु सुमतिनाथ ये दोय जिन, वैजयंत विमान तैं आये। अरु नेमिनाथ अरहनाथ ये दोय जिन, जयंत विमान तैं आये। अरु नमिनाथ अरु मल्लिनाथ ये दोय-जिन, अपराजित विमान तैं आए। ये तौ पंच अनुत्तरन के कहे। अरु पुष्पदंत, आरण नाम पन्द्रहवें स्वर्ग तैं आए। अरु शीतलनाथ, अच्युत स्वर्ग तैं आये। अरु श्रेयांस नाथ, अनन्त नाथ अरु महावीर, ये तीन जिन, बारहवें स्वर्ग तैं आए। अरु विमलनाथ, पार्श्वनाथ, मुनिसुव्रत, संभवनाथ, सुपार्श्वनाथ, पद्मप्रभु ये छह जिन, ग्रैवेयक तैं आये। अरु वासुपूज्य स्वामी, महाशुक्र नामा दशवें स्वर्ग तैं आए। ऐसे चौबीस-जिन जहां तैं आये, सो स्थान कहे॥ आगे चौबीस-जिन की, जन्मपुरी के नाम अनुक्रम तैं कहिये है–अयोध्या पुरी, अयोध्या पुरी, श्रावस्तीपुरी,

अयोध्या पुरी, अयोध्या पुरी, कौशांबी पुरी, काशी पुरी, चन्द्र पुरी, किष्किंधा पुरी, भद्रशाल पुरी, सिंह पुरी, चम्पा पुरी, कंपिला, अयोध्या पुरी, रतन पुरी, हस्तिना पुरी, हस्तिना पुरी, हस्तिना पुरी, मिथिला पुरी, कुशाग्र पुर, मथुरा पुरी, शौर्य पुर, वाणारसी, और कुण्डलपर। इति जन्म नगरी॥ आगे जन्म के नक्षत्र, अनुक्रम तैं बताईये हैं-उत्तराषाढ़ा में वृषभ का जन्म, रोहणी, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, शतभिषा, उत्तरा-भाद्रपदा, रेवती, पुष्य, भरणी, कृतिका, रोहणी, अश्विनी, श्रवण, अश्विनी, चित्रा, विशाखा, और उत्तरा फाल्गुणी। इति जन्म नक्षत्र॥ आगे जिन वृक्षन के नीचे दीक्षा लई, तिनके नाम—वृषभदेव का दीक्षा वृक्ष, वट। औरन के क्रम से सपृच्छद, शाल, सरल, प्रयंगु, प्रयंगु, सिरीष वृक्ष, नाग, सालिष, शाल, बिन्दुक, जयप्रिय, जंबु, पीपल, दधिपर्ण, नन्द, तिलक, आम्र, अशोक, चंपक, मौलश्री, मेषपर्ण, भव, अरु शाल। ये चौबीस—जिन के दीक्षा-वृक्ष कहे। इनके नीचे, दीक्षा धारी। आगे निर्वाण होने के नक्षत्र, कहिये हैं—तहां सुपार्श्वनाथ का निर्वाण नक्षत्र, अनुराधा। चन्द्रप्रभु का निर्वाण नक्षत्र ज्येष्ठा। वासुपूज्य का निर्वाण नक्षत्र, अश्विनी। विमलनाथ का निर्वाण नक्षत्र, भरणी। महावीर स्वामी का निर्वाण नक्षत्र, स्वाती है। ये पांच जिन के निर्वाण नक्षत्र कहे। औरन के निर्वाण नक्षत्र अरु जन्म नक्षत्र, एक ही जानना। ऐसे निर्वाण नक्षत्र कहे॥ इन चौबीस—जिन में तैं शान्तिनाथ, कुंथनाथ और अरहनाथ ये तीन जिन तो षट्खंडनाथ चक्री भये। और सर्व तीर्थंकर महा—मण्डलेश्वर भये। तथा दीक्षा

धारि, निर्वाण गये। वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर ये पांच जिन तौ, कुमार अवस्था में, बाल-ब्रह्मचारी ही दिगम्बर भये। व्याह नाहीं किया। अरु राज्य भी नाहीं किया। पिता के जीवित, कुंवारे ही मुनि भये। और सर्व जिनराज, भोग्य-संपदा भोग, यतिपति भये। सो वृषभ का तप कल्याणक, विनीता पुरी विषैं। और नेमिनाथ का तप कल्याणक, द्वारका पुरी विषैं। और सर्व का तप कल्याणक, अपनी-अपनी जन्म-नगरी में भया। सो मल्लिनाथ अरु पार्श्वनाथ ये दोऊ जिन तौ तप लिये पीछे, तेले-तेले का नियम करते भये। और वासुपूज्य स्वामी, एकांतर उपवास धारते भये। और सर्व-जिन ने वेले-वेले पारणा किया। सो श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ, मल्लिनाथ ये तीन जिन तौ पूर्वान्ह समय दीक्षा धारते भये। और सर्व जिन अपरान्ह कहिये सन्ध्या समय, दीक्षा धारते भये। इति चौबीस जिन के निर्वाण-नक्षत्रादि का कथन॥ आगे चौबीस जिनके दीक्षा के वन कहिये हैं-ऋषभनाथ तौ सिद्धारथ वन विषैं, दिगम्बर भये। और महावीर ज्ञानवन विषैं, यती भये। और वासुपूज्य ने क्रीड़ोद्यान न वन विषैं, मुनि-पद धरा। और धर्मनाथ वप्रका नाम वन विषैं, यती भये। और पार्श्वनाथ ने मनोरमा नाम उद्यान विषैं, परिग्रह तजा। और मुनिसुव्रत जिन, नील गुफा के निकट, निर्ग्रन्थ भये। और सर्व जिन अपने-अपने नगर के निकट, आम्र-वन विषैं योगीश्वर भये। इति तप वन॥ आगे चौबीस-जिन के तप कल्याणक विषैं, गमन समय की पालकी, तिनके नाम कहिये है-तहां

वृषभदेव की पालकी का नाम सुदर्शना। आगे अनुक्रम तैं जानना—सिद्धार्था, कमलाभा, अर्थ-सिद्धा, अभयकरी, निर्वृत्तिकरी, मनोरमा, मनोहरा, सूर्य्यप्रभा, शुक्रप्रभा, विमलप्रभा, पुष्पप्रभा, देवदत्ता, सागरदत्ता, नागदत्ता, सिद्धार्थका, विजया, वैजयंति, जयंति, अपराजिता, उत्तर-कुरु, देव-कुरु, विमलाभा और चन्द्राभा। ये चौबीस-जिन के, तप समय की पालकी, इन्द्रों कृत कहीं। आगे चौबीस-जिन की, दीक्षा की तिथि, क्रमशः कहिये हैं—चैत्र वदी ९, माघ सुदी ९, मार्गशीर्ष सुदी १५, माघ सुदी १२, वैशाख सुदी ९, कार्त्तिक वदी १३, जेठ सुदी १२, पौष वदी १, मार्गशीर्ष सुदी १, माघ वदी १२, फाल्गुण वदी १३, फाल्गुण वदी १४, माघ सुदी ४, जेठ वदी १२, माघ सुदी १३, ज्येष्ठ वदी १३, वैशाख सुदी १, मार्गशीर्ष सुदी १०, मार्गशीर्ष सुदी ११, वैशाख वदी ९, अषाढ़ वदी १०, श्रावण वदी ४, पौष वदी ११, और मार्गशीर्ष वदी १०। ये चौबीस-जिन के तप-दिन जानना। आगे चौबीस-जिन के केवलज्ञान के दिन अनुक्रम तैं कहिये है—फाल्गुण वदी ११, पौष सुदी ११, कार्त्तिक वदी ४, पौष सुदी १४, चैत्र सुदी १४, चैत्र सुदी १५, फाल्गुण वदी ६, फाल्गुण वदी ७, कार्त्तिक वदी १४, पौष वदी १४, माघ वदी अमावस्या, माघ सुदी २, माघ सुदी ६, चैत्र वदी ३०, पौष सुदी १५, पौष सुदी १०, चैत्र सुदी ३, कार्त्तिक सुदी १२, पौष वदी २, वैशाख वदी ९, मार्गशीर्ष वदी ११, आसोज सुदी १, चैत्र वदी अमावास्या, और वैशाख सुदी १०। ये चौबीस-जिन के केवलज्ञान की तिथि कहीं॥ आगे चौबीस-जिन के

निर्वाण दिन, अनुक्रम तैं कहिये है—माघ वदी १४, चैत्र सुदी ५, चैत्र सुदी ६, वैशाख सुदी ६, चैत्र सुदी ११, फाल्गुण वदी ४, फाल्गुण वदी २, फाल्गुण वदी ७, भादौं वदी ८, आसोज सुदी ८, श्रावण सुदी पूर्णिमा, भाद्रपद सुदी १४, अषाढ़ वदी ८, चैत्र वदी अमावस्या, जेठ वदी ४, ज्येष्ठ वदी १४, वैशाख सुदी १, चैत्र वदी अमावस्या, फाल्गुण सुदी ५, फाल्गुण सुदी १२, वैशाख सुदी १४, अषाढ़ सुदी ८, श्रावण सुदी ७, और कार्त्तिक वदी अमावस्या। ये चौवीस-जिन के निर्वाण-दिन कहे ॥ आगे गर्भ-दिन कहिये है। तप, ज्ञान, निर्वाण ये तीन कल्याणक तौ वीतराग दशा के कहे। आगे दोय कल्याणक, सराग—अवस्था के हैं। सो ये गर्भ-कल्याणक तौ परोक्ष—सराग उत्सव है। और जिनराज का जन्म का प्रत्यक्ष-सराग पुण्य अतिशय है। सो प्रथम जिनराज के गर्भ—कल्याणक के परोक्ष—उत्सव के दिन, क्रम तैं कहिये है—अषाढ़ वदी २, जेठ वदी अमावस्या, फाल्गुण वदो ८, वैशाख सुदी ६, श्रावण सुदी २, माघ वदी ६, भादव सुदी ६, चैत्र वदी ५, फाल्गुण वदी ६, चैत्र वदी ८, जेठ वदी ६, अषाढ़ वदी ६, ज्येष्ठ वदी १०, कार्त्तिक वदी १, वैशाख वदी १३, भाद्रपद सुदी ७, श्रावण वदी १०, फाल्गुन सुदी ३, चैत्र सुदी १, श्रावण वदी २, आसोज वदी २, कार्त्तिक सुदी ६, वैशाख वदी २, और अषाढ़ सुदी २। इति गर्भ-दिन ॥ आगे जन्म-दिन क्रम तैं कहिये है—चैत्र वदी ६, माघ सुदी १०, माघ सुदी १२, कार्तिक सुदी १५, चैत्र सुदी ११, कार्तिक वदी १३, जेठ वदी १२, पोष वदी ११, मार्गशीर्ष सुदी १, माघ

वदी १२, फाल्गुण वदी ११, फाल्गुन वदी १४, माघ सुदी १४, जेठ वदी १२, माघ सुदी १३, जेठ वदी १४, वैशाख सुदी १, मार्गशीर्ष सुदी १४, मार्गशीर्ष सुदी ११, वैशाख सुदी १०, अषाढ़ वदी १०, श्रावण सुदी ६, पौष वदी ११, और चैत्र सुदी १३। ये चौबीस-जिन के जन्म-दिन कहे ॥ आगे चौबीस-जिन के पारणा का अन्तर कहिये है—आदिनाथ स्वामी ने तो एक वर्ष पीछे पारणा किया। सो इक्षु-रस का भोजन किया। अरु मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ, इन दोय जिन का, तेले पारणा भया। सो गाय के दूध की खीर खाय, पारणा किया। और वासुपूज्य स्वामी ने, एकान्तर पारणा किया। सो गाय के दूध की खीर खाय, पारणा किया। और सर्व जिन-देवन का बेले पारणा भया। सो भी सब गाय के दूध की खीर खाय, पारणा किया। इति पारणा प्रमाण ॥ आगे चौबीस-जिन के प्रथम पारणे की नगरी के नाम, अरु तिन नगरन के राजा—प्रथम दानेश्वर, तिनके नाम अनुक्रम तैं कहिये हैं—हस्तिनापुर विषैं, श्रेयांस राजा। अयोध्यापुरी विषैं, ब्रह्मदत्त नाम राजा। श्रावस्तीपुरी विषैं, सुरेंद्रदत्त राजा। विनीता नगरी विषैं, राजा इंद्रदत्त। विजयपुर विषैं, राजा पदम। मंगलापुर विषैं, राजा सोमदत्त। पाटली खण्ड विषैं, राजा महादत्त। पदमखण्डपुर विषैं, राजा सोमदेव। श्वेत नगरी विषैं, राजा पहुप। अरिष्टपुर विषैं, राजा पुनर्वसु। इष्टपुर विषैं, राजा सुनंद। सिद्धारथपुर विषैं, जयराजा। महापुर विषैं, राजा विशाख। ध्यानपुर विषैं, राजा धर्म-वर्धन। वर्धमानपुर विषैं, राजा सुमति। सोमनपुर विषैं, राजा धर्ममित्र। मन्दिरपुर विषैं,

राजा अपराजित। हस्तिनापुर विषैं, राजा नन्दषेण। चक्रपुर विषैं, राजा वृषभदत्त। मथुरापुर विषैं, राजा दत्त। राजगृहपुर विषैं, राजा संजय। द्वारापुरी विषैं, राजा वरदत्त। काम्यांकृतपुर विषैं, धन्य राजा। और कुंडलपुर विषैं, राजा वकुल। ये चौबीस-जिन के, प्रथम पारणा के पुर, अरु दानेश्वर राजा कहे। इन सर्व के घर पञ्चाश्चर्य भये। अरु ये चौबीस प्रथम दानेश्वर, महा भाग्य राजा, तिनके शरीर का वर्ण कहिये है- सो आदि के श्रेयांस राजा, अरु ब्रह्मदत्त राजा, ये दोय तौ श्याम शरीर धारी, महा सुन्दर भये। और सर्व बाईस जिनराज के दान देनेहारे भूपन का शरीर, ताये स्वर्ण समान जानना। इनमें से कोई तौ मोक्ष गये, कोई कल्पवासी होय कैं तथा चय कैं, मोक्ष जांयगे। ऐसा कथन बड़े हरिवंश पुराण के कर्त्ता, श्रीजिनसेनाचार्य ने कह्या है। कहीं-कहीं शास्त्र विषैं ऐसा भी कह्या है, जो प्रथम दानेश्वर मोक्ष ही जांय हैं। सो विशेष पाठान्तर भेद, यथावत् जो केवलज्ञान में भाष्या होय, सो प्रमाण है। इति प्रथम दानेश्वर राजान के नाम, अरु तहां प्रथम पारणा की पुरी कहीं॥ आगे चौबीस-जिन कूं केतेक-केतेक उपवास पीछे केवलज्ञान भया। सो कहिये है-तहां वृषभ देव, मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ इन तीन जिन कूं तेला व्यतीत भये, केवलज्ञान प्रकट्या। और वासुपूज्य को एक उपवास पूर्ण भये, केवलज्ञान सूर्य उत्पन्न भया। और सर्व जिन कूं बेला व्यतीत भये, केवलज्ञान भया। इति केवलज्ञान के पूर्व के उपवास॥ आगे चौबीस-जिन के केवलज्ञान उपजने के क्षेत्र कहिये है-

तहां वृषभदेव का केवल-कल्याणक तौ पुरी मिताल नाम नगरी के निकट, सकटामुख, नाम बन विषैं भया। और नेमिनाथ का गिरनार जी विषैं, और पार्श्वनाथ का काशी के निकट, और महावीर जी का रज्जुकूटा नदी के तट। और बाकी सर्व जिन के केवल-कल्याणक, मनोहर वन विषैं भये। सो वृषभनाथ, श्रेयांसजिन, मल्लिनाथ, नेमनाथ, पार्श्वनाथ, इन पांच जिन कूं तो केवलज्ञान, प्रभात समय भया। और सर्व कूं, दिन के पिछले पहर में केवलज्ञान भया। इति केवलज्ञान के स्थान ॥ आगे निर्वाण होने का काल कहैं हैं—तहां वृषभनाथ, अजितनाथ, श्रेयांसजिन, शीतलजिन, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, इन जिन कौं तो दिन के प्रथम पहर में मोक्ष भयी। अरु संभवनाथ, पद्मनाथ, पुष्पदंत ये जिन, दिन के पिछले पहर में, मोक्ष गये। वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, शीतलनाथ, कुंथनाथ, मल्लिनाथ मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, इनकी मुक्ति रात्रि-समय भयी। और धर्मनाथ, अरहनाथ, नमिनाथ, महावीर इनकी मुक्ति, सूर्य्य के उदयकाल समय, प्रभात ही भयी। इति चौबीस-जिन के मुक्ति समय ॥ आगे चौबीस-जिन के मोक्ष—गमन आसन कहिये है—तहां वृषभनाथ, वासुपूज्य, नमिनाथ, ये तीन जिन तौ पद्मासन से मोक्ष गये। और सर्व जिन, कायोत्सर्ग आसन तें सिद्ध-लोक गये। इति मोक्ष—गमन के आसन ॥ आगे चौबीस-जिन का समोशरण विघटना, अरु वाणी (दिव्यध्वनि) नहीं खिरना, ताका प्रमाण कहिये है—तहां आदि-जिन के, अरु-अंत जिन

के, इन दोय जिन के तौ मोक्ष जाने के जब चार दिन रहे, तब समोशरण विघट्या। अरु वाणी नहीं खिरी। और सर्व जिन के एक महिना पहिले, समोशरण विघट्या। अरु दिव्य-ध्वनि नहीं खिरी॥ आगे चौबीस-जिन के संग केते—केते यती मोक्ष भये, तिनका प्रमाण कहिये है—महावीर के संग, ३६ मुनि मोक्ष गये। और पार्श्वनाथ की लार, ५३६ मुनि मुक्ति पहुंचे। और नेमनाथ के संग, ५३६ ऋषीश्वर मोक्ष गये। और मल्लिनाथ के साथ, ५०० यती मोक्ष भये। और शांतिनाथ के संग, ९०० योगीश्वर मोक्ष गये। और धर्मनाथ की लार (संग), ८०१ तपोधन मोक्ष भये। विमलनाथ के लार, ६६१२ आचार्य मोक्ष भये। अनंतनाथ के संग, ५५०७ निर्ग्रंथ, निरंजन भये। और पद्मप्रभु के साथ, ३८०० दिगम्बर भये, अरु सिद्ध-लोक गये। और वृषभदेव के लार, १०००० गुरुनाथ अमूर्ति भये। और बाकी सर्व तीर्थंकरों के साथ, एक—एक हजार मुनि मोक्ष गये। इति॥ आगे बारह चक्रवर्ती के नाम—तहां प्रथम चक्रवर्ती भरत, सो आदिनाथ के समय भये। आगे दूसरा सगर नाम षट्-खण्डी, सो अजितनाथ के समय भया। और तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा सनत्कुमार चक्री, ये धर्मनाथ-जिन के मोक्ष भये पीछे, अरु शांति के पहिले, अन्तराल में भये। शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ ये तीन जिन, अपने—अपने समय में, आपही चक्री भये। और अरह के मोक्ष गये पीछे, अरु मल्लिनाथ के पहिले, इस अतंराल में, आठवां सुभूमि नाम चक्री भया। और मल्लिनाथ के पीछे, अरु मुनिसुव्रत के पहिले, अतंराल में, नववां महापद्म नाम चक्री भया।

अरु मुनिसुव्रत के पीछे, अरु नमिनाथ के पहिले, दशवें हरिषेण नाम चक्री भये । नमिनाथ के पीछे, अरु नेमनाथ के पहिले, ग्यारहवें जयसेन नाम चक्री भये । और नेमनाथ के पीछे, अरु पार्श्वनाथ के पहिले, बारहवें ब्रह्मदत्त नाम चक्री भये । इति चक्रवर्ती नाम ॥ आगे इन चक्रीन की गति—गमन कहिये है—तहां आठवां सुभूमि अरु बारहवां ब्रह्मदत्त ये दोय तौ, सप्तम नरक सिधारे । अरु तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा संनत्कुमार चक्री, ये दोय; तीसरे स्वर्ग गये । अरु बाकी आठ चक्री, आठ—कर्म नाश कर, अष्टम भूमि (मोक्ष) विषैं, सिद्ध पद पाय विराजे । इति चक्री गति ॥ आगे नव नारायण के नाम, तथा किनके समय भये, सो कहिये है—तहां पहिला त्रिपृष्ट नाम नारायण तौ, श्रेयांसनाथ के समय में भया ॥१॥ और दूसरा द्विपृष्ट नारायण, वासुपूज्य-जिन के समय में भया ॥२॥ तीसरा स्वयंभू नाम नारायण, विमलनाथ के समय में भया ॥ ३ ॥ और चौथा पुरुषोत्तम नारायण, अनन्तनाथ के समय भया ॥ ४ ॥ और पांचवा पुरुषसिंह नारायण, धर्मनाथ के समय भया ॥५॥ और छट्ठा पुण्डरीक नारायण, अरह के पीछे अरु मल्लिनाथ के पहिले, अन्तराल में भया ॥६॥ और मल्लि के पीछे, अरु मुनिसुव्रत के पहिले, इस अंतराल में, सातवां दत्त नाम नारायण भया ॥ ७ ॥ मुनिसुव्रत के पीछे, अरु नमि के पहिले, आठवां लक्ष्मण नाम नारायण भया ॥ ८ ॥ और नववें नारायण कृष्ण देव भये, सो नेमिनाथ के समय भये ॥ ९ ॥ ये नव नारायण के नाम कहे । सो इनमें पहिला त्रिपिष्ट,

दूसरा द्विपृष्ट, तीसरा स्वयंभू, चौथा पुरुषोत्तम, पांचवां पुरुषसिंह, छठा पुण्डरीक, ये षट् तो षट्वीं मघवी नाम पृथ्वी के धाम पधारे। और सातवां दत्त, आठवां और नववां, ये मेघा पृथ्वी में गये। ये नव ही नारायण, तीन खण्ड के नाथ, महा विभूति सहित, देव–विद्याधर–भूमिगोचरी–बड़े–बड़े राजान् करि वन्दनीक, प्रजा के प्रतिपालक हैं। इनके राज्य में अन्याय नाहीं। लोकन कों दारिद्र नाहीं। सर्व सुखी होय हैं। ये नारायण, परम्पराय ज्योतिस्वरूप होंयगे। इति नारायण नाम॥ आगे बलभद्रन के नाम कहिये हैं–तहां प्रथम बलदेव अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दमित्र, रामचन्द्र, और पद्म। ये नव बलभद्र हैं। सो नारायण के बड़े भाई जानना। इति बलभद्र नाम॥ आगे नारायण के प्रतिपक्षी (प्रति नारायण)-केशव के नाम कहिये हैं–तहां प्रथम अश्वग्रीव, तारक, मेरुक, मधु-कैटभ, निशुंभ, बलि, प्रह्लाद, रावण, और जरासिंधु। तिनमें आठ तौ विद्याधरन में भये। अरु जरासिंधु, भूमिगोचरी भये। इति प्रतिनारायण नाम॥ आगे बलभद्र की गति–गमन कहिये है–तहां विजय, अचल, भद्र, सुभद्र, सुदर्शन, आनंद, नन्दमित्र, और रामचंद्र, ये आठ बलदेव तौ आठ कर्म नाशकरि, सिद्ध भये। और नववां पद्म बलदेव, सो दिगम्बर व्रत धारि, पंचम स्वर्ग विषैं, महा ऋद्धिधारी देव भया। तहां तैं चय, मोक्ष होंयगे। तथा कृष्ण महाराज तीर्थंकर का अवतार धारेंगे। और अनेक जीवन कौं धर्मोपदेश देय, सुमार्ग लगाय, आप परमधाम कौं पावेंगे। अब तांईं अवतार धारया, अब अवतार नाहीं धारेंगे। इति बलभद्र गति॥ आगे

चौबीस-जिन की आयु का प्रमाण, अनुक्रम करि कहिये है—चौरासी लाख पूर्व, बहत्तरि लाख पूर्व, साठ लाख पूर्व, पचास लाख पूर्व, चालीस लाख पूर्व, तीस लाख पूर्व, बीस लाख पूर्व, दस लाख पूर्व, दोय लाख पूर्व, एक लाख पूर्व, चौरासी लाख वर्ष, बहत्तरि लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, तीस लाख वर्ष, दस लाख वर्ष, एक लाख वर्ष, पंचानवै हजार वर्ष, चौरासी हजार वर्ष, पचपन हजार वर्ष, तीस हजार वर्ष, दस हजार वर्ष, एक हजार वर्ष, सौ वर्ष, और बहत्तरि वर्ष। ये चौबीस-जिन, जगत—मंगल करैं। इति चौबीस-जिन की आयु॥ आगे चक्रवर्तिन की आयु कहिये है-प्रथम की चौरासी लाख पूर्व, दूसरे की बहत्तरि लाख पूर्व, तीजे की पांच लाख वर्ष, चौथे की तीन लाख वर्ष, पांचवें की एक लाख वर्ष, छट्टे की पंचानवै हजार वर्ष, सातवें की चौरासी हजार वर्ष, आठवें की साठ हजार वर्ष, नौवें की तीस हजार वर्ष, दशवें की छब्बीस हजार वर्ष, ग्यारहवें की तीन हजार वर्ष, और बारहवें की सात सौ वर्ष। इति चक्री-आयु॥ आगे नारायण की आयु कहिये है—प्रथम की चौरासी लाख वर्ष, दूसरे की बहत्तरि लाख वर्ष, तीसरे की साठ लाख वर्ष, चौथे की तीस लाख वर्ष, पांचवें की दश लाख वर्ष, छटवें की साठ हजार वर्ष, सातवें की तीस हजार वर्ष, आठवें की बारह हजार वर्ष, और नववें की एक हजार वर्ष। यह नारायण की आयु कही। इतनी ही नव प्रति-नारायण की आयु जानना। बलभद्र की कछू अधिक है, सो आगे कहैंगे। इति नारायण, प्रति—नारायण की आयु॥

आगे वलभद्र की आयु कहिये है—तहां पहिले वलभद्र की आयु, सत्यासी लाख वर्ष। दूजे की, सत्तरि लाख वर्ष। तीसरे की, साठ लाख वर्ष। चौथे की, वत्तीस लाख वर्ष। पांचवें की, कछू अधिक दश लाख वर्ष। छठे की, पैंसठ हजार वर्ष। सातवें की, वत्तीस हजार वर्ष। आठवें की, सत्रह हजार वर्ष। और नववें, की वारह सौ वर्ष। ये नव वलभद्र की आयु कही। आगे चक्री व नारायण का उपजने का समय कहिये है-तहां आदि-जिन से लेय, पन्द्रहवें धर्मनाथ पर्यंत, तिनमें वृषभ अजित इनके समय में तो दोय चक्री भये। अरु पचास लाख कोड़ि सागर काल का, वीचि अन्तर भया। तामें कोई पदवीधारी पुरुष नहीं भया। अरु श्रेयांस तें लगाय, धर्म–नाथ पर्यंत, पांच तीर्थंकरों के समय में, पांच नारायण भये। सो तीर्थंकरों के काल में ही सभा–नायक भये। अन्तराल में नांहीं भये। और धर्मनाथ के पीछे, तीसरे चौथे चक्री भये। ता पीछे शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, ये तीन तीर्थंकर ही चक्री भये। ता पीछे छठवां नारायण भया। ताके पीछे, आठवां चक्रवर्ती भया। ताके पीछे, मल्लि जिन भये। और मल्लि-जिन के पीछे, नौवां महापद्म चक्री भया। ता पीछे, सातवां नारायण भया। ता पीछे, मुनि-सुव्रत भये। ताके पीछे, दशवां चक्री हरिषेण भया। ताके पीछे, आठवां नारायण भया। ताके पीछे, नमि–जिन भये। अरु नमिनाथ के पीछे, ग्यारहवां चक्री भया। ताके पीछे, नेमिनाथ भये। तिनके समय में, नववें नारायण और वलभद्र, ये तिन छते ही सभा-नायक भये। और नेमिनाथ के पीछे, बारहवां चक्री भया। ताके पीछे, पार्श्वनाथ और महावीर भये। इस भांति त्रेसठ शला-

का पुरुष भये, तिनकी रचना कही। इति चक्री और नारायण के उपजने का समय कह्या। आगे तीर्थंकर की आयु की विगत कहिये है—तहां ऋषभदेव का कुमारकाल, बीस लाख पूर्व का। त्रेसठ लाख पूर्व, राज्य किया। तप, एक हजार वर्ष किया। और केवलज्ञान सहित उपदेश, हजार वर्ष घाटि, लाख पूर्व किया। ये सर्व चौरासी लाख पूर्व की विगत कही ॥ १ ॥ और अजितनाथ-जिन का कुमारकाल, अठारह लाख पूर्व। और एक पूर्वांग अधिक, तिरेपण लाख पूर्व राज्य में व्यतीते। संयम का काल, बारह वर्ष रहा। और एक पूर्वांग अरु बारह वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व; केवलज्ञान सहित, समोशरण सहित विहार किया। यह बहत्तरि लाख पूर्व का विस्तार कह्या ॥ २ ॥ और सम्भवनाथ का काल, साठ लाख पूर्व। तामें तैं कुमारकाल, पन्द्रह लाख पूर्व। अरु च्यारि पूर्वांग अधिक, चबालीस लाख पूर्व, राज्य किया। और चौदह वर्ष संयम किया। अरु च्यारि पूर्वांग अरु चौदह वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व केवल-ज्ञान सहित रहे। पीछे मोक्ष गये ॥ ३ ॥ आगे अभिनन्दन की आयु, पचास लाख पूर्व की है। तामें कुमार-काल, साढ़े बारह लाख पूर्व। अरु राज्य विषैं, साढ़े छत्तीस लाख पूर्व अरु आठ पूर्वांग। अठारह वर्ष, संयमकाल। और आठ पूर्वांग अरु अठारह वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व; केवलज्ञान सहित उपदेश करि, मोक्ष गये ॥ ४ ॥ आगे सुमतिनाथ की आयु, चालीस लाख पूर्व। तामें कुमारकाल, दश लाख पूर्व है। राज्यावस्था का काल, गुणतीस (२६) लाख पूर्व अरु बारह पूर्वाङ्ग। और संयमकाल, बीस वर्ष।

अरु बारह पूर्वांग, बीस वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व; केवलज्ञान सहित रहे। पीछे मोक्ष गये ॥ ५ ॥ और पद्मप्रभु की आयु, तीस लाख पूर्व। तामें तैं कुमार—काल, साढ़े सात लाख पूर्व। साढ़े इक्कीस लाख पूर्व अरु सोलह पूर्वांग, राज्य किया। संयम काल, छह महिना। अरु सोलह पूर्वांग अरु छह महिना घाटि, एक लाख पूर्व ताईं, केवलज्ञान सहित उपदेश देय, सिद्ध भये ॥ ६ ॥ अरु सुपार्श्व-जिन की आयु, बीस लाख पूर्व। तामें तैं कुमारकाल, पांच लाख पूर्व। अरु चौदह लाख पूर्व बीस पूर्वांग, राज्य किया। संयम का काल, नव वर्ष। अरु बीस पूर्वांग नव वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व, केवलज्ञान सहित विहार करि, सिद्ध भये ॥ ७ ॥ चन्द्रप्रभ का आयु समय, दश लाख पूर्व। तामें कुमार—काल, अढ़ाई लाख पूर्व। राज्यावस्था साढ़े छह लाख पूर्व अरु चौबीस पूर्वांग। संयमकाल तीन महिना। अरु तीन महिना चौबीस पूर्वांग घाटि, एक लाख पूर्व ताईं, समोशरण सहित केवलज्ञान पाय, विहार करि, मोक्ष गये ॥ ८ ॥ और पुष्पदन्त-जिन की आयु, दोय लाख पूर्व की है। तामें कुमारकाल, पचास हजार पूर्व। पचास हजार पूर्व अरु अट्ठाईस पूर्वांग, राज्य किया। और संयमकाल, च्यारि महिना। अट्ठाईस पूर्वांग च्यारि महिना घाटि, एक लाख पूर्व, केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गये ॥ ९ ॥ और शीतल जिन की आयु का प्रमाण, एक लाख पूर्व है। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार पूर्व। राज्यकाल, पचास हजार पूर्व। संयमकाल तीन मास। अरु तीन महिना घाटि पच्चीस हजार पूर्व, केवलज्ञान सहित

रहे ॥१०॥ और श्रेयांस जिन की आयु, चौरासी लाख वर्ष की है। तामें कुमारकाल, इक्कीस लाख वर्ष। राज्य पद, ब्यालीस लाख वर्ष। संयम का काल, दोय मास। दोय महिना घाटि इक्कीस लाख वर्ष, केवलज्ञान-काल है ॥ ११ ॥ और वासुपूज्य की आयु, बहत्तरि लाख वर्ष की है। तामें कुमारकाल, अट्ठारह लाख वर्ष है। राज्यावस्था में नहीं रहे, अरु ब्याह भी नहीं किया। अट्ठारह लाख वर्ष के भये, तब ही तप लिया। सो संयमकाल, एक मास रहे। और केवलज्ञान सहित एक मास घाटि चौवन लाख वर्ष रहके, शिव गये ॥१२॥ विमल-जिन की आयु, साठ लाख वर्ष की है। तामें कुमारकाल, पन्द्रह लाख वर्ष। राज्यावस्था, तीस लाख वर्ष। और संयमकाल, तीन महिना। और तीन महिना घाटि पन्द्रह लाख वर्ष, केवलज्ञान सहित रहे। पीछे निर्वाण गये ॥ १३ ॥ और अनंत-जिन की आयु, तीस लाख वर्ष है। तामें कुमारकाल, साढ़े सात लाख वर्ष। राज्यावस्था, पन्द्रह लाख वर्ष। संयमकाल, दोय मास। और केवलज्ञान विषैं दोय मास घाटि, साढ़े सात लाख वर्ष रहे ॥१४॥ और धर्म-जिन की आयु, दश लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, अढ़ाई लाख वर्ष। और राज्यावस्था, पांच लाख वर्ष। और संयमकाल एक मास। एक मास घाटि, अढ़ाई लाख वर्ष; विहार करि, मोक्ष गये ॥१५॥ और शांतिनाथ की आयु, एक लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। राज्यकाल, पचास हजार वर्ष। संयम-काल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि, पच्चीस हजार वर्ष; केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गये ॥ १६ ॥ और कुन्थनाथ की आयु, पनच्यानवै हजार वर्ष । तामें कुमारकाल, पौने

चौबीस हजार वर्ष। राज्यावस्था, साढ़े सैंतालीस हजार वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि, पौने चौबीस हजार वर्ष; केवलज्ञान सहित उपदेश देय, मोक्ष गये ॥ १७ ॥ और अरह जिन को आयु का प्रमाण, चौरासी हजार वर्ष है। तामें कुमारकाल, इकईस हजार वर्ष। राज्यावस्था, ब्यालीस हजार वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। अरु सोलह वर्ष घाटि, इक्कीस हजार वर्ष तांईं; केवलज्ञान सहित उपदेश करि, मोक्ष गये ॥ १८ ॥ और मल्लिनाथ की आयु, पचपन हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, सौ वर्ष। इनने राज्य नहीं किया। सौ वर्ष की अवस्था ही में, तप धार्या। संयमकाल, षट् दिन। और षट् दिन घाटि, चौवन हजार नव सौ वर्ष तांईं; केवलज्ञान सहित उपदेश देय, मोक्ष गये ॥ १९ ॥ और मुनिसुव्रत–जिन की आयु, तीस हजार वर्ष। तामें साढ़े सात हजार वर्ष, कुमारकाल। राज्यकाल, पन्द्रह हजार वर्ष। संयमकाल, ग्यारह महिना। ग्यारह महिना घाटि, साढ़े सात हजार वर्ष; केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गये ॥२०॥ और नमिनाथ की आयु, दश हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, अढ़ाई हजार वर्ष। राज्यकाल, पांच हजार वर्ष। संयमकाल, नौ वर्ष। और नव वर्ष घाटि, अढ़ाई हजार वर्ष, केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गये ॥ २१ ॥ और नेमिनाथ–जिन की आयु, एक हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, तीन सौ वर्ष। राज्य इन ने नहीं किया। तीन सौ वर्ष के होय कें, तप लिया। संयमकाल, छप्पन दिन। छप्पन दिन घाटि, सात सौ वर्ष; केवलज्ञान तैं धर्मोपदेश देय, सिद्ध भये ॥ २२ ॥ और पार्श्वनाथ–जिन

की आयु, सौ वर्ष की। तामें कुमारकाल, तीस वर्ष। इनने ब्याह और राज्य नहीं किया। तीस वर्ष में ही, दीक्षा धरी। संयम-काल, च्यार महिना। अरु च्यार महिना घाटि, सत्तर वर्ष; केवल-ज्ञान सहित रह, भव्यन कूं सम्बोध करि, मोक्ष गये ॥ २३ ॥ महावीर–जिन की आयु, बहत्तरि वर्ष। तामें कुमारकाल, तीस वर्ष। इनने ब्याह व राज्य नहीं किया। तीस वर्ष में तप धरा। संयम–काल, बारह वर्ष। बाकी वर्ष केवलज्ञान सहित रहकर, मोक्ष गये ॥ २४ ॥ यह सर्व जिन की आयु की विगत कही। तामें कोई की आयु के च्यारि विभाग, कोई की आयु के राज्यावस्था बिना, तीन विभाग कहे। आगे चौवीस–जिन के, च्यारि प्रकार संघ का प्रमाण कहिये है। तहां पहिले चौवीस–जिन के गणधर देवन का प्रमाण, अनुक्रम तैं कहिये है—८४, ९०, १०५, १०३, ११६, १११, ९५, ९३, ८८, ८१, ७७, ६६, ५५, ५०, ४३, ३६, ३५, ३०, २८, १८, १७, ११, १०, और ११। ये चौवीस–जिन के, चौदह सौ त्रेपण (१४५३) गणधर जानना। तिन में तैं एक–एक जिन के, मुख्य एक–एक गणधरन के नाम कहिये हैं—वृषभसेन, सिंहसेन, चारुदत्त, वज्र, चमर; वज्रबलि, चरबलि, दण्डिक, वैदर्भ, अनागार, कुंथ, सुधर्म, नंद-राज, जय, अरिष्ट, चक्रायु, स्वयंभू, कुंथ, विशाख, मल्लि, सोम, वरदत्त, स्वयंभू, और इन्द्रभूत। ये चौवीस मुख्य गणधर कहे। ये सर्व गणाधर, सप्त ऋद्धि करि सहित हैं। सर्व जिन–श्रुत के पारगामी हैं। आगे एक–एक जिन के सङ्ग, केते–केते राजा वैरागी भये। तिनका प्रमाण कहिये हैं—महावीर के संग, तीन सौ राजा यती भये ॥ १ ॥ पार्श्वनाथ

के साथ, छह सौ छह ॥ २ ॥ मल्लिनाथ के साथ, छह सौ छह ॥ ३ ॥ वासुपूज्य की लार, छह सौ ॥ ४ ॥ आदिनाथ के साथ, च्यारि हजार राजा यती भये ॥ ५ ॥ और सर्व जिन के संग, एक-एक हजार राजाओं ने तप लिया॥ आगे चौबीस-जिन के यतीश्वरन की संख्या कहिये है—तहां वृषभदेव के, सर्व मुनीश्वर, ८४ हजार हैं। अजित के, एक लाख हैं। सम्भव के, दोय लाख। अभिनन्दन के, तीन लाख। सुमतिनाथ के, तीन लाख बीस हजार। पद्मनाथ के, तीन लाख तीस हजार। सुपार्श्वनाथ के, तीन लाख। चन्द्रप्रभ के, सर्व मुनि, अढ़ाई लाख। पुष्पदन्त-जिन के, दोय लाख। शीतलनाथ के, एक लाख। श्रेयांसनाथ के, चौरासी हजार। वासुपूज्य के, बहत्तरि हजार। विमलनाथ के, अड़सठ हजार। अनन्तनाथ के, छयासठ हजार। धर्मनाथ के, चौंसठ हजार। शान्तिनाथ के, बासठ हजार। कुंथनाथ के, साठ हजार। अरहनाथ के, पचास हजार। मल्लिनाथ के, चालीस हजार! मुनिसुव्रत के, तीस हजार। नमिनाथ के, बीस हजार। नेमिनाथ के, अठारह हजार। पार्श्वनाथ के, सोलह हजार। महावीर के, चौदह हजार सर्व मुनीश्वर हैं। ये चौबीस—जिन के सर्व मुनि कहे। सो मुनि का संघ सात प्रकार है—चौदह पूर्व के पाठी, सूत्र अभ्यासी, अवधिज्ञानी, केवली, विक्रिया ऋद्धि के धारी, विपुलमती मनः पर्ययी, और वादित्र ऋद्धि के धारी। इन सात भेद रूप, मुनि संघ है। सो वृषभदेव के चौरासी हजार मुनि हैं। तिनमें चौदह पूर्व के पाठी, साढ़े सैंतालीस सौ हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य, इकतालीस सौ पचास। अवधि-

ज्ञानी, नौ हजार। केवलज्ञानी, बीस हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, तीस हजार छह सौ। विपुलमती मनः पर्ययज्ञानी, बारह हजार साढ़े सात सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, बारह हजार साढ़े सात सौ हैं। ये सर्व मिलि चौरासी हजार, आदि–देव के मुनि कहे ॥ १ ॥ और अजित के, चौदह पूर्व के पाठी, तीन हजार पांच सौ मुनि। आचाराङ्ग सूत्र के धारी शिष्य, इक्कीस हजार छह सौ। अवधिज्ञानी, नव हजार चार सौ। केवलज्ञानी, बीस हजार दो सौ पचास। विक्रिया ऋद्धि के धारी, बीस हजार च्यारि सौ पचास। विपुलमती मनः पर्यय धारी, बारह हजार च्यारि सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, बारह हजार च्यारि सौ। ये सर्व जाति के मिलि, अजित-जिन के एक लाख मुनि हैं॥२॥ संभव-जिन के, चौदह पूर्व के पाठी, साढ़े इक्कीस सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि, एक लाख उन्नीस हजार तीन सौ। और अवधि-ज्ञानी, नव हजार छह सौ। केवलज्ञानी, पन्द्रह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, गुणतीस हजार साढ़े आठ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञान धारी, बारह हजार हैं। और वादित्र ऋद्धि के धारी, बारह हजार एक सौ हैं। ये तीसरे-जिन का संघ सात प्रकार, दोय लाख कहा ॥ ३ ॥ आगे चौथे अभिनंदन-जिन के मुनि, तीन लाख हैं। तिन में चौदह पूर्व के पाठी, पच्चीस सौ हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य, दोय लाख तीस हजार पचास हैं। अवधिज्ञानी, नौ हजार आठ सौ। केवलज्ञानी, सोलह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, गुन्नीस हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञान धारी, ग्यारह हजार साढ़े छह सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, ग्यारह हजार।

ये अभिनन्दन-जिन के, तीन लाख साधून में सात भेद कहे ॥ ४ ॥ आगे पांचवें सुमतिनाथ के, तीन लाख बीस हजार मुनि हैं। तामें चौदह पूर्व के पाठी, चौबीस सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि, दोय लाख चौंसठ हजार तीन सौ पचास। अवधिज्ञान के धारी, ग्यारह हजार। केवलज्ञान के धारी, तेरह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, अट्ठारह हजार च्यारि सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, दश हजार च्यारि सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, एक हजार च्यारि सौ पचास हैं। ये सर्व पांचवें–जिन के, सात जाति के मुनि, तीन लाख बीस हजार कहे ॥ ५ ॥ आगे छठे पद्मप्रभ-जिन के, तीन लाख तीस हजार मुनि कहे। तिन में चौदह पूर्व के ज्ञानी, तेईस सौ। सूत्र के अभ्यासी शिष्य-मुनि, दोय लाख गुणहत्तरि हजार। अवधिज्ञानी, दश हजार। केवलज्ञान धारी, बारह हजार आठ सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, सोलह हजार तीन सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, दश हजार छह सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, नौ हजार। ये छठे-जिन के, सात जाति के मुनि, सब मिलि तीन लाख तीस हजार कहे ॥६॥ आगे सुपार्श्वनाथ के संघ के, तीन लाख मुनि हैं। तामें चौदह पूर्व के धारी, दोय हजार तीस यती हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य–मुनि, दोय लाख चवालीस हजार नौ सौ बीस हैं। अवधि ज्ञानी, नव हजार। केवली, ग्यारह हजार तीन सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, पन्द्रह हजार डेढ़ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, नव हजार छह सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, आठ हजार। ये सब, सात जाति के मुनि मिलकर, तीन लाख, सातवें-जिन के हैं ॥ ७ ॥ और आठवें-जिन के, अढ़ाई लाख

मुनि हैं। तिन में चौदह पूर्व के पाठी, दोय हजार हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य–मुनि, दोय लाख दश हजार च्यारि सौ। अवधिज्ञान के धारी, आठ हजार। केवली, दश हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, च्यारि हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञान के धारी, आठ हजार। वादित्र ऋद्धि के धारी, सात हजार छह सौ। ये चन्द्रप्रभ–जिन के सात जाति के मुनि, अढ़ाई लाख कहे ॥ ८ ॥ आगे पुष्पदन्त–जिन के, दोय लाख मुनि हैं। तिन में चौदह पूर्व के धारी, पन्द्रह सौ। सूत्रपाठी शिष्य-मुनि, एक लाख पेंसठ हजार पांच सौ। अवधिज्ञान के धारी, आठ हजार च्यारि सौ। केवलज्ञानी, साढ़े सात हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, तीन हजार च्यारि सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पैंसठ सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, बहत्तरि सौ। ये नववें–जिन के, सात जाति के मुनि, सर्व मिलि, दोय लाख कहे ॥९॥ शीतलनाथ के संघ सम्बन्धी मुनि, एक लाख। ता विषैं चौदह पूर्व के धारी, चौदह सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य मुनि, गुणसठि हजार दोय सौ। अवधिज्ञानी, बहत्तरि सौ। केवली, सात हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, बारह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पचहत्तर सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, सत्तावन सौ। ये सर्व मिलि, दशवें-जिन के, एक लाख मुनि कहे ॥१०॥ आगे श्रेयांस-जिन के, चौरासी हजार मुनि। तामें चौदह पूर्व के धारी, तेरह सौ। सूत्रपाठी शिष्य मुनि, अड़तालीस हजार दोय सौ। अवधिज्ञान के धारी, छह हजार। केवलज्ञानी, साढ़े छह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, ग्यारह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, चौवनसौ। बाकी वादित्र ऋद्धि के धारक

हैं। ये चौरासी हजार यती, ग्यारहवें—जिन के कहे ॥११॥ वासुपूज्य—जिन के संघ के मुनि, बहत्तरि हजार बुद्धि—सागर यती हैं। केतेक, चौदह पूर्व के धारी हैं। केतेक, सूत्र अभ्यासी शिष्य मुनि। केतेक, अवधि ज्ञान के धारी। छह हजार, केवली। विक्रिया ऋद्धि के धारी, दश हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, छह हजार। वादित्र ऋद्धि के धारी, ब्यालीस सौ हैं। ये सात जाति के संघ सहित, बहत्तरि हजार मुनि कहे ॥ १२ ॥ और अड़सठ हजार यती, विमलनाथ—जिन के कहे। तहां चौदह पूर्व के धारी, ग्यारह सौ। सूत्रपाठी शिष्य जाति के मुनि, अड़तीस हजार पांच सौ। अवधिज्ञान के धारी, अड़तालीस सौ। केवली, पचपन सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, नौ हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पचपन सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी मुनीश्वर, छत्तीस सौ। ये सर्व जाति के मुनि, अड़सठ हजार कहे ॥ १३ ॥ और अनन्तनाथ के संघ में, छयासठ हजार मुनि हैं। तामें चौदह पूर्व धारी, एक हजार। सूत्र अभ्यासी शिष्य—मुनि, गुणसठ हजार पांच सौ। अवधिज्ञानी, तियालीस सौ। केवलज्ञानी, पांच हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, आठ हजार। विपुलमती मनः, पर्यय ज्ञानी, पांच हजार हैं। वादित्र ऋद्धि के धारी, बत्तीस सौ। ये सात जाति के मुनि, छयासठ हजार कहे ॥ १४ ॥ और धर्म—जिन के यती, चौसठ हजार हैं। तामें चौदह पूर्व के धारी, नौ सौ। शिष्य जाति के, चालीस हजार सात सौ। अवधिज्ञानी, छत्तीस सौ। केवली, पैंतालीस सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, सात हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, पैंतालीस सौ।

वादित्र ऋद्धि के धारी, अट्ठाईस सौ हैं। ये सर्व मिलि, चौंसठ हजार, धर्म-जिन का का मुनि-संघ कह्या ॥ १५ ॥ और शांति-जिन के, बासठ हजार यती हैं। तिन में चौदह पूर्व के धारी, आठ सौ। शिष्य जाति के मुनि, इकतालीस हजार आठ सौ। अवधिज्ञानी, तीन हजार। केवलज्ञानी, च्यारि हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, छह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, च्यारि हजार। वादित्र ऋद्धि के धारी, चौवीस सौ। ये बासठ हजार, सोलवें तीर्थंकर के मुनीश्वर कहे ॥ १६ ॥ और कुन्थ के, साठ हजार यती हैं। चौदह पूर्व के धारी, सात सौ। शिष्य जाति के मुनि, तेतालीस हजार डेढ़ सौ। अवधिज्ञानी, अढ़ाई हजार। केवलज्ञानी, दोय हजार आठ सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, इक्यावन सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, सैंतीस सौ पचास। वादित्र ऋद्धि के धारी, दोय हजार। ये साठ हजार संघ, कुंथ-जिन का कह्या ॥ १७ ॥ और अरहनाथ का संघ, पचास हजार है। तामें चौदह पूर्व के धारी, छह सौ दश। शिष्य जाति के मुनि, पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस। अवधि-ज्ञानी, अट्ठाईस सौ। केवलज्ञानी, अट्ठाईस सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, तेतालीस सौ। विपुल-मती मनः पर्यय ज्ञानी, बीस सौ पचपन। वादित्र ऋद्धि के धारी, सोलह सौ हैं। ये सर्व जाति के, पचास हजार मुनि हैं ॥१८॥ अरु मल्लिनाथ के, चालीस हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्व के धारी, पांच सौ पचास। शिष्य जाति के, गुणतीस हजार। अवधिज्ञानी, बाईस सौ। केवली, साढ़े छब्बीस सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, चौदह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, बाईस

सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, बीस सौ। ये चालीस हजार संघ, मल्लि–जिन का कह्या ॥ १६ ॥ और मुनिसुव्रत के, तीस हजार यती हैं। तामें चौदह पूर्व के धारी, पांच सौ। शिष्य मुनि, इक्कीस हजार। अवधिज्ञानी, अठारह सौ। केवली, अठारह सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, बाईस सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पन्द्रह सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, बारह सौ। ये सात जाति मिलि, तीस हजार भये ॥ २० ॥ नमिनाथ के, बीस हजार यती। चौदह पूर्व के धारी, साढ़े च्यारि सौ। शिष्य जाति के यती, तेरह हजार छह सौ। अवधिज्ञानी, सोलह सौ। केवली, सोलह सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, पंद्रह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, साढ़े बारह सौ। और वादित्र ऋद्धि के धारी, एक हजार हैं। ये बीस हजार यती, इक्कीसवें--जिन के कहे ॥ २१ ॥ और नेमिनाथ के, अठारह हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्व धारी, च्यारि सौ। शिष्य जाति के मुनि, ग्यारह हजार आठ सौ। अवधिज्ञानी, पंद्रह सौ। केवली, पन्द्रह सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, ग्यारह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, नौ सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, आठ सौ। ये अठारह हजार यती, नेमि-जिन के कहे ॥ २२ ॥ पार्श्व-नाथ के, सोलह हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्व के धारी, साढ़े तीन सौ। शिष्य जाति के मुनि, दश हजार नौ सौ। अवधिज्ञानी, चौदह सौ। केवली, एक हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, एक हजार। विपुल मती मनः पर्यय ज्ञानी, साढ़े सात सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, छह सौ। ये सोलह हजार यती, पार्श्वनाथ-जिन के कहे ॥२३॥ और महावीर-जिन के,

चौदह हजार यती हैं। चौदह पूर्व के धारी, तीन सौ। शिष्य जाति के मुनि, नौ हजार नौ
सौ। अवधिज्ञानी, तेरह सौ। केवली, सात सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, नौ सौ। विपुलमती
मनः पर्यय ज्ञानी, पांच सौ। वादित्र ऋद्धि धारी, च्यारि सौ। ये चौदह हजार मुनि, वर्द्धमान-
जिन के कहे ॥२४॥ इति चौबीस-जिन के, मुनि-संघ, सात-सात प्रकार। आगे चौबीस-जिन
के संघ की, आर्यिका का प्रमाण कहिये है-तहां आदि-देव के संघ की आर्यिका, तीन लाख
पचास हजार। अजितनाथ की, तीन लाख बीस हजार। संभव, अभिनंदन, सुमति, इन तीनों
की तीन-तीन लाख, तीस-तीस हजार। पद्मप्रभ की, च्यारि लाख बीस हजार। सुपार्श्व-
नाथ की, तीन लाख तीस हजार। चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, ये तीन जिन की, तीन-तीन लाख
अस्सी-अस्सी हजार। श्रेयांस की, एक लाख बीस हजार। वासुपूज्य की, एक लाख छह हजार।
विमल-जिन की, एक लाख तीन हजार। अनंतनाथ की, एक लाख आठ हजार। धर्मनाथ की,
बासठ हजार च्यारि सौ। शांति-जिन की, साठ हजार तीन सौ। कुंथ की, साठ हजार तीन सौ,
अरह की, साठ हजार। मल्लिनाथ की, पचपन हजार। मुनिसुव्रत की, पचास हजार। नमिनाथ,
नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्द्धमान, इन च्यारि-जिन की, यथा योग्य जानना। ये चौबीस-जिन के
संघ की, आर्यिका का प्रमाण कह्या। आगे श्रावक-श्राविकाओं का प्रमाण कहिये है-तहां वृषभ-
देव से चन्द्रप्रभ पर्यंत, आठ तीर्थंकरन के समय, तीन लाख श्रावक भये। अरु पुष्पदंत से लगाय,
शांतिनाथ पर्यंत, दोय-दोय लाख श्रावक भये। और कुन्थ सूं लेय, महावीर पर्यंत, एक-एक

लाख श्रावक। ये तौ श्रावक-संख्या कही॥ अब श्राविका का प्रमाण-तहां वृषभदेव तैं लगाय-महावीर पर्यन्त, यथायोग्य श्राविका जान लेना॥ ऐसे चौबीस-जिन का संघ, च्यारि प्रकार कह्या। आगे चौबीस-जिन के शिष्य, सिद्ध भये। तिनका प्रमाण अनुक्रम तैं कहिये हैं-तहां वृषभदेव के शिष्य, साठ हजार नौ सौ सिद्ध भये। अजित-जिन के, बहत्तरि हजार एक सौ। संभव-जिन के, एक लाख सत्तरि हजार एक सौ। अभिनंदन-जिन के, दोय लाख अस्सी हजार एक सौ। सुमतिनाथ के, तीन लाख एक हजार छह सौ। पद्मनाथ के, तीन लाख तेरह हजार छह सौ। सुपार्श्वनाथ के, दोय लाख पच्यासी हजार। चन्द्रप्रभ के, दोय लाख चौंतीस हजार। पुष्पदंत के, एक लाख गुन्यासी हजार छह सौ। शीतलनाथ के, अस्सी हजार छह सौ। श्रेयांस-जिन के, पैंसठ हजार छह सौ। वासुपूज्य के, चौवन हजार छह सौ। विमल-जिन के, इक्यावन हजार तीन सौ। अनंत-जिन के, इक्यावन हजार। धर्म-नाथ-जिन के, गुञ्चास हजार सात सौ। शांतिनाथ के, अड़तालीस हजार च्यारि सौ। कुंथ-जिन के, छ्यालीस हजार आठ सौ। अरह-जिन के, तीस हजार दोय सौ। मल्लिनाथ-जिन के, अट्ठाईस हजार आठ। मुनिसुव्रत-जिन के, गुणतीस हजार दोय सौ। नमि-जिन के, नौ हजार छह सौ। नेमि-जिन के, आठ हजार। पार्श्व-जिन के, छह हजार दोय सौ। और महावीर के शिष्य, सात हजार दोय सौ, मोक्ष गये। ये चौबीस-जिन के शिष्य, मोक्ष भये। तिन का प्रमाण कह्या। सो वृषभदेव तैं शांति पर्यंत, सोलह तीर्थंकर, सिद्ध लोक पधारे।

तब तांइं, तिन के शिष्य मोक्ष गये । भावार्थ—सोलह तीर्थंकरों कौं जब तैं केवलज्ञान उपज्या। तब तैं लगाय, निर्वाण भया तब तांइं, तिन के शिष्य मोक्ष गये। अरु शेष आठ तीर्थंकरों के शिष्य, निर्वाण पीछे, महिना में, केई शिष्य दोय महिना में, केई च्यारि माम में, केई वर्ष में, केई दोय वर्षादिक पीछे मोक्ष भये। ऐसे सब—जिन के शिष्यन की मोक्ष जानना।। आगे चौबीस-जिन का, परस्पर अन्तर कहिये है-तहां वृषभदेव पीछे, पचास लाख कोडि सागर काल व्यतीत भया, तब दूसरे अजितनाथ भये । अजितनाथ तैं, तीस लाख कोड़ि सागर पीछे, तीसरे संभव—जिन भये। संभवनाथ के पीछे, दश लाख कोड़ि सागर के अंतर तैं, चौथे अभिनंदन—जिन भये। अरु अभिनंदन तैं, नव लाख कोड़ि सागर पीछे, सुमतिनाथ भये। अरु सुमति के पीछे, नव्बे हजार कोड़ि सागर अंतराल में, पद्मनाथ भये। पद्मनाथ के पीछे, नव हजार कोड़ि सागर अंतर भये, सुपार्श्व भये। और सुपार्श्व के पीछे, नौ सौ कोड़ि सागर अंतरकाल गये, चन्द्रप्रभ भये। चन्द्रप्रभ पीछे, नव्बे कोड़ि सागर अंतर गये, पुष्पदंत हुए। पुष्पदंत के पीछे, नव कोड़ि सागर अंतर भये, शीतल—जिन भये। शीतल-जिन के पीछे, अरु श्रेयांसनाथ के बीचि अंतर, छयासठि लाख बीस हजार वर्ष घाटि, एक-कोड़ि सागर। और श्रेयांस—जिन के पीछे, चौवन सागर अंतर भये, वासुपूज्य—जिन भये। और वासुपूज्य पीछे, तेतीस सागर अंतर तैं, विमल—जिन भये। विमल पीछे, नौ सागर अंतर तैं, अनंत—जिन भये। और अनंतनाथ पीछे, आधा पल्य काल व्यतीत भये, धर्मनाथ

भये। और धर्मनाथ पीछे, पौन पल्य घाट तीन सागर अंतर भये, शांतिनाथ भये। शांतिनाथ पीछे, आधा पल्य का अंतर भये, कुन्थनाथ भये । कुन्थनाथ पीछे, हजार कोड़ि वर्ष घाट, पाव पल्य अंतर भये, अरहनाथ भये। अरहनाथ पीछे, हजार कोड़ि वर्ष अंतर भये, मल्लिनाथ भये। मल्लिनाथ पीछे, चौवन लाख वर्ष अंतर भये, मुनिसुव्रत–जिन हुए। मुनिसुव्रत पीछे, छह लाख वर्ष अंतर भये, नमि–जिन हुए। नमिनाथ पीछे, पचास लाख वर्ष अन्तर भये, नेमिनाथ भये। नेमिनाथ पीछे, पौने चौरासी हजार वर्ष अन्तर भये, पार्श्वनाथ भये। अरु पार्श्वनाथ पीछे, अढ़ाई सौ वर्ष का अन्तर पड़े, वर्द्धमान–जिन भये। ऐसे चौबीस–जिन के, तेबीस अन्तराल कहे। सो महावीर मोक्ष पधारे, तब चौथे काल के तीन वर्ष साढ़े आठ महिना, बाकी थे। चौथा काल, ब्यालीस हजार वर्ष घाटि, एक कोड़ाकोड़ी सागर का है। तहां ब्यालीस हजार वर्ष में, इक्कीस हजार वर्ष का, पंचमकाल है। अरु इक्कीस हजार वर्ष का, छट्ठा काल है। सो पंचमकाल के अंत पर्यंत, महावीर का धर्म है। और छट्ठे काल में, धर्म का अभाव है। इति चौबीस–जिन अंतर ॥ आगे धर्म का विरह–काल कहिये है–तहां वृषभदेव सूं लगाय, पुष्पदंत पर्यन्त तो धर्म अखण्ड चल्या। कबहूं मुनि, कबहूं श्रावक, कबहूं केवलज्ञानी भया करैं। तिनके प्रसाद तैं, धर्मोपदेश भया कस्या। अंतराल नाहीं पड़्या। और पुष्पदंत के पीछे, पाव पल्य तांई, धर्म का अन्तर भया। और शीतलनाथ के पीछे, आध पल्य तांईं, धर्म का विच्छेद भया। और श्रेयांस–जिन पीछे,

पौन पल्य तांईं, धर्म का विच्छेद भया। वासुपूज्य पीछे, एक पल्य तांईं, धर्म का विच्छेद हुआ। पीछे विमलनाथ–जिन भये। विमल–जिन पीछे, पौन पल्य; धर्म का अभाव भया। पीछे, अनंतनाथ भये। अनंतनाथ पीछे, आध पल्य धर्म का विच्छेद भया। और धर्मनाथ पीछे, पाव पल्य, धर्म का अभाव भया। ऐसे तीर्थंकरों के अंतराल में, च्यारि पल्य तांईं; मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि संघ का अभाव रह्या। जिन–धर्म मिट गया। जब तीर्थंकर प्रगटे, तब फेरि धर्म चल्या। ऐसा अन्तर भया। और प्रथम तैं आठ तीर्थंकरों के समय, निरंतर धर्म रह्या। और पहिले तीर्थंकर तैं लगाय, सात तीर्थंकर पर्यंत, तौ केवलज्ञान रूपी संपदा, निरंतर चली आई। केवलज्ञान का कबहुं अन्तर नहीं भया। और चन्द्रप्रभ पीछे, नव्बे केवली भये। बाकी काल में केवली नहीं रहे, मुनि ही रहे। पुष्पदंत के पीछे भी, नव्बे केवली भये। और शीतलनाथ के तीर्थ में, चौरासी केवली भये। और श्रेयांस पीछे, इन के तीर्थ में, बहत्तरि केवली भये। वासुपूज्य पीछे, इनके तीर्थ में, चवालीस केवली भये। और विमलनाथ पीछे, इन के तीर्थ में, चालीस केवली भये। और अनंतनाथ पीछे, छत्तीस केवली भये। धर्मनाथ पीछे, बत्तीस केवली भये। कुन्थनाथ पीछे, चौबीस केवली भये। अरहनाथ पीछे, सोलह केवली भये। मुनिसुव्रत पीछे, बारह केवली भये। नमि पीछे, आठ केवली भये। नेमि पीछे, च्यारि केवली भये। पार्श्वनाथ पीछे, तीन केवली भये। और महावीर पीछे, तीन केवली भये। ऐसे चौबीस तीर्थंकरों पीछे, जेते–

जेते केवली भये, तिनकी संख्या कही । सो जहाँ लूं, दूसरे तीर्थंकर नहीं उपजे, तेते काल पहिले तीर्थंकर का वारा (तीर्थ) कहिये । जैसे प्रथम तीर्थंकर पीछे अजितनाथ उपजे, तब लौं पचास लाख कोड़ि सागर, प्रथम-जिन का काल समझना । ऐसा सर्वत्र जानना । महावीर पीछे, बासठ वर्ष में, तीन केवली भये। तिनके नाम—गौतम गणधर-केवली, सुधर्माचार्य केवली, और तीसरे जम्बूस्वामी अन्त के केवली भये । यहां तें आगे केवली नाहीं । और इन जम्बूस्वामी पीछे; सौ वर्ष में; ग्यारह अङ्ग, चौदह पूर्व के पाठी आचार्य हुए । जिनके नाम सुनहु—विष्णु, नन्दमित्र, अपराजित, गोवर्धन, और भद्रबाहु । ये पांच आचार्य, महा बुद्धि सागर, सर्व श्रुत के पाठी भये। और इनके पीछे, एक सौ तियासी वर्ष में, ग्यारह आचार्य और होंयगे । सो ग्यारह अङ्ग अरु दश पूर्व के पाठी होंगे । तिनके नाम—विशाख, प्रोष्ठल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ धृतपेण, विजय, बुद्धिमान, गंगदेव, और धर्मसेन । इनके आगे, पूर्वन के पाठी नाहीं । इन आगे, दोय सौ बीस वर्ष में, पांच आचार्य, ग्यारह अङ्ग के पाठी होंयगे । तिनके नाम—निषध, जयपाल, पाण्डव, ध्रुवसेन, और कंस । इन तांई, ग्यारह अङ्ग का ज्ञान रहेगा । आगे इनके पीछे; सुभद्राचार्य, यशोभद्राचार्य, भद्रबाहु आचार्य, लोहाचार्य, ये च्यारि मुनि; एक सौ अट्ठारह वर्ष में, एक आचाराङ्ग के पाठी होंयगे । इन आगे, अङ्गन का ज्ञान नाहीं । आगे कहे, महावीर के गणधर ग्यारह, तिनकी आयु कहिये है—पहिले गणधर की आयु, बानवै वर्ष है । दूसरे की, चौरासी वर्ष की है । तीसरे

की आयु, अस्सी वर्ष। चौथे की, सौ वर्ष। पांचवें की, तियासी वर्ष। छटवें की, पिचासी वर्ष। सप्तम की, अठत्तर वर्ष। अष्टम की, ७२ वर्ष। नववें की, ६० वर्ष। दशवें की, ५० वर्ष। और ग्यारहवें की, ४० वर्ष। ये गणधरन की आयु कही। ऐसे चौबीस-जिन का संघ कह्या। आगे जब तीजे काल में, पल्य का अष्टम भाग बाकी रह्या, तब चौदह कुलकर भये। तिनके नाम—प्रतिश्रुत, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशस्वी, अभिचन्द्र, कन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित्, और नाभिराय। अब इन की आयु-कायादिक रचना कहिये है--तहां पहिला कुलकर प्रतिश्रुत, ताकी अट्ठारह सौ धनुष काय। इनके समय ज्योतिषी जाति के कल्पवृक्षन की ज्योति, कछू मन्द भई। सो सूर्य—चन्द्रमा दीखते भये। तिन कूं देख, प्रजा डरी। जो ये कहा है? तब कुलकर तें पूछी। हे प्रभो! ये कहा? अब-तक कभूं नहीं दीखे, सो ये हमारा कहा करैंगे, सो कहौ। तब कुलकर महा विवेकी, सर्व कूं सम्बोधे। कही, भय मति करौ। ये ज्योतिषी देवन के इन्द्र हैं। इनके विमान, अनादि—निधन हैं। अब तांईं, कल्पवृक्षन की प्रभा तैं नहीं दीखते थे। सो अब वृक्षन की ज्योति मंद भई, तातैं दीखे। खेद-कारी नाहीं। ऐसे संबोध, प्रजा कों सुखी किया॥१॥ और दूसरे कुलकर की काय, १३०० धनुष। इनके काल में, ज्योतिषी जाति के कल्पवृक्षन की प्रभा, मंद भई। तब तारा—नक्षत्रन के विमान दीखे। तिनकूं देख, भोरी दुनियां डरी। तब जाय, कुलकर पै पूछी। तब कुलकर ने सर्व भेद बताय, सुखी किये। तातैं सन्मति नाम भया॥ २॥ और तीसरे कुलकर की काय,

आठ सौ धनुष। याके समय, सिंहादिक जीव, क्रूर भये। तिन कूं देख, भोरे लोक डरते भये। तब कुलकर कूं पूछी। प्रभो, अब ताईं इन जीवन तैं रमै थे, सो नाना सुख होय था। अब ये भय करि, मारैं हैं। तब कुलकर, लोकन कूं भोरे-सरल परिणामी जानि, कही। तुम इनका विश्वास, मति करौ। लष्ट-मुष्ट तैं निवारौ। ऐसे कह, सुखी किये। सो इनका नाम, क्षेमङ्कर कह्या ॥ ३ ॥ और चौथे कुलकर के समय, शरीर की उतंगता, सात सौ पचत्तरि धनुष है। याके समय सिंहादिक जीव, क्रूर भये। तब कुलकर कही, तुम लाठी राखौ। आवै तब मारौ। विश्वास मति करौ। काल-दोष तैं, आगे विशेष क्रूर होंयगे। ऐसे उपाय बताय, सुखी किये। तातैं क्षेमंधर नाम भया ॥ ४ ॥ और पंचम कुलकर के समय, काय सात सौ पचास धनुष रही। कल्पवृक्ष घटि चले। कोऊ के कैसा कल्पवृक्ष नाहीं, कोऊ कैसा नाहीं। इसमें परस्पर खेद करते भये। तब कुलकर पै गये। सो कुलकर ने, अपनी-अपनी सीमा बताय दई। जो अपने-अपने क्षेत्र में होय, सो भोगो। और दूसरे की सीमा का, ताकी आज्ञा के बिना, मति लावौ। आपस में याच लेव। जो फल जाके नहीं होंय, सो वापै लीनें। और वाके जो फल नहीं होंय, सो वाकौं दीये। ऐसे उपाय कर, सीमा बांधी। तातैं सीमंकर नाम पाया ॥ ५ ॥ और छट्ठे कुलकर की काय, सात सौ पच्चीस धनुष है। इनके समय, कल्पवृक्ष विशेष घटि चले। तब परस्पर लोग खेद करि, कषाय रूप होने लगे। तब कुलकर ने, अपने-अपने कल्पवृक्ष के चिन्ह कर दिये। सो जो जाके चिन्ह का है, सो ही

भोगै। तातें इनका नाम, सीमंधर भया ॥६॥ और सातवें कुलकर की काय की ऊंचाई, सात सौ धनुष की थी। याने लोकन कूं, हस्ती–घोटकन की असवारी बताई। तातें इनका नाम, विमलवाहन भया ॥ ७ ॥ और आठवें कुलकर का शरीर, छह सौ पचत्तरि धनुष है। इनके समय, माता–पिता, बालक का मुख देख, मरण करते भये। पहिले माता–पिता, पुत्र का मुख नहीं देखैं थे। सो अष्टम कुलकर तैं, देखते भये ॥८॥ और नववें कुलकर का शरीर, छह सौ पचास धनुष भया। याके समय, माता–पिता, बालक भये पीछे केतेक काल, जीवते भये ॥ ९ ॥ और दशवें कुलकर का शरीर, छह सौ पचीस धनुष भया। याके समय, माता–पिता, बालकन कूं लेकर, चन्द्रमादि की समस्या करि रमावते भये ॥ १० ॥ और ग्यारहवें कुलकर का शरीर, छह सौ धनुष भया। याके समय में, परिवार सहित, लोक बहुत जीवते भये॥ ११ ॥ बारहवें कुलकर का शरीर, पांच सै पचत्तरि धनुष है। अब लोग पुत्र सहित, सुखी होते भये ॥ १२ ॥ और तेरहवें कुलकर का शरीर, पांच सौ पचास धनुष ऊंचा था। ता समय बालक, जर सहित उपजते भये। ताहि देख, लोग डरे। तब कुलकर कूं, जर सहित बालक दिखाया। सो याने, जरा–छेदने की विधि बताई ॥ १३ ॥ और चौदहवें कुलकर, नाभिराय भये। सो इनके समय बालक, नाभि (नाल) सहित होने लगे। तब नाभि छेदवे की कला, इनने बताई। तातें नाभिराय भये। इनका शरीर, पांच सौ पचीस धनुष भया ॥ १४ ॥ ऐसे चौदह कुलकर, महा बुद्धिमान्, इनमें स्वयमेव ही अनेक

कला-चतुराई होय। महा सौम्यदृष्टी, मंद-कषायी होंय। ऐसे पल्य के आठवें भाग काल में, कुलकर चौदह भये। पीछे तीसरे काल के, तीन वर्ष साढ़े आठ महिना बाकी रहे, तब श्री आदिनाथ का निर्वाण-कल्याणक भया। और चौथे काल के, तीन वर्ष साढ़े आठ महिना बाकी रहे, तब अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी का, निर्वा-कल्याणक भया। और महावीर के मोक्ष गये पीछे, इक्कीस हजार वर्ष के पंचमकाल में, इक्कीस कलंकी होंयगे। इनके बीचि, इकईस उपकलंकी होंयगे। भावार्थ-इक्कीस हजार वर्ष का पंचमकाल है। तामें हजार वर्ष भये, एक कलंकी होंयगे। ता पीछे, पांच सौ वर्ष पीछे, एक उपकलंकी होंयगे। ता पीछे, पांच सौ वर्ष गये, एक कलंकी होंयगे। ऐसे हजार-हजार वर्ष गये कलंकी, हजार-हजार वर्ष गये उपकलंकी जानना। बहुत उपद्रवी, घने-क्षेत्र के धर्म-घातक होंय, सो कलं-की कहिये। अरु अल्प-क्षेत्र के धर्म-घातक होंय, सो उपकलंकी कहिये। सो कलंकी-उप-कलंकी सब ही, पापांधकार के उदय करवे कौं, रात्रि समान होंयगे। इनके राज्य में धर्म-रूपी सूर्य का प्रकाश, मिट जायगा। और पाप का अधिकार रहेगा। सो पाप-मुर्ति, धर्म के घातक फल तैं, अशुभ गति गमन करेंगे। ऐसे कुलकर व कलंकी कथन कह्या॥ आगे बारह चक्रवर्तीन की आयु कहिये हैं-तहां भरत चक्री की आयु, चौरासी लाख पूर्व की। तामें कुमारकाल, सतत्तर लाख पूर्व है। और महामण्डलेश्वर पद का राज्य, चालीस हजार वर्ष। पीछे चक्ररत्न उत्पन्न भया। पीछे दिग्विजय, साठ हजार वर्ष। राज्य, एक लाख वर्ष

घाटि, छह लाख पूर्व । संयमकाल, अन्तर्मुहूर्त। केवलज्ञान सहित किंचित् ऊन एक लाख पूर्व रह के, सिद्ध भये ॥ १ ॥ और दूसरे सगर चक्री की आयु, बहत्तरि लाख पूर्व । तामें इनका कुमारकालादि यथायोग्य जान लेना ॥ २ ॥ और तीसरा चक्री मघवा नाम । ताकी आयु, पांच लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष । मण्डलेश्वर पद, पच्चीस हजार वर्ष। पीछे चक्र लाभ भये दिग्विजय, दश हजार वर्ष । राज्य, तीन लाख नव्बे हजार वर्ष । संयम-काल, पचास हजार वर्ष बाद, स्वर्गलोक गये ॥ ३ ॥ और चौथे चक्री, सनत्कुमार । ताकी आयु, तीन लाख वर्ष । तामें कुमारकाल, पचास हजार वर्ष । मण्डलेश्वर पद, पचास हजार वर्ष । पीछे चक्र लाभ तैं दिग्विजय, दश हजार वर्ष । राज्यावस्था, नव्बे हजार वर्ष । और संयमकाल, एक लाख वर्ष । पीछे स्वर्ग–गमन किया ॥ ४ ॥ और पंचम शान्तिनाथ–जिन, चक्री । तिनकी आयु, एक लाख वर्ष । तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष । मण्डलेश्वर पद, पच्चीस हजार वर्ष । दिग्विजय, आठ सौ वर्ष । चक्री पद, चौबीस हजार दोय सौ वर्ष । संयमकाल, सोलह वर्ष । और सोलह वर्ष घाटि पच्चीस हजार वर्ष, समोशरण सहित विहार किया । पीछे सिद्ध भये ॥ ५ ॥ और छट्ठे कुंथनाथ–जिन, चक्री । तिनकी आयु, पंचाणवै हजार वर्ष । तामें कुमारकाल, पौने चौबीस हजार वर्ष । मण्डलीक राज्य पद, पौने चौबीस हजार वर्ष । दिग्विजय, छह सौ वर्ष । चक्री पद, तेबीस हजार डेढ़ सौ वर्ष । संयमकाल, सोलह वर्ष । और केवल अवस्था, सोलह वर्ष घाटि पौने चौबीस

हजार वर्ष। पीछे मोक्ष गये ॥ ६ ॥ और सातवें अरहनाथ–जिन, चक्री। तिनकी आयु, चौरासी हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, इक्कीस हजार वर्ष। मण्डलीक राज्य पद, इक्कीस हजार वर्ष। दिग्विजय, च्यारि सौ वर्ष। चक्री पद, बीस हजार छह सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि, इक्कीस हजार वर्ष, केवलज्ञान सहित उपदेश दिया। पीछे लोक शिखर विराजे ॥ ७ ॥ और आठवां चक्री, सुभूमि। ताकी आयु, अड़सठ हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पांच हजार वर्ष। और दिग्विजय, पांच सौ वर्ष। चक्री पद, बासठ हजार पांच सौ वर्ष। अरु यह बाल्यावस्था में, परशुराम के भय तैं सन्यासीन के आश्रम विषैं गोप रहे। तातैं वैराग्य नहीं भया। राज्यावस्था में मरण किया। सो महातम नाम, सप्तम लोक–पाताल में पधारे ॥ ८ ॥ और नौवें, महा पद्म चक्री। ताकी आयु, तीस हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पांच सौ वर्ष। मण्डलीक पद, पांच सौ वर्ष। तीन सौ वर्ष, दिग्विजय। चक्री पद, अट्ठारह हजार सात सौ वर्ष। संयमकाल, दश हजार वर्ष। याही में मुनिपद अरु केवलपद पाय, पीछे सिद्ध भये ॥ ९ ॥ और दशवें, सुषेण चक्री। तिनकी आयु, छब्बीस हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, सवा तीन सौ वर्ष। दिग्विजय, डेढ़ सौ वर्ष। चक्री पद, पच्चीस हजार एक सौ पचत्तरि वर्ष। संयमकाल, साढ़े तीन सौ वर्ष। तामें दीक्षा अरु केवलज्ञान दोऊ आय गये। पीछे मोक्ष गये॥ १० ॥ ग्यारहवें जयसेन चक्री। तिनकी आयु, चौबीस सौ वर्ष। तामैं कुमार-काल, सौ वर्ष। दिग्विजय, सौ वर्ष। चक्री पद-राज्य, अट्ठारह सौ वर्ष।

संयम-काल, केवलज्ञान सहित च्यारि सौ वर्ष ॥११॥ और बारहवां, ब्रह्मदत्त चक्री। ताकी आयु, सात सौ वर्ष। ये चक्री नेमिनाथ के पीछे, अरु पार्श्वनाथ के पहिले, इस अंतराल में भये। सो इनका कुमारकाल, अट्ठावीस वर्ष। मण्डलीक पद, छप्पन वर्ष। दिग्विजय, सोलह वर्ष। चक्री पद का राज्य, छह सौ वर्ष। इन्हों ने दीक्षा नहीं लीनी। राज्यपद में मरण करि, सप्तमी माघवी—धरा पधारे ॥१२॥ यह बारह चक्री की, आयु की विगत कही। सो इन में, आठ चक्री तौ सिद्ध भये। दोय, स्वर्ग लोक गये। दोय, पाताल—धरा पधारे। आगे नव, अर्द्ध-चक्रीन का कथन कहिये है—प्रथम वासुदेव—त्रिपिष्ट की आयु, चौरासी लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजय काल, एक हजार वर्ष। अरु राज्यपद, तियासी लाख चुहत्तर हजार वर्ष ॥ १ ॥ और दूसरा वासुदेव—द्विपिष्ट। ताकी आयु, बहत्तरि लाख वर्ष। तामें कुमार-काल, पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद का राज्य, पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजय का काल, सौ वर्ष। अरु वासुदेव पद, इकत्तरि लाख गुणचास हजार नौ सौ वर्ष ॥ २ ॥ और तीसरा वासुदेव, स्वयम्भू। ताकी आयु, साठ लाख वर्ष। ताका कुमार-काल, पच्चीस सौ वर्ष। अरु मण्डलीक पद, पच्चीस सौ वर्ष। दिग्विजय, नव्वे वर्ष। अरु तीन खण्ड का राज्य, गुणसठि लाख चौरानवै हजार नव सौ दश वर्ष ॥ ३ ॥ अरु चौथा वासुदेव, पुरुषोत्तम। ताकी आयु, तीस लाख वर्ष। तामें कुमार-काल, सात सौ वर्ष। मण्ड-लीक राज्य—पद, तेरा सौ वर्ष। दिग्विजय, अस्सी वर्ष। और तीन खण्ड का राज्य, गुण-

तीस लाख सत्यानवै हजार नव सौ वीस वर्ष ॥ ४ ॥ पंचम वासुदेव, सुदर्शन । ताकी आयु, दश लाख वर्ष। तामें कुमार-काल, तीन सौ वर्ष। मण्डलीक पद, सौ वर्ष। दिग्विजय, सत्तरि वर्ष। और चक्री पद, नौ लाख निन्यावै हजार पांच सौ तीस वर्ष ॥ ५ ॥ और छठा, पुण्डरीक वासुदेव भया। ताकी आयु, पैंसठ हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, अढ़ाई सौ वर्ष। मण्डलीक पद, अढ़ाई सौ वर्ष। दिग्विजय, साठ वर्ष। और तीन खण्ड का राज्य, चौंसठ हजार च्यारि सौ चालीस वर्ष ॥ ६ ॥ और सातवां, दत्त नाम नारायण। ताकी आयु, बत्तीस हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, दोय सौ वर्ष। मण्डलीक पद, पचास वर्ष। दिग्विजय, पचास वर्ष। और तीन खंड का राज्य, इकतीस हजार सात सौ वर्ष ॥७॥ और आठवां वासुदेव, लक्ष्मण। ताकी आयु, बारह हजार वर्ष। कुमार-काल, सौ वर्ष। दिग्विजय काल, चालीस वर्ष। अरु राज्य काल, ग्यारह हजार आठ सौ साठ वर्ष ॥ ८ ॥ और नववां वासुदेव, कृष्णदेव। ताकी आयु, एक हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, सोलह वर्ष। मण्डलीक पद, छप्पन वर्ष। दिग्विजय, आठ वर्ष। अरु वासुदेव पद का राज्य, नौ सौ वीस वर्ष ॥ ९ ॥ ये नव वासुदेव की आयु का विस्तार कह्या ॥ आगे आठवें, नववें नारायण के पिता—दादादिक पुरुषन के नाम। इनके पुत्रन के नाम। इनके समय जो बड़े-बड़े महान् राजा भये, तिनके नाम कहिये हैं। आठवें नारायण की तीन पीढ़ी कहिये हैं—तहाँ आगे, अनेक राजान करि बन्दनीक, सूर्य समानि तेज का धारी, प्रजा का माता-पिता;

महा न्यायवान्, रघु राजा भया। तिन तैं रघुवंश प्रगट भया। ताके वंश में, बड़े-बड़े राजा भये। सो प्रजापालक, न्याय के प्रभाव तैं, तिनका यश प्रगट भया। पीछे सांसारीक सामग्री विनाशीक जानि, पुत्रन कूं पुर-देशन का राज्य सौंप, दीक्षा धरि-धरि, स्वर्ग-मोक्ष कूं गये। ऐसे अनेक राजा भये। तिनके पीछे, राजा अनिरन्य भये। सो न्याय के सूर्य, प्रजा-रूपी कमल कूं सूर्य समान आनन्दकारी, तिनकैं राजा दशरथ, यश की मूर्ति होते भये। सो ये, राजा अनिरन्य के पुत्र राजा दशरथ, महा प्रतापी भये। जिनके तेज के आगे, वैरी रूपी सरोवर, सूखते भये। महा न्याय का जहाज भया। पीछे दशरथ जी के च्यारि; महादेवी, परम-सती, देवीन के रूप कूं जीतनहारी, रानी होती भईं। तिन रानी के नाम-कौशल्या, सुमित्रा, कैकई, और सुप्रभा। ये च्यारि महा भागवन्ती रानी, इनके च्यारि पुत्र भये। सो कौशल्या के गर्भ तैं तौ, श्रीरामचन्द्र जी का अवतार भया। सो बलभद्र भये। सुमित्रा के गर्भ तैं, श्री लक्ष्मण कुमार अवतार पावते भये, सो ये नारायण भये। और कैकई के गर्भ तैं, भरत नाम कुमार भये। और सुप्रभा के गर्भ तैं शत्रुघ्न कुमार अवतरते भये। ये च्यारों पुत्र, न्याय के जहाज, पृथ्वी रूपी मन्दिर के स्तंभन कूं, च्यारि स्थंभ ही होते भये। और श्रीराम-चन्द्र के दोय-पुत्र भये। तिनके नाम लव, और अंकुश। इन दोय पुत्रन ने, सीता जी के गर्भ तैं अवतार पाया। ये रघुवंशी कहाये। इति रघुवंश॥ आगे इन राम-लक्ष्मण के समय में जो-जो रावणादि राजा भये। तिन की परंपराय (वंश) कहिये है-तहां भीम

नाम राक्षस ने मेघवाहन कूं, पूर्व-भव का पुत्र जानि, लंका, पाताल-लंका, राक्षस-विद्या, और नवरतन का हार दिया। पीछे, अनेक राजा भये। ता पीछे राक्षस नाम राजा भया। इनने राक्षसवंश चलाया। पीछे अनेक राजा भये। सो यह विद्याधरन का वंश, आकाश समान निर्मल, तामें महा प्रतापी राजा सुकेत भये। ता सुकेत के, तीन पुत्र भये। माली, सुमाली, और माल्यवान्। सो माली तौ, इन्द्र नाम विद्याधर से युद्ध में माख्या पख्या। और सुमाली के, रत्नश्रवा नाम पुत्र भया। सो वंश का उजागर, तानैं न्याय सहित राज्य किया। अरु रत्नश्रवा की पट्टरानी केकसीता के उदर तैं, तीन पुत्र भये। दशमुख, कुंभकर्ण, चंद्रनखा पुत्री, पीछे विभीषण पुत्र भया। ये तीन पुत्र और एक पुत्री, रत्नश्रवा के भये। सो ये तीनों भाई, देव समान रूप, गुण व पराक्रम के धारी भये। और रावण के दोय पुत्र इन्द्रजीत, मेघनाद; मंदोदरी के गर्भ तैं भये। और मंदोदरी का पिता राजा मय, महा सामंत, अनेक विद्याधरन का नाथ भया। और मेघप्रभा नाम विद्याधर, ताके पुत्र खरदूषण ने, रावण की बहिन चन्द्रनखा कौं, बलात्कार हरी। पीछे चन्द्रनखा कूं, खरदूषण ने परणीं। यह खरदूषण भी महा योद्धा है। अरु चन्द्रोदय राजा का पुत्र विराधित, सो रावण का महा सामंत है। और विजयार्द्ध पर रथनूपूर, इन्द्रलोक समान पुर है। सो ताका राजा, संश्रार है। ताके इन्द्र नाम पुत्र भया। सो महा बली भया। ताने अपने सेवक विद्याधरन कौं, देवन के नाम थापे। और अपना नाम इन्द्र धख्या। उस महाबली ने, रावण के दादा

माली कूं, युद्ध में मास्था। ता पीछे रावण महा प्रतापी, पराक्रमी भया। सो अपने दादा का बैर लेवे कूं, इंद्र सूं युद्ध किया। सो युद्ध में जीत्या। और ता इन्द्र कूं, जीवता ही पकड़ि ल्याया। पीछे कही, मेरे घर पानी भरौ, तौ छोडूं। तब इन्द्र नाम विद्याधर ने, मान तजि कही, भरूंगा। ऐसी कही; तब इन्द्र कूं, रावण ने तज्या। सो इन्द्र ने संसार तैं उदास होय, राज्य तजि, दीक्षा धरी। नाना तप किये। और जक्षपुर का वैश्रवा नाम राजा। ताके कौशकी पट्टरानी महा सती। ताके गर्भ तैं, वैश्रवण नामा पुत्र का अवतार भया। सो राजा इन्द्र का मुख्य सेवक। सो इन्द्र के संग, यतीश्वर भया। ऐसे इन्द्र—रावण का संबंध जानहु। ये राक्षमवंशी रावण है। राक्षस—देव नाहीं। रावण, मनुष्य है। आगे, विद्याधरों में बानरवंशी हैं। तिनकी कथा सुनौ—आगे श्रीकंठ नाम विद्याधर भये। तिनने समुद्र के टापू में बंदर—द्वीप बसाया। ता श्रीकण्ठ के कुल में, राजा अमरप्रभ भये। तिन नैं ध्वजा में बन्दर का चिन्ह कराया। इससे बन्दरवंशी प्रसिद्ध भये। पीछे अमरप्रभ के कुल में, कहकन्द नामा राजा भये। सो कहकंद के, दोय पुत्र भये। सो एक का नाम सूरजरज, अरु दूसरे का ऋष्यरज। सूरजरज कौं, बालि अरु सुग्रीव, ये दोय पुत्र भये। अरु ऋष्यरज के, नल अरु नील भये। अरु सुग्रोव के, अङ्ग अरु अङ्गद, ये दोय पुत्र भये। ये सुग्रीव का वंश कह्या। और इस ही वंश विषैं, राजान का राजा, महा तेजस्वी, अनेक विद्याधरन का नाथ, राजा प्रह्लाद भया। ताके पुत्र महा पुण्याधिकारी, पवन समान महा बलवान्, राजा पवनंजय

भये। तिन पवनंजय के, अञ्जना के गर्भ तैं, महा बड़भागी, चरमशरीरी, हनुमान पुत्र भये। सो कामदेव भये। ये बन्दर-वंशीन का कुल कह्या। ये मनुष्य, महा रूपवान राजा हैं। बंदर नाहीं हैं। इनका वंश, बन्दर है। ऐसा जानना। ऐसे बन्दर-वंश कह्या॥ इति आठवें नारायण के समय का कथन, सामान्य कह्या। इनका विशेष, श्रीपद्मपुराणजी तैं जानना। आगे नववें नारायण व बलभद्र के कुल की पट्टावली, तथा इनके समय भये महान् राजा पाण्डवादिक, तिनकी उत्पत्ति कहिये है—तहां मुनिसुव्रत स्वामी का कुल हरिवंश, तामें अनेक कुल—मंडन राजा भये। ता पीछे महाप्रतापी राजा यदु भये। इन तैं यदुवंश प्रगट्या। तिन के कुल में, राजा नरपति भये। तिनके दोय पुत्र भये। एक शूर, दूसरे सुवीर। सो शूर के, अन्धकवृष्टि नाम पुत्र भये। और सुवीर के, भोजकवृष्टि भये। सो अन्धकवृष्टि के दश पुत्र भये। तिन में बड़े पुत्र का नाम तो, समुद्रविजय है। अरु सब तैं छोटे का नाम, बसुदेव है। और भोजकवृष्टि के, तीन पुत्र भये। उग्रसेन, महासेन, और देवसेन। सो उग्रसेन के, कंस नाम पुत्र भया। अरु देवसेन के, देवकी नाम पुत्री भयी। और समुद्रविजय कैं, जगत—गुरु नेमिनाथ, अवतार लेते भये। सो तप लेय, मोक्ष गये। अरु बसुदेव के, पद्म नाम बलभद्र, नारायण कृष्णदेव, जरत्कुमार, और गजकुमार, ये च्यारि पुत्र भये। और कृष्ण महाराज के प्रद्युम्न, शम्भुकुमार और भानुकुमार ये तीन पुत्र भये। और अन्धकवृष्टि के, कुन्ती अरु माद्री ये दोय पुत्री भईं। ऐसे राजा यदु का वंश सामान्य कह्या।

इति यदुवंश ॥ आगे कौरव-पांडव वंश कहिये है-तहां कुरुवंशीन में, आगे शांतिक नाम राजा भये। तिनकी शिवकी नाम, महासती रानी भई। ता शिवकी के गर्भ तें, पाराशर नाम महा-प्रतापी राजा भये। तिनके, गंगा नाम स्त्री होती भई। सो ये, राजा-गंगाधर की पुत्री है। इस गंगा के गांगेय पुत्र भया। सो ये गांगेय, महा न्यायी, बाल-ब्रह्मचारी भये। और पाराशर की दूसरी रानी, धीवर के घर पलती, गुणवती नाम राजकन्या, पाराशर ने व्याही। ता गुणवती धीवर-पुत्री, ताकैं व्यास नाम राजा अवतरे। सो ये महा गुणवान राजा भये। तिनके सुभद्रा नाम रानी भई। ताके गर्भ तैं, व्यास राजा के तीन पुत्र भये। धृतराष्ट्र, पाण्डवकुमार, और विदुर। सो धृतराष्ट्र के दुर्योधन, दुस्शासनादि सौ पुत्र भये। और पाण्डव ने, अन्धकवृष्टि जी की, कुन्ती और माद्री ये दोय पुत्री परणीं। सो कुन्ती के, च्यारि पुत्र भये। सो बड़े तौ कर्ण, सो इनको बालपने में संदूक में धरि, जल में बहाये थे। सो चन्द्रपुरी में, राजा सूर्य के यहां पले। ये गुप्त भये थे। तातें पर-घर पले। पीछे कुन्ती के, तीन पुत्र और भये। युधिष्ठिर, भीम, और अर्जुन। अरु माद्री के नकुल और सहदेव, ये दोय भये। अरु अर्जुन के, अभिमन्यु नाम पुत्र भया। ऐसे कौरव-पाण्डवन की उत्पत्ति कही। इति पाण्डव-वंश, सामान्य कथन॥ आगे द्रोणाचार्य की वंश-पट्टावली कहिये है। तहां वंश तौ भार्गव है। तामें वामदेव, महा विद्यातिलक भये। ताकैं, कापिष्ठल-पुत्र भया। तिनकैं, यशस्थामा पुत्र भया। ताकैं, श्रवर नाम पुत्र भया। ताकैं, सरासर नाम पुत्र भया। ताकैं, द्रावण नाम पुत्र भया। ताकैं, त्रिद्रावण पुत्र भया।

ताकैं, द्रोणाचार्य भय। ताकैं, अश्वत्थामा पुत्र भया। इति द्रोणाचार्य कुल॥ आगे जरासिंधु की पट्टावली कहिये है—हरिवंश के राजा वसु के कुल में, मगधदेश का राजा निहतशत्रु भया। तिनके, राजा सतिपति भये। तिनके, बृहद्रथराजा भये। तिनके, राजा जरासिंधु और अपराजित राजा भये। सो जरासिंधु, नववां प्रतिहर भया। ताकै, कालयमन पुत्र भया। यह जरासिंधु का वंश कह्या। इति नववें नारायण के समय के पुरुषन का कथन॥ आगे सगर-चक्री का वंश कहिये है—तहां इक्ष्वाकु तो वंश है। आदि—जिन के पीछे, असंख्यात राजा भये। ता पीछें, राजा धरणीधर। तिनके, तिरयशजय भये। तिनके पुत्र, जितशत्रु और विजयसागर ये दोय भये। सो जितशत्रु के तो अजितनाथ भये। अरु दूसरे भाई, विजयसागर कैं, सगर—चक्री भये। तिनके, साठ हजार पुत्र भये। और भागीरथ जी भये। ऐसा जानना। ये सगर—वंश॥ ऐसे महान् पुरुषों की परिपाटी कही। सो भव्यन कूं मंगलकारी होऊ॥ आगे ग्यारह रुद्रन का कथन कहिये है—तहां प्रथम, भीम नामा रुद्र है। सो आदिनाथ के समय भये। ताकी आयु, तियासी लाख पूर्व की है। शरीर की ऊंचाई, पांच सौ धनुष है॥ १॥ दूसरा, जयतिशत्रु नाम। सो अजितनाथ के समय भया। इनकी आयु, इकत्तरि लाख पूर्व। शरीर की ऊंचाई, साढ़े च्यारि सौ धनुष है॥ २॥ और तीसरा, नववें तीर्थंकर के समय भया, सो रुद्र नामका रुद्र है। इनकी आयु, दोय लाख पूर्व की है। काय, सौ धनुष है॥ ३॥ और चौथा रुद्र, विश्वानल है। सो दशवें तीर्थंकर के समय भया। आयु,

एक लाख पूर्व। काय की ऊँचाई, नव्बे धनुष ॥ ४ ॥ पांचवां रुद्र, सुप्रतिष्ठ है। सो श्रेयांस तीर्थंकर के समय भया। याकी आयु, चौरासी लाख वर्ष। काय उतंग ८० धनुष है ॥५॥ और छठवां रुद्र, वासुपूज्य-जिन के समय भया। ताका नाम, अचल रुद्र है। आयु ताकी, साठ लाख वर्ष है। काय, सत्तर धनुष की है ॥६॥ और सातवां रुद्र, पुण्डरीक नाम। सो विमलनाथ के समय भया। ताकी आयु, पचास लाख वर्ष है। और काय, साठ धनुष है॥७॥ और आठवां, अजितधर नाम रुद्र। सो अनंतनाथ के समय भया। ताकी आयु, चालीस लाख वर्ष है। काय, पचास धनुष है ॥ ८ ॥ और नववां रुद्र, जितनाभि है। सो धर्मनाथ के समय भया। ताकी आयु, बीस लाख वर्ष। काय, अट्ठाईस धनुष है ॥९॥ और दशवां रुद्र, पीठि नाम है। सो शांतिनाथ के समय भया। ताकी आयु, एक लाख वर्ष। काय, चौबीस धनुष की है। ॥१०॥ और ग्यारहवां रुद्र, सात्यकी है। सो अंत में, महावीर के समय भया। आयु ताकी, गुणत्तरि वर्ष है। काय, सात हाथ की है ॥ ११ ॥ ये सर्व रुद्र, ग्यारह अंग व दश पूर्व के पाठी होंय हैं। और जिनका क्रोध रूप, सहज-स्वभाव है। इन ग्यारहों का ही कुमार-काल, संयम काल, संयम छूटने का काल, असंयम-काल ही है। ये पहिले संयम धारें हैं। अनेक तप-बल तैं, इनकी ज्ञानशक्ति, ऋद्धिशक्ति बधै-प्रगटै है। तब पीछे भोगाभिलाषी, मानार्थी होय, संयम तजैं हैं। ऐसा सर्व रुद्रन का सहज-स्वभाव जानना। इति रुद्र कथन ॥ आगे नव नारद का स्वरूप कहिये है-ये नव नारद हैं, सो नारायण के समय

ही होंय। सो तिनकी आयु—काय, नारायण—बलभद्र प्रमाण जानना। सो तिनके नाम सुनहु—भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुमुख, नरक—मुख, और अधोमुख। इति नारद नाम॥ आगे चौवीस कामदेव के नाम कहिये हैं—बाहुबलि, अमिततेज, श्रीधर, दशभद्र, प्रसेनजित, चन्द्रवर्ण, अग्निमुक्त, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघवर्ण, शांतिनाथ, कुंथनाथ, अरहनाथ, विजयराज, श्रीचंद्र, नलराजा, हनूमान, बलिराजा, वासुदेव, प्रद्युम्न, नागकुमार, श्रीपाल, और जम्बूस्वामी। ये चौवीस कामदेव कहे। ऐसे तीर्थंकरादि का स्वरूप-कह्या। सो अंत के महावीर स्वामी के मोक्ष गये पीछे, जब ६०५ वर्ष गये। तब राजा वीरविक्रमादित्य भये। और भगवान् के मोक्ष गये पीछे, हजार वर्ष बाद कलंकी भया। सो या भाँति पंचमकाल की मर्यादा में २१ कलंकी, २१ उपकलंकी, ऐसे ४२ राजा धर्म-नाशक होंयगे। तहां अंत का कलंकी, पंचमकाल के अंत में, जलमथ नाम होयगा। ता समय में भी, च्यारि प्रकार के संघ के, च्यारि जीव रहेंगे। तिनके नाम—तहां इन्द्रराज नाम आचार्य के शिष्य, वीरांगद नाम यतीश्वर होंयगे॥१॥ और सर्वश्री नाम अर्जिका हो है॥२॥ और अग्निला नामा महा-धर्मात्मा श्रावक हो है॥३॥ और पंगुसेना नाम श्राविका हो है॥४॥ ये मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि मनुष्य, अंतिम धर्मात्मा हैं। इन पीछे, धर्मी—जीवन का अभाव हो है। इन के समय, जलमथ नामा कलंकी, अपने मंत्रिन तैं पूछेगा। भो मंत्री! कोई मेरी आज्ञा रहित भी है, अक सर्व जीव मेरी आज्ञा मानैं हैं? तब मंत्री कहेंगे। हे नाथ! तुम्हारी आज्ञा सर्व जीव

मानैं हैं। एक वीतरागी मुनि, तुम्हारी आज्ञा में नहीं हैं। तब राजा कहेगा। मुनि कहा करैं हैं?
कहां रहैं हैं? तब मंत्री कहेगा। वन में रहैं हैं। तन तैं भी निष्प्रेम हैं। शत्रु–मित्र, तृण–
कंचन, उन्हें समान हैं। महा वीतराग सौम्यदृष्टी हैं। भोजन समय, श्रावकन के घर अनेक दोष
टाल, शुद्ध–प्राशुक आहार लेय, ध्यान में लीन रहैं हैं। सो यती, कोई की आज्ञा में नहीं
हैं। तब कलंकी कहेगा। हमारी बस्ती में जब भोजन लेंय, तब प्रथम ग्रास, हासल (कर)
का देंय। तब मुनि के भोजन में तैं, प्रथम ग्रास लेंयगे। तब यती, अंतराय करि, वन में जा-
य, सन्यास धरि, तीसरे दिन पर्याय छोड़, कार्तिक वदी अमावस्या के दिन, एक सागर की
आयु सहित, स्वर्ग में देव होंयगे। और तब ही ये बात सुनि करि बाकी आर्यिका, श्रावक,
श्राविका, ये तीन जीव, संन्यास धरि, ताही स्वर्ग में महा ऋद्धि धारी देव उपजेंगे। ता दिन
ही प्रथम–पहर, धर्म–नाश होयगा। और आर्यखण्ड में धर्म का अभाव होयगा। और ता
दिन के मध्य में, राज्य का नाश होयगा। और ताही दिन के अन्त समय, अग्नि नाश हो-
यगी। आर्यखण्ड में, अग्नि नाहीं मिलेगी। और वस्त्र नाश होंयगे। तब सर्व नग्न रहेंगे। और
अन्न नाश भये, सर्व जीव मांसाहारी होंयगे। मुनि कौं उपसर्ग जानि, असुरेन्द्र आय, कलंकी कों
वज्र से मारेगा। सो मरकर कुगति जायगा। पीछे सर्व अंध होंयगे। महाक्रोधी होंयगे। मरकर
नरक–पशू होंयगे। तहां ही के आय उपजैंगे। दोय शुभगति का आवागमन, आर्यखण्ड
तैं मिट जायगा। धर्म नाश तें, सर्व आर्यखण्ड के जीव, महा दुखी होंयगे। ऐसे अवस–

र्पिणी का पंचमकाल पूरा होय। ता पीछे छट्ठे काल के २१ हजार वर्ष, महा दुख तैं पूर्ण होंयगे। पीछे जब छट्ठे काल के, ४६ दिन बाकी रहेंगे। तब सात दिन, खोटी—वर्षा होयगी। तिनके नाम—अति तीव्र पवन की वर्षा होय। ता करि सर्व पर्वत, पातउवा (पत्ता) की नांईं उड़ेंगे ॥ १ ॥ बहुत शीत की वर्षा ॥ २ ॥ खारे जल की वर्षा ॥ ३ ॥ जहर की वर्षा ॥ ४ ॥ वज्राग्नि की वर्षा ॥ ५ ॥ बालू—रज की वर्षा ॥ ६ ॥ धूम की वर्षा, ताकरि अंधकार होयगा ॥ ७ ॥ इन सात वर्षान तैं, इस क्षेत्र में प्रलय होयगा। ऐसे सामान्य अवसर्पिणी का व्याख्यान किया ॥ आगे उत्सर्पिणी का काल लगेगा। तहां छट्ठे काल लगते ही, भली वर्षा होयगी। ताकरि पृथ्वी, रस रूप होयगी। आगे प्रलय में, केई जीव, विद्याधर—देवों ने, कर (हाथ में) लेय, गंगा—सिंधु नदी के तट, विजयार्द्ध की गुफा में जाय धरे थे। सो अब साता भये आवेंगे। तिन करि फेरि रचना होयगी। तहां उत्सर्पिणी का प्रथम काल लगेगा। तामें रीति, छट्ठे कैसी होयगी। परन्तु या छट्ठे काल में आयु—काय की वृद्धि, और ज्ञान की बधवारी होयगी। ऐसे छट्ठे काल केसे, २१ हजार वर्ष पूर्ण होंयगे। तब फिर पांचवां, अरु उत्सर्पिणी का दूसरा काल लगेगा। ताके, इक्कीस हजार वर्ष। तामें २० हजार वर्ष व्यतीत भये, जब एक हजार वर्ष बाकी रहेगा। तब उत्सर्पिणी काल के, चौदह कुलकर होंयगे। तिनके नाम—कनक, कनकप्रभ, कनकराज, कनकध्वज, और कनकपुञ्ज। ये पांच तो कनक (स्वर्ण) समान तन के धारी होंयगे। और नलिन, नलिनप्रभ, नलिनराज, नलिनपुञ्ज,

और नलिनध्वज। ये पांच, कमल के समान तन के धारी हौंयगे। और शेष पद्मप्रभ,
पद्मराज, पद्मपुञ्ज, और पद्मध्वज। ये चौदह कुलकर, पांचवें काल के अंत में हौंयगे।
फेरि, चौथा काल लगेगा। सो कोड़ा-कोड़ी सागर का। तामें, चौबीस तीर्थंकर हौंयगे।
तिनके नाम—महापद्म, सुरदेव, सुपार्श्व, स्वयंप्रभ, सर्वात्मभूत, देवपुत्र, कुलपुत्र, उदंक, प्रोष्ठिल,
जयकीर्ति, सुव्रत, अरःनाथ, पुण्यमूर्त्ति, निःकषाय, विपुल, निर्मल, चित्रगुप्त, समाधिगुप्त,
स्वयंप्रभ, अनुवृत्तिक, जय, विमल, देवपाल, और अनंतवीर्य। ये चौबीस-जिन, उत्सर्पिणी के
चौथे काल में, धर्म-तीर्थ के कर्त्ता, मोह अंधकार के दूर करवे कौं सूर्य्य समान, हौंयगे।
इति आगामी चौबीस जिन॥ आगे आगामी बारह चक्रवर्ती के नाम कहिये हैं—भरत, दी-
र्घदत्त, जयदत्त, गूढ़दत्त, श्रीषेण, श्रीभूति, श्रीकांत, पद्म, महापद्म, चित्रवान्, विमलवाहन,
और अरिष्टसेन। आगे आगामी नव नारायण के नाम कहिये हैं—नंदी, नंदमित्र, नंदन,
नंदभूति, महाबल, अतिबल, भद्रबल, द्विपिष्ट, और त्रिपिष्ट। ये नव नारायण हौंयगे॥ इनही
नारायण के बड़े भाई, आगामी, बलभद्र हौंयगे। तिनके नाम—चंद्र, महाचंद्र, चद्रधर, सिंह-
चंद्र, हरिश्चंद्र, श्रीचंद्र, पूर्णचंद्र, शुभचंद्र, और बालचन्द्र। ये नव बलभद्र, आगे हौंयगे॥ आगे
नव प्रतिनारायण हौंयगे। तिनके नाम—श्रीकंठ, हरिकंठ, नीलकंठ अश्वकंठ, सुकंठ, शिष्यकंठ, अश्व-
ग्रीव, हयग्रीव, और मयूरग्रीव। ये नव प्रति नारायण हौंयगे। इति प्रतिनारायण नाम॥ आगे आगामी
ग्यारह रुद्र हौंयगे। तिनके नाम-प्रमद, सम्मद, हर्ष, प्रकाम, कामद, भव, हर, मनोभव, मारु, काम, और

अंगज। ये ग्यारह रुद्र कहे॥ ऐसे उत्सर्पिणी में तीर्थंकर, चक्री, नारायण, बलभद्र, प्रति-नारायण, ये बड़े पुरुष होंयगे॥ आगे भरतक्षेत्र संबन्धी, अतीत चौबीस-जिन होगये। तिनके नाम कहिये हैं—निर्वाणनाथ, सागर, महासाधु, विमलप्रभ, श्रीधर, सुदत्तनाथ, अमलप्रभ, उद्धर, अंगिर, सन्मति, सिंधु, कुसुमांजलि, शिवगण, उत्साह, ज्ञानेश्वर, परमेश्वर, विमलेश्वर, यशोधर, कृष्णमति, ज्ञानमति, शुद्धमति, श्रीभद्र, अतिकांति, और शांति। ऐसे तीन काल संबंधी, तीन चौबीसी तिनके नाम लेय, अंत-मंगल कूँ उन्हें नमस्कार किया। ये भगवान्, भव्यन कूं मंगल करो। और इनके माता—पिता, आयु का प्रमाण, चिन्ह का वर्णन कह्या। इन के वारे जो महान् नर भये। कामदेव, चक्री, नारायण, बलभद्र, प्रति-नारायण, कुलकर, रुद्र, नारद, इन आदि ये महान् पुरुष, भव्य राशि, निकट संसारी, इनका भी नाम मंगलकारी है। क्योंकि ये सर्व मोक्षगामी, जिनधर्म के पारगामी हैं। इन की कथा, मंगल के अर्थ, यहां प्ररूपण करी। इति तीनकाल संबंधी तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका पुरुषन के नाम॥ आगे अंत मंगल कौं, भरतक्षेत्र संबंधी सिद्ध—क्षेत्रन के नाम कहिये हैं-कैसे हैं सिद्ध क्षेत्र, जहां तैं महाव्रत के धारी योगीश्वर, शुक्लध्यान—अग्नि करि, अष्ट कर्म रूप ईंधन जलाय, निरञ्जन होय, सिद्ध—क्षेत्र, लोक के अंत तहां जाय विराजे, जहां अनंत-सिद्ध विराजे हैं। तातें जहां तैं ये प्रभु मोक्ष गये, तहां जाय, तिन सिद्ध-क्षेत्रन की प्रत्यक्ष बंदना करवे की तौ मो मैं शक्ति नाहीं। तातें इस ग्रन्थ के पूर्ण करवे कूं, अंत मंगल के मिस करि, सर्व क्षेत्रन के नाम लेय, मंगला-

चरण कीजिये है-सो प्रथम ही, आदिनाथ का निर्वाणक्षेत्र, कैलाश पर्वत है । सो अष्टापद कौं नमस्कार होऊ ॥ १ ॥ और अजितनाथ आदि, बीस तीर्थंकरों का निर्वाणक्षेत्र, सम्मेद-शिखर है । ताकौं नमस्कार होऊ ॥ २ ॥ और वासुपूज्य—जिन का निर्वाणक्षेत्र, चंपापुरी का बन है । ताकूँ नमस्कार होऊ ॥ ३ ॥ और नेमिनाथ-जिन कूं आदि लेय, बहत्तरि कोड़ि मुनि का निर्वाण क्षेत्र, गिरनार शिखर, ताकौं नमस्कार होहु ॥ ४ ॥ और महावीर का निर्वाण क्षेत्र, पावापुर का पर्वत है । ताकूँ नमस्कार होऊ ॥ ५ ॥ और वरदत्त आदि साढ़े तीन कोड़ि मुनि, तारंगा शिखर तैं मोक्ष गये । तिस क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ ६ ॥ और लाड नरेन्द्र आदि पाँच कोड़ि मुनि का निर्वाणक्षेत्र, पावागिर है । ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ७ ॥ और तीन पाण्डवन कूं आदि लेय, अष्ट कोड़ि मुनि का निर्वाण क्षेत्र, शत्रुंजय क्षेत्र है । ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ८ ॥ और बलभद्रादि आठ कोड़ि मुनि के मोक्ष होने का क्षेत्र, गजपंथ शिखर, ताकौं नमस्कार होऊ ॥९॥ और रामचन्द्र, सुग्रीव, हनुमान, आदि ९९ कोड़ि यतीश्वरों का निर्वाण क्षेत्र, तुंगीगिर है । ता क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ १० ॥ और रावण के पुत्रादि साढ़े बारह कोड़ि मुनि का निर्वाण क्षेत्र, रेवानदी के तट पर सिद्धवर-कूट है । तिस क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ ११ ॥ इंद्रजीत, कुंभकर्ण रावण के भाई—पुत्र, तिनका निर्वाणक्षेत्र, चूलिगिर नाम शिखर है । ता क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ १२ ॥ और अचलापुर की ईशान दिशा में, मेढ़गिर नाम शिखर है । ताकौं मुक्तागिर भी कहै हैं । सो

यहां तैं, साढ़े तीन कोड़ि मुनि मुक्ति गये। सो ताकूं नमस्कार होऊ ॥ १३ ॥ और राजा दशरथ के पुत्रन कूं आदि लेय, एक कोड़ि मुनि का निर्वाणक्षेत्र, कोटिशिला है। ताकूं नमस्कार होऊ ॥ १४ ॥ इत्यादिक अढ़ाई द्वीप विषैं तिष्ठते सिद्धक्षेत्र, तिन कूं नमस्कार होऊ। ये सिद्धक्षेत्र, इस ग्रन्थ के अंत—समाप्ति विषैं, कवीश्वर कूं भव—भव मंगल करवे में, सहाय होऊ। तथा इस ग्रन्थ के अभ्यासी भव्य जीव तिन कूं, सिद्धक्षेत्र—यात्रा समान फल विषैं, सहाय होऊ। ऐसे सिद्धक्षेत्र कूं नमस्कार करि, अंत-मंगल किया। आगे सिद्ध—लोक समान, अकृत्रिम—चैत्यालय मंगलकारी हैं। तातें यहां ग्रन्थ के अंत में, आठ कोड़ि छप्पन लाख सत्यानवै हजार च्यारि सौ इक्यासी जिनमन्दिर, अनादि—निधन, अकृत्रिम हैं। तिन प्रत्येक में एक सौ आठ जिनबिम्ब हैं। तिन कूं नमस्कार होऊ। तिन में सात कोड़ि बहत्तर लाख, तौ पाताल—लोक में हैं। च्यारि सौ अट्ठावन, मध्यलोक में है। चौरासी लाख सनतानवै हजार तेबीस, ऊर्ध्व—लोक में हैं। ते सब, मंगल की राशि हैं। सो कैसे हैं जिन-मन्दिर, सो कहिये हैं—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य, भेद करि तीन प्रकार हैं। सो उत्कुष्ट जिन-मन्दिर, लम्बे १०० योजन, चौड़े ५० योजन, और ऊंचे ७५ योजन हैं। और मध्य चैत्यालयों का प्रमाण-५० योजन लम्बे, २५ योजन चौड़े, और साढ़े सैंतीस योजन ऊंचे हैं। और जघन्य चैत्यालयों का प्रमाण—२५ योजन लम्बे, साढ़े बारह योजन चौड़े, और १८ ॥। योजन ऊंचे हैं। सो भद्रशाल बन विषैं, नंदनवन विषैं, नन्दीश्वर द्वीप विषैं, और कल्पवासीन

के विमानन विषैं तौ; उत्कृष्ट अवगाहना के धारक जिनमन्दिर हैं। तिन की नींव, भूमि में दोय कोस है। और सौमनस बन, रुचिकगिर पर्वत, कुण्डलगिर पर्वत, वक्षारगिर पर्वत, ईष्वाकार पर्वत, और मानुषोत्तर पर्वत, तथा कुलाचलन पै, मध्य अवगाहना के जिनमन्दिर हैं। और विजयार्द्ध, जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्ष, इन पर चैत्यालयन की अवगाहना—एक कोस लम्बाई, आध कोस चौड़ाई, और पौन कोस ऊंचाई है। और भवनवासी—व्यन्तर देवों के क्षेत्रों के अकृत्रिम चैत्यालयों की अवगाहना का प्रमाण, अन्य ग्रन्थ करि जानना॥ और उत्कृष्ट चैत्यालयन के सन्मुख के बड़े द्वार, १६ योजन ऊंचे, और आठ योजन चौड़े हैं। और उत्कृष्ट चैत्यालयन के दोऊ तरफ के, छोटे—द्वार, आठ योजन ऊंचे, और च्यारि योजन चौड़े हैं। और मध्य चैत्यालयन के सन्मुख के बड़े द्वार, ८ योजन ऊंचे व च्यारि योजन चौड़े हैं। और मध्य चैत्यालयन के दोऊ पार्श्वन के छोटे द्वार, ४ योजन ऊंचे व २ योजन चौड़े हैं॥ और जघन्यावगाहना के चैत्यालय, २५ योजन लम्बे, व १२॥ योजन चौड़े और १८॥। योजन ऊंचे हैं। तिनके सन्मुख के बड़े द्वार ४ योजन ऊंचे और दोय योजन चौड़े हैं। और जघन्य चैत्यालयन के छोटे द्वार, दोय योजन ऊंचे व एक योजन चौड़े हैं। ऐसे तीन भेद रूप, चैत्यालय जानना। इन चैत्यालयन के, तीन--तीन, रत्नमई कोट हैं। और एक—एक कोट के, च्यारि—च्यारि दरवाजे हैं। तहां प्रथम दरवाजे तैं, मन्दिर पर्यंत जावे कों, च्यारि गली हैं।

तहां चारों तरफ, ४ मानस्तंभ हैं। और दरवाजन पै, ६ रत्नस्तूप हैं। और तिन तीन कोट के बीचि, दोय अंतराल हैं। तिन अंतरालन में पहिले—दूसरे कोट के बीचि तौ बन है। और दूसरे—तीसरे कोट के बीचि में, ध्वजा—समूह है। और तीसरे कोट के अरु जिन मन्दिर के बीच, गर्भगृह हैं। जैसे लौकिक में जुदे—जुदे कोठे होंय, तैसे जुदे—जुदे गर्भगृह जानना। और तिन गर्भ-गृहन के बीच में, देवछंद नाम मंडप है। सो मण्डप, रत्नमई स्थंभन के ऊपर, कनक वर्ण है। सो मण्डप, ८ योजन लम्बा, २ योजन चौड़ा, और ४ योजन ऊंचा है। ताके मध्य विषैं, रत्न—कनक मय सिंहासन है। तिसपर विराजमान, श्रीजिन-बिम्ब हैं। सो जिन-बिम्ब कैसा है, मानो साक्षात् तीर्थंकर देव ही हैं। पांच सौ धनुष, रत्नमई अवगाहना है। तहां मस्तक के ऊपर नीलमई परणम्या जो श्याम वर्ण रत्न, सो सुन्दर केशन की आभा कूं धारै है। और महा उज्ज्वल, हीरा मई दांत शोभैं हैं। और मूंगा समान लाल, अधर—ओष्ठ शोभैं हैं। और नवीन कोंपल समान लाल, उत्तम शोभा सहित, कोमल, हस्त की हथेली, और पांव की पगथली, शोभायमान हैं। ऐसे श्री जिनेन्द्र के प्रतिबिम्ब हैं। सो मानौं अब ही बोलैं हैं। तथा अबही विहार करैंगे। मानौं देखैं हैं। मानौं ध्यान रूप हैं। मानौं वाणी खिरै है। मानौं चैतन्य ही हैं। १००८ चिन्ह सहित हैं। तिनपर ६४ जाति के व्यंतरदेव, रत्नमई आकार लिये खड़े हैं। पंक्तिबंध हस्त जोड़े खड़े हैं। सो मानों चमर ही ढोर रहे हैं। और तीन लोक के छत्र समान तीन छत्र, रत्नमई,

शीश पै शोभायमान हैं। ऐसे जिनबिम्ब एक-एक गर्भगृह में, एक-एक हैं। और १०८ गर्भगृह हैं। तिन में १०८ प्रतिबिम्ब विराजमान हैं। तिन कौं नमस्कार होऊ। ऐसे कहे जिनबिम्ब, तिनके निकट दोऊ पार्श्वन विषैं, श्री देवी, सरस्वती देवी, सर्वल्ह जक्ष देव, और सनत्कुमार देव। इन च्यारि के, रत्नमई आकार पाईये हैं। ये महा भक्त हैं। और जिन-बिम्बन के निकट, अष्ट मंगल-द्रव्य शोभैं हैं। तिनके नाम-झारी, कलश, आरसी, ध्वजा, पंखा, चमर, छत्र, और ठौणा। सो एक जाति के, एक सौ आठ-एक सौ आठ जानना। जैसे झारी १०८, कलश १०८, ऐसे जानना। ऐसे गर्भगृह का सामान्य स्वरूप कह्या॥ आगे इस गृह-बाह्य जो रचना और है। सो कहिये है-पूर्व में कह्या जो देवछंद मण्डप, सो नाना प्रकार रत्नमई, स्वर्णमई-फूलमालान करि शोभायमान है। ता मण्डप के पूर्व दिशा कूं, जिन-मन्दिर है। ताके मध्य में, स्वर्ण-रूपा मई, ३२ हजार धूपघट हैं। और बड़े-द्वार के दोऊ पार्श्वन विषैं, २४ हजार धूप-घट हैं। और बड़े द्वारन के बाह्य, ८००० रत्नमई माला, शोभायमान हैं। और तिन मालान के बीचि, २४००० स्वर्णमई माला हैं। और तिन बड़े द्वारन के आगे-सन्मुख, छोटे मण्डप हैं। ता विषैं सोलह-सोलह हजार कनक मई धूप-घट, अरु कनक मई माला, अरु कनक कलश पाईये है। और तहां मुख्य मण्डप के मध्य, अनेक प्रकार रमणीक शब्द करनहारा, रत्नमई छोटा घंटा है। और सन्मुख-द्वार के दोऊ तरफ के छोटे द्वार, तिन पै सर्व रचना, मालादिक का विस्तार, बड़े द्वार तैं

आधा जानना। और सर्व मन्दिर के, तीन–तीन द्वार हैं। पीछे कूं द्वार नाहीं। और मन्दिर की पीछली भीति की तरफ, ८००० रत्नमई और २४००० स्वर्णमई माला हैं। और घंटा, धूपघड़े आदि अनेक रचना, पीछे कूं जानना। सो तहां घंटा कह्या, सो तो मंडप की छत्त तैं, लूंबता जानना। और धूपघट, धरती पै जानना। और माला, चौतरफ भीति, तिन तैं लटकती जाननी। ऐसे रचना सहित जिन–मन्दिर हैं। ताके आगे १०० योजन लम्बा, ५० योजन चौड़ा और १६ योजन ऊंचा, जिन–मन्दिर समान, एक मुख्य मण्डप है। सो अनेक रचना सहित जानना। ताही मुख्य मण्डप के आगे, एक चौकोर, प्रेक्षण मंडप है। ताका विस्तार १०० योजन लम्बा–चौड़ा, और कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचा है। और इस प्रेक्षण मंडप के आगे, दोय योजन ऊंचा, ८० योजन चौड़ा–लम्बा एक पीठि कहिये चबूतरा है। सो कनकमई जानना। तिस पीठिका के मध्य, चौकोर, मणिमई, ६४ योजन लम्बा, १६ योजन ऊंचा, एक मण्डप है। इसही मण्डप के आगे, एक मणिमई, स्तूप की पीठिका है। सो पीठिका, ४० योजन ऊंची है। तिस पीठिका के चौतरफ, १२ वेदी हैं। तिन एक–एक वेदी के च्यारि–च्यारि द्वार हैं। ता पीठिका के मध्य, तीन कटनी सहित ६४ योजन ऊंचा, अनेक–रत्नमई स्तूप है। ता स्तूप के ऊपरि, जिनबिम्ब बिराजमान हैं। सो ऐसे, ६ स्तूप हैं। तिन सब का ऐसा ही वर्णन जानना। और तिन स्तूपों के आगे, १००० योजन लम्बा–चौड़ा, एक स्वर्णमयी पीठि है। ताके चौगिरद, १२ वेदी हैं।

तीन कोट व च्यारि–च्यारि द्वारन करि सहित, कोट–वेदी जानना। तिस पीठि के ऊपर, एक सिद्धारथ नामा वृक्ष है। ताका स्कंध ४ योजन लम्बा, और चौड़ा १ योजन है। ताकी च्यारि बड़ी शाखायें, १२ योजन लम्बी हैं। और छोटी शाखा, अनेक हैं। और वृक्ष, ऊपर १२ योजन चौड़ा है। और अनेक पात, फूल, फलन करि सहित है। सो यह वृक्ष, रत्नमई जानना। यह एक सिद्धारथ नामा, बड़ा वृक्ष जानना। ताके परिवार में अनेक वृक्ष हैं। और ऐसी ही रचना सहित तथा ऐसा ही विस्तार धरैं, चैत्य–वृक्ष है। ऐसे सिद्धारथ व चैत्य ये दोय महा-वृक्ष हैं। सो सिद्धारथवृक्ष के मूल विषैं तिष्ठती, सिद्ध-प्रतिमा है। और चैत्यवृक्ष के मूलभाग विषैं तिष्ठती, समभूमि पै; तीन पीठिका, सिंहासन, छत्र, आदि अनेक प्रकार की रचना सहित, च्यारों दिशा विषैं, अरहंत प्रतिमा विराजमान हैं। तहां अर्हंत व सिद्ध प्रतिमा विषैं, विशेष एता जानना। जो सिद्ध प्रतिमा कैं चमर–छत्रादि की रचना नाहीं। और अरहन्त प्रतिमा कैं, चमर–छत्रादि की रचना होय है। और तिस पीठि के आगे एक पीठि है। तामैं नाना–प्रकार ध्वजा शोभै हैं। तिन ध्वजान के, स्वर्णमई दण्ड हैं। सो दंड, १६ योजन लम्बे हैं। और एक योजन चौड़े हैं। और तिन ध्वजान के, अनेक प्रकार वर्ण हैं। रत्नमई, वस्त्र हैं। तिन ध्वजान के ऊपर, तीन–तीन छत्र शोभैं हैं। तिन ध्वजान के आगे, जिन मन्दिर हैं। तिन जिनमन्दिरों के आगे, चौतरफ, च्यारि दिशान कौं, च्यारि द्रह (तालाब) हैं। सो द्रह १०० योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े, और दश योजन गहरे हैं। ये द्रह, कनकमई वेदीन

करि, भले शोभायमान हैं। तिनमें कमल फूल रहे हैं । ताके आगे, मार्ग रूप च्यारि बीथीं हैं। तिन बीथीन के दोऊ पार्श्वन विषैं, ५० योजन ऊंचे, २५ योजन चौड़े, रत्नमई, देवन के क्रीड़ा—मन्दिर हैं। तिन मन्दिरन के आगे, तोरण हैं। सो तोरण मणिमई स्थंभन परि, गोल, भीति रहित हो हैं। सो अनेक रचना सहित, रमणीक हैं। सो तोरण; मोती-माला, घंटा समूह करि शोभायमान हैं। सो तोरण ५० योजन ऊंचे, २५ योजन चौड़े हैं। तिन तोरणों के ऊपर भाग में, जिन-बिम्ब विराजमान हैं। तिन तोरण के आगे, स्फटिकमणि का प्रथम कोट है । तहां आभ्यन्तर कोट के द्वार के दोऊ पार्श्वन विषैं, रत्नमयी मन्दिर हैं। सो मन्दिर १०० योजन ऊंचे, ५० योजन चौड़े हैं। ऐसे प्रथम कोट पर्यंत वर्णन किया ॥ आगे पूर्व द्वार विषैं, जो मंडपादिकन का प्रमाण कह्या। तातैं आधा प्रमाण, दक्षिण व उत्तर द्वार का जानना। और कथन, तीनों तरफ का समान है। ऐसे कहि, अब पहिले-दूसरे कोट के अंतराल में, जो ध्वजा—समूह पाईये है। सौ ध्वजान में दश जाति के चिन्ह हैं। सो कहिये हैं-सिंह, हस्ती, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्रमा, सूर्य, हंस, कमल, और चक्र। ऐसे दश चिन्ह सहित, ध्वजा समूह है। सो एक—एक चिन्ह की ध्वजा, १०८ हैं। जैसे सिंह जाति की ध्वजा, १०८ हैं। ऐसे सर्व जाति की ध्वजायें जानना। सो जिन—मन्दिर के एक तरफ की ध्वजायें, १०८० भई। और जिन-मन्दिर के चारों तरफ की ४३२० तो बड़ी ध्वजा जाननी। और इन बड़ी ध्वजान के साथ, एक सौ आठ-एक सौ आठ, छोटी ध्वजायें जाननी। ऐसे ध्वजा का बन कह्या ॥ और

तीसरे व दूसरे कोट के अन्तराल में जो रचना है। सो कहिये है-तहां च्यारों तरफ, च्यारि बन हैं। अशोकबन, सप्तच्छदबन, चंपकबन, और आम्रबन। ये च्यारि बन, तिनके फूल तो स्वर्णमई, अरु पत्ते वैडूर्य रत्न मई, हरित वर्ण हैं। तिनकी कोंपल, मरकतमणि मई हैं। तिन के फल महा-मनोग्य, रत्नमई हैं। ऐसे च्यारि ही बन, दश प्रकार के कल्पवृक्षन सहित, रमणीक हैं। तिन बनन विषैं, एक-एक चैत्य वृक्ष है। तिन के मूल भाग में, च्यारों दिशान में, पद्मासन श्री अर्हंत बिम्ब, चमर-छत्रादि प्रातिहार्य करि शोभित, विराजैं हैं। ऐसे एक-एक बन में, एक-एक चैत्य वृक्ष है। तिन के तीन-तीन कोट हैं। तिनकी तीन-तीन कटनी सहित, पीठिका हैं। इत्यादिक रचना सहित, रत्नमई चैत्यवृक्ष हैं। इन आदि बागबाड़ी, ध्वजापंक्ति, कलश, धूप-घट, मोतीमाला, आदि अनेक रचना सहित, अकृतिम जिन-मन्दिरों का, सामान्य स्वरूप कह्या। ताके निकट, सामायिक करवे के मन्दिर हैं। तहां भव्य सामायिक करैं हैं। और बंदना मण्डप हैं। तिस के पास स्नान करवे के स्थान हैं। जहां भव्यजन, पूजन करवे कूं स्नान करैं, सो अभिषेक मण्डप हैं। और तहां भक्त-जन के नृत्य करवे के स्थान, सो नृत्य मण्डप हैं। और तहां गान करवे के स्थान, सो जहां भव्य, भगवान् की गुणमाला का गान करैं, सो संगीत मण्डप हैं। और तहां नाना प्रकार की चित्राम-कलादि की अनेक रचना, महा शोभा सहित स्थान, तिनकौं देख; भव्य, अनुमोदना करैं। तिन कौं देखते, मन तृप्त न होय, सो अवलोकन

मण्डप हैं। और तहां केईक धर्मात्मा-जीवन के, धर्म-क्रीड़ा के स्थान हैं। और कैयेक स्थान ऐसे हैं जहां धर्मात्मा पुरुष, शास्त्रन का स्वाध्याय करैं। सो गुणग्रहण मण्डप हैं। और केई स्थान, अनेक पट्-चित्राम दिखावने के स्थान हैं। सो पट्शाला-स्थान हैं। ऐसे अनेक स्थान, अकृत्रिम चैत्यालयन के निकट पाईये। तहां धर्मात्मा, धर्म का साधन करैं हैं। ऐसे जिन मन्दिर अकृत्रिम, तीन लोक संबंधी हैं। तिन सर्व कौं, अंतिम मंगल निमित्त, हमारा मन—वचन—काय करि, बारम्बार नमस्कार होऊ। और सर्व कर्म रहित सिद्ध भगवान; अरु च्यारि घातिया कर्म रहित, अनंत चतुष्टय सहित, अर्हंत देव; अरु मुनि संघ विषैं अधिपति आचार्य; ग्रन्थाभ्यास विषैं आप प्रवृतैं, अरु औरन कूं प्रवृत्तावैं ऐसे उपाध्याय, और २८ मूलगुण सहित साधु; ऐसे कहे पंच परमेष्ठी, पंच परम गुरु, तिनकौं मन—वचन—काय शुद्ध करि, अंत मंगल के निमित्त, हमारा नमस्कार होऊ। ऐसे इस ग्रन्थ के पूर्ण होतैं भया जो हर्ष, ताकरि अन्तिम मंगल निमित्त, अपने इष्टदेव कौं नमस्कार करि, पाप-मल धोय, निर्मल होने का कारण जानि, कवीश्वर ने कृत-कृत्यावस्था कूं प्राप्त होय, अपना भव सफल मान्या॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, ग्रन्थ पूर्ण होते मंगल निमित्त, नमस्कार पूर्वक, अकृत्रिम चैत्यालय वर्णन, पंचपरमेष्ठी वर्णनो नाम, गुणतालीसवां पर्व सम्पूर्णम्॥

आगे और जगत मंगलकारी, जिनराज के समोशरण हैं। ताका संक्षेप वर्णन कीजिये है-मंगल-मूर्ति, कल्याण का आकार समोशरण, भगवान् के विराजवे का स्थान, अनेक महिमा कों लिये देवो-

सो एक–एक मंगल द्रव्य, १०८ होय हैं ।
एक पार्श्व के विषैं, आठ–आठ मंगल द्रव्य हैं । नौ निधि, नव जाति की हैं । सो एक-
जैसे छत्र १०८, चमर १०८, ऐसे ही सर्व जानना । ऐमी जाननी । सो एक–एक
एक जाति की निधि, एक सौ आठ–एक सौ आठ हो हैं । तिनमें सुगंध–द्रव्य, देवादि खेवैं हैं ।
पार्श्व विषैं, एती रचना जाननी । और धूप–घट हैं । रत्नमई तोरण हैं । ते मोती-माला,
तिनतें महा-सुगंध प्रगट होय रही है । और सर्व द्वारन पै, सहित हैं । सो तोरण द्वार,
कल्पवृक्षन के फूलन की माला, रत्न घंटा, इत्यादिक रचना ऊंचे हैं । और समोशरण के
कोटन तें ऊंचे जानना । और तोरण तैं, कोटन के दरवाजे पै तो, ज्योतिषी
एक तरफ के नौ द्वार हैं । तहां धूलिशाल तैं लगाय, तीन दरवाजेन हैं । और अगले दोय
द्वारपाल हैं । और दोय द्वारन के ऊपर, यक्ष जाति के व्यंतर देव द्वारपाल के ऊपर द्वारपाल,
द्वारन पै द्वारपाल, नागकुमार–भवनवासी देव हैं । और दोय द्वारन हैं । सो सर्व महा
कल्पवासी देव हैं । ऐसे च्यारों दिशा विषैं च्यारि जाति के देव, द्वारपाल हैं । केई गुर्ज लिये हैं ।
भक्तिवान भये, हाथन में असि लिये हैं । केई स्वर्ण की छड़ी लिये भूमि की गली
केई दण्ड लिये खड़े हैं । ऐसे दरवाजेन का स्वरूप कह्या । अब प्रथम विषैं च्यारि-च्यारि द्वार
विषैं, मानस्थंभ है । ताका स्वरूप कहिये है । सो प्रथम गली के मध्य करि शोभनीक हैं ।
सहित तीन कोट हैं । ते कोटन के द्वार, अनेक घंटा, ध्वजा, मालान सो वन, अनेक शुभ
तहां प्रथम–दूसरे कोट और दूसरे–तीसरे कोट के बीचि विषैं वन हैं ।

वृक्षन करि शोभायमान हैं। तहां कोयल, मयूर, आदि अनेक पक्षीन की ध्वनि होय रही है। तिस बन विषैं लोकपाल देवन के नगर हैं। तहां प्रथम बन की च्यारों दिशा विषैं, एक दिशा में इन्द्र—लोकपाल का भवन है। दूसरी तरफ, यम नामा लोकपाल का नगर है। तीसरी तरफ, वरुण नामा लोकपाल का नगर है। और चौथी तरफ, कुबेर नामा लोकपाल का नगर है। ऐसे प्रथम बन के अंतराल का कथन किया। और दूसरे-तीसरे कोट के, दूसरे अंतराल में, एक तरफ, अग्नि जाति के लोकपालन का नगर है। एक तरफ, नैऋत्य जाति के देवन का नगर है। एक तरफ, पवनकुमार देवन का नगर है। और एक तरफ, ईशान जाति के देवन का नगर है। ऐसे ये तीन कोटन के, दोय अंतरालन के नगर कहे। और तीसरे कोट के आभ्यंतर में, तीन कटनीदार उपरि—उपरि तीन पीठि हैं। सो प्रथम पीठि तो, पन्ना समान हरा है। तापै दूसरा पीठि, स्वर्ण मई है। तापै तीसरा पीठि, अनेक रत्नमई है। तिन की ऊंचाई, वृषभदेव के हाथ तैं आठ धनुष तो प्रथम पीठि की है। और ऊपर की दोय पीठि, च्यारि—च्यारि धनुष की हैं। और तीर्थंकरन के हीनक्रम की हैं। अब इन पीठिन की चौड़ाई कहिये हैं। सो नीचले दोय पीठिन की चौड़ाई तो अन्य ग्रन्थ तैं जानना। और ऊपर के तीसरे पीठि की चौड़ाई, वृषभ के १००० धनुष की है। और तीर्थंकरन के हीनक्रम की हैं। तहां तीसरे पीठि में मानस्थंभ है। सो मानस्थंभ नीचे से तो चौकार और ऊपर तैं गोल है। तहां नीचे तो वज्रमई है, मध्य में स्फटिक मई, और ऊपर पन्ना समान हरा है। ताकी, दोय

हजार धारा हैं। जैसे स्थंभ के पहलू होंय, तैसी धारा हैं। सो मानस्थंभ, घंटा, मोतीमाला, कलपवृत्तन के फूलन की माला, ध्वजा, इन आदि अनेक रचना सहित, शोभा कौं धरै है। तिस मानस्थंभ के उपरि भाग में, च्यारि दिशाओं में च्यारि अर्हंत बिम्ब हैं। सो अष्ट प्रातिहार्यन करि सहित हैं। अशोक वृत्त, पुष्प वर्षा, दिव्यध्वनि, चमर, सिंहासन, भामण्डल, देवन के किये दुन्दुभी शब्द, और छत्र। ये अष्ट प्रातिहार्य हैं। तहां दिव्यध्वनि की तो आभासा है। मानूं अब ही दिव्यध्वनि खिरैगी। और सर्व प्रातिहार्य पाईये है। तिनके दर्शन किये, पाप नाश होय है। इस मानस्थंभ की प्रभा, आकाश विषैं योजन पर्यंत उद्योत् करै है। तिसके देखते, आश्चर्य उपजै है। ताके अतिशय करि, इन्द्रादिक देवन का मान नहीं रहे। सर्व का मान जाय। सर्व नमस्कार करैं हैं। ऐसी महिमा धरै है। तातें याका नाम, मानस्थंभ है। ऐसे सामान्य मानस्थंभ का स्वरूप कह्या। ऐसे ही च्यारों दिशान के मानस्थंभ का स्वरूप जानना। तिन मानस्थंभ के कोट में, च्यारों दिशा में, च्यारि-च्यारि बावड़ी हैं। तहां पूर्व दिशा के मानस्थंभ सम्बन्धी बावड़ीन के नाम-नंदा, नंदोत्तरा, नंदवती, और नंदघोषा। और दत्तिण के मानस्थंभ संबंधी बावड़ीन के नाम-विजया, वैजयंती, जयंती, और अपराजिता। और पश्चिम दिशा सम्बन्धी मानस्थंभ की बावड़ीन के नाम-अशोका, सुप्रतिबुद्धा, कुमुदा, और पुण्डरीकणी। आगे उत्तर दिशा सम्बन्धी मानस्थंभ की बावड़ीन के नाम-नंदा, महानंदा, सुप्रबुद्धा, और प्रभंकरी। ऐसे च्यारि दिशा सम्बन्धी, च्यारि मानस्थंभ की, सोलह

बावड़ी जानना। इन एक—एक बावड़ी के बाह्य मुख पर दोय—दोय कुण्ड हैं। तहां के जल तैं भव्य जीव, पाद प्रक्षालन करैं हैं। और बावड़ी के जल तैं, प्रतिमाजी का अभिषेक होय है। ये सर्व बावड़ी हैं, सो स्वर्ण-रत्न मई हैं। रत्नमई पगथेन (पैंड़ीन) करि सहित, चौकोर हैं। निर्मल जल करि भरी, कमलन करि शोभायमान हैं। ऐसे मानस्थंभका सामान्य स्वरूप कह्या॥ आगे नाट्यशाला का संक्षेप स्वरूप कहिये है—तहां प्रथम गली के दोऊ पार्श्वन की, दोय नाट्यशाला हैं। सो तीन खण्ड की हैं। तहां एक—एक नाट्यशाला विषैं, ३२ अखाड़े हैं। एक—एक अखाड़े में ३२—३२ भवनवासिनी देवी नृत्य करैं हैं। और एक—एक नृत्यशाला के दोऊ पार्श्वन विषैं, दोय—दोय धूप घड़े हैं। और ये नृत्यशाला, रत्नमई अनेक शोभा सहित हैं। और ऐसी ही रचना सहित, चौथी गली विषैं, नृत्यशाला हैं। विशेष एता है। जो यहां कल्पवासिनी देवियां, नृत्य करैं हैं। और ऐसे ही छट्ठी गली विषैं, नाट्यशाला हैं। सो पांच खण्ड की हैं। यहां ज्योतिषी जाति की देवांगना नृत्य करैं हैं। ऐसे नाट्यशाला कहीं। सो यहां अपने-अपने नियोग प्रमाण, भक्ति की भरी देवीं, नृत्य करि, अपना भव सफल करैं हैं॥ आगे रत्न—स्तूप का स्वरूप कहिये है—तहां सप्तवीं गली विषैं एक-एक दिशा विषैं, नौ-नौ रत्न स्तूप हैं। सो ये रत्न राशि समान, उत्तंग शिखर कों धरैं हैं। तिनके बीच में, १०० तोरण हैं। और तिन स्तूपन के अग्रभाग पर, अर्हंत-प्रतिमा विराजमान हैं। सो तहां अष्ट-अष्ट मंगल द्रव्य व प्रातिहार्यन सहित हैं। छत्र,

चमर, सिंहासनादि अनेक अतिशय पाईये हैं। ऐसे स्तूप का संक्षेप कह्या। या प्रकार इन पृथ्वीन की रचना कही ॥ और पंचम वेदी के आभ्यंतर—मध्य विषैं, तीन पीठि हैं। सो ऊपर—ऊपर गोल हैं। सो प्रथम पीठि, आठ धनुष ऊंचा है। सो वैडूर्य रत्नमई, हरा जानना। और दूसरा पीठि स्वर्णमई, ४ धनुष ऊंचा है। तीसरा पीठि, अनेक रत्नमई, च्यारि धनुष ऊंचा हैं। तहां प्रथम पीठि की, सोलह पगथ्यां है। और दोय पीठि की ८—८ पगथली हैं। तिन पीठि की चौड़ाई—वृषभ देव के समय, प्रथम पीठि, दोय कोस चौड़ाई सहित है। और जिनराज के हीनक्रम है। प्रथम पीठि विषैं च्यारों दिशा में च्यारि यक्षदेव, मस्तक पै धर्मचक्र धरैं, दोय हस्त जोड़े, विनय तैं खड़े हैं। ता धर्मचक्र के १००० आरा हैं। पंहिआ (चक्र) के आकार, गोल है। ताके तेज के आगे, अनेक सूर्य, मंद भासैं हैं। और तहां प्रथम पीठि पै, अष्ट मंगलद्रव्य हैं। और गणधरदेव, इन्द्र, चक्री आदि भक्तजन हैं; सो इस प्रथम पीठि पै चढ़ि, जिनदेव की पूजा—भक्ति करैं हैं। आगे नहीं चढ़ैं। पूजा करि, पीछे पायन, पगथेन की राह उतरैं हैं। सो अपनी सभा में आय तिष्ठैं हैं। और दूसरे पीठि में आठ ध्वजा हैं। तिन ध्वजान में चक्र, हस्ती, सिंह, माला, वृषभ, आकाश, गरुड़ और कमल इनके आकार हैं। अरु, यहां भी मंगल-द्रव्यादि अनेक रचना है। और तीसरे पीठि पै गंधकुटी है। सो चौकोर है। सो गंधकुटी वृषभदेव के समय की, ६०० धनुष चौड़ी है। इतनी ही ऊंची व लम्बी है। और—जिन के हीनक्रम की है। सो गंधकुटी, अनेक मोती-माला,

कल्पवृक्षन के फूलन की माला, रत्नमाला, अनेक जाति की ध्वजा, सुगंध–द्रव्यादि सहित शोभायमान है। तातें याका नाम गंधकुटी है। ताके मध्य, सिंहासन है। सो स्फटिकमणि-मई, निर्मल है। अनेक रत्न जड़ित, शोभै है। अनेक घंटान करि शोभायमान है। ताके च्यारि पायेन की जायगा, च्यारि रत्नमई सिंहन के आकार हैं। सो बैठे सिंहाकार हैं। सो मानूं प्रत्यक्ष जीवित ही हैं। तथा मानों भगवान् की भक्ति करवे कों श्रावक-व्रत के धारी, सौम्य भावना सहित, धर्म-श्रवण कों आये हैं। ऐसे सिंह बैठे हैं। तातें याकों सिंहासन नाम दिया है। ता सिंहासन के मध्य, कमल है। ता कमल पर, अंतरीक्ष भगवान् विराजमान हैं। सो कमल, हजार पांखुड़ी का लाल वर्ण सहित है। ताकी कर्णिका पै, भगवान् विराजे हैं। तिन कूं बारम्बार हमारा नमस्कार होऊ। अब इस ही समोशरण के कोट, वेदी आदि रचना की ऊंचाई का प्रमाण कहिये है-सो समोशरण की पांच वेदी, च्यारि कोट, और गलीन की वेदी। सो इन की ऊंचाई तो अपने तीर्थकर के शरीर की ऊंचाई तैं चौगुणी है। और क्रीड़ा–मन्दिर तथा जिन-मन्दिर तथा कोट–वेदी के द्वार के रतन-स्तूप, मानस्थंभ, ध्वजादण्ड, क्रीड़ा-पर्वत, नृत्यशाला, चैत्यवृक्ष, कल्पवृक्ष, सिद्धारथवृक्ष, अशोकवृक्ष, तथा बारह सभा, श्रीमंडप, एते स्थान अपने–अपने तीर्थकरन के शरीर की ऊंचाई तैं, बारह गुणे ऊंचे हैं। और समोशरण का प्रमाण–वृषभदेव का बारह योजन प्रमाण है। औरन के यथा-योग्य घटता है। और जैसे अवसर्पिणी के जिनों का समोशरण–प्रमाण, घटता कह्या। तैसे

ही उत्सर्पिणी के जिनों का समोशरण–प्रमाण, बधता जानना। और विदेह क्षेत्रन में समोशरण का प्रमाण, वृषभ देव के समान, सदीव सर्व-जिन का जानना। ऐसे समोशरण का कथन किया। सो त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति, धर्मसंग्रह, समोशरण स्तोत्र, आदिपुराण, इत्यादिक ग्रन्थों के अनुसार वर्णन किया। और कोई आचार्य करि, सामान्य–विशेष रचना का कथन होय, सो केवलज्ञान-गम्य है। ऐसे सामान्य समोशरण की रचना कही। ऐसे समोशरण विषैं, श्री जिनेन्द्र विराजैं हैं। सो अष्ट प्रातिहार्य करि मण्डित हैं। सो तिन प्रातिहार्यन का विशेष कहिये है–सो तहां गंधकुटी के मध्य जाका मूल, अरु चौगिरद बड़े विस्तार धरैं; नाना-प्रकार रत्नमई शाखान व रत्नमई फल-फूल-पत्र सहित, अशोक वृक्ष है। ताके देखे, अनेक जाति का शोक जाता रहै है। तातें याका नाम अशोक वृक्ष है ॥ १ ॥ और देवन करि वर्षाई, सर्व समोशरण में अनेक वर्णमयी महा सुगंध सहित कल्पवृक्षन के फूलन की वर्षा, सो अद्भुत महिमाकारी, मानौं ज्योतिषी देवन के विमान ही आकाश तैं भगवान् के दर्शन कूं आये हैं। ऐसी प्रभा-सहित फूलन की वर्षा होनी। सो पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य है ॥२॥ और आकाश विषैं देवन करि बजाये १२॥ करोड़ जाति के अनेक सुन्दर वादित्रन के शब्द, सो दुंदुभी वादित्र हैं। उसी का नाम दुंदुभी प्रातिहार्य है ॥ ३ ॥ और जैसा जिनदेव के शरीर का वर्ण, ता समान शरीर की चौगिरद, गोलाकार, शरीर की प्रभा का मण्डल, सो प्रभामण्डल है। तामें भव्य जीव अपने-अपने अगले-पिछले

भव देखैं हैं। उसी का नाम प्रभामण्डल है॥ ४ ॥ तथा अनेक रत्न-मई सिंहासन शोभै है। तापै जिनदेव विराजैं हैं। सो सिंहासन प्रातिहार्य है ॥५॥ और एक दिन—रात्रि विषैं ४ बार छह-छह घड़ी पर्यंत, भगवान की वाणी खिरै। सो दिव्यध्वनि है। सो जैसे मेघ गर्जैं, तैसे शब्द करती, ओंठ नाहीं हिलैं, तालवा नाहीं हिलैं, सर्व शरीर तैं उत्पन्न भई, अक्षर रहित, भगवान् की वाणी खिरै। ताके निमित्त पाय, जो जीव जिस भाषा करि समझैं, जाका जैसा अभिप्राय होय, तथा जाकूं जैसा उपदेश योग्य होय, तिस जीव के श्रोत्र-इन्द्रिय द्वार तिष्ठे पुद्गल-स्कंध, तिस ही अर्थ कूं लिये, तैसे ही अक्षर रूप होय, परणमैं हैं। तिस करि सर्व जीव, जुदा-जुदा उपदेश धारण करैं हैं। ऐसे अतिशय सहित, भगवान् की वाणी का होना। सो दिव्य-ध्वनि प्रातिहार्य है ॥६॥ और तीन रत्नमई छत्र, भगवान के मस्तक पै फिरैं। सो छत्र प्रातिहार्य है ॥ ७ ॥ और देवन करि ढोरे गये ६४ रत्नमई चमर, गंगाधारा समान उज्ज्वल, सो चमर प्रातिहार्य सहित, भगवान् समोशरण मैं विराजैं हैं ॥ ८ ॥ सो भगवान् कैं है तो एक मुख, परन्तु च्यारों दिशा विषैं तिष्ठते जीव, तिनकूं च्यारों ही तरफ मुख दीखै। च्यारों ही दिशा के जीव ऐसा जानैं, जो भगवान् का मुख हमारे सन्मुख है। तथा उन्हें भगवान् के च्यारि मुख दीखैं हैं। और भगवान की मुद्रा, बिना यत्न ही नाशाग्र-दृष्टि धरैं, ध्यान-रूप, समता-रस मई होय है। तातैं भगवान् का दर्शन करनहारे भव्यन कौ; दर्शन करते ही, ध्यान मुद्रा का स्मरण होय, शांत दशा होय है। तातैं वीतराग-भाव बधै है। सो मुद्रा अतिशय सहित है। और कदाचित् शान्त

पुनीत समोशरण है। ताका दर्शन किये, नाम लिये, स्मरण किये, पाप नाश होय; पुण्य संचय होय। ऐसा जानि, ग्रन्थ के अंत मंगल कूं, अनेक शास्त्रन का रहस्य लेय, समोशरण का स्वरूप कहिये हैं--तहां प्रथम ही समोशरण की भूमि, समभूमि तैं ५००० धनुष, आकाश मे ऊंची है। ताके च्यारों दिशा विषैं; समभूमि तैं लगाय, समोशरण भूमि पर्यंत; बीस हजार पैंड़ीं, च्यारों दिशाओं में हैं। ते पैंड़ीं (सीढ़ी) स्वर्णमई हैं। सो पैंड़ीं, वृषभदेव के हाथ से, एक हाथ चौड़ीं, एक हाथ ऊंचीं, और एक कोस लम्बीं हैं। और अन्य-जिन की, क्रम तैं हीन हैं। सो हीन का प्रमाण कहिये हैं—वृषभदेव का जो प्रमाण है तामें २४ का भाग दीजिये, तामें तैं एक भाग घटावना। ऐसे नेमनाथ तक, एक भाग घटावना। और पार्श्व-नाथ व वीर के, तिस तैं आधा भाग घटावना। सो समभूमि तैं, २॥ कोस आकाश में जाइये। तहां वृषभदेव की बारह योजन, नील रत्नमई गोल—शिला है। सो तो समोशरण की समभूमि है। या पै सर्व रचना है। और-तीर्थंकरन के समोशरण का हीनक्रम है। सो नेमनाथ पर्यंत, आधा-आधा योजन, हीन है। और पार्श्वनाथ, वीर का पाव—पाव योजन घटता है। ऐसे महावीर का, १ योजन का समोशरण है। तिस शिला विषैं, शिवानन की सीध में ४ गली, च्यारों दिशा में हैं। ते गली, शिवानन (भगवान) की लम्बाई प्रमाण चौड़ीं हैं। जैसे वृषभ देव की एक कोस चौड़ीं, लम्बीं २३ कोस गलीं हैं। सो धूलशाल के दरवाजे तैं लगाय, गंधकुटी के द्वार पर्यंत, लंबाई जाननी। और इन गलीन के दोऊ तरफ, स्फटिकमणिमई

भीति हैं। इनकौं वेदी कहिये। इन दोऊ वेदीन के बीचि जो चौड़ाई, सो गली की चौड़ाई है। और उन वेदीन की चौड़ाई, वृषभदेव के हाथ तैं ७५० धनुष है, और-जिन की हीन है। तिन गलीन के बीचि, ४ अंतराल रूप भूमि हैं। तिन विषैं, ४ कोट व ५ वेदी हैं। अरु इन नव के अंतराल विषैं, ८ भूमि हैं। सो शिला के अंतभाग विषैं कोट है। ताके परे, चैत्य-प्रसाद नाम भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, खातिका की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, पुष्पवाड़ी की भूमि है। ताके परे, दूसरा कोट है। ताके परे, उपबन की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, ध्वजा-समूह की भूमि है। ताके परे, तीसरा कोट है। ताके परे, कल्पवृक्ष की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, मन्दिर की भूमि है। ताके परे, चौथा कोट है। ताके परे, सभा की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ऐसे तिन गलिन के अन्तराल रूप भूमि विषैं, रचना जाननी। और तिन गलिन विषैं, ४ कोट व ५ वेदीन के द्वार हैं। सो एक गली संबंधी, नव द्वार हैं। च्यारों गली संबंधी, ३६ दरवाजे हुए। और प्रथम कोट व प्रथम वेदी, ताके बीचि सो प्रथम भूमि है। तातें प्रथम कोट व प्रथम वेदी, इन के बीचि गली, सो प्रथम भूमि कहिये। ऐसे ही अन्य द्वारन के बीचि द्वितीयादि भूमि जानना। तहां प्रथम भूमि की गली, ताके मध्य विषैं, तौ मानस्थभ है। सो च्यारि दिशा संबंधी, ४ मानस्थंभ हैं। एक-एक मानस्थंभ के च्यारों दिशान में, च्यारि-च्यारि वावड़ी हैं। और इस गली के दोऊ पार्श्वन विषैं, दोय

नाट्यशाला हैं। ऐसे ही चौथी गली विषैं, दोय नाट्यशाला हैं। और छट्ठी गली के दोऊ पार्श्वन विषैं, यातैं दूनी नाट्यशाला हैं। और सप्तमी भूमि में, च्यारि दिशा में, नौ—नौ रत्न—स्तूप हैं। और आठवीं भूमि विषैं, बारह सभा हैं। और जो गली, के पार्श्वन की लम्बाई सहित वेदी हैं। सो अनेक द्वारन सहित हैं। तिन द्वारन के रत्नमई कपाट हैं। कोऊ भव्य, इनके चौतरफ की रचना देखे चाहै है। तो इन गलीन के द्वारन होय, जाय—आवै है। या प्रकार, गलीन की सामान्य रचना कही। और जो इन सर्व के मध्यभाग में, तीन पीठि हैं। ताके ऊपर गंधकुटी है। तामें सिंहासन है। तापै कमल है। तापर श्री भगवान्, अंतरीक्ष च्यारि-अंगुल, विराजै हैं। सो अष्ट प्रातिहार्य सहित, च्यारि चतुष्टय लिये, विराजमान जानना। ऐसे इनकी सामान्यपने रचना कही। अब तिनके स्थान बताइये है। और इनका विशेष कहिये है—तहां ४ कोट कहे, तिन में पहिला कोट, समोशरण की अन्तभूमि विषैं है। सो पंच—वर्ण, रत्न—चूर्ण का है। तातैं याका नाम, धूलिशाल है। नाना प्रकार वर्ण सहित, इन्द्र धनुष समान विचित्र है। और दूसरा कोट, तपाये स्वर्ण समान लाल है। तीसरा कोट, स्वर्ण समान पीत है। और चौथा कोट, स्फटिकमणि समान श्वेत है। और पांचों ही वेदी, स्वर्ण समान पीत हैं। ये च्यारि कोट, पांच वेदी, नव ही के ऊपर, अनेक वर्ण की ध्वजा, अरु अनेक शोभा सहित महल, शोभायमान हैं। यहां वेदी अरु कोट विषैं, एता विशेष है। जो वेदी तौ नीचे तैं लेय ऊपर पर्यंत, समान चौड़ी हैं। अरु

कोट नीचे तैं चौड़ा, अरु ऊपर हीनक्रम है। अब इन के बीचि, आठ भूमि हैं। ताका विशेष कहिये है—तहां प्रथम भूमि विषैं, एक चैत्यालय है। अरु पांच अन्य मन्दिर हैं। इन के बीचि; बावड़ी, बन, वृक्ष, इत्यादि की अनेक रचना है। और दूसरी भूमि विषैं, खातिका है। सो रत्नमई पगथेन (पैंड़ीं) करि सहित है। निर्मल-जल करि भरी है। सो जल की ऊंडाई, जिन-देव के शरीर तैं चौथे भाग है। अरु वह खाई, कमलन करि पूरित, नाना प्रकार जलचर व हंसादिक जीवन करि शोभनीक है। और तीसरी भूमि विषैं, फुलवाड़ी है। जो नाना प्रकार वृक्ष, फूल, बेलि करि शोभायमान है। अरु चौथी भूमि विषैं, उपवन हैं। सो च्यारि दिशान विषैं, च्यारि उपबन हैं। तिन के नाम—अशोकबन, सप्तपर्णबन, चंपकबन, अरु आम्रबन। ये बन, नाना प्रकार उत्तम वृक्ष करि सहित हैं। और इन बन विषैं, नाना प्रकार के, देव-क्रीड़ान के मन्दिर हैं। तथा ये बन; नृत्यशाला, बावड़ी, क्रीड़ा-पर्वत, तिनकरि शोभनीक हैं। इत्यादिक और भली रचना जाननी। तहां अशोकबन विषैं, अशोक नाम चैत्यवृक्ष है। ताके चौतरफ, तीन कोटन के भीतर, तीन पीठि हैं। तापै, अशोकवृक्ष है। ताके मूलभाग विषैं, च्यारों दिशा में, च्यारि अर्हन्त प्रतिमा हैं। तिन प्रतिमा जी के आगे, एक—एक मानस्थंभ है। ऐसे और तीन बनन में-सप्तपर्ण चैत्यवृक्ष, सप्तपर्ण बन में है। चंपकबन में, चंपक चैत्यवृक्ष। आम्रबन में, आम्र चैत्य—वृक्ष। ऐसे बन की रचना जाननी। और इस बन की बावड़ीन के जल करि स्नान कीजिये, तो एक-

भव की अगली–पिछली दीखै। और बावड़ीन के जल में देखिये, तौ अपने सात–भव की, अगली-पिछली दीखै है। और पंचम-भूमि विषैं, ध्वजान का समूह है। तहां एक दिशा संबंधी ध्वजा कहिये हैं-सिंह, हाथी, वृषभ, मोर, माला, आकाश, गरुड़, चक्र, कमल, और हंस। इन दश जाति की ध्वजा हैं। सो एक–एक चिन्ह की, १०८ महा ध्वजा हैं। और इन एक–एक महा ध्वजा संबंधी, १०८ छोटी ध्वजा और जाननी। ऐसे एक दिशा संबंधी ध्वजा कहीं। च्यारों ही दिशा संबंधी मिलाईये, तौ ४७०८८० ध्वजा होंय। ते सर्व ध्वजा, रत्नमई दण्डन करि सहित हैं। ते दण्ड, वृषभदेव के ८८ अंगुल चौड़े हैं। और परस्पर ध्वजा का २५ धनुष अंतराल जानना। और छठी भूमि विषैं, कल्पवृक्षन के बन–तहां वासन, गृह, आभूषण, वस्त्र, भोग, पान (जो पीने योग्य वस्तु देवें, सो पान), ज्योतिष, माला, वादित्र, और दीपक। ये दश जाति के, बन हैं। सो च्यारि दिशा में, ४ ही बन हैं। तहां एक–एक दिशा में एक–एक बन में, च्यारि चैत्य वृक्ष हैं। तिनके नाम–मेरु, मंदार, पारजाति और संतानक। ये च्यारि कल्पवृक्ष, चैत्य वृक्ष हैं। इनका विस्तार–वर्णन, पीछे अशोक चैत्य वृक्ष का कथन करि आये हैं, तहाँ समान जानना। एता विशेष है, जो यहां, सिद्ध-प्रतिमा विराजमान हैं। और सर्व वापी, मन्दिर, क्रीड़ा-पर्वतादि सर्व रचना, यहां–वहां समान जानना। और सातवीं भूमि विषैं, रत्नमई मन्दिरन की पंक्ति, बन की अनेक शोभा सहित है। तहां देव–देवी, भगवान् का गुण–गान करैं हैं। और आठवीं भूमि में, १२

सभा हैं। तहां तिस पृथ्वी संबंधी च्यारि अंतराल, तिन में दोय-दोय तो गली की वेदी हैं। और दोय-दोय तिन के बीचि, स्फटिक मणिमई भीति हैं। इन च्यारों भीति के बीचि, तीन अंतराल हैं। सो ही तीन कोठे। ऐसे च्यारों दिशान के, १२ कोठे भये। अरु १६ भीति भईं। तहां रत्न-स्थंभ हैं। तिन पै धरया श्रीमण्डप है। मोती की माला, रत्न घंटा, धूप-घटादि अनेक रचना सहित है। और जगह तैं, यहां रचना उत्कृष्ट है। तहां १२ सभा के, बारह कोठे हैं। तिन में अनुक्रम तैं-मुनिराज, कल्पवासी देवी, मनुष्यणीं, ज्तोतिषी देव की देवियां, व्यंतर देव की देवियां, भवनवासिनी देवी, भवनवासी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिषी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य, और बारहवीं सभा में तिर्यंच बैठैं हैं। ऐसे अष्टमी भूमि में १२ सभा कहीं। अब इन आठभूमिन की गली का विशेष कहिये है-तहां प्रथम ही धूलिशाल कोट है। ताके ४ दरवाजे हैं। तिनके क्रम तैं नाम कहिये हैं-पूर्व दिशा का विजय, दक्षिण दिशा का वैज-यंत, पश्चिम दिशा का जयंत, और उत्तर दिशा का अपराजित। ऐसे नाम हैं। और च्यारि कोट व पाँच वेदीन के, छत्तीस द्वार, च्यारों दिशा संबंधी हैं। तामें धूलिशाल कोट के च्यारि दरवाजे तो स्वर्णमई हैं। और बीचि के, दोय कोट ४ वेदी, इन छह के २४ दरवाजे, रूपा मई हैं। और चौथा स्फटिक मणि का कोट अरु आभ्यंतर की वेदी के द्वार आठ, सो पन्ना समान हरे हैं। इन सर्व छत्तीस ही दरवाजेन के आभ्यंतर-बाह्य दोऊ तरफ, मंगल-द्रव्य अरु नवनिधि के समूह हैं। तहां एक द्वार के, दोय पार्श्व हैं। सो ही बाह्य-आभ्यंतर करि, ४ पार्श्व भये। सो एक-

होता। तातैं पर-जीवन का भला करनहारी, वि-
मुद्रा नहीं होती, तो भक्तन का भला नहीं होता। तातैं पर-जीवन का भला करनहारी, वि- मुद्रा ही है। सो ध्यान—मुद्रा के धारी
श्वास उपजावनहारी; ध्यान रूप, पद्मासन, कायोत्सर्ग मुद्रा ही है। सो ध्यान—मुद्रा के धारी
भगवान्, तिनकी बाह्य संपदा तो समोशरण है। और आभ्यंतर संपदा, अनंत—चतुष्टयादि
अनंत गुण हैं। ऐसे भगवान् कूं हमारा नमस्कार होऊ। और जो भव्य, भगवान् के दर्शन कूं,
समोशरण में जांय हैं, सो देव—विद्याधर तौ स्वेच्छा जांय हैं। और भूमि-गोचरी मनुष्य तथा
तिर्यंच; पगथेन की राह, चढ़िकरि जांय हैं। सो केई जीव तौ सीधे ही पगथेन चढ़ि, दर्शन
कौं चले जांय हैं। और केई जीव पगथेन चढ़ि कैं, पीछे समभूमि पै जाय कैं, समोशरण की
गली की राह होय, अनेक रचना देखते, दर्शन कौं जांय हैं। सो जे देव, विद्याधर, चक्री आदि
भव्य हैं। सो प्रथम पीठि पर्यंत जांय हैं। अरु दर्शन करि, अपने कोठे में जाय तिष्ठैं
हैं। पीछे केई जीव बाहिर आय, जिन—गुण—गानादि करैं हैं। सो समोशरण विषैं गये,
ऐसा अतिशय होय है कि अंधे तौ नेत्र सूं देखैं, बहरे सुनैं, रोगी निरोग होंय। अनेक दुख
सहित जीव, दुख तजि सुखी होय हैं। समोशरण में गये अनेक आरति, दुख, शोक, चिंता,
भय, दूर होंय हैं। तहां सर्व—प्रकार सुखी होंय हैं। परस्पर जीवन कैं बैर—भाव नहीं रहै
है। तहां सिंह—गाय, मोर—सर्प, मूसा—मार्जार, कुत्ता—बिल्ली, इत्यादिक जाति—विरोधी जीव,
बैर—भाव तजि, मैत्री—भाव करैं हैं। और तहां स्थान तो संख्यात अंगुल प्रमाण है, परन्तु
तहां जीव असंख्यात आवैं, तौ भी भीड़ नहीं होय। तहां क्षुधा, तृषा, नहीं लागै। राग—

द्वेष नहीं होय। क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं उपजैं। इन आदिक समोशरण में अनेक अतिशय होंय हैं। और समोशरण के बाह्य, १०० योजन पर्यंत, दुर्भिक्ष, ईति, भीति नहीं होय। याप्रकार भगवान् का अतिशय होय है। इन्द्र की आज्ञा तैं धनपति देव, समोशरण रचै है। ऐसे समोशरण में विराजमान श्री भगवान्, तिनका दर्शन जिनकूं प्रत्यक्ष होय, ते भव्य धन्य हैं। हम पुण्य-संपदा रहित, प्रत्यक्ष दर्शन कों असमर्थ हैं। तातें मन, वच, तन करि, जिनदेव कों परोक्ष नमस्कार करैं हैं। सो वे भगवान्, हमकूं इस ग्रन्थ के पूरण होतैं अंत-मंगल विषैं, सहाय होऊ। ऐसे समोशरण का वर्णन किया। आगे भगवान् के विहार-कर्म का स्वरूप कहिये है—तहां समोशरण विषैं विराजमान भगवान् के विहार का जब समय होय, तब इन्द्र-महाराज अवधि तैं जानि कैं, लौकिक समय साधवे कूं, ऐसी विनती करैं हैं। हे भगवन्! यह विहार-समय है, सो विहार करि, अनेक भव्य-जीवन कूं धर्मोपदेश देय कें, उनको सुमार्ग बताय, तिनका भला कीजिये। तब देवेन्द्र का प्रश्न पाय, भगवान का तौ विहार-कर्म होय। अरु पिछली समोशरण-रचना विघटि जाय। सो भगवान् जिस मार्ग विषैं विहार करैं। तिस मार्ग विषैं, दोऊ तरफ, नाना प्रकार षट् ऋतु के फल-फूल सहित, अनेक वृक्षन की सघन पंक्ति, होय जाय हैं। और दोऊ तरफ, चांवलन के खेत, महा रमणीक, हरित वर्ण होय जांय हैं। और नदी, बावड़ी, महल पंक्ति, पर्वतन की शोभा, मनोहर होय जाय है। और तिस मार्ग की सर्व भूमि, दर्पण समान निर्मल होय जाय है। तिस

के दोऊ तरफ, चांवलन के फूले वन की पंक्ति, अरु तिन चांवलन के निकट, दोऊ तरफ निर्मल जल की धारा धरैं, नदी समान नहर, चल्या करै है। और तिस मार्ग पै, आकाश तैं मेघकुमार जाति के देव, सुगंधित–जल के कण, मोती समान बारीक, वर्षावते जांय हैं। और पवनकुमार जाति के देव, मंद–सुगंध पवन, चलावते जांय हैं। एक योजन पर्यंत, सर्व-भूमि, कंटक रहित करते जांय हैं। तिस मार्ग विषैं, भगवान् तो समोशरण की ऊंचाई प्रमाण, आकाश में गमन करें। तिनके पद-कमलन के नीचे, १५-१५ कमल के फूलन की पंक्ति; १५ पंक्ति देव रचि देंय। सो २२५ कमलन का समुदाय, एक जायगैं भूमका रूप रहै। ताके मध्य के कमल पै, च्यारि अंगुल के अंतर पै पांव धरते, भगवान् आकाश विषैं, मनुष्य की नांई डग भरते विहार करैं। यहां प्रश्न–जो भगवान् कैं तो इच्छा नाहीं। सो इच्छा-बिना डग कैसे भरी जाय ? ताका समाधान-जो भगवान् कैं, च्यारि अघातिया कर्म बैठे हैं। तिनके कारण पाय, वाणी खिरना, उठना, बैठना, चलना, डग भरना आदि क्रिया संभवै है। यामें इच्छा-बिना क्रिया होय है, यातैं दोष नाहीं। ऐसा जानना। ऐसे तो भगवान् का विहार होय। और मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि–प्रकार संघ का विहार, भूमि विषैं होय है। कैसी है भूमि, सो बीथी (मार्ग) रूप है। सो बीथी के दोऊ तरफ तो कोट हैं। ताके मध्य, एक योजन लम्बी, आध योजन चौड़ी, रास्ता समान, देवन करि रची हुई, महा शोभायमान, रमणीक, निर्मल स्थान रूप, गली है। सो देव, विद्याधर, चारण–मुनि, और

सामान्य केवली तो, आकाश में गमन करैं हैं। सो नहीं तो भगवान् तैं अति नजदीक, नहीं अति दूर, यथा-योग्य स्थान पै गमन करै हैं। सो इन्द्र हैं ते तो भगवान् के नजदीक, भक्ति सहित चले जाँय हैं। और सामान्य, चार प्रकार के देव हैं। सो दूर चले जाँय हैं। सो केई देव तो, चमर ढोरते जाँय हैं। केई देव, जय-जय शब्द करते जांय हैं। केई देव, चोबदार की नांईं, हाथ में रत्न-छड़ी लिये, देवन कूं चले-चलो, चले-चलो, कहते जाँय हैं। देवों के समूह कौं विनय तैं, सिलसिले तैं लगावते जाँय हैं। इत-उत करते जांय हैं। और केई देव, भगवान् की स्तुति करते जाँय हैं। केई देव बंदना-नमस्कार करते जाँय हैं। केई हर्ष के भरे, कौतूहल करते जाँय हैं। और ऐसे ही मनुष्य-तिर्यंच, भूमि विषैं, हर्षते चले जांय हैं। केई भव्य, भगवान् की तरफ देखते जांय हैं। इत्यादिक विहार-समय, अनेक शुभ कार्य होंय हैं। सो सर्व व्याख्यान, विशेषज्ञानी के गम्य है। हमारी शक्ति, सर्व कथा कहने की नाहीं। ऐसे विहार-कर्म का कथन किया। सो आगूं भगवान् जहां जाय विराजैंगे, तहां इन्द्रादिक देव, समोशरण की रचना, पूर्वोक्त रचैं हैं। ता विषैं, भगवान् विहार करि, जाय बिराजैं हैं। तिन भगवान् कूं, हमारा नमस्कार होऊ। ये जिनेन्द्रदेव, इस ग्रंथ के अंत-मंगल कूं करहु। इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अंत-मंगल निमित्त, अर्हंत-देव कूं नमस्कार पूर्वक, समोशरण कथन, विहार-कर्म कथन वर्णनो नाम, चालीसवां पर्व सम्पूर्ण॥

आगे और भी अंत-मंगल के निमित्त, भगवान् के महाभक्त, स्तोत्रन के कर्त्ता आचार्य,

तहां प्रथम श्री वादिराज नाम आचार्य, जिन-धर्म के उद्योत
तिन कूं नमस्कार करिये है। तहां प्रथम श्री वादिराज नाम आचार्य, जिन-धर्म के उद्योत करवे कूं सूर्य समान महा तेजस्वी, एकीभाव स्तोत्र के कर्त्ता, तिन कूं नमस्कार होऊ। वादिराज मुनि ने, जा कारण पाय एकीभाव स्तोत्र किया, सो कहिये है-इनने गृहस्थ अवस्था में अनेक राज्य—भोगन के भोक्ता होय, कामदेव—समान रूप धरैं, संसार—भोगन तैं उदास होय, राज्य-भार तजि, यती-व्रत धास्या। सो महा वीतराग पद के धारी कौं, पूर्व कर्म उदय, शरीर में कुष्ट रोग प्रगट्या। सो तन, जगह—जगह तैं, फूट निकस्या। महा दुर्गंध उपजी। सो यह वीतरागी, तन तैं निष्प्रेम है। आगे ही सूं, शरीर कूं पुद्गल—सप्तधातु का पिण्ड जानैं। सो आत्मा—रस रमता योगीश्वर, शरीर का उपचार, कछू नहीं वांच्छता भया। सो विहार करते, एक नगर के बन में तिष्ठैं। सो जब बस्ती में आहार कूं जांय, सो नगर में महा धर्मात्मा श्रावक, निर्विचिकित्सा गुण के धारी, यती कों नवधा—भक्ति सहित, हर्ष सौं दान देय, अपना भव सफल मानैं। ऐसे, बन में रहते, कई दिन भये। सो राजा का मन्त्री, एक सेठ था। जो महा धर्मात्मा। प्रभात उठै बन में जाय, रोज वादिराज-मुनि का दर्शन करि, धर्म सुनि, तव पीछे राजा के दरवार में जाय। सो कोऊ पापी, इस सेठ के द्वेषी पुरुष ने, जाय राजा पै कही। भो राजन् ! इस सेठ का गुरु, कोढी है। सो यह प्रथम ही उस कोढ़ी के दर्शन कूं जाय, ताके मुख तैं धर्म सुनि, पीछे आपकी सेवा में आवे है। याका गुरु महा कोढ़ी है। ताकी दुगंध आगे, कोई नहीं ठहरै। सो ये बात उचित

नाहीं। तब राजा कही, यह बात झूठ है। ये सेठ, हमारा ऐसा अविनय नहीं करै। तब चुगल ने कही, यामें असत्य होय, तौ जो गुनहगार की गति होय, सो मेरी करौ। तब राजा ने, दूसरे दिन सेठ सूं कही। हे सेठ ! क्या तेरा गुरु कोढ़ी है ? तब सेठ इसका उत्तर अविनय वचन जानि, राजा सूं कही। भो नाथ ! कहनेहारे ने असत्य कही है। गुरु शुद्ध हैं। तब राजा नैं कही। जो शुद्ध हैं तो हम प्रभात दर्शन कौं चालेंगे। ऐसे राजा के वचन सुनि, सेठ चिंता कूं प्राप्त भया। जो मैं राजा पै असत्य बोल्या, सो तौ विनय तैं बोल्या। मेरे मुख तैं मैं, गुरु कौं कुष्ट है, ऐसा अयोग्य—वचन कैसे कहौं ? ऐसी जानि असत्य कहा। अरु प्रभात, राजा दर्शन कूं जाय, गुरु का शरीर प्रत्यक्ष रोग सहित देखेगा, तौ यह पापिष्ठ, गुरु कौं उपद्रव करैगा। अरु मेरा, मरण भया ही है। परन्तु गुरु कौं उपसर्ग नहीं होय, तौ भला है। इत्यादिक प्रकार, सेठ महा चिंतावान् होय, पीछे बन में गुरु के पास गया। सो मुनीश्वर, ज्ञान-भण्डार कही। भो वत्स ! तेरा मुख चिंतावान्-उदास क्यों ? अरु तूं प्रभात आया था, सो अबार आवने का कारण कहा ? तब सेठ ने, गुरु के पास, राजा के आवने की, सर्व कथा कही। अरु बिनती करी, कि यह राजा महा क्रूर स्वभावी है। सो मोकूं मारेगा, तो मारौ। परन्तु आप यहां तैं विहार करौ, तो भला है। नहीं तो उपसर्ग करेगा। मैं महा पापी, ताके निमित्त पाय, उपद्रव हो है। इत्यादिक, सेठ कूं महाभयवंत भया, अपनी आलोचना कूं लिये वचन बोलता देख, मुनीश्वर करुणा करि, धर्म-

की प्रभावना करवे कूं बोलते भये। भो वत्स ! भो आर्य ! भय मत करो। राजा दर्शन कूं
आवै, तो आवने देओ। ऐसे गुरु के वचन सुनि, सेठ मन में हर्ष पावता भया। जो जगत
का नाथ, मेरे गुरु ने, मोहि अभयदान दिया। सो अब भय नाहीं। तब भी सेठ ने विचारी,
जो गुरु के तन मैं तो, यह प्रत्यक्ष रोग है। अरु गुरु ने अभयदान दिया। सो यह वचन गुरु
का, आश्चर्य उपजावै है। तथा सेठ विचारै है। यह वीतराग-गुरु की, अखंड आज्ञा है।
सो मेरु चलायमान होय तो होय, परन्तु गुरु का वचन अन्यथा नाहीं होय। तातैं, गुरु कही,
भय मति करो, सो अब मोहि, भय नाहीं। ऐसा दृढ़ निश्चय करि, सेठ भी अपने मन्दिर
गया। तब यतीश्वर ने भगवान् की स्तुति करी। चौबीस काव्य में, स्तोत्र किया। सो मन-
वचन-काय एकत्व शुभ रूप करि, जिनदेव के गुणानुवाद गाये। सो भक्ति के भाव तैं, अंत
काव्य के पूरण होते, यती के तन का सर्व रोग, नाश भया। सूर्य के तेज समान, तन की
दीप्ति प्रगट भई। सो यति ने बाँयें हाथ की छोटी अँगुली की एक नौंक, राजा कों प्रतीति
के अर्थ, रोग सहित रहने दई। बाकी सर्व-तन, कंचन वर्ण भया। जब प्रभात, राजा दर्शन
निमित्त, चतुरंग सेना मिलाय, महा दल सहित आया। अरु यती के तन का रोग, सब
नगर जानै था। सो इस कौतुक कूं सुनि, सर्व नगर के लोग भी, कौतुक-हेतु आये। सो वन
में मनुष्यन का समूह फैल गया। राजा तहां आया, जहां यतीश्वर विराजैं। सो बाहन तैं
उतरि, मुनि के दर्शन कूं आगे गया। सो शरद ऋतु की पूर्णमासी के चन्द्रमा समान

निर्मल कान्ति धारैं, समता समुद्र, वीतरागी योगीश्वर कूं देख, मुनि के तन की दीप्ति कौं देख, विस्मय कूं प्राप्त भया। दूर तैं नमस्कार किया। राजा ने मुनि की, अनेक स्तुति करी। अरु जानैं, राजा पै चुगली करी थी, तापै राजा कोप करि, ताकौं दण्ड देवे का विचार करता भया। तब यतीन्द्र ने, राजा के मन का अभिप्राय जानि, आज्ञा करी। भो नृपेन्द्र! कोप मति करो। वानै असति नहीं कही थी। हमारा तन कुष्ट–रोग सहित था। परन्तु या सेठ ने, मेरे रोग का नाम, अविनय–भय तैं नहीं लिया। सो याके भय निवारण कूं, प्रभु की स्तुति के प्रसाद तैं, शरीर शुद्ध भया। बाकी यह शरीर, महा अशुचि, सप्त धातु का पिण्ड, ग्लानि का स्थान है। याके विषैं, यती निष्प्रिय है। परन्तु सेठ के धर्मानुराग सूं, यह कार्य किया है। अपने बायें-कर की अँगुली की नौंक, रोग सहित राखी थी, सो राजा कौं बताई। कही, भो नरेन्द्र! यह अँगुली समान, यह सर्व तन था। सो धर्म के प्रसाद करि, प्रभु की भक्ति के प्रसाद करि, यह तन, शुद्ध भया। तातैं तूं कोप मति करै। वानै सत्य ही कही थी। ऐसे वचन मुनि के सुनि, राजा अचरज कूं प्राप्त भया। मिथ्या–बुद्धि गई। अरु शुद्ध-धर्म का धारी भया। बारम्बार, सर्वज्ञ का धर्म प्रशंस्या। सर्व लोग यह अतिशय देख, मिथ्या–भाव तजि, शुद्ध–धर्म के धारक भये। और श्री वादिराज मुनीन्द्र की स्तुति करते भये। अरु वादिराज–योगीश्वर का किया एकीभाव स्तोत्र कौं, घनै भव्य, मंगल के अर्थ सुनते भये, पढ़ते भये। ऐसा एकीभाव स्तोत्र, अरु इसके कर्त्ता श्री वादिराज मुनी-

श्वर जगत गुरु, इस ग्रन्थ के अंत में, इस ग्रन्थ के कर्त्ता कूं, तथा इस ग्रन्थ के पढ़नेहारेन कूं,
मंगल करौ। ऐसे वादिराज नामा आचार्य कूं, नमस्कार करि, अन्त-मंगल विषैं, तिन के
गुणन का स्मरण किया। आगे इस ग्रन्थ के अंत-मंगल करतैं, श्री भक्तामर-स्तोत्र के कर्ता
श्री मानतुङ्गाचार्य, तिनकूं नमस्कार करिये है। कैसे हैं श्री मानतुङ्गाचार्य, प्रत्यक्ष जिनधर्म
प्रकाशवे कूं दिनकरि समानि हैं। अरु मिथ्या—सन्देह मयी शिखर, ताके भंजन कूं, इन्द्र-
वज्र के समानि हैं। प्रत्यक्ष भगवंत देव के महाभक्त हैं। तथा कुवादीन की अतत्व श्रद्धान
रूपी प्रवाह रूप नदी, सो कुनय रूप तरंगनि सहित, सो ज्ञान रूपी जीर्ण वृक्ष तिनकौं
उपाड़ती, अपनी स्वेच्छा वेग रूप बहती ऐसी तरंगणी, ताके रोकवे कूं, मानतुङ्ग गुरु, कुला-
चल—शिखर समानि हैं। ऐसे गुरु कूं, नमस्कार होऊ। जिन नैं भक्तामर-स्तोत्र करि, प्रगट-
यश पाया। तिन तैं भक्तामर—स्तोत्र कैसे भया, सो कहिये है। तहां उज्जैन नगरी, जहां राजा
सिंह, महा-प्रतापी, राज्य करै। ताके रत्नावली नाम स्त्री, सो महा सती, शची—समान
रूपवती है। सो तिनकैं पुत्र नाहीं। सो राजा कूं चिन्ता भई। तब मन्त्री ने कही। हे नाथ!
धर्म—सेवन कीजे। ताके प्रसाद, सब सुख होय है। ऐसे करते, एक दिन राजा, परिवार
सहित बन गया। सो एक सरोवर के तीर, मुंज के वृक्ष नीचे, एक बालक देख्या। सो बालक,
रानी कूं दिया। और ताका नाम, मुंजकुमार रखा। सो बालक अपने रूप-गुण सहित, बधता
भया। पीछे केतेक दिन गये, रत्नावली रानी के गर्भ रह्या। सो नव मास पूर्ण भये, पुत्र ६६६

भया ।. ताका नाम, सिंहलकुमार रखा। वह अनुक्रम तैं, तरुण भया । तब पिता ने, सिंहलकुमार के व्याह किये । सो शुभ्र राजों की पुत्रीं, तिन में एक मृगावती नामा रानी सहित, कुमार कैं दोय पुत्र—युगल भये । तिनमें बड़े का नाम शुभचन्द्र, अरु छोटे का नाम भर्तृहरि । ये दोय—पुत्र क्रम तैं, स्याने भये। अनेक विद्या—प्रवीण भये । एक दिन राजा सिंह, संसार तैं उदास भये। सो मुंज कूं राज्य, अरु सिंहल कूं युवराज पद देय, आप यती पद धारि, आतम—कल्याण किया । अब राजा मुंज, राज्य करै । सो एक दिन, राजा बनक्रीड़ा कों गया था । सो आवते, एक मन्दिर के द्वार, एक तेली ने कुदार नाम विद्या साधी थी । सो ताने कही । हे राजन् ! मोकूं विद्या सधी है । सो मो समान, पृथ्वी में बली नाहीं । तव राजा ने कही । तू नीच कुली कूं, एती विद्या का बल कबहूं हो सक्ता नाही। तब तेली ने दोऊ हाथ तैं, जोर करि विद्या का कुदार, धरती में गाड़्या । और कही, जो कोई योद्धा होय, तौ काढ़ौ । तब राजा ने अपने सामंतन कूं कही, काढ़ौ । सो सर्व सामंत, बड़े-बड़े मल्ल, पचि—पचि हारे, कुदार नाहीं निकस्या । तब राजा सिंहल उठ्या । सो एक हाथ तैं कुदार निकास्या । पीछे सिंहल ने एक हाथ तैं, कुदार गाड़्या । अरु कही, याकौं काढ़ौ, तौ जानैं। तब तेली, विद्या—बल करि, हार्‍या । तथा राजा के मल्ल—सुभट पचिहारे, कुदार नाहीं निकस्या । एते में राजा—सिंहल के, दोऊ पुत्र आये । अरु पिता तैं कही । प्रभो ! हम कौं आज्ञा करो, तौ हम काढ़ैं । तब राजा, हँस करि कही । भो पुत्र हो ! यहां तिहारा काम ना-

हीं। तिहारी बराबरी के लड़का—बालकन में क्रीड़ा करौ। तब कुमारोंने कही। हे नाथ! बिना हाथ लगाये काढ़ैं, तो आपके पुत्र जानहु। सो हठ करि, पिता तैं आज्ञा लेय, अपने मस्तक के केश लेय, कुदार में उरझाय कैं, झटक्या। सो खैंच कैं कुदार निकास्या। सो इन का पौरुष देख, राजा मुंज ने, मंत्री सूं कही। इन कूं मारौ। इन बालकन छते, मेरा राज्य जमैं नाहीं। तब मंत्री ने, इन कुमारन कूं कही। तुम्हारा बाबा, तुम कौं मास्या चाहै है। तातैं तुम कोई दिन, यहा सूं भागो। तब दोऊ कुमारन नैं, अपने पिता सूं कही। भो नाथ! हम कूं राजा मुंज, मास्या चाहै है। सो हम कौं, कहा आज्ञा होय है? तब राजा सिंहल ने कही। तुम ताकौं मारौ। जो आप को हनें, तो हनता कौं, आप भी हनिये। याका दोष नाहीं। यह राजनीति है। ऐसे वचन, पिता के सुनि, शुभचंद्र अरु भर्तृहरि इन दोऊ कुमारन नैं कही। हे नाथ! हमारैं तो वे आप की समान हैं। सो बाबा कौं, कैसे मारैं? सो संसार तैं उदास होय, विरक्त भये। अरु दोऊ भाई, तप धरते भये। सो शुभचन्द्र तो बन में जाय, धर्म-धुरंधर गुरु के पास, जिन-दीक्षा धरि, मुनि भये। और नाना तप करि, अनेक ऋद्धि पाई। और छोटे भाई भर्तहरि ने बन में जाय, तपसी के व्रत धारे। सो अनेक अज्ञान-तप करै। सो एक दिन बन में भूल्या। सो तृषावंत भया, नीर देखता, एक जायगा बन में, एक तापसी, पंचाग्नि आदि अनेक तप करै, तहां पहुंचा। सो भर्तृहरि ने तिस तापसी के पास जाय, नमस्कार किया। तब तापसी ने, भर्तृहरि सूं कही। तुम अपना नाम—कुल

कही। तब भर्तृहरि ने नाम–कुल कह्या। सो भर्तृहरि ने, याकी बड़ी सेवा करी। तब तापसी ने राजी होय, कलंक की तूम्बी भर दीनी। और कही। यातैं तांबा, कंचन होय है। और अनेक मंत्र, तंत्र आदि चमत्कारी–विद्या दई। ऐसे बारह वर्ष तांई, भर्तृहरि जी ने, तापसी की सेवा करी। पीछे गुरु के पास तैं, सीख माँगी। पीछे भाई शुभचंद्र जी की खबर कों चेला भेजे। सो चेलों ने, शुभचंद्र कों गंधमर्दन पर्वत पै, ध्यानारूढ़, नगन तन, वीतराग देखे। सो भर्तृहरि के चेला, दोय दिन उपवास करि, भूख तैं भागे। सो आय भर्तृहरि कूं कही। तुम्हारे भाई पै लंगोट नाहीं। भूख तैं क्षीण हैं। अरु तुम, राज भोगो हो। सो कछु भाई कौं देव। जातैं ताका दारिद्र जाय। तब भर्तृहरि ने, आधा कलंक का तूम्बा, भाई कों भेजा। सो शुभचन्द्र ने, पत्थर पै डाल दिया। तब चेला ने, भर्तृहरि सूं कही। वह भाग्यहीन है, कलंक डाल दिया। तब भर्तृहरि आप, शुभचंद्र जी पै जाय, पिता समान बड़े भाई कूं जानि, विनय तैं नमस्कार करि, कलंक की तूम्बी आगे धरी। तब शुभचंद्र जी ने कही, तूम्बी में कहा है? तब भर्तृहरि ने कही। भो प्रभो! तांबा तैं कंचन करे, यामें ऐसा गुण है। तब शुभचंद्र जी ने तूंबा उठाय, शिल पर धरि पटक्या। सो भर्तृहरि कही। भो भ्रात! यह अनेक राज्य–संपदा का द्रव्य, आपने डाल दिया, सो भली नहीं करी। हे भ्रात! बारह वर्ष गुरु की सेवा करी, तब मोकूं उन्हों ने दीनी थी। इस तरह भर्तृहरि कौं खेद–खिन्न देख, शुभचंद्रजी ने कही। भो वत्स! राज्य तजि, बन बसे। अब भी कलंक नहीं तज्या। यह

कलंक, मुनीश्वरों कूं कलंक समान है। तातें तजना योग्य है। अरु भो वत्स ! तेरे कलंक तैं, पाहन तौ कंचन नहीं भया। अरु तेरैं स्वर्ण की चाह होय, तौ देख! तब शुभचंद्र ने, अपने पांव-नीचे की रज लेय, एक बड़ी शिला पै डाली। सो सर्व शिला, कंचन की भई। सो भर्तृहरि यह अतिशय देख, बड़े भाई के पाँयन पड़े। अनेक स्तुति करि, जिन-दीक्षा याची। तब शुभचंद्र जी ने दीक्षा दई। अरु इनके संबोधवे कों, ज्ञानार्णव नाम ग्रन्थ बनाय, दीक्षा में दृढ़ किया। सो पीछे, दोऊ भाई, जिन-दीक्षा सहित, तप करते भये। अरु वहां, उज्जैन नगरी का राज्य, राजा मुंज करै। सो एक दिन राजा मुंज, मन में दगा विचारता भया। जो, सिंहल जोरावर है। यातैं मेरा राज्य नहीं रहेगा। तब मंत्री कूं कही। सिंहल कूं मारौ। तब मंत्री ने कही। दोष कहा, सो कहौ। निर्दोष कों मारे, महा-पाप है। तब एक चेटी (दासी) सौं मिलि, ताकों अंधा किया। तिस चेटी ने, सिंहल कों, तेल मर्दन करतें, ताके नेत्र फोड़े। तब राजा मुंज, यह सुनि, दुख करता भया। जो पुत्र तौ दीक्षा ले गये, भाई अंधा भया। अब, कुल-नाश भया। मैंने महा-पाप किया। इत्यादि प्रकार पछताता भया। सो एते, एक भोजक—याचक ने आय, राजा मुंज कूं बधाई दई। कही, भो राजन् ! तुम्हारे भाई सिंहल के पुत्र भया। तब राजा मुंज राजी होय, सिंहल के घर आया। सो द्वार पै एक श्लोक लिखा देख्या—

श्लोक—वर्षाणि पञ्चपञ्चाशत, सप्त मासान् दिनत्रयं।

भोजराजेन भोक्तव्या, सुखेन दक्षिण दिशा ॥ १ ॥

यह श्लोक देख, राजा मुंज ने पंडितन कूं बुलवाय, कही। श्लोक किसने लिख्या ? तब एक पण्डित ने कही। भो राजन् ! इस बालक के पुण्य का माहात्म्य—होनहार, मैंने लिख्या है। ये भोजराज, दक्षिण दिशा में ५५ वर्ष ७ महिना ३ दिन राज्य करेगा। ऐसी सुनि, सर्व राजी भये। बालक अनेक विद्यानिधान, क्रम करि बड़ा भया। तब राजा मुंज ने भोज-पुत्र का व्याह करि, राज्य दिया। सो राजा भोज, जगत् में अपने प्रताप करि, राज्य करै। इस भोज राजा के यहां, एक वररुचि नाम पण्डित रहै। सो ताकी पुत्री, वर-योग्य भई। सो पिता ने पुत्री सूं कही। तू कहै, ताहि परणाऊं। तब पुत्री ने कही। ऊंच-कुल की कन्या, अपने आप, वर नहीं याचै। जो भाग्य में होय, सो पावै। तथा व्यवहारनय करि, माता—पिता जाकूं परणावैं, सो प्रमाण है। ऐसे पुत्री के वचन सुनि, पिता महा—कोप करि, एक महा दरिद्र, मूर्ख पुरुष खोज, ताहि कन्या परणाई। तब कन्या ने कही, पूर्व-कर्म कौं कौन मैटै ? ऐसी जानि, वह समता धरती भई। पीछे वररुचि विचारी। जो राजा भोज पूंछेगा, तुम्हारा जामाता (दामाद) कैसा पण्डित है ? तो मोहि लज्जा उपजेगी। ऐसा जानि वररुचि, ता दामाद कूं बहुत पढ़ावै। परन्तु ताकौं, एक अक्षर भी नहीं आवै। बहुत काल में, आशीर्वाद पढ़ाया। सो राजा भोज की सभा में, अनेक पण्डित इकट्ठे भये। तहां वररुचि का दामाद जाय, राजा कों आशीष वचन देते, अशुद्ध बोल्या। तब राजा ने कही, मूर्ख है।

तब वररुचि ने अशुद्ध वचन कौं, अपनी पण्डिताई करि, शुभ करि, राजा कों बताया। घर जाय जमाई कौं, मान-खण्डनेहारे वचन कहे। तब ये अपने कों मूर्ख जानि, कालिकादेवी के मठ में, अधोमुख जाय पस्या। कही मोय विद्या-वर देहु, नहीं तो मैं मरि हौं। तब सातवें दिन, देवी प्रसन्न भई। वांच्छित वर दिया। कही, तेरा नाम कवि-कालिदास हो। और वचन-सिद्ध वर दिया। सो देवी के प्रसाद तैं, अनेक विद्या-शब्द स्फुरे। ताकरि सर्व पण्डित जीते। तब सबने कही, विद्या कहां पाई? तब यानें कही, कालिका देवी के पास पाई। तब वररुचि, याके पाँयन पस्या। कही, मेरी कन्या धन्य है। याके वचन, सत्य हैं। अब ये कालिदास प्रगट भया। सो एक दिन राजा भोज की सभा में जाय, कालिका कूं आराधी। सो सर्व सभा, कालिका कौं देख, नमस्कार करि, कालिदास की प्रसंशा करती भई। ऐसे कालिदास प्रसिद्ध भया। अब एक वसुदत्त सेठ, याही उज्जैनी नगरी में रहै। सो महा-धर्मात्मा, ताके मनोहर नाम पुत्र था। सो एक दिन सेठ, पुत्र सहित, राजा भोज पै गया। तब राजा नें, सेठ तैं पूछी। तिहारा पुत्र कहा पढ़्या है? तब सेठ कही। भो नाथ! नाममाला ग्रन्थ, अर्थ सहित पढ़्या है। तब भोजराज कही। नाममाला का कर्त्ता कौन? तब सेठ कही। धनंजय नाम महा-पण्डित है। तब राजा कही, धनञ्जय तैं मिला-ओ। सो राजा-भोज महा-पण्डित, गुणीजन का दास, सो धनंजय कूं बुलाया। आदर सहित राजा ने भले मनुष्य भेजे। तब कालिदास बोल्या। हे राजन्। धनञ्जय, कछू समझ-

ता नाहीं। जब धनंजय—कवि आया, तब राजा ने धनंजय कूं, ऊंचे आसन पर बैठक दई। और कही, तुम्हारा नाम बड़ा। सो कौन ग्रन्थ किये? तब धनञ्जय कही। भो राजेन्द्र! मेरे किये ग्रन्थ मैं, इन पण्डितों ने मेरा नाम लोप, अपना नाम धरया है। तब भोजराज ने, पण्डितों को उलाहना दिया, कि तुम काहे के पण्डित हो! तब सर्व पण्डितों ने कही। भो राजन्! यह धनंजय कबका पण्डित है। याका गुरु तौ, मानतुङ्ग मुनि है। जो महामूर्ख है। यापै विद्या, कहां तैं आई? याका गुरु अब भी बन में है। सो आय, हम तैं वाद करै। तब धनञ्जय कही। भो पण्डित हो! गुरु का नाम तौ, उत्तम गुण—रूप है। सो वे वहीं विराजे रहैं। परन्तु तुम्हारे वाद की इच्छा होय, तो मोतैं वाद करौ। तब इन में परस्पर वाद होता भया। सो अनेक नय, दृष्टान्त, प्रश्नोत्तर करि, कालिदास आदि सर्व पण्डितों कूं, राजा भोज की सभा में, धनञ्जय ने जीत्या। सब वचन—बंद भये। तब कालि-दास, कोप करि बोल्या। हे राजन्! यह महा मूर्ख है। सो यातैं कहा वाद करैं। याका गुरु मानतुङ्ग है। सो ताकौं बुलाइये, तातैं वाद करैंगे। तब राजा ने, अपने भले मनुष्य, मानतुङ्ग नामा मुनीश्वर के ल्यायवे कौं भेजे। तिननैं, मुनीश्वर सूं कही। हे नाथ! राजा भोज ने नमस्कार कह्या है। अरु आप कूं बुलाये हैं। तब यती कही। हमारा, राजगृह में प्रयोजन नाहीं। ऐसी कही, और नहीं गये। तब कालिदास कही। भो राजन्! वह मानतुङ्ग, मान का शिखर है। महा—मानी है। सो भलीतरह नहीं आवेगा। तब राजा भोज, कोप

सुधरवे की साई (ब्याना) समान, आशा भई। ताकरि परम-सुख भया। इस ग्रन्थ विषैं; अनेक ज्ञान तरंग उपजीं, ताका कथन पाईये है। तातैं याके अध्ययन किये, सुदृष्टि होय। अरु ज्ञान-तरङ्गन का रहस्य जानैं। तो तत्वज्ञान पाय, परम सुखी होय। मोक्ष-मार्ग का ज्ञाता होय। पाप-पुण्य के शुभाशुभ का भी वेत्ता होय। उच्च पद पाय, परंपराय जन्म-मरण मैटै। ऐसा जानि इस ग्रन्थ के अभ्यास विषैं प्रवर्तना योग्य है। ऐसे इस ग्रन्थ की बालबोध वचनिका रूप टीका, अपनी आलोचना कूं लिये, आदि-अन्त इष्ट देव-गुरु कों नमस्कार करि, पूर्ण करी।

जे वसु गुण सहता, वसु कर्म रहता, सिद्ध कहंता, सो देवा।
चतु घात निवारे, चउगुण धारे, तन थिति कारे तिस सेवा॥
ताकी सो वानी धर्म कहानी, शिव दरशानी, मैं ध्याऊं।
ते नगन शरीरा, सब जग पी-हरा, तप धर धीरा, गुण गाऊं॥ १॥
ये देव धरम गुरु, तिष्ठो मो उर, हे शिव-सुख कर, जगंनाथा।
मैं इनको दासा, और न आशा, है यह प्यासा, रक्ष तथा॥
यह टेक हमारी है गुणकारी, तुम थुति प्यारी, पाप हरा।
सो मोकूं दीजै ढील न कीजे, लेय धरीजे, मोक्ष-धरा॥ २॥

यह सुदृष्ट तरङ्ग है, ताको यह विस्तार।

ता नाहीं। जब धनंजय—कवि आया, तब राजा ने धनंजय कूं, ऊंचे आसन पर बैठक दई। और कही, तुम्हारा नाम बड़ा। सो कौन ग्रन्थ किये ? तब धनञ्जय कही। भो राजेन्द्र ! मेरे किये ग्रन्थ में, इन पण्डितों ने मेरा नाम लोप, अपना नाम धऱ्या है। तब भोजराज ने, पण्डितों को उलाहना दिया, कि तुम काहे के पण्डित हो ! तब सर्व पण्डितों ने कही। भो राजन् ! यह धनंजय कबका पण्डित है। याका गुरु तौ, मानतुङ्ग मुनि है। जो महामूर्ख है। यापै विद्या, कहां तैं आई ? याका गुरु अब भी वन में है। सो आय, हम तैं वाद करै। तब धनञ्जय कही। भो पण्डित हो ! गुरु का नाम तौ, उत्तम गुण—रूप है। सो वे वहीं विराजै रहैं। परन्तु तुम्हारे वाद की इच्छा होय, तो मोतैं वाद करौ। तब इन में परस्पर वाद होता भया। सो अनेक नय, दृष्टान्त, प्रश्नोत्तर करि, कालिदास आदि सर्व पण्डितों कूं, राजा भोज की सभा में, धनञ्जय ने जीत्या। सब वचन—बंद भये। तब कालिदास, कोप करि बोल्या। हे राजन् ! यह महा मूर्ख है। सो यातैं कहा वाद करैं। याका गुरु मानतुङ्ग है। सो ताकौं बुलाइये, तातैं वाद करैंगे। तब राजा ने, अपने भले मनुष्य, मानतुङ्ग नामा मुनीश्वर के ल्यायवे कौं भेजे। तिननें, मुनीश्वर सूं कही। हे नाथ ! राजा भोज ने नमस्कार कह्या है। अरु आप कूं बुलाये हैं। तब यती कही। हमारा, राजगृह में प्रयोजन नाहीं। ऐसी कही, और नहीं गये। तब कालिदास कही। भो राजन् ! वह मानतुङ्ग, मान का शिखर है। महा—मानी है। सो भलीतरह नहीं आवेगा। तब राजा भोज, कोप

सागर सम जो यह तिरै, सम्यक टेक सुधार ॥ ३ ॥
गुरु आज्ञा-नौका चढ़ै, शङ्का सकल निवार ।
ते सुदृष्टि तरंग के, उतरैं पैले पार ॥ ४ ॥
शीतल-जिन के जन्म थलि, ग्रन्थ समापति कीन ।
विघ्न मिटे मंगल थये, भये पाप सब हीन ॥ ५ ॥
टेक गई अघ कारनी, रही टेक मुनि दाय ।
सो यह भव-भव टेक हम, मिलै टेक वृष दाय ॥ ६ ॥
संवत् अष्टादश शतक, फिर ऊपर अड़तीस ।
सावन सुदि एकादशी, अर्धनिशि पूरण कीन ॥ ७ ॥

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, कवि आलोचनादि वर्णनो नाम, व्यालीसवाँ पर्व सम्पूर्ण ॥ ४२ ॥

इति श्री पण्डित टेकचन्द्र जी कृत, सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ तथा ताकी बालबोधनी टीका सम्पूर्णम् ।

शुभं—भूयात् ।

—*—

करि कही। यती कौं, पकड़ि ल्यावो। ऐसी सुनि, राजा के सेवक गये, सो यती कूं उठाय ल्याये। और राजा के पास धरया। सो यती, मौन सहित, पंच परमेष्ठी का ध्यान करते, तिष्ठते भये। तब राजा, कोप करि कही, याकौं बंदीगृह में धरौ। तब राजा की आज्ञा पाय, किंकरों ने यती कौं भौंहरे में दिया। सो अड़तालीस कोठों के भीतर मूँदे। और सब कोठों के जुदे-जुदे ताले दिये। राजा की तिन पै मुहुर करी। अरु यती के पाँवन में बेड़ी, अरु हाथ में हथकड़ी, गले में जेल (सांकल) डाली। इत्यादिक दृढ़ बंधन किये। तापै, अनेक विश्वासी सुभट राखे। ऐसे महा संकट के स्थान में, मुनीश्वर कूं नाख्या। सो वीतरागी यती, समता सहित रहे। तहां तीन-दिन भये। तब यतीश्वर ने विचारी। कि यामें जिनधर्म की न्यूनता दिखैगी। पापीजन, धर्मी-पुरुषन कूं पीड़ेंगे। ऐसी जानि, आदिनाथ स्वामी की स्तुति, महा भक्ति-भावन सहित करी। ४८ काव्य किये। तिन में अनेक मंत्र, अतिशय सहित गर्भित करि, भक्तामर नाम दिया। सो मंत्र समान, उत्तम काव्य किया। तिस में आदिनाथ भगवान के गुण कहे। सो प्रभु की स्तुति के प्रसाद करि, सर्व कोठों के ताले अकस्मात् टूटि गये। यती के तन-बंधन झड़ सये। यती निर्बंधन होय आये। सो तिनकौं देख, सेवक डरे। तब यती कौं, बहुत बंधन में दिये। सो फेरि, बंधन टूटि गये। तब राजा भोज पै जाय, सेवक ने कही। भो नाथ! यती, बाहर निकसि आये हैं। तीन बार बंधन में दिये, तीनों बार, बंधन आपै-आप टूटे हैं। ऐसा आश्चर्य न देखा, न सुन्या।

तब राजा भोज ने, कालिदास आदि सर्व पण्डितों कौं कही। जो यह अतिशय, यती का भया। तब सब ने कही। भो राजा! यह यती, महा जादूगर है। सो मंत्र—तंत्र करि, निकस्या है। बंधन तोड़े हैं। तब राजा ने दृढ़ बंधन करि, पुनः कोठरी में बंद करि, चौकी राखी। जब यती ने भक्तामर—स्तुति का पाठ किया। सो सर्व बंधन टूटे। निर्बंधन होय, यती भोजराज की सभा में आये। तब राजा यती कौं देख, कांपता भया। और कालिदास कूं बुलाय कही। यती का तेज मेरे बूते सह्या नहीं जाय है। ताका यत्न करो। तब कालिदास कही। राजन् डरौ मति। और उसने कालिकादेवी कूं आराधी। जब देवी आयी। सो महाविकराल रूप बनाय, ताने कही। भो कालिदास! क्यों आराधी, सो कहो। एते ही में चक्रेश्वरी देवी आय, यती कौं नमस्कार किया। अरु कालिका कूं देख, चक्रेश्वरी ने कही। रे महापापिनी! तैंने मूर्खन के संग करि, अपना आत्मा, पाप—लिप्त करि, परभव बिगाड़्या। अब तोकौं स्थान—भ्रष्ट करि हौं। द्वीप तैं निकास हौं। तैंने यती कौं उपसर्ग किये। ऐसे चक्रेश्वरी के वचन कालिका सुनि, पाप—फल तैं कंपायमान होय, चक्रेश्वरी के पाँयन पड़ी। कही, भो माता! मो—अपराध क्षमा करि। मोह आज्ञा करौ, सो करौं। ऐसे नाना प्रकार चक्रेश्वरी की स्तुति करि, पीछे कालिका, मानतुङ्ग गुरु के पांयन पड़ी। गुरु की अनेक बिनती करती भई। अरु कही, भो यती! मोकौं आज्ञा करौ, सो करूं। तब यती कही। भो देवी! पूर्व—भव में पुण्य किया, ताके फल देवी भई। बड़ी शक्ति पाई।

विवेक पाया। अब तूं ही हिंसा की कर्त्ता भई, सो भला नाहीं। अब हिंसा तजि, दया-धर्म का सेवन करौ। ऐसी आज्ञा, गुरु नै करी। तब कालिका ने, मुनि कूं नमस्कार करि कही! भो प्रभो! आज तैं, मन-वचन-काय करि, हिंसा का त्याग किया। आपकी आज्ञा, मोकों कल्याण के अर्थ है, सो मैंने अङ्गीकार करी। भो यतीनाथ! मो अपराध क्षमा करौ। ऐसे कालिका देवी कौं सेवा करती देख; राजा भोज आय, मुनि के पांयन पड़ता भया। दीन होय, गद्गद् वाणी करि कहता भया। भो दयानिधान! रक्ष! रक्ष! मो अ-पराध क्षमा करौ। भो दयामूर्ति! मेरा प्रायश्चित्त कहो। अरु भव-भ्रमण मिटै, सो उपदेश देहु। तब गुरु ने कही। भो भोजराज! आदिनाथ का धर्म सेये, कल्याण हो यगा। तब राजा-भोज, मानतुङ्ग मुनी पै, श्रावक के व्रत लेता भया। यह अतिशय देखकर, जे पण्डित, वाद कौं आये थे। सो मान तजि, मिथ्याभाव छांड़ि, श्रावक-व्रत धारते भये। तब कालिदास आय, मानतुङ्ग मुनि के पाँयन पड़्या। कही, हे नाथ! मेरा अपराध क्षमा करो। अरु मोहि श्राव-क-व्रत देहु। तब गुरु ने दया करि, कालिदास कौं श्रावक-व्रत दिये। पीछे राजा भोज ने, गुरु पै नमस्कार करि, कही। भो गुरुदेव! एक संदेह मोहि है। सो कहूं हूं। भो गुरुदेव! आप के सर्व वंधन टूटे। सो मंत्र कौन है, सो कहौ। ये मंत्र हमकौं दया करि देहु। तब गुरु कही। भक्तामर महा मंत्र, अनेक विघ्न का नाशक है। ताका स्मरण, पठन, ध्यान, सुखकारी है। ऐसा अतिशय देख; अनेक, मिथ्या-भाव तजते भये। सो श्री मानतुङ्ग आचार्य ने प्रथम तो भक्तामर-

स्तवन, राजा भोज कौं पढ़ाया। ता पीछे, सर्व जगत के भव्य–जीव, ताकौं पठन करते भये। सो भक्तामर के कर्त्ता, विघ्न के हर्ता, मंगल के कर्त्ता, श्री मानतुङ्ग गुरु, मोकौं इस ग्रन्थ के पूरण होतें, अंत–मंगल में सहाय करौ। ऐसे महा अतिशय के धारक, पंचमकाल में साधु भये। तिन कूं मैंने, ग्रन्थ के अन्त–मंगल निमित्त स्मरण किया॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अंत–मंगल निमित्त, एकीभाव के कर्त्ता श्री वादिराज मुनीश्वर, तिनके गुणों का स्मरण तथा भक्तामर के कर्त्ता श्री मानतुंग नामा गुरु, तिनके गुणन का चिंतवन, तथा स्तोत्रन के कारण वर्णनो नाम, इकतालीसवां पर्व सम्पूर्ण॥ ४१॥

ऐसे इस ग्रन्थ के पूर्ण होते, अंत–मंगल के निमित्त, कल्याण के अर्थ; इष्टदेव, पंच परम गुरु, सिद्ध क्षेत्र, समोशरण विषैं विराजते भगवान्, अकृत्रिम जिन–भवन, इन आदिक सर्व का स्मरण, ध्यान करि; तिन कूं नमस्कार किया। ताकरि हमने अपना मनुष्य–जन्म पाना, सफल मान्या। काहे तैं, सो कहिये है। जो यह ग्रंथ, सागर समान गंभीर, नय–तरंगन करि भरया, नहीं दृष्टि परै है सामान्य–ज्ञान में अर्थरूपी–मर्याद कहिये पार जाकी। ऐसे अगाध गुण–निधि का पार पाना, हम से ज्ञान–दरिद्रीन कूं, महा दुर्लभ। सो इष्ट देव–गुरु के प्रसाद, तिनकी भक्ति के अतिशय करि, ग्रंथ पूरण भया। सो यह आश्चर्य ऐसा भया, जैसे कोई भुजा रहित पुरुष, अंत के स्वयंभूरमण समुद्र कौं तिरके पार होय, लोकन कूं विस्मय उपजावै। ऐसा ये कार्य जानना। तथा कोई धन रहित दरिद्री पुरुष ने व्याह रच्या। अरु बड़ी जायगा सगाई का

संबंध करि, हजारों मनुष्य नेवते देय परदेश तैं बुलाये। सो इसकी क्रिया देख, जो धनवान थे; सो हाँसि करते भये। जो देखो, घर विषैं तो एक दिन कौं अन्न नाहीं। अरु ब्याह, ऐसा भारी रच्या है। सो कैसे बनैगा ? अरु यह पुरुष भी, अपनी अज्ञान—चेष्टा देख, चिंतावान भया। मैंने अपना पुण्य—बल नाहीं विचास्या, अरु कारज दीर्घ रच्या। यह कैसे पूर्ण होयगा ! ऐसे यह पुरुष चिंता करता, रात्रि कौं तिष्ठे था। सो याके पुण्य तैं, कोई देवता आय, चिंतामणि देय गया। सो या पुरुष ने चिंतामणि के प्रभाव तैं, प्रभात भला-ब्याह किया। वांच्छित सबन कौं भोजन—ज्यौंनार देय, जगत कौं आश्चर्य उपजाय, यश पाया। तैसे ही मैं ज्ञान-धन रहित, ग्रन्थ रूपी बड़ी शादी रची थी। ताके पूर्ण होने की बड़ी चिन्ता थी। जो यह कार्य कैसे सिद्ध होयगा ? सो कोई पूर्व—पुण्य तैं, इष्ट देव ने, ज्ञान अंश मई चिंतामणि दिया। ताके प्रसाद करि, निर्विघ्न कार्य की सिद्धता पाई। सो इस बात का हमकों महा-अद्भुत सुख भया ॥ तथा जैसे कोई बालक—बुद्धि—पुरुष, शक्ति रहित काष्ठ की खड्ग बांधि, प्रबल बैरी का गढ़ जीतिवे कौं संग्राम करि, जीति पाय; गढ़ लेय, जगत कौं आश्चर्य उपजाय, यश पावता भया। तैसे ही मैं ज्ञान-बल रहित, तुच्छ अक्षर-ज्ञान तैं, ऐसा महान् ग्रन्थ पूर्ण किया। सो ये भी आश्चर्य है। इन आदिक अनेक आश्चर्य सहित, इस ग्रन्थ के पूर्ण होते हर्ष भया। ग्रन्थकर्त्ता अपना जन्म, कृत—कृत्य मानता भया। जो या तन तैं, शुभ कार्य करना था, सो किया। ऐसे अपना भव धन्य, मान्या। परभव

विवेक पाया । अब तूं ही हिंसा की कर्त्ता भई, सो भला नाहीं । अब हिंसा तजि, दया-धर्म का सेवन करौ । ऐसी आज्ञा, गुरु नै करी । तब कालिका ने, मुनि कूं नमस्कार करि कही ! भो प्रभो ! आज तैं, मन-वचन-काय करि, हिंसा का त्याग किया । आपकी आज्ञा, मोकों कल्याण के अर्थ है, सो मैंने अङ्गीकार करी । भो यतीनाथ ! मो अपराध क्षमा करौ । ऐसे कालिका देवी कौं सेवा करती देख; राजा भोज आय, मुनि के पांयन पड़ता भया । दीन होय, गद्गद् वाणी करि कहता भया । भो दयानिधान ! रक्ष ! रक्ष! मो अ-पराध क्षमा करौ । भो दयामूर्ति ! मेरा प्रायश्चित्त कहो । अरु भव-भ्रमण मिटै, सो उपदेश देहु । तब गुरु ने कही । भो भोजराज ! आदिनाथ का धर्म सेये, कल्याण हो यगा । तब राजा-भोज, मानतुङ्ग मुनी पै, श्रावक के व्रत लेता भया । यह अतिशय देखकर, जे पण्डित, वाद कौं आये थे । सो मान तजि, मिथ्याभाव छांड़ि, श्रावक-व्रत धारते भये । तब कालिदास आय, मानतुङ्ग मुनि के पाँयन पड़्या । कही, हे नाथ ! मेरा अपराध क्षमा करो । अरु मोहि श्राव-क-व्रत देहु । तब गुरु ने दया करि, कालिदास कौं श्रावक-व्रत दिये । पीछे राजा भोज ने, गुरु पै नमस्कार करि, कही । भो गुरुदेव! एक संदेह मोहि है । सो कहूं हूं । भो गुरुदेव ! आप के सर्व बंधन टूटे । सो मंत्र कौन है, सो कहौ । ये मंत्र हमकौं दया करि देहु । तब गुरु कही । भक्तामर महा मंत्र, अनेक विघ्न का नाशक है । ताका स्मरण, पठन, ध्यान, सुखकारी है । ऐसा अतिशय देख; अनेक, मिथ्या-भाव तजते भये । सो श्री मानतुङ्ग आचार्य ने प्रथम तो भक्तामर-

इति

मुद्रक—जयकृष्णदास गुप्ता विद्याविलास प्रेस, गोपालमन्दिर के उत्तर फाटक काशी।